विशाल भारत

सचित्र मासिक पत्र

सम्पादक :—बनारसीदास चतुर्वेदी

संचालक :—रामानन्द चट्टोपाध्याय

भाग १३

जनवरी—जून १९३४

सहकारी सम्पादक

ब्रजमोहन वर्मा और धन्यकुमार जैन

वार्षिक मूल्य
६) छै रुपया।

"विशाल भारत" कार्यालय
१२०।२, अपर सर्कूलर रोड, कलकत्ता

विदेशोंके लिए
९) या १४ शिलिंग

लेख-सूची

लेखक-सूची

चित्र-सूची

सादे चित्र :—

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १३, अंक १] माघ १९९० :: जनवरी १९३४ [पूर्ण-अंक ७३.

'विशाल भारत' का सातवाँ वर्ष

इस माससे 'विशाल भारत' अपने सातवें वर्षमें पदार्पण करता है। गत वर्ष 'विशाल भारत'ने अपने पाठकोंको वर्ष-भरमें १५९४ पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्री, ३३ तिरंगे चित्र और ४२० सादे इकरंगे चित्र भेंट किये। मोटे हिसाबसे औसतमें 'विशाल भारत' प्रति मास १३३ पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्री, २¾ रंगीन चित्र और ३५ सादे चित्र देता रहा है। 'विशाल भारत'में किस प्रकारकी पाठ्य-सामग्री रहती है, पाठकोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं; मगर इतना निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि पृष्ठ-संख्या तथा चित्र-संख्या दोनों ही हिन्दीके अनेक मासिकोंकी तुलनामें 'विशाल भारत'में अधिक मिलेंगी, जब कि उसका वार्षिक मूल्य अधिकांश मासिक पत्र-पत्रिकाओंकी अपेक्षा कम है। हम अपने पाठकों, ग्राहकों और लेखकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनकी सहायतासे 'विशाल भारत' हिन्दी-भाषाकी इस क्षुद्र सेवामें समर्थ हुआ है। हमें आशा है कि वे भविष्यमें भी 'विशाल भारत' पर अधिकाधिक कृपा करनेकी उदारता दिखायेंगे, जिससे वह अपने सेवा-मार्गपर अग्रसर हो सके। अन्तमें हमें यही कहना है कि 'विशाल भारत' का कोई भी वर्ष इतने उत्साह और आशाके साथ प्रारम्भ नहीं किया गया। अपने पैरों खड़े होनेके बाद 'विशाल भारत'को आगे बढ़नेका साहस होता है। हमारा यह प्रयत्न होगा कि समयकी गतिके साथ हम भी आगे बढ़ें, और इस विषयमें पाठक हमें निरन्तर प्रगतिशील पायेंगे।

दक्षिणमें हिन्दी-प्रचारके पन्द्रह वर्ष

इस वर्ष दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाके कार्यका पन्द्रहवाँ वर्ष और सभाके मुखपत्र 'हिन्दी-प्रचारक' का दसवाँ वर्ष समाप्त हो गया। इन पन्द्रह सालोंमें सभाने जो कार्य किया है, भारतके अर्वाचीन इतिहासमें वह अपने ढंगका अनोखा है। सभाने उत्तर-भारतके आर्य-भाषा-भाषियों और दक्षिण-भारतके द्राविड़ भाषा भाषियोंको हिन्दीके द्वारा एकताके सूत्रमें बाँधनेका सदप्रयत्न किया है, उसने राष्ट्र-भाषाकी आवाज़ मद्रासके कौंसिल चेम्बरसे लेकर दीनोंकी कुटिया तक पहुँचानेकी चेष्टा की है। अपने कार्यको और अधिक विस्तार देनेके लिए सभाने इस वर्ष बेजवाड़ा, बैंगलोर, मदुरा, ट्रिवेंड्रम और एर्नाकुलममें पाँच शाखा-कार्यालय खोले हैं। सभाके अन्तर्गत केन्द्रोंकी संख्या इस वर्ष ३१६ से बढ़कर ३९३ हो गई है। इस वर्ष परीक्षार्थियोंकी संख्या ८,७८८ या पिछले वर्षसे लगभग दूनी रही। वर्ष-भरमें सभाके उद्योगसे दक्षिणमें १०७ हिन्दी-सम्बन्धी सभाएँ और उत्सव हुए। हिन्दी-प्रचारके लिए सभा अब तक ६३ रीडरें और पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है। यदि भारतके अन्य प्रान्तोंमें इसका आधा उद्योग भी हो, तो हिन्दीको सम्पूर्ण भारतकी वास्तविक राष्ट्र-भाषा बननेमें अधिक समय नहीं लगेगा।

विश्वविद्यालयोंके अध्यापक तथा छात्र और साधारण जनता

यह बात स्वीकार करते हुए हमें लज्जाका बोध होता है कि साधारण जनताकी शिक्षाके विषयमें हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त जितने पिछड़े हुए हैं, उतने कोई दूसरे प्रान्त नहीं। संस्कृतिका धरातल भी हमारे यहाँ अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा काफ़ी नीचा है। वैसे कहनेको तो संयुक्त-प्रान्त और उसके निकट पाँच-छै विश्वविद्यालय काम कर रहे हैं—आगरा, अलीगढ़, लखनऊ, बनारस, इलाहाबाद और दिल्ली; पर इन विश्वविद्यालयोंके शिक्षकों तथा विद्यार्थियोंका साधारण जनतासे बहुत कम संसर्ग है। इन विश्वविद्यालयोंके अध्यापकोंका रहन-सहन इतने ऊँचे दर्जेका है, और उनके तथा साधारण जनताके जीवनके बीचमें एक ऐसी चौड़ी खाई विद्यमान है कि उसे पार करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। इन अध्यापकोंमें से कितने ही इतनी ऊँची स्टाइलपर बँगलोंमें साहबी ठाठके साथ रहते हैं कि उनसे मिलने जाते हुए हृदयमें आशंका उत्पन्न होती है कि कहीं कोई बैरा आकर यह न कह दे—"साहब अभी गुसल ले रहा है, मिलना नहीं माँगटा।" दरअसल विश्वविद्यालयका मामूली अध्यापक साधारण जनतासे "मिलना नहीं माँगटा।" उनके जीवनमें और उन तोंदविभूषित सेठोंके जीवनमें, जो मन्दाग्नि होते हुए भी पूरी-कचौड़ी और हलवा खाते हैं और साधारण जनताको, जिसे सूखे चने भी मुयस्सर नहीं, घृणाकी दृष्टिसे देखते है, कोई अन्तर नहीं। कोई इतिहास पढ़ाते हैं, फ्रान्सकी क्रान्तिपर धाराप्रवाह व्याख्यान झाड़ सकते हैं; पर कलक्टर साहबकी खुशामद करके डिस्ट्रिक्ट बोर्डमें घुसनेके लिए तैयार बैठे हैं! ऐतिहासिक क्रान्तिकारियोंके जीवनकी घटनाओंको उन्होंने रट लिया है; पर उनकी आँखोंके सामने जो क्रान्ति आ रही है, उससे वे उसी तरह डरते हैं, जैसे बिल्लीसे चूहा। जो इतिहासकी शिक्षाओंको अपने जीवनमें चरितार्थ करनेके लिए तैयार नहीं, वे इतिहास क्या ख़ाक पढ़ावेंगे? और कालेजोंमें पाये जानेवाले अधिकांश इतिहास-ग्रन्थ, बक़ौल प्रिन्स क्रोपाटकिन, नानीकी कहानीकी तरह हैं, जिनमें बड़े-बड़े बादशाहों, प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों, बड़ी-बड़ी राजसभाओं और पार्लामेण्टोंके किस्सोंके सिवा कुछ भी नहीं है। गणितके अध्यापक बिलकुल हिसाबी आदमी बन गये हैं; लेकिन इसका हिसाब नहीं रखते कि मील-भर दूर रहनेवाले ग्रामीणोंका जीवन अज्ञानता, दरिद्रता और कष्टोंके किस त्रैरासिकमें फँसा है। उन्होंने अपने जीवनका मोटो यह बना रखा है—

"पढ़ियो पूता सोई
जामें हँड़िया खुदबुद होई।"

अवश्य ही उनके घरमें 'हँड़िया' 'खुदबुद' हो रही है; पर सजीवताका उनमें नामोनिशान नहीं।

और छात्र?

कोई डिप्टी कलक्टरकी फ़िक्रमें है, तो कोई तहसीलदारी चाहता है। अवश्य ही कुछ छात्र अब ऐसे भी पाये जाते हैं, जिन्हें देशकी साधारण जनताके प्रति प्रेम है, और उसके लिए वे कुछ करना भी चाहते हैं; पर विश्वविद्यालयोंके कृत्रिम वायुमण्डलमें उनकी शक्तियोंके यथोचित विकासका अवसर नहीं मिलता; स्वार्थमय महत्त्वाकांक्षी अध्यापकोंका कुसंग उनकी आशालताओंपर तुषारका काम देता है; पर अधिकांश छात्र मेशीनके निर्जीव पुर्जोंकी तरह हैं, जिनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। इनमें से बहुतोंको यह स्वप्नमें भी ख़याल नहीं आता कि आख़िर वे किसके रुपयेसे पढ़ते हैं। ग़रीब किसान और मज़दूर कठिनाइयोंके बोझेसे दबे हुए कह रहे हैं—

"कहाँ हैं वह नवयुवक, जो हमारे पैसेसे शिक्षित बने थे, जिनके लिए हमने, जब वह अध्ययन कर रहे थे, वस्त्र और भोजन जुटाया था? जिनके लिए हमने अपनी झुकी हुई पीठपर भारी बोझ उठाकर और खाली पेट रहकर इन मकानोंको, इन विद्यालयोंको, इन अजायबघरोंको तैयार किया था? जिनके लिए अपना

ख़ून सुखाकर इन बढ़िया किताबोंको छापा, जिनको हम पढ़ तक नहीं सकते ? कहाँ हैं वह प्रोफेसर, जो मनुष्य-समाजके विज्ञानको जाननेका दावा करते हैं; पर जिनकी निगाहमें एक दुष्प्राप्य कीड़ेका मूल्य मनुष्यसे बढ़कर है ? कहाँ हैं वह लोग, जो स्वाधीनताका प्रचार करते फिरते हैं; पर जो कभी हमारे जैसे प्रतिदिन पैरों-तले कुचले जानेवाले लोगोंकी सहायताको खड़े नहीं होते ? यह लेखक, यह कवि, यह चित्रकार— सभी ढोंगी हैं। ये वैसे तो आँखोंमें आँसू भरकर सर्वसाधारणकी दुर्दशाका वर्णन करते फिरते हैं; पर इतनेपर भी कभी हम लोगोंके पास आकर हमारे काममें मदद नहीं करते।"

दर असल अब समय आ गया है कि जब हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंके अध्यापक तथा छात्र अपने जीवन-क्रममें समयकी गतिके अनुरूप परिवर्तन करें। ब्रजभाषाका वह कवित्त इस समय हमें याद नहीं आ रहा, जिसके अन्तमें यह पद आता है—

"खाइवेको सुख जो पै औरकों खबाइये।"

जिस मानसिक भोजनको आप वर्षोंसे चख रहे हैं, उसे साधारणजनता तक पहुँचाइये। हम यह नहीं कहते कि प्रत्येक अध्यापक राजनैतिक आन्दोलनमें कूद पड़े। हमारा कथन केवल इतना ही है कि इस 'हँडिया खुदबुद' आदर्शको तिलांजलि देनेकी आवश्यकता है। अब वह ज़माना आ गया है, जब आप यह कहकर भी ईमानदारीके साथ अपना मन नहीं समझा सकते कि हम अपने अनुसन्धानोंसे मानव-समाजके ज्ञानका क्षितिज विस्तृत कर रहे हैं। अनुसन्धान करनेमें अवश्य ही बड़ा आनन्द आता है; पर वह आनन्द उन योगियोंकी तरहका है, जो हिमालयकी कन्दराओंमें तपस्या किया करते हैं। प्रिन्स क्रोपाटकिनके जीवनमें एक ऐसा अवसर आया था, जब वे वैज्ञानिक अनुसन्धान करके संसारके वैज्ञानिकोंमें एक अत्युच्च स्थान प्राप्त कर सकते थे; पर उन्होंने उस समय क्या किया, सो उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिए—

"But what right had I to these highest joys, when all around me was nothing but misery and struggle for a mouldy bit of bread; when whatsoever I should spend to enable me to live in that world of higher emotions must needs be taken from the very mouth of those who grew the wheat and had not bread enough for children? From somebody's mouth it must be taken, because the aggregate production of mankind remains still so low.

"Knowledge is an immense power, man must know. But we already know much! What if that knowledge—and only that—should become the possession of all? Would not science itself progress in leaps, and cause mankind to make strides in production, invention and social creation, of which we are hardly in a condition now to measure the speed?

"The masses want to know: they are willing to learn; they can learn. There, on the crest of that immense moraine which runs between the lakes as if giants had heaped it up in a hurry to connect the two shores, there stands a Finnish peasant plunged in contemplation of the beautiful lakes, studded with islands, which lie before him. Not one of these peasants poor and downtrodden though they may be, will pass this spot without stopping to admire the scene. Or there, on the shore of a lake stands another peasant, and sings something so beautiful that the best musician would envy him, his melody, for its feeling and its meditative power. Both deeply feel, both meditate, both think; they are ready to widen their knowledge,—only give it to them, only give them the means of getting leisure.

"This is the direction in which, and these are the kind of people for whom, I must work. All those sonorous phrases about making mankind progress, while at the same time the progress-makers stand aloof from those whom they pretend to push onwards, are mere sophisms made up by minds anxious to shake off a fretting contradition."

अर्थात्—"लेकिन इन सर्वोच्च आनन्दोंको प्राप्त करनेका मुझे क्या अधिकार था, जब मेरे चारों ओर दुःखका साम्राज्य था और रोटीके एक-एक टुकड़ेके लिए ज़द्दोज़हद मची हुई थी ? जब कि मेरे उच्च भावनाओंके जगतमें विचरण करनेके लिए जिस रुपयेकी आवश्यकता

पड़ती, वह उन्हीं ग़रीब किसानोंके मुँहसे छीना जाता, जो स्वयं गेहूँ उगाते थे ; पर जिनके बच्चोंको काफ़ी रोटी भी मुयस्सर न होती थी ? यह रुपया किसी न किसीके मुँहसे तो छीना ही जाता, क्योंकि मानव-समाजके उत्पादनका योग अब भी इतना कम है।

ज्ञान, इसमें सन्देह नहीं, बड़ी भारी शक्ति है। मनुष्यको ज्ञानकी अत्यन्त आवश्यकता है ; पर इस समय भी हम काफ़ी ज्ञानवान् हैं। ज्ञानका जितना भंडार इस समय तक भरा जा चुका है, क्या ही अच्छा हो, यदि वही सब लोगोंमें बाँट दिया जावे।

यदि वह ज्ञान सर्वसाधारणकी सम्पत्ति बन जावे, तो क्या स्वयं विज्ञान दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति न करेगा, क्या वह मनुष्यको उत्पादन, आविष्कार और सामाजिक सृष्टिके क्षेत्रोंमें लम्बे क़दम बढ़ानेकी शक्ति न देगा—ऐसी शक्ति, जिसकी गतिका अनुमान भी हमारे लिए मौजूदा हालतमें मुश्किल है ?

जनता ज्ञानकी इच्छुक है। वह सीखनेके लिए तैयार है, और सीख सकती है। देखिये, दो झीलोंके बीच बहनेवाले उस ग्लेशियरकी तटवर्ती चट्टानोंकी लाइनके सिरेपर एक फिनिश किसान खड़ा है। चट्टानोंकी पंक्तिको देखकर जान पड़ता है कि दोनों किनारोंको मिलानेकी जल्दीमें दैत्योंने इन चट्टानोंको उठा-उठाकर एक-पर-एक लाद दिया है। किसान अपने सामने द्वीपोंसे जड़ी हुई झीलको देखनेमें निमग्न है। इनमें से कोई भी किसान, चाहे वह कितना ही दरिद्र या पददलित क्यों न हो, इस स्थानपर रुककर यहाँसे सुन्दर दृश्यको देखे बिना इधरसे नहीं गुज़रता। अथवा वह देखिये, एक झीलके किनारे खड़ा हुआ एक दूसरा किसान कुछ गा रहा है। उसका गान मिठासमें, भावनामें और विचारशक्तिमें इतना सुन्दर है कि बड़े-से-बड़े संगीतज्ञ भी उससे ईर्ष्या करेंगे। ये दोनों ही गहराई तक अनुभव करते हैं, चिन्ता करते हैं और सोचते हैं। वे अपने ज्ञानको विकसित करनेको तैयार है। आप उन्हें केवल ज्ञान दीजिए और उन्हें अवकाश प्राप्त करनेके अवसर दीजिए।

इसी दिशामें और इसी प्रकारके लोगोंके लिए मुझे कार्य करना चाहिए। 'मानव-जातिकी उन्नति करो' के नारे भ्रान्तिपूर्ण निनादमात्र हैं, जब कि उन्नति चाहनेवाले लोग उनसे दूर रहते हैं, जिनकी वे उन्नति चाहते हैं। ये नारे वे लोग ही लगाते हैं, जो अपने ज़बानी जमा-ख़र्च और वास्तविक जीवनके अन्तरको छिपानेके लिए चिन्तित हैं।"

क्या हमारे विश्वविद्यालयोंके अध्यापक और छात्र क्रोपाटकिनके इस सत्य कथनकी ओर ध्यान देंगे ?

रिज़र्व बैंक बिल

व्यवस्थापिका परिषद्के गत अधिवेशनमें लगातार कई सप्ताहों तक 'रिज़र्व बैंक बिल'की धाराओंपर वाद-विवाद होनेके बाद वह बहुमतसे स्वीकार हो गया। बिलके सम्बन्धमें जितने संशोधन उपस्थित किये गये थे, वे सब अस्वीकृत हो गये। सिलेक्ट-कमेटीसे जिस रूपमें बिल निकला था, प्रायः उसी रूपमें व्यवस्थापिका परिषद् द्वारा भी स्वीकृत हुआ है। जो संशोधन हुए भी हैं, वे नाममात्रके ही हैं। इस समय व्यवस्थापिका-परिषद्का जैसा गठन है, उसे देखते हुए सरकारी पक्षकी यह जीत कोई अप्रत्याशित घटना नहीं कही जा सकती ; किन्तु इस विजयपर सरकारके लिए गर्व करनेका कोई कारण नहीं हो सकता, क्योंकि लोकमतकी उपेक्षा करके ही सरकारने यह विजय प्राप्त की है। सरकारके पक्षमें जितने वोट आये, उनमें निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियोंकी संख्या नगण्य थी। सरकारी अफ़सर तथा निर्वाचित यूरोपियन सदस्योंके वोटके बलपर ही सरकारने यह विजय प्राप्त की है। यदि सरकार लोकमतकी अथवा व्यवस्थापिका-परिषद्के जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियोंके मतकी कुछ भी परवा करती, तो वह कमसे-कम बिलमें इतना संशोधन अवश्य होने देती, जिससे वह इस देशके जनमतके अनुकूल हो जाता।

इस बिलके सम्बन्धमें दो प्रश्नोंपर विशेष रूपसे

वाद-विवाद हुआ था। एक प्रश्न तो यह था कि रिजर्व बैंक स्टेट बैंक होगा या शेयरहोल्डरोंका बैंक। इस प्रश्नको लेकर भारतीय सदस्योंमें भी एकमत नहीं था। अतएव शेयरहोल्डर्स बैंककी स्कीम, जो सरकारको अभीष्ट थी, सहज ही स्वीकृत हो गई। दूसरा प्रश्न रुपयेकी विनिमय-दरको लेकर था। इस सम्बन्धमें प्रायः समस्त भारतीय सदस्य एकमत थे, और उनके पीछे जनताका प्रबल लोकमत था; किन्तु इतनेपर भी वे विनिमय-दरमें किसी प्रकारका परिवर्तन करानेमें समर्थ नहीं हुए। सर जार्ज शुस्टरने अपने अन्तिम भाषणमें कहा है कि विनिमयका प्रश्न अब सदाके लिए हल हो गया; किन्तु उनकी यह गर्वोक्ति निरा भ्रम है। विनिमय-प्रश्नको लेकर अब भी देशमें सरकारके विरुद्ध प्रबल लोकमत है, और जनताका यह विरोध तब तक शान्त नहीं हो सकता, जब तक कि इस प्रश्नकी मीमांसा लोकमतके अनुकूल न हो। विनिमय-दरके सम्बन्धमें सबसे बढ़कर आपत्तिकी जो बात थी, वह यह थी कि १८ पेंसकी विनिमय-दर कानून द्वारा स्थिर न की जाय। रिजर्व बैंक बिलमें इसे कानूनी रूप देकर स्थायित्व प्रदान किया जाना सरासर अन्याय हुआ है। कारण, आगे चलकर जब विनिमय-दरमें परिवर्तन करानेकी आवश्यकता होगी, तो इसके लिए वायसरायकी अनुमति लेनी पड़ेगी, जिससे कठिनाई उपस्थित हो सकती है। इसलिए सर जार्ज शुस्टरके लिए उचित यही था कि वे विनिमयके प्रश्नको खुला छोड़ देते और इसे इस समय कानूनी रूप देनेकी चेष्टा न करते। सर जार्ज शुस्टरको यह स्मरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार सरकारकी कितनी ही निश्चित बातें अनिश्चित हो चुकी हैं, उसी प्रकार कौन जानता है कि भविष्यमें १८ पेंसकी निश्चित विनिमय-दर भी अनिश्चित होकर न रहेगी।

रिजर्व बैंक शेयरहोल्डर्स बैंक हो, इस सम्बन्धमें सर जार्ज शुस्टरने कहा है कि शेयरहोल्डर्स बैंक होनेसे रिज़र्व बैंक भावी सरकारके हस्तक्षेपसे मुक्त रहेगा; किन्तु भावी सरकारके हस्तक्षेपसे मुक्त होनेपर भी रिज़र्व बैंक गवर्नर-जेनरलके अधीन होगा, और गवर्नर-जेनरल बैंकके संचालनमें क्रियात्मक रूपसे हस्तक्षेप कर सकेंगे। शेयरहोल्डर्स बैंककी स्कीमको हम वास्तविक तब समझते, जब सरकार ग़ैरसरकारी पक्षके इस संशोधनको स्वीकृत कर लेती कि शेयरोंमें तीनचौथाई भारतीयोंके लिए सुरक्षित रहने चाहिए और बैंकके डाइरेक्टरोंमें कमसे कम तीनचौथाई भारतीय हों। इन संशोधनोंके स्वीकृत न होनेसे इस बातका पूरा ख़तरा है कि बैंकके शेयरहोल्डरों और डाइरेक्टरोंमें उन लोगोंका बहुमत हो जाय, जिनके स्वार्थ देशवासियोंके स्वार्थके विरुद्ध हैं, और जिन्होंने विदेशी होते हुए भी इस देशमें अपना क़ायमी हक़ (Vested interest) समझ रखा है। किन्तु इस खतरेसे बचनेका अब एक ही उपाय है, अर्थात् इस बातकी पूरी कोशिश की जाय कि बैंकके अधिकसे अधिक शेयरोंके ख़रीदार भारतीय हों। इसके लिए अभीसे संगठित उद्योग आरम्भ हो जाना चाहिए, और इस सम्बन्धमें सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए कि क़ायमी हक़वाले विदेशी वणिकोंका बैंकपर प्रभुत्व न होने पाये। उनका गुट इस बातके लिए अवश्य चेष्टा करेगा कि शेयरोंके अधिक-से-अधिक ख़रीदार उनके दलके ही लोग हों। रिजर्व बैंकका जैसा गठन हुआ है, उसमें विदेशी वणिकोंका अधिक संख्यामें शेयरोंका ख़रीदार होना देशवासियोंकी स्वार्थ-दृष्टिसे महान् अनर्थजनक सिद्ध होगा।

कैपीटेल ट्रिब्यूनलकी रिपोर्ट

भारतीय सेनाका लगभग एकतिहाई भाग अंगरेज़ सैनिकोंका है। समर-विभाग और विमान-विभागमें ये गोरे सैनिक भर्ती किये जाते हैं। इनकी नियुक्ति इंग्लैण्डमें होती है, और वहीं इन्हें सामरिक शिक्षा दी जाती है। प्रति गोरे सैनिकको नियुक्त करने और उसे शिक्षा देनेमें जो ख़र्च पड़ता है, ब्रिटिश सरकार हिसाब लगाकर वह ख़र्च भारत-सरकारके ख़ज़ानेसे

वसूल कर लेती है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनकाल तक भारतमें ही सैनिक भर्ती किये जाते थे, और उन्हें शिक्षा दी जाती थी। इसके वाद जब भारतका शासन-भार विलायती पार्लामेन्टके ऊपर न्यस्त हुआ, तो भारतके लिए विलायतमें सैन्य-संग्रहका प्रश्न उठा। उस समय भी भारत-सरकारने यही परामर्श दिया कि भारतके लिए सैन्य-संग्रह विलायतमें न होकर भारतमें ही होना चाहिए; किन्तु ब्रिटिश सरकारके अधिकारियोंको यह मान्य नहीं हुआ। उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि भारतमें ब्रिटिश सेना-विभागकी एक शाखा रहेगी, और उसकी भर्ती तथा शिक्षा इंग्लैगडमें हुआ करेगी। इसमें जो ख़र्च पड़ेगा, वह भारत-सरकारको प्रति सैनिकके हिसाबसे जोड़कर चुका देना पड़ेगा। भारत-सरकारकी ओरसे बराबर इसका विरोध किया गया; किन्तु ब्रिटिश समर-विभागके अधिकारियोंने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया।

महासमरके पूर्वसे लेकर सन् १९२४ तक प्रति गोरा सैनिक पीछे यह ख़र्च (Capitation Charge) ११ पौगड ८ शिलिंग पड़ता था। सन् १९२४ में यह ख़र्च बढ़ाकर २८ पौगड १० शिलिंग कर दिया गया, और इसका कारण यह बताया गया कि वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि हो गई है। यह बढ़ा हुआ ख़र्च सन् १९२० से ही वसूल किया गया। ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकारके बीच इस ख़र्चको लेकर वाद-विवाद चल ही रहा था, जब कि सन् १९३१ में ब्रिटिश सरकारने इसकी मीमांसाके लिए एक ट्रिब्यूनल सर राबर्ट गैरनकी अध्यक्षतामें नियुक्त किया। सभापतिके अलावा इस ट्रिब्यूनलके चार सदस्य थे, जिनमें दो अंगरेज़ थे और दो हिन्दुस्तानी—सर शादीलाल और सर मुहम्मद सुलेमान। गत जनवरी महीनेमें ही इस ट्रिब्यूनलने अपनी रिपोर्ट दे दी थी। उस समयसे लेकर अब तक ब्रिटिश सरकार इसपर विचार कर रही थी। यह रिपोर्ट अभी हालमें प्रकाशित की गई है। भारतीय सदस्योंने अपना मतभेदसूचक नोट अलग लिखा है; किन्तु उनकी सब बातें प्रकट नहीं की गई हैं। इस रिपोर्टमें जो सब सिफ़ारिशें सर्वसम्मतिसे की गई हैं, उन्हें तथा मतभेद होनेपर बहुमतकी सिफारिशोंको ब्रिटिश सरकारने स्वीकार कर लिया है। ब्रिटिश सरकारके इस निर्णयके फलस्वरूप भारत-सरकारके लगभग सैनिक व्ययमें १४ लाख १७ हज़ार पौगड अर्थात् दो करोड़ रुपयेकी बचत होगी। इस प्रकार भारतको दो करोड़ रुपयेका सामान्य लाभ होगा। यह व्यवस्था सन् १९३३ के एप्रिल माससे लागू समझी जायगी।

सन् १९२४ में वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि होनेका कारण बताकर जब गोरे सैनिकका ख़र्च ११ पौगड ८ शिलिंगसे बढ़ाकर २८ पौगड १० शिलिंग किया गया, उस समय तो यह व्यवस्था सन् १९२० से अर्थात् चार वर्ष पहलेसे ही लागू कर दी गई है; किन्तु इस बार सिर्फ ९ मास पहलेसे यह व्यवस्था लागू समझी गई है, और सो भी उस हालतमें, जब गत तीन वर्षोंसे वस्तुओंके मूल्यमें कई गुना ह्रास हो गया है। भारतके साथ उचित न्याय तो तब होता, जब कि कम-से-कम सन् १९२४ से—जब Capitation Charge ११ पौगड ८ शिलिंगसे बढ़ाकर २८ पौगड १० शिलिंग कर दिया गया था—इस व्यवस्थाके अनुसार कार्य किया जाता। किन्तु ब्रिटिश-सरकार इस प्रकारके मामलोंमें भारतके साथ उचित न्याय करेगी, इसकी तो कभी आशा ही न करनी चाहिए। इस सम्बन्धमें एक बात और विचारणीय है। भारतमें जो गोरी फौज रखी जाती है, उससे हमारा सिद्धान्ततः मतभेद है। यद्यपि भारतीय सेनामें एकतिहाई ही गोरे सैनिक हैं, किन्तु इनके लिए भारत-सरकारको देशी सैनिकोंकी अपेक्षा दुगुना ख़र्च करना पड़ता है। एक भारतीय सैनिकके लिए जितना ख़र्च करना पड़ता है, उसकी तुलनामें एक गोरे सैनिकके लिए चार गुना ख़र्च करना पड़ता है। इन्हीं सैनिकोंके कारण भारतको प्रतिवर्ष ५५ करोड़का व्यय-भार सहन करना पड़ता है। यदि भारतीय सेनासे गोरी फ़ौज हटा दी जाय,

तो भारतका सैनिक व्यय आधा कम हो सकता है। प्रश्न यह है कि इतनी बड़ी सेना भारतमें क्यों रखी जाती है? क्या अंगरेज़ोंके शासनकालमें कभी भी भारतपर वाह्य शत्रुके आक्रमणकी आशंका हुई है? आन्तरिक शान्तिके लिए तो मुल्की और फौजी पुलिस ही काफ़ी है। इंग्लैण्डमें अंगरेज़ सैनिकोंको नियुक्त करने तथा उन्हें शिक्षा देनेकी व्यवस्था भारतके लिए किसी प्रकार भी लाभजनक नहीं कही जा सकती। यह व्यवस्था तो सिर्फ इसलिए की गई है, जिससे ब्रिटिश साम्राज्यके स्वार्थोंकी रक्षा हो। मिस्र, चीन और दक्षिण-अफ्रिकाके युद्धमें और गत महायुद्धमें जो भारतसे सेना भेजी गई थी, उसका क्या उद्देश्य था? भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तकी रक्षाके लिए जो सैनिक व्यय किया जाता है, उसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थिति और वाणिज्यकी रक्षा है। साम्राज्यकी परराष्ट्र-नीति, पूर्वीय देशोंमें साम्राज्यकी सत्ता तथा वाणिज्यकी हित-दृष्टिसे ही भारतमें इतनी बड़ी फौज रखी जाती है। इससे ब्रिटिश साम्राज्यका स्वार्थसाधन होता है। सन् १६१४ तक भारतमें जितना सैनिक व्यय होता था, उसकी अपेक्षा इस समय दुगुना होता है! क्यों? क्या भारतके हितके लिए? जिस फौजको रखनेमें ग़रीब देशवासियोंको प्रतिवर्ष ५५ करोड़ ख़र्च करना पड़े और जिससे साम्राज्यका स्वार्थ-साधन हो, वह सिर्फ दो करोड़ रुपया खर्च करे, इससे बढ़कर अन्याय और क्या हो सकता है? पराधीन भारत बहुत दिनोंसे इस असह्य कर-भारको वहन करता चला आ रहा है। इसके कारण ही शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि-सुधार आदिकी कितनी ही योजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो सकी हैं। इसलिए यदि ब्रिटिश सरकारको साम्राज्यकी रक्षाके लिए भारतमें गोरी फ़ौज रखना अभीष्ट हो, तो इसका कुल ख़र्च ब्रिटिश सरकारको ही अपने ऊपर लेना चाहिए। यही न्यायोचित है।
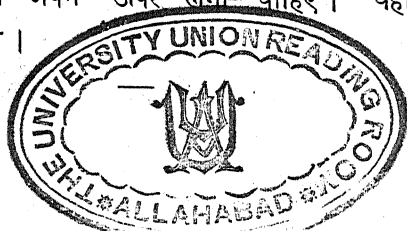
व्यायाममें साम्प्रदायिकता

राजस्थान-प्रान्तीय हिन्दू-सभाकी सातवीं वार्षिक रिपोर्ट हमारे सामने है। उसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

कुश्तियाँ, दंगल तथा हिन्दू टूर्नामेन्ट

"हिन्दू-सभाकी स्थापनासे पूर्व इस प्रान्तमें कुश्तियोंका शौक़ नहीं था। व्यायाम-कसरत करना, कुश्ती लड़ना, लुच्चे-गुंडोंका काम बताया जाता था, और कुश्ती लड़नेवालोंको लोग इज्ज़तकी निगाहसे नहीं देखते थे। प्रान्तिक सभाने व्यायामका महत्त्व जनताको बताया, आनेवाली सन्तानोंको बलवान, शक्तिवान बनानेका उपदेश दिलाया। सभाकी ओरसे कई स्थानोंपर अखाड़े स्थापित किये गये, उस्तादोंकी पंचायतें कायम की गईं, उनके द्वारा दंगल कराये गये। विजेताओंको इनाम दिये गये, जिससे जनतामें व्यायामके प्रति प्रेम हो गया। और वह प्रसन्नताके साथ हिन्दू-सभाके अखाड़ोंमें योग देने लगी। फलस्वरूप अकेले अजमेरमें इस समय पहलवानोंके चौबीस अखाड़े हिन्दू-सभाकी फहरिस्तमें दर्ज हैं, इसके अलावा घरू अखाड़े अलग हैं। इस तरह राजपूतानेमें हज़ारों अखाड़े चल रहे हैं, जिनमें व्यायाम आदिका कार्य हो रहा है। सदाकी भाँति इस वर्ष भी हिन्दू-सभाकी ओरसे टूर्नामेन्ट कराया गया और लकड़ी आदिके अखाड़ोंको बुलवाकर उनको पारितोषिक दिये गये। हिन्दू टूर्नामेन्ट तथा हिन्दू-दंगल सदाकी भाँति रोलवालोंकी हिन्दू-धर्मशालामें होते रहे हैं।"

इस वाक्यसे यह स्पष्टतया प्रकट है कि राजस्थान-प्रान्तीय हिन्दू-सभा व्यायाममें भी साम्प्रदायिक ढंगसे काम लेना पसन्द करती है। उसके 'हिन्दू टूर्नामेन्ट' और 'हिन्दू दंगल' 'हिन्दू धर्मशाला' में होते हैं। किसीको इस विषयमें आशंका न हो, इसलिए परिशिष्ट नं० ४ में अजमेरके अखाड़ोंके २६ गुरुओंकी नामावली भी प्रकाशित की गई है। इनमें श्रीयुत नारायणजीसे लेकर श्रीयुत पुरुषोत्तमजी तक सभी हिन्दू हैं।

सम्भवतः इसी प्रकार अजमेरके मुसलमानोंने भी अपने अखाड़े खोले होंगे, और उनके सब उस्ताद मुसलमान होंगे। वहाँ भी खुदाबख़्शसे लेकर इलाही ख़ाँ तक सभी मुस्लिम धर्मानुयायी होंगे। यदि खुदानख़्वास्ता कभी अजमेरमें हिन्दू-मुसलमानोंका झगड़ा हुआ, तो नारायणजीकी लाठी खुदाबख़्शके सिरपर पड़ेगी और मियाँ इलाही पुरुषोत्तमका सिर फोड़ देंगे। बीचमें जो निरपराध आदमी मारे जायँगे, उनके बारेमें कुछ कहना व्यर्थ है। आजसे कुछ वर्ष पहले नगरोंके भिन्न-भिन्न मुहल्लोंके जो अखाड़े होते थे, उनके उस्तादोंका चुनाव साम्प्रदायिकताके इस विषैले सिद्धान्तपर हरगिज़ न होता था। ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते थे कि हिन्दू-मुहल्लेके अखाड़ेका उस्ताद कोई मुसलमान है और मुस्लिम अखाड़ेका गुरु कोई हिन्दू। अगर अजमेरका यह बुरा दृष्टान्त अन्य स्थानोंमें भी फैल गया, तो फिर व्यायाम-क्षेत्रमें भी साम्प्रदायिकताका विष प्रवेश कर जायगा। और फिर हिन्दू टूर्नामेन्ट भी अनेक शाखा-प्रशाओंमें विभक्त हो सकता है। उदाहरणार्थ, ओसवाल टूर्नामेन्ट, माहेश्वरी टूर्नामेन्ट, खंडेलवाल टूर्नामेन्ट, खत्री टूर्नामेन्ट तथा धोबी टूर्नामेन्ट। जहाँ एक बार इस प्रकारका ख़ब्त शुरू हुआ कि वह फिर रुक थोड़े ही सकता है।

राजस्थान-प्रान्तीय हिन्दू-सभाके प्रधान श्री प्रोफेसर घीसूलालजी ऐडवोकेटसे, जिनके चरणोंके निकट बैठकर अध्ययन करने तथा जिनके असाधारण व्यक्तित्वसे प्रभावित होनेका सौभाग्य हमें दो वर्ष तक प्राप्त हुआ था, हमारा विनम्र निवेदन है कि वे हिन्दू टूर्नामेन्टके बजाय अजमेर टूर्नामेन्टका संगठन करें। आशा है कि अपने एक तुच्छ शिष्यकी इस प्रार्थनापर वे ध्यान देंगे।

—

मौलाना अबुलकलाम आज़ादका एक पत्र

'विशाल भारत' के पाठक इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि इस पत्रने प्रारम्भसे ही साम्प्रदायिकताका घोर विरोध किया है। जनवरी सन् १९२८ के अंकमें, जो 'विशाल भारत'का प्रथम अंक था, हमने अपनी नीतिकी स्पष्ट घोषणा' निम्न-लिखित शब्दोंमें की थी—

"भारतमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई इत्यादि भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायी रहते हैं। सम्भवतः परमात्माने भारतको ही इस विभिन्नतामें एकताका आदर्श उपस्थित करनेके लिए चुना है। आख़िर हम सबको मिलकर एक दूसरेकी संस्कृतिका सम्मान करते हुए इसी देशमें रहना है। साम्प्रदायिकता (Communalism) अथवा जातीय विद्वेष (Racial feeling) को बढ़ाना विशाल भारत के प्रति ऐसा पाप है, जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। 'विशाल भारत' इस बातको सदा अपने सम्मुख रखेगा।"

साम्प्रदायिकताको दूर करना प्रत्येक समझदार भारतीयका कर्तव्य है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हमने कई पैमफ्लेट निकालनेका विचार इन कालमोंमें प्रकट किया था। हर्ष है कि तीन पुस्तिकाओंके छपानेका प्रबन्ध हो चुका है, और फरवरीके द्वितीय सप्ताहमें वे छपकर तैयार भी हो जायँगी। उनका मूल्य भी एक-दो आनेसे अधिक नहीं होगा। इन्हीं पुस्तिकाओंके विषयमें मौलाना अबुलकलाम आज़ादने निम्न-लिखित पत्र हमें भेजा है:—

जनाबमन,

मुझे इस बातसे निहायत ख़ुशी हुई कि आप हिन्दीके छोटे-छोटे रिसालोंका एक निहायत मुफ़ीद सिलसिला शाया कर रहे हैं, जिसका मक़सद यह है कि हिन्दू-मुसलमानोंको एक दूसरेके मज़हब और तारीख़ व तहज़ीबके समझनेका मौक़ा दिया जाय और वह ग़लतफ़हमियाँ दूर की जायँ, जो नावाक़फ़ियत और तंगनज़रीकी वजहसे आम तौरपर फैल गई हैं। यह वक्तका एक निहायत ज़रूरी काम है, जिसकी तरफ़ बहुत कम तवज्जह की गई है, और मैं ख़ुश हूँ कि आपने और आपके दोस्तोंने इसकी ज़रूरत बरवक्त महसूस की। मुझे उम्मीद है कि यह कोशिश क़द्रकी निगाहसे देखी जायगी, और आप यह सिलसिला ज़ियादा बेहतरी और वसअतके साथ ज़ारी रखेंगे।

—अबुलकलाम 'आज़ाद'

कलकत्ता ४ जनवरी सन् १९३४

कबीर-मेला

कबीर-मेलेके विषयमें जो कुछ मैंने अपने पहले नोटमें लिख भेजा है, उससे पता चल गया होगा कि मैं इस सुअवसर द्वारा कबीर-सम्बन्धी प्रचारादिके साथ ही तद्विषयक वर्तमान ज्ञानमें पर्याप्त वृद्धि भी करा लेना चाहता हूँ, जिससे इन महात्माके वास्तविक रूप अथवा सन्देशको समझनेमें आगेके लोगोंको अधिक कठिनाई न होने पावे। इसी कारण मैंने मेलेके साहित्यिक अंशकी ओर भी विशेष ध्यान आकृष्ट करनेका प्रयत्न किया है। मेरे विचारमें कबीरकी भाषा अथवा शैली एवं भावोंके अधिकतर क्लिष्ट होनेके कारण उनके विषयमें अभी तक बहुतसे लोगोंके मनमें अनेक प्रकारके भ्रम उत्पन्न होते रहते हैं, जिन्हें दूर करनेके लिए साधन तैयार करना भी उक्त मेलेके संचालकोंका कर्तव्य होना चाहिए। अतएव मैंने यह भी सोचा है कि विद्वान कबीर-प्रेमियों द्वारा, इस विषयमें उचित परामर्श लेकर, गवेषणापूर्ण ग्रन्थोंकी रचना भी कराई जाय। इससे विषयके स्पष्टीकरणके साथ ही साहित्यकी वृद्धि भी होगी। जैसे कबीरके विशेषज्ञ विद्वान् यदि निम्न-लिखित पाँच प्रकारकी रचनाएँ प्रस्तुत कर सकें, तो मेरे विचारमें बहुत-कुछ सफलता कही जा सकती है—

(१) कबीर-ग्रन्थावली—जिसमें कबीरकी कुल रचनाओंका शुद्ध मूल पाठ प्रामाणिक हस्त-लिपियोंके आधारपर, पाठभेदकी टिप्पणियोंके साथ, सम्पादित होना चाहिए।

(२) कबीर-कोश—जिसके एक अंशमें कबीरकी रचनाओंमें आये हुए कुल शब्दोंका मूलरूप, उनकी व्युत्पत्ति, शब्दार्थ, उदाहरणादिका विवरण तथा दूसरे अंशमें उनकी भाषा, शैली, प्रसंग, संकेत आदिका विवेचन होना चाहिए, जिससे एक अच्छी कुंजीका काम निकले।

(३) कबीर-कसौटी वा सन्देश—जिसमें कबीरके दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक और अन्य विषय-सम्बन्धी विचारोंका स्पष्टीकरण एवं आलोचना एक वृहत् भूमिकाकी भाँति लिखी होनी चाहिए, जिससे कबीरके गूढ़तम भाव भी हृदयंगम किये जा सकें।

(४) कबीर-चरित—जिसमें विद्वत्तापूर्ण खोजके साथ कबीरके ऐतिहासिक रूपका दिग्दर्शन करानेकी सामग्री प्रस्तुत की गई हो, और जिसके द्वारा हमें उनके मानवी रूप एवं सच्चरित्रका वास्तविक ज्ञान हो सके।

(५) कबीर-संग्रह—जिसमें कबीरके उत्तमोत्तम पद्य टीका अथवा टिप्पणीके साथ संगृहीत हों और जिसमें विषय प्रवेशके रूपमें एक छोटी भूमिका भी हो।

उपर्युक्त बातें मैंने केवल उदाहरणस्वरूप लिख दी हैं। इनके नामादि अथवा अन्तिम रूप परामर्श द्वारा निश्चित किये जा सकते हैं।

कबीर-मेलेके सम्बन्धमें की जानेवाली पहली बैठकका समय भरसक किसी तातीलमें रखा जाय, तो अधिक अच्छा होगा। इसमें सबकी सुविधाके विचारसे अधिक समय नहीं लगना चाहिए; किन्तु इसकी सूचना सबके यहाँ काफ़ी पहले पहुँचनी चाहिए। यदि काशीमें बैठक हो, तो ना० प्र० सभा-भवन अथवा अन्य किसी ऐसे ही केन्द्रके स्थानमें होनी चाहिए। प्रोग्रामके विषयमें विशेष कभी और भी लिखूँगा।

—परशुराम चतुर्वेदी

[२]

'कबीर-मेला' शीर्षक आपका नोट मैंने पढ़ा और उसके बाद इस विषयमें प्रकाशित चिट्ठी-पत्री भी देखी है। आपका यह प्रस्ताव वास्तवमें प्रशंसनीय और सर्वथा उपादेय है, और मुझे हर्ष है कि हिन्दी-संसारने इसका समर्थनकर बुद्धिमानीका कार्य किया है।

प्रारम्भमें एक निवेदन कर दूँ। सब लोग 'कबीर' या 'कबीरदास' लिखते हैं; किन्तु मैं 'कबीर साहब'

लिखना उचित समझता हूँ, उसका कारण केवल इतना ही नहीं है कि मैं एक कबीर मतानुयायी हूँ, अपितु मेरी तुच्छ सम्मतिमें 'कबीर साहब' को 'कबीर' या 'कबीरदास'के नामसे लिखना या सम्बोधित करना अशिष्टतासूचक है।

ऐसे विश्ववन्द्य पुरुषोंका सम्बोधन सम्मानित शब्दोंसे करनेसे जनताकी अभिरुचि स्वभावतः उनकी ओर हो जाती है। उदाहरण-स्वरूप एक प्रसंग लीजिए—आप बीस-पचीस आदमियोंके साथ बैठे हैं। किसीने आकर कहा—"साधु आया है।" इस वाक्यसे आपके साथियोंके ऊपर वैसा कोई प्रभाव न पड़ेगा; परन्तु यदि वही आदमी दूसरे समय आकर कहे—"महात्मा पधारे हैं," तो उस समय आपपर तथा आपके साथियोंपर इस वाक्य-प्रयोगका जो प्रभाव पड़ेगा, वह और ही होगा। यह सम्यक् प्रयुक्त शब्दोंका प्रभाव है, इसीलिए सद्गुरु कबीर साहबने कहा है—

'बानी तो अनमोल है, जो कोई बोले बोलि।
हिये तराजू तोलिके, तब मुख बाहर खोलि।"

कबीर साहब सारे विश्वके जनसमाजके हैं। उनकी अनुभूति एकदेशी, एकांगी नहीं है; किन्तु सर्वदेशी सर्वाङ्गीण है। उनकी साखियाँ केवल 'दोहे' नहीं हैं; किन्तु वे संसारकी 'साक्षी' गवाही (Witness) देती हैं। और उनके शब्द संसारके झगड़ेका फैसला देते हैं। कबीर साहबकी अनुभूति सर्वतोमुखी, करुणामय एवं सहृदयतापूर्ण है। कहीं कहीं लोगोंको उनके कठोर शब्द अखरते हैं। उन शब्दोंका प्रयोग राग-द्वेषसे नहीं हुआ है; किन्तु जैसे रोगकी गम्भीरतामें लाचार कड़ुई औषधियोंका प्रयोग करना पड़ता है, वैसे ही कबीर साहबको भी निरुपाय 'पाँडे निपुन कसाई' जैसे शब्दोंका प्रयोग करना पड़ा है। समयकी परिस्थिति ही ऐसी थी कि बिना ऐसे शब्द-प्रयोगोंके जन-समाजमें जाग्रति आ ही नहीं सकती थी। जैसे आजकल हम लोग सरकारके कार्यके प्रति अनादर व्यक्त करनेके लिए कुछ शब्दोंका प्रयोग व्याख्यानादिमें करते हैं, जो राग-द्वेषसे न होकर केवल सुधारकी पवित्र भावनासे प्रयुक्त किये जाते हैं। जब सामान्य पुरुषोंके बारेमें यह बात है, तो कबीर साहब तो एक महापुरुष थे। उनकी जन-कल्याणतत्परता इतनी सहानुभूतिपूर्ण थी कि उन्होंने 'कहैं कबीर सुनो भाई साधो' या 'सन्तो' के रूपसे सबको 'भाई' और 'विचारशील' जैसे आत्म-भाव और सम्मानसूचक शब्दोंसे सम्बोधित किया है। ऐसी पवित्र भावनामें 'राग-द्वेष'की, जो सामान्य कोटिके मनुष्योंमें बहुधा पाया जाता है, गन्ध तक नहीं आ सकती। कहाँ तक लिखूँ; परन्तु इतना ज़रूर है कि हिन्दीके साहित्य-सेवियोंने जितना समय तथा ध्यान श्रृंगारिक साहित्यकी खोज और वृद्धिमें दिया, उतना कबीर साहब जैसे कवि और संतके साहित्यकी खोज, अध्ययन एवं प्रचारके लिए नहीं दिया। हम लोग शेक्सपियर और गेटेका उद्धरण ज़रूर देंगे; किन्तु कबीर साहबका उद्धरण देना असंगत समझते हैं, क्योंकि हमारा ज्ञान ही उनके विषयमें शून्य है।

संसारकी सात्विक और साहजिक ज्ञानवृत्तिका विकास जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उस ज्ञानवृत्तिके विधायक महापुरुषोंके साहित्यकी भी आवश्यकता विद्वानोंको प्रतीत हो रही है। जिसका फल आपका 'कबीर-मेला' शीर्षक नोट है। इस स्तुत्य और महत्त्वपूर्ण प्रस्तावके लिए कबीर-साहित्यानुरागी आपके ऋणी रहेंगे।*

मैं आपसे आशा करता हूँ कि आप अपने इस प्रस्तावको यथाशक्य शीघ्र कार्यरूपमें परिणत करनेको कष्ट उठायेंगे। यह कार्य भारतीय मानव-समाजको एक नूतन आध्यात्मिक सन्देश सुनायेगा और वर्तमान समयकी संक्षुब्ध दशामें सुखप्रद होगा। —मोतीदास

---

* इस प्रस्तावका श्रेय वस्तुतः बाबा राघवदासको मिलना चाहिए। यह उन्हींके मस्तिष्ककी उपज है, और इसे कार्यरूपमें परिणत करेंगे पं० सुन्दरलालजी, जो कबीर साहबके अनन्य भक्त हैं। मैंने तो क्लार्कीका काम किया है। —सम्पादक

वसन्तोत्सव

अभी उस दिन दिल्लीसे निकलनेवाले एक पत्रने हमपर यह आरोप किया था कि हम हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रके डिक्टेटर बनना चाहते हैं। स्वप्नमें भी हमने इस डिक्टेटरशिपकी कल्पना तक नहीं की थी। हमारी प्रवृत्ति फैसिज्मकी तो सर्वथा विरोधिनी है ही; पर वह वर्गवादकी डिक्टेटरी भी नहीं चाहती। साहित्य-क्षेत्रमें भी हम पूर्ण अराजकवादके प्रबल पक्षपाती हैं; पर खुदानख्वास्ता यदि हुमायूँके भिश्तीकी तरह महीने दो महीनेके लिए यह अप्रिय कर्तव्य हमारे सिरपर लादा ही जाय, तो हम इसके लिए माघ शुक्ला पंचमीसे लेकर फागुन और चैतके दिन चुनेंगे, और हमारा पहला फर्मान वसन्तोत्सवके विषयमें निकलेगा।

वसन्तऋतुके दिनोंमें प्रत्येक साहित्य-सेवीके लिए अनिवार्य नियम बना दिया जायगा कि वह यात्रा करे, क्योंकि प्राचीनकालके ऋषि पहले ही कह गये हैं—"वसन्ते भ्रमणं श्रेयः।" साधारण जनताका सांस्कृतिक धरातल उच्च करनेके लिए वसन्त-व्याख्यान-मालाकी आयोजना की जायगी। आजसे तीन वर्ष फरवरी सन् १९३१ में वसन्तोत्सवका जो स्वप्न हमने देखा था, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"सन् १९३५ में वसन्तोत्सव कैसे मनाया जायगा, इसके स्वप्न हम अभीसे देख रहे हैं। वसन्त-पंचमी आनेवाली है। सम्मेलनने अपनी सम्बद्ध संस्थाओंको आदेश दे दिया है कि वसन्तोत्सव एक निश्चित कार्यक्रमके अनुसार मनाया जाय। आगरेकी नागरी-प्रचारिणी-सभाने सूरदासके निवासस्थान रुनकुता (रुक्मिणी-क्षेत्र) तथा स्वर्गीय सत्यनारायणके निवासस्थान धाँधूपुराकी यात्राओंका निश्चय कर लिया है। साप्ताहिक व्याख्यानोंका प्रबन्ध हो गया है! श्री मायाशंकर याज्ञिक ब्रजभाषाके प्राचीन कवियोंके विषयमें अपने अन्वेषणका वृत्तान्त सुनावेंगे। लल्लूलालजी, राजा लक्ष्मणसिंह, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण, कविवर नज़ीर इत्यादिके विषयमें निबन्धोंका पाठ होगा! कवि-सम्मेलन तथा मुशायरेका भी प्रबन्ध किया गया है। उधर ब्रज-मंडलवाले भला कब किसीसे पीछे रह सकते हैं। उन्होंने बड़ी धूमधामके साथ ब्रज साहित्य-मंडलका उत्सव मनाया है। अष्टछापके कवियोंके विषयमें निबन्धोंका पाठ हो रहा है। श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत 'नन्ददास ग्रन्थावली'की एक हज़ार प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। इसके बाद कविवर सोमनाथके विषयमें याज्ञिक बन्धुओंके निबन्धका पाठ हुआ। प्राचीन ब्रजभाषा-साहित्यके प्रकाशनके विषयमें एक व्यावहारिक स्कीम बनाई गई।

"श्री कालिदासजी कपूर लखनऊसे अपने विद्यार्थियोंको लेकर मलूकदासके जन्मस्थानकी यात्राके लिए निकल पड़े हैं। गोरखपुरके साहित्य-सेवियोंने तो श्री हनुमानप्रसाद पोद्दारके प्रबन्धमें भगवान बुद्धके जन्मस्थान, निर्वाणस्थान तथा कबीरके जन्मस्थानकी यात्राओंका प्रबन्ध कर लिया है। मध्यभारत-हिन्दी-साहित्यके उत्साही मन्त्री रा०ब०डा० सरजूप्रसादने इस साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यमें अपनी सारी शक्ति लगा दी है। श्री रायकृष्णदासके उत्साहसे तथा कला-भवनके कारण नागरी-प्रचारिणी-सभाका कार्यक्रम सबसे अधिक मनोरंजक रहा और कलकत्तेवालोंने तो कमाल कर दिया। शान्ति-निकेतनकी या ा की गई। महाबोधि-सोसायटीके सुरम्य भवनमें प्रतिसप्ताह व्याख्यानोंका प्रबन्ध किया गया। कला, साहित्य, इतिहास इत्यादि विषयोंपर सचित्र व्याख्यान हुए। भिन्न-भिन्न पत्रोंने अपने विशेषांक निकाले, 'विशाल भारत' का कला-अंक बड़ी सजधजके साथ प्रकाशित हुआ। देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें इसी प्रकार बड़ी शानके साथ वसन्तोत्सव मनाये गये और उनके वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें छपे। लोग कहने लगे कि भाई, वसन्तोत्सव तो अबकी बार मनाया गया है।"

इस स्वप्नको कार्यरूपमें परिणत करनेका भरपूर प्रयत्न किया जायगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि

१ मार्च सन् १९३१ के सम्मेलनकी स्थायी समितिकी मीटिंगने निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया था—

"यह सम्मेलन हिन्दी-भाषा-भाषी जनतासे प्रार्थना करता है कि वह आगामी वर्षसे वसन्तऋतुमें वसन्त-व्याख्यानमालाका प्रबन्ध करे और साहित्य संगीत तथा कला इत्यादिकी उन्नतिके लिए इस ऋतुके महीनोंका उपयोग सांस्कृतिक सप्ताहोंके रूपमें करे। यह सम्मेलन स्थायी समितिसे अनुरोध करता है कि वह वसन्त-व्याख्यानमालाके लिए उपयुक्त कार्यक्रम तैयार करे और सम्मेलनकी सम्बद्ध संस्थाओं तथा अन्य समाजोंकी सहायतासे उसे कार्यरूपमें परिणत करे।"

यदि हम अपनी डिक्टेटरशिपमें सांस्कृतिक सप्ताहोंका प्रोग्राम जनताके सम्मुख रखें, तो किसी भले आदमीको इसमें उज्र न होना चाहिए, क्योंकि हिन्दी-साहित्य-जगतकी सर्वप्रधान जनतन्त्रवादी संस्था (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन) इसे स्वीकार कर चुकी है। जिन्हें वसन्तकी ख़बर न हो, वे इस बातको नोट कर लें!

—बनारसीदास चतुर्वेदी

—

वसन्तोत्सव

आजसे लगभग तीन वर्ष पूर्वकी बात है। मैंने पहले-पहल इस लेखको 'विशाल भारत' में पढ़ा था। उसी समय मेरे मनमें एक प्रगतिशील समितिकी एकान्त आवश्यकता प्रतीत हुई थी, और तभीसे मैं भी इसके स्वप्न देख रहा हूँ। आह! वास्तवमें यदि यह सपना सार्थक हो जाय! मगर सच तो यह है कि हममें उस स्पिरिटकी निहायत कमी है, और जब तक उस सोई मनोवृत्तिको बार-बार चैतन्य नहीं किया जाता, वह जागरूक नहीं होनेकी।

आपको ज्ञात ही होगा कि आजकल कवि-सम्मेलनोंकी धूम मची हुई है। मगर जाननेवाले जानते हैं कि वे so-called कवि-सम्मेलन यथार्थतासे कितनी दूर हैं। उन्हें, मेरी समझमें, कवि-सम्मेलन कहना कविता-देवीका अपमान करना है। मेरे कहनेका तात्पर्य है कि यदि व्यर्थके सम्मेलनोंमें अपनी शक्ति व्यय न कर ऐसी ही समितियोंको प्रोत्साहित किया जाय, तो कितना अच्छा हो! वसन्त-व्याख्यान-मालाका प्रबन्ध करना तो अत्यन्त आवश्यक है, और उसका इन्तज़ाम तो प्रत्येक शहरमें होना चाहिए; फिर भी यदि प्रकृतिके किसी शान्तिप्रद कोनेमें, चित्रकूटकी शीतल मंगलमय कुंजोंमें और भागीरथीकी कल्लोलमयी धारामें प्रसादजी, गुप्तजी तथा पन्तजी अपने 'आँसू', 'साकेत' और 'नौका-विहार' का पाठ करें, तो कितना आनन्द रहे!

यों तो आपने साहित्यके सभी अंगोंपर दृष्टिपात किया है, मगर मुझे सबसे अच्छा यात्राका प्रोग्राम मालूम पड़ता है। न-जानें क्यों? शान्ति-निकेतन जैसे स्थानोंमें यदि दस-पाँच साहित्यिकोंकी मंडली कुछ सीख सके, कुछ अनुभव कर सके, तो इससे बढ़कर प्रसन्नतावर्द्धक और क्या हो सकता है? प्रकृतिके लीला-निकेतनमें यदि साल-भरका विश्रान्त यात्री क्षण-भरके लिए साहित्य-संगीत-कलाकी महानन्द-धारामें अपनेको विस्मृत कर दे, तो क्या कहना? हँसिये नहीं, मैं तो चाहता हूँ कि श्रीराम शर्मा-जैसे व्यक्ति इस वसन्तकी नवोद्दीपित मादकतामें कुछ दिनों तक हम लोगोंको पर्वत, घाटी और जंगलोंकी सैर करायें, भाँति-भाँतिके पक्षियोंका परिचय दें और हो सके तो कभी-कभी सुना दें अपनी प्रियतमा राइफलका चिरपरिचित स्वर—अरररधम!

इसी सिलसिलेमें एक मज़ेदार बात सुन लीजिए। मेरे एक मित्र हैं। उन्हें कविता करनेका ज़बरदस्त शौक़ है। एक दिन उन्होंने 'कमल' पर एक रचना सुनाई। भाव तो बड़े अच्छे थे, पर जब मैंने पूछा कि यार, तुमने कभी कमलका फूल देखा भी है, या यों ही कुछ लिख दिया करते हो, तो बोले कि भाई, कविता कल्पनाकी वस्तु है। देखी नहीं जाती। ऐसा प्रश्न करना ही ग़लत है। मैं ठठाकर हँस पड़ा—"वाह, यह ख़ूब कही!"

ख़ैर, जो हो, यह एक ख़ास आदमीकी घटना हुई। मगर मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इस समय भी हिन्दी-संसारमें कितने ही ऐसे जीव मौजूद हैं, जो कलकत्ता या काशीके कोलाहलमय वातावरणमें तिमंज़िले मकानपर बैठकर काश्मीर, मानसरोवर, गोदावरी तथा हिमालयका चित्र खींचा करते हैं, और उन्हीं रचनाओंपर आलोचकगण प्रशंसाके पुल बाँध देते हैं! यह हिन्दीका दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? नन्दनवनके पारिजात-कुसुमपर कल्पनाके सहारे कुछ लिखा जाना असम्भव नहीं; किन्तु डलझीलके किनारे बैठकर प्राकृतिक सौन्दर्यपर लेखनी उठाना उससे कहीं बेहतर न होगा? तब क्यों न ऐसी आयोजनाको पूर्णरूपेण प्रोत्साहित किया जाय? हम प्रतिदिन कोयल, परेवा और हंसकी कहानी पढ़ते, लिखते और सुनते हैं; पर उनमें कितने ऐसे हैं, जो उन पक्षियोंके रहन-सहन, आहार-विहार और स्वभावसे परिचित हैं? मेरा तो ख़याल है कि बहुतसे व्यक्ति उन्हें पहचानते भी न होंगे। फिर क्यों नहीं प्रतिवर्ष कम-से-कम इस वसन्त-ऋतुमें भी—ललित-लवंग-लता-परिशीलन कोमल मलय समीरे—जीवन और अध्ययनका लुत्फ़ उठाया जाय—सोने और सुगन्धका सम्मिश्रण किया जाय?

हर साल ऋतुराज आता है। हर साल आम बौराते हैं, फूल खिलते हैं और कोयल कूकती है; परन्तु हम उनका सन्देश सुननेमें असमर्थ हैं। क्यों? हममें जीवन नहीं, यौवन नहीं, जीवन और यौवनका मेल नहीं। ज़रूरत है ऐसे लोगोंकी, जो उनमें प्राण-संचार करें। आपका यह काम सफल होगा। मैं तो अभीसे देख रहा हूँ—गर्वोन्नत नगाधिराजके अंचलमें बैठा हुआ हूँ। ऊपरसे पहाड़ी चश्मा हर-हर करता हुआ बह रहा है, और मेरा कवि वहींपर बैठा हुआ गुनगुना रहा है—"निर्झरका अजस्र झर-झर

निर्झरका अजस्र झर-झर!"

—आरसीप्रसाद सिंह

चित्रकार विजयवर्गीय

ब्रजमोहन वर्मा

अदालतका दृश्य भी अजीब चीज़ है, सो भी देशी रियासतोंकी अदालतका। अदालतके भीतर न्यायाधीश महाशय गम्भीर मुद्रा बनाये बैठे हैं। उनके सामने वकील लोग बटेरोंकी तरह बहस-मुबाहसेमें जुटे हैं। पेशकार और अहलकार लिखनेमें मशगूल हैं। गवाह गंगाजली और क़ुरानशरीफ़ उठा रहे हैं। बाहर मुवक्किलोंकी भीड़ जमा है। कोई आता है, कोई जाता है। बेचारे मुक़दमेबाज़ अपनी पुकार होनेके इन्तज़ारमें बेचैन तम्बाकू फाँकते और मूँगफली खाते वक्त काट रहे हैं। बीच-बीचमें अदालतका चपरासी मुक़दमेवालोंकी पुकारके लिए अपने बेसुरे गलेसे तीन बार आवाज़ लगाता है—

"फरियादीराम हाज़र है!"

जयपुरी दीवानी अदालतके इस विचित्र दृश्यमें अदालतके बरामदेमें एक काबुली पठान अपने मुक़दमेके इन्तज़ारमें बैठा था। जयपुरकी गर्मीमें बर्फ़ीले अफ़ग़ानिस्तानकी पहाड़ियोंका रहनेवाला यह जीव कुछ अजीब परेशान-सा हो रहा था। वह पहले बैठा, फिर दीवारके सहारे अधलेटी अवस्थामें एक विचित्र अन्दाज़से उठक गया। वहींपर एक नवयुवक हिन्दू भी अपने मुक़दमेके इन्तज़ारमें टहल रहा था। उसने पठानका यह विचित्र दृश्य देखा। धीरेसे जेबसे कापी-पेंसिल निकाली और पठानसे ज़रा दूर बैठकर कापीपर पेंसिलसे उसका चित्र बनाने लगा। बीच-बीचमें वह आँख उठाकर पठानकी ओर निहार लेता और फिर चित्र बनानेमें तल्लीन हो जाता। वह चित्र बनानेमें इतना निमग्न हो

हो रहा था कि उस समय उसके लिए चारों ओरके संसारका अस्तित्व ही लुप्त हो गया। इस निमग्नताको, इस लगनको, वे लोग ही अनुभव कर सकते हैं, जो कलाकार हैं, जिन्हें भगवानने सृजनात्मक शक्ति प्रदान की है, और जो उस शक्तिका आनन्द अनुभव कर चुके हैं।

लगभग एक घंटेके परिश्रमके बाद जब पठानका चित्र बनकर तैयार हो गया, तब युवकने आनन्दोल्लाससे सिर उठाया और सन्तोषकी साँस ली। अब उसने उठकर अदालतमें पूछ-ताछ की, तो मालूम हुआ कि उसके मुक़दमेकी पुकार हो गई। चपरासीने अपने फटे गलेसे ज़ोर-ज़ोर तीन बार उसका नाम पुकारा था; लेकिन वह हाज़िर नहीं हुआ, इसलिए न्यायाधीशने अदम मौजूदगीकी बिनापर उसके विरुद्ध फ़ैसला कर दिया!

इसी नवयुवकका नाम है श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।

विजयवर्गीय महाशयने अपनी छोटी आयु ही में अपनी तूलिकाके सहारे हिन्दी-संसारमें — हिन्दी-संसारमें ही नहीं, वरन हिन्दी-संसारके बाहर भी — काफी कीर्ति प्राप्त कर ली है, और कला-जगतको उनसे भविष्यमें बड़ी आशाएँ हैं।

बालक रामगोपालका जन्म जयपुर राज्यके एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न वैश्यकुलमें हुआ था। उनके पुरखे केवल वाणिज्य-व्यवहारके ही धनी न थे, तलवारके धनी भी थे। उन्होंने अपनी तलवारके बलपर ही 'विजयवर्गीय' उपाधि प्राप्त की थी, जो अब तक उनकी जातिमें चली आती है। रामगोपालके पिता स्वर्गीय भँवरीलालजीने नौकरी और व्यापारके द्वारा प्रचुर धन पैदा किया और उसे उसी प्रचुरतासे व्यय किया। बालक विजयवर्गीय बचपनसे ही चित्रोंका बड़ा प्रेमी था। वह कपड़ेके थानोंपर चिपकी हुई तसवीरोंके लिए सदा लालायित रहता और उन्हें एकत्रित करके बड़े प्रयत्नसे रखता था। वह घंटों उन्हीं चित्रोंके साथ खेला करता था। एक दिन बालक रामगोपाल मकानके दरवाज़ेपर खेल रहा था। एक व्यक्तिने आकर उसे कपड़ेके थानोंकी दो-तीन तसवीरें दिखलाईं। रामगोपाल फ़ौरन उन्हें लेनेके लिए उतावला हो उठा। उस व्यक्तिने कहा—"तुम मुझे अपने गलेकी ज़ंजीर दो, तो मैं तसवीरें दूँ।"

रामगोपालने फ़ौरन अपनी सोनेकी ज़ंजीर उतारकर उसे दे दी और तसवीरें लेकर प्रसन्नतासे घर चला गया!

पुराने दस्तूरके अनुसार पिताने रामगोपालको उर्दू-हिन्दीकी शिक्षा दिलाई थी। संस्कृत रामगोपालने स्वयं अपने प्रेम और प्रयत्नसे पढ़ी। बादमें उसने स्कूलमें आठवें-नवें दर्जे तक अंगरेज़ी भी पढ़ी। लेकिन 'एम ए एन=मैन, मैन माने आदमी' रटनेके बजाय वह काग़ज़पर आदमीकी शक्ल बनाना अधिक पसन्द करता था। वह हर वक्त कापीपर पेंसिलसे आदमी, जानवर, कुत्ता, बिल्ली बनानेमें व्यस्त रहता था। माता-पिताको यह बात नापसन्द थी। वे उसे इन बातोंसे रोकते थे; लेकिन वह छिप-छिपकर तसवीरें बनाता था। ऐसी दशामें पढ़ने-लिखनेमें मन क्या लगता! आठवें-नवें दर्जे तक पहुँचते न पहुँचते पढ़ना छोड़ दिया। अब तो दिन-भर अच्छी-बुरी ऊटपटाँग तसवीरें बनाना ही शुग़्ल रह गया।

यद्यपि रामगोपाल महाशयको कालेज या विश्वविद्यालयकी शिक्षा पानेका अवसर नहीं मिला; लेकिन दैव संयोगसे उन्हें उस विश्वविद्यालयकी शिक्षा प्राप्त हुई, जो संसारके सारे विश्वविद्यालयोंसे बढ़कर है। वह है सांसारिक अनुभवका विश्वविद्यालय। पिताजीकी शाहख़र्चीके कारण रामगोपालजीके जीवनमें कई बार सुख-दुखके ज्वार-भाटे आये और आराम-तकलीफकी धूप-छायाके खेल हुए। उन्होंने पूँजीवादी समाजके चढ़ाव-उतार ख़ूब देखे हैं। छोटेसे जीवनमें ही उन्होंने ऐश्वर्य और विभवके फूलों और कठिनाइयों और मुसीबतोंके काँटोंका अनुभव किया है, और ख़ूब किया है। वे प्रचुरताके उद्देशहीन बेफ़िक्र दिनों और विभुक्षाकी काली घड़ियोंसे परिचित हैं। जीवनके ये रंग-बिरंगे चित्र-विचित्र अनुभव ही उनके सबसे बड़े

शिक्षक हैं। उनके चित्रोंमें मानव-भावोंकी विशेषताका रहस्य शायद उनके इन्हीं अनुभवोंमें निहत है।

कुछ दिन सांसारिक चक्करमें बिताकर रामगोपालजी जयपुरके आर्ट-स्कूलमें भर्ती हो गये। वहाँ प्रसिद्ध चित्रकार श्री शैलेन्द्र दे प्रिंसपल हैं, और श्री हिरण्यमय चौधुरी सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। आर्ट-स्कूलका कोर्स पाँच-सात वर्षका है; लेकिन रामगोपालजीने इतनी दक्षताका परिचय दिया कि उन्हें केवल पन्द्रह-सोलह महीनोंमें ही सर्वोच्च परीक्षाका सर्टिफिकेट प्राप्त हो गया। भर्ती होनेके कुछ मास बादसे ही बाहरकी प्रदर्शिनियोंमें स्कूलकी ओरसे उनके चित्र भेजे जाने लगे थे, और उनकी काफी प्रशंसा होती थी।

आरम्भमें मासिक पत्रोंमें छपे हुए श्री अब्दुर्रहमान चग़ताई और श्री सारदा उकीलके चित्रोंने विजयवर्गीयके ऊपर विशेष प्रभाव डाला था। मासिक पत्रोंमें विजयवर्गीयके चित्र छापनेवाला सबसे पहला मासिक पत्र 'माडर्नरिव्यू' है। एक बार श्री हरिभाऊ उपाध्याय जयपुर गये थे। उन्होंने विजयवर्गीयके चित्र देखकर प्रसन्नता प्रकट की; परन्तु साथ ही उनसे कहा—"देखो, गन्दे विचार उत्पन्न करनेवाले चित्र बनाकर अपनी कलाको कलंकित मत करना।"

रामगोपालजी आरम्भसे ही धार्मिक विचारोंके हैं। हरिभाऊजीके कथनसे उनकी धार्मिक भावना और भी दृढ़ हो गई, इसीलिए उनके चित्र कुरुचि उत्पादक भावोंसे एकदम मुक्त होते हैं। विजयवर्गीयजीने संस्कृतका अच्छा अध्ययन किया है। कालिदासकी शकुन्तला, मेघदूत आदि और बाणभट्टकी कादम्बरीने उनपर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। इसी कारण उनके चित्रोंमें हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-विचारोंकी बड़ी गहरी छाप दीख पड़ती है। उनके चित्रोंके विषय भी प्राय: गम्भीर या Classic हुआ करते हैं। इससे उनके चित्रोंमें एक प्रकारकी अपनी निजी मर्यादा दीख पड़ती है।

जिस समय विजयवर्गीयजीको चित्र बनानेकी धुन सवार होती है, उस समय उन्हें तब तक चैन नहीं पड़ता, जब तक वे उसे बनाकर पूरा न कर लें। विजयवर्गीयजी बैठे चित्र बना रहे हैं। आकृति बन चुकी है। रंग भरा जा रहा है। सहसा रंग समाप्त

श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

हो गया। जयपुरमें रंग मिलता नहीं, कलकत्तेसे मँगाना पड़ेगा; लेकिन कलकत्तेसे रंग आने तककी ताब किसको? सामने सफेद जूतेपर लगानेकी पालिश रखी है। विजयवर्गीयजीने उसे उठाकर घोला और उसीसे चित्र बनाकर पूरा कर दिया। जूतेकी पालिशका बना हुआ यह चित्र भारतके एक प्रसिद्ध कला-संग्रहालयमें आदरपूर्वक सुरक्षित है! इसी प्रकार एक दिन फिर रंग समाप्त हो गया। चित्र प्राय: बन चुका था। केवल उसपर रंगका अन्तिम पोत (wash) देना बाक़ी था। सामने पानदान रखा था। चित्रकारने उसमें से कत्थेकी कुल्हिया निकाली

और उसीमें ब्रश डालकर चित्रको पूरा कर दिया। इस कन्या-रचित चित्रको विश्वविद्यालयके एक कला-प्रेमी प्रोफेसरने आग्रहसे खरीदा था!

विजयवर्गीयजीके रंग भी प्रायः गम्भीर हुआ करते हैं, जो चित्रोंके गम्भीर विषयोंके बहुत अनुकूल होते हैं; लेकिन किसी-किसी चित्रमें, जिनके विषय कम गम्भीर होते हैं, वे उतने पूरे नहीं उतरते।

यों तो रूसकोको छोड़कर सारे वर्तमान संसारका सामाजिक गठन पूँजीवादकी नींवपर स्थिर है; लेकिन विजयवर्गीयजीका जन्म और लालन-पालन ऐसे समाजमें हुआ है, जिसमें संसारकी प्रत्येक वस्तु चाँदीके टुकड़ोंसे तोली जाती है। ऐसे समाजमें भाग्यके कटु उलट-फेर देखनेके बाद उनके मनमें 'गाँठमें जमा रहे तो खातिर जमा रहे' के सिद्धान्तके अनुसार यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि प्रत्येक स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए ज़िन्दगीका पहला लक्ष होना चाहिए आर्थिक स्वतन्त्रताकी प्राप्ति। पहले आदमी दस-पाँच हज़ार रुपया एकत्रित करके पेटकी चिन्तासे मुक्त हो जाय, तब वह अपने शौक़के किसी भी क्षेत्रमें स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकता है।

ललित-कलाओंके प्रति विजयवर्गीयजीको स्वभावतः ही प्रेम है। वे केवल तूलिकासे ही खेलना नहीं जानते, वरन जब उमंग आती है, तो लेखनीसे भी क्रीड़ा करते हैं। वे हिन्दीमें कविता करते हैं। उनकी कविता स्वान्तः सुखाय लिखी होनेके कारण अब तक लज्जाशीला नववधूकी भाँति परदेकी ओटमें ही रही हैं; लेकिन आशा है कि शीघ्र ही वह छापेकी मोटरपर सवार होकर जनसाधारणके सामने आवेगी।

इसी अंकमें पाठक विजयवर्गीयजीके तीन तिरंगे चित्र देखेंगे। इनमें एक चित्र है 'लक्ष्मण और सूर्पणखा' का। सूर्पणखा यौवनोन्मत्त होकर पहले श्रीरामचन्द्रके पास प्रणय-प्रार्थनाके लिए जाती है, जो उसे लक्ष्मणके पास भेज देते हैं। जब कोई पुरुष किसी स्त्रीको या कोई स्त्री किसी पुरुषको अपने प्रेम-सूत्रमें बाँधना चाहती है, तब वह अपने प्रेमीके सम्मुख अपने सबसे सुन्दर रूपमें उपस्थित होती है, इसीलिए सूर्पणखाने भी श्रृंगार द्वारा अपनी सौन्दर्य-वृद्धिमें कोई बात उठा नहीं रखी है। लेकिन कोई भी स्त्री—चाहे वह निर्लज्ज सूर्पणखा राक्षसी ही क्यों न हो—जब किसी पुरुषके सामने प्रणय-भिक्षाके लिए उपस्थित होती है, तो उसपर स्त्री-सुलभ लज्जा अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। पाठक देखेंगे कि चित्रकारने चित्रमें सूर्पणखाके मुखपर प्रणयकी कोमलता, कामनाके ज़ोर और लज्जाके आरक्तिम भावोंकी छाप कैसी सफलता और सुन्दरतासे लगाई है। दूसरी ओर उर्मिलाका वियोगी तपसी पति सूर्पणखाके इस विचित्र प्रस्तावको सुनकर हक्काबक्का रह जाता है; क्रोधसे उत्तप्त हो उठता है। चित्रमें लक्ष्मणका केवल पृष्ठ भाग ही दीख पड़ता है; लेकिन चित्रकारने उसीसे ही लक्ष्मणके महान आश्चर्य, घृणा और क्रोधको भलीभाँति दिखला दिया है।

विजयवर्गीयजीका दूसरा चित्र है 'लंका-दहन'। हनुमानजी लंकामें आग लगाकर गदा फटकारते हुए अग्नि-शिखाओंके जालमें से कूदते-फाँदते निकल रहे हैं। बन्दर-जातिका विशेष गुण उसकी चपलता, स्फूर्ति और नटखटपन है। फिर हनुमानजी तो अत्यन्त बलशाली कपिराज हैं। चित्रमें उनकी आकृति मूर्तिमान स्फूर्ति और तीव्रता बनकर दीख पड़ती है। चित्रकारने उनके शरीरकी जो गठन दिखाई है, उससे दर्शकके मनमें उनके वज्रांग होनेमें कोई संशय नहीं रह जाता।

तीसरा चित्र एक ग्वालिनीका है, जो नगरमें गोरस बेचकर अपने ग्रामको लौट रही है। रास्तेके निस्तब्ध प्रान्तरकी निर्जनतामें उसे लज्जाका भान जाता रहा है, इसलिए वह अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रोंकी चिन्ता न करके तेज़ चालसे बढ़ी चली जा रही है। घर पहुँचनेकी उतावली उसकी गतिसे ही प्रकट हो रही है।

———

ऑपरेशन

श्री रामकृष्णदेव गर्ग

उमंग और वासनाओंके आँधी-तूफ़ानके निकल जानेके बाद यौवनके समुद्रमें जब ज्वार-भाटे थम-थमकर आने लगे और स्वच्छ हृदयाकाशके नीचे प्रेमकी नौका स्थिर गतिसे जीवनकी यात्राको पार करने लगी, तो डाक्टर राजाको एक नई बात मालूम हुई—कमला कवि है।

"हाँ, कवि है, अब इसमें कुछ सन्देह नहीं, नहीं तो इस आधी रातके सन्नाटेमें, जब दुनियाके झंझटोंसे ऊबकर लोग निद्राकी गोदमें विश्राम कर रहे हैं, वहाँ इस छतकी मुडेलीपर, दूधसे धुली हुई संगमर्मरकी मूर्तिकी तरह, निश्चेष्ट बैठी हुई यह आकाशमें क्या देख रही है? अब तक सुना करते थे, कवि पागल होते हैं; आज आँखोंसे देख लिया।"

कमलाने मुड़कर देखा, तो राजा बाबू औंधे लेटे हुए तकियेपर मुँह रखकर हँस रहे हैं। उसने पूछा—"क्यों, कैसे हँस रहे हो? अभी तक नींद नहीं आई क्या?"

राजा बाबूने वैसे ही हँसते हुए कहा—"यहाँ आओ।" कमला आकर पलंगपर बैठ गई। उन्होंने केंचुलीकी तरह झीनी साड़ीके नीचे पड़ी हुई चोटीको दुलराते हुए कहा—"मैं तो समझता था कि डाक्टरीकी परीक्षाएँ पास करनेमें ही परिश्रम करना पड़ता है; पर आज मालूम हुआ कि कवि बननेके लिए भी रात-रातभर जगकर बड़ी घोर तपस्याएँ करनी पड़ती हैं।"

कमलाने पलंगपर से उठते हुए कहा—"चलो रहने दो। यह जाने तुम्हें क्या नया वहम सवार हो गया है।"

× × ×

कुछ दिन और इसी तरह गुज़र गये। डाक्टर राजाकी प्रैक्टिस अब ज़ोर-शोरके साथ चल निकली थी। दो-ढाई बरस पहले वह विलायतसे एम०डी०की डिगरी लेकर लौटे थे। उस समय अगर वह चाहते, तो किसी मोटीसी सरकारी पोस्टको पकड़कर बैठ जाते और हमेशाके लिए निश्चिन्त हो जाते; पर वह जान-बूझकर इस मार्गसे दूर रहे। उनका एक 'लाइफ़-मिशन' था। उन्होंने जब देखा कि उसकी पूर्तिके लिए प्रयत्न करनेका समय आ गया है, तब वह अपनी समस्त शक्तिके साथ उसमें जुट पड़े। इसके लिए भविष्यमें उन्हें किन मुसीबतोंका सामना करना पड़ेगा, इसका उन्होंने कभी विचार तक नहीं किया।

यह मिशन था सर्जरीका प्रचार करना—दुनियाके कोने-कोनेमें, घर-घरमें, सर्जरीकी जड़ जमाकर दम लेना। सर्जरीके वह स्पेसलिस्ट थे। इन थोड़ेसे दिनोंकी प्रैक्टिसमें उन्होंने ऐसे-ऐसे सफल ऑपरेशन किये थे कि अच्छे-अच्छे अनुभवी डाक्टर दाँतोंतले अँगुली दबाकर रह गये थे। साधारण लोग तो उन्हें देवता समझने लगे थे। उनकी डिस्पेन्सरीके सामने सुबहसे शाम तक दीन-दुखियोंकी भीड़ लगी रहती थी, और वह एक-एक करके सबकी सुनते और व्यवस्था करते थे।

डाक्टर राजाका कहना था कि आत्म-विश्वास और त्यागके बलपर एक अदना-सा आदमी संसारमें युगान्तर उपस्थित कर सकता है। यही दो शक्तियाँ थीं, जिनके बलपर उन्होंने अपने सुनहले स्वप्नोंकी दीवार खड़ी की थी। सर्जरीका उन्हें नशा-सा छाया रहता था। ज्यों-ज्यों इसकी शक्तियोंकी खोजमें वह आगे बढ़ते जाते थे, त्यों-त्यों प्रकृतिके रहस्योंकी तरह वह और भी गूढ़ होती चली जाती थीं। उनकी दृष्टिमें समस्त संसारके मंगलका बीज और उसकी दुरवस्थाकी औषध इन्हीं शक्तियोंमें निहित थी। इन्हें पहले जानकर फिर संचालन करनेकी सिर्फ़ आवश्यकता थी।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे ही वैसे उनका यह रंग और भी गहरा होता गया। राजा बाबू चाहते थे कि उनका यह पवित्र सन्देश बच्चे-बच्चेके कानों तक पहुँच जाय, इसलिए जिस किसीसे वह मिलते, उससे अधिकतर इसीके सम्बन्धकी बातें किया करते। जो लोग अपने जीवनको किसी ख़ास उद्देश्यके लिए समर्पित कर देते हैं, उनमें यह एक कमज़ोरी होती है, और इससे डाक्टर राजा भी मुक्त न थे। अगर उन्हें कोई न मिलता, तो वह कमलाको ही अपने पास बिठा लेते और सर्जरी-सम्बन्धी अपने नये-पुराने अनुभव और शरीर-रचनाकी गूढ़ गुत्थियोंकी व्याख्या किया करते। कमला एक अबोध शिष्यकी तरह राजा बाबूकी आँखोंसे आँखें मिलाकर इन बातोंको सुना करती; परन्तु बहुत कोशिश करनेपर भी उसकी समझमें यह नहीं आता था कि सर्जिकल डेस्कमें रखे हुए विविध प्रकारके उन टेढ़े-मेढ़े चाकुओंका मनोविज्ञानके साथ क्या सम्बन्ध है। वह इन विषयोंमें दिलचस्पी लेनेकी कोशिश करती थी; पर उनके कठोर रूप तक पहुँचनेके पहले ही उसकी कोमल भावनाएँ जैसे कुण्ठित हो जाती थीं।

कोठीके पास ही राजा बाबूका अपना एक प्राइवेट अस्पताल था, जिसमें सब श्रेणीके लोग दाख़िल होकर अपना इलाज़ कराते थे। ग़रीबोंके लिए इसमें बड़े-बड़े लम्बे वार्ड थे, और अमीरोंके लिए इनके ऊपर स्वतन्त्र कमरे। सब व्यवस्था अंगरेज़ी अस्पतालोंकी स्टाइलपर की गई थी—वैसा ही इन्तज़ाम, वही नर्सें, वही हाउस-सर्जन, कम्पाउन्डर, नौकर-चाकर सब कुछ वैसा ही।

सन्ध्याके समय कमला जिधर दीनहीन लोग अपने दुखोंकी लम्बी रातें हॉलकी ऊँची छतपर आँख लगाये काटा करते थे, उधर निकल जाती और उनसे दुख-सुखकी बातें पूछा करती। यह उसका नित्यका नियम था। कभी-कभी बारह-बारह और दो-दो बजे तक आधी रातके सन्नाटेमें, बिजलीकी केवल एक बत्तीके धुँधले आवरणके नीचे, छायालोकके जीवकी तरह, कुर्सीपर अकेली बैठी हुई वह किसी रोगीके कुम्हलाये हुए मुँहकी तरफ़ टकटकी लगाकर देखा करती और टूटे-फूटे शब्दोंमें कही गई उसके जीवनकी कहानीको सुना करती। इसी बीच कभी-कभी हॉलके दूसरे भागसे किसी दुखियाका क्षीण क्रन्दन उसे अपनी ओर खींच लेता। वह कुर्सीपर से उठकर दबे पाँव उसकी चारपाईके पास जाती और उसके सिरपर हाथ फेरकर पूछती—"कहो, क्या तकलीफ़ है?" कमलाके कोमल स्पर्शसे सिहरकर रोगी अपनी अधखुली आँखें खोल देता। उसे ऐसा मालूम होता, जैसे कोई स्वर्गीय देवी अपना वरद हाथ फेरकर उसके कष्टोंका अन्त करने आई हो। उसकी सफ़ेद आँखोंमें दो आँसू आनन्द और कृतज्ञताका मधुर भार लेकर उमड़ आते। कमला निहाल हो जाती। उसे ऐसा मालूम होता, जैसे संसारकी सर्वश्रेष्ठ निधि उसे मिल गई हो।

कमलाको वे सब वस्तुएँ प्राप्त थीं, जिनसे दुनियावाले दूसरोंके सुखका अन्दाज़ लगाया करते हैं—मोटरें थीं, नौकर-चाकर थे, बाग़-बग़ीचे थे, कई एक कोठियाँ थीं, और इन सबके निर्वाहके लिए एक ख़ासी आमदनी थी। पर जो सुख, जो सन्तोष इन दीनहीन प्राणियोंके कष्टोंकी अनुभूतिमें उसे मिलता था, वह न तो मोटरोंमें बैठकर वायुकी गतिसे सड़कोंपर से अदृश्य हो जानेमें उसे मिलता था, और न बिजलीके प्रकाशसे जगमगाते हुए ऑपेरा हाउसमें बैठनेमें। अस्पतालके दरिद्र और दुखी रोगियोंके पास बैठकर और उनके जीवनका एक कुतूहलपूर्ण विश्लेषण करते-करते करुणा और वेदनाके मिश्रित भावोंके साथ उसका हृदय एकरस हो गया था। संसारकी समस्त वस्तुओंमें वह एक इसी रसको देखनेके लिए जैसे विकल रहती थी। समुद्र तटके सूर्योदय, सघन वनके सूर्यास्त, पर्वतोंकी गोदमें खेलते हुए झरने और शान्त शीतलवाहिनी नदियाँ उसे एक क्षणके लिए अपनी तरफ़ आकर्षित करती थीं; पर थोड़ी देर तक प्रकृतिके इन दृश्योंको देखते-देखते वह चिन्ता और उदासीके एक गहरे

समुद्रमें गोते लगाने लगती। उस समय उसकी दशा ठीक उस मनुष्यकी-सी हो जाती, जो शराबके दो-चार पैग चढ़ाकर थोड़ी देर तक हँसता रहता है और बादमें अचेत होकर सो जाता है।

× × ×

एक दिन कमला इसी प्रकार कल्पनामें भूली हुई थी। सन्ध्याका समय था, श्रावणका महीना। काले बादलोंके दलके दल आसमानमें उमड़ते हुए चले आ रहे थे। सामने बहुत दूरपर क्षितिजमें धूसर सूर्य टूटे हुए जहाज़की तरह बादलोंमें डुबकियाँ ले रहा था। शीतल वायु झोका ले-लेकर बह रही थी। पृथिवी और आकाश अँधेरीकी एक हलकी-सी चादरमें छिपे हुए बहुत दिनके वियोगके बाद, आँखोंमें आनन्दके आँसू भरकर, आपसमें मिलनेकी तैयारी कर रहे थे। अपनी खिड़कीके पास आरामकुर्सीपर बैठी हुई कमला सोच रही थी—ऐसा मालूम होता है कि इस पृथिवीके बाहर ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, सब सुन्दर है, सब स्वतन्त्र है, सब मंगलमय है। यहीं दुःख, दारिद्र्य और पाप निर्भय होकर शिकार खेलते हैं। केवल यहीं मरनेके लिए लोग जीते हैं, बिछुड़नेके लिए मिलते हैं और बुड्ढे होनेके लिए जवान होते हैं। यदि ऐसा न होता, तो यह अनन्त आकाश, यह उन्मत्त समुद्र और यह चंचल वायु इतने आकर्षक क्यों लगते और हृदय इन्हींमें खो जानेके लिए क्यों तड़पता? यदि ये न होते—यदि ये तारोंसे झिलमिलाती हुई रातें, ये धूप-भरे दिन और ये अरुण सन्ध्याएँ न होतीं, तो हाहाकार और रुदनके सिवा इस पृथिवीपर और क्या सुनाई देता? इस पृथिवीसे जो वस्तु जितनी ही दूर है, वह उतनी ही मनोहर है, उतनी ही पवित्र है। यह चिड़ियाँ जब पिंजड़ेमें बन्द कर ली जाती हैं, तो इनमें से जैसे जीवन निकल जाता है; परन्तु यही जब आकाशमें उड़ती हुई दिखलाई देती हैं, तो हमें इनसे ईर्ष्या होती है। यह नदियाँ पहाड़ोंकी गोदमें मचलती हुई कैसी प्रसन्न दिखलाई देती हैं; पर पृथिवीपर उतरते ही इन्हें जैसे काठ मार जाता है। ये हरे-भरे वृक्ष, पहाड़ोंकी बर्फ़ीली चोटियाँ पृथिवीसे जितनी ऊँची उठती हैं, उतनी ही मनोरम लगती हैं। और ये मेघ गरजते-बरसते और बिजलीसे आँखमिचौनी खेलते हुए जब पृथिवीपर छा जाते हैं, तो हमारी सोई हुई अभिलाषाएँ जाग उठती हैं, और हम रोग-शोक-सन्तापके कफ़नको मुँहपर से ज़रा सरकाकर संसारकी समाधिमें से एक कजरी गानेका उपक्रम करने लगते हैं—

"रात भूली पिया सँग सयनवामें।"

कमला क़लम लेकर बैठ गई। वह चाहती थी कि इस बार वह अपनी कवितामें अपने हृदयकी समस्त वेदनाको समेटकर एक बारगी ही रख दे, ताकि इसके लिए उसे बार-बार न रोना पड़े। उसने धुआँकी तरह घुमड़ते हुए मेघोंकी तरफ़ एक बार देखा, ठीक उसी प्रकार, जैसे चित्रकार अपने चित्रमें रंग भरनेसे पहले अपनी कुचीमें रंग लगाता है, और कुछ लिखना ही चाहती थी कि एकाएक सामनेका दरवाज़ा खुला और डाक्टर साहब सामने आकर खड़े हो गये।

"क्या कर रही हो?"

"कुछ नहीं।"

राजा बाबूके हाथमें एक चमकता हुआ चाकू था और मुखपर विजयोल्लास। चाकूकी तरफ़ एक प्रेम-भरी दृष्टि डालते हुए उन्होंने कमलासे कहा—"कमला, इस चाकूने कैसे-कैसे भयंकर ऑपरेशन किये हैं, कैसे-कैसे लोगोंके प्राण बचाये हैं, यह मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ। कभी-कभी तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि यह यश, यह वैभव और यह धाक, जो तुम अपने चारों ओर देख रही हो, सब इसीकी बदौलत है। तुम कहती होगी, इस चाकूमें ही ऐसी क्या करामात है, यह तो अपनी-अपनी योग्यता और हाथकी सफ़ाईकी बात है। ठीक है, लेकिन जिस चीज़ने इतने दिनसे अपना साथ दिया है, उसके साथ क्या आदमीको मोह नहीं पड़ जाता? यों मेरे पास एक-से-एक क़ीमती चाकू हैं; पर मुझे उनपर उतना भरोसा नहीं है, जितना कि

इस छोटीसी चीज़पर। मैं अकसर सोचा करता हूँ कि किसी दिन दुर्भाग्यवश यह खो गया तो ?

डाक्टर साहबने चाकूको अपने मुँहके पास ले जाकर चूम लिया और फिर उसे मोड़कर अपनी जेबमें रख लिया। कमला इन सब बातोंका कुछ भी जवाब दिये बिना ही कुछ क्षण तक डाक्टर साहबकी तरफ़ अर्थहीन दृष्टिसे देखती रही। उसके बाद उसने अपनी क़लम और कविता लिखनेकी कापीको चुपचाप पासके आलेपर उठाकर रख दिया। जब राजा बाबू कमरेसे बाहर जाने लगे, तो उसने पूछा—

"कोई ऑपरेशन किया था क्या ?"

डाक्टर—"और तुमने सुना क्या ? भयंकर ऑपरेशन ! दस इंच लम्बा ! बाईं जाँघका एब्सेस था। अगर तुमने देखा होता, तो गश खा गई होती। बाप रे बाप ! कितना ख़ून ! कितना पस !

कमला—"कहीं घूमने चलियेगा क्या ?"

डाक्टर—"चलो, क्वीन्स गार्डन, विक्टोरिया पार्क, जुबली क्लब, जहाँ मर्ज़ी हो, चलो ; पर बादल आ रहे हैं, कहीं बारिस न होने लगे।

[२]

रात-भर कमला कुछ उद्विग्न-सी रही। दूसरे दिन सवेरा होते ही वह अपना दिल बहलानेके लिए अस्पतालकी तरफ़ निकल गई। वहाँ वह रोज़की तरह एक-एक करके मरीज़ोंको देखती हुई एक ऐसी चारपाईके पास जा पहुँची, जिसपर एक नवयुवक आँखें बन्द किये करवटके बल पड़ा था। उसकी बाईं जाँघमें पट्टियाँ बँधी थीं, और उनमें से ख़ून बह-बहकर नीचेकी चादरको भिगो रहा था। नर्सने बतलाया कि उसका कल शामको ऑपरेशन हुआ था। अभी-अभी ड्रेसिंग हुई है, इसलिए वह थककर सो गया है। उसे जगाना ठीक नहीं। कमलाको याद आ गई ; यह वही रोगी है, जिसके ऑपरेशनका वर्णन राजा बाबूने पहले दिन उससे किया था। वह धीरेसे एक कुर्सी सरकाकर चारपाईके पास बैठ गई। उसने देखा, नवयुवकका दुबला-पतला शरीर असह्य शारीरिक पीड़ाके कारण और भी दुबला हो गया है, गौरवर्ण मुख रक्तके अभावसे बिलकुल पीला पड़ गया है, और सिरके बाल न-जाने कितने दिनोंसे न सँभाले जानेके कारण रूखे हो गये हैं ; परन्तु इतनेपर भी उसके चेहरेपर एक प्रकारका तेज है, उन्नत ललाटपर एक दृढ़ व्यक्तित्वकी छाप है, और बड़ी-बड़ी आँखोंकी शिथिल पलकोंके नीचे एक स्निग्ध, सुन्दर जीवन जाग रहा है। कमलाको कल्पनाके प्रवाहमें बहते देर न लगती थी। उसके मनमें तरह-तरहके प्रश्न उठने लगे—यह कौन है ? कहाँसे आया है ? इसका क्या इतिहास है ? कैसा असाध्य बीमार है ; पर ऐसेमें भी इसकी याद करनेवाला कोई मित्र नहीं, सम्बन्धी नहीं, आत्मीय नहीं ! ओफ़ ! यह संसार कैसा विचित्र है !

कमला इसी उधेड़ बुनमें फँसी हुई थी कि रोगीने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और फिर उन्हें वैसे ही बन्द कर लिया। यह कुर्सीपर बैठी हुई एक सुन्दर स्त्री, यह नर्स, यह कुलियों और बेहरोंकी चहल-पहल—सब उसे एक स्वप्नके समान मालूम हुआ। वह सो गया।

× × ×

कमला अब शामको नित्य नवयुवकके पास बैठती और अस्पतालके रोगियोंसे छुटकारा पानेके बाद जो कुछ समय बचता, उसमें इधर-उधरकी बातों द्वारा उसका मनोरंजन किया करती। नवयुवक अब कुछ-कुछ स्वस्थ हो चला था और वह अपनी जाँघको इच्छानुसार हिला-डुला सकता था। कमलाके आनेपर वह एक तकियेके सहारे उठकर बैठ जाता। उसे यह जानते देर न लगी कि कमला कौन है, और वह इस प्रकार क्यों रोज़ शामको आकर प्रत्येक रोगीकी ख़बर लिया करती है। कमलाको भी यह मालूम हो गया कि नवयुवक एक स्वच्छन्द प्रकृतिका मनुष्य है। विवाह उसने किया नहीं, माता-पिता बचपनमें ही चल बसे।

उसने कालेजकी उच्च शिक्षा प्राप्त की है; परन्तु देशाटनकी तरफ़ अधिक रुचि है, इसलिए अकसर बाहर ही रहता है। इस समय वह काश्मीरसे लौट रहा था कि एकाएक उसकी जाँघमें दर्द शुरू हो गया, और मजबूरन उसे यहाँ उतरना पड़ा।

कमलाने पूछा—"आगेके लिए आपका क्या प्रोग्राम है?"

नवयुवकने कहा—"अगर एक सप्ताह बाद मुझे यहाँसे छुट्टी मिल गई, जैसी कि मुझे आशा है, और मैं चलने-फिरने लायक़ हो गया, तो यहाँसे सीधा उदयपुर जाऊँगा। बरसातमें राजपूतानेकी शोभा देखने लायक़ होती है, और फिर उदयपुर तो अपने प्राकृतिक दृश्योंके लिए मशहूर है। लोग 'इंडियाका वेनिस' कहते हैं।"

कमलाने कहा—"हाँ, ऐतिहासिक दृष्टिसे भी वह एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।"

नवयुवकने कहा—"ठीक है; लेकिन इतिहासका मैं ऐसा भक्त नहीं हूँ। मैं तो प्रकृतिके सौन्दर्यका एक तुच्छ पुजारी हूँ। पहाड़ी बस्तियाँ, नदी किनारेके गाँव, सघन वाटियोंके एकान्त प्रदेश, वनलताओंसे घिरी हुई अँधेरी कुंजें तथा अन्य ऐसे ही रमणीय दृश्य अपने मौन निमन्त्रण द्वारा जैसे मुझे अपने पास बुलाया करते हैं। प्रकृतिके सुन्दर संगीतको सुननेके लिए कवियोंने उसमें जो जीवन देखा है, उसे समझनेके लिए मनुष्यको ऐसी ही जगहोंपर जाना होता है! सदियोंको पेटमें पचाकर जम्हाई लेनेवाले ऐतिहासिक खँडहरों तथा वैभवके भारसे दबे हुए शहरके प्रासादोंमें तो उसकी कल्पनाकी छाया तक नहीं पहुँचती।"

कमलाको ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसके मनोभावोंकी कोई व्याख्या कर रहा हो, उसके हृदयमें दबी हुई अभिलाषा और आकांक्षाओंकी मूर्ति बनाकर उसके सामने खड़ा कर रहा हो। वह बोली—"आपकी रुचि तो बिलकुल कवियों-जैसी है।"

युवकने थोड़ासा मुसकरा दिया। बोला—"आपने ठीक ही समझा है। मेरी उच्छृंखल वृत्तिका, पागलों-जैसी घूमनेकी यह धुनका, जो हमेशा मुझे सवार रहती है, श्रेय इसी एक रुचिको है। कल्पना मेरे लिए एक प्रकारकी कोयल है। जहाँ कहीं मुझे इसकी कूक सुनाई पड़ती है, वहीं मैं अपनी कविताका पिंजड़ा खोलकर बैठ जाता हूँ, और जब तक मेरा मन नहीं भरता, तब तक वहाँसे दूसरी जगह नहीं जाता।"

"ओह! तो आप कवि हैं?"—कमलाने चौंककर पूछा।

"कवि तो नहीं हूँ, कविता करता हूँ। कवि होना तो बहुत बड़ी बात है।"—कविने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

आश्चर्य और कुतूहलसे कमलाका हृदय उमड़ पड़ा, जैसे समुद्रने पूर्णिमाका चाँद देख लिया हो। आग्रह करके वह बोली—"एक कविता तो सुनाइये।"

कविने एक पद्य सुनाया। कैसा मीठा स्वर था, कैसे अनूठे भाव! कमलाका रोम-रोम आनन्दसे झूम उठा। उसने विह्वल होकर कहा—"सुनाइये, दो-चार और सुनाइये।" कवि चुन-चुनकर अपनी रचनाएँ सुनाता जाता था, और कमलाका तृषित हृदय गट-गट करके उसके रसका पान कर रहा था। शाम निकल गई, रात आई। अस्पताल एक बार फिर नर्सों और कुलियोंकी चहल-पहलसे गूँज उठा। अन्तमें हॉलके रोगी एक-एक करके अपने दुखोंकी चादरोंमें समेटकर सो गये; पर कमलाको नींद कहाँ? जब वह कुर्सीपर से उठकर कोठीको जाने लगी, तो उसने हॉलकी घड़ीपर नज़र डाली। ठीक बारह बजे थे।

कई दिन तक यही क्रम जारी रहा। एक सप्ताह न-जाने कब बीत गया, कविको मालूम भी नहीं हुआ। और कमला—कमलाका तो जीवन ही बदल गया। उसमें अब एक नये प्रभातका उदय हुआ। उसके चारों तरफ़ अब तक मानो काले पर्दे पड़े हुए थे, जिन्हें छूकर आनन्दका उज्ज्वल आलोक वापस लौट जाता था। उसे अब अपनी भूल मालूम हुई। निर्दय

परिस्थिति और एकदेशीय वातावरणके हाथमें अपने-आपको सौंपकर उसने अपने लिए एक ऐसे संसारकी सृष्टि कर ली थी, जहाँ उसके विकृत सिद्धान्त काली कल्पनाको जन्म देते थे। इस कल्पनाके रसको पीकर जब तक वह अपना कलेजा खाक नहीं कर लेती थी, तब तक उसे जैसे चैन ही नहीं पड़ता था। कविका संसार, इसके विपरीत, कैसा भव्य, कैसा सुन्दर और कैसा उल्लासपूर्ण था। उसमें कमलाके दीर्घ निःश्वासोंकी जगह शान्तिकी शीतल छाया थी, गहरे आँसुओंकी जगह हलकी हँसी थी और विरागकी निस्तब्धताकी जगह विश्व-प्रेमका एक मन्द राग छिड़ा हुआ था। वह नरक था, यह स्वर्ग है; वह पतझड़ था, यह वसन्त है। दोनों एक ही चित्रके दो पहलू थे; एक दूसरेके कितने समीप, पर अभागी कमलाके लिए कितने दूर!

कमलाकी सिफ़ारिशसे नवयुवकको हॉलके ऊपर अब एक स्वतन्त्र कमरा मिल गया था, और नौकर-चाकर तथा खाने-पीनेकी विशेष सुविधाएँ दे दी गई थीं। कमला अब यहीं बैठकर नवयुवककी कविताएँ सुना करती और उसके बहुत आग्रह करनेपर कभी-कभी दो-चार अपनी भी सुना दिया करती थी। कवि देखता, जिस सौन्दर्यके लिए वह पहाड़ों और जंगलोंकी खाक छानता फिरता था, जिन भावनाओंको अपनानेके लिए वह जगह-जगह डेरा डाले पड़ा रहता था, उन्हें कमलाका नारी-हृदय जन्मसे ही अपने साथ लाया है। कमलाने उन्हें अपने रंगमें इतना अवश्य डुबो लिया है कि उनमें एक काली चमक आ गई है; पर उनमें वह कृत्रिमता नहीं है, जो कभी-कभी उसकी कवितामें आ जाया करती है। कविकी कविता पहाड़ी झरनेको रोककर बनाया गया संगमर्मरका एक सुन्दर तालाब था, तो कमलाकी जंगलोंमें बहती हुई एक सुन्दर नदी।

कविताके इस आदान-प्रदानमें नवयुवकके स्वास्थ्यमें बड़ी शीघ्रतासे परिवर्तन होने लगा। उसका घाव क़रीब-क़रीब भर चुका था, शरीरमें शक्ति आ गई थी, और मुखकी कान्ति उसी प्रकार धीरे-धीरे लौट रही थी, जैसे पहाड़ोंकी चोटियोंपर बरसाती धूप छायाको आगे-आगे खदेड़ती हुई फैल जाती है। एक दिन नवयुवकने कहा—"सुना है, जो कैदी लम्बी क़ैद काटकर छूटते हैं, वे जेलखानेसे निकलते वक्त रोया करते हैं। जब कभी मुझे उस दिनका ध्यान आता है, जब मैं अस्पताल छोड़कर बाहर जाऊँगा, तो तुम्हारी सौम्य मूर्ति अपने दोनों हाथ फैलाकर आगेसे मेरा रास्ता रोक लेती है। मैं सोचता हूँ, अगर तुम न होतीं, तो न-जाने मेरी क्या दशा होती। कमला, इस उपकारके ऋणको क्या इस जन्ममें मैं कभी चुका सकूँगा?"

कमला—"जिसे तुम उपकार समझते हो, उसे मैं अपनी बड़ी भारी भूल समझती हूँ। तुम आज यहाँ हो, तो मेरी आँखोंके सामने हो, कल चले जाओगे, तो मैं किससे बातें करूँगी, किसके पास इस आत्मीयतासे बैठूँगी? तुम्हारा यह दिनों-दिन सुधरता हुआ स्वास्थ्य किसी अनिष्ट ग्रहकी तरह आनेवाली विपत्तिकी मुझे सूचना दे रहा है। मुझे उस दिनकी रह-रहकर याद आती है, जब मैंने पहले-पहल तुम्हारी शिथिल आँखें, मुरझाया हुआ मुख और किसी परित्यक्त मन्दिरके शिखरकी तरह झुका उन्नत मस्तक नीचे चारपाईपर विश्राम करते हुए देखे थे।"

कवि—"अगर तुमने अपने कोमल हाथोंपर उनका भार न लिया होता, तो सम्भव है, वे सदाके लिए उसी चारपाईपर विश्राम ले जाते। इस शरीरको तुमने जीवन-दान दिया है। यह तुम्हारा है, अगर इस अस्पतालमें जीवन-भर इसी प्रकार पड़े रहनेसे तुम्हारे हृदयको अणुमात्र भी सुख मिल सके, तो इस शरीरका इससे अच्छा और कोई उपयोग नहीं हो सकता। ईश्वरने जैसा तुम्हें सुन्दर रूप दिया है, तुम्हारे हृदयको वैसी ही सुन्दर दया और प्रेमकी भावनाएँ भी दी हैं। प्रकृतिके सुन्दर और सजीव दृश्योंपर वर्षों मँड़राकर भी जिस शहदके छत्तेको मैं नहीं भर

पाया, उसे तुम्हारे स्निग्ध-गम्भीर नेत्रोंके विभ्रमने एक बार ही में रससे पूर्ण कर दिया। कविकी सर्वोच्च कल्पना, कल्पनाका मधुरतम सौन्दर्य और सौन्दर्यका चरम आकर्षण तुममें आकर समाप्त हो जाता है। तुम विश्वकी अखंड विभूति, प्रकृतिका एकत्रित सौन्दर्य और जीवनकी मूर्तिमान साध हो। तुम्हारे करुणामय चरणोंका आश्रय पाकर ऐसा कौन अभागा है, जो इधर-उधर भटकना चाहेगा, लेकिन—"

कमला—"लेकिन क्या ?"

कवि—"यही कि मनुष्य परिस्थितियोंका पुतला है, और इन परिस्थितियोंके निर्माणमें समाजके निष्ठुर नियमोंका बड़ा भारी हाथ है। जो बात देखने और सुननेमें भली मालूम होती है, वही वास्तविकताके चक्रमें घूमकर अत्यन्त विकृत हो जाती है। हमारे-तुम्हारे स्वप्न कल्पना-जगतके कोमल जीव हैं। इस संसारके कठोर सत्यको स्पर्श करते ही उनके अंग झुलस जायँगे। फिर ऐसे स्वप्नोंको पालकर हृदयको दुखी बनानेसे क्या लाभ ?"

कमला—"तुम्हें उनमें कुछ लाभ न दिखलाई पड़े, यह दूसरी बात है ; पर मैं तो उन्हींके सहारे जीती हूँ। अब तक मैं संसारमें अकेली थी। रेगिस्तानमें भूली हुई कोयलकी तरह मैं अपने सब स्वर भूलकर केवल एक करुण चीत्कारसे अपने हृदयके शून्य आकाशको प्रतिध्वनित करनेकी चेष्टा किया करती थी। यह संसार मेरे लिए एक सुव्यवस्थित फैक्टरीके समान था, जहाँ मनुष्य लोहेके कल-पुर्ज़ोंकी तरह अलग-अलग अपने दायरेमें घूमा करते हैं। वे आपसमें दिन-रात मिलते हैं, खाते हैं, पीते हैं, उठते हैं, बैठते हैं और जन्म-भर साथ रहते हैं ; लेकिन एक-दूसरेको समझ नहीं पाते, उसके दर्दको पहचान नहीं सकते, जैसे मेशीनोंके पुर्ज़े आपसमें संघर्ष करते हुए भी आग पैदा नहीं कर सकते। मेरा यह वैभव और सुख-सौन्दर्यका उद्यान अब तक एक समाधिपर लहलहा रहा था, जहाँ मेरी संचित अभिलाषाएँ चिरकालसे निराशाके अन्धकारमें सोई हुई पड़ी थीं। तुम उन्हें जगानेके लिए न-जाने कहाँसे आ गये, और अब जब वे किसी चंड देवताकी भाँति मुझसे यह कह रही हैं—'वर माँगो, नहीं तो मैं भस्म करता हूँ', तो तुम कहते हो, यह सब स्वप्न है, इसे पालनेसे क्या फ़ायदा।" कमलाकी आँखें डबडबा आईं। उसने कविके हाथको अपने हाथोंमें रखकर कातर स्वरसे कहा—"सच बतलाओ, क्या यह सम्भव नहीं है कि हम-तुम दोनों एक पक्षीके जोड़ेकी तरह इस पृथिवीपर साथ-साथ घूमें—उन्हीं छायाच्छादित कुंजोंमें, उन्हीं नदी-प्रदेशोंमें, उन्हीं वाटियोंमें, जिनमें अब तक तुम विचरण करते रहे हो ; तुम अपने स्वरमें वसन्तकी समस्त मादकताको भरकर एक कविता गाओ, और मैं सन्ध्याके समय इन्हीं कुंजोंमें तुम्हारी गोदीमें सिर रखकर उन्हें सुनूँ, जब तक कि यह संसार और हम दोनों मिलकर एकाकार न हो जायँ और मैं आनन्दमें बेसुध होकर तुम्हारे...."

लज्जाने कमलाकी ज़बान पकड़ ली ; पर उसके हाथको न पकड़ सकी। प्रेमके आवेशमें उसने कविका हाथ ऊपरको उठाया और पागलोंकी तरह उसे चूम लिया। नवयुवकके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई। वह कुछ कहनेको मुँह खोलना ही चाहता था कि कमरेके किवाड़ एकाएक खुले, और राजा बाबूने अन्दर प्रवेश किया।

कमलाके शरीरमें-से जैसे प्राण निकल गये। कविका हाथ उसके हाथमें ही रखा रह गया। राजा बाबूने यह देखा, तो बोले—"क्यों, इसकी हालत कैसी है ? टेम्परेचर मालूम होता है क्या ?"

कमलाको साँस लेनेकी जगह मिली। सँभलकर दबे स्वरमें बोली—"हाँ, इनकी तबीयत आज कुछ ठीक नहीं है, ज़रा देखिये तो।"

डाक्टर साहबने देखा, नाड़ीमें नवयुवकका क्षीण हृदय बड़े ज़ोरसे धक्-धक् कर रहा था और शरीर वास्तवमें कुछ गरम था। उन्होंने बरामदेमें से गुज़रती हुई एक नर्सको इशारेसे बुलाया, और उससे नवयुवकके

टेम्परेचर लेनेकी खास हिदायत करके कमरेके बाहर निकल गये।

× × ×

दूसरे दिन नर्ससे कमलाको मालूम हुआ कि नवयुवकको हर वक्त टेम्परेचर रहता है, और उसका पैर दुबारा खोला जायगा। डाक्टर साहब कहते थे कि किसी जगह पस रह गया है।

कविने फाँसीकी सज़ाकी तरह यह समाचार सुना। ईश्वरीय विधानमें वह क्या दखल दे सकता था। उसने बग़ैर कुछ कहे-सुने शान्तिपूर्वक अपने-आपको परिस्थितिके हाथमें सौंप दिया।

दो दिन तक डाक्टर साहबने बुखारका उतार-चढ़ाव और देखा, और अन्तमें ऑपरेशन कर दिया। अबकी बार ऑपरेशनके बाद रोगीकी हालत ज्यादा नाज़ुक हो गई थी—शरीरमें से जैसे सत्व निकल गया था, मुखपर एक खास तरहकी विकृति आ गई थी और आवाज़के बन्द एकदम ढीले पड़ गये थे। कमलाने यह देखा और रो पड़ी।

उसने नवयुवककी शुश्रूषामें रात-दिन एक कर दिया, अस्पतालमें दवाइयोंकी नदी बहा दी; परन्तु हालत दिनों-दिन गिरती चली गई। एक दिन शामको जब सूर्यकी किरणें अस्पतालकी खिड़कीके एक काँचमें होकर अन्धकारसे लड़नेका आखिरी प्रयत्न कर रही थीं, कवि अपनी संज्ञाहीन आँखोंको कमलाके मुखपर लगाकर इस संसारसे चल बसा।

कमलाने अपने प्रेमकी अर्थीको अपनी आँखोंके आगेसे जाता हुआ देखा और जी भरकर रो भी न सकी। उसके हृदयका शोक बन्द चिमनीके धुएँकी तरह अन्दर ही घुटकर रह गया।

[३]

समय बड़ा प्रबल है। जिनके लिए हम यह सोचते हैं कि हम उनके बिना मर जायँगे, हमारा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जायगा, वह इस संसारसे उठ जाते हैं, और हम जीते रहते हैं! हम पहलेकी तरह खाते-पीते हैं, राग-रंगोंमें शरीक होते हैं और कुछ दिन बाद सब कुछ भूल जाते हैं। कमला भी भूल गई। कुछ भूल गई, कुछ उसने कोशिश करके भुला दिया। अब उसके दो लड़के थे, कई लड़कियाँ थीं। लड़के कैम्ब्रिज-यूनिवर्सिटीमें पढ़ते थे, और लड़कियोंकी शादी हो गई थी। यह उक्त घटनाके बीस बरस बादकी बात है।

डाक्टर राजा साहब अब सपरिवार लन्दनमें रहते थे। जब तक वह भारतमें रहे, उन्होंने खूब यश और धन उपार्जन किया; परन्तु भारत-जैसा देश उनकी बढ़ी हुई आकांक्षाओंके लिए बहुत ही संकीर्ण था, इसलिए अवसर पाते ही वह विलायत चले गये और वहीं जाकर बस गये। वहाँ रहकर उन्होंने क्या किया, अपनी महत्वपूर्ण खोजों द्वारा वहाँके चिकित्सक समाजमें कैसी हलचल मचा दी, यह हमारी कहानीका विषय नहीं है। हम यहाँ, अन्तमें, सिर्फ़ एक ऐसी घटनाका उल्लेख करेंगे, जिससे पूर्व उनकी चिरसंगिनी कमला भी डाक्टर साहबके चरित्रके उस पहलूसे बिलकुल अनभिज्ञ थी, जिसपर कि वह प्रकाश डालती है।

× × ×

किंग्स स्ट्रीटके एक भव्य भवनमें डाक्टर साहब एक दिन कमलाके साथ बैठकर चाय पी रहे थे। अवस्थाके खिचावके कारण उनके सिरके बाल प्रायः सफ़ेद हो चले थे और गर्दनका कसाव कुछ शिथिल होकर बेमालूम सिकुड़न पैदा करने जा रहा था। उनकी बड़ी-बड़ी आँखोंके नीचे कुछ दूर तक श्यामता फैली हुई थी और भरे हुए कपोलोंपर गहरी आड़ी रेखाएँ प्रौढ़ावस्थाके जमे हुए विचार और कसे गये अनुभवोंकी सूचना दे रही थीं। कमला टेबिलके दूसरे सिरेपर बैठी थी। लन्दनमें वर्षों रहकर भी अपनी सभ्यताका प्रेम उसका ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। उसके शरीरपर एक रेशमी साड़ी थी और माथेकी एक

लट बालोंका साथ छोड़कर भौंहके पास पड़ी हुई थी। यौवनके विचारोंका वक्र प्रवाह समयके पथरीले पथपर बहुत दिन तक बहकर सरल हो गया था और हृदय वैयक्तिक सुख-दुखोंसे उदासीन होकर अपनी सन्तानको सुखी देखनेमें अधिक आनन्द मानता था। कविता वह नहीं करती थी ; लेकिन कल्पनाका वृक्ष अब भी वैसा ही हरा बना हुआ था।

राजा बाबू चम्मचसे चायमें चीनी मिलाते जाते थे और कमलासे बातें करते जाते थे। सामने ही टेबिलपर सबेरेका ताज़ा अख़बार पड़ा था। चायसे हटकर उनकी निग़ाह अख़बारके एक शीर्षकपर गई, तो वह हँस पड़े। कमलाने देखा, मुख-पृष्ठपर मोटे-मोटे टाइपमें छपा हुआ था—

"Love-affair in Hospital.
Patient commits suicide.
Sensational disclousures of a nurse."

अर्थात्—"अस्पतालमें प्रेम-चर्चा
रोगीने आत्म-हत्या कर ली
नर्सने भेद खोल दिया।"

राजा बाबू बोले—"देखा, लोग कैसे ज़बरदस्त हैं। अस्पतालोंमें भी प्रेम करना नहीं छोड़ते।"

कमलाने अपनी मुद्राको ज़रा गम्भीर बनाते हुए उत्तर दिया—"प्रेम देश और कालको नहीं देखता। उसकी पहुँच सर्वत्र और सब समयमें निरबाध है। यही उसकी विशेषता है।"

राजा बाबूने बहुत दिन बाद आज अपनी बातमें परिहासका भरपूर पुट देते हुए कहा—"कमला, तुमने भी किसीसे प्रेम किया या नहीं ?"

कमला और भी गम्भीर हो गई। बीस बरस पहलेके दृश्य आँखोंके आगे सजीव होकर नाचने लगे। उन्हींमें से मानो निकलकर उसने उत्तर दिया—"जो प्रेम नहीं करता, वह मनुष्य नहीं है।"

राजा बाबूको इस वाक्यमें कुछ कटुताका आभास मिला, तो कहने लगे—"मैंने तो मज़ाकमें कहा था। तुम नाराज़ हो गईं।"

कमलाने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—"नाराज़गीकी बात नहीं है। तुम तो मज़ाक कर रहे हो, लेकिन मैं सच कह रही हूँ।"

डाक्टर सा०—"क्या कह रही हो ?"

कमला—"यही कि मैंने प्रेम किया था। लोग कहते हैं, पापोंका इक़बाल कर देनेसे उनका फल नहीं भोगना पड़ता। यही सोचकर इतने दिनों तक यह बात छिपाकर भी आज मैं इसे खोलने बैठी हूँ। मैंने प्रेम किया था।"

राजा बाबू—"किससे ?"

कमला—"एक नवयुवकसे। यह अपने अस्पतालकी घटना है। तुम तो भूल गये होगे। याद है, एक दुबला-पतला लड़का, जो हॉलके ऊपर कमरेमें कुछ दिन रखा गया था ? उसके पैरका तुमने दो बार ऑपरेशन किया था।"

डाक्टर—"वही न जो कवि था ?"

कमला—"हाँ, हाँ, वही ! तुम्हें कैसे मालूम ?"

राजा बाबूने कमलाके चेहरेपर से अपनी आँखें समेटकर चायकी प्यालीमें डुबो दीं और बोले—"मैंने ही तो दुबारा आपरेशन करके उसे मार डाला था !"

लोग कहते हैं, जज जिस क़लमसे फाँसीकी सजा लिखते हैं, उसे वहीं तोड़ डालते हैं। अगर डाक्टर राजामें साहस होता, तो वह इन शब्दोंको कहनेके बाद अपनी जुबान काट डालते।
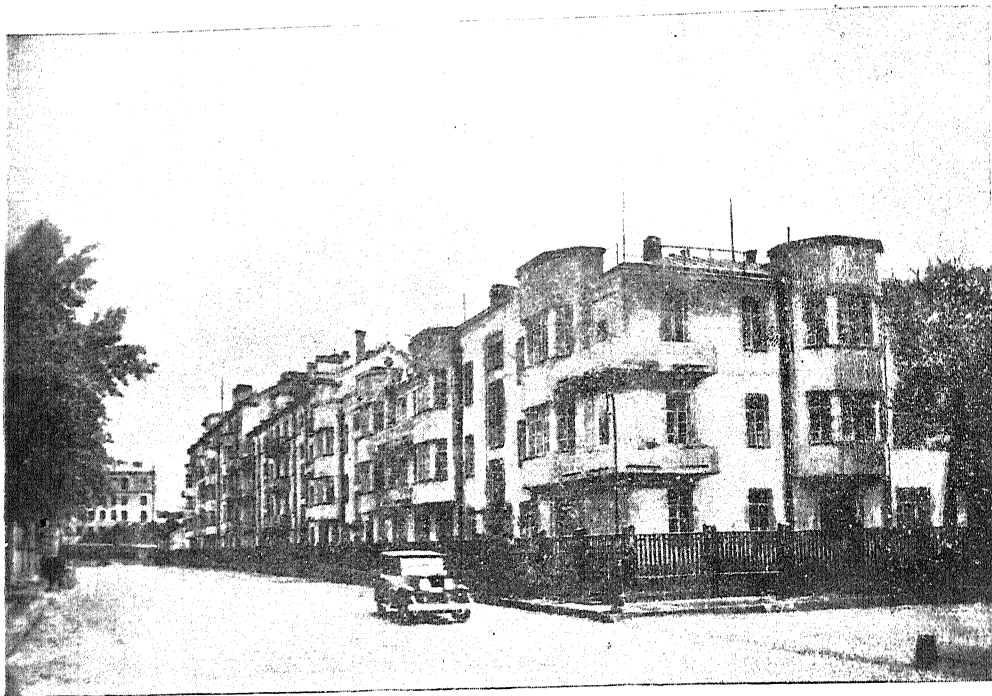
आधुनिक लेनिनग्रेड

साम्यवादी देशमें

श्री नित्यनारायण बनर्जी

साल-भर पहलेकी बात है ।

फिनलैंडकी राजधानी हेलसिंगफोर्ससे चौदह घंटेकी लम्बी यात्राके बाद एक दिन सवेरे मैं ज़ारशाहीके ज़मानेके सेंट पीटर्सबर्ग परन्तु मौजूदा लेनिनग्रेडके स्टेशनपर रेलसे उतरा ।

जनवरीका महीना था । सफेद-सफेद परों-जैसी बर्फ अविराम गतिसे गिर रही थी । सर्दीने धरतीतलसे हरियालीका नाम मिटाकर रक्तहीन-सा कर दिया था, और उसपर सफेद बर्फकी चादर ओढ़ा दी थी । मैदान और खेत सफेद थे, मकानों और झोंपड़ोंकी छतें सफेद थीं, और सदा हरे रहनेवाले पेड़ सफेद और बर्फके बोझसे झुके हुए थे । ओह ! उस दिन सवेरे कितनी भयंकर सर्दी थी ; ऐसी सर्दी थी, जिससे मेरी बोटी-बोटी काँप रही थी । वह सर्दी मुझे सारी ज़िन्दगी न भूलेगी । सेन्टीग्रेड थर्मामीटरका पारा शून्यसे भी २० डिग्री नीचे था !

दो ही चार मिनटमें समूची ट्रेन ख़ाली हो गई । मेरे डिब्बेमें एक सज्जन अंगरेज़ी बोलनेवाले थे । मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे मुझे यात्रा-विभागके एजेन्टको खोज निकालनेमें मदद दें । रूसी सरकारने एक यात्रा-विभाग स्थापित कर रखा है, जो विदेशी यात्रियोंको सस्तेमें रूसकी यात्रा करनेमें हर प्रकारकी सहायता देता है । मैंने भी इसी यात्रा-विभागके प्रबन्धमें रूसकी यात्रा की थी । उन सज्जनने अपने कुलीसे मेरा असबाब भी उठवाया और यात्रा-विभागके एजेन्टकी तलाश की । कोपेनहेगनमें, जहाँसे मैंने रूस-यात्राके लिए टिकट लिया था, इस विभागके मैनेजरने मुझसे कहा था कि उनका एजेन्ट मुझे लेनिनग्रेडमें उतरते ही स्टेशनपर मिलेगा ।

हम लोग पाँच मिनट तक इन्तज़ार करते रहे। लेकिन मुझ-जैसे गर्म देशके रहनेवालेके लिए ये पाँच मिनट भी ख़ून जमा देनेके लिए काफ़ी थे। मेरे हाथ सर्दीके मारे दर्द कर रहे थे ; पैरके पंजे ठिठुर गये थे ; कान लाल पड़ गये थे ; रूमाल भीग गया था ; नथुने सूज गये थे—ओह, बड़ी भयंकर सर्दी थी ; लेकिन करता क्या ? एकदम असहाय था। मैं यहाँकी भाषाका एक शब्द भी न समझता था ; लेकिन यह कोई बड़ी अड़चनकी बात न थी। इसके बजाय मेरे दिलमें यह बात उठ रही थी कि यह एक ऐसा देश है, जिसके क़ानून-कायदे दुनिया-भरसे निराले हैं। जहाँ अमीर लोग अभागे और समाजके लिए ख़तरा समझे जाते हैं। इसी बातके डरसे मैं न तो कुली ही बुला सका और न कोई टैक्सी ही किराये कर सका। कौन जानता है कि यहाँ कुलीको पैसे किस तरह देने चाहिए। अगर मैं सीधे कुलीके हाथपर उसकी मज़दूरी रख दूँ, तो ऐसा न हो कि यहाँकी साम्यवादी सरकार मुझे मुजरिम करार देकर पकड़ ले ; लेकिन इस भयंकर सर्दीका क्या किया जाय ? मैं प्लेटफार्मपर इधरसे उधर टहलने लगा। मेरा साथी यात्रा-एजेन्टकी तलाशमें चला गया। इधरसे उधर टहलनेमें बदनमें कुछ-कुछ गर्मी आती थी। कोई नया विदेशी, जो सरकारी प्रबन्धमें इस देशमें यात्राके लिए आया हो, उसका ऐसा उपेक्षापूर्ण स्वागत ! मैं इस देशको उसकी इस बदइन्तज़ामीके लिए मन-ही-मन कोस रहा था।

एक नवयुवती मेरे सामने आ खड़ी हुई, और बहुत अच्छी अंगरेज़ीमें बोली—"क्या आप कोपेनहेगनसे आ रहे हैं ?"

"जी हाँ,"—मैंने कहा—"क्या आप यात्राकी एजेन्ट हैं ?"
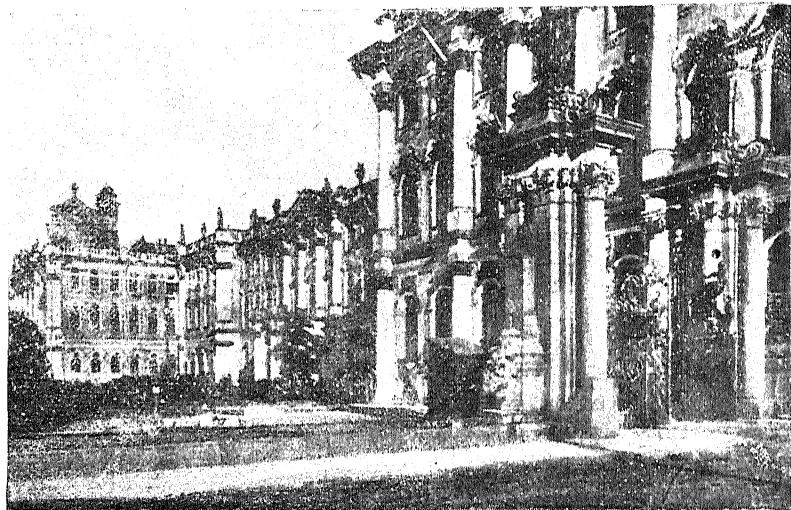
क्रान्तिका अजायबघर (यह पहले ज़ारका शरद् प्रासाद था)

"हाँ,"—कहकर उसने देरीके लिए क्षमा माँगे बिना ही एक कुलीपर मेरा असबाब लदवाया और स्टेशनके बाहर खड़ी हुई मोटरपर जा रखा। उसे देखकर मुझे कुछ तसल्ली हुई। मैंने सोचा कि अब चिन्ता नहीं है। हम दोनों मोटरपर जा बैठे। युवतीने कुलीको पैसेकी जगह एक पुर्ज़ी थमा दी। मोटर चलने लगी, और हम दोनों ऐसे बातें करने लगे, मानो वर्षोंके परिचित हों। हम दोनोंको बातें करते और हँसते देखकर कोई भी आसानीसे यह यक़ीन न करता कि हमारी जान-पहचान चन्द मिनटसे ज्यादाकी नहीं है। मैंने पूँजीवादी देशोंके अख़बारों आदिको पढ़-पढ़कर अपने मनमें रूसियोंके विषयमें यह धारणा बना रखी थी कि वे रूखे, कठोर और कभी न हँसनेवाले आदमी होंगे, जिनमें न तो हास्यरसका माद्दा ही होगा और न कलाओंका ज्ञान ; लेकिन थोड़ीसी बातचीतसे ही उस युवतीने मेरे मनसे रूसियोंका वह

चित्र मिटाकर साफ कर दिया। मुझे बोध होने लगा कि रूसी भी ठीक वैसे ही आदमी हैं, जैसे मैंने यूरोपके अन्य सभ्य देशोंमें देखे हैं।

मैंने कहा—"मुझे जान पड़ता है कि स्टेशनोंपर कुलियोंकी संख्या काफ़ी नहीं है।"

"हाँ,"—उसने मुसकराकर जवाब दिया—"क्योंकि आजकल हर आदमी अपना असबाब खुद ही उठा ले जाता है। अब वे अमीरीकी डींग हाँकनेवाले 'बुर्जुआ' हैं ही नहीं, जिन्हें नन्हासा अटैची-केस ले जानेके लिए भी कुलीकी ज़रूरत हो।"

"फिर भी भारी-भारी बंडलोंको उठानेके लिए कुलियोंकी ज़रूरत होती ही है।"—मैंने कहा।

"हाँ,"—वह बोली—"इसीलिए तो थोड़ेसे कुली स्टेशनपर रख छोड़े हैं। आप जानते हैं कि हमें कारख़ानों और खेतोंके लिए बहुत मज़दूरोंकी ज़रूरत है, इसलिए हम लोग इस तरहके कामोंके लिए बहुत थोड़े आदमी निकाल सकते हैं।"

हमारी मोटर लेनिनग्रेडकी सड़कोंसे गुज़र रही थी। मैंने देखा कि सड़कोंपर बहुतसे अधबने मकान खड़े हैं। मैंने इसका कारण पूछा तो उसने बताया—"बात यह है कि सर्दीके दिनोंमें खुली हवामें इस तरहके काम करना बहुत मुश्किल है, इसलिए मकान बनानेवाले मज़दूर कारख़ानों और खेतोंपर लगा दिये गये हैं। गर्मीमें वे लोग आकर इन अधबने मकानोंको पूरा करेंगे।"

मैंने कुछ ठहरकर कहा—"गर्मीमें आपके खेतोंपर पूरे ज़ोरके साथ काम होता है, उन्हीं दिनोंमें आप लोगोंको मकान बनानेके काममें मज़दूरोंकी ज़रूरत होती है, और यह भी निश्चित है कि गर्मियोंमें आपके कारख़ाने भी चलते ही होंगे, सोनेके लिए न चले जाते होंगे। ऐसी दशामें अगर इस समय मज़दूर कारख़ानोंमें लगा दिये गये हैं और गर्मियोंमें फिर बुला लिये जायँगे, तो उन दिनोंमें या तो आपके कारख़ानोंमें मज़दूरोंकी कमी हो जायगी, जिससे उनके काममें हर्ज़ होगा, अथवा वास्तवमें आप अपने कारख़ानोंमें तमाम मज़दूरोंको नहीं लगा सकतीं।"

"नहीं, नहीं,"—उसने उत्तेजनासे कहा—"हमें मज़दूरोंकी सख़्त ज़रूरत है। हमारे यहाँ काफ़ी मज़दूर नहीं हैं।"

"बेशक, इस समय आपके देशको बहुत बड़ा काम करना है। आप एक नये देशको जन्म दे रही हैं। आप एक कृषि-प्रधान देशको औद्योगिक देश बना रही हैं। आपको बेकार पड़ी हुई ज़मीनोंको खोदना है, खानें निकालना है, नये इंजन लगाना है, सड़कें और इमारतें बनाना है, इसलिए आप इतने मज़दूरोंको काम दे सकती हैं; लेकिन एक दिन ऐसा आवेगा ही, जब ये उन्नतिके तमाम काम पूरे हो जायँगे। नई तामीरें ख़त्म हो जायँगी। उस समय अमेरिकाकी भाँति आपके मालकी उपज खपतसे ज्यादा बढ़ जायगी, तब आप क्या करेंगी? तब आप इतने मज़दूरोंको, जो आजकल काममें लगे हुए हैं, किस काममें लगायेंगी? उस समय आपके देशमें भी बेकारीकी समस्या वैसी ही गम्भीर हो जायगी, जैसी आजकल पूँजीवादी देशोंमें है।"

उसने अपनी स्वाभाविक मुसकराहटसे जवाब दिया—"जी नहीं, हर्गिज़ नहीं। यह रूस है, अमेरिका नहीं है। आजकल दुनियामें जो बेकारी है, वह पूँजीवादियोंके दोहन (exploitation) की बदौलत है। हमारे यहाँ दोहनकारियोंके लिए जगह ही नहीं है—यहाँ कोई शख़्स दूसरेकी मेहनतका फ़ायदा उठानेके लिए उत्सुक नहीं है। जब हम देखेंगे कि हम लोग मज़दूरोंसे सात घंटा प्रतिदिनके हिसाबसे काम लेकर इतनी उपज करने लगे हैं, जो खपतसे ज्यादा है, तो हम लोग मज़दूरोंको कम करनेके बजाय मज़दूरीके घंटे घटा देंगे। बस, उपज अपने-आप घट जायगी। बेकारी पैदा ही न होगी। पहले हम लोग मज़दूरोंसे आठ घंटे रोज़ काम लेते थे। अभी ही हमने उसे घटाकर सात घंटे कर दिया है। ज़रूरत

होनेपर हम उसे घटाकर छै, पाँच या चार घंटे कर देंगे।''

हम लोग एक तंग फाटकसे होकर निकले। उसने बताया कि यह फाटक प्राचीनकालके असली शहरका प्रधान द्वार था। इस फाटकके पार ही ज़ारके समयमें धनी लोग रहा करते थे। यहाँके लोग पूँजीवादी देशोंकी तुलनामें मुझे ग़रीब जान पड़े। केवल इस 'नये देश'को छोड़कर यूरोपके अन्य तमाम देशोंमें लोगोंके साफ़-सुथरे कपड़ों, चुस्त-चालाक शक्लों, चमकती गाड़ियों और सड़कोंपर शीशेकी खिड़कियोंवाली दूकानोंकी क़तारें देखनेसे ही वहाँके लोगोंके रहन-सहनके स्टैन्डर्डका पता लग जाता है; मगर रूस इनसे भिन्न जान पड़ा—बहुत भिन्न।

ट्राम गाड़ियाँ—दो-दो, तीन-तीन और कभी-कभी चार-चार गाड़ियाँ एक साथ नत्थी की हुई—सड़कोंपर दौड़ रही थीं। बहुतसे मुसाफ़िर फुट बोर्डोंपर डंडा पकड़े हुए लटकते दिखाई देते थे। मोटरें भूले-भटके ही दीख पड़ती थीं। सड़कोंपर ख़ूब सजी-बजी एक भी दूकान मुझे नज़र न पड़ी। बर्फ़के जमकर कड़ी पड़ जानेके कारण सड़कें फिसलनी हो रही थीं।

हमारी मोटर भी आख़िरकार मंज़िले-मक़सूद यानी 'अक्टूबर होटल' पर पहुँच गई। होटलकी शानदार महलों सरीखी इमारत है। उसमें नये ढंगका घूमनेवाला काँचका दरवाज़ा, बढ़िया सीढ़ियाँ और बड़े सजे-सजाये कमरे हैं। मैं होटलके सेक्रेटरीके पास ले जाया गया। वह एक पढ़ा-लिखा नौजवान था। एक सुशिक्षित रूसी नवयुवकसे बातचीत करनेका मौक़ा छोड़ना मैंने मुनासिब न समझा। मैंने उससे देशकी शासन-प्रणालीके बारेमें पूछा, तो मालूम हुआ कि हर शख़्सको उसकी योग्यताके अनुसार गवर्नमेंटसे वेतन मिलता है। इंजीनियरकी तनख़्वाह कारख़ानेके मामूली मज़दूरसे ज़्यादा है। होटलका मैनेजर होटलके ख़ानसामाकी बनिस्बत अधिक पाता है। इस प्रकार यह बात तो पूँजीवादी देशों और साम्यवादी रूसमें समान ही है, रूसमें फ़र्क़ इतना है कि यहाँ किसी व्यक्तिको अपना निजी व्यापार करने या अपनी निजी सम्पत्ति रखनेका अधिकार नहीं है। यह बात मेरी समझमें ठीक-ठीक न आई, इसलिए मैंने कहा—''साम्यवादी समाजसे विभिन्न

साम्यवादी रूसका पिता निकोलाय लेनिन

ऊँच-नीच श्रेणियाँ मिटा देनेकी बात कहते हैं; मगर जब आपके यहाँ विभिन्न लोगोंके वेतनोंमें अन्तर मौजूद है, तब आप श्रेणियाँ कैसे मिटा सकते हैं? यह हो सकता है कि आपने ज़ारशाहीके ज़मानेकी श्रेणियोंको मिटा डाला हो; पर यह निश्चय है कि आप नई श्रेणियाँ पैदा कर रहे हैं।''

वह बोला—''आपका मतलब यह है कि कुछ

लोग अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक पैसा पाते हैं, लेकिन अधिक पैसा पानेसे श्रेणियाँ कैसे पैदा होंगी ?''

''ठीक उसी तरह जैसे भूतकालमें होती रही हैं।'' मैंने कहा--''यूरोपमें धार्मिक भेद या जात-पाँत नहीं है, फिर भी, आप भलीभाँति जानते हैं कि, यूरोपियन समाजोंमें विभिन्न श्रेणियाँ मौजूद हैं, जिन्हें धनने उत्पन्न किया है।''

उसने आँखें लाल करके उत्तर दिया—''जनाबमन, रूसमें धनकी क़ीमत जाती रही, जैसा अन्य किसी देशमें नहीं हुआ। मान लीजिए कि कोई आदमी औरोंकी बनिस्बत ज़्यादा पैसा कमाता और जमा करता है ; लेकिन वह उस पैसेका करेगा क्या ? वह उससे अपना कोई रोज़गार नहीं चला सकता ; वह उससे अपना निजी मकान नहीं ख़रीद सकता ; वह अपनी निजी मोटर ख़रीदकर सैर-सपाटा नहीं कर सकता ; वह उसे अपने बेटोंको आरामसे बेकार बैठकर खानेके लिए नहीं छोड़ जा सकता। वह पैसेसे केवल इतना ही कर सकता है कि हफ्तेमें तीन-चार बार सिनेमा-थियेटर देख ले, एक जोड़ेके बजाय दो या तीन जोड़े जूते खरीद ले अथवा तीन-चार अच्छी कुर्सियाँ या दो मेज़ें ख़रीद ले। बस, अल्ला-अल्ला-ख़ैरसल्ला। फिर इधर वह मरा, उधर सरकारने उसकी तमाम ज़रूरतसे ज़्यादा चीज़ें जब्त कर लीं। ऐसी हालतमें फिर श्रेणियाँ पैदा कैसे होंगी।''

''लेकिन आप इससे इनकार नहीं कर सकते कि इस समय भी आपके यहाँ दो प्रत्यक्ष अलग-अलग श्रेणियाँ हैं। एक तो आपकी और इनकी (मैंने एजेन्ट युवतीकी ओर इशारा किया), जिनके पास साफ़-सुथरे कपड़े, उमदा जूते, सम्बूरी कोट और चमक-दमक है, दूसरी जनसाधारणकी, जिन्हें आप 'प्रोलेटेरियट' कहते हैं, जिनके पैवन्द लगे हुए मैले कपड़े हैं, जो भेड़की ख़ालोंका ओवरकोट पहनते हैं, जिनके जूते फटे हैं, जिनके चेहरे कुछ साँवले हैं और जिनकी मज़बूत कलाइयोंपर उभरी हुई रगें दीख पड़ती हैं।''

इसपर वह जोशमें आ गया और चिल्लाकर बोला—''हमीं लोग तो 'प्रोलेटेरियट' हैं।''

मैं हँस पड़ा। मैंने कहा—''मगर मैं तो नहीं मानता। मैं तो यही जानता हूँ कि आप लोग उच्च श्रेणीके हैं, और आपके यहाँ भी श्रेणी भेद है।''

अब वह मान गया और बोला—''हाँ, लेकिन आप जानते हैं कि हम लोग अभी तक साम्यवादी (सोशलिस्ट) हैं, समष्टिवादी (कम्यूनिस्ट) नहीं। जब हमारे यहाँ समष्टिवाद होगा, तब नक़दीका देन-लेन उठा दिया जायगा, तब किसीको भी नक़द पैसा न मिलेगा। हरएकको काम करना पड़ेगा। हरएक समाजको जो कुछ प्रदान कर सकता होगा, करेगा। बदलेमें उसे जो कुछ ज़रूरत होगी, सरकार देगी। लेकिन उसे ज़रूरतसे न कम मिलेगा और न ज्यादा। साम्यवाद तो समष्टिवादकी एक सीढ़ीमात्र है, वह हमारा साधन है, लक्ष्य नहीं। हमें लोगोंको समझाना है। उनके मस्तिष्कको शिक्षा देकर इस नये विचारको स्वीकृत कराना है, इसलिए हमारी तरक्क़ीकी रफ्तारका धीमा होना स्वाभाविक ही है। उस ज़मानेमें हम लोगोंमें कोई श्रेणी न होगी।''

''वह ज़माना कब तक आयेगा ?''

''पन्द्रह वर्ष, तीस वर्ष, या पचास वर्ष बाद—कब आयेगा, कोई नहीं कह सकता ; लेकिन एक दिन आयेगा ज़रूर।''—यह कहते-कहते उसकी आँखें चमक उठीं और उसके चेहरेपर दृढ़ विश्वासकी रेखाएँ अंकित हो गईं।

मैंने पूछा—''क्या आप समझते हैं कि हरएककी आवश्यकताओंको पूरा करना सम्भव है ? मान लीजिए, मैं रोज़ शामको मोटरमें घूमना चाहता हूँ। क्या सरकार इसकी इजाज़त देगी ?''

''बेशक, अगर सरकारके पास इतनी मोटरें होंगी, जिन्हें वह सबको दे सके—अथवा सरकार यह करेगी कि तीन-तीन चार-चार परिवारोंको एक-एक मोटर दे देगी, या बारी-बारीसे एक-एक दिन एक-एक व्यक्तिको

मोटर दी जायगी। मतलब यह कि समाजके प्रत्येक सदस्यको प्रत्येक चीज़ समानरूपसे मिलेगी।''

''अच्छा, जब मैं यह देखूँगा कि मेरी सारी ज़रूरतें सरकार पूरी कर देती है, तब मैं मेहनत क्यों करने लगा?''—मैंने पूछा।

''आपसे जबरदस्ती मेहनत कराई जायगी। जब तक आप काम न करेंगे, सरकार आपको कुछ न देगी! आपको भूखों मरना पड़ेगा।''—उसने कहा।

''अगर मुझसे जबरदस्ती काम कराया जायगा।'' मैंने कहा—''तो यह स्वाभाविक है कि मैं अपनी पूरी शक्ति और पूरा मन लगाकर काम न करूँगा। फल यह होगा कि काम ख़राब होगा!''

''जी हाँ, यह आपकी पूँजीवदी मनोवृत्तिका नतीजा है। हम लोग एक नई पौध पैदा कर रहे हैं, जिसे परिश्रमसे प्रेम होगा, जो काहिल आदमीको देशद्रोही और समाजवाती समझेगी। इस नई पौधको सिखाया जा रहा है कि समाजके लिए मेहनत करना ही उसका मज़हब है।''

बीचमें ही मेरी पथ-प्रदर्शिकाने टोककर कहा—''मि० बनर्जी, अब आप भोजनालयमें चलिये और जल्दी तैयार हो जाइये, ताकि मैं आपको जितनी जल्दी हो, घुमानेके लिए ले चलूँ।''

सेक्रेटरीने मुझे भोजनके कई टिकट दिये, और कहा—''इन्हें हिफाज़तसे रखिये, अगर एक भी टिकट खो गया, तो एक वक्तके खानेसे हाथ धोना पड़ेगा।'' मैं पथ-प्रदर्शिकाके साथ एक कमरेमें गया। वहाँ मेरी ही तरहके कई यात्री और थे। वे उसी दिन लेनिनग्रेडसे जा रहे थे। उनमें से तीन—जिनमें एक दुबली नवयुवती भी थी—अमेरिकासे आये थे, और एक आस्ट्रेलियासे आया था।

मैंने उनसे पूछा—''आपको रूस कैसा लगा?''

सबने एक साथ, एक सुरमें, जोशसे जवाब दिया—''आश्चर्यजनक!''

आस्ट्रेलियावाले साहबने अपनी गंजी खोपड़ी मटकाकर और अपनी लम्बी मजबूतें बाहें झुलाते हुए कहा—''आप देखते हैं, इनके यहाँ बेकारी है ही नहीं! क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं? इन लोगोंने कमाल किया है।''

मैडोना लिटा (ल्योनार्दो द विंचीकी एक प्रसिद्ध तसवीर)
यह चित्र लेनिनग्रेडकी हरमिटेज गैलरीमें है

मैंने पूछा—''लेकिन आप देखते हैं कि ये लोग अपने विरुद्ध जनमतको कैसी निष्ठुरतासे कुचल देते हैं। इससे लोगोंकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जाती ही रही। फिर आप कैसे इनकी तारीफ कर सकते हैं?''

अमेरिकन महिला बोली—''यह तो सभी देशोंमें होता है। सभी देशोंमें लोगोंको सिर्फ इतनी ही स्वतन्त्रता दी जाती है, जिससे वे मौजूदा सरकारको कोई नुक़सान न पहुँचा सकें। बस, इसके अलावा रत्ती-भर स्वतन्त्रता नहीं मिलती। मेरे देशमें बेकारोंपर जो

गोलियाँ चलाई गई हैं, उन्हें देख लीजिए; ग्रेट-ब्रिटेनने अपने यहाँके भूखे मज़दूरोंके जत्थोंके साथ जो व्यवहार किया है, उसे देख लीजिए ; इटलीके फ़ासिस्टोंको देख लीजिए; जर्मनीमें नात्सी लोगोंके साथ जो व्यवहार हो रहा है, उसे देख लीजिए (उस समय नात्सी ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिये गये थे)। इन सब जनतन्त्रवादी देशोंमें आप क्या देखते हैं ? केवल पार्टियोंका आधिपत्य, पार्टियों द्वारा शासन। इस विषयमें रूस इन देशोंसे कुछ भिन्न नहीं है।''

इसपर मैंने कहा—''तब फिर रूस गर्व किस बातपर करता है ? उसने अपनी जनताको क्या नई चीज़ दी है ? इतनी भयंकर ख़ून-ख़राबीके बदलेमें उन्हें क्या मिला ?''

''इस देशमें मुट्ठी-भर आदमियोंके बजाय देशके तमाम जनसाधारण अपने मुल्कके मालिक हैं, यह कितनी बड़ी बात है।''

मैंने कहा—''और वही मुट्ठी-भर आदमी अब दंडित किये जाते हैं, देशसे निकाले जाते हैं और जानवरोंकी तरह मारे जाते हैं।''

आस्ट्रेलियावाले साहब चिल्लाकर बोले—''यह तो स्वाभाविक ही है।''

मुझे यह देखकर ताज्जुब होता था कि पूँजीवादके सबसे मज़बूत क़िले अमेरिकाके रहनेवाले इन लोगोंपर भी रूसने कैसा प्रभाव डाला है। इतने ही में उन लोगोंकी पथ-प्रदर्शिकाने आकर कहा कि गाड़ी तैयार है। इसपर वे लोग मुझसे विदा लेकर चले गये। चलते वक़्त आस्ट्रेलियन सज्जनने कहा—''उम्मेद है कि मास्कोमें फिर मुलाक़ात होगी।''

मैंने खाना खाया। ज़िन्दगीमें ऐसा ख़राब खाना कम खाया होगा। मार-पीटकर जो कुछ मैं खा सका, वह उबले आलू और लाल रोटीका एक टुकड़ा था, सो भी बिना मक्खनके। उनकी काली रोटी बुरी महकती थी, और मुझे शक है कि कुत्ते भी उसे पसन्द करेंगे या नहीं। मैंने इंचार्जसे कहा—''मैं गोमांस या सुअरका मांस नहीं खाता, इसलिए कृपा करके मेरे लिए मुर्गी, मछली या भेड़के गोश्तका इन्तज़ाम कर दीजिए।'' मुर्गी या भेड़ तो वहाँ मयस्सर न थी, हाँ, टीनमें बन्द नमकीन मछलीका एक टुकड़ा मुझे

रूसका मौजूदा डिक्टेटर स्टेलिन

दिया गया, जो अपने नमकीनपनमें नमकको चुनौती देता था। मैंने पूछा कि क्या दूध मिल सकता है ? उत्तर मिला 'नहीं'। यहाँ तक कि 'चाइ'—रूसी चायको 'चाइ' कहते हैं—भी बिना दूधके ही मिलती थी। भोजनका कमरा बहुत साफ़ था। खानसामोंकी पोशाकें भी साफ़-सुथरी थीं। बाजेवाले भी मौजूद थे।

भोजनालयमें कुछ बढ़िया कपड़े पहने हुए लोग भी नज़र आये। अन्दाज़से मुझे वे विदेशी नहीं जँचे। बादमें मालूम हुआ कि मेरा अन्दाज़ सही था। इस प्रकार मैंने यह समझा कि अब भी रूसमें कुछ लोग ऐसे हैं, जो बाजेकी ध्वनिके साथ अच्छे होटलोंमें बैठकर भोजन कर सकते हैं, जब कि दूसरे लोग बाहर बर्फ़में भेड़की फटी खालें पहने मेहनत करते हैं। उनके फटे जूतोंके मुँह ऐसे खुले होते हैं, मानो वे जो मिले, सो निगलनेके लिए तैयार हैं। फिर भी ये लोग कहते हैं—"हमने रूसमें श्रेणी-भेद उठा दिया।"

यह 'अक्टूबर होटल' ज़ारके ज़मानेमें भी होटल था। यह मास्को स्टेशनके सामने डाकख़ानेके पास है। इसमें भापसे गर्मी पहुँचानेका प्रबन्ध है। हर कमरेमें एक पृथक गुसलख़ाना और नये ढंगके सब आराम हैं। मैं पथ-प्रदर्शिकका इन्तज़ार कर रहा था, और इस बातपर अधीर हो रहा था कि वह देरी करके मेरा वक्त बर्बाद कर रही है। वह तीसरे पहर, कोई तीन बजे, आई। उसके साथ एक और स्त्री थी, जिसे मैंने अमेरिकन पार्टीके साथ देखा था। उसने आते ही कहा—"अच्छा, मैं तो विदा होती हूँ, मेरी बहन आपको सब दिखावेंगी।"

रूस-जैसे देशमें एक सुन्दर पथ-प्रदर्शिकाका साथ छूटना मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरी गाँठसे कुछ गिर गया हो; मगर करता क्या, मजबूरी थी। उसका काम सिर्फ़ स्टेशनसे यात्रियोंको होटल लाना था। बस। होटल पहुँचाकर ही उसके कर्तव्यकी इतिश्री हो जाती है। मेरी नई पथ-प्रदर्शिका भी अंगरेज़ी बोल लेती थी। वह यद्यपि पहलेवालीकी तरह सुन्दरी नहीं थी, फिर भी उसका चेहरा हँसता हुआ था, और बुद्धि काफ़ी तेज़ थी। उसने भी दो-चार मिनटमें ही मुझे मित्र-सा बना लिया, और मुझसे पूछा कि मैं कौन-कौनसी चीज़ें देखना चाहता हूँ। मैंने उत्तर दिया—"सभी चीज़ें—ख़ास तौरपर आपका समाज, आपके कारख़ाने, आपकी खितियाँ, आपकी कलाएँ।"

"अच्छा, तो आज चलिये, आपको ओपेरा (नाटक) दिखायें, क्योंकि और कुछ देखनेका अब समय नहीं है। सभी दर्शनीय स्थान आध घंटेके भीतर बन्द हो जायँगे, इसलिए और कहीं जाना बेकार होगा।"

"लेकिन इसके लिए मुझे शायद अलगसे पैसा देना होगा, क्योंकि नाटक देखना तो यात्रामें शामिल नहीं है।"—मैंने पूछा।

उसने मुसकराकर कहा—"मुझे भय है कि आपको इसके लिए अलगसे पैसा देना होगा। साथ ही सुविधाके लिए यह बेहतर है कि आप टैक्सी किराये कर लें, वह आपको ओपेरा ले जायगी और लौटाकर फिर होटल पहुँचा देगी।"

"क्या आप मेरे साथ न रहेंगी?"—मैंने पूछा।

वह बोली—"खेद है कि मैं बहुत देर तक आपके साथ नहीं रह सकती, क्योंकि आज सारा दिन मुझे उस अमेरिकन पार्टीके साथ खड़े-खड़े बीता है।"

मैं और अधिक वक्त ख़राब नहीं करना चाहता था, और रूसी नाटक देखनेका भी इच्छुक था, इसलिए मैं फ़ौरन चलनेके लिए राज़ी हो गया। उसने कहा—"अच्छा, तो अब मैं जाती हूँ, क्योंकि थियेटरमें मुझे आपके लिए सीटका प्रबन्ध करना पड़ेगा। थियेटरमें हमेशा सीट ख़ाली नहीं मिलती।" यह कहकर वह चलती बनी। मैं शीशेकी खिड़कीके पास बैठकर लेनिनवादकी जननी लेनिनग्रेड नगरीके दृश्य देखने लगा। संसारके इसी नगरमें मार्क्सके सिद्धान्तोंकी जड़ जमी और यहीं वे फले-फूले—इसी नगरमें पहले-पहल क्रान्तिकी घोषणा हुई थी।

शामको पथ-प्रदर्शिका मुझे ओपेरा ले गई। वह टिकट पहले ही ले आई थी, फिर भी मुझे भीतर घुसने देनेके लिए उसे दरवाज़े-दरवाज़ेपर दौड़ना पड़ा। यद्यपि मुझे टिकट दे दिया गया था, लेकिन ओपेरामें एक सीट भी ख़ाली नहीं थी। मेरे लिए अलगसे

एक कुर्सी लाकर रखी गई। मुझे बिठाकर पथ-प्रदर्शिका चली गई।

ओपेराका स्टेज बड़ा भारी था। दर्शकोंका स्थान अठमंज़िला था। सबसे ऊपरवाली मंज़िलके दर्शकोंका पहचानना भी कठिन था। नीचेका तल्ला, ऊपरकी मंज़िलें और तमाम गैलरियाँ ठसाठस भरी थीं। मुझे प्रायः सबसे अन्तिम पंक्तिमें एक सीटके लिए एक पौंडसे कुछ अधिक देना पड़ा, क्योंकि मैं विदेशी था, और मेरे पास 'मज़दूरोंका टिकट' न था। मज़दूरोंके साथ हर जगह, हर बातमें—थियेटरमें, सिनेमामें, रेलमें, दूकानपर, स्कूलोंमें, अस्पतालोंमें, होटलोंमें, भोजनालयोंमें, सभी कहीं—विशेष रियायत की जाती है। हम विदेशियोंकी अपेक्षा उन्हें आठ-दस गुना कम देना पड़ता है! मैंने यूरोप महादेशके किसी भी नगरमें न तो इतना बड़ा रंगमंच देखा और न किसी रंगमंचको इतना ठसाठस भरा देखा। उस समय मुझे उन मूर्खोंकी याद पड़ी, जो कहते हैं कि रूसी कला-प्रेमी नहीं होते, और उन्होंने कलाओंको मटियामेट कर डाला है। उस समय मेरे मनमें प्रश्न उठा कि संसारमें और कौन देश है, जिसने कलाको सर्वसाधारण तकमें इतना पहुँचा दिया हो? यहाँ दर्शकोंमें जो लोग थे, वे मुझे सड़कोंमें दीख पड़नेवाले लोगोंसे भिन्न दीख पड़े। यहाँ क़रीब-क़रीब सभी लोगोंके कपड़े अच्छे थे। कुछ नवयुवती महिलाओंकी आँखोंपर जालीके बुर्के, चेहरोंपर पाउडरके रंग और हाथमें थियेटर देखनेकी दूरबीनें भी थीं। कुछ नवयुवक ईवनिंग ड्रेसमें थे।

क्रान्तिके बाद कुछ दिन तक रूसने सभी प्रकारके खेल-तमाशोंको तिलांजलि दे दी थी। मुझे बताया गया कि उस समय नाचघर ज़बरदस्ती बन्द कर दिये गये थे। फाक्स ट्राट (एक विशेष नाच) तो ख़ास जुर्म बना दिया गया था। भोजनालय विशेषकर विदेशियोंके लिए ही रह गये थे। रूसी उनमें जाते हुए डरते थे कि कहीं G. P. U. (सी० आई० डी० पुलिस) के भयंकर जासूस उनका नाम धनी लोगोंमें न शामिल कर लें। मगर अब रूसने सारी परिस्थिति क़ाबूमें कर ली है। लोग अब अपनेको ख़तरेसे बाहर समझने लगे हैं। उन्होंने अपना ख़ून बहाकर जो पाया है, उसे खोनेका डर बहुत कम रह गया है, इसलिए अब धीरे-धीरे खेल-तमाशों और मनोरंजनके अन्यान्य साधन बढ़ रहे हैं। आजकल यद्यपि नाच-घरोंकी संख्या बहुत कम है, फिर भी रूसी उनमें मधुमक्खियोंकी तरह इकट्ठे होते हैं। थियेटर भरे रहते हैं, सिनेमामें तिल रखनेको जगह नहीं मिलती। आतंकवादियोंके देश रूसमें अब रात्रिका जीवन आसानीसे देखा जा सकता है। हालमें कागानोविचने, रूसमें जिसका प्रभाव दूसरे नम्बरपर समझा जाता है, अपने व्याख्यानमें कहा था कि दूसरे पंचवर्षीय कार्य-क्रममें नाचघर और मनोरंजनके अनेक भवन बनाये जायँगे।

मैं तमाशेका एक शब्द भी न समझ सका। चूँकि यह ओपेरा था, इसलिए उसमें गानेकी संख्या बहुत थी। कुछ गायकोंके गले बड़े सुरीले थे। आरचेस्ट्राका ऐसा अच्छा बाजा मैंने पहले कभी नहीं सुना था। लगभग पचास आदमी विभिन्न प्रकारके बाजोंको एक साथ बजाते थे, जिनसे एक विचित्र सामंजस्यपूर्ण कोमल करुण ध्वनि निकलती थी, जो हवामें थर्राती हुई नाटकशालाकी इस दीवारसे उस दीवार तक गूँज रही थी। यह सब स्वप्नवत मालूम पड़ता था। दृश्य यद्यपि तड़क-भड़कवाले न थे, फिर भी थे सुन्दर। मैंने कभी रंगमंचपर ऐसा सुन्दर और ऐसा वास्तविकतापूर्ण पूरा चन्द्रमा और नीला आकाश प्रदर्शित करते हुए नहीं देखा। समूचा दृश्य चाँदनी रातकी नीलिमामयी आभामें नहाया हुआ था। एक बातकी ओर विदेशियोंका ध्यान बड़ी आसानीसे आकर्षित हो जाता था, वह थी रूसियोंका अनुशासन। यद्यपि दर्शकोंकी संख्या कई हज़ार थी, फिर भी बीचके इंटरवलमें शोरगुल आदिका नाम भी न था। अन्य

देशोंको भाँति 'चाकलेट, सिगार, सिगरेट' की आवाज़ लगानेवाले फेरीवाले नदारद थे, और न चायके प्यालों और बियरकी बोतलोंके इकट्ठा करनेकी खटपट ही थी। बहुत चुस्त कपड़े—जिनसे शरीरके अंग-प्रत्यंगकी बनावट साफ़-साफ़ दीख पड़े—पहने हुए अधनंगी नर्तकियाँ यहाँ नहीं थीं। स्त्री-शरीरको अधिक-से-अधिक नंगे रूपमें दिखानेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया, और न समूचे नाटकमें कोई दृश्य ही ऐसा था, जो कामोद्दीपन करनेवाला हो। ये सब चीज़ें तमाम यूरोपियन देशोंमें आमतौरसे प्रचलित हैं। इसपर भी लोग कहते हैं कि रूसियोंमें नैतिकता और सदाचार नहीं है! यद्यपि लोग अपनी नैतिकताके अनुसार रूसियोंकी नैतिकता और सदाचारको परखते हैं, फिर भी अनेक बातोंमें रूसी लोग पाश्चात्य और पूर्वीय देशोंके लोगोंसे कहीं अधिक सदाचारी और नैतिक हैं। पेरिस, बर्लिन, लन्दन, रोम या यूरोपके किसी भी अन्य नगरकी दूकानोंकी खिड़कियोंपर नंगी स्त्रियोंके चित्रों और मूर्तियोंकी भरमार रहती है। रूसी लोग इस प्रकारके प्रदर्शनोंसे घृणा करते हैं। दूकानोंपर ग्राहकोंको आकर्षित करनेके लिए ख़ूबसूरत लड़कियाँ रखनेका विचार उन्हें पसन्द नहीं। वे अपने दैनिक या मासिक पत्रोंकी बिक्री बढ़ानेके लिए अश्लील तसवीरें नहीं छापते। सरकार मद्य-पान निषेधका प्रोपेगेंडा बड़े ज़ोरोंसे कर रही है।

रूसियोंने वेश्यावृत्ति तो लगभग उठा ही दी है। यद्यपि इंग्लैण्ड सरीखे दो-चार देशोंने अपने यहाँ क़ानून-द्वारा वेश्यावृत्ति वर्जित कर दी है; लेकिन यह वर्जन क़ानूनमें ही है, व्यवहारमें नहीं। वेश्या-वर्जित देशोंमें वेश्याएँ हैं—और हज़ारों-लाखोंकी संख्यामें। वे खुल्लमखुल्ला पेशा नहीं करतीं, वरन साधारण स्त्रियोंकी भाँति थियेटर, सिनेमा, होटल, पार्क और भोजनालय आदिमें घूमा करती हैं, और इशारेसे अपना शिकार फाँसकर ले जाती हैं; लेकिन रूसियोंने क़ानूनमें नहीं, बल्कि वास्तविक व्यवहारमें वेश्यावृत्तिको उठा दिया है। उन्होंने अनेक सुधार-गृह खोल रखे हैं, जहाँ वेश्याओंको रखकर उन्हें काम सिखाया जाता है, और उनका इलाज किया जाता है। उन्हें कोई ऐसा काम सिखाया जाता है, जिससे वे स्वतन्त्र रूपसे अपनी जीविका उपार्जन कर सकें। एक वर्ष तक उन्हें सुधार-गृह छोड़नेकी इजाज़त नहीं दी जाती। सोविएट सरकारका दावा है कि इस एक वर्षके भीतर ही वह उनके रहन-सहन और मनोवृत्तिको एकदम बदल देती है; मगर इस वर्षके भीतर भी वे उत्सवों और सभाओं आदिमें शामिल हो सकती हैं। वे सुधार-गृहमें बन्द रहती हैं; पर साथ ही उनका सुधार भी होता है। वर्षकी समाप्तिपर उनके लिए कोई काम ढूँढ़ दिया जाता है और वे कामपर लगा दी जाती हैं। जिन स्त्रियोंकी स्वाभाविक मनोवृत्ति ही इस कर्मकी ओर होती है और जो सुधार-गृह छोड़नेके बाद भी इस कार्यको करती हैं, उन्हें पुनः सुधार-गृहमें रखा जाता है। पहले वेश्यावृत्ति जायज़ समझी जाती थी। वेश्याओंको 'पीला टिकट' मिलता था, जिसकी सहायतासे वे—यहूदी वेश्याएँ तक—शहरोंमें रह सकती थीं। पंचवर्षीय कार्यक्रमके आरम्भमें केवल मास्को नगरके पाँच सुधार-गृहोंमें ४,००० वेश्याएँ थीं। अब उनकी संख्या कुल ५७५ ही रह गई है, इसीलिए अब केवल एक ही सुधार-गृह है। क्या दुराचारको उखाड़ फेंकनेका यह पक्का प्रमाण नहीं है? क्या वे देश, जिन्होंने वेश्या-वृत्तिको जायज़ बना रखा है, या जो वेश्याओंको लाइसेंस देकर रखते हैं, रूसकी अपेक्षा अधिक सदाचारी होनेका दावा कर सकते हैं?

नाटककी समाप्तिपर नाटक-घरके फाटकपर या इधर-उधर मुझे कोई भी स्त्री शिकारकी तलाशमें लोलुप दृष्टि डालती हुई नज़र नहीं पड़ी, जैसी लन्दन और पेरिसमें हमेशा नज़र पड़ती हैं।

मेरी टैक्सी तैयार थी। मैंने उसे नम्बरसे पहचान लिया, और उसपर सवार होकर मैं होटल लौट आया।

अटल नियम

श्रीराम शर्मा

शासन-प्रणालियाँ समयानुसार क़ानून बनाती हैं। आज आर्डिनेंस जारी होता है, तो कल प्रेस-ऐक्ट पास होता है। ब्रिटिश पार्लामेंट तक इसी उधेड़-बुनमें, सदासुहागिनकी भाँति, अपने अधिपति मंत्रिमण्डलका बदला करती है; पर 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की भाँति अटल जंगलका एक नियम है, जो अनादिकालसे उसी रूपमें व्यवहृत होता आया है, और अनन्तकाल तक उसी भाँति होता रहेगा। वह है आवश्यकता पड़नेपर मारने या मर मिटनेके लिए तैयार रहना। लड़ना और युद्ध करना निन्दनीय है। उसमें पशुता है; पर देवताओं और महात्माओंको छोड़कर किसमें पशुता नहीं है, इसीलिए जब मार-काट और जीवनके सौदेपर नौबत आ जाय और जब बिना लड़े काम ही न चले, तब इस नश्वर शरीरको बलि चढ़ाने और शत्रुको परास्त करनेमें आनाकानी न करनी चाहिए। कदाचित् इसी अटल नियमको दृष्टिमें रखकर जनरल रौलिंसनने कहा था—"जब लड़ाईपर आ बीते, तब घोर युद्ध करो, और उसका अन्त करके ही छोड़ो।"

मानव-समाजमें जंगलके इस क़ानूनके अनेक अपवाद देखे जाते हैं। अनेक लोग विशेष कारणोंसे कायरताके कूपमें गिर पड़ते हैं; पर जंगलके जीवोंमें—उनमें, जिनमें लड़ने और मरने-मारनेकी आदत है—इस नियमका पालन प्रायः हुआ करता है। दूसरेकी जान लेने और अपनी जान देनेके लिए वे आवश्यकतानुसार सर्वदा तैयार रहते हैं। उन्हें इस बातका ख़याल नहीं होता कि उनके बाद कोई उनका नामलेवा भी रहेगा या नहीं और न वे गीताके इस उपदेशको समझते हैं कि 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'। प्राण देना और प्राण लेना उनके जीवनकी एक नैसर्गिक, पर साधारण-सी बात है।

एक बार मेजर फ़ोरन और उनका शिकारी साथी हामिसी पूर्व-अफ्रिकामें सावोके निकट कूडू हिरनकी खोजपर जा रहे थे कि खोजके मार्गमें, कुछ दूर आगे, झाड़ीमें खड़खड़ाहट सुनाई दी। मेजर फ़ोरनने चौकन्ने होकर उस ओरको अपना ध्यान और आँखें लगाईं; पर न तो कुछ दिखाई ही देता था और न खड़बड़से ही किसी जीवका अनुमान होता था। बड़ी सावधानीसे चुपचाप आगे बढ़कर जो कान लगाये, तो पहले डरावनी गुर्राहट और तीव्र हुंकार, फिर कुछ क्रोधपूर्ण फुफकार और अन्तमें सिंहकी गहरी गर्जन सुनाई पड़ी। उन संकेतों और ध्वनियोंसे स्पष्ट था कि प्राणोंपर बाज़ी लगाकर दो लड़ाके लड़ रहे हैं। आदमियोंकी सभ्यतासे दूर प्रकृतिके प्रांगणमें दो वीर जीवन और मौतका वास्तविक नाटक खेल रहे थे। अभिनयको देखनेके लिए मेजर फ़ोरन तेज़ीसे दुलकी चालसे उस ओर बढ़ा। हामिसी भी उसकी बग़लमें उसी गतिसे चला। टिकट तो लेना ही न था, और न उस अभिनयके पात्रोंको दर्शकोंकी वाहवाही लेनी थी। दर्शकोंमें वृक्षों और प्रकृति सुन्दरीको छोड़कर वहाँ था ही कौन? फ़ोरन और हामिसी चोरोंकी भाँति वहाँ पहुँच गये थे। हाँ, वृक्ष और प्रकृति सुन्दरी निष्पक्ष दर्शक थे, जो उस रोमांचकारी लड़ाईको देख रहे थे। उन्हें किसी भी प्रतिद्वन्द्वीका पक्ष लेना मंज़ूर न था। न्यायाधीशकी भाँति वे तो उस कम्प उत्पन्न करनेवाले संग्रामको देख रहे थे। गुर्राहट और तर्जन, हुंकार और फुफकारसे प्रकृति सुन्दरीके रोंगटे ज़रूर खड़े हो जाते थे; पर थे सब तटस्थ। और उन दो मानवी चोलोंकी क्या दशा थी?

दुलकी चालसे कुछ दूर चलकर मेज़र फ़ोरन और हामिसी एक खुले हुए मैदानके किनारे आये। वह स्थान घनी झाड़ीवाले जंगलके बीचमें था। वहाँ आकर

वे दोनों एकदम रुक गये। आँखोंके सामने जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे वे स्तम्भित ही नहीं, वरन् संज्ञाहीन हो गये। फ़ोरनको तो अपनी रायफ़लकी भी सुध न रही। वह तो बस मूर्तिवत् खड़ा उस दृश्यको घूरता ही रह गया। उससे न तो बोला जाता था, और न कोई वह जुम्बिश ही करता था। हामिसी भी फ़ोरनके समीप सरक आया। आश्चर्य-भरी प्रसन्नतासे उसके मुँहसे निकला—"अरे" ?

उन दोनोंके सम्मुख काले केसरवाला एक बहुत बड़ा सिंह और एक भीमकाय भैंसा घमसान युद्धमें संलग्न थे। फ़ोरन और हामिसीके पास रायफ़लें थीं ; पर उस युद्धमें हस्तक्षेप करना न केवल दख़ल दरमाक़ूलात होता, वरन् एक अच्छे खिलाड़ीके सद्भावोंके विरुद्ध भी। फ़ोरनके लिए यह कौन कम भाग्यकी बात थी कि उसे उस अद्वितीय दृश्य देखनेका अवसर मिला। एक अच्छे शिकारीकी भाँति फ़ोरनने उन दोनों लड़ाकोंके द्वन्द्वको अन्त तक देखनेका निश्चय किया। क्या ही अच्छा होता, यदि फ़ोरनके पास उस समय मूवी कैमरा होता।

फ़ोरन और हामिसीको यह पता न था कि सिंह और भैंसा कबसे लड़ रहे हैं। किसकी ओरसे और कब उत्तेजना हुई। 'बिनायमुख़ासमत' क्या थी, इसका तो कुछ पता ही न था। हाँ, एक बात साफ़ मालूम होती थी, वह यह कि वह घातक लड़ाई बहुत देरसे ठनी हुई थी। फ़ोरन और हामिसी तो उस नाटकके अन्तिम अंककी समाप्तिपर ही आये थे, और वहाँ आकर उनको समयका कुछ भान ही न रहा। उस भयंकर द्वन्द्वकी प्रत्येक प्रगति और चढ़ाव-उतारके देखनेमें आँखें चिपक-सी गईं। समयकी गणना—घंटा और घड़ी—की सुध ही न रही।

× × ×

जिस समय फ़ोरन घटना-स्थलपर पहुँचा, उस समय सिंह भैंसेके विशाल कन्धोंपर दृढ़तासे चिपटा हुआ अपने पैने नखोंसे भैंसेको फाड़ रहा था, दाँतोंसे काट रहा था और भयानक ढंगसे गुर्रा रहा था। भैंसा अपनी अपार शक्ति और मक्कारीका प्रयोग अपने प्रतिद्वन्द्वीको गिरानेमें कर रहा था, जिससे वह उसे अपने सींगोंके अंटोंपर चढ़ा सके। इस प्रकारके अवसरके लिए न-मालूम वह कितनी देरसे प्रयत्न कर रहा होगा। कौन-कौनसे पैंतरे उसने न बदले होंगे ? कितनी बार उसने सिंहको अपनी पीठपर से न गिराया होगा ? भैंसेके हथियार थे सींग, ठोकर और उसका भारी बोझ ; पर सिंहकी चार थापोंमें लगे पाँच-पाँच पैने छुरे, दाँत और तिसपर उसकी विद्युत गति एवं कम्पोत्पादक गुर्राहट ग़ज़ब ढा रहे थे। मुँहसे काटकर और दोनों पंजोंसे फाड़कर और झटका देकर भैंसेकी गर्दनको तोड़नेका प्रयत्न सिंह करता था। अभी तक वह विफल रहा था। भैंसेकी चाल भी सिंहपर न चली थी। भैंसा पहाड़की एक काली चट्टान-सी खड़ा था, जिसमें से ख़ूनका प्रपात जारी था।

भैंसेने उसको गिरानेके बहुत दाँव-पेंच किये। अन्तमें उसने उसे अपनी पीठसे ज़मीनपर गिरा दिया। सिंहके सँभलनेसे पूर्व भैंसेने एक सींग अपने प्रतिद्वन्द्वीको घुसेड़कर उसे ज़मीनसे बाँध-सा दिया। उस अवस्थामें भी दोनों ख़ूब लड़े। भैंसा सींग गड़ाये उसे वहीं रगड़-सा रहा था। सिंह गुर्राता हुआ भैंसेकी खोंपड़ी और गर्दनको अपने नखोंसे खरोंच रहा था। सिंहकी गर्जन और भैंसेकी हुंकार जंगलमें प्रतिध्वनित होकर वायुको चीरते हुए चले जाते थे। वहाँपर प्रलय-सा मचा हुआ था। आसपासके जीव चौकन्ने और घबराये हुए थे। सिंह और भैंसेके दाँव-पेंचसे फ़ोरनके रोमांच हो आया। बिलकुल तन्मयता हो आई थी। आँखें उस दृश्यको पीते-पीते अघाती न थीं।

थोड़ी देरमें सिंहकी चढ़ बनी, और देवीका बाहन महिषासुरके प्रतिरूपके बन्धनसे मुक्त हो सका ; पर मुक्त होनेसे पूर्व उसने भैंसेको बुरी तरह फाड़ दिया था।

खाल और मांसके लम्बे टुकड़े भैंसेके शरीरसे लटक रहे थे। खून और मिट्टी दोनोंके चारों ओर फैले पड़े थे। दोनों ओरके प्रहारोंसे घबराकर मानो खून शरीर छोड़कर ज़मीनमें छिपनेको घुसा जाता था। पैंतरे बदलकर दोनों घात करना चाहते थे। सिंह भैंसेके सींग और ठोकर बचाकर उसकी पीठपर उछलकर बैठना चाहता था। उसके शरीरके घावसे उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी; पर क्रोध और शत्रुको परास्त करनेकी उसकी लालसामें कुछ भी अन्तर न आया था, इसीलिए वह डटा हुआ था और भैंसेपर उछलकर बैठनेकी घातमें था। बस, डर उसे यही था कि उछलनेमें कहीं भैंसेकी ठोकर न खा जाय, या किसी सींगसे टकरा न जाय। सिंह जैसे-जैसे बच-बचकर दाएँ-बाएँ गुर्राता छलांग मारनेकी घातमें पुट्ठे सिकोड़कर बैठता कि भैंसा भी बिजलीकी गतिसे अपनी ढाल और तलवार—सिर और सींग—उधर कर देता। भैंसा केवल अपनी रक्षा ही न कर रहा था, वरन आक्रमण करनेका अवसर भी ताकता था कि सिंहको कब कुचलकर कोफ्ता बना दे, या सींगोंसे छेदकर अपनी विजयपर प्रसन्न हो सके। घूम-घूमकर, गुर्राते और हुंकारते, नाक और मुँहसे खून बहाते, घाव और हार-जीतकी बात भुलाकर उधड़े और फटे हुए शरीरोंको इधर-से-उधर करते हुए वे दोनों अपने-अपने अवसरकी प्रतीक्षामें थे। और कब? तब, जब उनके शरीरोंसे जीवन-प्रवाह पहाड़ी नालेकी तरह उष्ण और रक्तके रूपमें बहा जा रहा था।

फ़ोरनने जब ख़याल किया कि सिंहपर काफी मार पड़ चुकी है, अब वह रण-क्षेत्रसे भागकर हाँफता हुआ कहीं जाकर अपने घाव चाटेगा, तभी आकस्मिक क्षिप्रतासे सिंह उछला और बिजलीकी भाँति भैंसेके कन्धोंपर जा गिरा। वह भैंसेकी गर्दनपर जाकर चुभा-सा रह गया। उसका शरीर भैंसेकी पीठपर मेरुदण्डके ऊपर लम्बा पड़ा हुआ था। ढंगोंसे प्रतीत हुआ कि भैंसेका 'राम नाम सत्य' होने ही वाला है, और सिंह भैंसेकी मोटी गर्दनको काटकर, रीढ़की हड्डी तक पहुँचकर, एक ही झटकेमें उसे तोड़ देगा और बलशाली भैंसा मरकर गिर पड़ेगा। सिंह और उसके बिरादरीके जीव इसी प्रकार बड़े जीवोंको मारते हैं। फ़ोरन प्रतिक्षण भैंसेको गिरते देखनेकी आशंकामें था।

पहले तो फ़ोरनने अपनी रायफ़ल सँभाली; पर थोड़ी ही देरमें उसने उस लड़ाईमें हस्तक्षेप करनेका विचार छोड़ दिया। शक्तिके उस भयंकर प्रदर्शनमें किसी विजयीको जीतके सम्मानसे वंचित करना बड़ा ही अनुचित था। जंगलके क़ानूनने उस नाटकको रचा था। उसमें हस्तक्षेप करना अन्याय और धूर्तता होती।

फ़ोरनका यह अनुमान कि भैंसा शीघ्र ही मृतप्राय होकर गिरेगा, ठीक-सा होता दिखाई पड़ा। भैंसा घुटनाया, पर उस दशामें भी वह अपने शत्रुको पीठसे गिरानेके लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहा था। उस अखाड़ेमें वे दोनों, उसी अवस्थामें, अटल निश्चय और बड़ी क्रूरतासे लड़ते रहे। कुछ देर उपरान्त भैंसा तीव्र गतिसे अपनी एक बग़लके बल गिरा। ऐसा प्रतीत हुआ कि सिंह भैंसेकी गर्दन तोड़नेमें सफल हुआ; पर वास्तविक बात कुछ और ही थी। भैंसेने गिरकर एक पलटा खाया, और सिंहके मृत्युपाशसे मुक्त होकर वह खड़ा हो गया।

भैंसेका खड़ा होना था कि सिंह भी तड़पकर उसकी पीठपर फिर जा बैठा। अबकी बार वह भैंसेकी गर्दन और कन्धेपर सींगोंकी पहुँचके ठीक पीछे—आड़ा जा बैठा। भैंसेको तेज़ी और ज़ोरसे काटता हुआ वह उससे सट गया। भैंसेने पीड़ाके कारण ज़ोरसे रँभाना और कराहना प्रारम्भ किया; लेकिन वीर भैंसा घबराया न था। पीड़ा और कष्टसे कराह और आह निकलना साधारण-सी बात होती है। वह तो इन्द्रियोंका धर्म है—पशुता है। लड़कोंके बधका समाचार सुनकर गुरु गोविन्दसिंह जैसे पहुँचे हुए

व्यक्तिके आँसू निकल पड़े थे। उनके एक शिष्यने पूछा—"महाराज, आप औरोंको तो उपदेश देते हैं कि जीवन और मौतपर हर्ष-विषाद न करो और आप स्वयं रो रहे हैं।" गुरुने गम्भीरतासे उत्तर दिया—"मैं शोक नहीं कर रहा। आँसू जो टपक रहे हैं, उनसे कोई हानि नहीं। बेलसे जब फल तोड़े जाते हैं, तब डंठलपर पानी आ जाता है। इस शरीर-रूपी बेलसे मेरे बच्चे तोड़ लिये गये हैं—मारे गये हैं—आँखोंसे आँसू गिरते हैं, सो स्वाभाविक है; पर वे मेरे कर्तव्यपथमें बाधक नहीं हो सकते।" तब फिर एक भैंसेके दिलसे फाड़ने और काटनेसे कराह निकली, तो क्या आश्चर्य? हाँ, भैंसेकी युद्ध-प्रवृत्तिमें लेशमात्र भी अन्तर न पड़ा था। भैंसा बड़े क्रोधसे लड़ रहा था और सिंहको गिरानेका उद्योग कर रहा था। सिंह और भैंसेका युद्ध सिक्खोंके इस 'शब्द' "बोटी-बोटी कटिपरै औ तोऊ न छोड़ै खेत, सूरा सोई पहचानिये जो मरै दीनके हेत" का जीता-जागता चित्र था।

भैंसेने तब मानो अपनी बची-खुची शक्ति एकत्र करके एकदम अपने-आपको पीछेको गिराया। अर्धचन्द्राकारमें सिंहका शरीर भैंसेके सिरपर होकर घूम गया। वह पीठके बल भैंसेके भीमकाय शरीरके नीचे गिरा। उस जीवित चट्टानके नीचे होनेके कारण सिंह फ़ोरनकी आँखोंसे ओझल हो गया। सम्भवत: धक्के और बोझसे उसका हलुआ बन गया।

उनके अखाड़ेमें चारों ओर ख़ून-ही-ख़ून था। वह स्थान बूचड़खाना बना था। एक क्षणके लिए दोनों लड़ाके मुर्देकी भाँति पड़े रहे। अस्थि-पंजरके उस ढेरमें कोई गति ही न हुई। दोनों ही मौतके मुँहमें प्रतीत होते थे। फ़ोरन उस अभिनयके पटाक्षेपको देखनेका बड़ा ही उत्सुक था, इसलिए आश्चर्यान्वित होकर उसने हामिसीकी ओर ताका। हामिसीके मुखमंडलपर पसीनेका झरना झर रहा था। उसकी त्यौरी फटी हुई थी, मुँह खुला हुआ था, और रुक-रुककर वह लम्बी साँसें ले रहा था। हामिसीपर मोहनी-सी फिरी हुई थी। उसकी सम्पूर्ण श्रवण और मनन शक्ति उस अनहोने दृश्यपर लगी हुई थी। फ़ोरनने उसकी यह दशा देखकर अपनी आँखें घातक संग्रामपर लगाईं।

धीरे-धीरे लड़खड़ाते हुए भैंसेने उठनेका प्रयत्न किया। उसमें वह सफल भी हुआ। अपने प्रतिद्वन्द्वीके कुचले शरीरपर उसने घूरकर देखा। सिंह निस्तब्ध पड़ा था। भैंसेकी क्रोधाग्नि अभी शान्त न थी। उसे आशंका थी कि वे तीखे छुरे और क्रूर दाँत फिर न कहीं उछल पड़ें। सिंहका कचूमर निकल गया था; पर भैंसेको अभी पूरा विश्वास न था। इसीलिए उसने दो-तीन भयानक हुद्दें सींगोंसे मारीं, और सिंह निस्तेज हो गया। विजयी भैंसा सन्तुष्ट होकर पराजित और मृतक सिंहपर खड़ा था। उसकी टाँगें शराबीकी टाँगोंकी भाँति इधर-उधर डगमगा रही थीं। उसकी आँखें चमक रही थीं। विजयासवका स्वाद उसे आ रहा था।

घोर परिश्रमसे ली जानेवाली साँसों और टाँगोंके इधर-उधर झूमनेके अतिरिक्त और कोई गति ही न थी। चारों ओर क़ब्रकी-सी शान्ति थी। फ़ोरनको तो अपनी दिलकी तेज़ धड़कन भी सुनाई पड़ती थी।

भैंसेकी टाँगें कुछ और डगमगाईं। उसकी जीवन-ज्योति बुझने ही वाली थी। कुछ दम-सा घुटा और उसकी आत्मा सिंहकी आत्मासे मिलने चली गई। 'धम्म'से उसकी लाश सिंहके शवपर गिरी। विजेता और विजित दोनों तर-ऊपर पड़े थे। घंटोंका अभिनय समाप्त हो चुका था।

जंगल क़ानून निभानेमें दोनोंने ही अपनी बाँकी अदा दिखाई थी। दोनोंने मर-मिटनेकी ठान ली थी। कोई चारा न रहा होगा। मरनेमें ही उन्होंने ज़िन्दगी समझी होगी। और जब कोई प्राणी मृत्युको ही जीवन समझ ले, तब उसके प्रत्येक अवयवसे यह स्वर झंकरित होता है—

"सिरसे क़फ़न लपेटे क़ातिलको ढूँढ़ता हूँ।" *

* मेजर फ़ोरनकी 'किल ऐण्ड बी किल्ड' पुस्तकके आधारपर।—ले०

नूरजहाँ

श्री गुरुभक्त सिंह 'भक्त', बी० ए०, एल-एल० बी०

[मुग़ल-सम्राट् अकबरके युवराज सलीम (जो बादमें जहाँगीरके नामसे सम्राट् हुआ था) और ईरानी बालिका मेहरुन्निसाँ (जो बादमें नूरजहाँके नामसे सम्राज्ञी हुई थी) की प्रेम-कथा इतिहास-प्रसिद्ध है। सलीम महलमें मेहरुन्निसाँको देखकर उसकी ओर आकृष्ट हुआ। धीरे-धीरे यह आकर्षण प्रेममें परिवर्तित हो गया, और दोनोंमें घनिष्टता बढ़ने लगी। जब अकबरको इस प्रणयकी खबर लगी, तो उसने इसे नापसन्द किया। उसने मेहरको राजधानीसे दूर करके प्रणय-नाटकको समाप्त कर देना चाहा, इसलिए उसने उसका विवाह अलीकुली खां (उर्फ़ शेर अफ़गन) नामी एक नवयुवक सरदारसे करके इस दम्पतिको बंगाल जानेकी आज्ञा दी। श्री गुरुभक्त सिंहने 'नूरजहाँ' नामक एक काव्य-ग्रन्थ रचा है, नीचेकी कविता उसका दशम सर्ग है। इससे पूर्वके नौ सर्गोंमें कविने ऊपरकी सारी कथा वर्णन की है। जिस दिन मेहरुन्निसाँ अपने नवीन पतिके साथ बंगालके लिए प्रस्थान करनेवाली थी, उससे पूर्व रात्रिका दृश्य कविने निम्न-कवितामें अंकित किया है। —सम्पादक]

अर्द्धनिशामें महानिविड़ तम घेरे था पृथ्वीतल,
अन्धकार ही अन्धकार दिखलाई देता केवल।
अपर लोकवासीके लख पड़ते थे जो दृग तारे,
वे भी मेघोंकी पलकोंमें छिपे नींदके मारे।
वारिद तारोंपर, पावसने, बिजलीको दौड़ाया,
हर्षनाद कर मित्रोंको आगम जिसने बतलाया।
सूख गये थे जड़-जंगम जो विरहानल खा-खाकर,
पुनः हरा कर दिया उन्हें जीवन-सन्देस सुनाकर।
हरियाली उट्ठी ऊपरको मिलने वारिदमाला,
पुलकित होकर उतर मेघने वारि-करोंको डाला।
नवलतिकाएँ थिरिक-थिरककर घुँघरू लगीं बजाने,
घन, दामिन सँग, ताल बजाकर लगा नाच दिखलाने।
मोती झड़ते देख श्याम अलकोंसे दामिन-पटसे,
कलियाँ झाँक-झाँक मुस्कातीं पत्तोंके घूँघटसे।
रोमांचित भूने पुलकित हो अगणित पुष्प चढ़ाये,
मेघ धूप ले अपने ऊपर भू को रहे बचाये।
छिपा 'पतंग' देख, पृथ्वीने, कोटि 'पतंग' उड़ाये,
निशिमें जुगनूके तारोंको तम-नभपर बिखराये।
घन पृथ्वीको छू-छू लेता पर्वतसे टकराता,
मोर नचाता, नदी बहाता, शोर मचाता आता।
कहता रहता, जले न कोई, सब हों शीतल छाती,
दामिन मुझसे, लतिका-तरुसे, रहे सदा लिपटाती।
पर, पतंगनी नहीं मानती, स्नेह-चिता जब जागी,
जीवन-दीप दिया कर ठंडा, सह न सकी विरहागी।
पंख लगाकर अगम पंथमें मानो नव अभिलाषा,
नवजीवनके सुख-सोहागकी मनमें लिये पिपासा,
उड़ी, अभी दो-चार हाथ थी प्रेम-ज्योति देखी जो,
गई वार मोहित-सी होकर तन-मनकी सुध-बुध खो,
हँसते-हँसते स्नेहानलमें हुई एक मिल-मिलकर,
बिखरे पड़े अभी तक उसके हैं आशाओंके पर,
पवन उन्हींसे खेल रहा था ले जा नीचे-ऊपर,
भस्म आँखमें डाल रहा था पड़ी रही जो भूपर।
देख रहे थे नयन किसीके निशि-भर थे जो जागे,
कि कैसे हँसकर जलते हैं हृदय प्रेम अनुरागे।
दृग-मृग चंचल रहे चौकड़ी भरते नभसे भू तक,
निद्रा, हरियाली दिखलाकर, हारी, सकी न छू तक।
फँसे न पलकोंके फन्देमें, जो रजनीने डाले,
मनसे होड़ लगाकर उड़ते रहे नयन मतवाले।
हत्याकाण्ड, प्राणकी आहुति, कठिन प्रेमकी लीला,
सका न अधिक देख रमणीका कोमल हृदय रसीला।
किसी सोचमें हो विभोर स्वाँसें कुछ ठंडी खींचीं,
फिर झट गुल कर दिया दियाको आँखें दोनों मींचीं।
ले निश्वास पुनः खोली जो देखा सम्मुख कोई,
लगी सोचने, मैं जगती हूँ सचमुच या हूँ सोई।
फिर आँखें मल लगी देखने देखी मूरत काली,
तुरत झपटकर पहुँची उसपर झट तलवार निकाली।
बढ़ती हुई तड़पकर बोली, "ठहर! कौन? क्यों आया?
कर दूँगी तलवार पार मैं पग जो एक बढ़ाया!"
खोल नकाब, कहा, "सलीम हूँ, मेहर! मुझे मत रोको,
'शेर' मारकर बनें अकण्टक, करो सहाय, न टोको।
बोलो नहीं, बताओ चुपके कहाँ दुष्ट है सोया?
बस, उसका है अन्त आज ही काटेगा जो बोया।
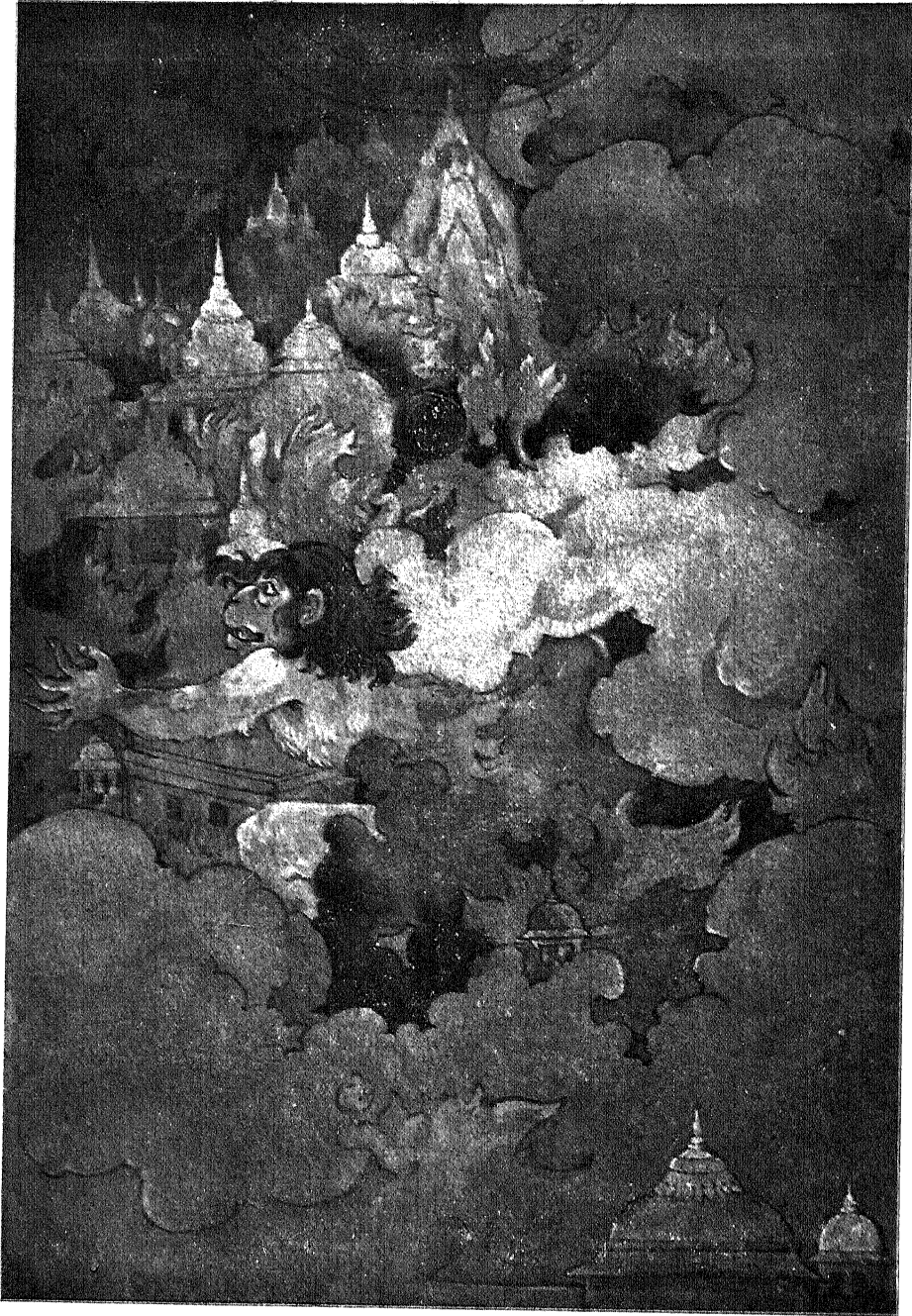
लंकादहन

Prabasi Press, Calcutta.

[श्री रामगोपाल विजयवर्गीय
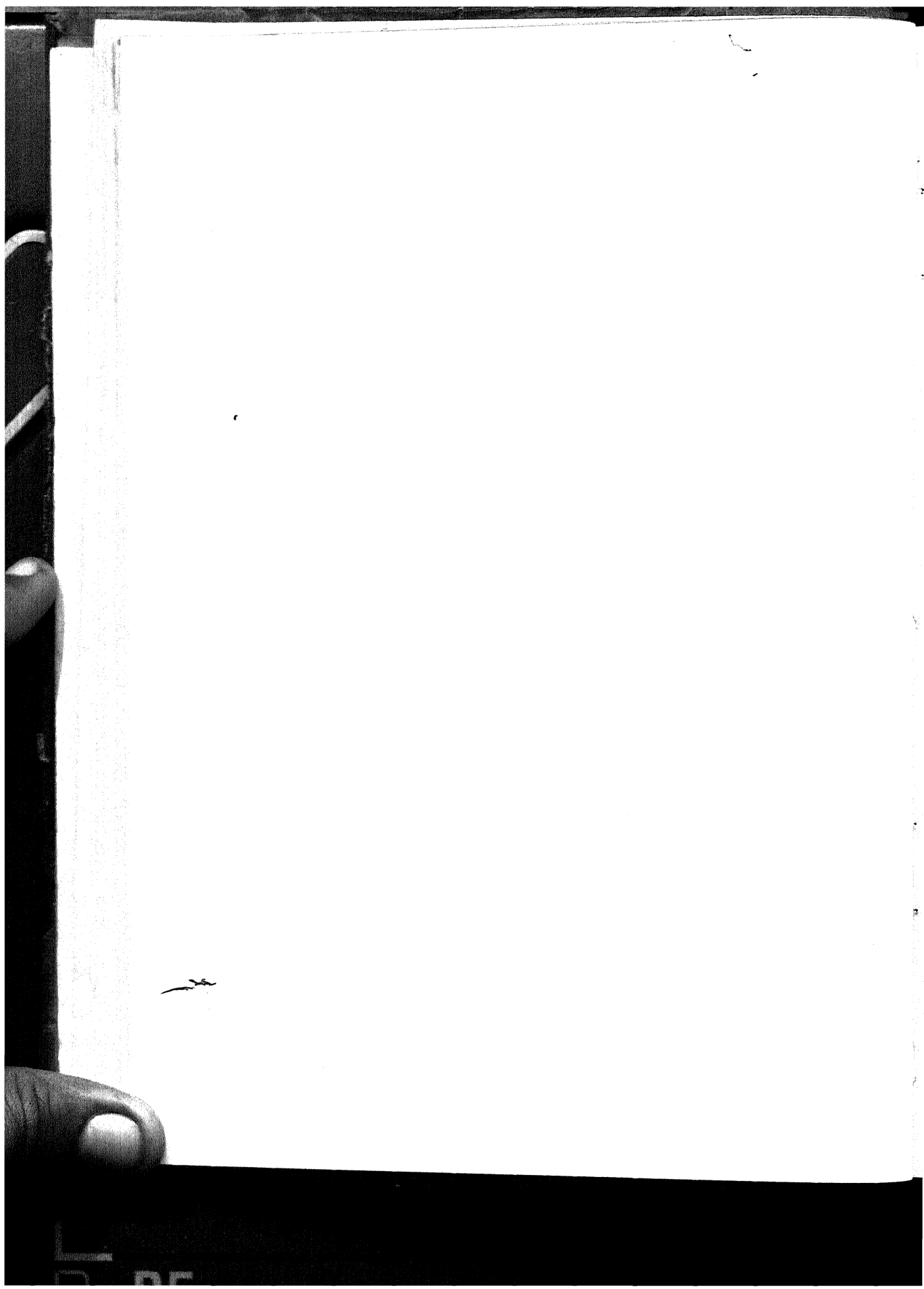
कल बंगाल कौन जाता है, भेजूँ उसे जहन्नुम,
और अभी ही साथ-साथ ही चुपके चली चलो तुम।"
"कौन? कौन? क्या तू सलीम है? क्या सलीम शहज़ादा
परघर जाकर, तस्कर बनकर, ऐसा नीच इरादा?
मेरा तो विश्वास और था, धोखा मैंने खाया,
जाओ, अभी निकल जाओ तुम, पग जो एक बढ़ाया,
देती हूँ आवाज़ अभी मैं, चोर पकड़ जाता है,
हत्यारेका हाथ अभी ही अभी जकड़ जाता है।
परनारीके घरमें घुसना पतिका ख़ून बहाने,
फिर भी अपनेको सलीम कह आया मुँह दिखलाने।
रुको नहीं, उलटे पावों तुम फौरन पीछे जाओ,
होकर कौन? चले क्या करने? जरा शर्म तो खाओ!"
"मेहर! मेहर! तुम क्या कहती हो, मैं हो गया पराया?
मेरी भावी सम्राज्ञीने किसको है अपनाया?
क्या चुम्बनके नहीं लगे हैं इन अधरोंपर ताले?
वही अधर हैं हुए आज यों मुझे रोकनेवाले।
जो मेरी आँखोंमें रहती, वही आँख दिखलावे,
जो कल संग हवा खाती थी, आज हवा बतलावे।
अपना ही साम्राज्य, उसीमें घुसने तलक न पाऊँ,
मेरी वस्तु और ले जावे, मैं तकता रह जाऊँ!
मैं ही खुद ही लूटा जाऊँ, मुझको कहो लुटेरा,
मुझको ही तुम चोर बनाओ, हृदय चुराकर मेरा!
क्यों आवाज़ लगाओगी? हाज़िर हूँ बन्दी कर लो,
जंजीरोंका कौन काम है, बाहुपाशमें भर लो।
पर 'अफ़ग़न' दिखला दो पहले उसे ख़त्म तो कर लूँ,
उसके बाद कहोगी जो कुछ करनेको हाज़िर हूँ।"
"बालापनसे पूछो जाके, उच्छृंखलता सारी,
सुमन विकास, मधुर अलि गुंजन, मुक्ताओंकी क्यारी,—
ऊषा निज अंचलमें भरकर चलती हुई विचारी,
जबसे उस विवाह-दिनकरकी आई इधर सवारी।
आज सलीम! बात करते हो जिससे, परनारी है,
जो अपने कर्तव्य-धर्मपर तन-मन-धन हारी है।
उससे उचित नहीं है तुमको, सोचो, अधिक ठहरना,
और किसीकी पत्नीसे यों बहकी बातें करना।

नहीं यहाँ साम्राज्य तुम्हारा, मेरा पावन घर है;
इसकी दीवारोंके भीतर दम्पति-धर्म अमर है।
नहीं तुम्हारा राज्य चाहती अपने घरकी रानी,
ऐसे नहीं गिराना होता कभी आँखका पानी।
मूर्ख बनो मत, सोचो-समझो, धर्म-नीति मत छोड़ो,
महापतनकी ओर न जाओ, पापोंसे मुख मोड़ो।
है वह कौन मेरे जीते-जी उनपर हाथ लगावे?
कभी न होगा लाखों ही का सर चाहे गिर जावे।
दोनोंमें से एक यहाँपर पहले सो जावेगा,
तब फिर बाल एक भी बाँका उनका हो पावेगा।
एक बार मैं फिर कहती हूँ, चुपकेसे चल दीजे,
बहुत हो चुका है इतना ही, अधिक देर मत कीजे।
राह लीजिए घरकी अपने, जाने मत यह कोई,
क्षण-भर जो तुम और रुके तो अपनी इज्ज़त खोई।
विनय मानते हो चुपकेसे, या आवाज़ लगाऊँ,
या हो रक्त देखना ही तो अपने हाथ दिखाऊँ?"

"ओ पाषाण-हृदय! बस-बस, अब जाता हूँ मैं जाता,
क्या सचमुच तू वही मेहर है, समझ नहीं कुछ आता।
कल जो प्यार मुझे करता था, आज वही दुत्कारे!
आज तलकके कोमल नाते रौंदे क्षणमें सारे!
स्वप्न देखता था क्या-क्या मैं, तूने मुझे जगाया,
क्या सम्राट विश्वका होना जो न तुम्हें अपनाया।
लाख बधाई! धन्य-धन्य है! तू जीती, मैं हारा,
तेरे इस पाषाण कोटमें मेरा कहाँ गुजारा!
अन्तिम विदा! चूक सब मेरी करना क्षमा दया कर,
रमणी क्या रहस्य है? भगवन! सोचूँगा घर जाकर।"

शीश झुकाकर दृष्टि डालता छिछली-सी रमणीपर,
बड़े वेगसे लौट चल दिया फिर नकाबमें छिपकर।
मेहर जमी रह गई वहींपर हिली न बोली-चाली,
मौन मूर्ति बन गई लिये करमें करवाल निराली।
ज्यों ही हुआ, सलीम निकलकर, अन्धकारमें, बाहर,
छूट गई तलवार हाथसे गिरी अचेत धरापर।

पुलिस और प्रार्थना

ओ० हेनरी

न्यूयार्कके मैसिडन पार्ककी बेंचपर सोपीने बेचैनीसे करवट बदली। जब रातमें जंगली हंस शोर मचाते हैं; जब वे स्त्रियाँ जिनके पास सम्बूरका कोट नहीं, अपने पतियोंके प्रति अधिक सदय हो जाती हैं, और जब सोपी पार्कमें अपनी बेंचपर बेचैनीसे इधर-उधर करवटें बदलता है, तब समझ लीजिए कि जाड़ा आने ही वाला है।

एक सूखी हुई पीली पत्ती सोपीकी गोदमें आ गिरी। वह मिस्टर जाड़ेखांका विज़टिंग कार्ड (प्रवेश-पत्र) था। जाड़ेखां मैसिडन स्क्वायरके स्थायी निवासियोंके प्रति बड़े दयालु हैं। वे प्रतिवर्ष अपने सालाना दौरेकी समुचित सूचना उन्हें पहले ही से दे देते हैं। चौराहेके कोने-कोनेपर खानाबदोशोंकी दरवान उत्तरीय हवाको जाड़ेखां अपने आगमनके इश्तिहार पहलेसे ही सिपुर्द कर देते हैं। ऐसा वे इसलिए करते हैं, ताकि पार्क और फुट-पाथके मौरूसी निवासी उनके आगमनके लिए तैयार हो जायँ।

सोपीको इस बातका अनुभव हुआ कि अब समय आ गया है, जब कि उसे अपनी जीविकाके लिए अपने-आपको एक वेतन और साधन समितिमें परिणत कर लेना चाहिए, जिससे आनेवाले कष्टके लिए साधन प्राप्त कर सके। इसी कारण सोपी अपनी बेंचपर बेचैनीसे करवटें बदल रहा था।

गर्म देशोंमें धनी लोग प्रतिवर्ष गर्मियोंमें पहाड़ी और ठंडे स्थानोंकी सैर करते हैं। सर्द मुल्कोंमें धनी लोग जाड़ेमें गर्म जगहोंकी सैर करते हैं। सोपीके वार्षिक सैर-सपाटेकी आकांक्षा बहुत उच्चकोटिकी न थी, क्योंकि उसमें मेडिटेरेनियनकी समुद्री यात्राओं, दक्षिणी अमेरिकाके स्वच्छ आकाशके नीचे सैर-सपाटे अथवा विसूवियसकी खाड़ीके जल-विहार जैसी बातोंके लिए कोई स्थान न था। उसकी उत्कट इच्छा, जिसके लिए उसकी आत्मा लालायित थी, सिर्फ तीन मास तक द्वीपमें * जाकर रहनेकी थी। तीन महीनेके खाने-पीने, रहने-बसनेका प्रबन्ध, मनचले संगियोंका साथ, उत्तरीय पवन और पुलिसमैनोंसे रक्षा—बस, यही सोपीकी समझमें वांछनीय वस्तुओंका सार था।

वर्षोंसे अतिथिप्रिय जेल ही सोपीका आरामदे शरद्-निवास था। जिस प्रकार न्यूयार्कके सौभाग्यशाली नागरिक प्रतिवर्ष 'पामबीच' या 'रिवेरा'के लिए टिकट कटाते थे, उसी प्रकार सोपी भी प्रतिवर्ष अपनी वार्षिक यात्राके लिए द्वीपके जेलमें प्रबन्ध करता था, और अब उस वार्षिक यात्राका समय आ पहुँचा था। गत रात जब वह पुराने स्क्वायरमें, फौवारोंके निकट, अपनी बेंचपर सोया था, तो रविवारके तीन अखबारोंको वह बिछाये-ओढ़े था; लेकिन वे भी सर्दीको दूर न कर सके, इसीलिए सोपीके दिमागमें उस द्वीप-जेलका समीचीन विचार उठने लगा। शहरमें निरावलम्बियोंके लिए दान-पुण्यके नामपर जो प्रबन्ध होता है, उससे वह घृणा करता था। सोपीके विचारमें दानके सहारेके बजाय क़ानून कहीं अधिक दयालु था। चारों ओर अनेकों ऐसी म्यूनिसिपल और दातव्य संस्थाएँ थीं, जहाँ उसे निवास तथा साधारण कोटिका भोजन मिल सकता था; किन्तु सोपी-जैसे स्वाभिमानीकी आत्माको दानका एक पैसा भी ऋणके भारसे दबा देता था। क्योंकि वह जानता था कि दानसे जो कुछ भी सहायता मिलती है, उसे चुकाना पड़ता है—पैसेके रूपमें न सही, आत्म-पतनके रूपमें तो अवश्य ही चुकाना पड़ेगा। जिस प्रकार ब्रूटसने अपने उपकारी सीज़रका खून करके उसकी उदारताका बदला चुकाया था, उसी प्रकार दानकी प्रत्येक शय्या

---

* न्यूयार्कके पास एक द्वीप है, जिसमें न्यूयार्कका जेल है। द्वीपमें जेलखाना ही प्रधान होनेके कारण न्यूयार्कमें बोलचालमें द्वीपके अर्थ ही जेल हो गये हैं।

और ख़ैरातका प्रत्येक टुकड़ा अपना गुप्त बदला और प्रतिहिंसा लिये बिना नहीं रहता। इसीलिए सोपीने सोचा कि क़ानूनका (सरकारका) मेहमान बनना कहीं अच्छा है, क्योंकि यह मेहमानदारी यद्यपि कठिन नियमों द्वारा परिचालित होती है, फिर भी वह किसी भलेमानसके व्यक्तिगत कार्यों में अनुचित रूपसे हस्तक्षेप तो नहीं करती !

द्वीपमें जानेका निश्चयकर सोपी इस निश्चयकी पूर्तिके लिए तैयार हो गया। इसके लिए अनेकों आसान तरीक़े थे। उनमें से सबसे मनोरंजक तरीक़ा यह था कि किसी महँगे होटलमें जाकर बढ़िया-से-बढ़िया माल खाया जाय, और खा-पीकर अपनेको दिवालिया घोषित कर दिया जाय। बस, होटलवाले चुपचाप बिना किसी शोरगुलके उसे पुलिसके हवाले कर देंगे। इसके बाद तो मेहरबान मैजिस्ट्रेट साहब खाने-पीने, रहने आदिकी बाक़ी सब व्यवस्था कर ही देंगे।

सोपी अपनी बेंचसे उठकर स्क्वायरके बाहर चला और उस चौराहेपर जा पहुँचा, जहाँ ब्राडवे और फिफ्थ एविन्यूका संगम होता है। फिर वह ब्राडवेकी ओरको मुड़ा और एक जगमगाते हुए होटलके सामने जाकर ठहर गया। इस होटलमें प्रतिदिन सन्ध्याको अंगूर, रेशमके कीड़ों और मनुष्योंकी सबसे अच्छी उपज इकट्ठी होती है।

सोपीको अपने वेस्टकोटके सबसे नीचेके बटनसे लेकर सिर तकके हिस्सेपर पूरा विश्वास था। उसकी दाढ़ी घुटी थी, कोट सुन्दर था, और गलेमें एक साफ़-सुथरी नेकटाई, जिसे एक मिशनरी महिलाने एक उत्सवके उपलक्षमें उसे उपहार-स्वरूप भेंट किया था, बँधी थी। इस प्रकार ऊपरी धड़के हिसाबसे वह भलेमानसोंकी गिनतीमें आ सकता था। यदि वह बेरोक-टोक होटलकी किसी टेबिल तक पहुँच जाय, तब तो निश्चय ही उसे सफलता मिलेगी। क्योंकि उसके शरीरका जो हिस्सा टेबिलके ऊपर दिखाई देगा, उससे वेटरको उसे एक भलामानस समझनेमें आशंका न होगी। सोपीने सोचा कि बतक़का कबाब, श्वेत मदिराकी एक बोतल, थोड़ासा बढ़िया पनीर, एक टोस्ट और एक सिगार---बस, भोजनके लिए इतना ही काफ़ी होगा। सिगार एक डालरवाला ठीक होगा। और फिर इन सब चीज़ोंका मूल्य भी तो इतना अधिक न होगा कि जिसके लिए होटलवालोंकी ओरसे बदला लेनेके लिए कोई ज्यादा ज़ोर-ज़ुल्म किया जाय। फिर कबाब और मांससे पेट भी अच्छी तरह भर जायगा, जिससे शरद्-निवासकी यात्रा भी आरामसे हो सकेगी।

मगर सोपीने जैसे ही होटलके दरवाज़ेमें क़दम रखा, वैसे ही हेड वेटरकी नज़र उसके फटे पाजामे और चिथड़े जूतोंपर जा पड़ी। वेटरके मज़बूत हाथोंने तेज़ीसे उसे दबोचकर बिना एक शब्दके पासवाली गलीमें जा ढकेला, और इस प्रकार उसने बतक़के कबाबोंको दुर्भाग्यसे बचा लिया।

सोपी ब्राडवेसे लौट पड़ा। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उसके आकांक्षित द्वीपका मार्ग चैनसे कटनेवाला नहीं है, इसलिए कारागारमें घुसनेके लिए अब कोई दूसरा उपाय सोचना होगा।

सिक्स्थ एविन्यूके कोनेपर बिजली बत्तियों तथा शीशेके अन्दर होशियारीसे सजाये हुए सामानोंके कारण एक दूकानकी खिड़कियाँ विशेषरूपसे जगमगा रही थीं। सोपीने एक रोड़ा उठाया और उसे शीशेपर फेंक मारा। दूकानके कोनेसे लोग दौड़ पड़े। सबके पहले एक पुलिसमैन था। सोपी जेबोंमें हाथ डाले अचल खड़ा रहा, और पुलिसमैनके पीतलके बटनोंको देखकर मुस्कराने लगा।

"कहाँ है वह आदमी, जिसने शीशा तोड़ा है ?" पुलिसमैनने कुछ उत्तेजित होकर पूछा।

"क्या तुम मुझपर यह इलज़ाम लगाना चाहते हो कि मेरा भी इससे कोई सरोकार है ?"—सोपीने व्यंग्यसे, परन्तु ऐसे मित्रता-भरे स्वरमें कहा, जैसे कोई अपने सौभाग्यका स्वागत करता हो।

पुलिसमैनके दिलने सोपीपर सन्देह करनेसे

इनकार किया, क्योंकि उसने सोचा कि जो आदमी खिड़कियोंके शीशे तोड़ते हैं, वे भला क़ानूनके पुतलोंसे बातें करनेके लिए ठहरते हैं ! वे तो फ़ौरन रफ़ूचक्कर हो जाते हैं। पुलिसमैनने थोड़ी दूरपर एक आदमीको ट्राम पकड़नेके लिए दौड़ते देखा। बस, वह फ़ौरन अपना डंडा निकाले हुए उसके पीछे दौड़ पड़ा। सोपी दो बार अपनी चेष्टामें विफल होकर मटरगश्ती करता हुआ आगे बढ़ने लगा।

सड़कके दूसरी ओर एक और होटल था। उसमें अधिक तड़क-भड़क न थी। वह बड़ी ख़ुराक और कम पैसेवाले ग्राहकोंके लिए था, इसलिए उसके बर्तन आदि तो भारी थे, लेकिन शोरवा पतला था। इस होटलमें सोपी अपने टूटे जूतों और भेदखोलू पाजामेके साथ बिना किसी रोक-टोकके घुस गया और एक टेबिलपर जा डटा। उसने गोश्त, हलुआ और अन्य तरह-तरहकी चीज़ें डाटकर खाईं। खा-पी चुकनेके बाद उसने वेटरसे यह भेद खोला कि उससे और पैसेसे जान-पहचान भी नहीं है !

"बैठे क्या हो, पुलिस बुलाओ,"—सोपीने कहा—"किसी भलेमानसको बैठाकर इन्तज़ार कराना अच्छा नहीं।"

"तुम्हारे लिए पुलिस !"—वेटरने गम्भीर स्वर और आँखें लाल-पीली करते हुए कहा—"वाह, क्या तमाशा है !"

दो वेटरोंने सोपीको उसकी बाईं कनपटीके बल कठोर फुट-पाथपर जा पटका। जिस तरह बढ़ई अपने दो फीटवाले पैमानेको खोलता है, उसी प्रकार सोपी धीरे-धीरे अपने समूचे अंगोंको समेटते हुए उठा। उठकर उसने कपड़ोंसे धूल झाड़ी। अब गिरफ्तारी उसे सुख-स्वप्न-सी जान पड़ने लगी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसका मनोवांछित द्वीप बहुत दूर है। दो दरवाज़ोंके बाद एक दरवाज़ेके सामने एक कान्स्टेबिल खड़ा था। वह इस दृश्यको देखकर हँसने लगा, और सड़कपर टहलता हुआ चला गया।

चार-पाँच मकान पार करनेके बाद सोपीको पुनः इतना साहस हुआ कि गिरफ्तारीके लिए कोई दूसरा मार्ग सोचे। इस बार उसे जो सुअवसर प्राप्त हुआ, उसमें उसे प्रेमी बनने और पकड़े जानेका अच्छा मौक़ा दिखाई दिया। एक अच्छी सूरत-शक्ल और सुन्दर कपड़ेवाली युवती एक दूकानकी खिड़कीके सामने खड़ी होकर बड़ी दिलचस्पीसे दूकानमें सजे हुए हजामत बनानेके प्याले और क़लमदानको देख रही थी। खिड़कीसे दो ही गज़की दूरीपर कठोर सूरतवाला एक लम्बा-सा कान्स्टेबिल पानीके नलके सहारे झुका खड़ा था।

सोपीने एक घृणित बाज़ारू छैलेका स्वांग करनेकी ठानी। अपने शिकारका परिमार्जित वेश और सुन्दर आकृति तथा पासमें सतर्क कान्स्टेबिलकी मौजूदगीसे सोपीको इस बातका विश्वास होने लगा कि अब वह शीघ्र ही पुलिसकी आनन्ददायक मुट्ठीमें आ जायगा, जिससे उस छोटे और गँसे हुए द्वीपमें उसका शरद्-निवास निश्चित हो जायगा।

सोपीने मिशनरी महिला द्वारा दी गई टाईको ठीक किया, अपने सिकुड़े हुए कफोंको खींचकर बाहर निकाला, हैट बड़े मारू ढंगसे तिरछा किया और उस युवतीकी बग़लमें जा डटा। उसने उसपर सैन चलाई, खाँसा-खखारा, मुसकराया, दाँत निपोरे और निर्लज्जतासे बाज़ारू छैलोंके बँधे हुए शब्दोंमें प्रेमकी प्रार्थना की। सोपीने कनखियोंसे यह भी देख लिया कि कान्स्टेबिल उसे बड़े ग़ौरसे देख रहा है। वह युवती दो-चार क़दम आगे हट गई, और फिर हजामतवाले प्यालेको देखनेमें तल्लीन हो गई। सोपी फिर ढिठाईसे उसकी बग़लमें जा पहुँचा, और लम्बा सलाम बजाकर बोला—"क्यों बेडालिया ! मेरे आँगनमें आकर मेरे साथ खेलोगी नहीं ?"

कान्स्टेबिल अब भी उसे देख रहा था। उस निपीड़ित युवतीके उँगलीके इशारे-भरकी देर थी, और सोपी अपने-आपको अपने समुद्री स्वर्गके मार्गमें पाता। अपनी कल्पनामें वह अभीसे ही हाजतकी कोठरीकी

आरामदे गर्मीको महसूस कर रहा था। युवती घूमकर उसके सामने आई, और अपना हाथ बढ़ाकर सोपीकी आस्तीनको पकड़ लिया।

"बेशक माइक!"—उसने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—"मैं बहुत पहले ही तुमसे बोली होती, लेकिन सिपाही देख रहा था।"

चिनारके पेड़में लिपटी हुई लताकी भाँति सोपीके साथ वह युवती पुलिसमैनकी बग़लसे होकर निकली। सोपीका हृदय निराशासे भर गया। हाय रे बदक़िस्मती, क्या उसके भाग्यमें स्वतन्त्रता ही बदी है!

सड़ककी दूसरी मोड़पर वह उस युवतीसे पिंड छुड़ाकर भागा, और एक ऐसे मुहल्लेमें जाकर दम ली, जहाँ रातमें सड़कोंपर अत्यधिक रोशनी रहती है, जहाँ बेफ़िक्रे लोग और गाने-बजानेकी भरमार होती है। औरतें सम्बूर और पुरुष ओवरकोट पहने जाड़ेकी ठंडी हवामें प्रसन्नतासे इठलाते हुए घूमते हैं। सोपीको अचानक इस बातका भय हुआ कि शायद किसीने उसपर कोई टोना-टोटका तो नहीं कर दिया है, जिससे वह पुलिसके हाथों पड़नेसे सुरक्षित हो गया हो। इस विचारने उसे दहला दिया। जब वह एक दूसरे कान्स्टेबिलके सामने, जो एक जगमगाते हुए थियेटरके फाटकपर शानसे टहल रहा था, आया, तो डूबतेको तिनकेके सहारेके समान उसने शराबी बननेका ढोंग किया।

सड़कके किनारे सोपीने पियक्कड़ोंकी तरह अपनी बेतुकी आवाज़में बहुत ज़ोरसे ऊटपटाँग चिल्लाना शुरू किया। वह नाचकर, चिल्लाकर, भूँककर, बक-झक करके तथा अन्य प्रकारसे शान्ति भंग करने लगा।

कान्स्टेबिलने अपने डंडेको घुमाया, और सोपीकी ओर पीठ फेरकर एक राहचलतेसे कहने लगा—"यह उन्हीं आवारा लड़कोंमें से है, जो हार्टफोर्ड कालेज भेजे जाते हैं। यह सिर्फ शोर-गुल करनेवाले हैं, किसीको नुक़सान नहीं पहुँचाते। हम लोगोंको हिदायत है कि इन्हें न पकड़ें।"

अधीर सोपीने अब अपने व्यर्थके चिल्लानेको बन्द कर दिया। उसने दुखित होकर सोचा, क्या कभी मुझे कोई कान्स्टेबिल न पकड़ेगा? उसकी कल्पनामें जेल-द्वीप एक अप्राप्य नन्दन-कानन-सा था। ठंडी हवासे बचनेके लिए उसने अपने पतले कोटके बटनको बन्द किया।

एक सिगारकी दूकानमें उसने देखा कि अच्छी पोशाक पहने एक आदमी लटकती हुई जलती रस्सीसे सिगार जला रहा है। उस आदमीने अन्दर जाते समय अपना रेशमी छाता दरवाज़ेके पास टिका दिया है। सोपीने अन्दर जाकर छाता उठा लिया, और उसे लेकर वह लापरवाहीसे आहिस्ता-आहिस्ता चलता बना। सिगार जलानेवाला तेज़ीसे सोपीके पीछे लपका।

"मेरा छाता,"—उसने कठोरतासे कहा।

"ओह! तुम्हारा?"—सोपीने नाक-भौं सिकोड़कर अपनी टुच्ची चोरीपर सीनाज़ोरी दिखलाते हुए कहा—"तुम्हारा है तो पुलिसको क्यों नहीं बुलाते? हाँ, मैंने लिया तो है। तुम्हारा छाता! पुलिसको क्यों नहीं बुलाते? देखो, उस कोनेपर एक कान्स्टेबिल तो खड़ा है।"

छातेवालेने अपनी चाल धीमी कर दी। सोपीने भी वैसा ही किया, इस भावनासे कि शायद उसका भाग्य पलटा खा जाय। कान्स्टेबिलने उन दोनोंको कौतूहलसे देखा।

"सचमुच,"—उस छातेवालेने कहा—"यह आपका हो सकता है—आप जानते ही हैं कि इस प्रकारकी भूलें अकसर हो जाया करती हैं—मैं—यदि यह आपका है, मैं आशा करता हूँ कि इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे—मैंने इसे आज सुबह एक होटलसे उठा लिया था—अगर आप इसे पहचानते हैं कि यह आपका है, क्यों—मैं आशा करता हूँ, आप इसे अवश्य पहचानते होंगे—"

छातेवाला बिना छातेका होकर पीछे हट गया। कान्स्टेबिल एक लम्बी गोरी सुन्दरीको सड़क पार करनेमें

सहायता देनेके लिए तेज़ीसे दौड़ पड़ा, क्योंकि वह दूसरी ओरसे आती हुई एक मोटरके सामने पड़ गई थी।

अब सोपी पूरवकी एक ऐसी सड़कसे चला, जो मरम्मतके लिए खुदी हुई थी। उसने गुस्सेसे छातेको घुमाकर सड़कके एक गड्ढेमें फेंक दिया, और पुलिसकी टोपी पहननेवालों और डंडे रखनेवालोंको कोसने लगा; क्योंकि वह अपने-आपको उनके पंजोंमें फँसाना चाहता था। मगर जान पड़ता था कि वे कमबख़्त उसे बादशाह समझते थे, जो कभी कोई जुर्म ही नहीं कर सकता।

आख़िर सोपी पूरवकी एक चौड़ी सड़कपर जा पहुँचा, जहाँपर रोशनी और शोरगुल कम था। अब वह मुँह फिराकर मैसिडन स्क्वायरकी ओर चला; क्योंकि घर जानेकी स्वाभाविक इच्छा सभीमें होती है, चाहे वह घर, घर न होकर पार्ककी बेंच ही क्यों न हो।

मगर सोपी सड़कके एक कोनेपर आकर चुपचाप खड़ा हो गया। यहाँ असाधारण शान्ति विराज रही थी। यहाँ एक विचित्र रूपका मेहराबदार लटा हुआ पुराना गिरजाघर था। बेंगनी रंगकी खिड़कीसे एक हलकी-सी रोशनी चमक रही थी। निस्सन्देह इस समय वहाँ 'आरगेन' बजानेवाला बाजेके परदोंपर उँगलियाँ फेरकर आगामी रविवारकी प्रार्थनाके लिए अपने संगीतको पक्का कर रहा होगा। बाजेकी मधुर ध्वनि लहराती हुई सोपीके कानोंमें पड़ रही थी, जिसे सुनकर वह मन्त्रमुग्ध-सा लोहेके जँगलेके सहारे खड़ा हो गया।

ऊपर आकाशमें चन्द्रमा शान्त-भावसे चमक रहा था; गाड़ियों और मुसाफ़िरोंकी आमद-रफ्त बहुत कम थी; ओलतीपर उनींदी गौरैया कभी-कभी चूँ-चूँ कर उठती थी। कुछ क्षणके लिए ऐसा जान पड़ा, मानो यह दृश्य किसी ग्रामीण गिरजेका हो। उस प्रार्थनाने, जिसे बाजेवाला बजा रहा था, सोपीको लोहेके जँगलेके साथ मानो जड़ दिया; क्योंकि सोपी इस प्रार्थना-गीतको उन दिनोंमें अच्छी तरह जानता था, जब उसके जीवनमें भी ऐसी चीज़ें थीं, जैसे माता, गुलाब, आकांक्षाएँ, मित्र, उज्ज्वल विचार और उज्ज्वल वस्त्र।

सोपीके ग्रहणशील मस्तिष्क और इस पुराने गिरजेसे संलग्न प्रभावोंने उसकी आत्मामें एक विचित्र साहस और आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया। उसने एकाएक भयसे उस गड्ढेको देखा, जिसमें वह जा गिरा था, और देखा अपने उन पतित दिनोंको, उन दुष्ट इच्छाओंको, उन मरी हुई आशाओंको, उन विनष्ट शक्तियोंको और उन निकृष्ट उद्देशोंको, जो उसके अस्तित्वके अंग बन गये थे।

एक क्षणमें ही उसके हृदयने इस नवीन भावनाको रोमांचके साथ अपना लिया। एक क्षणिक परन्तु बलशाली विचारने उसे अपने निराशा-भरे भाग्यसे युद्ध करनेके लिए प्रोत्साहित किया। उसने निश्चय किया कि वह अपनेको इस कीचड़से निकालेगा; वह अपनेको एक बार फिर मनुष्य बनावेगा; वह उन बुराइयोंपर विजय प्राप्त करेगा, जो उसपर अधिकार जमाये हुई हैं। अभी भी समय है। वह अभी भी अपेक्षाकृत जवान है, वह अपनी मृत उच्चाकांक्षाओंको पुनर्जीवित करेगा और दृढ़तापूर्वक उनका अनुसरण करेगा। आरगेनके इन गम्भीर मधुर सुरोंने उसके हृदयमें क्रान्ति मचा दी। एक सम्बूरके व्यापारीने एक बार उसे कोचवानकी नौकरी देनेको कहा था। कल सवेरे ही वह उस व्यापारीको खोजकर उस नौकरीकी प्रार्थना करेगा। वह भी दुनियामें कुछ बनेगा। वह भी····

सोपीको जान पड़ा कि किसीने उसकी बाँह पकड़ी। उसने तेज़ीसे घूमकर देखा। सामने एक चौड़े मुँहका पुलिसमैन खड़ा था।

"तुम यहाँ क्या कर रहे हो?"—पुलिसमैनने पूछा।

"कुछ नहीं।"—सोपीने उत्तर दिया।

"तो मेरे साथ आओ।"—कान्स्टेबिल बोला।

दूसरे दिन सवेरे पुलिस-अदालतमें मैजिस्ट्रेटने हुक्म सुनाते हुए कहा—"तीन महीनेका द्वीप-वास (जेलख़ाना)।"

अनुवादक—**श्रीपति पाण्डेय**

भारत-सरकारकी करेन्सी-नीति

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

अंगरेज़ी राज्यमें भारतीय मुद्रानीति (Currency policy) की समस्या बराबरसे यही रही है कि चाँदीके सिक्केका प्रचलन क़ायम रखते हुए ऐसा प्रबन्ध किया जाय, जिससे विदेशी वाणिज्यके लिए एक स्थिर विनिमय-दरपर रुपयेको सोनेके रूपमें परिवर्तित किया जा सके। सन् १८३५ के एक क़ानूनके अनुसार ब्रिटिश भारतका सिक्का रुपया प्रचलित हुआ; किन्तु चाँदीका रुपया प्रचलित होनेपर भी १५ रुपयेके स्वर्ण-मोहर बनते ही रहे, और वे सरकारकी खज़ानेमें स्वीकृत भी कर लिये जाते थे। चूंकि उस समय स्वर्ण-मोहर और रुपयेका वजन एक समान था, इसलिए दोनोंके बीच १५ और १ की विनिमय-दर स्थिर की गई, अर्थात्—एक स्वर्ण-मोहर १५ रुपयेके बराबर समझा गया। इसके बाद आस्ट्रेलियाकी खानोंमें प्रचुर परिमाणमें सोनेका पता लगनेसे सोनेका बाहुल्य हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्वर्ण-मोहरका बाज़ार-मूल्य १५ रुपयेसे बहुत कम हो गया। इस सम्बन्धमें सन् १८५२ में ईस्ट इंडिया कम्पनीके डाइरेक्टरोंने लिखा था—

"This has been and is likely to be still more embarrassing to the Government of India... as holders of gold coin have naturally availed themselves of obtaining at the Government Treasuries a larger price than they could get in the market."

अर्थात्—'इससे भारत-सरकारको यह परेशानी हो रही है कि जिन लोगोंके पास स्वर्ण-मोहर थे, वे सरकारी खज़ानेमें मोहरके बदले अधिक रुपया पाने लगे, जितना रुपया उन्हें बाज़ारमें नहीं मिल सकता था।' इसके बाद सन् १८५३ की पहली जनवरीको सरकारने यह घोषणा कर दी कि किसी भी सरकारी खज़ानेमें स्वर्ण-मुद्रा ग्रहण नहीं की जायगी। सन् १८६४ में फिर एक बार स्वर्ण-मुद्राको Legal tender के रूपमें प्रचलित करनेकी कोशिश की गई; पर ब्रिटिश सरकारने इसे स्वीकार नहीं किया। हाँ, परीक्षाके रूपमें उसने यह स्वीकार किया कि १० रुपये और ५ रुपयेके बदलेमें Sovereign (विलायती सिक्का गिन्नी) और Half-Sovereign (अर्द्ध-गिन्नी) सरकारी खज़ानेमें ले लिये जायँगे।

इसके बाद सन् १८५२ में जो स्थिति थी, ठीक उसके विपरीत स्थिति उत्पन्न हो गई। सोनेकी उत्पत्तिमें जो वृद्धि हो रही थी, वह कम हो गई और चाँदीकी उत्पत्ति बढ़ गई। इस समय इंग्लैण्डमें सोना और चाँदी दोनों धातुओंके सिक्के (Bi-metallic currency) प्रचलित थे; किन्तु 'ग्रेशम्स लॉ' (Gresham's Law) के कारण द्विधातुक मुद्राका प्रचलन असम्भव हो गया। (सोलहवीं शताब्दीमें सर टामस ग्रेशम्सने अर्थशास्त्रका यह सुप्रसिद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि यदि दो प्रकारकी मुद्राएँ प्रचलित हों और उनमें एक दूसरेकी अपेक्षा अच्छी हो, तो अच्छी मुद्राका प्रचलन बन्द हो जायगा।) इस सिद्धान्तके अनुसार इंग्लैण्डमें द्विधातुक मुद्राका प्रचलन क़ायम न रह सका। इंग्लैण्डकी सरकारने चाँदीका सिक्का अबाध रूपमें ढाला जाना बन्द कर दिया, जिससे एकमात्र स्वर्णमानपर ही सिक्केका आधार स्थिर रह गया। इंग्लैण्डके बाद संसारके अन्यान्य प्रमुख राष्ट्रोंने भी इसी मार्गका अनुसरण किया। इससे सोनेकी माँग बढ़ गई और चाँदीकी घट गई। इस प्रकार संसारके प्रमुख देशोंमें स्वर्णमान प्रचलित हो जानेसे उनमें परस्पर वाणिज्य-सम्बन्धमें कोई फ़र्क नहीं पड़ा; किन्तु भारतके साथ दूसरी ही बात थी। यहाँ अबाध रूपमें चाँदीके सिक्केका प्रचलन था, अर्थात्—कोई भी व्यक्ति टकसालमें चाँदी देकर उसके बदले रुपया पा सकता था। इसके परिणामस्वरूप रुपयेका मूल्य चाँदीके साथ आबद्ध कर दिया गया, जिससे सोनेके अनुपातसे चाँदीके मूल्यमें जितना ह्रास होता था, उसी अनुपातसे रुपयेके विनिमय-मूल्यमें भी ह्रास हो जाता था। इस प्रकार रुपयेके मूल्यमें क्रमशः ह्रास होनेसे वाणिज्यमें बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगीं। कठिनाइयाँ यहाँ तक बढ़ीं कि 'बंगाल चेम्बर आफ् कामर्स'की ओरसे यह शिकायत की गई कि 'व्यवसायियोंके लिए रुपयेके भावी मूल्यमें विश्वास करना असम्भव हो गया है।' इसलिए सोना और चाँदीके बीच विनिमय-मूल्य स्थिर करनेके लिए या तो कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हो, और यदि समझौता न हो सके, तो भारत-सरकार भी स्वर्णमान प्रचलित

करनेके सम्बन्धमें विचार करे। इसी समय द्विधातुक मुद्राके समर्थक सोने और चाँदीके विनिमय-मूल्यके सम्बन्धमें इस प्रकारकी चेष्टा कर रहे थे, और इस उद्देश्यसे ब्रूसेल्स नगरमें एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी हुआ ; किन्तु उसका परिणाम कुछ भी नहीं हुआ।

सन् १८९३ में भारत-सरकारने देशकी व्यापारिक संस्थाओंकी व्यापक माँगके कारण भारत-मन्त्रीके पास यह प्रस्ताव भेजा कि टकसालोंमें चाँदीके सिक्केका अबाध ढाला जाना बन्द कर दिया जाय, जिससे रुपयेके विनिमय-मूल्यका क्रमिक ह्रास बन्द हो जाय और स्वर्णमान प्रचलित हो सके। इस विषयपर विचार करनेके लिए लार्ड हर्शेलकी अध्यक्षतामें एक कमेटी नियुक्त की गई। इस कमेटीने अपनी रिपोर्टमें कुछ परिवर्तनके साथ भारत-सरकारके प्रस्तावको मंजूर कर लेनेकी सिफारिश की। हर्शेल-कमेटीकी सिफारिशोंमें सिर्फ इतना ही कहा गया था कि चाँदीके सिक्केकी अबाध ढलाईके लिए टकसाल बन्द कर दिये जायँ और सरकार रुपयेके बदलेमें सोना लिया करे। किन्तु इतनेसे ही समस्याका समाधान नहीं होता था। भारतमें स्वर्णमान (Gold Standard) स्थापित करनेका जो मुख्य ध्येय था, वह अभी बाक़ी ही था, इसलिए सरकारने हर्शेल-कमेटीके प्रस्तावोंको स्वीकार करते हुए उसके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए सन् १८९८ में एक शाही कमीशन नियुक्त किया, जिसके सभापति सर हेनरी फाउलर थे। जिस समय फाउलर-कमेटी स्थापित हुई थी, उस समय भारत-सरकारकी भी यह राय थी कि भारतके लिए स्वर्णमान और स्वर्ण-मुद्रा अत्यावश्यक और अनिवार्य है। भारत-सरकारने इस प्रश्नपर अपनी राय इन शब्दोंमें ज़ाहिर की थी—

"The only state of things which can be called a thoroughly satisfactory attainment of Gold Standard is one in which the gold coins which represent one standard and those also which are good for payment in England."

इस प्रकार सिद्धान्त रूपसे भारत-सरकारने भी स्वर्णमानके साथ स्वर्ण-मुद्राको मान लिया था। फाउलर-कमेटीने यह सिफारिश की थी—"...to proceed with measures for the effective establishment of a gold standard."

अर्थात्—'स्वर्णमान स्थापित करनेके लिए क्रियात्मक उपाय काममें लाना शुरू कर देना चाहिए।'

फाउलर कमेटीकी सिफारिशें इस प्रकार थीं :— (१) भारतीय टकसालोंको चाँदीके सिक्केकी अबाध ढलाईके लिए बन्द करके सोनेके सिक्केकी अबाध ढलाईके लिए खोल देना चाहिए। (२) विलायती सिक्का गिन्नी प्रचलित सिक्का होना चाहिए और इसे legal tender समझा जाना चाहिए। (३) रुपये और पौण्ड-स्टर्लिंगके बीच विनिमय-दर (ratio) १५ रुपया प्रति पौण्डके हिसाबसे स्थिर होना चाहिए, अर्थात्—रुपयेका विनिमय-मूल्य १ शि० ४ पेंस होना चाहिए। (४) देशके अन्दर भीतरी कामोंके लिए रुपयेके बदले सोना देनेकी क़ानूनी पाबन्दी नहीं होनी चाहिए। (५) रुपयेके ढालनेमें जो मुनाफा हो, उसे सोनेके रूपमें संरक्षित रखना चाहिए और उसकी मुद्रा तब तक नहीं ढाली जानी चाहिए, जब तक कि प्रचलित मुद्रामें सोनेका अनुपात जनताकी आवश्यकताओंसे बढ़ न जाय। भारत-सचिवकी ओरसे यह कहा गया था कि चूँकि भारतवासियोंकी आदत सोना जमा करनेकी है, इसलिए स्वर्ण-मुद्रा प्रचलित होनेसे इस आदतको और भी अधिक प्रोत्साहन मिलेगा—

"If gold coins were passed into the currency it could be at first almost like pouring water into a sieve."

अर्थात्—'यदि स्वर्ण-मुद्रा प्रचलित की जायगी, तो ऐसा ही होगा, जैसा चलनीमें पानी डालना। इस प्रश्नपर भी फाउलर-कमेटीने पूर्ण रूपसे विचार किया था, और वह इस परिणामपर पहुँची थी—

'Moreover, the introduction of a gold currency into India would not be an untried experiment. Gold coins were in common circulation in India generally within living memory. If hoarding did not render a gold circulation an impossibility in the past, we look for no such result in the future. Consequently, we are of opinion that the habit of hoarding does not present such practical difficulties as to justify a permanent refusal to allow India to possess the normal accompaniment of a gold standard, namely a gold currency."

अर्थात्—'भारतमें स्वर्ण-मुद्राका प्रचलन कोई अपरीक्षित

प्रयोग नहीं होगा। अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब कि भारतमें स्वर्ण-मुद्राका प्रचलन जारी था। अतीतकालमें जब सोना जमा करनेकी आदतके कारण स्वर्ण-मुद्राका प्रचलन असम्भव सिद्ध नहीं हुआ, तो भविष्यमें ऐसा परिणाम होगा, इसकी हम आशंका नहीं करते। इसलिए हमारी रायमें भारतवासियोंके सोना जमा करनेकी आदतके कारण ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित नहीं होतीं, जिनसे भारतको स्वर्णमानके साथ स्वर्ण-मुद्रा प्रचलित नहीं करने दिया जाय।"

फाउलर-कमेटीकी सिफारिशोंको भारत-मन्त्रीने बिना किसी मीन-मेषके स्वीकार कर लिया, और २५ जुलाई १८९९ को भारत-सरकारसे यह अनुरोध किया कि वह स्वर्ण-मुद्रा ढालनेकी तैयारी करे। इसके बाद ३१ जुलाई १८९९ को वायसरायने भारत-मन्त्रीके पास तार भेजा कि भारत-सरकार स्वर्ण-मुद्रा ढालनेकी तैयारी कर रही है। फिर भारत-मन्त्रीका जो आदेश मिला, उसके अनुसार भारत-सरकारको अपना निश्चय बदल देना पड़ा। सन् १८९३ के बादसे मुद्रा-नीतिका जो एक आवश्यक अंग समझा जाता था, और सन् १८९८ के कमीशनसे जो नीति निश्चित हो चुकी थी, उससे एकाएक क्यों पीछे हटा गया, इसका कोई कारण सरकारकी ओरसे जनताको नहीं बताया गया।* इस प्रकार फाउलर-कमेटीकी सिफारिशोंको ताकपर रखकर मि० लिन्डसेकी एक योजनाके अनुसार Sterling Exchange Standard (स्टर्लिंगके साथ रुपयेका विनिमय) स्वीकृत किया गया; हालाँ कि फाउलर-कमेटीने मि० लिन्डसेकी योजनाके विरुद्ध अपनी राय ज़ाहिर कर दी थी। सन् १८९८ से १९१४ तक यही स्थिति रही। इस बीच फाउलर-कमेटीकी सिफारिशोंके अनुसार कार्य करनेकी कोई चेष्टा नहीं की गई।

१७ अप्रैल १९१३ को एक दूसरा शाही कमीशन मि० आस्टिन चेम्बरलेनकी अध्यक्षतामें नियुक्त हुआ। सन् १९१४ की फरवरीमें कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। रिपोर्टके साथ कमीशनके एक सदस्य सर जेम्स बेगवाईने अपना मतभेद प्रकट किया था। इस कमेटीने स्वर्ण-मुद्राके साथ स्वर्णमान जारी करनेकी सिफारिश नहीं की थी; किन्तु रिपोर्टमें यह लिखा था—

"The Government should aim at giving the people the form of currency which they demand, whether rupees, notes or gold, but the use of notes should be encouraged."

अर्थात्—'सरकारका यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह जनताको उसकी माँगके अनुसार मुद्रा दे, चाहे वह रुपया हो, या नोट, या सोना; किन्तु नोटके व्यवहारका प्रोत्साहन देना चाहिए।'* सर जेम्स बेगवाईने अपनी मतभेदसूचक रिपोर्टमें लिखा था कि "गत बारह वर्षोंमें जनताने रुपया और गिन्नी समान तादादमें ग्रहण किया है। गत चार वर्षोंमें गिन्नीकी माँगमें वृद्धि हुई है, इससे जनताकी मुद्रा-सम्बन्धी आवश्यकताओंमें एक महत्वपूर्ण परिवर्तन मालूम होता है, और यह इस बातका द्योतक है कि जनता रुपयेकी अपेक्षा स्वर्ण-मुद्राको अधिक पसन्द करती है।" उसी रिपोर्टमें यह भी कहा गया था—

"It is no longer possible to say that the token rupee is preferred by the Indian public and satisfies their currency requirment in face of the fact that they have latterly exhibited so strong a desire for gold as the statistics indicate."

अर्थात्—'अब यह कहना सम्भव नहीं है कि भारतीय जनता भारतकी सांकेतिक मुद्रा रुपयेको पसन्द करती है, और इससे उनकी मुद्रा-विषयक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाती है, जब कि हमें आँकड़ोंसे पता चलता है कि जनताने स्वर्ण-मुद्राके लिए प्रबल इच्छा प्रकट की है।'

युद्धके पाँच वर्ष पूर्व विभिन्न प्रकारकी करेंसीकी जो खपत हुई थी, उसकी औसत संख्या इस प्रकार थी—रुपया ८,७८ लाख, नोट ३,०० लाख, गिन्नी और अर्द्ध-गिन्नी १०,६१ लाख। चेम्बरलेन-कमीशनकी रिपोर्टमें भी इस बातको स्वीकार किया गया था कि "गत चार वर्षोंमें

* No public explanation was given in India of this sudden recession from what had hitherto been regarded as an essential feature of the currency policy inaugurated in 1893 and difinitely established on the recommendation of the currency committee of 1898.

* कमेटीकी इस सिफारिशका अभिप्राय यही जान पड़ता है कि जनता जिस प्रकारका सिक्का चाहे, उसे उसी प्रकारका सिक्का मिलना चाहिए; किन्तु चूँकि स्वर्ण-मुद्रा भारतके लिए हानिकारक है, इसलिए नोटके व्यवहारको प्रोत्साहन देना चाहिए।

कई प्रान्तोंमें गिन्नीके व्यवहारमें वृद्धि हुई है।" फिर भी इसके अनुसार कार्य नहीं हुआ।

महायुद्धकाल

युद्धके प्रारम्भ होनेपर वाणिज्यकी दशा अस्तव्यस्त हो गई। लोगोंमें एक प्रकारका आतंक-सा छा गया। सेविंग्स बैंकमें जनताकी जो रक़म जमा थी, उसे वह वापस लेने लगी। सोनेकी माँग बढ़ गई और एक्सचेंज कमज़ोर होने लगा। इस स्थितिका सामना करनेके लिए सरकारने सन् १९१५ की जनवरी तक ८,७००,००० पौंडका 'रिवर्स-कौंसिल' (उल्टी हुंडियाँ) बेचीं, जिससे एक्सचेंजमें फिर मजबूती आ गई, और भारत-मन्त्री फिर 'कौंसिल ड्राफ्ट्स' (Council drafts) बेचनेमें समर्थ हुए। इसी समय कागज़ी नोटके प्रचलनमें भी जनताका विश्वास कम हो चला, जिसका परिणाम यह हुआ कि सात मासमें नोटके प्रचलनमें १० करोड़का ह्रास हुआ; किन्तु बादमें जनताका विश्वास इसपर फिर जमने लगा, जिससे ३० नवम्बर सन् १९१९ को नोटका प्रचलन बढ़कर १७८.९३ करोड़ हो गया, जब कि ३१ मार्च सन् १९१५ को यह संख्या सिर्फ ५५.६५ करोड़ थी। इधर सोनेकी माँगमें वृद्धि होनेके कारण सरकारको नोटके बदले सोना देना बन्द कर देना पड़ा। इसके बादसे नोटके बदलेमें सिर्फ चाँदीके रुपये ही मिलने लगे।

युद्धकालमें जर्मनी और आस्ट्रियासे मालकी आमदनी बिलकुल बन्द हो गई। इंग्लैण्ड तथा अन्यान्य देशोंसे भी तैयार मालकी आमदनी कम परिमाणमें होने लगी। उस समय वस्तुओंका मूल्य अत्यधिक होनेसे ही भारतका यह आयात-व्यापार क़ायम था। एक ओर तो आयात-व्यापारमें इस प्रकार ह्रास हो रहा था, और दूसरी ओर इस देशके कच्चे मालकी माँग बहुत बढ़ गई थी। मित्र शक्तियोंको खाद्य-पदार्थ तथा कच्चे मालकी ज़रूरत बहुत बड़ी तादादमें हुई, जिससे भारतका Trade balance (व्यापार-साम्य) बहुत ज्यादा बढ़ गया। सन् १९१३-१४ से लेकर सन् १९१८-१९ तक भारतके आयात और निर्यात व्यापारके आँकड़े बीचके कोष्ठकमें देखिये।

	निर्यात		आयात		बचत निर्यात (Net-export)	
सन् १९१३ - १४	२,४८,८८	लाख रु०	१,८३,२५	लाख रु०	६५,६३	लाख रु०
,, १९१४ - १५	१,८१,५९	,,	१,३७,९३	,,	४३,६६	,,
,, १९१५ - १६	१,९७,३८	,,	१,३१,९९	,,	६५,३९	,,
,, १९१६ - १७	२,४५,१५	,,	१,४९,६२	,,	९५,५३	,,
,, १९१७ - १८	२,४२,५६	,,	१,५०,४२	,,	९२,१४	,,
,, १९१८ - १९	२,५३,८५	,,	१,६९,०३	,,	८४,८२	,,

इस प्रकार सन् १९१४-१५ से लेकर सन् १९१८-१९ तक बचत निर्यात-व्यापारकी औसत संख्या ७९३१ लाख रुपया थी, जो युद्धके तीन वर्ष पूर्वकी संख्यासे कम थी। उपर्युक्त पाँच वर्षोंमें सोने और गिन्नीकी आमदनी औसत ७८० लाख और चाँदीकी औसत २९९ लाख हुई। इन पाँच वर्षोंमें सोने-चाँदीकी आमदनीमें युद्धके पूर्व पाँच वर्षोंकी अपेक्षा पचास फीसदीसे भी अधिक कमी हुई। इस ह्रासके कई कारण थे, जिनमें सर्वप्रधान कारण सोनेका अभाव था। प्रत्येक युद्धलिप्त राष्ट्रने सोनेकी रफ्तनीपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इधर युद्धके कारण तथा अन्य कई कारणोंसे चाँदीकी पैदावार बहुत कम हो गई है। इसके साथ ही संसारके विभिन्न देशोंमें और खासकर भारतमें चाँदीकी माँग बढ़नेसे चाँदीका मूल्य बेतरह बढ़ गया। सन् १९१४ में प्रति औंस चाँदीका मूल्य २७⅜ पेंस था, जो सन् १९१६ में ३७½ पेंस, १९१८ में ४८¾ पेंस और १९२० में ८९½ पेंस तक पहुँच गया। सोने-चाँदीकी आमदनीमें कमी हो जानेके कारण मुद्राकी माँग बहुत बढ़ गई। इस माँगका मुख्य कारण व्यापार-साम्य तो था ही, इसके अलावा ब्रिटिश सरकारकी ओरसे सैनिक कार्योंके लिए जो खर्च भारतमें किया जाता था, उससे भी इस माँगमें वृद्धि हुई। अप्रैल १९१६ और मार्च १९१९ के बीच सरकारने तीस

करोड़ औंस चाँदी खरीदी। इसके सिवा अमेरिकासे २० करोड़ औंस विशुद्ध चाँदी खरीदी गई। अमेरिकासे चाँदी खरीदनेका प्रबन्ध होनेके कारण सरकारको बड़ी सुविधा हुई। रुपयेका धातुके रूपमें मूल्य बढ़ने नहीं पावे, इसलिए सरकारने एक्सचेंजकी दर बढ़ाकर १ शि० ५ पेंस कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतमें जितनी चाँदी थी, रुपयेके हिसाबसे उसका मूल्य कम हो गया, और भारतके लिए चाँदीका निर्यात लाभदायक नहीं रह गया। यदि भारतसे चाँदीकी रफ्तनीपर रुकावट नहीं डाली जाती, तो चाँदीके मूल्यमें इतनी वृद्धि नहीं होती। एक्सचेंजके सम्बन्धमें ये सब कठिनाइयाँ भारतको युद्धके खर्चके कारण उठानी पड़ीं, जैसा कि तत्कालीन अर्थ-सचिव सर विलियमने भी स्वीकार किया था।

एक्सचेंजकी इस अस्थिरतामें ही ३० मई १९१९ को 'बेबिंगटन स्मिथ-कमेटी'की स्थापना हुई। इस कमेटीके ऊपर यह काम सौंपा गया कि वह इस बातकी जाँच करे कि युद्धके कारण भारतीय एक्सचेंज और मुद्रा-नीतिपर क्या प्रभाव पड़ा है। युद्धकालमें भारतने खाद्य-पदार्थ तथा युद्धके लिए कच्चा माल बहुत बड़ी तादादमें विदेश भेजा था। इससे भारतकी आर्थिक समृद्धि बहुत बढ़ गई होती; लेकिन एक्सचेंजमें बार-बार परिवर्तन होनेसे इसपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। युद्धके बाद जब एक्सचेंजको २ शिलिंगपर स्थिर करनेकी चेष्टा की गई, तब उससे तो भारतका सर्वनाश ही हो गया। कमेटीने २२ दिसम्बर १९१९ को अपनी रिपोर्ट पेश की। कमेटीके एकमात्र भारतीय सदस्य मि० दलालने अपनी मतभेदसूचक रिपोर्ट अलग दी थी। कमेटीकी सिफारिशोंमें सबसे मुख्य सिफारिश यह थी कि एक्सचेंजकी दर प्रतिगिन्नी १० रुपयेके हिसाबसे स्थिर कर दी जाय, अर्थात्—रुपयेका सम्बन्ध सोनेसे रहे, स्टर्लिंगके साथ नहीं; किन्तु इसके साथ ही कमेटीने यह भी उल्लेख कर दिया था—

"If contrary to expectation, a great and rapid fall in world prices were to take place and if the costs of production in India fail to adjust themselves with equal rapidity to the level of prices, then it might be necessary to consider the problem a fresh."

अर्थात्—'यदि आशाके विरुद्ध संसारकी वस्तुओंकी पैदावारका लागत-खर्च उसके अनुसार कम नहीं हो, तो इस समस्यापर फिरसे विचार करनेकी आवश्यकता हो सकती है।' बहुमतकी रिपोर्टके विरुद्ध अल्पमतकी रिपोर्टमें यह सिफारिश की गई थी कि रुपयेके स्टैन्डर्डमें कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए, अर्थात्—गिन्नी और स्वर्ण-मोहरके साथ रुपयेका अनुपात १५=१ का रहना चाहिए।

भारत-मंत्रीने बहुमतकी सिफारिशको मानकर गिन्नीका रेट १० रुपयेके हिसाबसे नियत कर दिया। इस घोषणाके साथ-साथ विनियम-दर बढ़कर २ शिलिंग ८½ पेंस कर दी गई। जिस समय एक्सचेंजकी दर २ शि० ६ पेंस थी, उस समय ही भारत-सरकारकी Reverse Councils (उल्टी हुंडी) की माँग बहुत बढ़ गई थी। अब एक्सचेंजकी इस नई दरसे तो माँगमें और भी वृद्धि हो गई। एक्सचेंजकी दरको क़ायम रखनेके लिए सन् १९२० में ५ फरवरीसे लेकर २८ सितम्बर तक प्रति सप्ताह लगातार उल्टी हुंडी बेची गई। इस प्रकार कुल मिलाकर अन्दाजन पाँच करोड़ पौण्डकी उल्टी हुंडी बेची गई। इस समय तक व्यापारकी विषमता भारतके विरुद्ध इतनी बढ़ गई कि एक्सचेंजकी दरको क़ायम रखना असम्भव हो गया। फिर सितम्बरके अन्तमें उल्टी हुंडीका बेचना बन्द कर दिया गया और एक्सचेंजकी दरको यों ही छोड़ दिया गया। इस घातक नीतिके विरुद्ध भारतके अर्थशास्त्रियोंने सरकारको पहलेसे ही चेतावनी दे दी थी; किन्तु लोकमतकी कुछ भी परवा न करके सरकार अपनी जिद्दपर क़ायम रही। यह नीति मि० बोमनजीके शब्दोंमें यह थी—

"In matters financial, the Indian civil service colluded with British merchants to bleed India in order to infuse new blood into England's trade."

अर्थात्—'आर्थिक विषयोंमें, इंडियन सिविल सर्विसवाले अंगरेज़ वणिकोंके साथ मिलकर भारतका रक्तशोषण करने लगे, जिससे इंग्लैण्डके मृतप्राय वाणिज्यमें ताजा खून देकर उसे पुनरुज्जीवित कर सकें।' सरकारकी इस नीतिपर आलोचना करते हुए 'कैपिटल' पत्रने लिखा था—

"That we have been dreadfully victimised by the insane financial policy of Simla autocrats."

अर्थात्—'शिमलेके निरंकुश अधिकारियोंकी मूर्खतापूर्ण अर्थिक नीतिका हमें भयानक रूपमें शिकार बनना पड़ा है।'

सर मान्टेगू वेबने उल्टी हुंडीकी बिक्रीसे भारतको कमसे कम ३०० करोड़ रुपयेकी हानि होनेका अन्दाज़ लगाया था। इसके अलावा ३५ करोड़ रुपयेकी तो प्रत्यक्ष हानि हुई। किसी-किसीने तो इस क्षतिका अन्दाज़ा ५०० करोड़ रुपया तक लगाया था। दूसरी दृष्टिसे यदि इस क्षतिपर विचार किया जाय, तो कहना चाहिए कि ५ करोड़ पौण्ड उल्टी हुंडीकी बिक्री भारतके लिए बिलकुल हानिकारक ही हुई। भारतको प्रत्यक्ष रूपमें हानि तो हुई ही, साथ ही अप्रत्यक्ष रूपमें भी कम हानि नहीं हुई। परिणाम-स्वरूप भारतको कई प्रकारकी क्षति पड़ी, जिसमें सबसे बढ़कर क्षति मुद्राके संकुचनके कारण हुई। देशसे बहुतसी पूँजी बाहर चली गई, और इंग्लैण्डमें अत्यधिक परिमाणमें विदेशी ऋण लेना पड़ा। सन् १९२१ के अप्रैलसे १९२३ के मई तक दो वर्षके अन्दर ही सरकारने भारतके स्टर्लिंग ऋणकी तादादमें ७ करोड़ पौण्डकी वृद्धि कर दी। देशपर जो इतना बड़ा संकट उपस्थित हुआ, इसके लिए तत्कालीन अर्थ-सचिव मि० हेली (इस समय सर) जिम्मेवार थे। मि० हेलीकी—जो इंडियन सिविल सर्विसके उज्वल रत्न समझे जाते हैं, जो इस समय संयुक्तप्रान्तके गवर्नर-पदको सुशोभित करते हैं और वर्तमान सिविलियनोंमें सबसे बढ़कर विचक्षण राजनीतिज्ञ समझे जाते हैं—अमलदारीमें भारतके ऊपर यह विपदा आई। किन्तु इसमें मि० हेलीका ही दोष न था। वे तो इंडिया-कौन्सिलके ग्रामोफोन बने हुए थे। वहाँसे जैसा आदेश होता था, वैसा वे करते थे। यदि अंगरेज़ भारतीयोंकी स्थितिमें होते और उनके साथ इस प्रकारका अन्याय होता, तो निन्दाकी आवाज़से सारा विश्व गूँज उठता। वे अपनी हानिका अन्दाज लगाकर क्षतिपूर्तिका एक बिल तैयार करते, और जिनके कारण उन्हें क्षति उठानी पड़ती, उनके सामने वह बिल पेश कर देते। जर्मनीसे क्षतिपूर्तिकी रक़म वसूल करनेमें कितनी तत्परता दिखलाई गई थी। मगर ग़रीब भारतको शान्तिके समय भी इतनी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी, जितनी युद्धकालमें युद्धलिप्त राष्ट्रोंको उठानी पड़ी थी। इतनेपर भी भारतवासियोंके कानोंपर जूँ तक नहीं रेंगी।

एक वर्षके अन्दर ही एक्सचेंजकी दर २ शि० ४ पेंससे गिरकर १ शि० ३ पें० हो जानेके कारण इस देशके व्यापारियोंको—जो बाहरसे माल मँगाते थे—बड़ी ही नाजुक स्थितिका सामना करना पड़ा। जिस समय उन्होंने मालके लिए आर्डर भेजा था, उस समय एक्सचेंजकी दर ऊँची थी; किन्तु माल पहुँचनेपर दर गिर गई। भारतीय बन्दरगाहोंमें माल भरे पड़े थे, जिनकी डेलिवरी नहीं ली गई थी। एक्सचेंजकी इस बढ़ी हुई दरके कारण सरकारको बजटमें घाटेका भी सामना करना पड़ा। सन् १९२४ के सितम्बरमें एक्सचेंजकी दर १ शि० ६ पेंसके लगभग थी। सन् १९२५ के जूनमें इंग्लैण्डने फिर स्वर्णमान ग्रहण किया, और स्टर्लिंग तथा सोनेके बीच विनिमयकी सममूल्य-दर (parity) स्थापित हुई। सन् १९२५ में एक शाही कमीशन भारतीय विनिमय और मुद्रा प्रणालीकी जाँच करनेके लिए स्थापित हुआ। मगर इससे पहले ही सरकारने यह इरादा पक्का कर लिया था कि एक्सचेंजकी दर १ शि० ४ पेंससे अधिकपर निर्धारित कर दी जाय। इसके बाद रुपयेकी एक्सचेंज-दर १ शि० ६ पेंस सोना हो जानेपर उसने एक कमीशन नियुक्त किया। ब्रिटिश सरकारके अधिकारी तो एक्सचेंजकी दरको और भी ऊँची ले जाना चाहते थे; किन्तु भारत-सरकारके विरोधके कारण वे ऐसा नहीं कर सके। सन् १९२६ के मार्चमें एक्सचेंज-दरमें फिर कमज़ोरी आने लगी। इस बार भी सरकारने उल्टी हुंडी बेचकर इसका सामना किया। इसके सिवा १ शि० ६ पेंस एक्सचेंज-दरको क़ायम रखनेके लिए ८ करोड़ रुपयेका मुद्रा-संकुचन (deflation) किया गया। सन् १९२२में अर्थ-सचिव सर मालकम हेलीने यह आश्वासन दिलाया था कि व्यवस्थापिका परिषद्की राय लिए बिना सरकार उल्टी हुंडी नहीं बेचेगी; पर इस प्रतिज्ञाको भंगकर इस बार भी परिषद्की राय लिए बिना ही उल्टी हुंडी बेची गई। सन् १९२६ के अगस्तमें 'हिल्टन यंग कमीशन'की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसके एक प्रमुख भारतीय सदस्य सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने अपनी मतभेदसूचक रिपोर्ट अलग दी थी। 'हिल्टन यंग कमीशन'ने एक्सचेंजकी दरको १ शि० ६ पेंसपर निर्धारित करनेकी सिफारिश की, जिसे सरकारने फौरन मान लिया, क्योंकि सरकारने तो पहलेसे ही एक्सचेंजको इस दरपर निर्धारित करनेका इरादा कर लिया था। कमीशनकी अन्य सिफारिशोंमें रिज़र्वबैंककी स्थापना तथा गोल्ड बुलियन स्टैन्डर्ड (Gold Bullion Standard) को स्वीकार करना मुख्य था।

सर पुरुषोत्तमदासने अपनी रिपोर्टमें बड़ी ही योग्यताके साथ इस विषयका विशद विवेचन करके बतलाया था कि १६ पेंस एक्सचेंजकी दर नियत करना देशके लिए लाभदायक नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी रिपोर्टमें लिखा था—"एक्सचेंजमें बराबर परिवर्तन किया गया है, जिससे उसकी स्वाभाविक गति कभी निश्चित नहीं हो सकी है। फाउलर-कमेटीने १ शि० ४ पेंसकी जो दर नियत की थी, वही स्थायी दर है, अतएव उसे ही निर्धारित कर देना चाहिए। सन् १८९३ से जो एक्सचेंज क़ायम है, उसमें हस्तक्षेप करना किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता। एक सौ रुपयेका प्रामिसरी नोट देनेवाला उसके बदले ७५३ ग्रेन सोना देनेके लिए अपनेको बाध्य समझता है। कोई क़ानून बनाकर यदि रुपयेका मूल्य सोनेके हिसाबसे अधिक कर दिया जायगा, तो उसने जितना सोना देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उससे अधिक उसे सोना देनेके लिए बाध्य हो जायगा, जितना सोना पानेका वह हक़दार नहीं था। विनिमय-मूल्यमें परिवर्तन करनेसे यही अन्याय हो सकता है।" व्यवस्थापिका परिषद्में जब Ratio Bill पर बहस हुई, तो ग़ैर-सरकारी सदस्योंने इसका तीव्र विरोध किया। सरकारी पक्ष और प्रजापक्षके प्रतिनिधियोंमें इस विषयपर घोर वाद-विवाद हुआ। आखिर वोट लिए जानेपर सरकारकी सिफ तीन वोटोंसे विजय हुई, हालाँकि सरकारी पक्षमें वोट देनेवालोंमें ४० सदस्य नामजद थे।

एक्सचेंजकी दर १ शि० ६ पेंस निर्धारित कर दी गई; लेकिन वह स्थिर न रह सकी। उसमें फिर कमज़ोरी आने लगी। आख़िर सरकारको मुद्रा-संकुचन-नीतिका अवलम्बन करना पड़ा। बाज़ारमें कृत्रिम रूपसे रुपयेमें टान लाकर तथा मनमाने सूदपर ऋण लेकर किसी प्रकार एक्सचेंजको क़ायम रखा गया। सरकारकी इन कार्रवाइयोंका देशके वाणिज्य-व्यवसाय एवं कृषिपर कितना घातक प्रभाव पड़ेगा, इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं की गई। सरकारने तो यह निश्चय कर लिया था कि चाहे जिस प्रकार हो, रुपयेकी एक्सचेंज-दर १८ पेंस सोनेके बराबर कर दी जाय। इससे पीछे हटना तो सम्भव ही न था। कारण, इससे सरकारकी शानमें बट्टा लगता था। इसके सिवा इंडिया-आफिसके आदेशके बिना भारत-सरकार कुछ कर भी तो नहीं सकती थी।' इंडियन फाइनेन्स'ने हिसाब लगाकर बताया था कि ३१ मार्च १९२५ से लेकर १५ अगस्त १९३१ तक ७८.७६ करोड़ रुपयेका कागज़ी नोटके रूपमें और ९०.९६ करोड़ चाँदीके सिक्केके रूपमें संकुचन हुआ। इस प्रकार कुल मिलाकर १६९.७२ करोड़ रुपयेका संकुचन हुआ। इससे वस्तुओंके मूल्यपर घातक प्रभाव पड़े बिना न रहा। इस प्रकार भारत एकमात्र विश्वव्यापी आर्थिक मन्दीके प्रभावसे ही पीड़ित नहीं है, बल्कि सरकारकी मुद्रा-नीतिके कारण भी वह पीड़ित हो रहा है। यह अनुमान करना असंगत नहीं होगा कि यदि देशकी मुद्रामें इतना संकुचन नहीं होता, तो भारतमें आर्थिक मन्दी इतनी तीक्ष्ण कदापि न होती। जनताकी क्रयशक्तिमें ह्रास होना भी देशके वाणिज्य-व्यवसायकी मन्दीका एक प्रमुख कारण है। सरकारकी अदूरदर्शी एक्सचेंज और करेन्सी-नीतिका ही यह विषम परिणाम था, जिससे चाँदीके मूल्यमें ह्रास हो गया और ग़रीब किसानोंके चाँदीके गहनेका मूल्य कम हो गया। भारत-सरकार, पहले बहुत बड़ी तादादमें चाँदी ख़रीदा करती थी, अब वह बेचने लग गई। इस प्रकार चाँदीके रिज़र्वका कुछ अंश बेच देनेसे बहुत बड़ी क्षति हुई, और इस क्षतिका बोझ आख़िर भारतके करदाताओंपर ही पड़ा।

सन् १९३१ के सितम्बरमें इंग्लैण्डने स्वर्णमानका परित्याग किया। उसी समय भारतमें भी रुपयेका सोनेके साथ विनिमय-मूल्य विच्छिन्न कर दिया गया। १८ पेंसके आधारपर सोनेका जो विनिमय-मूल्य था, वह अब नहीं रह गया। इस प्रकार १८ पेंस सोनेके अनुपातसे जो विनिमय-मूल्य निर्धारित किया गया था, वह तो रहा नहीं, हाँ, १ शि० ६ पेंसका विनिमय-मूल्य अवश्य रह गया; वह भी सोनेके साथ सम्बद्ध होकर नहीं, बल्कि स्टर्लिंगके साथ सम्बद्ध होकर! सरकारने भी समझा कि और कुछ नहीं तो उसकी शान तो रह गई। १८ पेंसकी विनिमय-दरको क़ायम रखकर सरकारने देशसे सोनेके निष्कासनमें भी बहुत बड़ा उत्तेजन दिया है। जबसे इंग्लैण्डने स्वर्णमानका परित्याग किया है, उसने बड़े परिमाणमें सोनेका संग्रह कर लिया है। इसके विपरीत भारत इसी अवधिके अन्दर डेढ़ अरबका सोना बाहर भेज चुका है। स्वर्णमान परित्याग करनेके बाद इंग्लैण्डकी आर्थिक परिस्थिति बहुत ही दुर्भेद्य बन गई है और भारतने प्रति सप्ताह सोनेकी रफ्तनी करके

अपने स्वर्णकोषको रिक्त कर डाला है। यदि सोनेकी यह रफ्तार जारी नहीं रहती, तो १८ पेंसकी विनिमय-दर क़ायम रखना असम्भव हो जाता। १८ पेंसके विनिमयके कारण देशके निर्यात-व्यापारपर भी भारी आघात पहुँचा है। सन् १९३०-३१ में भारतका वाणिज्य-वैषम्य ६०'७७ करोड़ था, जो सन् १९३१-३२ में ३४'२७ करोड़ और १९३२-३३ में ३'०६ करोड़ हो गया! रुपयेके इस बढ़े हुए मूल्यके कारण कृषिजात वस्तुओंका मूल्य बहुत गिर गया है, जिससे किसानोंकी अपरिमित हानि हुई है, और हो रही है। रुपयेके इस विनिमय-मूल्यमें ह्रास करानेके लिए देशमें करेंसी लीग स्थापित हुई है, और उसके द्वारा देश-व्यापी आन्दोलन चलाया जा रहा है; किन्तु अभी तक सरकारने इस सम्बन्धमें लोकमतके अनुसार कार्य करनेकी प्रवृत्ति नहीं दिखलाई है।

भारतीय मुद्रा-नीतिकी जिस इतिवृत्तिका ऊपरकी पंक्तियोंमें दिग्दर्शन कराया गया है, उसपर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे एक बात स्पष्ट हो जाती है। जब कमेटी या कमीशनने मुद्राका मान स्थिर करनेके सम्बन्धमें सिफ़ारिश की है, सरकारने उस सिफ़ारिशके अनुसार कार्य करनेमें उदासीनता प्रकट की है। इसके विपरीत विनिमय-मूल्यमें हेरफेर करनेके सम्बन्धमें समय-समयपर जो सिफ़ारिशें की गई हैं, उनके अनुसार फौरन कार्य किया गया है। दूसरे शब्दोंमें हम इसे यों कह सकते हैं कि भारत-सरकारने देश-हितपर ध्यान रखकर लोकमतके अनुसार कभी कार्य नहीं किया है। अतएव जब तक देशकी मुद्रा-नीतिपर देशवासियोंका पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता, तब तक हम यह आशा नहीं कर सकते कि हमारे देशमें मुद्राका कोई स्टैन्डर्ड निश्चित हो सकेगा।

अश्रु-बिन्दुसे

श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०

ढुलक पड़े तुम भी कपोलपर
ऐ शीतल उज्ज्वल जल-कण,
फिर कैसे कम्पित न धैर्य हो
खोकर अन्तिम अवलम्बन!

दुखी दीन दुर्बलके बल ऐ
अस्थिर उरके आश्वासन,
तुम मत अपना अंचल खींचो,
ऐ करुणाके नन्हें कण!

ऐ मेरी पलकोंके पानी,
यदि तुम ही चल दोगे कण,
तो फिर, कहाँ मिलेगा आश्रय
यह जग तो निष्ठुर पाहन!

कौन तप्त हृत्तल सींचेगा
बन झरनेकी तरल झरन,
कौन तिमिर पथपर बिछ—
जायेगा बन मधुमय स्वर्ण-किरण?

श्रमिक दीन दुर्बल गरीबकी
कठिन कमाईके कंचन,
खुलो गाँठसे अभी नहीं तुम
बँधे रहो निर्धनके धन!

ऐ सहृदय, इस समय न छोड़ो,
जब तक ज्वाला जलन तपन,
सजल रखो सूखी कोरोंको
बनकर हृत्तलके चन्दन!

दियासलाईकी डिबिया

श्री अमीन सलोनवी

मुई एक दियासलाईकी डिबिया कौन ऐसी भारी-भरकम चीज़ थी कि न लाई गई? किसी दूकानसे ख़रीदकर जेबमें डाल लेते, तो क्या कोई हर्ज़ हो जाता, इज्ज़त जाती रहती, या फैशन बिगड़ जाता? आख़िर घरका ही तो काम था, किसी दूसरेके लिए तो ख़रीदना न था। मगर याद क्यों आता? वह तो मैंने कहा था न? अगर और कोई होती-सोती कहती, तो डिबिया क्या, बड़ासा सन्दूक़ ख़रीद लाते। ऐसी याद भी किस कामकी? सुबहसे तकाज़ा करती रही, चलते-चलते याद दिलाया, रूमालमें गिरह बाँध दी, मगर ग़ज़ब ख़ुदाका, इसपर भी याद न रही? भला, मैं कहती हूँ कि तुम दफ़्तरमें क्या काम करते होगे? इसी तरह सब कुछ भूल जाते होगे? इसीसे तो दो-चार रुपये महीनेमें तनख़्वाहसे कट जाते हैं, और कहते हो कि चन्दा दे दिया! जब तुमसे एक डिबिया दियासलाईकी न लाई गई और उसका लाना याद न रहा, तो एक दिन तुम मुझको भी भूल जाओगे, अपनेको भूल जाओगे, दफ़्तरकी फ़ाइलें भूल जाओगे, अल्लाहरसूलको भी भूल जाओगे। मैं कहती हूँ कि आख़िर तुम्हारी यह आदत कब छूटेगी और तुम कब घरकी तरफ़ तवज्जह करोगे? जब मैं देखती हूँ कि तुमको एक दियासलाईकी डिबिया लानेकी याद नहीं रहती, तो भला और चीज़ोंका क्या सवाल? कोई सुने तो क्या कहे कि इनके यहाँ एक दियासलाईकी डिबिया तक नहीं रहती! नाम बड़ा, दर्शन थोड़े। तुमको क्या मालूम कि दियासलाईकी डिबिया न होनेसे क्या-क्या दिक्क़तें उठानी पड़ती हैं। आग जलानेको मोहताज बैठी हूँ कि जब शैतान आये और बाहरसे आग लाये, तो जाकर बावर्चीख़ाना गरम हो, वरना यों ही बैठी रहूँ....शाम हो गई और घरमें चिराग़ नहीं जला है, और जलता तो कैसे जलता? जब तुम दियासलाईकी डिबिया लाना भूल जाओगे, तो क्या मैं हाथ-मुँहको दियासलाईकी डिबिया बनाऊँगी? घर-भरमें अँधेरा पड़ा रहेगा; मगर तुम्हारा क्या बिगड़ता है? तुमको इससे क्या मतलब? अगर अँधेरे-उजालेका ख़याल होता, तो दियासलाईकी डिबिया ले आते....अई! ऐसी आदत भी क्या? जो चीज़ है भूल गये, जो काम है याद न रहा! एक-दो बातें हों तो याद दिलाऊँ। किस-किसको गिनाऊँ और किस-किसको झींकूँ। आज तीन रोज़ हो गये, सरमें डालनेवाले तेलकी एक बूँद भी घरमें नहीं; मगर किससे कहती और क्या कहती? जब दियासलाईकी डिबियाका लाना याद न रहा, तो भला तेलकी बोतल तो बड़ी चीज़ है। कमबख़्त बालोंको देखो, बिलकुल खुर्दरे हो गये हैं; मगर इनको तेल कहाँ नसीब? देखते हो, आस्मानपर काली-काली घटाएँ छाई हुई हैं और घरमें अँधेरा पड़ा है! दियासलाईकी डिबिया नदारद है। अगर आज रातको यह काली घटा बरस पड़ी, तो क़यामत हो जायगी। यह चमक-गरज! ख़ुदाकी पनाह! कलेजा दहलाये देती है, और तुमको दियासलाईकी डिबिया लाना ही याद न रहा! पानी बरसे और फिर बरसे। किसीके रोके रुक नहीं सकता। मगर ख़ुदा-न-ख़्वास्ता छत टपकने लगी, तो कहीं बैठनेका भी ठिकाना न होगा और न अँधेरेमें कुछ सुझाई ही देगा। मगर भला तुमको इसका ख़याल क्यों होता, जो दियासलाईकी एक डिबिया ले आते। और मैं कहती हूँ कि जीपर रखते, तो सब कुछ हो सकता था। एक डिबिया क्या दस आ सकती थीं; मगर वह तो कहो कि तुम्हें हमारी बातोंसे, हमारे कहनेसे, ज़िद है। अपनी सिगरेटका डिब्बा कभी न भूले, अपने पानका डिब्बा कभी न भूले—यहाँ तक कि दफ़्तरसे चपरासी भेजकर मँगवा लेते हो—मगर याद

न रहा तो एक दियासलाईकी डिबियाका लाना। मैं यही तो कहती हूँ कि तुमको मेरी बातोंसे ज़िद है, वरना क्या तुम कभी बाज़ारसे कोई चीज़ ख़रीदकर लाये नहीं ? सैकड़ों मर्तबा दफ़्तरकी ही वापसीपर जूतेकी पालिशकी शीशियाँ, ब्रुश वग़ैरह सब ख़रीद-ख़रीदकर लाये। मगर न लाई गई तो एक दियासलाईकी डिबिया! बड़ी ख़ैरियत हुई कि आजके दिन घरमें कोई मेहमान न रहा, वरना नाक ही कट गई होती। भाभीजान वग़ैरह आनेवाली थीं। अच्छा हुआ कि आज वह नहीं आईं। अगर वह आ जातीं, तो वह भी देखतीं कि इनके घरमें एक डिबिया दियासलाई भी नहीं। ओफ़्फ़ोह! किस क़दर अँधेरी रात है! जो कहीं जलते-जलते लैम्प बुझ गया तो क्या होगा? रात-भर अँधेरेमें घुट-घुटकर रहना पड़ेगा। और चाहे ऐसी अँधेरी रातमें घरमें कोई घुस आये, तो कोई क्या बना लेगा, कोई क्या देखेगा और देखेगा भी तो कोई क्या करेगा ? मेरा तो दम ही निकल जायेगा। मगर तुमको घबराने और मेरे परेशान होनेकी क्या परवा ? तुम तो सड़कके मुसाफ़िरकी तरह घरमें आते हो, तुमको अच्छे-बुरेकी क्या ख़बर ? तुम्हारी बलाको क्या ग़रज़ कि घरमें क्या होता है?····मेरा क्या नुक़सान ? तुम्हींको तकलीफ़ होगी। जब सुबह-सुबह हुक्का गुड़गुड़ानेको न मिलेगा, तो पता चलेगा कि दियासलाईकी डिबिया न लानेसे क्या हर्ज़ होता है। फिर जब सवेरे चाय और नाश्ता माँगोगे, तो कोई कहाँसे चाय बनाकर देगा। मैं कहती हूँ कि जब ज़रूरत नहीं होती, तो मुई दियासलाईकी डिबिया एक नहीं, दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घरमें मारी-मारी फिरती हैं, और जब ज़रूरत होती है, तो तुमको भी ज़िद हो जाती है। अरे, मैं कहती हूँ कि घरके ख़र्चके लिए तो एक डिबिया महीनों काम दे; मगर आग लगे तुम्हारे सिगरेटको! एक दियासलाईकी डिबिया तो तुम ही रोज़ फूँक देते हो। फिर भला कमी न पड़े तो क्या हो ?—और इसपर यह हाल कि एक डिबिया दियासलाईकी न लाई गई! तुम्हारे जैसा भुलक्कड़ इन्सान!—रास्ता-गली चलते तो दियासलाईकी डिबिया बिकती है—इसपर भी तुमको याद न रहा! मुई एक पैसेकी औक़ात ही क्या ? कोई सौ दो सौ रुपयेका तो ख़र्च नहीं था कि जेबमें नोटके गड्डे हैं, चलो भाई, आज न सही, कल सही। 'एक पैसेकी डिबिया'—पुकार-पुकारकर बेचते फिरते हैं; मगर नेकी उतरे तुम्हारी यादपर। मैं मानती हूँ कि एक दर्जन डिबिया दियासलाई कल ला दोगे; मगर आज क्या होगा ? और इतनी बड़ी पहाड़-सी रात कैसे कटेगी, और फिर सावन-भादोंकी अँधेरी! जब अल्लाह साथ ख़ैरियतके सुबह करेगा, तबकी तबसे है। अभी तो जान सहम-सहमकर निकली जा रही है। बड़ी-बूढ़ियोंकी कहावत सच है कि इन मर्दोंके जो जीमें आता है, करते हैं। घीका घड़ा ढलक जाये, तो इनकी बलासे। कोई डर-डरके जान दे, तो इनकी जूतियोंसे। बिलकुल 'बे-अंकुस' के हाथी होते हैं, तो यह झूठ नहीं है। निगोड़ी एक डिबिया दियासलाईकी न लाई गई, तो भला मैं और क्या करूँ ? कहा था कि बरसातका ज़माना है। कल इतवार है। यकजा दो-चार रुपयेकी सूखी-सूखी लकड़ियाँ भरा दूँगी; मगर जब एक डिबिया दियासलाईकी न लाई गई, तो भला मन दो मन लकड़ियाँ ख़रीद लाना तो बड़ी बात है। भला, काहेको याद रहेगा! सचमुच तुम लोगोंने क्या मुझको दीवाना बना लिया है, या पागल समझ लिया है कि सब-के-सब परेशान करनेपर तुले रहते हो ? घरका छोटेसे बड़ा तक जो है, इसी रंगका। अल्लाहकी पनाह! भला, इस तरह मेरी ज़िन्दगी ही काहेको होगी, जब घरका क़रीना यही है। अरे, मैं कहती हूँ कि घर-गिरस्तीमें भी होता है कि आदमी टोले-मुहल्लेमें दरवाज़े-दरवाज़े चीज़ माँगता फिरे। कैसी शर्मकी बात है! बाबा, मेरी तो तोबा यह है, जो आजसे मैं तुमसे किसी सौदेके मुताल्लिक़ कहूँ····मेरा बस चलता, तो मैं मुँह ही पर न लाती, मँगाना तो

दरकिनार। मगर क्या करूँ? कहना पड़ता है। मुई नसीबनको अपने ही आलाज़ारसे फ़ुर्सत नहीं मिलती, भला, वह बाज़ार-हाट कब जाने लगी? और वह तो सबसे बढ़कर है। मँगाओ आम, ले आती है इमली! फिर कोई वहाँ तक 'एरे-फेरे' कराये। कमबख्त घरका नाम भी बदनाम होता है। कोई क्या समझेगा कि नसीबनकी बेवकूफ़ी है। सब यही कह देंगे कि बीबी बड़ी बेढब है। अये, अभी जुम्मेवाले दिनकी तो बात है····एक पैसेकी रंगकी पुड़िया लेने गई। बन्दीने आधा दिन ख़त्म कर दिया, और फिर भी गुलाबी रंग न मिला, तो कौन अपना चूँड़ा मुँडवावे। बाहर बेचारा करीम, लूला-लंगड़ा, बाज़ार तक चार-छै टेकमें जाता है। दो पैसेकी चीज़ मँगानी हो, तो उससे दो दिन पहले कहा जाय, या दो आने इक्केका किराया दिया जाय, तो जाकर बाज़ारसे वह चीज़ लाये। अब यह आफ़त नहीं तो क्या? नतीजा यह होता है कि हिर-फिरकर तुम्हींसे कहा जाता है, और तुम्हारा यह हाल कि तुमको एक दियासलाईकी डिबिया लाना मुहाल! आख़िर मैं पूछती हूँ कि फिर घरका काम कैसे हो? अब मैं भी ऐसे ही पड़ा रहने दूँगी। मेरी जूतीसे—! अगर दियासलाईकी डिबिया नहीं है, तो चाय बने चाहे न बने, नाश्ता तैयार हो चाहे न तैयार हो, दफ्तरका वक्त हो तो मेरी बलासे! मैं कहाँ तक अपनी जान खपाऊँगी। कुछ एकके कियेसे थोड़ा ही होता है! सबको फ़िकर रखनी चाहिए। कल बेचारी पड़ोसिनसे शामोशाम आगकी एक चिंगारी मँगाई, तो आग जली। भला, वह क्या कहती होंगी कि नाम बड़ा, दर्शन थोड़े—इनके यहाँ मुई आग भी भीख माँगी जाती है! मगर उनको क्या मालूम कि महीना-भरसे मियाँकी जेबमें दियासलाईके लिए पैसा पड़ा हुआ है और वह भूल-भूल जाते हैं। और कोई यह एक दिनकी बात थोड़ी है, यह तो रोज़ ही का रोना है। क्या करूँ? बेबस हूँ, वरना इस घरमें तो थूकने भी न आती। ख़ुदाकी तो यह मर्ज़ी थी। तकदीरमें तो यह लिखा हुआ था, कोई इसको कैसे मिटाता? माँ-बापको क्या ख़बर थी कि हमारी लाड़ली ऐसे घर जायगी, जहाँ एक डिबिया दियासलाईकी मयस्सर न आयगी! वह तो यह जानते होंगे कि मेरी लड़की बड़े आरामसे होगी। उसकी ख़ातिरदारी की जाती होगी, और यहाँ कमबख्त यह हाल है कि एक-एक चीज़का 'काल', एक-एक बातका रोना! दिनमें कोई घड़ी ऐसी नहीं गुज़रती, जिसमें मुझे एक-एक कामके लिए चीख़ना-चिल्लाना न पड़े। ओफ्फ़ोह! नसीबकी बात! हर लोग कहते हैं कि दमड़ीका चिराग़ घरका लाल होता है; मगर मैं कहती हूँ कि दियासलाईके बग़ैर चिराग़ भी बेकार है····चूहोंने तमाम कपड़ोंका सत्यानास कर दिया है। कहा था, चूहेदान ला दो, तुमसे वह भी न हुआ। अब सोचा था कि आज दियासलाई आ जायगी, तो आटेमें घोलकर दे दूँगी, चूहे मर जायँगे; मगर तुम भला दियासलाई क्यों लाने लगे? देखो, वह क्या खड़बड़ हो रही है, सब काटे फेंके देते हैं, घरको घुड़दौड़का मैदान बना रखा है, अगर कहीं तुम्हारे कोट-पतलूनकी ख्वारी हो, तो पता चले और होश आये। मेरे कहनेका क्या असर। समझते हो कि एक पागल चीख़ रही है, आप ही चुप हो जायगी, तो मुझे क्या करना है? अब मैं कभी मुँहसे न निकालूँगी, चाहे घरमें चूहे लोटें या कुत्ते।*

अनुवादक—**नरोत्तमप्रसाद नागर**

* 'दुनियामें जहन्नुम' नामक अप्रकाशित पुस्तकका एक लेक्चर।

'आरज़ू' साहब

श्रीराम शर्मा

गत नवम्बरकी बात है। लखनऊमें चारपाईपर बैठा एक महाशयसे भारतवर्षकी भावी भाषा और हिन्दी-वर्णमालामें परिवर्तनपर बातें कर रहा था। बातोंके दौरानमें मैंने उन महाशयसे कहा—"मैं 'ज़रीफ़' साहबसे मिलना चाहता हूँ। क्या आजकल वे यहीं हैं?"

मेरे प्रश्नको सुनकर मुझसे बातचीत करनेवाले सज्जनके साथ आये हुए एक मुसलमान महाशय बोल उठे—"तो आप एक और साहबसे भी मिलिये।"

"किससे?"—मैंने उन लखनवी पोशाकधारी महाशयसे पूछा।

"'आरज़ू' साहबसे।"—उन्होंने नम्रतासे उत्तर दिया।

"अच्छी बात है, मिल लूँगा।"—मैंने उदासीन भावसे कहा।

"तो फिर आप मेरे मकानपर तशरीफ़ लावें।"—कहकर वे चले गये।

× × ×

दो-तीन दिन उपरान्त लैटूश रोडपर मैं श्रीयुत अंसारी (गुलाम मुस्तफ़ा अंसारी) के मकानपर बैठा 'आरज़ू' साहबकी प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ी देर उपरान्त शेरवानी पहने लगभग सत्तर वर्षके एक स्वस्थ वृद्ध मुसलमान सज्जन आये। फूलदार कपड़ेकी शेरवानी, मारकीनका पाजामा, खसखसी दाढ़ी और भरे हुए चेहरेको देख मैं भाँप गया कि आगन्तुक महाशय 'आरज़ू' साहब ही होंगे। उठकर अभिवादन किया, और लखनवी शिष्टाचार 'आप तशरीफ़ रखिये' 'आप तशरीफ़ फ़रमावें' के उपरान्त आरज़ू साहब कुर्सीपर बैठे। उनके एक शिष्य दाईं ओर और अंसारी साहब मेरे पास बैठ गये।

बातें जो छिड़ीं, तो तबीयत प्रसन्न हो गई। आरज़ू साहबकी विनयशीलता, बाल-स्वभाव सरलता और तिसपर उनका पाण्डित्य और अद्भुत कवित्वशक्तिने उन्हें सतयुगी ही बना दिया है। शब्दोंकी व्युत्पत्ति, उर्दूमें इसलाह, हिन्दी और उर्दूकी कविता, आधुनिक कवि शिष्योंकी उच्छृंखलता, गुरुजनोंके प्रति उनका श्रद्धा-अभाव और उसके दुष्परिणाम और विशेषकर उनकी परिश्रमहीनता आदि विषयोंपर वार्तालाप होता रहा। 'आरज़ू' साहब एक प्रकारसे भाषण दे रहे थे, और मैं एकाग्रचित्त सुन रहा था। हाँ, बीच-बीचमें मैं भी दो-चार मिनटके लिए साहित्यपर अपने विचार प्रकट करता जाता था।

× × ×

गत पचपन वर्षसे 'आरज़ू' साहब उर्दू-साहित्य-मन्दिरके तपोनिष्ठ पुजारी हैं। साहित्य-सम्बन्धी उनके विचार बड़े प्रौढ़, मौलिक और ज्ञानवर्द्धक हैं। 'सिसकी' शब्दकी व्युत्पत्ति तो मुझे बहुत ही जँची। 'आरज़ू' साहबने फ़रमाया—"ख़ुदाने हिन्दुस्तानकी औरतोंको वह ख़सलत दी है कि वे आदमियोंसे बहुतसी बातोंमें बढ़ी हुई हैं। वे सबके सामने अपनी क़ाबलियत तो दूर, अपनी तकलीफ़का ज़िक्र तक नहीं करतीं। अपने दुखोंको भी वे मसोसकर रह जाती हैं। प्रायः छिपकर रोती हैं। जब ग़म बहुत होता है, तो कुदरत कहती है कि वह ऊपर आये और औरतोंकी पाकीज़ा ख़सलत उसको दबाना चाहती है; पर जब ग़म इतना होता है कि वह रोके नहीं रुकता, तब 'सिसकी' निकलती है।" उपर्युक्त शब्द 'आरज़ू' साहबके अक्षरशः शब्द नहीं हैं—उनका भावार्थ यही है।

'आरज़ू' साहब उर्दूको हिन्दी ही कहते हैं। उनके मतसे उर्दू हिन्दीका ही रूपान्तर है।

'आरज़ू' साहब और उनका काव्य, या 'आरज़ू'

साहबके साहित्यिक विचारोंपर फिर कभी एक विस्तृत लेख लिखा जायगा। 'आरज़ू' साहबने बहुत लिखा है, और बहुत ही अच्छा लिखा है। हमें तो यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उर्दूके एक प्रसिद्ध कवि (डाक्टर इक़बाल) के विषयमें 'आरज़ू' साहब और स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माका एक ही मत निकला।

'आरज़ू' साहबका कलाम कई पुस्तकोंके रूपमें छपा है। मैंने तो अभी 'फ़ुग़ाँआरज़ू' ही देखी है। मेरी दृष्टिसे 'आरज़ू' साहब अपने ढंगके निराले ही कवि हैं। 'मीर'से उनकी कुछ समता हो सकती है। आदमियों, नवाबों और रईसोंकी प्रशंसामें उन्होंने अपनी दैवी देन कवित्वशक्तिको नष्ट नहीं किया।

एक बात और। दिल्लीवालोंने लखनऊवालोंपर एक आपत्ति की है—और हमारे ख़यालसे ठीक की है—कि लखनऊके कवि कोमल भावनाओं और मनोवृत्तियोंके अच्छे चित्रकार नहीं। लखनऊवालोंके पास बस शब्दोंकी लबड़धोंधों है। एक सजी हुई, आभूषणालंकृत मरी हुई युवती। लखनऊवाले तो शब्दोंके ही क़िले बनाकर उनपर रीझते हैं; पर स्वर्गीय मीर 'अनीस' (लखनवी) दिल्लीवालोंकी आपत्तिके अपवाद थे, और 'आरज़ू' साहब भी उस आपत्तिकी गिरफ्तमें नहीं आते।

'आरज़ू' साहब अभी निरे बालक ही थे। कोई बारह-तेरह वर्षके क़रीब उमर होगी कि वे एक मुशाइरेमें शामिल हुए। क़ाफ़िया था—अंजुमनमें नहीं, चमनमें नहीं। उनकी ग़ज़लोंको सुनकर उस्ताद लोग दंग रह गये, और सबका अनुमान हुआ कि बालककी प्रतिभा बेहद चमकेगी। उस समयके दो शेर हैं—

"हमारा ज़िक्र जो ज़ालिमकी अंजुमनमें नहीं,
जभी तो दर्दका पहलू किसी सख़ुनमें नहीं।
शहीद नाज़की महशरमें दे गवाही कौन,
कोई लहूका भी धब्बा मेरे कफ़नमें नहीं।"

× × ×

चढ़ती हुई जवानीका समय होगा। एक कवि साहबने 'आरज़ू'को एक समस्या दी 'उड़ गई सोनेकी चिड़िया रह गये पर हाथमें', और कहा कि यदि दस वर्षमें भी 'आरज़ू' मिसरा लगा दें, तो उनको कवि मान लिया जायगा। 'आरज़ू' साहब बोले—"जनाब, दस वर्ष तक ज़िन्दा रहनेकी उम्मीद किसे? यही नहीं मालूम कि एक साँसके बाद दूसरी आयेगी भी या नहीं। मैं अभी कोशिश करता हूँ। मुमकिन है कि मिसरा लग जाय।" थोड़ी देर सोचनेके उपरान्त वे बोले—

"दामन उस यूसुफ़का आया पुरज़े होकर हाथमें,
उड़ गई सोनेकी चिड़िया रह गये पर हाथमें।"

अठारह-बीस वर्षकी उम्रमें तो 'आरज़ू' साहबकी कवित्वशक्ति मुँहज़ोर घोड़ेकी तरह रोके न रुकती थी। उनकी उस उम्रकी शायरीका नमूना लीजिए—

"मुझको मेरी रविश मिटाती है,
पाँवकी ख़ाक सर पे आती है।"

× ×

"ख़ुदकुशीका आपपर इलज़ाम धरते जायँगे,
हम तो मरते हैं मगर बदनाम करते जायँगे।"

× ×

"दी है राहतके बहाने मुझे ईज़ा क्या-क्या,
चुटकियाँ लेते रहे फाँस निकाली न गई।"

× ×

"है शमअ हाथमें, चेहरेपर ज़ुल्फ़, आँखोंमें अश्क,
अँधेरी रातमें किसका मज़ार देखेंगे।"

यह तो हुआ उनकी छोटी उम्रकी कविताओंका नमूना। हम ऊपर लिख चुके हैं कि 'आरज़ू' साहबपर विस्तृत लेख फिर कभी लिखा जायगा। इस अंकमें हम 'आरज़ू' साहबकी उस कविताके नमूने पेश करते हैं, जो उन्होंने बोलचालकी भाषामें की है। उसमें फारसी और अरबीका एक भी शब्द नहीं। इसके अतिरिक्त बड़ी ख़ूबी यह है कि उच्च भावों तकको उन्होंने बोलचालकी भाषा—ठेठ उर्दू—में अदा किया है। बोलचालकी भाषामें सभी भावोंको अदा करनेके मानी हैं संकीर्ण मार्गमें धीमे और बगटुट दौड़ना। बोलचालकी भाषामें ऐसा सरमाया नहीं, जिससे उत्कृष्ट काव्य रचना हो सके। फिर बोलचालकी भाषाके

विचित्र मुहाविरे होते हैं। उन मुहाविरोंके प्रयोगमें 'आरज़ू' साहबने कमाल किया है।

'आरज़ू' साहबसे मैंने कहा—"क्या आपने कभी हिन्दीमें शायरी नहीं की?"

'आरज़ू' साहब बोले—"जी नहीं, यों ही कभी तबीयत हुई तो हिन्दीकी बहरमें कभी शब्द जोड़ लेता हूँ।"

मैं—"तो एकाध सुनाइये न।"

'आरज़ू' साहब—"कोई अच्छी चीज़ नहीं; पर एक यों ही याद है। सुनिये—

जाके मनकी जैसी भावन, वैसी वाकी उमंग,
दीपकपर न चकोरा रीझै, चन्दापर न पतंग।"

हाँ, तो 'आरज़ू' साहबकी ठेठ उर्दूके ठाटका नमूना लीजिए—

"सच भी बुरा वह जिसको सुनकर लोग कहें तू झूठा है,
जिसका लुटाया सबने पाया मुझको उसीने लूटा है।"

कितना छोटासा और कितने सरल शब्दोंमें शेर है; पर कितना गहरा भाव उसमें छिपा है। तनिक 'लुटाने' शब्दके प्रयोगको देखिये। 'तबाह' शब्दका एक प्रयोग स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माके पत्रमें पढ़ा था—

"मुझको तबाह चश्म मुरव्वतने कर दिया,
मिल जाय तो चुराऊँ किसीकी नज़रको मैं।"

'न ब्रूयाति सत्यमप्रियम्' और 'सच भी बुरा वह जिसको सुनकर लोग कहें तू झूठा है' की तुलना कीजिए। अप्रिय सत्य न बोले—कानेको काना कहनेसे उसे बुरा लगेगा, और ऐसा सच, चाहे वह प्रिय हो अथवा अप्रिय हो, न बोले, जिसे सुनकर लोग झूठा समझें। उदाहरणके लिए परमात्माकी लीला या मायाको देखिये। वह अपनी कृपाको लुटाता है, और लोगोंको आध्यात्मिक और सांसारिक दृष्टिसे लूटता है। अपनेमें लीन करता है, या शारीरिक कष्ट देता है। वह विष्णु भी है और रुद्र भी।

"तारा टूटते देखा सबने यह नहीं देखा एकने भी,
किसकी आँखसे आँसू टपका, किसका सहारा टूटा है।
सुन लो 'आरज़ू' ऐसोंकी भी जिनके मुँह है आँख नहीं,
जाँचनेवाले जाँच ही लेंगे, क्या सच्चा क्या झूठा है।"

तबीयत करती है कि साम्यवादपर कोई पुस्तक लिखी जाय और उसके मुखपृष्ठपर यही शेर छपा दिये जायँ। इन शेरोंको पढ़कर कौन कहेगा कि लखनऊवाले शब्दोंके घरौंदे बनाकर खेला करते हैं? 'मारफ़त'का एक नमूना लीजिए—

"जिसने बना दी बाँसुरी, गीत उसीके गाये जा,
साँस जहाँ तक आये जाय, एक ही धुन बजाये जा।"

अब हम बिना टीका-टिप्पणी किये कुछ नमूने देते हैं। अर्थ बारीक, पर स्पष्ट हैं।

"दुख है यह दिल्लगी नहीं, खेल नहीं, हँसी नहीं,
पहले लगाओ कान इधर, फिर यह कहो—'सुनाये जा'।
फूलमें बास, फलमें रस, देता जो है, वह और है,
आस न तोड़, जी न छोड़, जितनी पिऊँ पिलाये जा।
तू तो आनेका नहीं, और जो चैन भी न आय,
ढूँढूँ कहाँ किधरको जाऊँ, कुछ तो पता बताये जा।

× ×

छीना है जीका चैन भी, उसपर फिरी है आँख भी,
उल्टे बना हूँ लुटके चोर, बिगड़ी मेरी बनाये जा।

× ×

सच्ची जो है लगीकी लाग और भड़क उठेगी आग,
पास हों जितनी बिजलियाँ, सोच न कर, गिराये जा।"

× ×

"काली घटामें कौंदा लपका, रोके जो कोयल कूक गई,
जितनी गहरी साँस खिंची थी, उतनी लम्बी हूक गई।"

× ×

"चाहतकी हर बात है उल्टी, मत उल्टी, रोना उल्टा,
जितना मसोसो जी और उमड़े, बूँद रुके नदी बह जाय।"

दुखको जितना रोका जाता है, उतना ही वह प्रकट होनेको ज़ोर लगाता है। पहले तो आँसू रोक लिए जाते हैं; पर शोकाधिक्यके कारण आँसुओंकी नदी बह चलती है।

"हायकी चोट न सहनेवाला, खोट भी करते डरता है,
जैसे बेबस साँप चुटीला, पल्टे खा-खाकर रह जाय।

'आरज़ू' ऐसे यों बहुतेरे हँसमुख पत्थर कोई नहीं,
चैन समझ ले बेचैनीको, हाय करे और हँसता जाय।"

× ×

"अंधेर ढा दें पलकें जिसको वह आँख मारें,
जी धड़धड़ा रहा है एक मूँठ सौ कटारें।"

× ×

"कैसी-कैसी घातें की हैं जीके लुभानेवालोंने,
लाखों फन्दे मारके फाँसा घूँघरवाले बालोंने।"

बिहारीलालका लगभग इसी प्रकारका दोहा है—

"ताहि देखि मन तीर्थन बिकटन जाय बलाय,
जा मृगनैनीके सदा बेनी परसत पाय।"

और 'अकबर' साहब तक बालोंमें उलझे हैं—

'स्पीच बंगालीकी सुन बंगालिनोंके बाल देख।'

बालोंकी लटोंमें बहुत लोग उलझे हैं। 'आरज़ू' भी उलझ गये और फँस गये, तो आश्चर्य क्या ?

"अलग रहे जीते-जी सदा जो
वह रो रहे हैं ये लिपट-लिपटके,
घड़ी-घड़ी फिरती पुतलियोंने
समाँ यह देखा पलट-पलटके।
जो आँसू आँखोंमें आ चुके हैं,
कहाँ वह जायँगे अब पलटके,
यह चढ़ते पानीके हैं थपेड़े
पड़ेंगे मुँहपर उलट-उलटके।
थमे जो आँसू, रुकी न हिचकी,
बँधी हुई आस और टूटी,
महीन-सा साँसका यह डोरा
और उसपर ऐसे करारे झटके।
भँवरसे निकली जो नाव बचकर
तो पार उतरनेमें खाई ठोकर,
बढ़ाके रक्खा था पाँव जिसपर
वही कगारा गिरा है कटके।
जो मार रक्खा है जीको तुमने
न 'आरज़ू' अब हुमसने देना,
हुई जो मुट्ठी ज़रा भी ढीली,
यह साँप काटेगा फिर पलटके।"

× ×

"तेरे तो ढँग हैं यही, अपना बनाके छोड़ दे,
वह भी बड़ा ही बावला तुझको जो पाके छोड़ दे।
बेड़ा हो पार क्या भला, बाँधा है उससे आसरा,
खोलके नाव ले चले धारे पै लाके छोड़ दे।
उसने लगाके 'आरज़ू' बदली है मुझसे आँख यूँ,
जैसे कोई छिड़कके तेल, आग लगाके छोड़ दे।"

× ×

"शुगून इस नई ऋतुका अच्छा नहीं है,
कलेजा मसलती है कोयलकी बोली।
समझिये तो हर बातमें लाख घातें
जो सुनिये तो बातें बड़ी भोली-भोली।
यह बढ़ती उमंगे हैं, वह उठती हूकें,
अलग है पपीहेसे कोयलकी बोली।"

× ×

"चुपकी फाँसीका सरकता फंदा,
आपसे आप कसा जाता है।"

× ×

"जीमें आता है कि थोड़ा और भी रो डालिये,
जब वह आँसू पोंछकर कहते हैं 'मुँह धो डालिये'।"

× ×

"बनावटको चाहतके साँचेमें ढाला,
बड़ी चोट खाई अरे मार डाला।"

इस ठेट उर्दूके विषयमें स्वयं 'आरज़ू' साहबकी सम्मति लीजिए—

"अपनी यह उर्दू 'आरज़ू' हिन्दो-अजमके[1] बीचमें,
आप है एक उपी छुरी, तेग़ है न दाव है।"

इस ठेट उर्दूकी इससे अच्छी आलोचना और क्या होगी। 'आरज़ू' साहबकी इस प्रकारकी भाषामें कविताका संग्रह न मालूम कितना है ; पर अंसारी साहबके पास एक काफ़ी बड़ी पेंसिलकी लिखी कापीमें बहुतसी कविताएँ थीं, उपर्युक्त अंश उसी कापीसे संग्रहीत हैं।

'आरज़ू' साहबकी अन्य कविताके (फ़ारसी आदिके शब्दोंसे मिश्रित) विषयमें विस्तृत लेखमें ही लिखा जायगा। यहाँ तो बस कुछ नमूने और 'आरज़ू' साहबके नामका परिचयमात्र दिया है।

१ ईरान।

मेरी आदर्श साधना

पहले मुझे एक आदर्श संन्यासी बननेकी धुन सवार हो गई थी। मेरा ख़याल था कि संन्यासी बनना ही समस्त आदर्शोंसे अच्छा है; पर उमरके कुछ बढ़ते ही इस प्रकारकी कल्पनाएँ उठने लगीं कि क्या संन्यासी बननेमें अस्वाभाविकता नहीं है? तत्पश्चात् इस विचारपर पहुँचा कि संन्याससे मिलनेवाली तीव्र तपस्या और उग्र तितिक्षा दोनों ही प्रकृति-विरुद्ध हैं। अतएव संन्यास अन्य आदर्शोंसे ऊँचा साबित नहीं हो सकता। अब यहाँ तक पहुँच गया कि संन्यास हर्गिज़ आदर्श नहीं है। इस प्रकार दृढ़ संकल्पकर मैंने उसके कटघरेसे छुटकारा पाया। जब मेरे मित्रोंने मेरी बातें सुनीं, तो उनके विस्मयका ठिकाना न रहा। क्योंकि मैं पहले संन्यासकी उच्चताके सम्बन्धमें किन उमंगोंके साथ, कितनी श्रद्धा और कितनी ओजस्विताके साथ उनसे वाद-विवाद करता था। अब मैंने उतने ही आवेश, गम्भीरता और श्रद्धाके साथ, बल्कि पहलेकी अपेक्षा अधिक सतर्कतासे संन्यासके विरुद्ध झंडा खड़ा किया। यह सब रंग-ढंग देखकर मेरे विवाहप्रिय मित्र और ही अर्थ निकालने लगे।

पर मैंने उनकी दाल न गलने दी। उनकी आशापर पानी फिर गया। मैं तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को अपना चरम लक्ष्य बनाकर आदर्श ब्रह्मचर्य-जीवन बिताना चाहता था। जब मौक़ा आ पड़ता, तब मैं इस प्रकार प्रचंड वाद-विवाद किया करता था कि वैवाहिक जीवन तथा परोपकारमें छत्तीसका सम्बन्ध है। स्त्री-सन्तानके पंजेमें जकड़ा हुआ व्यक्ति स्वार्थहीन होकर एकाग्रतासे किसी हालतमें भी परोपकारी नहीं बन सकता। मैं मनमें ही लड्डू खाता था कि संसारके भावी धार्मिक इतिहासके पृष्ठ-पृष्ठमें मेरा नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा।

तब मैं केवल विद्यार्थी था। घरवालोंने मेरे आदर्शकी रत्ती-भर सराहना न की। पिताजीने मुझे लिखा—"हमने एक कन्या ठीक की है। गरमीकी छुट्टियाँ आरम्भ होते ही रवाना हो जाओ।" मैंने अपने सब मित्रोंको वह पत्र पढ़ाया, और उसको घृणासे देखते हुए फाड़कर फेंक दिया। अपने दोस्तोंसे इस प्रकार पागलके समान झल्लाने लगा—"लड़कीका निश्चय करना कोई खेल-तमाशा है? शादी करनेवाला कोई और निश्चय करनेवाला कोई! वाह! पशु-विक्रयसे भी गया-बीता है शादीका व्यापार! प्रेमके बिना भला क्या शादी हो सकती है?" आख़िर मैंने पिताजीको परोपकारकी सभी बातें बताकर अपने अविवाहित आदर्श जीवनके ऊपर ख़ूब ज़ोर लगाकर लिखा। जिस प्रकार बारिश बच्चोंके बनाये हुए बालूके महलोंके प्रति लापरवाही करती है, उसी भाँति उन्होंने मेरे उच्च ध्येयकी उपेक्षा कर दूसरा पत्र लिखा। उसमें उन्होंनेमेरे घमंडको चूर करनेवाली बात लिखी थी—"यदि तुम मेरी आज्ञा पालन नहीं करोगे, तो इस महीनेका ख़र्च नहीं भेजूँगा।" इस वाक्यको पढ़कर तो मैं आपेसे बाहर हो गया। मैंने उद्दंडतासे लिख मारा—"मुझे आपके रुपयेकी परवा नहीं। प्रतिमास हज़ार रुपया कमानेकी मुझमें शक्ति है। मैं इंग्लैण्ड जाऊँगा, पेरिस जाऊँगा, अमेरिका जाऊँगा, और वहाँ अपने व्याख्यानोंकी धूम मचाकर रुपयोंका ढेर लगा दूँगा, और अपने देशका नाम उज्ज्वल करूँगा।" इसपर पिताजीने रुपया भेजकर लिखा—"अपना पागलपन छोड़ दो। डींगें न हाँको।" इसको पढ़कर मैं चुपचाप ख़ूनका घूँट पीकर रह गया, और मनमें उबलते रहनेपर भी मनीआर्डरपर कब्ज़ा कर लिया। तब मैं पढ़ता था नवीं कक्षामें!

गरमियोंमें घर गया। पिताजीने शादीकी बात उठाई, तो मैंने घोर विरोध किया। मेरी माताजीने बहुत मिन्नतें कीं—"बेटा, मैं बूढ़ी हो चली। घरका काम-काज सम्हाल नहीं सकती।" तो मैंने जवाब

दिया—"काम-काजके लिए बहू ही क्यों ? नौकर नहीं रख सकती क्या ?" और अपने ध्येयको समझानेके लिए मैंने यथाशक्ति बड़े-बड़े पद चुनकर एक लम्बी-चौड़ी स्पीच झाड़ दी ; पर मेरी वाक्‌शक्तिको देखकर प्रसन्न होनेके बजाय, जैसा मैंने सोचा था, मेरी माँने अत्यन्त विकल हो चुप्पी साध ली ।

मेरे पिताजीने मेरे साथ वाद-विवाद किया ही नहीं । उस समय वे चुप रह गये ; लेकिन बादमें एक दिन मुझे अपने मामाजीके यहाँ ले गये । वहाँ मैंने रोहिणीको देखा ।* मेरे प्रचण्ड वादके लिए वह कामदेवसे प्रेषित मौन, कोमलता, सुन्दरता तथा मनोहरतासे परिपूर्ण एक भाव प्रतिवादके समान थी ।

जिस दिन उसे मैंने देखा, उस दिन यह भाव, धीरे-धीरे वर्षाकालीन प्रथम सन्ध्या गगनमें अवतरित होनेवाले इन्द्रधनुषके समान, मनमें जागरित हुआ कि ब्रह्मचर्य प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है, और उसी भाँति जीवन-भर ब्रह्मचर्य भी अस्वाभाविक है । इस विचारपर पहुँचा कि "पद्म-पत्र मिवाम्भसा"के समान इस दुनियामें निर्लेप रहकर लोकोपकारी बनूँगा, आधुनिक जनक ऋषि बनूँगा और दुनियाके आगे एक नवीन आदर्श रखूँगा ।

जिस दिन मेरे साथ रोहिणीका विवाह हुआ, उसी दिन मैं अपने नामको सार्थक समझने लगा । मैंने धर्मशपथ की कि हम दोनों चन्द्र-रोहिणीके समान आदर्श पति-पत्नी बनकर अनन्तकाल तक प्रेमसूत्रमें बँधे रहेंगे । मैंने निश्चय किया कि मेरा और रोहिणीका नाम सीता-राम, सावित्री-सत्यवान, नल-दमयन्ती आदि उच्च पुरुषोंकी नामावलीमें पहला नम्बर पायेगा । मुझे गृहस्थाश्रमके आगे संन्यास एवं ब्रह्मचर्यके आदर्श निरे रूखे-सूखे, भद्दे मालूम हुए ।

अपने गाँवसे बेंगलूर लौट गया । मित्रोंने बधाइयोंकी झड़ियाँ लगा दीं । वे व्यंगवाण फेंकनेसे भी बाज न आये—"अब तो तुम्हारी अकल ठिकानेपर आ गई न ?" इसपर मैंने अपने दोस्तोंसे इस प्रकार बातें बनाकर अपने-आपको आदर्शवादी सिद्ध किया—"परमात्मा ही जब सांसारिक है, तब उससे दूर रहना हम मनुष्योंको कहाँ तक उचित है ? घोर पाप होगा । स्त्री पुरुषके लिए शक्तिस्वरूपा है, इसीलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर शारदा, लक्ष्मी, पार्वतीके गलेमें हार डाल मौजोंकी घड़ियाँ बिता रहे हैं । मनुष्यको इस दुनियामें "पद्म-पत्र मिवाम्भसा"के समान रहना होगा । कर्मत्यागी कोई भी नहीं बन सकता । कामवासनासे कोई भी परे हो ही नहीं सकता । अतएव संन्यासी एवं ब्रह्मचारी सभी बगुलाभगत हैं, और वे दुनियासे परे रहनेवाले अस्वाभाविक अजीव प्राणी हैं ।"

अब मैं रोहिणीको प्रणय-पत्र भेजने लगा । उसमें इस प्रकार लिखा करता था—"हम दोनों शाश्वत प्रणय-निरत अनन्त यात्री हैं । हम दोनोंका परिणय समस्त देवी-देवताओंकी साक्षीमें हुआ था । पत्नी पतिकी सहधर्मिणी है, और पति उसके लिए देवतास्वरूप है । पातिव्रत धर्म ही स्त्रियोंके लिए सर्वश्रेष्ठ धर्मका आदर्श है ।" इस प्रकार लिखनेका यह मतलब था कि वह अपना कर्तव्य पति देवताके प्रति समझे । हरएक चिट्ठीमें हस्ताक्षर करनेके बाद मैं अंगरेज़ीमें एस० एस० एल० सी० लिख देता था, ताकि उसे मेरी महत्ता ज्ञात हो ।

गर्मीके दिनोंमें जब मैं घर गया, तो क्या देखता हूँ कि रोहिणी मेरी एक भी चिट्ठीका मतलब न समझ सकी थी । मैं घमण्डके मारे कुप्पा हो गया । मैंने उसे अपनी कीर्ति-गाथा सुनाई—"मैं हमेशा अपनी कक्षामें प्रथम रहता हूँ । जिन पाठोंको अध्यापक लोग नहीं बतला सकते, उनको लड़के मुझसे ही आकर समझ लेते हैं । सभी मुझे स्कूलकी नाक समझते हैं । अध्यापक लोग भी मुझसे डरते हैं । इसी कारण यदि

* कर्नाटकमें नजदीकी सम्बन्धियोंमें विवाह कर लेते हैं । प्रायः यहाँ मामा बुआके लड़के, लड़कियोंसे विवाह कर लेते हैं ; पर मौसी, मामा चाचाकी सन्तानोंसे शादी नहीं करते । कईयोंमें मामाके साथ भी लड़कियोंका विवाह करते हैं ।

मैं इम्तहानमें नहीं भी बैठता, तो भी पास हो जाता ; पर केवल दिखावके लिए बैठता हूँ। इस बार मैं फस्ट डिविज़नमें फस्ट आऊँगा। बहुत अच्छा पेपर कर आया हूँ।''....बेचारी रोहिणी चकित हो, बिना पलक मारे, मेरी बातें सुनती और मुझे साक्षात् देवता समझने लगी।

पर मैं फेल हो गया। मेरी पढ़ाईकी भी वहीं हद हो गई। घरपर रोहिणीके साथ 'आदर्श पारिवारिक जीवन' बिताने लगा। अक्ल भी ठिकाने आ गई। शहरी दोस्तोंने लिखा कि तुम्हारे सरीखे आदमीके लिए तो खूब सुशिक्षित होना अनिवार्य है। इतनी जल्दी जोश ठंडा पड़ गया क्या? तुमसे देशसेवाकी हम लोगोंको बड़ी आशा थी। एक बारकी हारसे दिल तोड़ बैठना कहाँकी बहादुरी है? तुम्हारा ध्येय कहाँ गया!'' मैंने अपना समस्त शब्दभंडार लुटाकर जवाब लिखा—''मैंने पढ़ाई इसलिए नहीं छोड़ी कि फेल हो गया। अधीरताके विषयमें तो मैं आधुनिक नेलसन हूँ ; परन्तु देशसेवा करनेके विचारसे ही मैंने पढ़ना छोड़ दिया है। मैंने अब ग्राम्य जीवन पसन्द किया है। केवल इम्तहान पास करनेसे, डिग्रीहोल्डर बन जानेसे, विद्या नहीं मिलती है। मैंने अपने घरपर ही एक पुस्तकालय खोलनेका विचार किया है। स्वाध्याय द्वारा आदर्श विद्वान बनूँगा। क्या सुकरातने एम०ए० पास किया था? वेदव्यास किस यूनिवर्सिटीके डिग्रीहोल्डर थे? क्या महर्षि बाल्मीकि स्कालरशिप लेते थे? सभी शहरमें रहनेवाले बन गये, तो गाँवका उद्धार कौन करेगा? हमारे देशके प्राण गाँवोंमें हैं। अतएव सभी देहाती बन जायँ, तो देशका कल्याण ज़रूर ही होगा। अब मैं ग्रामोद्धारके काममें लगकर सभीकी नज़रमें चढ़ गया हूँ। सारे देशभक्तोंको ग्रामनिवासी बनना चाहिए। अब मैं किसानोंको आरोग्य, कृषि, विज्ञान इत्यादि उपयोगी विषयोंपर व्याख्यान देता रहता हूँ। 'ग्राम पुनरुज्जीवन संजीविनी' नामक बड़ा ग्रन्थ लिखनेके लिए मसाला जुटा रहा हूँ। लाख हो, फिर भी स्वाध्यायके लिए शहरकी अपेक्षा देहात ही ठीक है। शहरमें सैकड़ों प्रलोभन खींचते रहेंगे। जहाँ देखो, गड़बड़, अशान्ति! इन सब कारणोंसे मेरी आदर्श साधना केवल देहाती बननेसे ही किनारेपर पहुँचेगी। यदि आप लोग भी मेरी नकल करेंगे, तो आदर्श बनेंगे।'' मेरे मित्र चकमेमें आ गये। कईएकने मेरे त्यागकी जी खोलकर प्रशंसा की और मुझे आदर्शजीवी कहा। कईएकने अपने पत्रोंमें बुद्धदेवसे मेरी समता की। इसपर मैंने तपाकके साथ लिखा कि बुद्ध दुनियाकी झंझटोंसे घबराकर कायरके समान संन्यासी बन गया था, इसलिए वह आदर्श व्यक्ति हरगिज़ नहीं हो सकता। इन प्रशंसापत्रोंमें फूलोंके बीच काँटेके समान एकमें लिखा था कि तुम्हारा यह सब ढोंग है। यह पत्र ईर्ष्यावश लिखा गया है, ऐसा सोचकर मैंने उसे रोहिणीसे बचाकर फाड़ फेंका।

मेरी भोली प्यारी रोहिणी एक लड़केकी माँ बननेके बाद चारपाईपर पड़ गई। कुछ दिनके बाद उसकी बीमारीने उग्र रूप धारण किया। हमने बहुतेरी कोशिशें कीं ; पर फल कुछ भी न हुआ! उसकी अवस्था और भी भयंकर हो गई। मेरे जीवनके नन्दन-काननमें पतझड़का समय आ पहुँचा। मेरे जीवन-सूर्यको राहुके ग्रसनेका समय आ गया। मेरा दिल किसी अज्ञात भयसे काँपने लगा। मेरी सारी शरमीली आदतें उड़ गईं। मैंने रात-दिन रोहिणीके पास बैठकर परमात्मासे लाखों प्रार्थनाएँ कीं। इससे पूर्व मैंने कोई भी काम इस भाँति सच्चे दिलसे नहीं किया था। मैं प्रभुके आगे गिड़गिड़ाया—''हे प्रभो, मेरे पापोंको क्षमा करो। मेरी रोहिणीको मुझसे न छीनो। बेशक मैं बहुत ढोंगी हूँ ; पर तुम्हारी क़सम, मेरी रोहिणी, मेरे झरोखेकी रानी रोहिणीके प्रति मेरा प्रणय कदापि झूठा नहीं। मैं पापी और घोर अपराधी हूँ ; पर तुम हो पतित-पावन, करुणाकर! दया करो दयामय! अपने कराल काल-चक्रकी वक्रदृष्टिसे

मेरे नन्दन-काननको बचाना ! हे विभो ! अपनी करुणा दिखाओ। मैं अधमाधम हूँ। तुम्हारी दृष्टिमें मैं कुछ भी नहीं हूँ। तुम्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।" पर विधिका विधान दूसरा ही था। उसके निष्ठुर जालसे मेरी रोहिणी—मेरी रानी बच न सकी। मेरा सोनेका नन्हा-सा संसार मिट्टीमें मिल गया। मेरी रोहिणी मृत्युके अनन्त अन्धकारमें सदाके लिए विलीन हो गई और अन्धकारमय जीवन-पथमें भटकनेके लिए मुझे छोड़ गई। हाय !

रोहिणीकी मृत्युसे मैं पागल-सा हो गया। मेरा घमंड चूर हो गया। मैं अत्यन्त दीनहीन बन गया। मेरे स्वभावमें गम्भीरता आ बैठी। मैं एकान्तमें बैठकर सोचा करता कि रोहिणी मेरी कौन थी ? मैं कौन हूँ ? हम कहाँसे आये ? कहाँ जायँगे ? क्यों आये ? जीवन-लीलाका मतलब क्या है ? इस प्रकारकी उलझी हुई समस्याओंको सुलझानेकी कोशिश करता था। बहुत पुस्तकोंकी धूल छान डाली ; पर मेरा अन्धकार निविड़ होता गया। मुझे ऐसा लगने लगा कि मेरा समस्त आलोक रोहिणी ही थी। अब मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी ? मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि सूरज, चाँद अपनी चमक-दमकसे मेरी खिल्लियाँ उड़ा रहे हैं। उडुगण भी उनके साथ धज्जियाँ उड़ानेमें सहयोग दे रहे हैं। लहरोंकी सिसकियोंमें मैं रोहिणीका नाम ही सुना करता। कोयल, तोता और मैनाके कलरवमें भी रोहिणीका नाम गूँजता। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मैं ही एक ऐसा अभागा हूँ, जिसके अतिरिक्त सभी जगहोंमें रोहिणी व्याप्त है।

× × ×

पत्थरके-से कलेजेवाले मेरे एक रिश्तेदारने, रोहिणीकी बीमारीमें ही, अपनी बेटीके साथ मेरी गाँठ बाँधनेके लिए पिताके साथ षड्यन्त्र रचा था। घरपर सभी कहने लगे—"मरनेवालोंको कौन रोक सकता है ? गड़े मुर्देको उखाड़नेसे क्या फ़ायदा ? कर्म गति टारे नाहिं टरै। और कितने दिन ऐसा रहोगे ? तुम अभी जवान हो, उम्र ही क्या है ? दूसरी शादी कर लो। एक अच्छी लड़की मिली है। घर बहुत अच्छा है। रुपये-पैसेवाले भी ख़ूब हैं। तुम्हारे बच्चेके लालन-पालनके लिए भी किसीकी ज़रूरत है।" उनकी यह सब बातें सुनकर घावपर नमक छिड़कनेके बराबर विषम वेदना होती थी।

मैं आदर्श संन्यासी न बन सका, न आदर्श ब्रह्मचारी ही, तो क्या आदर्श पति भी नहीं बन सकूँगा ? इस प्रकारकी कल्पनाएँ मनमें आन्दोलित होने लगीं। फिर इस निश्चयपर पहुँचा कि भविष्यमें पुनर्विवाह कभी भी न करूँगा। सभी स्त्रियाँ मेरे लिए माँ-बहनोंके बराबर हैं।

मैंने सोचा कि दूसरी शादी करना घोर पाप है। शादीकी वेलामें समस्त देवता, ऋषि, वेदशास्त्र तथा तीर्थोंकी साक्षीमें यह कहना क्या है कि मैं अपनी पत्नीको अनन्तकाल तक प्यार करूँगा। फिर पत्नीकी मृत्युके चन्द दिन बाद ही समस्त प्रतिज्ञाओंको लात मारकर दूसरी शादी कर लेना क्या है ? मुझे दूसरा ब्याह व्यभिचारसे भी गया-बीता दिखाई दिया। मेरा विचार था कि दूसरा ब्याह भले ही शास्त्र-सम्मत हो, फिर भी प्रथम पत्नीद्रोह है। स्त्री तो पतिके मरनेके बाद भी अपनी प्रतिज्ञाओंका पालन करती है ; पर पुरुष विश्वासघातक बन जाता है। प्रेमका लक्षण क्या है ? वह निश्चल एवं शाश्वत है। अपनी स्त्रीकी मृत्युके बाद, दूसरीको चाहना प्रेम नहीं हो सकता, बल्कि कामवासनाका रूपान्तरमात्र है। मैं तो आदर्श पति बनूँगा और पुन: स्वर्गमें जाकर अपनी रोहिणीसे गले लगूँगा। अपने समस्त जीवनको परोपकारमें बिता दूँगा। सारी दुनियाको दिखा दूँगा कि मैं विषयी नहीं हूँ ; पर निष्काम प्रेमी हूँ। इस प्रकार ध्रुव निश्चयकर, दिनका अधिकांश समय पवित्र ग्रन्थ-पठन तथा ईश्वरोपासनामें बिताते हुए आदर्शजीवी बनने लगा।

कितने लोगोंने ब्याहके लिए विविध प्रकारके

उपदेशोंसे मेरे कान खुरच दिये। वे कहने लगे--"बड़े-बड़े योगियोंको भी ब्रह्मचर्य-जीवन दुष्कर प्रतीत होता है।" पर मैंने जवाब दिया—"पालन करके दिखा दूँगा।" फिर उन्होंने पुनर्विवाह करनेवाले महापुरुषोंका प्रमाण पेश किया ; पर मैंने उन्हें क्षुद्रजीवी कहकर उनकी अवहेलना कर दी। मेरी नज़रमें बाक़ी सभी मनुष्य रसातलके प्राणीके समान दीखते थे। सिर्फ़ अपनेको ही स्वर्गके सुनील निर्मल मेघ-मण्डपमें उड़नेवाला समझकर कृतज्ञतासे आँसू भरकर परमात्माकी वन्दना की और ज्योतिषीजीके रखे हुए अपने नामको सार्थक समझकर मनमें प्रमुदित होने लगा।

× × ×

मेरे लिए रोहिणी अपनी प्रतिकृति दे गई थी। मैंने उसका नाम रोहिणीकुमार रखा। वह बालक सीताके पालन-पोषणमें रहता था।

सीता रोहिणीकी बहन है। मेरी सासने अपने नातीकी देखरेखके लिए हमारे घरपर उसे छोड़ दिया था। वह भी अपने हृदयका समस्त प्यार सींचकर अपने भानजेका लालन-पालन करती थी। मेरी आँखें सीताको देखते ही कृतज्ञतासे भर आती थीं। जब वह मेरे सामने कुछ झेंपकर इस प्रकार कहने लगती थी कि—"जीजाजी, नन्हेंके लिए खिलौना ला दो न। जीजाजी, नन्हेंके लिए जुराबें चाहिए," तब मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे आगे रोहिणी ही खड़ी है, क्योंकि सीता एवं रोहिणीमें इतनी अधिक रूप सादृश्यता थी। अस्तु।

जितनी कड़ी ऐंठन, उतनी ढीली गिरह। रोहिणीकी अचानक मृत्युसे उपजी हुई मेरी आदर्शप्रियताकी नींव अब धीरे-धीरे डगमगाने लगी। दिन बीतते-बीतते सीता ही धीरे-धीरे मेरी रोहिणी बन रही थी। जब उसे देखकर मेरे दिलमें गुदगुदी होने लगती, तो मैं समझता कि कृतज्ञताके कारण ऐसा होता है। मेरे मनोभावोंने मेरे साथ छल किया। मेरे दिलकी सच्ची तसवीर आगे आई। अन्दर-अन्दर द्वन्द्व युद्ध मचने लगा। अब इस प्रकारकी विचारधारामें गोते खाने लगा कि दूसरा लोक है कि नहीं, किसे मालूम? मरनेके बाद आत्मा शून्य तो नहीं हो जायेगी? फिर तो मेरा कठिन व्रत किस कामका? शायद मेरा आदर्श भ्रमपूर्ण भी हो सकता है। यदि यही उच्चादर्श होता, तो दुनियामें हज़ारों लोग दूसरी राह क्यों नापते? सम्भवतः उनका स्वाभाविक ज्ञान मेरे विचारजन्य ज्ञानकी अपेक्षा अधिक विवेकपूर्ण क्यों नहीं बन सकता? यदि मेरी धारणा ग़लत न होती, तो मनमें विचारोंका वर्षण क्यों होता? पानीमें रहनेवाली मछली भूचरोंको देखकर उनके समान बननेको आदर्श समझे और उसे प्राप्त करनेके लिए यदि वह ऊपरको कूदे, तो क्या आत्म-हत्या न कर लेगी? जो अस्वाभाविक है, वह क्या अधर्म नहीं है? शायद मेरी आधुनिक दशा अस्वाभाविक है। यदि हम भूखे रहकर परमात्माका ध्यान करें, तो भोजन ही के भगवान् बननेकी सम्भावना है। इस भाँति कठोर इन्द्रिय दमनसे कामदेव भी बन जाय, तो अचम्भा क्या है। अन्तमें मैं इस परिणामपर पहुँचने लगा कि पुनर्विवाह स्वाभाविक है। इधर सीता जवानीके मध्याह्नमें पहुँच रही थी और रोहिणीकी प्रतिकृति बन रही थी। उसका लावण्य मुझे लुभाने लगा। मैं मतवाला हो गया उसकी माधुरी-मादकताके आगे! मैं विचार-समुद्रमें यह सोचकर गोते खाने लगा कि यदि इस कोमल प्रकृतिवाली सुन्दरीको कोई कठोर असभ्य व्यक्ति मिल गया, तो मैंने अपना कर्तव्य क्या किया? रोहिणीके साथ क्या यह अन्याय न होगा? यदि रोहिणी जीवित रहती, तो क्या वह नहीं कहती कि सीताके साथ शादी कर लो। बहनोंका शरीर अलग-अलग होनेपर भी क्या प्राण एक नहीं है? यदि दूसरी शादी कर लूँ, तो क्या आदर्शजीवी न बन सकूँगा? सीताके आगे मैं हार गया। फिर मैंने सोचा कि यदि मैं हार भी गया, तो केवल सीताके लिए। इस प्रकारकी

पराजय महान त्याग होनेके कारण मेरे आदर्श जीवनमें सोनेमें सुगन्धिकी उपमा चरितार्थ करेगी।

× × ×

हमारा नन्हा-सा गाँव वाद्य-घोषसे निनादित हो उठा। दूर-दूरसे खूब शान-शौकतसे रिश्तेदार पधारे। घर-बार सब सज गये। ढोल बजने लगे। खूब धूम-धामसे आये हुए अतिथि एवं अभ्यागतोंके कोलाहलसे विवाहोत्सव महोत्सव बन गया। मेरी बरात दुलहिनके घरकी ओर खूब शान-शौकतसे चल पड़ी। मुहूर्त भी नज़दीक आ गया। पाणिग्रहण करवानेके लिए पुरोहितजी नज़दीक पहुँच गये। मेरी बगलमें सीता खड़ी हो गई। "सुलग्न, सावधान! अग्निदेवकी साक्षीमें! वायुकी साक्षीमें! अष्टदिक्पालोंकी साक्षीमें! सूर्य-चन्द्रकी साक्षीमें! तिरुपति वेंकटरमणकी साक्षीमें! महर्षियोंकी साक्षीमें! शचि-इन्द्रकी साक्षीमें! सरस्वती-ब्रह्माकी साक्षीमें! पार्वती-परमेश्वरकी साक्षीमें! सर्वतीर्थोंकी साक्षीमें!" इस प्रकार विवाह-क्रिया-कलाप प्रारम्भ हुआ। पिछली बार जब मेरी शादी रोहिणीके साथ हुई थी, तब भी यह सारे देवता साक्षी थे। देवगणोंको अकसर साक्षीके लिए बुलाना, मानव-जातिका स्वाभाविक गुण है। अतएव मैंने सोचा कि इनकी साक्षी होनेमें रत्तीभर भी अस्वाभाविकता नहीं है; परन्तु ढोल-बाँसुरीकी आवाज़को चीरकर, जनताके शोरगुलको फाड़कर और पुरोहितके मन्त्रघोषको छेदकर, मेरे अन्तस्तलमें अन्तरात्माकी वाणी सुनाई पड़ी—"तुम झूठे हो। तुम पतित हो। तुम छलिया हो।" मैंने दिलको टटोला। फिर वही वाणी गूँज रही थी। अब वही आवाज़ मेरे कानके पास ही ज़ोर-शोरसे गूँजने लगी। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरी रोहिणी दुतकार रही है। मैं घबरा गया। पसीनेसे तरबतर हो गया। मैंने सोचा कि भीड़-भक्कड़के कारण ऐसा हो रहा है। मैंने अपने पढ़े हुए मनशास्त्र द्वारा अपनी अन्तरात्माकी वाणीको दबानेकी कोशिश की। नास्तिक बनकर रोहिणीको हटानेका साहस किया; पर सफल नहीं हुआ। बेहोश हो गिर पड़ा। जनतामें खलबली मच गई। पंखा होने लगा। शीतल जल छिड़का जाने लगा। बहुत देरके बाद होशमें आया। रिश्तेदार जब कहने लगे कि भीड़की धक्का-धक्कीसे और दिन-भरके अल्पाहार तथा गरमीसे बेहोश हो गया, तो मैंने भी हामी भर दी।

मुझे विवाह-मण्डपसे बाहर लाये। ऊपर बहुत दूरपर असंख्य उडुराशिसे सुशोभित सुधाकरका शीतल रजत मण्डल अपार अनन्त मेघरहित नील नभमें मुसकरा रहा था। वह मुसकराहट, अब मुझसे बिछुड़ी हुई, प्रथम दर्शनकी करुणामयी मुसकानके समान खिल रही थी। मैं अपने-आपको रोक न सका। मेरी आँखें सजल हो गईं और आँसुओंकी बूँदें गालोंपर ढुलकने लगीं, क्योंकि उस दिन मेरी रोहिणी सचमुच मर गई।*

—कुमारी पद्मावती, हिन्दी-प्रभाकर

* एक कनाड़ी कहानीसे अनुवादित।
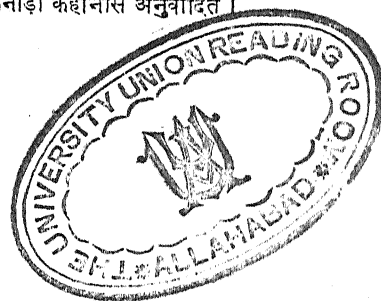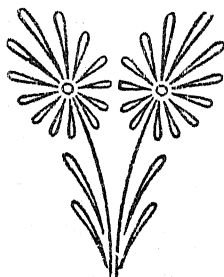
सम्पादकीय संस्मरण

श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे

'भारतमित्र'

सन् १६१६ के आरम्भमें जब मैंने 'दैनिक भारतमित्र' का सम्पादन-भार ग्रहण किया, तब कलकत्तेके लोगोंसे मेरा कोई परिचय नहीं था—न वे मुझे जानते थे और न मैं उनको, और मन-ही-मन मैं यह भी अनुभव करता था कि मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि जिस पदपर बड़े-बड़े विद्वान और क्षमताशाली पुरुष बैठ चुके हैं, उसकी जिम्मेदारी मैं निबाह सकूँगा। पर स्व० पं० वासुदेव मिश्रको मुझपर मुझसे भी अधिक भरोसा था। उनसे मैंने कहा, 'वासुदेवजी ! इस भारको उठाते मुझे डर लगता है ! किसी योग्य मनुष्यको लाकर इस आसनपर बैठा दूँ और मैं चला जाऊँ, यही अच्छा है।' प्रिय मित्र वासुदेवजी बोले, 'आप नहीं जानते आप क्या कर सकते हैं। इस समय 'भारतमित्र'को छोड़ जानेमें आपकी अपकीर्ति होगी। ऐसा मत कीजिए, कुछ करके तब छोड़िये।' उनके हृदयके इन उद्गारोंका विरोध करना मेरी सामर्थ्यके बाहर था। मैंने भार तो उठा ही लिया और उसमें अपना सारा बल लगा दिया। रोज़ एक अग्रलेख लिखना अनभ्यासके कारण बड़ा कठिन जान पड़ता था। डर लगता था कि कोई बेसिर-पैर, बेबुनियाद और बेजिम्मेदारपनेकी बात न निकल जाय। स्व० लोकमान्य तिलकका यह नियम था कि साप्ताहिक 'केसरी' पत्रमें जो अग्रलेख वह लिखते थे, उसके लिए उस सम्बन्धकी सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्रीको वह देख लेते थे। जिस लेखपर उन्हें छै वर्ष द्वीपान्तरवासका दण्ड मिला था, उस दो-तीन कालमके लेखके लिए उन्होंने रूसकी ज़ारशाहीके सम्बन्धमें कई व्हाल्यूम ग्रन्थ (उसी समयके प्रकाशित) पढ़े थे। इसका अनुकरण तो मैं क्या कर सकता था ; पर मैंने भी यह नियम बना लिया था कि जिस विषयपर लेख लिखना होता, उस विषयमें जहाँ जो सामग्री पढ़नेको मिल सकती थी, पहले पढ़ लेता था, और तब क़लम उठाता था। और यह प्रायः रोज़ कुँआ खोदकर पानी निकालनेका-सा काम था। इससे परिश्रम बहुत अधिक करना पड़ा। रात दो-दो बजे तक अध्ययन करता था। जिम्मेदारीको सचाईके साथ निबाहनेकी कुछ ऐसी धुन सवार हो गई कि उसके पीछे खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता था। छै महीने लगातार घोर परिश्रम करनेसे मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया, आँखें बिलकुल धँस गईं, उनमें जलन होने लगी और शरीर भी अवसन्न-सा हो चला ! तबसे रातको लिखना-पढ़ना एकदम बन्द ही कर देना पड़ा, सो आज तक बन्द ही है। पर जिस समय यह बात हुई, उस समय तक नित्यके सम्पादकीय कार्यका इतना अभ्यास हो चुका था कि सम्पादकीय उत्तरदायित्वके निभनेका जो बड़ा भारी भय लगता था, वह छूट गया, और जहाँ एक अग्रलेखमें दिन-दिन-भर बीत जाता था, वहाँ कभी-कभी दस-पन्द्रह मिनटोंमें अग्रलेख लिखे गये। यह भी अनुभव हुआ कि जो लेख मैं बड़े परिश्रम और अध्ययनके साथ लिखता था, उसे सामान्य लोग गम्भीर कहकर दूरसे ही प्रणाम करते थे, और जो लेख मिनटोंमें लिखा जाता था, उसे बड़े चावसे पढ़ते थे। यह बात मुझे पीछे मालूम हुई कि दैनिक लेखोंमें गम्भीरता यदि रखी जाय, तो कितनी मात्रामें ! कभी-कभी तो ऐसे भी लेख लिखे गये, जिनके सिर-पैरका कुछ भी पहलेसे ध्यान नहीं। यह भी मालूम नहीं कि क्या लिखना है ; पर लेखनी स्वयं ही न केवल लिखनेका, बल्कि सोचकर लिखनेका काम किये चली जा रही है—मन स्तब्ध है, बुद्धिकी गति कुंठित है ; पर लेखनीसे लेख निकल रहा है ! कुछ ऐसे ही इन्द्रजालकी-सी विलक्षण अवस्थाका

अनुभव कभी-कभी हुआ है ; चाहे यह बात पं० बनारसीदास चतुर्वेदीको न जँचे। 'भारतमित्र' के सम्पादन-कालमें मुझे सिर-दर्दका रोग लग गया! सिरमें ऐसी भयंकर पीड़ा होती थी कि मस्तिष्क कुछ सोच ही नहीं सकता था। सोचना दरकिनार, अपने आपको सम्हाल तो सकता ही नहीं था। ऐसी हालतमें भी लेख लिखने ही पड़ते थे। सो कैसे लिखे गये, यह भुक्तभोगी ही जान सकते हैं, और ऐसी हालतमें लिखे लेख सरल और चित्तवेधक भी होते थे, साथ ही सिद्धान्तको लिये हुए! यह मैं अपने अनुभवकी बात लिख रहा हूँ, अपनी बड़ाईकी नहीं! हाँ, यहाँ एक बातका स्मरण हो ही जाता है कि जिस किसी हालतमें जो कोई लेख मैंने लिखा, वह अपनी विद्या (विद्या अपने पास थी ही क्या !) या बुद्धि (बुद्धि भी अपनी ढपोलसंखकी-सी ही है) के बलपर नहीं, सत्यस्वरूप श्रीनारायणकी प्रार्थनाके ही भरोसे लिखा। इसके सिवा मैं और कर ही क्या सकता था? गोस्वामी तुलसीदासकी चरणरज जितनी भी जिसकी योग्यता नहीं, उसका अपने लिए तुलसीदासजीकी इस उक्तिका सहारा लेना भी बड़ी भारी आत्मश्लाघा है कि—

> "कवित विवेक एक नहिं मोरे।
> सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।"

हाँ, तो इस तरह छै महीने लगे अपने-आपको सम्हालनेमें और करना यह पड़ा कि स्वास्थ्य खो देना पड़ा। खाने-पीनेसे रुचि हटकर जा बसी 'भारतमित्र'के लेखपर। घरवालोंके नेहका नाता 'भारतमित्र'से ऐसा जा जुड़ा कि घरवाले मुझे देखते ही रह गये और मैं भी उन्हें देखता ही रह गया। उनकी सुख-दुःखकी ओर देखनेकी मुझे फुर्सत ही नहीं थी। जो वेतन मुझे मिलता था, वह घर लाकर रख देता था, उससे जैसे-तैसे काम चलता था। मेरी तो यह हालत थी, और 'भारतमित्र'के जनरल मैनेजर 'भारतमित्र'का लोकल सेल घटता देखकर घबरा गये! मुझे अब तक यह खबर ही नहीं थी कि यह क्या बला है! वासुदेवजी जो कभी घबरानेवाले नहीं, वह भी घबरा गये ; पर मैं अपनी घबराहटको छै महीने पीछे छोड़ आया था, उसे लौटा लानेकी अब मुझे फुर्सत नहीं थी। मुझे पेपरके गिरने-चढ़नेका प्रश्न ही विजातीय-सा जान पड़ा। कारण, मेरा सिद्धान्त इतना ही बतलाता था कि सचाईके साथ काम किये जाओ—कामयाबी तो कामकी सचाईमें होती है। जब कभी पेपरकी गिरनेकी बात मुझसे कोई कहता था, तो मैं यही उत्तर देता था कि घबराइये मत, अपना काम किये चलिये। कलकत्तेमें उन दिनों दो-एक सज्जनोंको छोड़कर मेरे कोई मित्र नहीं थे, मुझे कोई जानता भी नहीं था, जानने लायक कोई खास बात भी मुझमें नहीं थी। पं० बाजपेयीजी जैसे यशस्वी सम्पादक अभी-अभी 'भारतमित्र'से अलग हुए थे, और एक अपरिचित आदमी 'भारतमित्र'का सम्पादक बन बैठा, इससे कलकत्तेके कुछ लिखे-पढ़े लोगोंमें 'भारतमित्र'के विरुद्ध कुछ काल तक चर्चा रही। मुझे 'हिन्दी-बंगवासी'के सम्पादक जानते थे। उन्होंने मेरे सम्पादक होनेपर जो कुछ लिखा था, वह मेरी योग्यतासे बहुत अधिक था ; पर वह साप्ताहिक ध्वनि कलकत्तेकी जनता तक नहीं पहुँची। मुझे इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं थी। जिस प्रेमसे श्री जौहरजीने वे शब्द लिखे थे, उस प्रेमका मैं कायल था, और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता यहाँ भी प्रकट करता हूँ। उनके शब्दोंसे मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिला था। कलकत्तेके ही एक दैनिकने इस प्रोत्साहनका काट किया ; पर उससे मुझपर कोई चोट नहीं आई। ऐसे विरुद्ध वातावरणमें मेरा एक ही भरोसा था, और वह वही था, जो उन सबका भरोसा होता है, जिनका और कोई भरोसा नहीं होता। आगे जो कुछ हुआ, अपने-आप हुआ।

मैंने 'ईश्वरका अधिष्ठान' शीर्षक कुछ लेख लिखे। उससे विरोध और भी बढ़ा! बढ़ना

स्वाभाविक ही था ! भला, समाचारपत्रोंमें 'ईश्वर'का क्या काम ? मैं जानता था कि विरोध बढ़ेगा, और मैंने जान-बूझकर वे लेख लिखे। क्यों लिखे, सो पं० सकलनारायणजी पांडे बता सकेंगे, क्योंकि बहुत दूरकी सोचनेवाले, हम लोगोंमें वे ही हैं। अस्तु। 'ईश्वरके अधिष्ठान' में मैंने 'भारतमित्र'की नीति निर्धारित की, या यह कहिये कि स्पष्ट की, और सनातनधर्मकी नये ढंगसे चर्चा छेड़ दी, जिससे सनातनधर्मावलम्बियोंको बड़ा आनन्द मिला और बड़े आनन्दसे सनातनधर्मावलम्बियोंके घरों और बैठकोंमें 'भारतमित्र'का स्वागत होने लगा। श्री अखौरीजीका अब ढाढ़स बँधा। 'भारतमित्र'के कुछ पाठक तो 'भारतमित्र'को 'रामानन्दी' समझकर भागे ; पर उनसे बहुत अधिक लोग 'भारतमित्र'की परिक्रमा करने लगे। 'कलकत्ता-समाचार' सनातनधर्मका पत्र मौजूद था। था दोनोंका 'सनातनधर्म' एक ही ; पर रूप-रंगमें कुछ अन्तर था। अस्तु, इसी सिलसिलेमें 'भारतमित्र'ने 'राष्ट्रीय गोरक्षा'का एक ऐसा आन्दोलन उठाया, जो स्व० स्वामी श्रद्धानन्दकी ओरसे लेकर स्वर्गीय पं० लक्ष्मण शास्त्रीके छोर तक एक बार सबको नहला गया। स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा इन लेखोंसे बहुत ही प्रसन्न हुए, और 'भारतमित्र' के ये लेख युक्तप्रदेशमें लोगोंने छाप-छापकर खूब बँटवाये। क्या बात थी उन लेखोंमें, राम जाने ; पर अपने राम तो इसीमें मस्त रहे कि काम अच्छा बना। 'भारतमित्र'की ग्राहक-संख्या बढ़ी और लोकल सेल भी बढ़ा। यह क्रम अब बढ़ता ही गया। कलकत्तेके डाक-घर और तारघरके ब्राह्मण और क्षत्रिय कर्मचारी मेरे समयके 'भारतमित्र'के पहले मित्र हैं। इन लोगोंके प्रेमसे अधिक प्रेम मैंने कलकत्तेमें अन्यत्र नहीं देखा। यह स्थानिक बात हुई। कलकत्तेके बाहर बिहार 'भारतमित्र'का सबसे बड़ा प्रेमी हुआ, और असहयोग-आन्दोलनमें बिहारमें वाणी राजेन्द्र बाबूकी और लेख 'भारतमित्र'का ही माना जाता था। 'भारतमित्र'के राष्ट्रीय गोरक्षा-आन्दोलनमें व्याख्यानादि रूपसे पं० बढ़ेर्ज अग्रसर हुए। इन्हींके नेतृत्वमें, 'भारतमित्र'के लेखोंके प्रोत्साहन और राजेन्द्र बाबूके स्वयंसेवकोंके निःस्वार्थ बलिदानकी तैयारीसे, एक पुनीत हिन्दू-तीर्थसे सदाके लिए गोहत्या बन्द हो गई, यह बात मैं इस लेखसे नम्रतापूर्वक स्मरण कराता हूँ।

'भारतमित्र' (मेरे समयमें) झुककर फिर कैसे ऊपर उठा और आरम्भमें उसने 'सनातनधर्म' की क्या सेवा की, इसका किंचित् आभास दिलाते हुए आत्मश्लाघाका कोई शब्द आ गया हो, तो उतना ही पाठक झूठ समझें, और सब तो सत्य ही है। मतलब यह कि ईश्वरवादी, सनातनधर्मी और गोरक्षामें यत्नवान् लोग ही मेरे इस काममें मेरे पहले साथी हुए, और इस सहारेसे मुझे जो सन्तोष हुआ, वह केवल बुद्धिग्राह्य है, रुपये-पैसेसे उसकी नाप-जोख नहीं हो सकती। ये सब बातें पहले छै महीनेकी हैं, एक तरफ़ स्वास्थ्य नष्ट हुआ, दूसरी तरफ़ प्रेमका दायरा बढ़ा।

इसके बाद असहयोग-आन्दोलनका समय आता है। इस आन्दोलनमें 'भारतमित्र'का एक ख़ास भाग है, और उसी भागके भाग्यवश मेरा भी बड़ाबाजार कांग्रेस कमेटीमें एक प्रधान भाग था। असहयोग-आन्दोलनके कुछ काल पहले उसके आचार्य श्री गांधीजी द्वारा लिखित 'होमरूल' के सिद्धान्तका प्रचार करना मैंने आवश्यक समझा। उसका अनुवाद किया। उसमें मिलोंके कपड़ोंके बहिष्कारपर बहुत ज़ोर दिया गया है, जिससे विलायती मालके बहिष्कारका ज़ोर घटनेकी आशंकासे मैंने यह चाहा कि श्री गान्धीजी इस अंशका समयानुकूल संशोधन कर दें। मैं उनसे मिलने इलाहाबाद गया, जहाँ खिलाफ़त, कांग्रेस तथा अन्य नरम-गरम दलोंके नेताओंकी एक कानफ़रेन्स हो रही थी, जिसमें लोकमान्य तिलक सम्मिलित नहीं हुए। स्व० पं० मोतीलाल नेहरूके आनन्द-भवनमें मैं गान्धीजीसे मिला। उनसे अपना मतलब कहा। उन्होंने कहा कि, मैं तो

कार्यमें फँसा हूँ, इससे अवकाश मिलनेपर मैं आपका अनुवाद देखूँगा और फिर उसकी प्रस्तावना लिखूँगा। मैंने पूछा, आपको अवकाश कब मिलेगा ? उत्तर मिला, यह बतलाना तो कठिन है ! मैंने कहा, 'तब तो यही अच्छा है कि मैं तब तक आप ही के साथ रहूँ, जब तक आपको अवकाश न मिले।' गांधीजीने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि, हाँ, यह तो बहुत अच्छा होगा ! इलाहाबादसे दूसरे ही दिन हम लोग चले। महात्मा गांधी, उनके पीछे सरलादेवी चौधरानी, उनके पीछे श्री राजगोपाला चारियर और मैं। छिउकी स्टेशनपर लोकमान्य तिलकके दर्शन हुए—बम्बई मेलसे, काशीसे लौटकर, पूना जा रहे थे। हम लोगोंकी ट्रेन दूसरी थी। गांधीजीके पीछे-पीछे मैं बम्बई और फिर गुजरातके नडियाद आदि स्थानोंमें ठहरते हुए अहमदाबाद और साबरमती पहुँचा। तीन-चार दिन साबरमतीमें रहना पड़ा। सरलादेवीजीने इस अवसरपर मेरा बहुत ख़याल रखा। गुजरातकी सैरमें भोजन मेरा और श्री राजगोपालाचारीजीका (दोनों ब्राह्मणोंका) एक साथ बना। साबरमतीसे गांधीजी फिर बम्बई गये, मैं भी गया। बम्बईमें खिलाफती नेता मौलाना शौकत अली और मौलाना अब्दुल बारी महात्मा गांधीसे मिले। मैं वहीं था। लार्ड चेम्सफोर्डको दिये जानेवाले अलटिमेटमका मसविदा तैयार करके मौलाना लोग ले आये थे। गांधीजीने उसे सुधारा, अलटिमेटम तैयार हुआ, अब दो-एक दिनमें भेजा जायगा। यह कार्रवाई प्राइवेट थी। ऐसी ही प्राइवेट ख़बरोंको उड़ा ले जाना और अपने समाचारपत्रको चमकाना जर्नलिस्टोंका पेशा है। पर इसमें मैंने अधीरता नहीं की, अधीरता बड़ी ही अनुचित होती। मैंने गांधीजीसे कहा, यह सारी बातचीत सुन ली, अलटिमेटमका अक्षर-अक्षर भी सुन लिया ; अब कहिये तो अपने पत्रको इसकी ख़बर भेज दूँ। उन्होंने कहा, नहीं, ऐसा मत करो ; ख़बरको ख़बरके तौरपर मत छापो, सलाहके तौरपर यों लिखो कि लार्ड चेम्सफोर्डको इस आशयका अलटिमेटम दिया जाय। हिन्दुस्तानके किसी भी पत्रमें अलटिमेटमकी कोई ख़बर नहीं छपी थी, तब 'भारतमित्र'के अग्रलेखमें उस अलटिमेटमका पूरा सारांश, सलाहके तौरपर, छापा गया था। कुछ दिन बाद जब वह अलटिमेटम प्रकाशित हुआ, तब 'भारतमित्र'के पाठकोंने देखा कि 'भारतमित्र'के बताये अनुसार ही अलटिमेटम दिया गया है। पर यह एक जर्नलिस्टिक सिक्रेट था ! अस्तु। मैं जिस कामसे गया था, उस कामके लिए देखा कि अब महात्माजीको समय नहीं मिल सकता। तब मैंने उनसे निवेदन किया कि अब आपको समय नहीं मिलेगा, अनुवाद पढ़नेकी ज़रूरत भी कुछ नहीं है, अनुवादके बारेमें आप लिखें भी कुछ नहीं, केवल पुस्तकका इतना संशोधन कर दीजिए कि मिलोंका कपड़ा लेकर भी विलायती मालका बहिष्कार किया जाय। गांधीजीने वह संशोधन कर दिया, और मैं पूनेमें लोकमान्यके दर्शन करके कलकत्ते लौट आया।

गांधीजीसे विदा होते समय मैंने अब शुरू होनेवाले असहयोग-आन्दोलनके आचार्यसे 'भारतमित्र'के लिए यह व्यवस्था करा ली थी कि 'यंग इंडिया' के लिए गांधीजी जो लेख लिखें, उसके प्रूफ 'भारतमित्र'को मिल जाया करें। यह व्यवस्था कुछ काल तक अच्छी चली। उन दिनों 'यंग इंडिया' के छपनेपर 'यंग-इंडिया'के लेख अंगरेज़ी पत्रोंमें उद्धृत हुआ करते थे और तब हिन्दी, उर्दू, बंगला आदि पत्रोंमें उनके अनुवाद छपते थे। पर 'भारतमित्र'में ये लेख अंगरेज़ी पत्रोंमें छपनेसे एक दिन पहले ही, 'यंग इंडिया' के कलकत्ते पहुँचनेसे पहले ही, प्रकाशित हो जाते थे। पर यह जर्नलिस्टिक एन्टर प्राइज थी। इसका यथार्थ मूल्य दैनिक पत्रोंके वर्तमान सम्पादक समझ सकते हैं। इससे आन्दोलनसे हिलनेवाले हृदय 'भारतमित्र'पर टूट पड़ते थे। असहयोग-आन्दोलनके 'भारतमित्र'का प्रचार भी बहुत बढ़ गया था, और इस बातको पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी और पं० बाबूरावजी

पराड़करजीसे अधिक और कौन जान सकता है कि असहयोगके मैदानमें 'भारतमित्र' ही सबके आगे था। बिहारमें नेतृत्व था बाबू राजेन्द्रप्रसादका, आवाज़ थी 'भारतमित्र'की। पंजाबके उर्दू-पत्र बंगाल और बिहारको 'भारतमित्र'में ही ढूँढ़ते थे। युक्तप्रदेशमें 'आज'की विमनस्कतासे 'भारतमित्र'के लिए मैदान खाली था। 'आज' के ही एक जिम्मेदार व्यक्तिने मुझे उस समय बताया था कि युक्तप्रदेशमें भी इस समय भारतमित्र ही भारतमित्र है। पर सच जानिये, इसमें जो कुछ भी कौतुककी बात हो, वह मेरी विद्या या बुद्धि नहीं, बड़ोंका आशीर्वादमात्र था, यदि मूलचन्दजी यह स्वीकार करें कि हाँ, कुछ था।

असहयोग-आन्दोलनमें मुझे भी जेल जाना पड़ा था। उस समज 'भारतमित्र'का सम्पादन पं० वासुदेव मिश्र और श्री हरिकिशोर प्रसादजी करते थे। अग्रलेख श्री हरिकिशोर प्रसादजी ही लिखा करते थे, और यह काम उन्होंने इतनी योग्यतासे किया कि मेरे जेलमें रहनेसे 'भारतमित्र'की स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। हरिकिशोर बाबू अब भागलपुर जिलेमें वकालत करते हैं, और वहीं किसी डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके चेयरमैन भी हैं। जेलसे लौट आनेपर मैंने अपने जेलके अनुभव लिखे थे। उन लेखोंके अंगरेज़ी अनुवाद मदरासके 'स्वराज्य' पत्रमें छपते थे, और कलकत्तेके अंगरेजी पत्र कभी-कभी उन्हें उद्धृत करते थे। इन लेखोंके उर्दू अनुवाद लाहौरके उर्दू 'प्रताप'में छपते थे, और कभी-कभी कोई हिन्दी-पत्र उर्दूसे लेकर हिन्दीमें छापते थे! इन लेखोंपर ब्रिटिश पार्लमेंटमें भी प्रश्नोत्तर हुए थे।

कुछ ख़ास-ख़ास बातें मैंने ऊपर लिख दी हैं; पर एक ख़ास बात यह भी है कि व्यापार, एक्सचेंज और बजट-सम्बन्धी बातोंका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था, और इन विषयोंपर लेख मुझे 'भारतमित्र'में लिखने पड़ते थे, तब मुझे कष्ट होता था, क्योंकि जिस विषयको समझा नहीं, उसी विषयको समझाना है! सिद्धान्त तो यह रहा कि बिना समझे कोई बात मत लिखो! इसलिए समझनेका प्रयत्न तो बहुत करता था। इन विषयोंको पं० बाबूरावजी विष्णु पराड़कर और पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी बहुत दिनोंसे समझे हुए हैं, ऐसी मेरी धारणा थी, और अब भी है। इसलिए इन विषयोंमें मैं इन महानुभावोंके लेख कभी-कभी देख लेता था, और अंगरेज़ी, बंगला, मराठीमें जहाँ जो सामग्री तत्काल मिल सकती थी, उसे भी देखता था; समझनेकी ख़ूब कोशिश करता था; जितना परिश्रम प्रतिवर्ष कुछ दिन इन विषयोंके समझनेके लिए करता था, उतना परिश्रम और किसी विषयको समझनेमें नहीं करना पड़ता था। जो बात जितने अंशमें समझमें आई, वह उतने ही अंशमें लिखी, उससे अधिक नहीं। सिद्धान्तकी तो रक्षा की; पर यहाँ व्यवहार-ज्ञानकी जो आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति इतनी-सी प्रामाणिकतासे कैसे हो सकती थी? इन्हीं विषयोंपर लिखे कुछेक लेखोंके सम्बन्धमें एक बार पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने मुझसे कहा कि एम० ए०के इकनामिक्सके एक स्टूडेंटने मुझसे आकर कहा है कि 'भारतमित्र'के इन लेखोंसे अपने नित्य अध्ययनके विषयकी कई बातें ऐसी समझमें आईं, जो मैं पहले नहीं जानता था। यह सुनकर मुझे साश्चर्य प्रसन्नता हुई; पर प्रसन्नता जल्द ही रवाना हो गई और आश्चर्य बना रहा, क्योंकि मेरे मनको ही यह सन्तोष नहीं था कि जिस विषयपर मैंने लिखा है, वह विषय मेरा ठीक तरहसे समझा हुआ है। जब मुझे ही सन्तोष नहीं, तब दूसरोंको क्या सन्तोष होगा? चतुर्वेदीजी मुझे बराबर बढ़ावा दिया करते थे, उसीमें की यह भी एक बात होगी। हाँ, प्रयत्न करके भी इन विषयोंको मैंने कभी समझा नहीं, और यही सोचा कि बिना गुरु किये ग्रन्थि खुलनेकी नहीं। हाँ, सन्तोष-सा कोई भाव इतने ही भरके लिए है कि अंशतः समझी हुई बात ज्यों-की-त्यों ही लिखी, जो बात समझमें नहीं आई—चाहे वह फिर कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो—उसकी अनधिकार चर्चा नहीं ही की। श्रद्धेय बाजपेयीजी और पराड़करजीके समयमें इन

विषयोंपर 'भारतमित्र' में बहुत अच्छे लेख निकलते थे।

मेरे समयमें 'भारतमित्र' अध्यात्म-प्रधान धर्माश्रित राजनीतिक पत्र था। इस पत्रका संचालन कभी 'बालमत', 'तियमत', या 'बहुमत'का रुख देखकर नहीं हुआ। 'बहुमत' जहाँ ग़लतीपर हुआ, वहाँ बहुमतको भी पछाड़नेमें कभी कोई कसर नहीं की। एक बारकी घटना है कि कारपोरेशनके चुनावके प्रसंगसे समस्त मारवाड़ी-समाजका मुझे विरोध करना पड़ा। मेरे एक सम्मान्य हितैषीने मुझे कहला भेजा कि तुम यह क्या कर रहे हो, इससे तुम लोगोंकी नज़रोंमें गिर जाओगे। जिसने आकर मुझसे यह बात कही, उससे मैंने कहा, 'लोगोंकी नज़रोंमें गिरना-चढ़ना मेरा काम नहीं है। मेरा काम तो लोगोंकी नज़रोंको ठीक करना है।' 'भारतमित्र'का कुछ ऐसा पुण्यबल था कि जिन लोगोंका मैंने विरोध किया, 'भारतमित्र'के प्रति उनकी श्रद्धामें ज़रासी भी ठेस नहीं लगी।

सार्वराष्ट्रीय राजनीतिके विषयमें मेरे समयके 'भारतमित्र'की छै वर्षकी फ़ाइल अध्यात्म-प्रधान धर्माश्रित राजनीतिका कुछ प्रकाश-सा है। यह बात मैं इसलिए कहता हूँ कि मेरा यह विश्वास है कि सूर्योदयके बिना जैसे दिन नहीं होता, वैसे ही अध्यात्म-प्रधान धर्माश्रयके बिना राजनीतिक सूझ भी नहीं होती—जो होती है, वह नहींके बराबर होती है। मैं इस विषयमें इतना ही कहूँगा कि उस कालमें यूरोपमें जो स्थित्यन्तर हुए, उनका सबसे अच्छा विवरण और उनके सम्बन्धमें भविष्य-कथन भी सबसे पहले हिन्दी-पत्रोंमें से ही एक पत्रमें हुआ है। इसके बाद अन्य पत्रोंमें। अन्य पत्र इसके बाद 'भारतमित्र'के भी आगे बढ़े हैं; पर तब, जब 'भारतमित्र' सुस्ताने लगा। इस विषयका एक ही दृष्टान्त देता हूँ। रूसकी बोलशेविक क्रान्ति और उसके सिद्धान्तोंका विवरण (भविष्य कथनके साथ) हिन्दुस्तानके किसी भी पत्र या पुस्तककी तारीखसे पहले आपको 'भारतमित्र'में मिलेगा; पर पाठक इसमें मेरी कोई बड़ाई न समझें। यह 'भारतमित्र'का पुण्यबल है, जो उसीके साथ है, मेरे साथ नहीं। यह अध्यात्म-प्रधान धर्माश्रयकी राजनीतिका महत्व नहीं, उसकी एक बहुत ही छोटीसी बात है—और 'छोटे मुँह बड़ी बात' शोभा भी तो नहीं देती!

हिन्दुस्तानके राजनीतिक स्थित्यन्तरोंमें, मेरे समयमें, 'भारतमित्र'ने जो कुछ कार्य किया, उसके विषयमें मैं इतना ही कहता हूँ कि मुझे सन्तोष है।

यह सब मैं क्या लिख रहा हूँ। अपनी प्रशंसा? आत्म-स्तुति तो करनी ही न चाहिए। पर इसे मैं श्रीसत्यनारायण भगवानके चरणोंमें अर्पण करता हूँ, और यह चाहता हूँ कि भ्रमवश इसमें मैंने कुछ असत्य लिखा हो, तो वह शुद्ध हो जाय और इसमें अध्यात्म-प्रधान धर्माश्रित राजनीतिका जो सन्देश है, वह सम्पादक-जगत्में घर-घर पहुँच जाय। मैं सच कहता हूँ कि यह मेरा उपदेश नहीं, मैं उस योग्य ही नहीं, बल-बुद्धि-विद्याका कोई पराक्रम मुझमें नहीं है। 'भारतमित्र'ने मुझे अपना लिया था, ईश्वरको कुछ अच्छा काम भी मुझसे करा लेना था, मेरे सिरपर तो सब लोगोंके एहसानका इतना बड़ा बोझ है कि बार-बार मैं यही कहा करता हूँ कि लोगोंने मेरा जो कुछ सम्मान किया, वह मेरी योग्यतासे सदा ही बहुत अधिक रहा है। अब सम्मान नहीं चाहता, उस ऋणसे मुक्त होना चाहता हूँ।

सम्पादककी पवित्र जिम्मेदारीके सम्बन्धमें बहुतसी बातें लिखनेकी हैं। मेरे विचारमें भारतवर्षके पत्रकारोंको संसारके पत्रकारोंके लिए आदर्श-स्वरूप बनना चाहिए। मुझसे वह आचरण बना नहीं, जो एक समाचारपत्र-सम्पादकका होना चाहिए। मुझमें इतना साहस भी नहीं है कि मैं अपने दोषोंको उठाकर आपको दिखा दूँ और आपकी घृणाका पात्र बनूँ! इसलिए यह सब मुझे कुछ लिखना ही न चाहिए था। पर क्या करता? पं० बनारसीदासजीने कहा कि अपने सम्पादकीय स्मरण लिखो। न लिखके

कहाँ जाता ? जो स्मरण हुआ, लिखा। पर जैसे-जैसे लिख रहा हूँ, वैसे-वैसे और भी बातें याद आ रही हैं। बिड़ला ब्रदर्स याद आते हैं, श्री बसन्तलाल मुरारका याद आते हैं, जिन-जिनसे धन लिया, वे सब याद आते हैं। यह कथा बड़ी लम्बी है। यह शरीर अपने अन्दर एक बड़ा भारी बही-खाता छिपाये हुए है। किस-किसकी याद करूँ ? पर इन सब याददाश्तोंका 'भारतमित्र' से क्या सम्बन्ध ? 'भारतमित्र'की वह शान है, जिसे मैं नहीं पा सका ! 'भारतमित्र'का लेख पवित्र था, किसी लोभपाशसे बँधा नहीं। और मेरे साथी मुझे ऊपर उठाये हुए थे। पं० वासुदेव मिश्र देवता-मनुष्य थे, श्री हरिकिशोरप्रसादजी बड़े प्रेमी सहकारी थे—'भारतमित्र'के लेखोंमें उन्होंने मेरी अनुपस्थितिमें मेरा खूब साथ दिया, सार्वजनिक सभाओंमें भी कहीं-कहीं अपनी प्रभाका श्रेय मुझे दे गये, श्री राजकिशोरप्रसाद सिंहने सहकारी बनकर मेरा गौरव बढ़ाया—उनका परामर्श बहुत मूल्यवान होता था। श्री विश्वंभरनाथजी जिज्जाने सार्वराष्ट्रीय राजनीतिमें मन लगाकर बड़ी अच्छी सहायता 'भारतमित्र'को प्रदान की और अपने विनयसे मुझे बाँध लिया। श्री कार्तिकेयचरण मुखोपाध्यायने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, व्यवहार-चातुर्य और अथक परिश्रमसे 'भारतमित्र'को पूर्ण सन्तोष दिलाया। श्री अखौरीजीकी कविता और जनरल-मैनेजरी बड़ी प्रसन्नता देनेवाली हुई। धर्म-सम्बन्धी गूढ़ रहस्योंकी बातचीत उनसे करनेमें बड़ा आनन्द आता था। पं० अम्बिकाप्रसादजी बाजपेयी तो मेरे बुजुर्ग ही थे। मेरे लिए ही उन्होंने 'भारतमित्र'का आसन छोड़ा और 'स्वतन्त्र' निकाला। मैं यह चाहता था कि वह 'भारतमित्र' न छोड़ें, मैं सहकारी जैसा था, वैसा बना रहता ; पर 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया'—मायापतिकी माया बड़ी विचित्र है।

अब मैं फिर जहाँका तहाँ हूँ। अब यह देख रहा हूँ कि जर्नलिस्टोंसे लदी हुई एक स्पेशल जा रही थी, उसीमें मैं भी सवार हो गया था, इसीसे लोगोंने मुझे जर्नलिस्ट समझ लिया था। पर उपसंहारकी यह बात तब लिखनी चाहिए, जब 'श्रीकृष्ण-सन्देश' और 'विजय'की यात्रा पूरी हो ले। यह चर्चा फिर किसी अवसरपर। इस लेखमें 'भारतमित्र'का स्मरण है, जिसकी ५० वीं वर्षगांठ अब मनाई जानेका परम शुभ अवसर आन उपस्थित हुआ है। इस अवसरपर 'भारतमित्र'की सम्पूर्ण फाइल देखकर भिन्न-भिन्न सम्पादकोंके चुने हुए लेखोंका संग्रह प्रकाशित करनेका मेरा विचार था, और शुरूसे सारी फाइल देख जानेका काम भी मैंने आरम्भ किया था, जब सनातनधर्म-मंडलसे कुछ मतभेद-सा होनेके कारण मुझे 'भारतमित्र'से अलग होना पड़ा। 'अन्तिम निवेदन' लिखकर मैं अलग हो गया। 'भारतमित्र'की 'स्वर्ण-जयन्ती' पर मैं उस 'अन्तिम निवेदन'का स्मरण भारतमित्र-स्वर्ण-जयन्तीके सम्पादक-मंडलको भेंट करता हूँ।

आत्म-विस्मृति

इच्छा है यह नहीं बनूँ मैं पंडित ज्ञानी ;
और बने मेरे पीछे दुनिया दीवानी।
जग-आँखोंकी ओट चाहता हूँ दिन गिनना ;
खानेको हो चना और पीनेको पानी।

—पद्मकान्त मालवीय

भारत और साम्राज्य*

एडवर्ड कार्पेन्टर

क्या इंग्लैण्डकी मान-मर्यादाका, उसके आत्म-सम्मान और उसकी उदारताका—यानी उन गुणोंका, जो वास्तवमें किसी राष्ट्रको महान बनाते हैं—दिवाला निकल गया है? इस वर्षकी घटनाओंको देखकर यह दुःखद प्रश्न हृदयमें उठता है। इतिहासके पन्ने उलट जाइये; पर इतना हास्यास्पद दृश्य शायद ही कहीं ढूँढ़े मिले, जैसा कि हमारे देशने अबकी गर्मियोंके प्रारम्भमें दिखलाया है। हमारे बड़े-बड़े शहरोंके बाज़ारोंमें बड़ी-बड़ी भीड़ोंके जुलूस निकले, झंडियाँ उड़ाई गईं, घंटियाँ बजाई गईं, शेयर बाज़ारके वयस्क सूत्रधार चीपसाइडके पास नाचते फिरे, टीनकी सीटियाँ बजाती और झंडियाँ फहराती २०,००० आदमियोंकी भीड़ अबरडीन नगरमें बोअरोंके पक्षपातियोंको धमकाती हुई घूमी—यह सब किसलिए हुआ, सिर्फ इसीलिए कि हमारे ४ करोड़की आबादीवाले राष्ट्रने दक्षिण-अफ्रिकाकी दो नन्हीं प्रजातन्त्र रियासतोंपर—जिनकी संयुक्त आबादी हमारी आबादीका शतांश भी नहीं थी—कुछ अंशोंमें विजय प्राप्त की थी। इसके बाद ही अखबारों और सार्वजनिक स्थानोंमें सभी ओरसे उन रियासतोंको राज्यमें मिलाने और साम्राज्य बढ़ानेके नारे सुनाई पड़ने लगे। अंगरेज़ी राज्य और सभ्यताकी न्यामतोंके गुण-गानका तूफ़ान-सा आ गया। इन सबके मध्यमें दिखाई पड़ती है भारतभूमि—वह भारतभूमि, जो दयनीय है और उपेक्षित है, और जो हमारे शासनकी लापरवाहीके कारण लाखोंकी तादादमें भूखे मरते अपने बच्चोंके ढेरपर बिलखती हुई हमारी ओर हाथ फैला रही है।

विनाशकाले विपरीत बुद्धि। क्या सचमुच एक प्रकारकी भ्रान्ति, मदान्धता इंग्लैण्डके विनाशका पथ तैयार कर रही है? निस्सन्देह इसकी भी एक विचित्र कहानी है। मुद्दतोंसे दूकानदारोंका यह राष्ट्र व्यापारके लिए छोटे राष्ट्रोंकी तलाशमें संसार-भरकी खाक छानता रहा है, और सो भी जनसाधारणके किसी लाभसे प्रेरित होकर नहीं, बल्कि लन्दन, बर्मिंघम, मैंचेस्टर, लिवरपूल और ऐसे ही अन्य स्थानोंके—जो हमारे राष्ट्रीय जीवनकी शिरनाड़ीके मुख्य केन्द्र हैं—महान व्यापारिक केन्द्रोंके स्वार्थके लिए। यदि कहीं किसी छोटे राष्ट्र या उसके निवासियोंने हमारे साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करनेसे इनकार कर दिया, तो फिर हमारी हिम्मत और हमारा बौखलाना देखिये। हमारी बड़ी-बड़ी तोपें और राइफ़लें निकल पड़ती हैं, और फ़ौरन ही उस राज्यको अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया जाता है। इसके साथ-ही-साथ चलती है उस देश-निवासियोंकी कुप्रथाओंके प्रति हमारी उच्च नैतिकताकी दुहाई, कुछ पादरियोंके वधका अभियोग और सभ्यता एवं बाइबिलके नामपर घृणास्पद पवित्र बातें!

मैंने अकसर इन पादरियोंके कार्योंमें हमारे व्यापारके लिए क्षेत्र तैयार करनेकी बातें सुनी हैं; लेकिन उनकी असलियतको अबसे बीस वर्ष पहले तक मैं अच्छी तरह नहीं समझ सका था; लेकिन संयोगवश एक बार शेफ़ील्डके एक गिरजेमें जब मेरा जाना हुआ, उस समय पादरी साहब लिविंगस्टोन*पर उपदेश दे रहे थे। लिविंगस्टोन-जैसे महात्माओं द्वारा किये गये शुभ कर्मोंको बतानेके पश्चात उन्होंने कहा था—

---

* यह लेख अबसे ३३ वर्ष पहले सन् १९०० में लिखा गया था; लेकिन इतने दिन बीत जानेपर भी इसकी उपयोगिता और सामयिकता नष्ट नहीं हो पाई है। —सम्पादक

* पादरी लिविंगस्टोन पहला यूरोपियन था, जिसने अफ्रिकाके कांगो प्रदेशमें जाकर वहाँका हाल संसारको बताया।

"......और उनका (पादरियोंका) सबसे अन्तिम कार्य—गिनतीके लिहाज़से सबसे अन्तिम, पर महत्त्वके लिहाज़से अन्तिम नहीं—हमारे व्यापारके लिए अन्य देशोंका द्वार खोलना है। इस कार्यको स्टेनली अच्छी तरह समझता था। कांगोकी वाटीसे लौटनेपर स्टेनलीने जो कार्य किये, उनमें सबसे पहला यह था कि उसने मैंचेस्टरके व्यापारियोंको एकत्रित करके उन्हें बताया कि कांगो-प्रदेशके लाखों निवासी कमीज़-कुर्ती और कपड़ोंके उपयोगोंसे एकदम अपरिचित हैं। इसके लिए मैंचेस्टरवालोंको सिर्फ़ यही करना होगा कि वे वहाँ बहुतसे पादरियोंको भेजें, जिनका काम वहाँके निवासियोंको यह समझाना होगा कि वे सभ्य कपड़ोंका उपयोग करें। और फिर देखिये कि मैंचेस्टरके सूती कपड़ोंकी कितनी माँग बढ़ती है।" इसी तरह शेफ़ील्डके कारखानेवालोंकी ओर मुँह करते हुए पादरी साहबने कहा—"तुम्हारे लिए भी केवल यही पर्याप्त होगा कि इन प्रदेशोंमें धर्म-प्रचारकोंको भेजो, जो वहाँके देशी आदमियोंको समझायँगे कि हाथसे खाना खानेकी गन्दी आदत छोड़कर वे काँटा-छुरीका प्रयोग करना सीखें, फिर देखिये कि शेफ़ील्डके छुरी-काँटेके व्यापारमें कितनी तेज़ीके साथ वृद्धि होती है।"

यही उन पादरी साहबके मुँहसे निकले हुए शब्द हैं, जो उस दिन मैंने सुने थे। न इनमें कुछ घटाया गया है और न बढ़ाया गया। तबसे मुझे इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि स्वार्थी लोगोंमें पादरीके कर्तव्यका क्या अर्थ समझा जाता है।

पहले धर्म-प्रचारक पादरी जाता है; उसके बाद इक्के-दुक्के व्यापारी; फिर राष्ट्रीय पताका और पताकाके पीछे राष्ट्रीय व्यवसाय। यह है हमारे धर्म-प्रचारका क्रम। कोई भी राष्ट्र, व्यापारिक लाभकी लालचमें, अप्रतिष्ठाके गढ़ेमें अपने-आपको कितना अधिक नीचे गिरा दे सकता है, यह उस युद्धसे जाना जा सकता है, जो अफ़ीमके व्यवसायको लेकर अंगरेज़ोंने चीनसे किया था। यहाँ सन् १८३९ के उस युद्धका ब्योरा देना अनावश्यक है, क्योंकि ठीक वैसे ही सिद्धान्त अब भी हमारा दामन पकड़े हैं। हाँ, आजकलके फैशन और सर्वसम्मत ढंगके अनुसार उन्होंने अपना चोला अवश्य बदल लिया है—जैसा जोहन्सबर्गकी खानोंवाली घटनासे प्रत्यक्ष है।

अफ़ीमपर भारत-सरकारका एकाधिपत्य रहा है, और सन् १७९३ से इसके द्वारा उसे काफ़ी आमदनी होती रही है। भले अधिकारियोंके अकसर विरोध करनेपर भी चीनमें इसकी बिक्री जारी कर दी गई। फलतः सन् १८३९ में चीनियोंका विरोध यहाँ तक बढ़ा कि चीनी गवर्नमेंटने अफ़ीमका आयात एकदम बन्द करा दिया और अपने अधिकारियोंको आज्ञा दी कि राज्यमें जहाँ भी अफ़ीम मिले, उसे ज़ब्त करके जला दो!

फलतः अंगरेज़ युद्धपर तुल गये; जिसमें चीनकी हार हुई, और उसे अफ़ीमका आयात स्वीकार करना पड़ा। तबसे इसकी काश्तसे भारत-सरकारकी आयमें लाखोंकी वृद्धि हो गई। 'चीनियोंकी दृष्टिमें इंगलैण्ड' नामक सुन्दर पुस्तकमें वो-चैंग कहता है—

"अफ़ीम चीनमें पैदा होनेवाली चीज़ नहीं है; बल्कि अंगरेज़ ठेकेदारोंकी जेबें भरनेके लिए, चीनके नैतिक पतनकी परवा न कर, बन्दूक़के कुन्दों और जंगी-जहाज़ोंके ज़ोरपर इसे ख़रीदनेके लिए अंगरेज़ोंने मज़बूर कर दिया। पेकिनकी सरकारने चीनियोंके भयंकर नैतिक पतनकी सम्भावना बताकर अपने साम्राज्यमें अफ़ीम-प्रवेशका विरोध किया। इसके प्रत्युत्तरमें हमें पहले तो मिले तोपके गोले, फिर आये अफ़ीमसे भरे जहाज़ और उनके साथ-ही-साथ अफ़ीमके विषको रोकनेवाली दवाके रूपमें ज़हरीली ह्विस्की, धर्म-ग्रन्थ, प्रार्थना-पुस्तकें और मिशनरी आये।"

जब कभी कोई छोटा राष्ट्र अपने धनधान्यको पूर्णरूपसे ब्रिटेनको समर्पित करनेसे इनकार कर देता है, तो अंगरेज़ोंका जो झूठा बहादुराना क्रोध होता है, उसका उदाहरण ट्रान्सवालके दुःखद युद्धमें मिलेगा।

यह अवश्य ही एक हास्योत्पादक चीज़ होती, यदि वह इतनी दुःखद (नाशकारी) न होती। समझ लीजिए कि एक वयस्क और बलवान मनुष्य ६-१० वर्षके किसी छोकरेको पकड़कर बुरी तरह ठोकता है। देखनेसे प्रकट होता है कि लड़केने कोई भारी अपराध किया है। लेकिन यह देखिये, अब उसने लड़केको पटक दिया और अपनी टोपी और झंडीको हवामें हिलाकर कहने लगा—"ऐसे अपराधोंकी पुनरावृत्तिको रोकनेके लिये ज़रूरी है कि छोकरेकी जेबका सफ़ाया करके उसे जीवन-भरके लिए गुलाम बना लिया जाय।" दर्शक इस दृश्यको देखकर एकदम विस्मयविमूढ़-सा हो उठता है, और सोचता है कि यह मनुष्य पागल तो नहीं है। लेकिन जब उसे मालूम होता है कि लड़केकी जेबमें १०० पौंड थे, तब सब-कुछ स्पष्ट है। यह मनुष्य पागल नहीं है—या यों कहिये कि पागल तो है, लेकिन उसके पागलपनमें भी भीतरी मतलब है। यह पागलपन ख़ाली अज़इल्लत नहीं। लड़केकी शरारतके लिए उसने जो शोर बरपा किया था, उसका भी एक ध्येय-विशेष था। परमात्माको जिसका विनाश करना होता है, उसका मस्तिष्क वह इसी तरहसे विकृत कर देता है।

अंगरेज़ प्रचारकों द्वारा विश्व-सुधारकी यह भावना पहले कब पैदा हुई, इसकी जन्मदात्री ब्रिटिश मस्तिष्ककी असीम आत्म-तुष्टि थी या बेवकूफ़ी, साम्राज्य-वृद्धिके स्वप्नके साथ इसका सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ, दम्भी लार्ड बेकनफ़ील्डकी एक प्रकारकी रोमान्स प्रवृत्तिका इसमें क्या भाग था और बादमें एक नीम-हकीमके हाथों यह स्वप्न किस प्रकार पतित होकर व्यापारिक स्वार्थोंके लिए व्यवहृत होने लगा—यह सब बातें तो ऐतिहासिक लोग ही बतायेंगे। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि इन दोनों भावनाओंने मिलकर उच्चताके शिखरसे कार्योंका श्रीगणेश किया, और आगे चलकर यह बराबर नीचे ही गिरती गई, यहाँ तक कि अब उन्होंने अपने महानिकृष्ट और बाज़ारू रूपमें अज्ञान जन-समूहको अपने कब्ज़ेमें कर लिया है। कुछ अधिक बुद्धिमान और अधिकांश मज़दूरों तथा मध्यम श्रेणीके व्यक्तियोंने तो इन भावनाओंको छोड़ दिया है; लेकिन सरकारी अधिकारी और अर्थ-जगतके सूत्रधार, अपने प्रत्यक्ष लाभके कारण, जी-जानसे उन्हें पकड़े हुए हैं। और इसीका यह परिणाम है कि अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए प्रेस, पूँजीपति और राजकर्मचारी द्वारा लूटे-खसोटे जानेवाले सब श्रेणियोंके अपढ़से अपढ़ व्यक्ति भी साम्राज्यका हल्ला मचाते हैं और साम्राज्यके नामपर ब्रिटिश राष्ट्रका प्रतिनिधित्व करनेका दम भरते हैं; लेकिन वास्तवमें वे ब्रिटिश राष्ट्रका प्रतिनिधित्व न करके इंग्लैण्डकी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठाको मिटा रहे हैं और हमारे महान पतनका रास्ता तैयार कर रहे हैं।

भारतमें ब्रिटिश राज्यकी कहानी कुछ अंशोंमें पेचीदा और असंगत होती हुई भी—मुझे सखेद कहना पड़ता है—उस समय पूर्णरूपेण समझमें आ जाती है, जब हम उस लड़केका ध्यानमात्र करते हैं, जिसकी जेबमें रुपया था।

अंगरेज़ी राज्यकी बरकतोंकी तान जितनी अधिक निर्धन भारतवर्षपर तोड़ी जाती रही है, उतनी और किसीपर नहीं। पैक्स ब्रिटेनिकाका (ब्रिटिश राज्य शान्तिका द्योतक है) तराना इतनी बार गाया गया हैं कि सुनते-सुनते कान पक गये; राज्य-कर्मचारियोंकी ऊँचे स्टैन्डर्डकी योग्यता भी कभी नहीं भुलाई जाती; पश्चिमीय शिक्षा और व्यापारिक स्कीमोंके लिए बहुत बधाइयाँ दी जा चुकी हैं; यहाँ तक कि पथभ्रान्त देशी आदमियोंमें ईसाई धर्मके प्रचारका भी उड़ता हुआ-सा इशारा अब तक दिया जाता है। मानो अभागे भारतके मुक्ति-लाभके एकमात्र ध्येयसे प्रेरित होकर ही अंगरेजोंने उदारतापूर्वक भारतमें प्रवेश किया था। लेकिन इस भयानक सत्यके क्या मानी हैं कि भारत बड़ी तेज़ीसे बराबर ग़रीब होता जा रहा है। अकालपर अकाल—जिनकी भयानकता और पुनरावृत्ति बढ़ती जा रही है—पड़ते जा रहे हैं,

और सर्वनाश उद्विग्नताके साथ भारतका मुँह देख रहा है।

अंगरेज़ी राज्यके लाभों—ठोस लाभों—से इनकार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। पैक्स ब्रिटेनिकाकी बात सच है, और निस्सन्देह हमारा राज्य भारतीयोंकी खुशहालीका संरक्षक सिद्ध होता, यदि वे खुशहाल होते, यदि हमारे सिविलियन शासकोंके ऊँचे सिद्धान्त सुशासनका परिचय देते, यदि शासितोंकी बातोंको वे सहानुभूतिके साथ समझते, अथवा यदि उनके जीवनका लक्ष्य किसी बड़ी उम्रके विद्यार्थीके जीवनके स्टैन्डर्डसे ऊँचा होता। हमारी व्यापारिक योजनाएँ भी निस्सन्देह उनके लिए लाभदायक सिद्ध होतीं, यदि उनका लाभ (जैसा पश्चिमीय देशोंमें होता है) इनेगिने व्यक्तियोंकी—उन व्यक्तियोंकी, जो अंगरेज़ हैं और भारतसे 'सात समन्दर पार' रहते हैं—जेबोंमें न चला जाता।

हमारे शासनाधीन भारतकी दुरवस्था और उससे भी खराब भविष्यका कारण इस बातमें छिपा है कि हम दृढ़तापूर्वक नियमित रूपसे उसके उत्पत्ति-साधनोंको चूस रहे हैं। हमारे हाथ बराबर हिन्दुस्तानियोंकी जेबोंको टटोलते रहते हैं। ब्रिटिश भारत-सम्बन्धी आय-व्ययकी नई रिपोर्टके—जिसमें १८९७-९८ तकका ब्योरा दिया हुआ है—११२-११३ पृष्ठको उलटिये, तो आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि गवर्नमेंटने यह सब प्रकाशित करनेकी हिम्मत कैसे की? इस पृष्ठपर जो नक्शा दिया है, उसमें हमारी होम-गवर्मेन्ट भारतसे जो वार्षिक खर्च लेती है, उसका ब्योरा है। यह खर्च कितने ही प्रकारका है, और इसमें से कितना ही ऐसा है, जो अनुमानतः भारतके लिए किया गया है। सबसे पहले भारत-सरकारके ऋणका सूद, वार्षिक किश्त, सरकारी गारंटीकी रेलवे लाइनोंके ब्याज और वार्षिक किश्तका ब्योरा दिया हुआ है। यह सब रुपया इंग्लैण्ड और आयरलैण्डके बैंकोंके द्वारा अंगरेज़ पत्तीदारोंकी ही जेबोंमें पहुँचता है। सन् १८९७-९८में यह कुल मिलाकर ८७,७०,००० पौंड हुआ। इसके बाद इंग्लैण्डमें फ़ौजी संस्थानोंपर किये गये खर्चके अंक दिये हुए हैं। यह संस्थान भारतसे सम्बन्धित कहे जाते हैं; पर अधिकांशमें उनका उपयोग किया जाता है दक्षिण-अफ्रिका आदिके लिए। इसीमें रिटायर्ड अधिकारियोंकी पेन्शनें भी हैं, और यह सब मिलाकर ३७,१७,००० पौंड होता है। इसी प्रकार सिविल संस्थानों, रिटायर्ड राजकर्मचारियों आदिके अन्य खर्च हैं, जो २२,८९,००० होते हैं। इनके अतिरिक्त डाकघर, तारघर तथा अन्य विभाग आदिका कुल मिलाकर १०,००,००० पौंडका खर्च और है। इस तरहसे कुल मिलाकर जो खर्च इंग्लैण्ड भारतसे लेता है, वह १,६१,९८,००० पौंड तक हो जाता है।

यह ध्यान रहे कि खर्च करके रूपमें भारतमें वसूला जाता है; पर भारतमें खर्च नहीं किया जाता, बल्कि यह इंग्लैण्डमें ही खर्च करनेके लिए इंग्लैण्डको दिया जाता है। इन मदोंमें से कौन-कौन भारतको लाभ पहुँचाती है और कितना लाभ पहुँचाती है, यह पाठक स्वयं देखें। हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि क्षुधापीड़ित भारतसे इंग्लैण्ड प्रतिवर्ष यह भारी रकम वसूलता है, जैसा कि सरकारी रिपोर्टोंमें दर्ज है। हिन्दुस्तानमें कर चाँदीके रूपमें वसूल होता है, और इंग्लैण्ड लेता है सोना, इसलिए सिर्फ विनिमयके खर्चकी रक़म ही बड़ी भारी, बल्कि भयंकर हो जाती है, और यह कुल मिलाकर लगभग २,५३,२०,००० रुपया होता है।

यह तो केवल सरकारी चार्ज ही है। भारतसे इंग्लैण्ड आनेवाले कुल रुपयेका अनुमान करनेके लिए हमें उन भारी रक़मोंको भी शामिल करना पड़ेगा, जिन्हें सिविल और फौजी अफ़सर, निजी सम्पत्तिके रूपमें, अपने घर भेजते हैं, अथवा जो प्राइवेट कर्ज़के सूद और व्यापारिक योजनाओंमें लगाये गये रुपयेके लाभके रूपमें इंग्लैण्ड आती हैं। इसमें से पहली मदके सम्बन्धमें

मिस्टर हाइंडमैन[1]ने अपनी पुस्तक 'Approaching Catastrophe in India' में भारतस्थित अंगरेज़ अधिकारियोंके वेतनका कुल जोड़ १५,०००,००० पौंड वार्षिक लिखा है। ये वेतन अधिकांशमें काफ़ी मोटे होते हैं, अतः उसमें से आफ़िसर लोग सम्भवतः आधा बचाकर इंग्लैण्ड भेजते होंगे। यदि हम इसे ५,०००,००० पौंड भी मान लें, तो हम अतिशयोक्तिके दोषी न होंगे। रहा यह प्रश्न कि व्यापारिक योजनाओंका लाभ कितना होता है और उसमें से कितना रुपया इंग्लैण्ड भेजा जाता है, यह निश्चितरूपसे बताना कठिन है; लेकिन प्राप्त अंकोंके आधारपर उसे भी यदि इतना ही—५,०००,००० पौंड—रखा जाय, तो यह भी अधिक ज्यादा न होगा। इस तरह १६,०००,००० पौंडके गवर्नमेंटके खर्चके साथ १०,०००,००० पौंडकी रक़म और मिल जाती है, और लगभग २६,०००,००० पौंड अर्थात् ४००,०००,००० रुपयेकी रक़म प्रतिवर्ष भारतसे इंग्लैण्ड आ जाती है।

अब यदि थोड़ी देरके लिए अन्य कारणोंको अलग रख दिया जाय, तब भी यह जाननेमें कठिनाई न होगी कि इस अनवरत धन-ह्रासके जारी रहनेका परिणाम सर्वनाशके अतिरिक्त और क्या हो सकता है। ज़रा सोचिये तो कि यदि इंग्लैण्डकी सम्पत्तिमें से चालीस करोड़ रुपया प्रतिवर्ष हरण कर लिया जाया करे, तो उसका क्या अन्त हो! ग़रीब भारतके लिए तो यह घातक है। भारतके कतिपय कृषक इतने निर्धन हैं कि साधारण वर्षमें भी उन्हें एक ही वक्त खाना नसीब होता है, और उनमें से भी बहुतेरोंको चावल तक मयस्सर नहीं होता, जिससे उन्हें मोटे-झोटे अनाजपर ही सन्तोष करना पड़ता है। उनके दयनीय दुर्बल शरीरोंको देखकर आश्चर्य होता है कि उन्हें काम करनेकी शक्ति कहाँसे मिलती है! क्षुधा और फोड़े-फुंसियोंसे पीड़ित उनमें से कितने ही, जैसे-तैसे लम्बा मार्ग तयकर, अस्पताल तक पहुँचते हैं। वहाँके सुधरे-वातावरणमें वे शीघ्र ही चंगे होकर लौट आते हैं; लेकिन उन्हीं कारणोंसे वे फिर उसी दशाको पहुँच जाते हैं। पिछले कुछ वर्षोंसे कंगाली भारतीय कृषककी साधारण स्थिति बन गई है।

तिसपर भूमि-करके रूपमें उसे २५,००,००,००० रुपये वार्षिक देने पड़ते हैं। और गवर्नमेंट 'और अधिक'के लिए हमेशा ज़ोर देती रहती है। अपनी रेलवे, क़िलों, सरहदी चढ़ाइयों, फ़ौजी संस्थाओं और होम चार्जोंके लिए रुपया जुटानेमें ही सरकारके होश फ़ाख्ता रहते हैं, इसलिए कृषकोंकी भलाईमें वस्तुतः एकाएक होनेवाले उपायों और ख़र्चोंका उसे ख़याल ही नहीं रहता। उसका सारा समय तो इसी बातमें लगा रहता है कि और अधिक रुपया कैसे वसूल किया जाय? यह ठीक वही बात है कि अंडोंके लिए मुर्ग़ीकी हत्या करना।

रुपया हासिल करनेके हमारे उपायोंकी स्वेच्छाचारिताका दिग्दर्शन सबसे अधिक नमकपर लगाये गये करसे होता है। नमक ऐसी जीवनकी आवश्यकीय वस्तुपर कर लगाना और सो भी उसके मूल्यसे दस-बीस गुना अधिक सरासर अत्याचार है। यह ऐसा काम है, जिसे कोई भी समझदार सरकार तब तक नहीं करेगी, जब तक पैसा पानेका अन्य कोई उपाय निकालनेकी सम्भावना हो। लेकिन मेरा ख़याल है कि यह बात अब अच्छी तरह समझ ली गई है कि इस अभागे देशमें टैक्स अन्तिम सीमापर पहुँच चुका है। नमक-करसे ही हम ८०,००,००० रुपये वार्षिकसे कुछ अधिक वसूल कर लेते हैं, और चूँकि हमारा अपने ख़र्चोंमें कमी करनेका कोई इरादा नहीं है, अतः कर भी जैसाका तैसा—तज्जनित असन्तोषके होते हुए भी—बना है।

लेकिन उस समय, जब कि भारतीयोंसे इस तरहसे

[1] मिस्टर हाइंडमैन उन इनेगिने अंगरेज व्यक्तियोंमें से हैं, जिन्होंने भारतकी निर्धनताके महत्त्वपूर्ण प्रश्नका ख़ूब अध्ययन किया है, और उनकी कृतियोंकी अंगरेज अधिकारी हँसकर उपेक्षा करते रहे हैं।

वसूल किया हुआ यह रुपया इकट्ठा हो जाता है, इसके उपयोगके सम्बन्धमें दो गम्भीर प्रश्न उठते हैं। एक तो यह—जिसके सम्बन्धमें कुछ कहा भी जा चुका है—कि उसका अधिकांश भाग देशसे बाहर चला जाता है। वैसे तो किसी भी देशकी सरकार अपनी रिआयासे वसूल किये हुए करका दुरुपयोग कर सकती है; लेकिन यदि करका रुपया उसी देशमें खर्च किया जाय, तो वह किसी-न-किसी रूपमें जनताके पास ही पहुँच जाता है। करका रुपया जिनसे वसूला गया था, घूम-फिरकर उन्हींके पास चला जाता है, और निस्सन्देह यही एक कारण है, जिसकी वजहसे भारतकी देशी रियासतें अधिक खुशहाल हैं, और हमारे शासनाधीन स्थानोंकी अपेक्षा वहाँ अकालकी बला कम है, हालाँकि इनमें बहुतेरी रियासतोंमें, ब्रिटिश प्रदेशोंकी अपेक्षा, टैक्स काफी भारी हैं, फिर भी टैक्सोंका लगभग सारा धन उन्हीं स्थानोंमें खर्च किया जाता है, जिनसे वह वसूला जाता है; जब कि ब्रिटिश भारतके निवासियोंको प्रतिवर्ष पूर्ण नुकसान सहना पड़ता है।'[1] अकालोंकी पुनरावृत्तिका और इसका जो सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर है।

प्रत्येक देशकी फसलोंमें अकाल-सुकाल लगा रहता है, और भारत-जैसे देशमें तो (केवल बहुत अच्छी आबपाशीवाले हिस्सोंको छोड़कर) दूसरे-चौथे वर्ष फसलका बिगड़ जाना स्वाभाविक ही है। ऐसे दुष्कालके समय प्रत्येक देशका किसान अपनी संग्रहशक्ति, अपने बैंक, अपनी सुरक्षित सम्पत्ति, अपने असली स्टाक और अनाजके भंडारपर निर्भर रहता है। भारतमें भी प्रत्येक कृषकके यहाँ मिट्टीकी बड़ी-बड़ी डहरें घरके कोठेमें एक तरफ़ रखी रहती हैं, जिसमें वह अनाज भरता है। लेकिन जब कि देश प्रतिवर्ष खोखला होता जा रहा हो, तो उसकी संचयशक्ति भी उतनी ही कम होती जाती है। उपर्युक्त आँकड़ोंके हिसाबसे दस वर्षमें जब २५०,०००,००० पौंड निकल जाते हों, तब कृषकोंकी संचयशक्तिके ह्रासका अन्दाज़ लगाया जा सकता है। लेकिन जब उसके अनाजकी डहरें खाली पड़ी हों, उसने अपनी फसलको पहलेसे ही गिरवीं रख दिया हो और मालगुज़ारी चुकानेके लिए घरवालीके चाँदीके भारी कड़े भी बेच दिये हों—ऐसी हालतमें यदि अकाल पड़े, तो उसे मृत्युके अतिरिक्त और चारा ही क्या है? और इसका परिणाम सिवा इसके कि अकाल और जल्दी-जल्दी पड़ने लगें, और हो ही क्या सकता है?

देशी राज्योंमें प्रजासे वसूला हुआ लगभग समस्त कर (राजा और दरबारके काममें आनेवाले भागको छोड़कर) प्रजाकी सार्वजनिक खुशहालीको ध्यानमें रखकर खर्च किया जाता है। साथ ही दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या ब्रिटिश भारतके बारेमें भी यही कहा जा सकता है, करका वह भाग जो विलायत न आकर भारतमें ही खर्च किया जाता है, बुद्धिमानीसे व्यय होता है? मुझे भय है कि इस प्रश्नका उत्तर नकारात्मक ही है।

शासक-मंडलके व्यक्तियोंके विरुद्ध स्वेच्छाचारपूर्ण कुशासनके अभियोग लगानेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। सब कुछ देखते हुए उनके इरादे सच्चे कहे जा सकते हैं; लेकिन उनका स्टैन्डर्ड उसी देशके अनुसार है, जिसमें वे पैदा हुए और पले हैं।

जब हम इस बातका ख़याल करते हैं कि हमारे अपने देशमें (विलायतमें) वसूले हुए करका कितना थोड़ा भाग साधारण जनताकी सार्वजनिक खुशहालीके

---

[1] लार्ड कर्जनने कड़े शब्दोंमें एक सरक्यूलर जारी किया था, जिसमें उन्होंने देशी राजाओंकी अपनी रियासतोंको छोड़कर विलायत जानेकी बढ़ती हुई प्रवृत्तिके सम्बन्धमें लिखा था—"यह यात्राएँ अपने कर्तव्यके प्रति राजाओंकी उदासीनता प्रकट करती हैं। भविष्यमें उन्हें अपनी रियासतको छोड़नेकी अनुमति तभी दी जा सकेगी, जब उनकी अनुपस्थिति उनके व्यक्तिगत या सार्वजनिक हितके लिए होगी।" लार्ड कर्जनका यह कथन भारत और आयरलैंडमें बहुतायतसे बरती जानेवाली हमारी गैरहाजिर जमींदारशाहीको देखते हुए एक मनोरंजक और चटपटी उक्ति है।

लिए खर्च किया जाता है; जब हम देखते हैं कि सन् १८९९में इंग्लैण्डके १०३,०००,००० पौंडके खर्चमें से ७ करोड़ पौंडके करीब फौज, जहाज़ी बेड़े और सरकारी ऋणके सूदमें ही निकल गया; जब हम देखते हैं कि हमारी गृह-नीति (अन्य पाश्चात्य देशोंकी भाँति) केवल साधारण व्यापारिक नीति है, अर्थात् ऐसी नीति है, जिसका ध्येय व्यापार—विशेषकर विदेशोंमें व्यापार—को प्रश्रय देना, जंगी बेड़ों द्वारा अपने व्यापारकी रक्षा करना और व्यापारके क्षेत्र खोलनेके लिए तथा ब्रिटिश ऋणपर सूद देनेके लिए छोटे-मोटे युद्ध करना है,—ऐसी नीति जो व्यापारियों, सौदागरों, अंगरेज़ पूँजीपतियों और ज़मींदारोंको ही लाभ पहुँचाती है और जो इनके लाभके आगे कृषि, काश्तकार और कारीगरोंकी कोई परवा नहीं करती,—तब मैं कहता हूँ कि ऐसी नीतिसे इंग्लैंडकी साधारण जनताके हित होनेकी क्या सम्भावना हो सकती है? वास्तवमें भारतमें भी यही हाल है।

हमारे राजनीतिज्ञोंको नीतिका सबसे बड़ा विचार इतना ही है कि भारतमें रेलें खोलकर (जो घाटेपर चल रही हैं) अंगरेज़ी रोज़गारको प्रोत्साहन दिया जाय; ब्रिटिश औद्योगिक पूँजी भारतमें लगाई जाय; सीमान्तपर युद्ध छेड़े जायँ; अपने हितोंकी रक्षाके नामपर सिविल और फौजी शासनमें लम्बी-चौड़ी रक़में खर्च की जायँ, जो वास्तवमें मध्य श्रेणीके खाते-पीते घरोंके लड़कोंको नौकरी देनेमें ही काम आती हैं; और इस शासन-प्रणालीको जारी रखनेके लिए लोगोंको दबाकर अन्तिम बूँद तक निचोड़ ली जाय।

यह नीति काफिराना है। हमारे राजनीतिज्ञ यह भूल जाते प्रतीत होते हैं कि भारतकी कृषक-आबादी ही १५ करोड़ है, और जो कोई नीति सबसे पहले इस महान जन-समूहके हितोंका ध्यान नहीं रखती, वह इस योग्य नहीं है कि उसपर ध्यान भी दिया जाय। वे यह नहीं देखते कि इस जन-समुद्रको सुखी और सन्तुष्ट बनाना—केवल नीतिके लिए ही—उन तमाम क़िलोंसे ज्यादा क़ीमती है, जिन्हें हमने इन लोगोंपर क़ब्ज़ा जमाये रखनेके लिए खड़ा किया है। यह नीति वास्तवमें उनपर हमारा अधिकार क़ायम रखेगी और साथ ही यह आपमें भी वह वृद्धि करेगी, जिसके लिए हम इतने परेशान रहते हैं। हमारे राजनीतिज्ञ यह नहीं देखते (अफ़सोस! वे देख कैसे सकते हैं?) कि इस नीतिके ग्रहण करनेसे न-केवल भारतके इन करोड़ों आत्माओंको सुख प्राप्त होगा और वे हमारे प्रेम और कृतज्ञताके बन्धनमें बँध जायँगी, बल्कि इससे समस्त संसारकी आत्माको सुख मिलेगा, क्योंकि वह देखेगी कि एक बलशाली राष्ट्र एक कमज़ोर राष्ट्रको सहायता दे रहा है; इतना ही नहीं, वरन इससे हमारे इंग्लैण्डमें भी, जो अपने कोहरेसे भरे आकाशके नीचे, अपने उदास और धुमैले शहरोंमें अपनी सोनेकी थैलियोंसे चिमटा बैठा है, रोशनीकी कुछ किरणें मिल सकेंगी।

भारतकी समृद्धिके लिए रेलोंकी आवश्यकता नहीं, बल्कि आबपाशीकी है। भारत-जैसे देशके लिए आबपाशी सबसे अधिक ज़रूरी—अनिवार्य—चीज़ है। यदि भारतमें आबपाशीका उचित तरीक़ा हो, तो वह संसारमें सबसे अधिक उपजाऊ देश हो सकता है, जैसा वह कभी था। रेलें उपयोगी हो सकती हैं; लेकिन उनसे किसी देशकी उत्पादनशीलता नहीं बढ़ती। हम पाश्चात्य देशवासी इस बातको भूल सकते हैं। रेलें तो हमारे परिश्रम-विभागका एक अंग बन गई हैं। टेक्साज़की खालें १००० मील दूर शिकागोमें कमाई जानेके लिए भेजी जाती हैं। फिर वे ५०० मील दूर मैसाचुसेट भेजी जाती हैं, जहाँ उनसे जूते बनाये जाते हैं, फिर यही जूते पहने जानेके लिए टेक्साज़ वापस जाते हैं। लेकिन पूर्वमें जहाँ गाँवोंमें किसान सारे पेशोंके काम अपने-आप ही कर लिया करते हैं, इस लम्बी-चौड़ी उल्टा-फेरीकी ज़रूरत नहीं है। फिर यह उल्टा-फेरी मुख्यतः व्यापारियों और हिस्सेदारोंके लाभके लिए सुविधाजनक है, उनसे फौजें एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजी जा सकती हैं, उनमें (यदि वे सरकार द्वारा समुचित सुरक्षित हुई) विधवा

औरतोंको अपना धन सूदपर लगानेका अच्छा मौक़ा मिलता है, और भारतमें उनके द्वारा अंगरेज़ी मालके लिए बाज़ार खुल सकते हैं (ब्रिटिश सभ्यताका जो परम उद्देश है), यदि भारतीय किसानोंके पास बदलेमें देनेके लिए ज़रूरतसे ज़्यादा उपज हुई। लेकिन हमारे शासनमें, पिछले कुछ वर्षोंमें, उपजका ज़रूरतसे अधिक अंश बड़ी तेज़ीसे घट रहा है, इसलिए यह उद्देश भी पूरा होता नज़र नहीं आता। वास्तवमें भारतसे ग्रेट-ब्रिटेनको सन् १८६०-६१में १४,६२,०००) का चावल आया था, तो सन् १८६७-६८ में कुल ११,००,०००) का ही आया। इन्हीं सात वर्षोंमें भारतसे आनेवाला गेहूं ३४,३७,०००) से घटकर ६,३०,०००) का रह गया, कपास ४३,२४,०००) से घटकर ४,२४,०००)—केवल दशांश—रह गई! ग्रेट-ब्रिटेन ही को नहीं; वरन समस्त संसारको जानेवाले इन मालोंके जोड़में भी इसी अनुपातमें कमी हुई है। व्यावहारिक रूपसे अपने मारू टैक्सोंके द्वारा और किसानोंके हितोंकी उपेक्षा करके हमने छोटे-छोटे किसानोंकी व्यावसायिक शक्तिको नष्ट कर दिया है।

मैंने कहा है कि भारतीय समृद्धिके लिए आबपाशीकी सबसे बड़ी ज़रूरत है ; लेकिन इसके यह अर्थ नहीं हैं कि भारतमें बड़ी-बड़ी नहरें निकालनेके लिए हमें पाश्चात्य पूँजीपतियोंसे लम्बे कर्ज़ लेने चाहिए और फिर उनका सूद अदा करनेके लिए किसानोंको सिरसे पैर तक टैक्सके बोझसे लाद देना चाहिए। ऐसा करनेके मानी यह होंगे कि हम एक हाथसे जो बनायेंगे, दूसरेसे उसे मिटा देंगे। हमें चाहिए कि हम ग्रामीण समाजोंको प्रोत्साहन दें, उन्हें सरकारकी ओरसे बुद्धिमत्तापूर्ण पथ-प्रदर्शन द्वारा सहायता दें, जिससे आबपाशीके काम वे स्वयं ही खोल सकें।

लेकिन यहींपर हम अपनी नीतिकी मूल बुराईपर जा पहुँचते हैं—वह है भूमिके प्रश्नपर हमारा व्यवहार। हमने वस्तुतः ग्राम्य समाजको नष्ट कर दिया है। अब उसका अस्तित्व ही नहीं रहा, अतः हम उसका उपयोग नहीं कर सकते। ज़मीनके बन्दोबस्तकी समूची समस्याको सुलझाना अपनी सीमासे परे जाना है। इतना कहना काफी है कि सदियोंसे भारतमें सरकारकी मातहतीमें ज़मीनें ग्रामीण समाजके हाथमें रही हैं। गाँवका समाज अपने प्रतिनिधि मुखिया या चौधरीके द्वारा प्रतिवर्ष सरकारको लगान चुकाता रहा है। प्रत्येक किसान या रैयत अपने ग्रामके समाजके प्रति उत्तरदायी होता था। हमारे भारतमें पहुँचनेके साथ ही हमने अपने अज्ञानसे—जो अवश्य पैदा हो जाता है, जब कोई देश किसी दूसरे देशके मामलोंमें हस्तक्षेपकर गड़बड़ी करता है—इस प्राचीन प्रणालीको भंग कर दिया। हमारे प्रारम्भिक आफिसरोंने प्रत्येक गाँवमें एक मुखिया या चौधरी देखकर यह समझ लिया कि वह या तो ज़मींदार है, या मालगुज़ारी इकट्ठा करनेवाला। उनके दिमाग़में यह बात घुसी ही नहीं कि वह इनके सिवा और भी कुछ हो सकता है। इस प्रकार हम लोगोंने भूमिपर सरकारका स्वत्व खो दिया, गाँवके चौधरियोंको हटा दिया और गाँवका संगठित जीवन नष्ट कर दिया।

हमने (अपने पश्चिमी देशोंकी भाँति) भूमिमें प्राइवेट मिलकियतकी प्रणाली चलाई, जिसके फल-स्वरूप भूमिमें भी लिया-बेची और गिरवीं-बन्धकके तरीके चल पड़े। हमने लोगोंको पेशेवर टैक्स वसूलनेवालोंके —यानी ज़मींदारों और महाजनोंके—हाथोंमें छोड़ दिया। इसने वह आर्थिक सत्यानाश उपस्थित कर दिया, जो आजकल भारतमें अपनी पूर्णताको पहुँच रहा है, और साथ ही जो उन पाश्चात्य सरकारोंको भी ख़तरेमें डाल रहा है, जो भूमि असली जोतनेवाले किसानोंकी पूर्ण उपेक्षा करके अपने व्यापारिक और सैनिक प्रसारकी धुनमें मदमाती हो रही हैं।

हम हिन्दोस्तानमें क्या-क्या कर सकते थे, यह एक बड़ा मार्मिक सवाल है। इस प्रकारके कृतज्ञ और प्रेमी लोगोंमें, जैसा कि भारतीय स्वभावसे ही होते हैं— जैसा कि उनकी आज्ञाकारिताकी सहस्रों कहानियोंसे

प्रकट है—और जो पथ-प्रदर्शनके लिए दूसरोंका सहारा लेनेको तैयार रहते हैं, यदि हम ईमानदारीसे विभिन्न स्वार्थोंको एकमें मिलानेकी कोशिश करते, तो मेरा विश्वास है कि हमारे परिश्रमका काफ़ीसे अधिक बदला मिल जाता। लेकिन ब्रिटिश जनता जो भारतीयोंके प्रति आमतौरसे मित्रतापूर्ण भाव रखती है, और जब वे इंग्लैण्डमें आते हैं, तो उनके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करनेके लिए तैयार रहती है, इस बातसे बिलकुल अनभिज्ञ है कि भारतकी वास्तविक अवस्था क्या है।

मेरा आशय एक व्यक्तिगत घटनासे स्पष्ट हो जायगा। एक बार बम्बईमें मैंने दो-तीन रेल और डाकखानेके क्लार्कोंसे जान-पहचान की। उन्हें यह बात बड़ी विचित्र और आश्चर्यजनक जान पड़ी कि कोई अंगरेज़ अपने बड़प्पनका रोब दिखलाये बिना उनके साथ स्वाभाविक रीतिपर व्यवहार करे। यहाँ तक कि उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि मैं अगले दिन भारतीयोंके मुहल्लेमें उनमें से एकके घरपर जाऊँ। मैं गया, तो मैंने आश्चर्यसे देखा कि वहाँ मुझसे मिलनेके लिए उसी श्रेणीके लगभग पचास नवयुवक एकत्रित थे। उनमें से कोई भी मेरे नाम या कामसे परिचित न था। वे सिर्फ इतना जानते थे कि मैं ऐसा अंगरेज हूँ, जो उनके साथ बात करेगा! उन्होंने इंग्लैण्डमें बड़ी दिलचस्पी दिखलाई और ग्लैडस्टोन, सैल्सबरी, ब्रैडला, हक्सले, टिंडल और स्पेंसरके सम्बन्धमें प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। उन्होंने मुझसे पूछा कि उन्हें कौन-कौन पुस्तकें पढ़ना चाहिए, वे कहाँसे मिल सकती हैं। वे काफी बुद्धिमानीसे बातें करते थे। लेकिन अन्तमें मेरे पूछनेपर इस जोशका कारण यह मालूम हुआ कि भारतमें रहनेवाला कोई भी अंगरेज़ उनसे इस प्रकार बातचीत नहीं करेगा और जो वे पूछना चाहते हैं, उन्हें नहीं बतायेगा। मैंने जो कुछ देखा, उससे मुझे जान पड़ा कि यह बिलकुल सत्य था।

भारतकी वास्तविक अवस्थाका चित्र यह है। शहरकी होशियार और चौकन्नी आबादी नवीन विचारों और समाचारोंको जानना चाहती है, और भौंहें ताने अंगरेज़ उन्हें जवाब देने तककी कृपा नहीं दिखलाते! पूनाके नाथू बन्धुओं जैसे पत्रकार हमारी नीतिकी कड़ी आलोचना करनेके कारण बिना मुक़दमेके ही क़ैद कर दिये जाते हैं, और अकालोंमें लाखों कृषक मर जाते हैं।

मुझे भय है कि हमारी सरकारके लिए यह मुश्किलसे सम्भव होगा कि वह इस विषयमें वास्तवमें उदार और राजनीतिज्ञतापूर्ण नीति ग्रहण करे, वह भारतीयोंके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करे, उन्हें शिक्षा और उन्नतिके अवसर दे, भारतीयोंकी गम्भीर सम्मतियोंके प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करे, (उदाहरणके लिए आजकल हमारे अधिकारी लोग भारतीय नेशनल कांग्रेसके प्रस्तावोंको बड़ी उपेक्षासे देखते हैं) और ईमानदारीसे वह मार्ग खोल दे, जिसमें भारतीय अपने देशके शासनमें हमारा साथ दे सकें। इस मार्गमें कठिनाइयाँ होना स्वाभाविक है; पर उनका स्टैन्डर्ड उसी देशके अनुकूल होगा। लेकिन मेरा विश्वास है कि भारतीय कृतज्ञतापूर्वक उतनी ही ईमानदारीसे हमारा साथ देंगे, जितनी ईमानदारीसे हम उन्हें बुलायँगे। यह वास्तवमें हमारा एक महान और शानदार राष्ट्रीय कार्य होगा। लेकिन क्या यह सम्भव है कि अधिकारी इस मार्गको स्वीकार करें, या भारतीय सज्जनोंको अपनी कुर्सियोंपर बैठनेके लिए निमन्त्रित करें? क्या वे ऐसा सोच भी सकते हैं?

लेकिन एक चीज़ अव्यावहारिक नहीं है, जो, मैं समझता हूँ, फौरन की जा सकती है। वह यह है कि विलायतकी कोई संस्था—जैसे ह्यूमैनिटैरियन लीग—भारतको एक मिशन भेजे—मिशनवाले सचमुचमें बुद्धिमान हों—जिसका एकमात्र उद्देश यह हो कि भारतीयों और अंगरेज़ोंमें विचार-विनिमय स्थापित हो, जो यह पता लगाये कि भारतीयोंमें क्या हो रहा है, जो भारतीयोंको हमारी विचार-धाराओंके जाननेके अवसर दे और जो दोनों पक्षोंमें व्यक्तिगत सद्भाव

स्थापित करें। आजकल सरकारें व्यर्थ-सी हो रही हैं, राजनीतिज्ञ लोगोंको ऐसा लक़वा-सा मार गया है कि वे पूँजीपतियोंके हाथकी कठपुतली होकर मेशीनके पुर्ज़ोंकी तरह काम करते हैं, इसलिए उनसे कोई आशा रखना व्यर्थ है। विभिन्न देशोंके लोगोंको चाहिए कि वे इन लोगोंसे बिलकुल स्वतन्त्र रहकर, आपसमें मिलकर अपने भाग्यका निर्णय करें।

'साम्राज्य' की आवाज़ अधिकारवालोंकी पागलों और अहमकोंकी आवाज़ है—केवल इंग्लैण्डमें ही नहीं, वरन पाश्चात्य संसारके उन समस्त देशोंमें, जिनपर सरकार सवारी गाँठे है। भारतका मामला और भारतकी बरबादी—जहाँ किसी राष्ट्रको शायद ही ऐसा अवसर मिले, जैसा इंग्लैण्डको मिला है—'साम्राज्य'की आवाज़की असत्यता और पागलपनको सिद्ध कर देती है। यदि ऊपरकी समस्त बातें विवादग्रस्त कही जायँ, तो यह बात तो एकदम निर्विवाद है और साथ ही बड़े कलंककी है कि इंग्लैण्डके अधिकारीवर्गको भारतकी सच्ची चिन्ता नहीं है। वे साम्राज्य जीत लेनेके बाद उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखते। अनेकों वर्षोंसे प्रतिवर्ष भारतके पचीस करोड़ व्यक्तियोंके भाग्यका विवरण 'हाउस आफ् कामन्स'में जब सुनाया जाता है, तब उसकी बेंचें ख़ाली पड़ी रहती हैं। कोई भी चीज़ इस तथ्यके अर्थको मिटा नहीं सकती और इसका भारतीयोंपर जो भयानक प्रभाव पड़ता है, उसे दूर नहीं कर सकती। फिर भी हम मकानोंकी छतोंपर खड़े होकर और सड़कोंपर घूम-घूमकर खोखली आवाज़में अपने शासनकी न्यामतोंको चिल्लाते-फिरते हैं, और दक्षिण-अफ्रिका, पश्चिम-अफ्रिका, मिस्र, चीन तथा संसारके अन्य बाक़ी हिस्सोंमें साम्राज्य बढ़ाने तथा नये देश जीतनेके गीत गाते हैं!

इस पागलपनके दूर होनेमें निश्चय ही ज्यादा दिन नहीं लगेंगे। उस समय हमारे खोखले दावोंकी पोल खुल जायगी। ये मूर्खतापूर्ण साम्राज्य, उनकी शक्तियोंकी नुमायश और उनकी कोई असली नीतिका न होना—यह अंगरेज़ी शेर, यह रूसी भालू, यह जर्मन, फ्रेंच और अमेरिकन बाज़—यह तमाम शिकारी पक्षी और ख़ूँख़्वार जानवर, उनकी लोभ और युद्धकी जंगली धारणाएँ, उनके असम्भव अस्त्र-शस्त्र, उनके सिरपर लटकता हुआ आर्थिक पतन—ये सब चीज़ें गिरकर चकनाचूर हो जायँगी। उनके झूठे ख़ोल नष्ट हो जायँगे। और यह जितनी जल्दी हो, उतना ही अच्छा। लेकिन इन सबके भीतरसे आनन्द होगा, क्योंकि तब यह मालूम होगा कि आखिरकार इस पृथिवीके अधिवासी एक दर्जे—हाँ एक दर्जे—एक दूसरेके अधिक निकट पहुँच गये।

आशे!

सेवकेन्द्र

सुन्दरताकी प्रतिमा-सी आँखोंमें झूला करतीं,
वीणाकी झंकारों-सी तुम कानोंमें रस भरतीं।
सूखे मानस-मरुमें तुम नन्दनकी हरियाली-सी,
म्रियमाण प्राणको हो तुम पीयूष पूर्ण प्याली-सी।
भावीके तममें आतीं ऊषाकी मृदु लाली-सी,
सुप्तावस्थामें मधुमय स्वप्नोंकी उजियाली-सी;
दुख-पारावार प्रबलमें कल्लोलित-कूल-लहर-सी,
प्रतिपल परिवर्द्धनशाली पंचालीके अम्बर-सी।

सर्वस्व प्रेमिकोंकी तुम सहचरी संगिनी सजनी,
तुम विरह-विदग्ध जनोंको हो मधुर मिलनकी रजनी।
सूने आँगनमें शिशुकी सुन्दर मोहक लीला-सी,
अँधियाले काले घनमें विद्युन्नर्तनशीला-सी।
अनुराग-विराग-थलीमें आकर्षणकी माया-सी,
भव-श्रान्त-क्लान्त पथिकोंको फलयुत विटपी छाया-सी;
हे निरवलम्बकी अम्बे! जीवन-रथ-चक्र धुरी तुम,
इस विकट प्रपंचपुरीको करती हो अमरपुरी तुम।

खातीपिनुरीकी यात्रा

श्रीयुत 'फक्कड़'

विशाल भारतमें वैसे तो अनेक स्थान दर्शनीय हैं ; किन्तु हिमालयके प्राकृतिक दृश्य अद्भुत रूपसे अद्वितीय हैं। जिन्होंने कभी हिमालयके दर्शन नहीं किये, उनके लिए शिमला, नैनीताल इत्यादि अनेक हिल-स्टेशनोंपर जाकर अपनी इस अभिलाषाको पूरी करना सम्भवतः यथेष्ट हो, किन्तु जिन्होंने अनेक बार ये स्थान देखे हैं, उन्हें हिमालयके गर्भमें जाकर वहाँके मनोहर प्रकृतिक दृश्य देखनेकी अदम्य इच्छा हो आती है। प्रकृतिके एकान्त उपासकोंको, हिमाच्छादित गगनचुम्बित पवित्र शिखर, झर-झरकर बहते हुए निर्मल झरने और शिलाओंसे क्रीड़ा करती हुई पार्वती नदियोंके कल-कल शब्द द्वारा निनादित सघन वनसे परिपूर्ण उपत्यिकाएँ प्रबल रूपसे आकर्षित करती हैं। इसी प्रेरणाके अधीन हो मैंने भी खातीपिनुरी (पिंडारी ग्लेशियर) जानेकी ठानी। वैसे तो मैं गत वर्ष ही जा रहा था, किन्तु संयोगवश न जा सका। इस वर्ष चार मित्रोंके साथ यात्रा कर दी। आगे चलकर हम पाँच हो गये। पाँचवें थे श्रीयुत ····पांडे ; ये महाशय हमें अल्मोड़ेमें मिल गये।

घरसे हम लोग १५ मईको निकले और १६ की शामको लगभग तीन या चार बजे अल्मोड़े पहुँचे। काठगोदाम तक रेल है, और वहाँसे अल्मोड़े तक मोटरका रास्ता है। रानीखेत तक कोलतारकी सड़क होनेसे रास्ता बहुत अच्छा है। रानीखेत कैन्टोनमेन्ट है। यहाँपर तीन-चार हज़ारके लगभग गोरोंकी फौज रहती है। यद्यपि स्थान बहुत ही रमणीय और अच्छा है, किन्तु कैन्टोनमेन्टवालोंने ऐसे कुछ नियम बना रखे हैं कि कोई भलामानस भारतवासी वहाँ नहीं जाता। और कोई भूला-भटका अनभिज्ञ चला भी गया, तो दो ही चार दिनमें उसे अपनी ग़लती मालूम हो जाती है, और वह या तो नैनीताल चला जाता है, या अल्मोड़े। हम लोगोंने पहलेसे ही अल्मोड़ेके अधिकारियोंसे लिखा-पढ़ी कर रखी थी, अतः वहाँका गवर्नमेन्ट हाउस, जिसे रामज़े हाउस भी कहते हैं, हमारे लिए रिज़र्व था, और पिंडारी तक जितने डाकबँगले थे, वे भी सब हम लोगोंके लिए रिज़र्व थे। काठगोदामसे रानीखेत तक बराबर चढ़ाई है और फिर अल्मोड़े तक उतार। मोटरें हमारी अपनी थीं। सामानके लिए एक लौरी कर ली थी। वैसे साधारण रूपसे जो यात्री पिंडारीको जाते हैं, उनके लिए अल्मोड़ेमें डाकबँगला है, और पिंडारी तक जो डाकबँगले हैं, उनमें वे आश्रय ले सकते हैं। हमारे एक सहयोगी पहलेसे अल्मोड़े पहुँच गये थे, अतः सब प्रबन्ध ठीक कर रखा था। वहाँ पहुँचनेपर हम अल्मोड़ेके एक्ज़क्यूटिव आफिसर महाशय जोशीजी और मेरे पूर्व परिचित श्री गंगादत्तजी पाण्डे मिले। यहाँपर हम एक सरकारी आफिसर तथा गुरखा रेजीमेण्टके एक कप्तानसे भी मिले। इन दोनों महाशयोंने हमें पिंडारी-सम्बन्धी अनेक बातें बतलाईं, जो हमारे लिए बहुत कामकी सिद्ध हुईं। जिस दिन हम लोग अल्मोड़े पहुँचे, उसी दिन शामको हम लोग 'स्नो व्यू' नामके एक मकानको देखने गये। यह मकान यथानाम तथागुणः है। यहाँसे हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियोंका दृश्य बहुत ही मनोरम है। सन्ध्या हो जानेसे शिखरोंका बहुत कुछ भाग बादलोंसे ढक गया था, इसलिए सबकी राय यही ठहरी कि प्रातःकाल, जब कि आकाश निर्मल हो, आकर तसवीर ली जाय। दूसरे दिन सवेरे जाकर तसवीर ली, और वहीं जंगलोंमें घूमे भी। बाक़ी सवेरे-बिनसरके लिए रवाना हुए। चौदह मीलकी यात्रा छै-सात घंटेमें तै की। अल्मोड़ेसे निकलते ही चढ़ाई मिलती है, फिर कपड़ाखान तक बराबर उतार मिलता है। यह जगह अल्मोड़े और बिनसरके लगभग बीचमें

है। यहाँ तक हम लोग पैदल आये और फिर बिनसर तक घोड़ोंपर गये। मार्गमें धुरचन नामका एक झरना मिलता है। वैसे सारा मार्ग सुन्दर और सुहावना है, किन्तु झरनेके कारण इस स्थानका सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। यहाँपर हम लोगोंने आध या पौन घंटे विश्राम किया। इस स्थानसे निकट ही श्री जमनालाल बजाजका शैलाश्रम है, किन्तु यहाँपर यह गांधी-आश्रमके नामसे प्रख्यात है। समयाभावसे वहाँ न जा सके, किन्तु सुना कि वहाँपर सूतकी कताईका काम होता है और अनाथ बालकोंको आश्रय दिया जाता है। यहाँसे बिनसर तीन मील है। हम लोग चार बजेके लगभग पहुँचे। अल्मोड़ेके एक सज्जन श्री देवीलालजीके मकानमें ठहरे। मकान बुरी हालतमें है, और आसपासकी जगह गन्दी है। ठंड विशेष होनेसे फायर-प्लेसमें जो आग सुलगाई, तो मकानमें आग लगते-लगते बची। वह तो नौकरोंने बाहरसे देख ली, और इससे पहले कि वह ज़ोर पकड़े, बुझा दी गई। फिर हम लोगोंने आग सुलगानेका साहस नहीं किया। ठंड लगती, तो ओवरकोट पहनकर बैठ रहते। यदि यह लेख श्री देवीलालजीकी नज़र पड़ जावे, तो उनसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे इस मकानके जीर्णोद्धार और सफ़ाईकी ओर ध्यान दें। जिस दिन हम लोग पहुँचे, उसी दिन हमारे एक साथी शिकारको गये और एक काँकड़ मार लाये। यह छिकरेकी तरहका पहाड़ी हरिन होता है। इसे अंगरेज़ीमें 'बारकिंग-डियर' कहते हैं। यहाँपर फ्लेग-स्टाफ नामकी एक चोटी है। यह लगभग ९,००० फीट ऊँची है। इस चोटीकी यद्यपि चढ़ाई 'बहुत ढाँटी'[1] है, तथापि चढ़नेपर परिश्रम सफल हो जाता है। चोटीपर से लगभग ५००-६०० मील लम्बी हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियोंका अद्वितीय दृश्य है। कुछ पर्वत-शिखरोंके नाम, जो इन श्रेणियोंमें दीखते हैं, ये हैं। बाईं ओरसे :—भटकोट, त्रिशूल, नन्दाकोट, नन्दाखाट, बनकटिया, नन्दादेवी और पाँचचुली। लोगोंका कहना है कि जब आकाश निर्मल होता है, तब बद्रीनाथके शिखर त्रिशूल-से बाईं ओरको दिखाई देते हैं। बिनसर हम लोग एक ही दिनके लिए आये थे, किन्तु बादलोंके कारण इस सुन्दर स्थानका चित्र न ले सके। अतः दो-तीन दिनके लिए ठहर गये। हमारे दो साथी अल्मोड़ा यात्राके लिए आवश्यक सामग्री लेने लौट गये। हम लोग इनको टाकुलेमें २१ तारीख़को मिले।

टाकुला बिनसरसे चार मील है, और अल्मोड़ेसे कपड़खान होते हुए १४ मील है। इस स्थानकी उँचाई ५२३५ फीट है। बिनसरसे टाकुला तक उतार ही उतार है। टाकुलेकी उपत्यकाके एक सिरेपर छोटीसी एक टेकरी है, उसीपर डाकबँगला बना हुआ है। टेकरीके नीचे ही टाकुला गाँव बसा हुआ है। यह स्थान इतना ठंडा नहीं है। यहाँपर हम लोग रात-भर रहकर दूसरे दिन सवेरे ही बागेश्वर चल दिये। यह दूसरा पड़ाव ग्यारह मीलका है। टाकुलेसे कुछ दूर चलकर एक छोटीसी नदी मिलती है। इसी नदीपर एक पनचक्की भी बनी हुई है। यहाँ तक समभूमि मिलती है। फिर यहाँसे देवलधार नामके गाँव तक तीन मीलकी चढ़ाई है। यहाँसे बलोन नामके गाँव तक ढाँटा उतार है। फिर बागेश्वर तक लगभग समभूमि है। बागेश्वर बड़ा गाँव है, और सरयू तथा गोमतीके संगमपर बसा हुआ है। यह सरयू वही है, जो अयोध्याजीमें है; किन्तु गोमती वह गोमती नहीं, जो लखनऊमें है। बागेश्वर इस प्रदेशका तीर्थ-स्थान समझा जाता है। यहाँपर वर्षमें दो या तीन मेले होते हैं, जब कि उत्तर-प्रदेशके भोटिया लोग तिब्बतकी ओरका माल लेकर व्यापारके लिए

---

१. यह शब्द बुन्देलखण्डी है। सीधी खड़ी चढ़ाईको ढाँटी कहते हैं। हिन्दीमें इसका पर्याय न मिलनेसे इसका प्रयोग किया गया है। —लेखक

यहाँपर आते हैं। यहाँसे ये लोग कलकत्ते तक भी जाते हैं। यहाँका डाकबँगला नदीके ठीक तटपर बना हुआ है। पाँच कमरेका बँगला है। इस यात्रामें सबसे बड़ा डाकबँगला हमें यही मिला। बागेश्वरकी उँचाई ३,२०० फीट है। सरयूजीमें खूब स्नान किये। बागेश्वरमें बागेश्वर महादेवका स्थान है। उन्हींके महात्म्यके कारण यह तीर्थ माना जाता है। यहाँपर भी रात-भर विश्राम करके बड़े सवेरे छै बजे कपकोटके लिए चल दिये।

यह तीसरा पड़ाव बागेश्वरसे १४ मील है। मार्गमें साधारण चढ़ाई-उतार मिलते हैं। मार्ग ठीक सरयू नदीके किनारे-किनारे जाता है। सरयू नदीका तट लुहारखेत तक नहीं छूटता। कपकोटका डाकबँगला भी सरयू-तटपर बना हुआ है, किन्तु कुछ हटकर। बागेश्वरसे चलकर आधी दूर तक बहुत ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्य मिलते हैं, फिर मार्ग साधारण है। कपकोट समुद्र-तलसे ३७५० फीटकी उँचाईपर है। कपकोट ख़ासा अच्छा गाँव है। यहाँपर यात्रियोंको आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं। डाकबँगलेके सामने और सरयू पार एक आड़ा पहाड़ है। गाँववालों और डाकबँगलेके चौकीदारसे मालूम हुआ कि उसपर जंगली मुर्ग मिलते हैं ; पर थके होनेसे कोई शिकारको नहीं गया।

यहाँसे वही छै बजे प्रातःकाल चलकर लुहारखेत पहुँचे। यह छटवाँ पड़ाव कपकोटसे नौ मील और समुद्रतलसे ५७५० फीटकी ऊँचाईपर है। लुहारखेत जब लगभग एक मील रह जाता है, तब बड़ी ढाँटी चढ़ाई मिलती है। डाकबँगला एक पहाड़पर अदवारेसे कुछ ऊपर बना हुआ है। वहाँ पहुँचनेपर उस परगनेके पटवारी श्री गोपालदत्तजी पांडे मिले। इनसे बातचीत होनेपर आपने कहा—"अभी तो आप लोग मैदान-मैदान आये हो, पहाड़ तो अब मिलेंगे।" मतलब यह कि यहाँके महाशय १०,००० फीटसे ऊँचे स्थानोंको पहाड़ गिनते हैं। इससे नीचे स्थानोंको तो वे निरा मैदान मानते हैं। सुन लिया पाठको, पहाड़ियोंका कहना ? अब आप कभी शिमला, मसूरी, नैनीताल इत्यादि स्थानोंपर जायँ, तो भूलकर भी न कहियेगा कि हम पहाड़ गये थे। लुहारखेत दानपुर इलाकेके मध्यमें है। यहाँके पटवारी महाशय यहाँके सर्वेसर्वा हैं, अर्थात् पुलिस अफ़सर, रेवेन्यू अफ़सर और मैजिस्ट्रेट सब यही हैं। यह परगना गढ़वालसे रामगंगा तक और पिंडारीसे कपकोट तक माना जाता है। इस परगनेमें गुरखा रेजिमटोंके अनेक पेन्शनर रहते हैं, और उनकी भरतीका यह मुख्य केन्द्र है। किसी-किसी कुटुम्बको तो दो-दो सौ तक पेन्शन मिलती है। पेन्शन बाँटनेके लिए स्वयं एस० डी० ओ० जाते हैं। घर-घर घूमकर पेन्शन बाँटते हैं, उनकी कुशल पूछते हैं और उनकी ख़ातिर करते हैं। एक तो देश निर्धन और दूसरे फिर भारत-सरकार उनको इतना दे और ख़ातिर करे, फिर दनपुरिये उसके लिए क्यों न जान निछावर कर दें ? लुहारखेतमें एक प्रकारकी मक्खी होती है, जिसे फ्यूड़ कहते हैं। यह शामको निकलती है। इसका काटा पक जाता है और उससे फोड़ा भी उठ आता है। यह मक्खी यहाँके सिवा शायद और कहीं नहीं पाई जाती। इस पड़ावके बाद पिंडारी तक कोई वस्तु नहीं मिलती, अतः रसदमें किसी चीज़की कमी हो गई हो, तो उसकी पूर्ति यहींसे कर लेनी चाहिए।

यहाँसे दूसरा पड़ाव ढाकुरी है। डाकबँगला समुद्रतलसे ८,९०० फीटकी ऊँचाईपर है। बहुत ही रमणीय स्थान है। यहाँका पानी बहुत अच्छा है। लुहारखेतसे एक मील चलनेके बाद सघन वन मिलता है, जो ठीक ढाकरी तक चला जाता है। इस वनमें से जो रास्ता जाता है, वह बहुत ही तर है। जगह-जगहपर पानीके झरने बहते हैं। ढाकुरीविनायक तक, जो लुहारखेतसे साढे पाँच मील है, बराबर चढ़ाई मिलती है। लगभग ६,००० फीटके चढ़ना पड़ता है। विनायकसे डेढ़ दो मीलमें कोई दो हज़ार

फीट उतरना पड़ता है, तब कहीं ढाकुरीके बँगलेपर पहुँचते हैं। पर्वतकी श्रेणीपर जो टूट पड़ जाती है, ऐसी कि जहाँसे मनुष्य आसानीसे पर्वत-श्रेणीको लाँघ सके, उसे वहाँ विनायक कहते हैं। हमारी बुन्देलखण्डी भाषामें उसे खाद या खँदिया कहते हैं। विनायकपर पहुँचते ही नाटक-कैसा पट परिवर्तन हो जाता है और सामने अत्यन्त मनोरम दृश्य दीखता है। लगभग पाँच सौ मील लम्बी हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियाँ नज़र आती हैं। उनके समुज्ज्वल गगनचुम्बित एवं किंचित मेघाच्छादित शिखरोंपर बाल सूर्यकी अठखेलियाँ करती हुई और अनेक रंग प्रस्फुटित करती हुई किरणें इतनी सुन्दर और मनमोहक प्रतीत होती हैं कि "केशव कहि ना जाय का कहिये। लखि अति विचित्र तुव माया, समुझ मनहि मन रहिये।" धाकुड़ी कोई गाँव नहीं है, प्रत्युत एक स्थान-विशेषको पहाड़ीमें धाकुड़ी कहते हैं। वास्तवमें धाकुड़ी दो पहाड़ी शब्द मिलकर अपभ्रंश बन गया है—धात=बुलाना+कुड़ी=झोपड़ी या स्थान। यह धाकुड़ीविनायक उस पर्वतपर है, जो इस प्रदेशको दो भागोंमें विभक्त करता है, यानी उत्तर और दक्षिणको। प्राचीन समयमें उत्तर प्रदेशको दक्षिणसे कोई समाचार भेजना होता था, तो इस विनायकपर से ढोल बजाकर या अग्नि जलाकर भेजा जाता था, अतः इसे धातकुड़ीविनायक कहते थे, और इसीका अपभ्रंश होकर यह धाकुड़ीविनायक कहलाने लगा। यहाँपर हम लोग दो-दिन रहे। यह स्थान प्राकृतिक दृश्योंसे इतना परिपूर्ण है और इतना सुहावना और मनोहर है कि इसे छोड़नेको जी ही नहीं चाहता था; पर पिनुरीगलकी लौ आखिरकार हमें खींच ही ले गई। २७ को प्रातःकाल बार-बार लौटकर इस स्थानको देखते हुए खातीके लिए प्रयाण किया।

खातीके पश्चात् फिर कोई गाँव नहीं मिलता। यह खड्डमें बसा है और समुद्रतलसे ७,६५० फीटकी ऊँचाईपर है। बँगला इतने सुन्दर स्थानपर नहीं बना, जितना कि धाकुड़ीका। डाकबँगलेसे पचीस-तीस हाथ नीचे पिंडर बहती है और बँगला पोंठके ठीक किनारेपर बना हुआ है। रात-बिरात भूलसे किसीका खड्डमें गिर जाना कुछ आश्चर्यजनक न होगा, अतः पोंठके किनारे-किनारे तार या जँगला लगवा देनेकी ओर वहाँके कर्मचारीगण यदि ध्यान दें तो अच्छा हो।

यहाँसे दूसरा पड़ाव द्वाली है। दो नदियोंके संगमपर एक टेकरी है, उसीपर डाकबँगला बना हुआ है। यह स्थान समुद्रतलसे १०,००० फीटकी ऊँचाईपर है। स्थान रमणीय और मनोरम है। खातीसे द्वाली सात मील है। मार्गमें सघन वन मिलता है, और दो स्थानोंपर पिंडर नदीको पार करना पड़ता है। इन दो स्थानोंके बीचके मार्गपर दिनके किसी भी भागमें बहुत ही कम सूर्य आता है। एक ओर पिंडर नदी बहती है और दूसरी ओर झरनों और वनकी शोभा विद्यमान है। वैसे तो मार्ग-भरमें झरने ही झरने हैं, किन्तु जब द्वाली मील डेढ़ मील रह जाती है, तब दो बड़े भारी झरने मिलते हैं। ये कोई हज़ार डेढ़ हज़ार फीटकी ऊँचाईसे गिरते हैं। द्वालीसे बर्फ़के पहाड़ बिलकुल करीब रह जाते हैं। बँगलेके सामनेके पहाड़की चोटीपर दिनके तीन बजेके लगभग एक थार[1] दीखा। मेरे एक साथीने और मैंने उसपर दो-चार फायर किये, पर बहुत दूर होनेसे निशाना किसीका नहीं लगा।

फुरकिया, अन्तिम पड़ाव, द्वालीसे तीन मील है। बँगला समुद्रतलसे १०,७०० फीटकी ऊँचाईपर है। द्वालीसे एक डेढ़ मील चलकर ही हमें घोड़े वापस कर देने पड़े, क्योंकि आगे बर्फ़के नाले होनेसे घोड़े नहीं जा सकते थे। फुरकिया पहुँचते-पहुँचते कोई नौ बर्फ़के नाले पार करने पड़े। मार्गमें जो झरने मिले, वे हमें बड़े ही अद्भुत मालूम हुए; इसलिए कि शिखरोंपर से बहते हुए वे नाले बीचमें चट्टानोंपर जम जाते थे, फिर बहने लगते थे और फिर अन्तमें

१. थार एक प्रकारका पहाड़ी जानवर है, जो चीतलसे कुछ बड़ा होता है। —लेखक
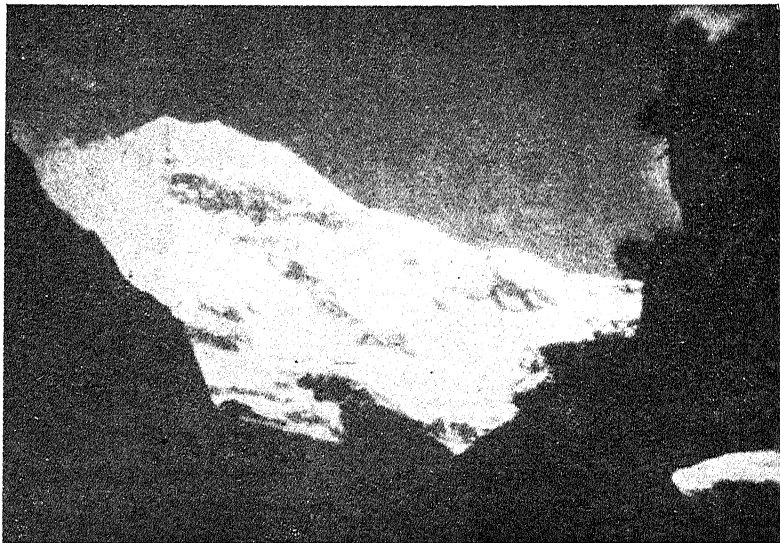
फुरकियासे हिमाच्छादित पर्वतका दृश्य

पिंडर नदीकी जमी हुई सतहमें समा जाते थे। द्वालीसे फुरकियेका मार्ग बराबर पिंडर नदीके किनारे जाता है। इस नदीकी अधिकांश सतह जमी हुई है, और उस जमी हुई सतहके नीचे पानी बहता है। जहाँ कहींपर जमी हुई सतह टूटकर छोटासा गलमुख बन गया है, वहाँसे मटमैला जल बहता हुआ दीखता है। यहाँका डाकबँगला बहुत जीर्ण हो गया है। हमारे वहाँ पहुँचनेके चार-पाँच दिन पहले बँगला बर्फ़में दबा हुआ था, और जब हम लोग वहाँ पहुँचे, तब भी थोड़ी बर्फ़ खिड़कियोंके नीचे थी। जितनी हम समझते थे, उतनी ठंड यहाँपर नहीं थी। लगभग ११,००० फीट समुद्रतलसे ऊँचे होनेके कारण यहाँकी वायु कुछ पतली थी, अतः हाँफी बहुत चलती थी।

पिनुरीगलके लिए बड़े प्रातःकाल ही यात्रा करनी पड़ती है, और १२ बजेके पहले-पहले फुरकिया वापस आ जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि बारह बजेपर सूर्यकी गरमी बढ़ जानेसे बर्फ़ पिघलने लगती है, अतः बर्फ़के रास्तेपर फिसलन हो जाती है, और दूसरे शिखरोंपर से जो पाषाण बर्फ़में जमे होते हैं, वे बर्फ़ पिघलनेसे लुढ़ककर मार्गपर से होते हुए खड्डको जाते हैं। मार्गपरकी फिसलन तो इतनी नहीं; पर पत्थरोंका इस प्रकार मार्गपर गिरना अवश्य जानलेवा है। इस कारण हम लोगोंने साढ़े पाँच बजे ही गलमुखके लिए प्रयाण किया। मार्गमें अनगिनती बर्फ़के नाले पार करने पड़े और दो-तीन कोई आध-आध मील चौड़े बर्फ़के मैदान भी पार करने पड़े। बर्फ़के इन नालों और मैदानोंपर कुल्हाड़ियोंसे काट-काटकर रास्ता बनाना पड़ा। इस प्रकार हम लोग ले-देकर चार मील चार घंटोंमें पहुँचे। और तब भी गलमुख कोई डेढ़ मील रह गया था। चार मीलके अन्तमें हम लोग एक मैदानपर पहुँचे। इसे मारतोलीका मैदान कहते हैं, और यह साराका सारा बर्फ़से ढका था। दो-चार शिलाओंपर जिनपर बर्फ़ नहीं था, बैठकर हम लोगोंने कुछ जलपान किया, और एक घंटा विश्राम करके और गलमुख देखे बिना ही लौट पड़े। इसलिए गलमुख नहीं देखा कि वह सारा-का-सारा बर्फ़में दबा था, और देखनेके लिए कुछ था नहीं, अतः वहाँ तक जानेका परिश्रम करना निरर्थक समझा। लौटनेपर इतने थक

गये थे कि भोजन किये बिना ही सो गये, तो शामको उठे। मईका महीना था, और इस महीनेमें इतनी बर्फ़का होना असाधारण बात थी। इस वर्ष वर्षा अधिक और असमयमें होनेके कारण ही इतनी अधिक बर्फ़ थी, नहीं तो गलमुखसे आध मील तक घोड़े आरामसे चले जाते हैं। अपने अनुभवके बलपर, वहाँके यात्रियोंसे इतना निवेदन अवश्य है कि धाकुड़ी या खातीपर यदि उन्हें यह समाचार मिल जाय कि द्वालीके आगेसे ही बर्फ़ जमी है, तो पिनुरीगल तक जानेका कष्ट न करें, क्योंकि परिश्रम निरर्थक होगा। धाकुड़ीसे हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियोंका जो सुन्दर दृश्य है, उससे ही सन्तोष करके वापस लौट जायँ।

पिनुरीगलसे वापस लौटनेपर बागेश्वरसे टाकुला होते हुए अल्मोड़े न जाकर बागेश्वरसे सोमेश्वर होते हुए नैनीताल गये। सोमेश्वर तक घोड़ोंपर गये। वहाँपर हमें हमारी मोटरें मिल गईं। सोमेश्वर एक लम्बी-चौड़ी उपत्यकामें बसा हुआ है, और समुद्रतलसे ऊँचाईपर होनेसे बागेश्वरकी अपेक्षा यह स्थान ठंडा है। और यहाँ तक मोटरका रास्ता होनेके कारण अल्मोड़ा, रानीखेत, नैनीताल, काठगोदाम इत्यादि स्थानोंको जानेमें सुविधा है। प्राकृतिक दृश्यके लिए भी यह स्थान कुछ हीन नहीं।

कुछ इधर-उधरकी

दानपुर इलाकेके पटवारी पं० गोपालदत्तजी पांडे हमें लुहारखेतमें मिले। ये महाशय लुहारखेतसे पिनुरीगल तक और वापस लुहारखेत तक बराबर हमारे साथ रहे। इनसे हमें बड़ी सहायता मिली। कोरी सहायता ही नहीं मिली, पर हँसमुख और पहाड़ी किस्से-कहानियोंकी खान होनेसे बड़ी तफरीह रही। आपसे मुलाकात होते ही आपने पिंडर नदी और पहाड़ी मार्गके आतंकके ऐसे पुल बाँधे कि हम लोगोंके छक्के छूट गये। आतंक सुनकर तो जी सहम जाता था, पर वर्णनशैली सुनकर हँसी भी दाबे नहीं दबती थी। पांडेजीसे जो बातें सुनीं, उनमें से दो-तीन यहाँ उद्धृत किये देता हूँ :—

१. लुहारखेतसे एक या डेढ़ मील उत्तरमें एक छोटासा रिखारी नामका गाँव है। इस गाँवमें एक लम्बी-चौड़ी काली शिला है। उसमें इतनी चमक है कि मुँह देख लो। कहा जाता है कि प्राचीन समयमें वहाँ ऋषियोंकी बस्ती थी, और ऋषिपत्नियाँ उसी शिलामें अपना प्रतिबिम्ब देखकर शृंगार किया करती थीं।

२. लुहारखेतसे एक मील पूर्व दिशामें शुंभगढ़ नामका एक गाँव है। कहा जाता है कि इसी स्थानपर भगवती जगम्बदाने शुंभ-निशुंभका बध किया था। यहाँपर भगवतीकी एक शिला है, जो अब भी पूजी जाती है।

३. लुहारखे से डेढ़ मील दक्षिणमें एक पहाड़ है। हिमालयमें गलने जब पांडव आये थे, तब प्याससे पीड़ित होनेपर भीमने उस पहाड़में एक तीर मारा और उस छिद्रसे पिंडर नदीका जल मँगाकर अपनी प्यास बुझाई थी। उस झरनेको वहाँके लोग भीमजल और पिंडर पानी दोनों नामसे पुकारते हैं।

वहाँपर एक शतधारा नामक स्थान है। लुहार-खेतसे उत्तरमें दो दिनका मार्ग है। वहाँपर एक बड़ा पर्वत है। उसके एक ओर भारी पोंठ पड़ गई है। इस पोंठमें से बीसियों झरने एक साथ बहते हैं। ये झरने बहुत ऊँचेसे बहनेके कारण बहुत सुन्दर मालूम देते हैं। यहीं सरयू-नदीका उद्गम-स्थान है। यहाँ वार्षिक मेला भी लगता है, और यह तीर्थ-स्थान भी माना जाता है।

इन सब स्थानोंको देखनेकी हम लोगोंकी बड़ी उत्कट इच्छा थी, पर समयाभावके कारण "मनकी मन ही माँहि रही।"

स्वर्गीय स्वामी शुद्धबोधतीर्थका एक संस्मरण

श्री रामनाथ शर्मा

जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन देववाणी संस्कृतके प्रचारमें लगा दिया, जिनके पढ़ाये हुए अनेकों शिष्य आज उसी भाषाके उद्धारमें लगे हुए हैं और तन-मन-धनसे जिनके द्वारा सींचा हुआ उपवन आज महाविद्यालयके रूपमें गंगा-तटपर फल-फूल रहा है, उन स्वामी शुद्धबोधतीर्थ (भूतपूर्व पं० गंगादत्तजी) का गत २७ सितम्बरको स्वर्गवास हो गया। उनकी विद्वत्ता, अध्यापनशैली इत्यादिके विषयमें तो अधिकारी लेखक ही लिख सकते हैं। मैं अपनी श्रद्धांजलि एक छोटेसे संस्मरण द्वारा देना चाहता हूँ। सन् १९०९-१० की बात है। जब पूज्य पितृदेव (पं० पद्मसिंह शर्मा) 'भारतोदय'का सम्पादन करते थे, उस वक्त मैं छोटा बच्चा ही था। पितृदेव 'भारतोदय' का काम तो करते ही थे, साथ ही बड़ी श्रेणियोंको पढ़ाया भी करते थे। जिन श्रेणियोंका मैं ज़िक्र कर रहा हूँ, उनका पाठ विद्यालयके सुसज्जित बँगले 'शान्ति निकेतन' में हुआ करता था। बँगलेके चारों तरफ़ रविश पड़ी हुई थी। उसके इधर-उधर गुलाब, बेला, जूही, सेवती, चमेली, चाँदनी, गुलदुपहरिया संसारसे विरक्त प्राणियोंका भी जी लुभा लेती थीं। दाएँ-बाएँ बड़ा सुन्दर उपवन था, जिसमें आड़ू, लीची, नाशपाती, आलू बुखारे, लौकाट, नीबू, आम, शहतूत आदि अनेक चीज़ें मौजूद थीं। अगर बारह महीने वसन्तऋतुका आनन्द लूटना हो, तो वह जगह विद्यालय थी। यों होनेको तो विद्यालय अब भी है, पर ख़िज़ाँकी हालतमें। बहारका मौसम बीत चुका। एकसे एक दिग्गज विद्वान अपने चरणारविन्दोंसे उस भूमिको सुशोभित कर रहे थे। बहुतसे पंडित सद्गृहस्थ रहते थे। उनके छोटे-छोटे बच्चोंके साथ खेलने-कूदनेमें बड़ा मज़ा आता था। आँखमिचौनी, चील-झपट्टा खेल रहे हैं। उधर कार्यवश माताजीने आवाज़ लगाई—"राम, अपने पिताजीको तो ज़रा बुला ला और आकर कलेवा कर ले।" मैं सुनी-अनसुनी कर भाग गया। इस बीचमें अगर फिर नज़र पड़ गया, तो गिरफ़्तारीकी नौबत आ गई। डाँट-फटकार पड़नी शुरू हुई—"देख, आज 'उन्हें' आने दे; कैसी खबरलिवाई होगी। तू दिनोंदिन बिगड़ता जा रहा है।" यहाँ क्या था, मचल गये। उन्होंने झट मिठाई दी और 'चुमकारने' लगीं और साथ-साथ यह सान्त्वना भी दे दी कि उनसे न कहूँगी; मगर उनको बुला तो ला। मैं मिठाई कुतरता हुआ पितृदेवके पास जा पहुँचा।

उन्होंने रोनी सूरत देखकर पूछा—"कहो, क्या हुआ?" सब माजरा बयान किया और साथ-साथ माताजीका सन्देश भी कह सुनाया। कहने लगे कि अच्छा, अभी चलते हैं। चलकर पीटेंगे। इतनेमें सब श्रेणियोंका निरीक्षण करते हुए स्वामी शुद्धबोधतीर्थजी आ पहुँचे। एक हाथपर खानेकी

आसीन—श्री ६ स्वामी शुद्धबोधतीर्थजी आचार्य
खड़े—ब्रह्मचारीगण

तम्बाकू रहती, दूसरे हाथकी चुटकीका घस्सा लगता रहता। पितृदेवके सामने हाथ बढ़ा दिया। उन्होंने ज़रासी तमाखू उठाई और मुँहमें डाल ली। यह उनकी प्रेम-प्रसादी थी, जिसके लिए हर वक्त उनका दरबार खुला रहता था। स्वामीजी एक तरफ़ आसनपर बैठ गये, और विद्यार्थियों तथा विद्यालयके विषयमें वार्तालाप होने लगा। किसका पाठ कहाँ चल रहा है;

कौन कैसा पढ़ रहा है ; अमुकके पास पुस्तक है कि नहीं। फिर पूज्य पितृदेवका नम्बर आता। पिताजीसे कहते—"यानी जो है सो, तुमको तो किसी चीज़की ज़रूरत नहीं।" इसके बाद एक हल्की-सी चपत मेरे रसीद हुई, और साथ-साथ यह भी दर्याफ्त हुआ—"क्यों, कैसे बैठे हो?" पितृदेवने सबब बतलाया। झट आशीर्वाद रूपमें यह महावाक्य उच्चारण किया—"लंठ कहींका! यह भी कोई बात है। चल हमारे साथ, फल खिलायेंगे।" फिर गोदीमें उठा लिया। बागकी रविशपर घूमते हुए 'शान्ति-कुटीर' की तरफ़ चल दिये। रास्तेमें दरख्तोंकी तरफ़ उँगलीसे इशारा करते हुए पूछते जाते थे—"बोलो, क्या चीज़ खाओगे?" उस ज़मानेमें मेरा उच्चारण ठीक न था, और फलोंमें भी सिर्फ़ दो ही फलोंका नाम याद हो पाया था। अमरूद और नाशपाती इन दोनों चीज़ोंको 'मूद', 'नाछपाती' के नामसे पुकारता था। स्वामीजी भी अकसर इन्हीं दरख्तोंके नीचे आकर खड़े हो जाते, और मुझसे बार-बार वह अशुद्ध नाम ही उच्चारण कराते। फिर कहते—"बोलो, खाओगे?" मैं भी गर्दन हिलाकर स्वीकृति दे देता। वह कहने लगते—"बचा, यह तो अभी कच्चे हैं। अभी रहने दो।" मैं कहता—"कच्चे ही खा लूँगा।" इसपर वह खूब हँसते हुए किसी विद्यार्थीको आवाज़ लगाते। उससे दोनों चीज़ें तुड़वाकर मुझे दे दी जातीं। फिर शान्त कुटीरकी तरफ़ बढ़ते। रास्तेमें एक-आध फूल भी मिलता। वहाँ पहुँचकर कुछ मिठाई मिलती। फिर मेरी वापसी होती। ओह! वह दिन भी क्या थे! जीमें आता है कि वह बचपन फिर आये और उन्हीं महानुभावोंकी छत्रछायामें मैं आनन्दसे विचरता फिरूँ। मगर—

"ख्वाब था, जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था।"

स्वामीजीकी वेश-भूषा इस प्रकार थी। जिस धोतीको वे पहनते, आधी उसमें से ऊपर डाले रहते। क़दके लम्बे, चेहरा भारी, किन्तु कुछ गोलाई लिये हुए, आँखें बड़ी-बड़ी, मुँहपर कहीं कहीं चेचकके दाग़ थे। मधुरभाषी, सरल प्रकृति, आडम्बर-रहित—गरज़े कि जिन बातोंका सम्मिश्रण एक असाधारण पुरुषमें पाया जाता है, सब मौजूद थीं। यह देखकर दुःख और आश्चर्य होता है कि जहाँ हिन्दीके प्रतिष्ठित पत्रोंमें साधारण लेखकोंके विषयमें भी लेख निकल जाते हैं, वहाँ इन असाधारण विद्वान पुरुषकी सर्वथा उपेक्षा ही की गई है।

जिस भाषामें भारतीय संस्कृतिका भंडार सुरक्षित है, उस भाषाके आचार्यों तथा प्रचारकोंकी यह उपेक्षा देखकर किस सहृदय मनुष्यको दुःख न होगा।*

---

* हमें यह सुनकर सन्तोष हुआ कि स्वामी शुद्धबोधतीर्थका एक विस्तृत जीवन-चरित लिखा जा रहा है। उनके शिष्यों, मित्रों तथा परिचितोंसे निवेदन है कि वे अपने लेख तथा संस्मरण श्री हरिदत्त शर्मा पंचतीर्थ, महाविद्यालय ज्वालापुरके पतेपर भेज दें।

—सम्पादक

दीपक

श्रीयुत "हितैषी"

पथदर्शक मैं उसका ही बना मुझको जो सँभालनेवाला हुआ ;
जिसने भी हितैषी जलाया मुझे उसका उर-दाहक छाला हुआ।
निरवापित जो करनेको बढ़ा तो वही मुख धूम्रसे काला हुआ ;
जिसने भी सनेहसे पाला मुझे उसके घरका मैं उजाला हुआ। १

(पथ-जिज्ञासुसे)

स्वयमेव प्रकाशक होके न जाना कि आना हुआ किमि मेरा यहाँ ?
कब जाना पड़ेगा ? हितैषी कहाँ ? कितने क्षणोंका है बसेरा यहाँ ?
किये ज्योति असीमको सीमित, बद्ध, है मृत्तिकाका यक घेरा यहाँ ;
पथ तेरा दिखा सकूँ क्या भला मैं ? निज पाँव-तले है अँधेरा यहाँ। २

रुपयेकी आज़ादी—और क्यों ?

श्री पारसनाथ सिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्रजीने 'विशाल भारत'में "रुपयेके विनिमय-मूल्यमें ह्रास" शीर्षक लेख द्वारा इस विषयपर काफ़ी प्रकाश डाला है। साथ ही उन्होंने प्रश्नोंके रूपमें कुछ आशंकाएँ भी प्रकट की हैं, और कहा है कि इनका निराकरण हो जाना चाहिए। मैं भी ह्रासका पक्षपाती हूँ, इसलिए बम्बई या वहाँकी करन्सी-लीगसे कोई सम्बन्ध न रखते हुए भी इस विषयमें कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

(१) क्या विनिमय-नीतिमें परिवर्तन होनेसे ही हमारी सारी शिकायतें दूर हो जायँगी ?

हर्गिज़ नहीं, पर क्या किसीने यह कहा है कि हो जायँगी ? 'सारी शिकायतों'की बात बहुत बड़ी है। मालूम नहीं, उनकी संख्या क्या होगी, उनका कैसी विकट समस्याओंसे सम्बन्ध होगा। मिश्रजीका अभिप्राय आर्थिक क्षेत्रसे है, पर यहाँ भी कोई यह कहनेकी धृष्टता नहीं कर सकता कि सब रोगोंके लिए यही रामबाण है। जो ह्रास चाहते हैं, वे न तो ऐसा दावा करते हैं, न उनकी तनिक भी इच्छा है कि सर्वसाधारणको किसी प्रकारका भ्रम बना रहे। पर अगर एक्सचेंज गिरानेसे रुपयेमें दो आना लाभ भी सम्भव हो, तो हम इस प्रयोगका क्यों विरोध करें ?

(२) रुपयेके विनिमय-मूल्यमें ह्रास होते ही कृषिजात पण्य वस्तुओंकी माँग बढ़ जायगी ?

थोड़ी देरके लिए मान लीजिए कि माँग ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी, अर्थात्—अगर कोई देश हमसे १०० पौंड (स्टर्लिंग) का चावल लेता है, तो वह १२५ पौंडका न लेकर १०० पौंडका ही लेता रहेगा। तो भी इस नई परिस्थितिमें हमारा लाभ है। देखिये, पहले हमें १०० पौंड (स्टर्लिंग) के प्राय: १३३३।-)। मिलते थे (एक्सचेंज १) = १८ पेंस)। अब अगर एक्सचेंज गिरकर १६ पेंस हो गया है, तो हमें या हमारे किसानोंको १०० पौंडके प्राय: १५००) मिलते हैं। जो लोग इस बातपर सहमत हैं कि यहाँ चीज़ोंका दाम आजकी अपेक्षा कहीं ऊँचा होना चाहिए, उन्हें तो इस हालतमें भी नीचे एक्सचेंजका समर्थन ही करना चाहिए।

सम्भव है, वह देश जहाँ कल १०० पौंडका माल लेता था, वहाँ आज ८० पौंडका ही ले सके।

ह्रासके विरोधियोंको यह कहनेका ज़रूर मौक़ा मिल जायगा कि एक्सचेंज नीचा होते हुए भी एक्सपोर्ट या रफ़्तनी गिर गई, पर यह कोई माक़ूल दलील न होगी।

अगर उस देशकी आज उतनी क्रयशक्ति नहीं रही, जितनी कल थी, तो इसमें हमारे सस्ते रुपयेका क्या क़सूर ? वह तो आज भी हमारी भलाई ही कर रहा है। अगर एक्सचेंज १८ पेंस होता, तो ८० पौंड (स्टर्लिंग) के प्राय: १०६६॥=) होते। आज जब एक्सचेंज १६ पेंस है, तब ८० पौंडके १२००) होते हैं।

पर लाभ यहीं तक परिमित नहीं रहता। एक्सचेंजके हिसाबसे पण्य वस्तुओंके मूल्यमें जो वृद्धि होती है, उसका लाभ उन लोगोंको भी मिलता है, जो बाहर भेजनेके लिए नहीं, बल्कि यहीं सर्फ़ा करनेके लिए चीज़ें तैयार करते हैं। हमारा कपास और पाटकी खपत विदेशोंमें ही नहीं, इस देशमें भी होती है। जब दाम घटते-बढ़ते हैं, तब बाहर जानेवाली और यहाँ रहनेवाली दोनों ही चीज़ोंके। इसलिए इस सवालको सिर्फ़ एक्सपोर्टकी ही नज़रसे देखना मुनासिब नहीं।

(३) कुछ लोग कहते हैं कि सोनेके मुक़ाबलेमें हमारा रुपया गिरा दिया गया। फिर भी यहाँ दामोंमें तेज़ी नहीं आई। इस बातकी क्या गारन्टी है कि एक्सचेंज गिरानेसे दाम बढ़ेंगे ही ?

एक्सचेंज गिरानेसे तेज़ी नहीं आती, तो इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि इसका कोई असर नहीं पड़ता।

कहा जाता है कि इंग्लैण्डने गोल्ड स्टैन्डर्ड तो छोड़ दिया और अपना एक्सचेंज भी काफ़ी नीचा कर लिया, पर अपने दामोंको कुछ ज्यादा न उठा सका। कहनेका उद्देश यह कि भारतवर्ष भी सम्भवत: अपने प्रयत्नमें इसी प्रकार असफल होगा।

अगर स्टर्लिंगको इस विषयमें विशेष सफलता नहीं हुई, तो इसका एक खास कारण यह था कि जिन देशोंमें गोल्ड स्टैन्डर्ड बना रहा, वहाँ दाम गिरते ही गये। जो लोग यह

शिकायत करते हैं कि इंग्लैंडमें दाम ज्यादा न उठ पाये, उन्हें यह जानना चाहिए कि अगर इंग्लैंडमें गोल्ड स्टैन्डर्ड बना रहता, तो वहाँ भी दाम उसी प्रकार नीचे गिरे बिना न रहते। वहाँ कम-से-कम इतना तो हुआ कि दाम गिरनेके बजाय कुछ ऊपर ही टिके रहे।

सितम्बर १९३१ में हमने सोनेके स्टैन्डर्डको सलाम किया। उस समय यहाँके मूल्योंका मान ९१ था (जुलाई १९१४ के दाम =१००); गत जून मासमें यह संख्या ८९ थी—जिससे कहा जा सकता है कि दामोंमें कोई ऐसा फ़र्क नहीं पड़ा। फ्रान्समें आज भी गोल्ड स्टैन्डर्ड है। वहाँ सितम्बर १९३१ में मूल्योंका मान ४७३ था (१९१३ के दाम =१००); पर गत जूनमें यह संख्या घटकर ४०३ हो गई थी। इससे इतना तो स्पष्ट है कि 'गोल्ड स्टैन्डर्ड' देशोंपर जैसी बुरी बीती है, वैसी हमपर नहीं। अगर हम आज वहीं बने रहते, जहाँ १९३० या १९३१ में थे, तो हमें भी सोनेकी उसी चक्कीमें पिसना पड़ता—अर्थात् हमारे दाम आज और भी नीचे होते।

पर जो देश गोल्ड स्टैन्डर्डको छोड़ चुके हैं, उनमें से कितने ही अपने एक्सचेंजको हमारी अपेक्षा बहुत नीचे गिरा चुके हैं, और जब ऐसे देश हमारे मालके खरीदार हों, तब हमारे दामोंमें जितनी तेज़ी आनी चाहिए, उतनी कब आ सकती है?

एक बिलकुल काल्पनिक उदाहरण लीजिए—

ईरानका १ रुपया तुर्किस्तानके ४ रुपयेके बराबर होता है।

तुर्किस्तान ईरानकी किसी खास चीज़का गाहक है, जिसका दाम ईरानमें १) रु० पड़ता है, अर्थात् तुर्किस्तानमें लगभग ४) रु०।

ईरान अपने रुपयेके विनिमय-मूल्यमें ह्रास करके यह परिस्थिति कर देता है कि २ ईरानी रुपये=४ तुर्किस्तानी रुपये।

उस हालतमें अगर तुर्किस्तानमें दाम ज्योंका त्यों बना रहा, तो ईरानमें वह चीज़ २) रुपयेको बिकेगी, क्योंकि वह चीज़ =४ तुर्किस्तानी रुपये=२ ईरानी रुपये (नये एक्सचेंजके अनुसार)।

सम्भव है, कुछ काल तक ईरानमें दाम २) से नीचे बना रहे, पर ऐसी बारीकियोंमें जानेकी यहाँ ज़रूरत नहीं। ईरानमें दाम दूना हो गया, पर सम्भव था कि न होता।

मान लीजिए कि तुर्किस्तानमें उस चीज़की माँग बहुत कम हो गई, और उसका दाम ४) के बजाय २) हो गया। इस हालतमें ईरानमें दाम वही १) रहेगा। अर्थात्—वह चीज़ =२ तुर्किस्तानी रुपये =१ ईरानी रुपया। कहा जा सकता है कि ईरान एक्सचेंज गिरा देनेपर भी अपना दाम न उठा सका; पर क्या सचमुच नीचे एक्सचेंजसे उसका फ़ायदा न हुआ?

अगर आज एक्सचेंज ज्यों-का-त्यों बना रहता—अर्थात् ४ तुर्किस्तानी रुपये =१ ईरानी रुपया—तो स्पष्ट है कि तुर्किस्तानमें २) की बिकनेवाली चीज़का दाम ईरानमें ॥) होता।

मान लीजिए कि ईरानके एक्सचेंज गिरानेके बाद तुर्किस्तानने अपना एक्सचेंज काफ़ी नीचे गिरा दिया। अर्थात् जहाँ ४ तुर्किस्तानी रुपयेके २ ईरानी रुपये होते थे, वहाँ अब १२ तुर्किस्तानी रुपयेके २ ईरानी रुपये होने लगे।

इस हालतमें अगर उस चीज़का दाम तुर्किस्तानमें ६) भी हो जाय, तो ईरानमें वह १) को ही बिकेगी; क्योंकि नये एक्सचेंजके अनुसार ६ तुर्किस्तानी रुपये =१ ईरानी रुपया। यहाँ भी यह याद रखनेकी बात है कि अगर ईरानने बीचमें अपना एक्सचेंज न गिराया होता, तो आज १ ईरानी रुपयेके १२ तुर्किस्तानी रुपये होते, और जिस चीज़का दाम तुर्किस्तानमें ६) होता, उसका दाम ईरानमें ॥) होता।

अगर हम आज सोनेसे बँधे रहते, तो हमारी हालत और भी खराब होती। यह सच है कि उससे मुक्त होकर हम विशेष लाभान्वित न हो सके, पर इसका कारण जानना हो, तो अन्य देशोंकी रीति-नीतिकी पर्यालोचना कीजिए। जिस हद तक हम सोनेसे दूर हैं, उस हद तक हमारी मुद्रानीति हमारी रक्षा ही कर रही है। यही बात आगे भी समझनी चाहिए। अगर हमने रुपयेके विनिमय-मूल्यमें सैकड़े १० या १५ की कमी कर दी, तो इसीसे हमने कोई अमोघ कवच धारण कर लिया, यह बात नहीं। इस समय मुद्रानीति-सम्बन्धी संग्राम (currency warfare) की तैयारियाँ हो रही हैं। एक देश दूसरेसे अपने रुपयेकी क़ीमत गिरानेमें बाज़ी मार ले जाना चाहता है। अब जिन देशोंने हमसे ज्यादा क़ीमत गिरा रखी है, या जो आगे गिरानेवाले हैं, उनके हाथ माल बेचनेपर

हमें ज्यादा पैसे नहीं मिलते, तो इसमें—मैं फिर पूछता हूँ—हमारे रुपयेका क्या दोष ? वह तो आपकी उतनी ही सहायता कर सकता है, जितनी उसकी शक्ति है।

"मेम्बरीका जंग हो, इसमें गऊका क्या क़सूर ?
मुल्कमें बदनाम नाहक़ वह बेचारी हो गई।"

आजकलके आर्थिक संघर्ष या संग्राममें रुपयेके विषयमें भी कुछ ऐसी ही बात कही जा सकती है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे लोग उसे नाहक बदनाम कर रहे हैं।

सारी परिस्थितिको देखते हुए इस समय आवश्यकता इस बातकी है कि वह स्वतन्त्र कर दिया जाय। सोनेकी बेड़ीसे छुटकारा पाकर उसने हमारी यथाशक्ति भलाई की। अब वह स्टर्लिंगकी हथकड़ीसे रिहा हो जाय, तो हमारा और भी उपकार करे।

(४) पाठक पूछ सकते हैं कि वह स्वतन्त्र किसलिए किया जाय ?

उत्तर है—एक निर्दिष्ट उँचाई तक हमारे गिरे हुए दामोंको उठानेके लिए। यह काम वह कर सकता है; पर तब तक नहीं, जब तक स्टर्लिंगसे जकड़बन्द है।

(५) पर दाम उठानेकी आवश्यकता ही क्या ? जहाँ हैं, वहीं क्यों न छोड़ दिये जायँ।

आवश्यकता इसलिए है कि इधर तीन-चार बरसोंमें वे बेहद नीचे गिर गये हैं। जो मन्दी इस समय नज़र आ रही है, उसका आरम्भ सितम्बर १६२६ से मानते हैं। उस समय कलकत्तेके प्रचलित दाम १४३ के लगभग थे, पर जून १६३३ में यह संख्या गिरते-गिरते ८६ तक आ गई थी। (जुलाई १६१४ =१००) अगर दुनियाके लेन-देनके कन्ट्राक्ट या कौल-क़रार न होते तथा इनका आधार रुपया न होता, तो बात दूसरी थी। या तो कोई किसीसे कर्ज़ लेता ही नहीं, या लेता भी तो चावल, दाल, गेहूँ, कपास और पाट जैसी चीज़ोंके रूपमें, या उनको आधार मानकर। आज लाखों-करोड़ोंके रोज़ कन्ट्राक्ट होते हैं। किसीकी मुद्दत कुछ होती है, किसीकी कुछ। इनका आधार प्राय: रुपया ही होता है। कर्ज़दार कर्ज़ लेता है शादी-ब्याहमें खिलाने-पिलानेके सामान ख़रीदनेके लिए, पर वह क़रार यही करता है कि मैं इतने रुपये ले रहा हूँ, इतने दिनों बाद इसे सूद-सहित अदा कर दूँगा। किसानसे लेकर सरकार तक सभी कर्ज़दारोंका यही हाल है कि चाहे जिस कामके लिए कर्ज़ लें, वह उन्हें प्राय: रुपयोंमें ही लेना-देना पड़ता है। इस देशके किसान कर्ज़के बोझसे बेहद दबे हुए हैं। इनमें से अधिकांशने उस समय कर्ज़ लिये थे, जिस समय दामोंकी सतह आजसे कहीं ऊँची थी। सोचा था कि इतने बीघोंकी उपज बेचकर इतना रुपया चुका देंगे। घटा-बढ़ीकी कुछ जोखिम यों तो बराबर रहती है, पर किसीने स्वप्नमें भी ऐसे दुर्दिनकी सम्भावना नहीं देखी थी। आज उन ऋणोंके कारण इनका सर्वनाश-सा हो रहा है। सूदखोरोंके लिए यह समय अवश्य ही बड़े सुखका है! वे कब चाहेंगे कि रुपयेका भीतरी या बाहरी विनिमय-मूल्य कम हो ? उनकी ओरसे संसारमें इस बातके लिए पूरा उद्योग हो रहा है कि जो देश गोल्ड स्टैन्डर्डसे हट चुके हैं, वे फिर उससे सम्बद्ध हो जायँ, एक्सचेंज ऊँचे होते हुए दाम नीचे बने रहें, पैसेके रूपमें उनकी जो पूँजी है, उसकी क्रयशक्ति कम न हो; पर हमें इस प्रश्नको उनकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि उन लाखों-करोड़ों मनुष्योंकी दृष्टिसे देखना चाहिए; जो समाजके सबसे बड़े सेवक और सहायक होते हुए भी—दामोंके भहरा पड़नेके कारण—ऐसे दलदलमें जा फँसे हैं कि अगर उनकी रक्षाका कोई आयोजन नहीं होता, तो वे उससे कभी ज़िन्दा निकलनेके नहीं। रक्षाके दो ही उपाय हैं—या तो दाम बढ़ाये जायँ, या क़ानूनके द्वारा उनके कर्ज़का बोझ हलका कर दिया जाय। बिना किसी प्रकारकी सामाजिक या राजनैतिक क्रान्तिके संसारमें दूसरे उपायका अवलम्बन सहज या सम्भव नहीं दीखता। इसीलिए सबको बार-बार पहले उपायपर ही ज़ोर देना पड़ता है। दाम उठाये जायँ और फिर वहीं टिकाये जायँ, यही हमारा ध्येय होना चाहिए।

(६) दाम कैसे उठाये जा सकते है ?

ऊँचे दामके मानी यही हैं कि माँग ज्यादा है या सप्लाई कम है। उत्पादनको रोककर या उसमें कमीकर दाममें तेज़ी लाना, सामूहिक दृष्टिसे, वांछनीय नहीं कहा जा सकता। माँग बढ़ाकर तेज़ी लाना ही राष्ट्र-नीति होनी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक या अनिवार्य है कि समाजमें चलनेवाले रुपये-पैसेका परिमाण बढ़ाया जाय। पर यह बात तब तक असम्भव-सी है, जब तक सरकार रुपयेको स्टर्लिंगके बन्धनसे मुक्त होने नहीं देती। कारण यह कि उसने एक्सचेंजकी रेट

ठहरा रखी है, जहाँ तक उसकी शक्ति है, वहाँ तक वह उस रेटको नीचे गिरने न देगी। दाम बढ़ानेके लिए करेन्सीका परिमाण बढ़ाना आवश्यक है, और करेन्सीका परिमाण बढ़नेपर--अर्थात् रुपयेकी सस्ती होनेपर—बहुत सम्भव है, यह ऊँची रेट न ठहर सके। मिश्रजीके शब्दोंमें—"एक ओर १८ पेंसकी विनिमय-दरको क़ायम रखना और दूसरी ओर वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि करना—ये दोनों बातें एक साथ हो नहीं सकतीं।" जब तक सरकार रुपयेको स्वतन्त्र होने नहीं देती, तब तक यह आशा दुराशामात्र है कि बिना संसारचक्रके घूमे, हम उस दिशामें थोड़ी दूर भी आगे बढ़ सकते हैं।

मिश्रजीने ओटावा-कानफरेन्सकी रिपोर्टसे एक वाक्य इस आशयका उद्धृत किया है कि 'केवल मुद्रानीतिके सम्बन्धमें कोई कार्रवाई करनेसे ही वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि नहीं हो सकती।' इसपर हमारे भूतपूर्व अर्थसदस्य सर बेज़ल ब्लैकेट (Sir Basil Blackett) की टिप्पणी है कि—

"The statement of the British Government at Ottawa that 'a rise in prices cannot be effected by monetary action alone' is not literally true. It is easy enough to raise prices by monetary action. The moot point is how far it is desirable."

(Planned Money, p. 142)

अर्थात्—"ब्रिटिश सरकारका ओटावामें यह वक्तव्य कि मुद्रानीति-सम्बन्धी कार्रवाईसे ही दाम उठाये नहीं जा सकते, ठीक नहीं कहा जा सकता। ऐसी कार्रवाईसे दाम तो बड़ी आसानीसे उठाये जा सकते हैं। सवाल यही रह जाता है कि यह कहाँ तक वांछनीय है।"

वास्तवमें ओटावा-कानफरेन्सके मतामतको विशेष महत्व देना ठीक नहीं। ब्लैकेट महोदय दूसरी जगह लिखते हैं—

"It is no secret that this Report, though unanimous, conceals considerable divergencies of view, and that there was much disappointment among the delegations of some of the Dominions and of India at the absence of any readiness in the British delegation to enter deeply into fundamental questions of currency and at the unwillingness of the British Goverment to give a strong lead." (p. 128)

अर्थात्—"यह जानी हुई बात है कि इस (ओटावा-कानफरेन्सकी) रिपोर्टमें पूर्ण मतैक्यका दिखावा होते हुए भी असलियत कुछ और थी। रिपोर्टमें आपसके गहरे मतभेदोंपर काफ़ी लीपा-पोती की गई है। कुछ उपनिवेशोंके और भारतवर्षके प्रतिनिधियोंको ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डलका रंग-ढंग देखकर हताश होना पड़ा। न तो ब्रिटिश सरकार दृढ़तापूर्वक नेतृत्व ग्रहण करनेको तैयार थी, न उसके मुद्रानीति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विषयोंकी तहमें जाने दो।"

"At the Ottawa Conference it was the British delegation which was the least willing to take up a forward position."

(P. 130)

अर्थात्—"ओटावा कानफरेन्समें आगे बढ़नेसे जितना इनकार ब्रिटिश प्रतिनिधि-मंडलको था, उतना दूसरोंको नहीं।"

ओटावा-कानफरेन्सके बाद भी ब्रिटिश साम्राज्यकी नीति यही घोषित की गई है कि हम सबके सब दाम उठानेके पक्षमें हैं। पर भारतवर्ष ऐसे अवसरोंपर हस्ताक्षर करनेके लिए ही आमन्त्रित किया जाता है। उसे वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं, जो साम्राज्यके अंगीभूत दूसरे देशोंको है, इसलिए उसे वही कहना और करना पड़ता है, जो उसके मालिकोंको मंजूर है। इंग्लैण्डने अपने स्टर्लिंगके भावको बाँध रखना मुनासिब नहीं समझा, बल्कि उसे गिराते-गिराते १२४ फ्रांकसे ८० फ्रांकके पास पहुँचा दिया। आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्डने भी यही नीति इख़्तियार कर रखी है। पर बेबस भारतवर्षको इतनी स्वतन्त्रता नहीं कि जहाँ खड़ाकर दिया गया, वहाँसे ज़रा भी इधर-उधर हो सके। यहाँ तो यह हाल है कि जो एक्सचेंज लड़ाईसे पहले १६ पेंस था, वह आज १८ पेंस है। और अगर इसमें ज़रा भी कमी करनेका किसीने प्रस्ताव किया, तो सरकार कहने लगी कि यह तो भूकम्प उपस्थित करना चाहता है! बंगालमें शायद कुछ लोग यह समझे बैठे हैं कि अगर रुपया स्वच्छन्द कर दिया गया, तो प्रलय होते देर न लगेगी---अर्थात् बम्बईके मगरमच्छ कलकत्तेकी हिलसा और झींगा मछलियोंको बातकी बातमें निगल जायँगे। वास्तवमें यह सब स्वार्थपरता और एतद्विषयक अज्ञानका फल है।

जो लोग इस आन्दोलनमें इस बातपर ज़ोर देते हैं कि रेट १६ पेंस या १४ पेंस कर दी जाय, वे भूलते हैं। हमें

तो मतलब अपने यहाँके दामोंसे है, फिर हम ऐसी बातोंमें क्यों उलझने जायँ ? अगर हम दाम उठानेके सचमुच इच्छुक हैं, तो हमें पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उन्हें कहाँ तक उठावेंगे, और फिर अपने लक्ष्य-स्थानपर पहुँचनेके लिए अपनी यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिए। सरकारका दिल साफ़ हो, तो वह रुपयेको स्वतन्त्र कर दे, और हम इस बातकी चिन्ता त्याग दें कि वह किधर जाता है। बहुत सम्भव है कि रेट उतना न गिरे, जितना कुछ लोगोंका खयाल है। अमेरिकाकी वर्तमान नीतिसे जिनके स्वार्थको आघात पहुँचता है, वे चाहे जो कहें, पर हमारे लिए वह आदर्श-स्वरूप है। राष्ट्रपति रूज़वेल्टने कुछ समय पहले कहा था कि "मैं अपने यहाँकी चीज़ोंके दाम उठाने चला हूँ। मुझे इस बातकी फ़िक्र नहीं कि डालरकी एक्सचेंज-दर क्या होगी। जो लोग यह कहते हैं कि एक्सचेंज-दर ठहरा कर ही आगे बढ़ना चाहिए, वे गाड़ीमें घोड़ा नहीं, बल्कि घोड़ेमें गाड़ी जोतना चाहते हैं।" एक्सपोर्ट, इम्पोर्ट, एक्सचेंज—इन सब झमेलोंसे बचते हुए हम तो अपनी यह सीधी-सादी माँग पेश करें कि जैसे अमेरिका अपने यहाँके दामोंको सन् १९२६ की सतहपर पहुँचानेके लिए कटिबद्ध है, वैसे ही हमारी सरकारको भी होना चाहिए, और चूँकि रुपयेको एक्सचेंज-बन्धनसे मुक्त किये बिना हम एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते, उसका स्टर्लिंगसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाना चाहिए।

इस सम्बन्ध-विच्छेदसे ही अभीष्ट-सिद्ध हो जायगी, यह कोई नहीं कहता। कठिनाइयाँ कितने ही मिलेंगी और उन्हें एक-एककर हल करना होगा। पर सबसे पहले यह ज़रूरी है कि हमारे मार्गसे एक्सचेंजका प्रतिबन्ध दूर हो जाय।

इसमें डरने या घबरानेकी कोई बात नहीं। देखिये, नईसे पुरानी दुनिया तक प्रायः सभी देश इसी राह जा रहे हैं। जिन इनेगिने देशोंमें गोल्ड स्टैन्डर्ड मौजूद है, उनमें सबसे उल्लेखनीय फ्रान्स है। पर फ्रान्सने जब अपने रुपयेका विनिमय-मूल्य ठहराया, तब उसमें काफ़ी कमी कर। लड़ाईसे पहले एक पौंडके प्रायः २५ फ्रांक (फ्रेंच मुद्रा) होते थे। फ्रांसने दर बाँधी १२४ फ्रांक=१ पौंडके आधारपर। इंग्लैण्डने इधर अपने रुपयेका मूल्य गिरा दिया, तो भी आज ८३ फ्रांककी समता १ पौंडसे होती है। भारतवर्ष इस विषयमें अद्वितीय-सा है। वह लड़ाईसे पहले जहाँ था, वहाँसे दो क़दम आगे ही बढ़ गया और १६ पेंससे जाकर १८ पेंसपर ठहरा! क्या बाक़ी संसार ग़लत रास्तेपर है, और यही एक देश है, जिसने इन बातोंका सच्चा भेद पा लिया है? औरोंकी रीति-नीति देखकर भी तो हमारी आँखें खुलनी चाहिए!

सारनाथके खँडहरोंसे

श्रीयुत 'सुरेन्द्र'

सुख स्वप्न हुए, भूलीं वैभवकी बातें,
भूले सोनेके दिन, चाँदीकी रातें;
तुम थे अशोकके पाले शोक सने हो—
हैं याद तुम्हें बस काल-चक्रकी घातें।

बोलो, बोलो ऐ उजड़े विद्या-मन्दिर,
क्या कहते हो यह जग है मिथ्या, अस्थिर?
जिसको न बुद्धकी दया, युद्ध माधवका—
कर सका सुखी वह क्या हो सकता स्थिर?

ऐ बीते वैभवकी समाधि, दिल खोलो,
भगवान तथागतकी भाषामें बोलो;
हम लुटे हुए, हम पिसे हुए दीवानों—
को मत अशोकके साथ तुलामें तोलो।

आँखोंमें जल अन्तरमें आग सँजोकर,
हैं बैठे उठकर बहुत दिनोंपर सोकर;
तुम नहीं बताते, पर दिलका दुख तेरे—
पढ़ लेंगे तेरा हृदय चीर, रो-रोकर।

ऐ ढेर कंकड़ोंके, विनाशकी रेखा,
कण-कणमें अंकित है अभाग्यका लेखा;
क्या तुमको, हमको लख यह जग अज्ञानी—
कह सकता है हमने भी है सुख देखा?

पद-चिह्न पूर्वजोंके, पथ आज दिखा दो,
जीवनपर मर-मिटनेकी सीख सिखा दो;
ऐ ध्वंस, भग्न दीवारो, सुन लो, सुन लो—
अब 'मूलगन्ध' बन नवल प्रभाती गा दो।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या*

श्री सुन्दरलालजी

हिन्दू-मुस्लिम समस्या इस समय हमारे देशकी सबसे अधिक कष्टकर समस्या है। इस समस्याकी जड़में अधिकतर हमारा अज्ञान और कई तरहकी भ्रान्तियाँ हैं, जो विशेषकर भारतके मुस्लिम शासनकालके इतिहासके सम्बन्धमें हमारे दिलोंमें उत्पन्न हो गई हैं और उत्पन्न कराई गई हैं। सर यदुनाथ सरकारने अपने उस लेखमें, जो अगस्त सन् १९३१में 'विशाल भारत'में प्रकाशित हुआ था, इन्हींमें से कुछ मुख्य भ्रान्तियोंको दूर करनेका प्रयत्न किया था।

आचार्य सर यदुनाथ सरकार भारतीय इतिहासके और विशेषकर भारतीय इतिहासके मुस्लिम कालके सबसे अधिक प्रामाणिक विद्वानोंमें गिने जाते हैं। किसी प्रकारके राजनैतिक अथवा साम्प्रदायिक पक्षपातका सन्देह भी इस विषयमें उनपर नहीं किया जा सकता। मुझे विश्वास है कि इस प्रकारके एक निष्पक्ष और प्रामाणिक विद्वानका कथन हमारे लिए हितकर सिद्ध होगा और देशकी हिन्दू-मुस्लिम समस्याके हल करनेमें हमें सहायता देगा।

सबसे पहली भ्रान्ति जिसे सर यदुनाथने दूर करनेका प्रयत्न किया है, यह है कि अंगरेज़ोंके आनेसे पहले लगभग ८०० वर्षके मुस्लिम शासनमें अवनति और हानिके अतिरिक्त भारतकी किसी तरहकी उन्नति अथवा उसे किसी तरहका लाभ हुआ ही नहीं। स्कूलों और कालेजोंकी पाठ्य-पुस्तकोंमें भी हमें यही बताया जाता है कि मुसलमानोंका शासन भारतके ऊपर एक दैवी अथवा आकस्मिक आपत्ति थी, जो एक तूफ़ान अथवा भूडोलकी तरह आई और देशके धर्म, उसकी संस्कृति, उसकी सभ्यता और उसकी समृद्धिको हमेशाके लिए एक ज़बरदस्त नुक़सान पहुँचाकर ज्यों-त्योंकर निकल गई। हमें यहाँ तक बताया जाता है कि सात समुद्रपारसे अंगरेज़ोंने आकर मुस्लिम शासनकी घोरतम आपत्तियोंसे हमारी रक्षा की, और सैकड़ों वर्षोंके बाद देशमें नये सिरेसे शान्ति और सुशासन (लॉ ऐंड आर्डर) क़ायम कर हमें उन्नति, अभ्युदय और समृद्धिके मार्गपर लगाया। सर यदुनाथने मुसलमानोंके शासन द्वारा भारतको जो-जो लाभ हुए, उन्हें एक-एककर गिनवाकर इन विचारोंका विद्वत्ता और प्रामाणिकताके साथ खंडन किया है।

इसी तरहकी एक और ऐतिहासिक भ्रन्ति जिसे सर यदुनाथने दूर करनेका प्रयत्न किया है, वह यह है कि मुसलमानोंके आगमनके कारण ही संस्कृत-साहित्यकी उन्नति रुक गई; किन्तु इस पत्रिकासे हमें पता चलता है कि "प्राचीन हिन्दू और बौद्ध साहित्यकी भाषाएँ संस्कृत और पाली" इस्लाम धर्मके भारत आगमन अथवा मुसलमानोंके शासनकालसे बहुत पहले ही लोप हो चुकीं थीं। "संस्कृतमें श्रेष्ठ साहित्यकी रचना" उस समय तक बन्द हो चुकी थी। अन्तमें मुग़ल-राज्यकी "शान्ति और सुशासन"के परिणाम-स्वरूप सम्राट अकबरके राज्यकालसे धीरे-धीरे प्रान्तोंकी अलग-अलग भाषाओंमें वास्तविक साहित्यकी रचना शुरू हुई।

वास्तवमें बौद्धमतने पालीमें अपने धर्म-ग्रन्थोंकी रचना करके संस्कृतके महत्वको पहले ही ख़त्म कर दिया था। अशोकके बाद एकछत्र राज्यके देर तक क़ायम न रह सकनेके कारण पाली भी अपने महत्वको बनाये न रख सकी, और शेष प्रान्तीय भाषाओंकी वास्तविक उन्नतिके लिए उस दीर्घकालीन शान्तिकी आवश्यकता थी, जो फिर सोलहवीं शताब्दीसे पूर्व भारतको नसीब न हो सकी।

इन दो मुख्य ऐतिहासिक भ्रान्तियोंके अतिरिक्त एक और ऐसी भ्रान्ति है, जिसका हिन्दू-मुस्लिम समस्याके

* यह लेख सर यदुनाथ सरकारके अगस्त सन् १९३१ के 'विशाल भारत' में प्रकाशित लेखकी आलोचना है। —सम्पादक

साथ उतना ही गहरा सम्बन्ध है, जितना पूर्वोक्त दोनों भ्रान्तियोंका ; किन्तु सर यदुनाथके लेखसे शायद इतनी अच्छी तरह दूर नहीं होती। इसी तरहकी दो और भ्रान्तियाँ हैं, जो सर यदुनाथके भाषणसे हल होनेके स्थानपर और अधिक जटिल हो जाती हैं। लेखके विषयके साथ इन तीनों भ्रान्तियोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण इनपर थोड़ा-बहुत विचार करना आवश्यक है।

इनमें पहली भ्रान्ति जो सर यदुनाथके निबन्ध द्वारा पूरी तरह दूर नहीं होती, वह यह है कि भारतका मुस्लिम शासन विदेशी शासन था और भारतकी मुस्लिम जाति शेष भारतवासियोंसे भिन्न एक कम या अधिक परदेशीय जाति है।

संसारके एक भागसे लोगोंके दूसरे भागोंमें जाकर बसनेकी प्रथा एक प्राचीनतम प्रथा है। आर्योंसे पहलेके भारतके आदिमवासियोंके अब केवल अवशेष बाक़ी रह गये हैं, और यदि बाहरके किसी देशसे चलकर आना ही विदेशी होनेका प्रमाण हो, तो हममें से किसीको भी भारतमें रहने अथवा अपनेको भारतीय कहनेका अधिकार नहीं दिया जा सकता। किसी देशमें बसकर वहाँके 'देशीय' बन जानेके अधिकारके लिए कोई समय-विशेष भी नियत नहीं किया जा सकता। इसलिए जो अरब, मुग़ल अथवा पठान सदाके लिए भारतमें आकर बस गये थे, जिन्होंने भारत ही को अपनी मातृभूमि बना लिया था, जो दिल्लीके सिंहासनपर बैठकर भारतसे बाहरके प्रदेशोंको विजयकर उन्हें अपने भारतीय साम्राज्यका अंग बना लेना अपने लिए अभिमानकी चीज़ समझते थे, जो भारतसे धन चूसकर किसी दूसरे देशमें ले जाना और उस धन द्वारा उस दूसरे देशको धनाढ्य बनाना अपने जीवनका उद्देश्य नहीं समझते थे, जिन्हें भारतकी समृद्धिमें अपनी समृद्धि और भारतके उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें अपनी उन्नति दिखाई देती थी, क्रियात्मक दृष्टिसे जिनके शासनकालमें, सर यदुनाथके अनुसार, भारतके कला-कौशल, उद्योग-धन्धों और सुख-समृद्धिने अदृष्टपूर्व उन्नति की, जिनकी भारत ही में भारतीय स्त्रियोंसे शादियाँ होती थीं, भारत ही में जिनके बच्चे पैदा होते थे और यहाँ ही जिनके मुर्दे दफ़न होते थे, उन्हें अपनेको भारतीय कहने और भारतीय समझे जानेका उतना ही अधिकार है, जितना हममें से किसीको भी हो सकता है।

किन्तु सर यदुनाथके निबन्धसे एक और बात स्पष्ट हो जाती है। वह कहते हैं कि भारतीय मुसलमानोंमें दस हज़ार पीछे एकसे अधिक अरबी जाननेवाले और दस हज़ार पीछे पाँचसे अधिक फ़ारसी जाननेवाले न थे। यदि दस हज़ार पीछे चार और भी गिन लिये जायँ, तो यह स्पष्ट है कि समस्त भारतीय मुसलमानोंमें बाहरसे आनेवालोंकी संख्या हज़ार पीछे एकसे अधिक नहीं हो सकती। शेष कम-से-कम ९९९ शुद्ध भारतवासी थे, और हैं, जिन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। जो हज़ार पीछे एक बाहरसे आये, उनमें से भी कम-से-कम ८० फ़ी-सदीने यहीं आकर शादियाँ कीं, और शेष २० फ़ी-सदी भी दो-एक पीढ़ीके अन्दर ही उन्हीं ९९९ के साथ विवाह-सम्बन्ध इत्यादि द्वारा मिल-जुलकर सर्वथा एक हो गयें। ऐसी अवस्थामें न भारतके अन्दर मुसलमानोंके शासनकालको और विशेषकर जगत्विख्यात मुग़लोंके शासनकालको विदेशी शासनका समय कहा जा सकता है, और न भारतीय मुसलमानोंको किसी अर्थमें भी एक विदेशी जाति समझा जा सकता है।

धर्मके विदेशी होनेके कारण भी किसी देशके किसी जनसमुदायको विदेशी समझना एक ज़बरदस्त अन्याय होगा। चीन और जापानके वे करोड़ों बौद्ध धर्मावलम्बी, जिन्होंने एक भारतीय धर्मको स्वीकार किया और जिनके मुख्य पवित्र स्थान गया और तक्षशिला, भारतीय मुसलमानोंके पवित्र स्थानों मक्का और मदीनाके समान, अपने देशसे बाहर हैं, कभी भी अपने देशके

अन्दर न विदेशी समझे गये और न समझे जा सकते हैं।

उन शेष दोनों भ्रान्तियोंमें से, जो सर यदुनाथके भाषण द्वारा और अधिक जटिल हो जाती हैं, पहली यह है कि वे अन्य विदेशी और विधर्मी जातियाँ, जो मुसलमानोंसे पूर्व भारतमें आकर बसीं, जिस प्रकार मिल-जुलकर भारतके सामाजिक जीवनमें एक हो गईं, उस प्रकार मुसलमान नहीं हो पाये। 'मुसलमान युगका दान' इस शीर्षकके साथ मुसलमान शासनकालके भारतको दस लाभ गिनवानेसे पूर्व 'भारतमें मुसलमानोंके वासका विशेषत्व और उसका प्रकृत स्वरूप' शीर्षकके अधीन सर यदुनाथने कहा है—

"मुसलमानोंके पहले और भी कई विदेशी और विधर्मी जातियाँ भारतमें आकर बस गई थीं—उदाहरणार्थ, ग्रीक, शक, पारसी, मंगोलियन आदि; परन्तु उनके वंश दो-तीन पीढ़ियोंके बाद ही हिन्दू-समाजमें पूरे तौरसे मिल गये, और उन्होंने हिन्दू नाम, हिन्दू भाषा, हिन्दू वेश-भूषा हिन्दू धर्म और हिन्दू भावको ग्रहण कर लिया····किन्तु मुस्लिम विजयके पश्चात् इस प्रकारके मिलन और एकत्रीकरण बन्द हो गये। हिन्दू-धर्म इस्लामको अपनाकर मुसलमान जातिको अपनेमें मिला नहीं सका, उसे भारतवर्षका अंगीभूत नहीं बना सका····अतएव हिन्दू और मुसलमान (बादमें हिन्दू और ईसाई) एक ही देशमें सौ-सौ वर्ष तक वास करते हुए भी सामाजिक जीवनमें एक नहीं हो सके। भारतीय मुसलमानोंका हृदय-द्वार भारतकी ओर तो बन्द रहा और बाहरकी तरफ़ खुला रहा। इस समय तक भी वे प्रार्थनाके समय मक्केकी दिशामें मुख फिरा लेते हैं। उनके विचार, आईन-क़ानून, शासन-पद्धति, साहित्यिक आदर्श आदि भारतके बाहरसे प्राप्त होते हैं। उनकी निजी सभ्यताका स्रोत अरब, सीरिया, फ़ारिस और मिस्र देशमें था, भारतमें नहीं। हिन्दुओंका समस्त दृष्टिकोण, सम्पूर्ण आदर्श और सारे विचारके केन्द्र भारतमें ही आबद्ध हैं। मुसलमानोंकी धार्मिक भाषा, संवत्, साहित्य, शिक्षक, साधु-महात्मा और तीर्थ सारे जगतमें व्याप्त होकर एक बने हुए हैं। और वे भारतके बाहरकी वस्तु हैं।"

और आगे चलकर हिन्दू और मुस्लिम धर्मके एक दूसरेके ऊपर 'प्रभाव' और उनके परस्पर 'आदान-प्रदान' को वर्णन करते हुए सर यदुनाथने कहा है—"····आठ सौ वर्षों तक एक साथ रहते हुए भी एकने दूसरेको सम्पूर्णतः ग्रसित नहीं किया; उसे बिलकुल लुप्त नहीं होने दिया। दोनों ही इस समय तक जीवित हैं; किन्तु उनके स्वरूपमें बहुतसे परिवर्तन हो चुके हैं।"

इस अन्तिम वाक्यके पश्चात सर यदुनाथने 'सुप्रसिद्ध इतिहासकार जनरल कनिंघम' का जो सुन्दर उद्धरण दिया है, वही इस वाक्यकी कठोरताको बहुत दर्जे तक कम कर देता है। तथापि इस सारे विषयपर ज़रा अधिक विचार करनेकी आवश्यकता है।

धर्मकी दृष्टिसे पारसी-धर्म भी 'भारतके बाहरकी वस्तु' है। और पारसी-समाज कभी भी हिन्दू-समाजमें पूरी तरह नहीं मिला! उन्होंने कभी भी हिन्दू नाम, हिन्दू भाषा, हिन्दू वेश-भूषा, हिन्दू धर्म और हिन्दू भावको पूरी तरह ग्रहण नहीं किया[1]। स्वयं हिन्दू-धर्मके मुख्यतम ग्रन्थ ऋगवेदके विषयमें अनेक विद्वानोंका मत है कि उसका बहुत बड़ा भाग भारतसे बाहरका लिखा हुआ है, और जिस भाषामें लिखा है, वह कभी भी भारतवर्षकी बोलचालकी भाषा नहीं रही। इसलिए इस्लामके एक 'बाहरकी वस्तु' होने अथवा प्रार्थनाके समय मुसलमानोंके मक्केकी दिशामें मुँह कर लेनेको अनुचित महत्व देना ठीक नहीं।

एक देशके अन्दर किसी एक धर्मका दूसरे धर्मको "पूरी तरह ग्रसित" न कर सकना भी न इस बातका प्रमाण है कि एकके साथ दूसरेका अस्तित्व असम्भव है,

१ इस सम्बन्धमें सर यदुनाथका पारसी और मुसलमानोंमें भेद करना और विशेषकर पारसी-जातिके विषयमें उनका कथन अत्यन्त आश्चर्यजनक है। —लेखक

और न दोनों धर्मोंके माननेवालोंके एक संयुक्त राष्ट्र बननेमें रुकावट होना चाहिए। उदाहरणके लिए जैनधर्म भारत ही की पैदायश है, और कई हज़ार वर्षका पुराना धर्म है ; किन्तु आज तक भी वैदिक हिन्दू-धर्म उसे न "पूरी तरह ग्रस सका" और न उसे "बिलकुल लुप्त कर सका"। इन दोनों धर्मोंमें कई तरहका परस्पर संघर्ष भी हज़ारों वर्षों तक बराबर जारी रहा। बारहके पारसी-धर्मको भी हिन्दू-धर्म न अभी तक ग्रस सका और न उसका लोप कर सका। अलग-अलग धर्मोंका सर्वथा लोप हो जाना अभी तक राष्ट्रीय अथवा देशीय ऐक्यकी कोई आवश्यक शर्त भी नहीं समझी जाती। रहा सिद्धान्तोंका भेद, सो अनीश्वरवादी जैनमत और ईश्वरवादी वैष्णवमतमें अथवा अहिंसावादी जैनमत और पशुबलिके समर्थक शाक्तमतमें जितना अन्तर है, उतना साधारण वैष्णवमत और इस्लाममें नहीं है, और इस्लाम तथा आर्यसमाजमें तो उससे कहीं कम अन्तर है।

मुख्य बात देखनेकी तो यह है कि जिस तरह सर यदुनाथके शब्दोंमें "अकबरके बाद ५० वर्ष तक प्राचीन हिन्दू-चित्रकलाका प्रभाव मुसलमान चित्रकलाको सम्पूर्ण रूपमें परिवर्तित करके उसे एक नया कलेवर प्रदान करता रहा", ठीक उसी तरह 'सामाजिक जीवन'के शेष समस्त अंगों, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, आईन-क़ानून, शासन-पद्धति, भाषा, साहित्य इत्यादिमें सैकड़ों वर्ष साथ-साथ रहनेके कारण भारतके हिन्दू और मुसलमान किस हद तक मिल-जुल गये थे। हालमें अजमेरकी दयानन्द-अर्द्धशताब्दीके अवसरपर अर्द्धशताब्दी-स्मारक-ग्रन्थके लिए प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर भगवानदासने जो निबन्ध भेजा है, उसमें वे लिखते हैं—

"(हिन्दू और मुस्लिम) दोनों संस्कृतियोंका सम्मिश्रण धीरे-धीरे बढ़ा, क्योंकि दोनों धर्मोंके बाहरी कर्मकांड एक दूसरेसे भिन्न थे, यद्यपि उनमें उससे अधिक भिन्नता नहीं थी, जितनी हिन्दू-धर्मके अलग-अलग सम्प्रदायों अथवा इस्लामके अलग-अलग फ़िरक़ोंमें पाई जाती है ; किन्तु यह सम्मिश्रण बराबर स्थिरताके साथ उन्नति करता रहा, क्योंकि दोनों जातियाँ बराबर एक दूसरेके साथ-साथ रहती रहीं और उनके अनेक प्रकारके सामाजिक सम्बन्ध एक दूसरेमें गुथे रहे, और साथ ही इसलिए भी क्योंकि दोनों धर्मोंके अन्तर्गत मूल सिद्धान्त एक ही थे।

"दोनोंने दर्शनमें, विज्ञानमें, वैद्यक, ज्योतिष इत्यादिमें, कला-कौशलमें, जैसे गृह-निर्माणकला, गानविद्या, चित्रकला, ख़ुशख़ती, हस्तलिपियोंको सजाने और सचित्र करनेकी कला, बारीक कपड़ों, दुशालों, कम्बलों, सूती, रेशमी और ऊनी दरियों तथा क़ालीनोंको बुनने, रँगने और उनपर कशीदा निकालनेकी कला ; सोने-चाँदीके तारोंका काम ; जवाहरात, इत्र खींचना इत्यादि और इस तरहके उद्योग, जैसे धातुके काम, बर्तन बनाना, शस्त्र बनाना इत्यादिमें एक दूसरेसे विचारों और व्यवहारोंको ग्रहण किया। दोनोंके रहने, मकान बनाने, वस्त्र पहनने, भोजन करने इत्यादिके ढंग एक दूसरेसे अधिकाधिक मिलते चले गये। दोनों स्वतन्त्रताके साथ एक दूसरेके त्योहारोंमें शरीक होते थे। हिन्दू और मुस्लिम बादशाह कम-से-कम दरबार इत्यादिके मौक़ोंपर एक ही तरहकी पोशाक पहनते थे। भारतके सर्वप्रिय पुष्पों और मिठाइयोंमें से बहुतोंके नाम आज दिन तक फ़ारसी या अरबीमें हैं। हलवा, बर्फ़ी, मुरब्बा, शर्बत, गुलाब, गुलदाउदी, गुलशब्बो, इत्र इत्यादि नाम हिन्दुओंके घर-घरमें प्रचलित हैं। इसी तरह दाल, चपाती, रोटी, पूरी, कचौरी, तरकारी, फल, साग, अचार, पान, बेला, चमेली इत्यादि मुसलमानोंके घर-घरमें बोले जाते हैं। पहननेके कपड़ों, बर्तनों और घर-बारके बर्तनेकी चीज़ोंके जो नाम, हिन्दू और मुसलमान काममें लाते हैं, वे संस्कृत और अरबी-फ़ारसी शब्दोंकी ऐसी खिचड़ी हैं, जिसमें एकको दूसरेसे अलग नहीं कर सकते। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यदि मुसलमान मांसाहारी हैं, तो हिन्दुओंमें भी अधिकांश और एक बहुत बड़ी संख्या

मांसाहारियोंकी है। भेद केवल यह है कि हिन्दू एक पशु-विशेषका मांस इसलिए नहीं खाते, क्योंकि वे समझते हैं कि वह मनुष्य-समाजका इतना उपकारक है कि उसे नहीं मारना चाहिए, और मुसलमान एक दूसरे पशु-विशेषका मांस इसलिए नहीं खाते कि उनकी रायमें इतना गन्दा है कि उसे नहीं खाना चाहिए। दोनोंके धर्म-ग्रन्थोंमें मदिरा इत्यादिके सेवनकी एक समान मनाही है।....गाँवोंमें लाखों मुसलमान चेचककी देवी शीतलाके थानोंपर दूध और अन्य खाद्य-पदार्थ चढ़ाते हैं....बावजूद हिन्दुओंकी छुआछूतके नौमुस्लिमोंने प्रायः अपने पुराने ब्राह्मण पुरोहितोंके साथ सम्बन्ध बनाये रखा है। दोनों धर्मोंके बड़े-बड़े घरानों और राज-दरबारोंमें प्रायः हमेशा दूसरे धर्मके विद्वान पंडित, कवि, वैद्य और ज्योतिषी रहा करते थे। क़ानूनमें भी दोनों एक दूसरेके अधिक निकट आये। दक्षिणके खोजा लोग हिन्दू-धर्मशास्त्र (क़ानून) का अनुसरण करते हैं। अवधके मुसलमान ताल्लुक़ेदार अपने साथी हिन्दू ताल्लुकेदारोंके समान सबसे बड़े बेटेको ही समस्त जायदादका मालिक समझते हैं, यद्यपि यह नियम मुस्लिम फ़िक़ह (क़ानून) के अनुकूल नहीं है। युक्तप्रान्त और पंजाबके मुसलमान अपनी पुत्रियोंको बहुत कम जायदादका हिस्सा देते हैं, यद्यपि फ़िक़हके अनुसार यह आवश्यक है। मुसलमानोंकी अधिकांश संख्या और बहुत बड़ी संख्या हिन्दुओंमें से ही गई थी, जो अपने जीवन-भरकी आदतोंको न सर्वथा छोड़ सकते थे और न एकदम छोड़ सकते थे, इसलिए इस तरहका सम्मिश्रण स्वाभाविक और अनिवार्य था।....जो हिन्दू-औरतें मुसलमान होती थीं और जिनकी मुसलमान घरानोंमें शादियाँ होती थीं, वे अपनी बहुतसी धार्मिक और अर्द्धधार्मिक रीतियों और रिवाज़ोंको क़ायम रखती थीं, और मुसलमानोंके घरेलू जीवनको बहुत-कुछ बदल देती थीं। यदि उन प्रारम्भके दिनोंमें हिन्दू राजाओंके अन्दर इतनी दूरदर्शिता और उदारता होती और यदि वे अपनेसे मित्रता रखनेवाले मुसलमान नवाबों और बादशाहोंको विवाहमें उसी प्रकार लड़कियाँ देते और उनकी लड़कियाँ लेते, जिस प्रकार पौराणिक क्षत्री देवों, दैत्यों, राक्षसों, यक्षों, गन्धर्वों, नागों और अन्य जातियोंकी लड़कियोंके साथ विवाह करते थे, जिस तरह चन्द्रगुप्तने एक यूनानी शहज़ादीके साथ विवाह किया था, तो दोनों संस्कृतियों और दोनों धर्मोंका एक दूसरेमें सम्मिश्रण अब तक कभीका पूरा हो गया होता।

"जो राजनैतिक तथा अन्य सन्धियाँ हिन्दू और मुसलमानोंमें परस्पर होती रहीं, उन सबका इतिहास और सामाजिक व्यवहारमें परस्पर मित्रताके उदाहरण अनेक हिन्दू और मुसलमान शासकोंने जिस प्रकार मृत्यु-पर्यन्त एक दूसरेकी ओर अपनी प्रतिज्ञाओंको वीरताके साथ निबाहा, उन सबका इतिहास, जिस प्रकार रणथम्भोरके राजा हम्मीर और उसके मुसलमान आश्रितने सुलतान अलाउद्दीनके विरुद्ध एक दूसरेका साथ दिया, जिस प्रकार दोनों धर्मोंके अनेक सुधारकोंने दोनों धर्मोंको मिलाकर एक कर देनेका प्रयत्न किया और जिस प्रकार पंडितों तथा मुल्लाओंकी संकीर्णता, राजशासकोंके स्वार्थ और मनुष्य-स्वभावकी आन्तरिक निर्बलताओंने मिलकर उन सुधारकोंके प्रयत्नोंको पूरी तरह सफल होने नहीं दिया—इन सब बातोंका इतिहास एक लम्बी कहानी है, जिसे अनन्त समय तक बयान किया जा सकता है।"

वास्तवमें दोनों धर्मोंका एक दूसरेपर प्रभाव इतना प्रबल पड़ा कि भारतका इस्लाम भी एक अपना ही अलग इस्लाम बन गया, और भारत ही के अन्दर मुसलमानोंके अपने सैकड़ों तीर्थ-स्थान बन गये, जिनकी अभी तक लाखों मुसलमान प्रतिवर्ष ज़ियारत करते हैं। भारतकी वर्तमान सभ्यता अपने समस्त अंगोंमें एक संयुक्त अथवा मिश्रित सभ्यता है, जिसमें हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनोंका अपना-अपना भाग है, और जिसके समस्त निर्माता एक समान भारतीय थे।

यदि हिन्दू-धर्म इस्लामको अपने अन्दर खपा नहीं सका, तो इसका एक कारण सर यदुनाथके शब्दोंमें निस्सन्देह इस्लामका कठोर 'एकेश्वरवाद' भी है।

किन्तु इसका एक दूसरा कारण वे 'अति कठिन बन्धन' भी थे, जिनमें सर यदुनाथके अनुसार ही 'आठवीं शताब्दीमें नव जाग्रत हिन्दू-धर्मने हिन्दू-समाजको जकड़ दिया' था। यद्यपि अनेक हिन्दू अकबर बादशाहको युगत्राता कहकर उसकी पूजा करने लगे थे, तथापि उन्होंने अकबर-जैसे मनुष्यको भी 'हिन्दू' बना लेना अथवा मान लेना असम्भव समझा।

दूसरी भ्रान्ति जो सर यदुनाथके भाषण द्वारा और अधिक पक्की हो जाती है, प्रारम्भके दिनोंके हिन्दू और मुसलमानोंके परस्पर सम्बन्धके विषयमें है। हिन्दू और मुस्लिम धर्मोंके एक दूसरेपर प्रभावको वर्णन करते हुए सर यदुनाथने कहा है कि—"आरम्भमें वे एक दूसरेके पूरे शत्रु थे। एकके साथ दूसरेका अस्तित्व तक असम्भव था, प्रकृतिके नियम विरुद्ध था।"

अरबोंका भारत आना-जाना इस्लामकी पैदायशसे कम-से-कम ५०० वर्ष पूर्वसे बराबर जारी था, और उस समस्त समयमें भारतवासियोंके साथ उनके सम्बन्ध अत्यन्त मित्रताके थे, इसीलिए इस्लाम धर्म भी अपने जन्मके साथ-ही-साथ सातवीं शताब्दीमें ही भारत पहुँच गया था। यदि आठवीं शताब्दीके प्रारम्भमें सिन्धके ऊपर मुहम्मद बिन क़ासिमके हमलेको हम छोड़ दें, जो भारतके ऊपर किसी मुसलमान शासकका पहला हमला था, और जिसका प्रभाव न सिन्धसे बाहर दूर तक फैल सका और न देर तक क़ायम रह सका, तो सातवीं शताब्दीसे लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक, अर्थात् ४०० वर्ष तक, न भारतपर किसी अन्य मुसलमान शासकने हमला किया और न सिन्धके थोड़ेसे भागको छोड़कर भारतका कोई भाग किसी मुसलमान राजसत्ताके अधीन हुआ। किन्तु सातवींसे ग्यारहवीं शताब्दी तक इस्लाम धर्म शान्तिके साथ बिना किसी वैर-भाव अथवा विरोधके और बिना किसी इस्लामी राजसत्ताकी सहायताके लगभग तमाम भारतमें दक्षिणसे उत्तर तक फैल चुका था। 'प्रारम्भ' शब्दसे सर यदुनाथका अभिप्राय यदि किसी समयसे हो सकता है, तो इन्हीं चार शताब्दियोंसे हो सकता है।

इतिहाससे यह भी स्पष्ट है कि इस्लामका प्रचार दक्षिणमें मलाबारके तटसे प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे उत्तरकी ओर फैला, और उन समस्त प्रारम्भिक शताब्दियोंमें इस्लाम और हिन्दू-धर्म पूरे प्रेमके साथ एक दूसरेके साथ रहते रहे। तेरहवीं शताब्दीके अन्त तक मुसलमानोंका कोई आक्रमण महानदी अथवा नर्मदाके दक्षिणके प्रदेशोंपर न हुआ था। किन्तु सातवींसे तेरहवीं शताब्दी तक इस्लाम बराबर शान्तिके साथ इन तमाम प्रदेशोंमें फैलता रहा और राष्ट्रीय जीवनके हर विभागमें हिन्दू और मुसलमान प्रेमके साथ मिल-जुलकर रहते रहे।

उस समयकी स्थितिको वर्णन करते हुए डाक्टर ताराचन्दने लिखा है—

"रोलैंडसन लिखता है कि मुसलमान अरब पहले-पहल सातवीं शताब्दीके अन्तके निकट मलाबार तटपर आकर बसे····उनकी तिजारत और उनकी बस्तियाँ बराबर बढ़ती रहीं····मुसलमानोंका प्रभाव भी तेज़ीके साथ बढ़ता गया। मलाबार तटपर बसे हुए उन्हें सौ वर्षसे ऊपर हो चुके थे····उन्हें आबाद होने, ज़मीनें ख़रीदने और खुले तौरपर अपने धर्मके पालन करनेकी सुविधाएँ दी गईं।····निस्सदेह उनमें से बहुतोंका आदर-मान किया जाता था।····नवीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही वे भारतके समस्त पश्चिमी तटके बराबर-बराबर फैल चुके थे। उनके धार्मिक विश्वास और उनकी पूजा-विधि दोनों विचित्र थीं, और बड़े उत्साहके साथ वे उन विश्वासों और उस पूजा-विधिका समर्थन और प्रचार करते थे, जिसके कारण उन्होंने हिन्दू जनतामें एक खलबली पैदा कर दी थी। दक्षिण-भारतमें उन दिनों विविध धर्मोंके परस्पर संघर्षके कारण पहले ही एक ज़बरदस्त हलचल मची हुई थी। नव जाग्रत हिन्दू-धर्म बौद्ध और जैन धर्मोंपर विजय प्राप्त करनेके लिए ज़ोर लगा रहा था। राजनैतिक दृष्टिसे भी वह समय अव्यवस्था और चढ़ा-ऊपरीका समय था। चेरा राजाओंकी शक्तिका ह्रास हो रहा

था, और नये राजकुलोंकी शक्ति बढ़ रही थी। स्वभावतः लोगोंके दिमाग चक्कर खा रहे थे, और वे हर नये विचारको, चाहे वह कहींसे भी आया हो, ग्रहण करनेके लिए तैयार थे। इस्लामका एक सीधा-सादा कलमा था। उसके उसूल और उसकी क्रियाएँ स्पष्ट और सरल थीं। सामाजिक संगठनके लिए उसके सिद्धान्त ऐसे थे, जिनमें ऊँच-नीच, गरीब-अमीरका भेद न था। इन चीज़ोंको लेकर इस्लाम उनके सामने आया। स्वभावतः उसका प्रभाव बड़ा ज़बरदस्त पड़ा। नवीं शताब्दीके शुरूके २५ वर्ष पूरे होनेसे पहले ही मलाबारके अन्तिम चेरामन पेरूमल राजाने, जिसकी राजधानी कुडेगलूरमें थी, इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।....

"ज़ाहिर है कि उस समय तक मुसलमानोंका महत्त्व बहुत बढ़ गया था। उन्हें 'मपिल्ला'की सम्मान-सूचक उपाधि मिली हुई थी, जिसका अर्थ 'बड़ा बालक' अथवा 'दूल्हा' है।....उन्हें और भी अनेक विशेष अधिकार दिये गये। एक मुसलमान एक नमबोदरी ब्राह्मणके बराबरमें बैठ सकता था, किन्तु एक नैयर नहीं बैठ सकता था। मपिल्लोंका धर्मगुरु, जिसे थंगल कहते थे, ज़मोरिनके बराबर-बराबर पालकीमें चल सकता था।....

"ज़मोरिन मुसलमानोंकी इतनी अधिक क़दर करता था कि....उसने अपनी प्रजाको मुसलमान हो जानेकी साफ़-साफ़ उत्तेजना दी।....उसने यह आज्ञा दे दी कि मेरे राज्यकी मछली पकड़नेवाली जाति (मुक्कुवान)के प्रत्येक घरसे एक या अधिक आदमी अवश्य मुसलमान हो जाय।....

"इन बयानोंसे पूरी तरह साबित है कि भारतके पश्चिमी तटपर मुसलमान बहुत शुरू ही में बस गये थे, और उनकी संख्या, उनका धन और उनकी शक्ति बराबर बढ़ती चली गई।....

"पूर्वीय तटपर उनकी प्रधान बस्ती ताम्रपर्णी नदीके मुखके पास टिन्नेवल्ली ज़िलेमें कयलपट्टनम् नामक स्थानमें थी।....

"मदुरामें मुसलमान सन् १०५० ई० में मलिकुलमुलूकके नेतृत्वमें पहुँचे, जिनके साथ हज़रत अलियारशाह नामके एक बड़े सन्त थे, जिन्हें मृत्युके बाद मदुराकी हुज़ूर कचहरीके पास दफ़न किया गया था।"[१]

जो अवस्था महानदी और नर्मदाके दक्षिणके प्रदेशोंकी थी, लगभग वही शेष समस्त भारतकी थी। भारतके प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें, खम्बात, भड़ौंच, सिन्ध, चौल, कच्छ, काठियावाड़, सुपारा, कन्नौज और बनारस तकमें मुसलमानोंकी राजसत्ताके क़ायम होनेसे सैकड़ों वर्ष पहले इस्लामका ख़ूब प्रचार हो चुका था और बड़ी-बड़ी मुस्लिम बस्तियाँ बसी हुई थीं। हर जगह हिन्दू और मुसलमानोंमें परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त प्रेमके थे, और विशेषकर गुजरातमें वहाँके हिन्दू राजाकी उनपर वैसी ही कृपा थी, जैसी मलाबारमें।

"सुलेमान, मसूदी, इब्न हौकल और अबुज़ैद सब एक रायसे गुजरातके बल्लभी राजा बल्हारकी प्रशंसा करते हैं कि वह मुसलमानोंकी ओर बड़ी मित्रता दर्शाया करता था। सुलेमान लिखता है कि—'राजाओंमें कोई राजा ऐसा नहीं है, जो बल्हारसे ज्यादा अरबोंको पसन्द करता हो और उसकी प्रजा भी उसका अनुकरण करती है।' मसूदीने अपने सहधर्मियोंको हर जगह खुले तौरपर अपने धर्मका पालन करते हुए देखा। गुजरातके राजाके विषयमें वह कहता है कि—'उसके राज्यमें इस्लामकी इज़्ज़त की जाती है और उसकी रक्षा की जाती है। जगह-जगह छोटी बड़ी सुन्दर मस्जिदें हैं, जहाँ मुसलमान अपनी पंजवक्ता नमाज़ अदा करते हैं।' बल्हारके राज्यके नगरोंमें अल-इस्तख़रीको ९५१ ई०में सब जगह मुसलमान मिले, और वह लिखता है—'राजा बल्हारने उन्हें यह अधिकार दे

---

१ 'Influence of Islam on Indian Culture'—by Tarachand, M. A., D. Phil.

रखा है कि वह स्वयं ही अपनी बस्तीके शासनका कार्य चलावें' ।"[२]

ठीक यही हालत सिन्ध, पंजाब, काश्मीर और अफ़ग़ानिस्तानकी थी, जहाँ महमूद ग़ज़नवीके समयसे बहुत पहले हिन्दू राजाओंकी सहायता और प्रेरणासे इस्लाम धर्म बराबर फैलता जा रहा था, और हर जगह हिन्दू और मुसलमान परस्पर प्रेमके साथ रहते थे। जगह-जगह हिन्दू मन्दिर और मुस्लिम मस्जिदें पास-पास मौजूद थीं, और दोनोंमें से किसी धर्मके पालन करनेवालेको भी किसी तरहकी कठिनाई न होती थी।[३]

यह सब वृत्तान्त भारतके लगभग समस्त दूर-दूरके भागों और इस्लामके शुरूकी चार शताब्दियोंसे सम्बन्ध रखता है। इस सबसे साबित है कि कमसे कम प्रारम्भकी शताब्दियोंमें हिन्दू-धर्म और इस्लाम कभी भी कहीं भी एक दूसरेके शत्रु न थे, और न एकके साथ दूसरेका अस्तित्व असम्भव अथवा प्रकृति-विरुद्ध था।

यद्यपि इन दो बातोंके विषयमें या तो सर यदुनाथका अभिप्राय काफ़ी स्पष्ट नहीं है और या उससे मतभेद होना स्वाभाविक है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यह सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण लेख हमारी अनेक अत्यन्त हानिकर भ्रान्तियोंको दूर करेगा, और हिन्दू-मुसलिम समस्याके हल करनेमें पाठकोंको इससे बहुत सहायता मिलेगी। प्रारम्भके दिनोंके विषयमें सर यदुनाथका जो कुछ विचार हो या न हो, समस्त मुसलमान युगके लाभोंको वर्णन करते हुए सर यदुनाथने हमें विस्तारके साथ बतलाया है कि किस प्रकार मुस्लिम शासन-कालमें बाहरकी दुनियाके साथ हमारा सम्बन्ध बढ़ा, हमारी नौशक्तिका संगठन हुआ, हमारे विदेशीय वाणिज्यने उन्नति की, भारतव्यापी शान्ति स्थापित हुई, समस्त देशमें एक ही प्रकारके राष्ट्रीय जीवनका संचार हुआ, हिन्दू और मुसलमानोंमें एक ही तरहका सामाजिक आचार-व्यवहार उत्पन्न हो गया, चित्रकला, गृह-निर्माण-कला और अन्य कितने ही प्रकारके नवीन शिल्पोंमें अपूर्व उन्नति हुई, एक उपयोगी सर्वभारतीय 'हिन्दवी', 'हिन्दोस्तानी' अथवा 'उर्दू' भाषाने जन्म लिया, राज-काज चलानेमें फ़ारसी भाषा तकके उपयोगने भारत-भरमें 'जातीय ऐक्य'को स्थापित करनेमें मदद दी, 'मुसलमान शासनप्रदत्त शान्ति एवं ऐश्वर्यके फलस्वरूप हिन्दी, बंगला, मराठी आदि नई-नई' प्रान्तीय 'भाषाओंमें साहित्य रचना-प्रारम्भ हुई', हिन्दू-समाजमें 'एकेश्वरवादी' सम्प्रदायोंका जन्म हुआ, बाज़ाब्ता इतिहासका लिखा जाना शुरू हुआ और 'युद्धविद्या तथा सभ्यताके समस्त विभागोंमें सर्वांगीण उन्नति' हुई।

मुग़ल-शासनके समस्त इतिहासके साररूप सर यदुनाथ सरकारका कथन है—

"मुग़ल बादशाहोंने देशको शान्ति और सुशासन प्रदान किया। उसके परिणामस्वरूप लोग निश्चिन्त होकर अर्थोपार्जन करने लगे। देश धनधान्यसे पूर्ण होने लगा। लोगोंको चित्तकी शान्ति मिली और दैनिक कार्योंसे अवसर मिला, जिससे साहित्य-सृष्टिकी इच्छा और साहित्यके रसास्वादनकी उत्कंठा जाग उठी।"

आगे चलकर सर यदुनाथका कहना है कि "विशाल मुग़ल-साम्राज्यकी छत्रछायामें" ही "लोग भारतको एक देश और एक जन्मभूमि कहकर मानने लग गये थे।" जिससे "जातीयताकी कल्पना सम्भव हो गई थी।"

मुझे विश्वास है कि सर यदुनाथके इस विद्वत्तापूर्ण निबन्धसे हिन्दी-पाठकोंको बेहद लाभ होगा, मुस्लिम इतिहास-सम्बन्धी उनकी अनेक भ्रान्तियाँ दूर हो जायँगी और यह सुन्दर निबन्ध एक हद तक हिन्दू-मुसलमानोंके हृदयोंको एक दूसरेसे अधिक निकट लानेमें सहायक होगा।

---

२ Ibid.

३ 'अरब और हिन्दके सम्बन्ध'—सुलैमान नदवी। यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि अफ़ग़ानिस्तान उन दिनों भारतवर्षका एक भाग गिना जाता था।

फूलोंका दरबार

श्री वंशीधर विद्यालंकार

[यह कविता भी देहरादूनके चकराता-विभागके देववन नामक स्थानमें 'सिताजके फूलोंमें' ही बैठकर लिखी गई है। इसकी पहली कविता 'विशाल भारत' में प्रकाशित हो चुकी है। समुद्रकी सतहसे देववन ६००० फीटसे कुछ अधिक ऊँचा है। वहाँ फूलोंके खिलनेसे जो सुन्दरता फैल जाती है, उसकी थोड़ीसी झाँकी इस कवितामें दिखाई पड़ सकेगी।
इस कवितामें भी बहुत जगह मात्रान्त तुकका ही प्रयोग किया गया है।]

(१)

वन-फूलोंका दरबार लगा, जैसा न कभी देखा न सुना,
अपना कोई उत्सव करने, परिवार मिला क्या फूलोंका ?
इतने फूलोंका बागोंने, सपनेमें भी न लिया सपना,
हर डाली लेकर फूल खड़ी, इस मेलेमें अपना-अपना।

(२)

इस घाटीके नभमें उतरा, क्या कोई दल है तारोंका—
रँगरलियोंमें जो मस्त हुआ, है आँखमिचौनी खेल रहा।
सिरपर डालीके अटकी हैं, या बूँदें मोटी वर्षाकी,
वनलक्ष्मीकी मुसकाहटसे, मिलकर जो झलकें फूलों-सी।

(३)

पहले न इन्हें जब देखा था, तब तो हमने नहिं देखा था,
जब देख लिया तब भी लगता, जैसे सब हो अनदेखा-सा।
इन आँखोंने आँखें खोले, देखा, देखा, देखा कितना !
जितना देखा लगता उतना, हमसे कुछ भी लखते न बना।

(४)

इन फूलोंकी पंखड़ियोंपर, किरणें जब सूरजकी पड़तीं,
इनकी उजियाली रंगतपर, अपनी हैं रंगतको भरतीं।
अनुपम शोभाकी छा जाती, तब कैसी चारों ओर छटा,
हरियावलपर जगमग चमके, सित फूलोंकी रंगीन घटा।

(५)

तितली लेकर अपनी टोली, क्या मस्त हुई उड़ती फिरतीं,
इस डालीसे उस डालीपर, फूलोंकी हैं गिरतीं पड़तीं।
जब पंख समेटे फूलोंपर, चुपचाप ज़रा जा बैठें ये,
तब लगता है ऐसा मानों, ज्यों फूलोंपर हों फूल उगे।

(६)

मधुकी मक्खी भूलीं फिरतीं, कहतीं जी-भर गा लें गाना,
फिर पीछेसे रस ले लेंगी, जितना चाहेंगी मनमाना।
कुछ जल्दी है क्या ? हमको है, फूलोंको छोड़ कहाँ जाना,
इतने मिल जायें फूल जिन्हें, वे क्यों न फिरें गातीं गाना।

(७)

हँसते मदमाते फूलोंपर, जब धूप चटककर है पड़ती,
इनकी नीचे छाया पड़ती, गहरी काली चमकीली-सी।
तब ऊपर उजले फूल खिलें, औ' नीचे काले फूल खिलें,
हँसते हैं ये खिलखिल इनपर, हँसते हैं खिलखिल उनपर वे।

(८)

उस पतली-सी बटियापर से, जब पथिक चला जाता कोई,
जिसके है दोनों ओर खड़ी, सजकर सेना इन फूलोंकी।
तब हिल-हिलकर स्वागत जैसे, ये फूल किया करते उसका,
शुभ, हर्षभरा, वैसा स्वागत, राजाका भी न हुआ होगा।

(९)

जब मृदुल हवाके झोंकोंसे, सब डाली धरतीपर झुकतीं,
झुक-झुककर हैं सीधी होतीं, फिर सीधी हो-होकर झुकतीं।
बिन धागे फूलोंकी हँसतीं, बनतीं झिल-मिलकर मालायें,
बन-बनकर जो छितरा जायें, छितरा-छितरा फिर बन जायें।

(१०)

इनकी फ़ोटो फ़ोटोवाले, लेते हैं अचरजमें भरकर,
इतने फूलोंका चित्र खिंचे, कैसे इतनेसे कागज़पर।
वह दृश्य नहीं, जिसका कोई भी किसी तरहसे चित्र बने,
अपना जो चित्र स्वयं ही हो, उसका फिर कैसे चित्र बने ?

(११)

इन फूलोंमें कुछ गन्ध नहीं, कुछ जादू-सी मुसकान नहीं
कुछ बाँकेपनकी मटक नहीं, कुछ सादेपनकी शान नहीं।
फिर भी इनके मिल जानेसे, जो अद्भुत दृश्य विशाल बना,
उसकी सारे भूमंडलमें, न बने, न बने, न बने तुलना।

एक उर्दू-कविता

श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

उस दिन जब एक मुसलमान मित्रकी शादीका भोज खानेका निमन्त्रण मिला, तो मैं कम हर्षित नहीं हुआ। एक शादीका भोज—दो हृदयोंके सम्मिलनके उत्साहमें शामिल होनेका शुभ अवसर, सो भी जीभ और पेटके लिए अच्छी व्यवस्थाके साथ! तिसपर एक मुसलमान मित्रका निमन्त्रण! इस युगमें, जब कि कुछ नामधारी नेता इन दोनों क़ौमोंको लड़ाकर घर-फूँक तमाशा देखनेके आयोजनमें लगे हैं, किसी मुसलमान मित्रके द्वारा किसी हिन्दूका निमन्त्रित किया जाना मैं कम खुशनसीबी नहीं समझता। यों तो मैं अपनेको हिन्दू कहनेको भी तैयार नहीं हूँ—ज्यादा-से-ज्यादा 'हिन्दी' हूँ, तो भी जन्मका पुछल्ला तो ज़िन्दगी-भर लगा ही चलेगा। ख़ैर, देशके लिए यह सौभाग्यकी सूचना है कि हर क़ौममें ऐसे नौजवानोंकी संख्या बढ़ती जाती है, जो मज़हबको ताकपर रखकर 'हिन्दी' होनेके नाते परस्पर मित्रता करना, साथ खाना-खिलाना, अपना कर्तव्य समझने लगे हैं। अब इसके बाद परस्पर शादी-ब्याहकी ही बात रह जायगी—उसकी भी शुरूआत हो चुकी है!

मैं अपने सहचर (कॉमरेड) श्री अवधेश्वरप्रसाद सिंहके साथ अपने दोस्तके घर पहुँचा। वहाँ कुछ और 'हिन्दी' मित्रोंको भी देखा। बड़ी खुशी हुई। हँसते-हँसाते कितनी ही रक़ाबियाँ साफ़ कर दी गईं। इसी हँसी-खुशीके बीच मेरे सहचरने अपने दोस्त श्री अमीर रज़ा काज़मीसे परिचय कराया। इनके इस परिचयके कारण यह मौक़ा बहुत दिनों तक याद रहेगा, क्योंकि काज़मी साहबने, जो स्वयं भी अच्छे शायर हैं, अपनी कविताएँ सुनाते-सुनाते अपने अग्रजकी चर्चा छेड़ दी। मुझे श्रृंगारी रचना उतनी पसन्द नहीं। साथ ही मैं 'युवक'-सम्पादक हूँ, यह बात वह तुरत ही ताड़ गये। अपनी कविता बन्दकर उन्होंने अपने अग्रजकी तारीफ़ करते हुए उनकी एक कविताकी कुछ पंक्ति सुनाईं। मैं तो सुनते ही फड़क उठा। पूरी कविता उन्हें याद नहीं थी। अतः वह कृपापूर्वक मेरे आग्रहपर एक दिन मेरे दफ्तरमें कविता-पुस्तकके साथ पधारे, और जो कुछ सुनाया उसने मेरे दिलपर बहुत ही प्रभाव डाला। खासकर मुझे गर्व हुआ कि मेरे प्रान्तमें—प्रान्त ही क्या, मेरे शहरमें एक ऐसा कवि भी है, जो युगधर्मको जानता है, राष्ट्रकी पुकारको समझता है—जिसमें यौवनोचित उमंग है, जिसकी कवितामें युवक भारतकी आकांक्षाओंका प्रतिबिम्ब है, जो मुसलमान होकर भी मेरे ही समान 'हिन्दी' है।

इस कविश्रेष्ठका नाम है श्रीयुत काज़िम अली एम० ए०। उपनाम है जमील मज़हरी। आपकी जिस कविताने मुझे आपका भक्त बना दिया, उसको मैं 'विशाल भारत'के द्वारा हिन्दी-भाषी युवक भारतके सम्मुख रखता हूँ। आज जब कि चारों ओर मायूसीका दौरदौरा है, देशके युवकोंके हृदयोंमें शिथिलता और उत्साहहीनताने घर कर लिया है, वे खड़े होकर एक दूसरेका मुँह ताक रहे हैं, वैसी हालतमें इस युवक कविका—

> "बेरादराने नौजवाँ, बढ़े चलो, बढ़े चलो,
> झुके न हिन्दका निशाँ, बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

का शंखनाद शायद बेवक्तकी सहनाई नहीं समझा जायगा। यों ही, इस मज़हबी खुराफातोंके ज़मानेमें—

> "जो मज़हब आके रोक दे, तो उसकी क़ैद तोड़ दो।"

का पैग़ाम भी असामयिक नहीं समझा जायगा। 'विशाल भारत' के मुसलमान पाठकोंके लिए ये पंक्तियाँ—

> "नज़र फिरा लो तूरसे,
> बुला रही हैं दूरसे—
> हिमालयाकी चोटियाँ।"

भी देशभक्तिकी दीप-शिखाका काम देंगी। साथ ही जो मज़हब-परस्त हिन्दू ऐसा मान लेते हैं कि हर मुसलमान पहले मज़हबी आदमी है, उनके लिए भी यह चेतावनीका काम करेंगी। ज्यादा न लिखकर मैं उस पूरी कविताको ही उद्धृत कर देता हूँ। युवक पाठक पढ़ें और झूमें! यह 'मार्चिंग सौंग'—पथ-गीत—है, अतः इसका पूरा मज़ा तो तब मिले, जब नवयुवकोंकी एक पूरी टोली, सैनिक कवायद करते हुए, आगे बढ़ती और गाती चले—

"बेरादराने नौजवाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ[1],
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

है तुमसे गरमिये अमल[2],
अमलके राज़दाँ[3] हो तुम,
सदाये[4] दर्द-दिल हूँ मैं,
दराये कारवाँ[5] हो तुम,
जहाने पीरके लिए,
शबाबे जावदाँ[6] हो तुम,
जवाँ है तुमसे क़ौमियत,
जवाँ है दिल, जवाँ हो तुम।
तुम्हारे हौसले जवाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
बेरादराने नौजवाँ०

चमनमें सब्ज़ा जाग उठा,
हरेक ज़र्रा जाग उठा,
रवाँ है जूये[7] आब भी,
है मौज-ज़न[8] सोराब[9] भी,
हरेक शै जहानकी,
ज़मीं की आस्मान की,
हैं सइये नातमाम[10] में,
है गर्दिशे मुदाम[11] में
हमेशा दौरे आस्माँ
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
बेरादराने नौजवाँ०

ज़माना अब बदल गया,
वह सेह था जो चल गया,
बहार भी निकल गई,
चमनकी रुत बदल गई,
जहाने इज़तराब[12] में,
मकाने इनक़लाब[13] में,
निजात[14] जुज़[15] अमल नहीं,
क़रार[16] का महल नहीं,
मिसाले गर्दे कारवाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
बेरादराने नौजवाँ०

जो अक़्ल राह रोक दे,
तो दामन उसका छोड़ दो,
जो मज़हब आके टोक दे,
तो उसकी क़ैद तोड़ दो,
जनाबे खिज़्र[17] पीर हैं,
लकीरके फक़ीर हैं,
शहीदे अक़्लो-होश हैं,
बड़े सुख़न-फ़रोश[18] हैं,

---

१ निशाँ=झंडा, पताका। २ गरमिये अमल=कामकी धुन। ३ राज़दाँ=रहस्य जाननेवाला। ४ सदा=आवाज। ५ दराये कारवाँ=कारवानके अगले ऊँटके गलेकी घंटीकी आवाज। ६ शबाबे जावदाँ=शाश्वत यौवन। ७ जूये आब=झरना। ८ मौज-ज़न=तरंगोंसे आन्दोलित। ९ सोराब=मृग-मरीचिका।

१० सइये नातमाम=अनन्त उद्योग। ११ मुदाम=हमेशा। १२ इज़तराब=आन्दोलन। १३ इनक़लाब=क्रान्ति, परिवर्तन। १४ निजात=मुक्ति। १५ जुज़=सिवा, अतिरिक्त। १६ करार=ठहरना। १७ खिज़्र=बुढ़ापेके देवता। १८ सुख़न फ़रोश=बातूनी।

सुनो न इनकी दास्ताँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ।
बेरादराने नौजवाँ०

न ग़र्क़ हो ख़यालमें,
न महूव[१९] हो जमालमें,
सोराबे रंगो-बू है यह,
तिलिस्मे आरज़ू है यह,
जवाँ हो, दर्से जंग[२०] लो,
सलामे मौजे गंग लो
नज़र फिरा लो तूर[२१] से
बुला रही हैं दूरसे,
हिमालियाकी चोटियाँ—
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ।
बेरादराने नौजवाँ०

खिला है गुल्शने वतन,
लहूसे सुर्ख़ हैं कफ़न,
ज़मीन लालाज़ार है,
यह मुज़दये[२२] बहार है,
खड़े हैं दार[२३] राहमें,
बिछे हैं ख़ार राहमें,
रुके न पाये जुस्तजू[२४],
बुझे न शमये आरज़ू
कि चल रही हैं आँधियाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ।
बेरादराने नौजवाँ०

अगर अँधेरी रात है,
तो हो, ख़ुदाकी ज़ात है,
ज़या[२५] हैं दिलके दाग़की,
बढ़ा दो लौ चराग़की,
घटायें घिरके आई हैं,
जवाल बनके छाई हैं,
व मुज़महिल[२६] हो तुम अगर,
सितारे छुप गये अगर,
चमक रही हैं बिजलियाँ
बढ़े चलो, बढ़े चलो ;
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो ।
बेरादराने नौजवाँ०

नहीं महल्ले[२७] गुफ्तगू,
बढ़ाओ पाये जुस्तजू,
जो राहवर[२८] ठहर गये,
जो हमसफ़र[२९] बिछुड़ गये,
तो छेड़ो नालये जरस[३०],
न देखो मुड़के पेशोपश,
सुनो 'जमील' की फुग़ाँ[३१]
बढ़े चलो, बढ़े चलो,
झुके न हिन्दका निशाँ,
बढ़े चलो, बढ़े चलो,
बेरादराने नौजवाँ०"

आह ! अन्तिम पंक्तियाँ कितनी प्रोत्साहक हैं—यद्यपि आजसे चार-पाँच वर्ष पहले यह कविता लिखी गई थी, तो भी मालूम होता है, आज ही के हालत देखकर बनाई गई हो—

"जो राहवर ठहर गये,
जो हमसफ़र बिछुड़ गये,"

यही तो आजकी स्थिति है ! कितने नेता बगलें

१९ महूव=ग़र्क़, लीन । २० दर्सेजंग=युद्धका पाठ । २१ तूर=अरबका एक पवित्र पहाड़ । २२ मुज़दये बहार=वसन्तका शुभसन्देश । २३ दार=फांसीकी तख्ती । २४ जुस्तजू=तलाश ।

२५ ज़या=प्रकाश । २६ मुज़महिल=निराश । २७ महल्ले=जगह । २८ राहवर=लीडर, नेता । २९ हमसफ़र=साथी, सहयात्री । ३१ फ़ुग़ाँ=अन्तर्नाद ।

झाँक रहे हैं, कितने साथी कतरियाये चलते हैं! ग़ैर, इससे क्या, इससे उदासी क्यों, दूने उत्साहसे--

"तो छेड़ो नालये जरस,
न देखो मुड़के पेशोपश!"

क्या युवक भारत 'जमील'की यह फुगाँ सुनेगा?

कवि रवीन्द्रकी 'ऐकला चलो, ऐकला चलो' की बड़ी धूम है; किन्तु मुझे तो यह कविता उससे भी ज़्यादा पसन्द आई। शायद जवानीकी उमंगके कारण!

इस कविकी लिखी एक और कविता 'मज़दूरकी आवाज़' भी अपूर्व बनी है और बिलकुल साम्यवादी मनोवृत्तिसे लिखी गई है। बिहार-सोशलिस्ट पार्टीके सभापति प्रोफेसर अब्दुलबारीके अनुरोधपर वह लिखी गई थी। यदि 'विशाल भारत' के पाठकोंकी भक्ति हुई, तो कभी उसको भी लेकर हाज़िर होऊँगा।

हाँ, चलते-चलाते एक बात और कहे बिना नहीं रहा जाता। 'जमील' साहब उर्दू-कवितामें एक नई धाराका सन्निवेश कर रहे हैं। शायद इस क्षेत्रमें वे अकेले ही हैं। अब तक उर्दू-कवि आशिककी जगह मजनूका, माशूककी जगह लैलाका जिक्र करते आ रहे हैं। यही नहीं, प्रेमके उपादानोंमें बुलबुल, पतंग, साक़ी, प्याला, तुर्बत, मज़ार आदिका ही वर्णन करते हैं, वहाँ जमील साहब प्रेमिकाके स्थानपर राधा और प्रेमीके स्थानपर 'किशन'को बिठाते हैं; तथा इनका प्रेमोपादान यमुनाका तट, कोयल, भ्रमर, दर्शन-सुधा, माँझी, चिता आदि ही हुआ करते हैं! और तारीफ़ तो यह कि इन चीज़ोंको उर्दू छन्द और उसके तरल प्रवाहमें इस प्रकार खपा देते हैं कि मुँहसे वाह-वाह निकल जाता है। आप विशुद्ध राष्ट्रवादी हैं--उर्दूको भारत-माताकी बेटी समझते हैं, फिर इस स्वदेशी युगमें वह विदेशी गहने क्यों पहनेगी?--

"कीजे न 'जमील' उर्दूका सिंगार,
अब ईरानी तलमीहोंसे,
पहनेगी विदेशी गहने क्यों,
यह बेटी भारत-माताकी।"

इस ढंगकी कविताका बस एक उदाहरण देकर मैं रुखसत होता हूँ--

"मत नाव उधर ले जा माझी,
उस घाटको मैं पहचानता हूँ।
फूँकी थी वहींपर मैंने चिता
अपनी महरूम तमन्नाकी!"

यह ऐसी अमर पंक्ति है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। बार-बार पढ़िये और सर धुनिये--बशर्ते कि दिलमें कोमल भावनाओंके लिए जगह हो!
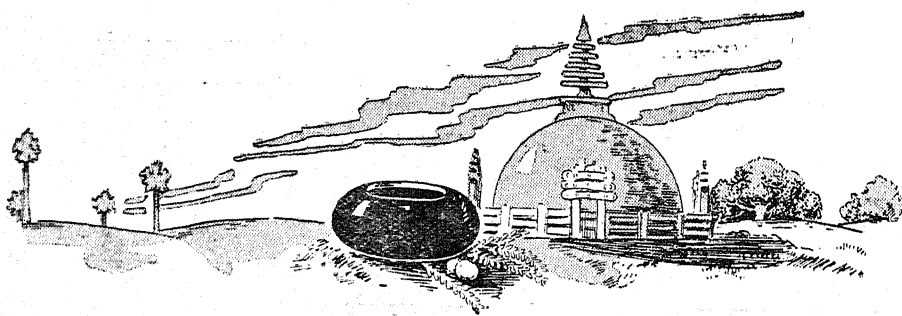
हैदराबाद रियासत और हिन्दी

हैदराबाद रियासतोंमें उस्मानिया यूनिवर्सिटीके खुलनेसे पूर्व हिन्दीके लिए कुछ भी क्षेत्र नहीं था। इस रियासतमें उर्दू भी कुछ ऐसी कठिन, पुस्तकीय और अस्वाभाविक बोली जाती है कि उसे समझनेमें एक साधारण व्यक्तिको ही नहीं, परन्तु उर्दू-भाषा-विज्ञोंको भी पर्याप्त कठिनता बोध होती है। भाषाकी सादगी—उसकी प्रतिदिनकी सरलता यहाँ बड़ी कठिनाईसे श्रुति-गोचर होती है। आप किसी सभामें चले जाइये, वहाँ आपको उर्दू ऐसी बोझल, भारी और अरबी और फारसीके शब्दोंसे इतनी अधिक ओत-प्रोत सुनाई पड़ेगी कि उसका समझना तो दूर रहा—यही प्रतीत नहीं होता कि कौनसी भाषा बोली जा रही है। हाँ, केवल क्रियापद समझमें पड़ जाते हैं। जब उस्मानिया यूनिवर्सिटी खुली, तब एक अनुवाद-विभाग (Translation Bureau) दारुल तर्जुमा भी खोला गया। इस विभागकी ओरसे जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे भी कुछ ऐसी दुर्बोध भाषामें हैं कि उनके पढ़ानेवाले अकसर यह शिकायत किया करते हैं कि वे 'बड़ी सक़ील ज़बान'में लिखी गई हैं।

इस कठिनाईको देखते हुए यहाँके कई विचारशील मुसलमान सज्जनोंने यह अनुभव किया कि यदि ऐसा ही होता गया, तो यह भाषा एकमात्र पुस्तक-गत ही रह जायगी। एक तो पहले ही यह बहुत-कुछ कृत्रिम थी, और दूसरे इसका समझना भी कोई सुगम कार्य नहीं था। इन पुस्तकोंमें जितने भी पारिभाषिक शब्द हैं, उन सबकी रचना प्राय: अरबी फारसीके शब्दोंसे ही की गई है, इसलिए जो उर्दू जाननेवाले अरबी या फ़ारसीसे अपरिचित हैं, उन्हें तो इसके समझनेमें कठिनता होती ही थी ; परन्तु उन लोगोंमें से भी जो इन भाषाओंके ज्ञाता हैं, कइयोंको इस प्रकारकी अस्वाभाविकता खटकती थी। इस कारण उस्मानिया यूनिवर्सिटीने कालेज-विभागमें उर्दूके छात्रोंके लिए 'हिन्दी' एक आवश्यक विषय करना उचित समझा। हिन्दी यहाँ अब भी स्कूलोंमें पढ़ाई नहीं जाती, केवल कालेजमें ही पढ़ाई जाती है, और वह भी केवल उन विद्यार्थियोंको, जिनका ऐच्छिक विषय (Optional Subject) उर्दू होता है। हिन्दी-विभागके खोलनेका कारण यही बताया जाता है कि जिससे उर्दू-भाषावाले हिन्दीके चालू शब्दोंका निस्संकोच होकर व्यवहार करें। इस प्रकार उनकी भाषामें एक तरहकी सादगी पैदा हो जाय और वह स्पष्टतया समझमें आने लगे। इस प्रकारके विचार रखनेवालोंमें श्रीयुत मौलवी अब्दुलहक़ साहेबका नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। आप इस समय उस्मानिया यूनिवर्सिटीमें उर्दूके प्रधान प्रोफेसर हैं। आप अंजुमन-तरक्की-ए उर्दूके अवैतनिक मंत्री हैं। यह संस्था औरंगाबादमें एक रमणीय स्थानमें है, जिसे उर्दूका बाग़ कहते हैं। हम फिर कभी 'विशाल भारत'के पाठकोंको जनाब मौलबी अब्दुलहक़ साहबका तथा उक्त संस्थाका परिचय देंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि मौलवी अब्दुलहक़ साहब उन लोगोंमें से हैं, जो यह चाहते हैं कि उर्दू बड़ी सरल और सुबोध हो जाय और उसका वह स्वरूप प्रचलित हो, जिसे हिन्दुस्तानीके नामसे कहा जाता है। आपके असाधारण परिश्रम और प्रभावका यह परिणाम हुआ कि कालेज-विभागमें उर्दूकी सहायताके लिए हिन्दीको रख दिया गया। इस बातके लिए मौलवी अब्दुलहक़ साहेबको जितना धन्यवाद दिया जाय, उतना ही कम है। यह आपके ही परिश्रम और उदार विचारोंका परिणाम है कि इस रियासतमें हिन्दीको पैर रखनेका स्थान मिला है। जनाब मौलवी अब्दुलहक़ साहेबने अब तो यूनिवर्सिटीसे यह नियम भी पास करा लिया है कि एम० ए० में जो उर्दूका विद्यार्थी

हिन्दीमें पास नहीं होगा, उसे एम० ए० की पदवी नहीं दी जायगी।

परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी हिन्दीका जो यहाँ कोर्स रखा गया है और जिस प्रकार उसकी परीक्षा ली जाती है, उससे उसका महत्त्व बहुत ही कम रह जाता है। कालेजके एफ़० ए० विभागमें उर्दूके दो पर्चे होते हैं, जिसके २०० अंक (प्रत्येक पर्चेके १०० अंक) होते हैं। इसमें दूसरे पर्चेमें हिन्दीके दो प्रश्न होते हैं, पहला हिन्दीसे उर्दूमें अनुवाद और दूसरा उर्दूसे हिन्दीमें अनुवाद। इन दोनों प्रश्नोंके अंक कुल २५ ही रखे जाते हैं। इस प्रकार उर्दूके २०० अंकोंमें से हिन्दीको कुल पचीस अंक ही दिये जाते हैं। बी० ए०में उर्दूमें ३०० अंक रखे गये हैं। इनमें से पूर्वोक्त प्रकार केवल तीस अंक हिन्दीके लिए रखे जाते हैं, और एम० ए०में ६०० अंकोंमें से केवल पचास अंक हिन्दीमें रखे गये हैं। इस कारण विद्यार्थियोंको हिन्दीकी ओर जितना ध्यान देना चाहिए, वे उतना ध्यान देनेके लिए विशेष उत्सुक नहीं होते। फिर जो विद्यार्थी एफ़० ए० विभागमें उर्दू लेते हैं, उन्हें एक दूसरी भाषा भी लेनी पड़ती है। उनमें से प्रायः सभी अरबी या फ़ारसीको लेते हैं। इनके अंक भी परीक्षामें २०० ही रखे गये हैं। इस प्रकार इन विद्यार्थियोंको अरबी या फ़ारसीका जितना ज्ञान हो जाता है, उतना हिन्दीका नहीं होता। फिर बी० ए०में उर्दूके विद्यार्थियोंके लिए फ़ारसी आवश्यक विषय हो जाता है। कालेजमें जब एक विद्यार्थी प्रवेश करता है, तो उसे उर्दूका अच्छा ज्ञान होता है, और इसलिए जब वह उर्दू-भाषाके उच्च साहित्यका अध्ययन करता है, तो उसे उसके गौरव, प्रगति और विकासका ज्ञान होता है। इसके विरुद्ध हिन्दीका उसे बिलकुल ज्ञान नहीं होता। उसे हिन्दी बिलकुल प्रारम्भसे सीखनी पड़ती है। फिर उसमें इतने अंक ही नहीं रखे जाते, जिससे उसे हिन्दीकी ओर रुचि बनानेकी विशेष उत्सुकता हो। इस प्रकार अन्तिम पदवी धारण करके भी उसे हिन्दीका वह प्रशंसनीय ज्ञान नहीं होता, जिससे एक तो वह हिन्दीसे प्रेम कर सके, दूसरे उसका शब्द-कोश कुछ थोड़ा-सा भी विस्तृत हो जाय, जिससे वह इस प्रकारकी हिन्दुस्तानी भाषाका निर्माण कर सके, जो सरल-सुबोध और भारतव्यापिनी हो।

इस प्रकार जिस उद्देश्यको सम्मुख रखकर 'हिन्दी'को रखा गया था, वह 'हिन्दी' के रखे जानेके बाद भी स्वयमेव निष्फल हो रहा है। जैसा उद्देश्य था, उसके वैसे साधन नहीं किये गये और न अभी सुदूरतम भविष्यमें उसकी कोई सम्भावना ही प्रतीत होती है। यदि यूनिवर्सिटीके कालेज-विभागमें उर्दूके विद्यार्थियोंको दूसरी भाषाके तौरपर हिन्दी लेनी पड़ती और उसमें अंक भी इतने रखे जाते कि विद्यार्थियोंको हिन्दीके लिए परिश्रम करना पड़ता, तो अवश्यमेव इस उद्देश्यकी थोड़ी-बहुत सफलताकी सम्भावना हो सकती थी। परन्तु अब तो इसकी सफलताका कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ता। यूनिवर्सिटीमें जिस प्रकार मराठी, तैलगू, कैनड़ी इत्यादि भाषाओंके पृथक्-पृथक् व्याख्याता हैं, वैसे ही हिन्दीका कोई पृथक् व्याख्याता नहीं है। जो संस्कृतका व्याख्याता है, वही हिन्दी भी पढ़ा लेता है। ऐसी अवस्थामें हिन्दीका क्षेत्र बिलकुल नाममात्रका ही रह जाता है।

परन्तु आजकलकी दशाओंमें जब कि हिन्दू-मुस्लिम अविश्वास चरम सीमा तक पहुँचा हुआ है, एक प्रधान मुस्लिम रियासतका हिन्दीको नाममात्रके लिए भी स्थान देना साधुवादके योग्य है। हमें विश्वास है कि ज्यों-ज्यों यह अविश्वास कम होता जायगा और एक भाषाको बनानेका भाव अधिकाधिक प्रबल होता जायगा, त्यों-त्यों हिन्दीके शिक्षणकी आवश्यकताको इस प्रकार क्रियात्मक रूपसे अनुभव किया जायगा कि जिससे हिन्दीकी स्थिति इस रियासतमें जैसी चाहिए, वैसी ही उत्तम हो सकेगी।

——

चित्र-चयन

बौद्धोंका महान तीर्थ

बौद्धधर्म भारतवर्षमें उत्पन्न होकर तिब्बत चीन, जापान, बर्मा, मलाया, स्याम, चम्पा, लंका तथा पूर्वीय द्वीप पुंजोंमें फैला था। आज भी संसारमें बौद्धोंकी संख्या ईसाइयोंके बाद ही है। संसारमें बौद्धोंके तीन महान तीर्थ हैं। एक तो बौद्ध गया, जहाँ भगवान बुद्धने तपकर बोधिसत्व प्राप्त किया था। दूसरा काशीमें सारनाथ, जहाँ उन्होंने सर्वप्रथम उपदेश दिया था। तीसरा कुशीनगर, जहाँ उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। इन तीन तीर्थोंमें गया और सारनाथसे प्रायः सभी परिचित हैं; लेकिन कुशीनगर सर्वसाधारणको प्रायः अज्ञात-सा है। इसका एक कारण यह भी है कि यह तीर्थ एक प्रकारसे देशके एक सुदूर अल्पज्ञात स्थानमें है। कुशीनगरका वर्तमान नाम
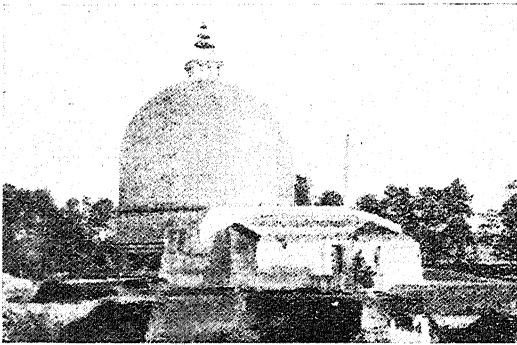
कसियाका महापरिनिर्वाण-स्तूप

कसिया है। यह संयुक्त-प्रान्तके गोरखपुर ज़िलेमें गोरखपुरसे चौतीस मील दूर है। आजकल यहाँ तक पहुँचनेमें मोटरकी सुविधा हो गई है। यहाँपर एक विराट स्तूप और भगवान बुद्धके परिनिर्वाणकी एक लेटी हुई विराट प्रतिमा है। इस प्रतिमाको बर्माके बौद्धोंने स्वर्णमंडित किया है। गोरखपुरसे ६० मील दूर नेपाल राज्यकी सीमामें रुम्मिन देवी नामक एक स्थान है। यही प्राचीन 'लुम्बिनी उद्यान' है, जहाँ बोधिसत्वका आविर्भाव हुआ था। यहाँ सद्यजात शिशु सिद्धार्थ, उनकी जननी मायादेवी और मौसी प्रभावती गोमतीकी मूर्तियाँ हैं। इनके समीप ही एक जीर्ण अशोक-स्तम्भपर ब्राह्मी अक्षरोंमें लिखा है—"यहाँ बुद्ध शाक्य मुनि जन्मे थे।"
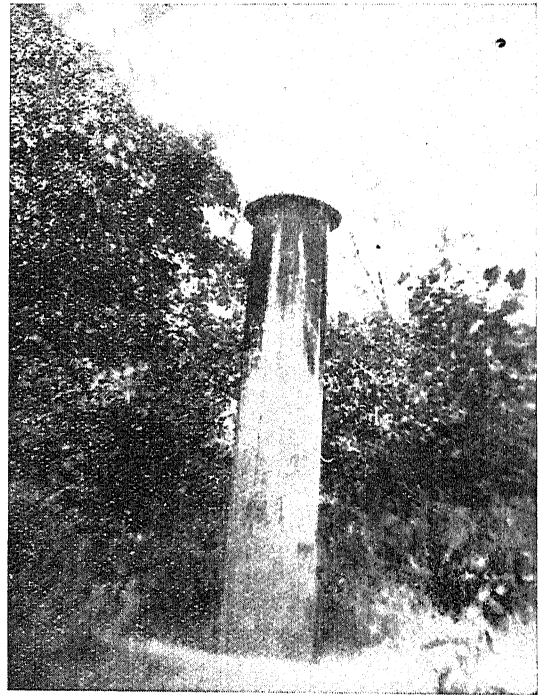
रुम्मिन देवी (लुम्बिनी) का अशोक-स्तम्भ

मकानोंकी आधुनिक सजावट

सभ्यता और विज्ञानकी वर्तमान दौड़ने मानव-जीवन-यापनमें अनेक परिवर्तन कर दिये हैं। नये फैशनने पुरानी सजावटोंके तमाम आडम्बरों और टीमटामको दूर करके एक नई सादगी पैदा कर दी
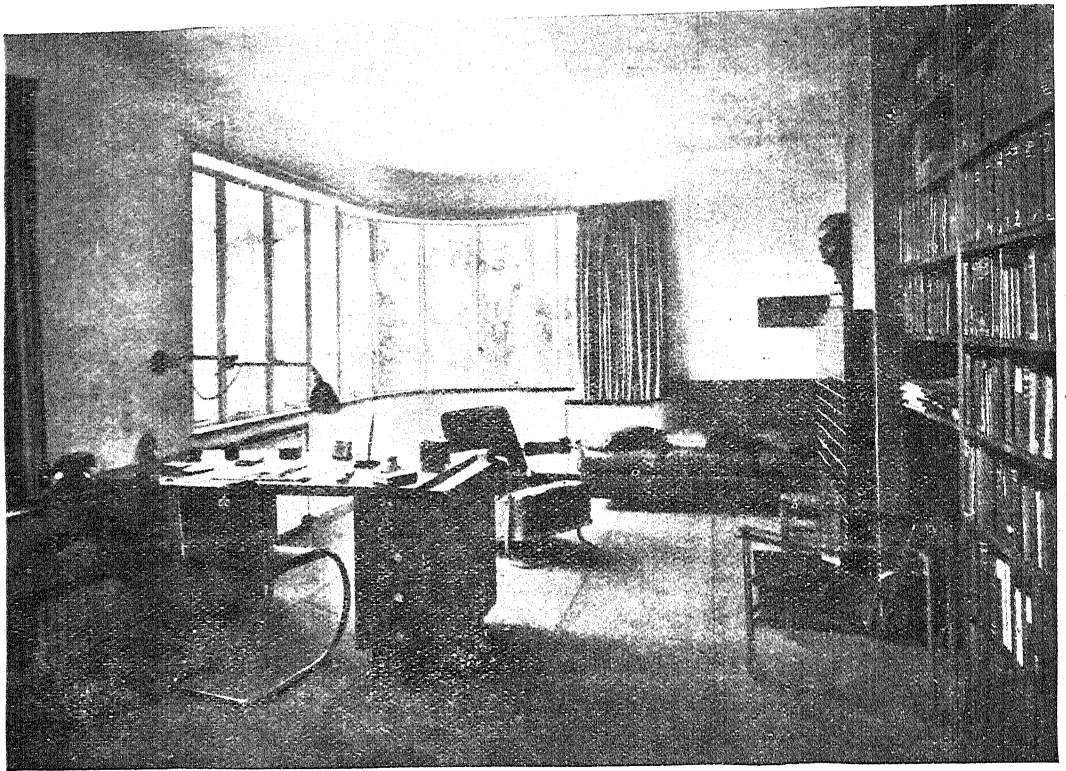
आधुनिक ढंगका एक पढ़नेका कमरा

है। परन्तु इस सादगीमें भी एक कलापूर्ण सुरुचि दिखाई देती है। साथ ही उसके द्वारा शारीरिक आराम और सुविधाएँ कुछ कम नहीं होतीं, वरन बढ़ती ही हैं। देखिये, यहाँ एक नये ढंगके पढ़ने-लिखनेके कमरे और एक बैठकख़ानेका चित्र दिया गया है। इन दोनोंमें सादगी, सुरुचि और आरामका अद्भुत सम्मिश्रण दीख पड़ेगा।

बाढ़ रोकनेकी कोशिश

भारतवर्षमें आये दिन पानीकी बाढ़ आकर लाखों ग्रामीणोंको घर-द्वारहीन बना देती है। इस वर्ष भी उड़ीसा और पंजाबके लाखों आदमी बाढ़के हाथों त्रस्त हुए हैं। परन्तु आज तक भारतमें इन बाढ़ोंको रोकनेका न तो कोई उपाय ही किया गया और इस बातका पता लगानेकी ही कोई कोशिश की गई है कि यह बाढ़ें कैसी रोकी जा सकती हैं। अमेरिकाकी एक रियासतमें भी बाढ़से अकसर नुक़सान हुआ करता है; लेकिन वहाँ न तो सरकार ही विदेशी है और न वहाँके लोग ही भारतीयोंकी तरह भाग्यके नामपर रोकर चुप बैठनेवाले हैं। आजकल वे लोग इस बातके अनुसंधानमें लगे हुए हैं कि बाढ़को कैसे रोका जाय और बाढ़ आ जानेपर बाढ़का पानी किस प्रकार जल्दीसे जल्दी निकाला जा सकता है। इसके लिए उन्होंने उस प्रदेशका एक छोटा माडल (नमूना) बनाया है, जहाँ कृत्रिम उपायों द्वारा बाढ़ लाई जाती है और उसे रोकनेके उपाय किये जाते हैं। जिन उपायोंसे उन्हें इस छोटे माडलमें बाढ़ रोकनेमें सफलता मिलेगी, बादमें वे उन्हीं उपायोंको बड़े पैमानेपर समूचे प्रान्तमें

नये ढंगका एक बैठकखाना

काममें लायेंगे। यहाँ उनके इस माडलका चित्र प्रकाशित किया जाता है।

शिकागोका मेला

अमेरिकाके शिकागो नगरमें हालमें एक अखिल जगतकी प्रदर्शिनी आरम्भ हुई है। इसका नाम है 'वर्ल्ड फेयर'। इस प्रदर्शिनीमें सारे संसारके देशोंने भाग लिया है। प्रदर्शिनीके लिए जो इमारतें बनाई गई हैं, उनमें भवन-निर्माण-कौशलके भी कुछ अजीब उदाहरण दिखाये गये हैं। इस प्रदर्शनीके दो चित्र यहाँ प्रकाशित हैं, जिनसे स्थापत्यकलाकी नवीनता प्रकट होगी।
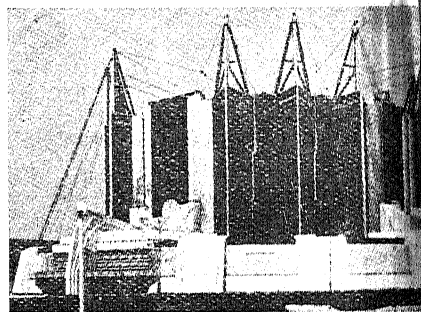
शिकागो-प्रदर्शिनीका बिजलीघर
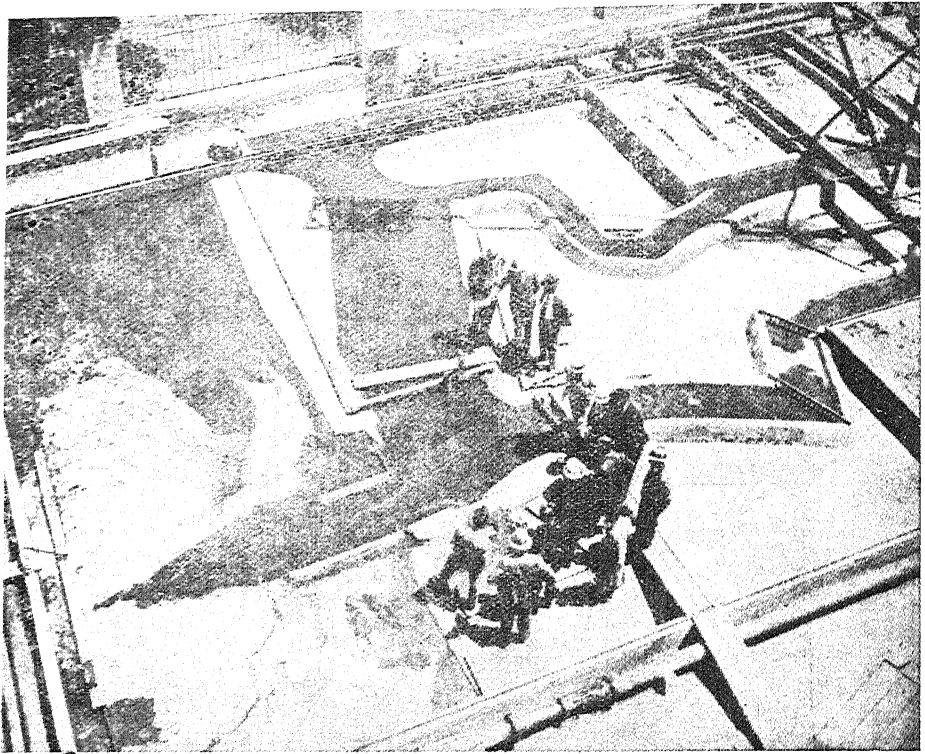
कृत्रिम माडलमें बाढ़ रोकनेके उपायोंका अनुसंधान
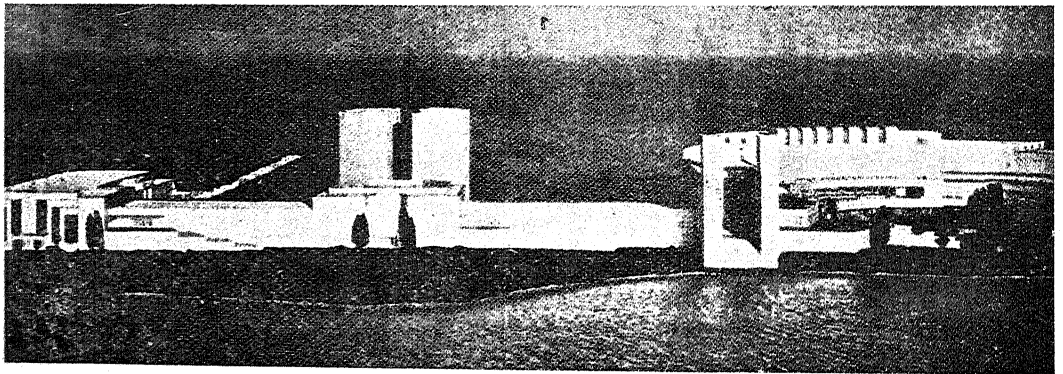
शिकागो-प्रदर्शिनीमें भवन-निर्माण-कलाका एक नवीन उदाहरण

[इस विभागमें अब तक बी० ए०, एम० ए० पास करनेवाली लड़कियोंके चित्र, उनके परिचयके साथ, छपते रहे हैं। नवीन वर्षसे हम इस क्रमको सर्वथा बन्द करते हैं। इसका प्रथम कारण तो यह है कि अब भारतमें इतनी लड़कियाँ बी० ए०, एम० ए० पास होने लगी हैं कि यदि हम उन सबके चित्र छापते रहें और परिचय देते रहें, तो 'विशाल भारत' के अंक-के-अंक उन्हींसे भर सकते हैं। इसके सिवा बी०ए०, एम०ए० पास कर लेने-भरको हम कोई मार्केकी बात नहीं मानते। प्रारम्भमें जब बहुत कम लड़कियाँ परीक्षाओंमें बैठती थीं, जब पुरुषोंको उनकी योग्यताके ही विषयमें आशंका थी, तब इस प्रकारके चित्र छापनेका कुछ अर्थ हो सकता था ; पर अब तो यह प्रथा बिलकुल निरर्थक हो गई है। हमारी आकांक्षा है कि हम इस विभागमें उन माताओं और बहनोंके चित्र और चरित्र छापें, जो अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितिमें भी अपने साहसका परिचय दे रही हैं। एक ऐसी ही महिलाका स्केच यहाँ दिया जाता है। —सम्पादक]

बर्तनी

वक्त रातका है। अँधियारी छाई हुई है। एक पचास वर्षकी बुढ़िया क़ब्रिस्तानकी ओर लपकी हुई चली जा रही है। लो, वह वहाँ पहुँच गई, और उसने क़ब्र खोदना शुरू किया! थोड़ी देर बाद उसके घरवाले वहाँ घबराये हुए पहुँचे। उससे कहा—"यह क्या कर रही है?"

वह कहती है—"कर क्या रही हूँ, अपने बच्चोंको उठा रही हूँ। लोग यहाँ उन्हें क्यों सुला गये हैं?"

बात ठीक है। बर्तनीके दो जवान बेटे, एक बाईस वर्षका, दूसरा सत्रह वर्षका—दोनों विवाहित—इसी क़ब्रिस्तानमें वह नींद सोये हुए हैं, जिसके बाद कोई नहीं उठता। जिन्हें पाल-पोसकर बर्तनीने इतना बड़ा किया था, वे इसी स्थानपर गभीर निद्रामें मग्न हैं! लोग बर्तनीको पागल कहते हैं, और दरअसल वह पागल है भी।

× × ×

"बाबूजी नारंगी लोगे?" एक बुढ़ियाने आवाज़ दी।

मैंने कहा—"भाव ठीक होगा, तो ले लूँगा। यहाँ कलकत्तेमें तेज़ बेचकर ठगनेवाले बहुत हैं।"

बुढ़ियाके हृदयको शायद कुछ ठेस लगी—"नहीं बाबूजी, मैं ज्यादा मुनाफ़ा नहीं करती। बस, दिन-भरमें छै आने पैसे कमा लेती हूँ।"

नारंगी दरअसल बाज़ार-भावसे सस्ती थीं। बुढ़िया नारंगी बराबर देती रही। एक दिन बोली—"अब यह आठ बच रही हैं, मुझे रोज़ेका इन्तज़ाम करना है। ये कहाँ बेचूँगी, आठ पैसेमें ही ले लो।"

मैंने ले लीं। फिर यों ही पूछ बैठा—"तुम्हारे घरपर कौन-कौन हैं?"

बुढ़ियाने दुःखपूर्ण स्वरमें कहा—"क्या बतलाऊँ अब कौन हैं! छै बच्चे थे, उनमें पाँच मर

गये, और मियाँ भी चल बसे ! मैं हूँ, एक लड़की है, दो छोटी-छोटी भतीजी हैं और एक भतीजा ?"

"तुम्हीं उनका पालन करती हो ?"

"और कौन करेगा ? जवान-जवान लड़के जाते रहे ।" यह कहते हुए उसका हृदय भर आया ।

"छै आनेमें गुज़र कैसे होती है ?"

"गुज़र क्या होती है । छै रुपये तो किरायेके देने पड़ते हैं । मेरी बुड्ढी माँ, जो सबूरा गाँव (जिला मुंगेर) में रहती है, मेरी ग़रीब हालतपर रहम करके मुझे कुछ भेज देती है । बाबूजी, जब मेरे मियाँ ज़िन्दा थे, तब मुझे घरसे बाहर भी किसीने न देखा था ।

"उनको मरे कितने दिन हो गये ?"

"उस वक्त मेरी बची हुई लड़की बस चार महीनेकी थी, और अब सत्रह वर्षकी है । आप ही हिसाब लगा लीजिए ।"

"यहाँ कलकत्तेमें क्यों रहती हो ? मुंगेर ज़िलेको क्यों नहीं चली जाती ?"

बुढ़िया उठ खड़ी हुई । पासके पचास गज़ दूरवाले मकानकी ओर इशारा करके बोली—"देखो, जितनी दूर यहाँसे वह मकान है, उतनी ही दूर मेरे गाँववाले घरसे कब्रिस्तान है, जहाँ मेरे प्यारे बच्चे गड़े हुए हैं । मैं गाँवमें रहकर पागल हो जाती हूँ । रातको उठ भागती हूँ । मुझसे वहाँ रहा नहीं जाता । बेटे-बेटियोंकी याद ताज़ा हो जाती है । बारह-बारह बजे रातको जाकर कब्र खोद डालती हूँ ।"

× × ×

बर्तनी बुड्ढी हो चुकी है । केलाबागान नं० २२ गफ़ूरकी बाड़ीसे, जो मेरे घरसे काफ़ी दूर है, वह नित्यप्रति आती है । मेरा कमरा चौतल्लेपर है, जहाँ चढ़नेमें काफ़ी परिश्रम पड़ता है ; पर हाँफती-हाँफती सिरपर डलिया रखे बर्तनी रोज़ चली आती है । वह हँसकर बोलती है ; पर उसकी बैठी हुई आखोंके पीछे करुणारसका कितना भयंकर समुद्र छिपा हुआ है, इसका मुझे अनुमान भी नहीं था ।

"अगर तुम्हारे बेटे आज ज़िन्दा होते, तो क्यों तुम्हें इतनी मेहनत करनी पड़ती ?" अपनी बेवकूफ़ीसे मैं कह बैठा ।

बर्तनीके नेत्र सजल हो गये । चेहरा करुणाकी मूर्ति था । उनमें मुझे उसके पाँच दफ़नाये हुए बच्चोंकी शकल दीख पड़ी ।

मैंने बात टालकर कहा—"जब तक नारंगी बाज़ारमें बिकती रहें, मुझे बराबर दे जाया करो । बाज़ार-भावसे सस्ती नहीं ।"

बर्तनी पाँच पैसे जोड़ेवाली नारंगी मना करनेपर भी चार पैसेमें दे गई । मैंने भी दिलमें यह सोचकर कि इस समय इससे ज़िद करना ठीक नहीं, ले लीं ।

हिन्द महासागरमें हिन्दू-संगठन और मुसलिम तंज़ीमकी लहरें उठ रही हैं । सुनते हैं, श्वेतपत्रके सुधारोंका तूफ़ान भी आनेवाला है ; पर इससे श्वेतकेशा बर्तनीको क्या ? अनेक प्राणियोंसे लदी हुई अपनी छोटीसी नौकाको अपने शिथिल हाथोंसे, जब उसके दोनों पतवार—नूर हसनमुहम्मद और सख़ावत अली—मँझधारमें गिरकर डूब चुके हैं, खेनेका प्रयत्न वह कर रही है ।

बर्तनी छै आने रोज़ कमाती है । घरमें पाँच खानेवाले हैं । मकानका किराया छै रुपये महीने है । बुढ़ापा आ पहुँचा है । किनारा अभी बहुत दूर है ।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

चिट्ठी-पत्री

श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी-अस्पताल

श्रीयुत सम्पादक 'विशाल भारत',

'विशाल भारत'के दिसम्बरके अंकमें श्री बालकृष्ण गुप्त, बी० ए०की एक चिट्ठी सम्पादकीय टिप्पणीके साथ उक्त अस्पतालके सम्बन्धमें प्रकाशित हुई है, और इस प्रसंगमें मेरा भी नाम लिया गया है। आप लोगोंके कथनका सारांश यह है कि अस्पतालके अन्दर सब जातिके रोगियोंको स्थान मिलना चाहिए, और यदि ऐसा सम्भव नहीं हो, तो कम-से-कम दो वार्ड तो अवश्य इसके लिए अलग कर देने चाहिए। ऐसी कोई व्यवस्था न होनेके कारण आप लोगोंने मारवाड़ी-समाजके ऊपर संकीर्ण जातीयताका दोषारोपण किया है। इस सम्बन्धमें अस्पतालके एक ट्रस्टीकी हैसियतसे मेरा निवेदन यह है कि धर्मभावापन्न मारवाड़ी-समाजके लोगोंकी चिकित्साके लिए ही इस जातीय अस्पतालकी स्थापना हुई थी। जो लोग खान-पान या अन्यान्य धार्मिक आचार-विचारोंमें किसी प्रकारका परहेज़ नहीं रखते, उनके लिए तो इस कलकत्ता महानगरीमें कितने ही अस्पताल खुले हुए हैं। करदाताओंकी हैसियतसे उन अस्पतालोंमें मारवाड़ी-समाजका भी उतना ही हक़ है, जितना अन्य सम्प्रदायोंका। किन्तु अपने धार्मिक ख़यालसे ही इस प्रकारके मारवाड़ी उन अस्पतालोंमें भर्ती नहीं होते। अस्पतालके इनडोर-विभागमें इसीलिए मारवाड़ी-समाजके निरामिषभोजी ब्राह्मण और सद्‌गृहस्थ वैश्य ही भर्ती किये जाते हैं। चिकित्साके लिए यह एक जातीय संस्था है। इसी उद्देश्यसे संस्थापकोंने मारवाड़ी-समाजके वैश्योंके अतिरिक्त और किसीसे आर्थिक सहायता नहीं ली है। आउटडोर-विभागमें सर्वसाधारण जनताको बिना किसी जातीय भेद-भावके औषधि दी जाती है। इमर्जेन्सी केस हर समय सब जातियोंके भर्ती कर लिये जाते हैं, और उनकी चिकित्सा पूर्ण सावधानीके साथ की जाती है।

गुप्तजीने हिटलरशाहीमें यहूदियोंकी दशाका दिग्दर्शन कराते हुए मारवाड़ी-समाजको सावधान किया है ; किन्तु उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि तमाम जनता उनके इस उग्र मतकी पृष्ठपोषक नहीं है। एकमात्र धार्मिक विचारोंसे प्रेरित होकर ही कलकत्तेका मारवाड़ी-समाजने इस जातीय संस्थाकी स्थापना की थी, तथा इसके संस्थापकोंका यही उद्देश्य था, और है। ऐसी स्थितिमें अपने धार्मिक विचारोंकी अवहेलना करके तथा संस्थापकोंके उद्देश्यके विरुद्ध इसे सार्वजनिक रूप क्योंकर दिया जा सकता है? अस्पतालके ट्रस्ट-डीडमें यह स्पष्ट रूपमें उल्लेख कर दिया गया है। ऐसी दशामें वर्तमान ट्रस्टियोंको क़ानूनन यह अधिकार नहीं है कि वे ट्रस्टके नियमोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन करें।

गुप्तजीका यह कथन कि मारवाड़ी लोग बंगालमें प्रचुर धनोपार्जन करके बंगालियोंके लिए कुछ भी नहीं करते, यथार्थ नहीं है। गुप्तजी शान्त हृदयसे विचार करें, तो उन्हें मालूम होगा कि बाढ़, अकाल आदिके अवसरोंपर तथा देशके अन्यान्य कार्योंमें मारवाड़ियोंने मुक्तहस्त होकर आर्थिक सहायता पहुँचाई है, और व्यावहारिक क्षेत्रमें मारवाड़ी-समाजने बंगालियोंके प्रति कभी ऐसा बर्ताव नहीं किया है, जिससे उसपर संकीर्ण जातीयताका दोषारोपण किया जा सके, बल्कि इस सम्बन्धमें तो मारवाड़ियोंकी ही बंगालियोंके प्रति शिकायत है। जब-जब कर्तव्यकी पुकार हुई है, मारवाड़ी-समाजने कभी उसकी अवहेलना नहीं की है। हाँ, क्षणिक उत्तेजनामें आकर वह अपने धार्मिक विचारोंका परित्याग करना नहीं चाहता।

रायबहादुर भगवानदास बागलाका अस्पताल हरिसन रोडमें बहुत दिनोंसे खुला हुआ है, जिसमें हिन्दूमात्र भर्ती किये जाते हैं। और अस्पतालोंकी कौन कहे, इस अस्पतालमें भी मारवाड़ी जनता—जिसे

अपने धार्मिक आचार-विचारोंपर विशेषरूपसे ध्यान है—भर्ती नहीं होती थी। यह देखकर ही इस अस्पतालके संस्थापकोंको एक पृथक् अस्पताल खोलनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं है कि केवल धार्मिक भावोंकी रक्षाके ख़यालसे ही अन्य जातियाँ इस अस्पतालमें भर्ती नहीं की जातीं? इसमें प्रान्तीयताका लेशमात्र भाव नहीं है। आशा है, विज्ञ पाठकगण वस्तुस्थितिपर ध्यान रखकर मारवाड़ियोंके प्रति जातीय संकीर्णताका वृथा दोषारोपण न करेंगे। यह समय एकता और प्रेमका है, न कि कलह और वैमनस्य उत्पन्न करनेका।

—रामदेव चोखानी

अविराम

श्री सियारामशरण गुप्त

हे निकुंज, इस शुष्क विजनमें
स्निग्ध-सरस तेरी छाया।
चला आ रहा हूँ मैं अविरत
रौद्र-तप्त मेरी काया।
देख दूरसे ही शुच, श्यामल
तेरे ये नव-नव पल्लव-दल,
मेरा हृदय हो उठा शीतल।
कण्टक-कुलमें एक कुसुम-सा
यहाँ कहाँ तू खिल आया?
हे निकुंज, इस शुष्क विजनमें
स्निग्ध-सरस तेरी छाया!

इस दोपहरीमें प्रभातकी
मृदुता है तेरे घरमें;
शान्ति यहाँ झट आ जाती है
क्रुद्ध प्रभंजनके स्वरमें।
प्रखर किरण-भामाएँ आकर,
किशलय-कोमल शय्या पाकर,
तनुका ज्वाला-जाल बुझाकर,
सुखसे सो जाती हैं तेरे
मधुर माधवी-मर्मरमें
इस दोपहरीमें प्रभातकी
मृदुता है तेरे घरमें

आज दूर जाना है मुझको,
जल्दीमें मन है मेरा;
बन्धु, मुझे इस नव-यात्राके
पागलपनने है घेरा।
आज क्षमा कर, तू जाने दे;
पथ-सीमा तक हो आने दे;
पुलक वक्ष भरकर लाने दे।
लूँगा प्रिय आतिथ्य लौटकर
रहा निमन्त्रण यह तेरा;
आज दूर जाना है मुझको
जल्दीमें मन है मेरा।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'कवितावली' (सटीक)—टीकाकार, पं० चम्पाराम मिश्र, बी० ए० ; पृष्ठ-संख्या—भूमिका २१+ टीका १६०+ टिप्पणी ७ + अनुक्रणिका २१—कुल २३६ ; मूल्य १।।)।

गोस्वामी तुलसीदासजीकी 'कवितावली' की अनेक टीकाएँ विद्यमान होते हुए भी एक और टीकाकी क्या आवश्यकता थी, इसके सम्बन्धमें मिश्रजीने निवेदनमें लिखा है—

"कवितावलीकी अनेक टीकाएँ छप चुकी हैं, परन्तु वे विशेषत: ऐसी भाषामें हैं, जिनका समझना कठिन हो जाता है। यह देखकर हमारा विचार हुआ कि प्रचलित बोलचालकी भाषामें एक टीका लिखी जाय, जो जनता और विद्यार्थी दोनोंके कामकी हो।""""इस टीकामें कथाएँ भी अधिक दो गई हैं, और इसमें ऐसी अनुक्रमणिका लगाई गई है, जिससे प्रत्येक छन्दका आसानीसे पता लग सकता है। छन्दोंके काण्डबद्ध अंक और सम्पूर्ण अंक दोनों इस अनुक्रमणिकामें दिये गये हैं। इस भूमिकामें छात्रोपयोगी बातोंके अतिरिक्त तुलसीदासजीकी जीवनीपर भी नया प्रकाश डाला गया है। 'कवितावली' में जितनी बातें उनकी जीवनीके सम्बन्धमें मिल सकती हैं, उनकी आलोचना की गई है।"

'सूची कटाह' न्यायके अनुसार टीकाके सम्बन्धमें कुछ लिखनेसे पूर्व ऊपर निर्दिष्ट विशेषताओंके सम्बन्धमें ही दो-चार शब्द लिख देना उचित प्रतीत होता है।

अनुक्रमणिकाके सम्बन्धमें मिश्रजीने जो लिखा है, वह ठीक है। छन्दोंके काण्डबद्ध और सम्पूर्ण अंक दोनों ही अनुक्रमणिकामें दिये गये हैं ; पर मूल छन्दोंपर केवल सम्पूर्ण अंक ही दिये गये हैं, काण्डबद्ध अंकोंका कहीं पता भी नहीं है। इससे अनुक्रमणिकामें दिये काण्डबद्ध अंकोंकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है। यदि छन्दोंपर भी उक्त दोनों प्रकारके अंक दे दिये जाते, तो निस्सन्देह उनसे कुछ लाभ हो सकता था।

इस टीकाकी अन्य विशेषताएँ तो जैसी-तैसी ही हैं। हाँ, तुलसीदासजीकी जीवनीपर मिश्रजीने जो नया प्रकाश डाला है, वह वस्तुत: इस पुस्तककी विशेषता कहे जाने योग्य है, और वही इस पुस्तककी विशेषता है भी।

गोस्वामीजीके जीवनपर मिश्रजीने जो प्रकाश डाला है, वह निस्सन्देह उथल-पुथल करनेवाला है। अभी तक जितनी भी गोस्वामीजीकी जीवनियाँ लिखी गई हैं, उनका एक अ. मुख्य आधार किम्बदन्तियाँ ही रही हैं ; पर मिश्रजीने किम्बदन्तियोंके आधारको छोड़कर प्राप्त अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणोंके आधारपर ही गोस्वामीजीके जीवन-चरितकी घटनाओंको ढूँढ़ निकालनेका प्रयत्न किया है। इस अनुसन्धानके परिणाम-स्वरूप निम्न-लिखित बातें मिश्रजीने ढूँढ़ निकाली हैं—

१. तुलसीदास बालकपनसे ही अति दरिद्र थे। उनकी सम्पत्ति एक कथरी और एक करवामात्र था।

२. वह द्वार-द्वार भीख माँगकर जाति-कुजातिके टुकड़ोंपर पेट पालते थे।

३. वह किसी ऐसे पाप-कर्मकी सन्तान थे, जिसके कारण उनके माता-पिताने जन्मते ही उनको छोड़ दिया था।

४. गोस्वामीजीको सरयूपारीण और कान्यकुब्ज माननेवालोंकी युक्तियोंकी खासी विवेचना करनेके बाद यह सिद्ध किया गया है कि उनकी जात-पाँत या गोत्रादिके सम्बन्धमें कोई बात स्थिर नहीं की जा सकती है।

५. गोस्वामीजीके माता-पिताके नामों—हुलसी या आत्माराम—को भी अप्रामाणिक ठहराया है।

६. 'ब्याह न बरेषी' के आधारपर उनके विवाह तथा स्त्री-प्रेम-सम्बन्धिनी घटनाओंको कल्पित सिद्ध किया गया है।

७. उनके गुरुके और स्थानके सम्बन्धमें जितनी बातें प्रचलित हैं, उनको सन्दिग्ध होनेके कारण अमान्य माना है।

मिश्रजीके विचारोंसे भले ही कोई सहमत न हो, पर उनके प्रमाण और तर्क ऐसे नहीं हैं, जो यों ही उड़ा दिये जा सकें। हिन्दी-साहित्यके ऐतिहासिक विद्वानोंके सामने निस्सन्देह मिश्रजीने एक ऐसी समस्या रख दी है, जिसपर उन्हें गम्भीरतापूर्वक विचार करना पड़ेगा।

'कवितावली' के छन्दोंके सम्बन्धमें मिश्रजीका मत है कि इसके सब छन्द 'मानस' के पीछेके बने नहीं हैं। आश्चर्य नहीं कि 'कवितावली' के छन्द पहले मानसमें सम्मिलित करनेके लिए लिखे गये हों, पर पीछेसे किन्हीं कारणोंसे कुछ छन्द तो सम्मिलित कर लिये गये हों और कुछ छोड़ दिये गये हों, और अवशिष्ट छन्दोंमें पीछेसे और भी छन्द मिला दिये गये हों।

टीका

अपनी टीकाकी विशेषताके सम्बन्धमें लिखते हुए मिश्रजीने दो बातोंपर विशेष बल दिया है। एक तो यह कि टीका बोलचालकी भाषामें लिखी गई है, और दूसरी यह कि जनता और विद्यार्थी दोनोंके हितोंका ध्यान रखकर लिखी गई है। अथसे इति तक सम्पूर्ण पुस्तक पढ़नेके बाद भी हमारी धारणा यह है कि लेखकको टीका लिखनेमें जैसी चाहिए वैसी सफलता नहीं मिली है। केवल कथाएँ अधिक और विस्तारके साथ लिख देने, या अनुक्रमणिकामें छन्दोंके काण्डबद्ध अंक या सम्पूर्ण अंक दे देनेसे ही कोई टीका उत्तम और उपादेय नहीं कही जा सकती। जनता या विद्यार्थियोंके कामकी वही पुस्तक हो सकती है, जिसका पाठ शुद्ध हो, जिसमें कठिन शब्दोंके शुद्ध और संगत अर्थ दिये गये हों, जिसमें अलंकारोंका निरूपण भलीभाँति किया गया हो, और अर्थ सरल तथा विस्पष्ट भाषामें लिखा गया हो। हमें खेदके साथ लिखना पड़ता है कि मिश्रजीकी पुस्तकमें इन सब बातोंकी आश्चर्यजनक कमी है।

पुस्तकके आदि या अन्तमें शुद्धाशुद्ध-पृष्ठका होना न आवश्यक है और न अच्छा ही; पर जहाँ अशुद्धियाँ विद्यमान हों, फिर शुद्धाशुद्ध-पत्र न लगाया जाय, तो इसे भारी भूल ही कहना होगा, और ऐसी पुस्तकसे लाभके स्थानमें हानिकी ही सम्भावना अधिक है। पाठान्तरोंकी भरमारका एक कारण यह भी है। मिश्रजीकी पुस्तकमें शुद्धाशुद्ध-पत्रको ढूँढ़ना शशश्रृंग ढूँढ़नेके सदृश है; परन्तु अशुद्धियाँ विद्यमान हैं। जैसे—

१. छन्द ३३ के दूसरे चरणमें 'पट्ट' के स्थानपर 'पुट' छप गया है।

२. छन्द ८६ के चतुर्थ चरणमें 'कुंभकर्न' के स्थानपर 'भकर्न' ही छप गया है।

३. छन्द ८७ के चतुर्थ चरणमें 'लोकपति कोक सोक' के स्थानपर 'लोकपति सोक कोक' छपा हुआ है।

४. छन्द २२५ के चतुर्थ चरणमें 'जीह' के स्थानपर 'जी' ही छपा रह गया है।

५. छन्द २३० के प्रथम चरणमें 'विमोह नदी तरनी न लही' के स्थानपर 'विमोह नदी तरनी लही' छपा है।

६. छन्द २४२ के चतुर्थ चरणमें 'साह' के स्थानपर 'साहि' हो गया है। इत्यादि। यह कुछ उदाहरण हैं। ऐसी अशुद्धियाँ और भी विद्यमान हैं।

कठिन शब्दोंके अर्थके सम्बन्धमें भी मिश्रजीकी टीका अधूरी ही है। प्रारम्भमें तो मिश्रजीने शब्दार्थ पृथक् लिखनेमें ऐसी तत्परता दिखाई है कि 'ससि', 'तन', 'पहुनाई' और 'रहम' जैसे प्रसिद्ध शब्दोंके अर्थ भी शब्दार्थमें लिख दिये हैं। 'कंज' और 'घरनी' जैसे शब्दोंके दो-दो बार अर्थ लिखे हैं; पर आगे इस तत्परताका निर्वाह नहीं किया गया है। लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्डमें तो विरले ही छन्दके नीचे और विरले ही शब्दका अर्थ लिखा गया है। ऐसी टीका विद्यार्थियोंके कामकी कहाँ तक हो सकती है, इसमें हमें सन्देह है। शब्दार्थ लिखनेमें मिश्रजी यदि स्वर्गीय लाला भगवानदीनजीकी शैलीका अनुसरण करते, तो उत्तम होता।

अलंकारों-जैसी मुख्य वस्तुका निरूपण तो कसम खानेको भी मिश्रजीने कहीं नहीं किया है। अलंकारोंका ऐसा बहिष्कार टीकामें क्यों किया गया है, यह तो मिश्रजी ही जानें; पर ऐसी टीका विद्यार्थियोंके कामकी कदापि नहीं कही जा सकती। टीका भी साधारण ही है। टीकामें पाण्डित्य-प्रदर्शनकी ओर अधिक ध्यान दिया गया प्रतीत होता है। कोई भी ऐसा अवसर हाथसे जाने नहीं पाया है, जहाँ एक शब्द, पद या वाक्यके दो अर्थ हो सकते हों और मिश्रजीने 'अथवा' लिखकर दूसरा अर्थ न लिखा हो। इस अनेक अर्थ लिखनेकी प्रवृत्तिके कारण कई स्थानोंपर अर्थका अनर्थ भी हो गया है, और कहीं-कहीं असंगत अर्थ भी लिख दिये गये हैं। उदाहरणके लिए निम्न-लिखित उद्धरण पर्याप्त होंगे :—

१. छन्द २१ का दूसरा चरण है—

"गौतमकी तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी, लोचन अतिथि भये जनक जनेसके।" इस चरणके उत्तरार्द्धका अर्थ मिश्रजीने लिखा है—"राजा जनकके नैन अतिथि हुए अर्थात् उनके पास गये अथवा राजा जनकके नैन अथित हो गये (स्थिर हो गये, देखते ही रह गये)।"

मिश्रजीने 'अतिथि' पाठ ही माना है, फिर समझमें नहीं आता कि 'अथित' पाठान्तरका अर्थ लिखनेकी क्या आवश्यकता थी। दूसरे 'अथित' का अर्थ 'स्थिर होना' भी

ठीक नहीं है। 'अथित' का अर्थ 'अस्त होना' ही है। यहाँपर भी इसका अर्थ यदि कुछ हो सकता है, तो 'सदाके लिए मुँद जाना' ही होगा, जो सर्वथा अनुचित और अनपेक्षित है। नयनके स्थानपर 'नैन' लिखना भी विचारणीय ही है।

२. छन्द २५ का तीसरा चरण है—

"तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी, काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।" मिश्रजी इसका अर्थ लिखते हैं—"रामचन्द्रने स्वाभाविक तौरपर उसे माँ समझा और तन मन वाणी किसी तरहसे न जाना कि मता (सलाह) यह है, अथवा यह न जाना कि कैकेयी विमाता है।"

'कै मतेई' शब्दका प्रथम अर्थ सर्वथा असंगत है। इस प्रकारके अर्थसे विद्यार्थियोंके साधारण ज्ञानमें भी घपला हो जानेकी सम्भावना है।

३. छन्द ४० का प्रथम चरण है—

"बनिता बनी श्यामल गौरके बीच, बिलोकहु, री सखी, मोहिं सी है।" इसके उत्तरार्द्धका अर्थ मिश्रजी लिखते हैं—"हे सखि! मुझसी विह्वल होकर देखो (अथवा मोही मोहित-सी होकर देखो अर्थात् देखते ही मोहित हो)।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि 'अथवा' के बादका अर्थ सर्वथा असंगत और अशुद्ध है। मिश्रजीने 'मोहिं' सानुस्वार पाठ जब माना है, तब 'मोही'का अर्थ करना सर्वथा अयुक्त है।

४. छन्द ५६ के दूसरे चरणका पूर्वार्द्ध है—

"कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ़ि", इसका अर्थ लिखा गया है—"बन्दरोंका खिलाड़ी राजा कूदकर सोनेके कँगूरेपर चढ़ गया।"

'कपीस' शब्द यहाँ योगरूढ़ि है, पर मिश्रजीने उसका यौगिक अर्थ करके इस ढंगसे लिख दिया है कि सब गड़बड़ हो गया है।

५. छन्द ५९ का प्रथम चरण है—

"देखि ज्वाल जाल, हाहाकार दसकन्ध सुनि, कह्यो 'धरो धीर' धाये वीर बलवान हैं।"

'धरो धीर' का अर्थ मिश्रजीने लिखा है—"रावणने कहा कि बन्दरको पकड़ो अथवा धैर्य धरो।"

'बन्दरको पकड़ो' अर्थ कहाँ तक शुद्ध है, मिश्रजी ही जानें।

६. छन्द ६५ के चतुर्थ चरणका पूर्वार्द्ध है—

"तुलसी बढ़ाय बादि सालतें बिसाल बाहैं।" इसका अर्थ लिखा गया है—"हे तुलसी! वाद बढ़ाकर (फिज़ूल) बड़ी बाहुओंको सालते (नष्ट करते) हो, अथवा साल सी बड़ी बाहें व्यर्थ बढ़ाई हैं।"

प्रथम अर्थ अर्थ नहीं, अनर्थ है। विद्यार्थियोंको ऐसे अर्थोंसे हानि ही होगी, लाभ नहीं। 'साल' शब्द जहाँ क्रियावाचक होता है, वहाँ उसका अर्थ ऐसी मार होता है, जो शरीरके भीतर धँस जाय। 'साल' का अर्थ 'नष्ट करना' हमारे देखनेमें अभी तक नहीं आया है।

७. छन्द ७९ के चतुर्थ चरणका उत्तरार्द्ध है—

"कपीस कूद्यो बात घात बारिधि हलोरिकै।" मिश्रजी इसका अर्थ लिखते हैं—"हनुमान बात घात अर्थात् हवाके ज़ोरसे अथवा बात जात बातके कहनेमें (बहुत थोड़े समयमें) समुद्र हिलोरिके पार कूद गया अथवा बात-जात (हनुमान) कूद गया।" व्याख्या करना व्यर्थ है। सब अर्थ अशुद्ध हैं। शायद मिश्रजी इस पदका अर्थ ठीक प्रकार समझ नहीं सके। इसका सीधा और सरल अर्थ यह है कि हनुमानजी अपने वेगके पवनके आघातसे समुद्रमें लहरें उठाते हुए कूद गये। जो वस्तु जितने वेगसे आगे बढ़ती है, पवनका आघात भी उसके पीछे उतने ही वेगसे होता है। यह प्रतिदिनके अनुभवकी बात है।

८. छन्द ८० का उत्तरार्द्ध है—

"बाटिका उजारि अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानु-कुल-भानुको प्रताप-भानु भानु सो।
करत बिसोक लोककोकनद, कोक-कपि,
कहैं जामवन्त आयो आयो हनुमान सो॥"

मिश्रजी लिखते हैं—"रामचन्द्रजीका प्रतापरूपी भानु, सूर्यकी तरह, सकल जगतरूपी कमल और चक्रवाकको प्रसन्न करता हुआ कपि (हनुमान) आया।...."

हमारे विचारसे यह अर्थ अशुद्ध है। इसका अर्थ होना चाहिए—"रामचन्द्रजीके प्रतापरूप सूर्यको सूर्य-सदृश हनुमान, लोकरूपी कमल और कपिरूपी चक्रवाकोंको शोक-रहित अर्थात् प्रसन्न करते हुए आये। इत्यादि।

९. छन्द ८७ में एक पद है—"लोकपतिकोकसोक।"

इसमें आये 'लोकपति' शब्दका अर्थ 'लोकपति (दिग्गजों)' मिश्रजीने किया है। यह ठीक नहीं है। 'लोकपति' या 'लोकपाल' इन्द्र, वरुण और कुबेर आदि कहे जाते हैं, हाथी नहीं।

१०. छन्द ९३में एक वाक्य है—"मूँदे कान जातुधान"। मिश्रजीने इसका अर्थ लिखा है—"सब राक्षसोंने अपनी-अपनी आँखें मूँद लीं।" 'कान' के स्थानपर 'आँख' कैसे हो गया, भगवान ही जाने!

ऐसा ही अन्धेर छन्द १३६में भी हुआ है। वहाँ एक पद है—"घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम।" इसके अर्थमें मिश्रजीने लिखा है—"लक्ष्मणजीको घायल सुनकर", यहाँ भी आँख-कानका झगड़ा है। 'देखकर' के स्थानपर 'सुनकर' लिखा गया है, जो अशुद्ध है।

११. छन्द ३३ में दूसरे चरणका उत्तरार्ध है—

"पुट सूखि गये मधुराधर वै।"

इसका अर्थ मिश्रजी लिखते हैं—"और मधुर ओंठ कपड़ेकी भाँति सूख गये।" एक तो 'पट्ट' के स्थानपर आपने 'पुट' पाठ छपवाया है, फिर उसका अर्थ कपड़ा किया है। अहो अनर्थ परम्परा।

१२. छन्द १०३ का तृतीय है—

"आइगे कोसलाधीस तुलसीस जेहि छत्र मिसि मौलि दस दूरि कीन्हे।" इसका अर्थ मिश्रजी लिखते हैं—"प्रभु रामचन्द्र आ गये, जिनपर महादेवका छत्र है, जिनके लिए तुमने दस सिर दूर किये (अर्थात् जिन महादेवपर तुमने अपने सिर चढ़ा दिये थे, वही रामचन्द्रपर छत्र किये हैं), अथवा जिन्होंने छत्रके बहाने दसों सिरोंको गिराया था।"

अथवासे पहलेका अर्थ पढ़े-लिखोंको घपलेमें डाल देनेवाला है, विद्यार्थी तो इस अर्थको समझ भी नहीं सकेंगे। पहला अर्थ हमारे विचारसे अर्थ नहीं, अनर्थ है।

इस प्रकार इस टीकामें अनर्थोंकी भरमार है। यह एक दर्जन उदाहरण प्रारम्भके १०३ छन्दोंके भीतरके हैं। शेष २२२ छन्दोंमें अभी बीसियों छन्द ऐसे हैं, जिनके अर्थोंमें बड़ी गड़बड़ी विद्यमान है। स्थानाभावसे इतने ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

यह 'कवितावली' प्रयागके प्रसिद्ध प्रेस इंडियन प्रेससे प्रकाशित हुई है, और वहीं मुद्रित भी हुई है, इसलिए इसकी छपाई-सफाई और सुन्दरताके सम्बन्धमें कुछ कहना व्यर्थ है। ज़िल्द सुन्दर और मज़बूत बँधी हुई है। उसपर एक आवरण पृष्ठ और दिया गया है। इतनेपर भी मूल्य १॥) है।

—श्री भूदेव शर्मा विद्यालंकार

'जीवन और उपदेश'—लखनऊ-निवासी श्रीमत् मदंत बोधानन्दजी महास्थवीर इसके विचार और सामग्रीदाता हैं। बर्मानिवासी माननीय श्रीयुत उत्तमा भिक्षुजी इसके संशोधक और श्रीयुत पं० चन्द्रिकाप्रसादजी जिज्ञासु इसके लेखक तथा सम्पादक हैं। मूल्य २) और प्राप्ति-स्थान—"हिन्दू-समाज-सुधार-कार्यालय, सआदतगंज रोड, लखनऊ।"

यह संक्षिप्त उपदेशात्मक जीवनी मूल बौद्ध-ग्रन्थोंके आधारपर बौद्ध-महात्माओंके विचारोंके अनुसार, बौद्ध-भावोंसे आपन्न होकर लिखी गई है।

महापुरुषोंके चरित्र समय-सिकतापर वह चरण-चिह्न हैं, जो संसारमें भूले-भटके हुए जीवन-पथके पथिकोंके लिए पथ-प्रदर्शन रूप हैं, यह कथन महात्मा बुद्धकी जीवनीमें विशेषरूपसे लागू है। कौन ऐसा कठोर हृदय होगा, जो इन महात्माके करुण स्वभावसे न प्रभावित हो; कौन ऐसा परमार्थकी प्राप्तिमें हताश होगा, जो इन महात्माके उस दृढ़संकल्पको देखकर जिसके द्वारा उन्होंने बुद्धत्व लाभ करके ही छोड़ा, फिरसे उठकर चलनेके लिए कटिबद्ध न हो; कौन ऐसा मूढ़ात्मा होगा, जो परमार्थके लिए उनके राज्य-परित्याग, मार-विजय आदि उदाहरणोंसे लाभ न उठावे; संक्षेपतः कौन ऐसा चरित्रहीन होगा, जो उनको और उनके उपदेशोंको आदर्श बनावे और फिर भी अपने जीवनमें परिवर्तन न पावे? अतएव इन महात्माका चरित्र-चित्र इस पुस्तकके रूपमें जनताके समक्ष रखकर इसके विचारदाता, लेखक तथा प्रकाशक महानुभावोंने धार्मिक जगत्का बड़ा उपकार किया है।

वैसे तो महात्मा बुद्धकी अनेक जीवनियाँ लिखी गई हैं, परन्तु इस पुस्तकका सम्पादन भक्तिभावसे प्रभावित सज्जनों द्वारा किया गया है, इसलिए इसकी अन्य विशेषताओंमें से एक विशेषता यह भी है कि इसमें यह दिखलानेका प्रयत्न किया गया है कि "बुद्ध भगवान्को उनके अनुयायी बौद्ध-शास्त्र और बौद्ध-जगत् किस दृष्टिसे देखते हैं।" यह प्रयत्न सराहनीय है तथा

इसमें बहुत-कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। यह स्पष्ट है कि बौद्ध-मतानुसार भगवान् बुद्ध न केवल जगत्के शास्ता, शासन करनेवाले थे, अपितु त्राता, संसारके तारनेवाले भी ; पर शर्त यह थी कि बुद्ध, धर्म और संघकी शरणमें आकर जीव भक्तिपूर्वक उनका माध्यमिक मार्ग ग्रहण करे, जो ठीक ही है।

भगवान् बुद्धका आविर्भाव ऐसे समयमें हुआ था, जब वैदिक अथवा ब्राह्मणिक आचार अत्याचारकी सीमाको पहुँच चुका था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।" इस भगवद्वाक्यको चरितार्थ करनेके हेतु एक बार फिर विष्णु भगवान संसारमें अवतरित हुए और इस बार तथागत बुद्धके रूपमें। "सोम-सुरा-पानसे उन्मत्त होकर पुरोहित लोग यज्ञ-मंडपमें यजमानोंकी स्त्रियोंके साथ लज्जाहीन विनोद करते थे," इत्यादि वाक्य द्वारा इस पुस्तकमें उस युगके ब्राह्मणिक धर्मपर कड़ी आलोचनात्मक दृष्टि डाली गई है। निस्सन्देह उस निर्दय ब्राह्मणिक युगके स्थानमें सदय युगान्तर उपस्थित करनेकी क्षमता रखनेवाले किसी ऐसे ही अलौकिक पुरुषकी आवश्यकता थी, जैसे कि दृढ़संकल्प प्रतिभाशाली तथा करुणावतार महात्मा बुद्ध।

इस पुस्तककी विषय-सूचीपर दृष्टिपात करने तथा इसके आद्योपान्त अवलोकनसे प्रतीत होता है कि इसमें बुद्ध, बौद्ध-मत तथा बौद्ध-युगसे सम्बन्ध रखनेवाले लगभग सभी विषयोंका संक्षिप्त रूपसे थोड़े स्थलमें समावेश कर दिया गया है। किन्तु इसके धार्मिक तथा दार्शनिक अंशपर विचार करनेसे मालूम होता है कि एक त्रुटि रह गई है, और वह यह है कि इसमें 'निर्वाण', 'परिनिर्वाण' और 'महापरिनिर्वाण' शब्द तो अनेक स्थलोंपर आये हैं ; परन्तु उनका क्या अर्थ है, यह समझना पाठककी रुचि तथा मतिपर छोड़ दिया गया है। उदाहरणार्थ, 'भगवानका अन्तिम निर्वाणदिवस' शीर्षक प्रकरणमें भगवानके शरीर-त्यागका वर्णन किया गया है, जिससे सर्वसाधारणको यह भ्रम हो सकता है कि 'निर्वाण'का अर्थ केवल 'मृत्यु' है। तथा इसी प्रकरणके अन्तिम शीर्षक 'भगवान्का महापरिनिर्वाण'के नीचे वर्णन किया गया है कि अपनी इस संसारकी स्थितिकी अन्तिम घड़ीमें भगवान् पहले ध्यानकी आठ भूमिकाओंसे उत्तीर्ण होनेके अनन्तर नवीं भूमिका अर्थात् 'संज्ञावेदयित्र-निरोध' (ज्ञाता और ज्ञेयकी अतीत अवस्था) में पहुँचकर विहार करने लगे। इसके उपरान्त भगवान् नवीं अवस्थासे क्रमशः उतरते हुए प्रथम ध्यानमें फिर लौट आये। तदनन्तर एक बार फिर क्रमशः प्रथम ध्यानसे उत्तीर्ण होते हुए उन्होंने चतुर्थ ध्यानमें प्रवेश किया और 'इसी चतुर्थ ध्यानके विहार-कालमें भगवान महापरिनिर्वाणको प्राप्त हुए', इससे भी स्पष्ट नहीं होता कि 'महापरिनिर्वाण' है क्या वस्तु ?

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि महात्मा बुद्धने लोक-हितार्थ जो धर्मचक्र प्रवर्तित किया, उसका केन्द्रिक अथवा ध्रुवीय सिद्धान्त निर्वाण ही है, और इसी विषयमें न्यूनाधिक शब्दार्थमूलक भ्रान्ति तथा मतभेद है। इस समय 'निर्वाण' शब्द 'बुझा हुआ', 'डूबा हुआ', 'मरा हुआ', शून्य हुआ हुआ' आदि अनेक रूढ़ियोंका बोधक माना जाता है ; पर तथागत महात्मा बुद्धने इसका किस अर्थमें प्रयोग किया, यह निश्चित कर दिया गया होता, तो अच्छा था। इसे केवल अनुभवका विषय और एक अनिर्वचनीय दशा समझकर कदाचित् इसकी यथातत्त्व व्याख्या शब्दोंमें करनी असम्भव समझी गई हो। तथापि बौद्ध-साहित्यमें इस विषयमें कुछ-न-कुछ कहा गया है। यथा माध्यमिक सूत्रमें "भव सन्ततिका उच्छेद ही निर्वाण है।" "रत्नसूत्रमें "राग, द्वेष और मोहके क्षयसे निर्वाण होता है।" वज्रच्छेदिकामें "निर्वाणकी प्राप्तिपर कोई संस्कार नहीं रह जाता।" यदि इन्हींके आधारपर भी इस पुस्तकमें एक 'निर्वाण' शीर्षक लेख सम्मिलित कर दिया गया होता, तो 'सोनेमें सुगन्धि'की लोकोक्ति चरितार्थ हो जाती।

परन्तु यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मणोंके संग भगवानका 'ब्रह्म-सायुज्य' विषयक रहस्यमय संवाद इस त्रुटिको कुछ-न-कुछ पूरा कर देता है। अपिच इससे महात्मा बुद्धके मस्तकसे विरोधियों द्वारा आक्षिप्त नास्तिकताके कलंकका टीका मिटकर बौद्ध-मतपर लगाया हुआ एक बड़ा भारी अपवाद भी हट जाता जाता है।* ब्राह्मणोंसे ब्रह्म-साम्राज्य लाभ करनेका सरल मार्ग पूछे जानेपर भगवानने प्रश्न किया—"क्या तीनों वेदोंके

* महापंडित त्रिपिटिकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायनका मत इस बारेमें लेखक महोदयसे भिन्न है। आशा है कि वे इस विषयपर विशेष प्रकाश डाल सकेंगे। —सम्पादक

ज्ञाता, तीनों वेदोंके वक्ता, तीनों वेदोंके शिक्षक, त्रिवेदाध्यायी प्राचीन ऋषि लोग अथवा वर्तमान ब्राह्मण लोगोंके सात पुरुषोंमें से किसीने भी उस ब्रह्मका साक्षात् दर्शन किया है ?" उत्तर मिला—"नहीं।" तब भगवानने कहा—"तो वे त्रिवेदविद् ब्राह्मण कैसे कहते हैं, जिसको वे जानते नहीं, जिसको उन्होंने कभी देखा नहीं, उसके संयोगका वह रास्ता बता सकते हैं ?…जो शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयोंके बन्धनसे बँधे हैं, जो काम, हिंसा, आलस्य, अभिमान और संशयके आवरणसे ढके हैं, ऐसे विघ्नोंसे ग्रसित, ब्रह्म-सायुज्य लाभ करनेके सद्‌गुणोंसे विरत और तद्विरुद्ध असद्‌गुणोंमें निरत रहनेवाले लोग मरनेके बाद ब्रह्म-सायुज्य लाभ करेंगे, यह बिलकुल असम्भव है। "क्या ब्रह्माके पास स्त्री है ?…धन है ?…क्रोध है ?…क्या वह अविशुद्धचेता और अवशीभूतात्मा है ?" उत्तर मिला—"नहीं।" "तो फिर जहाँ इस प्रकारके विपरीत गुण विद्यमान हैं, वहाँ दोनोंमें मेलकी सम्भावना कैसे हो सकती है ?"…"ब्रह्मलोकको किस पथसे जाते हैं, इस विषयमें तथागतको कुछ भी संशय नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्माके ब्रह्मलोकमें जानेके उपायको हम जानते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मलोकमें कौन प्रविष्ट हुआ है, किसने वहाँ जन्म ग्रहण किया है, यह सब हमें विदित है। तथागत इसीलिए लोक-शिक्षा और लोगोंको सत्पथ दिखानेके लिए समय-समयपर इस पृथिवीपर आते हैं।"…प्रातिमोक्ष (मोक्षके विपरीत) मार्गपर चलनेवाले व्यक्तिगण कभी भी ब्रह्म-सायुज्य लाभ नहीं कर सकते। नियमित धर्माचरणको करके जिन लोगोंके हृदयमें सम्पूर्ण भूतोंके प्रति असीम प्रेम, करुणा, सहानुभूति और समता प्रकट होती है, वे ही ब्रह्म-सायुज्य लाभ कर सकते हैं।…"ब्रह्माके पास स्त्री नहीं है, धन नहीं है, हिंसा नहीं है, अविशुद्धचित्तता नहीं है ; वे संयतात्मा हैं, और भिक्षु लोग भी उसी प्रकार हैं। अतएव भिक्षु लोग ही ब्रह्म-सायुज्य लाभ कर सकते हैं।"

महात्मा बुद्धके उपदेश तथा जीवन-सम्बन्धी जिन चुनी हुई आख्यायिकोंका इस पुस्तकमें समावेश किया गया है, उससे न केवल उस समयकी धार्मिक परिस्थितिपर प्रकाश डाला गया है, अपितु तत्कालीन राष्ट्रीय तथा सामाजिक दशाको भी झलकाया गया है। उनके चुननेमें भारतकी वर्तमान दशापर ध्यान रखा गया है, जिससे उनकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। आजकल आध्यात्मिक शक्तियोंमें विश्वास न रखनेवाले लोगोंके लिए चमत्कार-सम्बन्धी आख्यायिकाओंका मूल्य भले ही कम हो, किन्तु सदैव धर्म-प्रवर्तकोंने जीवोंको धर्मकी ओर आकर्षित करने तथा उनके लिए उसे रोचक बनानेके लिए दया करके किसी-न-किसी रूपमें चमत्कारोंको आवश्यक समझा है, और उनसे कुछ-न-कुछ लाभ ही पहुँचनेकी सम्भावना है। इसलिए महात्मा बुद्धकी जीवनीमें चमत्कारोंके समावेशमें किसीको कोई आपत्ति न होनी चाहिए। लेखक महाशयने इस विषयमें अपने निवेदनमें जो आशंका प्रकट की है, वह अनावश्यक है। इसमें तो किसीको आपत्ति न होनी चाहिए कि ऐतिहासिक दृष्टिसे यह पुस्तक उपयोगी है। इससे प्राचीन इतिहास तथा उस समयके उत्तर-भारतके राष्ट्रीय विभागों और उनकी शासन-पद्धतिका बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। स्वयं महात्मा बुद्धने निज श्रीमुखसे कुशीनगरका पूर्ववृत्त वर्णन किया है, जिससे मालूम होता है कि किसी समयमें यह एक समृद्धिशाली तथा धर्मानुसार शासित राज्य था और अब वह मल्लजातिके प्रजातन्त्र-शासनमें एक छोटासा राज्य था। तथा उन्होंने उस समयके छोटेसे पाटलिग्रामका भविष्य वर्णन करते हुए कहा कि "यह पाटलिग्राम पाटलिपुत्र कहावेगा तथा इसकी समृद्ध सभ्यता और वाणिज्य बढ़ेगा, और यह नगर सबसे श्रेष्ठ नगर होगा, पर अन्तको अग्नि-जल और गृह-विच्छेदके कारण इसका नाश भी होगा।" और जब मगधराज अजातशत्रुने वैशालीके वृजि लोगोंके प्रजातन्त्र-राज्यको ध्वंस करनेकी इच्छासे अपने महामात्य वर्षकारको बुद्धदेवके पास परामर्शके लिए भेजा, तब बुद्धदेवने उपदेश किया कि जब तक वृजि लोग (१) नियम-पूर्वक परस्पर मिलकर अपनी सभा करते रहेंगे, (२) मतभेद त्यागकर काम करते रहेंगे, (३) अपने बनाये नियमों, सदाचार और सभ्यताका पालन करते रहेंगे, (४) अपने यहाँके आदरयोग्य जनोंका आदर करते रहेंगे, (५) कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियोंका आदर-सम्मान करते हुए पर-स्त्री-सम्बन्ध नहीं करेंगे, (६) चैत्योंकी बन्दना और अपने पूज्य स्थानोंकी रक्षा करते रहेंगे और (७) अर्हत पुरुषों और धर्मोपदेशकोंकी रक्षा, पालन और यथोचित सत्कार करते रहेंगे, तब तक उनका अध:पतन नहीं हो सकता, अपितु उनकी वृद्धि ही होती रहेगी। इन राष्ट्रके सात अपरिहातव्य धर्मके रूपमें बुद्ध भगवान्

आजकलके स्वराज्य-प्रेमी राजनैतिकोंके लिए एक अच्छा नुस्खा छोड़ गये हैं।

जो कुछ ऊपर कहा गया है, इसके अतिरिक्त समाज-सुधारकोंके लिए भी इस पुस्तकमें पर्याप्त सामग्रीका सन्निवेश कर दिया गया है। वर्णोंके विषयमें बुद्ध भगवान्ने क्या ही धर्मोपदेशोचित कुशलतापूर्वक शिक्षा प्रदान की है। उसका एक उदाहरण चाण्डालोंके राजा त्रिशंकुकी कथामें पाया जाता है, और उसका एक अंश यह है—"मनुष्योंके ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि भिन्न-भिन्न नाम लेनेसे उनमें कोई भेद नहीं पैदा हो जाता। उनकी आँख, कान, नाक, मुख सब एक ही प्रकारके होते हैं। जिस प्रकारका भेद गाय, घोड़े, गदहे, भेड़, बकरी आदि पशुओंकी जातियोंमें एक दूसरेमें पाया जाता है, ऐसा कोई भेद मनुष्योंके चार वर्णोंमें नहीं दिखाई देता, केवल कर्मोंके अनुसार ही सब मनुष्य अपना-अपना वर्ण प्राप्त करते हैं। यह सब मानते हैं कि ब्रह्मासे मनुष्यकी उत्पत्ति हुई है, इससे तो यही सिद्ध होता है कि सब मनुष्य एक ही पिताकी सन्तान हैं, और वे एक दूसरेसे भिन्न नहीं हो सकते।"

ऐसे ही "वृषल (शूद्र) कौन है?" इस प्रश्नके उत्तरमें भगवानने वृषल बनानेवाली अनेक असद्वृत्तियों तथा दुर्गुणोंको गिनाते हुए कहा—"जिसने ब्रह्मका साक्षात्कार नहीं किया है और न ब्रह्ममें जिसकी स्थिति ही है, किन्तु झूठमूठ अपनेको मिथ्या अहंकारसे 'ब्राह्मण' कहता है, उसके समान मृत्युलोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त कोई भयंकर ठग और महाचोर नहीं हो सकता, वही महानीच और वृषलाधम है।"

जब अनिरुद्ध आदि छः शाक्य-राजकुमार और उनका सेवक 'उपाली' नापित भगवानके समीप दीक्षित होनेके लिए गये, तब भगवानने यह समझकर कि प्रव्रजित होनेपर भी राजकुमार कहीं उपाली नापितका अपमान न करें, उसे सबसे पहले दीक्षा दी, जिससे वह बौद्धधर्मकी मर्यादाके अनुसार उन सब राजकुमारोंसे धार्मिक क्षेत्रमें ज्येष्ठ और उनके सम्मानका पात्र हो गया, और बादको भगवानकी कृपासे वही 'विनयपिटक'का आचार्य हुआ। इसी तरह भगवानने चांडाल-तनया 'प्रकृति' को दीक्षा प्रदानकर उसे अपने भिक्षुणी-संघमें सम्मिलित कर लिया। और जब वृजि लोगोंने प्रार्थना की—"हे भगवान्! कल आप भिक्षुसंघ-समेत हम लोगोंके घर भोजन करें," तब भगवानने उत्तर दिया—"कलके लिए तो हम आम्रपालिका गणिकाका निमन्त्रण स्वीकार कर चुके हैं।" इन घटनाओं द्वारा करुणावतार भगवान् बुद्धने अपनी भक्तिवत्सलता तथा समदर्शिताका परिचय देते हुए यह सिद्ध कर दिया कि 'जाति-पाति पूछै नहिं कोई, हरिको भजे सो हरिको होई।'

इस पुस्तकके अवलोकनसे यह भी ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्धद्वारा प्रवर्तित धर्ममें जहाँ चार वर्णोंको स्थान नहीं है, वहाँ ब्राह्मणोंसे संस्थापित चार आश्रमोंके लिए भी कोई स्थान नहीं है। हाँ, इस धर्मके अनुयायियोंके दो विभाग किये जा सकते हैं—एक प्रव्रजित भिक्षु-संघ, दूसरे शरणापन्न गृहस्थ उपासकगण। इनमें भिक्षुसंघ ही निर्वाण पदका अधिकारी समझा जा सकता है, और शरणापन्न उपासकगण अधिकसे अधिक मरनेके पश्चात् स्वर्गको प्राप्त होकर दिव्य सुखोंका भोग करते हैं।

साहित्यिक दृष्टिसे भी इस रचनाका उच्च स्थान है। विषय-विन्यास चरित-नायकके जीवनकी घटनाओंके क्रमसे अनुबद्ध है। भाषाके विषयानुसारिणी तथा अनुवादित होने, अतएव पाली तथा संस्कृत—विशेषत: पारिभाषिक—शब्दोंके अनिवार्य प्रयोगके कारण कहीं-कहीं अर्थ सर्वसाधारणके लिए दुर्बोध मालूम होता है। जैसे—"सम्बुद्ध होकर भगवानने यह 'उदान' कहा"—"इस भवरूप संसारमें अनेक जन्म लेकर मैं भ्रमण करता बराबर 'गृहकार'को ढूँढ़ता रहा और बार-बार जन्म लेनेके दुखोंको सहता रहा, किन्तु अब मुझे 'गृहकार' दिखाई दिया और अब मुझे गृह' करना शेष नहीं रहा। अब मेरे सब बन्धन टूट गये और गृह-रूपी शिखर चूर्ण हो गया एवं संसारकी सभी वासनाओंका विनाश हो जानेसे मेरा चित्त निर्वाण-पदमें प्राप्त हो गया।" यहाँ 'उदान' शब्द क्लिष्ट है; 'गृह' क्या है और 'गृहकार' कौन है, यह अस्पष्ट है; और यह प्रश्न उठता है कि वासनाओंके विकाससे निर्वाण-पद मिलता है, अथवा वासनाओंका विनाश ही निर्वाण-पद है; कौन-सा अर्थ भगवान्के मूल वाक्य "विसंखारगतं चित्तं तराहानं खयमज्झगा"से संगत है; परन्तु लेखक महाशयने हिन्दीमें बौद्ध-भावोंको हिन्दू-समझ बूझकी शैलीमें प्रकट करनेकी चेष्टा अवश्य की है। और कहीं-कहीं पारिभाषिक

तथा कठिन शब्दोंका अर्थ भी कोष्ठकमें दे दिया गया है। जो हो, पुस्तकके गुणोंको देखते हुए इन कतिपय त्रुटियोंकी उपेक्षा की जा सकती है। यहाँपर इन त्रुटियोंका उल्लेख केवल सुधारकी आशासे ही किया गया है, यदि सुधार आवश्यक समझा जाय। समस्तरूपेण पुस्तककी भाषा टकसाली, भूषा उपयोगी तथा छपाई-सफाई उत्तम है।

निस्सन्देह अपने बहुसंख्यक धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और साहित्यिक गुणोंके विचारसे यह पुस्तक हिन्दू-समाजके लिए परमोपयोगी तथा हमारी मातृभाषा प्रगतिशीला हिन्दीके लिए गर्व और गौरवका हेतु सिद्ध होगी।

—बी० दास, एम० ए०

[उपमंत्री राधास्वामी सेंट्रल सत्संग, दयालबाग, आगरा]

'प्रताप पीयूष'—स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्रके लेखों और कविताओंका संग्रह ; संग्रहकर्ता, श्री रमाकान्त त्रिपाठी, एम० ए० ; प्रकाशक, सिटी-बुक-हाउस, कानपुर ; मूल्य १॥) सजिल्द ; पृष्ठ-संख्या २२२ ; छपाई-सफाई अच्छी।

उन्नीसवीं शताब्दीका अन्तिम चतुर्थांश हिन्दी-साहित्यमें एक युगान्तर-काल था। भाषा—विशेषकर गद्य—एक नया जानदार रूप ग्रहण कर रही थी। धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य आदि सभी क्षेत्रोंमें नये विचार, नई लहरें, नये परिवर्तन, नये रंग-ढंग तेज़ीसे बढ़ रहे थे। इस परिवर्तनकालमें हिन्दी-साहित्यके रंगमंचपर जो मूर्तियाँ प्रकट हुईं, उनमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र एक विशेष स्थान रखते हैं। तत्कालीन साहित्य-क्षेत्रमें मिश्रजी जैसी उदारता, सहृदयता, मौलिकता, ज़िन्दादिली, आज़ाद-ख़याली और रंगीन मिजाज़ी केवल बाबू हरिश्चन्द्रके सिवा और किसीमें भी नहीं दीख पड़ती। एक आज़ाद-खयाल, मगर पाक, रिन्दका जो काल्पनिक चित्र उर्दू कवियोंने खींचा है, मिश्रजी उसके जीते-जागते नमूने थे। वे उन आत्माओंमेंसे थे, जो अपनी ज़िन्दादिलीसे जहाँ रहती हैं, वहीं नई जिन्दगी फूँक देती हैं। उन्हें गद्य-पद्य, हिन्दी-उर्दू, खड़ी बोली और शुद्ध बैसवाड़ीपर पूरा अधिकार था। हिन्दीके लिए बड़ी लज्जाकी बात है कि मिश्रजीके समान प्रतिभाशाली व्यक्तिका अच्छा जीवन-चरित्र और उनकी उत्तमोत्तम कृतियोंका संग्रह अब तक प्रकाशित नहीं हो पाया था। पं० रमाशंकर त्रिपाठीने इस संग्रहको प्रकाशित करके एक बड़े भारी अभावकी पूर्ति की है। इस सुन्दर पुस्तकके लिए हिन्दी-संसार उनका कृतज्ञ रहेगा।

पुस्तककी प्रस्तावनामें संग्रहकर्ता महाशयने प्रतापनारायणजीका जीवन-चरित और उनके स्वभाव तथा विचारों आदिके वर्णनके साथ-साथ उनकी शैली, रचना, कविता आदिकी भी यथोचित विवेचना की है। संग्रहमें मिश्रजीके पचीस गद्य लेख और निबन्ध तथा सत्रह कविताएँ संग्रहीत हैं। मिश्रजी अपनी ज़िन्दादिली और विनोद-प्रियताके कारण एक लोकप्रिय लेखक और कवि कहे जा सकते हैं। उनका बुढ़ापा-वर्णन, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान, तृप्यन्ताम आदि कविताएँ तो हज़ारों हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी ज़बानपर रहती थीं, और हैं। हम त्रिपाठीजी तथा सिटी-बुक-हाउसको इस सुन्दर प्रकाशनके लिए पुनः धन्यवाद देते हैं। —ब्रजमोहन वर्मा

प्राप्ति-स्वीकार

निम्न पुस्तकें समालोचनाके लिए प्राप्त हुईं—

'आदर्श भक्त'—श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर ; मूल्य ।-)

'भक्त कुसुम'—श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर ; मूल्य ।-)

'भक्त चन्द्रिका'—श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर ; मूल्य ।-)

'भक्त सप्तरत्न'—श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर ; मूल्य ।-)

'हिन्दू धर्म-रहस्य'—स्वामी अचलरामजी, प्रकाशक, अचलाश्रम, जोधपुर ; मूल्य १)

'सन्ध्या-विज्ञान'—स्वामी अचलराम, प्रकाशक, नेनूराम सांखला, सुपरिन्टेन्डेन्ट फरासखाना, जोधपुर ; मूल्य ॥≈)

ग्राहकोंसे

नये और पुराने सभी ग्राहकोंसे निवेदन है कि वे साल-भरके लिए ६) रु० और ६ मासके लिए ३) रु० चन्दा भेजा करें। मूल्यमें किसीको भी किसी प्रकारकी कमी-बेशी नहीं की जाती। जो सज्जन निर्धारित मूल्यसे कम-बढ़ भेजेंगे, उनका चन्दा आठ आना मासिकके हिसाबसे जमा किया जायगा ; जैसे—५) रु० दस मासके लिए, अथवा ६॥) रु० तेरह मासके लिए जमा किया जायगा। —मैनेजर

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १३, अंक २] फागुन १९९० : : फरवरी १९३४ [पूर्ण-अंक ७४.

भूकम्प-पीड़ित बिहार

श्रीराम शर्मा

गत जनवरीकी १५ तारीख़ थी, और तिथि थी माघकी अमावस्या। मध्याह्नके दो बज चुके थे। पटनेसे निकलनेवाले 'योगी' के प्रथमांकके लिए लेख लिखने बैठा था। कुछ ही पंक्तियाँ लिखी होंगी कि ज़ोरकी घरघराहट हुई। लखनऊकी बात थी। ख़याल हुआ कि हवाई-जहाज़ या मोटरका शब्द है; पर उस विचित्र शब्दके उपरान्त पैर काँपे। क़लम थामकर कुरसीपर से लटकती टाँगोंको ऊपर किया और पालती मारकर कुरसीपर बैठा, तो कुरसी इतनी डगमगाई कि गिरते-गिरते बचा। "अरे भूकम्प हो रहा है।"—कहकर पास बैठनेवाले लोगोंको मैंने सचेत किया, और मकानोंकी ओर जो नज़र डाली, तो सब डगमगाते और थरथराते दिखाई दिये। लेखका लिखना तो स्थगित करना पड़ा, और वे सवा दो मिनट एक तमाशेकी सामग्री बन गये।

अगले दिन समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि बिहारमें भूकम्पका वेग बहुत उग्र था, और उससे धन और जनकी कुछ क्षति भी हुई है। धन और जनकी 'कुछ क्षति' होना परतन्त्र देशके लिए कोई असाधारण बात नहीं—यह सोचकर भूकम्पकी बात आई-गईसी कर दी; पर एक सप्ताहके उपरान्त बिहारके रोमांचकारी समाचार पढ़कर हृत्कम्प हो उठा, और तबीयत यह जाननेके लिए बिलबिलाई कि आख़िर बिहारकी स्थिति क्या है? तारघरोंसे जकड़े हुए शहरोंका कुछ समाचार छै-सात दिन उपरान्त मिल सका, तो डाक, सड़क और तारकी दुनियासे दूरके स्थानोंकी क्या दशा होगी? भूकम्पसे बिहारकी समस्याकी दिशा क्या होगी? क्या खेती-बारीपर भी भूकम्पके प्रकोपका कुछ प्रभाव पड़ेगा? क्या शहर और गाँवोंकी समस्या एक ही है? भूकम्प-पीड़ित बिहारकी सहायता (Relief) और पुनरुद्धार (Reconstruction) का रूप क्या होगा? ऐसे ही अनेक प्रश्न दिमाग़में चक्कर खाने लगे, और साथ ही अँतड़ियोंके फोड़े (Appendicitis) के चीरेके लिए कलकत्ते जानेकी भी तैयारी की।

× × ×

गत ३० जनवरीको 'लीडर' प्रेससे चलकर बी० एन० डब्ल्यू० रेलवेसे मुज़फ्फ़रपुरको रवाना हुआ। गार्ड और टिकट-चेकरोंसे बीसों बार पूछा कि मुज़फ्फ़रपुरके लिए बलिया और छपरा होकर सीधा रास्ता ठीक है, अथवा चक्कर काटकर भटनी होकर जाना ठीक रहेगा। प्रायः सभीने बलिया होकर ही जानेको कहा, और यह सूचना दी कि सरयू नदीका पुल टूट गया है; पर

वहाँपर स्टीमर है। नदी पार रेल तैयार मिलेगी, जो मुज़फ्फ़रपुर पहुँचा देगी। ई० आई० आर०के अभ्यस्त यात्रीको गिंजाईकी-सी चाल चलनेवाली बी० एन० डब्लू० की ट्रेनकी गति बहुत अखरती है; पर बिहारकी समस्यापर मेरी पत्रकार-कला-बुद्धि एकाग्र होकर लगी हुई थी। जल्दीमें प्रयागसे फल भी लेकर न रखे थे, और मार्गमें ही कुछ लेकर पेट भरनेकी सोची थी; पर मार्गमें फल न मिले। सूर्यास्तके समय ढिलमिल रेलगाड़ीने बकुलहा स्टेशनपर ला उतारा। बकुलहा स्टेशनसे सरयू-तट एक मील तक पैदल जाना था। कुली किया और सरयूदेवीके चरणोंमें शीश झुकाया। युक्तप्रान्त और बिहारकी सीमा इस ओर सरयू ही है, और इसी स्थानसे भूकम्पके प्रकोपका प्रमाण मिलने लगा। अति दृढ़ रेलवे पुलके एक भागको पृथिवीके एक ही धक्केने विशाल स्तम्भोंसे अलग ऐसे फेंक दिया है, जैसे कोई व्यक्ति अपने सिरसे टोपीको एक झटकेमें दूर फेंक दे। नदी-किनारे पहुँचकर मल्लाहोंको पुकारा। स्टीमर दूसरी ओर सरयूकी तरंगोंपर कल्लोल कर रहा था। नावमें बैठा, तो पूर्णिमाका चाँद पूर्वकी ओरसे चमचमाया। तारिका मोतियोंसे गुम्फित और विशाल भालपर शशि-बेंदीसे शोभित पूर्णिमाकी रजनी सरयूके सौन्दर्यको देदीप्य करती कुछ कँपकँपाती-सी विराजमान थी। सरयू पार दो फ़र्लांगकी दूरीपर माझी स्टेशन पहुँचा। स्टेशनपर सन्नाटा छाया हुआ था। वहाँसे अगले दिन दोपहरको गाड़ी मिल सकती थी; पर माझी स्टेशनसे पाँच मीलकी दूरीपर रैंबेलगंज स्टेशनसे प्रातःकाल पाँच बजे गाड़ी छूटती थी। कुलीपर सामान लदवाकर रैंबेलगंज स्टेशन रातके साढ़े नौ बजे पहुँचा। दिन-भरका फ़ाक़ा था। रेलगाड़ीमें बिस्तरा लगाकर पड़ रहा।

३१ ता० के प्रातःकाल छपरा पहुँचा, और छत्तीस घंटे उपरान्त चाय और टोस्ट खाया। जब हज़ारों बिहारी भाई अपने प्यारोंसे बिछुड़ गये हों और सेकेंडोंमें श्रीहत हो गये हों, तब किसी भी पत्रकार क्या, किसी भी व्यक्तिके लिए छत्तीस घंटेकी भूख कोई मानी नहीं रखती। छपरेसे गाड़ी बदलकर सोनपुर आया। काफ़ी दिन चढ़ आया। मुज़फ्फ़रपुरकी ओर गाड़ी जो चली, तो रेलके निकटवर्ती पक्के मकानोंके खंडहर दिखाई पड़ने लगे। मालूम होता था कि वायुयानसे मकानोंपर बम बरसाये गये हों। मुज़फ्फ़रपुर स्टेशनके निकटवर्ती स्टेशन तुर्कीसे तो विचित्र ही दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। रेलवे लाइनके दोनों ओर पटरी (Embankment) में मीलों लम्बी और तीन-चार इंच चौड़ी दरारें दिखाई दीं। भूगर्भजन्य दबावसे ज़मीन फट गई थी। पत्थर और सीमेंटकी पुलियोंमें भी दरारें थीं। मन्दगतिसे रुक-रुककर रेलगाड़ी दोपहरके बारह बजे मुज़फ्फ़रपुर पहुँची। इक्केमें बैठ केन्द्रीय रिलीफ़ कमेटीके दफ्तरकी ओर बढ़ा, तो झोंपड़ोंके झुरमुटसे दिखाई पड़े। अदालतके अहातेमें मधुमक्खियोंके छत्तेकी भाँति झोंपड़ियाँ पड़ी थीं। प्लेग-पीड़ित शहरका-सा दृश्य था। रिलीफ़ कमेटीके प्रकाशन-विभागमें सामान रखा। केमरा लेकर शहरमें घूमने निकला। उफ़! कितना भयानक दृश्य था! मुज़फ्फ़रपुरकी कमनीय छबि मर्दित पड़ी थी। जहाँ पहले सुगन्धित पुष्प था, वहाँ टूटी-फूटी पंखड़ियाँ-सी पड़ी थीं। मुज़फ्फ़रपुर बस खँडहरोंका एक ढेर रह गया है। सरैयागंज रोडसे छाताबाज़ार, सदरथाना, जुम्मामसजिद, नयाबाज़ार, जेल, चतुर्भुजस्थान, गुदरी, पुरानाबाज़ार और कल्याणी मुहल्लों और स्थानोंके देखनेमें मैंने साढ़े तीन घंटे लगाये। पैदल घूमा और अनेक लोगोंसे बातचीत की। सैकड़ों मकान चूर हो गये हैं। जो बचे हैं, वे रहने लायक़ नहीं। बड़ी-बड़ी दरारें काटनेको दौड़-सी रही थीं। नगरकी वसुधा लुट चुकी थी। वर्षोंके परिश्रम, इंजीनियरिंगके आदर्श नमूने और निर्माण तथा ललित-कलाकी संचित विभूति, जिनपर मनुष्योंने गर्व किया था, दो धक्कोंमें ही मिट्टीमें मिलकर

विलख रही थीं। केमरेसे मैं फोटो लेता जाता था; पर अट्टालिकाओंके भग्नावशेष मेरे रोलेफ्लक्स केमरेकी क्लिकके साथ कराहते-से प्रतीत होते थे। लोगोंके क्लान्त वदनसे दिलमें चोट लगती थी। जिस-जिस बाज़ारमें गया, वहाँपर वेदनाकी आह थी। अदृश्य रूपसे मकानोंकी टूटी और फूटी दीवारोंकी आत्मा दर्द-भरी आहमें सिसक रही थी—

"मेरा रंग-रूप बिगड़ गया,
मेरा इश्क़ मुझसे बिछड़ गया,
जो चमन ख़िज़ाँसे उजड़ गया,
मैं उसीकी फ़सले बहार हूँ।"

मन्दिरों और मसजिदोंके साथ मुज़फ्फ़रपुरके तीन हज़ारसे कुछ अधिक मानवी मन्दिर समाप्त हो गये। भोजन करके नगरनिवासियोंने न-जाने क्या-क्या मंसूवे बाँधे होंगे। भाई-बहनसे मिलकर गये होंगे। स्नेहमयी माताओंने अपने शिशुओंको दुग्धपान कराकर थपकियाँ देकर सुलाया होगा और उनके लिए मनौती मनाई होगी। पति और पत्नीके पारस्परिक प्रेमसे कितने घर पवित्र हो रहे होंगे कि एकदम कम्प हुआ और भगदड़ मची। ज़मीन हुंकारी और अरररधम दीवारें गिरने लगीं। तीन-चार दर्दनाक घटनाएँ सुनीं। दिल उमड़ आया। आँसू निकल पड़े। आँखें पोंछकर आगे बढ़ता गया। चित्रवत् खड़ा चित्र लेता रहा। और बातें सुननेके लिए कलेजा ही न था। मुज़फ्फ़रपुरमें कोई डाक्टर भाया थे। अदालतसे लौटकर भोजन करके सो गये। भूकम्प हुआ। घबराकर उठे। अपने छोटे-छोटे तीन या चार बच्चोंको बाहर कर गये। एक बच्चा मकानके भीतर रह गया था। वह, और शायद उनकी प्यारी पत्नी भी, छोटे बच्चेको लेने गये। फिर बाहर नहीं आये! एक या दो दिन बाद उनके अधीन नौकर डाक्टर साहबकी सुध लेने आये। मकानके खँडहरोंके बाहर तीन बच्चे बिलख-बिलखकर रोकर सहमे पड़े मिले, और उनके आधार—प्रेम-पुंज—डाक्टर भायाकी एक टाँग ईंटोंके ढेरमें से दिखाई पड़ रही थी। प्रेमकी अन्तिम हूककी वह सिगनल देखा न जाता था। पृथिवीकी एक ही करवटने उन बच्चोंका सब कुछ लूट लिया।
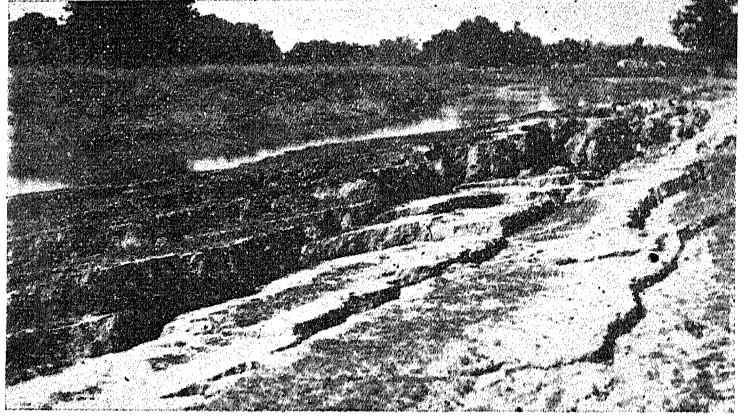
सीतामढ़ीके पास भूमिमें फटी हुई दरारें
[यह चित्र तथा साथके अन्य चित्र लेखक द्वारा लिये गये थे]

एक सब-जज साहबकी स्त्री मकानके बाहरसे बच्चेको लेनेको भीतरकी ओर भागीं, और इतने ही में मकानने उन्हें वहीं दफ़ना दिया। एक ग़रीब स्त्रीकी कथा सुनकर सिर चकरा गया। बच्चा बरामदेमें खेल रहा था। उसकी माँ बाहर काम कर रही थी। भूकम्प होते ही और अन्य मकानोंके गिरनेको देखकर वह बच्चेको लेने दौड़ी। बच्चा भी मुसकराकर उसकी ओरको भागा। माँ और पुत्रका कितना प्रेमपूर्ण मिलन था। ऊपरसे छज्जा गिरा। बच्चेका सिर और धड़ माँकी गोदमें था, और पेट एवं टाँगोंका भुर्ता हो गया। माँकी आँखोंके दुलारे तारेका निर्वाण हो गया। धक्केसे आँखें निकल पड़ीं। कराह और गरम आँसुओंकी बूँदोंके अतिरिक्त और कुछ न था। पता नहीं, अभागी दुखिया माँ जीवित है या नहीं।

सहायक समितिके एक अस्पतालको देखकर रिलीफ़ कैम्पमें आया। भोजन करनेको जी न चाहता

था ; पर कई मित्रोंके आग्रहसे सिक्खोंके लंगरमें भोजन किया। रातको, मुज़फ्फ़रपुरके सब कुछ, और दिनको दिन और रातको रात न माननेवाले प्रसिद्ध कार्यकर्ता, बाबू रामदयालुसिंहजी और दृढ़ता एवं अटल निश्चयके आकृतिधारी नारायण बाबू, एक्स एम० एल० ए०, से भेंट हुई। दोनों ही महाशयोंके नामसे मैं परिचित था। भूकम्पजन्य बिहारकी स्थितिपर बहुत देर तक दोनों सज्जनोंसे खूब बातें हुईं। प्रकाशनकी कमी और तत्सम्बन्धी अनेक त्रुटियोंपर मैंने कई मित्रोंसे बातें कीं। उचित प्रकाशन-कार्य प्रत्येक आन्दोलन और देशकी प्रत्येक प्रगतिकी जान होता है। अस्तु, अगले दिन देहातकी दशा देखने जानेका मैंने निश्चय किया। सीतामढ़ीकी भयंकरताकी खबर मुज़फ्फ़रपुरमें आ चुकी थी। उधर ही जानेका निश्चय किया ; पर अगले ही दिन रामदयालु बाबू भी देहातोंकी दशा देखने जानेवाले थे। नारायण बाबूके इस प्रस्तावको कि मैं भी उन्हींके साथ चलूँ, मैंने सहर्ष स्वीकार किया, इसलिए नहीं कि बिना उनके मैं घूमने जा ही नहीं सकता था, वरन् इसलिए कि बिहारकी भूकम्पजन्य विषम समस्याके कुछ पहलुओंको समझनेमें मैं उनसे मनमाने प्रश्न कर सकता था।

कटरा थानेके समीप भूचालजनित जलमुखियाँ, जिनसे पानी और बालू निकलती थी

प्रलयकारी दृश्य

पहली फ़रवरीको हम लोग मोटरसे देहातकी ओर समस्तीपुरकी सड़कपर चले। साथमें एक और मोटर थी, जिसमें सेठ देवीदास हरगोविन्ददास शाह थे। मुज़फ्फ़रपुरसे छै-सात मीलकी दूरीपरसे भूकम्पके प्रकोपका अनुमान हो सका, और दरभंगावाली सड़कपर आते ही तो ऐसा दृश्य दिखाई पड़ा कि दिमाग़ चकरा गया। हम लोग मुज़फ्फ़रपुरके अन्तर्गत कटरा थानेकी सीमामें आ चुके थे। भूकम्पकी चपेटके मारे सड़क कुचली पड़ी थी। चुटीला साँप जैसे बल खाकर बिलबिलाता है, वही गति सड़ककी थी। भूकम्पकी चोटसे कहीं तो वह भीतर धुस गई थी, जैसे लाठीकी चोटसे कोई साँपकी कमर तोड़ दे। कई पुलियाँ तो ग़ायब ही हो गई थीं। बस, खीस काढ़े कुछ ईंटें दिखाई पड़ती थीं, और पुलियाके पूर्व अस्तित्वका पता देती थीं। कहींपर सड़क करवटके बल धसक गई थी ; कहींपर मरोड़ी हुई-सी थी ; कहींपर बहुत ऊँची हो गई थी—गर्ज़े कि दाएँ, बाएँ, ऊपर और नीचे—सभी ओरको वह घटी-बढ़ी थी।

पानीका कुछ कहना ही नहीं। कहीं-कहीं तो जहाँ तक नज़र जाती थी, पानी ही पानी दिखाई पड़ता था। पानी बरसात या नदीका न था। ज़मीनसे फूट पड़ा था। नारंगीको जैसे कोई मुट्ठीमें रखके ज़ोरसे दाब दे और उसमें से चारों ओरसे रस निकल पड़े, वैसा ही कुछ ज़मीनके भीतरसे हुआ था। वह किस प्रकार हुआ और उससे कितना और कैसा आतंक फैला, उसकी कल्पना तनिक कीजिए। लोग घरोंमें व्यस्त हैं। कुछ खेतोंपर काम कर रहे हैं। बहुतसे अमावस्याके कारण नदी-तटसे लौट रहे हैं। ज़मीन हुंकारी। लोग दहल गये। कम्प हुआ, और इतने

वेगसे कि पेड़ोंसे बन्दर तक गिर गये। चलते-फिरते आदमी डगमगाकर गिरने लगे। धरती फटी, हिली, डुली, मुँह फाड़े हुए दरारें निकलीं और फर्लांगों दूर तक बढ़ती चली गईं। खेतों, सड़कों और कहीं-कहीं घरोंमें जलमुखी बन गईं, और चार-चार फ़ीटसे पन्द्रह-पन्द्रह फ़ीट ऊँचे बालू और पानीके फ़व्वारे छूटने लगे, और बातकी बातमें खेत और अन्य स्थान जलमग्न होने लगे। लोग भयभीत थे, और ठीक ही भयभीत थे।

भूचालसे सूखी भूमि सरोवर बन रही है!

चारों ओरसे प्रलयका दृश्य हो गया, और सो भी अचानक। लोग कितने आतंक-पीड़ित होंगे—इस बातकी कल्पना भूकम्प-पीड़ित स्थानोंको देखे बिना नहीं हो सकती। एक-एक खेतमें दर्जनों जलमुखी (Water Craters) थीं। ज़मीन फटी और बालू और पानीका फ़व्वारा छूटा। जलस्रोतके चारों ओर बालूके, कुम्हारके पहिए-से बन गये। जलमग्न खेतोंमें पानीसे उठी जलमुखियाँ विचित्र दृश्य उपस्थित कर रही थीं।

तीन बजेके लगभग हम लोग कटरा पहुँचे। रास्ते-भर मैं मुजफ्फ़रपुर रिलीफ़ कमेटीके प्रकाशन-विभागके कुप्रबन्ध और अनुभवहीनतपर कुढ़ता जाता था कि आख़िर प्रकाशन-विभागने अपने स्थानमें बिहारका नक्शा, प्रत्येक तहसीलका नक्शा और प्रत्येक थानेकी क्षति और जल्दीसे जल्दी होनेवाली सहायताका अंक-विवरण क्यों नहीं रखा? भूकम्पको हुए सोलह दिन हो गये; पर फिर भी कोई तालिका तैयार नहीं थी! बाहरवाले व्यक्तिको, जो कि एक दिनके लिए ही आना चाहता हो, यह किस प्रकार मालूम हो कि अमुक थानेके किस हलक़ेमें किस प्रकारकी सहायताकी ज़रूरत है। यह मानते हुए भी कि भूकम्प-प्रकोपकी आकस्मिकताके कारण लोग तिलमिला गये हैं, प्रकाशनके

सीतामढ़ीके ध्वंसावशेष

दोष क्षम्य न थे; पर कटरेमें पहुँचकर तबीयत प्रसन्न हो गई। कटरा थानेके सब-इन्स्पेक्टर श्री राधाकृष्णजीके नक्शे और लगनको देखकर कि कष्ट-पीड़ित लोगोंको शीघ्राति शीघ्र सहायता पहुँच सके, चित्त प्रसन्न हो गया। सब-इंस्पेक्टर श्री राधाकृष्णजीकी आकृतिपर परिश्रम और सेवाके भाव अंकित थे। इस इलाक़ेके प्रसिद्ध कार्यकर्ता मथुराबाबूके नक्शे और पुलिसके नक्शेमें कुछ अन्तर न था। इन पंक्तियोंका लेखक पुलिसकी करतूतोंका घोर विरोधी रहा है; पर उचित आलोचना करनेसे नहीं चूका, और जब इस विपत्तिमें कोई भी सहायक हो, तब उसकी प्रशंसा क्यों न की जाय? श्री राधाकृष्णजी इसी प्रशंसाके पात्र हैं।

सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए उस नक्शेकी नक़ल, जिसको मैं रामदयालु बाबूकी कृपासे प्राप्त कर सका, नीचे दी जाती है। पाठकोंको ज्ञात होना चाहिए कि यूनियन (इलाक़ा) नं० ११ (देखिये तालिका नं० १, पेज १३६) में एक भी कुआँ पानी पीनेके लिए नहीं बचा। भूकम्पके प्रकोपसे कुएँ

ऊपरसे उबल पड़े और बालूसे अट गये ; कुछ धसक गये और कुछ टूट गये। तालिकासे पता चलेगा कि किस इलाक़ेमें कितनी और किस प्रकारकी हानि हुई है। हमारे साथ आनेवाले सेठजीने शीघ्र
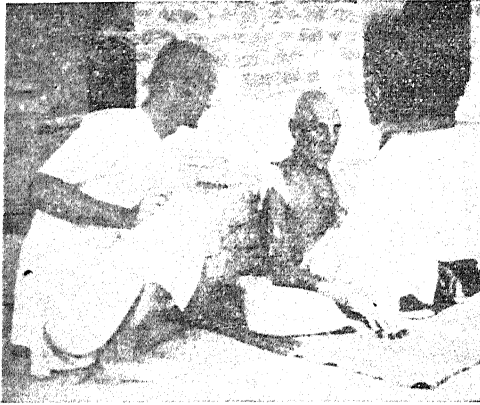
भाग्यका करिश्मा! यह १०३ वर्षके वृद्ध भूचालसे गिरे हुए मकानके नीचेसे खोदकर जीवित निकाले गये!

ही अत्यन्त पीड़ित हलकोंके कुछ कुओंकी सफ़ाईका भार लिया। यदि वह नक्शा न मिलता, तो सहायता न पहुँच सकती।

एक दूसरी कठिनाई लोगोंको पड़ी, वह थी चीज़ोंके भाव की। दस दिन तक—१५ जनवरीसे २५ जनवरी तक—मुज़फ्फ़रपुर या किसी और शहरसे चीज़ोंका आना बन्द हो गया। सड़क और पुल टूट गये थे। नमकका भाव छै आने सेर हो गया था। चीज़ोंका मूल्य बाँधना पड़ा। बाँस और खड़का मूल्य तिगुना हो गया।

रातको लौटकर कटरेके समीप ही रामदयालु बाबूके द्वारा स्थापित हाई स्कूलके भग्नावशेषके निकट एक झोंपड़ीमें रहा।

अगले दिन दूसरी फ़रवरीको सीतामढ़ीकी ओर हम लोग चले। कटरे तक आनेवाले सेठजी उसी दिन शामको मुज़फ्फ़रपुर लौट गये थे। कटरा और सीतामढ़ीके बीच एक दूसरा ही दृश्य था। बीच-बीचमें ऐसे स्थान भी आ जाते थे, जहाँपर खेत बालूसे नहीं भरे थे ; पर थोड़ी दूर चलकर भूकम्पकी उस कृपाका बदला बड़ी उग्रतासे मिलता था, अर्थात् जहाँपर खेतोंमें बालू मिलती थी, वहाँपर बेहद मिलती थी, मानो रक्षित खेतोंके स्रोत उधर ही चले गये हों।

जिन लोगोंका खेती-सम्बन्धी ज्ञान कोरा किताबी है, वे कह सकते हैं कि खड़ी फ़सलके दाने तो
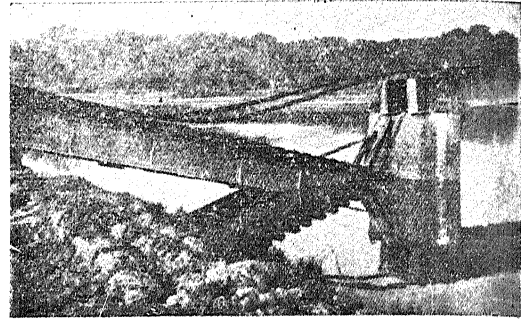
भूचालसे सीतामढ़ीमें रेलके पुलकी दशा

किसानोंके हाथ लग जायँगे ; पर बात ऐसी नहीं है। अधिकांश खेतोंमें—उनमें, जिनमें रबीकी फ़सल खड़ी है—बालू दो-दो फ़ीटसे चार-चार फ़ीट तक आ गई है। गेहूँके पौदोंके डंठल गलने लगे हैं, और अधिकांश गलकर सूख जायँगे। बहुतसे खेतोंकी फ़सलका तो पता ही नहीं। कोई कह भी नहीं सकता कि वहाँपर कुछ फ़सल थी। बहुतसे खेतोंकी मेंड़ें कहींकी कहीं हो गई हैं। मीलों पानी भरा है।

देहातकी दुर्दशा देखते, लोगोंसे बातचीत करते हम लोग सायंकालको सीतामढ़ी जा पहुँचे। सीतामढ़ीकी हालत देखकर मैं तो हक्का-बक्का रह गया। मुज़फ्फ़रपुर नगरकी बरबादी हुई है। एक प्रति सैकड़ा घर भी रहने लायक़ नहीं बचे ; पर मुज़फ्फ़रपुरकी कुछ सड़कें बची हैं, और बचा है उसका स्थान। ईंटों और खरंजोंको साफ़ करके उसी स्थानपर फिर नगर बसाया जा सकता है ; पर सीतामढ़ीकी दशा देखकर मेरा ख़याल तो ऐसा है कि उसी स्थानपर सीतामढ़ी शायद ही बसाई जा सके। क्यों ? इसलिए कि

सीतामढ़ी-भरमें भूकम्पका पूर्ण प्रकोप हुआ है। भूकम्परूपी रावणने सीताकी मढ़ीको बुरी तरह विध्वंस किया है। सीतामढ़ीमें कम्प तो २ फ़रवरी तक आते रहे। वैभवहीन, वैधव्य रूप धारण किये और लुटी हुई सीतामढ़ी छिन्न-भिन्न पड़ी है। मेरे अनुमानसे—जो एक विज्ञानवेत्ताका अनुमान नहीं है—भूकम्पका केन्द्र सीतामढ़ीके निकट ही रहा होगा। सीतामढ़ीके आसपासका इलाक़ा चिथड़ोंकी भाँति फटा पड़ा है। कहींपर बालूके टीले बन गये हैं, तो कहींपर दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह फ़ीट चौड़ी दरारें फट गई हैं। यहाँपर सुना कि सीतामढ़ीके निकट १५ और १८ फ़ीट ऊँची तक जलमुखी निकल पड़ी थीं। सीतामढ़ी रेलवे-स्टेशनके क़रीबका पुल चकनाचूर हो गया है। पुलके स्तम्भ टेढ़े-मेढ़े हो गये हैं। पुल गिर गया है। कहीं-कहींपर पटरियाँ रस्सीकी भाँति चिपटकर रह गई हैं। मकानोंकी विचित्र दशा है। टूटने और फूटनेकी तो कोई बात नहीं ; पर कम्पकी उग्रताके कारण बहुतसे मकानोंके इकतल्ले ज़मीनके भीतर चले गये। बहुतसे मकान करवटके बल घुस गये हैं। मकानोंके भीतर जलमुखियाँ निकल पड़ी हैं। सड़कें कट गईं और उनपर बालूके ढेर जमा हैं, और शहरमें घूमते समय मालूम होता था कि हम लोग नदीकी गीली तहपर चल रहे हैं। इतने मकानोंको कौन खुदवायेगा और खुदवाकर मकानोंकी नींव कैसे रखी जायगी—यह एक प्रश्न है। सीतामढ़ीका दृश्य मदोन्मत्त और प्रकृतिकी शक्तिकी अवहेलना करनेवालोंके लिए एक सबक़ है। सीतामढ़ी एक करुणाभरी कहानी है—सुननेके लिए नहीं, वरन महसूस करनेके लिए—'मर्सिया पढ़ रही सीतामढ़ी अपनी तबाहीका।'

रातको रिलीफ़ कमेटीके कार्यालयमें महापंडित राहुल सांकृत्यायन और पं० छबिनाथजी पांडेयसे भेंट हुई। कैसे दुर्भाग्यमें राहुलजी और छबिनाथजीसे भेंट हुई। किसी और समय होती, तो साहित्यिक चर्चा रहती ; पर विहारका साहित्य, संगीत और कला ही नहीं, बल्कि रोम-रोम भूकम्पके कम्पसे झंकरित हो रहा है।

तीसरी फ़रवरीके प्रातःकाल उठकर खेतोंमें शौचको गया। चारों ओर बालू ही बालू थी। अरहरके बड़े-बड़े पेड़ आधेसे अधिक दलदलमें डूबे हुए थे। ठंड कुछ अधिक थी, और सीतामढ़ीके ऊपर कुहरेकी चादर-सी बिछी हुई थी। वह मरहमकी पट्टी न थी, वरन प्रकृतिने घबराकर और शरमाकर नगरीके ऊपर चादर तान दी, ताकि दैवी लोकसे दिवंगत आत्माएँ अथवा देवता लोग उसकी अधोगतिको न देखें। सीतामढ़ी और उसके आसपासके स्थान अब आँखसे देखनेकी चीज़ नहीं रहे हैं, वरन दिलमें वास करनेके लिए हैं।

रिलीफ़ कमेटी कार्यालयसे सीतामढ़ी सब-डिवीजनके अन्तर्गत होनेवाली क्षतिकी एक तालिका ली। (देखिये तालिका नं० २, पेज १३६)।

प्रातःकाल आठ बजेके क़रीब नारायण बाबूके साथ टमटममें बैठकर मैं बेलसण्ड थानेकी ओर गया।

सीतामढ़ीमें जो करुणापूर्ण घटनाएँ सुनीं, उनके लिखने और सुनानेके लिए लेखकके हृदयमें दम नहीं। लिखने और स्मरण करनेसे आँखोंसे निर्झरी बहने लगती है।

बेलसण्ड थानेकी भी वही दुर्दशा थी, जो कटरे और सीतामढ़ीकी। बेलसण्डसे आगे एक मीलकी दूरीपर नारायण बाबूकी रिश्तेदारी है। वहींपर भोजन किया, और एक वृद्ध महाशयको देखा, जिनकी आयु १०३ वर्षकी है, और भूकम्पसे जब मकान गिरा, तब वृद्ध महाशय उसमें दब गये थे। खोदकर निकाला गया, तो जीवित निकले! उन हड्डियोंमें कौनसी शक्ति थी, जो १०३ वर्ष पुराने मानवी मकानको बचा सकी। वृद्ध महाशयको कुछ चोट आई थी। मैंने जब उन्हें देखा तब मज़ेसे जप कर रहे थे।

मुज़फ्फ़रपुर वहाँसे तैंतीस-चौंतीस मील था। देखते-भालते उसी दिन मुज़फ्फ़रपुर पहुँचना था।

कटरा थानेके अन्तर्गत १५ जनवरीसे १७ जनवरी तक भूकम्पसे होनेवाली क्षति—(तालिका नं० १)

[आबादी २२५५५६, थानेका रक़बा ९८ हज़ार बीघा]

यूनियन (इलाक़ा) नं०	फ़सल जो बहुत बुरी तरह नष्ट हो गई है—बीघोंमें	कितने लोगोंको तुरन्त सहायता मिलनी चाहिए	बाढ़में कितनों को कृषिसम्बन्धी सहायता मिलनी चाहिए	क्षतिग्रस्त मकानोंकी संख्या	हताहतोंकी संख्या हत	आहत	बुरी तरह बिगड़े हुए कुएँ	ठीक अवस्थामें कुएँ
१	१४७५	६१०	१०००	१७९०	१८+१	५०	१३४	५२
२	१७३२	५११	७२१	२५६७	१७	३०	७३	७२
३	५९२०	११४६	१९९४	३९६७	५७+७	८५	१००	७९
४	१०२८५	१७२०	२०००	१२०४	७+४	१०	१४३	१५
५	६४४५	१५५०	१८५०	२६०४	४	२०	३५	७१
६	८८६९	२८६५	१९६०	२०५५	२५+१	२५	९६	६९
७	२९७९	१२६५	१५००	१७६५	१६+३	४९	९६	५९
८	८७८०	५८५	१०८५	१६५१	१७	१०	१५४	८४
९	५०१४	७७४	२०००	१८२२	१६	२५	३८	१७२
१०	९५४०	१०००	३५२५	१५०५	३	२५	२५४	४७
११	९२८०	१०००	३०००	४४३	×	९	२४३	×
१२	१२८३५	११७०	२०००	२६०	३	६	१७७	४५
१३	७०००	१७००	६०००	१४५१	१९	११	२१२	५
१४	८१०३	५४३	२५००	३२८५	२०	१६	११८	५३
टोटल	९८०५९	१६४६९	३११३५	२६३६९	२३२	३७१	१८७१	८२३

नोट—तालिकामें डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी सड़कों और पुलोंकी क्षतिका विवरण नहीं है। इस मदमें भी बहुत क्षति हुई है।

सीतामढ़ी सबडिवीज़नके अन्तर्गत थानोंमें भूकम्पके कारण होनेवाली क्षति—(तालिका नं० २)

सं०	विषय	सीतामढ़ी शहर	सीतामढ़ी थाना	बेलसण्ड	शिवहर	पुपरी	सुरसंड	बेला	सोनबरसा	मेजरगंज	बैरगनिया	सारे सबडिवीज़नमें फीसदी
१	जनसंख्या (सहस्रोंमें)	११	२२२	२२९	१२२	२१६	६४	१०३	७०	५४	४३	११३४
२	गिरे हुए मकान प्रतिशत	९०	८०	८५	७०	७०	५५	४०	१०	४५	८०	६२½
३	बाहरी मदद बिना न बननेवाले मकान प्रतिशत	२०	२०	१५	२५	१५	१०	५	५	२१	१४	१५
४	भोजन देने लायक घर प्रतिशत	१०	१०	१२	१०	१५	१०	१०	१	१२	१०	११
५	कम्बल कपड़ा देने लायक घर प्रतिशत	१५	२०	२५	१५	२०	१५	१२	२	११	९	१४
६	मरे आदमी	१२५	१००	१६१	८२	२५७	८०	१०	२९	१५	१५	८७४
७	दवा करने लायक घर	७०	१००	१२५	५०	१५०	५०	२५	२०	३०	४५	६६५
८	गिरे कुएँ प्रतिशत	९९	९९	९८	९९	९९	९०	९०	२५	९०	८५	८७
९	चलता करने लायक कुएँ प्रतिशत	२०	२५	२५	२५	१०	१५	२०	८५	२०	३०	२७½
१०	बालूसे खराब खेत प्रतिशत	×	७	८०	८०	७०	६५	३५	५	६१	६२	५३
११	नष्ट हो गई फसल प्रतिशत	×	९०	९०	९	९०	८०	७०	१०	८०	८०	९०
१२	खराब हो गई सड़कें प्रतिशत	२०	९९	९०	९९	९९	९०	९०	९९	९०	९९	८७½

टमटमसे बेलसराड थाना और रूनी सैदपुर होता हुआ रातके साढ़े सात बजे हरीरामपुर गाँवमें पहुँचा। हरीरामपुरसे तीन मील मुज़फ्फ़रपुरकी ओरको पानी ही पानी था। नावसे पार करना था; पर नाव तक पहुँचा कैसे जाय? किसकी सहायता ली जाय? कोई मज़दूर नहीं मिलता था। गाँवके प्रतिष्ठित व्यक्तिका पता पूछनेपर लखनप्रसादजीका पता चला, और उनसे एक आदमी लेकर और डिस्ट्रिक्टबोर्डकी डिस्पेंसरीके वैद्यजीकी सहायतासे नाव तक आया। रातका समय था। करारी उतराई ली। तीन मील तक अँधेरी रातमें डोंगी बढ़ी चली गई और एक जगह तो टकराकर दुर्घटना होते-होते बची।

धर्मपुर उतरकर मुज़फ्फ़रपुरको चल पड़ा। स्व० गणेशशङ्करजी विद्यार्थीका कम्बल डाले, केमरा सँभाले और मज़बूत छड़ी टेकते-टेकते चन्द्रमाके निकलनेपर मुज़फ्फ़रपुरको अकेला चला। भ्रान्त पथिककी भाँति चन्द्रमा आकाशमें और मैं सड़कपर चला जाता था और भूकम्पसे उत्पन्न हुई बिहारकी स्थितिपर विचार करता जाता था। स्व० गणेशजीका कम्बल क्या था, मानो उनकी अन्तरात्मा मेरे साथ थी। भूकम्पने अपने कोपमें साम्यभाव दिखाया है। मौलवी और पंडित, ग़रीब और अमीर तथा मन्दिर और मसजिद किसीको नहीं बख्शा।

रातके सवा बारह बजे मुज़फ्फ़रपुर पहुँचा।

प्रातःकाल ता० ४ की गाड़ीसे पटनाको रवाना हुआ। स्टेशनपर रामवृक्षजी बेनीपुरी और जैनेन्द्रजीके सम्बन्धी महावीरजीसे बातें होती रहीं।

सवा बारह बजे पटने आया। 'योगी' कार्यालयमें विश्राम करके शामको पटनेसे चलकर ५ फ़रवरीको कलकत्ते आ गया।

× × ×

विहंगावलोकन

बिहारकी भूकम्पजन्य विषम परिस्थितिपर कुछ लिखनेसे पूर्व रिलीफ़ कमेटियोंके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक है। भूकम्पने बिहारकी अत्यन्त उर्वरा भूमि—हृदय—पर प्रहार किया है। बिहारी भाइयोंकी वर्तमान वेदना न केवल भारतीयोंकी ही वेदना है, वरन् मनुष्यमात्रकी वेदना है। बिहारकी सहायता करना बिहारी भाइयोंपर उपकार करना नहीं है, और ऐसी अवस्थामें जिससे और जैसी सहायता बन पड़े, वह थोड़ी है; पर सहायता कैसे और किस रूपमें दी जाय—यह एक विचारणीय बात है। मेरी निष्पक्ष और निजी सम्मति यह है—और अपनी सम्मति देनेमें किसीके प्रति और विरुद्ध कहनेका मुझे हक़ नहीं और सम्मति देता इसलिए हूँ, ताकि बिहारकी सहायताकी दिशा और उन्नत हो जाय—मुज़फ्फ़रपुरमें जो रिलीफ़ सोसाइटियाँ बड़े-बड़े साइनबोर्ड लगाये पड़ी हैं, उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे अपनेपनको छोड़कर सेवा-भावको प्रधान चीज़ समझें। बिखरी हुई शक्तियाँ बिना सहयोग किये उचित और तात्कालिक सहायता नहीं कर सकतीं। क्या आवश्यकता है कि दो दर्जनके क़रीब रिलीफ़ सोसाइटियाँ मुज़फ्फ़रपुरमें डेरे डाले रहें। यदि उन्होंने अभी तक भूकम्पसे साम्यभावका पाठ नहीं सीखा, तो अब तो सीख लें और सब रिलीफ़ सोसाइटियाँ मिलकर एक केन्द्रीय रिलीफ़ सोसाइटी बना लें और तेज़ीसे काम करें। उस दिन सहयोग (Coordination) की चर्चा तो थी; पर हुआ कुछ नहीं:—

> 'रेज़ोलूशनकी सोरिश है, मगर उनका असर ग़ायब;
> सदा प्लेटोंकी सुनता हूँ मगर खाना नहीं आता।'

इस विषयमें एक बात और। बिहारके किसी भी इलाक़ेमें चाहे वह तिरहुत डिवीज़नमें हो और चाहे भागलपुरमें कोई भी रिलीफ़ सोसाइटी स्थानीय या यों कहिये बिहारी कार्यकर्ताओंके परामर्शके बिना उचित और पूर्ण सहायता नहीं कर सकती। हमारे ख़यालसे रिलीफ़ सोसाइटियोंको राजेन्द्र बाबू या उनके बताये हुए कार्यकर्ताओंके परामर्शसे ही पीड़ितोंको सहायता देनी चाहिए।

सहायता और पुनरुद्धार

रिलीफ़ सोसाइटियोंके कई कार्यकर्ताओंसे मैंने बातचीत की। सहायता (Relief) और पुनरुद्धार दो भिन्न बातें हैं, और लोग इनके समझनेमें बड़ी भूल करते हैं। पुनरुद्धारका काम महीने दो महीनेका नहीं है।

सहायता और समस्या

मुज़फ़्फ़रपुर ज़िलेको मैंने ख़ूब देखा है, और चम्पारन, दरभंगा, मधुबनी और मुंगेर इत्यादिकी दशाका ज्ञान मुझे उन विश्वस्त लोगोंसे है, जो वहाँ हो आये हैं। भूकम्प-पीड़ित बिहारकी दशा एक ही है। हाँ, भूकम्प-पीड़ित बिहारकी दो मुख्य समस्याएँ हैं—शहर और देहात। रिलीफ़ सोसाइटियाँ अभी तक अपनी शक्तियोंको शहरोंमें ही केन्द्रीभूत कर रही हैं। यह बड़ी भूलकी बात है। सोसाइटियोंको और विशेषकर मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटीको—मारवाड़ी सोसाइटीका उल्लेख इसलिए किया कि वह अभी तक सबसे अच्छा काम कर रही है—अपनी तीनचौथाई शक्ति गाँवोंकी सहायतामें लगानी चाहिए। वह इसलिए कि शहरोंकी ख़बरें चारों ओर शीघ्र पहुँच जाती हैं, और गाँववालोंकी दुखभरी कहानी रिलीफ़ सोसाइटियों तक कठिनाईसे पहुँचती हैं।

सहायता देनेमें एक बड़ी कठिनाई यह है कि मध्यश्रेणीके व्यक्ति जो माँगनेके अभ्यस्त नहीं हैं, वे किसीसे नहीं माँगेंगे और न उनकी स्त्रियाँ ही कपड़े माँगने किसीके पास जायँगी। ऐसे लोग तो यह पसन्द करेंगे कि उन्हें क़र्ज मिल जाय। पर ऐसे समयमें क़र्ज किसे मिल सकता है? आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक ज़िलेमें एक विशेष कमेटी बने, जो केन्द्रीय रिलीफ़ कमेटीके अधीन हो और जिसका मुख्य काम ऐसे ही लोगोंको सहायता करना हो, जिन्हें आवश्यकता भी हो और जिन्होंने दूसरोंके सम्मुख कभी हाथ न पसारा हो।

देहातकी समस्या बड़ी विकट है, और शहरसे अति विषम है। शहरोंको बसाया जा सकता है। उसी स्थानपर नहीं, तो दूसरे स्थानपर; पर उस सैकड़ों बीघे भूमिका क्या हो, जो मिनटोंमें मरुभूमि बन गई? कौन, कैसे और कितने दिनोंमें बालूमंडित खेतोंको साफ़ करेगा? दो-दो इंचसे लगाकर चार-चार फ़ीट और कहीं-कहीं शायद और भी अधिक गहरी बालू जम गई है। किस प्रकारसे खेत ठीक किये जायँ, और यदि ठीक न हो सकें, तो फिर क्या होगा? एक दूसरी बात है खड़ी फसलकी। गेंहू और सरसों (वहाँपर जहाँ बालू भर गई है) की फ़सल तो नष्ट हो गई। ईख उस दुधार गायकी भाँति खड़ी है, जिसको पसुराकर छोड़ दिया हो। चीनीकी मिलें धूलमें पड़ी सिर धुन रही हैं। फिर ईखका क्या हो? सबसे सरल और आवश्यक उपाय यह है कि सरकार अपने ख़र्चेसे कोल्हुओंको गाँवमें पहुँचावे और ईखकी पिराईमें सहायता दे।

सहायताका आवश्यक रूप होना चाहिए कुओंकी सफ़ाई—पहले उतने कुओंकी सफ़ाई, जितनेसे गाँववालोंकी ज़रूरत पूरी हो सके। केवल धोतियाँ बाँटनेसे काम न चलेगा। कराँचीसे एक हज़ार मन नमक भेजनेकी भावना प्रशंसनीय है; पर नमकका भेजना मूर्खता है। उतने नमकके रुपयेसे नमक तो पीड़ित स्थानोंमें भी ख़रीदा जा सकता है, स्थानीय व्यापारकी सहायता भी हो सकती है और अन्य कार्य भी हो सकते हैं।

सहायताकी एक आवश्यक बात है सफ़ाईका प्रबन्ध। शौचादिसे गन्दगी बढ़नेका डर है, और यदि कोई संक्रामक रोग फैल गया, तो फिर न-जाने क्या होगा। सीतामढ़ीमें दूसरी या तीसरी फ़रवरीको हैज़ेका एक केस हो गया था।

भयंकर परिस्थिति

बिहारकी भयंकर परिस्थितिका अनुमान इससे किया जा सकता है कि गंगाजीके दक्षिण भागको—जिसमें भूकम्पका प्रकोप इतना प्रबल नहीं है—यदि हम छोड़ दें, तो उत्तरी बिहारका भूकम्प-पीड़ित भाग क्षेत्रफलमें

स्काटलैंडसे अधिक है, और जनसंख्या उससे पाँच गुनी। पहले तो शहर बसानेके लिए अधिकांश लोगोंके पास रुपया ही नहीं है, और जो कोई बनानेका प्रयत्न भी करे, तो कैसे करे। ज़मीन फट गई है, और जब तक एक-दो बरसात न हो जायँ, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि मकान और ज़मीन अभी और नहीं धसकेंगे। एक दूसरी और बड़ी विचारणीय बात यह है कि उत्तरी बिहारमें सीतामढ़ी और मोतीहारीके निकट ज़मीनका धरातल बदल गया है। बारिशके फालतू पानीको ले जानेवाले नाले अट गये हैं। नदियोंके धरातलमें भी अन्तर पड़ गया है। सीतामढ़ीमें इस समस्या—बिहारके भावी संकट—के रूपको हमने स्वयं देखा। मोतीहारीसे समाचार भेजनेके लिए एक मित्रको बहुतसे प्रश्न लिख दिये थे। वे लिखते हैं—"चम्पारनमें दो बड़ी-बड़ी नदियाँ बहती हैं—एक है बूढ़ी गंडक और दूसरी गंडक। सारे ज़िलेका पानी इन्हीं दो नदियों द्वारा वर्षाकालमें निकलकर बाहर जाया करता था। इन दो नदियोंमें ज़िलेके कोने-कोनेसे नालों द्वारा सिमट-सिमटकर पानी आया करता था। अब सब नाले और सोते ऊपर तक भर गये हैं, और गाँवोंके गढ़े न केवल भर गये हैं, वरन उनका धरातल और ऊँचा हो गया है।" यही दशा मधुबनी और दरभंगेकी हैं। ऐसी अवस्थामें बिहारमें वर्षाकालमें भयंकर बाढ़की आशंका है।

बिहारका पुनरुद्धार दो-चार महीनेका काम नहीं है। हमारे ख़यालसे तो बिहारकी समस्या अभी प्रारम्भ हुई है। दो मास बाद उसका उग्र रूप प्रकट होगा। प्रकोपकी आकस्मिकतासे लोग स्तम्भित रह गये हैं। दो मास उपरान्त जब लोग अपने घरके बचे-बचाये दाने खा लेंगे और जब रबीकी फ़सलसे कुछ नहीं आयगा, तब भूकम्पसे अधिक भयंकर भूख-कम्प सतायेगा। फिर अगली ख़रीफ़की फ़सलका ही क्या ठिकाना! इस समय ही दुर्भिक्षके लक्षण हैं। कहीं बाढ़ आई, जिसके आनेकी पूरी आशंका है, तो फिर परिस्थितिका सामना कैसे किया जायगा। इन समस्याओंको अभीसे समझना चाहिए। मकानोंके लिए तो हमारा मत है कि स्थायी मकान न बनाये जायँ, वरन तीन-चार वर्ष तकके लिए कामचलाऊ मकान ठीक होंगे।

भूकम्प हुआ। दैवी शक्तिके लिए वह सब खिलवाड़ था। अचल और जड़ कही जानेवाली पृथिवी हुंकारी, हिली, डुली, चली और फाग खेल गई; पर उस कम्पने अनेक कम्प पैदा कर दिये हैं। उससे कोई राजनैतिक कम्प भले ही न हो; पर बिहारके राजनैतिक जीवनपर उसका भारी प्रभाव पड़ेगा। लगान वसूलयाबीका राक्षस मुँह फाड़कर आयेगा। बिहार-सरकार बन्दोबस्त इस्तमरारीके क़िलेमें अपनेको सुरक्षित समझ सकती है। उसे तो ज़मींदारोंसे ही लगान वसूल करना है। बिहारके परमरम्य उद्यान तिरहुत डिवीज़नमें कोई रहे—'बूम बसे या हुमा रहे', उसे तो ज़मींदारोंसे मालगुज़ारी मिल ही जायगी; पर बात ऐसी नहीं है। ज़मींदारोंको तो किसानोंसे रुपया वसूल करना है। जब किसानोंके पास ही कुछ न होगा, तब ज़मींदार क्या करेंगे? क्या इस्तमरारी बन्दोबस्तका यह रूप रह सकेगा? और फिर अभी तो ज़मीनकी नाप भी करनी है। किसीके खेतकी मेंड कहीं चली गई है। बहुतसे खेतोंकी सीमा तकका पता नहीं। मीलों तक पानी भरा है। बालू भरी है। बिना नापे काम न चलेगा। डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंकी बुरी हालत है। सड़कें, पुलियाँ और स्कूलोंकी इमारतें विध्वंस हो गई हैं। इनके निर्माणके लिए रुपया चाहिए। शहर ही नष्ट हो गये, तब चुंगीकी आमदनी क्या रह गई? इनकम-टैक्स और चौकीदारी टैक्स रूपी चंडमुंड बिहारकी क्षीण शक्तिका मुक़ाबिला करनेको आगे बढ़ेंगे? हमारे ख़यालसे बिहार-सरकारको बड़ी सावधानी और दूरदर्शितासे काम लेना चाहिए।

बिहारका दो-तिहाई भाग भूकम्पसे पीड़ित है।

तिरहुत डिवीज़नका क्षेत्रफल १२५६८ वर्गमील और भागलपुर डिवीज़नका १८५८३ वर्गमील है। इसमें से ८ हज़ार वर्गमील गंगाजीके उत्तरमें है। इसके मानी यह हुए कि लगभग २० हज़ार वर्गमीलको किसी न किसी रूपसे सहायता पहुँचानी है। यह ठीक है कि इतने क्षेत्रफलमें सभी स्थानोंपर भूकम्पका प्रकोप एकसा नहीं है; पर सारन, चम्पारन, मुज़फ्फ़रपुर और दरभंगेके अति पीड़ित प्रदेशका क्षेत्रफल दस हज़ार वर्गमीलसे कम न होगा। तिरहुत डिवीज़नकी जनसंख्या एक करोड़ सात लाख है। मान लीजिए कि इसमें से एकचौथाईको सहायताकी आवश्यकता है, तो पचीस-छब्बीस लाख लोगोंपर एक पैसा प्रति व्यक्तिके हिसाबसे बारह-तेरह लाख रुपया मासिक चाहिए। और फिर मकान, कुएँ, ज़मीन, सड़कें और ईखके लिए कोल्हू, अन्न और अन्य ज़रूरी कामोंके लिए काफ़ी रक़म चाहिए। तीन-चार मास तक तो लगातार सहायताका काम है, और फिर एक-आध साल तक पुनरुद्धारकी समस्या है।

यह है सूत्ररूपसे बिहारकी विषम स्थिति। घटनास्थलपर बिहारका 'दर्दे दिल देखा न जाता था मगर देखा किये।' प्रलयकारी भूकम्पने लोगोंकी संचित शक्तिको धराशायी कर दिया है। प्रकृतिका ताण्डव नृत्य हुआ है, अथवा अपने पापोंका दंड मिला है—सो कौन कहे। हमें तो केवल एक ही बात ध्यानमें रखनी है, एक ही रट लगानी है, हृत्तन्त्रीसे एक ही स्वर निकालना है, मूकवेदनाकी एक ही सिसकी भरनी है—और वह है बिहारकी सहायता। जिससे जितनी और जिस प्रकारकी सहायता हो सके, करे। सम्पन्न लोग लाखों और हज़ारों भेजें। श्रमजीवी एक दिन भूखे रहकर अपनी मज़दूरी भेजें। अपाहिज और लूले-लँगड़े और वे जो भूखे मरते हैं, अपनी सहानुभूति भेजें प्रार्थनाके रूपमें। दर्दभरी प्रार्थनाके भी मानी हैं। पीड़ितों और दुखियोंके लिए वह भी कोई चीज़ है—सहारा है, डूबतेके लिए तिनकेके समान। अट्टालिकाओंमें रहनेवाले, बैंकोंमें रुपये रखनेवाले और आनन्दसे जीवन यापन करनेवाले, मनुष्यत्वके नाते, दिल खोलकर सहायता करें। कौन जाने कल किसपर क्या बीते? स्मरण रखिये कि लाखों आदमियोंका प्रश्न है। दूधपीतोंसे माताएँ बिछुड़ गई हैं और स्नेहमयी माताओंसे उनके लाल छीन लिये गये हैं। विधवाएँ विलख रही हैं। बिहारकी वसुन्धरा तड़प रही है, और वहाँका ज़र्रा-ज़र्रा पुकार रहा है—"त्राहिमाम-त्राहिमाम।" और यह करुण रुदन प्रतिध्वनित होकर, विकराल दरारोंको स्पन्दितकर और हिमालयकी चोटियोंको चूमकर, सम्पूर्ण देशमें कँप-कँपी और दर्दभरी ध्वनियाँ, वही हृदयविदारक राग झंकारती है कि 'त्राहिमाम त्राहिमाम'। क्या इस करुण गीतका हमारे सरस और कोमल हृदयोंपर असर न पड़ेगा? क्या पीड़ितों, मातृविहीन बच्चों और भूखसे छटपटाते किसानोंके क्रन्दन और दिवंगत आत्माओंके अफ़सोससे भी हम चुप बैठे रहेंगे और अपने बिहारी भाइयोंकी सहायता न करेंगे?

हमारे साहित्यकी सबसे बड़ी आवश्यकता

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रायः पत्रोंमें हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रके विषयमें यह शिकायत छपा करती है कि हमारे यहाँ साहित्यका कोई धनीधोरी नहीं, उच्छृंखलताका साम्राज्य है और यार लोग वरजानी मनमानी कर रहे हैं। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रके लिए डिक्टेटर नियुक्त किये जानेकी भी चर्चा कभी-कभी सुनाई पड़ती है। आजसे लगभग छै वर्ष पूर्व स्वयं इन पंक्तियोंके लेखकने क्षणस्थायी निराशाके कारण एक ऐसा ही प्रस्ताव जून सन् १६२८ के 'विशाल भारत' में लिखा था :—

"ग़दर मचा हुआ है। कहाँ? हिन्दी-साहित्यमें। अच्छे-अच्छे हिन्दी-लेखक दुर्दशाके साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और कुरुचिपूर्ण पुस्तक प्रकाशितकर अनेक हिन्दी-प्रकाशक मालामाल हो रहे हैं। कोई देशभक्तिका ढोंग करता है, तो कोई हिन्दी-प्रेमका। जिन पुस्तकोंका प्रचार होना चाहिए, उन्हें कोई नहीं पूछता, और रद्दी-सद्दी किताबें ख़ूब बिक रही हैं। उन लेखकों और कवियोंकी कीर्ति-रक्षाके लिए कोई प्रयत्न नहीं करता, जिन्होंने अपना सर्वस्व हिन्दीकी सेवाके लिए अर्पित कर दिया था और जिनकी तपस्याका सुफल आज हम भोग रहे हैं। लोग अपने-अपने दलवालों और मित्रोंका विज्ञापन कर रहे हैं! हमारी संस्थाएँ दलबन्दीका अड्डा बनी हुई हैं। हमारा साहित्य किस दिशामें जा रहा है और हमें उसकी गतिका नियन्त्रण किस तरह करना चाहिए, इत्यादि प्रश्नोंपर विचार करनेकी किसीको फ़ुरसत ही नहीं। जबसे पूज्य द्विवेदीजीकी लेखनीने विश्राम लिया है, तबसे साहित्य-क्षेत्रमें और भी धाँधली मची हुई है। समालोचनाएँ पुस्तककी योग्यता या अयोग्यताका ख़याल करके नहीं की जातीं, बल्कि मित्रता और शत्रुताका ख़याल करके की जाती हैं।

आवश्यकता है एक साहित्य-शासक (लिटरेरी डिक्टेटर) की

इस साहित्यिक ग़दरके जमानेमें एक ऐसे महारथीकी आवश्यकता है, जिसे साहित्य-क्षेत्रका सारा अधिकार सौंप दिया जाय और जिसके नियन्त्रणमें हम सब चलनेके लिए बाध्य हों। यदि पूज्य द्विवेदीजी स्वस्थ होते, तो वे इस पदके लिए सर्वथा योग्य थे; पर वे अस्वस्थ हैं, और यह बोझ नहीं उठा सकते। तो फिर कौन इस पदको सुशोभित करे? प्रजातन्त्रवादके इस युगमें यद्यपि एकतंत्र शासनकी बातें अनुचित-सी मालूम होंगी; पर हिन्दी-साहित्यकी वर्तमान अवस्थाको देखते हुए एक प्रबल साहित्यिक शासककी आवश्यकता प्रत्येक समझदार आदमीको प्रतीत होगी, और पं० पद्मसिंह शर्मा ही इस पदके लिए सबसे अधिक योग्य हैं। हिन्दी जनताने उन्हें सम्मेलनका सभापति चुनकर अपनी दूरदर्शिताका परिचय दिया है। उनकी लेखनीमें तीक्ष्ण तलवारसे भी अधिक बल है और पुष्पराज गुलाबकी पंखुड़ियोंसे भी अधिक कोमलता। साहित्यिक ख़ूनियोंको दंड देना वे ख़ूब जानते हैं, और योग्य नवयुवक लेखकों और कवियोंको उत्साहित करनेमें तो उन्होंने कमाल हासिल कर लिया है। जहाँ उनके तीखे तीर विद्यावारिधियोंको सुखा सकते हैं, वहाँ उनके सरस हृदयकी सहानुभूतिकी चार बूँदें निराश लेखकोंके भी मनमें आशा-लताके अंकुर उगा सकती हैं।

× × ×

रेलगाड़ीके छूटनेके वक्त हमारे स्टेशनोंपर जो कुव्यवस्था और घबराहट होती है, वही इस समय हिन्दी-साहित्यमें दीख पड़ती है। शान्तिपूर्वक बैठकर यह कोई नहीं सोचता कि साहित्यिक रेल किस गड्ढेकी तरफ़ जा रही है। किसे इस बातकी फ़िकर है कि अमुक कविकी कविता अच्छी हुई है, उसे पत्र

लिखकर उत्साहित करना चाहिए, अमुक लेखकने वह पुस्तक अभी तक नहीं लिखी, उसपर तक़ाज़ा करना चाहिए, अमुक वृद्ध कविको आज तक किसीने नहीं पूछा, उनका सम्मान होना चाहिए, अमुक लेखकके लेखोंको पुराने पत्रोंकी फाइलसे नक़ल करना चाहिए? किसके पास इतना 'फालतू वक्त' है, जो नवीन लेखकों तथा कवियोंकी रचनाओंको पढ़े? धैर्यपूर्वक दूसरोंकी रचनाओंको सुनना और पढ़ना अत्यन्त कठिन है। शर्माजीमें इस गुणकी पराकाष्ठा हो गई है।"

उपर्युक्त पंक्तियोंसे यह स्पष्टतया विदित हो जायगा कि हम साहित्यिक डिक्टेटरमें किन-किन गुणोंकी आशा करते थे। आज छै वर्ष बाद जब हम इन पंक्तियोंपर विचार करते हैं, तो उनकी भयंकर भूल हमें स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है। यह बात नहीं कि हम स्वर्गीय शर्माजीको पहले इस पदके लिए योग्य समझते थे और अब अयोग्य, बल्कि हमारी समझमें डिक्टेटरका सिद्धान्त ही मूलमें ग़लत है। साहित्य-जगतमें कोई डिक्टेटर न कभी हुआ और न कभी होगा। इस वनमें विचरण करनेवाला प्रत्येक ईमानदार साहित्य-सेवी सिंहके समान है, और सिंहोंका शासन भला कौन कर सकता है? हाँ, हम यह मानते हैं कि कोई शेरबब्बर हो सकता है, तो कोई व्याघ्र, और ऐसे तो कितने ही हैं, जो अपनी शक्तियोंको न पहचाननेके कारण अपनी मौसी बिल्लीका रूप धारण किये हुए हैं। इस बातकी कल्पना ही हास्यास्पद है कि हम लोग चुनाव करके किसी साहित्य-सेवीको डिक्टेटर बना दें। पूज्य द्विवेदीजीको किसीने चुनकर साहित्य-क्षेत्रका शासक नहीं बनाया था। उनकी ईमानदारी, परिश्रम, विद्वत्ता, सत्यप्रियता और सबसे बढ़कर उनकी मनुष्यताने उन्हें वह स्थान दे दिया, जो आधुनिक समयमें हमारे यहाँ किसी साहित्य-सेवीको प्राप्त नहीं हुआ, और न निकट-भविष्यमें किसीको प्राप्त हो सकता है। पूज्य द्विवेदीजीमें जिन गुणोंका सामंजस्य हुआ है, वे दीर्घ तपस्याके बाद ही प्राप्त हो सकते हैं, और उन जैसे आदमी किसी साहित्य-क्षेत्रमें शताब्दीमें दो-चार भी हो जावें, तो बहुत समझिये। पर इससे हम लोगोंको न तो निराश होनेकी आवश्यकता है और न डिक्टेटरीके अवांछनीय सिद्धान्तके समर्थन करनेकी। साहित्य-क्षेत्रमें न हम लेनिन चाहते हैं, न हिटलर, और चचा मुसोलिनीकी भी यहाँ दाल नहीं गल सकती। यह क्षेत्र तो पूर्ण अराजकवादी रहेगा और रहना चाहिए। पर अराजकवादके माने अव्यवस्था अथवा कुव्यवस्था नहीं हैं।

साहित्य-क्षेत्रके लिए एक-दो नहीं, सैकड़ों ऐसे व्यक्तियोंकी आवश्यकता है, जो मिशनरी स्पिरिटसे इसके भंडारकी पूर्ति करें। यदि हम छुटभइये लोग तन मन धनसे परिश्रम करें, तो दस-बीस वर्षमें कोई न कोई असाधारण व्यक्तित्ववाला नवयुवक उत्पन्न हो जायगा, जो आजसे चालीस-पचास वर्ष बाद वही काम हमारे साहित्यके लिए करे, जो द्विवेदीजीने आधुनिक कालमें किया है। उसके आगमनके लिए क्षेत्र तैयार करना हम लोगोंका कर्तव्य है।

हिन्दी-साहित्यकी सबसे बड़ी आवश्यकता

इसलिए हमारे साहित्यको सबसे अधिक आवश्यकता है मिशनरी स्पिरिटसे काम करनेवाले नवयुवकों और युवतियोंकी। आवश्यकता है ऐसे व्यक्तियोंकी, जो खाद बनकर इस क्षेत्रमें अपनेको गला दें और उसे उर्वरा बना दें। ज़रूरत है ऐसे आदमियोंकी, जो बौद्ध भिक्षुओंके आदर्शको ग्रहणकर हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें विचरण करें। आज भी संसारके करोड़ों आदमियोंको बुद्ध भगवानके शब्दोंसे शान्ति मिल रही है। क्यों? बुद्ध भगवानने अपने भिक्षुओंको तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करनेका आदेश दिया था, और रुपया-पैसा लेनेकी मनाही कर दी थी। एक बौद्ध ग्रन्थमें एक जगह लिखा है—"जातरूप रजत पतिग्गहन विरमानि शिक्षा पदम समादियाम"—अर्थात, मैं सोना और चाँदी ग्रहण नहीं करता हूँ।

ऐसे समयमें जब कि हमारे कितने ही साहित्य-सेवियोंको पेटभर भोजन भी न मिल रहा हो, कुछका अमीरी ठाटसे रहना और स्वार्थपूर्वक बिना किसीको कुछ दिये लखपती बननेका प्रयत्न करना महज़ हिमाक़त है। हमारे साहित्यके लिए आवश्यकता है प्रभावशाली व्यक्तित्वकी, और उसका विकास आसानीके साथ नहीं हो सकता। उसके लिए निरन्तर त्यागकी आवश्यकता है। जब तक हम लोग अपने सद्विचारोंके अनुसार चलनेका प्रयत्न नहीं करते, तब तक हमारे व्यक्तित्वका विकास होना असम्भव है। हमारे लेखोंमें, कविताओंमें और पुस्तकोंमें हमारे व्यक्तित्वका स्पष्ट प्रतिविम्ब होना चाहिए। हमारे साहित्याकाशके क्षितिजमें अनेक व्यक्ति उठते हैं, और हमें आशा होती है कि वे हमारे जैसे भटके हुए छुटभइयोंके लिए अपने जीवन-नौकाको ध्येय तक पहुँचानेके कठिन कार्यमें ध्रुव नक्षत्र सिद्ध होंगे, पर थोड़े दिनों बाद उन नक्षत्रोंका लोप हो जाता है! तपभ्रष्ट ऋषियोंकी तरह वे साहित्यके स्वर्गसे मर्त्यलोककी कीचड़में आ गिरते हैं!

हमें आवश्यकता है ऐसे साहित्यिक जुआरियोंकी, जो अपनी समस्त अर्जित कीर्ति, धन और वैभव अपने सिद्धान्तके लिए एक बाज़ीमें लगा दें। हिसाबी आदमी, जो परिग्रहमें विश्वास रखते हैं, जिनकी दृष्टि केवल अपने तथा अपने ही बाल-बच्चोंके सुखमय भविष्यकी चिन्ता तक परिमित है, कभी भी नवयुवकोंको प्रोत्साहित नहीं कर सकते। ऐसे आदमी समय आनेपर कभी वह लम्बी छलाँग नहीं भर सकते, जो उन्नतिकी निशानी है। बक़ौल पं० बालकृष्ण शर्मा, "नवलप्रभात, नवयुग आविर्भाव तथा नवविचार वहन—यह सब उसी जगह एकत्रित हैं, जहाँ त्याग, तप और सत्प्रयत्न हैं।" राजनैतिक क्षेत्रमें प्राय: ऐसा होता है कि लोग कुछ त्याग करते हैं और फिर उस त्यागकी पूँजी बनाकर उससे भोग-विलास करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि उनका सारा प्रभाव जाता रहता है, और यद्यपि ऐसे लोग काठकी हाँड़ीको दूसरी बार भी चढ़ानेका प्रयत्न करते हैं, पर अग्नि-परीक्षामें उनके व्यक्तित्वकी हाँड़ी जलकर भस्म हो जाती है। साहित्य-क्षेत्रमें भी यही अटल नियम काम करता रहा है और करता रहेगा।

व्यक्तित्वके विकासके लिए दानशीलताकी अत्यन्त आवश्यकता है। हमारे यहाँ कितने ही ऐसे आदमी पाये जाते हैं, जो कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरका ज़िक्र आनेपर कहने लगते हैं—"अजी साहब, उन्हें क्या कमी है? उनके पास पैसा है, समय है, सब तरहके साधन हैं। वे अच्छी चीज़ न लिखेंगे, तो कौन लिखेगा?"

पर ये आलोचक महानुभाव कवीन्द्रके सबसे बड़े गुण उनकी दानशीलताको सर्वथा भूल जाते हैं। उन्हें यह जानना चाहिए कि कवीन्द्रने अपनी अद्भुत दानशीलतासे अनेकों साहित्य-सेवियोंके व्यक्तित्वके विकासमें पूरी-पूरी सहायता दी है। कवीन्द्रकी ज़मींदारीका बहुतसा रुपया, उनकी बंगला तथा अंगरेज़ी पुस्तकोंकी रायलटी, उनका नोबेल-प्राइज़में मिला हुआ धन—ये सब शान्ति-निकेतन तथा विश्व-भारतीके अर्पित होते रहे हैं। कविवरकी प्रतिभा तो सैकड़ों वर्ष बाद किसी एकाधके ही भाग्यमें आती है; पर उनकी मिशनरी स्पिरिटको तो हममें से अनेक ग्रहण कर सकते हैं। दानशीलताके लिए यह आवश्यकता नहीं है कि हम लखपती ही हों। दरअसल भावनाकी आवश्यकता है। साहित्यका भी 'समलिया' 'भावका भूखा' है। सुप्रसिद्ध अराजकवादी प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमें, जो उन्नीसवीं शताब्दीका सबसे बढ़िया आत्म-चरित समझा जाता है, एक जगह लिखा है—

'Over and over again in my life I have heard complaints among the advanced parties about the want of money, but the longer I live, the more I am persuaded that our chief difficulty is not so much a lack of money as of men who will march firmly and steadily towards a given aim in the right direction, and inspire others."

"मैंने अपने जीवनमें अनेक बार उग्र राजनैतिक दलोंके आदमियोंसे यह शिकायत सुनी है कि साहब ! क्या करें, रुपया नहीं मिलता, पर जितनी ही मेरी उम्र बढ़ती जाती है, उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हमारी मुख्य कठिनाई रुपयेकी कमी नहीं है, बल्कि पुरुषोंका अभाव है—ऐसे पुरुषोंका, जो दृढ़तापूर्वक और बिना रुके सीधे अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ते जावें, और इस प्रकार दूसरोंको भी प्रोत्साहित कर सकें।"

हमारे हिन्दी-साहित्यके लिए भी पुरुषोंकी आवश्यकता है—ऐसे पुरुषोंकी, जो कबीरके साथ यह कह सकें—

"कबिरा खड़ा बजारमें लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ।"

क्रान्ति चाहे राजनैतिक हो, या सामाजिक, अथवा साहित्यिक—सभीके लिए घरफूँक तमाशा देखनेवाले भिक्षुओंकी आवश्यकता है। जिस दिन हमारे यहाँ इस प्रकारके आदर्शको ग्रहण करनेवाले साहित्य-सेवी उत्पन्न होने लगेंगे, उसी दिन साहित्यका रूप ही बदल जायगा।

एक चितवन

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गाड़ीपर चढ़ते समय ज़रासा मुँह फेरकर वह मुझे अपनी अन्तिम चितवन दे गई है।

इतने बड़े संसारमें उतनी-सी चीज़को मैं रखूँ कहाँ ?

दंड-पल-मुहूर्त रात और दिन जहाँ पैर न पड़ते हों, ऐसी ज़रासी जगह कहाँ मिले ?

बादलोंके सुनहले रंग जिस सन्ध्यामें विलीन हो जाते हैं, यह चितवन क्या उसी सन्ध्यामें बिला जायगी ?

नागकेशरकी सुनहली रेणु जिस मेहसे धुल जाती है, यह भी क्या उसी मेहसे धुल जायगी ?

संसारकी हज़ारों चीज़ोंके बीच बिखेरे रहनेसे यह रहेगी क्यों ?—हज़ारों बातोंके जंजालमें, हज़ारों वेदनाओंके ढेरमें ?

उसका वह क्षण-भरका दान संसारके और-सबको पीछे छोड़कर मेरे ही हाथमें आ पहुँचा है। इसे मैं गीतमें गूँथकर रखूँगा, छन्दमें बाँधकर; मैं इसे रखूँगा सौन्दर्यकी अमरावतीमें।

पृथिवीपर राजाका प्रताप और धनीका सौन्दर्य मरनेके लिए ही हुआ है। पर आँखोंके आँसूमें क्या वह अमृत नहीं है, जो एक पल-भरकी चितवनको चिरकाल तक जीवित रख सके ?

गीतके सुरने कहा—"अच्छा, मुझे दो ! मैं राजाके प्रतापको नहीं छूता, धनीके ऐश्वर्यको भी नहीं; बल्कि ये छोटी-छोटी चीज़ें ही मेरे लिए चिरकालका धन हैं; उन्हींसे मैं असीमके गलेका हार गूँथा करता हूँ।"

लेखनी द्वारा संसार-भ्रमण

श्री सेण्ट निहालसिंह

मेरा सर्वप्रथम लेख

अपनी दूसरी शताब्दिमें प्रवेश करनेके कुछ दिनके बाद ही मेरे जीवनमें एक नई खिड़की खुली, जिसके द्वारा मुझे अपने शहर (फ़ीरोज़पुर छावनी) के बाहर झाँकनेका अवसर मिला। तब तक मैंने पंचनद प्रान्तके बाहर क़दम नहीं रखा था।

यह खिड़की एक बंगाली साधुने खोली। ये साधु महाशय एक अच्छे वंशके पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। उन्होंने किसी दुर्घटनासे प्रभावित होकर सरकारी नौकरी छोड़कर संन्यास ले लिया था, और अपने सम्बन्धियोंसे दूर रहनेके लिए पंजाब आ गये थे। यह दुर्घटना क्या थी, यह मुझे मालूम न हुआ, कदाचित मेरे पिताको भी मालूम न था।

इस सन्तके व्यक्तित्वका मुझपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आज तक मुझे उनकी प्रत्येक मुलाक़ात और उनके मुखसे निकला हुआ प्रत्येक शब्द याद है। चालीस वर्ष बाद आज उनके सम्बन्धमें लिखते हुए भी मैं आनन्दसे विभोर हो उठता हूँ। उस समय तो नहीं, लेकिन अब मैं समझता हूँ कि यह उनकी आत्माकी स्फूर्ति ही थी, जिसने मुझे साधारण दैनिक जीवनके बँधे मार्गसे उठाकर उस मार्गपर रखा, जिसपर मैं तबसे बराबर चल रहा हूँ।

उन्होंने पहले-पहल मुझे देखकर जो शब्द कहे थे, उनमें परिहास भरा था। मैं स्कूलसे किताबोंका बोझ लादे हुए घर लौट रहा था। वे आँगनमें खड़े मेरे माता-पितासे बातें कर रहे थे। सहसा मुझे आते देखकर उन्होंने कहा—"यह तो गधेका बोझ है, लड़केका नहीं।"

लड़कपनमें मैं बहुत भावुक था और शायद अब भी हूँ। लेकिन उन्होंने यह बात इतने सद्भावसे कही थी कि मुझे कुछ भी बुरी नहीं मालूम हुई। उनके चेहरेपर आनन्दकी ऐसी झलक थी, जिससे प्रत्येक व्यक्तिका हृदय प्रकाशित हो जाता था।

उन्होंने मेरे माता-पिताको समझाते हुए कहा—"ईश्वरने बच्चोंको बोझा ढोनेके लिए नहीं बनाया है, गधोंको बनाया होगा। शिक्षा-विभागवाले कोमल बालकोंके लिए ऐसी किताबें क्यों नियत करते हैं? वे लड़कोंको प्रतिदिन उसी दिनके पाठके योग्य छपे हुए पृष्ठ क्यों नहीं दे देते? एक बारमें एक या दो पृष्ठ देना निश्चय ही सम्भव होगा। कुछ भी हो, मैं नहीं चाहता कि लड़कोंपर शारीरिक या मानसिक—किसी तरहका अधिक बोझ लादा जाय। यह उनके लिए हानिकर है।"

फिर मेरी ओर घूमकर उन्होंने पूछा—"तुम ये सब किताबें घर क्यों लाते हो, उन्हें स्कूल ही में क्यों नहीं छोड़ आते?"

मैंने उत्तरमें कहा था—"क्या ये मेरी नहीं हैं? क्या मेरे पिताने इनका दाम नहीं दिया है?"

मेरे मुखसे ये शब्द हालके एक कटु अनुभवके कारण निकले थे। मेरे पिताके एक सिन्धी मित्र मेरे यहाँ ठहरे थे। हम लोगोंको सिखाया गया था कि उन्हें 'चाचा' कहा करें। एक पुस्तक-विक्रेता उनके पास पुस्तकें बेचनेको आया था। मुझे मालूम न था कि 'चाचा' का यह रिश्ता सच्चा नहीं, वरन लगाया-जोड़ा था, इसलिए मैंने उनसे कहा—"चाचाजी, मुझे भी कुछ किताबें चाहिए, क्या आप इन सज्जनसे मेरी किताबें भी मँगा देंगे?"

उन्होंने बिना एक क्षणकी हिचकिचाहटके फौरन कहा—"ज़रूर, ज़रूर। अपनी किताबोंके नाम बता दो, ये मेरी किताबोंके साथ, जो-जो तुम चाहोगे, लेते आयेंगे।"

पिताजी भी वहाँ उपस्थित थे। उस समय तो वे शान्त रहे, इसलिए मैंने समझा कि उन्हें कोई एतराज़ नहीं है; लेकिन जैसे ही 'चाचाजी' किसी कामसे उठकर

बाहर गये, मैंने देखा कि मेरा विचार ग़लत था। एक ग़ैर आदमीसे पुस्तकें माँगनेसे पिताजीके स्वाभिमानको धक्का पहुँचा। उन्होंने मुझसे क्रोधकी अपेक्षा अधिक दुःखभरे शब्दोंमें पूछा—"तुमने इस तरह मेरी हेटी क्यों की? क्या तुमने जो माँगा है, उसे देनेमें मैंने कभी इनकार किया है?"

उत्तरमें मैं रो पड़ा।

जिस समय सन्त द्वारकानाथने पुस्तकोंके बारेमें उपर्युक्त बातें कहीं, उस समय मेरे मनमें सिन्धी चाचावाली घटना दौड़ गई। यद्यपि मैंने उनसे अपने मनकी बात नहीं कही, फिर भी मैंने उन्हें जतला दिया कि मेरी पुस्तकें मेरे पिताकी ख़रीदी हुई हैं।

सन्त द्वारकानाथ बोले—"मेरे लड़कपनमें और ही बात थी। हमारी किताबें हलकी होती थीं। प्रत्येकमें केवल कुछ पृष्ठ ही होते थे। हमारे शिक्षक भी बड़े दयालु थे।"

उन्होंने जो कुछ कहा, मैं उसका पूरा मतलब तो नहीं समझ सका, क्योंकि तब मैं बहुत छोटा था; लेकिन उनके शब्द मेरे मनमें अंकित हो गये। अब भी जब मैं ध्यान करता हूँ, तो सन्तजीकी पवित्र मूर्ति मुझे अपने घरमें बैठी मालूम पड़ती है। वे अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर बंगालमें अपने बचपनकी कहानियाँ सुनाते थे। उनके धीमे मधुर स्वरकी जादू-भरी बातचीतमें पंजाबके सूखे मैदान मेरी दृष्टिसे ओझल हो जाते थे, और मैं अपनी मानसिक दृष्टिसे देखने लगता था कि मैं बंगालकी सजला-सफला-शस्य-श्यामला भूमिमें विचर रहा हूँ।

[२]

इस बंगाली सन्तमें अपनी जन्मदात्री भूमिके लिए जो प्रेम था, उसका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने जीवनमें कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा नहीं देखा, जो भारतके उस प्रान्तका नाम, जिसने उसे जन्म दिया है, इतनी श्रद्धासे लेता हो। मेरे सामने कभी किसी पंजाबीने पंजाबके लिए ऐसे भावोंको प्रकट नहीं किया।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक दिन जब मैं अपने कल्पनालोकमें सन्त द्वारकानाथके साथ बंगालके मैदानोंमें घूम-घामकर घर लौटा, तो मेरी दशा मन्त्रमुग्धकी-सी थी। मैंने खाना छुआ तक नहीं, इसपर मेरी माँको बड़ी चिन्ता हुई। उसी समय मैंने अपने पितासे पूछा—"क्या आप मुझे कभी उस देशमें ले चलेंगे, जिसका वर्णन सन्तजी करते हैं, जहाँ हरे-भरे मैदानोंमें सैकड़ों नदी-नाले बहते हैं?"

"तुम वहाँ हो आ चुके हो।"—उन्होंने जवाब दिया—"तुम बहुत छोटे थे, इसीलिए शायद तुम्हें याद न होगी। अपनी माँसे पूछो, वह बतायगी कि तुम कलकत्ते हो आये हो।"

मैं दौड़कर माँके पास पहुँचा, और उनसे वही सवाल किया। माँ सन्त द्वारकानाथकी तरह अंगरेज़ी पढ़ी तो थीं नहीं, लेकिन वे संसारके सबसे बड़े विश्वविद्यालय—मानव-अनुभवके विश्वविद्यालय—से गुज़र चुकी थीं, जिससे उनकी सहज बुद्धि काफी तीक्ष्ण हो गई थी। मैं समझता हूँ कि सुख-दुखके घात-प्रतिघातोंके पड़नेके पहले ही उनकी बुद्धि बहुत तेज़ रही होगी। उन्होंने मुझे कलकत्ता-यात्राका बड़ा परिपूर्ण वृत्तान्त सुनाया। धार्मिक विचारोंकी होनेके कारण वहाँ उन्होंने गंगाजीमें, जिसका नाम हमारे भूगोलमें हुगली लिखा था, स्नान करनेका आग्रह किया था और काली माताके दर्शन किये थे, वही 'श्रीकाली कलकत्तेवाली, तेरा हुक्म न जाये खाली!'

इसी यात्रामें कहींपर वे एक अँधेरी गुफामें किसी देवी-देवताके दर्शनको गई थीं। साथमें मशाल लिये हुए पंडा मार्ग दिखलाता जाता था। सहसा मशाल बुझ गई, अँधेरा हो गया। माँका कहना था कि पंडेने जान-बूझकर मशाल बुझा दी थी, ताकि वह पिताजीसे कुछ अधिक पैसा ऐंठ सके; लेकिन पिताजीसे उसकी शरारत न चल सकी। उन्होंने फौरन जेबसे दियासलाई निकालकर उजेला कर दिया था।

इस वर्णनसे पुन: बंगाल देखनेकी मेरी इच्छा और बढ़ गई। मेरी माताको यह बात अच्छी न लगी कि मेरे विचार इस दिशाकी ओर जायँ। यह बात मुझे इस प्रकार मालूम हुई कि एक दिन मैंने अपने माता-पिताको बातचीत करते सुन लिया, जब कि वे समझते थे कि मैं वहाँ मौजूद नहीं हूँ। मेरी माँने कहा—"मैं चाहती हूँ कि सन्तजी मेरे लड़केसे यात्राकी इतनी बातें न किया करें। उसके पैरोंमें चक्र है, कहीं यात्राकी बात उसके मनमें न समा जाय और वह घरको और हम लोगोंको छोड़-छाड़कर कहीं दूर चला जाय।"

पिताजीने धीमे स्वरमें उत्तर दिया—"इसके लिए डरकी कोई बात नहीं है। वह कहीं जानेकी इच्छा पूरी ही कैसे कर सकता है, जब कि उसके पास कभी एक-दो पैसेसे अधिक होते ही नहीं। यात्राके लिए पैसा चाहिए। मैं जान-बूझकर इसका ख़याल रखता हूँ कि उसकी सब इच्छाएँ और ज़रूरतें तो पूरी होती रहें, लेकिन उसके हाथमें कभी एक-दो पैसेसे ज्यादा न रहने पायें।"

अनेक वर्ष बाद मुझे इन 'चक्रों'का हाल मालूम हुआ। मेरे जन्मके थोड़े ही दिन बाद एक ज्योतिषी आया था। उसने मेरा एक पैर उठाकर सावधानीसे उसकी परीक्षा की। फिर मानो मेरे पैरकी अस्पष्ट रेखाओंमें उसने जो कुछ पढ़ा था, उसकी पुष्टिके लिए उसने मेरा दूसरा पैर भी उठाकर देखा, और मेरी माँसे कहने लगा—"इस बच्चेके दोनों पैरोंमें यात्राकी रेखाएँ हैं। मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ कि यह सारे संसारकी यात्रा करेगा। यह उसके भाग्यमें लिखा हुआ है, और भाग्यका लिखा टाला नहीं जा सकता।"

तभीसे मेरी माँके हृदयमें खटका बैठ गया था। ज्योतिषीकी भविष्यवाणीके अतिरिक्त उन्हें यह भी डर था कि कहीं मुझमें अपने पिताका घुमक्कड़पन ही न आ जाय। बात यह थी कि मेरे पिता किसी शहर या कस्बेमें अधिक दिन तक न रह सकते थे। वर्ष दो वर्ष बाद वे उस शहर या कस्बेसे ऊब जाते और फ़ौरन दूसरी जगहकी बदली करा लेते। यदि बदली न होती, तो इस्तीफ़ा देकर दूसरी जगह कोई नई नौकरी खोज लेते।

[३]

मेरे छोटे भाई गुरुमुख*के जन्मके थोड़े ही दिन बाद हम लोगोंने फ़ीरोज़पुरसे अपना डेरा-डंडा उठाया। मुझे अपने मित्रोंसे बिछुड़नेका बड़ा दुख था; लेकिन आश्चर्यकी बात यह है कि मेरे मित्रोंमें कोई भी मेरी आयुका न था। सभी मेरे पिताकी उम्रके—कोई-कोई तो उनसे भी बड़े—थे।

इन मित्रोंमें एक सरदार चन्दासिंह थे। बचपनसे ही बिलकुल अन्धे होते हुए भी उन्होंने वकालत तकके सब इम्तहान सफलतापूर्वक पास किये थे! उन्होंने क़ानूनपर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया था और वे ऐसी सफलतासे बहस करते थे कि अनेकों मुवक्किल उनका दम भरते थे और पचासों नेत्रवाले वकीलोंकी अपेक्षा उन्हें पसन्द करते थे।

रविवार अथवा अन्य छुट्टियोंके दिन मैं किसीके साथ सरदार चन्दासिंहके घर जाता था। कभी-कभी मुझे अकेले जानेकी इजाज़त भी मिल जाती थी। वे शहरमें रहते थे, और हम लोग छावनीमें। तब मैं उसे छावनी ही समझता था; लेकिन वह शायद सिविल लाइन ही रही होगी। फासला काफ़ी था—कमसे कम तब मैं उसे काफ़ी समझता था—और मुझे वहाँ घोड़ागाड़ीपर बैठकर जानेमें बड़ा आनन्द आता था।

अन्धे वकील महाशयके कोई सन्तान न थी। वे मेरे ऊपर प्रेमकी बौछार किया करते थे। यही हाल एक दूसरे वकील सरदार गुरुमुख सिंहका था, जो कचहरीका काम न होनेपर अपने वक्तका बड़ा हिस्सा सरदार चन्दासिंहके घरपर ही बिताते थे।

उनके संसर्गमें आनेसे मेरी महत्वाकांक्षा प्रज्वलित हो उठी। मैंने अपने मनमें निश्चय किया कि मैं

* प्रो० गुरुमुख निहालसिंह, एम० एस-सी०, बार-ऐट-ला, जो काशी-विश्वविद्यालयमें फ़ैकेल्टी आफ् पोलिटिकल साइन्सके प्रधान हैं।

सरदार चन्दासिंहसे भी बढ़कर निकलूँगा। मैंने अपने पितासे कहा—"मेरे तो दो-दो आँखें मौजूद हैं। मैं ज़रूर ही अन्धे वकील साहबसे ऊंचा उठूँगा।"

"तुम्हें ऊँचा उठना चाहिए।"—पिताजीने उत्तर दिया। उनके इस संक्षिप्त उत्तरसे मेरी आकांक्षा और भी बलवती हो गई।

एक बार सरदार चन्दासिंहके घरपर मैंने एक सज्जनको देखा, जो उम्रमें मुझसे तिगुने होंगे। उन्होंने मुझे बहुत आकर्षित किया। उनका नाम भाई तख्तसिंह था। वे अपनी पत्नी बीबी हरनामकौरकी सहायतासे, अन्धे वकीलके घरके पास लड़कियोंका एक स्कूल चलाते थे।

पहले ही अवसरपर वे मुझे स्कूलमें ले गये। वहाँ उनकी जीवन-संगिनी और सहकर्मिणीको देखकर मेरे मनमें उसके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अपनी माँको छोड़कर बीबी हरनामकौर ही सबसे प्रथम महान महिला थीं, जिन्हें मैंने देखा था। अब उनकी मृत्यु हो चुकी है। उन्हें सिख गुरुओंके ग्रन्थोंका बहुत अच्छा ज्ञान था, और उनका तथा उनके पतिका दृढ़ विश्वास था कि जो जाति अपनी स्त्रियोंको नीच समझती है और अपनी लड़कियोंको कम-से-कम लड़कोंके समान शिक्षा देनेका कष्ट और व्यय नहीं करती, वह कभी फल-फूल नहीं सकती।

अपनी उस छोटी आयुमें मैं अपनेको भाई तख्तसिंहसे अत्यधिक योग्य समझता था, क्योंकि वे अंगरेज़ी नहीं जानते थे, और मैंने (अपनी समझमें) अंगरेज़ी भाषापर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था! मैं उनसे अपने इस दावेको बड़े स्पष्ट शब्दोंमें कहा करता था, और वे ऐसे सज्जन थे कि वे मेरे उच्च ज्ञानको स्वीकार कर लेते थे! उनके इस विश्वास दिलानेने ही हम दोनोंमें स्थायी मित्रताकी नींव स्थापित कर दी थी।

[४]

अपनेसे तिगुनी-चौगुनी उम्रके इन व्यक्तियोंके संग मैं बड़ा प्रसन्न रहता था। चूँकि मैं उनसे छुट्टीके दिन ही मिल सकता था, इसलिए मैं रविवारकी साप्ताहिक छुट्टी तथा अन्य त्यौहारोंकी बाट बड़ी उत्सुकतासे जोहता था। छुट्टीके दिन मैं बड़े सवेरे ही उठ बैठता था, जब कि अन्य दिन, जब स्कूल जाना होता था, माँ मुझे मुश्किलके जगा पाती थीं, सो भी उस वक्त, जब मुँह-हाथ धोकर और नाश्ता करके स्कूल पहुँचते-पहुँचते स्कूलका समय हो जाता था। मैं शिक्षकके क्लासमें आनेके मिनट दो मिनट पहले ही पहुँच पाता था।

माँ हँसकर मुझे चिढ़ाती थीं कि जिस दिन मैं अपने-आप उठ बैठता था, उस दिन वे जान लेती थीं कि आज स्कूलकी छुट्टी है। यह लेखमाला लिखते समय, इतने दिनों बाद, अब मैं अपने लड़कपनकी उन घटनाओंको सोचता हूँ, जिन्होंने मेरा जीवनक्रम बनानेमें प्रभाव डाला था, तो मुझे ज्ञात होता है कि जीवनमें मुझे थोड़ी-बहुत जा सफलता मिली है, वह अपनी माताके पथ-प्रदर्शनके कारण ही है। उनका पथ-प्रदर्शन ऐसा कोमल, ऐसा स्वाभाविक था कि मुझे कभी उसका भान ही न होता था।

यदि उस समय मुझे उन व्यक्तियोंका संसर्ग प्राप्त न होता, तो मेरा जीवन मरुभूमि बन गया होता। न-जाने क्यों, मुझमें उन गुणोंका अभाव था, जिनके द्वारा अन्य लड़के अपने समवयस्क साथियोंसे मित्रता उत्पन्न कर लेते हैं। सम्भव है, मेरे मनोरंजनकी बातें अन्य लड़कोंसे भिन्न थीं। वे लोग मुझे निश्चय ही बददिमाग़ और अस्वाभाविक लड़का समझते होंगे, जो बड़ोंसे वाहवाही पानेके लिए खेल-कूदकी उपेक्षा करके (जो उनकी समझमें बड़ा भारी जुर्म था) किताबोंको ज्यादा पसन्द करता था।

[५]

होशियारपुरको देखकर—जहाँ मेरे पिता फीरोज़पुरसे जाकर बसे—मुझे बड़ी निराशा हुई। उस समय रेल

जालन्धरमें ही ख़त्म हो जाती थी। लगभग पचीस मीलका ख़ुश्की रास्ता पुराने ढंगकी तकलीफ़दे सवारियोंपर तय करना पड़ता था।

जब हम लोग पहले-पहल जालन्धर छावनीके स्टेशनपर उतरे, तो पिताजी फ़ौरन होशियारपुरके लिए सवारीकी तलाशमें चले। उनके बाद परिवारके मर्दोंमें सबसे बड़ा होनेके कारण मैं भी उनके साथ इस काममें सहायता देनेके लिए चला; लेकिन उनकी और ख़ासकर मेरी परेशानीका कोई ठिकाना न रहा, जब हम लोगोंने देखा कि स्टेशनपर टुटरूँटूँ एक ही शिकरम थी, जिसपर हम लोग किसी क़दर आरामसे होशियारपुर पहुँच सकते थे; लेकिन उसे भी किसी दूसरेने हमसे पहले ही भाड़े कर लिया था। अब सिर्फ़ इक्के ही मिल सकते थे। थोड़ी देरके लिए पिताजीकी हिम्मत भी टूट गई, और उन्होंने मुझे माँको इस कठिनाईकी ख़बर देनेके लिए भेजा।

इस बीचमें माँ वेटिंगरूममें बैठी हुई कुछ स्त्रियोंसे बातें कर रही थीं। वे स्त्रियाँ इसी भागकी रहनेवाली थीं, और यहाँकी अंगुल-अंगुल ज़मीनसे वाक़िफ़ थीं।

"आपको होशियारपुरके आधे रास्तेपर छो पार करनी पड़ेगी।"—उन्होंने माँको बतलाया।

"यह छो क्या है?"—माँने पूछा।

"आजकलके मौसममें तो वह कोस-भर चौड़ी रेती है; लेकिन बरसातमें वह हहराती हुई बहनेवाली नदी बन जाती है, और उसके सामने जो कुछ पड़ जाता है, उसे तोड़ती-फोड़ती बहा ले जाती है।"—उन्होंने बताया।

इन बातोंको सुनकर माँ डर गईं। कई वर्ष पहले उन्हें एक बार ताँगेपर सतलज पार करनी पड़ी थी, जिसमें ताँगा बीच धारमें डूबते-डूबते बचा था।

अपनी बातोंका माँपर डरावना प्रभाव पड़ते देखकर वे औरतें माँको दिलासा देने लगीं—"यह कुछ ज़रूरी नहीं है कि छोको उसी वक़्त पार करना पड़े, जब उसमें बाढ़ आई हो, क्योंकि उसमें बाढ़ जितनी जल्दी आती है, उतनी ही जल्द उतर भी जाती है—कभी दो-तीन घंटेसे ज्यादा नहीं रहती। दो-चार घंटे रुक जाना कौन मुश्किल है? फिर इस मौसममें तो बाढ़ आनेका कोई अन्देशा ही नहीं है। अगर आप अपनी सवारी खींचनेवाले घोड़ेको रेतपर गाड़ी घसीटनेकी तकलीफ़ न देना चाहें, तो छोपर पहुँचकर आप सवारीसे उतर पड़ें और छोको पैदल पार करके उस पार फिर सवार हो लें। लेकिन बहुतसी औरतें रेतपर कोस-भर पैदल चलना पसन्द नहीं करतीं। आपको भी पैदल चलनेकी ज़रूरत नहीं।"

जैसे ही ये शब्द मेरे कानमें पड़े, वैसे ही मुझे ख़याल आया कि इस वक़्त माँसे यह कहना कि तुम्हें इक्केपर चलना पड़ेगा, बड़ा मुश्किल है। मैं वेटिंग-रूमके बाहर ही मँडरा रहा था। भीतर माँके सामने जानेकी हिम्मत न पड़ती थी। लेकिन इसके पहले कि उनकी निगाह मुझपर पड़े, सौभाग्यसे पिताजी आ गये। साथ ही वे यह सुखद समाचार लाये कि जिन सज्जनने* शिकरम किराये ली थी, उन्होंने हमारी कठिनाई जानकर उसे हमें दे दिया है। इस प्रकार हम लोग आनन्दसे अपने नये घरके लिए रवाना हुए।

जब हम लोग छोपर पहुँचे, तो देखा कि उसे पार करना उतना मुश्किल नहीं है, जितना बताया गया था। पी० डब्ल्यू० डी० ने रेतपर घास बिछाकर एक सड़क-सी बना दी थी। माँ और छोटे भाईको शिकरमपर ही रहनेको कहा गया; लेकिन मैं अपनेको बड़ा और मर्द समझता था, इसलिए मैंने अपने पिताके साथ पैदल ही उसे पार किया और इस नये अनुभवका आनन्द लिया।

होशियारपुर पहुँचकर मैंने पूछा कि छावनी कहाँ है? जब मुझे बताया गया कि सबसे पासकी छावनी २५ मील दूर जालन्धरमें है, तो मुझे फीरोज़पुर

* यह सज्जन दीवान टेकचन्द आई० सी० एस० थे, जो उस समय आई० सी० एस० पास करके लौटे थे, और होशियारपुरमें असिस्टेन्ट कमिश्नर पदपर काम करने जा रहे थे।

छोड़नेका और भी अधिक दुःख हुआ। "यह तो एक बड़ा गाँव ही है।"––मैंने अपने पितासे कहा।

"ख़ैर, हम लोग किसी न किसी तरह यहाँ साल दो साल आरामसे काट ही लेंगे।"—पिताने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा, यद्यपि मैं समझता हूँ कि वे भी इस जगहको मुझसे कम नापसन्द न करते थे।

[६]

शीघ्र ही मैं शहरसे हिल-जुल गया। फीरोज़पुर, अमृतसर, एबटाबाद, रावलपिंडी तथा अन्यान्य नगर, जहाँ मैंने कुछ साल या महीने बिताये थे, शीघ्र ही तीन-चौथाई भूले हुए अतीतके गर्भमें विलीन हो गये।

अल्पायुमें ही पक्व होनेके कारण, जैसा कि मैं रहा हूँगा, मैंने आसानीसे अपने पिताके मित्रोंके साथ संसर्ग स्थापित कर लिया। उनमें से कुछ मुझपर विशेष कृपा रखने लगे, जिनमें एक लाला श्यामदास वकील और दूसरे मेरे पिताके सहकारी बाबू नन्दलाल थे। ये दोनों उच्च शिक्षा प्राप्त थे, और इन्होंने मुझमें पढ़नेकी अतृप्त इच्छा देखकर मुझे अपने पुस्तकालयोंका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करनेकी आज्ञा दे दी। मैंने भी इस सुविधासे पूरा लाभ उठाया।

अब जीवनमें पहली बार मुझे स्कूल कुछ जान पड़ने लगा। जिन शिक्षकके हाथमें स्कूलका पुस्तकालय था, वे समझदार व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे कोई ऐसी किताब पढ़ते देखा होगा, जिससे मेरा नैतिक पतन होनेकी सम्भावना होगी। इसपर मुझे डाँटनेके बजाय वे मुझे पुस्तकालयके कमरेमें ले गये, जहाँ अंगरेज़ी, उर्दू, फ़ारसी, हिन्दी और संस्कृतकी पुस्तकोंसे भरी हुई अलमारियाँ रखी थीं।

"देखो, यहाँ बहुतसी किताबें हैं, जिन्हें पढ़नेमें तुम्हें बड़ा आनन्द आयेगा। मसलन एक यह है। तुम इसे ले जाओ। मैं इसे तुम्हारे नाम लिखे देता हूँ।"

मैंने उनकी कृपाके लिए धन्यवाद दिया। उनकी दी हुई किताब जो खोली, तो देखा कि वह कर्नल टाडका 'राजस्थानका इतिहास' है। यह पुस्तक मुझे इतनी मनोरंजक मालूम हुई कि जब तक मैंने उसे समाप्त न कर लिया, मुझे अपने क्लासकी पुस्तकें पढ़ना दूभर जान पड़ने लगा। किताबमें मुझे अनेक ऐसे शब्द मिलते थे, जिनका अर्थ मैं नहीं समझता था; लेकिन कहानीमें आगे क्या हुआ, यह जाननेकी उत्कंठामें उन शब्दोंका अर्थ डिक्शनरीमें देखे बिना ही पृष्ठ-के-पृष्ठ चाटता चला जाता था। मैं राजपूतोंके वीरतापूर्ण कार्यों और उनकी स्त्रियोंकी पति-भक्तिकी कहानियाँ पढ़कर मोहित हो गया।

स्कूलके सेकेन्ड मास्टर भी अपने ढंगके विचित्र व्यक्ति थे। वे कट्टर आर्यसमाजी थे, और किसी धार्मिक वाद-विवादमें उनके मुखसे असावधानीमें कोई ऐसा शब्द निकल गया था, जो एक दूसरे धर्मके संस्थापकके लिए अपमानजनक था, इसीलिए वे हेड मास्टरीसे उतारकर सेकेण्ड मास्टरीपर होशियारपुर भेज दिये गये थे। उनका यह क़िस्सा होशियारपुर भी जा पहुँचा था, इसलिए कुछ लोग उन्हें बुरा कहते थे और उन्हें नुक़सान पहुँचानेकी कोशिश भी करते थे। परन्तु इस दुर्भाग्यसे उनमें कोई कटुता उत्पन्न न हुई थी। वे लड़कोंसे प्रेम करते थे, और उन्हें विकासके मार्गमें अग्रसर करना सौभाग्य समझते थे। वे मेरे साहित्यिक पथ-प्रदर्शक बने, और उनके कहनेपर मैंने विभिन्न विषयोंकी अनेकों पुस्तकें पढ़ीं।

जिस समय हम लोग होशियारपुरमें जाकर बसे थे, उसी समय एक बड़े अच्छे शिक्षक लाला सुन्दरदास सूरीने स्कूलकी हेड मास्टरी ग्रहण की थी। अंगरेज़ी भाषापर असाधारण अधिकार होनेके कारण उनकी विशेष ख्याति थी। वे ऐसी तेज़ी और शुद्धतासे अंगरेज़ी बोलते थे कि उन्हें देखकर उनके समकालीन लोगोंको ईर्ष्या होती थी।

[७]

इन प्रेरणाओंसे मैंने जो विभिन्न विषयोंकी किताबें पढ़ डाली थीं, उनकी बदौलत एक घटना घटी—उस समय जब मैं पूरे पन्द्रह वर्षका भी नहीं हुआ था। मेरे पिता धार्मिक सिख थे। एक दिन वे एक देशी ईसाई सज्जनको सिखोंके दसवें गुरु गोविन्दसिंहकी एक आज्ञाके भीतरी अर्थ समझा रहे थे। वे मुझसे पुत्रकी भाँति नहीं, वरन मित्रकी भाँति व्यवहार करते थे; इसलिए मैं भी बिना पशोपेशके वाद-विवादमें शामिल हो गया, और मैंने कहा—"मैं ओल्ड टेस्टामेंटसे सिद्ध कर सकता हूँ कि सरपर लम्बे बाल रखनेसे शरीरका स्वास्थ्य और बल बढ़ता है।"

उन्हींकी धार्मिक पुस्तकसे प्रमाण देनेका मेरा दावा सुनकर ईसाई सज्जनको आश्चर्य हुआ, और उनसे भी अधिक आश्चर्य हुआ मेरे पिताको। मुझसे अपना कथन प्रमाणित करनेको कहा गया।

बिना एक क्षणके विलम्बके मैंने सैमसन और देलीलाका क़िस्सा बताया। मेरे पिताने उसका नाम भी नहीं सुना था, हाँ, ईसाई सज्जन उस क़िस्सेसे परिचित थे।

वे बोल उठे—"सरदार साहब, आपके बेटेने जो कहा, उसमें कुछ तथ्य है। सैमसन एक बड़ा बलशाली पुरुष—पहलवान—था। कोई भी उसे न हरा सकता था। उसकी शक्तिका रहस्य जाननेके लिए सब तरहकी चालें चलीं गईं। अन्तमें यह मालूम हुआ कि उसके लम्बे केश ही (जिनमें कभी कैंची उस्तरा नहीं छुआया गया था), उसकी आश्चर्यजनक शक्तिका कारण है। इसलिए उसकी शक्ति कम करनेके उद्देशसे देलीला नामकी एक स्त्री उसके लम्बे केश काटनेके लिए भेजी गई थी, जिसने सैमसनकी निद्रावस्थामें उसके केश काट डाले थे।"

मेरे पिता आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने तुरन्त रेवरेण्ड चटर्जीको एक चिट्ठी भेजकर बाइबिलकी एक प्रति उधार मँगाई। चपरासीसे फौरन जवाब लानेका हुक्म दिया।

मुझे अपने जीवनमें जिन लोगोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनमें सबसे शरीफ़ आदमियोंमें मि० चटर्जी एक हैं। बचपनमें उन्होंने किसी पादरी शिक्षकके चरणोंमें बैठकर शिक्षा पाई थी, जिसके चरित्रका उनपर इतना प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने अपने पुरखोंके धर्मको छोड़कर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था।

उनके भव्य रूपने मुझे उसी क्षणसे आकृष्ट कर लिया, जिस क्षण मैंने पहले-पहल उन्हें गिरजाघरके समीप टहलते हुए देखा था। वे गिरजेमें हर रविवारको दो बार उपदेश देते थे। उस समय मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि कुछ वर्ष बाद मैं उनकी पुत्री रानी हरनामसिंह और उनके दामाद कपूरथलाके राजा हरनामसिंह तथा उनकी सन्तानोंसे मिलूँगा, और वे मुझसे अत्यन्त प्रेमपूर्ण बर्ताव करेंगे।

मि० चटर्जीने बाइबिलकी दो प्रतियाँ भेज दीं। उन्होंने पिताजीको लिखा कि बड़ी बाइबिल वे स्वयं रख लें, और छोटीको, यदि मैं लेना चाहूँ तो, उनके आशीर्वादके साथ मुझे दे दें।

मेरे उदार पिताने मेरा उपहार मुझे दे दिया। मुझे बाइबिलमें राजा और रानी, किसान और प्रधान मन्त्री, पैग़म्बर और अत्याचारी, बुद्धिमान व्यक्ति और चमगादड़ स्त्रियों तथा सन्त और पापियोंकी कथाएँ पढ़नेमें बड़ा आनन्द आया। इसी प्रकार पहाड़के उपदेशको भी पढ़कर बड़ा आनन्द आया—विशेषकर इसलिए कि थोड़े ही दिन बाद मेरे हाथ एक किताब लगी, जिसमें काउन्ट लियो टाल्सटायने इस उपदेशका भाष्य किया था।

[८]

इस समय ठीक-ठीक स्मरण नहीं आता कि मि० चटर्जीकी कृपासे या किसी औरकी कृपासे थोड़े ही

दिन बाद मेरे पास 'इपी फेनी' नामक एक पाक्षिक पत्र आने लगा। यह पत्र कलकत्तेके आक्सफोर्ड मिशनसे प्रकाशित होता था।

मैंने पहले ही अपने मनमें ठान लिया था कि मैं अंगरेज़ीका लेखक बनूँगा। मैंने सोचा कि उस पत्रसे मेरा अंगरेज़ीका शब्द-भंडार बढ़ेगा और शब्दोंको ठीकसे व्यवहार करनेमें मैं उन्नति कर सकूँगा। इस प्रकार उसके द्वारा मेरी आकांक्षा कुछ अग्रसर होगी।

उस पत्रकी दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें कौड़ी नहीं लगती थी और जो कोई चाहता था, मिशन् उसे मुफ्त देता था। उस समय जब मेरी अपनी कोई आमदनी न थी, यह सुविधा कोई छोटी बात न थी।

मुझे इस बातका रत्तीभर ध्यान न था कि प्रति पन्द्रहवें दिन ईसाइयोंकी बातें पढ़नेका मुझपर कुछ असर भी पड़ेगा। अथवा सम्भव है कि अपने गर्वमें मुझे इस बातका निश्चय था कि मेरे मनपर कभी ईसाइयतका रंग चढ़ ही नहीं सकता। मुझे ठीकसे याद नहीं है, लेकिन यह बात असम्भव नहीं है कि जीवनके उस कालमें मैं अपनेको ईसाई पादरियोंके प्रचारके लिए चिकना घड़ा समझता हूँ। उस समय दुनियाकी कोई बात ऐसी न थी, जिसे मैं अपनी सामर्थ्यके बाहर समझता होऊँ।

इस ईसाई पत्रके कालमोंमें किसी-न-किसी तरहका वाद-विवाद हमेशा चला करता था। एक दिन मुझे एक ऐसा अवसर दिखाई दिया, जिसमें मैं भी इस वाद-विवादके अखाड़ेमें उतर सकता था। मारे खुशीके मैं सातवें आस्मानपर पहुँच गया।

मैंने बुख़ारकी-सी तेज़ीसे कुछ पंक्तियाँ लिखीं और उन्हें अपने पिताको दिखाया। मेरे दयालु पिताने कहा—"मुझसे यह पूछनेसे क्या फ़ायदा कि सम्पादक तुम्हारी चीज़ छापेगा या नहीं। जब तुमने यह लिख ही लिया है, तो इसकी एक साफ नक़ल कर दो, हम इसे भेज देंगे। देखें, क्या होता है। अगर छप गई, तो वाह-वाह, अगर नहीं छपी, तो कोई हर्ज नहीं, फिर कोशिश करना।"

कहना नहीं होगा कि मेरे पिताने ये बातें अंगरेज़ीमें कही थीं। वे अक्सर मुझसे अंगरेज़ीमें बोला करते थे, ताकि मुझे भी इस भाषाको व्यवहार करनेकी आदत पड़ जाय। जहाँ तक मुझे पता लगा था, उनकी आकांक्षा यह थी कि मैं इंडियन सिविल सर्विसका सदस्य अथवा कम-से-कम बैरिस्टर बनूँ। इसलिए वे इस बातके लिए चिन्तित रहते थे कि मुझे सरकारी दफ्तरों और अदालतोंमें व्यवहृत होनेवाली भाषाका पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाय।

रहा मैं, सो मेरी इच्छा पत्रकार बननेकी थी। चूँकि इस पेशेमें अंगरेज़ी भाषाकी योग्यताकी बड़ी ज़रूरत थी, इसलिए मेरे पिताके प्रयत्न इस सीमा तक व्यर्थ नहीं गये, यद्यपि बादमें वे बराबर मुझसे यह कहा करते थे कि पत्रकारका पेशा कोई पेशा नहीं है, और केवल पागल आदमी ही उसे अपने जीवनका मुख्य कार्य बनानेकी बात सोचते हैं।

जो भी हो, उनकी समझमें—उनकी ही समझमें नहीं, बल्कि उनकी पौधके सौ फीसदी 'पढ़े-लिखे भारतीयों' की समझमें—अंगरेज़ीका ज्ञान जीवनमें सफलता और महानता प्राप्त करनेकी पहली सीढ़ी थी। इसलिए उनका दृढ़ निश्चय था कि मुझे इस भाषाको जाननेकी सुविधा ज़रूर प्राप्त होनी चाहिए। उनके सौभाग्यसे—और अन्तमें मेरे सौभाग्यसे—यद्यपि उनका मस्तक पाश्चात्य सभ्यताके बादलोंमें ऊपर उठा हुआ था, फिर भी उनके पैर दृढ़तासे भारतीय ज़मीनपर ही जमे हुए थे।

ख़ैर, मैंने अपने लेखकी हाथसे एक साफ नकल की। अबसे चालीस वर्ष पहले वहाँ टाइपराटिंग मेशीनें इक्का-दुक्का ही रही होंगी। पिताने मेरे लेखको अपने हाथसे लिफाफेमें बन्द किया, अपने सुन्दर अक्षरोंमें उसपर पता लिखा और डाकमें डलवा दिया।

अब तो निद्राहीन रातें और बेचैनीपूर्ण दिन गुज़रने

लगे। अन्तमें वह दिन आया, जिस दिनके अंकमें मेरे लेखके छपनेकी सम्भावना थी। पोस्ट-आफिस घरसे डेढ़ मील दूर था। नारायनसिंह, जो मेरे पिताका सरकारी चपरासी था,—परन्तु जो मेरा मित्र और साथी था—रोज़ सवेरे डाक लेनेके लिए भेजा जाता था। मैं उसके साथ डेढ़ मील पैदल डाकख़ाने गया।

जैसे ही सार्टरने उसे अख़बार दिया, मैंने उसके हाथसे छीन लिया और कवर फाड़कर उसके कालमोंकी खोज-बीन करने लगा। अन्तमें मेरी खोज सफल हुई। मेरी दृष्टि अपने क्षुद्र लेखपर जा अटकी!

उसके बादसे तो मेरी लेखनीसे निकला हुआ मैटर संसारके प्रत्येक भागके अख़बारों, मैगज़ीनों और सामयिक पत्रोंके कालमोंमें पहुँचता रहता है। लेकिन मुझे अपनी किसी भी साहित्यिक विजयपर ऐसा उन्मादकारी हर्ष नहीं हुआ, जैसा अंगरेज़ीमें लिखे हुए इस सर्वप्रथम लेखके प्रकाशित होनेपर हुआ था!

निर्झर

श्री चतुर्भुज माहेश्वरी 'चतुर'

कहाँ जा रहे हो निर्झर!
किसे खोजनेको निकले हो,
तुम मतावले-से होकर?

कौन दु:ख था उच्चस्थलपर,
ठहर सके जो वहाँ न पल-भर,
गिरते हो पतनोन्मुख होकर,
किस बलपर, किस आशापर,
कहाँ जा रहे हो निर्झर?

किस गिरिके तुम द्रवित हृदय हो,
किस मानसके भावोदय हो,
रज-कणमें बिखरे सविनय हो,
क्या है तुम्हें यही सुखकर?
कहाँ जा रहे हो निर्झर?

एक रागिनी ही तुम गाते,
अपनी धुनमें बहते जाते,
क्षणको भी विश्राम न पाते,
इस तन्मय गतिसे प्रियवर!
कहाँ जा रहे हो निर्झर?

स्निग्ध तप्त किसको करनेको,
किसकी विषम व्यथा हरनेको,
रिक्त कोष किसका भरनेको,
झरते हुए सतत झर-झर!
कहाँ जा रहे हो निर्झर?

प्रेज़ेन्ट्स

श्री भगवतीचरण वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०

हम लोगोंका ध्यान अपनी सोनेकी अंगूठीकी ओर, जिसपर मीनेके काममें 'श्याम' लिखा था, आकर्षित करते हुए देवेन्द्रने कहा—"मेरे मित्र श्यामनाथने यह अंगूठी मुझे प्रेज़ेन्ट की। जिस समय उसने यह अंगूठी प्रेज़ेन्ट की थी, उसने कहा था कि मैं इसे सदा पहने रहूँ, जिससे कि वह सदा मेरे ध्यानमें रहे।"

परमेश्वरीने कुछ देर तक उस अंगूठीकी ओर देखा, इसके बाद वह मुसकराया। "प्रेज़ेन्टसकी बात उठी है, तो मैं आप लोगोंको एक विचित्र, मज़ेदार और सच्ची कहानी सुना सकता हूँ। यक़ीन करना या न करना आप लोगोंका काम है, मुझे इससे कोई मतलब नहीं। मैं तो केवल यह जानता हूँ कि यह बात सच है, क्योंकि इस कहानीमें मेरा भी हाथ है। अगर आप लोगोंको कोई जल्दी न हो, तो सुनाऊँ।"

चा तैयार हो रही थी, हम सब लोगोंने एक स्वरमें कहा—"जल्दी कैसी? सुनाओ।"

परमेश्वरीने आरम्भ किया :—दो साल पहलेकी बात है। अपनी कम्पनीका ब्रांच मैनेजर होकर मैं दिल्ली गया था। मेरे बँगलेकी बगलमें एक काटेज थी उसमें एक महिला रहती थीं। उनका नाम श्रीमती शशिबाला देवी था। वे ग्रेजुएट थीं, और किसी गर्लस् स्कूलकी प्रधान अध्यापिका थीं। संध्याके समय जब मैं टहलनेके लिए जाया करता था, तो श्रीमती शशिबाला देवी भी प्रायः टहलती हुई दिखलाई देती थीं। हम लोग एक दूसरेको देखते थे, पर परिचय न होनेके कारण एक दूसरेसे बातचीत न हो पाती थी।

एक दिन मैं टहलनेके लिए नज़दीकके पार्कमें गया। वहाँ जाकर देखा कि श्रीमती शशिबाला देवी एक फौवारेके पास खड़ी हैं। उन्होंने मुझे देखा और वैसे ही वह वहाँसे चल दीं। श्रीमती शशिबाला देवी मन्थर गतिसे टहलते हुए आगे-आगे चल रहीं थीं, और मैं उनके पीछे करीब दस गज़के फासलेपर। वे बीच-बीचमें मुड़कर पीछे भी देख लिया करती थीं। एकाएक उनका रूमाल गिर पड़ा—या यों कहिये कि उन्होंने अपना रूमाल गिरा दिया, क्योंकि मैंने उन्हें रूमाल गिराते हुए स्पष्ट देखा था। रूमाल गिराकर वे आगे बढ़ गईं। जवाब! मेरा कर्तव्य था कि रूमाल उठाकर मैं उन्हें वापस दे दूँ, और मैंने किया भी ऐसा ही। मुसकराते हुए उन्होंने कहा—"इस कृपाके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ।"

मैंने भी मुसकराते हुए कहा—"धन्यवादकी क्या आवश्यकता, यह तो मेरा कर्तव्य था।"

शशिबालाने मेरी ओर एक तीव्र दृष्टिसे देखा—"क्या आप यहीं रहते हैं? आपको मैंने देखा तो कई बार है!"

"जी हाँ, आपके बगलवाले बँगलेमें ठहरा हुआ हूँ। अभी हालमें ही आया हूँ।"

"अच्छा! तो आप मेरे पड़ोसी हैं, और यों कहना चाहिए कि निकटतम पड़ोसी हैं।" कुछ चुप रहकर उन्होंने कहा—"यह तो बड़े मज़ेकी बात है। इतना निकट रहते हुए भी हम लोगोंमें अभी तक परिचय न हुआ!"

मैंने ज़रा लज्जित होते हुए कहा—"एक-आध बार इरादा तो हुआ कि अपने पड़ोसियोंसे परिचय प्राप्त कर लूँ, और परिचय प्राप्त भी किये; पर आप स्त्री हैं, इसलिए आपके यहाँ आनेका साहस न हुआ।"

शशिबाला देवी हँस पड़ीं—"अच्छा! तो आप स्त्रियोंसे इतना अधिक डरते हैं; लेकिन स्त्रियोंसे डरनेका कारण तो मेरी समझमें नहीं आता। अब अगर आप अपने भयके भूतको भगा सकें, तो कभी मेरे यहाँ आइये। आपसे सच कहती हूँ कि स्त्री बड़ी निर्बल होती है और साथ ही बड़ी कोमल। उससे डरना तो बड़ी भारी भूल है।"

शशिबालाकी मीठी हँसी और उसकी वाक्पटुतापर मैं मुग्ध हो गया। वह सुन्दरी न थी; पर वह कुरूपा भी नहीं कही जा सकती थी। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्षकी रही होगी। गठा हुआ दोहरा बदन, बड़ी-बड़ी आखें और गोल चेहरा। मुख कुछ चौड़ा था, माथा नीचा और बाल घने तथा काले और लापरवाहीके साथ खींचे गये थे, क्योंकि दो-चार अलकें मुखपर झूल रही थीं, जिनको वह बार-बार सम्हाल देती थी। रंग गेहुँआ और क़द मझोला। छपी हुई मलमलकी धोती पहने हुई थी। पैरमें गोटेके कामकी चट्टियाँ थीं।

मैंने शशिबालाकी ओर प्रथम बार पूरी दृष्टिसे देखा—शशिबालाको मेरी दृष्टिका पता था। वह ज़रा सिमट-सी गई,

फिर भी मुसकराते हुए उसने कहा—"आप विचित्र मनुष्य दिखाई देते हैं। फिर आप कब आइयेगा ?"

"कल शामको तो आप घरपर रहियेगा ?"

"अगर आप आइयेगा। नहीं तो नित्यके अनुसार घूमने चली जाऊँगी।"

"तो कल शामको पाँच बजे मैं आऊँगा।"

× × ×

शशिबालाकी और मेरी दोस्ती आशासे अधिक बढ़ गई। मैं विवाहित हूँ, यह तो आप लोग जानते ही हैं, और साथ ही मेरी पत्नी सुन्दरी भी है। इसलिए मैं यह भी कह सकता हूँ कि मेरी दोस्ती आवश्यकतासे भी अधिक बढ़ गई। शशिबालामें एक विचित्र प्रकारका आकर्षण था, जो गृहिणीमें नहीं मिल सकता। शशिबालाकी शिक्षा और उसकी संस्कृति! मैं नित्य ही उसके यहाँ जाने लगा। कभी-कभी रात-रात-भर मैं घर नहीं गया।

एक दिन जब सुबह मेरी आँख खुली, तो सरमें कुछ हलका-हलका दर्द हो रहा था। मैं उठकर चारपाईपर बैठ गया। वह कमरा शशिबालाका था; पर शशिबाला उस समय वहाँ न थी, वह बाथ-रूममें स्नान कर रही थी। घड़ी देखी, आठ बज रहे थे। अँगड़ाई लेकर उठा, खिड़की खोली। सूर्यका प्रकाश कमरेमें आया। रातको ज़रा अधिक देर तक जगा था—सरमें शायद इसीसे दर्द हो रहा था। ड्रेसिंग टेबिलमें लगे हुए शीशेमें मैंने अपना मुख देखा—सिर्फ आँखें कुछ लाल थीं और चेहरा कुछ उतरा हुआ। एकाएक मेरी दृष्टि ड्रसिंग-टेबिलके कोनेमें चिपके हुए काग़ज़के टुकड़ेपर पड़ गई। उसमें कुछ लिखा हुआ था। उसे पढ़ा, अंगरेज़ीमें उसमें लिखा था—'प्रकाशचन्द्र'। यह प्रकाशचन्द्र कौन था, मैं इसीपर कुछ सोच रहा था कि मैंने शशिबालाका वेनिटी बाक्स देखा। वेनिटी बाक्स अभी तक ऊपरसे ही देखा था, इसलिए उसे खोला। पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक, पेन्सिल आदि कई चीज़ें सजी हुई रखी थीं। सबको उलटा-पुलटा। एकाएक वेनिटी बाक्सकी तहमें एक काग़ज़ चिपका हुआ दिखलाई पड़ा, जिसमें लिखा था—'सत्यनारायण'। वेनिटी बाक्स बन्द किया; लेकिन प्रकाशचन्द्र और सत्यनारायण—इन दोनोंने मुझे एक अजीब चक्करमें डाल दिया। एकाएक मेरी दृष्टि ग्रामोफोनपर पड़ी। सोचा, एक-आध रेकार्ड बजाऊँ। खोला, और खोलनेके साथ ही चौंककर पीछे हटा। अन्दर ऊपरवाले ढकनेके कोनेमें एक काग़ज़ चिपका हुआ था, जिसपर लिखा था—'ख्यालीराम'। वहाँसे हटा। हारमोनियम बजानेकी इच्छा हुई। धौंकनीमें एक काग़ज़ था, जिसपर लिखा था—'भूटासिंह'। चुपकेसे लौटा, कपड़े पहने; लेकिन जूता पलंगके नीचे चला गया था। उसे उठानेके लिए नीचे झुका—उफ़! पायेमें पीछेकी तरफ़ एक काग़ज़ चिपका हुआ था, जिसपर लिखा था—'मुहम्मद सिद्दीक़'।

अब तो मैंने कमरेकी चीज़ोंको ग़ौरसे देखना आरम्भ किया। सबमें एक-एक काग़ज़ चिपका हुआ और उस काग़ज़पर एक-एक नाम—जैसे 'विलियम डाबी', 'पेस्टनजी सोराबजी बाटलीवाला', 'रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती', 'श्रीकृष्ण रामकृष्ण मेहता', 'रामनाथ टंडन', 'राजेश्वरसिंह' आदि-आदि।

उस निरीक्षणसे थककर मैं बैठा ही था कि शशिबाला देवी बाथ-रूमसे निकलीं। मुसकराते हुए कहा—"परमेश्वरी बाबू! आज बड़ी देरमें सोकर उठे।"

मैंने सर झुकाये उत्तर दिया—"सोकर उठे हुए तो देर हो गई। इस बीचमें मैंने एक अनुचित काम कर डाला, मुझे क्षमा करोगी।"

मेरे पास आकर और मेरा हाथ पकड़ते हुए उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारी हूँ—मुझसे क्यों क्षमा माँगते हो ?"

"फिर भी क्षमा माँगना मैं आवश्यक समझता हूँ। एक बात पूछूँ—सच-सच बतलाओगी ?"

"तुमसे झूठ बोलनेकी मैंने कल्पना तक नहीं की है।"

"नहीं, वचन दो कि सच-सच बतलाओगी।"

मेरे गलेमें हाथ डालते हुए उसने कहा—"मैं वचन देती हूँ।"

"मैंने तुम्हारे कमरेको प्रथम बार आज पूरी तरहसे देखा। मैं जानता हूँ कि मुझे ऐसा न करना चाहिए था; पर उत्सुकताने मुझपर विजय पाई, उसने मुझे नीचे गिराया। हाँ, मैंने कमरेकी सब चीज़ोंको देखा; पर एक विचित्र बात है, हरएक चीज़में एक काग़ज़ चिपका हुआ है, जिसपर एक पुरुषका नाम लिखा है। अलग-अलग चीज़ोंमें अलग-अलग नाम लगे हैं। इस रहस्यको लाख प्रयत्न करनेपर भी मैं नहीं समझ सका। अब मैं तुमसे इस रहस्यको समझना चाहता हूँ।"

शशिबाला मुसकराती रही—"यह रहस्य जैसा है, वैसा ही रहने दो—यह तुम मुझसे न समझो। तुम इसे समझकर दुखी होओगे, और सम्भव है, मुझसे खफ़ा भी हो जाओ।"

"नहीं, मैं दुखी न होऊँगा और न खफ़ा होऊँगा।"

"अच्छा, तुम मुझे वचन दो।"

"मैं वचन देता हूँ।"

शशिबाला कुरसीपर बैठ गई। "परमेश्वरी बाबू! इस रहस्यमें मेरी कमज़ोरी है, साथ ही मेरा हृदय है। ये सब चीज़ें मुझे अपने प्रेमियोंसे प्रेज़ेन्ट मिली हैं। यह याद रखना कि मैंने प्रत्येक प्रेमीसे केवल एक वस्तु ही ली है। अब मेरे पास इतनी अधिक चीज़ें हो गई हैं कि हरएक प्रेमीका नाम याद रखना असम्भव है। चीज़ें नित्यके व्यवहार की हैं, इसलिए प्रत्येक प्रेमीकी वस्तुपर मैंने उसका नाम लिख दिया है। उससे यह होता है कि मैं जब कभी उस वस्तुका व्यवहार करती हूँ, उस प्रेमीकी स्मृति मेरे हृदयमें जाग उठती है। क्या करें परमेश्वरी बाबू! मेरा हृदय इतना निर्बल है कि मैं अपने प्रेमियोंको नहीं भूलना चाहती—नहीं भूलना चाहती।"

"तुम्हारे पास कुल कितनी चीज़ें हैं?"—मैंने पूछा।

"सत्तानवे!"

"इतनी अधिक?"—आश्चर्यसे मैं कह उठा।

"हाँ, इतनी अधिक! परमेश्वरी बाबू! मेरा विवाह नहीं हुआ। विवाह करनेकी बड़ी इच्छा थी। प्रत्येक व्यक्ति जो मेरे जीवनमें आया, भविष्यके सुख-स्वप्न पैदा करते हुए आया, प्रत्येक व्यक्तिको मैंने भावी पतिके रूपमें देखा; पर क्या हुआ? वह मुझे प्रेज़ेन्ट दे सकता था, पर अपनी नहीं बना सकता था। धीरे-धीरे मैं इसकी अभ्यस्त हो गई। रहस्यमय जीवन धीरे-धीरे मेरे वास्ते एक खेल हो गया। सोचती हूँ कि उन दिनों मैं कितनी भोली थी, जब विवाहके लिए लालायित रहती थी, जब पत्रोंमें मैंने अपने विवाहके लिए विज्ञापन तक निकलवाये; पर हरएक आदमी ग़लती करता है, मैंने भी ग़लती की। अब! अब बन्धनकी कोई आवश्यकता नहीं है, जीवन एक खेल है, जिसका सबसे सुन्दर भाग हृदयका खेल—नहीं भोग-विलासका खेल है, और खुलकर खेलना ही हमारा कर्तव्य है। परमेश्वरी बाबू! यह मेरी स्मृतिकी कहानी है—और मेरी स्मृतिके रूपको तो आपने देखा ही है।"

"साधारण मनुष्यके लिए यह अच्छा है।"

"साधारण मनुष्योंके लिए क्यों? आपका नम्बर अट्ठानबे होगा।"—खिलखिलाकर हँसते हुए शशिबालाने कहा।

उस समय मैं न-जाने क्यों दार्शनिक बन गया। जनाब, वैसे जीवनमें दर्शनमें और मुझमें इतना ही फ़ासिला है, जितना ज़मीन और आसमानमें; पर शशिबाला देवीकी कहानी सुनकर वास्तवमें मैं दार्शनिक बन गया। मैंने कहा—"हाँ, जीवन एक खेल है, और तब तक जब तक हम खेल सकते हैं। अशक्त होनेपर यही जीवन हमारे वास्ते एक समस्याके रूपमें आकर खड़ा हो जाता है। तुम वर्तमानकी सोच रही हो, मैं भविष्यकी सोच रहा हूँ—दस वर्ष बादकी बात सोच रहा हूँ। उस समय तुम्हारे मुखपर झुर्रियाँ पड़ जायँगी—लोग तुमसे खेलनेकी कल्पना तक न कर सकेंगे। और फिर—फिर यह स्मृतियाँ तुम्हें सुखी बनानेकी जगह तुम्हें काटनेको दौड़ेंगी। तुम्हारे आगे-पीछे कोई नहीं है—अपने बनाव-सिंगारसे तुम्हें कुछ बचता भी न होगा। तब इस खेलके खतम हो जानेके बाद बुढ़ापा, दुर्बलता, भूख, बीमारी और—और गत-जीवनपर पश्चात्ताप बाक़ी रह जायगा। इसलिए मैं तुम्हें वह चीज़ प्रेज़ेन्ट करूँगा, जो उन दिनों तुम्हारे काम आवे। तुम्हारा संग्रह बहुमूल्य है—मैं आज लिखे देता हूँ कि मैं दस वर्ष बाद तुम्हारे संग्रहको पाँच हज़ार रुपयेमें खरीद लूँगा। इस प्रकार ये अभिशापित स्मृति-चिह्न उस समय तुम्हारे सामनेसे हट जायँगे, जब तुम रामका भजन करने और भगवानके सामने जानेकी तैयारी करोगी। साथ ही पाँच हज़ार रुपयेसे तुम बुढ़ापेके कष्टोंको भी कम कर सकोगी।"

× × ×

मैंने परमेश्वरीसे कहा—"और उसने तुम्हें नौकर द्वारा अपने कमरेसे निकलवा नहीं दिया?"

परमेश्वरी हँस पड़ा—"नहीं। उसने कुछ देर तक सोचा, फिर उसने कहा, 'तुमने जो कुछ कहा, उसमें मैं सब बातें ठीक नहीं मानती; पर इतना अवश्य मानती हूँ कि मैंने अपने बुढ़ापेके लिए कोई इन्तज़ाम नहीं किया। इसलिए मैं तुम्हारे हाथ यह सब दूँगी। कांट्रैक्ट साइन कर दो।' और मैंने कांट्रैक्ट साइन कर दिया है। अभी दो वर्ष तो हुए ही हैं। उसका पत्र आया है, और उसने लिखा है कि इस समय तक उसके पास एक सौ तेरह चीज़ें हो गई हैं।"

आश्रम-विद्यालयका प्रारम्भ*

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'जीवन-स्मृति' में मैंने लिखा है कि मेरी उम्र जब कम थी, उस समयकी स्कूली रीति-प्रकृति तथा शिक्षक और शिष्यका सम्बन्ध मेरे लिए अत्यन्त दु:सह थे। उस ज़मानेकी शिक्षा-विधिमें कोई रस न था; किन्तु मेरी असहिष्णुताका केवल यही कारण न था। कलकत्तेमें मैं प्राय: बन्दीकी दशामें था, पर इतना होनेपर भी घरके बन्धनोंके बीचसे निकलकर बाहरकी प्रकृतिके साथ मेरा एक आनन्दका सम्बन्ध स्थापित हो गया था। घरके दक्षिण दिशावाले तालाबके जलमें प्रभात और सन्ध्याकी छाया इस पारसे उस पार घूमा करती; हंस तैरते रहते; मुर्ग़ाबियाँ डुबकी लगाकर ऊपर उठा करतीं; आषाढ़के जल-भरे ढेर-के-ढेर बादल पंक्तिमें खड़े नारियल वृक्षोंकी चोटियोंके ऊपर वर्षाका गम्भीर समारोह घेर लाया करते! उस ओर जो बाग़ था, उसका ऋतु-ऋतुका आमन्त्रण नाना रंगोंमें मेरे हृदयके अन्दर आया करता—उत्सुक दृष्टिके मार्गसे!

शिशु-जीवनके साथ विश्व-प्रकृतिका यह योग सृष्टिके आदिमकालसे चला आता है। प्राण और मनके विकासकी दृष्टिसे इसका कितना अधिक मूल्य है, मुझे आशा है कि घोरसे घोर 'शहरी' को भी समझानेकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। स्कूल अपने नीरस पाठ्य-क्रम, कठोर शासन-विधि, प्रभुत्वप्रिय शिक्षकोंकी विचारहीन तथा अन्यायभरी निर्ममताके द्वारा विश्वके साथ बालकके इस मिलन-वैचित्र्यको दबाकर उसके जीवनको निर्जीव, अन्धकारमय और निष्ठुर कर देता था—उन दिनों इसीलिए प्रतिकारहीन वेदनासे मेरे मनमें व्यर्थ विद्रोह उठ खड़ा होता था। जब मैं तेरह वर्षका हुआ, तब 'एजुकेशन'-विभागकी कठोर ज़ंजीरें तोड़कर मैं बाहर निकल आया। उसके बाद मैं जिस विद्यालयमें भर्ती हुआ, उसे वास्तवमें 'विश्वविद्यालय' कहा जा सकता है। वहाँ मेरे लिए छुट्टी नहीं थी, क्योंकि अविश्रान्त कार्यमें ही मेरी छुट्टी थी। किसी-किसी दिन रातको दो बजे तक पढ़ता रहता; धुँधले प्रकाशके उस युगमें सारा मुहल्ला रातमें निस्तब्ध हो जाता; हाँ, कभी-कभी श्मशान-यात्रियोंके कंठसे 'राम नाम सत्य है' सुनाई पड़ जाता। दीवटपर दो बत्तीवाला जो दीया जलता था, उसकी एक बत्ती मैं बुझा दिया करता; उससे प्रकाश तो कम ज़रूर हो जाता, परन्तु वह देर तक जलता। बीच-बीचमें अन्दरसे जीजी आतीं और मेरी किताब छीनकर मुझे सोनेके लिए भेज देतीं। उस समय मैंने जो सब किताबें पढ़नेकी चेष्टा की थी, उन्हें मेरे हाथमें देखकर कोई-कोई गुरुजन उसे मेरी धृष्टता समझा करते। शिक्षाके कारागारसे बाहर आकर जब शिक्षाकी स्वाधीनता पाई, तब काम तो बढ़ गया—बहुत अधिक, पर भार कम हो गया।

उसके बाद गृहस्थीमें प्रवेश किया। रथीन्द्रनाथको पढ़ानेकी समस्या सामने आई। उस समय प्रचलित प्रथानुसार उसे स्कूलमें भेज देनेसे मेरा काम सरल हो जाता; घरवाले और मित्र आदि भी यही आशा रखते थे। किन्तु जो शिक्षालय विश्व-क्षेत्रसे बिलकुल अलग थे, वहाँ उसको भेजना मेरे लिए असम्भव था। मेरी यह धारणा थी कि जीवनके प्रारम्भमें प्राणोंकी पुष्टि और मनके प्रथम विकासके लिए नगरवास अनुकूल नहीं। इसका एकमात्र कारण यही नहीं कि विश्व-प्रकृतिकी अनुप्रेरणासे नगरोंका विच्छेद है। शहरमें सवारी आदि तथा जीवन-यात्राके लिए विभिन्न प्रकारकी सुविधाएँ हैं, उससे सम्पूर्ण अंगोंका परिचालन और चारों ओरके प्रत्यक्ष ज्ञानसे बच्चे वंचित रह जाते हैं और बाह्य विषयोंमें

---

* २४ अगस्त, १९३३ को आश्रम-निवासियोंकी उपस्थितिमें पढ़ा गया लेख।

उनकी आत्म-निर्भरता भी शिथिल हो जाती है। मनुष्योंके बागोंमें पाले हुए पेड़, जिन्हें ऊपरसे पानी मिलता है, भूमिमें उथले ही रह जाते हैं। गहराई तक अपनी जड़ पहुँचाकर स्वाधीन होनेकी शिक्षा (अवसर) उन्हें नहीं मिलती है। मनुष्योंकी दशा भी ऐसी ही है। प्रकृतिका तकाज़ा है कि हम अपने शरीरको अच्छी तरह व्यवहार करें; लेकिन शहराती भले आदमियोंके नजदीक यह तकाज़ा उपेक्षा और अवज्ञा योग्य समझा जाता है,—मुझे इस बातका दुख जीवन-भर रहा है, और मैं उसे आज भी अनुभव करता हूँ। इसलिए उन दिनों मैंने कलकत्ता शहर लगभग बिलकुल छोड़ दिया था और अपने परिजनोंके साथ शिलाईदहमें रहा करता था। वहाँ हमारा जीवन भी बहुत ही सीधा-सादा था। यह इसलिए सम्भव हो सका था कि जिस समाजमें हम लोग पले थे, उसमें प्रचलित जीवन-यापनकी रीतियाँ और आदर्श इस जगह तक नहीं पहुँच पाते थे; यहाँ तक कि उन दिनों मध्यश्रेणीके नगरवासी लोग भी जिन सब आरामों और आडम्बरोंके अभ्यस्त हो गये थे, उनसे भी हम लोग बहुत दूर थे। एक बात और, शहरमें पारस्परिक अनुकरण और लाग-डाटके कारण जो अनिवार्य आदतें पड़ जाती हैं, उनकी भी यहाँपर सम्भावना नहीं थी।

शिलाईदहमें विश्वप्रकृतिके निकट सान्निध्यमें रथीन्द्रनाथ[१]ने जैसी आज़ादी पाई थी, वैसी आज़ादी उस ज़मानेके बड़े घरके लोग अपने बालकोंके लिए अनुपयोगी समझा करते थे, और उसमें विपदकी जो आशंका है, उसे माननेमें भी वे डरा करते थे। 'रथी' उसी छोटी उम्रमें नदीमें नाव चलाया करता था; उसी नाव द्वारा वह प्रतिदिन चलते हुए स्टीमरसे खाद्य-पदार्थ उतार लाया करता था, और इसीलिए उस स्टीमरका सारंग बार-बार आपत्ति किया करता था। कछारमें झाऊके जंगलोंमें वह शिकार खेलने निकल जाता और किसी-किसी दिन दिन-भर मटरगश्ती करके शामको घर लौटता था। यह तो मैं नहीं कह सकता कि इससे घरमें कभी भी चिन्ता नहीं होती थी; परन्तु उस चिन्तासे अपने मनको बचानेके लिए कभी बालकके स्वाधीनतापूर्वक चलने-फिरनेमें रुकावट नहीं डाली गई।

जब रथीकी उम्र १६ वर्षसे भी कम थी, तब मैंने उसे कुछ तीर्थ-यात्रियोंके साथ केदारनाथकी यात्राके लिए भेजा था। इसके लिए मैंने घरवालोंकी डाट भी सही थी। किन्तु एक ओर तो प्रकृतिके क्षेत्रमें और दूसरी ओर साधारण देशवासियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी यात्रासे जो कष्टसहिष्णु अनुभव प्राप्त होते हैं, मैं उन्हें शिक्षाका एक आवश्यक अंग समझता हूँ, और इसीलिए मैंने अपने पुत्र-प्रेमके कारण रथीको इससे वंचित नहीं रखा। मेरी कोठीके चारों ओर जो ज़मीन थी, उसमें नई ढंगकी फसलका प्रचार करनेके उद्देश्यसे हम लोग नाना परीक्षाओंमें जुटे रहते थे। इन परीक्षाओंमें सरकारी कृषि-विभागके विशेषज्ञोंकी सहायता भी अत्यधिक मात्रामें मिली थी। अजीब शकल और नामवाली खादोंकी सूची देखकर, जिन्होंने चिचेष्टर[२]के कृषि-कालेजमें इम्तिहान पास नहीं किये थे, वे सब किसान हँसा करते थे; वास्तवमें उनकी हँसी ही अन्त तक क़ायम रही। मरनेके लक्षण स्पष्ट हो जानेपर भी श्रद्धालु रोगी जिस प्रकार चिकित्सकके सब आदेश बिना चूँ-चराके पालन करते हैं, ठीक उसी प्रकार पचास बीघा ज़मीनमें आलूकी परीक्षाओंमें सरकारी कृषितत्त्व-विशारदोंके निर्देश हमने एकान्तनिष्ठाके साथ पालन किये थे। वे भी मेरा विश्वास क़ायम रखनेके लिए अपने दौरेके सिलसिलेमें सर्वदा ही आते जाते रहते थे। इसी बेढंगी बहुव्ययसाध्य व्यर्थताका मज़ाक बनाकर बन्धुवर जगदीशचन्द्र आजकल भी यदाकदा हँस दिया करते हैं, किन्तु उनकी हँसीसे भी अधिक प्रबल अट्टहास एक हथ कटे 'चामरू' नामधारी उस राजवंशी किसानके घरमें हुआ था, जिसने पाँच विस्वा ज़मीनके लायक बीज लेकर तथा कृषितत्त्वविदोंके

१ आप कविके सुपुत्र हैं।

२ पश्चिममें एक प्रसिद्ध कृषि-विद्यालय है।

सब उपदेशोंकी परवा न करके भी हमसे अधिक लाभ उठाया था! कृषि आदि सम्बन्धी इन सब कार्योंके बीचमें जो बालक बढ़ रहा था, उसीका एक नमूना बतलानेके लिए यह कहानी कही गई है। पाठक हँसना चाहें तो हँसें, किन्तु इस बातको तो मानना ही पड़ेगा कि शिक्षाके एक अंग-स्वरूप यह व्यर्थता भी व्यर्थ न थी। इतने बड़े अपव्ययमें मैं जो प्रवृत्त हुआ था, उसके 'क्विकज़ोटि'त्व[३]का मूल्य चामरूको समझानेका सुयोग नहीं हुआ, क्योंकि वह बेचारा इस समय परलोकमें है!

इसीके साथ-साथ किताबी विद्याका आयोजन भी था—यह कहना अनावश्यक है। एक 'आगे नाथ न पीछे पगहा' वाला सनकी अंगरेज़ शिक्षक अचानक मिल गया। उसके पढ़ानेका ढंग बहुत अच्छा था; एक और भली बात उसमें यह थी कि कामचोरीकी उसकी आदत नहीं थी। बीच-बीचमें शराब पीनेकी झोंकमें वह कलकत्ते चला जाता था, पर उसके बाद ही सिर झुकाये लज्जा और अनुतापके साथ वह लौट आता था। पर किसी दिन भी नशेमें पागल होकर छात्रोंके समीप अपनी श्रद्धा नष्ट करनेका कोई कारण उसने शिलाईदहमें उपस्थित नहीं किया। वह नौकरोंकी भाषा समझ नहीं पाता था, इसलिए अनेक बार वह उनके व्यवहारको ढीठ समझा करता था। इसके अतिरिक्त मेरे पुराने मुसलमान नौकरको उसके पितृदत्त 'फटिक' नामसे कभी नहीं पुकारता था; वह उसको 'सुलेमान' कहकर सम्बोधन करता था। इसमें मनस्तत्वका क्या रहस्य था, यह मैं नहीं जानता; किन्तु बार-बार इससे उसको असुविधा होती थी, क्योंकि किसानके घरका वह नौकर इस अपरिचित नामकी मर्यादा भूल जाया करता था।

और भी कुछ कहने योग्य बात है। लारेंसको रेशमकी खेतीकी धुन सवार हुई। शिलाईदहके पास ही 'कुमारखाली' नामक स्थान ईस्ट इंडिया कम्पनीके दिनोंमें रेशम-व्यवसायका एक प्रधान अड्डा था। वहाँके रेशमकी विशिष्टताने विदेशी बाज़ारोंमें भी ख्याति लाभ की थी। वहाँ रेशमकी एक बड़ी कोठी थी। एक समय रेशमके करघे सारे बंगालमें बन्द हो गये, और पूर्व-स्मृतिका स्वप्न बनकर वह कोठी सुनसान हो गई थी। उन दिनों पितृऋणके भारी बोझने मेरे पिताजीकी स्थिति डावाँडोल कर दी थी, इसीलिए किसी समय उन्होंने वह कोठी रेलवे कम्पनीको बेच दी। उन्हीं दिनों 'गोराई' नदीपर पुल तैयार हो रहा था। उस समयके इस महलको तोड़कर उसके ईंट-पत्थरोंको कम्पनीने नदीका वेग रोकनेके लिए काममें लगाया। परन्तु जैसे शालके जुलाहोंके दुर्दिनोंको कोई रोक नहीं सका, जैसे सांसारिक दुर्घटना उपस्थित होनेपर पितामहके विपुल ऐश्वर्यका सर्वनाश रोका नहीं जा सका, ठीक उसी प्रकार नदीका वेग उस कोठीके भग्नावशेषके सहारे रोके न रुका—सब बह गया! सुसमयके चिह्नोंको कालस्रोत जो कुछ बचाये हुए भी था, नदीका स्रोत उसको भी बहा ले गया!

लारेंसके कानोंमें रेशमकी वह पुरानी कहानी पहुँची, और उसके मनमें आया कि फिर एक बार उसी उद्योगको प्रारम्भ करनेसे कुछ फल निकलेगा ही। दुर्गति यदि बहुत अधिक होगी, तो अन्तमें आलूकी खेतीसे अधिक थोड़े होगी। यथाविधि चिट्ठियाँ लिखकर विशेषज्ञोंकी राय मँगवाई। कीड़ोंका आहार जमा करनेके लिए अरंड-वृक्षोंकी ज़रूरत पड़ी। फौरन पेड़ लगाये गये, पर लारेंसको सब्र कहाँ? राजशाहीसे रेशमके कीड़े लाकर उनके पालनमें डट गया। पहले तो उसने विशेषज्ञोंकी बातको वेद-वाक्य न माना और अपने इच्छानुसार परीक्षा करते हुए चलने लगा।

---

३ स्पेनके प्रसिद्ध लेखक सरवेन्टस (Cervantes) के विख्यात 'रोमांस'के चरितनायक 'डॉन क्विकजोट' के नामसे यूरोपके बच्चे-बच्चे परिचित हैं। उसका चरित्र अत्यन्त 'रोमान्टिक' तथा एक असाध्य आदर्शकी पूर्तिके लिए किये गये विफल प्रयत्नोंसे भरा पड़ा है, हास्यरसकी यह एक उत्कृष्ट पुस्तक है।

कीड़ोंके छोटे-छोटे मुख और छोटे-छोटे ही उनके ग्रास भी थे ; परन्तु उनकी भूखका अन्त न था। खाद्यके परिमित स्टोरका दिवाला निकालकर उनकी वंशवृद्धि होने लगी। गाड़ी करके दूर-दूरसे पत्तोंका जमा करना शुरू हुआ। लारेंसका बिछौना, उसकी चौकी, मेज़, कापी, किताब, टोपी, पाकेट, कमीज़—सब जगह कीड़ोंकी पलटनका डेरा पड़ा रहता था। उसका कमरा दुर्गन्धसे भर गया था। बहुत अधिक व्यय और अनवरत अध्यवसायके बाद माल बहुत पैदा हुआ ; विशेषज्ञोंने उसे अति उत्कृष्ट बतलाया ; 'इस जातिके रेशमका ऐसा सफ़ेद रंग नहीं होता' ; सफलताका रूप प्रत्यक्ष देखा गया—केवल एक छोटीसी त्रुटि रह गई। लारेंसने बाज़ारमें जाँच कराकर मालूम किया कि इसकी बिक्री अल्प और दाम सामान्य है! बन्द हो गया अरंड-पत्तोंकी गाड़ियोंका अनवरत चलना! अनेक दिन तक डाली-भरे कीड़े पड़े रहे। बादमें उनका क्या हुआ—इसका आज कहीं भी कुछ हिसाब नहीं। उस दिन बंगाल देशमें उन कीड़ोंकी उत्पत्ति बुरी घड़ीमें हुई थी ; किन्तु मैंने जो विद्यालय खोला था, वह समयके अनुसार ही था।

हमारे पंडित थे श्री शिवधन विद्यार्णव। बँगला और संस्कृत सिखाना उनका काम था। ब्राह्म-धर्मग्रन्थमें से उपनिषदोंके श्लोकोंकी व्याख्या करके वे हमसे उनका उच्चारण कराते थे। उनके विशुद्ध संस्कृत उच्चारणसे पितृदेव उनपर विशेष प्रसन्न थे। बाल्यकाल ही से प्राचीन भारतवर्षके तपोवनोंका जो आदर्श मेरे मनमें था, उसका कार्य ऐसे ही शुरू हुआ था, परन्तु उसकी मूर्ति पर्याप्त उपादानोंसे नहीं गढ़ी गई थी।

दीर्घकालसे शिक्षाके बारेमें मेरे मनमें जो धारणा जारी थी, मोटे तौरपर वह यह है—शिक्षा प्रतिदिनकी जीवन-यात्राका एक निकट अंग होगी तथा चलेगी भी उसीके साथ एक ताल और एक स्वरमें ; वह क्लास नामधारी एक पिंजड़ेकी वस्तु न होगी, और जो विश्व-प्रकृति प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूपमें हमारी देह और मनको प्रतिदिन शिक्षा देती रहती है, वह भी उसके साथ सम्मिलित होगी ; प्रकृतिके इस शिक्षालयका एक अंग होगा पर्यवेक्षण और दूसरा होगा परीक्षण, परन्तु उसका सबसे बड़ा काम प्राणोंमें आनन्द संचार करना होगा। यह तो हुई बाह्य-प्रकृति। फिर देशकी अन्तर-प्रकृति है। उसका भी विशेष रंग है, रूप है, ध्वनि है। भारतवर्षका जो चिरन्तन चित्त है, उसका आधार संस्कृत भाषापर है। इसी भाषाके तीर्थ-पथपर चलकर हम देशकी चिन्मय प्रकृतिका संस्पर्श पावेंगे ; उसको हृदयमें ग्रहण करेंगे। शिक्षाका यह लक्ष्यमात्र ही मेरे मनमें दृढ़तासे प्रतिष्ठित था। अंगरेज़ी भाषाके द्वारा हम नाना ज्ञातव्य बातें जान सकते हैं, जो अत्यन्त प्रयोजनीय है। लेकिन संस्कृत भाषामें एक आनन्द है। हमारे मनके आकाशको वह रंजित करता है ; उसके अन्दर एक गम्भीर वाणी है, विश्व-प्रकृतिकी तरह ही वह हमको शान्ति देती है और हमारी चिन्तनाको एक मर्यादा प्रदान करती है।

जिस शिक्षातत्त्वपर मुझे श्रद्धा है, उसकी भूमिका यहाँपर हुई। इसके लिए यथेष्ट साहसकी ज़रूरत थी, क्योंकि यह पथ अनभ्यस्त है और इसका चरम फल अपरीक्षित है। इस शिक्षाको अन्त तक चलानेकी शक्ति मुझमें नहीं थी, परन्तु उसपर मेरी निष्ठा अविचलित थी। देश-भरमें कहीं इसका समर्थन नहीं होता था, इसका एक प्रमाण देता हूँ। एक ओर अरण्यवासमें देशकी उन्मुक्त विश्व-प्रकृति और दूसरी ओर गुरु-गृहवासमें देशकी शुद्धतम उच्च संस्कृति—इन दोनोंके घनिष्ट संस्पर्शसे तपोवनमें एक समय जिस नियमसे शिक्षाका कार्य चलता था, अपनी किसी एक वक्तृतामें मैंने उसके प्रति अपनी श्रद्धाकी व्याख्या की थी। मैंने कहा था कि आधुनिक युगमें शिक्षाके उपादान बहुत अधिक बढ़ाने पड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं ; किन्तु उसका रूप और रस बनेगा प्रकृतिके सहयोगसे, और शिक्षा-दान करनेवालोंके अन्तरंग बनेंगे आध्यात्मिक

संसर्गसे। यह सुनकर उस समय श्री गुरुदास वन्द्योपाध्याय*ने कहा था कि यह बात कविजनोचित है; कवि इसकी आवश्यकता जितनी समझते हैं, आधुनिक कालमें उतनी स्वीकार नहीं की जा सकती। मैंने प्रत्युत्तरमें कहा था—विश्व-प्रकृति 'क्लास'में डेस्कके सामने बैठकर मास्टरी नहीं करती है; किन्तु वह जल, थल और आकाशमें अपने क्लास खोलकर हमारे मनोंको जिस प्रबल शक्तिसे गढ़ती है, कोई मास्टर क्या वैसा कर सकता है? अरबके मनुष्यको क्या अरबकी मरुभूमि नहीं गढ़ती? वही मनुष्य यदि विचित्र फल-शस्य-शालिनी नील नदीकी तटभूमिमें जन्म लेता, तो उसकी प्रकृति क्या अन्य प्रकारकी नहीं हो जाती? प्रकृति सजीव और विचित्र है, और शहर निर्जीव और पत्थरोंमें बन्द है, इसलिए चित्तगठनके सम्बन्धमें उनके प्रभावोंमें निस्संशय ही बड़ा-भारी अन्तर है।

यह बात मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ कि यदि मैं बचपनसे ही अधिकांश समय नगरमें बन्द रहता, तो उसका प्रभाव बहुत बड़ी मात्रामें मेरी चिन्तना और रचनामें दिखाई पड़ता। मैं यह नहीं जानता कि विद्या और बुद्धिके द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता या नहीं; किन्तु उसकी धातु अन्य प्रकारकी होती। विश्वके अयाचित दानसे मैं जितना अधिक वंचित रहता, विश्वको प्रतिदान करनेकी सम्पदामें मेरे स्वभावमें उतनी ही अधिक दरिद्रता रह जाती। यह समझकर कि इस प्रकारकी आन्तरिक वस्तुकी बाज़ार-दर नहीं है, इसके अभावके बारेमें जो मनुष्य पूर्णतया लापरवा रहता है, वह वेदनाहीन अभागा व्यक्ति दयाका पात्र है या नहीं, यह अन्तर्यामी जानते हैं। सांसारिक मामलोंमें वह चाहे जितना भी सफल क्यों न हो; परन्तु मानव-जीवनको पूर्णताके बारेमें वह चिरकाल तक असफल रहता है।

उसी दिन मैंने पहली बार सोचा कि केवल मुँहसे कहने ही से कुछ फल नहीं होगा, क्योंकि ये सब बातें प्रचलित अभ्यासके विरुद्ध हैं। यह चिन्ता मनमें बार-बार आन्दोलित होने लगी कि इस आदर्शको यथाशक्ति कर्मक्षेत्रमें रचकर दिखाना होगा। तपोवनकी बाहरी नक़ल जिसको कह सकते हैं, वह ग्रहण करने योग्य नहीं है, क्योंकि इन दिनों वह असंगत और व्यर्थ है; उसके अन्दरूनी सत्यको आधुनिक जीवन-धाराके आधारपर प्रतिष्ठित करना होगा।

इसके कुछ पहले ही पितृदेव शान्ति-निकेतन-आश्रम जनसाधारणके लिए उत्सर्ग कर चुके थे। विशेष नियमपालन करके अतिथिगण दो-तीन दिन आध्यात्मिक शान्तिकी साधना कर सकें—यही उनका विचार था। इसीलिए उपासना-मन्दिर, लाइब्रेरी तथा अन्यान्य यथोचित व्यवस्थाएँ थीं। कदाचित् इसी उद्देश्यसे कोई-कोई यहाँ आया भी करते थे; किन्तु अधिकांश लोग छुट्टियाँ बितानेके और वायुपरिवर्तनके द्वारा शारीरिक आरोग्य-साधनाके लिए ही आते थे।

मेरी उम्र अभी थोड़ी ही थी कि पितृदेवके साथ भ्रमणके लिए चला। घर छोड़कर बाहर जानेकी यह मेरी प्रथम यात्रा थी। ईंट और लकड़ीके जंगलसे निकलकर अनन्त आकाशके बीचमें वृहत मुक्तिका मैंने पहले-पहल यहीं उपभोग किया। पहले-पहल कहना ठीक न होगा, क्योंकि इसके पूर्व एक बार कलकत्तेमें 'डेग्यू' ज्वरका प्रकोप हुआ था, तब गुरुजनोंके साथ मैंने गंगाके किनारे लालाबाबूके बाग़में जाकर आश्रय लिया था। वसुन्धराके सुदूर व्याप्त प्रान्तरमें उस दिन अपना आसन जमाकर बैठनेका मौक़ा मुझे मिला था। दिन-भर उस विराटके बीचोंबीच मनको पूरी स्वाधीनता देकर मेरे आनन्द और विस्मयकी सीमा न रही; परन्तु तब भी मैं बन्दी ही था—बिना बाधाके घूमना-फिरना मना था। अर्थात् कलकत्तेमें मैं ढँके हुए पिंजड़ेका पक्षी था, केवल चलने-फिरने ही की नहीं, बल्कि देखनेकी स्वाधीनता भी बहुत कम थी; हाँ, यहाँपर मैं दांड़*का पक्षी था—चारों दिशाओंमें खुला हुआ

* ये कलकत्ता-हाईकोर्टके जज, कलकत्ता-विश्वविद्यालय-कमीशनके सदस्य तथा बंगालके एक प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक थे।

* 'दांड़'—एक आड़ी लकड़ीको दो रस्सियोंके द्वारा छतसे टाँग

आकाश था, किन्तु पैरोंमें बेड़ी पड़ी हुई थी। शान्ति-निकेतनमें आकर ही अपने जीवनमें पहली बार विश्व-प्रकृतिके हृदयमें मैंने पूरा छुटकारा पाया था। उपनयन-संस्कारके बाद ही मैं यहाँ चला आया था; उस अनुष्ठानमें 'भूर्भुवः स्वर्लोक'में चेतनाको परिव्याप्त करनेकी जो दीक्षा मैंने पितृदेवके द्वारा पाई थी, वही दीक्षा यहाँ मैंने विश्वदेवताके पास पाई। निश्चय ही मेरा जीवन नितान्त असम्पूर्ण रहता, यदि उस छोटी उम्रमें मुझे यह सुअवसर न मिलता। पितृदेव किसी निषेध या शासन द्वारा कभी मुझे दबाते या रोकते न थे; प्रातःकाल थोड़ी देर उनके पास अंगरेज़ी और संस्कृत पढ़ता; उसके बाद मुझे पूरी छुट्टी मिल जाती थी। बोलपुर नगर उस समय इतनी बुरी तरह घना नहीं बस पाया था; चावलके कारख़ानोंका धुआँ आकाशको कलुषित और उसकी दुर्गन्धि मलय-समीरको मलिन नहीं करती थी; मैदानके बीचोंबीच लाल मिट्टीका जो पथ चला गया है, उसपर लोगोंका चलना-फिरना बहुत कम था; बाँधका जल परिपूर्ण प्रसारित था; चारों ओरसे दियारेकी ज़मीन प्रतिवर्ष उसके कोने दबाती नहीं जाती थी; उसके उत्तरी ऊँचे किनारेपर तालवृक्षोंकी अटूट श्रेणी चली गई थी। 'खोवाई' अर्थात् कंकरीली ज़मीनमें बरसातकी जलधाराओंसे कटे-खुदे हुए टेढ़े-मेढ़े ऊँचे-नीचे मार्ग थे। वे परिकीर्ण नाना जाति, नाना आकृतिके पत्थरोंसे भरे थे, जिनमें किसीपर डंठल-कटे पत्तेकी छाप थी, कोई लम्बे सिंदूरी काठके टुकड़ेकी तरह थे, कोई स्फटिककी तरह थे और कोई-कोई अग्निगलित धातुकी तरह मुलायम थे! मुझे याद है कि सन् १८७० में फ्रांस-जर्मनी युद्धके बाद किसी फ्रांसीसी सैनिकने हमारे घरमें आश्रय लिया था; वह मेरे बड़े भाइयोंको फ्रेंच भोजन पकाकर खिलाया करता और उन्हें फ्रांसीसी भाषा भी पढ़ाया करता था। एक बार मेरे दादा बोलपुर आये; वह भी साथ था। एक छोटी हथौड़ी हाथमें लिये और एक थैली कमरमें लटकाये वह इस 'खोवाई'के दुर्लभ पत्थरोंकी खोज करनेके लिए घूमता रहता था। एक दिन एक बड़ी आकृतिवाला स्फटिक उसे मिला। उसने उसे अंगूठीके नगकी तरह बनाया और जाकर कलकत्तेके किसी धनी व्यक्तिके पास अस्सी रुपयेमें बेच दिया। मैंने भी दोपहरके दोपहर 'खोवाई'में नाना तरहके पत्थरोंका संग्रह करनेमें व्यतीत किये थे; धनोपार्जनके लोभसे नहीं, सिर्फ़ पत्थर जमा करनेके लिए! मैदानका जल सिमट-सिमटकर 'खोवाई'के एक स्थानपर कुछ ऊँचाईसे झरनेके रूपमें गिरता था, वहाँ एक छोटी तलैया बन गई थी, उसका जल साफ़ हो या न हो, मेरे लिए गोता लगाकर स्नान करनेके लिए काफ़ी गहरा था। उस गढ़ेको भरकर वह क्षीण स्वच्छ जलश्रोत झर-झर करता हुआ नाना शाखाओं-प्रशाखाओंमें बहता चला जाता था; छोटी-छोटी मछलियाँ बहावकी ओर मुँह करके उसमें तैरा करतीं थीं। मैं भी उस जल-धाराको मझाते हुए उस शिशु-भूविभागके नये-नये बालक-गिरि-नदियोंका आविष्कार करने निकल पड़ता। कभी-कभी किनारोंपर गहरे गड्ढे मिल जाते, तो मैं फौरन उनके आर-पार तैरकर उस अज्ञात 'ज्यौग्राफ़ी'का भ्रमणकारी होनेका गौरव अनुभव किया करता। जहाँ थोड़ीसी मिट्टी जमा रहती, वहाँ खजूर और जामुनकी जड़ें उग आतीं, कहीं-कहीं काँसके झुरमुट भी ऊँचे उठे दिखाई पड़ते थे। ऊपर दूर मैदानमें गायें चरती रहतीं, कहीं 'सांथाल' खेती करते रहते, कहीं पथहीन प्रान्तमें बैलगाड़ी आर्तस्वरमें चलती हुई दिखाई देती, परन्तु इस खोवाईके गह्वरमें जनप्राणी कहाँ? इस छाया-धूपमें विचित्र हो जानेवाला लाल कंकड़का यह सुनसान जगत—न फल दे, न फूल दे, न फसल उत्पन्न करे, और न यहाँ किसी जीव-जन्तुका घर ही है। यहाँ तो मैं सिर्फ यही देखता था कि यह किसी 'आर्टिस्ट'-

---

देते हैं; पक्षीको उसपर बिठा दिया जाता है, पर उसकी एक टाँग बँधी रहती है। इस दशामें पक्षी इधर-उधर देख सकता है, पर भी फड़फड़ा सकता है, पर केवल उड़ नहीं सकता।

विधाताका बिना कारण ही एक ऐसे-वैसे चित्र खींच देनेका शौक़ है ! ऊपर मेघहीन नीला आसमान धूपके कारण पाण्डु और नीचे लाल कंकरीला रंग नाना प्रकारकी टेढ़ी-मेढ़ी, छोटी-बड़ी, मोटी-पतली रेखाओंमें फैला हुआ—सृष्टिकर्ताकी बाल-भावनाके सिवा इसमें और कुछ नहीं। बालकके खेलके साथ ही इसके रचना-छन्दका मेल है। इसके पहाड़, इसकी नदियाँ, इसके जलाशय, इसके गढ़े-गढ़हियाँ—इन सबका मिलान बालकके मनके साथ है। इसी स्थानपर अपने ही मनके अन्दर मेरा समय अनेक दिन कटा है। कोई मेरे कामका हिसाब चाहता नहीं था, किसीके पास मेरे समयकी जवाबदेही नहीं थी ! अब इस 'खोवाई' का वह चेहरा नहीं है। प्रतिवर्ष सड़कोंकी मरम्मतका मसाला इसपर से खींचकर इसको दरिद्र और नग्न कर दिया गया है—चला गया है इसका वैचित्र्य, इसका स्वाभाविक लावण्य ! उन दिनों शान्ति-निकेतनमें एक और 'रोमान्टिक' अर्थात् कहानी-रसकी वस्तु थी। जो सरदार इस बागका प्रहरी था, एक समय वही डाकुओंके दलका नायक था ! तब वह वृद्ध हो गया था। दीर्घ उसकी देह, मांसकी अधिकता नहीं, श्यामवर्ण, आँखोंकी तीक्ष्ण दृष्टि, हाथमें बाँसकी लम्बी लाठी, कण्ठका स्वर टूटा-फूटा ! शायद सभी जानते हैं कि आज शान्ति-निकेतनमें जो बहुत पुराने युगल 'छातिम'* वृक्ष मालती लतासे लिपटे हुए खड़े हैं, एक समय इस विस्तृत मैदानके बीचमें इन दोनोंके सिवा और कोई पेड़ नहीं था। इन्हीं पेड़ोंके नीचे डाकुओंका अड्डा था, छायाकी आशासे आनेवाले अनेक थके-माँदे यात्रियोंने इसी वृक्षोंके नीचे अपना धन और प्राण गँवाये थे, शासन-प्रबन्ध उन दिनों बहुत ढीला था। यह सरदार उस डाकुओंवाली कहानीके अन्तिम परिच्छेदकी अन्तिम परिशिष्टके रूपमें प्रसिद्ध था। मैं यह विश्वास नहीं करता कि नामाचारी तान्त्रिकोंने यहाँपर कई शाक्तोंका खून माँ कालीके खप्परपर नहीं चढ़ाया था—मेरे कानोंमें आश्रमके सम्बन्धमें यह जनश्रुति भी पड़ी थी कि अवश्य ही कोई 'भद्र' वंशका रक्तचक्षु रक्ततिलकांकित शाक्त यहाँ आया है, जिसने महामांस प्रसादका भोग किया है !

सो इन्हीं दो 'छातिम' वृक्षोंकी छाया देखकर दूर जानेवाले पथिक यहाँपर विश्राम करनेकी आशासे आया करते थे। मेरे पितृदेव भी सुरूल गाँवके भुवन सरकारके घर निमन्त्रण पुराकर जब एक दिन पालकीमें बैठे लौट रहे थे, तब इस मैदानके बीचमें इन दो वृक्षोंका आह्वान उनके मनमें भी प्रविष्ट हुआ था। इस जगह शान्ति-साधनाकी आशासे उन्होंने यह ज़मीन सुरूलके 'सरकारों'से दानरूपमें ग्रहण कर ली, तथा एकतल्ला मकान बनवाकर और रूखी-सूखी ज़मीनमें अनेक पेड़-पौधे रोपकर साधनाके लिए बीच-बीचमें यहाँ आकर रहने लगे। उन्हीं दिनों हिमालयमें उनके तीन निर्जन वासस्थल थे। जब रेलवे लाइन खुली, तब बोलपुर-स्टेशन पश्चिमकी ओर जानेके मार्गमें पड़ता था, और लाइनें तब तक नहीं बनी थीं। हिमालय जाते समय बोलपुरमें पिताजी प्रथम बार अपनी यात्रा भंग किया करते थे। मैं जब उनके साथ यहाँ आया था, उस समय भी वे डलहौज़ी पहाड़ जानेके मार्गमें बोलपुरमें उतरे थे। मुझे याद पड़ता है, प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही वे अधूरे जनशून्य पूर्वाभिमुख दक्षिण दिशावाले मकानके ऊपर ध्यानमें बैठते ; सूर्यास्तकालमें उनके ध्यानका आसन 'छातिम' तले रहता था। अब उस वृक्षको घेरकर अनेक घास-झाड़ियाँ उग आई हैं, पर तब वहाँपर और कुछ नहीं था। सामने उन्मुक्त मैदान पश्चिम दिशाके उस छोर तक फैला हुआ था। मेरे ऊपर एक विशेष कामका भार था ; भगवद्गीता ग्रन्थसे कईएक श्लोकोंपर उन्होंने चिह्न लगा रखे थे, मैं प्रतिदिन कुछ-कुछकी कापी करके उनको दे दिया करता था। इसके बाद सन्ध्या समय खुले आकाशके नीचे बैठकर वे मुझको सौर-जगत और ग्रह-मंडलका विवरण बतलाया करते और मैं एकान्त उत्सुकताके साथ

* सप्तपर्णी, छतिवन।

सुना करता था। शायद मैंने उनके मुखसे ज्योतिषकी व्याख्या सुनकर उसे लिख डाला और उन्हें सुनाया भी था।

इस वर्णनसे समझा जा सकता है कि शान्ति-निकेतनका कौनसा चित्र मेरे मनपर किस रंगके साथ अंकित हो चुका है। पहले तो उस बाल्यावस्थामें यहाँकी प्रकृतिसे जो आमन्त्रण पाया था; यहाँका अनवरुद्ध आकाश और मैदान, दूर ही से दिखाई पड़नेवाली नीली चमक-दमकवाली शाल और ताल श्रेणियोंका समुच्च शाखापुंज, श्यामल शान्ति--स्मृतिकी सम्पदाके रूपमें चिरकालके लिए मेरे स्वभावमें पूर्णतया निश्रित हो गये थे। इसके अतिरिक्त इसी आकाशमें, इसी आलोकमें मैंने देखा है प्रातः सायं पितृदेवकी पूजाका निशब्द निवेदन, उसकी गम्भीर गम्भीरता! तब यहाँ और कुछ न था—न थे इतने पेड़-पौदे, न थी मनुष्यों और कामकी इतनी भीड़ ही। केवल दूरव्यापी निस्तब्धताके बीचमें व्याप्त थी एक निर्मल महिमा!

इसके पीछे तबका बालक जब यौवनके प्रौढ़ विभागमें दाखिल हुआ, तब उसे बालकोंकी शिक्षाके लिए तपोवन दूर-दूर ढूँढ़नेकी क्या आवश्यकता थी? मैंने पिताजीको जाकर बतलाया—शान्ति-निकेतन इस समय प्रायः सुनसान है, यहाँ यदि एक आदर्श विद्यालय स्थापित कर सकूँ, तो इसको सार्थकता प्राप्त होगी। उन्होंने उसी समय उत्साहपूर्वक सम्मति दे दी, पर बाधा थी अन्य आत्मीयोंकी तरफ़से—पीछे कहीं शान्ति-निकेतनकी प्रकृतिमें परिवर्तन न आ जाय, यही उनकी आशंका थी। आजकलके ज्वार-जलमें नाना दिशाओंसे बहुतसे परिवर्तन आकर भयंकर भँवर पैदा नहीं कर देंगे, यह किसी बातसे भी आशा नहीं की जा सकती थी। यदि उनसे एक बार ही दूर रहनेकी चेष्टा करें, तो आदर्शको विशुद्ध रखनेके प्रयत्नमें ही उसको निर्जीव कर देना पड़ेगा। पेड़-पौदे, जीव-जन्तु प्रभृति सभी प्राणवान वस्तुओंमें एक ही समय विकृति और संस्कृति चलती रहती है, इस बातका अत्यन्त भय करनेसे प्राणीके साथका व्यवहार छोड़ देना पड़ेगा। इस प्रकारके तर्क द्वारा मेरी संकल्प-साधनामें कुछ दिन तक बड़े ज़ोरोंसे आघात लगता रहा।

यह तो बाहरी विघ्नोंकी बात हुई। दूसरी ओर मेरी आर्थिक सम्पत्ति नितान्त ही सामान्य थी, और विद्यालयकी विधि-व्यवस्थाके बारेमें मेरी अभिज्ञता बिलकुल कम थी। मैंने यथाशक्ति कुछ आयोजन किया। इस बारेमें मेरी बातचीत भाँति-भाँतिके लोगोंके साथ हुआ करती। इस प्रकार अगोचर भावसे नींव धरनेका काम चल रहा था, किन्तु शान्ति-निकेतनके सम्बन्धमें संसार कुछ भी नहीं जानता था। इसी समय एक तरुण युवकके साथ मेरा परिचय हुआ। उसको बालक ही कहना चाहिए, क्योंकि मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि उसने अठारह-उन्नीस वर्षमें प्रवेश किया है। उसका नाम सतीशचन्द्र राय* था और कालेजमें बी० ए० क्लासमें पढ़ता था। उसके मित्र श्री अजितकुमार चक्रवर्ती सतीशकी लिखी कविताओंकी एक कापी कुछ दिन पहले मुझे दे गये थे। पद देखकर मुझे बिलकुल सन्देह नहीं रहा कि इस बालकमें प्रतिभा है, केवल लिखनेकी क्षमता नहीं है। कुछ दिन बाद मित्रको साथ लेकर सतीश मेरे पास आये—शान्त, नम्र, स्वल्पभाषी देखकर ही मन स्वतः आकृष्ट होता था। सतीश प्रतिभाशाली है, यह समझकर मैं उसकी रचनामें जहाँपर शैथिल्य देखता, स्पष्टतया निर्देश कर देनेमें संकोच नहीं करता था। विशेषकर छन्दोंके बारेमें उसकी रचनाकी प्रत्येक लाइनको लेकर मैं उसकी आलोचना किया करता। अजीत मेरे कठोर विचारसे कुछ घबरा उठा था, किन्तु सहज श्रद्धाके साथ सब स्वीकार कर लेता था। थोड़े ही दिनोंमें सतीशका जो परिचय मिला, उससे मैं आश्चर्यचकित हो गया। जितना गम्भीर, उतना ही

---

* ये विश्व-भारतीके एक अध्यापक थे, बँगला-भाषाके प्रकांड विद्वान् तथा विश्व-साहित्यके मर्मज्ञ थे। उनकी लिखी पुस्तकोंमें 'गुरु-दक्षिणा' और 'डायरी' प्रसिद्ध हैं।

विस्तृत था उसके साहित्य-रसका ज्ञान। 'ब्राउनिंग' की कविता उसने जिस प्रकार आत्मसात् की थी, वैसा प्रायः कहीं नहीं देखा जाता। शेक्सपियरकी रचनापर उसका जितना अधिकार था, उतना ही उसे उसमें आनन्द भी मिलता था। मेरा यह दृढ़ विश्वास हो चला था कि उसकी काव्य-रचनामें एक बलिष्ठ नाट्य-प्रकृतिका विकास दिखाई देता, और उसी दिशामें वह बँगला-साहित्यमें एक पूर्णतया नूतन पथका प्रवर्त्तन करेगा। उसके स्वभावमें एक दुर्लभ लक्षण मैंने पाया था। यद्यपि उसकी उम्र कच्ची थी, तथापि उसे अपनी रचनापर अन्ध-आसक्ति नहीं थी। उसको वह अपने-आपसे एकदम बाहर रखकर देख सकता था, और निर्मम भावसे उसको फेंक देना उसके लिए सरल कार्य था, इसीलिए उसकी उन दिनोंकी रचनाओंके कोई चिह्न थोड़े दिन बाद ही मैंने नहीं पाये। इससे स्पष्ट जान पड़ता था उसका वैशिष्ट्य—वह थी उसकी अपने कवि-स्वभावकी बहिराश्रयिता (Objectivity)। विश्लेषण और धारणाशक्ति उसमें यथेष्ट थी, किन्तु उसके स्वभावके जिस परिचयने मुझे उसकी ओर सबसे अधिक आकृष्ट किया था, वह थी उसके मनकी स्पर्श-चेतना। जिस जगतमें उसका जन्म हुआ था, उसमें कहीं भी उदासीनता न थी। एक ही समय भोग और त्याग दोनोंके द्वारा सर्वत्र अपना अधिकार प्रसारित करनेकी शक्ति लेकर वह आया था। उसका अनुराग, उसका आनन्द, नाना दिशाओंमें व्यापक थे, पर उसमें आसक्ति नहीं थी! याद आता है, मैंने एक दिन कहा था—"तुम कवि भर्तृहरि हो, इस पृथिवीमें तुम राजा भी हो और संन्यासी भी!"

उस समय मेरे मनमें शान्तिनिकेतन-आश्रमका संकल्प प्रबल हो चुका था। अपने नये मित्रके साथ मेरी वही बातचीत चलती थी। अपने ध्यानकी स्वाभाविक दृष्टिशक्तिसे वह पूर्ण बातको एकदम प्रत्यक्ष देख लिया था। उन्हीं दिनों उसने जो उपाख्यान लिखा था, उसमें उसने उसी चित्रको खींचनेकी चेष्टा की थी। अन्तमें आनन्द और उत्साहके कारण वह अपना लोभ संवरण न कर सका। उसने कहा—'मुझे अपने साथ ले लो।' मुझे बड़ी खुशी हुई, पर उस समय मैं इस बातके लिए किसी तरह भी राज़ी न हुआ। उसके घरकी स्थिति मैं अच्छी तरह जानता था। बी० ए० पासकर और उसके बाद क़ानूनी परीक्षा देकर वह संसार-कार्य भलीभाँति चला सकेगा, यह निस्सन्देह उसके अभिभावकोंकी इच्छा थी; मैंने उसे रोक दिया।

इसी समय श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्यायके साथ मेरा परिचय घनिष्ठ हो उठा। मेरी कविता-पुस्तक 'नैवेद्य' उसके कुछ ही पहले प्रकाशित हुई थी; वे कविताएँ उनको बहुत पसन्द थीं; अपनी ही द्वारा सम्पादित 'ट्वेनटियथ सेनचुरी' (Twentieth Century) पत्रिकामें इस कवितापुंजकी जो प्रशंसा उन्होंने लिखी, उस समय वैसी उदारतापूर्ण प्रशंसा मैंने और कहीं नहीं पाई थी। वस्तुतः इसके अनेक दिनों बाद इन सब कविताओंके कुछ अंश एवं 'खेया' और 'गीतांजलि'से इसी जातिकी कविताका अनुवाद अंगरेज़ीमें प्रकाशित करके जैसा सम्मान मैंने पाया, उन्होंने वैसा ही अकुण्ठित सम्मान मुझे उसी समय दे दिया था। इसी परिचयके द्वारा वे मेरे संकल्पको जान सके थे, और उन्हें यह ख़बर भी मिल गई थी कि शान्ति-निकेतनमें विद्यालय स्थापित करनेके बारेमें मुझे पिताजीकी सम्मति मिल गई है। उन्होंने कहा कि इस विचारको कार्यरूपमें प्रतिष्ठित करनेमें विलम्ब करनेकी कोई ज़रूरत नहीं। वे अपने कुछ पटु शिष्यों और छात्रोंके साथ इस काममें लग गये। तब मेरे साथ ये ही छात्र थे—रथीन्द्रनाथ तथा श्रीराम मजुमदारके पुत्र सन्तोषचन्द्र, और कुछ थोड़ेसे वे अपने साथ लाये थे। संख्या कम न होती, तो यह भार वहन करना सर्वथा असम्भव हो जाता, क्योंकि तपोवनके आदर्शके बारेमें मेरा विचार था कि शिक्षादानके कार्यमें गुरु-शिष्यका सम्बन्ध आध्यात्मिक होना ही उचित है,

अर्थात् शिक्षा देना ही गुरुकी साधनाका प्रधान अंग है। विद्याकी सम्पदा जिसने पाई है, उसका निस्वार्थ दान करना उसका धर्म है। हमारे समाजमें यह महान दायित्व आधुनिक काल तक भी स्वीकृत होता चला आया है। हाँ, अब क्रमशः उसका लोप होता जा रहा है!

उस समय जिन कुछ थोड़ेसे छात्रोंको लेकर विद्यालयका आरम्भ हुआ था, उनसे फीस या भोजन-व्यय कुछ भी नहीं लिया जाता था। उनके रहन-सहनका पूरा भार मैंने अपनी छोटी-मोटी पूँजीपर ही स्वीकार कर लिया था। पढ़ाने-लिखानेका अधिकांश भार अगर उपाध्यायजी और श्रीयुत रेवाचाँद—जिनकी वर्तमान उपाधि अणिमानन्द है—वहन न करते, तो काम चलना एकदम ही असाध्य हो जाता। उस समयका आयोजन दरिद्रोंकी तरह था, आहार-विहार भी दरिद्रोंके आदर्शपर थे! तब उपाध्यायजीने मुझे 'गुरुदेव'की जो उपाधि दी थी, वह आज तक भी आश्रमवासियोंके सामने मुझे धारण करनी पड़ती है। आश्रमके प्रारम्भसे बहुत दिनों तक उसका आर्थिक भार मेरे लिए जैसा दुस्सहनीय रहा, यह उपाधि भी ठीक उसी प्रकार थी। अर्थकष्ट और इस उपाधिमें से किसीको भी मैंने आरामके साथ स्वीकार नहीं किया, किन्तु ये दोनों बोझ मेरे भाग्यवश उनके हाथोंने दान-स्वरूप मेरे कन्धोंपर रखे हैं, इसलिए इस दुःख और लांछनासे छुटकारा पानेकी आशा मैं अब तक भी नहीं रखता हूँ!

शान्तिनिकेतन-विद्यालयके सम्बन्धमें मैं विस्तारसे बतला चुका हूँ। इसीके साथ उपाध्यायजीके प्रति अपनी अपरिशोधनीय कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ। आख़िर उसी कवि-बालककी बात कहकर ख़त्म किये देता हूँ।

सतीशकी बी० ए० परीक्षा समीप आ गई थी, अध्यापकगण उससे ख़ूब बड़े कृतित्वकी आशा किये बैठे थे, ठीक उसी समय उसने परीक्षा नहीं दी। उसे भय हुआ कि वह पास हो जायगा, पास करते ही उसके ऊपर संसारका जो बोझा आ पड़ेगा, उसकी पीड़ा और प्रलोभनसे मुक्ति पाना उसके लिए दुरूह हो जायगा, इसीलिए ठीक मौक़ेपर वह पीछे रह गया। संसारकी दृष्टिमें उसने अपने जीवनमें एक बड़ी 'ट्रेजेडी'का प्रारम्भ किया था! मैंने उसके आर्थिक अभावको कुछ हद तक पूरा करनेकी कोशिश भी की, पर किसी प्रकार भी उसको राज़ी न कर सका। बीच-बीचमें उससे छिपाकर उसके घर रुपये भी भेजे थे, परन्तु वे बहुत कम थे। मेरे पास बेचने लायक़ जो कुछ था, उस समय तक प्रायः सभी ख़त्म हो चुका था—घरके भीतर और बाहरकी दोनों पूँजियाँ! कितनी आयजनक पुस्तकोंकी बिक्रीका अधिकार मैं कई-कई वर्षोंके लिए दूसरोंके हाथ बेच चुका था, हिसाबकी दुर्बोध जटिलताके कारण वह मियाद पूरी होते-होते न-जाने कितने वर्ष लग गये थे! समुद्र-तीर-प्रवासके लोभसे पुरीमें एक मकान बनवाया था, पर आश्रमकी भयंकर भूखके कारण एक दिन भी उसका आनन्द उठानेसे पहले ही उसको बेच देना पड़ा। उसके बाद जो पूँजी बची रह गई, वह दूसरोंको देनेका 'क्रेडिट' मात्र थी! सतीश यह सब बातें देख सुनकर भी यहाँकी उस अगाध दरिद्रतामें प्रसन्नचित्तसे कूद पड़ा था, किन्तु उसके आनन्दकी सीमा न थी। यहाँकी प्रकृति-संसर्गका आनन्द, साहित्य-सम्भोगका आनन्द, प्रति बड़ी आत्म-निवेदनका आनन्द—इसी अपरिव्याप्त आनन्दका संचार वह छात्रोंके मनमें करता रहता था। आह! याद पड़ता है, न-जाने कितने दिन उसको साथ लेकर नाना तत्त्वोंकी आलोचना करते-करते शालवीथिकामें घूमा हूँ—रातके ग्यारह बजते और फिर दोपहर हो जाती—समस्त आश्रम होता निस्तब्ध निद्रामग्न! उसे ही यादकर मैंने लिखा था :—

कतो दिन एई पाता झोरा
वीथिकाय, पुष्पगन्धे वसन्तेर आगमनी भरा
सायाह्ने दूजने मोरा छायाते अंकित चन्द्रालोके
फिरेछि गुंजित आलापने। तार सेई मुग्ध चोखे

विश्व देखा दिये छिलो नन्दन-मन्दार रंगे राँगा ;
यौवन-तूफ़ान-लागा से दिनेर कतो निद्रा भाँगा
ज्योत्सना मुग्ध रजनीर सौहार्देर सुधा-रसधारा
तोमार छायार मांझे देखा दिलो, होये गेलो सारा।
गभीर आनन्दक्षण कतो दिन तव मंजरी ते
एकान्त मिशिया छिलो एकखानि अखण्ड संगीते
आलोके आलापे हास्ये, वनेर चञ्चल आन्दोलने
वातासेर उदास निश्वासे।*

ऐसी निर्मल श्रद्धा, ऐसी अविचलित अकृत्रिम प्रीति, ऐसा सर्वभारवाही, सर्वग्राही सौहार्द जीवनमें कितना दुर्लभ होता है, यह इन सत्तर वर्षोंके अनुभवसे जान पाया हूँ। इसीलिए तो उस अपने किशोर बन्धुके आसामयिक तिरोभावकी वेदना मैं आज तक भी नहीं भुला सका हूँ।

इस आश्रम तथा विद्यालयके उस सुदूर आरम्भकालका प्रथम संकल्प, उसका दुःख, उसका आनन्द, उसका अभाव, उसकी पूर्णता, उसका मिलन, उसका विच्छेद, निष्ठुर विरोध और अयाचित अनुकूलता—इन सबका थोड़ासा ही आभास यहाँपर दे सका हूँ। उसके बाद मेरी ही इच्छाशक्ति नहीं, बल्कि काल-धर्म भी अपना काम कर रहा है—कितने परिवर्तन, कितनी नवीन आशाएँ तथा व्यर्थताएँ, कितने सुहृदवरोंका अनुपमेय आत्मोत्सर्ग, कितने अपरिचित लोगोंकी कारणहीन शत्रुता, कितनी मिथ्या निन्दा और प्रशंसा, कितनी दुस्साध्य समस्यामें आर्थिक और परमार्थिक पारितोषिक मिले या न मिले, किन्तु अपनी हानि साध्यकी अन्तिम सीमा तक अवश्य की है। अन्तमें इस थकी देह और टूटे स्वास्थ्यके साथ बिदाई लेनेका दिन आ गया है! प्रणाम करे जाता हूँ उनको, जो इस लम्बे, कठोर, दुर्गम मार्गपर मुझे इस समय तक चलाते रहे हैं! इसकी विफलता बाहर प्रकाश पाती है, इसकी सार्थकताका सम्पूर्ण प्रमाण रह जाता है अलिखित इतिहासके अदृश्य पृष्ठोंपर!

अनुवादक—**श्री भक्तदर्शन**

* कितने दिन इसी पत्तों-भरी वीथिकामें, पुष्प-गन्धमय वसन्तके स्वागत-गानमें अपराह्नमें दोनों हम छायामें अंकित चन्द्रालोकमें फिरे थे गूँजते आलापके साथ। उसके उसी मुग्ध नयनोंमें विश्व दिखाई दिया था नन्दन-मन्दारके रंगमें रँगा हुआ ; यौवन-तूफ़ान-लगे उन दिनोंकी कितनी निद्राहीन ज्योत्सना-मुग्ध रातोंके सौहार्दकी सुधा-रसधारा तुम्हारी छायामें दिखाई दी थी हो गया समाप्त सब ! गम्भीर आनन्द-क्षण, कितने दिन तेरी मंजरीमें, ठीक-ठीक मिल गया था, एक अखंड संगीतमें आलोकसे आलापसे हास्यसे वनके चंचल आदोलनसे समीरके उदास निश्वाससे।
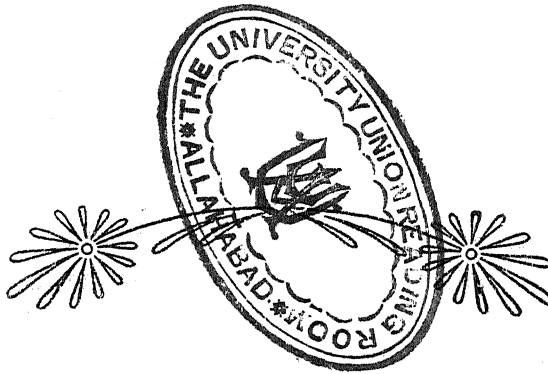
नूरजहाँ

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त', बी० ए०, एल-एल० बी०

[यह 'नूरजहाँ' काव्यका प्रथम परिच्छेद है। नूरजहाँके माता-पिता ईरानके निवासी थे। वहाँ दरिद्रतासे त्रस्त होकर वे दोनों 'क़िस्मत आजमाई' के लिए भारत आये थे। मार्गमें एक निर्जन स्थानमें नूरजहाँका जन्म हुआ था। इस परिच्छेदमें कविने नूरजहाँके माता-पिताकी स्वदेश (ईरान) में जो दशा थी, वह चित्रित की है। —सम्पादक]

"क्यों मुरझाई हुई प्रिये हो, कैसे बुझा हुआ है दिल ?
है 'नौरोज़' आज हम दोनों भी कर लें विहार हिलमिल।
प्रेम-पत्र जो भेज चुके थे, पवन-दूतसे, माधव पास,
राह किसीकी देख रहे थे, खड़े-खड़े ही, बने उदास।
थे साकार निराशा मानो, मूर्तिमान थी हुई व्यथा,
गिरि 'अलबुर्ज़'-रजतपटपर थी अंकित मानो विरह-कथा।
जगा रहे थे अलख दिगम्बरधारी जो ऐसे तरुवर,
वे भी फूले नहीं समाते आज भेंट निज कुसुमाकर।
वल्लरियोंसे वर विटपोंके लिपटी ललित लताएँ हैं,
मधुपावलि बलि हो प्रसूनपर लेती लाख बलाएँ हैं।
चारों ओर श्याम हरियालीका है बिछा हुआ क़ालीन,
रंग-रंगके फूलोंसे हैं हुई घाटियाँ शोभा पीन।
हरियाली समुद्रमें लहरें ले गुलाब जब सो जाता,
मारुत सुरभि-सुरामें मातल लोट-पोट है हो जाता।
माधव-फूलोंसे गिरिवरका दामन भरता जाता है,
हिमका सब घमंड पानी हो झर-झर झरता जाता है।
मंजुल मंजरियोंसे मंडित लतिकाओंसे मिल-मिलकर,
नव दलसे शोभित शाखाएँ झूम रही हैं खिल-खिलकर।
करते हैं विहार पर्वतपर 'शाह-बलूत' और 'आज़ाद',
सुन्दरताके पुतले बनकर शोभा सरसाते 'शमशाद'।
लचका देता बड़े लोचसे 'सरो' सुडौल सुरम्य शरीर,
निर्निमेष नयनोंसे 'नरगिस' लखती रहती यह तसवीर।
'बेर', 'मकोय' झाड़ियोंमें भी लटके हुए जवाहर हैं,
'अंगूरी' लतिकाके अंचल गये मोतियोंसे भर हैं।
हैं 'गुलाब'से हुए गुलाबी, वन-उपवन, उपत्यका-गिरि,
इस शोभा-सरितामें सौरभकी तरंग उठती फिर-फिर।
प्राची भी है हुई गुलाबी, लाल रंगमें रँगे सभी,
तेरे आननपर गुलाब क्यों प्रिये ! नहीं है खिला अभी ?
मुख तेरा उतरा-सा क्यों है, भ्रू-कमान क्यों चढ़ी हुई,
दिल छोटा क्यों किया तथा यह चिन्ता क्यों है बढ़ी हुई ?

सुन्दर गतिसे घूम-घूमकर 'कब्क-दरा' विहार करता,
'दुर्रज' घासोंमें से मिट्टी हटा-हटा दीमक चरता।
'तीहू' और 'हुबारे'के कलरवसे वन गुंजन करता,
झाड़ीसे 'खरगोश' निकलकर ट्रँग-ट्रँग है तृण चरता।
'सरो-सही' पर 'कुमरी'की कैसी सुन पड़ती है कू-कू,
तेरी आँखें देख चुराते हैं आँखें वन में आहू।
होकर मुक्त शिशिर-कंटकसे हिंसक जन्तु त्यागकर माँद,
मैदानोंमें निकल-निकलकर खाते धूप कूद औ' फाँद।
वह 'ग़ज़ाल'का शावक प्यारा जिसको तूने पाला है,
आँखों ही में रख बच्चे-सा जिसको देखा-भाला है,
जिसको बिठा गोदमें अपनी लोरी सुना सुलाया है,
जिसने कई बार खो-खोकर तुझको बहुत रुलाया है,
जिसकी आँखोंपर निज आँखें रख विशालता नापी है,
विजयगर्वसे पुलकित होकर मन-ही-मन फिर काँपी है,
वह भी तुझको ताक रहा है लखनेको उत्फुल्ल बदन,
तुझे देखकर भूल गये हैं भरना भी चौकड़ी हिरन।
'बुलबुल' आ अब लगी छेड़ने प्रेम-प्रमोद तरानोंको,
'गुललाला' से कहती ला ! ला ! हालाके पैमानोंको।
दिन चढ़ गया, नशा उतरा है, छाई बड़ी खुमारी है,
'लालपरी' शीशेमें उतरी, लाओ मेरी बारी है।
दरियादिल हो जा, बसन्त है, आज लुटा दे मधुशाला,
देती जा अपने हाथोंसे ढालूँ प्याले-पर-प्याला।
यों ही हाथ गलेमें होवे, होवे यही नदीका कूल,
जिसके अंचलमें लहराते हैं गुलाबके अगणित फूल।
यों ही बुलबुल हो अलापती राग-रागिनी दर्द भरी,
यों ही सब्जेको लहराती चलती हो 'नसीम सेहरी',
इसी रंगमें प्रिये ! छेड़ दे झरनेके तालोंपर तान,
तेरी लयमें लय हो जाऊँ तब मैं भूल विश्वका ध्यान।
भरे अंकमें अपने मुझको रसमें तू बुत हो जावे,
पाऊँ प्याले औ' प्यारीको चाहे दुनिया खो जावे।

कृष्ण और विदुर

विशाल भारत]

[श्री दुर्गाशंकर भट्टाचार्य

ये प्याले मद-भरे दृगोंके पीते रहें सदा ये नैन,
बजे चैनकी बंसी मेरी, चलो सुमन फिर करने चैन।
मैं फूलोंसे तुम्हें सजाऊँ, मुझे पिन्हाना तुम कलियाँ,
रंग खेल, रँगमें भर जावें, मचा-मचाकर रँगरलियाँ।"
चकित रह गई बेगम सुनकर यों ग़यासबेगकी बात,
ठेस और लग गई हृदयमें, बोल उठी खाकर आघात—
"तुमको रँगरलियाँ सूझी हैं, मेरा भरा हुआ है जी,
आँखोंमें हूँ रात काटती, निशि-भर नींद नहीं आती।
चिन्ता यह घेरे रहती है, कैसे बीतेगा जीवन,
नहीं हाथमें शेष रहा कुछ, निकल गया जो कुछ था धन!
टके-टकेको मुँह तकते हैं, फिरते मारे-मारे हैं,
मेरी क़िस्मत है चक्करमें, डूबे भाग्य-सितारे हैं।
खानेको मिल गया आज तो, कलका नहीं ठिकाना है,
मोती-दाना कभी खेल था, मोती, दाना दाना है।
तुमको देखूँ कष्ट उठाते इक रोटीके टुकड़ेको,
कब तक रोते फिरा करोगे मित्रोंसे निज दुखड़ेको;
जिनको मेरे पूज्य श्वशुरने गिरनेसे था बचा लिया,
दे सहायता हर प्रकारसे आसमान तक उठा दिया।
जो उनके सम्मुख दम भरते थे उनके अहसानोंका,
ताँता सदा बँधा रहता था घरमें जिन मेहमानोंका,
जिनका तुमको बड़ा गर्व था, जिनका बड़ा भरोसा था,
जिनके लिए हमारे घरमें रहता थाल परोसा था,
वे कृतघ्न मर गये कहाँ, जो नहीं झाँकने तक आते,
अकस्मात् मिल जानेपर हैं कैसे आँख बचा जाते?
मतलबकी दुनिया है सारी, नहीं किसीका कोई है,
आड़े कौन काम आता है, क़िस्मत ही जब सोई है।
भूली अभी नहीं हूँ वे दिन कल ही की तो है वह बात,
सोनेकी घड़ियाँ थीं अपनी, चाँदीकी थी प्यारी रात।
मैं ज़मीनपर पाँव न धरती, छिलते थे मखमलपर पैर,
आँखें बिछ जाती थीं मगमें, मैं जब करने जाती सैर।
मूँगेका था पलँग हमारा, सोने-चाँदीके बरतन,
मोतीकी झालरके परदे, लालजड़ी ज़रकश चिलमन!
समय-फेरसे ये विभूतियाँ मेरे घरसे चली गईं,
मेरी सभी दासियाँ तक भी कालचक्रसे छली गईं।

सब ज़ेवर मैं बेंच चुकी हूँ, एक अँगूठी बाक़ी है,
किसे करूँ उपहार भेंट यह, 'मय' है, तुम हो, 'साक़ी' है।
अपनोंमें पानी मत खोओ, चुपकेसे अब चलो निकल,
रोज़गार कुछ नहीं यहाँ है औ' प्रतीक्षा है निष्फल।
आशा थी, सेवाओंपर पूर्वजकी, कुछ भी देकर ध्यान,
दे देगा दरबार कोई पद तुमको तो होगा कल्याण।
पर 'शरीफ़' के आँख मूँदते सबने फेरीं आँखें आह!
राह देखते रहे अभी तक नहीं 'शाह' की हुई निगाह।
छोड़ो आश, विदेश चलें हम, वहाँ करेंगे कोई कार,
कहीं नौकरी कर लेंगे या कर लेंगे कोई व्यापार।
बाहर घास छीलनेमें भी मुझको तनिक नहीं लज्जा,
यों मरकर जीनेसे बाहर मर जाना है उचित बड़ा।
पीनेको अब क्या रक्खा है, आओ आँसू पीयें अब,
मर है गई भूख जीनेकी, मरकर कब तक जीयें अब!
आटेका तो पता नहीं है, कबसे पिसते जाते हैं,
दुनिया भी है हवा खिलाती, ख़ूब रंज हम खाते हैं।
कनी चाट लेना अच्छा है, कनिक माँगने क्यों जाऊँ,
तुम प्रियतम भूखे सो जाओ, मैं कुछ खाकर सो जाऊँ।"
"क्या यह कहा! छोड़नेको घर! यह मेरा प्यारा ईरान!
जहाँ हमारा जन्म हुआ है, वही हमारा स्वर्गस्थान!
हाय! हाय! यह क्या कर डाला, प्रिये, ज़रा सोचो तो फिर,
छोड़ूँ किसे? पूज्य यह धरणी? वन, उपवन, उपत्यका, गिरि?
इस भूकी मिट्टी-पानीसे यह मूरत है बनी हुई,
दुख-सुखके कितने आँसूसे पावन रज है सनी हुई।
'शैशव' उदय हुआ जिस नभपर—वही स्वर्ग, यह वही धरा,
जिस भूपर नन्हा यह पौधा लोटपोट है हुआ हरा।
इस घाटीमें हम-तुम खेले 'गेंदों'के फूलोंकी गेंद,
चश्मेके भौंपर वह तरुवर, खाते जिससे तोड़ 'फरेंद'।
वह टीला जिसपर चढ़ करके चाँद ईदका देखा है,
जिसकी ऊँचाईसे सरिता लख पड़ती इक रेखा है।
जल-तरंगपर मन-मारुत यह मौज उड़ाता बहता है,
खग-कलरवकी गतिपर रत हो हृदय नाचता रहता है।
ये झरने जिनके 'सरगम'पर स्वाँसोंकी गति बाँधी है,
इनके तजनेके विचारसे मनमें उठती आँधी है।

जिस दिन यह 'समाज' छूटेगा, हृदय तालका होगा 'सम',
स्वाँसोंके 'दोतारे'का भी 'सुर' तुरन्त जायेगा थम।
इसमें मुझको तुम मत छेड़ो, मुझे चैनसे रहने दो,
लड़ती-टकराती रोड़ोंसे जीवन-सरिको बहने दो।"
"बस! बस! बस! अब बहुत न बहको,"—बात काट बेगम बोली,
"तबियतको तो ज़रा सँभालो, जी भर गया, बहुत हो ली।"
सिहर गई वह सुनते-सुनते, तमक उठी रिससे वह बाम,
डीठ एक लटनागिनको—जो लख ललाटपर स्वेद ललाम—
लटक, चाटने चली ओस थी, उसे झटककर पीछे कर,
एक छिकलती वक्र दृष्टिसे, प्रियतमको लख, आँखें भर,
चाहा खरी सुनाना ज्यों ही सोच बहुत ऊँचा-नीचा,
गला भर गया, बोल न फूटा, आँखोंको अपनी मींचा।
उसके मुखपर झलक रही थी अन्तर तमकी घोर व्यथा,
दृगसे आँसू निकल-निकलकर कहते थे कुछ करुण कथा—
"दलित दशा हो गई यहाँ तक, तुम्हें सूझती हरी-हरी,
पौरुषहीन बने हा! कब तक सेवेंगे यों लालपरी!
सब कुछ तो खो गया, हो गया रहा हमारा जो होना,
नींद नहीं टूटी अब तक, फूटी क़िसमतका है रोना।
गुलछर्रे तो खूब उड़ाये जब तक पास रही माया,
जो जीमें आया कर डाला, जो जीमें आया खाया।
उस दुनियाने करवट ली, अब समयचक्र नीचे लाया,
छन-भर मनको बहला करके चली गई घनकी छाया।
देखो समझो निज मर्यादा, अपने पुरुषोंका सम्मान,
यों मत मिट्टीमें मिल जाने दो अपने गौरवका ज्ञान।
उच्चवंशके ईरानी हो, जिसका उज्ज्वल है इतिहास,
च्युत कर्तव्य न हो, विलासितामें करवाना तुम उपहास।
कष्ट हमारा जीवन ही है, है मरुभूमि हमारा देश,
फिर भी कठिन परिस्थितिसे लड़, भोग-भोगकर नाना क्लेश,
पूर्वज छोड़ गये हैं सम्मुख उच्चादर्शोंके पद-अंक,
हो पथभ्रष्ट भला अपने सिर कायर लेगा कौन कलंक?
इस संसार-समरस्थलमें जीवन है क्या? इक संग्राम,
रंगमंचपर नायक बनकर दिखलावें हम अपना काम।
हम मनुष्य हैं, क्यों निराश हो बैठें, धरे हाथपर हाथ,
यहाँ नहीं तो और देशमें परखें भाग्य धैर्यके साथ।
चलो, बनें नाविक हम दोनों, खेवेंगे, स्वतन्त्र, जलयान,
सागरकी तरंग उठ-उठकर है कर रही सतत आह्वान।
देख रही हूँ चित्र उदधिका, आँखोंमें है वह तसवीर,
जब हम दोनोंकी नौका भी बढ़ती होगी सागर-चीर।
हल-सा जलमें हलचल करता खेत जोतता हो पतवार,
कभी लहरपर उठ जाते हों, देख रहे हों जल संसार।
सागरके छोटे जल-पक्षी, उड़, हों कहीं पकड़ते मीन,
छोटा-सा मूँगा-समूहका द्वीप बना हो कहीं नवीन।
जिसपर बैठे अगणित पक्षी सेते हों अंडे अपने,
लख एकान्त तपस्वी मानो बैठे हों माला जपने।
पाल-केतुको देख दूरसे, भरा, पवनमें लहराता,
डाँड़ोंसे लहरोंका मस्तक चूर-चूर करता आता—
मेरा वह जलयान—किसी मदपी-सा चलता डगमग चाल,
बढ़ता होवे, पक्षी भयसे, उड़कर दृढ़ विहंगम डाल,
मेरी नौकाके ऊपर-ही-ऊपर जब मँडराते हों,
तब उनके ही सायेमें हम गीत-प्रेमके गाते हों।
वह समुद्र-कन्या ढूँढूँगी—अर्धमीन आधी नारी,
जबसे कथा सुनी मातासे दर्श लालसा है भारी।
सागरपर विचरूँगी सुखसे मोती या भर लाऊँगी,
या दुनियाको पता न होगा चुपकेसे मर जाऊँगी।
अच्छी याद मुझे भी आई रोज़ क़ाफ़ले जाते थे,
है चिरागके तले अँधेरा, जो यह याद न आते थे।
जाकर हममें से कितने ही, जिनका यहाँ बुरा था हाल,
भारतसे थोड़े ही दिनमें होकर लौटे मालामाल।
चरवाहे जो मैदानोंमें घास चराया करते थे,
बालू फाँक-फाँक रेतेमें ऊँटवान जो मरते थे,
जबसे करने लगे वही सब भारतसे अपना व्यापार,
तबसे ऊँटोंपर भर-भरकर लाते हैं घरको 'दीनार'।
भारत है सोनेकी चिड़िया, चलो वहींका करें सफर,
हिम्मत करो, कमरको बाँधो, मुशकिल है अब करनी सर।
किसी काफलेके संग पैदल चल ही दें अब बहुत हुआ,
अपनी लो तुम तेरा हाथमें, मैं भी करती चलूँ दुआ।
खरी-खरी यों सुन, गयासने कहा, स्वाँस लम्बी लेकर,
"भींगी रात, चलो सोवें अब, कल दूँगा इसका उत्तर।"

× × ×

'चलूँ विदेश ? रहूँ या घरपर ? पड़ी बड़ी कठिनाई है,
नहीं समस्या हलकर पाया, नींद न निशि-भर आई है।
है काफ़ला विदा होनेको कल ही है वह नियत समय,
जाऊँ ? जाऊँ नहीं ? अभी तक कर न सका कुछ भी निश्चय।
घर, घर ही है, स्वदेशमें मर भी जाना अति उत्तम,
दुखमें सही, शेष थोड़े दिन, यहीं काट लेंगे अब हम।
कौन जानता है विदेशमें सिरपर कैसी आवेगी,
कभी देशका मुँह दिखलाने किसमत फिर भी लावेगी ?
आशा टिम-टिम-सी करती है, हुआ चाहती है वह गुल,
किस विदेशमें पावेंगे हम अपना गुल, अपनी बुलबुल ?
है फिर भी अनुरोध प्रियाका, हठ कैसे यह टालूँ मैं,
मैं ही डूब रहा हूँ दुखमें, कैसे उसे सँभालूँ मैं ?
जीता रहूँ, उसे दुख होवे, मर जानेकी है यह बात,
नहीं 'चाल' कुछ और सूझती, चलो, मान लें अपनी 'मात'।
उसने यहाँ बहुत दुख भोगा, हुआ विधाता ही है बाम,
बेचारीको पता नहीं था, दुख है किस चिड़ियाका नाम।
उसे कष्टमें यहाँ देखना, जब हो पवन यहाँ प्रतिकूल,
ऐसेमें क्षणभर भी रुकना, होगी मेरी भारी भूल।
बस, निश्चय है, तय कर डाला, नहीं हिचकनेका कुछ काम,
कल ही मेरा अब पयान है, है स्वदेशको आज सलाम !
अरुणशिखाने कुकडूकूँ की, पौ फटने ही वाला है,
प्यारीने भी करवट बदली, होने लगा उजाला है।
वह जग गई !" "कौन ? क्या प्रियतम ! कबसे है निद्रा टूटी ?"
बेगम आँखें मलती बोली, बिखरे वस्त्र—लटें छूटीं।
"बार-बार अँगड़ाई कैसी ? नींद नहीं क्या आई है ?
नयन-गगनके कोरोंमें अरुणाई कैसे छाई है ?"

"नहीं नींद, हाँ, आई मुझको, आँखोंमें है काटी रात,
पर निश्चय कर डाली मैंने एक बड़ी ही भारी बात।
चलनेका व्रत कर डाला है अब विदेश, चाहे जो हो,
कल ही, आज, नहीं तुरन्त ही उठो, उठो, बस, चलो-चलो !
भामिन ! भारतमें चलकर मैं सोया भाग्य जगाऊँगा,
तेरे मुखपर सुखकी आभा लख निहाल हो जाऊँगा।
आँखें मेरी करुवाती हैं, आज छूटता है वह दौर,
अपने हाथोंसे दो प्याले केवल आज पिला दे और।"
उछल पड़ी हर्षित हो बेगम, लिपट गई झट बलि जाकर,
अधर हिले कहने कुछ ज्यों ही, चुम्बनकी लग गई मुहर।

× × ×

"मातृभूमि, तेरी झाँकी यह कभी न मुझको भूलेगी,
तेरे इस गुलाबकी लाली, आँखोंमें नित फूलेगी।
बुलबुल ! तेरी प्रेम-कहानी उठ-उठकर मैं गाऊँगी,
केलिकुंजके पत्ते-पत्तेको मैं नहीं भुलाऊँगी।
मृगछौने ! क्या मुँह तकता है, कैसे संग तुझे लूँगी ?
राह कठिन है, मग है लम्बा, नहीं कष्ट तुझको दूँगी।
मेरा रुचिर खिलौना है तू, तुझे छोड़ती जाती हूँ,
कितने और सुकोमल नाते, सभी तोड़ती जाती हूँ।
तेरा पट्टा आज तोड़कर करूँ ग़ुलामीसे आज़ाद,
अब स्वतन्त्र वन-वनमें फिरना कभी-कभी कर लेना याद।
कभी भूलकर इस कुटियाकी भी देते रहना फेरी,
देख समयका फेर न मनमें लाना निठुराई मेरी।
जीती रही अगर लौटी तो फिर यों गले लगाऊँगी,
तुझे देख आँखें ठंडीकर जीवन सफल बनाऊँगी।"
स्वाँस खींचकर कहते-कहते बरस पड़ी आँखें झर-झर,
आँसू पोंछ गयासबेगने लिया अंकमें उसको भर।

आन्ध्र-देशके गाँव

श्री व्रजनन्दन शर्मा

चिरकालसे आई हुई 'शान्तिप्रियता' धीरे-धीरे हिन्दू-जातिकी आलस्यप्रियता और अज्ञानमें परिवर्तित हुई। हमारे दूरदर्शी ऋषियोंने 'जम्बूद्वीपे भरतखंडे' की सृष्टिपर जिस राष्ट्रीयताकी नींव डाली थी तथा रामेश्वर, बदरीनाथ, द्वारका और जगन्नाथकी रचनाकर जिस राष्ट्रीयताका महल खड़ा किया था, वह हमारी इसी 'शान्तिप्रियता' या 'अज्ञानाम्बुधि' में विलीन हो गई। शंकराचार्य आदि महापुरुषोंने इसका उद्धार करनेके लिए कोशिश की, पर वह गहरे जलमें थी। हम भूलने लग गये थे कि भारत एक देश है, और उसकी एक राष्ट्रीयता है। पंचद्राविड़ों और पंचगौड़ोंमें महान भेद-भाव उत्पन्न हुआ। उसी प्रवाहमें हम आन्ध्र और मगध, गुर्जर और कोशलको भी भूल गये। पुनः इस 'गांधी-युग'ने देशमें विशाल राष्ट्रीयताका भाव पैदा किया है; लेकिन आज भी उत्तर-भारतमें बहुत ही कम पढ़े-लिखे व्यक्ति ऐसे हैं, जो अपने पड़ोसी 'आन्ध्र-देश' के बारेमें कुछ जानते हों—यद्यपि वे यूरोप-अमेरिकाके बारेमें बहुत-कुछ जानते होंगे! यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? इस लेखमें आन्ध्र-देशके ग्रामोंका थोड़ा परिचय दिया जाता है। भारतीय राष्ट्र ग्रामोंमें बसता है, अतः उसका वास्तविक परिचय ग्रामोंसे ही मिल सकता है।

आन्ध्र-देशका दूसरा नाम तैलंग (तिलंग), त्रिलिंग या तेलूगु देश है। इस प्रान्तके निवासियोंने बौद्धयुगमें जो प्रसिद्धि पाई थी, वह इतिहासमें अमर है। इनका अमरावती-विश्वविद्यालय एक दिन हिन्दुस्तानके गौरवकी चीज़ थी। एक ज़मानेमें आन्ध्रोंकी पताका मगध-साम्राज्यके ऊपर भी फहराई थी। आदिलशाहको कई बार हरानेवाले, विजयनगर-साम्राज्यके उद्धारक, कृष्णदेव राय आन्ध्र-देशके ही सुपुत्र थे। आज भी उस महान बौद्धयुगकी याद दिलाता हुआ 'नागार्जुन' पर्वत आन्ध्रके हृत्प्रदेशमें विराजमान है। गोदावरी और कृष्णा आन्ध्र-देशकी छाती शीतल करती हुई समुद्रमें विलीन हो रही हैं। प्रसिद्ध तीर्थ 'बालाजी' (तिरुपति) आन्ध्र-देशमें ही है, जहाँ उत्तर-भारतके साधु-संन्यासी हज़ारोंकी संख्यामें प्रतिवर्ष आते हैं। आज भी आन्ध्र-देशके नेता श्री कोंडा वेंकटप्पय्या, श्री पट्टाभि सीतारामय्या (पट्टाभाई), श्री मो० रामचन्द्र राव, विश्वदाता का० नागेश्वर रावजी तथा आन्ध्रकेसरी टी० प्रकाशमको कौन पढ़ा-लिखा भारतीय न जानता होगा?

मद्रास प्रेसिडेन्सी भाषाके अनुसार आन्ध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक चार प्रान्तोंमें विभक्त की जा सकती है। कांग्रेसने तो इन्हें अलग-अलग प्रान्त ही मान लिया है। आन्ध्र मद्रास-प्रान्तके उत्तरी सिरेपर स्थित है। इसके उत्तरमें उड़ीसा, मध्यप्रान्त; दक्षिणमें तामिल (मद्रास शहर), मैसूर-राज्य; पश्चिममें हैदराबाद रियासत और मध्यप्रान्त तथा पूरबमें बंगालकी खाड़ी है। सरकारके विभागानुसार इसमें १२ ज़िले हैं। आन्ध्रका बड़ा हिस्सा हैदराबाद रियासत तथा कुछ भाग मध्यप्रान्तमें भी है। आजकल यहाँके लोग आन्ध्र-प्रान्तको अलग करनेकी कोशिशमें लगे हैं। हाल ही में इन्होंने अपना पृथक् विश्वविद्यालय भी स्थापित कर लिया है, जो आन्ध्र-विश्वविद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँकी जनसंख्या कुल दो करोड़से ज्यादा है, जिसमें हिन्दुओंकी प्रधानता है। इनकी भाषा तेलुगु है।

गाँवोंकी बनावट

बंगालमें जिस तरह गाँवोंका नाश और शहरोंका विकास हो रहा है, उसे देखकर आशंका होती है कि शायद थोड़े दिनोंमें वहाँ गाँवोंका नामोनिशान मिट भी जायगा; पर आन्ध्र-देशकी दशा ऐसी नहीं है। इसका

कारण कदाचित् यहाँके सुखी गाँव और कल-कारख़ानोंकी वृद्धिका अभाव है।

आन्ध्र-देशकी ज़मीनको हम तीन भागोंमें बाँट सकते हैं। कुछ ज़मीन पथरीली है, कुछ लाल मिट्टीवाली कंकड़ मिली हुई और कुछ काली मिट्टीवाली है। इसमें धानकी उपज बहुत होती है। बंगालकी तरह यहाँ बराबर पानी जमा नहीं रहता। वर्षा कम होती है—प्राय: ३०-४० इंच। नहरों द्वारा इस भागमें पानी सींचा जाता है। सड़कोंकी भरमार है। अर्थात् गाँवोंमें प्राय: सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं, इसीलिए यहाँके गाँवोंका ह्रास नहीं हुआ है। इसके फल-स्वरूप गाँवोंके चूसनेवाले शहरोंकी वृद्धि बहुत कम हुई है। यहाँ तक कि आन्ध्र-देशमें पटने जैसा एक भी शहर नहीं है। क्या यह आन्ध्र-देशका सौभाग्य नहीं है?

यहाँके गाँवोंका निरीक्षण करनेवाले अवश्य ही स्वीकार करेंगे कि गाँवोंकी बनावट सुन्दर होती है—चाहे वह पाँच सौ वर्ष पहलेका बना क्यों न हो। यदि गाँवके किसी ऊँचे मकानपर चढ़कर गाँवकी शोभा देखें, तो मालूम पड़ेगा कि गलियाँ और मकानोंकी पंक्तियाँ शतरंजकी बिसातकी तरह सजी हुई हैं। सभी घरोंका दरवाज़ा सड़ककी ओर होता है। गलियाँ काफ़ी चौड़ी होती हैं। यदि आप चाहें, तो किसी भी चार पहियेकी गाड़ीपर सभी दरवाज़ों तक जा सकते हैं। मतलब यह कि किसी सुन्दर शहरकी गलियोंकी बनावटसे इन गाँवोंकी तुलना की जा सकती है। गाँवोंके (अन्दर) चौराहोंपर कुछ पत्थरकी शिलाएँ रखी रहती हैं, जिनपर लोग सुबह-शाम बैठकर बातें करते और एक दूसरेसे मिलते हैं। यहाँकी ये बैठकें यूरोपके क्लबोंसे कम महत्व नहीं रखतीं।

चन्द्रमामें कलंककी तरह इन गाँवोंमें कलंक भी है; पर उसे ये गाँव चन्द्रमाकी तरह अपने हृदयमें न धारण न कर कुछ सौ गज़ दूर रखते हैं। यह कलंक है 'माल-पल्ली'—अछूत टोली। मोटरमें कैरियरकी भाँति अथवा म्युनिसिपैलिटीमें पब्लिक पाखानोंकी तरह यह माल-पल्ली प्रत्येक गाँवमें आवश्यक, पर घृणित मानी जाती है। उसकी ज़रूरत सबको होती है, पर उसकी सफ़ाई और सुधारका ध्यान कोई नहीं रखता! यह भी छोटा-मोटा गाँव ही होता है। उसका नाम उसी गाँवके नामपर होता है। जैसे गाँवका नाम 'चेब्रोल' हो, तो उसकी 'माल-पल्ली' का नाम 'चेब्रोल माल-पल्ली' होगा।

गाँवोंके मकान भी सुन्दर होते हैं। गाँवोंमें लगभग ३० फ़ी-सदी खपरैलके मकान, ५० फ़ी-सदी ताड़के पत्तेके मकान तथा २० फ़ी-सदी अन्य ढंगके होते हैं। दीवारें प्राय: पत्थर या मिट्टीकी होती हैं। उत्तर-भारतकी तरह ये घरके भीतर आँगन नहीं छोड़ते। पुराने घरोंमें खिड़कियाँ भी नहीं होतीं। ये घरोंमें ज्यादा कोठरियाँ भी नहीं बनाते। एक बड़ा हाल, दो कोठरी और एक ओसारा यही इनके घरोंका नकशा होता है। घरके दरवाज़े एक तरफ़से दूसरी तरफ़ तक एकदम आमने-सामने, फ़ोटोके कैमरेकी तरह, बनाये जाते हैं। इस तरफ खड़े होकर सब किवाड़ खोल दीजिये, तो उस तरफ़की सारी चीज़ें दिखाई पड़ेंगी, चौखटें बहुत सुन्दर होती हैं, क्योंकि हर त्योहार या शुभ काममें उनमें हल्दी पोतकर सेन्दूरकी बिन्दी लगा देते हैं, जो अत्यन्त सुन्दर मालूम होती हैं। यह सिर्फ हिन्दू-घरोंमें ही लगाये जाते हैं।

पर ग़रीबोंके घर ऐसे नहीं होते। ग़रीबोंके अधिकांश घर ताड़के पत्तोंके बने होते हैं, जिनमें मुश्किलसे डेढ़ दो फ़ीटकी दीवार होती है। गुम्बजके आकारका घर नीचेसे ऊपर तक ताड़के पत्तोंसे छाया रहता है, जो सात-आठ फ़ीटसे ज्यादा ऊँचा नहीं होता। भीतरकी तीन-चार गज़से ज्यादा जगह नहीं होती। उसीमें ये ग़रीब अपनी स्त्री, दो-तीन बच्चे और मुर्गे-मुर्गीके साथ रहते हैं। यह पूँजीवादी समाजकी निष्ठुरताका नमूना है।

ग़रीबकी झोपड़ीसे राजमहलों तकमें फिर भी एक समता है। वह है चौक पूरना। प्रात:

घरके दरवाजे झाड़कर, गोबर मिला पानी छिड़क, चौक पूरे जाते हैं। चौक पूरनेका चूर्ण चावल और चूनेका होता है। इनके द्वारा तरह-तरहके आकार-प्रकारकी ड्राइंग बनाई जाती है, जो देखनेमें बड़ी सुन्दर लगती है। यह प्रथा भी सिर्फ हिन्दू-गृहोंमें ही मिलती है।

जातियाँ

अब मैं आगे बढ़नेके पहले इन गाँवोंमें रहनेवाली मुख्य-मुख्य जातियोंका वर्णन कर देना चाहता हूँ।

ब्राह्मण--भारत-भरमें यह जाति जहाँ है, वहाँ प्रधान रूपमें ही है। यहाँ भी इस जातिकी ही प्रधानता है। समाजमें यही अग्रगण्य मानी जाती है। गाँवोंके लोग इनकी सलाहके बिना कोई काम नहीं करते। पर दलबन्दी और ब्राह्मण-अब्राह्मण-आन्दोलनके इस ज़मानेमें इनकी वह प्राचीन मर्यादा बहुत कम होती जा रही है। और अगर वे उसी ढंगसे रहे, तो असम्भव नहीं कि थोड़े दिन बाद समाज इनकी बात भी न पूछे। अन्य जातियोंमें इनके प्रति कटुता बढ़ती जा रही है।

इनमें वैदिक और नियोगी दो प्रधान भेद हैं; परन्तु इन दोनोंमें भी पूरा मेल नहीं है। वैदिक लोगोंकी वृत्ति पुरोहिताई और भिक्षा है। प्रातःकाल उठते ही वे माथेमें विभूति लगाकर एक हाथमें एक बड़ा लोटा और दूसरे हाथमें पंचाग ले गाँवमें भिक्षाके लिए निकलते हैं। घर-घर जा पंचाग सुनाते और बदलेमें एक नमस्कार और एक मुट्ठी चावल प्राप्तकर चलते बनते हैं। इस तरह ११ बजे तक परिवार भरके पेट लायक चावल उगाह लाते हैं। पर नियोगी लोग भिक्षाटन नहीं करते। उनकी वृत्ति लेखनी है। उन्हें बुद्धि-जीवी कह सकते हैं। ग्रामके पटवारी प्रायः वही होते हैं। बड़े-बड़े ओहदोंपर वही हैं। वकील, बैरिस्टर और कांग्रेसके नेता भी वही हैं। अगर वे अपना जनेऊ छोड़ दें और आचार-विचार कम कर दें, तो वे कायस्थोंसे मिल जायँगे। इसके अलावा ब्राह्मणोंकी कईएक शाखाएँ हैं। यहाँके वैष्णव तो प्रसिद्ध ही हैं, जिनका आचार हद (असभ्यता) तक पहुँच चुका है। इनकी वृत्ति प्रायः मन्दिरोंमें पूजा है। उसीकी जागीरसे इनका निर्वाह होता है। शैव-वैखानस लोग भी हैं। इन ब्राह्मणोंकी पदवी राय, शास्त्री, आचारी, सोमयाजी वग़ैरह है।

क्षत्री--ये लोग यहाँ राजुलुके नामसे पुकारे जाते हैं। इनकी जीविका कृषि है। गोदावरी और विशाखपट्टम ज़िलेमें इनकी संख्या ज्यादा है, और उन्हें समाजमें आदरणीय स्थान प्राप्त है। द्विजोंमें ये ही मांसाहारी हैं; पर आन्ध्र-देशके अन्य भागोंमें तो इनको तीसरा स्थान मिला है--अर्थात् वैश्योंके बाद इनका नम्बर आता है। यह आश्चर्यकी बात है! इसका कारण यही हो सकता है कि यहाँके ब्राह्मण और वैश्य कट्टर शाकाहारी हैं। मांसाहार किसी गर्हित पापसे कम नहीं समझा जाता। इन लोगोंकी धारणा यह है कि जो मांस भक्षण करता है, वह द्विज नहीं हो सकता। इसलिए ये इन्हें समाजमें तीसरा स्थान देते हैं। इनमें परदा है।

वैश्य--ये लोग प्रायः सब गाँवोंमें पाये जाते हैं। इनकी जीविका व्यापार है। नोन-तम्बाकूसे लेकर सोना-चाँदी तकका कारबार ये लोग करते हैं। इनका आचार-विचार ब्राह्मणोंसे मिलता-जुलता है। ये कट्टर शाकाहारी और व्यापारमें बड़े प्रवीण हैं। ख़र्च-वर्च भी बड़े हिसाबसे करते हैं। आन्ध्र-प्रदेशकी प्रायः सब जातियोंमें समय-समयपर बौद्धिक तथा सामाजिक परिवर्तन होते रहे हैं; पर इस जातिमें नहीं। वही पुरानी चाल चली जाती है। रूढ़ियोंके दास हैं। शकल-सूरत देखते ही ये पहचाने जा सकते हैं। काला आबनूस-सा रंग, भारी आवाज़, मोटा और असंगठित--थलथल--शरीर इनकी अपनी विशेषता है। इनका साधारण स्वभाव उत्तर-भारतके मारवाड़ी-समाजसे मिलता-जुलता है; पर कंजूसीमें ये उनसे भी बढ़े-चढ़े हैं।

वेलमा—ये लोग खानदानी ज़मींदार हैं। पहले ज़मानेमें इनका राज्य भी था। बोब्बिली उन्हींका शेषांश है। 'घर जल जाय, पर चाल न बिगड़े' वाली कहावतको ये चरितार्थ करते हैं। इनके घरोंमें परदा और दासी-प्रथाका प्राबल्य है। नये सामाजिक सुधार तो इनमें छू तक नहीं गये हैं। ये कृष्णा और गोदावरी ज़िलोंमें विशेष रूपसे पाये जाते हैं। इनमें सामाजिक सुधारकी बड़ी आवश्यकता है।

कम्मा—ये लोग कृष्णा, गुण्टूर तथा गोदावरी ज़िलेके मालिक हैं। कृषि ही इनका जीवन है। ये अच्छे कृषक हैं। इनमें राजनीतिक तथा सामाजिक सुधार बड़े ज़ोरोंसे हो रहा है। शिक्षाकी उन्नति आश्चर्यजनक हो रही है। प्रत्येक दिशामें उन्नति करनेवाली जातियोंमें से यह एक है। इस जातिके युवक बड़े उत्साही और देशप्रेमी हैं। कांग्रेस-आन्दोलनमें भाग लेनेवालोंमें भी इन्हीं युवकोंकी संख्या अत्यधिक है। ब्राह्मण-अब्राह्मण-आन्दोलनके स्तम्भोंमें एक यह जाति भी है। जहाँपर ये हैं, वहाँपर इनकी प्रधानता है। इनमें वासिरेडी खानदानके लोग बहुत गौरवान्वित माने जाते हैं। प्राचीनकालमें अमरावती राज्यके ये स्वामी थे। ये लोग अपनेको क्षत्री घोषित कर नये सिरेसे जनेऊ धारण कर रहे हैं। ब्राह्मण-बहिष्कार भी ज़ोरोंसे कर रहे हैं। हरिजनोद्धारमें भी इनका बड़ा हाथ है। हिन्दी भी खूब उत्साहसे पढ़ रहे हैं। ये सीधे-सादे और कपटहीन स्वभावके होते हैं। ये अपने नामके अन्तमें चौधरी लगाते हैं। पाश्चात्य फैशनके फन्देमें ये खूब जकड़े जा रहे हैं।

रेड्डी—ये सब बातोंमें कम्मा लोगोंसे मिलते हैं। ये भी चतुर कृषक हैं। आन्ध्र-देशके पुराने गौरवका बहुत-कुछ अंश इन्हीं रेड्डी राजाओंकी वीरताका फल है। प्रसिद्ध 'कोंडावीडू' इन्हीं लोगोंकी राजधानी थी। आन्ध्र-देशपर इन लोगोंने बहुत दिन तक शासन किया। इनमें भी सुधारकी लहर चली है। इस जातिने अच्छे-अच्छे रत्न पैदा किये हैं। आन्ध्र-विश्वविद्यालयके वाइस-चांसलर सी० आर० रेड्डी इसी जातिके भूषण हैं। नेल्लूर, कड़पा और कर्नूल ज़िलोंमें इनकी प्रधानता है। ये भी अब्राह्मण-आन्दोलनके पोषकोंमें से हैं। कांग्रेसके आन्दोलनोंमें भी इन्होंने काफी भाग लिया है। ये अपने नामके अन्तमें रेड्डी लगाते हैं।

कापु या तेलगा—ये भी कृषक-जातिके ही हैं। ये प्रायः सारे देशमें पाये जाते हैं। फिर भी गोदावरी और विशाखपट्टम ज़िलेमें इनकी प्रधानता है। वहाँ इनकी इज्ज़त भी खूब है। इस जातिमें सब तरहके लोग हैं। यह सर्वतोमुखी उन्नति करनेवाली जाति है। ये मज़दूर भी हैं, कृषक भी, ज़मींदार भी, नौकर भी, ओहदेदार भी और दरबान भी। उत्तर-भारतका पुलिस-विभाग जिस तरह बलिया, छपरा, आराके लोगोंसे भरा है, उसी तरह आन्ध्र-देशका पुलिस-विभाग भी इनसे भरा है। समाज-सुधार भी इस समाजमें हो रहा है। कोई कहींसे भटका हुआ आवे, उसे ये मिला लेते हैं। ये अपने नामके अन्तमें 'नायुडु' लगाते हैं। भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनीदेवी इसी जातिकी पतोहू हैं। इस जातिका नाम 'तेलगा' और देशका नाम तैलंग होनेसे इनका कहना है कि ये ही इसके आदिनिवासी हैं। शायद यह कथा सच भी हो।

विश्व-ब्राह्मण—यह एक कुचली हुई जाति है। यहाँ एक कहानी है कि पहले विश्व-ब्राह्मण ही यहाँके गाँवोंके 'कर्णम्' (ग्राम-पटवारी) हुआ करते थे; पर ब्राह्मणोंने धोखा देकर राजाको मिला लिया और इनको हटाकर आप यह पद हड़प बैठे। ये अपनेको ब्राह्मण कहते हैं। इधर इनका आचार-विचार पवित्र ब्राह्मणों-जैसा है, पर वैजाग और गंजाम ज़िलेके लोग मांस-भक्षण भी करते हैं। सोने-चाँदीके गहने बनाना तथा बढ़ईका काम करना इनकी जीविका है। प्रायः सभी जातियाँ इस जातिसे घृणा करती हैं। कोई इनका छुआ नहीं खाता और न ये किसीका। न-मालूम इसमें क्या गड़बड़झाला है। अब इनमें सुधारोंने ज़ोर पकड़ा है। ये ब्राह्मणोंसे बदला लेनेके विचारसे अब्राह्मण

दलमें जा मिले हैं। मुझे इनमें और ब्राह्मणोंमें कोई फर्क नहीं मालूम होता। समाज इनके साथ अन्याय कर रहा है। ये सर्वत्र पाये जाते हैं; पर इनमें भी 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हे' की तरह बड़ा भेद-भाव है।

इसके सिवा यहाँ कई जातियाँ हैं, जो उत्तर-भारतसे भिन्नता रखती हैं। 'साली' एक जाति है, जिनका काम कपड़ा बुनना है। ये शुद्र हिन्दू हैं, और जनेऊ धारण करते हैं। आन्ध्रका प्रसिद्ध खद्दर इन्हींका बुना होता है। 'कम्मरि' एक जाति है, जिसका काम बाँसकी चीज़ें बनाना है, फिर भी वह 'डोम' नहीं है। इसके सिवा सातानी (वैष्णव), जंगम (शैव) वगैरह कई जातियाँ उत्तर-भारतसे भिन्नता रखती हैं। अन्य सब वृत्तिक जातियाँ हैं—जैसे, धोबी, कुम्हार, चमार, नोनियाँ वगैरह। इनके अलग-अलग नाम पाये जाते हैं। धोबी जातिकी संख्या हर गाँवमें बहुत अधिक है।

अछूत—हिन्दुस्तानका यह कलंक सब जगहोंमें व्याप्त है—यहाँ तो विशेषकर। अस्पृश्योंमें 'माल-मांदिगा' (चमार) प्रधान हैं। ये श्रमजीवी हैं। किसानोंके हाथ-पाँव ये ही हैं। ये बड़े परिश्रमी और दीन होते हैं। ये गाँवके बाहर 'माल-पल्ली' में रहते हैं, परन्तु इनमें आजकल खूब धड़ाधड़ ईसाई बन रहे हैं।

मुसलमान—सर्वत्र पाये जाते हैं; पर इनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। ये गाड़ी हाँकने और कपड़े सीनेके लिए पेटेन्ट हैं। ये परिश्रमी और खर्चीले होते हैं। कुछ लोग व्यापारमें भी प्रवृत्त हैं। उत्तर-भारतकी तरह समाजमें इनको गौरव प्राप्त नहीं है। उर्दू-भाषाकी तो इन्होंने टाँग तोड़ दी है। ये 'तुर्कम्' बोलते हैं। इनकी उर्दूपर तेलुगुका बड़ा प्रभाव पड़ा है।

ईसाई—इस मतका यहाँ बड़ा ज़ोर है। हरएक 'माल-पल्ली' में इनकी कुछ-न-कुछ संख्या अवश्य है। कुछ अच्छे-अच्छे घरानेके लोग भी इनमें मिले हैं। इनका रहन-सहन पूर्ववत् ही है, पर अब धीरे-धीरे बदल रहा है। मज़दूरी इनकी जीविका है।

इसके सिवा बाहरसे आकर बसनेवाली जातियाँ भी हैं, जिनमें 'बोन्दिली' एक जाति है। ये अपनेको बुँदेलखंडका क्षत्री बताते हैं। इनके घरोंमें अब भी विकृत हिन्दी बोली जाती है। इन्हें समाजमें कोई अच्छा स्थान नहीं मिला है। तामिलसे आई हुई एक जाति है, जिसे 'एरूका' कहते हैं। ये लोग सूअर पालनेका व्यवसाय करते हैं और एक गाँवसे दूसरे गाँवमें घूमते रहते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात लिखना मैं भूल गया था। आन्ध्रके लोगोंके नामके साथ उनके 'घरका नाम' (इंटिपेरू) संयुक्त होता है। जैसे गुजराती लोग नामके बाद पिताका नाम जोड़ते हैं, उसी त[illegible] ये अपने नामके पहले कुछ जोड़ते हैं, जिससे इनके कुलका परिचय मिलता है—जैसे, कोंडा वेंकटप्पय्या। इसमें 'कोंडा' घरका नाम और वेंकटप्पय्या असल नाम है।

गाँव और सरकार

मुसलमानी ज़मानेसे ही यहाँ हरएक गाँवमें एक ग्राम-मुन्सिफ (पटेल) और एक या दो 'कर्णम्' (ग्राम-पटवारी) होते चले आये हैं। उनका वेतन उस समय भी सरकार ही देती थी। ब्रिटिश सरकारने भी वही नियम रखा है। आजकल इनकी परीक्षाएँ होती हैं, और इस परीक्षामें उत्तीर्ण होना इनके लिए लाज़मी है। मुन्सिफको ग्राम-व्यवस्था-सम्बन्धी साधारण ज्ञान तथा 'कर्णम्' को हिसाब-किताब-सम्बन्धी पूरा ज्ञान रखना ज़रूरी है। इन्हें १४-१५ रुपये मासिक वेतन मिलता है। 'ऊपरी' आय भी कुछ हो ही जाती है। ये दोनों पद जनता द्वारा गौरवास्पद समझे जाते हैं, और पिताके बाद पुत्रको प्राप्त होते रहते हैं, यदि वह बिलकुल अयोग्य न हो। 'कर्णम्' तो ब्राह्मण होते ही हैं। मुन्सिफ उस जातिके लोग हुआ करते हैं, जिस जातिका बोलबाला गाँवमें होता है। ये प्राय: कम्मा, तेलगा, रेड्डी, वेलमा जातिके लोग होते हैं।

ज़मीनकी पैदाइश, मालगुज़ारीका हिसाब-किताब सब 'कर्णम' के पास रहता है। मुन्सिफ़ मालगुज़ारी वसूल करता तथा शान्ति-व्यवस्था करता है। जनतामें किसी तरहकी अशान्ति, मार-पीट, चोरी-डकैतीका ज़िम्मेदार सरकारके यहाँ मुन्सिफ़ होता है। किसी डाँड़-मेड़के झगड़ेको 'कर्णम' ठीक करता है। अर्थात् हर गाँवमें सरकारके दो प्रतिनिधि एक दीवानीके और एक फौजदारीके हुआ करते हैं। गाँवके ये ही कलक्टर और मुन्सिफ़ होते हैं। इनकी आज्ञाओंके पालनके लिए इनके अधीन चार-पाँच नौकर रहते हैं, जिनको सरकार ही वेतन भी देती है। ये २४ घंटे इनकी आज्ञाओंका पालन करनेको तैयार रहते हैं। ये मुन्सिफ़ और कर्णम् ही सरकारी अफ़सरोंका स्वागत-सत्कार करते तथा उनके सरकूलरोंको अमलमें लाते हैं। छोटी-छोटी बातोंके लिए जनताको अदालत और वकीलोंकी शरण नहीं लेनी पड़ती।

खेत और उपज

खेतोंकी मिट्टी—जैसा मैंने पहले कहा है—तीन तरहकी होती है—लाल, काली और पथरीली। समुद्रके किनारेकी भूमि नीची और काली है। इसमें नहरों द्वारा पानी पहुँचाया जाता है। पथरीली भूमि ऊँची है, इसलिए वहाँ पानी नहीं जाता। यहाँ नदियोंकी भरमार बंगाल, बिहार, यू० पी० की तरह नहीं है, फिर भी ये कृष्णा, गोदावरीका अच्छा उपयोग कर रहे हैं। क़रीब-क़रीब आधा आन्ध्र-देश—यानी गोदावरी, कृष्णा, गुंटूर, नेल्लूर, कड़पा वग़ैरह ज़िले—पानीसे सींचे जाते हैं। इन भागोंमें धान ख़ूब होता है। कहीं-कहीं तो धानकी दो फ़सलें होती हैं। दाही-सूखीका कोई डर नहीं है। ठीक तारीख़पर पानी मिल जाता है, और काटने तक पानी रहता है।

बाक़ी प्रदेशमें ज्वार, बाजरा, मरुआ, मकई, अरहर, मूंग, उड़दकी उपज होती है। तेलहनमें तिल, मूँगफली और रेंडी प्रधान हैं। बैंगन, भिंडी, करेला, सेम, ककड़ी, सहजन, चिचड़ा, लौकी, कुम्हड़ा आदि बहुतायतसे होते हैं। आलू बाहरसे आता है। परवलके दर्शन नहीं होते। व्यापारिक वस्तुओंमें तम्बाकू, रुई, लालमिर्च, मूँगफली वग़ैरह हैं। फलोंमें नारियल, आम, अमरूद, नारंगी तथा केले मिलते हैं। आम चैत्रसे प्रारम्भ होता और आषाढ़ तक समाप्त हो जाता है। लीचीका नाम भी नहीं।

यहाँके किसान खेती करनेमें पटु होते हैं। इस विषयमें इनका ज्ञान अच्छा है। यहाँकी गाड़ियाँ उत्तर-भारतकी गाड़ियोंसे ज्यादा मज़बूत और बड़ी होती हैं। खेतीके कुछ ऐसे सामानोंका यहाँ प्रयोग होता है, जो उत्तर-भारतमें लाभदायक और आवश्यक सिद्ध होंगे है। मैं कृषि-तत्त्ववेत्ताओंसे प्रार्थना करूँगा कि वे यहाँकी वस्तुओंका निरीक्षणकर आवश्यक तरीक़ोंको उत्तर-भारतमें फैलायें।

भूमि-कर

आबपाशीका यहाँ अच्छा इन्तज़ाम है। कृष्णा और गोदावरीके पानीसे देश धान्यपूर्ण हो रहा है, फिर भी ज़मीनका कर कुछ ज्यादा ही मालूम पड़ता है। साधारण भूमिका कर १॥)-२) रुपया लगता है; पर जिस ज़मीनमें पानी पहुँचाया जाता है, उसका कर ११)-१२) रुपये लगता है। यानी ९)-१०) सिर्फ पानीका टैक्स लग जाता है। पहले जब एक एकड़की पैदावार १००)-१२५) थी, तब १०) देना मुश्किल न था; पर अब जब एक एकड़की पैदावार सिर्फ ४०)-४५) रह गई है, तब १०) देना बड़ा मुश्किल है। यह तो चतुर्थांश हो गया। फिर इधर सरकारने सेटलमेंट आफिसकी स्थापनाकर रुपयेमें एक-दो आनेकी वृद्धि और कर दी है। यह तो सरासर अन्याय है।

किसान-मजदूर

आजकल मज़दूरोंकी उन्नतिका ज़माना है। मिल-मज़दूर और रेलवे-मज़दूरोंकी ओर तो लोग काफी ध्यान दे रहे हैं, पर ग्रामीण मज़दूरोंकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं गया है। यद्यपि इनकी दुरवस्था शहरके

मज़दूरोंकी तरह नहीं है, फिर भी ये उपेक्षणीय नहीं हैं। इन्हें भी सहायताकी ज़रूरत है।

आन्ध्र-देशके मज़दूर भी उत्तर-भारतकी तरह ही हैं। मज़दूरी भी प्रायः उतनी ही मिलती है। किसानोंका व्यवहार मज़दूरोंके साथ अच्छा नहीं है। गालियोंकी वर्षा अभी हुआ ही करती है, फिर भी पहलेसे अधिक सुधार हुआ है।

बिहार-बंगालके मज़दूरों और यहाँके मज़दूरोंमें एक फ़र्क़ है। उधरके मज़दूर मालिकके गुलामकी तरह होते हैं। जिसकी ज़मींदारीमें उनका घर होता है, वे उसके ख़रीदे-से होते हैं। यहाँ वैसा नहीं होता, क्योंकि कोई किसीकी ज़मीनमें घर नहीं बनाता, सब सरकारकी रैयत ही रहते हैं। इसलिए उस तरफ़के मज़दूरों और मालिकोंके पारस्परिक सम्बन्धसे इनका सम्बन्ध अच्छा और मधुर होता है।

किसान और व्यापार

यह व्यापारका ज़माना है। व्यापारिक दृष्टिकोणकी आवश्यकता सब जगह समझी जा रही है। राष्ट्रीय संस्थाएँ और मानव-जीवनकी सफलता भी इसी व्यापारिक दृष्टिकोणपर निर्भर हो रही हैं। जिस देशका व्यापार अच्छा है, वही आज अग्रगामी है।

आन्ध्र-देशके किसान इस क्षेत्रमें बहुत पिछड़े नहीं हैं। इनकी व्यापारिक बुद्धि भी अच्छी है। मैं तो छोटे-छोटे गाँवोंमें भी देखता हूँ कि शेयर जमाकर लोग व्यापार कर रहे हैं, और ख़ूब पटुताके साथ। तम्बाकूका व्यापार देशके लिए नुक़सानदेह होनेपर भी इनके लिए ख़ूब फ़ायदेका हो रहा है, और ये उसमें ख़ूब प्रवीणता प्राप्त कर रहे हैं। ये मूँगफलीका व्यापार भी करते हैं। को-आपरेटिव बैंकोंका जाल गाँवोंमें बिछ रहा है। किसान धड़ाधड़ उसका उपयोग कर रहे हैं। उसी तरह बीमा-कम्पनियाँ भी काम कर रही हैं। बहुत जगह तो फ़सलोंका बीमा भी हो रहा है। छोटे-छोटे गाँवोंमें धान और मूँगफलीके मिल चल रहे हैं और नये बन रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। किन्तु मैं अपने अनुभवके आधारपर यह अवश्य कह सकता हूँ कि यहाँके किसान अपने लायक़ व्यापारका काफ़ी अनुभव और ज्ञान रखते हैं। इससे इनकी अच्छी आर्थिक उन्नति हो रही है।

पशु-पालन

कृषिके प्राण पशु हैं। जहाँके पशु मज़बूत और अच्छे होंगे, वहाँ कृषि और कृषककी अवस्था अवश्य अच्छी होगी। यहाँके लोग पशु-पालनमें चतुर हैं। यहाँके बैल किसी डेयरीके पशुओंसे बुरे नहीं होते। भैंस और भैंसे छोटे होते हैं, पर गाय-बैल बहुत बड़े-बड़े और बलिष्ट होते हैं। यहाँका साधारण बैल बिहार और यू० पी० के साधारण बैलोंसे तिगुना बोझ खींच सकता है। उत्तर-भारतमें बहुत कम पशुओंकी देहपर मांस नज़र आता है; पर यहाँ बहुत कम पशुओंकी हड्डी दिखाई पड़ती हैं।

बैलोंका दाम साधारणतः ६०) से लेकर तीन-चार सौ रुपये तक होता है। गायें २५) से १००) तकमें अच्छी मिल सकती हैं। भैंसें बहुत छोटी होती हैं। दाम भी ५०) के अन्दर ही होता है। यहाँके दूध देनेवाले जानवर बहुत कम दूध देते हैं। एक सेर दूध देना यहाँ बहुत गिना जाता है। दस सेर दूध देनेकी बातपर ये जल्दी विश्वास नहीं कर सकते। दूधमें मिठास और सुगन्धि भी उत्तर-भारतकी तरह नहीं होती; पर घी ज्यादा निकलता है। घीकी भी वही हालत है।

पशुके खाद्यमें ये लोग विशेषकर धानका पुआल, ज्वार तथा सनईका डंठल वग़ैरहका उपयोग करते हैं। सानी और पानी मिलाकर घास कभी नहीं खिलाते। सूखी घासका ढेर लगाकर साल-भर तक रखनेका ढंग इनसे सीखने लायक़ है। दूध देनेवाले जानवरों तथा बैलोंको ये कुलथी तथा बंगौर वगैरह पीसकर देते हैं। खली आदि भी देते हैं। अन्य पशुओंमें यहाँ

भेंड़-बकरे पाले जाते हैं, जिनसे ऊन नहीं मिलता। सूअरोंका पालना भी खूब प्रचलित है। घोड़े-हाथीके दर्शन कभी-कभी होते हैं।

भूमिका विभाग

ज़मीन या धनका ठीक-ठीक बँटवारा न होनेसे समाजमें तरह-तरहके आन्दोलन उठते हैं। आज संसारके प्रायः सभी आन्दोलन इसी आधारपर हैं—ऐसा कहा जाय, तो शायद अनुचित न हो। इस विषयमें भी उत्तर-भारतमें विशेष असमता पाई जाती है। मेरे एक परिचित मित्र यहाँसे लाहौर-कांग्रेस गये थे। वे किसान हैं। लौटती बार उन्होंने बिहार तथा यू० पी० की यात्रा की थी। मैंने पूछा कि आपने उत्तर-भारतको कैसा पाया? उन्होंने बहुत संक्षेपमें जवाब दिया—"वहाँ दो ही तरहके लोग देखनेमें आये—अमीर या भिखारी; खूब साफ़-सुथरे या घोर गन्दे।" मुझे यह सुनकर कुछ बुरा तो लगा; पर उनकी बात बहुत अंशोंमें ठीक थी।

आन्ध्र-देशमें इस तरहकी भिन्नता नहीं है। सम्पत्तिका बँटवारा उस तरह नहीं हुआ है। यहाँ न तो लखपति ही ज्यादा मिलेंगे और न भूखों मरनेवाले। सैकड़े ८० मध्यम-श्रेणीके लोग ही हैं। कारण, भूमिका विभाजन अच्छी तरह हुआ है। न तो यहाँ कोई उत्तर-भारतकी तरह हज़ारों एकड़का मालिक बन गुलछर्रे उड़ाता है, और न किसीको क़ब्र बनानेको ३॥ हाथ ज़मीनकी कमी है। बंगाल-बिहारकी तरह यहाँ इस्तमरारी बन्दोबस्त नहीं हुआ, इसलिए ज़मींदारोंकी संख्या नहींके बराबर है। कहीं किसी ज़िलेमें एक-आध ज़मींदार हैं। वे भी उत्तर-भारतके टुटपुँजिये ज़मींदारोंकी तरह रैयतपर अत्याचार नहीं करते। बाक़ी सबमें न तो कोई किसीका मालिक है, न किसीकी रैयत। सब लोग सरकारको (ग्राम-मुन्सिफ़ द्वारा) मालगुज़ारी देते हैं।

यहाँ प्रायः दस-पाँच एकड़वाले ही ज्यादा हैं। प्रायः किसीकी बाहरी वेश-भूषा देखकर नहीं कह सकते कि ये धनी और ये ग़रीब हैं। इस कारण सामाजिक स्थिति अच्छी है—भिन्नता कम है। सभ्यताका भी विकास इसी कारण हुआ है। फिर भी अभी उन्नतिकी काफी गुंजाइश है।

आर्थिक अवस्था

ऊपर दिये हुए कारणोंसे तथा आबपाशीके प्रतापसे इनकी आर्थिक अवस्था अच्छी थी; पर इधर अनाजकी दर गिर जानेसे सब जगहके किसानोंको तकलीफ़ उठानी पड़ी है। यहाँके लोगोंकी भी यही हालत है। धनी अमेरिका भी डँवाडोल है; फिर हिन्दुस्तानका कहना ही क्या? फिर भी यहाँके किसान ४०-५०) प्रति एकड़ पैदा कर लेते हैं।

शुरूसे ही यहाँके लोग ख़र्चीले हैं। बचाना बहुत कम जानते हैं। कपड़े और शृंगार-सामग्रीमें वे ज्यादा ख़र्च कर डालते हैं, जिससे कभी-कभी बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ती है। फिर भी यहाँ ऐसे बहुत ही कम मिलेंगे, जो कपड़ेके बिना नंगे या अर्द्धनग्न घूमते हों। भीख माँगकर खानेवालेके पास भी इतना कपड़ा ज़रूर होगा, जिसे वे रोज़ बदल सकें। एक स्त्रीसे स्नानके बारेमें प्रश्न करनेपर महात्माजीको चम्पारनमें जो उत्तर मिला था, वह यहाँ न मिलता। शायद पूछनेकी नौबत ही न आती। ये पैसेकी क़दर नहीं जानते। इसका कारण आर्थिक कठिनाइयोंका कम आना ही है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि यहाँकी आर्थिक अवस्था अच्छी है।

यहाँ सूद भी प्रायः १) या १॥) है। फिर भी कुछ मारवाड़ी भाई बहुत अत्याचार कर रहे हैं। उनकी क्रूरतासे बहुतोंका नाश हो गया है। ये दूकानें खोल बैठे हैं। किसानोंको चंगुलमें फँसाना ही इनका पेशा है। ज़रूरतको देखकर सूदकी दर बढ़ती-घटती रहती है। इनकी सूदकी दर १॥) से लेकर ४॥) तक भी है। इनके कारण हज़ारों किसान चौपट हो गये और हो रहे हैं। न-मालूम कब इस सूदख़ोरीपर नियन्त्रण होगा। इसी कारण मारवाड़ी भाई समाजमें घृणा और हास्यके पात्र हो रहे हैं, और असम्भव नहीं कि थोड़े दिनोंमें इनको यहाँ स्थान न मिले।

कम्बोडियामें हिन्दू-कीर्ति

श्री नीलकण्ठ ए० पेरूमल, मलाया

भारतसे सहस्त्रों मील दूर, कम्बोडिया राज्यमें, अंगकोरके भग्नावशेष हैं। ये भग्नावशेष एक निर्जन घने जंगलमें, जो कई सौ मीलके घेरेमें है, स्थित हैं। पृथिवीके इस सुदूर कोनेमें ऊँचे और सघन वृक्षोंके बीच यत्र-तत्र एक-आध हिन्दू-मन्दिरका भग्नावशेष आकाशकी ओर सिर उठाये दीख पड़ जाता है। इन भग्नावशेषोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण है अंगकोर वाटका मन्दिर। अनुमान किया जाता है कि इसका निर्माण ईसाकी बारहवीं शताब्दीमें हुआ था, और उसके तीन शताब्दी बाद यह त्याग दिया गया, और तबसे अब तक यह हवा और पानीकी चपेटें खाकर धीरे-धीरे अपना अस्तित्व मिटा रहा है। अब हज़ारों लोग इसे एक आश्चर्यजनक स्मारक समझकर देखनेके लिए जाने लगे हैं। कुछ लोगोंके लिए यह सिर्फ एक पुराने ढंगकी पत्थरकी इमारत है, कुछके लिए यह एक कौतूहलकी वस्तु है, कुछ इसे भवन-निर्माण-कलाकी एक प्रशंसनीय कृति समझते हैं, और कुछ इसे एक महान जाति और एक महत्त्वपूर्ण सभ्यताका तिरोहित कीर्ति-चिह्न मानते हैं। परन्तु कम्बोडियाके इस भागमें घूमनेवाले हिन्दू यात्रीके लिए यह एक पवित्र स्थान है, जिसका तीर्थकी भाँति दर्शन करना उचित है।

पाठकोंके मनमें स्वभावतः ही ये प्रश्न उठेंगे कि इस मन्दिरको किसने बनाया था; इसे हिन्दू-मन्दिर ही क्यों माना जाय, और इस स्थानका पिछला इतिहास क्या है? इन प्रश्नोंके उत्तरमें मैं यहाँ कम्बोडियाके इतिहासकी कुछ ज्ञात बातें संक्षेपमें बतलाये देता हूँ, यद्यपि ये ऐतिहासिक बातें अब तक पूर्ण रूपसे ज्ञात नहीं हैं। हिन्दुओंके कुछ धार्मिक ग्रन्थोंमें यह उल्लेख मिलता है कि ईसाकी दूसरी शताब्दीके लगभग "सुदूर पूर्व" में कहींपर एक हिन्दू राज्य था। हमें मानना पड़ेगा कि यह राज्य कम्बोडियामें था। यह बात ज्ञात है कि ईसाकी पहली शताब्दीसे लेकर आठवीं शताब्दी तक कम्बोडिया एक छोटी स्वतन्त्र रियासत थी, जिसपर विभिन्न हिन्दू राजाओंने शासन किया था; लेकिन उनके शासन या उनके जीवनके सम्बन्धमें कुछ विस्तारपूर्वक ज्ञात नहीं है।

कम्बोडियाकी तत्कालीन राजधानी अंगकोरके सम्बन्धमें अनेक महत्त्वपूर्ण बातें 'चुवा ता क्वान' नामक एक चीनी विद्वानके लेखसे ज्ञात होती हैं। यह चीनी अंगकोरके राजाके दरबारमें सन् १२९५ में राजदूत था। उसने अंगकोर-दरबारके जीवनका जो वृत्तान्त लिखा है, उससे जान पड़ता है कि अंगकोरके तत्कालीन शासक अवश्य ही हिन्दू रहे होंगे, यद्यपि उसने उन्हें बौद्ध बताया है। उदाहरणके लिए यह चीनी लिखता है कि जब कभी राजा जुलूसके साथ निकलते हैं, तो स्त्रियाँ कोयलेकी आगकी रोशनी लेकर आगे-आगे चलती हैं, हाथी और अश्वारोही शरीर-रक्षक बनकर चलते हैं। साथमें बाजे, नर्तकियाँ और पालकियाँ होती हैं। ये सब बातें भारतके हिन्दू राजाओंसे हूबहू मिलती हैं। चुवा ता क्वानने शायद भारतवर्ष या हिन्दू-धर्मका नाम ही न सुना होगा, क्योंकि उसके वृत्तान्तमें कहीं भी इनका नाम भी नहीं मिलता। चुवा ता क्वान स्वयं बौद्ध था, इसीलिए शायद उसने अंगकोरके राजाको बौद्ध लिख दिया होगा, अथवा उसने अन्य बौद्ध राजाओं तथा अंगकोरके शासकोंमें बहुत थोड़ा अन्तर पाया होगा, इससे उन्हें बौद्ध मान लिया होगा। जो भी हो, अन्य अनेकों प्रमाणोंसे यह प्रत्यक्ष रूपसे सिद्ध हो जाता है कि जिस समय चुवा ता क्वान अंगकोर-दरबारमें गया था, उस समय वहाँके शासक हिन्दू ही थे। केवल इस एक भूलको छोड़कर चुवा ता क्वानका समूचा वृत्तान्त बहुत प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण है।

नवीं शताब्दीके आरम्भसे कम्बोडियाका इतिहास अपेक्षाकृत स्पष्ट है। सन् ८०२ में जयवर्मन द्वितीय नामक एक शक्तिशाली राजाने कम्बोडियामें अपना राज्य स्थापित किया, जिसे वह "खमेर साम्राज्य" के नामसे पुकारता था। कहते हैं कि यह 'खमेर' कम्बोडियाके ही आदि-निवासी थे, यद्यपि उन्होंने बहुत पहले ही—जैसे ही भारतके सांस्कृतिक प्रचारक इस भागमें पहुँचे थे, वैसे ही—हिन्दू-धर्मको ग्रहण कर लिया था। कहा जाता है कि सम्राट जयवर्मन सुमात्रासे कम्बोडिया आये थे। वे अपनेको सूर्यवंशी श्रीविजयका वंशधर कहते थे। जयवर्मनने अंगकोर-राजवंशकी नींव डाली, और अंगकोर थोममें अपनी राजधानी बनाई, जो आजकल अंगकोरका ही एक भाग है। खमेर जाति अपने जीवनमें यदि महत्त्वके शिखर तक पहुँची, तो केवल इसी अंगकोर-राजवंशके शासन-कालमें, यद्यपि उनका शासन केवल पाँच शताब्दी तक ही चला था। इसके बाद उनका पतन हो गया, क्योंकि स्यामके थाई लोगोंने आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया। यह पराजय होते ही अंगकोर नगरमें बसनेवाले अधिवासी नगर छोड़-छोड़कर जंगलोंको भाग गये। कम्बोडियामें यह कथा अब तक प्रचलित है कि ये "भागे हुए लोग" भविष्यमें फिर कभी अंगकोरको वापस आकर अपनी प्राचीन महत्ता और सभ्यताको पुनः जीवित करेंगे। ये सब घटनाएँ पन्द्रहवीं शताब्दीमें घटी थीं। तभीसे अंगकोर एक निर्जन स्थान बन गया। जंगलने चारों ओरसे उगकर इसे घेर रखा है। समूचे स्थानमें बड़े-बड़े पेड़ खड़े हैं। बादकी पाँच शताब्दी तक किसीको इसका पता ही न रहा। अंगकोरके मन्दिर और स्मारक पाँच सौ वर्ष तक बिलकुल निस्तब्ध रहे। उसके बाद सन् १८५० में एक फ्रेंच पादरी रेवरेण्ड बौलेवोने उनके निस्तब्धतापूर्ण अस्तित्वकी शान्ति भंग की। वे घूमते-फिरते जंगलमें यहाँ आ निकले, और उन्होंने एक प्रकारसे इन महान भग्नावशेषोंका पहले-पहल पता लगाया। शीघ्र ही इसकी खबर दूर-दूर तक पहुँच गई। अब तो पुरातत्त्ववेत्ता और खोजी लोग इन भग्नावशेषोंके पीछे छिपे हुए रहस्यका पता लगानेके लिए चल पड़े। रेवरेण्ड बौलेवोकी यात्राके कुछ ही दिन बाद एक दूसरा फ्रेंच मांशियो महौ यहाँ आया, और उसने यहाँके शिलालेखोंको पढ़कर बहुत कुछ उपयोगी कार्य किया।
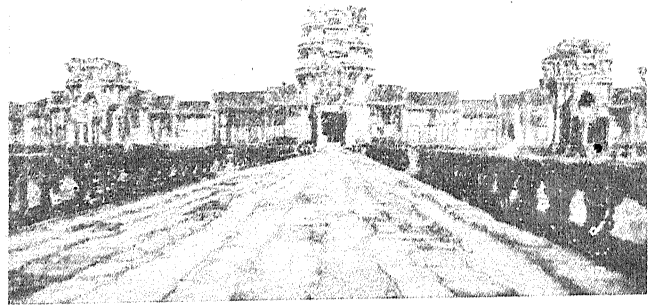
अंगकोरके मन्दिरका पश्चिमी द्वार

अंगकोरपर पुस्तकें प्रकाशित की गईं, और फरासीसियोंमें, जिन्होंने हाल ही में कोचीन-चाइनाको अपना उपनिवेश बनाया था, इसके विषयमें बड़ा कौतूहल बढ़ गया; लेकिन यहाँ मिले हुए शिलालेखोंसे यहाँके बारेमें कुछ अधिक ज्ञात न हो सका, यद्यपि उनसे कई महत्त्वपूर्ण बातें ज़रूर मालूम हुईं। यह तो जब सन् १९०२ में मांशियो पेलोने चुवा ता क्वानकी हस्तलिपिका अनुवाद प्रकाशित किया, तब बहुत सा उपयोगी मसाला प्रकाशमें आया। मैं समझता हूँ कि यदि इस महान चीनीका वृत्तान्त प्रकाशित न हुआ होता, तो हम लोग अंगकोरके भग्नावशेषोंका रहस्य जाननेके लिए अब तक अँधेरेमें भटकते होते।

वाट

अंगकोरमें जो सैकड़ों स्मारक हमें मिलते हैं, उनमें अंगकोर वाट सर्वोत्कृष्ट है। यह यहाँके मन्दिरोंमें सबसे बड़ा है। कहते हैं कि इसका निर्माण
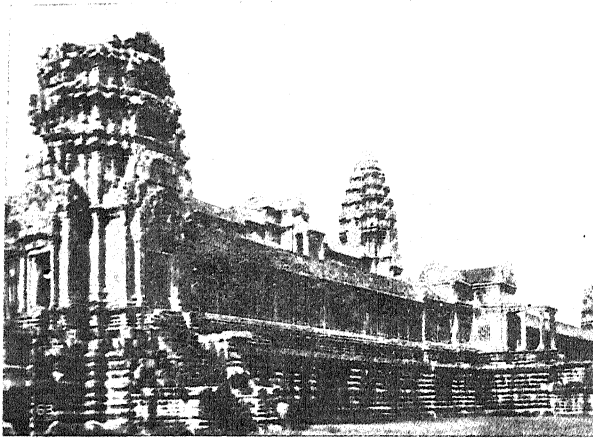
मन्दिरकी दूसरी मंजिलमें जानेका द्वार

सम्राट सूर्यवर्मन द्वितीय (सन् १११२-११६२) के समयमें आरम्भ हुआ था, और उनके पुत्र सम्राट जयवर्मन सप्तमके समयमें समाप्त हुआ था। मन्दिरमें पाये गये शिलालेखोंसे जान पड़ता है कि इसके निर्माणमें जो प्रस्तरखंड काममें लाये गये हैं, वे लगभग चालीस मीलकी दूरीसे लाये गये थे। काम बेगारियों और अंगकोरके राजाओंके युद्धके क़ैदियों द्वारा कराया गया था। अंगकोर वाटका मन्दिर विष्णु भगवानको उत्सर्ग किया गया था। मन्दिरकी छतपर पाँच शानदार विराट शिखर आकाशमें सिर उठाये खड़े हैं। इन शिखरोंके चारों ओर पक्षियोंके झुंड-के-झुंड उड़ते दिखाई पड़ते हैं—विशेषकर चीलों (गरुड़) के, जो यहाँको छोड़कर इस भू-भागमें और कहीं नहीं पाई जातीं। जैसे ही शाम होती है, वैसे ही यह स्थान उड़ते हुए चमगीदड़ोंकी आवाज़से भर जाता है, जिसे सुनकर फौरन ही दक्षिण-भारतके कुछ प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिरोंकी सन्ध्याका दृश्य स्मरण हो आता है।

अंगकोर वाटका मन्दिर एक फर्लांग चौड़ी खाईसे घिरा हुआ है, जिसमें चार प्रवेश-द्वार या तोरण हैं। प्रधान तोरण पश्चिमकी ओर—अर्थात भारतकी दिशामें—है। जैसे ही आप पुल पार करके खाईकी उस ओर पहुँचते हैं, वैसे ही आप विशाल तोरणमें पहुँच जाते हैं। इस तोरणके भीतर खुदाईका बड़ा सुन्दर काम है, और देखनेमें यह स्वयं एक अच्छा ख़ासा मन्दिर-सा जान पड़ता है। इस तोरणको पार करके आप एक बड़े भारी आँगनमें पहुँचते हैं। इस आँगनके बीचोबीचसे एक पक्का पत्थरका मार्ग लगभग तीन फर्लांग लम्बा ठीक मन्दिरके द्वार तक जाता है। इस मार्गपर चलते हुए आपको दोनों ओर दो आयताकार तालाब मिलते हैं। शायद मन्दिर जानेवाले यात्री पहले इन तालाबोंमें स्नान आदि करके पवित्र हो लेते होंगे। जब आप मन्दिरके द्वारपर पहुँचते हैं, तो
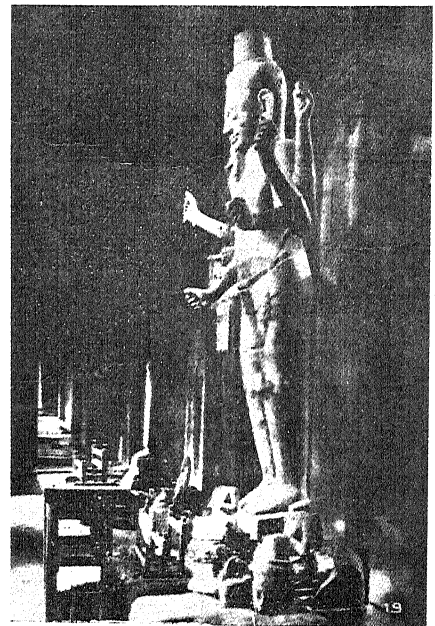
अंगकोरके मन्दिरकी कुछ भग्न प्रतिमाएँ

अंगकोरके मन्दिरके विशाल प्रांगणमें कम्बोडियन नर्तकियाँ

एक वड़े आकारका पत्थरका सप्तमुखी नाग आपका स्वागत करता है।

चार दालानें या गैलरियाँ मन्दिरको चारों ओरसे एकके बाद एक घेरे हुए हैं। पश्चिमके द्वारसे प्रवेश करके मैंने पहले पश्चिमी दालानका दक्षिणी भाग देखना आरम्भ किया। यहाँ मैंने देखा कि पत्थरमें सुन्दरतासे कटी हुई महाभारतकी कथा तथा अन्य अनेक चीज़ें चित्रित की गई हैं—जैसे भीष्मकी मृत्यु, कुरुक्षेत्रका युद्ध, रथपर खड़े हुए श्रीकृष्णका अर्जुनको गीताका उपदेश आदि।

इधरका दालान आदि देखकर मैंने बाईं ओरका दालान देखना आरम्भ किया। यहाँपर दीवारपर पत्थरमें इस मन्दिरके निर्माता सम्राट सूर्यवर्मन द्वितीयका चित्र अंकित है। सम्राट अपने पार्षदोंसे घिरे हुए दरबारमें विराजमान हैं; छत्रधारी, पालकियाँ और नर्तकियाँ भी मौजूद हैं। इसके आगे हिन्दुओंके विश्वासके अनुसार स्वर्ग और नरकके दृश्य दिखलाये गये हैं। चित्रगुप्त महाराज लोगोंके पाप-पुण्योंका विवरण लिखते दीख पड़ते हैं। स्वर्गमें देव और देवियाँ ताल वृक्षोंके नीचे प्रसन्नमुख आनन्दसे विचरण कर रही हैं; परन्तु नरकका दृश्य भयंकर है। कहीं लोग आगमें जलाये जाते हैं, और कहीं हिंस्र जीव उन्हें जीवित निगल रहे हैं। गरुड़ महराज नरकके द्वारपर पहरा दे रहे हैं, जिसमें बन्दी निकलकर भाग न सकें!

अब मैं तीसरे दालानमें पूर्वकी ओर पहुँचा। यहाँ समुद्र-मन्थनका दृश्य दिखाया गया है। एक ओर देवता और दूसरी ओर असुर शेषनाग (वासुकी) को पकड़कर समुद्र-मन्थन कर रहे हैं। बीचमें विष्णु
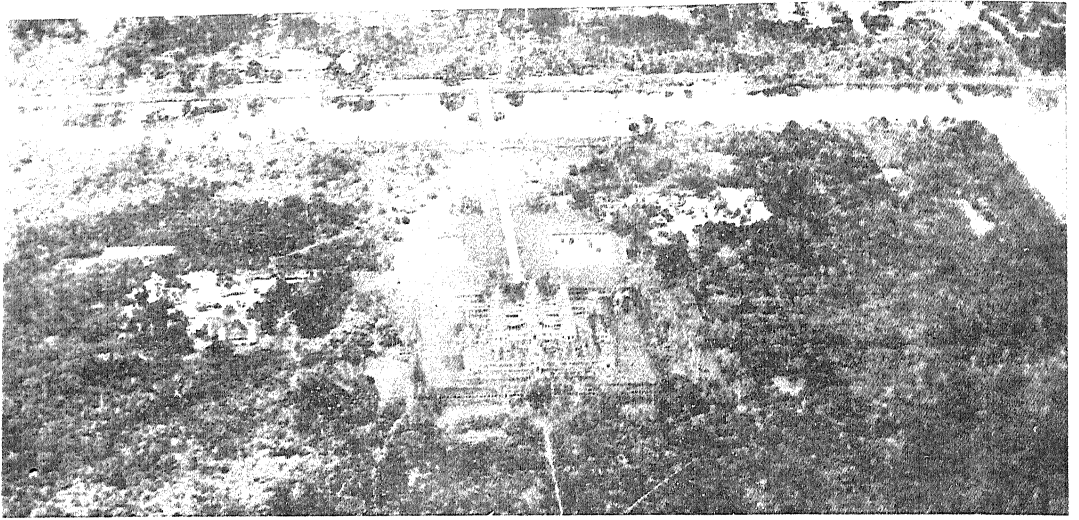
अंगकोरके विस्तृत भग्नावशेष

भगवान मन्थन-क्रियाको परिचालित कर रहे हैं। अन्तमें इस दृश्यमें समुद्र-मन्थनसे प्राप्त चौदह रत्न—कामधेनु आदि—दिखाये गये हैं। इस दालानके छोरपर पहुँचनेके पूर्व ही विष्णु भगवान गरुड़पर आरूढ़ दीख पड़ते हैं, जिसके बाद ही एक युद्धका दृश्य है, जो मुझे ठीकसे स्मरण नहीं आता कि किस कथाका है।

अब मैं उत्तरके दालानमें गया। यहाँ भी गरुड़ारूढ़ विष्णुके दर्शन हुए, साथ ही हरिवंश पुराणके भी कुछ स्पष्ट चित्र मिले। आगे बढ़कर कैलासके शिखरपर शिवजी, पार्वतीजी और शुंड फटकारते हुए गणेशजी नज़र आये। यह दालान मोरपर बैठे हुए कुछ मुकुटधारी देवताओंके चित्रोंसे समाप्त होता है। ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्र और हंसपर बैठे हुए ब्रह्मा भी यहाँ मौजूद हैं।

पश्चिमी दालानके उत्तरी हिस्सेमें मुड़कर जो देखते हैं, तो रामायणकी पूरी कथा पत्थरमें बड़ी कारीगरी और शुद्धतासे खुदी हुई नज़र आती है। भगवान रामचन्द्रजी हनुमानके कन्धेपर बैठे हुए अपने शत्रुओंपर बाण-वर्षा कर रहे हैं; लक्ष्मण उनके पास खड़े हैं; बड़े-बड़े दैत्य मर-मरकर गिर रहे हैं। यहाँकी खुदाईके कामकी चीज़ोंमें ये दृश्य सबसे अधिक सुन्दरतासे दिखाये गये हैं, और इस मन्दिरमें अंकित कथाओंमें यह चित्रावली सबसे लम्बी है। रामायणके ये चित्र दीवारपर ८० फीटकी लम्बाई तक फैले हैं!

अंगकोर वाटको देखना मेहनतका और थका देनेवाला काम है, क्योंकि सिर्फ चार बाहरी दालानोंको देखनेमें ही आपको लगभग पाँच मील चलना पड़ेगा! लेकिन यहाँके दृश्य देखकर इस बातका सन्तोष हो जाता है कि यह परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। चारों दालानोंको देखकर मैं फिर वहीं जा पहुँचा, जहाँसे चला था—यानी पश्चिमके प्रधान द्वारपर। इस द्वारसे प्रवेश करते ही फिर एक प्रांगण मिलता है, जिसमें चार छोटे-छोटे तालाब हैं। यहाँपर फिर कुछ सुन्दर खुदाईका काम और मूर्तियाँ देखनेको मिलती हैं। इनमें से प्रधान मूर्ति वह है, जिसमें शेषनागपर लेटे हुए पद्मनाभ भगवान दिखाये गये हैं। प्रांगणके एक कोनेमें एक छोटासा मन्दिर है। इस मन्दिरकी एक विशेषता यह है कि यदि आप उसमें सिर डालकर ज़ोरसे चीखें, तो उसमें से ऐसी प्रतिध्वनि निकलती है, जिससे आपको

रोमांच हो आवेगा—एक विचित्र प्रकारकी सनसनी बोध होगी ! लोग कहते हैं कि इस मन्दिरके भीतर कोई सुरंगका मार्ग है, जो किसी अज्ञात स्थानको जाता है ।

मन्दिरकी दूसरी मंज़िल किसी क़दर अँधेरी है । कहते हैं कि इस भागमें मन्दिरसे सम्बन्ध रखनेवाले पुजारी और भिक्षु रहा करते थे । इस मंज़िलके एक अन्धकारपूर्ण कोनेमें एक कमरा है । कहते हैं कि यह धार्मिक ग्रन्थोंके भंडारका काम देता था । आगे बढ़नेपर यह विचित्र बात दीख पड़ती है कि इस हिन्दू-मन्दिरमें एक आभूषण पहने हुए सुन्दर मूर्ति विराजमान है, जो गौतम बुद्धकी प्रतिमासे मिलती है ।

सबसे ऊपरकी मंज़िलपर चढ़नेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है, क्योंकि ज़ीनेकी सीढ़ियाँ काफ़ी ऊँची हैं । इस तीसरी मंज़िलपर चढ़कर आप अंगकोरके विभिन्न मन्दिरोंके भग्नावशेषोंका एक साफ़ विहंगम-दृश्य देख सकते हैं । ये भग्नावशेष कई सौ वर्गमीलके घेरेमें छितराये हुए हैं । यहाँका दृश्य अत्यन्त सुन्दर है, सघन हरे वृक्षोंके बीचमें टूटे-फूटे उजाड़ मन्दिर एकके बाद एक आकाशमें अपना शानदार शिखर उठाये हुए नज़र आते हैं ।

इस तीसरी मंज़िलपर चढ़कर आप चार विराट शिखरोंके मध्यमें पहुँच जाते हैं । इनमें से मुख्य शिखर मध्यमें है । कहते हैं कि पहले इसमें चार द्वार थे, परन्तु अब केवल एक ही है । कहते हैं कि जब तक अंगकोर खमेरोंकी राजधानी रहा, तब तक ये शिखर नीचेसे ऊपर तक सोनेसे मढ़े थे । इसमें अब तक बड़ी कारीगरीवाले भारी-भारी लकड़ीके दरवाज़े लगे दीख पड़ते हैं । ये दरवाज़े वैसे ही हैं, जैसे दक्षिण-भारतके मन्दिरोंमें मिलते हैं ।

अंगकोर वाटका पतन

अंगकोर वाटके बीचके शिखरके साथ एक अर्थपूर्ण कथा प्रचलित है । कहते हैं कि इसी शिखरमें अंगकोरके अन्तिम शासकका अन्त हुआ था । थाई अथवा स्यामी लोग खमेरोंकी शक्ति और सम्पदा देखकर बहुत दिनोंसे ईर्ष्या करते थे । उनका मुख्य उद्देश खमेर-साम्राज्यको जीतना न था, वरन उसकी धन-सम्पदा लूटना था । जिस समय स्यामियोंने आक्रमण किया, उस समय खमेर बिलकुल बेख़बर थे । वे युद्धके लिए तैयार न थे । फिर भी उन्होंने अपनी राजधानीकी कई मास तक रक्षा की ; लेकिन अन्तमें उनकी हार हो गई । जिस समय शत्रु राजधानीमें घुसे, उस समय तत्कालीन खमेर सम्राट् इस मन्दिरमें प्रार्थना कर रहे थे, इसलिए उन्हें इसी मन्दिरमें कुछ समय तक रहनेके लिए मजबूर होना पड़ा । अन्तमें उन्होंने देखा कि स्यामियोंको नगरसे निकाल बाहर करनेका कोई भी उपाय नहीं है, फल-स्वरूप उन्हें अवश्य ही आत्म-समर्पण करना पड़ेगा । किन्तु इस प्रकारका अपमान सहन करना अंगकोरके वीर राजाओंके रुधिरमें न था ; इसलिए राजाने इस मन्दिरके प्रधान पुजारीको बुलाया, और उससे कहा कि मन्दिरके समस्त रत्न और बहुमूल्य पदार्थोंको बीचके शिखरमें रखकर शिखरके चारों ओरके दरवाज़े चुनवा दो । स्वयं अपनी इच्छासे राजा भी इस शिखरमें बैठ गये । उन्होंने कहा कि आत्म-समर्पणके अपमानसे इस प्रकार एकान्तमें मर जाना श्रेयस्कर है । इस प्रकार कम्बोडियाके महान हिन्दू-साम्राज्यका अन्त हुआ, और अंगकोरके जाज्वल्यपूर्ण इतिहासका अन्तिम पृष्ठ लिखा गया । आज भी अंगकोर वाटका अद्वितीय मन्दिर मानव-जातिके समस्त युगोंकी महान कृतियोंमें है !

अमेरिकाका कलंक

ब्रजमोहन वर्मा

जाति-विद्वेष, धर्म-विद्वेष और वर्ण-विद्वेष मानव-समाजका सामाजिक कुष्ट है। इन विद्वेषोंने वसुन्धराको कितने बार कितने मनुष्योंके रक्तसे सींचा है, इसकी कोई गिनती नहीं। इन विद्वेषोंने कोमल प्रकृति मनुष्योंसे कितनी अमानुषिकता, कितनी निष्ठुरता, कितना पाप, कितना अत्याचार कराया है, इसका अनुमान करनेसे ही मनुष्य सिहर उठता है।

मध्यकालका रक्तरंजित इतिहास इस बातकी गवाही देता है कि जाति, धर्म और वर्ण-विद्वेषोंने मानवताको किस प्रकार आठ-आठ आँसू रुलाया है। उच्च वर्ण हिन्दुओंने अस्पृश्योंपर ज़ुल्म किये, मुसलमानोंने हिन्दुओंपर गज़ब ढाये, यहूदियोंने ईसाइयोंको सताया, ईसाइयोंने यहूदियोंको मारा, प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक सदियों तक एक दूसरेका ख़ून बहाया किये—इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि इतिहास मुख्यत: इन विद्वेषोंके कराये हुए काले कारनामोंके संग्रह ही का नाम है; लेकिन एक विशेषताकी बात यह है कि यह विद्वेष प्राय: शासक और बलशाली जातियोंमें ही दिखाई देता है।

बीसवीं शताब्दीमें समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्वके जनतन्त्रवादी तराने सुनकर यूरोपियन लोग मध्ययुगको, उसके अत्याचारोंके कारण, 'अन्धकार युग'के नामसे पुकारने लगे। यह समझा जाने लगा कि उन पुराने अत्याचारोंका ज़माना अब लद गया। बीसवीं शताब्दीमें इस तरहकी बातें होना असम्भव है; लेकिन नहीं, इस बीसवीं शताब्दीमें और भगवान यीसूके १९३३ वें वर्षमें भी संसारकी शासक जातियोंमें जाति, धर्म और रंगका विद्वेष मौजूद है, और उग्र रूपमें मौजूद है। अख़बार पढ़नेवाले जर्मनीमें हिटलरशाहीके यहूदी-विद्वेषसे परिचित होंगे। दक्षिण-अफ्रिका तथा संयुक्तराज्य अमेरिकाकी कुछ रियासतोंमें काले रंगवालोंके प्रति वहाँके 'गोरे नेटिवों'का विद्वेष इतना बढ़ा हुआ है कि काला ईसाई गोरोंके गिरजेमें जाकर प्रार्थना भी नहीं कर सकता। अगर ईसा मसीह स्वयं आकर दक्षिण-अफ्रिकाके किसी गोरे गिरजेमें घुसना चाहें, तो ईसाई-मतके गोरे ठेकेदार उन्हें धक्का मारकर निकाल देंगे, क्योंकि एशियाई होनेके कारण उनकी गणना भी 'डैम निग्गर' में ही होगी!

परन्तु वर्ण-विद्वेषका विष जितना अधिक अमेरिकामें फैला है, उतना और कहीं नहीं मिलेगा। कालोंके प्रति अमेरिकनोंकी घृणा अमेरिकन जातिका सबसे बड़ा कलंक है। इस वर्ण-विद्वेषसे प्रेरित होकर अमेरिकन जैसी अमानुषिकता और क्रूरता दिखलाते हैं, उसके सामने चंगेज़ और हलाकू भी पानी भरते हैं! उनकी इस क्रूरताका एक प्रचलित नमूना नीचेकी सच्ची घटनासे मिलेगा।

अबसे चालीस वर्ष पहले यंग डेन्डी नामक एक नौजवान अमेरिकन हब्शीने अपनी ही जातिकी मार्था डकेट नामक एक नवयुवतीसे विवाह किया था। डेन्डी लम्बा-चौड़ा जवान था, और मार्था दुबली-पतलीसी नवयुवती। उन्होंने एक नन्हीं-सी कोठरी भाड़ेपर लेकर अपना गृहस्थ-जीवन आरम्भ किया। उस समय उनकी सारी जमा-पूँजी उनके स्वस्थ शरीर, परिश्रमी स्वभाव, खुशदिली और उत्साहमें ही थी। आज वे अपने बनवाये हुए विशाल भवनमें रहते हैं; परन्तु अमेरिकाके गोरोंने अपनी काली करतूतसे उनका उत्साह और प्रसन्नता सदाके लिए नष्ट कर दी है।

जीवनके आरम्भमें उनके भविष्यपर किसी प्रकारकी आशंकाकी छाया न थी। यंग डेन्डी बढ़ई था। वह होशियार, मेहनती और विश्वनीय था, इसलिए बराबर उसकी माँग रहती थी। वह कभी ख़ाली रहता ही न था। उसकी स्त्री धुलाईका

काम करती, अपनी कोठरीको साफ़-सुथरा चमाचम रखती और अपने बच्चोंको पालती-पोसती थी। दोनों मेहनत करके कमाते, किफ़ायतसे ख़र्च करते और अपनी बचतको फ़ायदेके कामोंमें लगाते थे। कुछ दिन बाद वे एक दो कोठरीवाले घरमें रहने लगे, और जब उनका परिवार और भी बढ़ा, तो उन्होंने अपने लिए एक चार कमरेकी साफ़-सुथरी झोपड़ी बना ली।

जब बच्चे कुछ बड़े हुए, तो उन्होंने उन्हें स्कूल भेजना शुरू किया, और इस बातका बराबर ध्यान रखा कि वे दर्जेमें सदा प्रथम आते रहें। डेन्डी-परिवारके बच्चेका दर्जेमें दूसरा स्थान पाना अनहोनी बात थी; लेकिन केवल स्कूल ही काफ़ी न था। स्कूलकी लम्बी छुट्टियोंमें भी तो लड़कोंके लिए कोई काम ज़रूरी था, इसलिए उन्होंने ज़मीनका एक छोटा टुकड़ा ख़रीदा, जिसपर कपास बोई गई, ताकि लड़के परिश्रमका सबक़ सीख सकें। यहाँ तक कि छोटी बच्ची मैटी भी यह जानती थी कि कपास किस प्रकार चुनना चाहिए, और अपने हिस्सेकी पूरी कपास चुना करती थी।

जब उनके बड़े लड़केने स्कूलकी पढ़ाई समाप्त की, तब मि० डेन्डी ठेकेदारी करने लगे थे। वे क्लिन्टन नगरमें स्वयं अपने बनाये हुए नक्शोंसे गोरोंके लिए इमारतें बनाया करते थे। उनकी ईमानदारीका नमूना पेश किया जाता था। इधर मार्था भी पीछे न थी। अब वह अच्छे-से-अच्छे धोबियोंको नौकर रखकर अपने धोबीख़ानेका काम चलाती थी।

लेकिन क्लिन्टन संयुक्त-राज्य अमेरिकाके दक्षिणी भागमें है, जहाँके गोरोंमें रंग-विद्वेषका विष पूर्ण मात्रामें है। इस स्वतन्त्र प्रजातन्त्रके गोरे कहते हैं—"हम लोग हब्शियोंके सबसे बड़े मित्र हैं। निश्चय ही हब्शी हमारे नौकर-चाकर हैं, और उन्हें अपने स्थानपर ही रहना पड़ेगा।"

डेन्डी-परिवार जैसे-जैसे सम्पत्तिशाली होता गया, वैसे-वैसे गोरोंकी निगाह उसपर अधिकाधिक पड़ती गई; लेकिन डेन्डी और उनके परिवारवाले सदा इस बातको देखते रहते थे कि गोरोंको ठेस लगनेका कोई मौक़ा न आने पावे। बस, केवल उन्होंने एक बातमें गोरोंकी इच्छाका उल्लंघन ज़रूर किया था, वह यह थी कि उन्होंने अपने बच्चोंको ख़ूब शिक्षा दी थी। उनका बड़ा लड़का स्कूल तक ही नहीं पढ़ा, बल्कि उसने कालेजमें प्रवेश किया और डाक्टरी पास की। जब वह डाक्टर बनकर अमेरिकाके एक उत्तरी नगरमें सफलतासे प्रैक्टिस करने लगा, तब उनके गोरे पड़ोसी भी अनिच्छापूर्वक अपने कस्बेके इस अधिवासीकी सफलताका अभिमान करने लगे। डेन्डीके दूसरे पुत्र राबर्टने न्यूयार्क जाकर काम शुरू किया। उसकी सफलताकी अफ़वाहें भी क्लिन्टनके गोरोंमें पहुँची, और जब वह एक बार अपने घर आया और उसने कस्बेके दूकानदारोंसे बहुतसा सामान ख़रीदा, तब उन अफ़वाहोंकी और भी पुष्टि हो गई।

डेन्डीकी लड़की वायला भी कस्बेके गोरोंमें बड़ी लोकप्रिय थी। उसने हब्शियोंके स्कूलमें गृह-विज्ञानका क्लास खोला और एक धनी बैंकरको राज़ी कर उस क्लासके संचालनके लिए पैसेका प्रबन्ध भी कर लिया।

इसी प्रकार डेन्डीकी अन्य तीन सन्तान हाई-स्कूलमें अध्यापक हैं। एक लड़का गत महायुद्धमें पंगु हो गया था, जो आजकल फ़ौजी अस्पतालमें है। रह गया सबसे छोटा लड़का नारिस।

नारिसने अपनी माताका उत्साह तो प्राप्त किया था, परन्तु उसकी दूरदर्शिता नहीं पाई थी। उसे अपने पिताकी बुद्धि तो मिली थी, परन्तु सावधानी नहीं। वह बड़ा होशियार था, और हर बातमें गोरे लड़कोंसे भी बढ़ा हुआ था। गोरे लड़के अनिच्छासे उसकी योग्यताको स्वीकार करते थे, लेकिन भीतर ही भीतर द्वेषसे जलकर सुलगते रहते थे।

वे देखते थे कि यह काला लड़का स्कूल जाता है, जब कि उनमें से अनेकोंने अपनी इच्छासे या पढ़ाईसे ऊबकर पढ़ना छोड़ दिया था। जब कि गोरे लड़के घरपर ही बने रहते थे, तब यह काला लड़का कालेजमें

पढ़ता था। उसने वर्जीनिया यूनियन यूनिवर्सिटीकी पढ़ाई भी समाप्त कर डाली और घर लौट आया।

सन् १९२४ में मिस्टर और मिसेज़ डेन्डीने यह निश्चय किया कि एक बड़ा आरामदे मकान बनाया जाय, जिसमें सब वयस्क लड़के एकत्रित होनेपर रह सकें। उन्होंने हब्शियोंकी अँधेरी गलियोंमें नहीं, वरन क़स्बेकी बाहरी तरफ़, खुली चौड़ी सड़कपर, जहाँ उन्नतिके साधन प्राप्त थे, ज़मीनका एक टुकड़ा ख़रीदा। उस स्थानसे एक ही दो मकानोंके बाद गोरोंके मकान थे। डेन्डीने यह ज़मीन किसी झूठे अभिमानसे पसन्द नहीं की थी, बल्कि सफ़ाई, हवा और रोशनीके कारण ख़रीदी थी। जब मकानकी दीवारें खड़ी हो गईं और उसका आकार प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा, तब तो वह सारे क़स्बेके गोरोंमें बातचीतका मुख्य विषय ही बन गया। कुछ भले आदमियोंने उसे पसन्द किया, लेकिन नीच श्रेणीके गोरोंमें ईर्ष्याकी ज्वाला भभक उठी। एक काला आदमी अपना निजका मकान बनावे, सो भी दोमंज़िला और अनेक गोरोंके मकानोंसे अच्छा! उसका इतना दुस्साहस!

एक दिन डेन्डीको एक गुमनाम चिट्ठी मिली, जिसके ऊपर एक खोपड़ी बनी थी, जिसमें लिखा था:—

skull

you look good to us

if you build a house down there
this is what you get
you better build your house
up where the rest of the
dam niggars live
you getting too dam
rich to be a niggar
that dam manish boy
of yours will die soon
we are only giving
you a warning
we want to see a
niggar stay in his place.

अर्थात्—"तुम हमें भले मालूम होते हो। यदि तुम वहाँ मकान बनाओगे, तो तुम्हें यह मिलेगा। बेहतर है कि तुम उसी जगह अपना मकान बनाओ, जहाँ कमबख़्त हब्शी रहते हैं। तुम कमबख़्त हब्शीकी हैसियतसे बहुत ज्यादा मालदार हुए जाते हो। तुम्हारा कमबख़्त मर्द-सा लड़का शीघ्र ही मरेगा।

"हम तुम्हें केवल सावधान करते हैं।

"हम चाहते हैं कि हब्शी अपनी ही जगहमें बने रहें।"

मर्द-से लड़केसे मतलब नारिससे था।

मिस्टर डेन्डी चुपचाप अपना घर बनवाते रहे; मगर अब वे सावधान रहते थे। धीरे-धीरे जनमत भी उनके पक्षमें जान पड़ने लगा और कोई घटना नहीं घटी। लेकिन उसी समयसे नारिस उत्पीड़नकी वस्तु बन गया। क़स्बेका प्रबन्ध चोरीसे शराब बेचनेवाले राजनीतिज्ञोंके हाथमें आया, और उन्होंने नारिसको फँसानेकी कोशिश शुरू कर दी। इस स्वावलम्बी, साफ़-सुथरे कपड़ेवाले, सुशिक्षित लड़केकी उपस्थिति ही अशिक्षित गोरोंको काटती थी। दो बार उसपर चोरीका माल रखनेके जुर्मपर झूठा मुक़दमा चलाया गया, और स्थानीय अदालतने बिना सबूतके ही उसे सज़ा दे दी; लेकिन अपीलमें वह बेदाग़ छूट गया। उसके मुक़दमेमें ज़िलेके सबसे अच्छे वकील नियुक्त किये गये थे। एक काला हब्शी ज़िलेके सबसे अच्छे वकीलको नियुक्त करके गोरेकी अदालतमें मुक़दमा जीत जाय, यह स्थिति गोरोंके लिए असह्य हो गई। वे झींककर कहते—"यह ज़रूरतसे ज्यादा होशियार हो गया है। इसके बापके पास इतना धन हो गया है, जितना हब्शीके पास न होना चाहिए।" उन्होंने उसे अन्य जुर्मोंमें पकड़ा, परन्तु वह हमेशा अपीलमें छूटता रहा, और उसके हर बार छूटनेसे गोरोंका क्रोध और अधिक बढ़ता गया।

४ जुलाई सन् १९३३ को क्लिन्टनके हब्शियोंने मेरे झीलपर एक पिकनिक दल संगठित किया। एक

लारी भरकर आदमियोंको नारिस ड्राइव करके ले गया और दूसरी लारीको मार्विन लोलिस नामक एक गोरा। तीसरे पहर वहाँपर इस बातकी बहस छिड़ गई कि नारिस और उस गोरेमें किसने लारी अच्छी चलाई थी। यह मामूली-सी बहस शीघ्र ही गरमागरम हो उठी। परिणाम यह हुआ कि गोरा वाही-तवाही बकने लगा, जिसके उत्तरमें नारिसने उसके मुँहपर दो हाथ जड़ दिये।

आगेकी कहानी बहुत संक्षिप्त है। गोरोंको इतने दिनोंसे जिसका इन्तज़ार था, वह बहाना मिल गया। नगरको लौटते हुए रास्तेमें पुलिसने नारिसको गिरफ्तार कर लिया और ले जाकर थानेकी हाजतमें बन्द कर दिया। उसकी नवयुवती पत्नी और माता उससे मिलनेके लिए आईं, पर उसे ज़मानतपर छुड़ा न सकीं। अब थानेके पास भीड़ जुड़नी शुरू हुई। नौ बजते-बजते समूचा थाना भर गया। बाहर मोटरोंकी क़तारें लग गईं। इतनेमें रस्सा लेकर एक मनुष्य आया। यही संकेत था। इस संकेतके मिलते ही किसीने हाजतका ताला खोल दिया और अब संघर्ष शुरू हुआ। नारिस शक्तिशाली जवान था और बुज़दिल भी न था; लेकिन अन्तमें उसे बेक़ाबू करके उसकी मुश्कें कस दी गईं। उसकी माँ छोटे बच्चेको गोदमें लिए बाहर खड़ी चिरौरी-बिनती कर रही थी; लेकिन उसकी चिरौरी-विनती व्यर्थ गई, और नारिसको मोटरमें पटककर वे लोग चलते बने। उसकी माँको भी किसीने मारकर गिरा दिया। उसके बाद उसे सिर्फ़ इतना ही स्मरण है कि मोटरोंकी क़तार उस नारिसवाली मोटरके पीछे जा रही थी।

दूसरे दिन "सरकारी तौरपर" नारिसकी लाश क़स्बेसे कुछ मीलपर पाई गई। पहले उसका गला घोंटकर उसे अधमरा किया गया था, बादमें पीट-पीटकर उसकी जान निकाली गई थी!

इस प्रकार गोरा अमेरिका वर्ण-विद्वेषके वशीभूत प्रतिवर्ष अनेक निरपराध हब्शियोंकी हत्या किया करता है। अधिकांशको वह ज़िन्दा जला-जलाकर मारा करता है। गोरी महिलाएँ भी, जो ज़रा-ज़रासी बातपर बेहोश हो जानेके नख़रे किया करती हैं, इस अमानुषिक कृत्यमें शामिल होती हैं, और उसमें राक्षसी उल्लास और प्रसन्नता प्रकट करती हैं। अमेरिकाकी सरकार गोरोंके हाथमें है। गोरे अधिकारी इन राक्षसी कृत्योंके करनेवालोंको बिना दंड दिये ही छोड़ देते हैं, बल्कि वे अप्रत्यक्षरूपसे इन बदमाशोंको उकसाते और सहायता पहुँचाते हैं।

एक सौ सत्तावन वर्षके बाद अमेरिकाके मौजूदा प्रेसिडेन्टने पहले-पहल प्रेसिडेन्टके पदसे यह फ़रमाया है कि 'इस प्रकारके कृत्य सामूहिक हत्याके सबसे कुत्सित रूप हैं।' लेकिन उनकी यह ज़बानी भर्त्सना गोरे दानवोंके नक्कारख़ानेमें तूतीकी आवाज़ ही जान पड़ती है।*

* इस लेखमें वर्णित घटना 'Crisis' नामक पत्रिकासे ली गई है।

साम्यवादी देशमें दूसरा दिन

श्री नित्यनारायण बनर्जी

लेनिनग्रेडमें पहुँचनेके दूसरे दिन सुबह नौ बजे मेरी आँख खुली। होटलके एक केन्द्रीय स्थानमें भाप बनाकर होटलके तमाम कमरोंमें गर्मी पहुँचाई जाती थी। इसीकी बदौलत मुझे रातमें अच्छी तरह नींद आई। यूरोपमें गर्मी पहुँचानेका यह वैज्ञानिक तरीका बहुत आरामदे है, और 'सेन्ट्रल स्टीम हीटिंग' या 'सेन्ट्रल हीटिंग' (केन्द्रीय उष्णता प्रचार) कहलाता है, लेकिन यह तरीक़ा सभी जगह नहीं मिलता। मुझे याद है कि हैम्बर्गमें मैं एक होटलमें टिका था, जहाँ गरमी पहुँचानेका यह तरीक़ा नहीं था। फल यह हुआ कि सम्बूरी रज़ाई लपेटे रहनेपर भी ऐसा जान पड़ता था कि सिरके भीतर दिमाग़ जमकर मलाईकी बर्फ़ बन गया है। समूचा कमरा बर्फ़खाना और अपना शरीर बर्फ़में रखे हुए गोश्तका एक लोथड़ा-सा जान पड़ता था। इंग्लैण्डमें होटलों और विश्राम-शालाओंमें भी मुझे यही अनुभव हुआ। एक तो इंग्लैण्डवाले ऐसे लकीरके फ़कीर हैं कि वे अपनी पुरानी गैसकी आगको छोड़ना पसन्द नहीं करते; दूसरे उनकी इमारतें इतनी छोटी हैं कि उनमें सेन्ट्रल हीटिंग प्रणाली द्वारा गर्मी पहुँचाना नहीं पुसा सकता; लेकिन इस होटलमें गर्मी पहुँचानेकी व्यवस्था बड़ी सुन्दर थी। गुस्लखानेमें ठंडे और गर्म पानीके नल मौजूद थे।

नाश्ता करने गया, लेकिन वह बहुत बेस्वाद था। मैं केवल चाय और कत्थई रोटीका एक टुकड़ा ही खा सका।

"गुड मार्निंग, नींद तो अच्छी आई ?"—भोजनके कमरेमें नाश्ता करते समय मेरी पथ-प्रदर्शिकाने मुस्कराते चेहरेसे पूछा।

"क्या आप तैयार नहीं हैं ? आप भी क्या आलसी जीव हैं।"—पुनः उसने कहा।

मैंने चायका अन्तिम घूँट पीकर उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं तैयार हूँ। मैं तो आपका इन्तज़ार ही कर रहा था।"

"आइये, हमें आज और ज्यादा समय बरबाद न करना चाहिए।"

"एक मिनटके लिए माफ़ कीजिए। मैं अपने कमरेसे ओवरकोट लेता आऊँ।"—मैंने कहा।

लिफ्टपर चढ़कर मैं ऊपर कमरेमें पहुँचा। बाहर बरामदेमें कुछ बच्चे खेल रहे थे। वे इतने सुन्दर और भले दीख पड़ते थे कि मैं कुछ क्षणके लिए अपनेको उनके समीप ठहरनेसे रोक न सका। उनमें से लगभग सात वर्षकी एक लड़कीने साफ शुद्ध अंगरेज़ीमें मुझसे पूछा—"आप अंगरेज़ी बोलते हैं ?"

मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने सोचा कि मुझे इन सुन्दर बच्चोंसे बातचीतका कुछ मौक़ा मिल जायगा। इसलिए मैंने फ़ौरन उससे पूछा—"तुम रूसी हो ? तुम इतनी अच्छी अंगरेज़ी कैसे बोलती हो ?"

लड़कीने उत्तर दिया—"नहीं, मैं अमेरिकन हूँ। मेरे पिता यहाँपर इंजीनियर हैं।"

"तुम यहाँ कितने दिनोंसे हो ?"

"दस महीनेसे। लेकिन हम लोग यहाँ ज्यादा दिन नहीं रहेंगे। रूसी बड़े ख़राब आदमी हैं।"

मुझे यह जाननेकी बड़ी उत्सुकता हुई कि यह छोटी लड़की रूसियोंसे इतनी नाराज़ क्यों है। वह फिर बोली—"मेरे पिताका दो वर्षका कन्ट्रैक्ट है। लेकिन ये लोग हम लोगोंके साथ बड़ा ख़राब व्यवहार कर रहे हैं। आप जानते हैं कि ये लोग ऐसे ख़राब हैं कि जब तक इन्हें हम लोगोंकी ज़रूरत होती है, ये लोग हमारी पूजा करते हैं; लेकिन जब ये स्वयं कामको समझने लगते हैं, तभी ये हम लोगोंको ठुकराने

लगते हैं ; मगर चूँकि हम लोगोंके साथ कन्ट्रैक्ट हो चुका है, इसलिए ये सीधे तौरसे तो वैसा कर नहीं सकते, इसीलिए ये हमारे साथ ख़राब व्यवहार करते हैं।"

यह स्पष्ट रूपसे ज़ाहिर होता था कि अन्य दोनों लड़कियाँ उस लड़कीकी बातको ख़ाक-पत्थर भी नहीं समझ रही थीं। मैंने उनसे पूछा—"तुम अंगरेज़ी नहीं बोल सकतीं ?" वे हँस पड़ीं, और उन्होंने कुछ कहा, जिसे मैं ख़ाक-पत्थर न समझ सका।

अमेरिकन लड़की बोली—"ये अंगरेज़ी नहीं बोल सकतीं। ये रूसी हैं ; लेकिन मैं रूसी, जर्मन और फ्रेंच भी बोल सकती हूँ।" मैंने उसकी परीक्षा लेनेकी गरज़से जर्मन-भाषामें पूछा—"तुमने इतनी भाषाएँ कैसे सीख लीं ?"

वह धाराप्रवाह जर्मनमें मेशीनकी तरह लगी बोलने—"मैं दो वर्ष तक जर्मनीमें रही हूँ। मेरे पिता वहाँ काम करते थे। एक साल तक फ्रांसमें रही हूँ, मेरे पिता वहाँ भी काम करते थे।"

अब मुझे होश आया कि मेरी पथप्रदर्शिका नीचे मुफ्तमें इन्तजार करती होगी। लड़कियोंने प्रणामके ढंगपर घुटने झुकाकर सिर हिलाया। अमेरिकन लड़की बोली—"शामको आप हमारे गानेमें आयेंगे ?" मैंने समय मिलनेपर आनेका वादा किया।

पथप्रदर्शिकाने कहा कि यदि मैं टैक्सी किराये कर लूँ, तो शहर घूमनेमें सुविधा होगी, क्योंकि तब दिन-भरमें ज्यादा चीज़ें देखी जा सकेंगी। मैं इस प्रस्तावपर राज़ी हो गया। इसलिए हमें यात्रा-विभागके दफ्तरको टैक्सी ठीक करनेके लिए जाना पड़ा। दफ्तर बहुत दूर न था, ठंड भी पिछले दिनकी तरह भयंकर नहीं थी, इसीलिए हम लोग पैदल ही चल दिये।

यूरोपके अन्य देशोंमें कलापूर्ण ढंगसे सजी हुई जैसी दूकानें दीख पड़ती हैं, मुझे यहाँ वैसी एक भी दूकान नज़र न आई। मोटर-बसें भी बहुत थोड़ी थीं ; लेकिन रूसियोंको आशा है कि जब उनके निजी मोटरके कारख़ाने चलने लगेंगे, तब उनके यहाँ मोटर-बसोंकी कमी न रह जायगी।

संसारके बाज़ारमें आजकल रूसकी कोई साख नहीं है, इसलिए उसे हर चीज़ सोना देकर या अपनी लकड़ी और अन्न बेचकर ख़रीदनी पड़ती है। दस-पाँच घोड़ागाड़ियाँ ज़रूर दिखलाई दीं, लेकिन वे अधिकतर बोझा ढोनेके काम आती हैं। कुछमें रबरके हवा भरनेवाले पहिये हैं। ये अब तक व्यक्तियोंकी प्राइवेट सम्पत्ति हैं। अब रूसने प्राइवेट व्यापार करनेकी आज्ञा दे दी है, बशर्ते कि उससे किसीका दोहन या शोषण न हो। क़ानूनमें अनुसार कुछ विशेष हालतोंको छोड़कर कोई व्यापारी किसीको अपने यहाँ नौकर या मज़दूर नहीं रख सकता। यहाँ तक कि किसानोंको भी बीमारी या ऐसी ही कोई बातको छोड़कर मज़दूरोंसे काम लेनेकी आज्ञा नहीं है। अब क्रान्तिकारियोंने प्राइवेट रोज़गारोंके विषयमें अपने क़ानून बदल दिये हैं, लेकिन उनके उद्देशमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अब क़ानूनके अनुसार रूसमें सब तरहके प्राइवेट काम-काज हो सकते हैं। लेकिन सरकारकी उपेक्षा, भारी-भारी टैक्स और सुपरटैक्सकी मारसे यह प्रायः असम्भव है कि कोई भी प्राइवेट रोज़गार बड़े पैमानेपर चलाया जा सके। कुम्हार अपने बर्तन बनाकर उन्हें खुले बाज़ार बेच सकता है। इसी प्रकार जुलाहे, बढ़ई, लुहार तथा अन्य रोज़गारी और कारीगर अपना-अपना प्राइवेट रोज़गार कर सकते हैं, और अपने मालको सरेआम बेच सकते हैं, बशर्ते कि वे किसीको नौकर या मज़दूर न रखें, अर्थात् वे किसी अन्य व्यक्तिके परिश्रमका दोहन न कर सकें। लेकिन प्राइवेट रोज़गारियोंका वोट देनेका अधिकार छीन लिया जाता है, उनपर भारी-भारी टैक्स लादे जाते हैं, और वे सन्देहकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। प्राइवेट रोज़गारीका मुक़दमा होनेपर जायदादकी ज़ब्तीकी सज़ा रूसी अदालतोंमें बहुत प्रचलित है।

स्कूल, क्लब, अस्पताल, फ़ौज आदिमें प्राइवेट

रोज़गारियोंके लड़कोंको सबसे अन्तमें मौक़ा दिया जाता है, और उन्हें शिक्षा, भोजन, कपड़े और मकान आदिके लिए साधारण मज़दूरोंसे बहुत ज्यादा देना पड़ता है। सरकार हर तरफ़से प्राइवेट रोज़गारीसे जितना अधिक सम्भव हो सकता है, उतना वसूलती है। वह प्राइवेट रोज़गारको अपना सबसे बड़ा शत्रु समझती है, अतः उसका उद्देश यह है कि प्राइवेट रोज़गारको घातक चोट पहुँचाई जाय। लेनिनग्रेडमें कोई भी प्राइवेट दूकान, प्राइवेट मकान, या प्राइवेट टैक्सी नहीं है। कोई भी व्यक्ति किसी अचल सम्पत्तिका मालिक नहीं हो सकता। हर चीज़की मालिक सरकार है। अगर कोई व्यक्ति सरकारका क्रोधभाजन हो जाय, तो उसे भूखों मरनेकी नौबत आ जायगी, क्योंकि कोई उसे नौकर तो रख ही न सकेगा, न कोई उसे कोई काम ही दे सकता है। अगर उसके पास कुछ पैसा भी हुआ, तो वह शीघ्र ही ख़त्म हो जायगा, क्योंकि जो शख़्स मज़दूर नहीं है, उसे हर चीज़की क़ीमत बहुत ज्यादा देनी पड़ेगी। इस देशमें अगर कोई बनियेका काम करे, यानी देहातोंसे अथवा कारीगरोंसे चीज़ ख़रीदे और उसे शहरोंमें ले जाकर, उसपर अपना मुनाफ़ा रखकर बेचे, तो वह पकड़ा जाता है, और उसे कड़ी सज़ा दी जाती है।

रास्तेमें फुटपाथपर मैंने एक छोकड़ेको भीख माँगते देखा। मैंने पथप्रदर्शिकासे मज़ाकसे पूछा—"क्या यह सच है कि आपके देशमें न तो बेकार हैं, और न भिखमंगे ?"

"जी हाँ, क्या आपको इस कथनमें सन्देह है ?"

मैंने उस छोकड़ेकी तरफ़ इशारा करके कहा—"यह छोकड़ा ही आपके कथनका खंडन कर रहा है।"

"अह ! ये छोकड़े बड़े पाजी हैं। पुलिस इन्हें अकसर पकड़कर शिशुशालाओंमें ले जाती है ; लेकिन ये स्वभावसे ही भिखमंगे हैं, ये फिर भाग आते हैं और भीख माँगने लगते हैं। इनके ख़ूनमें ही निकम्मापन है, ये काम करनेके बजाय भीख माँगना ज्यादा पसन्द करते हैं ; लेकिन सौभाग्यसे ये बहुत थोड़े ही हैं।"

मैंने कहा—"निश्चय ही इनके साथ प्रेमपूर्ण और अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता होगा। यदि इनके साथ शिशुशालामें अच्छा और प्रेमपूर्ण बर्ताव हो, तो ये इस भयंकर सर्दीमें भीख क्यों माँगे ?"

"आप देखते हैं कि इनके रुधिरमें ही निकम्मापन है, इसीसे ये शिशुशालाका काम और वहाँके नियम पसन्द नहीं करते।"

"अच्छा, आपके देशके लोग आम तौरसे इतने ग़रीब क्यों हैं ? हर शख़्सके पास काफ़ी कपड़े नहीं दीख पड़ते, शायद खाना भी काफ़ी न मिलता होगा। ऐसी दशामें इस क्रान्ति और इतनी अधिक ख़ून-ख़राबीसे लाभ क्या हुआ ?"—मैंने पूछा।

उसने उत्तर दिया—"यह सच है कि हमारे पास सारे देशको पहनानेके लिए काफ़ी कपड़ा नहीं है, और समूचे राष्ट्रके लिए काफ़ी भोजन तक नहीं है ; लेकिन क्रान्तिके पहले जहाँ समूचे राष्ट्रको प्रतिदिन एक बार पूरा भोजन भी नहीं नसीब होता था, वहाँ धनी श्रेणीके लोग सोनेके प्यालोंमें भोजन करके उन्हें फेंक देते थे ! आजकल यद्यपि हमें अच्छा भोजन नहीं मिलता, फिर भी हममें से प्रत्येकको अपनी क्षुधा शान्त करने-भरको रूखा-सूखा मिल जाता है। हमारे दूसरे पंचवर्षीय कार्यक्रममें हल्के व्यवसाय ही बहुत होंगे, यानी भोजन, वस्त्र आदिका उत्पादन। इससे हमारे जीवन-यापनका स्टैन्डर्ड ऊँचा हो जायगा।"

हम लोग यात्रा-विभागके दफ़्तरमें जा पहुँचे। घूमनेवाला काँचका दरवाज़ा हटाकर भीतर दाख़िल हुए। देखा कि यहाँपर तो स्त्री-राज्य है। केवल स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ नज़र आती हैं। मुझे वहाँ एक भी मर्द क्लार्क न दिखाई पड़ा। मैंने पथ-प्रदर्शिकासे पूछा—"आप लोगोंने दफ़्तरोंसे मर्दोंको मारकर निकाल बाहर कर दिया है ?"

वह बोली—'हाँ, वे लोग भारी काम करते हैं। कल-कारख़ानोंने तमाम मर्दोंको काममें लगा लिया है,

इसलिए ये हल्के काम हम लोग ही करती हैं।"

"अच्छा, तो अब आप लोग उच्च श्रेणीकी 'बोर्ज़ुआ' हैं, और आपके मर्द निम्न-श्रेणीके जनसाधारण।"—यह कहकर मैं मुस्कराया।

"मगर हम औरतें भारी कामोंसे डरती थोड़े ही हैं। यहाँ औरतें ट्रैक्टर और रेलके इंजन चलाती हैं, सिपाहीका काम करती हैं, यहाँ तक कि वे राजदूतका भी काम करती हैं। अपनी शारीरिक असमर्थतासे हम लोग कुछ विशेष कामोंको नहीं करतीं, लेकिन हम किसी भी कामसे नहीं डरतीं।"—उसने प्रतिवाद करते हुए कहा।

यह सच भी है। मैंने देखा कि ट्रामोंकी ड्राइवर और कंडक्टर भी स्त्रियाँ ही हैं; लेकिन रूसी ट्राम भी क्या भयंकर चीज़ है। ट्रामका एक-एक इंच ठसाठस भरा रहता है। पाँच-सात यात्री बराबर फ़ुटबोर्डपर लोहेका डंडा थामे लटके रहते हैं। ठहरनेके स्थानोंपर वह केवल क्षणभरके लिए ही ठहरती है, और इस बातकी परवा नहीं करती कि मुसाफ़िर चढ़-उतर लिये या नहीं। ट्राममें चढ़नेके लिए आदमियोंके बीचसे किसी प्रकार रास्ता निकालना पड़ता है, लेकिन यह ज़रूरी है कि पहले फ़ुटबोर्डपर एक पैर रखने और डंडेको एक हाथसे थामने-भरकी जगह निकाल ली जाय। फिर धीरे-धीरे धक्का देकर और धक्का खाकर ट्रामके भीतर पहुँचा जा सकता है। भीतर बैठनेके लिए सीटोंकी तो क़तारें होती हैं, जिनकी चौड़ाई एक आदमीके बैठने-भरकी होती है। खड़े होने-भरके मतलबसे ट्रामें बनाई गई जान पड़ती हैं। खिड़कियोंके शीशोंपर कठोर बर्फ़ जमी रहती है, जिसके बीचमें यात्री उँगलियोंसे कुरेद-कुरेदकर एक छोटा छेद बना लेते हैं, ताकि बाहर गन्तव्य स्थानोंको देख सकें। भीड़के मारे यह सम्भव नहीं कि फ़र्शसे झुककर कोई चीज़ उठाई जा सके। मुझे इस सम्बन्धमें एक बड़ी मज़ेदार घटना याद है। एक मुसाफ़िरने गाड़ीसे उतरनेके पहले कहा—"अरे, मेरे एक पैरका जूता खो गया। वह अभी मेरे पैरसे खिसक गया है।" हरएकने सर झुकाकर देखा, लेकिन गाड़ी इतनी ठसाठस भरी हुई थी कि झुककर उसे कोई देख ही न सकता था। अन्तमें बेचारे मुसाफ़िरको एक ही जूता पहने हुए उतरना पड़ा। एक बातसे मुझे आश्चर्य हुआ। वह यह थी कि यद्यपि लोग इतने ग़रीब थे, फिर भी कोई कंडक्टरको धोका देकर टिकटके पैसे नहीं मारना चाहता था। इसके विरुद्ध इस सिरेसे उस सिरे तक मुसाफ़िर अपने सहयात्रियोंको पैसे दे-देकर कंडक्टरसे टिकट मँगवा लेते थे। जान पड़ता था कि हर व्यक्ति टिकटका पैसा देना अपना कर्तव्य समझता है, क्योंकि वह जानता है कि आख़िर ट्राम भी तो उसीकी सम्पत्ति

लेनिनग्रेडमें कम्यूनिस्ट पार्टीकी केन्द्रीय समितिका प्रथम भवन। जिस खिड़कीपर तीरका निशान बना है, उसी खिड़कीमें खड़े होकर लेनिनने विदेशसे लौटनेपर सर्वप्रथम व्याख्यान दिया था

है। नैतिकताकी डींग हाँकनेवाले देश रूसी ग़रीबोंसे ईमानदारीका सबक़ सीख सकते हैं। जाड़ेमें यह भीड़-भाड़ और कशमकशका तो ग़नीमत है, लेकिन ईश्वर जाने गर्मीमें क्या दशा होती होगी।

हम लोग 'क्रेशे' के समीप जाकर उतरे। पथ-प्रदर्शिकाने बताया कि यह मज़दूरोंके बच्चोंकी

लेनिनग्रेडके हर्मिटेजमें एक प्राचीन मूल्यवान चित्र

शिशुशाला है। ओवरकोट और ऊपरके जूते नीचे उतारकर हम लोग ऊपर गये। मेरी पथ-प्रदर्शिकाने संस्थाकी प्रधान महिलासे देखनेकी अनुमति माँगी। उसने मुस्कराते हुए इजाज़त दे दी, साथ ही हम लोगोंसे कहा कि बच्चोंके पास कमरेमें जानेके पहले एक सफ़ेद एप्रेन (चोग़ा) पहन लें।

इस शिशुशालामें तीन माससे लेकर तीन वर्षकी आयु तकके बच्चे पाले जाते हैं। मज़दूर माताओंको सन्तानोत्पत्तिके पहले एक मासकी और सन्तानोत्पत्तिके बाद दो मासकी पूरे वेतन-सहित छुट्टी मिलती है। सन्तानोत्पत्तिके बाद तीसरे महीने फिर उन्हें कामपर जाना होता है। रूस परिवारको उड़ा देनेकी कोशिश कर रहा है, इसलिए तीन-तीन मासके बच्चोंकी देखभालके लिए ये शिशुशालाएँ आवश्यक हो गई हैं। रूसी मज़दूरोंके दल बारी-बारीसे काम करते हैं, जिससे मेशीनें दिन-रात—चौबीस घंटे—चालू रहती हैं। प्रत्येक माता कारख़ानेमें जानेसे पहले अपने बच्चेको इस शिशुशालामें छोड़ जाती है और घर जाते समय उसे ले जाती है। इस बीचमें यहाँ उनकी उचित देखभाल की जाती है। बहुतसे लोग समझते हैं कि रूसमें गृह-जीवन नष्ट हो गया है, क्योंकि बच्चोंकी देखभाल सरकार करती है, इसलिए माताओंमें बच्चोंका प्रेम रह ही नहीं जाता, और चूँकि यहाँ विवाहके कोई कड़े नियम हैं ही नहीं, इसलिए पिता बच्चोंकी परवा क्यों करने लगा। ये सब इलज़ाम निश्चय ही निराधार हैं। इन शिशुशालाओंने बच्चोंकी देखभालके उत्तरदायित्वसे माताओंको मुक्त कर दिया है, जिससे वे राष्ट्रको अपने परिश्रमका पूरा अंश प्रदान करनेमें समर्थ हो सकी हैं। इसी प्रकार रूसने सम्मिलित भोजनालय, धोबीख़ाने और मकानोंका प्रबन्ध करके देशकी आधी शक्तिको अपव्यय होनेसे बचा लिया है। पहले समयमें माताओंकी सारी शक्ति बच्चोंके पालने, भोजन बनाने, कपड़े धोने, मकानकी सफाई आदि घरेलू कामोंमें ही लग जाती थी। अब परिवारकी छोटी इकाईको तोड़कर नगरोंमें बहुसंख्यक लोगोंको एक वृहत परिवारका रूप दिया जा रहा है। ये वृहत परिवार सरकारी मकानोंमें रहते हैं, एक ही बड़ी भोजनशालामें भोजन करते हैं, एक ही बड़े धोबीख़ानेमें उनके कपड़े साफ़ होते हैं, एक ही क़ब्रमें वे एकत्रित होते हैं और एक ही पुस्तकालयमें बैठकर पढ़ते हैं। रहा माताका स्नेह, सो उसे एक रूसी क्रान्ति क्या, ऐसी-ऐसी हज़ारों क्रान्तियाँ भी नहीं दूर कर सकतीं। यह तो एक स्वभावजनित कोमल प्रवृत्ति है, जो मनुष्यों क्या
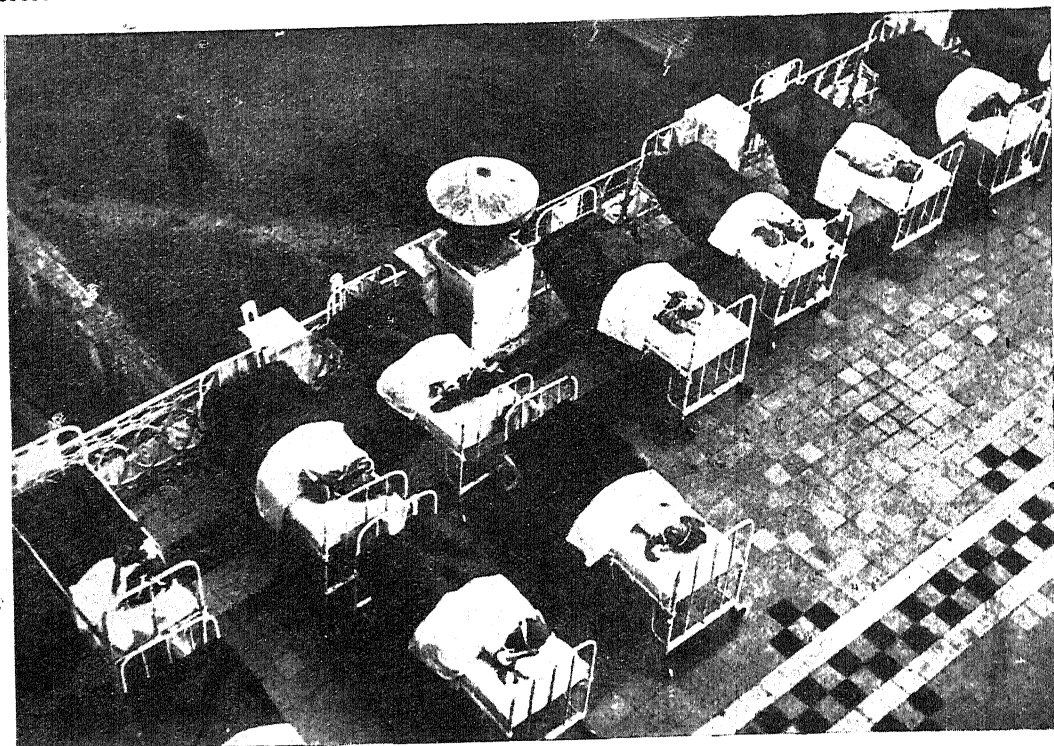
लेनिनग्रेडकी शिशुशालामें बच्चे धूप खा रहे हैं

पशु-पक्षियों तकमें विद्यमान है। अतः गृह-जीवन कभी नष्ट नहीं हो सकता; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि अन्य देशोंमें जिस प्रकारका गृह-जीवन प्रचलित है, रूसने उससे उसे एक बिलकुल ही भिन्न रूप दे दिया है। यह सरकारकी नई आर्थिक व्यवस्थाके कारण है। दिन-भर बच्चा शिशुशालामें रहता है। बीचमें माताको बच्चोंको दूध पिलानेके लिए आध घंटेकी छुट्टी दी जाती है। दिन-भरका काम समाप्त करके माता बच्चेको छातीसे लगाती है, उसपर चुम्बनोंकी वर्षा करती है, और रुईकी गदेलीमें लपेटकर उसे घर ले जाती है, जहाँ वह अपने पतिके साथ इस वात्सल्य-प्रेमका उपभोग करती है। मैंने स्वयं इस शालामें अनेक नवयुवती और प्रौढ़ माताओंको अपने बच्चोंको छातीसे चिपकाते, उन्हें चूमते और इस स्वर्गीय निधिके स्वप्नजटित स्पर्शका आनन्द लेते देखा है। जहाँ परिवार ऐसी प्रेममयी माताओंके हाथमें हो, वहाँ पारिवारिक जीवन नष्ट कैसे हो सकता है? फिर रूसमें मातृत्वकी धारणा उससे बिलकुल भिन्न है, जो यूरोप या अमेरिकन देशोंमें प्रचलित है। यूरोप-अमेरिकामें विवाह प्रायः भोग विलासके लिए किया जाता है। वे बच्चे उत्पन्न करना गुनाह समझते हैं। इसके विरुद्ध बच्चे उत्पन्न न करनेका विचार रखकर विवाह करनेको रूसी लड़कियाँ व्यभिचार समझती हैं। बच्चे राष्ट्रकी सम्पत्ति हैं, और प्रत्येक स्त्रीका कर्तव्य है कि वह राष्ट्रको स्वस्थ और योग्य बच्चे प्रदान करे। यद्यपि सरकारने गर्भपातको क़ानूनन जायज़ कर दिया है, और वह अपने डाक्टरों द्वारा सन्तति-निरोधकी शिक्षा भी देती है, किन्तु यह केवल अवांछित बच्चोंकी रोक तथा माताके स्वास्थ्यके लिए ही किया गया है। यह तो जानी हुई बात है कि हरएक अच्छी चीज़का भी दुरुपयोग होता

है, लेकिन उसका ख़याल करना बेकार है। बालिग़ होनेके पहले रूसी बच्चोंसे कोई भारी काम लेनेकी मनाही है, और वे अपने माता-पितासे जीवन-निर्वाहके व्ययके हक़दार हैं। लेकिन किसी रूसी परिवारमें यदि आप लड़कोंमें उस प्रकारकी पितृभक्ति देखना चाहें, जैसी हिन्दू या कैथोलिक परिवारोंमें मिलती है, तो आपको निराश होना पड़ेगा। रूसियोंमें भावुकताके लिए कोई स्थान नहीं है, वे सिरसे पैर तक भौतिकवादी हैं। हज़ारों उदाहरण ऐसे मिलेंगे, जिसमें बेटोंने अपने 'कुलोक' (पहलेके धनी) पितासे सिर्फ़ इसीलिए सारा सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है कि उन्हें मज़दूरों और जनसाधारणके अधिकार प्राप्त हों।

बच्चोंकी शालामें हर चीज़ क़ायदेसे है, हर चीज़ दूध-सी साफ़ है, चारों ओर पूर्ण अनुशासन दीख पड़ता है। पहले हम एक कमरेमें ले जाये गये, जहाँ नम्बर पड़ी अलमारियाँ रखी थीं। इन अलमारियोंमें बच्चोंके घरके मैले कपड़े रखे हुए थे। हरएकपर नम्बर पड़े रहते हैं। यहाँसे बच्चे एक दूसरे कमरेमें ले जाये जाते हैं, जहाँ उनके पाख़ाने-पेशाबके बर्तन क़तारमें रखे रहते हैं, फिर वे नहलाये जाते हैं, और उन्हें साफ़ कपड़े पहनाकर उन्हें उनके नम्बरके बिस्तरेपर लिटा दिया जाता है। वे एक ही समय, एक ही साथ, खाते-पीते और खेलते हैं। मैंने पूछा—"बच्चे एक साथ ही सोते कैसे होंगे ? क्या उनमें से कुछ रोकर दूसरोंकी शान्ति नहीं भंग करते ?" पथ-प्रदर्शिकाने दुभाषिया बनकर नर्सके उत्तरका उल्था किया —"नहीं, अगर बचपनसे ही बच्चोंको हरएक बात एक ही साथ और एक ही समयमें करना सिखाया जाय, तो वे उसे करेंगे, और सारे जीवन करते रहेंगे।"

ऊर्मित सरोवर

श्री सेवकेन्द्र

क्या धक्-धक् अन्तस्तलमें धधकी वियोगकी ज्वाला,
या हिलकोरें लेती है मधुर-स्मृतियोंकी माला ?
करनेको उमड़ रहे हो हृदयेश-चरण सुस्पर्शन,
या पुलक रहे हो सुखसे प्रियतमका पाकर दर्शन ?
उठ-उठ निहारते किसकी चिर-नूतन सुन्दर छबिको,
मृदु भाव तरल देते हो किस सरल हृदयके कविको ?
धारणकर अनुपम निधियाँ सुमनोंकी वक्षस्थलपर,
क्या फूले नहीं समाते हँसते हो बल खा-खाकर ?
लख पाप ताप धरतीका तुम आप उबलते जाते,
या अधःपतित रजकणको उन्नतिका मार्ग दिखाते ?
ललनागणका कुच-कुंकुम धो-धोकर अपने जलसे,
भरते हो मिस सौरभके क्या कंज हृदयमें छलसे ?
माँकी गोदीमें शिशु-से हँस-हँस सविनोद मचलते,
गिरते उठते फिर गिरते कल्लोलित कलित उछलते ?

मेरी दक्षिण-यात्रा

श्री रामनरेश त्रिपाठी

आज छब्बीस वर्षोंसे मैं यात्रा कर रहा हूँ ; मानो मैं यात्राके ही लिए पृथ्वीपर आया हूँ। मेरे दाहने हाथकी रेखाओंमें भी यात्रा ही यात्रा लिखी है। बीस वर्षकी आयुसे मेरी यात्रा प्रारम्भ हुई ; पर समाप्त कब होगी, यह मैं नहीं जानता। सम्भवत: यात्राको मैं एक जीवनसे नाप नहीं सकूँगा।

दक्षिण-भारतकी सैर मैं पहले दो बार कर आया था। पहले-पहल मैंने समुद्रका दर्शन रामेश्वरम्‌में किया। रामेश्वरम्‌में रातमें पहुँचा था, इससे उसका केवल घोर गर्जन ही, जो रातके सन्नाटेको चीरकर आता था, सुन सका था। रत्नाकरके विशाल विस्तृत महिमामय रूपके लिए तो मैं रात-भर तरसता ही रहा। प्रातःकाल ४ बजे चुपचाप उठकर अकेला समुद्र-तटपर चला गया। दोनों पैर समुद्रके जलमें डालकर मैं पत्थरकी एक शिलापर बैठ गया। 'पथिक' के पहले सर्गका अधिकांश उसी दशामें बैठे-बैठे मैंने रचा था। वह सुख कोई साधारण सुख न था। आज भी उसकी स्मृति मुझे यात्राके लिए उत्साहित करती रहती है।

दूसरी यात्रा मैंने ग्राम-गीतोंके अध्ययनके लिए की थी। पहली यात्रा प्रकृतिके वाह्य सौन्दर्यके लिए थी, दूसरी अन्त:सौन्दर्यके लिए।

तीसरी यात्रा अनाकांक्षित थी। दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें बड़ोदेमें 'ओरियंटल कानफरेन्स' होनेवाली थी, मेरा विचार उसमें जानेका था, और प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ विद्वान श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवालसे इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार भी हो चुका था। इन्हीं दिनों हिन्दी-प्रचार-सभा मद्रासके प्रचार-मंत्री श्री सत्यनारायणजी प्रयाग आये। वे मुझे मदरास जानेके लिए निमन्त्रित भी कर गये ; पर मैं तीसरी बार लम्बी यात्रा करनेको तैयार न था।

एकाएक एक दिन पं० हरिहर शर्माका तार मिला, जिसमें उन्होंने पदवीदान-समारोहके अवसरपर भाषण देनेके लिए मुझे आग्रहपूर्वक निमन्त्रित किया था। तारमें सबसे बड़ा प्रलोभन यह था कि 'बापूजी' सभापति होंगे।

इन्दोरमें सन् १९१८ में जिस दिन दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारका प्रस्ताव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें पास हुआ, मैं उसी दिन उसका प्रचार-मन्त्री चुना गया था। लगातार चार वर्षों तक मैंने 'बापूजी' की विचार-धारामें चलकर प्रचारके कामका संचालन किया था। तबसे अब तक बहुत परिवर्तन हो गया। मदरासकी हिन्दी-प्रचार-सभा सम्मेलनसे स्वतन्त्र होकर अपने पैरोंपर खड़ी हो गई ; सम्मेलन किधरका किधर चला गया। अब उसका सम्मान बुद्ध भगवानकी अस्थियों-जैसा शेष है। *

पन्द्रह वर्षोंके बाद हिन्दी-प्रचारके रंचमंचपर 'बापूजी' के चरणोंके निकट बैठनेका लोभ मैं छोड़ देता, तो मेरे जैसा भाग्यहीन और कौन होता ? पं० हरिहर शर्माका निमन्त्रण मैंने स्वीकार कर लिया। १९ दिसम्बरकी शामको मैं मदरासके लिए गाड़ीमें बैठ भी गया। इसके पहले लगातार दो दिनों तक अपनेको एक कमरेमें क़ैद करके मैंने अपना भाषण भी तैयार कर लिया था, जो जानेसे पहले छप भी गया था।

ता० २० को इटारसीमें मैंने ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस पकड़ी, जो भारतके पश्चिमोत्तर कोनेको दक्षिण-पूर्व कोनेसे मिलाती है।

बेजवाड़ा

ता० २१ दिसम्बरको सवेरे मेरी ट्रेन बेज़वाड़ा पहुँची। बेज़वाड़ेका प्राकृतिक सौन्दर्य हृदयको चलती

* सम्मेलनके विषयमें हम लेखक महोदयके समान पूर्णतया निराशावादी नहीं हैं। —सम्पादक

हुई ट्रेनमें से भी खींचे लेता था। मनमें यह भावना उठी कि कभी बेज़वाड़ेके लिए ही इधरकी यात्रा करूँगा।

बेजवाड़ेके बाद ट्रेनमें मदरास-प्रान्तके लोग लगातार मिलने लगे। मदरासवालोंका भेस मुझे बिलकुल पसन्द नहीं। 'अर्द्धनारी' का उनका भेस देखकर सैकड़ों वर्ष पहले यूरोपके चुस्त-दुरुस्त बनियोंने अगर उनपर राज करनेकी बात सोची थी, तो उसमें आश्चर्य क्या था?

इस बारकी यात्रामें एक विशेष बात यह देखनेमें आई कि हिन्दी समझने और बोलनेवाले मदरासी यात्रियोंकी संख्या ट्रेनमें अधिक मिली। जिससे बातें हुईं, उसीने कहा कि उसके गाँवमें एक हिन्दी-प्रचारक है, वह हिन्दी सिखलाता है।

मदरास

ता० २१ दिसम्बरकी शामको मदरास पहुँचा। स्टेशनपर श्री सत्यनारायणजी कुछ मित्रों और प्रकारकोंके साथ आये थे। मुझे स्टेशनसे ले जाकर श्री नागेश्वर रावके 'अतिथि-गृह' में ठहरा दिया गया। उन्हींके मकानमें 'बापूजी' भी ठहरे थे। पं० हरिहर शर्मा 'बापूजी' के साथ हरिजनोंकी सभामें गये थे, इससे वे रातमें बारह बजेके लगभग मेरे पास आये।

ता० २२ दिसम्बरको साढ़े चार बजे शामको कनवोकेशनमें मेरा भाषण था। गोखले-हालके बाहर इतनी भीड़ थी कि 'बापूजी' के पीछे-पीछे मुझे लोगोंने ढकेल-ढकेलकर भीतर किया। 'बापूजी' में कितना आकर्षण है! लोग तो उनके दर्शनोंके लिए पागल हो रहे थे।

हालमें कुछ व्यवस्था थी। 'बापूजी' को दूसरी सभामें जानेकी जल्दी थी, इससे मुझे भी अपने भाषणसे मुख्य-मुख्य बातें ही सुनाई पड़ीं। भाषणके बारेमें बापूजीने जो अत्युक्तिमय प्रशंसायुक्त शब्द कहे, उन्हें उद्धृत करनेकी धृष्टता मैं नहीं कर सकता। उन शब्दोंमें मुझे बापूजीकी कृपाका ही अंश अधिक दीख पड़ा। अपने क्षुद्रातिक्षुद्र कार्यकर्ताओंको वे कितना प्रोत्साहन देते हैं।

'बापूजी' ने अन्तमें अपना भाषण दिया। फिर अपनी वह शाल, जिसे हिन्दी-प्रचार-सभाने उन्हें उढ़ाई थी, उन्होंने नीलामपर चढ़ा दी। डेढ़ सौ रुपये आये। मुझे भी एक शाल मिला थी! वह भी हरिजन-फंडमें दे दी गई और नीलाम की गई। हरिजन-फंडके लिए 'बापूजी' के लोभकी क्या कोई सीमा है? मैंने कहा—"यदि मैं शालकी तरह हलका होता, तो आप मुझे भी नीलामपर चढ़ा चुके होते!" ख़ूब हँसे।

कार्य समाप्त करके 'बापूजी' बड़ी मुश्किलोंसे भीड़में से खींच-खाँचकर मोटर तक पहुँचाये गये।

बापूजी

'बापूजी' का स्वास्थ्य अच्छा है। सदा आनन्दमें रहना तो उनका स्वभाव ही हो गया है। स्वास्थ्यके बारेमें मेरी देखी हुई एक छोटी-सी बात यहाँ अप्रासंगिक न होगी। बापूजी गोखले-हाल जानेके लिए अपने मकानकी सीढ़ियोंपर उतर रहे थे। मैं ठीक पीछे था। सीढ़ीका जहाँ मोड़ आया, वे एक सीढ़ी छोड़कर अगलीपर ऐसे कूद गये, जैसे कोई नौजवान।

'बापूजी' का एक मिनट भी बेकार नहीं जाता। मदरासके एक नेता श्री सत्यमूर्तिने साढ़े छै बजे मिलनेका समय माँगा था; पर वे आये शायद पाँच-सात मिनट बाद। 'बापूजी' ने साढ़े छै बजनेके दो-तीन मिनट बाद दूसरे मिलनेवालोंको बुला लिया था। श्री सत्यमूर्ति अन्य मित्रोंके निकट सफ़ाई देते हुए देर तक बैठे रहे कि उन्होंने तो साढ़े छै और सातके बीचमें समय माँगा था।

मैंने भी समय पाया था; पर मेरे पास उनका क़ीमती वक़्त लेनेके लिए बात ही क्या थी? मुझे देखकर 'बापूजी' ने हँस दिया और पूछा—"हिन्दुस्तानी कोषके बारेमें मेरी चिट्ठी मिल गई थी न?" मैंने कहा—"हाँ। चिट्ठीसे अधिक प्रिय तो मुझे आपके

अक्षर लगते हैं।" उन्होंने फिर मुक्त हास्य किया, और मैं भी हँसता हुआ अलग हुआ।

कुमारी पद्मावती

मदरासमें ता० २२ की रातको मैं स्वतन्त्र हो गया, और २३ को प्रातःकाल बम्बई होकर बड़ोदा जानेका आयोजन करने लगा। कुर्ग-प्रान्तकी एक कन्या कुमारी पद्मावतीको हिन्दी-प्रचारक-सम्मेलनमें दो-एक प्रस्तावोंपर बोलते हुए मैं सुन चुका था। उसकी भाषणशक्ति अद्भुत, उसकी विचारशैली सुशृंखलित, उसके तर्क प्रबल, उसकी मुख-मुद्रापर उसका विशाल हृदय तो हर वक्त ही खेलता रहता था।

मैं स्वभावतः उसकी तरफ़ आकर्षित हुआ; पर मुझे वहाँ ठहरनेका समय नहीं था, इससे मैं उसके परिचयके लिए उत्सुक न था। पर वह मेरे एक मित्रको लेकर स्वयं ही आई। उसने कहा—"मेरा कुर्ग बहुत सुन्दर है; आप उसे अवश्य देखकर जाइये।" काश्मीर जिसने देखा है, उसका प्राकृतिक सौन्दर्यके लिए कुर्ग जाना समय और धनके अपव्ययके सिवा और क्या है? मुझे ता० २६ को बड़ोदा पहुँचना था। वहाँ गुजराती और मराठीके साहित्य-परिषदों और स्त्री-क्लबकी तरफ़से मेरा भाषण होनेवाला था, इससे मैं वहाँ पहुँचनेकी जल्दीमें था। साथ ही उसके बाद ओरिएन्टल-कानफरेन्समें भी सम्मिलित होना था। मैंने कुमारी पद्मावतीकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। पर उसका प्रयत्न तो जारी ही था। उसे अपने कुर्गपर बड़ा गर्व है। उसने बहुत अनुनय-विनय की। मैंने उत्तर अगले दिनपर टाल दिया। ता० २३ को प्रातःकाल ४ बजे मैं उठा और बिस्तर बाँधकर तैयार हो गया। ८॥ बजे बम्बईको गाड़ी जाती है, उससे निकल जानेका पक्का विचार था; पर पं० हरिहर शर्मा ८ बजे तक आये ही नहीं! उनसे मिले बिना कैसे जाता? सवेरे ही श्रीयुत के० भाष्यम्, जो मदरासके प्रमुख कांग्रेस-कार्यकर्ताओंमें एक हैं और महात्मा गांधीके निकट जिन्हें मैं कई बार देख चुका था, आये और दोपहरके भोजन, तामिल-साहित्य-परिषद्‌में राष्ट्र-भाषाविषयक मेरे भाषण तथा स्व० एनी बेसेन्टके अड्यारकी सैरका

कुमारी पद्मावती

निमन्त्रण दे गये। इस नये बन्धनके कारण मुझे ता० २३ को मदरासमें रुक जाना पड़ा। यह तय हुआ कि रातकी गाड़ीसे बम्बई जायँगे। दिनमें कुमारी पद्मावतीने मैसूर और बंगलोरके हिन्दी-प्रचारकोंका समूह लेकर मेरी बड़ोदेकी यात्रापर फिर आघात किया। अन्तमें विवश होकर मुझे कुमारी पद्मावतीका कुर्ग देखने जाना ही पड़ा। मैंने बड़ोदेको तार दे दिया कि मैं जनवरीमें आऊँगा।

कुर्ग

ता० २३ का दिन श्रीयुत भाष्यमके साथ बिताकर रातकी गाड़ीसे मैं कुमारी पद्मावती और हिन्दी-प्रचारकोंके साथ मदराससे कुर्गके लिए रवाना हो गया। ट्रेनमें भीड़ काफ़ी थी। हमें इंटरका टिकट लेना पड़ा। इंटरमें भी रातके एक बजे तक सोनेको जगह नहीं मिली। हाँ, चितूरके पुलिस-इन्स्पेक्टर हमारे

साथ थे। उनसे बातें करते-करते रात सुखसे कट गई। मैंने कहा—"मैं राष्ट्र-भाषा हिन्दीके लिए भ्रमण करना चाहता हूँ।"

उन्होंने कहा—"हिन्दीमें क्या है ?"

मैंने कहा—"हिन्दीका साहित्य इस समय भारतकी सभी प्रान्तीय भाषाओंके साहित्यसे बढ़ा-चढ़ा है।" [?-सं०]

उन्होंने कहा—"हिन्दी तो मैं भी जानता हूँ।"

मैंने कहा—"अच्छा, बोलिये।"

उन्होंने कहा—"मैं हिन्दीमें अच्छी तरह गाली दे सकता हूँ। हिन्दीकी गालीमें बड़ी ताक़त है।" *

उनके हिन्दी-ज्ञानपर हम लोगोंने खूब क़हक़हा लगाया। ऐसी ही बात कलकत्तेके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें बंगलाके सुप्रसिद्ध नाटककार स्व० श्री द्विजेन्द्रलाल रायने भी कही थी।

सवेरे बँगलोरसे मैसूरकी ट्रेन पकड़ी और बारह बजेके लगभग मैसूर पहुँचे। बँगलोर और मैसूरके हिन्दी-प्रचारक रास्तेमें उतरते गये, और अन्तमें मैं अकेला कुमारी पद्मावतीके साथ कुर्गके लिए 'बस' में रवाना हुआ।

मैसूरकी सीमा तक तो प्रकृतिका सौन्दर्य साधारण ही रहा; पर कुर्गकी सीमामें पहुँचते ही मुझे ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो मैं काश्मीरमें हूँ। सचमुच कुर्ग सुन्दर प्रान्त है, और कुमारी पद्मावतीका गर्व उचित है।

मरकेरा

शाम होते-होते हम कुर्गकी राजधानी मरकेरामें पहुँचे, जहाँ कुमारी पद्मावतीका घर है। रास्तेमें कुमारी पद्मावतीके सद्गुणोंका मुझे खूब परिचय मिलता गया। वह शरीर ही की नहीं, स्वभावकी भी बहुत सुन्दर है। हिन्दी-साहित्यका उसने गहरा अनुशीलन किया है। हिन्दीके नये-पुराने कवियोंके सम्बन्धमें उसकी विवेचना सुनकर मैं चकित हो उठता था। वह एन्ट्रेंस तक अंगरेज़ी पढ़ी हुई है; संस्कृत जानती है; कनाड़ी भाषाकी प्रसिद्ध लेखिका है; संगीतपर तो उसका अच्छा अधिकार है; खद्दर पहनती है; बँगलोरमें हिन्दी-प्रचारका काम करती है; गांधीजीपर अनन्य श्रद्धा रखती है; एक दरी और ओढ़नेकी एक चादर लेकर अकेली मदरास गई थी; उसका चरित्र देवीकी तरह पवित्र है; बड़े ऊँचे विचार रखती है; सारा जीवन देश-सेवामें लगा देनेकी उमंग उसके एक-एक शब्दमें उमड़ी पड़ती थी। मैंने पूछा—"पद्मा! ये सब गुण तुममें एक साथ कहाँसे आ गये ?"

उसने हर्षसे प्रफुल्लित होकर कहा—"यह सब मेरे माता-पिताकी सम्पत्ति है।"

उस निरभिमान कन्यामें माता-पिताके प्रति ऐसी कृतज्ञता देखकर मेरी आँखोंमें हर्षके आँसू आ गये। मैं कई कन्याओंका पिता हूँ। पद्मावतीको देखकर मेरे हृदयमें एक प्रबल लालसा उत्पन्न होकर हिलोरें लेने लगी कि पद्मावती मेरी कन्या होती, तो आज मैं भारतमें सब पिताओंसे अधिक सुखी होता।

पद्मावतीको देखकर उसके माता-पितासे परिचित होनेकी मेरी इच्छा बहुत बलवती हो चली। मदरास ही में मैंने निश्चय कर लिया था कि दक्षिण-प्रान्तमें अंगरेज़ी न बोलूँगा, हिन्दी ही में बात करूँगा। 'बापूजी' तो मदरासमें हिन्दी ही में अपना भाषण देते हैं। सिद्धान्तकी ऐसी दृढ़ता हम सबमें होनी चाहिए। पर पद्मावतीके घरमें तो पद्मावतीके सिवा और कोई हिन्दी समझता ही न था। मैंने अपनी प्रतिज्ञाकी बात पद्मावतीके पिता मिस्टर चिन्नप्पाको पद्मावतीकी ज़बानी समझा दी। पद्मावती अब 'दुभाषिये' का काम करने लगी।

पद्मावतीके पिता सचमुच उसकी कीर्तिके पात्र हैं। वे सुशिक्षित हैं। बड़े ही ऊँचे विचारोंके हैं। बातें करते-करते जोशमें आकर उनके अंग-अंग

* कई प्रतिष्ठित बंगाली सज्जनोंने राष्ट्र-भाषाकी इस विचित्र शक्तिकी प्रशंसा हमारे सामने भी की है। —सम्पादक

फड़क उठते हैं। वे मुझसे अंगरेज़ीमें बोलते थे ; मुझे कुछ कहना होता, तो मैं पद्मावतीको बीचमें करके हिन्दीमें उत्तर देता था।

मिस्टर चिन्नप्पाके परिवारमें काफ़ी बच्चे हैं। सभीको संगीतसे प्रेम है। सुस्त जीवन तो मुझे वहाँ देखने ही को न मिला। सभी प्रसन्न, सभी आनन्दित। पद्मावतीकी माँ तो साक्षात् लक्ष्मी हैं। भोजन बनानेकी कलामें बड़ी कुशल हैं। अब तो मैं कह सकता हूँ कि कुर्गवालोंका अतिथि-प्रेम भारतवर्षमें अनुपम है। मैं मरकेरामें दो रात और डेढ़ दिन रहा ; इतने समयमें मुझे पानी पीनेको नहीं मिला। जब पानी माँगा तब नारंगीका रस या काफ़ी मिली। खाना खाते समय गरम पानी मिलता था, जो एक-दो घूँटसे ज्यादा पिया नहीं जाता था। मरकेरामें मिस्टर चिन्नप्पाकी अच्छी प्रतिष्ठा है। उनका घर तो वहाँके सभी सरकारी, ग़ैरसरकारी बड़े आदमियोंका केन्द्र है।

मरकेराके म्युनिसिपल प्रेसीडेन्ट मिस्टर सुब्बैया, बी० ए०, बी० एल०, एम० एल० सी०, से मेरा परिचय कराया गया। उन्होंने ज़मींदार-संघके हालमें दूसरे दिन मेरे भाषणका प्रबन्ध किया, और अपने नामसे विज्ञापन छपाकर बँटवाया।

दूसरे दिन उन्होंने मोटरपर मरकेराके मुख्य-मुख्य स्थान मुझे दिखलाये। शामको वहाँके कांग्रेसके प्रमुख कार्यकर्ता और एक कनाड़ी पत्रिकाके सम्पादक मिस्टर वेलप्पाके सभापतित्वमें मेरा भाषण हुआ। भाषणका विषय 'प्राचीन हिन्दू-साम्राज्यका विस्तार' और 'राष्ट्र-भाषाकी आवश्यकता' था। भाषण हिन्दीमें हुआ था ; उसका अनुवाद कनाड़ी भाषामें कुमारी पद्मावतीने ऐसी उत्तमतासे किया कि मैं चकित हो गया।

दूसरे दिन दस बजे मिस्टर चिन्नप्पा अपनी स्त्री, कन्या, एक पुत्र और मुझको कारमें लेकर बंगलोरके लिए रवाना हुए। दो बजे हम लोग मैसूर पहुँच गये। मिस्टर चिन्नप्पा कुमारी पद्मावतीको और मुझको मैसूरमें छोड़कर बंगलोर चले गये।

मैसूर

मैसूरमें टाउन-हालमें सभा की गई ; मानपत्र दिये गये। भीड़ इतनी अधिक थी कि व्यवस्था नहीं हो सकी, और मुझे अपना भाषण समयसे कुछ पहले समाप्त कर देना पड़ा। मैसूरमें मेरे दो भाषण हुए।

प्रो० शुश्तरी साहब

प्रोफ़ेसर शुश्तरी साहब एम० ए० ईरानके निवासी हैं। यूरोप, अमेरिका और जापान आदि सब घूमें आये हैं। उनकी कीर्तिसे मैं परिचित था। गत वर्ष हिन्दी-प्रचार-सभाके कनवोकेशनमें उन्होंने ही भाषण किया था। मैं उनसे मिलने गया। वे तो साधु हैं। समयकी किफ़ायत तो मुझे करनी ही थी, फिर भी उनका काफ़ी समय मैंने लिया। उनसे परिचित होकर मैंने अपनेको सौभाग्यशाली समझा। वे नम्रताकी मूर्ति हैं। हिन्दू-सभ्यताके बड़े भक्त हैं। ईरान और हिन्दुस्तानकी एकताके प्रबल समर्थक हैं। संस्कृतके पंडित हैं। आजकल ऋग्वेदका फ़ारसीमें अनुवाद कर रहे हैं। शामको टाउन-हालमें मेरे भाषणके अवसरपर वे भी आये थे। वहाँ मुझे उनकी ज़बानी एक बात जानकर बड़ा कौतूहल हुआ।

हिन्दू-साम्राज्यके विस्तारपर बोलते हुए मैंने मत्स्यपुराणका एक श्लोक प्रमाणस्वरूप उपस्थित किया था, जिसमें यह वर्णित है कि सुषा वरुणकी राजधानी थी—

"सुषानामपुरीरम्या वरुणस्यापि धीमत:।"

वरुण पश्चिम दिशाके दिग्पाल माने जाते हैं। अतएव मैंने साबित किया था कि भारतवर्षकी पश्चिमी सीमा सुषा तक थी। सुसा नामका एक नगर सिकन्दरने लूटा था, ऐसा उसके इतिहासमें मिलता है। उसकी प्रशंसामें यह कहा गया है कि सिकन्दरके समयमें सुसाके बराबर धन-सम्पन्न नगर पृथ्वीपर दूसरा न

था। शुश्तरी साहब संयोगसे उसी सुसा नगरके निवासी निकल आये। भाषणके बाद जब हम पास-पास बैठकर नाटक देखने लगे, तब उन्होंने यह रहस्य खोला।

बंगलोर

मैसूरमें दो रोज़ रहकर मैं बंगलोर गया। बंगलोरमें कुमारी पद्मावती रहती है, वहाँ उसकी बहन 'पू' (पुष्पावती) एन्ट्रेंसमें पढ़ रही है, और उसके माता-पिता भी कभी-कभी कुर्गसे आकर वहाँ रहा करते हैं।

बंगलोरमें मैंने तीन भाषण दिये—एक स्त्रियोंकी सभामें, दूसरा हिन्दी-कालेजमें और तीसरा सार्वजनिक सभामें। बंगलोरकी स्त्रियोंमें बड़ी जाग्रति है। मेरा अनुमान है कि दो सौसे अधिक स्त्रियाँ सभामें उपस्थित थीं। सभी अच्छे घरोंकी और सम्पन्न जान पड़ती थीं। उन्होंने मुझे मानपत्र दिया; संगीत सुनाया; हाथकी बनी हुई बेंतकी एक तश्तरी तथा एक तौलिया भेंट की। मैंने उन्हें ग्राम्य-गीतोंपर एक भाषण सुनाया। वे सचमुच बहुत प्रसन्न हुईं।

प्रस्थान

कुमारी पद्मावतीको कनाड़ी-साहित्य-परिषदमें एक भाषण देनेके लिए हुबली जाना था, और मुझे गुजराती-साहित्य-परिषदमें काठियावाड़। सो हम दोनोंको जल्दी थी। ता० २८ की रातमें हम दोनों एक ही ट्रेनसे बंगलोरसे विदा हुए। पद्मावतीके पिता स्टेशन तक हम लोगोंको पहुँचाने आये। उन्होंने अब तक मेरे साथ जो प्रेमपूर्ण व्यवहार किया था, उसे स्मरण करके मेरा हृदय भर आया और उनके लिए मोह मालूम होने लगा। चलते समय उन्होंने अंगरेज़ीमें कहा—"अगले साल आप आयेंगे, तो मैं हिन्दीमें आपसे बातचीत करूँगा।" मैंने हँसकर उनको धन्यवाद दिया, फिर हम लोग हाथ मिलाकर विदा हुए।

हिन्दी-प्रचारक

दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारक अच्छा काम कर रहे हैं। उत्तर-भारतसे गये हुए कई प्रचारक बड़े लोकप्रिय हैं, और वे अपने काममें काफी सफलता प्राप्त कर चुके हैं। मदरासी प्रचारकोंका तो कहना ही क्या, उनका तो प्रान्त ही ठहरा; उनकी लगन सच्ची है, और प्राणपणसे हिन्दीकी उन्नतिमें लगे हैं। यही कारण है कि इतने थोड़े समयमें तीन लाखसे अधिक मदरासी हिन्दीसे परिचित हो गये। मदरासी प्रचारकोंका हिन्दी-भाषण सुनकर मैं तो चकित हो गया। उनमें से कई तो उत्तर-भारतमें आकर अपने हिन्दी-भाषणके लिए गौरव प्राप्त कर सकते हैं।

मैंने दो बार प्रचारक-सम्मेलनमें भाग लिया। भाषा-विषयक जो प्रश्न वहाँ किये गये, उनसे मैंने समझा कि दक्षिण-भारतमें हिन्दीका कितनी गहराईसे अध्ययन हो रहा है।

पं० हरिहर शर्मा

मनुष्यके चुनावमें, मैं समझता हूँ, 'बापूजी' की होड़ करनेवाला मनुष्य मुश्किलसे मिलेगा। अच्छे चुनावके अतिरिक्त 'बापूजी' में यह विशेष गुण भी तो है कि जिसे वे छू देते हैं, वही मनुष्य हो जाता है। पं० हरिहर शर्मा 'बापूजी' के अत्यन्त विश्वस्त और अन्तरंगोंमें से हैं। जब मैं प्रचार-मन्त्री था, तब वे पहले दलके साथ प्रयागमें हिन्दी सीखने आये थे। मैंने उनको हिन्दी पढ़ाई भी थी। दक्षिण-भारतमें जाकर उन्होंने अपना वह चमत्कार दिखाया कि अब तो मैं ही उनको गुरु बना सकता हूँ। वे अंगरेज़ी, हिन्दी, तामिल, तेलगू, मराठी, गुजराती और शायद बंगलामें भी धाराप्रवाह भाषण कर सकते हैं। संस्कृत भी जानते हैं। कठोर परिश्रमी, आदर्श सच्चरित्र, मितभाषी, प्रसन्नमुख और प्रबन्धकुशल हैं। सदा हँसकर पर गम्भीर अर्थयुक्त बात करते हैं। मेरे साथ तो उनका सगे भाईका-सा प्रेम है। दक्षिण-भारतमें इतनी जल्दी हिन्दी-प्रचारमें जो सफलता मिल रही है,

वह पं० हरिहर शर्माकी सच्ची लगन और बौद्धिक योग्यताका परिणाम है। वे भी 'बापूजी' की तरह अपने साथियोंके चुनावमें बड़े निपुण हैं। इसीसे हिन्दी-प्रचार-सभाको इतनी शीघ्र सफलता मिली है।

सभाके ऊपरसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका हाथ उठ जानेपर यह आशंका हुई थी कि सभाकी शक्ति क्षीण हो जायगी; पर पं० हरिहर शर्माने सतत उद्योगसे यह दिखला दिया कि संस्थाके संचालनकी योग्यता उनमें है, और वे किसी भी कठिनाईका मुक़ाबला कर सकते हैं। सभाकी रिपोर्ट हर साल निकलती है। सभा आज अपने कार्यकर्ताओंके कामोंसे जगमगा रही है।

उत्तर और दक्षिण

उत्तर और दक्षिणके सामाजिक जीवनमें बहुत अन्तर है। दक्षिण उन्नतिकी ओर दौड़ रहा है; पर उत्तर सरक भी रहा है या नहीं, इसमें सन्देह है। दक्षिणमें महिलाओंके बहुतसे समाज हैं, जिनमें स्त्री-जातिके कल्याणकी बातें निरन्तर सोची जाती रहती हैं। उत्तरमें ऐसी संस्थाएँ कहीं-कहीं हैं, पर उनका प्रभाव अधिक नहीं है। दक्षिणमें संगीतका प्रचार घर-घर है, उत्तरमें कहीं-कहीं वेश्याओंमें है। दक्षिणमें शारीरिक शक्ति बढ़ानेके लिए व्यायामशालाएँ खुली हैं और खुलती जा रही हैं। बंगलोरमें पाँच व्यायामशालाएँ सुव्यवस्थित रूपमें चल रही हैं। मैंने दो व्यायामशालाएँ देखीं भी—एक श्रीयुत ऐयरकी, दूसरी श्रीयुत बालमूर्तिकी। दोनों सज्जनोंसे मैं मिला। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे अपनी-अपनी व्यायामशालाओंके सम्बन्धमें मेरे प्रश्नोंके उत्तर दिये। मैं बहुत प्रभावित हुआ। श्रीयुत ऐयरकी व्यायामशालामें दो सौसे अधिक स्त्री-पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध व्यायामकी शिक्षा लेते हैं। ऐसी संस्थाएँ उत्तर-भारतमें कहाँ हैं?

गांधीजीके जीवनका प्रभाव दक्षिणपर जितना पड़ रहा है, उतना उत्तरपर नहीं। दक्षिणकी प्रत्येक नस गांधीजीसे जीवनीशक्ति पी रही है। सूखी नसें भी फड़क रही हैं। पर उत्तरमें भयानक शिथिलता छाई है।

अपनी यह दक्षिण-यात्रा मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगी। कुर्गके प्राकृतिक सौन्दर्यकी जो छटा मेरे नेत्रों तथा मस्तिष्कपटलपर अंकित हो गई है, वह मेरे जीवनपर्यन्त अदृश्य न होगी। कुमारी पद्मावतीने मुझसे वचन लिया था कि मैं उसके कुर्गके विषयमें एक कविता कुर्ग ही में बैठकर लिख दूँ। मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, और उसे यह तुकबन्दी लिखकर वहीं दे दी थी:—

प्रकृति महारानीका मंजुल महल कुर्ग है,
पद्माका सुख-शान्ति-सदन आनन्द-दुर्ग है;
जैसा बाहर यहाँ प्रकृतिका तन सुन्दर है,
उससे भी कुर्गीय जनोंका मन सुन्दर है।
शिमला नैनीताल नीलगिरि और मसूरी,
है इसके समक्ष सबकी छबिराशि अधूरी।
क्योंकि वहाँपर कृत्रिमता श्रमसे रक्षित है,
किन्तु यहाँपर नैसर्गिक सौन्दर्य उदित है।
भारतमें सर्वोच्च सुयश-पदके अभिलाषी,
हैं उद्यमी, सुसभ्य, सच्चरित कुर्ग-निवासी;
हे प्रभु! इनका भवन सभी विभवोंसे भर दो,
भारतका उद्धार इन्हींके करसे कर दो।

पगोडा वृक्ष
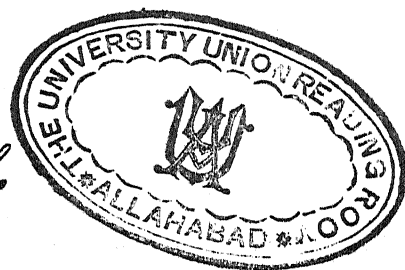
श्रीयुत 'अज्ञेय'

उस वृक्षमें पत्ते नहीं थे।

उसकी यही विशेषता थी—विधवाके हृदयकी तरह उसका विस्फोट धीरे-धीरे वृद्धिगत नहीं होता था—उसके लिए वसन्तकी वासनाके कोमल अंकुर नहीं फूटते थे, न बाललीलामय मधुर झकोरे आते थे, न नवयौवनके चिकने पत्ते ही निकल पाते थे······केवल वर्षमें एक बार, उत्तप्त ग्रीष्मकी वेदनामें, प्रगल्भ यौवनके उन्मद सौरभसे भरे, हल्के पीले हृदयवाले श्वेत तारक-फूल, एकाएक ही उसके सर्वांगपर छा जाते थे—उसकी नंगी वीभत्स शाखें एकाएक ही अदृश्य हो जाती थीं।

जीवन! वे मानो प्रौढ़ावस्थाके फूल! वसन्तमें, जब और सब वृक्ष फूल रहे होते थे, तब उसमें लम्बे-लम्बे, कटार-से, पत्तेमात्र खड़े होते थे—मानो सामन्तोंकी पाँतमें शूद्र-पुत्र खड़ा हो···पर ग्रीष्मकी मरुस्थलीमें, जब वसन्तका यौवन और जीवन बिखर चुका होता था, तब उस वृक्षकी चिरसंचित वेदना, ग्लानि, आत्म-प्रतारणा मोहक रूप धारण करके फूट पड़ती थी—विराट् वेदना सुन्दर ही होती है—और उस वृक्षका नंगापन छिप जाता था, या सौन्दर्यके आवरणके भीतर और भी नंगा हो जाता था। मानो किसी बुड्ढेने संसारकी तिरस्कार-भरी दृष्टिसे लज्जित होकर अपनेको यौवनके आवरणमें लपेट लिया हो, या किसी चिर विधवाके हृदयमें एकाएक प्रेमका पूर्ण विकास हो उठा हो।

अभी वह दिन नहीं आया था। वसन्त समाप्त हो चुका था, बहुत दिन वृष्टि भी हो ली थी; किन्तु ग्रीष्मका आगम नहीं हुआ था···वृक्षके पत्ते गिर गये थे, पर फूल नहीं आये थे।

साँझ हो रही थी। आकाशमें बादलके छोटे-छोटे टुकड़े मँडरा रहे थे। उनमें एक ओछा सौन्दर्य था, शक्तिहीन और दर्पहीन—वे बरस चुके थे। और वे मानो एक प्रकारके छिछोरेपनसे जमुनाके जलमें अपना रंगीन प्रतिविम्ब देखकर मुस्करा रहे थे।

उस वृक्षकी नंगी शाखों-तले एक स्त्री बैठी हुई थी। वह एक स्थिर दृष्टिसे बादलोंकी ओर देख रही थी, और शून्यभावसे एक पदकी निरर्थक आवृत्ति किये जा रही थी—'प्रीतम इक सुमिरिनिया मोहि देहि जाहु।' धीरे-धीरे अन्धकार होता जा रहा था। वह मानो हमारे संसारसे परे कहीं विचर रही थी, उसके लिए मानो हमारे कालकी गति थी ही नहीं।

उसकी सफेद धोती धुँधले प्रकाशमें कुछ नीली-सी जान पड़ रही थी। उसके मुखका वेदनाविकृत भाव भी एक फीकी मुस्कराहटका भ्रम उत्पन्न कर देता था और, जिस मुद्रामें वहाँ वह बैठी हुई थी, उससे किसी भी दर्शकके हृदयमें मूर्तिमती प्रतीक्षाकी भावना जाग्रत हो जाती, यद्यपि उसने कई वर्षोंसे किसीकी प्रतीक्षा नहीं की थी—प्रतीक्षाका विचार भी नहीं किया था, क्योंकि वह कई वर्षोंसे विधवा थी।

यह उसका नित्यकर्म था—नित्य ही सन्ध्याको वह अपने छोटे-से मकान, या झोपड़ेके इस बगीचेमें आकर बैठ जाती थी—और कभी-कभी घंटों बैठी रहती थी···जब वह इस प्रकार आत्म-विस्मृत हो जाती, तब उसे अपनी दैनिक प्रार्थनाका भी ध्यान न रहता···तब तो किसी आकस्मिक शब्दसे—किसी पशुके रँभानेसे, या कभी वायुके झोंकेसे ही वह चौंककर उठती थी और भीतर चली जाती थी···

अब भी यही दशा थी। उसके बैठे ही बैठे रात भी होनेको आई, जो बादल बिखरे हुए थे, वे नई शक्ति पाकर पुनः आकाशमें छा गये—धीरे-धीरे एक अत्यन्त कोमल, निःशब्दप्राय वर्षा भी होने लगी, पर उसका ध्यान भंग नहीं हुआ। जब वायुके एक झोंकेने उसकी धोतीका छोर हिलाकर मानो कहा—"उठो!" तब वह उसके गीलेपनसे चौंकी, और एक बार मानो जाड़ेसे काँपकर, पेड़के सहारे खड़ी हो गई, और जल्दी-जल्दी अपने झोंपड़ेकी ओर चल दी। वह वृक्ष मानो उत्सर्ग-भरी आवाज़से बादलोंको कहने लगा—"भिगो लो तुम भी मेरी नग्नताको!"

[२]

वह विधवा थी—उसका नाम था सुखदा। जबसे उसका विवाह हुआ, तबसे ही वह उसी झोंपड़ेमें रहती थी। उसके विवाहको बारह वर्ष हो चुके थे, जिनमें से आठ उसने वैधव्यमें काटे थे। विधवा हो जानेके बाद भी उसने वह घर नहीं छोड़ा—छोड़कर कहीं जानेको स्थान भी न था। वह समाजकी ही नहीं, व्यक्तिमात्रकी परित्यक्ता थी। समाजकी शरणसे ही नहीं, किसी व्यक्तिके स्नेहसे भी वंचित थी, उसका अपना कोई न था। जिस झोंपड़ेमें वह रहती थी, उसकी सफाई इत्यादि करनेके लिए एक बुढ़िया नित्य सवेरे आती थी, और दो घंटेके बाद चली जाती थी। सुखदाका संसारसे कोई सम्बन्ध था तो इतना ही। वह अपना गुज़ारा कैसे करती थी, कोई नहीं जानता था। स्त्रियाँ किस प्रकार गृहस्थी चलाती हैं, यह आज तक न किसीने जाना है और न जानेगा। हमारे वैज्ञानिक तो कहते हैं कि Perpetual motion यन्त्र असम्भाव्य है।

सुखदाका पति देहलीमें काम करता था। वह नित्य सवेरे ही झोंपड़ेसे चल पड़ता, और कुछएक खेत पार करके मेरठसे देहली जानेवाली सड़कको जमुनाके पुलके पास ही पा लेता। उन दिनों सुखदा दूरसे जमुना-पुलकी ओर देखकर, उसपर रेंगते हुए चींटी-से आकारोंको देखकर अपने पतिको चीन्हनेका प्रयत्न किया करती। और इसी प्रकार जब उसके लौटकर आनेका समय होता, तब भी वह पुलपर उसे खोजा करती।

इसका कारण था। पतिकी अनुपस्थितिमें उसे कोई कष्ट या क्लेश होता हो, या वियोगकी पीड़ा उसके लिए असह्य हो, यह बात नहीं थी। वर्ष-भर पतिके साथ रहकर भी उसने इतनी घनिष्ठता नहीं उत्पन्न की थी, जितनी कालेजके लड़के-लड़कियाँ सप्ताह-भरमें कर लेते हैं। उसका और उसके पतिका जीवन मानो दो अलग और Parallel दिशाओंमें बह रहा था, और वे निकट नहीं आ पाते थे। इसीलिए वह अपने पतिके पतित्वका अनुभव एक खास दूरीपर करती थी। जब वह उससे निकट आता, तब वह सुखदाके लिए बिलकुल अजनबी हो जाता। जब वह घरमें होता, तब सुखदाके हृदयमें उसके प्रति एक उद्वेग, एक प्रकारकी झुँझलाहटके अतिरिक्त कोई भावना न होती थी। जब वह दूर पुलपर होता, तब सुखदा अपने हृदयको यह समझाया करती थी कि 'वह तेरा पति है।' उसी स्वच्छन्द, शीतल, निरपेक्षतासे जिससे कोई बच्चेको इशारेसे चिड़िया दिखाकर बतलाये—'यह अबाबील है।'

उसे स्वयं कभी-कभी इससे अत्यन्त कष्ट होता था। पातिव्रत्यके जो संस्कार कुछ मिले थे, वे उसे कभी-कभी अत्यन्त दुखी कर डालते थे। वह इस निरपेक्षताको दूर करनेकी चेष्टा भी करती थी; किन्तु इसमें मुख्य अड़चन था उसका पति। उसमें भी ऐसी ही एक उपेक्षा थी—मानो किसी दिन उसे बैठे-बैठे विचार आया हो, 'मेरे घरमें बहू नहीं है', और इस न्यूनताको पूरा करनेके लिए उसने एक बहू झोंपड़ेमें ला रखी हो।

इसी प्रकार सुखदाके दाम्पत्य जीवनके चार वर्ष बीते (ऐसे भी हैं, जिनका सारा जीवन यों ही बीतता है)। उस समय तक एक विराट् दुःखान्त नाटकके लिए पूरा उपक्रम हो चुका था; किन्तु मुख्य पात्रकी अकाल मृत्युके कारण वह खेला नहीं जा सका। सुखदा अकेली रह गई। ट्रेजडीके अंकुरसे भरा हुआ उसका जीवन केवल एक विषादसे भरा रह गया—एक विषाद जिसकी नीरसतामें एक हलका, किन्तु मधुर रस था।

जिसके आधारपर उसने आठ वर्ष बिता दिये थे, नित्य ही जब वह अपने छोटेसे स्वच्छ बगीचेमें आकर बैठती, तब मानो उसे इस रसका एक घूँट मिल जाता था। जिस वृक्षके नीचे वह नित्य बैठती थी, वह उसके पतिका लगाया हुआ था। वह उसे मदराससे लाया था। यद्यपि उसके इस वृक्ष-तले बैठनेका कारण यह नहीं था, तथापि वह नित्य ही इस बातका स्मरण कर लिया करती थी। क्षणभरके लिए उसे यही विश्वास हो जाता था कि वह पतिकी स्मृतिके लिए ही वहाँ बैठी है। इस विश्वाससे उसके हृदयकी पुरानी अशान्ति, वह अनौचित्यकी भावना मिट जाती थी।

[३]

यदि दुःखकी अनुपस्थितिको, अनुभूतिकी अचेतनाको, सुख कह सकते हैं, तो सुखदा सुखी थी। यदि—! किन्तु वह स्वयं सोचा करती, क्या मेरे जीवनका उद्देश्य यही है? उस वृक्ष-तले बैठकर जब वह जमुनाका कम्पित वक्ष देखती,

तब उसके हृदयमें सदा यही प्रश्न उठता, 'क्या हमारा जीवन बालूपर के मिटाये हुए चिह्नसे बढ़कर कुछ भी नहीं है ?' पर इस प्रश्नसे उसकी शान्ति भंग नहीं होती थी, यद्यपि विषाद कुछ गहरा हो जाता था। उसके हृदयसे अशान्तिकी क्षमता मानो नष्ट हो गई थी—समुद्र मानो तूफ़ान लाना भूल गया था।

वह जो नित्य नियमपूर्वक प्रार्थना किया करती थी, वह किसी आन्तरिक अशान्तिकी प्रेरणासे नहीं, वह केवल एक नियम-भर था—या उससे कुछ ही अधिक। कभी वह इस विषयपर सोचती भी, तो एक ही बातका निश्चय कर पाती थी—उसे ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास था—बस। जब वह अपनी आत्मासे पूछती कि वह प्रार्थना क्यों करती है, तो यही उत्तर मिलता था कि सबसे सरल पथ यही है—कुछ लाभ हो या न हो, उससे क्या। किन्तु फिर भी अपने वैधव्यके आठ वर्षोंमें एक दिन भी उसका नियम भंग नहीं हुआ था—और वह कल्पना भी न कर सकती कि इस नियमका भंग कर दे।

आज जब वर्षा होने लगी और वह चौंककर उठी, तब उसे याद आया कि वह अपनी प्रार्थना भी भूल गई है, और वह दौड़ती हुई इस त्रुटिको पूरा करने गई।

झोंपड़ेमें प्रवेश करके उसने एक दीपक जलाया और उसे एक छोटेसे आलेमें रखकर वह घुटने टेककर बैठ गई। उसकी आँखें बन्द हो गईं···और कुछ ही क्षणमें वह इस संसारसे परे कहीं पहुँच गई।

एक अभूतपूर्व घटना घटी। किसीने किवाड़ खटखटाये। सुखदाका ध्यान भंग हो गया, और उसने चौंककर कहा—"कौन ?"

कोई उत्तर नहीं आया, पर किवाड़ पहलेसे भी ज़ोरसे खटखटाये जाने लगे।

सुखदा क्षणभर सोचती रही, खोलूँ या न खोलूँ ? इस असमयमें कौन आया है ? एकाएक हिन्दू-समाजके क़ानूनोंका एक पुलिन्दा ही उसकी आँखोंके आगेसे हो गया—समय, परिस्थिति, एकान्त, विधवा और सबसे बड़ी चीज़, हिन्दू-धर्मकी नाक, लज्जा···

उसके प्रश्नका बुद्धिने कोई उत्तर नहीं दिया ; किन्तु किसी अज्ञात प्रेरणासे उसने उठकर किवाड़ खोल दिया, और गम्भीर स्वरमें पूछा—"कौन है ?"

एक युवकने तनिक आगे बढ़कर धीमे स्वरमें कहा—"मैं हूँ, बहिनजी ! आपको नमस्कार करता हूँ।"

सुखदा विस्मयमें कुछ बोली नहीं, स्थिर भावसे उसके मुखकी ओर देखती रही। मुखकी ओर देखते ही देखते उसने बहुतसी बातें देख लीं।

युवकके शरीरपर कपड़े अधिक न थे—एक धोती घुटनों तक बँधी हुई थी और गलेमें एक फटी कमीज़। हाथमें एक छोटीसी पोटली-सी थी। सुखदाने यह भी देखा कि युवकके शरीरपरके कपड़े वर्षाके नहीं, किसी अधिक गदले पानीसे भींगे हुए थे, और हाथकी पोटली प्रायः सूखी थी। वस्त्रोंसे तो वह बिलकुल साधारण गँवार मालूम होता था, किन्तु उसका मुख मानो किसी आवरणके भीतरसे भी कह रहा था—मैं पढ़ा-लिखा हूँ, सभ्य हूँ, सुसंस्कृत हूँ।

सुखदाको चुप देखकर युवक फिर बोला—"बहिनजी, मुझे यहाँ रात-भरके लिए आश्रय मिल सकता है ?"

सुखदा सहसा कोई उत्तर नहीं दे सकी, फिर उसने अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा—"आप कौन हैं, मैं जानती भी नहीं।"

"मैं एक बिलकुल साधारण व्यक्ति हूँ। कष्टमें होनेके कारण रात-भरके लिए आश्रय माँगता हूँ। इससे अधिक आप क्या जानना चाहती हैं ?"

"आप स्वयं समझ सकते हैं।" फिर कुछ हिचकिचाकर—"मैं विधवा हूँ और यहाँ अकेली रहती हूँ।"

युवकने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—"अच्छा ?" और चुप हो गया।

"आप और कहीं नहीं जा सकते ?"

युवक एक अत्यन्त सरल-सी हँसी हँसकर बोला—"नहीं।"

सुखदाको वह हँसी अच्छी नहीं लगी। वह उसे समझ नहीं सकी। उसने सन्देहके स्वरमें पूछा—"क्यों, आप आये कहाँसे हैं ?"

"जमुना पारसे आया हूँ।"

"देहलीसे ?"

"जी हाँ।"

"तो यहाँ कैसे आये ? सड़क तो इधर नहीं आती। पुलके पास ही क्यों नहीं ठहरे ?"

"मैं पुलपर से नहीं आया।"

"तो ?"

"यहीं सामने तैरकर आया हूँ।"

"हैं ? जमुना तैरकर ? आज—अभी ?"

युवक फिर हँसकर चुप रह गया।

थोड़ी देर बाद सुखदा बोली—"आपने अपना जो परिचय दिया है, उससे मेरा सन्देह बढ़ना ही चाहिए।"

युवकका चेहरा उतर गया। वह बोला—"ठीक है।"

थोड़ी देर फिर दोनों चुपचाप एक दूसरेको देखते रहे। दोनों मानो एक दूसरेका माप ले रहे थे। फिर युवकने मानो अन्दर-ही-अन्दर किसी निश्चयपर पहुँचकर कहा—"आप मुझे थोड़ी देरके लिए अन्दर आने दें, तो आपको सन्तोष हो जायगा।"

सुखदा कुछ कह भी न पाई थी कि युवक अन्दर चला आया। तब सुखदा भी धीरे-धीरे झोंपड़ेके मध्यकी ओर चली। एक ओर एक छोटी-सी चौकी पड़ी थी, उसीकी ओर इशारा करके युवकसे बोली—"बैठ जाइये।"

युवक क्षणभर खड़ा ही रहा, फिर बैठ गया। सुखदा उससे कुछ दूरपर खड़ी रही।

"आप क्या जानना चाहती हैं, जिससे आपको सन्तोष हो जाय ?"

सुखदाने बिना किसी कौतूहलके कहा—"आप स्वयं ही कुछ बताना चाहते हैं, मैंने तो कुछ नहीं पूछा।"

युवकने एक तीव्र दृष्टिसे उसकी ओर देखा, और वह बोला—"अच्छा, ऐसे ही सही। तो सुनिये। मैं दो-तीन सालसे इसी प्रकार मारा-मारा फिरता हूँ। आम तौरपर तो अपना कुछ-न-कुछ प्रबन्ध रहता ही है, और काम चल जाता है। किन्तु कभी-कभी अवस्था बहुत बुरी हो जाती है—हमारे लिए इस विराट ब्रिटिश साम्राज्यमें कहीं पैर रखनेको भी स्थान नहीं रहता! तब हम इधर-उधर मारे फिरते हैं कि कहीं कुछ समयके लिए हमें आश्रय मिल जाय। फिर हम अपना अस्तित्व मिटाकर, एक नया और मिथ्या रूप धारण करके ही उस साम्राज्यमें स्थान पाते हैं, जिसमें हमारी सचाईके लिए स्थान नहीं।"

सुखदा टोककर कहनेको हुई—"आपकी बात मेरी तो कुछ समझमें भी नहीं आई।' किन्तु जब यह कहनेके लिए उसने मुँह खोला, तब अपना प्रश्न सुनकर उसे स्वयं आश्चर्य हुआ—"आप खाना खा चुके हैं ?"

युवकने मुसकराकर कहा—"हाँ, कल शामको तो खाया था।"

सुखदा झोंपड़ेके एक सिरेके ताककी ओर जाती-जाती बोली—"तो अब तक क्यों नहीं बताया था ? इतना तो मैं कर ही सकती हूँ!"

उसने ताकमें से कुछ रोटी, साग और केले निकाले, और फिर बोली—"साग ज़रा गर्म कर लाऊँ।" यह कहकर बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये हुए वह झोंपड़ेके पिछली ओर सटे हुए एक छोटेसे छप्परके नीचे चली गई।

एक कोनेमें एक छोटेसे लकड़ीके बक्सपर आठ-दस किताबें पड़ी थीं। युवकके मनमें एक क्षीण कौतूहल हुआ कि उठकर देखें क्या पुस्तकें हैं, पर उसके शरीरपर एक सम्मोहिनी थकान छाई हुई थी, वह नहीं उठा। बक्ससे हटकर उसकी आँखें दीयेवाले आलेकी ओर पहुँची। उसने देखा, आलेके ऊपर, एक लकड़ीके तख्तेपर, एक छोटीसी धातुकी प्रतिमा रखी है, जिसके कुछ अंश उस अप्रत्यक्ष प्रकाशमें चमक रहे थे। प्रतिमाके पैर शायद फूलोंसे ढके हुए थे। युवकके मनमें प्रश्न हुआ कि किसकी प्रतिमा है; किन्तु यह प्रश्न बौद्धिक था, इसमें स्वाभाविक कौतूहल नहीं था। उसकी आँखें उस प्रतिमासे भी हट गईं। वह छतकी ओर देखने लगा। छतपर किसी चीज़का एक छोटासा गोल प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। युवकने ज़रा घूमकर देखा कि वह दीयेका प्रकाश था, जो एक छोटे शीशेसे प्रतिबिम्बित हो रहा था। उस शीशेके पास ही एक लकड़ीकी कंघी पड़ी थी, और शीशेके कुछ ऊपर किसी गाढ़े रंगकी गिलाफमें कोई वाद्य यन्त्र टँगा था। पास टँगे हुए गज़से युवकने अनुमान किया कि वह सारंगी या वायलिन होगा। उसे कुछ विस्मय हुआ। वह अब घुटनोंपर सिर टेककर सोचने लगा—इस छोटेसे झोंपड़ेमें इतनी संस्कृति!

छप्परकी ओरसे सागके गर्म होनेका 'छिम-छ-छ-छिम-छिम' स्वर आ रहा था। एक बहुत क्षीण प्रतीक्षाके और अपने शरीरकी थकानकी बढ़ती हुई, किन्तु अभी तक मधुर अनुभूतिके साथ-ही-साथ युवकके मनमें यह प्रश्न उठा कि क्या

वह क्यों गाती भी होगी—स्वर तो बड़ा मधुर है, और वेदनाके सद्भावने उसे एक कल्पित purity (पवित्रता) भी दे दी है।

[४]

सुखदा जब रोटी लेकर झोंपड़ेमें आई, तब पहले तो वह सीधी युवकके सामने चली आई, किन्तु फिर एकाएक ठिठक गई।

युवक उसी प्रकार घुटनोंपर सिर टेके बिलकुल निश्चल पड़ा था, उसकी साँसें नियमित रूपसे चल रहीं थीं।

वह सो रहा था!

सुखदा थाली लिए खड़ी सोचने लगी—"क्या करूँ? इसे जगाऊँ या सोने दूँ? वह सो भी रहा है, या कुछ सोच ही रहा है? इसका निश्चय करनेके लिए उसने धीमे स्वरमें कहा—"मैं बड़ी देरसे थाली लिए खड़ी हूँ।"

कोई उत्तर नहीं मिला। सुखदा फिर असमंजसमें पड़ गई। उसकी आँखें हठात् युवकके शरीरकी आलोचना करने लगीं। युवकके पैरोंपर पोटली पड़ी हुई थी, जिसे वह बायें हाथसे थामे हुए था। दाहने हाथसे उसने बायें हाथकी कलाई पकड़ी थी, और इस प्रकार घिरे हुए अपने घुटनोंपर सिर रखे हुए बैठा था। उसकी तनी हुई भुजाओंकी पेशियाँ उभर रही थीं, किन्तु फिर भी ऐसा जान पड़ता था कि वे भूखी हैं। फटी हुई कमीज़में से कन्धेके नीचेका कुछ अंश दीख पड़ता था। पीठ यों झुकी हुई थी, मानो ऐटलसका बोझ उसीके ऊपर आ पड़ा हो!

देख-भालकर सुखदाकी दृष्टि फिर उसी पोटलीपर जा पड़ी। इसमें क्या है? अवश्य कोई मूल्यवान वस्तु होगी; नहीं तो वह क्यों उसे हाथमें लिये रहता—क्यों सोते समय भी न छोड़ता? सुखदा उसे ध्यानसे देखने लगी। उसे भास हुआ—उसमें एक तो काला-सा चारखाना कोट है, और उसके अन्दर कुछ लिपटा हुआ है। क्या?

—कहीं यह व्यक्ति चोर या हत्यारा तो नहीं है?

—इसे जगाकर बाहर निकाल दिया जाय?

—आश्रय दिया जाय?

—रोटी-पानी?

—धमकानेपर यदि वार कर बैठे?

—पर इतना भोला क्यों मालूम होता है?

—बाढ़में जमुना तैरकर पार कर आया?

—कपड़े अभी तक गीले ही हैं!

—फिर भी सो रहा है!

—पागल है?

सुखदाने धीरेसे थाली ज़मीनपर रख दी और छप्परकी ओर लौट गई। वहाँसे एक जलती हुई अंगीठी लेकर आई, और युवकके पास ही रखकर खड़ी हो गई। क्षणभर वह अनिश्चयमें खड़ी रही; फिर उसने युवकके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—"उठिये।"

युवक नहीं उठा।

सुखदाने उसे हिलाया। युवकने सोते-ही-सोते कहा—"क्या है, उमा?" और फिर चौंककर जाग पड़ा। जागते ही कुछ लज्जित स्वरमें बोला—"मैं कुछ अनाप-शनाप तो नहीं बक गया?"

सुखदाने गम्भीर भावसे कहा—"नहीं तो? क्यों?"

"मैं सो गया था; मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैंने सोते-सोते कुछ कहा था।"

सुखदाने अपने स्वरको स्वाभाविक रखनेकी चेष्टा करते हुए कहा—"नहीं", फिर बोली—"खाना तैयार है, आप खावें।" कहकर थाली उसके सामने रख दी।

युवकने कृतज्ञतापूर्वक कहा—"मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है; पर इतना सन्तोष है कि जहाँ तक हो सकता है, मैं किसीको कष्ट न देनेकी चेष्टा करता हूँ।" यह कहकर वह सिर झुकाये हुए धीरे-धीरे खाना खाने लगा।

सुखदा बोली—"आपके कपड़े सुखानेके लिए अंगीठी भी ले आई हूँ। वह पोटली मुझे दे दें, मैं उन्हें सुखा देती हूँ।"

युवकने जल्दीसे कहा—"नहीं-नहीं, उन्हें सुखानेका कष्ट न करें।" किन्तु उसके कहते-कहते सुखदाने पोटली खोल ही तो डाली।

एक कोट था, उसके अन्दर लिपटी हुई एक गांधी टोपी, और टोपीके अन्दर—एक रिवाल्वर!

सुखदाने जल्दीसे उसे भूमिपर रख दिया, और कुछ सहमकर युवककी ओर देखने लगी। युवकने कोमल स्वरमें कहा—"इसे मुझे दे दें।"
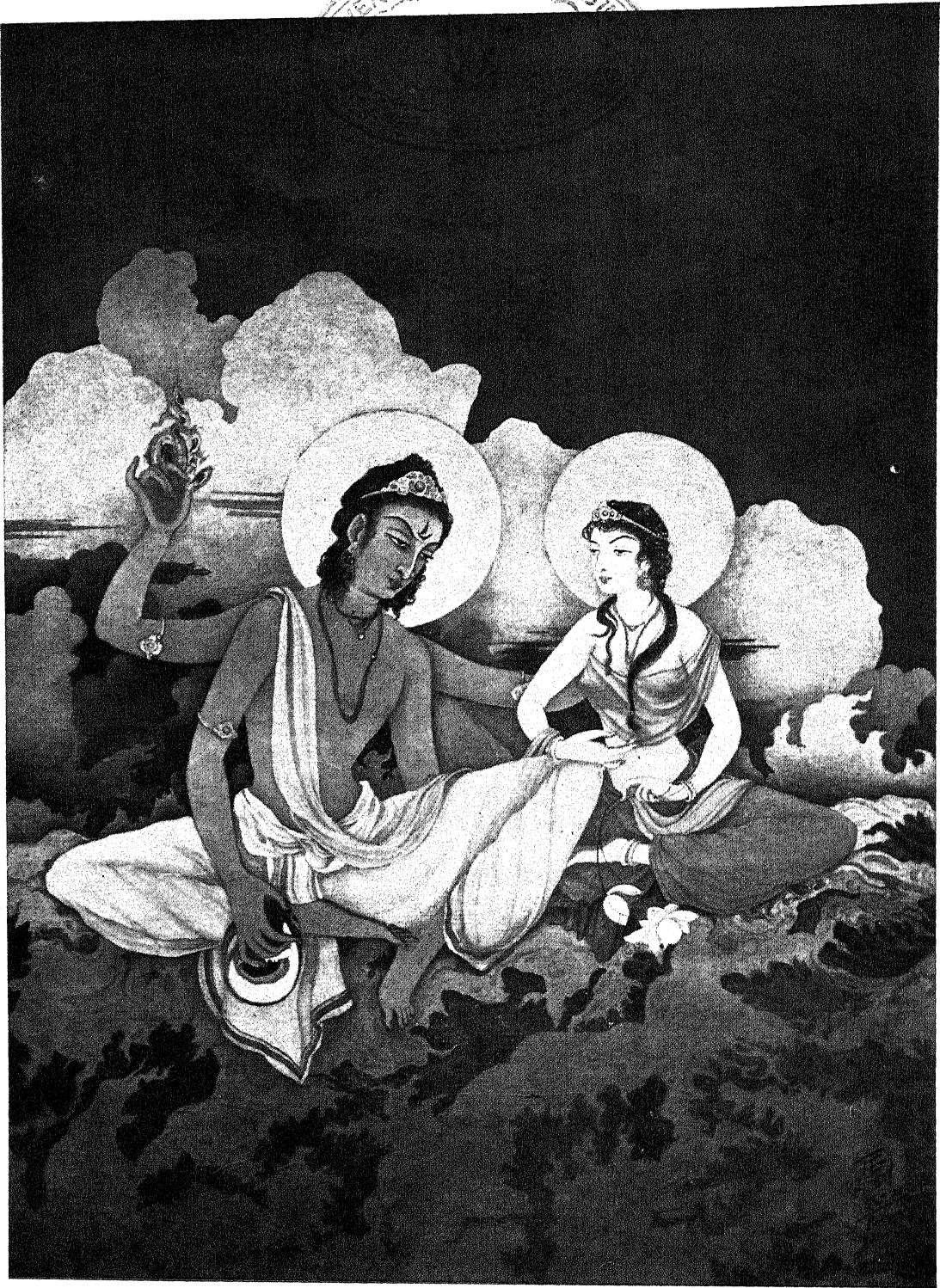
विष्णु और लक्ष्मी

[श्री चिन्तामणि कर
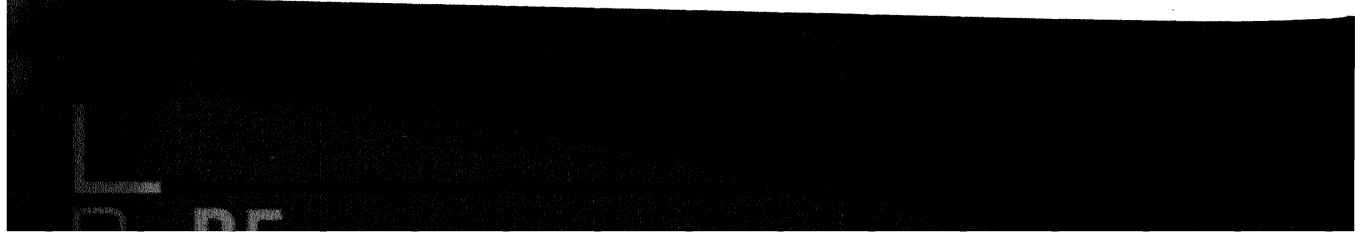
सुखदा निश्चल खड़ी रही। वह सोचने लगी, इसे अभी कह दूँ, चला जाय? यह सोचते ही सोचते उसने कहा—"आप अपने बदनपर के कपड़े भी सुखा लें।"

युवक कुछ झिझकते हुए बोला—"पर मेरे पास और पहननेको कुछ नहीं है।"

इसका उत्तर स्पष्ट था, किन्तु सुखदा सोचने लगी, जब मैं इसे यहाँसे निकाल ही रही हूँ, तब क्यों अधिक दया दिखाऊँ? इसलिए उसने यह नहीं कहा कि मैं और कपड़े दे सकती हूँ। वह युवकके पाससे हटकर दीयेके पास चली गई, और स्थिर दृष्टिसे प्रतिमाकी ओर देखने लगी। देखते-देखते न-जाने वह किस विचारमें लीन हो गई, उसे युवकका ध्यान ही न रहा।

युवक जब खाना खा चुका, तब उसने सुखदाकी ओर देखा, किन्तु उसे इस प्रकार तल्लीन देखकर वह कुछ बोला नहीं, स्वयं उठकर दबे-पाँव छप्परकी ओर चला गया। वहाँ जाकर हाथ धोकर वह लौटा, तो उसने देखा, सुखदा जहाँ खड़ी थी, वहीं घुटने टेके बैठी है, किन्तु हाथ जोड़े हुए नहीं। उसे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। युवक फिर लौटकर छप्परमें चला गया, और वहाँसे सुखदाके उठनेके स्वरकी प्रतीक्षा करता हुआ और बाहर होती हुई वर्षाका स्वर सुनता हुआ बैठ रहा।

[५]

भीतरसे सुखदाने पुकारा—"आप कहाँ हैं?"

युवकने चौंककर कहा—"आया!" और झोंपड़ेके भीतर चला गया।

उसके अन्दर आते ही सुखदाने प्रश्न किया—"आपका नाम क्या है?"

एक क्षण—बहुत छोटेसे क्षणके बाद युवकने उत्तर दिया—"मेरा नाम दिनेश है।"—उस क्षणमें उसने देख लिया कि विधवाके स्वरमें विरोध या वैमनस्य तो नहीं, किन्तु एक प्रकारका कवचबद्ध दूरत्व, एक स्वरक्षणात्मक कठोरता अवश्य है।

रिवाल्वरकी ओर इंगित करके—"यह क्या है?"

उत्तरमें एक प्रश्न-भरी दृष्टि मानो कहती हो—"क्या आप नहीं जानतीं?"

"यह क्यों?"

"आत्म-रक्षाके लिए।"

"किससे? सच क्यों नहीं कहते, हत्याके लिए?"

"कभी नहीं। मैं हिंसाको घोर पाप समझता हूँ।"

"आप पुलिससे बचते फिरते हैं—मफ़रूर हैं?"

"यही समझ लीजिए।"

"तो आप मेरे पास क्यों आये?"

"शरण माँगने।"

"मेरे पास क्यों?"

"मैंने नदी पार की, तो यही स्थान पहले दीखा। और मुझे राह नहीं मालूम थी।"

"आपने नदी क्यों पार की—पुलसे क्यों नहीं आये?"

"पुलिसने मेरा पीछा किया था—मैं और किसी प्रकार बच नहीं सकता था। इसलिए कोट उतारकर जमुनामें कूद पड़ा।"

"तो पुलिस यहाँ भी आ सकती है?"

"हाँ, सम्भव है। पर मैं अँधेरेमें कूदा था, उन्हें कुछ अनुमान नहीं होगा कि कहाँ कूदा—या कूदा भी था या नहीं। और फिर ऐसी बाढ़में जमुना पार कर लेना भी आसान नहीं, वे शायद समझें कि डूब गया होगा—या नीचे बह गया होगा।"

"अगर आप यहाँ पकड़े जायँ, तो मुझे भी दंड मिल सकता है?"

"हाँ, मुझे आश्रय देना जुर्म है। और अगर आप मुझे गिरफ़्तार करा दें, तो बहुत कुछ लाभ भी हो सकता है।"

सुखदाने युवककी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा, किन्तु उसके मुखपर तिरस्कारका भाव न था। फिर एकाएक बोली—"आपने यह सब मुझे क्यों बतलाया? अनजानेमें—"

"आपने पूछा था। मैं झूठ भी बोल सकता था, पर आपको धोखेमें रखनेकी इच्छा नहीं हुई।"

"डरे नहीं?"

"नहीं, विश्वासघात आसान नहीं है—विशेषत: वहाँ, जहाँ विश्वास हो।"

"तो आपने मेरी अनुमति प्राप्त करना ज़रूरी समझा? आप जानते हैं, मैं अकेली हूँ, आपको यहाँसे निकाल नहीं सकती।"

"आपका जो अभिप्राय है, उसकी मैंने कल्पना भी नहीं की।"

"क्यों ?"

'आप अगर निकाल दें, तो मैं बाहर भी रात बिता सकता हूँ। कष्ट होगा, मगर कष्टमात्र पर्याप्त नहीं है।"

"क्या मतलब ? विशेष परिस्थितिमें आप मेरी इच्छाके विरुद्ध भी यहाँ रहते ?"

"हाँ, यदि व्यक्तिगत कष्टके या अपने प्राणोंके बचावके अतिरिक्त और कारण होता तो—"

"अगर मैं लड़ती तो—क्या मार डालते ?"

युवकने थोड़ी देर सोचकर, अधिक गम्भीर होकर कहा—"शायद—नहीं।"

"शायद ! निश्चय नहीं है ?"

"आप स्त्री हैं, इसलिए शायद नहीं। पर परिस्थिति भी कुछ चीज़ होती है—हम कल्पना नहीं कर सकते।"

"अच्छा।"—कहकर सुखदा धीरे-धीरे उधर टहलने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने कठोर स्वरमें कहा—"अपने कपड़े पहन लो।"

विस्मयसे—"क्यों ?"

"मैं तुम्हें आश्रय नहीं दे सकती—तुम जाओ !"

एक क्षणके, अंशभरके लिए युवक अप्रतिभ हो गया, किन्तु फिर बोला—"आपकी जो आज्ञा।"

वह चुपचाप कोटमें रिवाल्वर लपेटने लगा।

सुखदाने कहा—"इसे पहन क्यों नहीं लेते ?"

"वर्षा हो रही है, रिवाल्वर भीग जायगा।"

"हूँ।"

एक क्षण चुप। फिर युवकने पूछा—"सड़क किधर मिलेगी, यह बता दें।"

"यहाँसे बाएँ हाथ चलते जाना। थोड़ी दूर जाकर एक-दो खाली खेत आयेंगे; वहाँ फिर मुड़ जाना। बस।"

फिर थोड़ी देर निस्तब्धता। युवककी पोटली तैयार हो गई। उसे बगलमें लेकर वह बोला—"अच्छा, अब आज्ञा दें। आपने जो भोजन दिया है, उसके लिए धन्यवाद। और आपने आश्रय देनेसे पहले जो भी प्रश्न पूछे, उन्हें तो अब भूल ही जावें—"

'हूँ' से अधिक सुखदा कुछ न कह सकी।

युवक चल पड़ा। वह झोंपड़ेके किवाड़पर पहुँच गया, पर सुखदा किवाड़ खोलने या बन्द करनेको भी आगे नहीं बढ़ी।

युवकने किवाड़ खोला, और बाहर होकर उसे पुन: बन्द करनेके लिए मुड़ा। तब, एकाएक सुखदाने वहींसे पूछा—"उमा कौन है ?"

युवक चौंक पड़ा। किवाड़को थामे-थामे बोला—"कौन उमा ?"

"उमा, कोई भी उमा ?"

"उमा—थी। मेरी बहनका नाम था।" कहकर युवकने किवाड़ बन्द कर दिया।

[६]

सुखदा अब तक मंत्रमुग्ध-सी खड़ी थी, अब चौंकी। एकाएक उसके मनमें दो प्रश्न हुए—"मैंने यह क्या पूछा ? मैंने उसे क्यों निकाल दिया ?"

अपने शरीरपर से उसका नियन्त्रण मानो एकाएक टूट गया; उसका रेशा-रेशा चौकन्ना होकर किसीको खोजने लगा; उसके अंग-प्रत्यंगको यह अनुभूति हुई कि बाहर गिरती हुई वर्षाकी बूँदें दबे स्वरसे कह रही हैं—"समय बीता जा रहा है—बीता जा रहा है..."

सुखदा कमानकी तनी हुई प्रत्यंचाकी तरह उछलकर किवाड़पर पहुँची, और उसे खोलकर आँखें फाड़-फाड़कर बाहरके सजीव और चलायमान अन्धकारको चीरकर देखनेकी चेष्टा करने लगी।

कहीं कुछ नहीं दीख पड़ा। सुखदाने आवाज़ दी—"कहाँ चले गये ?" पर उत्तर नहीं मिला...उसने फिर पुकारा—"दिनेश, चले आओ, लौट आओ ! तुम्हें आश्रय मिलेगा !"

उत्तरमें वही वर्षाकी बूँदोंकी अपरिवर्त्त नूतनता...

सुखदा लौट आई। झोंपड़ेके मध्यमें आकर उसके अन्धे पाँव एकाएक रुक गये, और वह धप्-से भूमिपर बैठ गई।

मैंने उसे क्यों निकाल दिया ? मैंने उसे वापस क्यों बुलाया ?

मैंने उसे पहले ही क्यों भीतर आने दिया ? अब उसने आवाज़ सुनी होगी या नहीं ?

अब लौटकर आ सकता है ?

सुखदाने देखा, उसके हाथ काँप रहे थे। क्यों, यह वह स्वयं नहीं सोच सकी। वह एकाएक लज्जित हो गई, और उठकर दीयेके नीचे, प्रतिमाके आगे, घुटने टेककर बैठ गई। प्रतिमाके पाससे ही उसने एक छोटा-सा फ्रेम उठाया, और क्षणभर उसमें जड़े हुए फोटोको देखती रही। उसके मुखने एक पवित्र, किन्तु नीरस मुद्रा धारण की; उसकी आँखें बन्द हो गईं, वह अस्पष्ट शब्दोंमें शायद प्रार्थना करने लगी।

आकाशमें से किसीकी ध्वनि आई—"आपने मुझे बुलाया था ?"

सुखदाके हाथसे फ्रेम गिर पड़ा। उसने उसे जल्दीसे उठाकर यथास्थान रख दिया। फिर वह धीरे-धीरे किवाड़पर गई, और उसे खोलकर एक ओर खड़ी हो गई।

दिनेशने फिर पूछा—"आपने मुझे क्यों बुलाया था ?"

सुखदाने धीरेसे कहा—"आप रात-भर यहाँ ठहर सकते हैं।"

युवक सहसा अन्दर नहीं आया। बोला—"नहीं, आप आवेशमें आकर कोई ऐसा काम न करें, जिसके कारण बादमें आपकी अन्तरात्मा आपको कोसे। मैं तो—"

"आप चले आइये। मैं सोच चुकी।"

युवक अन्दर चला आया। सुखदाने किवाड़ बन्द किये। फिर एक कोनेकी ओर जाकर बिस्तर बिछाती हुई बोली—"आप थके हुए होंगे, सो जाइये।"

बिस्तर बिछाकर एक बार झोंपड़ेके चारों ओर दृष्टिपातकर वह पिछले छप्परकी ओर जाने लगी।

युवक अब तक चुपचाप खड़ा था। उसे जाते देखकर बोला—"और आप ?"

"मैं भी सो जाऊँगी, छप्परमें बहुत स्थान है।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं छप्परमें चला जाता हूँ।"

"नहीं, आप अतिथि हैं, ऐसा नहीं हो सकता।"

"मैं शरणागत हूँ। आप मेरे लिए इतना कष्ट न करें।"

"आप मेरे अतिथि हैं। आपको मेरे प्रबन्धमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

युवक धीमे स्वरमें कुछ डरते-डरते बोला—"आप मुझे विवश न करें, नहीं तो मैं आपका आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकूँगा।"

सुखदा क्षणभर चुप रह गई। फिर उसने कहा—"जैसी आपकी इच्छा।" और दो-तीन कम्बल इत्यादि निकालकर युवकको दे दिये। युवक उन्हें लेकर छप्परमें चला गया।

सुखदा धीरे-धीरे उस झोंपड़ेमें टहलने लगी। थोड़ी ही देर बाद उसने सुना, युवक बिलकुल निश्चिन्त और निःस्वप्न नींदकी नियमित साँसें ले रहा है। तब वह छप्परसे कुछ हटकर, झोंपड़ेके दूसरी ओर जाकर टहलने लगी। ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जा रही थी, त्यों-त्यों उसके टहलनेकी गति अधिक तीव्र होती जा रही थी।

वर्षा कुछ देरके लिए बन्द हो गई थी, इसलिए सुखदा बहुत दबे-पाँव चल रही थी, ताकि दिनेशकी नींद न भंग होने पावे।

[७]

उसके भीतर एकाएक ही कुछ जाग उठा—या कुछ टूट गया। जिस प्रकार मदमत्त व्यक्तिके ऊपर ठंडा पानी पड़नेसे उसका खुमार एकाएक टूट जाता है—या उसकी साधारण चेतना जाग उठती है। उसे मालूम हुआ, अब तक वह जो कुछ करती रही थी, एक नशेमें कर रही थी। बाह्य वस्तुओंकी अनुभूति उसे होती थी, पर नहीं होती थी। इन्द्रियाँ अपना काम करती थीं, किन्तु मस्तिष्क उनकी भाषाको कुछ कालके लिए भूल गया था, या समझता नहीं था...और दिनेशके सो जानेके कुछ क्षण बाद ही उसने जागकर अपने सामान्य कर्म आरम्भ कर दिये थे—अब वह एक अपूर्व चेतनासे धधक उठा था।

उसके मनमें रौरव मचा हुआ था...प्रश्नोंका तूफ़ान इतने ज़ोरोंसे उठ रहा था कि वह एक प्रश्नको दूसरेसे अलग भी नहीं कर पाती थी। मानो उसका समूचा मस्तिष्क विद्रोही हो गया हो, और हज़ारों नई माँगें उपस्थित कर रहा हो—माँगें,

जो एक दूसरेसे मिलकर एक विराट कोहराम हो गई थीं—एक उद्दीप्त ललकारका रूप लेकर पूछ रही थीं—"तूने क्या किया ?"

सुखदा इस रौरवसे घबड़ा उठी। उसने दीयेकी बत्तीको सरकाकर तेज़ कर दिया, और फिर प्रार्थना करने बैठ गई···

"ईश्वर मुझे शान्ति दे ! मेरे मनमें जो रौरव मचा हुआ है, इसका शमन कर दे, ताकि मैं जान पाऊँ कि मैं क्या चाहती हूँ। मुझे सद्‌बुद्धि दे···

"मैंने अच्छा किया या बुरा, मैं नहीं जानती—इसमें संसारका लाभ है या हानि, मुझे नहीं मालूम···पर मैं यह भी नहीं जानती कि मैंने अपनी आत्मासे विश्वासघात किया है या नहीं—यही मुझे बता दे ! यदि मैंने किसी मोहमें पड़कर, जान-बूझकर बुरा किया है, तो मुझे दंड दे ; मुझे उससे शान्ति मिलेगी। यदि मैंने ऐसा नहीं किया, तो भी कह दे—मुझे शान्ति मिलेगी।

"ईश्वर ! इस अनिश्चयको दूर कर दे—क्षणभर, एक अत्यन्त छोटे क्षणभर, के लिए प्रकट होकर मेरी प्रार्थनाका उत्तर दे दे !"

पर कहाँ ? यदि ईश्वर प्रत्येक प्रार्थनाकी अत्यन्त सूक्ष्म कालमें ही पूर्ति कर डालें, तो कुछ ही दिनोंमें उनका अस्तित्व ही मिट जाय ! उनका अस्तित्व ही इस बातपर निर्भर करता है कि आकांक्षाके समय कुछ न मिले, उपभोगके समय दरिद्रता हो, विरक्तिमें लोभ हो ; कि वे याचनाके समय दिवालिया और समृद्धिके समय दयालु हों···

जब उस मूर्तिमती प्रतीक्षाकी काफ़ी उपेक्षा करके भगवान अपनी सर्वशक्तिमत्ता दिखा चुके, तब सुखदा चुप हो गई, और कुछ सोचने लगी। किन्तु प्रार्थनामें वह जिस प्रकार अपने भावोंका उच्चारण कर रही थी, उसी प्रकार अब भी करती रही।

"प्रपीड़ितको क्या आश्रय न दिया जाय ? पर वह तो हत्या भी कर सकता है ! आत्म-रक्षा क्या हत्या है ? पर और भी तो संसार बसता है, उनकी भी तो आत्म-रक्षा होती है। अत्याचारका विरोध नहीं करना चाहिए ? पर अत्याचारका विरोध अत्याचारसे नहीं होता।

"इसका निश्चय मैं नहीं कर सकूँगी—बड़े-बड़े नहीं कर सके।

"मैंने पहले उसे निकाल दिया था। वह मुझसे आश्रय माँगता था, पर उसे मेरे जीवनकी क़द्र नहीं ? कहता था, स्त्रीपर हाथ नहीं उठाऊँगा—कहता था कि उसके भी आदर्श हैं ; पर अगर मैं उसका विरोध करती, तो शायद मुझे मार डालता !

"मैंने क्या डरकर आश्रय दिया ? मैंने उसे निकाल दिया था, फिर बुलाया।

"क्यों ?

"उमा कैसी थी, उसके बारेमें कल पूछूँगी। उसे कितना याद करता होगा ?

"कहता था, मेरी बहन थी। अगर बहन न हो तो ? अगर—"

इससे आगे वह नहीं सोच सकी ; एकाएक उठ खड़ी हुई। अगर क्या ! अगर उमा उसकी प्रेमिका रही हो ! सुखदाको यह विचार असह्य प्रतीत हुआ। वह तीव्र गतिसे इधर-उधर टहलने लगी···यह कभी नहीं हो सकता—उसकी प्रमिका नहीं हो सकती ! नहीं हो सकती—वह ऐसा नहीं हो सकता !

सुखदा इस विचारको मनसे हटा नहीं सकी, न स्वीकार ही कर सकी ! वह उन्मत्तकी भाँति चलती रही, इधरसे उधर, उधरसे इधर, परन्तु उसके पाँव दबी चाँपसे पड़ रहे थे।

उसका मुँह लाल हो आया—फिर पीला पड़ गया। वह खड़ी हो गई। प्रतिमाके पास पड़ा हुआ फ्रेम उठाकर, वह उसकी ओर देखने लगी, और बोली—"क्यों मैं पापिनी हूँ ? अपना व्रत तोड़ा है ? तुम्हारे प्रति अपने कर्त्तव्यको भूल गई ? नहीं तो क्यों यह विचार असह्य होता—असह्य है ?

"पर अगर तुम हत्यारे होते, और मैं तुमसे घृणा करती होती, तो क्या मैं तुम्हें निकाल देती ?"

किसी तिरस्कार-भरी हँसती आवाज़ने उसके कानमें कहा—"तो दिनेश क्या तेरा पति है ?"

फिर वही आरक्त मुद्रा, वही उन्मत्त चाल, इधर-से-उधर, उधर-से-इधर······

उसके रक्तमें विद्रोह जाग रहा था। यह कैसा अत्याचार है, कैसा बन्धन ? वह क्या मेरा बन्धु नहीं ? वह क्या मानव नहीं ? अगर मैं विधवा हो गई हूँ, समाजने मुझे जूठनकी तरह अलग फेंक दिया है, तो मैं समाजके अहसानसे मुक्त हूँ ! मैं अपना कर्तव्य जो समझूँगी, करूँगी !

और पति ?

इसमें क्या अनौचित्य है ? अगर उसे आश्रय देना मेरा धर्म था, तो वैधव्य उसमें क्यों बाधक हो—पति भी क्यों हो ?

फिर वही तिरस्कारकी हँसी, वही उन्मादक प्रश्न—"तू उससे प्रेम करती है ?"

सुखदाने चित्र वहीं रख दिया, हाथसे बत्ती दबाकर दीपक बुझा दिया, और फिर बड़ी तीव्र गतिसे टहलने लगी। उसके पैरोंकी दबी हुई चाँपमें भी एक ललकार थी,—अपनेको, या मानवताको, या ईश्वरको, न जाने······

यही है मानवताका जीवन—यह अन्धकारमें अशान्ति, उन्मादमें जलन, विश्वासमें अनिश्चय, सम्पन्नतामें विद्रोह ; रात्रिकी प्रशान्त गतिमें यह अपूर्ति और ललकार······

[८]

बादल फट रहे थे। रात बीत चुकी थी।

अभी उषाके प्रकाशका भास भी नहीं होता था ; किन्तु मानो अन्धकारका रंग बदल गया था।

सुखदा थक गई थी। उसके उन्मादकी पराकाष्ठा धीरे-धीरे ढीली पड़कर कुछ उतर आई थी।

वह झोंपड़ेके किवाड़ खोलकर दहलीजपर बैठ गई, और बाहर देखने लगी।

दूरपर जमुनाके विशाल वक्षका कुछ अंश दीख रहा था। उसका जल पहलेका-सा क्षीण 'सर–सर–सर' छोड़ अब खेतोंको नाँघता हुआ एक दर्प-भरा 'भूल–भूल–भूल' गुर्राता हुआ चला जा रहा था। उससे कुछ इधर दो वृक्षोंके आकार कुछ अस्पष्टसे नज़र आते थे, जिनकी ओर सुखदा देख रही थी। इन्हींमें से एक वह 'पगोडा वृक्ष' था, जिसके नीचे उसने इतनी बार अपने हृदयकी परीक्षा ली थी।

सुखदाको एकाएक ऐसा ज्ञात हुआ, उस वृक्षके नीचे कोई खड़ा है। वह ध्यानसे उसकी ओर देखने लगी, उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई अपनी आँखोंपर हथेलीकी आड़ दिये दूर कहीं देखनेका प्रयत्न कर रहा है ; पर देर तक देखनेपर भी जब वह आकार हिला-जुला नहीं, तब सुखदाकी दृष्टि उसपर से हटकर बहुत दूरपर जगमगाती हुई जमुनाके पुलकी लैम्पोंकी ओर गई। उसपर कईएक लैम्पें चलती हुई नज़र आ रहीं थीं—देहलीसे मेरठकी ओर। सुखदाने सोचा—"ये मोटरें होंगी", और फिर उन्हें भूल गई। वह फिर वृक्षकी ओर देखने लगी—पर अब वह आकार, जिसकी ओर उसका ध्यान पहले आकृष्ट हुआ था, वहाँ नहीं था।

न-जाने क्यों सुखदाका ध्यान एकाएक फिर दिनेशकी ओर गया। उसकी आन्तरिक अशान्ति, जो कुछ क्षीण हो पड़ी थी, फिर धधक उठी—वही प्रश्न फिर उसके मनमें नाचने लगा—"मैंने क्या किया···मुझे क्या हो गया···"

वह उठकर अन्दर गई। दबे-पाँव छप्परके पास जाकर उसने देखा, वहाँ खाली कम्बल पड़े थे—दिनेश नहीं था।

उसका हृदय धक्-से रह गया। उसे ऐसा जान पड़ा, उसके मस्तिष्कपर फ़ालिज पड़ गया है···उसकी आन्तरिक अशान्ति भी मानो स्तम्भित हो गई।

पता नहीं कैसे, वह छप्परसे कुछ दूर तक चलकर आई, और खूँटीसे सारंगी और गज़ लेकर फिर पूर्ववत् दहलीज़पर आ बैठी। उसका शरीर क्या कर रहा है, यह वह स्वयं नहीं जानती थी।

उसकी उँगलियाँ गज़को इधर-उधर चलाने लगीं। तारोंसे दो-चार टूटे-से अनमिल स्वर निकलने लगे। धीरे-धीरे उनका प्रकार बदलता गया, और थोड़ी देर बाद वे एक प्रकारके संगीतमें परिणत हो गये—एक संगीत, जिसमें उत्कण्ठा और रुदन मिले हुए थे, जिसमें एक विराट भव्यताके साथ ही एक भयंकर नंगी निरर्थकता उबली पड़ती थी···वैसा ही जैसे किसी सम्पूर्ण जीवनीमें सब-कुछ रहने दिया गया हो, केवल एक उद्देश्य निकाल दिया गया हो।

थोड़ी देर बाद नदीमें कहीं एक 'छड़ाप !' शब्द हुआ ; किन्तु सुखदाने उसे सुनकर भी नहीं सुना। इस शब्दका कुछ अर्थ हो सकता है, यह विचार उसके सीमित मनपर उदित नहीं हुआ। वह उस समय अपने ही संगीतकी निरर्थकतामें बही जा रही थी।

उसका मन जागा तब, जब उसने सामनेसे बहुतसे बूटोंकी चाँप सुनी, और आँख उठाकर देखा कि कईएक सशस्त्र पुलिसके सिपाही और अफ़सर उसकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं।

[६]

एक हाथमें सारंगी और दूसरेमें गज़ लिए वह धीरे-धीरे उठकर खड़ी हो गई।

एक सिपाहीने उसके मुखपर टार्चका तीक्ष्ण प्रकाश डालते हुए कड़ककर पूछा—"कौन है तू? क्या नाम है?"

सुखदाने शान्त भावसे कहा—"मेरा नाम सुखदा है?"

"तेरे घरमें और कौन है?"

"मैं अकेली हूँ?"

सिपाही घरमें घुस आये। सुखदा किवाड़के एक तरफ़ खड़ी रही। सिपाहियोंने क्षणभरमें झोंपड़ेको देख डाला और छप्परमें घुसे। घुसते ही एकने पूछा—"यहाँ कौन सोया था।"

"मैं सोती हूँ।"

"और उसमें कौन सोता है, तेरा खसम?"—सिपाहीने झोंपड़ेवाले बिस्तरकी ओर इंगित करके पूछा।

"वहाँ कोई नहीं सोता, मैं विधवा हूँ।"

उसके इस शान्त उत्तरको सुनकर यदि सिपाही कुछ लज्जित हुआ तो उसने इसे प्रकट नहीं होने दिया।

इसी समय दो अंगरेज़ अफ़सर भी भीतर आ पहुँचे। सिपाही दोनों ओर हटकर खड़े हो गये। अफ़सरने पूछा—"तलाशी ली?"

"जी हाँ, कुछ नहीं मिला।"

"अच्छा, तुम लोग बाहर हो, हम इससे बातें करेंगे।"

सिपाही बाहर चले गये। सुखदा चित्रवत् खड़ी रही। जब सिपाही बाहर हो चुके, तब अफ़सर सुखदाके सामने खड़ा होकर बोला—"तुम जानती हो, तुमको कितनी सज़ा मिल सकती है।"

"मैंने क्या किया है?"

"तुमने एक मफ़रूर आदमीका मदद किया है। तुम्हारे पास इधर रातको सूर्यकान्त नामका एक डाकू और ख़ूनी आदमी रहा, जिसको पकड़ानेका पाँच हज़ार रुपया इनाम है।"

"आप भूलते हैं। यहाँ कोई नहीं आया। मैंने इस नामको कभी सुना भी नहीं है।" कहते हुए सुखदा सोच रही थी—'तो उसका असली नाम सूर्यकान्त था।'

"हूँ, सब मालूम पड़ जायगा।"

अब दूसरा अफ़सर बोला—"देखो, हमको सब पता लग गया है। हमको जमुनामें उसका लाश मिला है। वह पार जानेको था, पर डूब गया। तुम्हारे घरके बाहर उसके पैरका निशान भी है। तुम सच बता दोगी, तो छूट सकती हो, नहीं तो···"

सुखदाका हृदय धड़कने लगा···उसकी लाश! तो वह वापस भी तैरकर ही गया—क्यों? सुखदाको एकाएक याद आया, उसने वह 'छड़ाप्!' का शब्द सुना था। उस समय पुलपर से मोटरें आ रहीं थीं—ऐसे असमय में···

इस पीड़ामें, इस धड़कनमें भी एक विचित्र शान्ति थी। जिस प्रश्नका वह रात-भरमें उत्तर न पा सकी थी, उसका उत्तर उसे अब मिल गया। उसने बिलकुल उचित किया··· वह रात-भरकी कसक, वह जलन और अशान्ति और उनसे उत्पन्न हुए भूतकालके दृश्य, सब एक साथ ही बुझ गये, उसे ऐसा मालूम हुआ, सैकड़ों वर्षोंकी थकानके बाद उसे शैय्यापर लेट जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ हो।

उसे चुप देखकर पुलिस अफ़सरोंने समझा, उसपर कुछ प्रभाव पड़ा है। उन्होंने कहा—"हाँ, जल्दी कहो, जो कुछ कहना है। हम पूरी कोशिश करेंगे कि तुम छूट जाओ।"

सुखदाने दृढ़ स्वरमें कहा—"मुझे कुछ नहीं कहना है। मैंने सूर्यकान्तका कभी नाम भी नहीं सुना।"

अफ़सरने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—"अच्छा, तुम गिरफ्तार हो।" फिर उसने आवाज़ दी—"सिपाही!"

दो सिपाही अन्दर आये। अफ़सरने कहा—"इसको गिरफ्तार करके ले चलो।"

"अच्छा हजूर।"—कहकर सिपाही आगे बढ़ा।

सुखदाने कहा—"मुझे तैयार होनेके लिए पाँच मिनटका समय दीजिए।"

अफ़सरोंने आपसमें इशारा किया, फिर एक बोला—"अच्छा, हम दो मिनट दे सकते हैं।"

सिपाही रुक गया।

सुखदाने कहा—"आप बाहर जायँ।"

अफ़सरोंने घूरकर उसकी ओर देखा, पर फिर बाहर जाते-जाते बोले—"दो मिनटसे ज्यादा नहीं मिलेगा—जल्दी करो!"

सुखदाने किवाड़ बन्द कर लिये। छप्परसे एक लोटा

पानी लेकर उसने मुँह धोया, फिर एक चादर निकालकर कन्धोंपर डाल ली। एक बार धीरे-धीरे दृष्टि फिराकर उसने सारे झोंपड़ेको देख डाला। इस सबका अब कौन रखवाला होगा?

वह उस आलेके पास गई, जिसमें प्रतिमा रखी थी, और वहाँसे अपने पतिका चित्र उठाया। उसे फ्रेममें से निकालकर क्षणभर देखती रही, फिर धीरे-धीरे उसे फाड़ने लगी···दो, चार, आठ···सैकड़ों टुकड़े करके उसे प्रतिमाके पास ही रख दिया।

फिर उसने लकड़ीके बक्सपर पड़ीं किताबोंमें से दो-तीन चुनकर धोतीके छोरमें लपेट लीं।

क्षणभर वह झोंपड़ेके मध्यमें अनिश्चित खड़ी रही।

और क्या करना है? एक बार फिर उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देख लिया—यह उसकी विदा थी।

उसकी दृष्टि चौकीपर जाकर रुकी। रातकी बुझी हुई अँगीठी उसके सामने पड़ी थी।

सुखदाको याद आया, उसके पास कुल दो मिनटका समय था। वह क्षणभर अनिश्चित खड़ी रही, फिर एकाएक प्रार्थनाके लिए झुक गई। अपने देवताके आगे नहीं, अपने पतिके फटे हुए चित्रके आगे नहीं, परन्तु उस चौकीके आगे, जिसपर दिनेश—या सूर्यकान्त—बैठे-बैठे सो गया था···उसने घुटने भूमिपर टेक दिये, और सिरको धीरेसे चौकीपर नवा दिया।

उस अपने जीवनके अपूर्व एक मिनटमें उसने किससे क्या प्रार्थना की, कौन जाने···उसकी आत्माके सभी संस्कार, अच्छे या बुरे, नये या पुराने, एक पुरानी केंचुलकी तरह झड़ गये थे, वह निरावरण हो गई थी। सुखदाके मुखपर एक शान्ति थी, उस शान्तिमें वैराग्यकी, त्यागकी भावना स्पष्ट थी; किन्तु वह त्याग वैधव्यकी भाँति मलिन या उद्विग्न न था।

[१०]

किन्तु जब वह किवाड़ खोलकर बाहर आई, तब एकाएक उसके हृदयपर मानो कोई दैवी प्रकाश छा गया—उसे किसी दिव्य ज्ञानकी एक प्रखर रेखाने कहा—"ये झूठे हैं!"

सूर्यकान्त मरा नहीं, वह मर सकता ही नहीं था, यह विचार भी असम्भव था—असम्भवसे भी अधिक असम्भव···

वह ज्ञान-रेखा कह रही थी—"ये झूठे हैं! वह नहीं मरा! तुम्हारे कर्मकी सफ़ाईके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसकी मृत्यु हो गई हो!"

सुखदा इस ज्ञानके प्रकाशके आगे यह सोच ही नहीं सकी कि उसे कैसे पुलिसके कथनपर विश्वास हो गया—चाहे क्षणभरके लिए ही। जब उसे याद आया कि यह समाचार सुनकर ही उसकी आत्माको पीड़ाके साथ-साथ शान्तिका अनुभव हुआ था, तब उसका हृदय लज्जासे भर गया।

वह धीरे-धीरे सामनेवाले पगोड़ा वृक्षकी ओर अग्रसर हो रही थी। पुलिसवाले उसे बाहर आया देखकर इकट्ठे हो रहे थे, वह उनकी उपेक्षा करती हुई वृक्षकी ओर देखती हुई चल रही थी।

वह रुकी। एकाएक उसका हृदय एक अदम्य सुखसे, एक ज्वलन्त उल्लाससे भर आया।

यही जीवनका चरम उद्देश्य है—सृष्टिका चरम साफल्य, अनुभूतिका अन्तिम विकास—सुखकी अन्तिम पराकाष्ठा··· पीड़ाका, उत्कट पीड़ाका ज्ञान—ऐसी पीड़ाका जो कि स्वयं अपनी इच्छासे, अपने हाथों, स्वागतकी भावनासे अपने ऊपर ली गई है···यह आत्म-न्योछावरकी संज्ञा···

सुखदाको ऐसा प्रतीत हुआ, उसका वर्षोंका वैधव्य और उससे पूर्वकी जीवित मृत्यु, आज एकाएक अपनी सीमापर पहुँच गये हैं—समाप्त हो गये हैं; और आज वह एक नई स्त्री, एक नई शक्ति हो गई है।

उसने एक बार अपने छोटेसे बगीचेके चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। वह जमुनाके विशाल वक्षको छूती हुई फिर आकर उसी पगोड़ा वृक्षपर रुक गई। क्षणभर सुखदा उसकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखती रही; उसके मुखपर एक शान्त, स्निग्ध हँसी छा गई।

फिर उसने कहा—"चलो।"—और विस्मित सिपाहियोंके आगे अभिमान-भरी मुद्रासे चल पड़ी।

रात-रातमें पगोड़ा वृक्षने पुरानी केंचुल उतार फेंकी थी—या नये वस्त्र धारण कर लिये थे। आज उसकी कालिमाका चिह्न भी कहीं नज़र नहीं आता था, वह फूलोंसे लदा हुआ, सौन्दर्यसे आवृत, सौरभसे झूम रहा था।

उस समय उषाका प्रकाश नभमें फूट रहा था।

[६ अक्टूबर, १९३३

देशके जीवन-मरणका प्रश्न

श्री विश्वेश्वरदयालु चतुर्वेदी

देशहितके लिए सबसे आवश्यक प्रश्न क्या है, इसके उत्तरमें अनेक विद्वानोंके अनेक मत हैं। कोई राजनैतिक स्वतन्त्रता, कोई आर्थिक स्वाधीनता, कोई सामाजिक सुधार और कोई औद्योगिक सफलताको देश-हितके लिए परमावश्यक समझता है। यह सब हैं भी बड़े ही महत्त्वकी वस्तुएँ; किन्तु देशकी मौजूदा हालतमें उसके जीवन-मरणके प्रश्नको हल करनेवाला एक और प्रश्न है; और वह है भारतकी सब जातियोंमें एकताका प्रसार और प्रत्येक धर्मके प्रति सहिष्णुता और सम्मानके विचार।

जब तक देशकी सब क़ौमें—हिन्दू, मुसलमान, सिख इत्यादि—एक दूसरेके प्रति सच्ची सहानुभूति, समवेदना और सहिष्णुताका भाव न रखेंगी, जब तक एक दूसरेके धर्मके प्रति सम्मानका भाव न प्रदर्शित करेंगी, तब तक स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, सुधार या सफलताका स्वप्न देखना केवल आकाश-उद्यानके फूल चुनना है—केवल मृगतृष्णा है।

देशकी दो महान जातियाँ हिन्दू और मुसलमान हैं, जिनमें पारस्परिक प्रेम और सद्भावनाओंका होना भारतको जीवित रखनेके लिए नितान्त आवश्यक है। अब तक हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए जितने भी प्रयत्न हुए, वे अधिकांशमें सफल नहीं हो पाये हैं। ख़िलाफ़तको बचानेके लिए या राजनैतिक परिस्थितिसे लाभ उठानेके लिए जो क्षणिक मेल इस देशमें हुआ था, उसकी प्रतिक्रिया भी बड़ी भयंकर प्रमाणित हुई; क्योंकि उस एकताके प्रयत्नमें शुद्ध सरल स्नेहका भ्रातृ-भाव न होकर एक दूसरेकी जोखिमपर लाभ उठा ले जानेकी ही आकांक्षा थी। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों क़ौमोंको आपसमें नज़दीक लानेके लिए यह निहायत ज़रूरी है कि दोनों जातियाँ एक दूसरेके धार्मिक भावोंको पढ़ें, समझें और सम्मान करें; एक दूसरेके साहित्यिक और ऐतिहासिक ग्रन्थोंका अवलोकन करें; एक दूसरेकी प्राचीन सभ्यता, भाषा और संस्कृतिका मान करना सीखें।

पिछली जुलाईमें जब यह विचार बंगालके प्रतिष्ठित समाज-सेवी संन्यासी श्री प्रेमानन्दजी, एम०ए०,के सम्मुख रखे गये, तो उन्होंने इन विचारोंका स्वागत किया, और ज़िला सहारनपुरमें रहनेवाली एक अंगरेज़ महिलाने, जो मदर कुक कहलाती हैं और जिन्होंने भारतीय विचारोंके कारण अपनी सहस्रोंकी सम्पत्तिकी क्षति उठाकर संन्यास ले लिया है, कार्यमें पूरा सहयोग देनेका वचन दिया। देहलीमें स्वामी सत्यदेवजी भी इस बातपर पूर्ण सहमत थे कि दोनों जातियोंमें प्रेम-प्रसारके लिए यह परम आवश्यक है कि लोग एक दूसरेके साहित्य, धर्म, भाषा और संस्कृतिका अध्ययन और क़द्रदानी करें। गत मास जब मैं अपना इलाज कराने कलकत्ता गया था, तब मौलाना अबुल कलाम आज़ादके सम्मुख मैंने यह विचार रखे कि प्रत्येक शहरमें हिन्दू-मुसलमान और अन्य जातियोंकी एक "Cultural Unity and Service League" नामकी संस्था स्थापित की जायँ, जिनके सदस्योंका यह कार्य हो कि वे एक दूसरेके धर्म, साहित्य, इतिहास और भाषाका अध्ययन करके उनके सद्भावोंको लोगोंपर प्रकट करें। मसलन् हिन्दू-सदस्य क़ुरानमजीदकी अच्छी बातें, मुसलमान कवियोंकी हिन्दी-भाषाकी कविताको, उर्दू ज़बानकी बारीकियोंको और मुस्लिम संस्कृतिकी विशालताको हिन्दू-समाजके सम्मुख प्रकट करें, और मुसलमान लोग हिन्दू-मतकी भली बातें, हिन्दी-भाषाके साहित्य और महान हिन्दू-संस्कृति और आदर्शकी क़द्र करें। मुसलमान मुहल्लोंमें हिन्दू-स्वयंसेवक उनके मेलोंमें जाकर सेवाका कार्य करें और बीमारीकी अवस्थामें उनकी शुश्रूषा करें। मुसलमान

कवियोंकी हिन्दी-कविताका प्रचार करें और हिन्दी-कवियोंका वर्णन मुसलमानी जमातमें किया जाय। इस प्रकार दोनों जातियाँ एक दूसरेके भावों और आदर्शोंका सत्कार करना सीखेंगी और पारस्परिक द्वेषके भाव दूर होंगे।

मौलाना आज़ाद साहबने इन विचारोंको 'निहायत ही मुबारक' ख़याल माना और इस क़िस्मकी सोसायटियाँ स्थापित करनेके विचारपर प्रसन्नता प्रकट की।
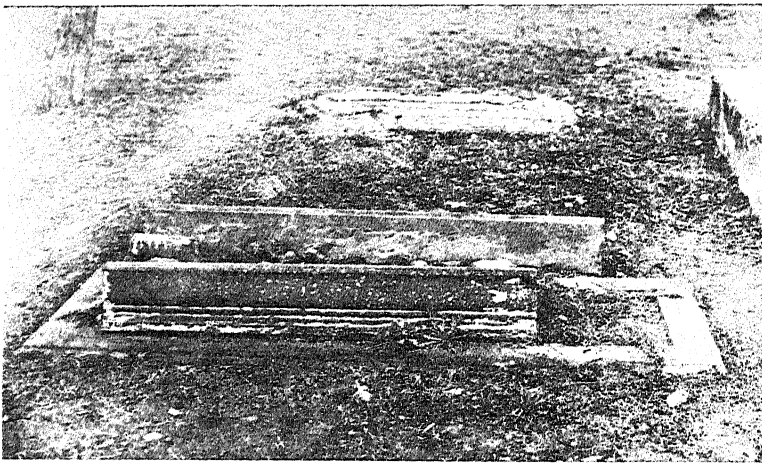
महाकवि नजीरकी क़ब्र

आगरेमें वर्तमान युगके सबसे बड़े कवि शेख वलीमुहम्मद नज़ीर हुए हैं। यह हिन्दू-मुस्लिम इत्तहादके सबसे बड़े हामी थे। जब तक जिये, हिन्दू-मुसलमानोंको एक रखनेके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे। यदि एक तरफ़ नवीन इस्लामके सतायशमें कुछ लिखते थे, तो दूसरी तरफ़ कृष्ण कन्हैयाका बालपन लिखते थे। होलीके दिनोंमें हिन्दुओंके त्योहारमें योग देनेके लिए 'स्वाँग बेनवा' नामसे सैकड़ों लोगोंकी टोलियाँ बनाकर सारे शहरमें हिन्दू और मुसलमानोंको परस्पर आलिंगन कराते थे। हिन्दू-मुसलमान सैकड़ों ही शागिर्द इनके 'दविस्ताने नज़ीर' में पढ़ते थे, और ग़रीब हिन्दू-मुसलमानोंको बग़ैर किसी फ़र्क़के अपनी क़लील आमदनीका हिस्सा बाँट दिया करते थे।

इन बुज़ुर्गकी मज़ारपर इनकी यादगारमें अब भी एक जलसा हर साल होलीकी दूजको होता है, जहाँ कुछ लोग जमा होकर इनके काव्यका बखान करते हैं।

हिन्दुओंका फ़र्ज़ है कि उन मुसलमान कवियोंके उपकार न भूल जायँ, जिन्होंने हमारे धर्म, हमारी भाषा और हमारी संस्कृतिके उच्च आदर्शोंकी क़द्र की है। अनेक भक्त हिन्दू प्रातःकाल रामनामके समय रसखान जैसे मुसलमान कविका यह पद्य स्मरण करते हैं :—

"मानुस हौं तो वहीं रसखान
बसौं नित गोकुल गाँवके ग्वारन,
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन।"

इत्यादि। शेख मीरनकी हिन्दी-कविताएँ हमारी भाषाकी गौरव हैं। बादशाह खुसरोकी 'कह मुकरनियाँ' बड़ी ही ख़ूबसूरत चीज़ हैं। फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल तथा सम्राट् अकबरके साहित्य-प्रेमसे भाषाका गौरव बढ़ा है। रहीमके दोहे और बरवे भुला देनेकी चीज़ नहीं है। इनके द्वारा हिन्दू-धर्मका महत्त्व और उच्च आदर्श ख़ूब बतलाया गया है। मलिक मुहम्मद जायसीने हिन्दी-साहित्यको सँभाला है, और अन्तमें महाकवि नज़ीरने हिन्दू-समाज और हिन्दी-भाषाकी जो सेवाएँ की हैं, हमारी संस्कृतिकी इज्ज़त अफ़ज़ाई और क़द्रदानी की है, उससे कोई शिक्षित हिन्दू ऐतराज़ नहीं कर सकता, और निष्पक्ष सत्य तो यह है कि हम लोगोंने इस्लामके बारेमें उसके महान आदर्श और उच्च विचारोंको इतना भी नहीं अपनाया है, जितना कि इस्लामने हमारी संस्कृतिको अपनाया है।

आज इन्हीं महाकवि नज़ीरकी क़ब्रका एक चित्र 'विशाल भारत' के प्रेमियोंको भेंट किया जाता है। यह क़ब्र एक खँडहरका ढेर है, जिसे देखकर बेसाख्ता मुँहसे निकल जाता है—"मिटे नामियोंके निशाँ

कैसे-कैसे !" इस बार यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि इन बुजुर्गके मज़ारपर होलीकी दूजको इनकी आत्माको शान्ति देनेके लिए सैकड़ों ही हिन्दू-मुसलमान एक साथ जमा हों और इनकी कविता, इनकी रूहको तसल्ली बख्शनेवाले मज़बूत हिन्दू-मुस्लिम इत्तहादकी चर्चा करें। होलीके दिन इनके द्वारा स्थापित मेले याने 'स्वाँग वेनवा' फिरसे उठवानेका प्रयत्न होना चाहिए, इनका एक स्मारक आगरा-नागरी-प्रचारिणी सभामें बनवाया जाय और 'नज़ीर-दिवस' मनाया जाय। आशा है, इसमें केवल स्थानीय हिन्दू-समाजसे ही नहीं, किन्तु बाहरके सज्जनोंसे भी सहयोग प्राप्त होगा।

विदेशोंमें आर्यसमाज

बनारसीदास चतुर्वेदी

समुद्रकी सतहसे ५४५० फीटकी ऊँचाईपर स्थित नैरोबी (पूर्व-अफ्रिका) के सुप्रसिद्ध नागरिक लाला लाहौरीरामजीके घरपर एक बैठकमें लेटा हुआ था। लालाजी मास्टरजीके नामसे प्रख्यात थे, और पूर्व-अफ्रिकाकी आर्य-प्रतिनिधि-सभाके आप ही प्रधान थे। समुद्रकी सतहसे इतने ऊँचे उठनेका सौभाग्य जीवनमें पहली ही बार प्राप्त हुआ था; पर नैरोबीका जलवायु उस समय मुझे विशेष रुचा नहीं, क्योंकि सूर्य भगवानके दर्शन वहाँ दुर्लभ थे, और सर्दीके मारे अपनी रजाईमें लिपटा हुआ आराम कर रहा था। मास्टरजीके कुछ साथियोंने कहा—"कहिये, टहलने न चलियेगा ?"

मैंने कहा—"माफ़ कीजिये, इस वक्त तो बाहर जानेकी तबीयत नहीं।"

मास्टरजीने कहा—"घूम आइये, क्या हर्ज है। अभी शामसे ही क्या लेट गये !"

अपने मेजवान साहबका यह आग्रह टालना अशिष्टता होगी, यह ख़यालकर बिलकुल बेमन मैं टहलनेके लिए उठ खड़ा हुआ। दस-पन्द्रह मिनट इधर-उधर टहलाकर उन सज्जनोंने मुझे एक विशाल भवनमें, जो बिजलीकी रोशनीसे चमक रहा था, लाकर खड़ा कर दिया! मैंने कहा—"यह क्या ?"

उन्होंने कहा—"यह यहाँका आर्यसमाज-मन्दिर है, और ये लोग आपका भाषण सुननेके लिए एकत्रित हुए हैं।"

तब जाकर मुझे पता लगा कि यह मास्टरजी तथा उनके साथियोंका षड्यन्त्र था। इसके लिए मैंने उन्हें कोसा भी। मैंने कहा—"चूँकि श्रीमती सरोजिनी देवीके साथ आया हूँ, इसका यह अभिप्राय थोड़े ही है कि मैं भी व्याख्यानदाता हूँ। वे भाषण देनेमें अद्वितीय हैं, और मेरे मुँहसे तो आवाज़ भी नहीं निकलती। आपने मेरे साथ सरासर अन्याय किया है। अगर कुछ समय पहले मुझसे कह देते, तो शायद कुछ तैयार करके बोल भी देता।"

ख़ैर, जैसे-तैसे दो-चार शब्द मैंने कह दिये। तब मुझे ज्ञात हुआ कि कितने त्यागके साथ साधारण स्थितिके स्थानीय आर्यसमाजियोंने उस मन्दिरको बनाया था। किसीने लकड़ी दी थी, किसीने मिस्त्रीका काम किया था और किसीने मज़दूरी ही करके इस पुण्य-कार्यमें हाथ बँटाया था। जिस स्थानपर पचीस वर्ष पहले घना जंगल था और शेरका गर्जन सुनाई पड़ता था, वहाँ उस जंगलमें मंगल हो रहा था। आर्यसमाजकी अन्तर्निहित विशाल शक्तिका अपने जीवनमें मुझे पहले ही पहल अनुभव हुआ।

आर्य-दिवाकर-सभा डच-गायनाके अन्तरंग सदस्य तथा कुछएक कार्यकर्ता

आज इस घटनाको लगभग दस वर्ष हो गये, पर नैरोबीके आर्यसमाज-मन्दिरका नक्शा ज्यों-का-त्यों मेरी आँखोंके सामने उपस्थित है। मुझे वह दृश्य भुलाये नहीं भूलता, जब आर्यसमाजसे संलग्न आर्य-कन्या-पाठशालाकी पीत वस्त्रधारी ९० कन्याओंने अपने मधुर स्वरसे भारतभूमिकी प्रशंसामें भजन गाये थे। उन कन्याओंमें से अस्सी-पचासी फी-सदीको कभी मातृभूमिके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। आर्यसमाजके उस शिक्षा-सम्बन्धी रचनात्मक कार्यको देखकर हृदयको बड़ी प्रसन्नता हुई।

अफ्रिकासे लौटनेके नौ-दस महीनेके बाद फरवरी सन् १९२५ में ऋषि दयानन्दकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर निम्न-लिखित प्रस्ताव इन पंक्तियोंके लेखककी ओरसे एकत्रित जनताके सम्मुख उपस्थित गया था, और वह सर्वसम्मतिसे स्वीकृत भी हुआ था :—

(क) प्रत्येक आर्यसामाजिक शिक्षा-सम्बन्धी संस्था यथाशक्ति एक अथवा एकाधिक प्रवासी विद्यार्थियोंको निःशुल्क भरती करने और उनका पूर्ण व्यय सहन करनेकी आयोजना करे।

(ख) उपनिवेशोंमें शिक्षा-प्रचार अथवा धर्म-प्रचारके लिए एक कार्यक्रम तैयार करनेके लिए एक कमेटी नियत की जाय, जिसमें विशेषतः औपनिवेशिक भारतीयोंके प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों।

(ग) विदेशोंमें अब तक आर्यसमाज द्वारा जो-जो कार्य हुए हैं, उनका पूर्ण विवरण शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय।

(घ) जो आर्यसामाजिक संस्थाएँ अथवा पत्र उपनिवेशोंमें धर्म-प्रचार, हिन्दी-प्रचार अथवा शिक्षा-प्रचार कर रहे हैं, उन्हें समुचित सहायता दी जाय।

(च) भारतवर्षका प्रत्येक आर्यसमाज उपनिवेशोंसे लौटे हुए प्रवासी भाइयोंको अपने-अपने समाजमें स्थान दिलानेके लिए भरपूर प्रयत्न करे।

हर्षकी बात है कि उपर्युक्त प्रस्तावके (ग) भागको आठ वर्षके बाद सार्वदेशिक सभाने कार्यरूपमें परिणत कर दिया है। यद्यपि श्रीयुत नारायण स्वामीजीके कथनानुसार विदेशोंमें आर्यसमाजके कार्योंका यह इतिहास 'संक्षिप्त' और 'अधूरा' ही है, तथापि जो

स्वर्गीय श्री डा० चिरजीव भारद्वाजजी

मसाला इसमें इकट्ठा किया गया है, उससे आर्यसमाजके उस महत्त्वपूर्ण कार्यका कुछ ज्ञान हो सकता है, जो उसने विदेशोंमें अब तक किया है। सार्वदेशिक सभाको हम उसके इस प्रशंसनीय कार्यके लिए बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि वह शीघ्र ही इस कार्यके विस्तृत इतिहासकी रचनाके लिए प्रयत्न करेगी। यह पुस्तक यद्यपि संक्षिप्त ही है, तथापि इससे यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि सार्वदेशिक सभाने अब गम्भीरतापूर्वक इस प्रश्नको अपने हाथमें ले लिया है। पुस्तककी भूमिकामें सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभाके मंत्री महोदयने लिखा है—

"दो-चार बातें हमें अपने उन उपदेशक भाइयोंके पक्ष और विपक्षमें कहनी हैं, जो विदेशोंमें प्रचारार्थ जा चुके हैं। हमारे दुःखका पारावार नहीं रहा, जब हमने उन विवरणोंमें देखा कि बहुतसे नामधारी आर्योपदेशक समय-समयपर वहाँपर स्वार्थहित साधनके लिए गये हैं! कोई किसी व्यापारिक कम्पनीका एजेन्ट बनकर गया, किसीने किसी निधिके नामपर वहाँके भोलेभाले भाइयोंसे रुपया बटोरकर अपना उल्लू सीधा किया, किसीने अन्य कलुषित ढंगोंसे धन बटोरा, कोई अपने कार्यकी मिथ्या रिपोर्ट स्वयं अथवा अपने किसी मित्र द्वारा समाचारपत्रोंमें भेजता रहा, किसीने कतिपय सभा और समाजोंके सभासदोंको लड़ाकर उनमें फूटका बीज बो दिया। कई सज्जन तो यहाँसे केवल अपनी संस्थाओंके लिए चन्दा ही माँगने गये। यही कारण है कि जितनी सफलता विदेशों और उपनिवेशोंमें आर्य-संस्कृतिको फैलानेमें प्राप्त होनी थी, नहीं हुई।"

जब कोई मनुष्य अथवा संस्था अपने दोषोंको स्वीकार करनेके लिए उद्यत हो जाती है, तब समझना चाहिए कि उसकी उन्नतिका पथ खुला हुआ है। उपर्युक्त पंक्तियोंमें हमें आर्यसमाजकी इसी मनोवृत्तिका परिचय मिला, और एतदर्थ हम उसे हार्दिक बधाई देते हैं। आर्यसमाजके संन्यासियोंके विषयमें भी इस पुस्तकमें एक मार्केकी बात कही गई है—

"प्रथम तो हमारे यहाँ संन्यासी ही थोड़े हैं। उनमें से भी बहुतसों में उन गुणोंका अभाव है, जो सच्चे संन्यासियोंमें होने चाहिए। वे गुण हैं उच्चकोटिका तप, उच्चकोटिका त्याग और उच्चकोटिका स्वाध्याय। उँगलियोंपर गिने जानेवालोंको छोड़कर यह गुण उनमें नहीं पाये जाते। हमारा यह संन्यासीवर्ग हमें क्षमा करे, यदि हम यह साफ़-साफ़ कह दें कि इनमें अधिकांशमें तप और त्यागकी बहुत कमी है। तप और त्याग संन्यास-जीवनका सौन्दर्य और सर्वस्व है। कोई संन्यासी कितना ही विद्वान क्यों न हो, यदि उसका जीवन तप और त्यागसे शून्य है, तो उसका उपदेश लच्छेदार
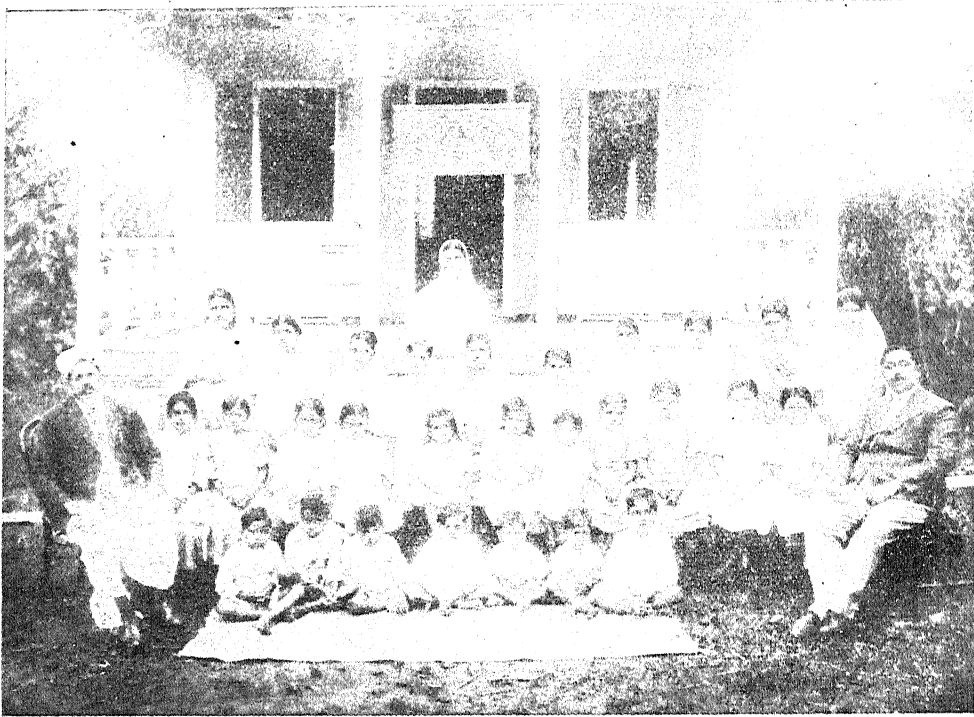
आर्य-कन्या-विद्यालय ओमेनी, मौरीशसकी छात्राएँ

भाषा, श्रुति और स्मृतिके प्रमाणों तथा अलंकारोंसे पूरित होते हुए भी फलदायक नहीं हो सकता। आर्यसमाजके संन्यासी और विद्वानोंको रामकृष्ण परमहंसके चेलोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।"

विदेशमें प्रचारको संगठित रूपमें चलानेके लिए जो तीन आवश्यक बातें इस पुस्तकके अन्तमें दी गई हैं, उन्हें पढ़कर यह विश्वास होता है कि भविष्यमें सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा इस कार्यकी सुव्यवस्था करेगी।

इस पुस्तकमें कई बातें हमें बड़ी उत्साहप्रद प्रतीत हुईं। पुस्तकमें सबसे पहले भाई परमानन्दजीका चित्र दीख पड़ता है, जो सर्वथा उचित ही है। भाईजीसे कोई चाहे सहमत हो, या न हो; पर उनके असाधारण तप तथा त्यागके प्रति तो प्रत्येक सहृदय व्यक्तिके हृदयमें श्रद्धा ही उत्पन्न होगी। भाईजीके सम्बन्धमें किसी अंगरेज़ मि० जी० डब्ल्यू० विलिसकी सम्मति उद्धृत की गई है। साधारण पाठकोंके लिए यह भले ही आवश्यक हो; पर हमें तो यह बात ठीक नहीं जँचती। भाईजीको इस प्रकारके सर्टिफिकेटकी ज़रूरत नहीं। हमारी समझमें इस अध्यायमें स्वयं भाईजीके अनुभव उन्हींसे लिखाकर छापे जाते, तो अच्छा होता। स्वामी भवानीदयालजीके कार्यके विषयमें भी जो कुछ लिखा गया है, वह भी संक्षिप्त तथा विवरणात्मक ही है। उससे उनकी असाधारण लगन और धुनका पता नहीं लग पाता। हमारी समझमें इन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कार्यकर्ताओंके स्केच इस पुस्तकके साथ होने चाहिए थे, जिससे इसकी डिक्सनरीकी तरहकी शुष्कता दूर हो जाती। चिरंजीव भारद्वाजके अथक परिश्रमके विषयमें दो-चार बातें लिखी गई हैं, उनसे उनके विषयमें अधिकाधिक जाननेकी पिपासा शान्त नहीं होती, उल्टी तीव्र ही होती है। श्री गोपेन्द्रजी तथा श्री अमीचन्द्रजीके कार्यकी प्रशंसा

सर्वथा उचित है। गुरुकुल वृन्दावनने फिजीसे आये हुए छात्रोंके लिए जो कार्य किया है, वह भी प्रशंसनीय है, और उसका ज़िक्र यथोचित रीतिसे हुआ है। ट्रिनीडाडका विवरण देते हुए लिखा है—"पं० रामेश्वर मिश्र ट्रिनीडाडमें वैदिक सभ्यताके प्रचारके लिए चिन्तित

श्री भाई परमानन्दजी

रहते हैं। आर्योपदेशकोंको आपसे प्रचारमें बहुत सहायता मिल सकती है। आपकी पुत्री कुमारी सरयू देवी ट्रिनीडाडमें हिन्दी-प्रचारका सराहनीय उद्योग कर रही हैं।"

आशा है कि सार्वदेशिक सभा केवल प्रशंसा करके ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री न समझ लेगी, बल्कि इन उत्साही व्यक्तियोंके कार्यमें सहायक भी बनेगी।

इस छोटीसी पुस्तकमें कितनी ही बातें ऐसी हैं, जिनका पता आर्यसमाजके अनेक भारतीय प्रचारकोंको भी न होगा। उदाहरणार्थ कितने आर्यसमाजी प्रचारक इस बातको जानते हैं कि आर्यसमाज नैरोबीके समस्त इमारतोंका मूल्य तीन लाख शिलिंग है, और उसके अधीन पुस्तकालय, वाचनालय, विश्राम-गृह, आर्य स्त्री-समाज, आर्य युवक-सभा, आर्य कन्यापाठशाला इत्यादि अनेक संस्थाएँ काम कर रही हैं?

हमें यह पढ़कर हर्ष हुआ कि सार्वदेशिक सभा नवयुवकों तथा संन्यासियोंके ऐसे संघकी आवश्यकताको महसूस करती है, जो भिक्षावृत्ति धारणकर वैदिक सभ्यताका देश-देशान्तरोंमें प्रचार करे। पुस्तकमें लिखा है—

"इस संघके सदस्योंके रहनेके लिए स्थान शान्तिमय होना चाहिए। इनके लिए एक बहुत बड़ा पुस्तकालय हो, जिसमें उच्चकोटिके तमाम आर्य ग्रन्थ विद्यमान हों। वहाँपर ये लोग पहले अपने सिद्धान्तोंका और बादको संसारमें प्रचलित मतोंके साथ तुलनात्मक अध्ययन करें। इसके पश्चात् 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को अपने शेष जीवनमें चरितार्थ कर दें।"

यह तुलनात्मक अध्ययन विभिन्नता दिखलानेके लिए नहीं, वरन् मूल एकता प्रदर्शित करनेके लिए होना चाहिए। हम यहाँ यह बात स्पष्टतया कह देना चाहते हैं कि खण्डनात्मक नीतिके हम सर्वथा विरोधी हैं।

पुस्तकको अत्यन्त उपयोगी मानते हुए भी दो-चार बातें, जिनसे हमारा मतभेद है, यहाँ कह देना चाहते हैं। स्वामी शंकरानन्दजी तथा महात्मा गान्धी-सम्बन्धी वाद-विवादको इस पुस्तकमें इतने विस्तारके साथ कदापि न लिखना चाहिए था। स्वामी शंकरानन्दजीने महात्माजीको लिखा था—"आपकी शिक्षा और नीतिसे हिन्दुओंकी

हानि ही हुई है, और भविष्यमें हानिकी सम्भावना भी है।" हम तुलना करना उचित नहीं समझते ; पर यदि हम कवि होते, तो यह कहते कि स्वामीजीका महात्माजीको यह उपदेश उसी श्रेणीका है, जिस श्रेणीका उपदेश उस खद्योतका होगा, जो सूर्यको प्रकाशके विषयमें शिक्षा दे। महात्माजीके साथ सत्याग्रह-आन्दोलनमें भाग लेकर जिन सहस्रों हिन्दुओंने अनेक यातनाएँ सहीं, तप किये और संसारके सम्मुख अपना तथा अपनी मातृभूमिका मुख उज्ज्वल किया, वह हमारी समझमें लाखों हवन और करोड़ों यज्ञोपवीत करानेसे भी नहीं हो सकता था।

महात्माजीने स्वामीजीको इंग्लैण्डसे लिखा था—"मुझे दुःख होता है कि आप मुसलमानोंके विरुद्ध द्वेष-भाव फैला रहे हैं। इस्लामी मतके सम्बन्धमें आपका क्या विचार है, इसपर मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता ; मगर इस्लामी मतपर आपका हमला हिन्दू-धर्मके मर्मके प्रतिकूल है। यदि इसी प्रकार हिन्दू-मुसलमानोंमें भेद-भाव बना रहेगा, तो हिन्दुस्तानको पराधीन ही रहना पड़ेगा।"

महात्माजीके इस वाक्यसे हम सोलह आने सहमत हैं, और विदेशोंमें जानेवाले प्रत्येक आर्यसमाजी प्रचारकका ध्यान इनकी ओर आकर्षित करते हैं। सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न यह है कि विदेशोंमें आर्यसमाजके प्रचारका ढंग क्या होना चाहिए। क्या आर्यसमाज अपने आशुकवि भजनीकोंको (और आर्यसमाजका लगभग प्रत्येक भजनीक उपदेशक और आशुकवि होता है) उपनिवेशोंको भेजकर वहाँ करतालपर यह भजन गवावेगा ?—

"वह था यूसुफ नज्ज़ारका नहिं मसीह खुदाका बेटा।"

या—

"मुर्दोंका बहाना करके क्या लेटर-बक्स भरा है।"

अथवा—

"दाढ़ी मुड़ा-मुड़ाकर चुटिया रखायेंगे वह,
काबेको तोड़करके मन्दिर बनायेंगे वह।"

क्या आर्यसमाज उन निरर्थक शास्त्रार्थोंकी प्रथाका प्रचार उपनिवेशोंमें भी करेगा, जिनका परिणाम सिवा हुल-हब्बड़के कुछ नहीं होता? नैरोबीमें इस प्रकारके एक शास्त्रार्थके परिणाम-स्वरूप चाकू भी चल गये थे! और यह शुद्धिकी अशुद्ध प्रथा ?

हम इस बातसे सर्वथा सहमत हैं कि जब तक ईसाई और मुसलमान प्रचारक हिन्दुओंको येनकेन प्रकारेण अपने मज़हबमें मिलाते रहेंगे, तब तक यह आशा करना कि आर्यसमाज अपने शुद्धिके प्रोग्रामको बन्द कर दे, निरर्थक होगा। फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि सच्चे आध्यात्मिक अर्थमें मतपरिवर्तन बहुत कम लोगोंका होता है, अधिकांश किसी-न-किसी प्रलोभनवश अन्य मतोंको ग्रहण करते हैं, और फिर गुणोंको गौण तथा संख्याको मुख्य स्थान देना असभ्यताका सूचक है। इस पुस्तकके लेखक महोदय लिखते हैं—

"हिन्दुओंमें धर्म-प्रचार-सम्बन्धी प्रगतिको महात्माजी अपने राजनैतिक आन्दोलनके लिए घातक समझते रहे। हिन्दू होनेके कारण महात्माजीपर हिन्दुओंको अभिमान तो था, किन्तु आपकी मनोवृत्तिका परिचय पाकर हिन्दुओंको निराशा भी अपार हुई। राजनैतिक दृष्टिसे आप मुसलमानोंको अधिक अपनाते थे। हिन्दू अनाथोंकी भाँति अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। ४५ वर्ष तक किसीने इसकी खोज-खबर नहीं ली। उनको कोई अवलम्ब नज़र नहीं आता था।"

हिन्दू-सिद्धान्तोंको संसारमें आदरणीय बनानेके लिए महात्माजीने अपने जीवनसे और कार्योंसे जो चमत्कार कर दिखाया है, उतना स्वामी शंकरानन्दजी तथा उनके चेले और उनके द्वारा शुद्ध हुए लाखों विधर्मी सात जन्ममें भी न कर सकते थे। लोग वैदिक आदर्शोंके प्रभावमें आकर अपना जीवन सुधारें, इस बातपर हमें अधिक ध्यान देना चाहिए, न कि रजिस्टरमें नाम लिखाकर संख्या बढ़ानेपर।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न यह है कि आखिर आर्यसमाज किस

पद्धतिसे विदेशोंमें वैदिक सिद्धान्तोंका प्रचार करेगा। हमने एक विश्वस्त सूत्रसे सुना है कि स्वामी श्रद्धानन्दजी इस बातपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके लिए राज़ी हो गये थे कि सत्यार्थप्रकाशकी जो प्रतियाँ विदेशोंमें वितरणार्थ प्रकाशित की जावें, उनमें खंडनात्मक समुल्लास निकाल दिये जावें। यह बात कहाँ तक सत्य है, यह उनके साथी ही बतला सकते हैं।

गुजरातके सुप्रसिद्ध विचारक और विद्वान श्रीयुत काका कालेलकरजीने भी एक बार कहा था कि विदेशोंमें धर्म प्रचार करनेके पहले यह तय कर लेना ज़रूरी है कि किन-किन सिद्धान्तोंका प्रचार करना उचित होगा।

सार्वदेशिक सभाका कर्तव्य है कि पहले इस विषयमें रुचि रखनेवाले सज्जनोंकी एक मीटिंग बुलाकर इस बारेमें बातचीत कर ले। समयकी गतिके अनुसार कार्य-पद्धतिमें परिवर्तन करना प्रत्येक समझदार व्यक्तिका कर्तव्य है। ईसाई प्रचारकोंकी ऐसी कानफरेन्स प्राय: हुआ करती हैं, जिनमें वे इस प्रकारके प्रश्नोंपर विचार किया करते हैं। आर्यसमाज क्या इस विषयमें उनसे शिक्षा नहीं ले सकता?

आजसे सात-आठ वर्ष पहले आस्ट्रेलेशियन मैथोडिस्ट मिशनके मन्त्री रेवरेण्ड जे० डब्ल्यू० बर्टनके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। ५५ वर्षके होनेपर भी उनमें बीस-पचीस वर्षके-से नवयुवकों कैसा उत्साह था। उनकी अद्भुत लगनको देखकर हमें यह ख़याल आया कि आर्यसमाजमें इस प्रकारका एक भी आदमी नहीं है। आस्ट्रेलिया तथा एशियामें जहाँ-जहाँ मैथोडिस्ट मिशनके प्रधान अड्डे हैं, वहाँकी वे यात्रा करते हैं। एक बार उत्तर-आस्ट्रेलिया जाते हैं, एक बार पापुआ द्वीप, एक बार फिजी, एक बार भारत और एक बार इंग्लैण्ड। इस प्रकार पाँच वर्षमें पाँच स्थानोंके चक्कर वे लगाते हैं। क्या आर्यसमाजके किसी प्रतिष्ठित अधिकारीने कभी ऐसा किया है? यों आर्यसमाजके प्रचारक भी वक़्त-ब-वक़्त उपनिवेशोंमें पहुँचते रहते हैं; पर स्मरणशक्तिके चमत्कार चरित्र-बलका स्थान नहीं ले सकते, और न व्याख्यानोंकी संख्यासे उनके स्थायी प्रभावका अन्दाज़ लगाया जा सकता है।

आवश्यकता है एक Dynamo की—प्रकाश-पुंजकी—जो नियमपूर्वक इसी प्रश्नका अध्ययनकर अपना सम्पूर्ण जीवन इसीके लिए अर्पित कर दे। पर आर्यसमाजमें वह visionary स्वप्न देखनेवाला—और फिर स्वप्नोंको कार्यरूपमें परिणत करनेवाला—व्यक्तित्व कहाँ है? कहाँ हैं आर्यसमाजमें ऐसे नेता, जिन्होंने २५ लाख प्रवासी भारतीयोंकी potentiality या अन्तर्निहित शक्तिका अन्दाज़ लगाया हो? और कहाँ हैं आदर्शवादी आर्य-नवयुवक, जो स्वामी श्रद्धानन्दजीकी कर्मशीलता और स्वामी दयानन्दजीकी प्रचार-पद्धतिसे शिक्षा ग्रहणकर अपना तन मन धन इसी कार्यके लिए अर्पित कर दें? इस महान यज्ञके लिए जब तक कोई ऋत्विक या होता नहीं मिलता, तब तक यह अपूर्ण ही रहेगा; पर हम निराश नहीं हैं। आर्यसमाजमें वह चिनगारी विद्यमान है, जो कभी प्रज्वलित होकर हमारे जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियोंको भस्म कर सकती तथा भारतीय संस्कृतिके सिद्धान्तोंका प्रकाश सभ्य संसारमें फैला सकती है।

भूचाल

ब्रजमोहन वर्मा

हिन्दोस्तानी लोग अकसर मेढकीको ज़ुकाम होनेका मज़ाक़ उड़ाया करते हैं। लेकिन अगर ख़ुदा न ख्व़ास्ता हमारे चीनी भाइयोंकी मेढकीको दरस्ल ज़ुकाम हो जाय, तो हमारी इस पृथिवीको तहस-नहस होते देर न लगेगी, क्योंकि चीन देशके विश्वासके अनुसार पृथिवी एक मेढकीके सिरपर स्थित है, और जब मेढकी (नाज़से ?) सिर खुजलाती है, तभी इस पृथिवीपर भूचाल आ जाता है ! ऐसी दशामें मेढकीको ज़ुकाम होनेसे क्या दशा होगी, यह कल्पनातीत है।

हमारे हिन्दू-शास्त्रोंके अनुसार पृथिवी शेषनाग (वासुकी) के फनपर स्थित है, और जब उनका एक फन थक जाता है, तब वे उसे दूसरे फनपर रख लेते हैं, इस परिवर्तनमें जो धक्का लगता है, उसका नाम भूचाल है।

जनसाधारण मुसलमानोंमें यह विश्वास प्रचलित है कि पृथिवी गायके सिरपर स्थित है, और गाय जब सींग हिलाती है, तभी ज़लज़ला आता है।

जापान भूचालोंका देश है। पृथिवीका काँपना वहाँ रोज़मर्राकी बात है। जापानियोंका विश्वास है कि उनका देश एक बड़ी मछलीकी पीठपर स्थित है, और जब कभी मछली कुपित होकर अपनी दुम फटकारती है, तभी भूचाल आता है।

संसारके सभी धर्मोंमें भूचालके लिए इसी प्रकारके विश्वास प्रचलित थे और अब तक प्रचलित हैं। संसारके अन्य हज़ारों विषयोंका वैज्ञानिक अध्ययन बहुत कालसे होता आया है। मगर भूचालोंके वैज्ञानिक अध्ययनकी ओर वैज्ञानिकोंने अपेक्षाकृत थोड़े ही दिनोंसे ध्यान दिया है। मगर इन थोड़े दिनोंमें ही उन्होंने उसका काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया है, यद्यपि यह ज्ञान अभी तक सर्वांगपूर्ण नहीं है। भूचाल तथा ज्वालामुखी-सम्बन्धी विज्ञानको Seismology कहते हैं।

सन् १७५५ में पोर्तुगालके लिस्बन नगरमें एक भयंकर भूचाल आनेके बाद जॉन मिचलने भूचालका वैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ किया था। उसने पहले-पहल यह बताया कि भूचालमें जो स्पन्दनशील गति होती है, उसका कारण पृथिवीके स्तरमें लचीली लहरों (Elastic waves) का दौड़ना है। विभिन्न स्थानोंके समयोंका अन्तर देखकर इन लहरोंका मूल स्थान निश्चित किया जा सकता है। अर्थात् जहाँ सबसे पहले कम्पन हुआ हो, वहींसे लहरें चली हैं।

सन् १७८३में इटलीके दक्षिणमें कैलेब्रिया ज़िलेमें बीसियों भूचाल आये। यहींपर सबसे पहले विधिवत्, वैज्ञानिक ढंगसे भूचालोंका अध्ययन किया गया था।

के० ई० डी० फन हॉफ नामक वैज्ञानिकने सारे संसारके भूचालोंकी एक सूची तैयार की थी। वह सन १८२१ से १८३२ तक संसार-भरके भूचालोंकी वार्षिक तालिका प्रकाशित करता रहा था। इसके बाद एलेक्सिस पेरी नामक एक फ्रेंच विद्वानने भूचालोंकी ओर विशेष ध्यान दिया। वह भी हॉफकी भाँति सन् १८४३ से १८७१ तक संसारके भूचालोंकी वार्षिक सूची प्रकाशित करता रहा; लेकिन अपनी इस सूचीमें वह स्थानीय बातोंको भी विशेष स्थान देता रहा। भूचाल कब-कब अधिक आते हैं, इसका भी उसने अध्ययन किया। उसका कथन है कि अमावस्या और पूर्णिमाको भूचालोंकी संख्या अधिक मिलती है। परन्तु कुछ वैज्ञानिक उसकी इस बातको स्वीकार नहीं करते। गत १५ जनवरी १९३४ का बिहारका भूचाल भी सोमवती अमावसको ही आया था।

ठोस पदार्थोंमें लहरोंके दौड़नेका सिद्धान्त सबसे पहले राबर्ट मैलेटने सन् १८४६ में प्रतिपादित किया था, जिससे भूचालोंको समझनेमें बड़ी सहायता मिली। राबर्ट मैलेट ही आधुनिक भूचाल-विद्याका पिता कहा जाता है।
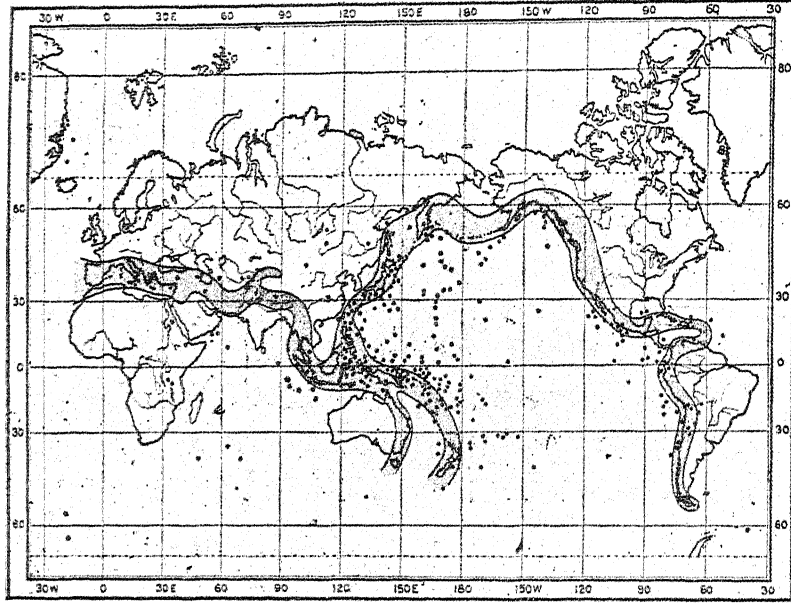
पृथिवीकी भूचाल मेखलायें। सन् १८९९ से १९११ तक संसारमें जो २७६ बड़े-बड़े भूचाल आये थे, जिन्होंने संसार-भरके सीसमोग्राफोंको हिला दिया था, उनके केन्द्रस्थल काले विन्दुओंसे प्रकट किये गये हैं।

भूचालोंके अध्ययनसे एक बात यह ज्ञात हुई कि यद्यपि पृथिवीका कोई भी ऐसा भाग नहीं है, जो भूचालोंसे एकदम सुरक्षित हो, फिर भी अनेक भाग ऐसे हैं, जहाँ भूचाल बहुतायतसे आते हैं। इन स्थानोंको देखनेसे मालूम होता है कि पृथिवीमें अधिक भूचाली स्थानों और कम भूचाली स्थानोंके विभाजनमें भी एक प्रणाली है। पृथिवीपर दो भूचाल-मेखलाएँ (Earthquake Belts) सी दौड़ी हुई हैं। इन मेखलाओंके भीतरके स्थानोंमें भूचाल बहुत आते हैं, और ज़ोरके आते हैं। इनमें से एक मेखला न्यूज़ीलैण्डसे आरम्भ होकर उत्तरकी ओर चलकर चीन पहुँचती है, और वहाँसे जापान, कमस्काटका होती हुई बेहरिंग समुद्र पार करके उत्तरी अमेरिकाके अलास्का-प्रान्तमें प्रवेश करती है, जहाँसे वह अमेरिकन महाद्वीपोंके पश्चिमी तटपर दौड़ती हुई दक्षिणी अमेरिकाके अन्तिम छोर तक चली जाती है।

दूसरी भूचाल-मेखला, जो एक प्रकारसे पहली मेखलाकी शाखा कही जा सकती है, पूर्वीय द्वीप-समूहसे आरम्भ होकर बंगालकी खाड़ीमें आती है, जहाँसे वह बर्मा, आसाम, तिब्बत, हिमालय, तुर्किस्तान, ईरान, टर्की, बालकन-प्रदेश, इटली, स्पेन और पुर्तगाल होती हुई ऐटलांटिक समुद्रमें पहुँचती है, और ऐटलांटिक समुद्रको पार करके पहली मेखलासे मैक्सिकोमें जा मिलती है। बिहार हिमालयके पादतलमें स्थित है, अतः बिहारमें ऐसा भयंकर भूचाल होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

इन दोनों भूचाल-मेखलाओंके बाहर मध्य-अफ्रिका, चीन, मंचूरिया, हिन्द-महासागरके पश्चिमी भाग, ऐटलांटिक महासागरके दक्षिणी भाग तथा आर्कटिक महासागरमें भी भूचालके कुछ केन्द्र हैं। साथके नक्शेसे भूचाल-मेखलाओंकी स्थिति आसानीसे समझमें आ जायगी।

भूचाल-मेखलाको देखनेसे जान पड़ता है कि
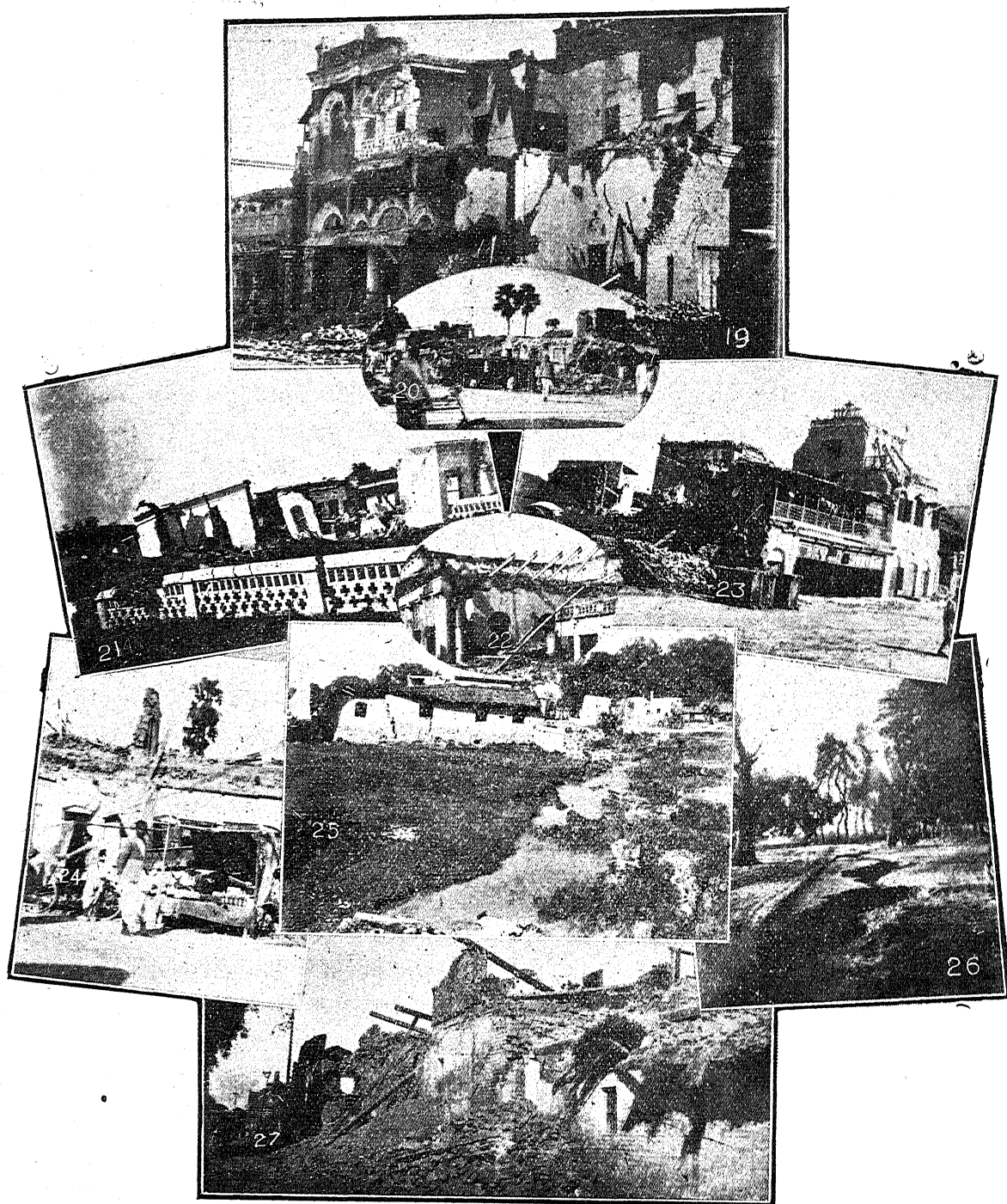
19 पटना, 20 मुज़फ्फ़रपुर, 21 मोतीहारी, 22 मुंगेर, 23 मोतीहारी, 24 मुज़फ्फ़रपुर, 25 मोतीहारी—ज़मीनमें फटी हुई दरार और पानी, 26 मोतीहारी—फटी हुई दरार, 27 मुज़फ्फ़रपुरका बाज़ार।

संसारकी ऊँची पर्वतमालाएँ जहाँपर स्थित हैं, वहींपर भूचाल अधिक आते हैं। भूतत्त्ववेत्ताओंके कथनानुसार इन पर्वतमालाओंकी सृष्टि पृथिवीके अन्य स्थानोंकी अपेक्षा नई है। यहाँ भूचालोंकी अधिकतासे जान पड़ता है कि पृथिवीके गर्भमें इन पहाड़ोंके निर्माणका कार्य अब तक जारी है। दूसरे उन स्थानोंमें भूचाल अधिक आते हैं, जहाँ समुद्र एकाएक बहुत अधिक गहरा हो गया है। फिजी द्वीप-समूहके समीप टोंगा और कारमाडेक द्वीप भूचालके बड़े केन्द्र हैं। समुद्रकी नाप-जोखसे मालूम हुआ कि इन दोनों द्वीपोंके समीप समुद्र एकाएक ३०,००० फीट (६ मील) के लगभग गहरा हो गया है। इसी प्रकार जापानके समीप टसकारोरा डीपमें भी समुद्र २८,००० फीट गहरा है। जापानके अधिकांश भूचाल इसी स्थानसे उत्पन्न होते हैं। यदि जापानकी सारी भूमि पिघल जाय तो वह लपककर टसकारोरा डीपके गहरे गर्तको भर देगी। चट्टानोंकी लचकनेकी शक्ति (Elastic Strength) धरातलकी इस प्रवृत्तिको रोकती है। लेकिन जापानकी भूमिके स्तरपर इस प्रवृत्तिका तनाव हमेशा बना रहता है और समय-समयपर स्तर चटककर थोड़ा अग्रसर हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बार चटकनेसे एक भूचाल पैदा हो जाता है। इसी लिए जापानी भूचालोंमें भूमिकी सतह (लेवेल) में बराबर परिवर्तन होता रहता है।

मनुष्य धरतीको स्थिरताका चरम रूप समझता है; परन्तु भूतत्त्ववेत्ताओंके अनुसार यह धरती इतनी अचल नहीं है, जैसी कि बोध होती है। उनके अनुमानके अनुसार पृथिवीका अन्तस्तल अत्यन्त गरम लोहेका बना है। उस लोहेके ऊपर पिघली हुई चट्टानोंकी तह है। जब कभी पृथिवीका ऊपरी स्तर फट जाता है, तब यह पिघली हुई चट्टानें लावाके रूपमें ज्वालामुखीके मुखसे निकलकर नीचेसे ऊपर आ जाती हैं। इन पिघली हुई चट्टानोंके ऊपर चालीस मील मोटा एक ठोस स्तर या पपड़ा है, जिसपर हम रहते हैं और जिसे हम धरातलके नामसे पुकारते हैं। पृथिवीका निर्माण-कार्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है। वह अनेक रूपोंमें निरन्तर, अविराम गतिसे जारी है। नीचेसे तरल लावा ऊपर आता है, और ऊपर जमकर चट्टान बन जाता है। नीचे लावाके समीपके स्तरकी गर्मी कम हो जानेसे स्तर सिकुड़ता है, या कभी-कभी ऊपरसे दबाव अधिक पड़नेसे स्तरका कुछ भाग गर्म लावेमें पड़कर फिरसे पिघल जाता है और टूट पड़ता है। इस प्रकार पृथिवीका ऊपरी पपड़ा बराबर बनता-बिगड़ता रहता है। इस बनने-बिगड़नेमें जब धरतीके ऊपरी पपड़ेके नीचेका कोई अंश सहसा स्थानच्युत होकर भू-गर्भमें गिरता है, तभी भूचाल आता है। स्तरके इस प्रकार स्थानच्युत होने या जगह बदलनेमें निम्न-लिखित कारण सहायता या उत्तेजना पहुँचाते हैं :—

(१) समुद्रकी लहरोंका दबाव, (२) हवामें परिवर्तन होना, जैसे ज़ोरके तूफ़ान या आँधियाँ आना, (३) गरमी-सर्दीकी अधिक घटा-बढ़ी। प्राय: यह देखा जाता है कि जब सर्दीकी लहर आती है, तो पृथिवीमें बहुत सूक्ष्म स्पन्दन होता है। यद्यपि यह स्पन्दन ऐसा नहीं होता कि लोगोंको भूचाल जान पड़े, मगर सूक्ष्मबोध सीसमोग्राफमें वह अंकित हो जाता है। (४) पृथिवीके स्तरके किसी भागमें अधिक बोझ बढ़ जाना, जैसे उपत्यकाओंमें बड़ी बाढ़ोंका आना अथवा पहाड़ोंपर बहुत अधिक बर्फ़ जम जाना, (५) सुदूर स्थानोंमें आये हुए भूचालोंके धक्के लगना।

इन सब बातोंसे पृथिवीके स्तरपर दबाव या तनाव अधिक बढ़ जाता है, जिससे स्तरका कुछ अंश टूटकर स्थानच्युत हो जाता है।

धरातलपर इस तरह नाना प्रकारके दबाब या तनाव पड़ते रहते हैं। जब धरातलका लचीलापन उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता तब धरातल फट जाता है। धरातलके सहसा फट जानेसे भी भूकम्प होता है। धरातलके फट जानेसे दरारें पड़ जाती हैं। साधारणत: यह दरारें केवल कुछ फीट गहरी ही होती हैं, मगर उनकी लम्बाई काफी होती है। इन दरारोंके दोनो ओरकी जमीन भी थोड़ी बहुत ऊँची नीची हो जाती है।

सन् १८९७ के आसामके भूचालकी दरार, जो चेदरंगकी दरार कहलाती है १२ मील लम्बी और ३५ फीट गहरी थी। सन् १८१९ में सिन्धके भूचालमें ५० मील लम्बी दरार हुई थी। दरारके एक ओरकी भूमि १० फीट ऊँची हो गई थी और दूसरी ओरकी दस फीट नीची, इस ऊँची ज़मीनको वहाँके लोग 'अल्लाका बाँध' कहते हैं।

सन् १९०६ के कैलीफोर्नियाके भूचालकी दरार १९० मील लम्बी, २१ फीट चौड़ी और तीन फीट गहरी थी। सन् १७८३ के कैलेब्रियाके भूचालमें फटी हुई दरार १०० फीट चौड़ी और २०० फीट गहरी थी। बिहारके भूचालमें भी बड़ी-बड़ी दरारें फटी हैं। अभी तक उनकी लम्बाई आदि नहीं नापी गई है। (बिहारमें फटी हुई एक दरारका चित्र पृष्ठ १३१ पर देखिये)। कभी-कभी धरातल फटकर पुनः अपने पुराने स्थानमें लौटनेकी चेष्टा करता है। फलतः दरारें फटकर क्षणभरमें फिर बन्द हो जाती हैं। उस समय उसमें पड़ जानेवाले आदमी, जानवर, घर इत्यादि सब पृथिवीके गर्भमें समा जाते हैं। जापानमें लोगोंको सिखाया जाता है कि भूचालमें भागकर बांसकी झाड़ियोंमें शरण लें, क्योंकि उसकी चिमचोड़ और उलझी जड़ोंके कारण दरारोंमें समानेका डर कम रहता है।

मोटे हिसाबसे भूचाल दो प्रकारके कहे जा सकते हैं। एक तो Volcanic अथवा ज्वालामुखी-सम्बन्धी। जब ज्वालामुखीका विस्फोट होता है, तब उसके आसपासकी भूमिमें भूचालके धक्के लगते हैं ; लेकिन यह भूचाल बहुदूरव्यापी नहीं होता। उसका कम्पन अपेक्षाकृत छोटे भूभागमें ही परिमित रहता है। दूसरे Tectonic—अर्थात् वे भूचाल, जो भू-स्तरकी निर्माण-क्रियाके फलस्वरूप अथवा भीतरी स्तरके स्थानच्युत होनेसे पैदा होते हैं, यह भूचाल अधिक दूर तक महसूस होते हैं। बिहारका भूकम्प इसी कोटिका है।
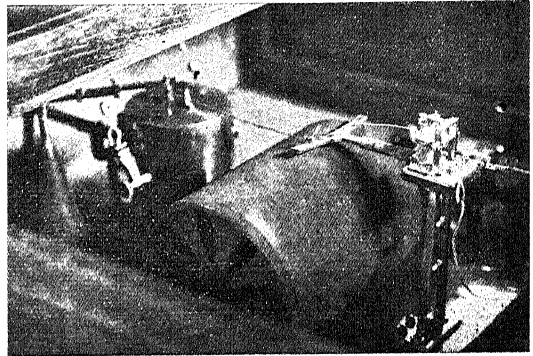
अलीपुर (कलकत्ता) का सीसमोग्राफ यन्त्र

'सीसमोग्राफ' के आविष्कारसे भूचालोंका विधिवत विवरण ज्ञात होनेमें बड़ी सुविधा हो गई है। 'सीसमोग्राफ' एक यन्त्र है। इस यन्त्रमें एक निश्चल पेंडुलम होता है, जो धरतीमें दस फीट नीचे दृढ़तासे गड़ी हुई एक पटहरमें लगा रहता है। इस पेंडुलमसे एक लम्बी पेंसिल सम्बद्ध रहती है। पेंसिलकी नोक एक घूमते हुए बेलनपर स्थित रहती है। बेलनपर धुमैला कागज़ चढ़ा रहता है। साधारण अवस्थामें बेलनके घूमते रहनेसे कागज़पर
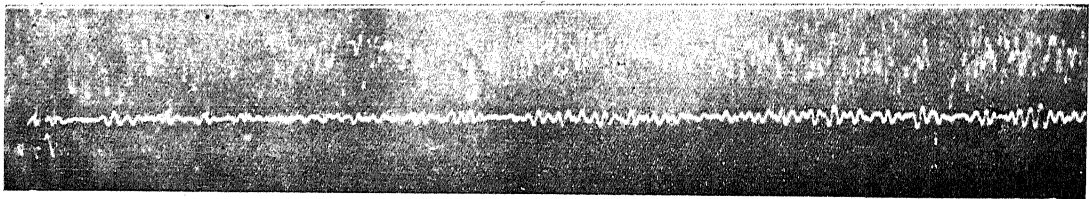
सीसमोग्राफ द्वारा अंकित भूचालकी वक्र रेखा। गत २७ नवम्बर १९३३ को कलकत्तेसे ५७०० मीलकी दूरीपर बेफिनकी खाड़ीमें जो भयंकर भूचाल आया था, वह अलीपुरके सीसमोग्राफमें इस प्रकार अंकित हुआ था।
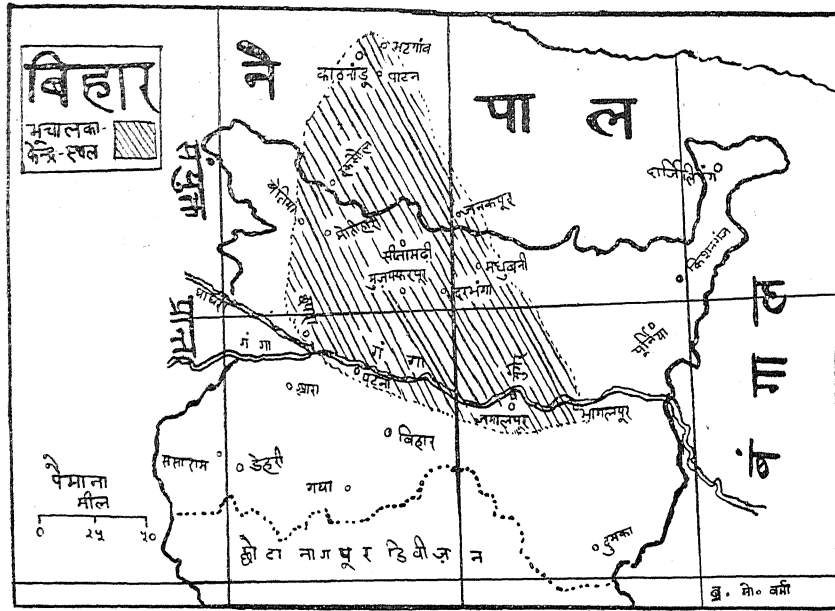
बिहारके भूकम्पका केन्द्रस्थल। अभी तक केन्द्रस्थलकी पूरी नाप-जोख नहीं हो पाई है, अतः यह नक्शा मोटे हिसाबसे ही बनाया गया है।

पेंसिलसे सीधी सरल रेखाएँ अंकित होती रहती हैं; परंतु जब भूचाल आता है, तब धरतीके स्पन्दनसे पटहरमें कम्पन होता है, जिससे पेंसिलके द्वारा कागज़पर सरल रेखाएँ न बनकर ऊँची-नीची वक्र रेखाएँ अंकित होती हैं। इस यन्त्रमें धरतीका सूक्ष्मतम स्पन्दन भी अंकित हो जाता है। भारतवर्षमें कलकत्ता, बम्बई, देहरादून, कोडाईकनाल और आगरेमें सीसमोग्राफ यन्त्र हैं।

सीसमोग्राफके द्वारा जान पड़ता है कि औसतमें धरतीपर प्रतिवर्ष ९,००० भूचाल आते हैं, अथवा यों कहिये कि प्रत्येक घंटेमें एक भूचाल आता है। इनमें से ५,००० के लगभग ऐसे होते हैं, जिनमें मनुष्यको मालूम होता है कि भूचाल आया। १०७इतने ज़ोरदार होते हैं, जिनसे इमारतोंको नुक़सान पहुँचता है। बहुत ही ज़ोरदार भूचालोंसे सारी दुनिया हिल जाती है। उनका कम्पन पृथिवीके सभी देशोंके सीसमोग्राफोंमें अंकित होता है। इस प्रकारका सारी पृथिवीको कँपानेवाला भूचाल औसतमें प्रति अठारहवें दिन आता है। मगर ग़नीमत यह है कि इनमें से अधिकांश भूचाल स्थलसे दूर समुद्रमें आते हैं, जिससे मनुष्योंको क्षति नहीं पहुँचती।

जापानमें गत १५०० वर्षसे भूचालोंका विवरण रखा जाता है। सन् ४१६ से १८६७ तक जापानमें आनेवाले २,००० भूचालोंका विवरण मिलता है, जिनमें २२३ भूचाल ध्वंसकारी थे। जापानियोंके अनुसार जापानका सबसे भयंकर भूचाल २८ अक्टूबर सन् १७०७ को आया था।

पृथिवीके गर्भमें जहाँसे भूचालकी गड़बड़ी आरम्भ होती है, उसे 'फोकस' कहते हैं और उसके ठीक ऊपरका धरातल भूचालका केन्द्र कहा जाता है। यह 'केन्द्र' कोई विन्दु न होकर एक ख़ासा बड़ा क्षेत्रफल होता है। भूचालका धक्का सबसे अधिक ज़ोरसे इसी केन्द्रपर लगा करता है, और यहींसे भूचालकी लहरें चारों ओर पृथिवीके स्तरमें दौड़ती हैं।

बिहारमें गत १५ जनवरीको जो भूचाल आया था, मोटे हिसाबसे उसका केन्द्र एक त्रिभुजाकार क्षेत्र है, जिसके तीन शीर्ष भागलपुर, छपरा और

काठमांडू कहे जा सकते हैं। साथके नक्शेसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

भूचालकी लहरोंकी गति कितनी तेज़ होती है, इसकी कल्पना भी मुश्किल है। लहरोंकी गति एकसी नहीं होती, उनमें बड़ा अन्तर दिखाई देता है। साधारण तौरसे दूर जानेवाली लम्बी लहरोंकी गति दो मील प्रति सेकेण्ड और ज़ोरके भूचालकी मुख्य या प्राथमिक लहरोंकी गति ६ मील प्रति सेकेण्ड तक देखी जाती है, यानी २१,६०० मील प्रति घंटा, अथवा संसारके सबसे तेज़ हवाई-जहाज़से सौगुना तेज़!
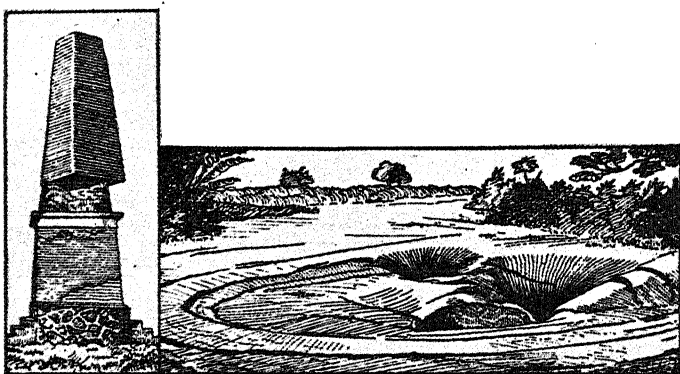
भूचालकी घुमावदार गतिके उदाहरण। बाईं ओर सन् १८९७ के आसामके भूचालमें एक स्मारक स्तम्भकी दशा। स्तम्भका ऊपरी भाग टूटकर अपने स्थानपर ही चक्कर खा गया है। दाईं ओर जमीन तक मरोड़ी हुई नजर आती है।

वैज्ञानिकोंने भूचालकी शक्तिका हिसाब भी लगाया है। उनके हिसाबसे भूचालोंकी शक्ति (गतिवृद्धिकी नापसे) २०,००० मिलीमीटर प्रति सेकेण्ड प्रति सेकेण्ड तक देखी जाती है। भौतिक विज्ञानमें शक्तिका हिसाब गतिवृद्धिके अनुसार इस प्रकार लगाया जाता है कि परिमाणुको एक सेकेण्डमें एक मिलीमीटरकी गतिसे दौड़ानेमें जो शक्ति लगी, वह १ मिलीमीटर प्रति सेकेण्डकी गति हुई। लेकिन दूसरे सेकेण्डमें पुनः उतनी ही शक्ति लगाई गई। फल यह हुआ कि परिमाणु एक मिलीमीटरकी गतिसे तो चल ही रहा था, उसमें एक मिलीमीटरकी गति और मिलनेसे दूसरे सेकेण्डमें उसकी गति दो मिलीमीटर प्रति सेकेण्ड हो जायगी। इसी प्रकार २०,००० मिलीमीटर प्रति सेकेण्ड प्रति सेकेण्डका अर्थ यह हुआ कि प्रथम सेकेण्डमें २०,००० मिलीमीटरकी गति, दूसरे सेकेण्डमें ४०,००० मिलीमीटरकी गति, तीसरे सेकेण्डमें ६०,००० मिलीमीटरकी गति। इसी प्रकार गतिमें प्रति सेकेण्डकी वृद्धि होती जाती है। पृथिवीके गुरुत्वाकर्षणकी शक्ति ९,८०० मिलीमीटर प्रति सेकेण्ड प्रति सेकेण्ड है। इस प्रकार बड़े भूचालकी शक्ति गुरुत्वाकर्षणकी शक्तिसे दुगुनीसे भी अधिक होती है।

भूचालकी लहरोंकी गति तीन प्रकारकी होती है। पहली Vertical यानी वह गति, जिसमें परिमाणु ऊपर नीचे हिलते हैं। इस गतिमें ऐसा जान पड़ता है मानो धरातलके नीचे कोई किसी दैत्याकार हथौड़ेसे चोट मार रहा हो। इसके धक्केसे मीनार, स्तम्भ या ज़मीनमें गड़ी हुई शिलाएँ अपने स्थानसे उखड़कर मटरकी तरह दूर जा गिरती हैं। परन्तु यह गति केन्द्रके समीप ही होती है। इसीलिए बिहारमें देखा गया है कि मकानोंकी छतें तीन-तीन फीट ऊपर उड़कर तब नीचे गिरी हैं। सन् १७८३ के कैलेब्रियन भूचालमें एक दीवार अपनी जड़से आठ फीट ऊपर उड़ गई थी।

दूसरी गति Horizontal होती है, जिसमें परिमाणु आगे-पीछे या दाएँ-बाएँ हिलते हैं। केन्द्रसे दूरके स्थानोंमें प्रायः यही एक गति दीख पड़ती है। परन्तु केन्द्रके समीप यह गति इतनी तेज़ीसे दिशाएँ बदलना शुरू कर देती है कि परिमाणु चक्कर लगाने लगते हैं, जिससे तीसरे प्रकारकी Rotary या घुमावदार गति उत्पन्न हो जाती है। मीनार और स्तम्भ अपने स्थानपर चक्कर खाकर रह जाते हैं। चिमनियाँ उमेठी हुई-सी जान पड़ती हैं। इसी घुमावदार गतिके
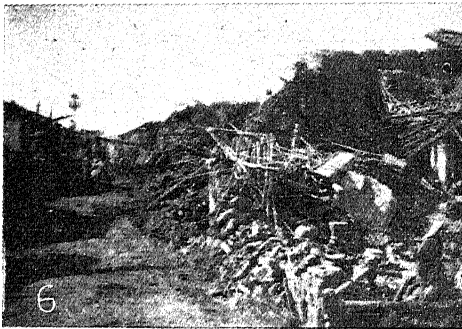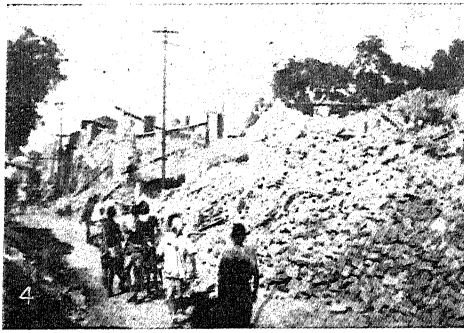
4 मुज़फ्फ़रपुर, 5 समस्तीपुर, 6 मुंगेरका एक गाँव, 7 मुंगेरका स्कूल, 8 केशवपुरका रास्ता—जमालपुर, 9 जमालपुर. 10 मुंगेरके बाज़ारका रास्ता, 11 मुंगेर।

कारण मकानका दरवाज़ा पूरबसे घूमकर उत्तर, दक्षिण या पश्चिममें होता देखा गया है। हालके भूचालमें मोतीहारीमें इस प्रकारका एक उदाहरण सुना जाता है। इस गतिके कारण धरती तक मरोड़ी हुई जान पड़ती है।

जब धरतीके परिमाणुओंमें १/१६०० इंचकी हरकत होती है, तब मनुष्यको बोध होने लगता है कि भूचाल हो रहा है। बड़े भूचालकी भयंकरताका अनुमान इससे लग सकता है कि सन् १८९७ के आसामके भूचालमें परिमाणुओंमें ९ इंचकी हरकत हुई थी, अथवा यों कहिये कि वह भूचाल बोधगम्य भूचालसे १५,००० गुना अधिक शक्तिशाली था! ऐसी दशामें एक प्रत्यक्ष दर्शीके इस कथनमें रत्तीभर भी अत्युक्ति नहीं है कि—"भूचालमें पृथिवी इस प्रकार हिलती थी, जैसे टैरियर कुत्ता चूहेको पकड़कर झकझोरता है।" बिहारके भूचालमें भी परिमाणुओंमें कई इंचका आन्दोलन हुआ होगा।

ज़ोरके भूचालमें केन्द्रके समीप भूचालकी लहरें धरतीपर प्रत्यक्ष चलती दीख पड़ती हैं। अथवा यों कहिये कि भूचालके कारण धरती लहरोंकी भाँति चलती—उठती-बैठती—दीख पड़ती है। सन् १८९७ के भूचालमें शिलांगकी सड़कें उसी प्रकार उठती-बैठती और दौड़ती-सी नज़र आती थीं, जैसे तूफ़ानमें समुद्रकी लहर! धरातलकी ये लहरें भूचालके केन्द्रके समीप एकसे दो फीट तक ऊँची और तीस फीट तक लम्बी देखी गई हैं। कभी-कभी जब ज़मीन अपने पुराने स्थानको नहीं लौटती, तो ये लहरें पत्थरोंमें ज्योंकी त्यों बनी रह जाती हैं और वह भूभाग लहरियादार दीख पड़ता है।

कहीं-कहींपर भूचालके कम्पनसे परिमाणु घनीभूत होकर सिकुड़ जाते हैं। सन् १८९१ के जापानी भूचालके पहले ज़मीनका एक टुकड़ा ४८ फीट लम्बा था, परन्तु भूचालके बाद उसकी लम्बाई कुल ३० फीट ही रह गई! कहीं-कहीं ठीक इसका उल्टा होता है, और परमाणु फैलते हैं। यह प्रसरणक्रिया इतनी तेज़ी और ज़ोरसे होती है कि पेड़ोंकी जड़ें उसे बर्दाश्त नहीं कर सकतीं, इसलिए पेड़ बीचसे खड़े चिर जाते हैं, और उनमें गहरी फाँक पड़ जाती है।

अकसर धरतीके बड़े-बड़े टुकड़े भूचालमें आगे-पीछे सरक जाते हैं, और फिर लौटकर अपने स्थानपर नहीं आते। सैन फ्रान्सिस्कोके भूचालमें शहरके मुहल्लेके मुहल्ले आगे-पीछे खिसक गये थे, जिससे दो नियत स्थानोंके फासलोंमें अन्तर पड़ गया था।
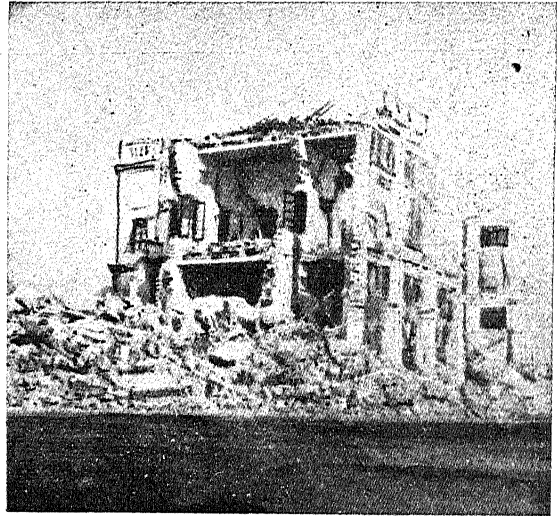
भूचालसे मोतिहारीके पास एक नये बने हुए बंगलेकी दशा

हमारे ऊपरी धरातलके नीचे बालूकी तहमें पानीके सोतोंकी एक नाज़ुक प्रणाली है, जिससे हमारे कुँओंमें पानी आता है। भूचालके आन्दोलनमें धरतीके नीची-ऊँची होनेसे यह प्रणाली भी उलट-पुलट जाती है। पुराने सोते बन्द हो जाते हैं। नये पैदा हो जाते हैं। बिहारमें इसीलिए हज़ारों कुएँ बेकार हो गये हैं।

धरतीकी सतह धँस जाने और धक्केमें सतहके नीचेके सोतोंका पानी ऊपर आ जानेके कारण अनेकों तालाब बन जाते हैं। बिहारमें भी अनेक सूखी ज़मीनोंपर अब झीलकी भाँति पानी लहरें मारता है। (पृष्ठ १३३ पर चित्र देखिये)।

भूचालके धक्कोंसे धरतीमें कुछ गोलाकार दरारें-सी

फटती हैं। जान पड़ता है कि किसीने बरमेसे छेद कर दिया हो। ऊपरकी ठोस ज़मीनका बोझ पड़नेसे नीचेका पानी और पिलपिली बालू इसी छेदसे निकल भागती है। बिहारमें इस प्रकारके हज़ारों जलमुखी उत्पन्न हो गये हैं। (पृष्ठ १३२ पर चित्र देखिये)। जब यह दरारें बहुत गहरी होती हैं, तो गर्म पानीके सोतोंके टेम्परेचरमें भी परिवर्तन हो जाता है। कहीं-कहीं गर्म पानीके फौवारे (गीसर) निकल आते हैं। आइसलैण्डमें सन् १८९६ के भूचालमें एक अस्थाई

मुज़फ़्फ़रपुरका कल्यानीबाज़ार

गीसर निकल आया था, जिसमें से भाप-मिश्रित पानीकी धार ६०० फीट ऊँची निकलती थी! उसी समय एक पुराना गीसर सदाके लिए बन्द हो गया था।

जब कभी धरतीका स्तर इतना गहरा फट जाता है कि फटन भू-गर्भमें लावाकी तह तक पहुँच जाती है, तब, लावापर सहसा दबाव कम हो जानेसे लावा ऊपर उठकर दरारसे बहने लगता है।

पृथिवीके भू-गर्भमें नाना प्रकारकी गैसें जमा हैं। दरारोंके फटनेसे ये गैसें निकलती देखी जाती हैं। जान मिलनेके कथनानुसार सन् १६९२में जमैकाके भूचालकी दरारोंसे निकली हुई जहरीली गैसोंसे ३००० आदमी मर गये थे! बिहारके भूचालकी दरारोंमें भी किरासन तेल और गन्धककी बू निकलती बतलाई जाती है। लेकिन वैज्ञानिक जाँच हुए बिना कुछ निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता।

भूचालसे नदियोंकी धारमें भी परिवर्तन हो जाता है।

भूचालमें धरतीकी सतह अकसर ऊँची-नीची होती देखी जाती है। सन् १८९७ के भूचालमें आसामके अनेक स्थान कुछ फीट ऊँचे हो गये थे। सन् १८९९ के भूचालमें अलास्काके तटके समीपके समुद्रकी तलेटी एकाएक उचककर ४७ फीट ऊँची हो गई थी! फलस्वरूप बहुतसी ज़मीन पानीके बाहर निकल आई थी। आसाममें जहाँ अन्य स्थान ऊँचे हुए थे, वहाँ गारोकी पहाड़ियाँ धँस गई थीं। शिलांगके पास दो फ़ौजी कस्बे पहाड़ीके दोनों ओर स्थित थे। बीचमें गारोकी पहाड़ियाँ होनेके कारण वे एक दूसरेको दिखलाई नहीं पड़ते थे; परन्तु भूचालके बादसे वे एक दूसरेको दीख पड़ने लगे। इसी प्रकार सन् १७६२ में चटगाँव ज़िलेकी ६० वर्गमील भूमि नीची होकर समुद्रमें डूब गई थी। बिहारमें भी अनेक मकान कई फ़ीट नीचे घुस गये हैं। सन् १९२३ के जापानके संसार-प्रसिद्ध भूचालमें सगामीकी खाड़ीकी तलेटीके कुछ स्थान ८०० फीट तक ऊँचे और कुछ स्थान १३०० फीट तक नीचे हो गये थे।

भूचालोंका असर समुद्रकी लहरोंपर भी पड़ता है। भूचाल आनेपर समुद्रकी लहरें अपनी साधारण उँचाईसे बहुत ऊँची हो जाती हैं। भूचाल-जनित लहरोंकी उँचाई अस्सी-अस्सी फीट तक देखी गई है। अकस्मात् इतनी ऊँची लहरोंके आनेसे समुद्र-तटपर बसे हुए पचासों ग्राम और कस्बे डूब जाते हैं। सन् १८९६ के जापानी भूचालमें ३०,००० आदमी इस प्रकारकी लहरोंसे डूब

मरे थे। लहरोंकी यह उँचाई भूचालके केन्द्रके समीप बहुत होती है, और दूरीपर क्रमशः घटती जाती है। जब भूचालसे समुद्रकी तलेटीका धरातल ऊँचा-नीचा हो जाता है, तब लहरें बहुत ऊँची उठती हैं।

एक विचित्र बात यह है कि भूचालमें लाखों मछलियाँ और जल-जन्तु मर जाते हैं। जान पड़ता है कि मछलियोंको भूचालकी बात पहलेसे ज्ञात हो जाती है, इसीलिए वे नदियों और समुद्रकी तलेटीसे भाग-भागकर ऊपर आ जाती हैं, मगर भूचालके कम्पनसे पानीमें जो धक्के लगते हैं, उससे तथा पानीके संकुचनके दबावसे वे मर जाती हैं।

भूचालके आन्दोलनसे पहाड़ोंके ढालपर जमी हुई मिट्टीकी तहें खिसक पड़ती हैं। सन् १८९७ के आसामके भूचालमें सैकड़ों मील तक पहाड़ोंके ढालोंसे मिट्टी खिसक पड़ी थी। सिर्फ एक ही घाटीमें बीस मील लम्बे ढालपर जमा हुआ मिट्टीका स्तर, जिसमें जंगल और ऊँचे-ऊँचे पेड़ उगे हुए थे, खिसककर नीचे गिर पड़ा था। फल यह हुआ कि बहुतसी बालू निकल पड़ी, जिसने उड़कर और बहकर हज़ारों खेतोंको बरबाद कर दिया था।

बर्फीले पहाड़ोंके हिलने-डोलनेसे बड़ी-बड़ी हिम-राशियाँ पहाड़पर से गिर पड़ती हैं। अलास्काके भूचालके धक्केसे वहाँके ग्लेशियर (हिम-नदी) कई वर्ष तक बहुत ज़ोरसे बहते रहे थे।

बिहारके इस भूकम्पमें अनेकों खेतोंमें बालू भर गई है। भूचालके धक्केसे धरतीके नीचेकी बालू ऊपर आ जाती है। अथवा पृथिवीके कण जो साधारण अवस्थामें एक दूसरेसे चिपके रहते हैं, धक्के खाकर बालूकी शक्लमें बदल जाते हैं।

भूकम्पके साथ-साथ बहुधा आवाज़ भी सुनाई देती है। यह आवाज़ कभी तो दूरपर तोपोंके गर्जनकी भाँति, कभी बादलोंकी गड़गड़ाहटकी भाँति और कभी ऐसी होती है जैसे भरी हुई गाड़ी या रेल या लारीके चलनेसे होती है। वैज्ञानिकोंका कथन है कि धरातलकी स्पन्दन-शक्ति जब वायुमंडलमें 'पास' हो जाती है, तब वायुके स्पन्दनसे यह आवाज़ पैदा हो जाती है।

प्रायः यह देखा जाता है कि बड़े भूचालके आनेके पहले दो-तीन साधारण धक्के लगते हैं, फिर मुख्य धक्का—एक या अधिक—लगता है, और उसके बाद अनेक छोटे-छोटे धक्के कई दिनों तक—हफ्तों और महीनों तक—लगते रहते हैं। भूचालके मुख्य धक्केसे स्तरमें जो परिवर्तन होते हैं, स्तरको उस परिवर्तित पोज़ीशनमें यथास्थान बैठनेके कारण ही बादके यह कम्पन हुआ करते हैं; परन्तु बादके ये कम्पन अधिक ज़ोरके नहीं होते। बिहारके गत १५ जनवरीके भयंकर भूचालके पहले १४ और १५ जनवरीको, मुख्य धक्केके पहले, तीन हलके धक्के आये थे, और १५ जनवरीसे २० जनवरी तक अलीपुरके सीसमोग्राफमें २८ हलके धक्के अंकित हुए थे। २२ जनवरीको चीनमें भूचालका एक भयंकर धक्का लगा था और २९ जनवरीको मेक्सिकोमें एक ध्वंसकारी भूचाल हुआ था।

कलकत्तेके वायु-विज्ञान विभागके अध्यक्ष डाक्टर एस० एन० सेनके कथनानुसार बिहारके भूचालके उत्तेजक कारणोंमें निम्न लिखित कारण थे—

१—इस वर्ष कुमाऊँके पहाड़ोंमें औसतसे अधिक और खासी जयन्तियामें औसतसे कम वर्षाका होना।

२—गत २१ नवम्बरको ग्रीनलैण्डके समीप बैफिनकी खाड़ीमें एक बहुत ज़ोरका भूचाल आना।

३—११ जनवरीसे १४ जनवरीके बीचमें पंजाबसे बंगाल तक सरदीकी एक लहरका आना।

बिहारके भूचालमें बिहार और नेपालमें लगभग बीस-पचीस हज़ार मनुष्योंका प्राणनाश हुआ है। संख्याको देखकर यह संख्या कोई बड़ी भयंकर नहीं है क्योंकि भारतमें प्रतिवर्ष साढ़े तीन लाख आदमी हैज़ेसे ही मर जाते हैं। इस प्रकार भूचाल हैज़ेसे अधिक घातक नहीं है। मगर यह साढ़े तीन लाख आदमी समूचे भारतमें और ३६५ दिनोंमें मरते हैं।

भूचालकी वास्तविक भयंकरता स्थान और समयकी परिमिततामें है। भूचालमें बहुत छोटेसे क्षेत्रमें पांच-सात सेकेण्डमें ही हज़ारों मनुष्य कालके गालमें चले जाते हैं और करोड़ों-अरबोंकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।

प्रकृति इस ध्वंस कार्यमें जितनी शक्ति लगाती है, उसे देखते हुए यह हानि होना स्वाभाविक है। संसारकी सबसे बड़ी तोपसे गोला निकलते समय इतनी शक्ति पैदा होती है, जिससे एक टन भारी चीज़ १५ मीलकी ऊँचाई तक ऊपर उठाई जा सके! मगर भूचालमें प्रकृति जिस शक्तिको उच्छृंखल कर देती है, उसका अन्दाज़ इस बातसे लगाइये कि सन् १९०६ के कैलीफोर्नियाके भूचालमें इतनी शक्ति लगी थी, जिससे एक घनमील चट्टान ६००० फीटकी ऊँचाई तक उठाई जा सके, अथवा यों कहिये कि इस भूचालकी शक्ति सबसे बड़ी तोपकी शक्तिसे ८०,००,००,००० गुणा थी! कैलीफोर्नियाका भूचाल अपेक्षाकृत साधारण भूचाल था। सन् १९११ का तुर्किस्तानका भूचाल कैलीफोर्नियाके भूचालसे २६ गुना शक्तिशाली था, यानी उसकी शक्ति सबसे बड़ी तोपकी शक्तिसे २०,८०,००,००,००० गुना अधिक थी!
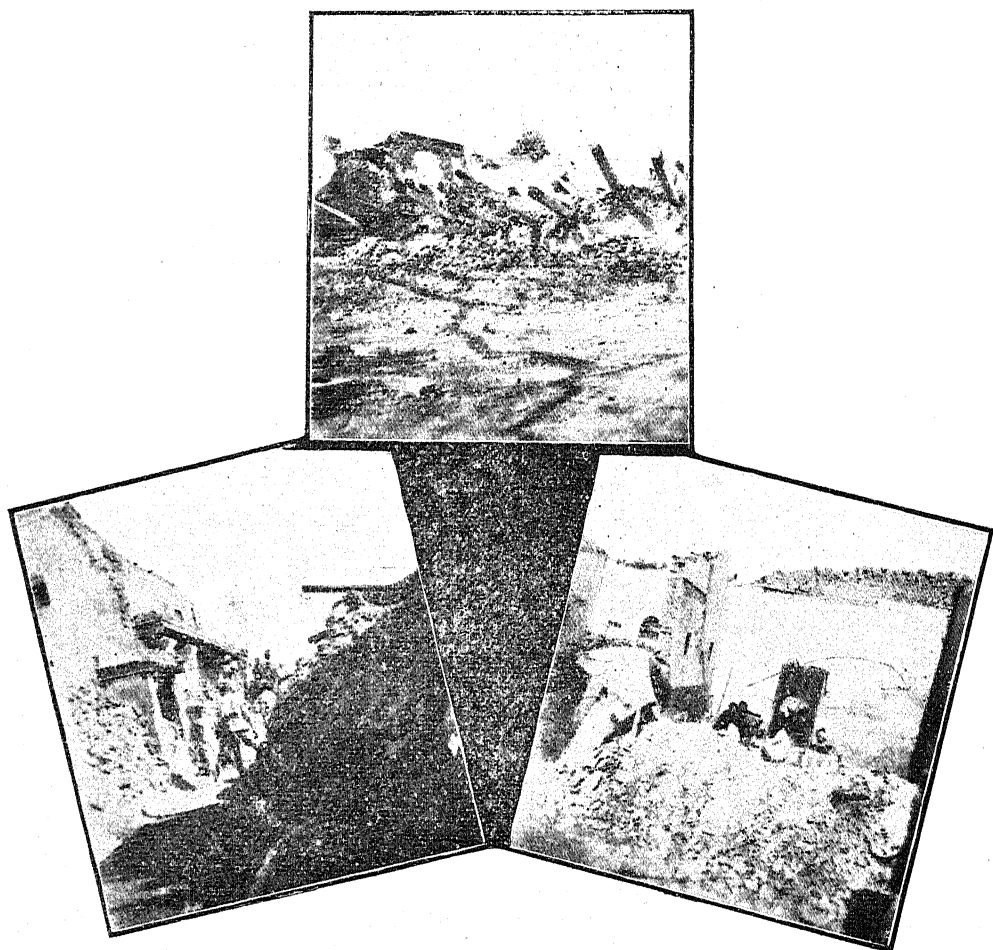
मुज़फ्फ़रपुरमें भूचालका ध्वंस कांड। ऊपर—हाई स्कूलकी दशा। बायीं ओर—एक सड़क। दायीं ओर—सेठजीका मकान ध्वंस हो गया, केवल लोहेकी तिजोरी खड़ी है।

[श्री श्रीराम शर्मा द्वारा ली हुई फोटोसे

सत्यनारायण 'कविरत्न'

बनारसीदास चतुर्वेदी

ब्रजभाषाका उद्धार हो सकता है या नहीं? हिन्दी-साहित्यमें सत्यनारायण कविरत्नका क्या स्थान है? क्या वे वास्तवमें 'कविरत्न'की उपाधिके अधिकारी थे या नहीं? इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए यह लेख नहीं लिखा जा रहा है। इन पंक्तियोंका लेखक एक तो कविताका मर्मज्ञ नहीं, और दूसरे वह सत्यनारायणकी कविताकी अपेक्षा उनके मनुष्यत्वसे अधिक प्रभावित हुआ था, और यह लेख उनके व्यक्तित्वपर कुछ प्रकाश डालनेके लिए ही लिखा जा रहा है।

सत्यनारायणके जीवनकी जो बात हमारे हृदयको सबसे अधिक अपील करती है, वह है उनकी सहृदयता और निस्स्वार्थ सेवा। उन्होंने अपने जीवनमें कभी रुपये आने पाईकी हिसाबी वृत्तिसे काम नहीं लिया, साहित्यको व्यापारकी वस्तु नहीं बनाया, और वे उस वणिक-वृत्तिसे, जो हमारे अनेक साहित्य-सेवियोंको असमयमें ही ग्रस लेती है, सर्वथा दूर ही रहे। जहाँ तक हम जानते हैं, उन्होंने अपनी किसी पुस्तकसे एक भी पैसा नहीं कमाया। उनकी कविताएँ स्वान्तः सुखाय होती थीं, और यद्यपि उन्हें कभी-कभी दूसरोंके दबावमें आकर व्यक्ति-विशेषोंकी प्रशंसामें तुकबन्दी करनी पड़ी थी; पर ऐसे अवसर बहुत कम आये थे,

आई तव पाती
नाहिं जि भरायो अजहुँ मोहि पछतानि सिरानी छाती
बड़े भाग जो इतने दिनमें सोचि कछू सुधि लीनी
दरस-पिपासाकुलकों आधी-जीवन-आशा दीनी
जो तोसों हे सिथिले होत मैं तासु निरवारचो री
बस गुनहीगुन निरखत तिह-माधि सरल प्रकृतिकों-पो
यह स्वभाव कौ रोग जानि पै मेरो बस कछु नाहीं
नित नव विकल रहत याहीसों ~~देखे~~ बत हृदय विदारन नाहीं
रहा गत-पोषित तम वे बस आशा प्रीति-प्रभा तैं
बोले सत्य ग्राम कौ वासी कहा "तदनुकूल" जानै
२६-१२-१५

साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्माको भेजा हुआ एक पत्र

और वे अपने १५ वर्षके साहित्यिक जीवनमें उस कोकिलकी तरह ही रहे, जो अपने मधुर गानके बदलेमें कभी पैसेकी इच्छा नहीं करती। वह गाती है, क्योंकि गाना उसके जीवनका कर्तव्य है, गाये बिना वह रह नहीं सकती। गाना उसका स्वभाव है।

सत्यनारायणके व्यक्तित्वको समझनेके लिए उनके बाल्य जीवनकी Back ground पृष्ठभूमिके विषयमें कुछ जान लेना आवश्यक है। सत्यनारायणका जन्म २४ फरवरी सन् १८८० को अपनी माताकी अत्यन्त दयनीय स्थितिमें हुआ था। वे उस समय दीनहीन अवस्थामें इधर-उधर भटक रही थीं, और उनका कोई संरक्षक नहीं था। उनकी बाल्यावस्था भी उसी परिस्थितिमें कटी, यद्यपि सौभाग्यसे अब उन्हें बाबा रघुवरदास नामक एक साधुकी शरण मिल गई थी। बड़े होनेपर कई वर्ष तक श्वास रोगसे पीड़ित होनेके कारण उनकी दशा बड़ी करुणाजनक बन गई थी। सम्भवतः इन्हीं कारणोंसे उनकी रुचि करुण रसकी ओर प्रवृत्त हो गई।

सत्यनारायण कविरत्नके व्यक्तित्वमें एक विचित्र सरलता थी, जो निर्बलताकी सीमा तक पहुँच गई थी, जिसमें कृत्रिमताका नामोनिशान नहीं था, आश्चर्यजनक सुसंस्कृति थी, जो बिरले ही व्यक्तियोंमें पाई जाती है, और थी एक अजीब सहनशीलता, जिसकी अति मात्राने उनके गृह-जीवनको मरुभूमि बनानेमें भरपूर सहायता दी।

बाल्यावस्थासे ही सत्यनारायणजीको कवितासे प्रेम था, और ख़ासतौरसे श्रृंगाररससे। एक बार आपने एक श्रृंगाररसपूर्ण सवैया बनाकर अपने गुरु महाराज बाबा रघुवरदासको सुना दिया। शायद आपने सोचा होगा कि हमारी विद्या-बुद्धिपर प्रसन्न होकर बाबाजी शाबासी देंगे, पर वहाँ उलटे लेनेके देने पड़ गये!

बाबाजी सवैया सुनकर बड़े नाराज़ हुए, और उन्होंने बालक सत्यनारायणके पाँच-सात थप्पड़ जमा दिये और कहा—"अभी ते ऐसी वाहियात कविता बनावै है। आगे चलकैं न मालुम का करैगो। खबरदार जो अब ते ऐसे छन्द बन्द बनाये।"

उन दिनोंकी तुकबन्दी सुन लीजिए:—

"खन्दक-खाई लखै न अगार जू नैंक जुबान सम्हारिकैं बोलो।
सल्लजू खूब फिरो निमटे सँग बाँधिके ग्वालनको यह टोलो॥
वाह! अबीरसों आँखिन फोरत! खेलनो हो रँग गाँठिको खोलो।
जीजाकी सौंह परें सरकौ तुम औरु ही मीजा टटोरत डोलो॥"

इस प्रकारके 'वाहियात छन्दों' पर वृद्ध बाबाजीका नाराज़ होना स्वाभाविक ही था।

सत्यनारायणजीके स्वभावमें एक कोमलता थी, सहृदयता थी, जिसे संसारके कटु-से-कटु अनुभव भी नष्ट नहीं कर सके। उन्होंने अपने हृदय-पटलको कभी कलुषित नहीं होने दिया, वह सदा स्फटिककी भाँति स्वच्छ रहा। उसने स्वामी रामतीर्थकी अमृत-वर्षाका उसी प्रकार स्वागत किया, जिस प्रकार श्रीमती सावित्री देवीजीकी विष-वर्षाका।

स्वामीजीकी अमृत-वर्षापर उनके हृदयस्थलसे यह ध्वनि उठी थी—

"यह आतम अज अगम अमर अनुपम और अक्षय।
तजि यासों सम्बन्ध प्रकृतिमें प्रकृति होति लय।
यों विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय।
कहा मिलन-बिछुरन जबै तुम हममें हम तुममें बसत।
बस विमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्वव्याप्त केवल लसत॥
जबलौं देश-हितैषिनको भारतमें आदर।
जबलौं भुवि अखंड शंकर वेदान्त उजागर।
जबलौं सुभग स्वदेश-भक्ति निश्शेष बसति मन।
जबलौं जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमपन।
तबलौं निस्संशय रहहि, रामतीर्थ कीरति अमल।
नित अंकित प्रति उर-पटलपर, अजर अमर अविचल अटल॥"

और विष-वर्षासे तिलमिलाते हुए उनका कोमल अन्तःकरण इन पंक्तियोंमें द्रवित होकर निकला था—

"भयो क्यों अनचाहतको संग।
सब जगके तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहूँ पतंग॥
लखि तव दीपति-देह-शिखामें निरत बिरह लौ लागी।
खिंचति आपसों आप उतहिं यह ऐसी प्रकृति अभागी॥
यदपि सनेह-भरी तव बतियाँ, तऊ आचरजकी बात।
योग-बियोग दोउनमें इक सम नित्य जरावत गात॥
जब जब लखत तबहिं तव चरनन, वारत तन मन प्रान।
जासों अधिक कहा तुम निर्दय, चाहत प्रेम प्रमान॥
यह स्वभावको रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै।
सत्य बतावहु का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै॥"
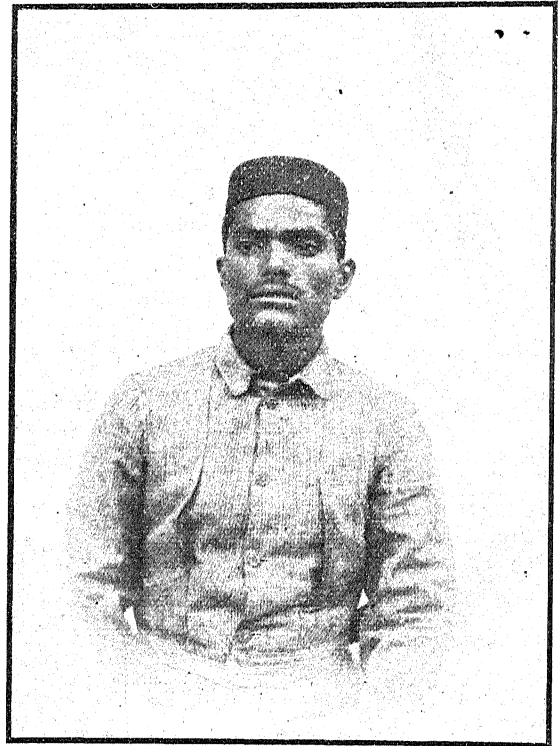
सत्यनारायण (विद्यार्थी-जीवनमें)

अन्तस्तलपर असह्य चोट पड़नेपर भी उस हृदयसे यही ध्वनि निकली थी—

"आपको अमरावती जाना पड़ा था और यहाँ ....जाना पड़ा था! आपने झरनोंका दर्शन किया और यहाँ झरनोंको निर्झरित किया है। कैसा विचित्र साम्य! इस सबके सब दुखको वर्षा देखती है;

किन्तु निस्सहायकी भाँति चपल नयनोंको चुरा लेती है। जानती है किन्तु अपने कामोंको रोक नहीं सकती। इसलिये 'बापुरी' है। जाना था उसे सहृदया किन्तु निकली जड़की जड़! इसलिये 'बापुरी' है। जो दूसरोंके दुःखके साथ दुःखित नहीं हो सकती उसकी दशा Pitiable है। इसलिये 'बापुरी' है। विचारी आँसू बहाती हुई नाचार है इसलिये 'बापुरी' है। × × × × × × । कभी प्यारे घनश्यामसे किसी गोपीने कुछ पूछा था। × × × उस जले-भुनायेने उसे 'बापुरी' कहकर उत्तर दिया होगा—× × ×। बतलाइये, यह सब कुछ क्यों हो गया? क्या जानबूझकर बन गये? या ऐसी अवस्थाका प्रलयोन्मुखी होना अवश्यम्भावी है?

सत्यनारायण कविरत्नके जीवनमें जो बात अत्यन्त आकर्षक दीख पड़ती है, वह यह है कि वे सदैव सजीव रहे। समयकी गतिके साथ निरन्तर आगे बढ़ते रहे। स्वामी रामतीर्थके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर सन् १९०३ में हम उन्हें यह गाते हुए पाते हैं—

"यह पागल होना तो हमको मुबारक हो मुबारक हो।
सभी जग धंधसे छुटना मुबारक हो मुबारक हो।
जो कोई जानना चाहे कि दुनियाँका रहस क्या है।
इक पागलपन समा जाना मुबारक हो मुबारक हो।
असलको पा लिया जिसने उसीका नाम पागल है।
पागलपन गले पड़ना मुबारक हो मुबारक हो।
सतदेव होना चाहता पगलोंका बादशाह।
हमको हमारी यह दुआ मुबारक हो मुबारक हो॥"

तो सन् १९१८ में अपनी मृत्युसे महीने-भर पूर्व वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इन्दौरके अवसरपर महात्मा गान्धीके चरणोंमें यह श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दीख पड़ते हैं—

"तुमसे बस तुमहीं लसत, और कहा कहि चित भरैं।
'सिविराज' 'प्रताप' अरु 'मेजिनी' किन-किनसों तुलना करैं॥
अबुहिं सारथी बने कमल दल आयत लोचन।
अर्जुनसों बतरात बिहँसि त्रयताप विमोचन॥
धीरज सब विधि देत यही पुनि पुनि समझावत।
'दैन्य' 'पलायन' एकहु ना मोहि रनमें भावत॥
इक निमित-मात्र है तू अहो, फिर क्यों चित विस्मय धरैं।
गोपाल कृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करैं॥"

दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी भारतीयोंके सत्याग्रहसे प्रभावित होकर कभी हम उन्हें यह गाते हुए पाते हैं—

"तुव जस विमल कहाँ लों गावें।
जब-जब आवति सुरति तिहारी नयन नीर भरि आवें॥
....
अन्य कठोर जाति इक ऊपर दूजें देस बिरानौ।
सकल भाँति असहाय तऊ तुव धीरज नाहिं हिरानौ॥
तन मन धन सरबस सुत-दारा सबको मोह बिहायो।
केवल भारत जन नैसर्गिक सत्त्व सुभग अपनायो॥
तप्तस्वर्ण सम जगमगात नित राखत दृढ़ विश्वासा।
श्रीनारायण पूर्ण करैं तुव प्रेमभरी प्रिय आसा॥"

तो उनके हृदयसे कभी कामागाटामारूकी दुर्घटनासे पीड़ितहोकर ये उद्गार निकल पड़ते हैं—

"जगको जो आश्रय देते थे सहकर भी दुख सारे।
फिरैं निराश्रय उन ऋषियोंके सुत यों मारे-मारे॥
होता अगर हमारे सिरपर कोई हितू हमारा।
रक्खा रह जाता बस घरमें यह क़ानून तुम्हारा॥
जहाँ जाँय तहँ बड़ी घृणासे बलसे जाँय निकाले।
प्रजा भूप निर्बल ऐसेकी कहलाते हम काले॥
काले हैं सन्देह नहीं हम किन्तु हृदयके गोरे।
उच्च उदार सभ्य भावोंसे हैं नहिं बिलकुल कोरे॥
जब-जब जन्म देइ जगदीश्वर तब-तब हम हों काले।
उन गोरोंसे सदा बचावैं जो स्वारथ मतवाले॥
ऐरे गैरे पचकल्यानी चले हिन्दमें आते।
हम आरत भारतवासी कहीं पैर न रखने पाते॥
....

तकते हुए पराये मुखको अब तक बहु दुख भोगा।
अबसे मारग सुगम आप ही अपना करना होगा॥
कुछ चिन्ता नहिं जो विपदाने इतना हमें सताया।
जगमगाय उतना ही सुवरन जितना जाय तपाया॥
एक प्राण हो उच्चस्वरसे यदि हम रुदन सुनावें।
सोते हुए शेषशायी भी जगकर दौड़े आवें॥
उनसे ही कहना यथार्थ है वे सच्चे महाराज।
अपनी जन्मभूमिका हमको जान रखेंगे लाज॥"

—'श्रीगुरुनानकके यात्री'

कभी वे कवीन्द्र रवीन्द्रसे राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी हिमायत इन शब्दोंमें करते हैं—

"जैसी करी कृतारथ तुम अँगरेज़ी भाषा।
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा॥
एक भाव सों रवि ज्यों वस्तुनि वृद्धि प्रदायक।
बरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यों सुरनायक॥
'रवि' 'इन्द्र' मिले दोउ एक जहँ तऊ अचरज कैसो अहै।
यह प्यासी हिन्दी चातकी तव रसकों तरसत रहै॥"

और कभी श्रीमती सरोजनी देवीके करकमलोंमें यह श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं—

"निरुत्साह हेमन्त और पतझरके मारे।
सकें न कछु कर विवस यहाँके लोग बिचारे॥
असन बसन बिन कम्पत तनु अरु अस्फुट भाषा।
किन्तु जियावति तिन्हैं एक बस प्यारी आशा॥
ऐसे जीवन-संग्राममें होवहि वांछित काज है।
क्योंकि सुखद आवन चहत श्रीऋतुराज स्वराज है॥
भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ।
या स्वदेशमें नवजीवन संचार करावौ॥
बहु दिनके सुसुप्तकों करुणामयी जगावौ।
कल कोमल रसाल वाणीसों याहि उठावौ॥
जासों यहि आर्यावर्तको नष्ट होइ सन्ताप है।
जग जगमगाय नव जोतिसों अनुपम प्रबल प्रताप है॥"

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, घोरसे घोर शारीरिक कष्ट और भयंकर-से-भयंकर मानसिक सन्ताप सत्यनारायणके स्वभावकी सरलता, सरसता तथा कोमलताको नष्ट नहीं कर सके। एक युवतीको, जिसने शायद विवाह न करनेका निश्चय कर लिया था, वे क्या लिखते हैं—

कली री अब तू फूल भई
मन मधुकर बहु आस लगाये तोसों प्रेम मई
विकसत सुभग अंग दल प्रतिपल शिशुता कलित लिये
रह्यो कछु अजानता ही जो अब ऐसी हठ ठानी
चार दिना की लहरि पहरि हैं प्रीति रीति के रीते
ऐसो करहु न जो पछितावौ पाछे अवसर बीते
सो चित चाहि कै कीजै कारज जग व्यवहार कों
इहै लोक परलोक माहि सों सत्य सिखावन मेरो

साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मासे पत्रोत्तर न पानेपर उन्होंने लिखा था—

पद्म तव हृदय बड़ो बेपीर
सोचत ना यह पँच [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] जानत ना [illegible]

श्री सावित्री देवी और सत्यनारायण कविरत्न

श्रीयुत सत्यनारायणजीका विवाह श्रीमती सावित्री देवीके साथ ७ फरवरी सन् १९१६ को हुआ था ; पर गार्हस्थ्य जीवनके सुख या दुःख भोगनेका सौभाग्य या दुर्भाग्य उन्हें दो वर्ष सवा दो महीनेसे अधिक नहीं प्राप्त हुआ, क्योंकि १६ अप्रैल सन् १९१८ को उनका स्वर्गवास ही हो गया। परस्पर विरोधी प्रकृतिके इन दो प्राणियोंके निजी जीवनके सम्बन्धमें हमें कविरत्नजीके जीवन-चरितमें बहुत-कुछ लिखना पड़ा है, और हम इस लेखमें उन दुःखद प्रसंगोंको दुहराना नहीं चाहते। केवल इतना लिखना पर्याप्त समझते हैं कि उक्त जीवन-चरितमें एक भी पंक्ति ऐसी नहीं, जो बिना प्रमाणके लिखी गई हो, और जो कुछ लिखा गया है, उससे दस गुना भयंकर मसाला अब भी सुरक्षित है। चूँकि उक्त पुस्तकके एक पत्रको जाली बतलानेकी कृपा की गई है, इसलिए उसे हम यहाँ ज्योंका त्यों ब्लाकके रूपमें उद्धृत करते हैं—

वी. पी. विभाग } सुखसंचारक को.
पारसल नं. १९४७ } ता. ५ ... १९ मथुरा

आप की सेवा में आज्ञानुसार नीचे लिखे हिसाब से माल भेजा है कृपा करके कीमत देकर ले लीजिये यदि पारसल पहुंचते समय रुपया पास न हो या कोई। ह साब में भूल हो तो पारसल को वापिस न करके डांक खाने में अमानत [डिपाजिट] रखवाकर हम से पूछिये ऊपर लिखा नंबर और तारीख अवश्य लिखिये

नाम चीज	रु०	आ.
१ प्रेम का परिणाम	-	[illegible]
१ हास्य मंजरी	-	[illegible]
१ रात में ८० खून	-	[illegible]
१ लड़की चली	-	[illegible]
१ किशोरी नरेन्द्र	-	[illegible]
१ यारों की यारी	-	[illegible]
१ फूलसिंह डाकू	-	[illegible]
	१	[illegible]
व. ह. डांक महसूल पारसल बनानेका खर्च मनिआर्डर खर्च		[illegible]

printer k. p. sharma s. s. press muttra) क्षेत्रपाल शर्मा
१) कुल

जीवन-चरित लेखकका कर्तव्य वस्तुतः अत्यन्त कठोर होता है। वह उपन्यास या गल्प-लेखक तो है नहीं कि मन आवे जो बात छोड़ दे और मनमानी चीज़ चाहे जहाँ बढ़ा दे। फिर भी हम अपनी भूल स्वीकार करनेके लिए सर्वदा उद्यत हैं, यदि हमें कोई विश्वास दिला दे कि ये हमारी भूलें हैं। सत्यनारायणजीके व्यक्तित्वके प्रति हमें बड़ी श्रद्धा है; पर हम जान-बूझकर किसीके साथ अन्याय अथवा अनुचित पक्षपात नहीं करना चाहते। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि चरित-लेखककी ईमानदारी एक अमूल्य चीज़ है, जिसका बलिदान किसी बड़ेसे बड़े पुरस्कार या भयंकरसे भयंकर दण्डकी बलिवेदीपर नहीं किया जा सकता।

सत्यनारायणजीको हम कविरत्न नहीं मानते, क्योंकि हमारा विश्वास है कि अभी उनकी कविताका पूर्णरूपसे विकास भी नहीं होने पाया था, और न हम उन्हें आदर्श पुरुष ही मानते हैं, क्योंकि पुरुषत्वके कई अत्यन्त आवश्यक गुण उनमें विद्यमान नहीं थे, नहीं तो उनके गृह-जीवनका उद्यान इस प्रकार श्मशान न बना दिया जाता। सत्यनारायणको हम वस्तुतः व्रजकोकिलके रूपमें स्मरण करते हैं, और 'एक भारतीय आत्मा' के शब्दोंमें यही प्रार्थना करते हैं—

"वह कोमल काकली कलित-सी, सीखी, वृन्दा-विपिन निवेश।
मस्त कान्हको कर-कर देती, हर-हर लेती हृदय-प्रदेश॥
राष्ट्र भारतीके उपवनमें होती रहती थी वह कूक।
कर कर दिये क्रूरताओंके उसने सदा करोड़ों टूक॥
वह कोकिल, उड़ गया, गया—वह गया—कृष्ण! दौड़ो लाओ।
वनदेवीका धन लौटाओ—सच्चे नारायण! आओ॥"
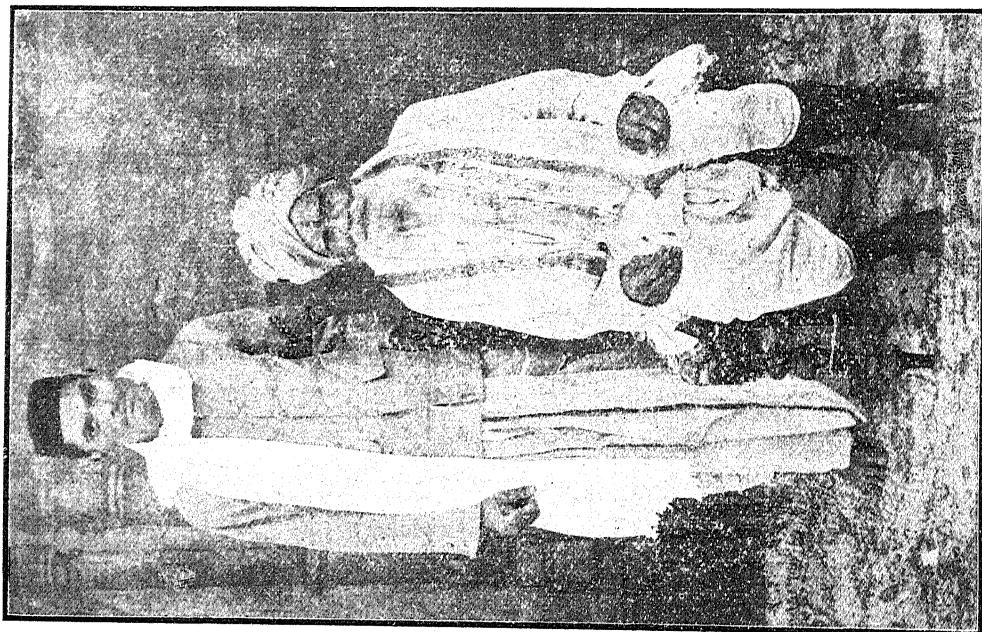
सत्यनारायण और उनके गुरु बाबा रघुवरदास

वसन्तोत्सव

प्रिय महाशय,

आपका "वसन्तोत्सव कैसे मनाया जाय" लेख पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप वसन्तऋतुके सौन्दर्य और सुरभिपूर्ण आनन्दको न केवल प्रकृतिके अन्दर देखना चाहते हैं; परन्तु उसके साथ मानव-हृदयके सुन्दरतम, रसमय विकसित वसन्तका भी दर्शन करना चाहते हैं। वसन्त अपने सौन्दर्यकी भेंट मनुष्यके हृदयके सम्मुख लाता है; परन्तु उसको हँसती हुई मुस्कानसे स्वीकार करना तो दूर रहा, वह उसपर दृष्टिक्षेप भी नहीं करना चाहता! जो वसन्त प्रकृतिके सूखे-से-सूखे वृक्ष और मुरझाई हुई लतामें नये जीवनको उत्पन्न कर देता है, उसी वसन्तका जीवनमय रूप जब चारों तरफ़ अपने मानव-समाजमें दिखाई नहीं देता, तो यह एक ऐसी वस्तु प्रतीत होती है, जो बिलकुल अस्वाभाविक हो। जब फूल हँस-हँसकर धीमे-धीमे झूला झूल रहे होते हैं; वायु सुगन्धमें मस्त होकर नाचती है; पक्षी अपनी चोंचें खोलकर अपने हृदयकी प्रसन्नताको नाना प्रकारकी अर्थहीन स्वरपूर्ण बोलियोंमें अभिव्यक्त करते हैं; यहाँ तक कि काँटेकी झाड़ियोंमें भी ऐसे फूल निकल आते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो काँटेने भी संसारको यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि मुझमें भी कैसा मधुर सौन्दर्य है—ऐसे समयमें हमारा समाज क्यों इस प्रकार शून्य हृदय-सा प्रतीत होता है? इस उदासीनतासे हृदयमें जो वेदना होती है, मालूम होता है, उसीने आपको इस लेखको लिखनेके लिए विवश कर दिया है।

महाकवि कालिदासके ग्रन्थोंको पढ़नेसे ज्ञात होता है कि प्राचीनकालमें वसन्तऋतुमें एक बड़ा उत्सव मनाया जाता था। उसने इसे 'वसन्तोत्सव' के नामसे लिखा है। 'शकुन्तला' नाटकके सातवें अंकमें कविने इस उत्सवका ज़िक्र किया है। राजा दुष्यन्तके दुःखी होनेके कारण प्रजामें यह आज्ञा घोषित की गई है कि इस वर्ष वसन्तोत्सव नहीं मनाया जायगा। इसलिए यद्यपि इसका विस्तृत वर्णन नहीं मिलता, तो भी इसको पढ़नेसे यह अनुभव होता है कि यह उत्सव इस तरह धूमधामसे मनाया जाता था, जिससे मनुष्यके हृदयकी प्रसन्नता अपने-आपको अभिव्यक्त करनेका पूर्ण अवसर प्राप्त कर सके। 'रघुवंश'में भी नौवें सर्गमें उसने इस वसन्तोत्सवका उल्लेख किया है। संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखा है—"वसन्ते भ्रमणं श्रेयः"। वसन्तऋतुमें घूमना बड़ा श्रेयस्कर है। जब चारों ओर प्रकृति अपने पूर्ण आनन्दमय रूपकी परिदर्शनशाला बन गई हो, उस समय घरकी चार दीवारीमें बन्द रहना, किसे अच्छा लग सकता है? यदि किसीको लगता हो, तो उसमें जीवन न होनेका इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है?

हमारे देशमें यह ऋतु इतनी सुन्दर होती है कि यहाँके कवियोंने इसे 'ऋतुराज' की उपाधि दे डाली है। 'मेघदूत' को छोड़कर कविकुलगुरु कालिदासने अपने तीनों नाटकों और काव्योंमें इस ऋतुका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। मालूम होता है, इस ऋतुके आते ही इस महाकविको अपनी अन्तरात्माका प्रतिबिम्ब चारों ओर दृष्टिगोचर होने लग जाता है। संस्कृतका कोई ऐसा महाकाव्य नहीं, जिसमें वसन्तऋतुका वर्णन न हो।

इस ऋतुराजके आनेपर, जब समस्त प्रकृति अपना महोत्सव मनाती है, हमारे भी महोत्सव होने ही चाहिए—ऐसे महोत्सव, जिनसे हमारी आन्तरिक प्रसन्नताका ऐसा प्रकाश हो, जिससे एक बार ही में

हमारी जातिका समस्त जीवन बाहर प्रकट होकर अपनेको हरएक हृदयमें अनुभव करा दे।

इस समय हमारे देशके बहुतसे पढ़े-लिखे लोग बहुतसी चीज़ें अपने शासकोंके अनुकरणमें करते जा रहे हैं। उनमें से अनेक बातें अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती हैं। आजकल बड़े दिनोंकी छुट्टियों (Christmas) में उपहारोंका दिया जाना, पहली जनवरीको नव शुभ वर्ष (Happy new year) के सन्देशे भेजना और इन दिनों बहुतसे सम्मेलनोंका होना भी (यद्यपि अब यह प्रवृत्ति हट चली है) इसी तरहकी बातें हैं। उर्दूके आधुनिक कवि अकबरने क्या ठीक कहा है—

"हो दिसम्बरमें मुबारिक ये उछल-कूद आपको,
ख़ून मुझमें भी है लेकिन मुझको फागुन चाहिए।"

होलीका त्योहार भी वसन्तका ही त्योहार है। इस त्योहारमें हमारे समाजकी प्रसन्नता और चंचलताका जो परिचय मिलता है, वह बहुत ही भिन्न प्रकारकी होती है। आपने जिस सम्मेलन इत्यादिका ज़िक्र किया है, वे सब वसन्त-पंचमीसे प्रारम्भ होकर होली तक जाने चाहिए। ये कुल ४१ दिन होंगे, परन्तु इन ४१ दिनोंमें हमारे समस्त देशमें स्वरमय सुन्दर संगीत, चित्रकलाकी प्रदर्शिनी, अच्छे-अच्छे कवियोंपर समालोचनात्मक प्रबन्ध और उनके काव्योंका पाठ (Racitation) प्रकृतिसे प्रेम उत्पन्न करनेवाले निबन्ध, बाहर जंगलोंमें रंगमंच बनाकर एक या दो अंकोंके छोटे-छोटे विनोदपूर्ण नाटकोंको खेलना, व्यायाम आदि प्रदर्शन इत्यादिका ऐसा आकर्षक, मनोहर और चिरस्थायी प्रभाव उत्पन्न करनेवाला प्रोग्राम होना चाहिए, जिससे हमारी जातिके कलामय जीवनकी झलक इस वसन्तोत्सवमें दिखलाई पड़ सके। आजकल हम जितने त्योहार मनाते हैं, वे सब बहुत करके धार्मिक ही हैं। हम कोई ऐसा त्योहार नहीं मनाते, जिसमें सामुदायिक रूपमें हम अपनी और अपनी जातिकी 'सत्य, सुन्दर, शिव' रूप संस्कृतिका परिचय दे सकें। यह महोत्सव इसी प्रकारका होगा, इसमें समस्त भारतीय बिना किसी भेदके भाग ले सकते हैं। इस महोत्सवसे भारतीय संस्कृतिका ऐसा सुन्दर रूप सर्वसाधारणके सामने उसी प्रकार सरलतासे उपस्थित किया जा सकता है, जैसे वसन्तऋतुमें फूल हमारी आँखोंके सामने नाचते हैं। इससे हमारे समाज, जाति और देशमें एक नये जीवनका संचार हो जायगा।

—वंशीधर विद्यालंकार

—

(२)

फरवरी १९३१ के 'विशाल भारत' में इस विषयके सम्बन्धमें चर्चा की गई थी, परन्तु फिर बहुत दिनों तक किसी महानुभावने इसपर अपनी लेखनी नहीं उठाई, यही हम लोगोंके पल्लेझाड़ कथा सुननेका उदाहरण है। मनन करना, जो मनुष्यताका मुख्य अंग है, प्रायः हम भूल चुके हैं। अच्छा होता, यदि कोई विद्वान तथा विभिन्न संस्कृतियोंके विज्ञ महोदय इस विषयपर अपनी लेखनी उठाते, परन्तु एक लम्बे अरसे तक प्रतीक्षा कर हमने अपने सामान्य विचार जनताके सम्मुख रखनेका प्रयास किया है।

यह कथन ठीक ही है कि 'पुराणमित्येव नहि साधु सर्वम्'—अर्थात् सब बातें पुरानी होनेसे ठीक नहीं हो सकतीं। जब तक उनकी उपयोगिता सिद्ध न हो जाय, तब तक उनका पुरातनपना कोई महत्व नहीं रखता। नह्यमूला जनश्रुतिः—(बिना कारणके कोई जनश्रुति नहीं फैल सकती) इस सूक्तिके अनुसार हमको यथासम्भव प्राचीन जनश्रुतियोंपर विचार करना चाहिए। इससे एक लाभ तो यह होगा कि उस विषयका ऐतिहासिक महत्व विदित हो जायगा, और दूसरा यह कि हम यह जान सकेंगे कि उस प्राचीन शैलीमें क्या न्यूनाधिक्य था, और वर्तमान पद्धतिमें उसका हम कहाँ तक उपयोग कर सकते हैं, या उस पुरातन बातको संशोधित तथा परिवर्द्धित कर सकते हैं।

सबसे प्राचीन वैदिक साहित्य, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद, आरण्यक आदिमें यद्यपि विविध विषयोंका वर्णन किया गया है, तथापि इस साहित्यके पढ़नेसे यह झलक स्पष्टतया ज्ञात होती है कि उस समयमें 'प्रकृति-प्रेम' की मात्रा आधुनिक समयसे अवश्य अधिक थी।

तत्पश्चात् हम एक लम्बी दौड़ लगाकर संस्कृत साहित्यके सर्वोच्च और सर्वप्रथम प्रादुर्भूत आदिकवि वाल्मीकि मुनि-निर्मित काव्य-काननमें प्रवेश करते हैं। इसमें भलीभाँति पर्यटनकर हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि प्रकृति-चित्रण इस समयमें जितनी मात्रामें हो चुका था, उतना न तो उससे पुरातनकालमें हुआ और अब आगे होनेमें भी सन्देह है। इसका यह कारण है कि आजकल आये दिन कृत्रिमता बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि वह हमारे जीवनके प्रत्येक आवश्यक अंगमें पदार्पण कर चुकी है। जब हम वाल्मीकीय रामायणके प्राकृतिक वर्णनोंको पढ़कर चरम सीमाके आनन्दको प्राप्त कर सकते हैं, तो फिर क्या हम इस कल्पनाको करनेके लिए विवश नहीं हो जाते कि उस समयके मानव-समाजका प्रकृति-प्रेम पराकाष्ठाको पहुँच चुका होगा ?

मानव-समाजका प्रकृति-प्रेमरूपी बालरवि वैदिक साहित्यरूपी उदयाचलसे उदित हो बाल्यावस्थाको प्राप्तकर वाल्मीकिके प्रतिभा-बल और तात्कालिक राजकीय परिस्थितिके साहाय्यसे पूर्ण युवावस्थाको भोगकर क्रमशः क्षीणकाय होता गया। इसका उदाहरण श्रीवेदव्यास-निर्मित महाभारत है। इस ग्रन्थमें उपाख्यानोंकी इतनी अधिकता फैल गई है कि उसके सामने प्राकृतिक चित्रणका कुछ चमत्कार नहीं प्रतीत होता। इसके पश्चात् तो इसमें प्रतिदिन क्षीणता आती गई। यहाँ तक कि केवल नाम-विशेष ही रह चला। परन्तु भागवानको यह स्वीकृत न था कि प्रकृतिकी महत्ता इस विकृत रूपमें परिणत होकर रहे, इसलिए "चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च" इस कहावतके अनुसार कालचक्रकी गतिके वशसे महाकवि भासके समयमें इस बालरविका पुनः उदय हुआ, और क्रमशः शूद्रक कविपुत्र और सौमिल्ल आदिके समयमें पोषण पाता हुआ महाकवि कालिदास और भवभूतिके समयमें पूर्णरूपसे पुष्ट होकर देदीप्यमान हुआ, और माघ, भारवि, श्रीहर्ष, सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि महाकवियोंने प्रकृति-चित्रणमें खूब कमाल दिखाया। इसका प्रभाव मानव-हृदयपर इतनी मात्रामें पड़ा कि प्रत्येक महाकाव्यमें 'प्रकृति-चित्रण' (ऋतु, गिरि, सरिता आदिका वर्णन) आवश्यक अंग समझा गया और उसके अभावमें महाकाव्य अपूर्ण माना गया तथा अन्य कवियोंने महाकाव्योंके अतिरिक्त इस विषयपर स्वतन्त्ररूपसे भी ग्रन्थ लिखे। इस कालके पश्चात् पुनः इसमें क्षीणता आरम्भ हुई, और अस्त होनेवाले दीपककी भाँति टिमटिमाने लगी। अब हमारे सौभाग्यसे कुछ महानुभाव पुनः इसके उत्थानके लिए प्रयत्न कर रहे हैं; यह इसके पुनरुज्जीवित होनेके चिह्न दीखते हैं। उपर्युक्त विवेचनसे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं :—

(१) पुरातनकालके कवियोंने 'प्रकृति-चित्रण' में पर्याप्त समय लगा, मननकर इस विषयका साहित्य निर्माण किया था।

(२) कवि-समुदायके अतिरिक्त तत्कालीन नृपतिवर्ग भी यथेष्ट प्रकृति-प्रेमी था। फलस्वरूप उन्होंने अपने लिए नगरके बाहर उपवन तथा महिषीवर्गके लिए अन्तःपुरमें छोटे-छोटे बग़ीचे बनवाये थे, और सर्वसाधारणके लिए भी वर्ष-भरकी ऋतुओंमें समय-समयपर उत्सव मनानेका उपदेश देते रहते थे, और उनमें अपना धन भी व्यय करते थे।

इसके उदाहरणार्थ प्रकृति-प्रेमके परिचायक विभिन्न ऋतुओंके कुछ उत्सव होते थे।

(१) विशाखदत्त कवि विरचित 'मुद्राराक्षस' नाटकके तृतीयांकमें—भो भो सुगांगप्रसदधिकृताःपुरुषा ? सुगृहीतनामा देवश्चन्द्रगुप्तो वः समाज्ञापयति यथा ॥

प्रवृत्तकौमुदी महोत्सव रमणीयतरं कुसुमपुरमवलोकयितु मिच्छामि। इस स्थानपर कुसुमपुरमें शरदऋतुके अवसरपर कौमुदी-महोत्सवके मनानेकी चन्द्रगुप्त आज्ञा देते हैं।

(२) श्रीहर्ष-निर्मित 'रत्नावली' नाटिकाके तृतीय अंकमें भी वसन्तऋतुके समयमें किये गये कामदेवार्चन-उत्सवका वर्णन आता है।

(३) 'मालतीमाधव' नामक भवभूति विरचित नाटकमें 'मदन-महोत्सव' नामसे वसन्तऋतुमें उत्सव मनानेका वर्णन आया है।

(४) 'दशकुमार चरित्र' में भी एक स्थानपर इस उत्सवका वर्णन आया है।

(५) कविकुलगुरु स्वनामधन्य संस्कृत भाषाके महाकविकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटकके पंचमांकमें 'वसन्तोत्सव' नामसे उत्सव मनाये जानेका वर्णन है।

वसन्तोत्सवके सम्बन्धमें किये गये इस प्राक्कालिक विवेचन और आधुनिक स्वदेशी तथा विदेशी रीति-रिवाज़ोंको ध्यानमें रखकर हमारे अपने ये विचार हैं:—

(१) पुरातन समयमें तत्कालीन राजाओंकी मनोवृत्तिके अनुसार इस उत्सवका नाम भले ही मदन-महोत्सव, कामदेवार्चन आदि रखा गया हो; परन्तु आधुनिक समयमें इसका नाम वसन्तोत्सव ही उपयुक्त है, और फिर कालिदासने भी 'वसन्तोत्सव' नाम अपने नाटकमें लिखा है।

(२) पाश्चात्य जगतमें बड़ा दिन (२५ दिसम्बर) जितना महत्व रखता है, उस दिन जिस प्रेमसे वे सब लोग परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर साथ-साथ गिरजाघरमें जाकर प्रार्थना करते हैं, और पारस्परिक प्रेम-बन्धनको दृढ़ करते हैं, उससे भी कहीं अधिक हम लोगोंको वसन्तोत्सव (वसन्तपंचमी) को महत्वका दिन अपने लिए या सम्पूर्ण जगतके लिए समझना चाहिए। बड़े दिनकी अपेक्षा इसमें कुछ विशेषताएँ भी हैं, जिनके कारण यह साधारण जनताके लिए अधिक उपयोगी हो सकता है।

(क) बड़ा दिन केवल ८-१० दिन तक अधिकसे अधिक मनाया जाता है; परन्तु वसन्तोत्सव वसन्तपंचमीसे होली पूर्णिमाके बाद धुलड़ी तक पर्याप्त समय ४२ दिवस (६ सप्ताह) तक मनाया जा सकता है। इतने समयमें विविध प्रकारके उत्सव, प्रदर्शिनी, कांग्रेसका अधिवेशन, व्याख्यानमाला, कवि-सम्मेलन, पहलवानोंके दंगल, मैजिक लैन्टर्न द्वारा रात्रिको व्याख्यान आदि विभिन्न प्रकारके उपयोगी कार्य समुचित ढंगसे हो सकते हैं। किसी कार्यमें जल्दी भड़-भड़ नहीं करनी पड़ेगी, इस प्रकार इस पर्याप्त समयमें हमारे सब कार्य सुचारुरूपसे सम्पादित हो सकेंगे।

(ख) इस उत्सवके समय शीत भी बड़े दिनकी अपेक्षा बहुत कम हो जाता है और प्रकृति देवी अपनी यौवनश्रीसे सबको मुग्ध करती इठलाती हुई उपस्थित होती है। सूर्यकी सुनहली किरणोंसे प्रकाशित इन दिनोंमें सब कार्य आनन्दसे किये जा सकते हैं।

(ग) यह ऋतु हमारे देशकी छै ऋतुओं तथा अन्य देशोंकी तीन या चार ऋतुओंमें सर्वश्रेष्ठ है। गीतामें स्वयं श्रीकृष्ण भगवानने लिखा है—"ऋतूनां कुसुमाकरः"। इसीसे इसकी महत्ता जानी जा सकती है। पाश्चात्य जगतमें भी इसका महत्त्व प्रसिद्ध है।

(घ) स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी आयुर्वेदशास्त्रमें इसको श्रेष्ठ बतलानेवाले 'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्' (अर्थात् वसन्त ऋतुमें भ्रमण करना पथ्य है) आदि कई वाक्य पाये जाते हैं।

(३) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी सभाओंके वार्षिक अधिवेशन भी इसी समयमें हों, और यह संस्थाएँ इस उत्सवको सफल बनानेकी चेष्टा करें।

(४) यदि हो सके तो सब स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंमें भी इस उत्सवको वृहत रूपसे मनानेके लिए अधिकारीवर्गसे कहकर उद्योग कराया जाय।

(५) हमारे पत्र और पत्रिकाएँ वसन्तपंचमीपर वसन्तोत्सवांक नामसे विशेषांक निकाल सकती हैं।

(६) प्रत्येक स्थानपर इस उत्सवके समय विशेष रूपसे स्वास्थ्योपयोगी ट्रैक्ट म्यूनिसिपैलिटी या सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा निर्धन जनतामें बिना मूल्य वितरित किये जायँ, जिनमें स्वास्थ्य-रक्षाके मोटे-मोटे सिद्धान्त अपनी प्रान्तीय भाषाओंमें सरल, विस्तारपूर्वक समझाये गये हों, क्योंकि आजकल मुख्यतया भारतवर्षमें स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोंकी अज्ञानतासे भारतीयोंका स्वास्थ्य बड़ी भयंकर रीतिसे गिर रहा है, जिसका प्रतिकार राष्ट्रके लिए अत्यावश्यक है। यदि हो सके, तो मैजिक लैन्टर्न द्वारा रात्रिको शरीरके अंग-प्रत्यंगपर मद्य, तम्बाकू आदिका प्रभाव, तथा गन्दगीसे उत्पन्न जीवाणुओंका मनुष्य-शरीरपर आक्रमण आदि दिखाकर उपदेश दिया जाय। इस विधिसे थोड़ेसे ही खर्च और समयमें अधिक जनताको शिक्षा मिल सकती है।

यह स्थूलरूपसे वसन्तोत्सवके स्वरूपका चित्र खींचा गया है। आशा है कि विशेषज्ञ महोदय इसपर गम्भीरतासे विचारकर अपने भाव लेख द्वारा प्रकट करेंगे, जिससे अगले वर्ष यह उत्सव सुचारु रूपसे मनाया जा सके।

—सोमदेव शर्मा शास्त्री

सम्पादकीय विचार

देशी राज्य रक्षा बिल

"देशी राज्य रक्षा बिल" नामका एक नया क़ानून बन रहा है। इसका असली अर्थ है रियासतोंके राजाओंकी रक्षाके लिए क़ानून। यह बात तो सभी जानते हैं कि देशी राज्योंके राजाओंकी रक्षाकी बनिस्बत देशी राज्योंकी प्रजाकी रक्षाकी ज्यादा ज़रूरत है। इस नये क़ानूनमें ऐसी व्यवस्था की जा रही है, जिससे ब्रिटिश भारतमें प्रकाशित होनेवाले अख़बारोंके लिए राजाओं तथा उनके शासन-कार्योंकी आलोचना करना बहुत ही ख़तरनाक हो जायगा। भारत-सरकारकी ओरसे अवश्य ही यह कहा जा रहा है कि ईमानदार समालोचकोंको इससे कोई ख़तरा नहीं है; लेकिन सरकारके इस आश्वासनका कोई मूल्य नहीं है। भारतमें अंगरेज़ी शासनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष समालोचना करनेमें जिन अख़बारवालोंको किसी न किसी प्रकारकी सज़ा मिली है, या जिन्हें सज़ाकी धमकी दी गई है, उनमें सबकी अथवा अधिकांशकी आलोचना निर्मूल थी, यह बात आज तक कोई भी सरकारी आदमी नहीं दिखला सका। सरकार यह भी कभी नहीं दिखला सकी है कि यह आलोचनाएँ 'ईमानदारी'पर आधारित (आनेस्ट) आलोचनाएँ न थीं। ब्रिटिश भारतके समाचारपत्रोंको जो बहुत थोड़ी स्वाधीनता है, देशी राज्योंके लिए उसे और भी कम कर देनेका फल यह होगा कि यह राजा अभी जितने निरंकुश हैं, बादमें उससे भी ज्यादा निरंकुश हो जायँगे; क्योंकि अधिकांश देशी रियासतोंमें संवादपत्र हैं ही नहीं, राजाओंकी आलोचना नहीं होती, और जहाँ-जहाँ समाचारपत्र हैं भी, वहाँ उन्हें ब्रिटिश भारतके पत्रोंके समान स्वाधीनता नहीं है।

भारत-सरकारको पिछले कुछ वर्षमें कई देशी राज्योंके सम्बन्धमें कठोर व्यवस्था करनेके लिए मजबूर होना पड़ा है। इसका वास्तविक कारण इन राजाओंका कुशासन था या अत्याचार यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु प्रकट रूपसे यही कारण कहा जाता है। यदि यही कारण है, तो कुशासन और अत्याचारको चरम सीमापर पहुँचनेपर कड़ी कार्रवाई करनेकी बनिस्बत यह कहीं अच्छा है कि राजा लोग समय रहते ही जनसाधारणकी आलोचनाके प्रभावसे ठीक मार्गपर ही

रहें। इस उद्देशकी पूर्तिके लिए यह ज़रूरी है कि भारतीय पत्रोंको देशी राज्यों और व्यक्तियोंकी आलोचना करनेकी वर्तमान स्वाधीनता अक्षुण्ण रखी जाय, देशी राज्योंमें अच्छे समाचारपत्र चलाये जायँ और राजागण अपनी-अपनी रियासतोंमें वैध-शासन-प्रणाली चलायें।

हालमें दिल्लीमें देशी राज्य-प्रजा-परिषदका अधिवेशन हुआ था, उसके सभापति सुप्रसिद्ध सम्पादक श्री नटराजनने सरकारसे पूछा था कि किन-किन राजाओंने इस प्रकारके क़ानूनकी माँग उपस्थित की है। उन्होंने कहा था कि सरकार यह बताये कि कौन-कौन ऐसा क़ानून चाहता है, नहीं तो लोग यही समझेंगे कि सरकार खुद ही अपनी इच्छासे राजाओंको निरंकुश बनाना चाहती है। सम्भवतः भले और बड़े-बड़े राजाओंमें किसीने भी ऐसा क़ानून न चाहा होगा।

प्रस्तावित क़ानूनके समर्थनमें कहा गया है कि ब्रिटिश भारतके अनेक पत्रकार गन्दी बातें और आलोचना लिखनेका भय दिखलाकर देशी राजाओंसे रिश्वत वसूल करते हैं। कोई भी भद्र सम्पादक निश्चय ही ऐसा नहीं करता। और जो राजा लोग अभद्र सम्पादकोंको रिश्वत देते हैं, उनमें स्वयं दोष हैं, तभी तो उन दोषोंके प्रकट होनेके भयसे वे रिश्वत देते हैं। इस तरहके रिश्वत देनेवाले और लेनेवाले हैं, इसीलिए और सबकी स्वाधीनतामें कमी करना या उनकी स्वाधीनताको बदनाम करना ठीक नहीं है।

इस क़ानूनपर बहस होते समय एसेम्बलीमें सर मुहम्मद याकूबने इस तरहकी रिश्वत देने और लेनेकी बात कही थी, और कहा था कि आलोचकोंको ये राजा लोग दावतें देते हैं और उपहारमें नोटोंके मोटे-मोटे बंडल देते हैं। इस गुप्त व्यापारकी बात सर मुहम्मद याकूबको मालूम कैसे हुई? रिश्वत देनेवाले राजा और रिश्वत लेनेवाले आलोचकोंके साथ एसेम्बलीके सदस्योंकी भीतरी साँठ-गाँठकी बात तो हो नहीं सकती, ख़ैर, जो हो, यदि इस तरहकी दावतें और उपहार चलते हैं, तो रिश्वत देनेवालोंको भी सज़ा मिलना मुनासिब है। क्योंकि सारी दुनियाके क़ानूनोंमें रिश्वत देने और लेनेवाले—दोनों ही को सज़ा दी जाती है।

देशी राजाओंने यदि ब्रिटिश भारतके अख़बारोंपर नियन्त्रण करनेके लिए भारत-सरकारसे अनुरोध किया है, तो वे अकृतज्ञ हैं। क्योंकि उनकी मुसीबतके वक्त, उनका पक्ष यदि न्यायपूर्ण होता है, तो ब्रिटिश भारतके सम्पादक ही उनका समर्थन करते हैं। कृतज्ञताकी बात छोड़ देनेपर भी यह ध्यानमें रखना चाहिए कि ब्रिटिश भारतके अख़बारोंकी शक्ति कम होनेसे उनमें राजाओंके उपकार करनेकी शक्ति और प्रवृत्ति भी कम होगी।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

देव-पुरस्कार

श्रीमत्सवाई महेन्द्र महाराजा वीरसिंहदेव ओरछा-नरेशने 'देव-पुरस्कार'की घोषणा करके एक ऐसा संकल्प किया है, जिसके लिए उनका नाम हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा। जहाँ तक हम जानते हैं, भारतकी किसी भी प्रान्तीय भाषामें देव-पुरस्कारके जोड़का कोई पुरस्कार नहीं है। इस पुरस्कारके नियम इत्यादिके विषयमें श्रीमान ओरछा-नरेशने अपने भाषणमें कहा था—

"अपनी भाषाकी सेवा करना हम सबका कर्तव्य है। हमारी भाषा ही हमारे भावों और संस्कृतिकी धात्री है। इसी उद्देश्यकी किंचित्पूर्तिके लिए आचार्य द्विवेदीजीके अभिनन्दनके अवसरपर काशीमें मैंने कुछ पत्र-पुष्प राज्यकी ओरसे वार्षिक रूपमें भेंट करनेका निश्चय किया था, और यह भी निवेदन किया था कि उसके नियम इस वसन्तोत्सवपर प्रकाशित किये जायँगे। तदनुसार आज मैं उन्हें आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करता हूँ:—

'श्री वीरसिंह देव पुरस्कार'

(क) इस पुरस्कारका नाम 'श्री वीरसिंह देव पुरस्कार' अथवा संक्षिप्त नाम 'देव-पुरस्कार' होगा।

(ख) यह पुरस्कार दो सहस्र रुपये वार्षिकका होगा।

(ग) इस पुरस्कारके निर्णायक निम्नानुसार होंगे :—

(१) पूज्य आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ; (२) पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय; (३) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका एक प्रतिनिधि ; (४) नागरी-प्रचारिणी सभा काशीका एक प्रतिनिधि ; (५) मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति इन्दौरका एक प्रतिनिधि ; (६) नागरी-प्रचारिणी सभा आगराका एक प्रतिनिधि ; (७) हिन्दी-प्रचार-सभा मदरासका एक प्रतिनिधि ; (८) श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद् टीकमगढ़का एक प्रतिनिधि ; (९) ओरछा-राज्यका एक प्रतिनिधि।

(घ) प्रत्येक संस्था अपने प्रतिनिधिका चुनाव अपने सार्वजनिक वार्षिक अधिवेशनमें अधिक-से-अधिक जून महीनेके प्रथम सप्ताह तक कर दिया करेगी, और उसकी सूचना प्रधान कार्यालय श्री वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद् टीकमगढ़को तुरन्त भेज देगी।

(च) यह पुरस्कार वर्षके व्रजभाषा और खड़ी बोलीके सर्वोत्तम पद्यात्मक काव्य-ग्रन्थके लिए क्रमसे आँतरे वर्ष दिया जाया करेगा, अर्थात् एक वर्ष व्रजभाषाके ग्रन्थके लिए और दूसरे वर्ष खड़ी बोलीके ग्रन्थके लिए।

(छ) यह पुरस्कार कुण्डेश्वरके वसन्तोत्सवके अवसरपर प्रतिवर्ष दिया जायगा।

(ज) प्रकाशित पुस्तककी ११ प्रतियाँ कार्यालयमें आनी चाहिए।

(झ) इस संस्थाका प्रधान कार्यालय श्री वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद् टीकमगढ़ रहेगा।

(ट) निर्णायक बहुमतसे इसका निर्णय करेंगे। यदि सम्भव हो, तो ये निर्णायक एक स्थानपर मिलकर अपना निर्णय करें अथवा पत्र-व्यवहार द्वारा। (ठ) इन नियमोंमें परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधनकी आवश्यकता पड़नेपर राज्य सर्वसाधारणकी सूचनाओंपर सहर्ष विचार करेगा।

(ड) इस संस्थाके इन्हीं नियमोंके सिद्धान्तके अनुकूल उपनियम बनानेका अधिकार श्री वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद्को रहेगा।

मैं जानता हूँ कि यह भेंट बहुत ही साधारण है ; परन्तु मातृ-मन्दिरमें जहाँ मणि-माणिक्य अर्पित किये जाते हैं, वहाँ 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' के लिए भी स्थान होता है, और मेरा तो यह विश्वास है कि यदि वे श्रद्धापूर्वक समर्पित किये जायँ, तो उसी प्रकार स्वीकृत होते हैं, जिस प्रकार कोई बड़ी-से-बड़ी भेंट-पूजा। अतः मैं अपने प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं भविष्यमें और भी कुछ लेकर इस मन्दिरमें निरन्तर उपस्थित होता रहूँ।"

जिस पुरस्कारको महाराज साहबने 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' के नामसे स्मरण किया है, वह हमारे देशका सर्वोत्तम साहित्यिक पुरस्कार है। सबसे बड़ी ख़ूबी इस पुरस्कारके विषयमें यह है कि इसकी निर्णायक-समितिका चुनाव पूर्ण जनसत्तात्मक दृष्टिसे किया गया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाको तो वोट हर हालतमें मिलना चाहिए था ; पर मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति (इन्दौर), हिन्दी-प्रचार-सभा मदरास और नागरी-प्रचारिणी सभा आगराको निर्णायक समितिमें रखकर महाराज साहबने वास्तवमें दूरदर्शिताका परिचय दिया है। पुरस्कारके निर्णायकोंमें सात बाहरके होंगे और केवल दो घरके। जिस समय इस प्रश्नपर विचार हो रहा था, उस समय महाराज साहबने कहा था--"राज्यका एक वोट अलग रखनेकी क्या आवश्यकता ? वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद्में हम सब सम्मिलित हैं ही, और उसीका एक वोट पर्याप्त है।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि टीकमगढ़की केशव-साहित्य-परिषद् इस समय केवल एक स्थानीय संस्था है, तथापि ऐसी आशा है कि निकट-भविष्यमें ही वह बुँदेलखंड साहित्य-मंडलका केन्द्र बन जायगी, और उस समय वह किसी स्थान या राज्य-विशेषकी संस्था न रहेगी। महाराजा साहबकी इस सच्ची सद्भावनाको यथोचित रीतिसे वे ही समझ सकते हैं, जो उनसे व्यक्तिगत रूपसे परिचित हैं। देशी राज्यों तथा देशी नरेशोंके विषयमें 'विशाल भारत' का एक निश्चित और अटल सिद्धान्त है, और उसे हमारे पाठक भलीभाँति जानते हैं ; पर उसका अर्थ यह नहीं है कि हम मातृभाषाके मन्दिरमें श्रद्धापूर्वक समर्पित की

हुई किसी व्यक्तिकी पूजाका निरादर करें। आख़िर राजा-महराजा लोग भी आदमी ही हैं, और उनके भी हृदय है। राजनैतिक प्रश्नोंपर उन लोगोंसे भले ही हमारा मतभेद हो; पर जब वे विनम्रतापूर्वक अपनी भेंट लेकर मातृ-मन्दिरमें आते हैं—उस मातृ-मन्दिरमें, जहाँ प्रत्येक मनुष्यको, चाहे वह ग़रीब हो या अमीर, राजभक्त हो या राजद्रोही, प्रवेश करनेका समान अधिकार है, तो भलमनसाहतका यह तक़ाज़ा है कि हम सहर्ष उसका स्वागत करें। हमें अत्यन्त खेद होता है, जब हमारे साहित्यके बड़े-से-बड़े कर्णधार मानव-स्वभावगत हार्दिक विश्वासकी नीतिको तिलांजलि देकर यह कहते हुए पाये जाते हैं—"इन राजा-महाराजाओंकी बातका क्या विश्वास है ?"

आशा है कि भारतीय नरेश इस घटनासे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। जनताका यक़ीन उनपर से बिलकुल उठ चुका है, और जब कोई पूर्ण श्रद्धा और सोलह आने सचाईके साथ भी अपनी भेंट अर्पित करना चाहता है, तो सहसा हमारे सुसंस्कृत लोगोंको भी विश्वास नहीं होता !

असली बात यह है कि अब तक देशी नरेशोंने साधारण जनताके हिताहितके प्रश्नोंसे—उन प्रश्नोंसे भी जिनसे राजनीतिसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं—अपने-आपको इतना अलग रखा है कि जनताके और उनके बीचमें नासमझीकी एक भयंकर खाई पैदा हो गई है। हम आशा करते हैं कि जहाँ श्रीमान ओरछा-नरेशका यह देव-पुरस्कार हिन्दीके काव्य-साहित्यको प्रोत्साहन प्रदान करेगा, वहाँ उपर्युक्त खाईको भी पाटनेमें कुछ हद तक अवश्य सहायक होगा।

हम चाहते थे कि इस पुरस्कारका क्षेत्र और भी अधिक व्यापक होता, यह कवियोंके लिए ही परिमित न कर दिया जाता; पर दाताके भावोंका ख़याल रखना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमान महाराजा साहब व्रजभाषाके अत्यन्त प्रेमी हैं, और उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि यह पुरस्कार केवल व्रजभाषाके लिए ही रखा जाता; पर समयकी गतिको पहचानकर उन्होंने इसे अपेक्षाकृत अधिक व्यापक रूप दे दिया।

आशा है कि श्रीमान ओरछा-नरेश अपनी पितृभाषाके लिए (उनकी मातृभाषा तो गुजराती रही है) भविष्यमें अधिकाधिक प्रयत्न करेंगे। 'विशाल भारत' की ओरसे हम उनका अभिवादन करते हैं।

—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

आख़िर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी इतनी अधिक शिकायत क्यों सुननेमें आती है ? उसने कौनसा अपराध किया है ? कौनसा आवश्यक कर्तव्य है, जिसका उसने पालन नहीं किया ? क्या उसकी यह दशा उसके स्थानीय अधिकारियोंकी ही त्रुटियोंके कारण हुई है ? क्या उसके उद्धारके कुछ उपाय भी हैं या मर्ज़ लाइलाज है ? इत्यादि प्रश्न हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके विषयमें विचार करते हुए उठते हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने इन प्रश्नोंपर कुछ सोचा है, और वह इस परिणामपर पहुँचा है कि सम्मेलनकी त्रुटियाँ हम हिन्दीवालोंके ही चरित्रकी त्रुटियाँ हैं। सम्मेलन कोई आदमी तो है नहीं कि उसके ऊपर अपराध लगाया जा सके। सम्मेलन हिन्दी जनताकी एक सार्वजनिक संस्था है, और उसके अधिकारियोंका चुनाव पूर्ण जनसत्तात्मक ढंगपर होता है। यदि हिन्दी जनता उचित रीतिसे अपने कर्तव्यका पालन नहीं करती और अयोग्य आदमियोंका चुनाव कर देती है, तो यह क़सूर उसका है, न कि सम्मेलनका।

इसके सिवा क्या प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन अपने कर्तव्यका पालन कर रहे हैं ? क्या प्रयागस्थ साहित्य-सम्मेलनने उन्हें अपना कर्तव्य पालन करनेसे रोका है ? बिहार, पंजाब तथा दिल्ली प्रान्तीय सम्मेलनोंको छोड़कर, जो सोते-सोते कभी जाग पड़ते हैं, क्या अन्य प्रान्तीय सम्मेलन जीवित भी हैं ? युक्तप्रान्तीय सम्मेलनकी पिछली बैठक किस सन्‌में

हुई थी ? जब प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन ही बिलकुल मरणासन्न अवस्थामें पड़े हुए हैं, तो फिर विचारे केन्द्रीय कार्यालयको ही दोष देना क्या उचित है ? यदि कलको युक्तप्रान्त, बंगाल, मध्य-प्रदेश इत्यादिकी सरकारें हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहें और दिल्लीकी केन्द्रीय सरकारको दोष दें, तो क्या यह मुनासिब होगा ?

हमारा यह दृढ़विश्वास है कि यदि प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनोंको जागृत कर दिया जाय, तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्वयं ही बलवान हो जायगा। पर इस समय साहित्यिक प्रान्त इतने बड़े हैं कि उनके पुनर्निर्माणकी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ हम युक्तप्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनको लेते हैं। यदि हम समस्त युक्तप्रान्तके साहित्यिकोंका संगठन करना चाहें, तो यह अत्यन्त कठिन कार्य होगा।

काशी, प्रयाग तथा कानपुर और लखनऊ साहित्यिक दृष्टिसे अब इतने महत्त्वपूर्ण स्थल बन गये हैं कि वे भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सम्मेलनोंके केन्द्र बन सकते हैं। उदाहरणार्थ लखनऊको हम अवध-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनका रूप देखते हैं। काशी तो स्वयं ही एक निराली नगरी है। भारतके किस नगरने हिन्दीके लिए उतना कार्य किया है, जितना काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाने ? और फिर कौन उस महान अन्तर्निहित साहित्यिक शक्तिका अन्दाज़ लगा सकता है, जो हिन्दू-विश्वविद्यालयमें विद्यमान है ? क्या इन शक्तियोंका संचालन कोई संस्था प्रयाग, लखनऊ, आगरा या कानपुरमें बैठकर कर सकती है ? हर्गिज़ नहीं।

जिन दिनों हमारे साहित्यकी सीमा बँधी हुई थी, साहित्य-सेवियोंकी संख्या अत्यल्प थी, उन दिनों यह सम्भव भी था ; पर आजकल तो दिनों-दिन यह असम्भव होता जा रहा है। आवश्यकता है इस बातकी कि हम अपने साहित्यिक प्रान्तोंका पुनर्निर्माण करें।

ब्रज-साहित्य-मंडल

उदाहरणके लिए हम ब्रजमंडलको लेते हैं। क्या यह असम्भव है कि आगरा, भरतपुर, अलीगढ़, धौलपुर, इटावा, एटा, मैनपुरी इत्यादि ज़िलोंकी साहित्यिक संस्थाएँ मिलकर ब्रज-साहित्य-मंडलका निर्माण करें ? आगरेकी नागरी-प्रचारिणी सभा इस मंडलका केन्द्र बन सकती है। ब्रजभाषाके प्रेमी दुनियाँ-भरको दोष दिया करते हैं कि हमारी ब्रजभाषाका निरादर किया जाता है, उपेक्षा की जाती है, पर वे स्वयं आज तक ब्रजभाषाका कोई कोष भी नहीं बना पाये ! जो अभी तक अष्टछापके कवियोंकी रचनाएँ भी प्रकाशित नहीं कर पाये, उन्हें दूसरोंको दोष देनेका क्या अधिकार है ? यदि केवल मथुरा ज़िलेके साहित्य-प्रेमी अपनी शक्तियोंको संगठित कर लेते, तो वे अकेले ही इस कार्यको कर सकते थे ; पर इधर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध साहित्य-सेवी कन्हैयालालजी पोद्दार इतने साधनसम्पन्न हैं कि यदि वे चाहें, तो कविवर नन्ददासजीकी अधिकांश रचनाओंको छपा सकते हैं। ब्रजमंडलके साहित्य-सेवियोंकी समझमें क्या अब भी यह बात नहीं आई कि ब्रजभाषाकी रक्षाके लिए उन्हें ही प्रयत्न करना पड़ेगा ? आजसे पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व श्रीमान् मयाशंकरजी याज्ञिकने कविवर सोमनाथके हस्त-लिखित ग्रन्थोंका पता लगा लिया था ; पर आज तक उक्त कविका एक ग्रन्थ भी नहीं छप पाया ! यह सब हम ब्रजवासियोंका अपराध है। यदि हम लोग ब्रज-साहित्य-मंडलका संगठन कर लें, तो बहुत-कुछ काम हो सकता है।

बुन्देलखण्ड-साहित्य-परिषद्

इसी प्रकार वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद्को बुन्देलखण्डकी प्रतिनिधि संस्था बनाया जा सकता है। हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि उक्त परिषद्के अधिकारी इसका विचार कर भी रहे हैं।

अबकी बार हमें कुछ ग्रामीण लोगोंकी बुन्देलखण्डी भाषा सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि बुन्देलखण्डी ब्रजभाषाके समान ही मधुर है, यद्यपि मुंशी अजमेरीजी तथा कविवर मैथिलीशरणजी तो उसे ब्रजभाषासे भी

अधिक कोमल और मधुर मानते हैं ! बुन्देलखण्डी भाषाका भी एक कोष तैयार होना चाहिए। सैकड़ों शब्द बुन्देलखण्डीमें विद्यमान हैं, जो हमारी पुस्तकोंकी भाषामें नहीं पाये जाते। उन्हें प्रयोगमें लानेकी ज़रूरत है। संस्कृतसे शब्द गढ़नेकी अपेक्षा यह कहीं बेहतर है कि प्रचलित शब्दोंको ग्रहण किया जाय। इस प्रकारके कार्य बुन्देलखण्ड-साहित्य-परिषद् ही कर सकती है। यही बात अवधी भाषा तथा अवध-साहित्य-मंडलके विषयमें कही जा सकती है।

हमारे कहनेका अभिप्राय यह है कि प्रयागस्थ साहित्य-सम्मेलनका मुँह ताकते रहनेकी नीतिको अब तिलांजलि देनी चाहिए। स्वयं सम्मेलनवालोंका कर्तव्य है कि वे प्रान्तीय संस्थाओंको शक्तिशाली बनावें।

हम यह नहीं कहते कि सम्मेलनके वर्तमान अधिकारी बिलकुल निर्दोष हैं। निस्सन्देह इस समय सम्मेलन बिना पुजारीका मन्दिर हो रहा है। वह साहित्यिक शक्तिका केन्द्र अब नहीं रहा। वहाँ कोई ऐसा आदमी नहीं, जो अपना सम्पूर्ण समय उसीके कार्यमें लगावे। बहुधन्धी आदमियोंसे यह आशा करना कि वे साहित्य-सम्मेलनको सजीव संस्था बना सकेंगे, दुराशामात्र है। लेकिन दूर बैठे-बैठे सम्मेलनके सिर सारा अपराध मढ़ना भयंकर भूल है। जो जिस प्रान्तमें हो, वह उसकी साहित्यिक उन्नतिके लिए भरपूर उद्योग करे। हाँ, थोड़ेसे ऐसे आदमी भी होंगे, जो सभी प्रान्तोंकी साहित्यिक प्रगतिकी ओर व्यापक दृष्टि रखें ; पर इस समय तो हर आदमी आल इंडिया साहित्यिक बननेकी फिक्रमें है। पर विस्तृत क्षेत्रपर अपनी शक्तियोंको बिखेरनेका ज़माना चला गया, अब तो छोटासा क्षेत्र चुनकर उसीपर अपनी शक्तियोंको केन्द्रित करनेका वक्त आ गया है। क्या हम आशा करें कि दिल्ली-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर इस प्रश्नपर विचार किया जायगा ?

—

बीकानेर-षड्यन्त्र-केसका फैसला

पूरे दो वर्ष मामला चलनेके बाद गत १५ जनवरीको बीकानेर-षड्यन्त्र-केसका फैसला हो गया। जज साहबने श्री सत्यनारायणको तीन वर्षकी और प्यारेलाल तथा सोहनलालको छै-छै मासकी सख्त सज़ायें दी हैं। महाराज बीकानेर अपने व्याख्यानोंके द्वारा यह बताया करते हैं कि वे कैसे उन्नतिशील शासक हैं ; परन्तु इस मामलेमें उन्होंने अपनी तमाम उन्नतिशील बातोंको उठाकर ताक़पर रख दिया था ! बीकानेरके फौजदारी क़ानूनके अनुसार साधारण अवस्थामें इस प्रकारके मुक़दमे जूरीके द्वारा होते हैं ; परन्तु इस मामलेमें मुजरिमोंसे जूरीकी सुविधा छीन ली गई थी। उन्हें इस बातकी इजाज़त भी नहीं दी गई कि वे अपने इच्छानुसार मुक़दमेकी पैरवीके लिए बाहरसे अच्छे वकील भी ला सकें। सफाईके वकील भी रियासतके द्वारा ही नियुक्त हुए थे। यद्यपि सफाईके वकील श्री मुक्ताप्रसाद और श्री ईश्वरदयालने भरसक चेष्टा की ; लेकिन जब फरियादी, जज और सफाई—तीनोंके ही काम रियासतने अपने ही ऊपर ले रखे हों, तब यह आशा करना कि मुक़दमा ठीक ढंगसे चलेगा, दूरकी बात है। विद्वान जज साहबने इस बातका भी ध्यान नहीं रखा कि अभियुक्त मुक़दमेके दौरानमें दो वर्षसे जेलमें सड़ रहे थे। यदि वे एकदम छोड़ भी दिये जाते, तो भी दो वर्षकी यह सज़ा ही कौन कम थी ? मेरठ-षड्यन्त्र-केसमें इलाहाबाद-हाईकोर्टके जजोंने यह लिखा था कि लम्बी अवधि तक मुक़दमा चलते रहनेके कारण अभियुक्त वैसे ही वर्षों तक जेलमें सड़ चुके हैं, इसीलिए वे बरी किये जाते हैं, या उनकी सज़ा घटाई जाती है। बीकानेर-केसकी अपील बीकानेरके हाईकोर्टमें हुई है। क्या हम आशा करें कि बीकानेरका-हाईकोर्ट इस बातपर ध्यान देगा कि अभियुक्त दो वर्षकी सज़ा तो भुगत ही चुके हैं ?

—

हमारे कवि-सम्मेलन और विदाईकी प्रथा

आजसे कई वर्ष पूर्व अनेक हिन्दी-कवि-सम्मेलनोंमें सम्मिलित होनेके बाद हम इस परिणामपर पहुँचे थे कि या तो इन कवि-सम्मेलनोंमें ज़बरदस्त सुधार होना चाहिए, अथवा ये सर्वथा बन्द ही कर दिये जाने चाहिए, और 'विशाल भारत' में हमने इस विषयपर लिखा भी था। अभी पिछले दिनों हमें कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) के वसन्तोत्सवके कवि-सम्मेलनमें शामिल होनेका अवसर मिला, और हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया। यदि भारतवर्षमें साहित्यिक अपराधोंके लिए दण्ड-विधानकी योजना की जाय, तो हमारे कितने ही लेखक और कवि दफ़ा १४४ में दण्डित हुए बिना न रहेंगे। और जो कवितादेवीकी गर्दनपर छुरी चलाते हैं, उनको तो साहित्यिक फाँसीका दण्ड मिलना ही चाहिए; पर इन अपराधोंकी सूचीमें एक भयंकर अपराध और भी जोड़ दिया गया है, वह है विदाईका। मालूम नहीं कि इसके लिए क्या विधान होना चाहिए। प्रारम्भमें हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम किसी व्यक्ति-विशेषके विरोधी नहीं है, कितने ही कवियोंके प्रति हमारे हृदयमें पूर्ण श्रद्धा है, और वे हमारे लिए पूज्य हैं, और कुण्डेश्वरमें जो कवि महानुभाव एकत्रित हुए थे, उनमें कई ऐसे थे, जो सम्भवतः उस समय भी, जब हम ओनामासी धं पढ़ रहे थे, अच्छी कविता कर लेते थे। सबसे मुख्य अपराध है वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद्का, जिसने इस विदाईकी प्रथाको प्रचलित किया है। उक्त परिषद् यह कहकर कि यह तो हमारे राज्यकी प्राचीन प्रथा थी, अपने अपराधसे मुक्त नहीं हो सकती। कवि-सम्मेलनोंमें एकत्र हुए—ख़ासतौरसे निमन्त्रित—कवियोंको मार्ग-व्यय दिये जानेकी बात तो हम समझ सकते हैं, और इसमें कोई अनौचित्य भी नहीं; पर विदाईकी प्रथा हमारी समझमें स्वयं कवियोंके लिए और हमारे साहित्यके लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगी। यदि परिषद् किसी कवि-विशेषकी सेवा करनी चाहती है, तो उसे चाहिए कि अत्यन्त प्राइवेट ढंगपर जिसे चाहे, उसे अपनी भेंट दे दे। इसमें किसीको ऐतराज न होगा; पर उत्सवके अवसरपर उक्त भेंटका बाँटा जाना अत्यन्त अपमानजनक बात है। इससे पारस्परिक ईर्ष्या बढ़ सकती है, और इसका परिणाम यह होगा कि कोई भला कवि किसी कवि-सम्मेलनमें न जावेगा। अब भी श्री मैथिलीशरणजी गुप्त, श्री माखनलालजी चतुर्वेदी, श्री गुरुभक्त सिंहजी प्रभृति सज्जन कवि-सम्मेलनोंसे सर्वथा विरक्त रहते हैं। श्री माखनलालजीने तो एक बार शायद लिखा भी था कि पहले लोग ब्याह-बरातोंके अवसरपर वेश्याएँ नचाते थे, अब वे कवियोंको नचाते हैं। कुछ दिनों पहले हमने यह भी सुना था कि बड़े-बड़े आदमी अपने लड़कोंके विवाहके अवसरपर हिन्दी-कवि-सम्मेलन कराया करते हैं। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इस प्रकारके वायुमण्डलमें हमारे कवियोंका पतन हो जाय, और वे विदाईकी रकमोंके लिए वैसा ही आग्रह करते हुए नज़र आवें, जैसा महाब्राह्मण लोग मृत्युके अवसरपर प्रायः किया करते हैं। टीकमगढ़में हमने सुना था कि इस मनोवृत्तिका कुछ-कुछ आभास कुण्डेश्वरके इस वर्षके वसन्तोत्सवके पूर्वके उत्सवपर मिला था। यदि यह बात ठीक है, तो हम समझेंगे कि वह दिन हिन्दी-कविताकी मृत्यु (या हत्या ?) का दिवस था। वीरेन्द्रकेशव-साहित्य-परिषद्के अधिकारियोंसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे इस विदाईकी प्रथाको एकदम बन्द कर दें। श्रीमान् महाराजा साहब ओरछासे भी हमारा अनुरोध है कि वे एक बार इस प्रथाके दुष्परिणामोंकी ओर ध्यान दें। आख़िर परिषद् उनकी आश्रित संस्था है, और यदि वे इस विषयमें अधिक सावधानीसे काम लें, तो यह कुप्रथा तुरन्त रुक सकती है। ओरछा राज्यने हिन्दीके लिए जो कार्य किया है और जो कार्य वह अब भी कर रहा है, उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए भी हम निस्संकोच यह कहेंगे कि जहाँ हिन्दी-साहित्यके उच्चादर्शोंका—

हिन्दी-साहित्यिकोंकी इज्ज़तका—प्रश्न है, वहाँ हम ओरछा राज्यको भी इस साहित्यिक अनाचारके फैलानेका अधिकार नहीं दे सकते।

—

भगवान बुद्धकी पचीसवीं निर्वाण-शताब्दी

महापंडित त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं—"भगवान बुद्धके निर्वाणकालके विषयमें भिन्न-भिन्न देशोंमें यद्यपि कितने ही मतभेद हैं ; किन्तु पिछले एक सौ वर्षकी खोजोंसे संसारके अधिकांश इतिहासमर्मज्ञ ईसा पूर्व ४८३-८४ की वैशाख पूर्णिमाको बुद्धका निर्वाण-सन् मानते हैं। इसके लिए सारे जापानमें पचीसवीं निर्वाण-शताब्दीकी बड़ी धूमधामसे तैयारी हो रही है। जापानके बौद्ध और बातोंकी भाँति ऐतिहासिक खोजोंको भी अपनानेमें अग्रसर हैं, इसलिए वही इस विषयमें भी अगुआ हुए हैं। भारतवासी भगवान बुद्धके विषयमें कितनी ही लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं ; कितने ही हिन्दू उन्हें नवाँ अवतार मानते हैं। वे यह भी चाहते हैं कि भारतीयोंकी बौद्ध-जगत्से घनिष्ठ बन्धुता हो। उनके लिए यह अच्छा अवसर है कि वे सारे भारतवर्षमें धूमधामसे इस उत्सवको मनावें।

अधिमास होनेसे इस वर्ष दो वैशाख हो रहे हैं। प्रथम वैशाख पूर्णिमा २९ अप्रैलको है। इसी दिन जापानमें पचीसवीं निर्वाण-शताब्दी मनाई जायगी।

समय बहुत अधिक नहीं है, तो भी इतने समयमें ही हम बहुत-कुछ कर सकते हैं। उत्सवके लिए उस दिन नगरोंमें बुद्धके चित्रके साथ जुलूस निकाला जाय। बुद्ध और बौद्धधर्मके सम्बन्धमें व्याख्यान दिये जायँ। भारतसे बाहरके बौद्धोंको—विशेषतः जापानके बौद्धोंको, जो इस समारोहको मना रहे हैं—वहाँके पत्रों द्वारा मंगल-सूचना भेजी जाय। प्रोग्रामके विषयमें और सज्जन भी सम्मति दे सकते हैं।"

श्रीमान राहुलजीके इस प्रस्तावका हम हृदयसे समर्थन करते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी-जनता उनके इस प्रस्तावके अनुसार कार्य करेगी। तिथिके विषयमें हमें कुछ भूल ज्ञात होती है। पचीसवीं निर्वाण-शताब्दीका हिसाब जिस प्रकार लगाया गया है, वह हमारी समझमें नहीं आया। यदि भगवानका निर्वाण सन् ४८९ ईसा पूर्व मान लिया जाय, तो उनका जन्म सन् ५६९ ई० पू० सिद्ध होगा, और उस हालतमें पचीसवीं जन्म-शताब्दी मनाई जानी चाहिए।

—

युद्धके बादल

समष्टिवादी (Communist) कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनपर रूसकी सुदूर पूर्व सेना (Far Eastern Armies) के चीफ़ केमान्डर-जेनरल ब्लेचरने मंचूरियामें जापान द्वारा की गई सैनिक तैयारियोंके विषयमें अभी हालमें बड़े ज़ोरोंसे कहा है—

"जापान सोविएट रूसके विरुद्ध युद्ध करनेकी तैयारीमें संलग्न है, और उत्तरी मंचूरियाको उसने सैनिक ड्रिल क्षेत्रमें परिवर्तित कर लिया है, ताकि वह सोविएट सीमामें कूद सके। उसने अत्यन्त महत्वपूर्ण सड़कें, रेलों और वायुयानोंके अड्डोंका निर्माण प्रारम्भ कर दिया है, और जापानकी सम्पूर्ण सेनाके एकतिहाई भागको उत्तरी मंचूरियामें रख छोड़ा है। सोविएट सरकारने जापानकी रोकके लिए अपनी सेनाको सुसंगठित किया है, और अपनी सीमाको लोहे और कंकरीटसे ऐसा बना लिया है, जो हमारे विरोधीके भयंकरसे भयंकर आक्रमणको रोक सके।"

यह बातें हैं जिम्मेदार व्यक्तियोंकी। इसपर आलोचना व्यर्थ है। राजनैतिक भविष्यवाणी करना कुछ कठिन है ; पर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति कुछ ऐसी ही रही है कि यह कहना कुछ कठिन नहीं है कि यूरोपकी वर्तमान दशा सन् १९१३ की दशासे अति भयंकर है। एशियाके पूर्वमें युद्धके बादल मँडरा रहे हैं, और रूस और जापानमें युद्ध छिड़ते ही संसारकी सब शक्तियाँ किसी-न-किसी ओर हो जायँगी।

जापानकी साम्राज्यवादी नीतिका प्रत्येक समझदार आदमी विरोधी है। जापानकी इस नीतिने

भारतवासियोंकी जापानके प्रति सहानुभूति-सरिताको सुखा दिया है, और साथ ही उसकी व्यापारिक नीतिने इंग्लैण्ड तकको खोखला दिया है। शतरंजी चालोंसे दलबन्दी तो संसारमें होने लगी है। देखना यह है कि परिस्थिति क्या रूप धारण करती है।

—

पीड़ित बिहार

भूकम्पके कारण बिहारके तिरहुत डिवीज़नमें हाहाकार मचा हुआ है। गत १५ जनवरीको भूकम्पके दो-चार कम्पोंने ही बिहारके संचित वैभवका नाश कर दिया। 'विशाल भारत'के इसी अंकमें पं० श्रीराम शर्माका 'भूकम्प-पीड़ित बिहार' शीर्षक लेख छपा है। उससे पाठकोंको ज्ञात होगा कि भूकम्प-पीड़ित इलाकेकी कितनी हृदयद्रावक दशा है। भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायता करना मानवी धर्म है। कौड़ी-कौड़ी बचाकर हमें बिहारके आदरणीय नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके पास भेज देनी चाहिए, और संसारको दिखा देना चाहिए कि हममें विपत्तिका सामना करनेकी शक्ति है।

सरकारी रिपोर्टका कहना है कि भूकम्पसे लगभग सात हज़ार लोग मरे; पर हमारे कई मित्रोंका अनुमान है कि भूकम्पसे बीस और तीस हज़ारके बीच लोग मरे होंगे। इस अंक-विवरणपर हमें बालकी खाल नहीं निकालनी। हमें तो बिहारी भाइयोंकी सहायता करनी है। इस समय ही तिरहुतके उत्तरी भागमें दुर्भिक्षके-से लक्षण हैं; पर दो मास उपरान्त और भी भयंकर हालत हो जायगी। सरकारको चाहिए कि पीड़ित इलाकेवालोंसे न तो चौकीदारी टैक्स ले और न ज़मीनका लगान और साथ ही तक़ावी देकर किसानोंकी सहायता भी करे।

बिहारके इस भूकम्पसे हमारे मनमें दो विचार उठे। एक तो यह कि ऊँची अट्टालिकाओंमें लाखों रुपया लगानेवाले सोचें कि रुपयेका सदुपयोग मकान बनाना भी नहीं है। हिन्दुओंकी पुरानी सभ्यता—साधारण मकान और उच्च संस्कृति—ही राष्ट्रको अग्रसर बनाती हैं। दूसरी बात यह कि यदि भारत आज स्वतन्त्र होता, तो देशकी सेनाकी अनेक रिजमेन्ट तिरहुत डिवीजनमें पहुँचकर चूने और गारेके ढेरोंको बात-की-बातमें साफ़ कर देतीं। सपरमैना (Sappers and miners) के लिए इतना काम करना कोई बड़ी बात नहीं।

—

भूकम्प और पत्रकार

हम लोगोंकी जीवित स्मृतिमें बिहारका भूकम्प एक विशेष घटना है। पता नहीं, हिन्दीके कितने पत्रकार भूकम्प-पीड़ित प्रदेशको देखने गये और कितने समाचारपत्रोंने अपने संवाददाता और प्रतिनिधि भेजे; पर उस दिन बंगलाके प्रसिद्ध पत्र 'आनन्दबाज़ार पत्रिका'के सब कुछ श्री माखनलालजीसे यह मालूम करके चित्त प्रसन्न हुआ कि उन्होंने भूकम्प-पीड़ित इलाकेमें अपने चार संवाददाता भेजकर वहाँकी परिस्थितिकी जाँच कराने और वहाँके फोटो लेनेमें सोलह सौ रुपये खर्च किये हैं। यह हम मानते हैं कि 'आनन्दबाज़ार पत्रिका' के बराबर हिन्दीके किसी पत्रका तो क्या, अंगरेज़ी या भारतवर्षकी किसी भी भाषाके पत्रका प्रचार नहीं है; पर तो भी हिन्दीवालोंकी ओरसे भूकम्पके चित्र और वहाँके देहातके समाचारोंके भेजनेमें यथेष्ट तत्परता नहीं रही है। देरसे दूसरोंसे लेकर समाचार देनेमें किसी भी पत्रकारकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पत्रकारोंमें एक प्रकारके adventure की ज़रूरत है, और हमें आशा है कि हमारे नवयुवक, जो पत्रकार-कलाकी ओर आ रहे हैं, इस कमीकी पूर्ति करेंगे।

—

कृतज्ञता प्रकाश

सर्वश्री रामदयालुसिंहजी, नारायण बाबू, बेनीपुरीजी, अवधेशजी, मथुरा बाबू, दारोगा राधाकृष्णजी मिश्र, छबिनाथजी पाण्डेय तथा अनेक सज्जनोंने हमारे सुयोग्य लेखक श्रीराम शर्माको उनकी भूकम्प-सम्बन्धी बिहार-यात्रामें जो सहायता दी, तदर्थ हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १३, अंक ३] चैत्र १९९० :: मार्च १९३४ [पूर्ण-अंक ७५.

प्रभु ईसा

मूर्तिमती जिनकी विभूतियाँ
जागरूक हैं त्रिभुवनमें ;
मेरे राम छिपे बैठे हैं
मेरे छोटे-से मनमें ;

धन्य-धन्य हम जिनके कारण
लिया आप हरिने अवतार ;
किन्तु त्रिवार धन्य वे जिनको
दिया एक प्रिय पुत्र उदार ;

हुए कुमारी कुन्तीके ज्यों
वीर कर्ण दानी मानी ;
मा मरियमके ईश हुए त्यों
धर्मरूप वर बलिदानी ;

अपना ऐसा रक्त मांस सब
और गात्र था ईसाका ;
पर जो अपना परम पिता है
पिता मात्र था ईसाका ।

—मैथिलीशरण गुप्त

भविष्य

दीनबन्धु सी० एफ० एराड्रूज़

भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनकी प्रगतिके दिनोंमें मुझसे बार-बार एक ही प्रकारके प्रश्न—जो प्रश्न भारतीयोंके मनमें भी चक्कर लगा रहे हैं—पूछे गये हैं। इन प्रश्नोंका सम्बन्ध वर्तमान युगके राष्ट्रीय स्वार्थसे है, जिनमें राष्ट्रीयताकी ज्वलन्त भावना अब भी उच्चसे उच्चतर होती जा रही है, विशेषकर प्राच्य देशोंमें। क्या राष्ट्रीयता ही हमारा चरम साध्य होना चाहिए? क्या अन्य सब स्वार्थोंकी अवहेलना करके हम एकमात्र मातृभूमिकी ही उपासना करें? क्या अपने देशमें ही रहकर हमें यथासम्भव उसकी उन्नति करनी चाहिए, और किसी दूसरे देशकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिए? इस प्रकारकी कुछ वर्तमान समस्याएँ हैं, जो भारतकी युवक-पीढ़ीको आकुल कर रही हैं; किन्तु भारत ही क्यों, बल्कि यह कहा जा सकता है कि संसारमें इस समय कदाचित ही कोई ऐसा देश हो जिसके सामने इसी प्रकारकी समस्याएँ उपस्थित न हों।

इस प्रकारके प्रश्नोंका पूर्णतया समाधान करनेका प्रयत्न मेरे लिए सम्भव नहीं। किन्तु संक्षेपमें मैं यहाँ मानव-जीवनके कुछ महान् सिद्धान्तोंका सार मर्म बता सकता हूँ, जिससे सम्भवतः इन समस्याओंके समाधानमें कुछ सहायता मिल सके।

इस प्रकारका परीक्षात्मक उत्तर प्रदान करनेमें, हमें पथ-प्रदर्शनके लिए बार-बार उपनिषदोंकी शरण लेनी पड़ेगी। मानवीय जीवन और आचारके सम्बन्धमें हमें उपनिषदोंसे चरम विचार मिलते हैं और वे अपनी सरलता और तत्परताके कारण सर्वदा अनुपम हैं।

पहले, हमें इस बातका स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि भविष्य क्या है। मानवजातिकी भावी एकताके विरुद्ध आत्म-रक्षाके लिए बाधाएँ खड़ी करना उसी प्रकार निरर्थक है, जिस प्रकार प्राचीन गल्प-कथाके राजा कनूटका समुद्रकी लहरको एक निश्चित स्थानसे आगे बढ़नेमें रोकनेकी चेष्टा करना। इस भावी लहरको कुछ समयके लिए रोकनेमें जाति, वर्ण और भौगोलिक सीमा आदि हमारे क्षुद्र प्रतिबन्ध कारगर हो सकते हैं। शायद भविष्यमें उनका यही अर्थ और अभिप्राय रहा हो, किन्तु एक वंश, एक धर्म, एक भूमि और एक जातिके निर्दिष्ट लक्ष्यकी ओर धावित होनेवाली मानवताके प्रवाहका प्रतिरोध करनेकी सामर्थ्य उनमें नहीं है।

वस्तुतः सम्पूर्ण मानव जाति एक ही परिवारके अन्तर्गत है, उनका उद्गम-स्थान एक ही है, और एकमें ही उसका बहुरूप मौजूद है। यदि वेदान्तके इस चरमसूत्र 'तत् त्वम् असि' का कोई अर्थ है, यदि अद्वैतवादका कोई अर्थ है, तो वे अर्थ यही हैं जिनका मैंने अभी उल्लेख किया है।

भारतकी एक प्राचीन उपासनामें कहा गया है 'पिता नोसि'—तुम हम लोगोंके पिता हो; 'पिता नो बोद्धि'—हे पिता, हमें ऐसा ज्ञान दो जिससे हम तुम्हें जानें।" यदि हम उपनिषदोंकी इस प्रार्थनाके अनुसार समझकर प्रार्थना करें—और यह प्रार्थना ठीक ईसाइयोंकी प्रार्थना जैसी है—तो अवश्य इसका अभिप्राय है एक कुटुम्बके रूपमें विश्वमानवका सम्मिलन, जिसके बीचकी हरएक दीवार टूट गई हो। यह केवल एक रहस्य-मूलक धर्म-विश्वास नहीं है; बल्कि एक वैज्ञानिक तथ्य है, जिसे विज्ञान अधिकाधिक सत्य-रूपमें प्रमाणित कर रहा है।

कभी-कभी मुझसे यह प्रश्न किया गया है कि मुट्ठीभर प्रवासी भारतीयोंके मामलेके सम्बन्धमें मैंने कितने ही महीनों तक अफ्रिकामें रहना क्यों आवश्यक समझा है, जब कि भारतमें ही इस प्रकारकी अनन्त समस्याएँ पड़ी हुई हैं, जिनका समाधान नहीं हुआ है। इसके

उत्तरमें मेरा कथन यह है कि अफ्रिकामें जाति, वर्ण और वंशके नये और भयानक प्रतिबन्ध ऐसे समयमें खड़े किये जा रहे हैं, जब कि भारतमें तथा अन्य स्थानोंमें इस प्रकारके प्रतिबन्ध लुप्त होते जा रहे हैं। जिस प्रकार बाढ़के पानीको शुरूमें ही रोकना आवश्यक है, उसी प्रकार मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं 'पिता नोसि' मन्त्रसे तब तक उपासना नहीं कर सकता, जब तक कि अफ्रिकामें--जो जातीय विद्वेष और घृणाका केन्द्र बन रहा है—मैं उस परम पिताका आवाहन न कर लूँ।

अच्छा, अब मैं अपने मुख्य विषयपर आता हूँ। स्पष्टरूपमें विचार करनेपर हमें मालूम होता है कि लोभ, ईर्षा, अहंकार आदि मानवीय दुर्बलताओंके अलावा अतीतकालमें भौगोलिक प्रतिबन्ध-जनित स्थान तथा दूरी और समयपर विजय प्राप्त नहीं कर सकनेके कारण हम बहुत-कुछ एक दूसरेसे पृथक् रहे हैं और बहुधा एक दूसरेसे अपरिचित बने रहे हैं।

मैं यहाँ एक बहुत ही साधारण दृष्टान्त देता हूँ। जब तक मैं भारत नहीं आया था और मैंने यहाँका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त नहीं किया था, तब तक भारतके सम्बन्धमें मेरा कितना गलत ख़याल था, इसका वर्णन करना भी कठिन है। मैंने केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयमें इस बातकी पूरी चेष्टा की थी कि भारतके सम्बन्धमें सब उपलब्ध पुस्तकें पढ़ जाऊँ, और जो लोग भारतसे लौटकर विलायतमें आयें, उनसे बातचीत करूँ। इस प्रकार मैंने समझा था कि मेरे ज्ञानकी नींव मज़बूत और सुरक्षित हो गई है; किन्तु अब जब मैं उस समयकी याद करता हूँ, तो मुझे मालूम होता है कि मेरा वह ज्ञान कितना अधूरा था! मैंने अपने मनमें कितना मिथ्या चित्र चित्रित कर रखा था! मेरे प्रत्येक विचारको कितनी संकीर्ण अनुदारताने आवेष्टित कर रखा था! किन्तु विज्ञान-द्वारा आविष्कृत आवागमनके आधुनिक साधनोंके बिना सम्भवतः मैं भारत कभी भी न आ सकता और अन्त तक भारतके प्रकृत स्वरूपसे अपरिचित बना रहता। अब सद्भाव-सम्पन्न व्यक्ति संसारके विभिन्न देशोंमें आसानीसे स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरा करते हैं, इसलिए अपने इस अद्भुत और नूतन अनुभवकी नवीनता समाप्त हो जानेके बाद हमें एक दूसरेको अच्छी तरह जानना चाहिए, और परस्पर प्रेम करना चाहिये।

किन्तु दुर्भाग्यवश यह बात भी सत्य है कि वैज्ञानिक आविष्कारके कारण भौतिक उन्नति जो इतनी क्षिप्रगतिसे हुई है, वह नैतिक और आध्यात्मिक उन्नतिसे बहुत आगे बढ़ गई है। जिस प्रकार युद्धमें मानवै-जातिके संहारके लिए विज्ञानका दुरुपयोग किया गया है, उसी प्रकार नवीन वैज्ञानिक आविष्कार सरल और सत्यनिष्ठ मानव-जीवनको अन्य दिशाओंमें विध्वस्त कर देना चाहते हैं। इनसे बहुधा आधुनिक नर-नारियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है और उनके मन क्लान्त हो जाते हैं, और वे दीर्घ मानव-जीवनका उपभोग नहीं कर सकते। किन्तु इन बुराइयोंके अन्दर भी बहुत कुछ भलाई निकल रही है। इसमें कौन सन्देह कर सकता है? ज्ञानके विश्वव्यापी प्रचारके कारण एक दूसरेको अच्छी तरह जानना, एक दूसरेको स्पष्टरूपमें समझना और कल्पना-कहानीके बदले सत्यके सन्धानके लिए विज्ञानसम्मत यथार्थ भावना इस समय सम्भव हो गई है। यह सच है कि अभी तक हमें सत्यकी उपलब्धि नहीं हुई है, किन्तु हम बराबर इसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। कम-से-कम वाह्य-वस्तुओंके सम्बन्धमें इस समय हमारा ज्ञान अतीतकालकी अपेक्षा विशेष विशुद्ध है। बिना इस यथार्थ वाह्य-ज्ञानके यह सम्भव है कि कल्पित भावनाएँ हमारे मनको भ्रान्त बना डालें।

इसलिए जो लोग अभी नवयुवक हैं और भविष्यकी सन्तति हैं, उन्हें कठिनाइयोंसे डरना नहीं चाहिए, क्योंकि ये कठिनाइयाँ तो परास्त होनेके लिए ही हमारे सामने उपस्थित हुई हैं। बौद्धिक विकास और मानवीय स्वतन्त्रताके इस नवीन उत्तराधिकारके अन्दर

प्रवेश करनेके लिए हमें साहस-पूर्वक अग्रसर होना चाहिए। जिस प्रकार भगवान रामचन्द्रकी लंका-यात्राके समय भारतके प्राचीन भौगोलिक प्रतिबन्ध दूर हो गये थे और सब जातियोंको संबद्ध करके वे आदिम निवासियोंके मित्र बन गये थे और इस प्रकार उन्होंने भारतीय एकताके एक नवीन युगका प्रवर्तन किया था, उसी प्रकार जो लोग वीरों-जैसा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं और इस समय मानवताके अग्रदूत बनना चाहते हैं, उन्हें एक वृहत्तर देशकी—जिसका ज्ञान तक हमारे पूर्वजोंको नहीं था—यात्रा करनेके लिए तैयार रहना होगा। हम एक दूसरेसे पृथक् विभिन्न सम्प्रदायों और धर्मावलम्बियोंके रूपमें हिन्दू मुसलमान और ईसाई नहीं बने रह सकते, जैसा कि संकीर्ण अर्थमें इन शब्दोंका व्यवहार किया जाता है। प्राचीन संकीर्ण जातीय अर्थमें हम भारतवासी अंगरेज या फरासीसी नहीं बने रह सकते। इस प्रकारकी किसी बाधा और प्रतिबन्धके सामने पहुँचकर अब हम ठहर नहीं सकते। हम 'अद्वैतम्' की सन्तान हैं। हम एक पिताकी सन्तति हैं और एक ही कुटुम्ब—मानव-कुटुम्ब—के अन्तर्गत हैं। हमें आगे बढ़ना होगा, एक जाति, एक धर्म, एक देशके आदर्श तक आगे बढ़ना होगा। वह देश है विश्वमानवका देश और वह इस जगतके समान ही वृहत् और व्यापक है।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह एक रहस्यपूर्ण धर्म-विश्वास नहीं है, बल्कि एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। अपने अनुभवके आधारपर एक उदाहरण मैं यहाँ देता हूँ, जिससे मेरा उक्त कथन प्रमाणित होता है।

अभी हालमें जहाँ मैं ठहरा हुआ था, उस मकानके ठीक बाहर मेरी मुलाकात एक बुड्ढे आदमीसे हुई, जिसे मैंने इससे पहले और कभी नहीं देखा था। वह आसाम प्रान्तके नवगाँवका रहनेवाला एक मुसलमान था। और मैं था इंगलैंडका रहनेवाला एक ईसाई। वह पूर्वका निवासी था और मैं पश्चिमका। किन्तु उसकी आँखोंमें एक ऐसी चीज थी, जिसमें मुझे सहानुभूति और मानवीय बन्धुत्वकी झाँकी देखनेको मिली। मेरे ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक क्षणमें ही उसके प्रथम दर्शनसे ही मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गया। उसी क्षण मैंने यह भी देखा कि उसका हृदय मेरी ओर आकृष्ट हो गया था। ऐसे अवसरपर जाति और धर्मके प्रतिबन्ध कहाँ चले जाते हैं? इस समय वे पूर्व और पश्चिम कहाँ चले गये, जो परस्पर कभी मिल ही नहीं सकते? इस प्रकारके सब भेदभाव दूर हो गये थे; और उस समयसे मैं उस सरल-स्वाभाविक अनुभवके आनन्दको अपने मनमें पोषित कर रहा हूँ। "तत् त्वम् असि"। मैंने ऊपर जिस घटनाका उल्लेख किया है, उसका इसके सिवा और क्या अभिप्राय हो सकता है कि मनुष्य जाति एक है, उसका हृदय एक है और उसकी आत्मा एक है, जिससे वह प्रेम करती है। संपूर्ण जगतमें एक ही परमात्माकी सत्ता परिव्याप्त हो रही है। वह सत्ता है 'अद्वैतम्' अर्थात् द्वैतभावसे शून्य।

ईश उपनिषद्के प्रारम्भमें कहा गया है—"इस चल जगतमें जितनी वस्तुएँ सजीव दीख पड़ती हैं, वे सब परमात्माकी सत्तासे परिव्याप्त हैं।"

इसी वृहत्तर देशमें—मानवताके देशमें—प्राचीन भारतके अरण्यवासी ऋषि अपनी चिन्ता और स्वप्न-राज्यमें आनन्दपूर्वक निमग्न रहा करते थे। वे अपनी दूरदृष्टिसे महामानवके मिलनका वह दृश्य देखा करते थे, जिस दृश्यको आज हम प्रकृतरूपमें देख रहे हैं।

क्या 'अद्वैतम्' के इस सिद्धान्तका—जो 'शान्तम्' और 'शिवम्' भी है—अर्थ यह है कि हम अपने देशको बिलकुल छोड़ दें और उसके स्थानमें एकमात्र मानवतासे ही प्रेम करें? 'अद्वैतम्' का सिद्धान्त सामने रखनेपर छात्रोंने बहुधा मुझसे यह प्रश्न किया है। किन्तु इसका उत्तर बहुत ही सीधा है।

आप मानवतासे अधिक प्रेम करते हैं, इस कारण ही आप अपने देशसे कम प्रेम नहीं कर सकते।

आध्यात्मिक दृष्टिसे यह असम्भव है। आध्यात्मिक जीवनमें गणितके साधारण नियम लागू नहीं होते। इसका परिमाण ही कुछ और है। आध्यात्मिक वस्तुओंमें भौतिक वस्तुओंके समान जोड़-बाकीका हिसाब नहीं होता। एक दिशामें कमी करके आप दूसरी दिशामें जोड़ नहीं सकते। यहाँ मैं एक दृष्टान्त देकर इस विषयको स्पष्ट करनेकी चेष्टा करता हूँ। गणितशास्त्रकी दृष्टिसे ईसामसीहके इस कथनसे बढ़कर असंगत और क्या हो सकता है कि "जो अपने जीवनको खो देता है वही उसकी रक्षा करता है"? किन्तु आत्माके उच्चतम परिमाणमें हम इस सत्यका प्रतिदिन अनुभव करते हैं। ईसामसीहके बलिदानकी यही शिक्षा है। इसलिए आध्यात्मिक नियमके अनुसार यदि आप मानवताके लिए आत्म-बलिदान करनेको कृतसंकल्प हैं, तो आप अपने देशसे कम प्रेम नहीं करेंगे, बल्कि अधिक ही करेंगे। एक आधुनिक अंगरेज कविकी कवितामें 'इंगलैण्ड' की जगह 'इंडिया' लिखकर हम कह सकते हैं—

"They know not India truly,
who only India know."

वे भारतको प्रकृतरूपमें नहीं जानते,
जो केवल भारतको ही जानते हैं।

हम लोगोंमेंसे बहुतोंने फोटो लेते समय बार-बार इस बातकी चेष्टा की होगी कि केमराका Focus ठीक बैठे। जब तक केमराका लेन्स (Lens) ठीक तौरसे नहीं बैठता, सारी तसवीर धुँधली दीख पड़ती है। किन्तु Focus के ठीक हो जाते ही तसवीरका हरएक पहलू साफ-साफ नज़र आने लगता है। ऋषि-मुनियों द्वारा निर्दिष्ट मानव-जीवनके चरम सिद्धान्तोंके प्रति भी यही बात लागू होती है। इन सिद्धान्तोंकी सहायतासे हम अपने जीवनका दृष्टिकोण ठीक कर सकते हैं। इस समय यूरोपमें मानव-जीवन अपने Focus किरण-केन्द्रसे बाहर हो गया है। इसका कारण है प्रत्येक राष्ट्रका इस बातके लिए उत्तेजितरूपमें उद्विग्न रहना कि चाहे जिस प्रकार हो, दूसरेको हानि पहुँचाकर भी अपने देशके लिए सब वस्तुएँ प्राप्त की जायँ। इस संकीर्ण देशभक्तिके कारण केवल भ्रान्तियाँ ही फैलती हैं। मनुष्यका चित्र भावावेशके कारण मलिन हो जाता है। बहुत वर्षोंसे यूरोपका दृष्टिकोण ठीक नहीं रह गया है। मानव-जीवनका एकमात्र वास्तविक किरण केन्द्र है एक मानव-परिवार, एक मानव-जाति। ईसाने यूरोपके सामने यह आदर्श रखा था, किन्तु गत महासमरमें यूरोपने इस आदर्शको खो दिया और तबसे वह उसे प्राप्त नहीं कर सका है।

एक बार 'अद्वैतम्' के—जो 'शान्तम्' और 'शिवम्' भी है—सत्यकी उसी प्रकार उपलब्धि करो, जिस प्रकार प्राचीनकालके ऋषियोंने किया था, उसका वास्तविक चित्र अपने मानस-चक्षुके सामने चित्रित करो; उसका यथार्थ किरणकेन्द्र प्राप्त करो; विश्वात्माको प्रत्येक वस्तुमें और प्रत्येक वस्तुको विश्वात्मामें देखो; और फिर इसके बाद सब बातें आपसे आप ठीक हो जायँगी। ऐसा करनेपर देश-प्रेम अपने उचित स्थानपर आ जायगा और इससे दूसरे लोगोंको हानि नहीं पहुँचेगी। इसके बादसे मानव-जीवन युद्धशील अणु-परमाणुओंकी केवल राशि न बनकर एक इन्द्रिय-विशिष्ट रचना बन जाता है। यहाँ मैं एक दुःखपूर्ण व्यक्तिगत अनुभवकी बात बताता हूँ। मेरे देशवासी मुझे बहुधा एक स्वधर्मभ्रष्ट अंगरेज़ कहा करते हैं। किन्तु क्या कोई यह समझता है कि जब मैं सच्चे भावसे यह कहता हूँ कि मैं भारतसे भरपूर प्रेम करता हूँ, उस समय मैं इंग्लैंडसे अपेक्षाकृत कम प्रेम करता हूँ? मैंने पहले भी कहा है और अब भी कहता हूँ कि ऐसी बातोंमें हमारे दैनिक जीवनका गणित लागू नहीं होता। जहाँ निःस्वार्थ प्रेम होता है, वह प्रेमकी संकीर्ण परिधिसे बाहर निकलकर पूर्ण व्यापक बन जाता है। स्वार्थहीनता प्रेमको मिटाती नहीं, बल्कि वह उसे अपनी विस्तृत परिधिके अन्तर्गत कर लेती है।

इन सब बातोंको कार्यरूपमें परिणत करनेपर ये कितनी सरल मालूम होती हैं। वे उतनी ही सरल हैं जितना सरल तैरनेकी कला सीखना है। तैरकर ही आप तैरना सीख सकते हैं। आप जलपर भरोसा करते हैं, दृढ़विश्वासके साथ अपने हाथ-पाँव फैलाते हैं और फिर शीघ्र ही आप अपनेको तैरते हुए पाते हैं। किन्तु यदि आप जलाशयके किनारे खड़े-खड़े डरसे काँपते रहें और पानीमें प्रवेश ही न करें, तो फिर तैरनेमें जो आनन्द और प्रफुल्लता है, उसे आप नहीं जान सकेंगे। इसी प्रकार यदि हम मानवता-रूपी विशाल जलराशिमें गोते नहीं लगायेंगे और किसी छोटे कोनेमें—किसी क्षुद्र राष्ट्रीयतामें—अपने किसी पृथक् केन्द्रमें खड़े-खड़े काँपते रहेंगे, तो हमें मानव-जीवनका विशुद्ध आनन्द—"सर्व खल्विदं ब्रह्म"—कभी प्राप्त नहीं होगा। हमारा देशप्रेम संकीर्ण और स्वार्थपर बन जायगा और उसकी यह संकीर्णता अन्तत: हमारे देशके लिए लाभकी अपेक्षा विशेष हानिकर सिद्ध हो सकती है। क्योंकि किसी भी देशकी वास्तविक उन्नति दूसरे देशको क्षति पहुँचाकर नहीं हो सकती। मानवता दूसरेको चिढ़ानेके लिए अपनी नाक काटकर नक्कू नहीं बन सकती। किन्तु आक्रमण-शील राष्ट्रीयता आज ठीक यही करनेकी चेष्टा कर रही है!

मेरा यही विश्वास है। मेरा विश्वास है कि कुछ समयके बाद संसारकी विभिन्न जातियाँ और धर्म परस्पर एक हो जायेंगे। तथापि मैं इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकता कि अतीतकालमें विभिन्न जातियों, धर्मों, भाषाओं और सभ्यताओंके वैचित्र्यपूर्ण सौन्दर्यके कारण मानव जातिको लाभ पहुँचा है। किन्तु जैसा कि ईश-उपनिषद्में कहा गया है—"संसारकी सब वस्तुएँ चल-जगतमें चलायमान हैं।"—इन सब वस्तुओंकी एक समान स्थिति नहीं रहती। उनका उत्थान और पतन होता ही रहता है। उनकी परिधि क्रमश: व्यापक होते-होते परमात्म-शक्ति द्वारा आच्छादित हो जाती है। वे अद्वैतम्के सन्निकट होते जाते हैं।

किन्तु यदि आप मुझसे पूछें—"क्या भगवानकी यह लीला, 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की यह लीला नित्य निरन्तर नहीं चलती रहेगी"—मैं इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे सकता। मैं इतना ही जानता हूँ कि मानवीय इतिहासका अवश्यम्भावी झुकाव, उसकी तरंगें महामानवके मिलनकी ओर द्रुतगतिसे अग्रसर हो रही हैं। आधुनिक जगतके वैज्ञानिक आविष्कार भी इसी महामिलनकी ओर संकेत कर रहे हैं। मानव-हृदयके अन्तरमें जो दुर्निवार प्रेरणा हो रही है, वह इस एकताकी ओर है। जितनी उच्चतर आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं, उन सबका लक्ष्य यही एकता है। प्रेम, त्याग, बन्धुत्व और साहचर्यके प्रत्येक कर्म इसी एकताकी ओर ले जानेवाले हैं।

मनुष्य-जाति जब अपने लक्ष्यको प्राप्त कर लेगी, उस समय यह हो सकता है कि अन्य प्रकारके रूप और सौन्दर्यकी अभिव्यक्ति हो, जिससे 'बहु' को एकमें लीन होनेके पूर्व, हम नूतन रूपमें हृदयङ्गम करें। किन्तु ये सब बातें हमारे वर्तमान ज्ञान-क्षेत्रसे बाहरकी हैं। हमलोगोंके लिए जो भविष्यके महान उत्तराधिकारमें प्रवेश कर रहे हैं, मार्ग स्पष्ट है। हमें अपने विचार और भाव, आशाओं और उद्देश्योंको मानवताके समान ही व्यापकक्षेत्र प्रदान करना चाहिये। अन्तत: हम सभीके लिए एक ही जाति है और वह है 'मानव जाति'। अन्तत: हमारे लिए एक ही बन्धुत्व है और वह है मानवीय बन्धुत्व।

——

शंखनाद

श्री सियारामशरण गुप्त

मृत्युंजय, इस घटमें अपना,
कालकूट भर दे तू आज;
ओ मंगलमय, पूर्ण, सदाशिव,
रुद्र रूप धर ले तू आज।

चिर निद्रित भी जाग पड़ें हम,
कर दे तू ऐसी हुंकार;
मदमत्तोंका मद उतार दे,
दुर्धर, तेरा दंड प्रहार।
हम अंधे भी देख सकें कुछ—
धधका दे प्रलयज्वाला;
उसमें पड़कर भस्मशेष हो,
है जो जड़ - जर्जर - निस्सार।

यह मृत-शान्ति असह्य हो उठी,
छिन्न इसे कर दे तू आज;
मृत्युंजय, इस घटमें अपना,
कालकूट भर दे तू आज।

ओ कठोर, तेरी कठोरता,
कर दे हमको कुलिश - कठोर;
विचलित कर न सके कोई भी,
झंझाकी दारुण झकझोर।

सिरके ऊपरके प्रहार सब,
सुमन - समूह - समान झड़ें;
पैरोंके नीचे के काँटे,
मृदु मृणाल-से जान पड़ें।
भयके दीवानलमें धँसकर,
उसे बुझा दें पैरोंसे;
छाती खोल खुलेमें अड़कर,
विपदाओंके साथ लड़ें।

तेरा सुदृढ़ कवच पहने हम,
घूम सकें चाहे जिस ओर;
ओ कठोर, तेरी कठोरता,
कर दे हमको कुलिश - कठोर।

ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता,
सहज सह्य हमको हो जाय;
तेरे प्रलय - घनोंकी धारा,
निर्मल कर हमको धो जाय।

अशनि-पातमें निर्घोषित हो,
विजय-घोष इस जीवनका;
तड़ित्तेजमें चिर ज्योतिर्मय,
हो उत्थान - पतन तनका।
बन्धन-जाल तोड़कर सहसा,
इधर - उधरके कूलोंका;
तेरी उच्छृंखल वन्यामें,
पागलपन हो इस मनका।

निजताकी संकीर्ण क्षुद्रता,
तेरे सुविपुलमें खो जाय;
ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता,
सहज सह्य हमको हो जाय।

ओ कृतान्त, हमको भी दे जा,
निज कृतान्तताका कुछ अंश;
नई सृष्टिके नवोल्लासमें,
फूट पड़े तेरा विभ्रंश।

नव भूखंड अमृतके घट-सा,
दे ऊपरकी ओर उछाल;
सागरका अन्तस्तल मथकर,
तेरे विप्लवका भूचाल।
जीर्ण शीर्णताके दुर्गोंको,
कुसंस्कार के स्तूपोंको;
ढा दे एक साथ ही उठकर,
दुर्जय, तेरा क्रोध कराल।

कुछ भी मूल्य नहीं जीवनका,
हो यदि उसके पास न ध्वंस;
ओ कृतान्त, हमको भी दे जा,
निज कृतान्तताका कुछ अंश।

ओ भैरव, कविकी वाणीका,
मृदु माधुर्य लजा दे आज;
वंशीके ओठोंपर अपना,
निर्मम शंख बजा दे आज।

नभको छाकर दूर-दूर तक,
गूँज उठे तेरा जय-नाद;
घरके भीतर छिपे पड़े जो,
बाहर निकल पड़ें साल्हाद।

तिमिर-सिन्धुमें कूद, तैरकर,
सुप्रभातसे उठ आवें;
निखिल संकटोंके भीतर भी,
पावें तेरा पुण्य-प्रसाद।

जीवन रखके योग्य हमारा,
निर्भय साज सजा दे आज;
आ भैरव, कविकी वाणीमें,
निर्मम शंख बजा दे आज।

रूसके बच्चे और दाम्पत्य-जीवन

श्री नित्यनारायण बनर्जी

लेनिनग्रेडकी जिस शिशुशालाको देखनेके लिए मैं गया था, उसके एक कमरेमें एक बड़ा पयानो रखा था। बड़ी उम्रके बच्चे इसी पयानोकी गतपर नाचते हैं। यह नाच उनके लिए व्यायामका काम देता है। शिशुशालामें नाना प्रकारके खिलौने हवाई जहाज़, पानीके जहाज़, टारपीडो, पम्प इंजिन, सिपाही आदि रखे थे, लेकिन हर चीज़ वास्तविक थी। कोई भी खिलौना काल्पनिक परी, या दैत्य या राक्षस आदिका न था। रूसी बच्चे हिन्दोस्तानी बच्चोंकी तरह न तो गुड्डा-गुड़ियाका ब्याह रचाते हैं और न देवताओंके खिलौनेकी पूजा करते हैं। हर बच्चेको जिस खिलौनेसे वह चाहे, उससे खेलनेका मौक़ा दिया जाता है और यह बात सावधानीसे देखी जाती है कि वह किस चीज़से खेलना अधिक पसन्द करता है। अगर उसे चित्रकारी अच्छी लगती है, तो भविष्यमें उसे चित्रकारीके अध्ययनके लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसी प्रकार उसकी प्रवृत्ति इंजीनियरिंग, फौज, कृषि, कला आदि जिस चीज़की ओर देखी जाती है, उसे उसीके विकासके लिए सुविधा दी जाती है। बचपनसे ही रूसी बच्चे इस प्रकारकी देखरेखमें रखे जाते हैं और उनका पूरा रेकर्ड रखा जाता है। वे सब एक ही साँचेमें नहीं ढाले जाते। रूसके कर्त्ताधर्ता इस बातको जानते हैं कि भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न धातुओंके बने होते हैं, इसलिए उन सबको एक ही साँचेमें ढलना महज़ हिमाक़त है।

उम्रके मुताबिक बच्चे अलग-अलग श्रेणीमें विभाजित किये जाते हैं और उनकी देखरेख की जाती है। एक कमरेमें कोई तीस बच्चे सो रहे थे। उनकी परिचारिका नर्स उनका रोज़मर्राका हाल लिख रही थी। नर्सको प्रतिदिन बच्चोंका टेम्परेचर पाखाना, पेशाब, कितने बार बच्चा रोया आदि बातें लिखनी पड़ती हैं। हर बच्चेका अलग अलग ध्यान रखा जाता है। हर एक बच्चा हाथ ऊपर उठाये—वैज्ञानिक ढंगसे—लेटा हुआ था। अगर बच्चेको कुछ तक़लीफ या रोग हो जाता है, तो उसे और बच्चोंसे अलग करके डाक्टरके पास भेज दिया जाता है। उसकी मा उसे घर नहीं ले जा सकती, हाँ अगर ज़रूरत हो तो वह बच्चेके पास रह सकती है। रूसी मज़दूरोंके बच्चोंकी जैसी सफ़ाईसे और जैसे वैज्ञानिक ढंगसे देखरेख की जाती है, उसे देखकर हमारे यहाँके धनी-से-धनी लोग भी ईर्ष्या करेंगे। जब मैं शिशुशालाका निरीक्षण समाप्त कर चुका, तो मुझसे

सम्मति-बहीपर अपनी सम्मति लिखनेको कहा गया। मैंने प्रसन्नतासे अपनी सम्मति लिख दी।

यात्रा-विभागने एक टेक्सी भेज दी थी। हम लोग उसपर सवार होकर शहर देखनेके लिए चले।

लेनिनग्रेडके हरमिटेजका एक चित्र

हमारी गाड़ी शीघ्रही नीवा नदीके तटपर जा पहुँची। नीवाकी नाचती हुई चपल तरंगे सर्दीमें जम कर वर्फ बन गई थीं। जान पड़ता था कि किसी जादूगरने अपनी जादूकी लकड़ी छुआ कर चपल तरंगोंको पत्थर बना दिया हो। दोनों किनारोंके बीचका चौड़ा पाट वर्फकी लहरियादार सफेद चादर-सा बना हुआ था।

रास्तेमें अनेक प्रधान-प्रधान इमारतें मिलीं। नीवाके तटपर समुद्री सेनाका कालेज और दफ्तर तथा मज़दूर विभागका कार्यालय देखा, जहाँ पहले राजनैतिक कैदियोंको बन्द करके उनपर अमानुषिक अत्याचार किये जाते थे; कम्यूनिस्ट दलकी केन्द्रीय कमेटीका प्रथम निवासस्थान देखा, इसमें पहले क्षेसिन्सकाया रहता था। इसी भवनकी एक खिड़कीपर खड़े होकर विदेशसे लौटनेपर लेनिनने अपने अनुगामियोंको सबसे पहला व्याख्यान दिया था। 'लाल फौजका तोरण' एक पीले रंगकी विशालकाय इमारत है, जिसे भवन-निर्माण-कलाके प्रसिद्ध आचार्य रोसीने बनाया था। यह इमारत लाल फौजका प्रधान केन्द्र थी और अब भी है। यह ज़ारके सुप्रसिद्ध शरद-प्रासादके—जो अब क्रान्तिका म्यूज़ियम बना डाला गया है—सामने खड़ी है।

इस विशाल अलंकारमयी इमारतकी बग़लमें संसार प्रसिद्ध 'हरमिटेज' है। 'हरमिटेज' ज़ारोंके
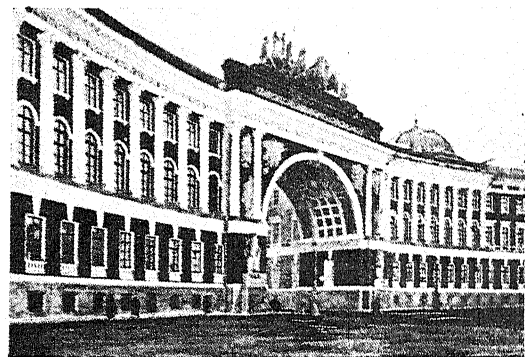
लाल फौजका तोरण और फौजी दफ्तर—लेनिनग्रेड

समयकी प्रसिद्ध चित्रशाला है, जिसे सन् १६१७-१८में जेरर्ड टरवोर्चने बनाया था, और जिसमें अब तक सुप्रसिद्ध फ्रेंच और इटेलियन कलाकारोंकी कृतियाँ सुरक्षित हैं। ज़ारके पुत्र-पुत्रियों और रिश्तेदारोंके महल देखने योग्य हैं। इस प्रकारकी एक इमारत 'पान्ती पैलेस' के सामने एक ख़ूबसूरत बाग़ है। उसमें घासके तख्तोंमें कम्यूनिस्टोंका चिह्न हँसिया और हथौड़ा बना है। यह पार्क ज़ारके महलसे अधिक दूर नहीं है। यहाँपर हज़ारों क्रान्तिकारी मारे गये थे, इसीलिए इसका नाम 'क्रान्तिके शहीदोंका पार्क' रखा गया है।

शहरकी प्रधान इमारतों और पार्कोंको देखकर हम लोगोंने शहरके बाहरी अंचलमें, जहाँ ज़ारका ग्रीष्म-प्रासाद है, एक लम्बा चक्कर लगाया। ज़ारका यह तिमंज़िला खूबसूरत महल वैसा ही खड़ा है, जैसा ज़ारके समयमें था। इसका साज-सामान और फर्नीचर भी ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया है, जिससे दर्शकोंको यह मालूम हो कि बादशाह ग़रीब मज़दूरों और किसानोंके पसीनेकी गाढ़ी कमाईपर कैसे ऐश और अलल्ले-तलल्ले उड़ाते थे।

दोपहरके भोजनका समय बीत चुका था, इसलिए मैं अपनी पथ-प्रदर्शिकाके साथ लौटकर होटल आया और जल्दी-जल्दी खाना समाप्त करके 'ज़ैग' यानी
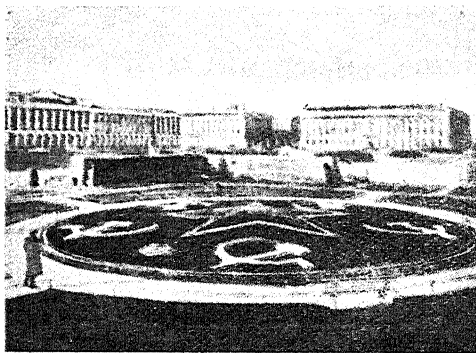
क्रान्तिके शहीदोंका पार्क। घासके तख्तोंपर साम्यवादियोंके चिह्न हँसिये और हथौड़े बने हैं।

शादी और तलाक़की रजिस्ट्रीका दफ्तर देखनेके लिए चला। एक बहुत बड़ी इमारतके दोतल्लेपर एक छोटे कमरेमें यह दफ्तर था। दफ्तरमें दो महिला क्लर्क थीं और चार-पाँच बेंचें पड़ी हुई थीं, जिनपर विवाहके लिए आये हुए वर-वधू बैठते हैं। हम लोग रजिस्ट्रारकी कुर्सीके पास बेंचपर बिठलाये गये। पथ-प्रदर्शिकाने रजिस्ट्रार द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्नों और उनके उत्तरोंका उल्था करके मुझे समझाया।

जो स्त्री-पुरुष विवाहके इच्छुक होते हैं, उन्हें इस दफ्तरमें सुबह सिर्फ दो रूबल जमा करने पड़ते हैं, जिसके बदलेमें उन्हें एक नम्बरवाला टिकट मिलता है। रजिस्ट्री कराते वक्त रजिस्ट्रार बारी-बारीसे इन नम्बरोंको पुकारता है। विवाहार्थी जोड़ा रजिस्ट्रारके सामने उपस्थित होकर अपना पासपोर्ट दिखाता है। नये रूसी नियमोंके अनुसार हर शख्सको स्थानीय पुलिससे अपनी शिनाख्तके लिए यह पासपोर्ट लेना पड़ता है। रजिस्ट्रार अपने रजिस्टरमें वर-वधुके नाम लिख लेता है और उनसे दस्तखत करा लेता है। बस इतनेमें ही सारा काम खत्म हो जाता है और पुरुष-स्त्री शादीशुदा मियाँ-बीबी बन जाते हैं। उनसे केवल यही प्रश्न पूछा जाता है कि उनकी उम्र क्या है और दोनोंमेंसे किसीकी यह शादी दूसरी शादी तो नहीं है। मेरे सामने एकके बाद एक करके अनेक जोड़े आये और विवाह-सूत्रमें बँध-बँधकर चलते बने, न पादरीकी ज़रूरत न काज़ीकी, न बारात न किसी किस्मकी कोई रस्म। रूसमें विवाह करनेमें कुल जमा पाँच मिनट लगते हैं और तलाक़ देनेमें उससे भी कम! कोई भी जोड़ा यहाँ आकर सिर्फ इतना कह दे—"हम दोनों तलाक़ देना चाहते हैं।" बस तलाक़ हो जाता है। तलाक़में यदि मियाँ-बीबी दोनों मौजूद हों तो अच्छा है। अगर दोमें से सिर्फ एक ही आवे, तो दूसरेको एक कार्ड भेज दिया जाता है, जिसमें लिखा रहता है कि उसकी शादी मंसूख हो गई और वह इस बातको अपने पासपोर्टमें दर्ज करा ले। रजिस्ट्रार यह नहीं पूछता कि तलाक़ क्यों दिया जा रहा है और न दुराचार साबित करनेके लिए किसी प्रमाणकी ही ज़रूरत होती है। हाँ, रजिस्ट्रार उनसे यह प्रार्थना कर सकता है कि मियाँ-बीबीका झगड़ा आपसमें तय कर लो तो अच्छा है, लेकिन क़ानूनके अनुसार इसकी भी ज़रूरत नहीं। मुझे वह किताब भी दिखाई गई, जिसमें शादी और तलाक़ सम्बन्धी नोट लिखे जाते हैं, लेकिन मैं उसे कुछ न समझ सका। मैंने रजिस्ट्रारसे पूछा—"कितनी फी सदी शादियोंमें तलाक़ होता है?"

उसने उत्तर दिया—"लगभग ५० फी सदी।"

लेनिनग्रेडकी एक प्रधान सड़क

"इतना अधिक!"—मैंने आश्चर्यसे कहा।

"लेकिन अमेरिकाको देखते हुए"—मेरी पथ-प्रदर्शिका बोली—"यह संख्या कम है।"

एक बहुत उत्सुक जोड़ा आया। उसने मुझसे कुछ पूछा, जिसे मैं समझ न सका। मेरी पथ-प्रदर्शिकाने उसे जवाब दिया और मुस्कराकर मुझसे कहने लगी—"ये पूछते हैं कि आपका क्या नम्बर है?"

मैंने पूछा—"आपने इन्हें क्या जवाब दिया?"

वह बोली—"ये नम्बरहीन हैं!"

एक बहुत कम उम्रका जोड़ा आकर रजिस्ट्रारके सामने उपस्थित हुआ। मियाँ-बीवी लगभग अठारह वर्षकी उम्रके होंगी। रूसमें विवाहकी कम-से-कम उम्र यही है। उसके बाद दूसरा जोड़ा आया, जिसकी उम्र बहुत काफी थी। उनमें मियाँ-बीवी दोनों दूसरी बार शादी कर रहे थे। रजिस्ट्रारने उनसे पूछा कि उनके पहले विवाहकी कोई सन्तान है? उन्होंने नकारमें उत्तर दिया। यदि पहले विवाहकी सन्तान होती है, तो माता-पिताको सन्तानके भरण-पोषणका ज़िम्मेदार होना पड़ता है। लेकिन अन्य ईसाई देशोंकी भाँति यह ज़िम्मेदारी केवल बापके सिर ही नहीं डाली जाती। अगर बाप कुछ पैदा न करता हो, तो सन्तानकी जिम्मेदारी मा पर रहती है। भरण-पोषणके खर्चकी रक़म माता-पिताकी आमदनीपर मुनहसिर करती है। अगर मियाँ-बीबी दोनोंमें से कोई एक इस क़ाबिल न हो कि वह स्वयं अपनी जीविका उपार्जन कर सके, तो वह दूसरेकी आमदनीके एकतिहाई हिस्सेका दावा कर सकता है। मामूली तौरसे तलाक़के बाद बच्चे माके साथ रहते हैं। लेकिन अगर मा बच्चोंके साथ दुर्व्यवहार करती हो, या शराबिन अथवा पतित हो, तो बाप बच्चोंको अपने पास रखनेका दावा कर सकता है। आम तौरसे बच्चों और भरण-

ज़ारका ग्रीष्मप्रासाद—लेनिनग्रेड
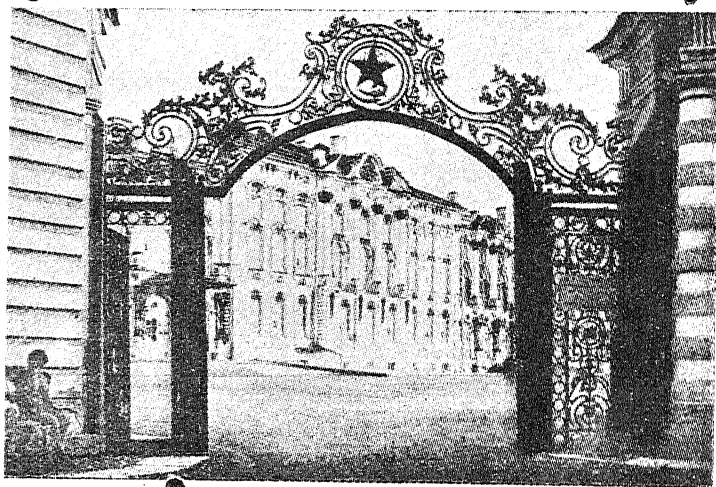
पोषणके सम्बन्धमें तलाक़ देनेवाले पति-पत्नी आपसमें ही समझौता कर लेते हैं। जब उनमें आपसी

समझौता नहीं होता, तभी वे अदालतकी शरण जाते हैं।

रूसमें क़ानूनन यह ज़रूरी नहीं है कि हरएक शादीकी रजिस्ट्री ही कराई जाय। यदि स्त्री पुरुष
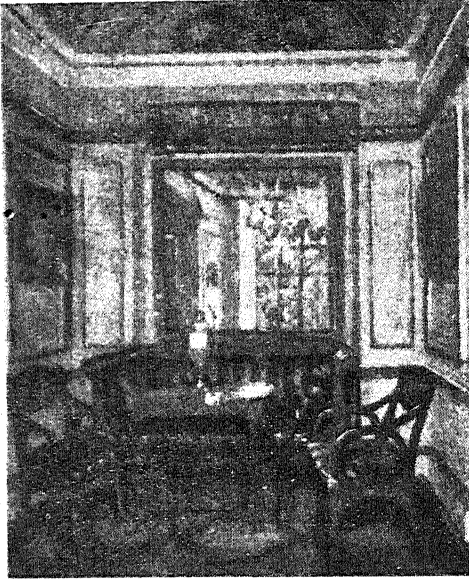
ज़ारका ग्रीष्मप्रसादका एक बैठकखाना

राज़ी हों, तो वे पति-पत्नीके रूपमें रह सकते हैं। इसपर न तो सरकारको ही अपत्ति होती है और न समाज ही नाक-भौं चढ़ाता है। लेकिन जब कभी भरण-पोषणके झगड़े पैदा होते हैं, तब इस स्वतन्त्र विवाहमें बड़ी दिक्क़त पेश आती है। उस दशामें मित्रों और रिश्तेदारोंकी गवाहीपर बच्चेके पिताका निर्णय होता है। यदि वे कहते हैं कि यह व्यक्ति इस स्त्रीके साथ पतिकी तरह रहता था और यह बच्चा शायद इसीका है, तो उसे बच्चेके भरण-पोषणका ख़र्च देना पड़ता है। रूसमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धमें नियमोंमें इतनी अधिक ढिलाई होते हुए भी रूस दुराचारकी भूमि नहीं बना, इसके कारणोंमें शायद ऊपरका कारण भी एक है। जब लोग यह सुनते हैं कि रूसमें कोई भी स्त्री किसी भी पुरुषके साथ बिना रोक-टोकके रह सकती है, तब वे अकसर यही सोचते हैं कि तमाम रूसी स्त्रियाँ वेश्याओंकी भाँति होंगी और तमाम रूसी पुरुष अत्यन्त पतित दुराचारी होंगे। लेकिन वास्तविक अवस्था इससे कोसों दूर है। मुझे तो यही अनुभव हुआ कि यूरोपके अन्य देशवालोंकी अपेक्षा रूसी कहीं अधिक सदाचारी और पवित्र हैं। यूरोपमें हमें क्या दीख पड़ता है? यूरोपके सभी 'सभ्य' देशोंमें स्त्रियाँ ऐसे कपड़े पहनती हैं, जिससे उनकी ओर पुरुषोंका ध्यान आसानीसे खिंच सके। ऊँची सोसाइटीकी दावतों और नाचोंमें स्त्रियोंकी यह चेष्टा रहती है कि वे मर्दोंकी निगाहमें अच्छी जचें और मर्द इस कोशिशमें रहते हैं कि वे स्त्रियोंकी कृपादृष्टि प्राप्त कर सकें। रूसमें इस प्रकार स्त्री-पुरुषोंकी एक दूसरेको फँसानेकी चेष्टा—कुचेष्टा—बिल्कुल नहीं दीख पड़ती। स्त्री-पुरुष साथ-साथ एक ही डब्बेमें—दिनको भी, रातको भी—यात्रा करते हैं। वे नदियों या समुद्र-तटपर साथ-साथ, बहुत थोड़े कपड़े पहनकर, या बिलकुल दिगम्बर, नहाते और धूप खाते हैं, जुलूसोंमें साथ-साथ निकलते हैं; मगर उनमें रत्ती-भर भी काम-सम्बन्धी चेष्टा नहीं दिखाई पड़ती। रूसमें स्त्री-पुरुषका बहकाना बड़ा जुर्म समझा जाता है। रूसियोंके अनुसार प्रेमके जीवनमें सच्चा और ईमानदार होना ज़रूरी है। कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार जब चाहे अपनी पत्नीको तलाक़ दे सकता है, लेकिन यदि यह सिद्ध हो जाय कि नित नया विवाह करना और पुरानी स्त्रीको तलाक़ देना किसीका स्वभाव ही हो गया है तो उसे क़ैदकी सज़ा दी जाती है। यूनिवर्सिटियोंमें युवतियाँ और युवक साथ-साथ एक ही छात्रालयमें रहते, उठते-बैठते, खाते-पीते और गाते हैं। अतः उनमें स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध स्वभावतः ही जटिल होना चाहिए। वे एक दूसरेके कमरोंमें जा सकते हैं, एक दूसरेके प्रेममें बन्ध सकते हैं, पति-पत्नीके रूपमें रहकर बच्चे उत्पन्न कर सकते हैं। इसपर न तो अधिकारियोंको आपत्ति होगी और न उनके

सहपाठियोंको। यदि कोई छात्र या छात्रा वैवाहिक जीवनमें—रजिस्ट्री कराकर या बिना रजिस्ट्रीके—रहना चाहती है, तो उन्हें इसकी अनुमति है। यदि उनके सन्तान उत्पन्न हो, तो माता बच्चेको यूनिवर्सिटीकी शिशुशालामें छोड़कर अपना अध्ययन जारी रख सकते हैं। लेकिन यदि यह मालूम हो जाय कि कोई छात्र या छात्रा कभी-कभी किसीके साथ अपनी कामवासनाकी तृप्ति किया करती है, आपसमें प्रेमका सम्बन्ध नहीं है, तो उसे सज़ा मिलती है। रूसमें प्रेमको पूर्ण स्वाधीनता है, परन्तु कामासक्ति और फुसलाना दूषित और दंडनीय है। यदि कोई स्त्री-या पुरुष अपने साथीको—चाहे वह शादीशुदा पति-पत्नी ही क्यों न हो, किसी दुराचार-सम्बन्धी बीमारीकी छूत लगा दे, तो उसे एक सालकी सख्त क़ैद होती है।

रजिस्ट्रारका काम एक महिला कर रही थी। काम बहुत अधिक था, इसलिए रजिस्ट्रारकी सहायताके लिए एक वृद्धा और आई। मैं और मेरी युवती पथ-प्रदर्शिका रजिस्ट्रारकी मेज़के पास बैठे थे, और शायद एक विवाहार्थी जोड़ेकी भाँति दीख पड़ते होंगे। इस नई वृद्धाने हम दोनोंसे गम्भीरतासे पूछा—"आप लोगोंका नम्बर ?"

इसपर मेरी पथ-प्रदर्शिका ठहाका मारके हँस पड़ी। उसने उल्थाकर वृद्धाका प्रश्न मुझे सुनाया। रजिस्ट्रार साहिबा भी हँसने लगीं। उन्होंने वृद्धाको समझाया कि हम लोग विवाहार्थी नहीं, केवल दर्शक हैं। वृद्धाने पथ-प्रदर्शिकासे मज़ाक करते हुए कहा—"मैं जानती हूँ कि तुम एक दिन किसी-न-किसी भाग्यवान विदेशीकी स्थायी पथ-प्रदर्शिका बनोगी !"

मेरी पथ-प्रदर्शिका बोली—"एक दिन क्यों ? आज ही बना दीजिए।"

मैंने आपत्ति करते हुए कहा—"लेकिन हम लोगोंके पास नम्बरवाला टिकट तो है ही नहीं।"

वृद्धा बोली—"कुछ परवा नहीं। मैं अभी तुम्हें नम्बर देती हूँ। बोलो तैयार हो ?"

मैंने कहा—"मैं पीले रंगका हिन्दुस्तानी हूँ। आपकी साथिन (यानी पथ-प्रदर्शिका) मेरे साथ शादीके लिए राज़ी न होंगी।"

मेरी पथ-प्रदर्शिकाने हँसकर कहा—"अगर मैं राज़ी हूँ, तो क्या आप तैयार हैं ?"

अब तो मैं जालमें फँस गया। रजिस्ट्रारने कहा—'पिछले साल मैंने एक हिन्दुस्तानी युवकका विवाह एक रूसी लड़कीसे कराया था।"
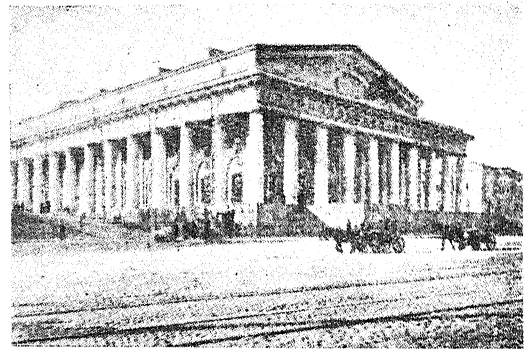
मजदूर विभागका दफ्तर। यह इमारत पहले राजनैतिक क़ैदियोंका क़ैदखाना थी

मैंने मिमयाते हुए कहा—"लेकिन मैं तो विवाहित हूँ।"

मेरी पथ-प्रदर्शिका आश्चर्यमें डूब गई। उसने कहा—"क्या सचमुच आप विवाहित हैं ?"

हम लोग उठकर सड़कपर चले आये। लेकिन मेरी पथ-प्रदर्शिका विवाहके बारेमें मुझे आसानीसे छोड़नेवाली नहीं थी। उसने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी—"आपका विवाह हुए कितने वर्ष हुए ? आपकी स्त्रीकी उम्र क्या है ? क्या वह सुन्दरी है ? आप दोनोंकी कोर्टशिप कितने दिन चली थी ?"

जब मैंने यह बताया कि हमारे यहाँ विवाहसे पहले कोर्टशिप नहीं होती, तो वह आश्चर्यसे हक्का-बक्का-सी रह गई।

"तब फिर आप लोग विवाह कैसे करते हैं ?"

"हमारे माता-पिता हमारे लिए वधू चुन देते हैं...."

"और आप लोग विवाह कर लेते हैं ?"—आश्चर्यसे उसकी आँखें निकल पड़ीं।

कुछ चुप रहकर वह बोली—"इसकी कल्पना भी भयानक है। आप लोग ऐसा करते कैसे हैं ?"

"हमारे यहाँ यही तरीक़ा है—।"

"लेकिन यह तरीक़ा तो बहुत ही रद्दी है। इसे आपको बदलना चाहिए। क्यों ?"

निर्झरिणी*

श्री माधवप्रसाद शर्मा

ठुकरा किस निष्ठुरके उरसे,
यह आह लता द्रवमान हुई ?
किस निर्जनमें शशिके कर-पाशसे,
चंचल नन्हीं-सी जान हुई ?

कबसे तुम कानन हार बनीं,
उर भार सँभारकी बान हुई ?
कर गान रहीं किसकी कविता,
कविसे कबसे पहिचान हुई ?

उस घोर तमिस्र निशामें जहाँ,
मग, शूल लतादिकसे है घनी;
सुन केहरि-व्याघ्र-शृगाल-करी—
रव, नीरव भीत हुई रजनी।

कल-नूपुर-शब्द सुनाती हुई,
अरु छोड़ती मान प्रसून बनी;
करनेको चलीं अभिसार कहाँ,
किससे अनुराग भरी सजनी ?

जब कोयल कूक रसालकी डाल पै,
मस्त हो प्रेम दिवानी हुई;
कमलोंसे परागके माँगनेको,
भ्रमरावलिकी अगवानी हुई।

जब चूम गुलाबी कपोल दिशाके,
प्रभाकरकी मनमानी हुई;
तब उन्मद हो किस प्रेम कहानीसे,
कम्प हुआ घुल पानी हुई ?

नभने शुचि बैंजनी सारी सजी,
वन-देवीने फूल किनारी भली;
शिर माँगमें बाल-दिवाकरके,
सखि लाल सुहागकी श्री मचली।

फिर ऊषासे मंजु महावर ले,
कुसुमोंकी परागसे देह मली;
वर कंत बसन्त मिला फिर क्यों
तन छीन मलीन हो सूख चली ?

पिघला हुआ निर्मम मानससे,
तुम-सा ही कहो उर भार है क्या ?
बनमें शिरशूल-शिला पथसे,
टकराना ही सुस्थिर प्यार है क्या ?

सजनी सुलझा दो मेरी उलझी,
यह पावन प्रेमकी धार है क्या ?
कलगान सुना सुखसे बहके,
ढल जाना ही जीवन-सार है क्या ?

---

* कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) कवि-सम्मेलनमें पठित।

पतिकी खोज

व्रजमोहन वर्मा
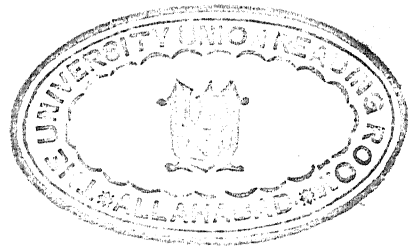
रूसी साम्यवादी लेनिन ज़ारशाहीकी जेलसे छूटकर विदेश पहुँचा। उसकी स्त्री क्रुप्सकाया रूसके ऊफ़ा नगरमें रहती थी। जासूसोंसे बचनेके लिए लेनिनने विदेशसे अपनी पत्नीको चिट्ठी लिखनेका यह ढंग निकाला था कि वह किसी पुस्तकके कुछ शब्दोंके नीचे महीन पेंसिलसे बिन्दु लगाकर उस पुस्तकको ऊफ़ाके एक डाक्टरके पतेसे भेज देता था। डाक्टर उसे क्रुप्सकायाको दे देता था। क्रुप्सकाया अलग काग़ज़पर बिन्दु लगे शब्दोंको लिख लेती थी। इन शब्दोंको मिलकर पढ़नेसे चिट्ठी बन जाती थी।

कुछ समयके बाद क्रुप्सकायाने विदेशमें लेनिनके पास जानेका निश्चय किया। उसने लेनिनको इस बातकी ख़बर दी और ऊफ़ासे चलकर मास्को होती हुई पीटर्सबर्ग पहुँची। वहाँ अपनी माताके रहनेकी व्यवस्था करके क्रुप्सकाया चेकोस्लोवेकियाकी मौजूदा राजधानी प्राग नगरीको—जो उस समय आस्ट्रियन साम्राज्यके अन्तर्गत थी—रवाना हुई, क्योंकि विदेशसे लेनिन जितनी चिट्ठियाँ यानी पुस्तकें भेजता था, वे सब प्राग नगरीसे ही आती थीं और उनपर भेजनेवालेके स्थानमें 'हर मोड्राचेक' का नाम और पता रहता था। क्रुप्सकाया समझती थी कि लेनिन अपनेको जासूसोंकी नज़रसे बचानेके लिए प्रागमें हर मोड्राचेकके नामसे रहता था।

क्रुप्सकाया रूससे रवाना हुई, तो इस ढंगसे मानो कोई अनजान देहाती स्त्री जीवनमें पहली बार विदेश यात्रा कर रही हो। उसने रूसी सीमा पार करके हर मोड्राचेकको एक तार भी दे दिया। जिस समय वह प्राग स्टेशनपर उतरी तो उसे लेनेके लिए कोई भी न आया। वह बहुत देर तक इन्तज़ार करती रही; लेकिन जब इन्तज़ार करते-करते थक गई तो उसने एक गाड़ी किराये की और उसपर अपना ढेर भर असबाब लाद-फांद कर हरमोड्राचेकके घरको रवाना हुई। मज़दूरोंके मुहल्लेकी एक पतली गलीमें एक बड़े घरके दरवाज़ेपर जाकर गाड़ी रुकी। क्रुप्सकाया लोगोंसे पता पूछती हुई मकानके चौथे तल्लेपर एक कमरेके दरवाज़ेके सामने जाकर पहुँची। कमरेकी खिड़कियोंमें गन्दी गद्दियाँ धूपमें लटकी सूख रही थीं। उसने कमरेका दरवाज़ा खटखटाया। एक ठिगनी-सी बूढ़ी चेक स्त्रीने दरवाज़ा खोलकर पूछा—"क्या है?"

क्रुप्सकायाने कहा—"मोड्राचेक हैं?"

"हर मोड्राचेक, देखिये कौन बुलाता है।"—बूढ़ीने पुकारकर कहा।

एक मज़दूर बाहर आया। उसने कहा—"कहिये, मैं हूँ मोड्राचेक।"

क्रुप्सकाया यह देखकर हक्का-बक्का सी रह गई। उसने लड़खड़ाती ज़बानसे कहा—"नहीं, मैं अपने पतिको चाहती हूँ।"

अब क्षणभरके लिए मोड्राचेक स्तम्भित रह गया। कुछ मिनट बाद उसकी समझमें सारी परिस्थिति आ गई।

उसने कहा—"शायद आप हर रिट्टमेयरकी पत्नी हैं। वे तो जर्मनीमें म्यूनिक नगरमें रहते हैं; लेकिन वे मेरी मार्फत आपको ऊफ़ाके पतेपर किताबें बराबर भेजा करते हैं।"

अब क्रुप्सकायाको ज्ञात हुआ कि उसका पति म्यूनिकमें रिट्टमेयरके नामसे रहते हैं।

बात-चीतमें क्रुप्सकायाको मालूम हुआ कि मोड्राचेक एक आस्ट्रियन साम्यवादी है। वह बेचारा दिनभर क्रुप्सकायाके साथ घूमा-फिरा और उसने अपनी हैसियतके अनुसार उसकी ख़ातिर-तवाज़ा भी की।

अब क्रुप्सकाया आस्ट्रियासे जर्मनी—म्यूनिक—के लिए रवाना हुई। म्यूनिक स्टेशनपर उतरकर उसने

सारा असबाब स्टेशनके वेटिंग रूममें छोड़ा, क्योंकि असबाब साथ लेकर पतिकी खोज करनेका कटु अनुभव उसे प्रागमें हो चुका था। इसलिए असबाबके झंझटसे मुक्त हो वह ट्रामपर सवार होकर हर रिट्टीमेयर— यानी अपने पति—की खोजमें निकली।

हर मोड्राचेकने रिट्टीमेयरके मकानका जो नम्बर बताया था, उसे खोजनेपर मालूम हुआ कि वह एक शराबखाना है। खैर, क्रुप्सकायाने उसके अन्दर प्रवेश किया और कटघरेके पास जाकर भीतर खड़े हुए एक मोटे जर्मनसे पूछा— "हर रिट्टीमेयर कहाँ हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं क्या खड़ा हूँ !"

क्रुप्सकायाने टूटे स्वरसे कहा—"नहीं, वे मेरे पति हैं।"

इसे सुनकर बेचारा जर्मन भौंचका रह गया। थोड़ी देर तक दोनों एक दूसरेका मुँह ताकते मूर्ख बने खड़े रहे। इतनेमें रिट्टीमेयरकी स्त्री शराबखानेमें आई। उसने क्रुप्सकाया और अपने पतिको इस विचित्र दशामें देखकर तुरन्त ही सारा मामला भाँप लिया और बोली—"अच्छा, तुम हर मेयरकी स्त्री होगी। उनकी स्त्री साइबेरियासे आने वाली हैं, जिनका वे दो-तीन दिनसे इन्तज़ार कर रहे हैं। चलो मैं तुम्हें उनके पास पहुँचा दूँ।"

वह स्त्री क्रुप्सकायाको लेकर एक मकानके पिछवाड़े हिस्सेमें ले गई, जहाँ एक कमरेमें मेज़पर लेनिन बैठा हुआ था। क्रुप्सकाया पथ-प्रदर्शिकको धन्यवाद देना तो भूल गई, उल्टे क्रोधमें आकर अपने पतिसे बोली— "तुम भी अजीब आदमी हो। तुमने मुझे अपना ठीक-ठीक पता क्यों नहीं लिखा ?"

"पता नहीं लिखा !—मैं तुम्हें देखनेके लिए दिनमें तीन-तीन बार स्टेशन जाता हूँ। तुम कहाँसे टपक पड़ीं ?"

बादमें पता लगा कि लेनिनने अपने गुप्त ढंगसे एक पुस्तकमें अपना ठिकाना अंकित करके उसे ऊफाके डाक्टर साहबकी मार्फत क्रुप्सकायाको भेजा था। लेकिन संयोगवश डाक्टर साहबको वह किताब पसन्द आ गई; अतः उन्होंने उसे क्रुप्सकायाको न देकर स्वयं अपने पढ़नेको रख लिया था !

जीवनमें बहुधा उपन्यासोंकी अपेक्षा कहीं अधिक 'रोमांस' और विचित्रता होती है !

प्रायश्चित्त

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

"सुखिया! अरी, ओ सुखिया! कहाँ मर गई जाकर, चुड़ैल सुनती भी तो नहीं! आने दो आज, कैसी खबर लेती हूँ। लातोंके देव बातोंसे थोड़े ही मानते हैं।"

सेठानीजीका भारी शरीर ग्रीष्मऋतुकी दुपहरियासे भुना जा रहा था। बेचारी पसीनेसे तरबतर थीं। खसकी टट्टियाँ सूखी जा रही थीं, पानी कौन डाले? पंखा भी बन्द, तपिशके कारण प्राणोंपर बनी थी। फिर भी सुखियाने उनका पुकारना नहीं सुना। हाँ, बराबरके कमरेसे हँसते हुए नवकुमारने आकर पूछा—"माताजी! क्या चाहिए, किसपर गुस्सा हो रही हैं?"

"मारे गर्मीके मेरा तो बुरा हाल है, और यह चुड़ैल सुखिया जाने कहाँ मर रही! राम-राम करके आँख लगी, तो यह चुड़ैल चल दी। पंखा करते तो उसके प्राण निकलते हैं।"

"पानी पीने चली गई होगी, व्यर्थ बेचारीको गालियाँ न दो।"

"तुम्हींने पढ़ा-लिखाकर सर चढ़ा लिया है। कामके नामसे उसकी नानी मरती है। उसे चाहिए बनाव-शृंगार और पढ़नेको नाविल। वह समझती है, मैं चमारीसे महारानी बन गई।"

गर्मीके कारण माताजी अत्यन्त विह्वल हो उठी हैं, इस समय सुखियाका पक्ष लेकर झगड़ा ठानना ठीक न होगा, यह अनुभवकर नवकुमार यह कहता हुआ बाहर चला गया—"आप आराम करें, मैं सुखियाको बुला देता हूँ।"

वह सोचने लगा, कैसा अन्याय है! माताजीको दस मिनट पंखा न मिले, तो बेचैन होकर वे सुखियाको गालियाँ देने लगती हैं, और सुखिया दिन-भर धूप-लूसे तपती बरामडेमें बैठी पंखा खींचा करे, पानी पीने भी न उठे! उसके कारण सब मुझसे भी रुष्ट हैं, मैंने "सुखियाको बिगाड़ दिया"। जिसे देखो, वही कहता है—"नीच जातिको पढ़ाना-लिखाना उचित नहीं।" उसकी माँ भी तो मुझे दोष देनेमें नहीं चूकती—"भय्या, हम नीचोंको पढ़-लिखकर क्या करना है? सुखिया अब सयानी हुई, उसे दूसरेके घर जाना है। भोर उठते ही पसेरी-भर पीसना, गोबर पाथना, घास छीलना—यही उसका काम होगा। वह इन पोथी-पत्तरोंको लेकर क्या करेगी?"

परन्तु उसे ऐसी शिक्षा कब मिली है, जो वह कामसे घृणा करे। अब भी तो वह गन्दे-से-गन्दे कार्य हँसते-हँसते कर लेती है। वह सुशिक्षिता है, गोबर पाथकर, नहा-धोकर स्वच्छ हो जाती है, यही क्या उसका बनाव-शृंगार है? साफ़-सुथरा रहना ही क्या उसका दोष है?

नवकुमार अपनी बाल्यावस्थाकी सहचरी सुखियाके सद्गुणोंको मन-ही-मन सराहकर प्रसन्न होता है। उसे कम उल्लास नहीं है। यह उसके ही परिश्रमका तो फल है कि एक चमारकी कन्या पढ़-लिखकर बुद्धिमती बन गई। अन्य व्यक्तियोंकी टीका-टिप्पणी उसे असह्य प्रतीत होती है।

परन्तु नवकुमार! संसार सुखियाको तुम्हारी आँखोंसे क्यों देखने लगा? तुम स्नेहवश भले ही भूल जाओ, संसार जानता है, सुखिया चमारकी लौंडिया—अछूत—है!

[२]

नवकुमारने बाहर जाकर देखा, सुखिया दीवारपर माथा टेके निद्राकी गोदमें मग्न है। एक हाथसे पंखेकी डोरी छूटने-छूटनेको हो रही है, दूसरे हाथसे अधखुली प्रेमचन्दजीकी 'कर्मभूमि' है, जो कल उसने पढ़नेको दी थी। नवकुमारने धीरेसे सुखियाका सर छू दिया। सुखियाने चौंककर आँखें खोल दीं और निद्राके वशीभूत हो जानेसे लज्जित होती हुई छूटती डोरी थामकर पंखा खींचने लगी।

नवकुमारने मुसकराकर कहा—"माताजी क्रुद्ध हो रही हैं कि सुखिया हर समय पढ़ती रहती है, काम नहीं करती।"

सुखिया सकुचाती हुई बोली—"काम तो मैं सब निपटा ही के पढ़ती हूँ। न पढ़ूँ, तो आप क्रुद्ध होते हैं; पढ़ूँ, तो मालिकिन क्रुद्ध होती हैं! मैंने अब निश्चय कर लिया है कि पढ़ना छोड़ दूँगी।"

सुखियाकी आँखें डबडबा आईं। नवकुमार पाश्चात्ताप करने लगा कि व्यर्थ ही यह प्रसंग उठाकर मैंने सुखियाको व्यथित किया। वह आश्वासनके शब्दोंमें बोला—"हट पगली, पढ़ना किसलिए छोड़ेगी? यह बाधाएँ तो सदासे पड़ती आई हैं।

तुम इसी भाँति पढ़ा-लिखा करो, मैं सबसे निबट लूँगा। तुम्हारी अम्मा तो अब कुछ आपत्ति नहीं करती।"

"नहीं, अम्मा कहीं भाषण सुन आई हैं कि अछूतोंका मन्दिर प्रवेश करना और धार्मिक ग्रन्थ छूना या पढ़ना शास्त्रोंमें वर्जित नहीं है। तबसे वह मुझसे पढ़वाकर अत्यन्त चावसे रामायण सुनती हैं; परन्तु भैया! अब मुझे ही शंका होने लगी है; मेरा पढ़ना-लिखना सब व्यर्थ है। समाजमें हम अछूतोंकी क़दर नहीं हो सकती। व्याख्यानदाता और लेखक तो बहुत हैं; परन्तु गांधीजीके समान हृदयसे हमारी दशापर दुखित होनेवाले समाजमें कितने हैं? हमारे प्रति जो घृणाके भाव समाजमें घर कर गये हैं, उनका निकलना कठिन है। भैया, मुझ-सी अधमको तो तुम अन्धकार ही में पड़े रहने देते तो अच्छा था। मैं अपनी दशा प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ। कुछ अनुभव करनेकी बुद्धि न होती, तो हृदयमें आत्म-सम्मानकी अग्नि प्रज्वलित न होती। अब व्यर्थ अपमान सहनेमें भी पीड़ा होती है।"

नवकुमार सर नीचा करके सोचने लगा, ठीक ही तो कहती है, मैं ही अपने शरीरसे आज तक छुआछूतका आडम्बर दूर नहीं कर सका; कदाचित सुखिया यह अनुभव कर दुखित होती है।

[३]

नित्यकी भाँति आज भी सुखिया नवकुमारके कमरेके द्वारपर जाकर बोली—"भैया, अपनी सुराहीका ठंडा पानी थोड़ा दे दो।" और दिन नवकुमार उठता और अपने काँचके गिलासमें पानी लेकर उसके गिलासमें डाल देता। उसकी इस दयासे सुखियाको नाँदके गर्म पानीके स्थानपर ठंडा पानी मिल जाता। आज नवकुमार स्वयं न उठकर कुर्सीपर बैठे-ही-बैठे बोला—"सुराहीसे ले क्यों नहीं लेती?"

सुखिया हँस पड़ी—"आज यह नवीनता क्यों? क्या मेरी कलकी बातपर सफ़ाई दे रहे हैं? एक मेरे हाथका पानी पी ही लिया, तो क्या अछूतोंका उद्धार हो जायगा?" वह बोली—"शीघ्र उठकर पानी दे दो, भैया, नहीं मैं जाती हूँ। मालिकिन क्रुद्ध होने लगेंगी।"

"जब मैं कह रहा हूँ, तो लेती क्यों नहीं, अपने साथ मुझे भी फटकार दिलाएगी क्या?"

"भैया, क्या सच कह रहे हो?"

"और क्या झूठ?"

"मेरे सिवा क्या किसी अन्य चमारके हाथका पानी पीनेमें भी तुम्हें इन्कार न होगा?"

"पानी क्या, खाना भी खा लूँ; शर्त यह है कि तुम्हारे-जैसा ही साफ़-सुथरा हो। इसमें मुझे कभी भी ऐतराज़ नहीं था। केवल अपनी आदतकी वजहसे तुम्हें दूरसे पानी देता था। सुखिया, मेरे अपराधको क्षमा करना। लाओ, एक गिलास जल मुझे भी दे दो।"

हँसकर सुखियाने सुराहीसे पानी गिलासमें ढाल दिया। गिलास हाथमें लेते हुए नवकुमारने देखा—माताजी द्वारपर खड़ी क्रोध-भरी दृष्टिसे उसकी इस हरकतपर घूर रही हैं। फिर भी उसने निश्चिन्ततासे गिलास मुँहमें लगा ही लिया। बेचारा कब तक दूसरोंके भयसे अपनी आत्माका हनन करता।

जैसे बिल्ली कबूतरपर झपटती है, उसी तरह एक छलांगमें कमरेके अन्दर दाखिल हो मालिकिन गिलासपर झपटीं; परन्तु व्यर्थ। ग्लास खाली हो चुका था। शिकार चूक जानेसे उनके क्रोधका पारावार न रहा—"मलेच्छ कहींका! धरम-करम सबका सत्यानाश कर दिया। मैं न जानती थी कि मेरे गर्भसे ऐसा कुलक्षणी उत्पन्न होगा। अपनी बुद्धिके सामने तू मुझे कुछ गिनता ही नहीं। बीस बार कह चुकी हूँ, इस चमारकी छोकरीको मुँह न लगा। अब ऐसे न बनेगा; तेरे पितासे कहकर कुछ इन्तज़ाम करूँगी।"

इस प्रकार वह नवकुमारको ख़ूब डाट-फटकार बताने लगीं। नवकुमार कुछ बोला नहीं, बल्कि हँसता रहा; परन्तु इस हँसीने सेठानीजीकी क्रोधाग्निपर घृतका कार्य किया। दूसरा वार हुआ सुखियापर। जैसे बादलोंका घनघोर समूह जब वृष्टिसे शान्त नहीं होता, तो बर्फ़के गोले उगलने लगता है, इसी प्रकार सेठानीजी गाली-वर्षासे अपनी क्रोधाग्नि शान्त न कर सकीं, तो निर्दयतासे बेचारी सुखियापर घूँसे-मुक्कोंका प्रहार करने लगीं।

अब नवकुमार सहन न कर सका। सुखियाको अलग

हटाते हुए बोला—"व्यर्थमें इस बेचारीको क्यों अपमानित करती हैं ? मैंने अपराध किया है, मुझे दंड दीजिए। बेचारी सुखियाको क्यों गाली देती हैं ?" नवकुमारको भी क्रोध आ गया।

सेठानीजीके कर्कश स्वरका तुमुल नाद घर-भरमें गूँज उठा! घरवालोंके अतिरिक्त मुहल्लेवालोंको भी युद्धके बिगुलका शब्द सुनाई पड़ा। वीर राजपूत योद्धाओंकी भाँति भला वे इस अवसरको हाथसे कैसे जाने देते ? घटनास्थलपर खासी भीड़ एकत्रित हो गई। सभी सेठानीजीके धर्म-विश्वासपर श्रद्धा और नवकुमारके म्लेच्छपनपर क्षोभ प्रकट कर रहे थे। सुखियाकी जननी बुद्धो भी आई, पर और दिनकी भाँति सेठानीजीकी चापलूसीमें उसने सुखियाको फटकारा नहीं। अपमानकी भी तो सीमा होती है। एकमात्र कन्या सुखियापर इस निर्दयताकी मार देख उसका हृदयस्थल वेदनासे कसक उठा। युवा कन्यापर सबके सामने इस प्रकार हाथ चलाना कहाँकी भलमनसी है ? इतना भी विचार नहीं, तो हम चमारोंमें और इन उच्च कुलवालोंमें फरक ही क्या रहा ? फिर अपने लड़केपर क्यों नहीं गुस्सा होतीं ? मेरी लड़कीपर हाथ चलानेका इन्हें क्या अधिकार ? यही न कि मैं इनसे दबती हूँ; कुछ इनके टुकड़ोंके सहारे नहीं हूँ। अपने हाथ-पैरोंकी मशक्कतसे खाती हूँ; क्यों दबूँ ? रानी रूठेंगी, अपना सोहाग लेंगी। जिसकी चाकरी करूँगी, वही रोटी देगा। लड़केको धरम-करमकी सीख देने चली हैं! तनिक अपने सेठजीसे पूछें, कैसा धरम-करम निभाते हैं। कुछ करते नहीं बनता, मेरी लौंडियापर झाड़ उतारती हैं, पर अब मैं भी दिखा दूँगी। सुखिया अनाथ नहीं है, अभी उसकी पाँच हाथकी माँ जिन्दा है। देखूँ, आजसे कौन सुखियाको आधी बात भी कह सके। बीबी रानी! मेरी भलमनसी, जो सदा तुमसे दबकर चलती रही, चाहती तो आज तुम मेरे तलवे चाटतीं। तुम्हारी क्या मजाल थी, जो मेरी इच्छाके विरुद्ध चूँ भी करतीं। मेरी नेकी, जो अपनी गुलाब-सी बिटियासे तुम्हारा पंखा खिचवाती हूँ। चाहूँ, तो आज तुम्हारे लड़केसे बढ़-चढ़कर अपनी लौंडियाका लाड़-लड़ा लूँ; किन्तु मैंने सदा मर्यादाका पालन किया है, वर्ना नीचोंको काहेकी फिकर। नाक तुम्हारे कुलकी जाती, मेरी नहीं।

[४]

माथेपर हज़ारों बल डाले आज असमय ही बुद्धो मालिकके शयनागारमें पहुँची। मदिराका नशा, ऊपरसे गर्मीका प्रकोप, बेचारे सेठजी तोंद सम्हाले निद्रामें मग्न थे। इस समय उनके आराममें खलल डालनेका साहस बुद्धोके सिवा और किसे हो सकता था ? बुद्धो धमसे शय्यापर बैठ गई; बोली—"क्या सो रहे हो ?"

बात करनेकी अनिच्छाका भाव दर्शाते हुए सेठजीने कहा—"हूँ;" पर बुद्धो पिंड छोड़नेवाली कब थी। बोली—"एक बात सुन लो। तुम्हारी दयासे इतनी उमर बड़े चैनसे गुज़री; परन्तु अब गुज़र नहीं दीखता।"

इच्छा न होते हुए भी बुद्धोके रूपका जादू चल गया। इस अधेड़ अवस्थामें भी उसकी बड़ी-बड़ी चमकती आँखोंमें आकर्षण था; उसपर क्रोधने लालीकी कोर लगाकर और भी मनोहरता भर दी थी। सेठजी दृष्टि-भर देखकर मुसकरा दिये; बोले—"खैरियत! आज किसकी शामत आनेको है।"

"हँसी छोड़ो जी, मेरी बातका जवाब दो। मैं तुम्हारी बाँदी हूँ, मार लो, काट लो, सब सह लूँगी, मैंने अपनी इज्ज़त गँवाई है; किन्तु जीते ज़िन्दगी अपनी आँखों सुखियाका अपमान न देख सकूँगी। तुम्हें आज ही इसका उचित प्रबन्ध करना होगा। संसार न जाने तो क्या, मैं तो जानती हूँ कि सुखियाके जन्मदाता तुम हो, तुम्हें छोड़कर और किसके पास उसकी फ़रियाद लेकर जाऊँ।"

इस प्रकार धीरे-धीरे आजकी सारी घटना सेठजीको सुनानेके बाद बुद्धोकी आँखें छलछला आईं। आज सचमुच ही उसका हृदय बड़ा व्यथित था।

सेठजीको अपनी अर्द्धांगिनीसे बुद्धो अधिक प्रिय थी। बुद्धो उनके लिए जीवनकी वह सुनहरी वस्तु थी, जिसे पाकर उन्हें फिर और चाहना न रह गई थी। बीस वर्ष पूर्वकी घटना इस समय उनकी आँखोंके सामने घूम गई—घासका गट्ठर सरपर रखे, फटे कपड़ोंके भीतरसे अपने रूपकी छटा बिखेरती बुद्धो द्वारपर नौकरोंसे गिड़गिड़ा रही थी—"मैं बड़ी ग़रीबनी हूँ, दया करके मेरी घास ले लो। बड़ी दूरसे आ रही हूँ। भगवान जानता है, आज अब तक दाना नसीब नहीं हुआ। घरमें मेरा आदमी बीमार पड़ा है।"

उसकी निर्धनतापर दया करके, या किसी और कारणसे, बुद्धोके आदमीको बुलाकर सेठजीने अपना कोचवान नियुक्त कर लिया। इसके बाद जो हुआ, उसे बतलानेकी ज़रूरत नहीं। सेठजी क्रोधमें भरे यह कहते उठे—"मैं पहले ही मनाकर चुका हूँ, उस बेचारीको कष्ट क्यों देती हो। पंखा खैंचनेवालोंकी कमी नहीं है। नवीनकी माँ इस योग्य नहीं है, जो उनके साथ ऐसा व्यवहार बरता जाय।"

भीतर जाकर सेठजीने सेठानीजीको खासी डाट बतलाई। जो नौबत बीस वर्षसे बुद्धोके कारण आने न पाई थी, आज आकर रही।

[५]

सेठजी तथा बुद्धो चमारिनमें क्या सम्बन्ध है, यह समाजसे छुपा न था। पिताके दुश्चरित्रपर समाजको बहिष्कारकी आवश्यकता प्रतीत न हुई; परन्तु पुत्रके चरित्रपर हुई! कलंक प्रत्यक्ष प्रकट ही था। समाज अपने माथेपर इतना भारी कलंक कैसे लगवा सकता है? खुले खजाने नवकुमारने चमारकी लौंडियाके हाथका पानी पिया! यही नहीं, कुछ और बात भी है, वरन् उसका पक्ष लेकर माँसे झगड़ा क्यों होता? पतित समाज इन अर्थोंके अतिरिक्त दूसरे अर्थ निकाल ही क्या सकता था? सत्यके मार्गपर दृढ़ रहकर किसीके साथ न्याय करना समाजकी दृष्टिमें खटकता है। समाजकी रूढ़िके विरुद्ध कोई भी कार्य, चाहे कैसा ही पवित्र क्यों न हो, स्वीकार नहीं किया जा सकता। हाँ, छुपे-छुपे चोरी करो, डाका मारो, झूठ बोलो, व्यभिचार करो, समाज चूँ भी न करेगा—केवल रूढ़ियोंका पर्दा पड़ा रहना आवश्यक है।

धर्मके ठेकेदारोंका एक डेपूटेशन सेठजीके पास पहुँचा। पंडितजी महाराजसे पायलागन और सबसे यथायोग्य करके सेठजी बोले—"किस कारण आज प्रात: ही आप लोगोंने दर्शन देनेकी कृपा की?"

"धर्मावतारकी जय बनी रहे।" आशीर्वादके साथ ही पंडितजीने डेपूटेशनके आनेका कारण बड़ी दीनतासे कह सुनाया। पंडितजीके स्वरमें स्वर मिलाकर अन्य सभ्य भी बोल उठे—"हमें पूर्ण आशा है, पक्षपातका विचार दूरकर आप धर्मके प्रति उचित न्याय करेंगे। इसी कारण हम लोगोंने स्वयं कुछ निर्णय न कर आप ही को विचाराधीश बनाया है।"

"लड़केसे बड़ी भूल हुई, मैं यह लज्जापूर्वक स्वीकार करता हूँ; परन्तु आप जानते हैं, आजकलके लड़कोंकी हवा ही बिगड़ी हुई है। धर्म-कर्म, छूत-छात वे जानते ही नहीं।"

"अन्नदाता! आपका कहना सत्य है; किन्तु आप ही के घर धर्मपर ऐसा आघात होगा और आप चुपचाप सह लेंगे, तब तो, सरकार, धर्मकी नैया ही डूब जायगी। चारों ओर बड़ी निन्दा हो रही है। यह समाजपर बड़ा भारी कलंक लग रहा है।"

"नहीं महाराज, मैं चुप कैसे रह सकता हूँ? मैंने नवीनको ताड़ना देकर आगेके लिए सावधान रहनेको कह दिया है।"

हँसकर पंडितजी बोले—"यह तो आपने उचित ही किया है; परन्तु जब तक वह छोकरी घरमें रहेगी, लड़केका सुधरना कठिन है, और न बिरादरीवालों ही को विश्वास होगा। हरे कृष्ण! लड़केकी मूर्खता तो देखो, धर्म-कर्मका तनिक विचार नहीं और न यह भय कि कुलमें कलंक लगता है। सरकार, इसका आपने उचित प्रबन्ध न किया, तो लड़केके विवाहमें बड़ी कठिनाई पड़ेगी। कौन अपनी कन्या आपके यहाँ देकर जात-बिरादरीमें कलंकित होगा?"

सेठजी अब डेपूटेशनका आशय समझ सके। उन्होंने स्वप्नमें भी ध्यान न दिया था कि तनिक-सी बात इतनी बढ़ सकती है। नवकुमार-जैसे सदाचारी लड़केके प्रति समाजका यह व्यर्थ उत्पात उठाना उन्हें अच्छा न लगा। क्षणभरको उनकी मुद्रा कठोर हो गई; परन्तु फिर भी वे जिह्वा द्वारा पुत्रके झूठे कलंकका विरोध न कर सके। भय था, यह लोग चिढ़े हुए हैं, कहीं मुझपर ही आक्षेप न कर बैठें; जो गड़े मुर्दे उखड़ने लगें! सेठजी इस प्रकार बात उड़ाते हुए मानो उन लोगोंका तात्पर्य कुछ समझे ही नहीं, बोले—"आप लोगोंको विश्वास न हो, तो मैं नवीनको आपके सम्मुख बुलाकर वचन ले लूँ। और महाराज! भूल-चूक तो सब ही से होती है। आप उचित समझें, तो यज्ञ कराकर उसके इस पापका प्रायश्चित करा दीजिये। चमारके हाथका जल ग्रहण करनेका दोष मिट जायगा।"

सेठजीका निशाना ठीक बैठा। सबकी आँखें हर्षसे चमक उठीं। अछूतोद्धारके पक्षपातियोंको परास्त करनेके लिए उन्हें शस्त्र मिल गया। उल्लासमें सब सेठजीकी वाह-वाह करने लगे। इस प्रस्तावसे पंडितजीकी तो पाँचो घीमें थी। यज्ञ-रचानेमें कुछ उपार्जन भी हो रहेगा। प्रसन्न होते हुए बोले—

"अन्नदाता, यह तो ख़ूब रही, एक पंथ दो काज। लड़केका प्रायश्चित्त करनेसे सनातनधर्मका बोलवाला तो होगा ही और यह गांधीवाले भी जान लेंगे कि सनातनी अपने धर्मसे डिगनेवाले नहीं। आप धार्मिक जगतमें एक महान कार्य करके पुण्यके भागी होंगे। इसी उपलक्षमें एक धर्म-सम्मेलन किया जाय; बनारसके बड़े-बड़े पंडितोंके व्याख्यान हों; कीर्त्तन-मंडलियाँ बुलाई जायँ। इन धर्मकी लुटिया डुबानेवालोंकी आँखें तो खुलें।"

सबने पंडितजीकी हाँमें हाँ मिलाई। सेठजी विजय-गर्वसे मुसकरा दिये—"आप लोगोंकी इच्छा भला मुझे अस्वीकार हो सकती है? आप-जैसे महापुरुष जो करेंगे, उचित ही होगा।"

सभा विसर्जित हुई। भीतर आकर सेठजीने प्रायश्चित्तकी आयोजना नवकुमारको कह सुनाई—"बेटा, दुनियामें रहकर दुनियादारी बर्तनी ही पड़ती है। यों तो क्या मैं नहीं जानता, आजकल छूत-छातका कौन विचार करता है; परन्तु डिंडोरा पीटनेसे क्या लाभ? सुना है, इस घटनाके बादसे तुम अछूतोद्धार-कमेटीमें शामिल होकर काम कर रहे हो! यह लड़कपन छोड़ो। तुम जानते हो, मैं सनातनधर्म-सभाका प्रधान हूँ; शहरमें कितना नाम है; तुम्हारी इन बातोंसे मेरी मान-मर्यादामें धक्का लगेगा।"

"पिताजी, मैं प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा; पर अपने ढंगपर। मैंने कोई पाप नहीं किया है, जो इन बकवादियोंकी कुचक्रनीतिमें फँसूँ।"

"इन बातोंसे यह कलंक और बढ़ेगा। मेरा कहना मानो। देखना, फिर कोई इस विषयपर मुँह खोलनेका भी साहस न करेगा।"

जब नवकुमार सहमत न हुआ, तो सेठजीको क्रोध आ गया। उन्हें उचित-अनुचितका ज्ञान न रहा, जो मुँहमें आया, कह गये।

नवकुमारने निश्चय किया, मेरे कारण इनकी निन्दा होती है, तो मैं घर छोड़ दूँगा; किन्तु झूठे कलंकसे कदापि डरूँगा नहीं।

[६]

"भैया, तुम्हारे बिना मुझसे इस घरमें रहा न जायगा, जहाँ तुम जाओ, मुझे ले चलो।"—सजल नेत्रोंसे निहारते हुए सुखियाने कहा।

"सुखिया बहन, धैर्यसे काम लो। मेरा क्या ठिकाना, भाग्य कहाँ-कहाँ ठोकरें खिलावे।"

"भैया, मेरे लिए तुम घर छोड़ सकते हो, तो क्या मैं तुम्हारे संग विपत्तियोंका सामना नहीं कर सकती? मुझे भी अपने साथ सेवा-कार्यमें लगा लो, तो यह जीवन सफल हो जाय। भैया, तुमने मुझे आशाएँ दी थीं—'पढ़ लो, तब हम दोनों पाठशाला खोलेंगे; तुम लड़कियोंको पढ़ाना, मैं लड़कोंको पढ़ाऊँगा।'—चलो, अब उन आशाओंको पूर्ण करें, ईश्वर हमारी शुभ-कामनाओंमें सहायताकर अवश्य सफलता प्रदान करेगा।"

"परन्तु सुखिया, तुमने यह भी विचारा, हमारे इस पवित्र कार्यसे इस नारकीय समाजमें कैसी खलबली मचेगी, क्या तुम सहन कर सकोगी? सब बातें सुन तो चुकी हो।"

सुखियाका मुख लज्जासे लाल हो गया। उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह दृढ़तासे बोली—"हाँ, भैया, देवतातुल्य भाईके समीप रहकर मुझे इन दुराचारियोंके अपवादोंका किंचित् भय न होगा। हाँ, इस घरमें बिना तुम्हारे साहस खो बैठूँगी।"

"तो चलो सुखिया, तुम्हारे साथ मुझे भी दूना उत्साह मिलेगा। अपनी अम्मासे आज्ञा माँग लो।"

पीछे खड़ी बुढ़ी बोल उठी—"सुखियाके बिना क्या मैं रह सकूँगी? बड़े आदमियोंका धरम मैंने आज जाना, अब मेरा न रहना ही ठीक होगा।"

× × ×

उषाके आगमनका समय था। प्रसुप्त जगतको जाग्रति तथा आशाका सन्देश सुनानेवाला कुक्कुट बोल रहा था। रात्रिके प्रहरी वृक्षोंमें विहंग-बालक जाग रहे थे, और अपने माता-पिताओंके घोंसलोंको छोड़ मुक्ताकाशमें विचरण करनेकी उत्कंठा उनके मनमें सूर्योदयके साथ ही उदित हो रही थी। ऐसे समयमें, निर्जन मैदानमें, तीन प्राणी चले जा रहे थे—शहरकी गन्दी गलियोंसे दूर प्राकृतिक सौन्दर्यका सत्संग करनेके लिए, समाजकी गली-सड़ी कुरीतियोंसे दूर स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेके लिए—उस समाजके पापोंका प्रायश्चित्त करनेके लिए, जो सदियोंसे मनुष्योंके साथ पशुओंसे भी गया-बीता व्यवहार करता आ रहा है, जो वास्तविक गुणोंका तिरस्कार करके दम्भ और आडम्बरकी पूजा करता आ रहा है और जिसने मनुष्यों और मनुष्योंके बीच असमानताकी एक भयंकर दीवार खड़ी कर दी है।

कालिदासकी मालविका

श्री वंशीधर विद्यालंकार

कालिदास ज्योतिषशास्त्रके एक महान पंडित और संस्कृत-भाषाके महान कवि ही नहीं थे, परन्तु वे नाट्यशास्त्रके भी कितने महान आचार्य थे तथा वे नृत्यको अपनी कलामय प्रतिभाकी कुशलता द्वारा कैसी सूक्ष्मता, रसपूर्णता और संगीतमय मृदुतम भावावेशोंके साथ स्टेजपर नचा सकते थे, इसका पता कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' नाटकको पढ़नेसे लगता है। कालिदासकी मालविका मानव-वसन्तके उद्यानकी वह उद्दाम तारुण्यमयी सुकोमल और भुवनमोहिनी लता है, जो ऊपरसे नीचे तक नवविकसित, सुगन्धमय, रंगीन, सुन्दर और आकर्षक फूलोंके गहने पहने, प्रेममय भावोंसे भीनी उन्मत्त वायुके हलके झोंकोंसे हृदयोंकी रंगस्थलीपर अनेक अर्थोंसे ओतप्रोत संगीतपूर्ण इशारों-भरा पूरे ताल और लयके साथ कलामय नृत्य कर रही है। वह ऐसी अवस्थामें रखी गई है, जहाँ वह केवल अपनी स्वरमयी वाणीके द्वारा अपने हृदयके आन्तरिक निगूढ़ भावोंको पूर्णरूपसे प्रकाशित नहीं कर सकती, इसलिए वह अपनी आँख, हाथ, पैर और सारे शरीरकी भावमयी भंगियोंसे अपनी समस्त सहृदयताको कलामय नृत्यसे इशारोंमें मूर्तिमान कर देती है। वाणीकी समाप्ति मनके आन्तरिक भावोंको प्रकाशित और जाग्रत करनेवाले संगीतपर होती है, और जब यही अनन्त स्वरमयी भावपूर्ण शब्दोंकी लहरें अपने-आपको आँख, हाथ, पैर और समस्त शरीर आदिके कलामय मूक परिचालनमें अभिव्यक्त करने लगती हैं, तो नृत्यका प्रारम्भ होता है। इसी नृत्यका सुन्दर मूर्त्तरूप कालिदासकी मालविका है।

साहित्य-दर्पणकारने रसात्मक वाक्यको काव्यके नामसे लिखा है; परन्तु काव्य ही क्यों, हरएक आत्माकी कलाका रसमय होना नितान्त आवश्यक है। वाणी वाक्योंकी बनी होती है, उसमें जब रसमयता आ जाती है, तो काव्य बन जाती है। चित्र रेखा और रंगोंसे बना हुआ होता है, जब उसमें हृदयके भावमय रसकी झलक आ जाती है, तो वह सजीव हो जाता है—उस चित्रमें जैसे आत्माका संचार हो जाता है। संगीतमें ध्वनिका मधुर स्वरमय कम्पन होता है, जब उसमें हृदयके आन्तरिक भाव अपना सम्मिश्रण कर देते हैं, तो उसके अन्दर मनुष्यका हृदय वैसे ही चमकने लगता है, जैसे बादलके पानीकी बूँदोंके समुदायपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे इन्द्रधनुष चमकने लगता है। नृत्य भी आँख, हाथ, पैर और समस्त शरीरकी गतिकी भंगियोंसे प्रकट होता है, और जब उसमें आन्तरिक भाव संचारित होने लगते हैं, तो ऐसा मालूम होता है, जैसे मनुष्यका हृदय स्वयं बाहर आकर अपनी स्वाभाविक मूक भाषामें अपने-आपको प्रकाशित कर रहा है। यदि कवितामें भावमय रस न हो, तो वह एकमात्र शब्दोंका खेल ही प्रतीत होती है; यदि चित्रमें भावपूर्ण मानव-हृदयका सन्निवेश न हो, तो वह केवल रंग और रेखाकी निर्जीव आकृति प्रतीत होती है; यदि संगीतमें मनुष्यके हृदयके रसका सम्मिश्रण न हो, तो मिठास होते हुए भी उसका हृदयस्पर्शी प्रभाव नहीं होता, और यदि नृत्यमें हृदयके भावोंके रसका संचार न हो, तो वह केवल शरीरका हिलना और एक तरहका व्यायामकौशल ही प्रतीत होने लगता है। साहित्य-दर्पणकारने जिस वस्तुको रसके नामसे कहा है, वह मूलमें मनुष्यके हृदयके आन्तरिक भावोंके सिवा अन्य कोई वस्तु नहीं है। जब यही हृदयके भाव अपनेको अपने ही रूपमें शब्दों द्वारा अभिव्यक्त कर लेते हैं, तो कवितामें ऐसी वस्तु उत्पन्न हो जाती है, जो शब्दोंसे ऊपर होती है, जिसे शब्द अपनी सीमाओंमें बाँधकर भी बाँध नहीं सकते, चित्रकी रेखामय आकृतियोंमें जब ये भाव अपने रंगको प्रतिविम्बित कर लेते हैं, तो

वे रेखाएँ अपने अन्दर अपनी सीमासे महान हो जाती हैं। संगीतकी ध्वनियोंमें जब हृदयके भावोंकी स्वरमयी लहरें उठने लगती हैं, तो उन लहरोंमें समुद्रकी लहरों-जैसी असीमता काँपने लग जाती है, और जब नृत्यमें आँखें, हाथ, पैर, कपड़े और समस्त शरीरकी संचालनमयी भंगियाँ हृदयके आन्तरिक भावोंको गतिमान कर देती हैं, तो उस हिलते हुए प्रत्येक आभास-इंगितमें अनन्त भावोंकी झलक दिखाई पड़ने लग जाती है। हृदयके भावमय रसके बिना कोई भी कलामय वस्तु कुछ समयके लिए एक विनोदकी सामग्री हो सकती है; परन्तु वह हमारे मानव-जीवनका किसी तरह एक जीवित और जाग्रत अंश नहीं बन सकती।

अंगरेज़ी भाषाके प्रसिद्ध लेखक कारलाइलने अपने एक प्रबन्धमें लिखा है कि संगीत देवताओंकी भाषा है।[१] ये शब्द उसे इसलिए लिखने पड़े, क्योंकि गानेवालोंको प्रायः सभ्य समाजमें विशेष सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता, और इस कारण सभ्य मनुष्योंकी नज़रोंमें संगीतका महत्त्व भी बहुत ही कम रह जाता है। संगीतको तो फिर भी बहुत-कुछ आदर प्रदान किया ही जाता है; परन्तु नाचनेके साथ तो इस प्रकारके संसर्ग हो गये हैं कि इसका नाम सुनते ही सभ्य समाजके शिष्ट पुरुष एकदम नाक-भौं सिकोड़ने लग जाते हैं। 'नृत्य' को आदरकी दृष्टिसे देखना तो दरकिनार, उसका नाम सुनते ही हृदयमें एक प्रकारका अवर्णनीय संकोच उत्पन्न हो जाता है, मानो यह शिष्ट जनोंके विचारमें लानेके योग्य भी वस्तु नहीं है! महाकवि कालिदासको शायद इसीलिए नाट्याचार्य गणदासके मुखसे कहना पड़ा है[२]—"ऋषि कहते हैं कि नाट्य देवताओंका सुन्दर चाक्षुष यज्ञ है। यदि संगीत देवताओंकी भाषा है, तो नृत्य देवताओंकी आँखोंका सुन्दर यज्ञ है।" इससे आगे भी बढ़कर कालिदास जो कुछ कहते हैं, उसका आशय है कि भगवान महादेव स्वयं नृत्य करते हैं। इस प्रकार वे नृत्यकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

हमारे यहाँ जितने उपवेद थे, उनमें एक 'नाट्यवेद' भी था। इस 'नृत्य' की महत्ता इसीसे समझनी चाहिए कि इसे वेदके नामसे कहा गया। फिर इस वेदकी रचना कैसे हुई, इसके विषयमें संस्कृतके ग्रन्थोंमें लिखा है—

"सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं, सर्वशिल्पप्रदर्शनम्,
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं, सेतिहासं करोम्यहम्।
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्,
नाट्यवेदं ततश्चक्रे, चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥"

"मैं सर्वशास्त्रोंके अर्थसे युक्त, समस्त कलाओंके प्रदर्शन करनेवाले नाट्यशास्त्रकी, उसके पूरे इतिहासके साथ, रचना करता हूँ।" इस प्रकार भगवानने संकल्प करके सब वेदोंको स्मरणकर चारों वेदोंसे नाट्य-वेदको उत्पन्न किया। फिर नाट्यशास्त्रका फल कितना महान लिखा गया है—

"प्रयोगं यश्च कुर्वीत, प्रेक्षते चावधानवान्
या गतिर्वेदविदुषां, या गतिर्यज्ञयाजिनाम्।
या गतिर्दानशीलानां तां गतिं प्राप्नुयान्नरः॥"

"जो इसका प्रयोग करता है और जो इसे ध्यान-पूर्वक देखता है, उन दोनोंको वही गति प्राप्त होती है, जो वेदज्ञों, यज्ञ करनेवालों और दानियोंको प्राप्त होती है।" इन उपर्युक्त पंक्तियोंसे यह मालूम हो सकता है कि प्राचीनकालमें नृत्यका कितना बड़ा माहात्म्य था; परन्तु इस समय नृत्यशास्त्रका न केवल बहुत-कुछ लोप हो गया है, वरन महत्त्व भी, कम-से-कम हमारे देशमें तो, बिलकुल नहींके बराबर रह गया है।

किसी वस्तुकी कम्पनशील गतिका चित्र कोई बड़ा कुशल, सिद्धहस्त चित्रकार ही ले सकता है। इसी प्रकार नृत्यको अपनी वाणीके फ़ोकसमें बन्द करके उसके कलापूर्ण इशारोंका चित्र अपने शब्दोंके पटपर कोई सूक्ष्म प्रतिभासम्पन्न महान् कवि ही ले सकता है।

---

१ Music is the language of gods.

२ देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषम्,
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा॥

महाकवि कालिदासने मालविकाके नृत्यका अपनी वाणीमें ऐसा सुन्दर और ठीक चित्र खींचा है कि ऐसा मालूम होता है, मानो मालविका वाणीरूप होकर स्टेजपर स्वयं नृत्य कर रही है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानोंने मालविकाग्निमित्र नाटकके विषयमें यह सम्मति दी है कि यह नाटक उस महाकवि कालिदासका नहीं हो सकता, जिसने रघुवंश, मेघदूत, शकुन्तला नाटक आदि पुस्तकें लिखी हैं। जो विद्वान इसे कालिदासका मानते भी हैं, वे भी इसे एक बिल्कुल मामूली कोटिका ही नाटक समझते हैं। बहुतसे भारतीय विद्वानोंने भी उनकी इस "हाँ"में "हाँ" मिला दी है। इसका कारण वे यह बताते हैं कि यह कालिदासका पहला नाटक था, इस कारण इसमें यदि उनकी लेखनीकी चमत्कारपूर्ण विशेषताएँ नहीं मिलतीं, जो उनकी पिछली अवस्थामें लिखे हुए नाटकोंमें और दूसरे काव्योंमें मिलती हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। अमेरिकाके प्रोफेसर आर्थर डब्ल्यू० राइडर (Prof. Arther W. Rider) इस नाटकको कालिदासका लिखा हुआ तो मानते हैं, परन्तु इसे वह कुछ विशेष महत्व नहीं देते। वे लिखते हैं कि "इस नाटककी रूप-रेखा (Plot) में कोई मौलिकता नहीं है, और न इसमें मनोभावोंकी गहराई है।[१]"

हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि इन विद्वानोंने किस प्रकार उपर्युक्त बातें लिख डाली हैं। इस नाटकमें वे सब विशेषताएँ विद्यमान हैं, जो कालिदासकी अन्य रचनाओंमें पाई जाती हैं। भला, कभी ऐसा भी हो सकता है कि सूरजकी एक किरण हो और वह पहचानी न जाय कि वह सूरजकी है और फिर उसमें वह प्रकाश न हो कि उसके सामने संसारकी समस्त ज्योतियाँ फीकी मालूम न पड़ने लग जायँ। इस नाटकमें कालिदासकी वही चमत्कारपूर्ण वर्णनशैली, वही व्यंग्यपूर्ण मधुर हास्यप्रियता, वही सूक्ष्म रीतिसे वस्तुओंका और आन्तरिक मनोभावोंका संगीतमय, सरल शब्दचित्रण, वही कलापूर्ण रसमयता दृष्टिगोचर होती है, जो एकमात्र उन्हींके काव्योंमें पाई जाती है। इस नाटककी कई पंक्तियाँ सर्वसाधारणमें प्रचलित होकर अमर हो गई हैं।

आज हमें जो वस्तु बिलकुल साधारण प्रतीत होती है, क्योंकि वह सर्वसाधारण-सी हो गई है और इसीलिए जिसमें कोई आकर्षण-योग्य विशेषता नहीं दीखती, वह वस्तु जब पहले-पहल मानव-हृदयोंके सामने आती है, तो उसमें कितनी नवीनता और उत्सुकतापूर्ण विस्मय होता है। आज ये पाश्चात्य विद्वान इस नाटककी जिस रचनाशैलीमें किसी प्रकारकी नवीनता नहीं अनुभव करते और कहते हैं कि यह तो एकमात्र परम्परागत (Conventional) है,[२] वही जब पहले-पहल सभ्य समाजके सम्मुख आया होगा, तो इसमें न केवल अद्भुत नवीनता, अपितु कल्पनाशक्तिकी सूक्ष्मताका भी विस्मयपूर्ण परिचय मिला होगा। यहाँ विचारणीय बात यह है कि इस तरहके सूत्रको कविने किसी अन्य नाटकसे या ग्रन्थसे लेकर लिखा है? यदि उसने इस सूत्रको कहींसे लिया है, तब तो इसे परम्परागत कहा जा सकता है; परन्तु यदि यह समस्त बाह्य रूपरेखा उसकी अपनी कल्पना है, तो उसका परम्परामें परिणत हो जाना इस सूत्रकी विशेषताको प्रमाणित करता है। विद्वान समालोचक बहुत अनुसन्धान करके भी यह नहीं पता चला सके कि इस नाटकके लिए कथाकी बाह्य रूपरेखा कविने कहाँसे ली है। बहुतसे इसमें से इतिहासकी बातें निकालते हैं; परन्तु यह सिद्ध करना कठिन है कि इसका सूत्र कविने किस प्राचीन ग्रन्थसे लिया है। कालिदासने अपने दूसरे नाटकोंकी कथाकी बाह्य रूपरेखा पुराणों और महाभारतसे ली है। यदि इस

१ The play......shows no originality of plot, no depth of passions.

२ Criticism of the large outline of this plot would be quite unjust for it is completely conventional. (इस नाटककी विस्तृत बाह्य रूपरेखाकी आलोचना करनी बिलकुल ठीक नहीं होगी, क्योंकि वह पूर्णरूपसे परम्परागत है।)—Arther, W. Rider.

नाटकका आधार इतिहासकी घटनाओंको मान लिया जाय, तो इसमें यह भी बड़ी नवीनता प्रमाणित होगी, और यदि यह नहीं है, तो फिर हमें यही मानना पड़ेगा कि इस सूत्रकी कल्पना कविकी अपनी है, और उसका परम्परारूपमें परिवर्तन हो जाना उसकी आकर्षणमयी विशेषताको स्वयमेव सिद्ध करता है। फिर यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि कविने इस सूत्रको परम्परासे लिया है,[1] तो भी हमें यह देखना पड़ेगा कि क्या उसने अपनी विशिष्ट प्रतिभा द्वारा उसके अन्दर वह रसमय सजीवता, जो कविकी सर्वथा अपनी ही है, उत्पन्न नहीं कर दी है? लिखनेके विषय वही प्रतिदिनके होते हैं, वही वस्तुएँ होती हैं, वही सूत्र होते हैं; परन्तु यह कविकी अपनी विदग्ध रसमयी वर्णनशैली होती है, उसका अनुभव करके प्रकाशित करनेवाला अपना हृदय होता है, उसकी अपनी कलापूर्ण रहस्यमयी प्रतिभा होती है, जो उसमें आकर्षक नवीनताको उत्पन्न कर देती है, और उन विषयों, वस्तुओं और सूत्रोंको हर तरहसे कविका ही बना देती है।

इस नाटकमें दो महान पंडितोंका एक दूसरेसे विद्यामें अपनेको बड़ा सिद्ध करके दिखानेका दृश्य, वसन्तके दिनोंमें अशोक वृक्षको युवतियोंके पैरोंसे ठोकर मारनेका, उसके पुष्पित होनेका और ठोकर मारनेवाले पैरोंके श्रृंगार किये जानेका दृश्य, इरावतीके ईर्ष्यायुक्त सपत्नी हृदयका व्यंग्यपूर्ण रसमय परिदर्शन, राजा अग्निमित्रकी चातुर्यपूर्ण झेंप, विदूषककी परिहासशील बुद्धिका पटुत्व और सूक्ष्मता तथा अन्तमें रानीका स्वयं ही मालविकाको विवाहके लिए प्रस्तुत करना—सब दृश्य बड़ी सूक्ष्म, रसमयी, सजीव और सुन्दर प्रतिभासे बड़ी मार्मिकतासे चित्रित किये गये हैं। अन्तमें रानीका स्वयं ही मालविकाको विवाहित कराना कविवर विहारीलालके निम्न-लिखित दोहेकी याद दिला देता है—

"मानहुँ मुँह-दिखरावनी, दुलहिंहि करि अनुराग,
सासु सदन, मन ललन हूँ, सौतिन दियो सुहाग।"

यहाँ 'मुँह-दिखरावनी' में नहीं, परन्तु अपने प्रियतमको प्रसन्न करनेके लिए रानीने अपने 'सुहाग' को मालविकाको दे दिया है।

परन्तु सारे नाटकमें हमें सबसे सुन्दर दृश्य द्वितीयांकका मालूम होता है। इस दृश्यमें कविने मालविकाके नृत्यका परिदर्शन कराया है। यह दृश्य इतना सुन्दर है, इतना सजीव है और फिर उसमें इतनी अपूर्व नवीनता है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाय, उतना ही अधिक रसमय प्रतीत होता है। नृत्य पढ़नेकी वस्तु नहीं है, और यद्यपि कविने उसको अपने गहरे कला-कौशलसे वैसा ही ठीक वाणीमें चित्रित करनेका प्रयत्न किया है, तो भी जब आँखोंके सामने वह नृत्य वैसा ही प्रयोग रूपमें उपस्थित हो जाय, तब यह अनुभव हो सकता है कि उस महाकविने इस नाटकके अन्दर देवताओंके देखने योग्य किस अपूर्व सुन्दर चाक्षुष यज्ञकी सृष्टि कर डाली है। हमें तो कई बार अनुभव होता है, जैसे कविने इसी दृश्यको मुख्यतया प्रदर्शित करनेके लिए इस नाटककी सृष्टि की है। शायद द्वितीय अंकमें मालविकाके नृत्यको देखनेके बाद कवि विदूषकके मुखसे स्वयं कह रहा है—

"न केवलं रूपे शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका"

मालविका केवल स्वरूपमें ही नहीं, परन्तु शिल्पमें भी अद्वितीय है। यही शब्द इस नाटकके विषयमें भी कहे जा सकते हैं—अर्थात् मालविकाग्निमित्र नाटक केवल सुन्दरतामें ही नहीं, शिल्पमें भी अद्वितीय है। राजा अग्निमित्र मालविकाके नृत्यको देखकर कहता है—

"अव्याजसुन्दरीं तां विज्ञानेन ललितेन योजयता,
परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदग्धः॥"

---

१ हमने यहाँ सूत्र शब्दको Plot के अर्थोंमें प्रयुक्त किया है। सूत्रका अर्थ धागा या समूह भी होता है। नाटकके पारिभाषिक शब्दोंमें इसका अर्थ बहुत विस्तृत हो सकता है। अलंकार ग्रन्थोंमें सूत्रका लक्षण निम्न-लिखित है—"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते"। नाटकके उपकरण आदिको सूत्र कहा जाता है।
—लेखक।

"इस अव्याज सुन्दरीके साथ इस ललित-कलाका सम्मिश्रण करके मानो विधाताने कामदेवके फूलोंके तीरको ज़हरसे बुझा हुआ बना दिया है।" 'फूलोंका तीर और वह भी ज़हरसे बुझा हुआ' मालविकाका इससे सुन्दर वर्णन नहीं हो सकता[१]। आजकल हम प्रायः पढ़ते हैं कि किसी नाटककी पात्रिका (Actress) या नर्तकीसे किसी बड़े सम्पन्न धनी पुरुषने उसके अनुपम सौन्दर्य और ललित-कलापर मुग्ध होकर विवाह कर लिया। अग्निमित्र-जैसे महाराजाका एक नर्तकीसे उसके अद्वितीय सौन्दर्य और नृत्यपर मुग्ध होकर विवाह करनेके लिए उत्सुक हो उठनेका चित्र कालिदासने अपने इस नाटकमें अंकित किया है—मानो राजाके महत्त्व द्वारा जैसे कविने नृत्यके महत्त्वपर मुहर लगा दी है। यद्यपि पीछेसे पाँचवें अंकमें यह मालूम हो गया है कि मालविका राजघरानेकी है, तो भी राजा तो इसका ज्ञान होनेसे पहले ही उसे अपने दिल और आत्माका प्रदान 'पंचवाणकी अग्निको साक्षी' करके दे चुका है।

मालूम होता है कि भारतवर्षमें विदर्भ देश अपने सौन्दर्य और कलामय गुणोंसे किसी समय अवश्य प्रसिद्ध रहा होगा। राजा नलकी पत्नी दमयन्ती इसी देशकी रहनेवाली थी। महाराज श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणी भी इसी देशकी थी। इक्ष्वाकुवंशके प्रसिद्ध राजा रघुके पुत्र अजकी पत्नी इन्दुमती भी इसी देशकी थी और कालिदासकी यह सर्वांग-सुन्दरी, "यह ज़हर बुझा फूलोंका तीर", भी इसी देशकी रहनेवाली थी। कई लोग मालविका नामसे यह तात्पर्य निकालते हैं कि वह शायद मालव देशकी रहनेवाली थी; परन्तु यह तो पाँचवें अंकमें स्पष्ट पता लग जाता है कि मालविका विदर्भ देशके राजाकी चचेरी बहिन थी। फिर इसी अन्तिम अंकमें मालविकाका शृंगार भी विदर्भ देशकी रीतिसे किया गया है, जिसका वर्णन पढ़नेसे यह मालूम होता है कि वहाँके शृंगारमें कुछ विशेष सौन्दर्य था। पाँचवें अंकमें विदूषक राजासे कह रहा है कि रानीने पंडित कौशिकीसे कहा—

"भगवति! यत्त्वं प्रसाधनगर्वं वहसि तद्दर्शय मालविकायाः शरीरे वैदर्भं विवाहनेपथ्यम्। तया च सविशेषालंकृता मालविका।"

अर्थात्—'श्रीमतीजी, आपको यदि सजानेका, शृंगार करनेका बड़ा अभिमान है, तो मालविकाको विदर्भ देशकी रीतिसे विवाहके कपड़े पहनाकर और सजाकर दिखलाओ।' और उसने बड़ी सुन्दरतासे मालविकाको अलंकृत किया है। इसकी टीका करते हुए राजा काटयनेम लिखता है—

"विदर्भ देशीयानां प्रसाधनविधौ प्रसिद्धत्वात्।" अर्थात्—'विदर्भ देशके निवासियोंके सजानेका, शृंगार करनेका तरीका प्रसिद्ध है।' इसके सिवा संस्कृत भाषामें लिखनेकी एक शैलीको "वैदर्भी रीति" कहते हैं। इस रीतिका लक्षण साहित्य-दर्पणके लेखकने निम्न प्रकार किया है—

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचनाललितात्मिका,
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते॥"

मधुर वर्णोंवाली, सुन्दर, समाससे रहित या छोटे-छोटे समाससे युक्त रचनाको 'वैदर्भी रीति' कहते हैं। शायद संस्कृतकी इस रचनाशैलीका भी विदर्भ देशसे प्रादुर्भाव हुआ होगा।

इस विदर्भ देशकी अद्वितीय सुन्दरीके नृत्यका दृश्य द्वितीय अंकमें बड़ी मार्मिकतासे दिखलाया गया है।[१] प्रेक्षा-गृहमें एक ओर राजा, विदूषक, रानी और उसका परिवार बैठा हुआ है, और दूसरी ओर बाजा बज रहा है और नाट्यके दोनों आचार्य, जिन्हें कवि "मूर्तिमान् भाव" कहता है, विद्यमान हैं। नृत्यकी

१ 'ज़हर बुझा फूलोंका तीर' ये शब्द कितने सुन्दर और भावमय हैं। इन्हें महाकवि कालिदास ही लिख सकते थे। कविवर विहारीलालकी कविताको "नावकके तीर" कहा जाता है। महाकवि कालिदासकी कविताओंको "ज़हर बुझे फूलोंके तीर" कहना बिलकुल उपयुक्त होगा। —लेखक

१ प्रेक्षा-गृह शब्दका कविने स्वयं प्रयोग किया है। क्या इस शब्दका सिनेमाके लिए व्यवहृत किया जाना उपयुक्त न होगा?—ले०

परीक्षा करनेके लिए संसार-विरक्त परिव्राजिका पंडित कौशिकीको निर्णायक चुना गया है।[2] एक परिव्राजिकाको नाचनेका निर्णायक चुनकर मानो कविने नृत्यकी निर्दोषताको प्रमाणित कर दिया है। प्रत्येक नाट्याचार्य अपने पात्रके द्वारा यह दिखाता है कि वह नृत्यशास्त्रका कितना बड़ा ज्ञाता है। इस नृत्यके लिए अंग-सौष्ठवकी, अंगोंके ठीक-ठीक अनुपात (Proportion) में होनेकी तथा सुन्दर रीतिसे बने हुए होनेकी आवश्यकताको बताया गया है। नृत्यशास्त्रमें से 'चलित' नृत्यका परिदर्शन कराया जाता है, क्योंकि 'चलित' नृत्य ही सबसे अधिक कठिन समझा जाता है। "चतुष्पदोद्भवं चलितं दुष्प्रयोज्य मुदाहरन्ति।" इस नृत्यमें नाचनेवाला अपने शरीर, वाणी, कपड़े, सात्विक पसीने आदिके इशारोंसे दूसरोंके मनोभावोंका प्रदर्शन करता हुआ अपने हृदयके भावोंका परिदर्शन करा देता है। इसको संस्कृत भाषामें 'छलिक' भी कहते हैं। मालविकाने इसी 'चलित' नृत्यका परिदर्शन कराया है।

नृत्य करनेसे पहले वह 'उपगान' करती है और फिर गाती है—

"दुर्लभः प्रियस्तस्मिन् हृदय भव निराशम्,
अहो अपांगको मे स्फुरति किमपि वामः।
एष स चिराद् दृष्टः कथमुपनेतव्यो,
नाथ मां पराधीनां त्वयि गणय सतृष्णाम्॥"

मालविकाने संस्कृतका नहीं, परन्तु प्राकृत भाषाका गीत गाया है। हमने उसका यहाँ संस्कृत रूप लिखा है। इसका अर्थ यह है—"प्यारेका मिलना कठिन है, इसलिए हे हृदय, तू निराश हो जा। ओह, हैं! मेरी बाईं आँख क्यों फड़क रही है? मैंने अपने प्यारेको बहुत दिनोंके बाद देखा है। मैं इसके पास कैसे जाऊँ? हे नाथ! मैं पराधीन हूँ। मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकती, परन्तु तुम मुझे अपनेको चाहनेवाली समझना।"

इसके बाद वह इस गीतके वचनोंके रसके अनुसार नृत्य करती है। हम न संगीतको जानते हैं और न नृत्यको; परन्तु इस श्लोककी रचना कुछ ऐसे शब्दोंमें हुई है, जैसे हमें इसमें इस नृत्यकी झाँकी-सी दिखलाई पड़ जाती है, जो मालविकाने अभिनय करके दिखाया है। इसमें पहली पंक्तिमें 'निराशा' हो रही है, दूसरी पंक्तिमें एकदम 'आशा' फड़क रही है और तीसरी पंक्तिमें मिलनेकी अभिलाषाका प्रश्न खड़ा हो गया है और लाचारी सामने आ जाती है। इसपर भी वह फिर अपनी 'चाह' के दर्शन करा देती है। इन विरोधी भावोंके अन्दर मालूम होता है कि मालविकाने अपने नृत्यके द्वारा एक सामंजस्य पैदा कर लिया होगा।

जब इस नृत्यकी विवेचना परिव्राजिका पंडित कौशिकीने की, तब मालूम होता है, जैसे इस नृत्यका विश्लेषण करते हुए और उसके वास्तविक

---

२ परिव्राजिका पंडित कौशिकीको बहुतसे विद्वानोंने बौद्धधर्मावलम्बी (Buddhist Nun) लिखा है। बहुत खोज करनेपर भी हमें यह पता नहीं चला कि यह धारणा कैसे प्रचलित हो गई। इस सारे नाटकमें पंडित कौशिकीके चरित्रसे यह कहीं अभिव्यक्त नहीं होता कि वह बौद्धभिक्षुणी थी। उसने एक बार भी कहीं बौद्धभिक्षुओंकी तरह बुद्धका नाम नहीं लिया। अन्य संस्कृत नाटकोंमें जब बौद्धभिक्षु आता है, तो वह बुद्धको नमस्कार और बुद्धकी स्तुति करता हुआ आता है। बौद्धभिक्षु प्राकृतमें बोलते हैं; परन्तु यह परिव्राजिका हमेशा संस्कृतमें बोलती है। फिर कालिदासने कौशिकीको "आर्य कौशिकी, पंडित कौशिकी और साक्षात् अध्यात्म-विद्या आदि आदरपूर्ण शब्दोंसे सम्बोधित किया है। इस नाटकके टीकाकार राजा काटयनेमने भी अपनी टीकामें यह कहीं नहीं लिखा कि वह बौद्धभिक्षुणी थी। पंचम अंकमें पंडित कौशिकीने जब अपना पूरा परिचय दिया है, तो उसने केवल इतना ही कहा है कि मुझे अपने भाई आर्य सुमतिकी मृत्युसे बड़ा दुःख हुआ और मेरे हृदयमें विधवापनका दुःख फिर जाग उठा, इसलिए मैंने विरक्त होकर कषाय वस्त्र पहन लिए। राजाने इसके उत्तरमें यह कहा है कि ठीक है, सज्जनोंका यही मार्ग है। कौशिकीने कहीं भी यह नहीं कहा कि वह बौद्ध हो गई। केवल कषाय वस्त्रसे इस बातकी कल्पना करना कि वह बौद्ध हो गई थी, हमें ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि हमारे यहाँ संन्यासी इसी रंगके कपड़े पहनते थे। संस्कृत ग्रन्थोंमें विधवा स्त्रीको "कषायवसना" कहा गया है। "काषाय वसनाधवा"। हमें कौशिकीके समस्त चरित्रको पढ़नेसे यह कहीं नहीं मालूम होता कि वह बौद्धभिक्षुणी थी। हमारी तुच्छ सम्मतिमें यह समालोचकोंकी अपनी ही कल्पना है। —लेखक

शास्त्रीय रूपका परिदर्शन कराते हुए कविने मालविकाके उस सुन्दर नृत्यके चित्रको शब्दोंमें अंकित कर दिया है। परिव्राजिका पं० कौशिकी कहती हैं—

"अंगैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ,
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबन्धः स एव॥"

"आँख, हाथ, पैर आदि शरीरके अंगोंने, जिनके अन्दर वाणी समाई हुई थी (जो इशारोंमें वाणीसे बोल रहे थे), हृदयके अपने आशयको अच्छी तरह सूचित कर दिया। पैरोंका रखना ठीक लयके अनुसार था, और भिन्न-भिन्न रसोंमें पूरी तन्मयता थी—अर्थात् वह जिस रसका अभिनय करती थी, उस रसकी वह साक्षात् जीवित मूर्ति दिखाई देती थी। हाथोंकी गति अत्यन्त सुकुमार थी, और जैसे-जैसे एक भावके रसके अभिनयके बाद दूसरे भावके रसका अभिनय होता था, तब पहले भावके स्थानपर पूरी स्वाभाविकतासे दूसरा भाव आकर मूर्तिमान हो जाता था। प्रत्येक भाव अपनेको बढ़-चढ़कर नृत्यके इशारोंमें अभिव्यक्त कर रहा था, और चित्तका आनन्दमय एकरस होना सब भावोंमें वही रहता था। यद्यपि भिन्न-भिन्न भावोंके अभिनयमें परिवर्तन हो जाता था, परन्तु चित्तके आनन्दमें लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं होता था। पहले भावके अभिनयमें जैसा आनन्द अनुभव होता था, वैसा ही आनन्द दूसरे भावोंके अभिनयके समय अनुभव होता था। मालविकाने अपने शरीरके अंगोंके परिचालनसे हृदयके भावोंका कैसा अपूर्व अभिनय किया है।

उपर्युक्त श्लोकका पूरा और ठीक-ठीक अर्थ तो नृत्यशास्त्रका कोई आचार्य ही स्वयं अच्छी तरह समझ और समझा सकता है; परन्तु इतना तो स्पष्ट समझमें आ सकता है कि जिस नृत्यका परिव्राजिका पंडित कौशिकीने ऐसा अनुपम वर्णन किया है, वह स्वयं क्रियात्मक रूपमें कितनी गहराईसे अपने-आपको प्रकाशित करनेवाला होगा। इस श्लोकमें कालिदासने नृत्यका मानो स्वयं भावमय नृत्य करता हुआ चित्र खींच दिया है।

वैसे तो प्रत्येक नाटकमें प्रायः नाच हुआ ही करते हैं; परन्तु ये नाच न केवल प्रयोजनहीन और व्यर्थ होते हैं, अपितु उनसे जनताकी रुचिपर बुरा अनभिलषित असर पड़ता है। इन नृत्योंमें बहुत ही कम ऐसे नृत्य होते हैं, जिन्हें नृत्यशास्त्रके दूर व्यापक अर्थोंमें किसी तरह खींचकर भी नृत्यके नामसे कहा जा सके। ऐसे ही नृत्योंसे नृत्य शिष्ट समाजमें उस आदरको नहीं प्राप्त कर सका, जो अन्य कलाओंको प्राप्त हो गया है। इन नृत्योंमें केवल शरीरका ही नृत्य होता है, हृदयके भावोंके नृत्यका अभिनय नहीं। मालविकाके इस नृत्यमें और इन नृत्योंमें वही अन्तर है, जो कोरी तुकबन्दी और भावपूर्ण सुन्दर संगीतमयी महान कवितामें होता है। यह वह नृत्य है, जिसे देखकर देवताओंकी आँखें भी धन्य-धन्य कह उठेंगी। केवल हस्त-परिचालन और नूपुरोंकी छमाछम तथा उसके साथ कुछ सुरीले स्वरमें गा देना ही नृत्य नहीं है। जब तक इस हस्त-परिचालन और नूपुरोंकी ध्वनि इत्यादिमें हृदयके आन्तरिक भाव स्वयं गतिमान होकर छमाछम न करने लगें, तब तक इस प्रकारके नृत्यसे शायद कुछ थोड़ासा मनोरंजन हो जाय; परन्तु उसका कोई विशेष चिरस्थायी और हृदयको एकदम अभिभूत करनेवाला प्रभाव नहीं पड़ सकता। भावहीन नृत्य एक तरहका विनोदमय शारीरिक खेल हो सकता है; परन्तु उसके साथ हृदयके आन्तरिक भावोंका सम्मिश्रण नहीं होता, इसीलिए वह जीवनपर कोई आनन्दमय जीवित रहनेवाला प्रभाव नहीं डाल सकता। ऐसा नृत्य मानव-जीवनके हृदयका अंग नहीं बन सकता। इस नाटकमें मालविकाका नृत्य कुछ थोड़ेसे क्षणोंके लिए दिलको बहला देनेवाली ही वस्तु नहीं है; परन्तु वह मानव-जीवनके आन्तरिक भाव-प्रकाशनकी महान घटना है, जो स्वयं मानव-जीवन-जैसी ही रहस्यमय, महान और हमेशाके लिए जीवित रहनेवाली वस्तु है।

कई नाटकोंमें किसी विशेष विचार या भावमयी घटनाको धीरे-धीरे विकसित किया जाता है, और इस धीरे-धीरे होते हुए विकासमें हमें उसके पूर्ण रहस्यका ज्ञान होता है ; परन्तु कई नाटकोंमें किसी एक विशेष दृश्यको ही ऐसी अपूर्वतासे दिखा दिया जाता है कि वही इस नाटककी विशेष दर्शनीय वस्तु हो जाती है। यह बात सत्य है कि इस मालविकाग्निमित्र नाटकमें कविने नाटकके अन्त तक आन्तरिक प्रेमके प्रदर्शनको छोड़कर और किसी विशेष विचारके सूत्रका उस प्रेमके साथ आरम्भसे अन्त तक अवलम्बन नहीं किया है, और इसी कारण शायद बहुतसे समालोचक इस नाटकमें किसी मानव-जीवनकी भावमयी विस्तृत वर्णनीय घटनाकी विशेषताको अनुभव करनेमें असन्तुष्टसे प्रतीत होते हैं। परन्तु फिर भी इस नाटकके द्वितीय अंकमें कालिदासने मालविकाके जिस नृत्यका अपूर्व कलामय पूर्णतासे परिदर्शन कराया है, वह वर्णन करनेकी नहीं, परन्तु देखनेकी ही वस्तु हो सकती है। वह 'देवताओंकी आँखोंका एक महान्, सुन्दर यज्ञ' है। यद्यपि उस नृत्यका शब्द-चित्र भी कालिदासने उसका विश्लेषण करते हुए अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्तिको अपनी काव्यमयी वाणीमें परिवर्तित करके आँखोंके सम्मुख मूर्तिमान-सा कर दिया है, तो भी इससे उसकी विशेषताओंको कुछ थोड़ेसे अंशमें ही समझा जा सकता है, उसे पूरी तौरपर तो तब समझा जा सकता है, जब उसे क्रियात्मक रूपमें देखा जाय। उसने मानो स्वयं इस बातको इन शब्दोंमें कह दिया है "प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम्"। नाट्यशास्त्रमें तो प्रयोगकी, उसे क्रियात्मक रूपसे अभिदर्शित करनेकी, ही प्रधानता है। यही करण है कि अपने दोनों नाट्याचार्योंका वह इस शास्त्रपर शास्त्रार्थ नहीं करा सका ; परन्तु उसे स्टेजपर स्वयं लाकर प्रयोग करके ही दिखलाना पड़ा है। इसलिए इस नृत्यके मूल्यको पूर्णतया समझनेके लिए नाटकमें इस दृश्यको पढ़ लेना किसी प्रकार पर्याप्त नहीं हो सकता। इसकी विशेषता, इसकी नवीन अपूर्वता तभी मालूम हो सकती है, जब यह दृश्य आँखोंके सामने कविके वर्णित रूपमें नृत्य करने लगे, और तब यह एक ही दृश्य इस नाटकके उस रसमय महत्वको दिखा सकता है, जो संस्कृत भाषामें कालिदासको छोड़कर शायद ही किसी और कविका हो सकता है। इस नाटकके इस अंकको पढ़नेसे भारतवर्षमें नाट्यशास्त्रके विशाल विकासकी एक सुन्दर झाँकी आँखोंके सामने आ जाती है, और वही झाँकी कालिदासकी मालविका प्रतीत होती है।

आकुल

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

सूने दिगन्तमें बार-बार
मैं रह-रह कुछ उठता पुकार
निज व्यथित हृदयका व्यथित भार
रे, किसके उरमें दूँ उतार ?

उस पार खड़े वे तरु अपार
हैं मुझे रहे अपलक निहार
इस पार भग्न है यह कगार
मुझसा ही मानो निराधार

वह रही बीचमें सरित-धार
ज्यों सजल-हृदयमें सजल-प्यार
वह चलें इसीके साथ-साथ
चिरदुखमय ये आँसू अनाथ।
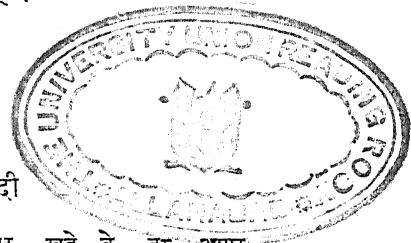
भोजन और विवाह

श्रीराम शर्मा

मातृ-दुग्धसे पोषित, वरके उजियारे, माँके दुलारे—दो दाँतवाले—बालकको किलकारी मारकर माँकी ओर घुटनोंके बल दौड़ते हुए किसने नहीं देखा ? अपने लालकी पुष्प अँखड़ियोंमें अपनी आँखोंसे स्नेह-सुधा डालकर और सिरपर हाथ फेरकर शक्ति-स्वरूपा जननी अपने कलेजेके टुकड़ेको केवल दुग्ध-पान ही कराती है। यदि कोई उससे कहे कि अपने बच्चेको उर्दकी दाल या गरिष्ठ पकवान खिलाओ, तो वह क्रोधमें या तो फट पड़ेगी, या उस व्यक्तिकी उपेक्षा करेगी, जो उसे ऐसा भोजन करानेका उपदेश देता है। क्यों ? इसलिए कि उसका प्यारा बच्चा गरिष्ठ चीज़को खाकर बीमार पड़ जायगा। अदन्त बच्चेके लिए दूधको छोड़कर यदि कोई और भोजन हो सकता है, तो वह ऐसा ही होगा, जो उसे चबाना न पड़े। गलपिच्चू, बेदान्ती बूढ़े बाबाको—बाल्य कालके छायावाद—बुढ़ापेमें—दूध और तरल पदार्थ ही हितकर होते हैं, और फावड़े तथा कुदालसे खेतपर काम करनेवाले युवा किसानके पत्थरहज़म पेटमें गरिष्ठ और शीघ्र पाचक भोजन सभी भस्म हो जाते हैं।

चर्बीके गोलमटोल जीवित टीलों—गद्दियों और दफ़्तरोंमें जमे रहनेवाले तोंदल व्यापारियोंके भोजनको देखिये और उनके स्वास्थ्यका अनुमान कीजिए। शक्ति क्षीण करनेवाली कलकत्तेकी जलवायुमें रहनेवाले वे लोग जो राजपूताना, पंजाब और युक्तप्रान्तका भोजन—और सो भी शारीरिक परिश्रमके बिना—करना चाहते हैं, तो इसके मानी हैं उलटी गंगा बहाना और सेर-भरके भारको सँभालनेवालेपर पाँच सेर बोझ लादना। इस प्रवृत्तिका फल एक ही हो सकता है, और होता है, और वह है अल्पायु होना और नसलको ख़राब करना।

कुरसीपर जमे रहनेवाले पत्रकार और लेखकको, जिसको प्रतिदिन क़लम घिसनी पड़ती है और मंदाग्नि तथा अपचता जिसकी संगिनी बन जाती हैं, क्या भोजन करना चाहिए ? सड़क कूटनेवाले और खेतपर काम करने तथा लिखने-पढ़नेवाले समवयस्क व्यक्तिका क्या एकसा ही भोजन हो सकता है ? क़लम और कुल्हाड़ी चलानेवालेका यदि एक ही भोजन हो सके, तो फिर भोजनकी समस्या बहुत-कुछ हल हो सकती है—भोजन-प्राप्तिकी समस्या नहीं, वरन भोजनके प्रकारकी समस्या। बचपनमें पूरियों और उर्दकी दालके वातावरणमें पले कई साहित्य-सेवियोंको हमने देखा है, जिनको जीविकाकी ख़ातिर बड़े-बड़े शहरोंकी तंग गलियोंमें रहना पड़ता है, और जो भोजनके मामलेमें उतने ही कट्टरपन्थी हैं, जितने सर होर और चर्चिल भारतवर्षके मामलेमें। फल-स्वरूप उन्हें डाक्टरोंके यहाँ भागना पड़ता है, और डाक्टरोंके यहाँ भागनेसे अधिक भयानक बात है उनकी क्रियात्मक कल्पनाशक्तिका ह्रास। फल, मक्खन, प्रचुर परिमाणमें शाक और ब्राउन ब्रेड न खायँगे ; चार-चार दिनके रखे और सड़े पेड़ोंको गटक लेंगे—पैसोंके अभावके कारण नहीं, वरन थोथी कट्टरताके कारण। कोल्हूके बैलकी भाँति भोजनकी उसी परिधिपर चलेंगे, जिसपर वे भारतवर्षके पश्चिमी भागमें चलते थे। गम्भीर नीरपरिपूरित नदीको वैसे ही पार करना चाहते हैं, जैसे कलकत्तेकी किसी सड़कको लोग पैदल पार करते हैं।

× × ×

हमारे जीवनके एक दूसरे पहलूको लीजिए। उस साहित्य-सेवी पत्रकारकी दशाका अनुमान कीजिए, जिसे प्रकाशनके श्राप—अधिक पत्रोंके आने—को भोगना पड़ता है। लेख लिखना, दफ्तर या किसी और स्थानमें काम करना और पाठकोंसे अपनी शैली, भाषा

और भावकी वाह-वाह लेना और शामको घरपर आकर आधे दर्जन पत्रोंके उत्तर लिखना, और वे भी विवादग्रस्त विषयोंके—और न लिखनेपर दम्भी, अभिमानी और स्वार्थीकी पदवी पाना। महात्माजीकी शैलीपर छोटे पत्र लिखनेपर भी कुछ ऐसे पत्र होते हैं, जिनके उत्तर लम्बे हो जाते हैं। नवसिखिया हिन्दी-लेखक ही कौन कम तंग करते हैं ? इसका परिणाम यह होता है कि बेचारा साहित्य-सेवी उत्तर देते-देते थक जाता है ; पर पत्रोंका ताँता टिड्डी-दलकी भाँति पुरा ही रहता है। बहुतसा मूल्यवान समय, जो पठन-पाठन और ठोस साहित्यके निर्माणमें लगना चाहिए था, वह चिट्ठियोंके लिखनेमें नष्ट हो जाता है। चिट्ठियोंके उत्तर अवश्य देने चाहिए और पूज्य द्विवेदीजीकी भाँति शीघ्र ही देना चाहिए ; पर प्रत्येक व्यक्ति द्विवेदीजी तो नहीं है, और न सब व्यक्ति सेक्रेटरी और क्लर्क ही रख सकते हैं। इस कामको फिर कौन बटा सकता है ? पत्नी। भुक्तभोगी इस बातको खूब महसूस कर सकते हैं कि कार्याधिक्यके समय, थकावटमें, पड़े-पड़े चिट्ठियोंके उत्तर लिखाना और बस हस्ताक्षर कर देना और आवश्यकता पड़नेपर बोलकर लेख लिखानेकी कितनी इच्छा होती है। और उदाहरण लीजिए। कोई किसान है, और उसकी पूँजी दो बैल और बीस बीघा खेत है। किसान दिन-भर खेतपर रगड़ता है, और यदि उसकी सहधर्मिणी यह भी नहीं कर सकती कि खेती-बारीमें उसका हाथ बटा सके, तो फिर उसकी ज़िन्दगी बवाले-जान है ठीक उस साहित्य-सेवी पत्रकारकी भाँति, जिसकी स्त्रीसे उसे कोई सहायता नहीं मिलती।

कोई कह सकता है कि आखिर विवाहके तंग कूचेमें घुसनेकी क्या ज़रूरत ? हमें इस प्रश्नके विवादमें यहाँ नहीं पड़ना और न साम्यवादके स्वतन्त्र प्रेम (free love) पर बहस करनी है—यद्यपि स्वतन्त्र प्रेमको हम कुम्भीपाकके लिए रायल रोड समझते हैं। हमें तो उन्हीं लोगोंसे कुछ कहना है, जो इस कूचेमें पदार्पण करना चाहते हैं—इधर आनेके लिए उलफुला रहे हैं, और जिनके पास ऐसे साधन नहीं हैं, जो अपने पेशेमें अपनी श्रीमतीजीके अतिरिक्त और किसीकी सहायता नहीं ले सकते।

हम यह भी मानते हैं कि इंजीनियरकी पत्नीके लिए इंजीनियर होना लाज़िमी नहीं और न वकीलकी पत्नीको वकालत पढ़नेकी ज़रूरत। और न हमारी क्षुद्र मति यह है कि श्रीमतीजी तो व्याख्यान देती फिरें और पति साहब टुटरूँटूँ बने दूर खड़े निहारते रहें। हमारा और बहुतसे समझदार लोगोंका तो यह ख़याल है कि स्त्रीके लिए मातृत्वसे बढ़कर और कोई पुनीत और महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं। इसके मानी यह भी नहीं कि स्त्रियाँ राष्ट्रका कुछ काम न करें। हम तो कहते हैं, करें और खूब करें। तलवार और बन्दूक़ तक लेकर अथवा अहिंसात्मक युद्धमें आदमियोंसे बढ़कर रहें ; पर 'ख़ातूने ख़ाना' रहें, कोरी 'सभाकी परी' न हों।

× × ×

तात्पर्य यह कि प्रत्येक व्यक्ति अपना भोजन और विवाह यथासम्भव पेशेके अनुसार करे। हमारे एक अंगरेज़ मित्र हैं। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध पत्रकार हैं। लन्दनमें रहते हैं। उनकी श्रीमती उनकी सेक्रेटरी भी हैं। अमेरिका और भारतवर्षकी डाकको खोलकर क्रमानुसार रखकर वे अपने पतिकी सहायता करती हैं। घरका तो सब काम करना ही पड़ता है। वे कलाविद चित्रकार भी हैं। पतिदेव पुस्तक लिखते हैं—चलती चीज़ नहीं, वरन ठोस—और उसके चित्र बनाती हैं उनकी श्रीमतीजी। उस दिन मसूरीमें सन्त निहालसिंहजीसे भेंट करते समय हमपर श्रीमती सिंहका अधिक प्रभाव पड़ा। सन्त साहबके प्रत्येक फोटो, ज़रूरी पत्र और लेखका उन्हें रत्ती-रत्ती पता रहता है, एक प्रकारसे वे ही सन्त साहबकी सबसे बड़ी सहायिका हैं।

हमारे यहाँ तो अब तक लोग लकीरके फ़क़ीर हैं। प्रवाहने विवाहके कूचेमें लाके पटक दिया और गृहस्थीका शकट खिंचने लगा। इस बातको लोग कम देखते

हैं कि आख़िर जीवनमें करना क्या है, और कौनसा व्यक्ति उनका उचित साथी हो सकता है। गुण और कर्मके अनुसार स्त्री और पुरुषको अपना साथी चुनना चाहिए—कोरे शारीरिक सौन्दर्यपर नहीं, क्योंकि उमर ढलनेपर ओसके मोतियोंकी भाँति ऊपरी दिखावट बहुत नहीं टिकती। पर इसके मानी यह भी नहीं कि किसी सुन्दरीको—दीपशिखा-सी ज्योतिवालीको—काने-खोतरेके गले मढ़ दिया जाय। आध्यात्मिक और शारीरिक साम्यका ख़याल रखकर प्रत्येक व्यक्तिको अपने पेशेके अनुसार विवाह करना चाहिए, क्योंकि विवाहकी इच्छा—अपने Opposite Sex के उचित साथीकी इच्छा—जीवनकी एक विशेष अवस्थामें होती है।

यह ठीक है कि अविवाहित और विधुर व्यक्तियोंने साहित्यमालामें अनेक मणियाँ पिरोई हैं—उनका साहित्यिक कार्य कबूतरोंके जोड़ेकी भाँति सुखी साहित्यिक दम्पतियोंसे किसी भाँति कम नहीं। बात ठीक है। और हम यह भी जानते हैं कि बेजोड़ विवाहसे अनेक साहित्य-सेवियोंकी ज़िन्दगी मिल्टनकी भाँति बड़ी दुखमयी हो गई है; पर हमारा तात्पर्य तो यह है कि यदि किसी साहित्य-सेवीको विवाहित जीवनकी तरंगोंपर तैरना है—विधुरताका पारावार पार करनेवालों और कुमार जीवन बितानेवालोंकी बात नहीं है—तो उसे अपने अनुकूल ही अपनी साथिन चाहिए, और तभी वह साहित्य-सेवी देश और साहित्यकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सकेगा।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और अराजकवादियोंके शिरोमणि प्रिंस क्रोपाटकिनको अपनी सहगामिनीसे उनके साहित्यिक कार्यमें कितनी सहायता मिलती थी, उसको हम उन्हींके शब्दोंमें लिखते हैं—

"Here, aided by my wife, with whom I used to discuss every event and every proposed paper, and who was a severe literary critic of my writings, I produced the best thing that I wrote for 'Le Revolte' among them the address 'To the Young', which was spread in hundreds of thousands of copies in all languages. In fact I worked out here the foundation of nearly all that I wrote later on. Contact with educated men of similar ways of thinking is what we anarchist writers, scattered by proscription all over the world, miss, perhaps, more than any thing else. At Clarens I had the contact with Elise Reclus and Lefrancais, in addition to permanent contact with the workers, which I continued to maintain; and although I worked much for the Geography, I could produce even more than usual for the anarchist propaganda."

अर्थात्—'यहाँ (जेनेवा झीलके किनारे क्लेरैंसमें) अपनी पत्नीकी सहायतासे—जिससे मैं प्रत्येक घटना और प्रत्येक प्रस्तावित निबन्धपर परामर्श और बहस किया करता था और जो मेरी कृतियोंकी कठोर आलोचिका थी—मैंने 'लेरिवोल्ट' के लिए सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ लिखीं। उनमें से 'नवयुवकोंके लिए आदेश' भी था, जिसकी लाखों प्रतियाँ सभी भाषाओंमें निकलीं। वास्तविक बात तो यह है कि मैंने अपनी भावी रचनाओंकी नींव यहीं रख ली थी। हम अराजकवादी लेखकोंका सबसे बड़ा अभाव होता है अपने समविचारवाले लोगोंसे सम्पर्क, और ऐसे लोग क़ानूनकी कृपासे संसारमें दूर-दूर पड़े हुए होते हैं। क्लेरैंसमें मुझे रैकलस और लेफ्रॉकेसका सम्पर्क प्राप्त था, और इसके अतिरिक्त श्रमजीवियोंसे मेरा स्थायी सम्पर्क था और उसको मैंने बराबर जारी रखा। और यद्यपि मैंने भूगोलके लिए बहुत कार्य किया, तो भी अराजकवादी आन्दोलनके लिए मैं नियमित रचनासे अधिक लिख सका।*

* उपर्युक्त लेखमें प्रिंस क्रोपाटकिनके कथनानुसार सुलेखक होनेके लिए और बढ़िया चीज़ लिखनेके लिए (१) जनता (masses) के सम्पर्क, (२) अपने ही विचारवाले व्यक्तियोंसे सम्बन्ध, (३) प्रकृतिके निकट रहना और (४) विदुषी सहायिका पत्नीका साथ होना जरूरी है। हिन्दीके पत्रकार और सुलेखक—थोड़ीसे देरमें सड़ियल चीज़ लिखनेवाले नहीं—अपनेको इस कसौटीपर कसें। यदि प्रत्येक बातपर १०० नम्बर रखे जायँ, तो हमारे अनेक प्रसिद्ध लेखक किसी-न-किसी बातपर शून्य पा जायँगे। —लेखक

मालविका

[चित्रकार—श्री मणीन्द्र गुप्त

अभिसार

(बोधिसत्त्वादान कल्पलता)

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर		श्री श्यामसुन्दर खत्री
संन्यासी उपगुप्त	१	संन्यासी उपगुप्त
मथुरापुरीर प्राचीरेर तले		एक वार मथुरा नगरीके
एकदा छिलेन सुप्त ;—		दृढ़ प्राचीर-तले थे सुप्त ;
नगरीर दीप निवेछे पवने,		बुझे दीप, खा व्यजन पवनके,
दुआर रुद्ध पौर भवने,		रुद्ध द्वार थे पौर भवनके।
निशीथेर तारा श्रावण-गगने		सघन गगन-पटमें सावनके
घन मेघे अवलुप्त।		नैश तारकाएँ थीं लुप्त।
काहार नूपुरशिंजित पद	२	किसके नूपुर-शिञ्जित पदयुग
सहसा बाजिल वक्षे।		सहसा बजे वक्षसे आज!
संन्यासीवर चमकि जागिल,		चौंक चकित संन्यासी जागे,
स्वप्नजड़िमा पलके भागिल,		स्वप्न-जाल पलकोंसे भागे,
रूढ़ दीपेर आलोक लागिल		क्षमा-मन्जु नयनोंके आगे
क्षमा-सुन्दर चक्षे।		रूढ़ दीप था रहा विराज।
नागरीर नटि चले अभिसारे	३	नगर-नटी अभिसार हेतु थी—
यौवनमदे मत्ता।		जाती यौवन-मद-मत्ता,
अंगे आँचल सुनील वरण,		नीलवर्ण था चंचल अंचल,
रुनुझुनु रवे बाजे आभरण ;		मृदु-मुखरित आभरण समुज्वल,
संन्यासी-गाये पड़िते चरण.		संन्यासीपर पड़ा चरण-तल,
थामिल वासवदत्ता।		ठिठक पड़ी वासवदत्ता।
प्रदीप धरिया हेरिल ताँहार	४	ले प्रदीप निरखा तब उसने—
नवीन गौरकान्ति,		उनका गौरवर्ण, वह कान्ति!
सौम्य सहास तरुण बयान,		सौम्य सहास तरुण वय उत्तम,
करुणाकिरणे विकच नयान,		करुणा-किरण-विकच दृग अनुपम,
शुभ्र ललाटे इन्दु-समान		हिमगिरि-शुभ्रभालपर विधु-सम
भातिछे स्निग्ध शान्ति।		उद्भासित सुस्निग्ध सुशान्ति!
कहिल रमणी ललितकण्ठे	५	ललित कंठसे बाला बोली
नयने जड़ित लज्जा ;		लज्जासे झुक पड़े नयन ;
"क्षमा करो मोरे कुमार किशोर,		"क्षमा करो अविनय, किशोर-वर !
दया करो यदि गृहे चलो मोर,		हो यदि सदय, चलो मेरे घर,
ए धरणीतल कठिन कठोर,		कठिन कठोर धरा-शय्या पर
ए नहे तोमार शय्या !"		श्रेयस्कर है नहीं शयन !"

६
संन्यासी कहे करुण वचने,
'अयि लावण्यपुंजे !
एखनो आमार समय हयनि,
जेथाय चलेछ, जाओ तुमि धनि,
समय जेदिन आसिबे, आपनि
जाइब तोमार कुंजे।''

७
सहसा झञ्झा तड़ित-शिखाय
मेलिल विपुल आस्य।
रमणी काँपिया उठिल तरासे,
प्रलय-शंख बाजिल बातासे,
आकाशे वज्र घोर परिहासे
हासिल अट्टहास्य।

८
वर्ष तखनो हय नाइ शेष,
एसेछे चैत्र-संध्या।
बातास हयेछे उतला आकुल,
पथ-तरुशाखे धरेछे मुकुल,
राजार कानन फुटेछे बकुल
पारुल रजनीगन्धा।

९
अति दूर हते आसिछे पवने
बाँशिर मदिर-मन्द्र।
जनहीन पुरी, पुरवासी सबे
गेछे मधुवने फूल-उत्सवे,
शून्य नगरि निरखि' नीरवे
हासिछे पूर्णचन्द्र।

१०
निर्जन पथे ज्योत्स्ना-आलोते
संन्यासी एका यात्री।
माथार उपरे तरुवीथिकार
कोकिल कुहरि' उठे बारबार,
एत दिन परे एसेछे कि ताँर
आजि अभिसार-रात्रि ?

११
नगर छाड़ाये गेलेन दण्डी
बाहिर प्राचीर-प्रान्ते।
दाँड़ालेन आसि' परिखार पारे,
आम्र-वनेर छायार आँधारे,
के ओइ रमणी पड़े एकधारे
ताँहार चरणोपान्ते !

६
करुण वचन बोले संन्यासी—
"अयि लावण्य मधुरिमा-पुञ्ज !
अभी नहीं आया वह अवसर,
जहाँ चली हो, जाओ सत्वर,
आऊँगा उपयुक्त समय पर
सुन्दरि ! स्वयं तुम्हारे कुञ्ज।''

७
सहसा शान्त वदन-मण्डलपर
झलका विद्युत-शिखा-प्रकाश।
डर कर बाला काँपी थर-थर,
बजा वायुमें शंख लयंकर,
सोपहास पवि अट्टहास्य कर
गरजा, गूँज उठा आकाश।

८
वर्ष व्यतीत न होने पाया,
आई मधु-ऋतुकी संध्या।
बही समीरण केलिकलाकुल,
पथ-तरुओंमें लसे मुकुल-कुल,
राजवनोंमें फूले पारुल,
बकुल और रजनीगन्धा।

९
पवन ला रही थी सुदूरसे
मदिर-मन्द्र वंशीकी तान।
थी जनहीन पुरी, सब पुरजन
गए कुसुम-उत्सवमें मधुवन,
हँसते थे, लख नगरी निर्जन,
नीरव सान्द्रचन्द्र छविमान।

१०
निर्जन ज्योत्स्नालोकित पथके
पथिक आज दण्डी एकान्त।
स्वर-लहरीसे भर तरु-वीथी
कोयल कूक-कूक उठती थी,
क्या अभिसार-निशा आई थी
यह इतने दिनके उपरान्त ?

११
गये नगरके बाहर दण्डी
जिस थल थी प्राचीर खड़ी।
परिखा-पार आम्र-वनके घन—
तममें खड़े हुए जा तत्क्षण,
अरे ! कौन वह रमणी उन्मन
थी उनके पग-निकट पड़ी !

१२ निदारुण रोगे मारी-गुटिकाय
भरे गेछे तार अङ्ग,
रोगमसी-ढाला काली तनु तार
लये प्रजागणे पूर-परिखार
बाहिरे फेलेछे, करि' परिहार
विषाक्त तार सङ्ग।

१२ दारुण-रोग-पीड़िता थी वह,
भरे फफोलोंसे थे अंग।
था मसि-सम विवर्ण तनु जर्जर।
पौर जनोंने उसको लाकर
फेंक दिया था पुरके बाहर
तज कर उसका विषमय संग।

१३ संन्यासी बसि' आड़ष्ट शिर
तुलि' निल निज अंगे।
ढालि' दिल जल शुष्क अधरे,
मन्त्र पड़िया दिल शिर' परे,
लेपि' दिल देह आपनार करे
शीत चन्दन-पंके।

१३ बैठ, झुका सिर, संन्यासीने
लिया अंकमें उसे निशंक।
शुष्क अधरमें कर जल-सिंचन
किया शीशपर मन्त्रोच्चारण,
गलितांगोंपर किया विलेपन
स्वकरों शीतल चन्दन-पंक।

१४ झरिछे मुकुल, कूजिछे कोकिल,
यामिनी जोछनामत्ता।
"के एसेछ तुमि ओगो दयामय"—
शुधाइल नारी, संन्यासी कय—
"आजि रजनीते हयेछे समय,—
एसेछि वासवदत्ता!"

१४ झरते फूल, कूकते कोकिल,
रजनी थी ज्योत्स्नामत्ता।
"आए हो तुम कौन दयाकर!"
हुआ प्रश्न यह, मिला सदुत्तर—
"आज रात आया वह अवसर,
आया हूँ वासवदत्ता!"

एक दिन

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

याद आती है उस दुपहरियाकी। क्षण-क्षणमें वर्षाकी धारा जब थकने लगती है, तो हवाके झोंके आकर फिर उसे उन्मत्त कर देते हैं।

घरमें अँधेरा है, काममें मन नहीं लगता। बाजा हाथमें लिये वर्षाका गीत मल्लार-सुरमें गाने लगा।

पासके घरसे एक बार वह सिर्फ द्वार तक आई। फिर लौट गई। फिर एक बार बाहर आकर खड़ी हो गई। उसके बाद धीरे-धीरे वह भीतर जाकर बैठ गई। उसके हाथमें सीनेका काम था, सिर झुकाकर सीने लगी। उसके बाद सीना छोड़कर खिड़कीके बाहर धुँधले पेड़ोंकी ओर देखती रही।

वर्षा थमने लगी, गीत भी थम गया। वह उठकर बाल बाँधने चली गई।

बस इतनी ही सी बात है, और कुछ नहीं। वर्षा गीत फुरसत और अँधेरेसे लिपटी हुई सिर्फ वही एक दुपहरिया।

इतिहासमें राजा-बादशाह और युद्ध-विग्रहकी कहानियाँ बड़ी सस्ती हैं—मारी-मारी फिरती हैं। पर उस दुपहरियाका एक छोटीसी बातका टुकड़ा दुर्लभ रत्नकी तरह कालकी डिब्बीमें ढुका ही रह गया—सिर्फ दो ही आदमी उसे जानते हैं।

—'ध'

आन्ध्र-देशका रहन-सहन

श्री व्रजनन्दन शर्मा

मुझसे कोई पूछे कि बीसवीं सदीकी मुख्य घटना क्या है ? तो मैं यही कहूँगा कि 'पाश्चात्य सभ्यताका भारतपर आक्रमण'। इस आक्रमणका प्रभाव जिन प्रदेशोंपर ज्यादा पड़ा है, उनमें आन्ध्र-देश भी एक है। इसलिए यहाँके पुराने और नये रहन-सहनमें बहुत फर्क हो गया है। आन्ध्र-देशके पुरुषोंके प्राचीन ढंगके जूड़ेने अब पचास फीसदी अंगरेज़ी फैशनके कटे हुए बालोंका रूप धारण कर लिया है। पुराने आचार-विचार अब नये रूपमें परिवर्तित होते जा रहे हैं; पर गाँवोंमें अभी तक प्राचीनताकी झलक मिले बिना नहीं रह सकती। अब भी गाँवके लोग वही पुराने ढंगका लाल कुर्ता, लाल धोती पहने और चादर ओढ़े दीख पड़ेंगे। कुछ सभ्यतानुरागियोंको छोड़कर अब भी गाँवोंमें लोग सवेरे चार बजे उठकर काममें लग जाते हैं। वे अब तक बीड़ी-सिगरेटके बदले पुराने ज़मानेके तम्बाकूके चुरुट, जिसे वे अपने हाथसे ही बनाते हैं, पीते नज़र आते हैं।

साधारणतः आन्ध्र-देशके पुरुषोंका हुलिया यह होता है—आगे पीछे समान रूपसे लटकती हुई धोती, मदरासी-पाड़की चादर (दोनों ओर दो रंगकी किनारीवाली), मुँहमें चुरुट, पैरोंमें किर्र-किर्र करनेवाले जूते (इन्हींका परिष्कृतरूप 'मदरासी-चप्पल' है), हाथमें अपनेसे भी बड़ी पतली बाँसकी छड़ी, सिरपर स्त्रियों-जैसा बालोंका जूड़ा और उसपर छोटीसी पगड़ी, काला शरीर,—बस आन्ध्र-देशके साधारण किसान या ग्रामीण प्रायः इसी रूपमें मिलेंगे। पर अनुकरणशील होनेके कारण अब यह वेश भी बहुत कुछ बदलता जा रहा है। चादरके सिवा और कुछ शरीरपर न रखनेवाले देहाती भी कोट और वेस्टकोट तक पहुँच चुके हैं।

उसी तरह सोलह हाथकी साड़ी पहने, अंचल (साड़ीकी निचली किनारी) को कमरमें खोंसे, नंगा सिर, बाल बाँधे, जूड़ेमें फूल गूँथे, भालमें बड़ी लाल बिन्दी लगाये, मज़बूत, कर्मण्य तथा निर्भीक औरतें अब भी आन्ध्र गाँवोंमें पाश्चात्य सभ्यताकी बाढ़को रोकनेके लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रही हैं। इसी भाँति प्राचीनताके प्रेमी यहाँके प्राचीन आभूषणोंका कुछ अस्तित्व बनाये हुए हैं—नहीं तो म्यूज़ियममें भी रखनेको वे आभूषण प्राप्त न होते।

आन्ध्र-निवासियोंकी सबसे महत्वपूर्ण बात है उनकी सफ़ाई। घरमें, गोशालामें, दरवाज़ेपर, पाकशालामें, बदनमें, कपड़ेमें, बालोंमें—सब जगह अद्भुत स्वच्छता दीख पड़ती है। कहीं भी गन्दगीका नाम नहीं; दुर्गन्धिका पता नहीं। यह पढ़े-लिखे लोगोंकी बात नहीं। जिन्हें आप असभ्य देहाती समझते हैं, उनकी बात है। उत्तर-भारतके सभ्य पढ़े-लिखे लोग भी इतनी सफाई नहीं रखते। मुझसे कई बार यहाँके अनेक सज्जनोंने उत्तर-भारतकी गन्दगीका ज़िक्र किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर-भारतके पढ़े-लिखे सुसंस्कृत लोग तक यहाँके देहातियोंसे सफाईका सबक सीख सकते हैं।

आप कह सकते हैं कि यह गर्म देश है, इसलिए यहाँ सफाईकी ज्यादा गुंजाइश है; उत्तर-भारत सर्द देश है, इसलिए वहाँ उतनी सफाई नहीं रखी जा सकती। पर यह दलील ठीक नहीं। उत्तर-भारतकी अपेक्षा तो यूरोप कहीं ज्यादा सर्द है। उसे भी जाने दीजिये, क्या आपकी पाकशाला और गोशालाको भी जाड़ा लगता है? क्या आपके कपड़े भी पानी छूना नहीं चाहते? यह सब जाड़े-गर्मीकी बात नहीं, आदत और इच्छाकी बात है। जिनके पास ज्यादा कपड़े हैं, वे गन्दे क्यों रहते हैं?

यहाँ कपड़े रोज़ बदले जाते हैं। सिर्फ धोती

ही नहीं, कुर्ते, चादर, बिछानेकी चादर—सब। सवेरे दस बजे धोबी आता है, सब कपड़े उठा ले जाता है और फिर छाँटकर, सुखाकर शामको वापस दे जाता है। जो अत्यन्त ग़रीब हैं और धोबीका ख़र्च नहीं उठा सकते, वे खुद ही यह काम कर लेते हैं। ऐसोंकी संख्या बहुत कम है। ये प्रतिदिन अपने घरके सारे कपड़े घरपर ही या किसी तालाबके किनारे जाकर छाँट लेते हैं। प्राय: यह काम औरतें ही करती हैं। भोजन बनानेकी तरह रोज़का यह अनिवार्य कार्य है। जिन भिखमंगोंके पास एक ही दो कपड़े हैं, वे भी आधा पहनकर आधा छाँट लेते हैं!

केवल कपड़ोंपर ही नहीं, बल्कि शरीरकी सफ़ाईपर भी उतना ही ध्यान दिया जाता है। औरत या मर्द दोनों ही दोनों वक्त—कमसे-कम एक वक्त तो ज़रूर ही—स्नान करते हैं। स्नान करते समय शरीरकी सफ़ाईके लिए साबुन, रीठा या एक तरहका आटा ज़रूर व्यवहारमें लाते हैं। सिरके बाल रोज़ खोलकर साफ़ किये जाते हैं और तेल लगाकर या यों ही बाँधे जाते हैं। क्या मजाल कि किसी दिन बालोंकी सफ़ाई न हो। मुझे कहते शर्म आती है कि उत्तर-भारतके बहुतसे स्त्री-पुरुष जाड़ोंमें हफ्तों स्नान नहीं करते!

ये घरकी, पाठशालाकी और हरएक जगहकी सफ़ाईमें सावधानी रखते हैं। प्रात: और सायंकाल घर-द्वार झाड़कर पानी छिड़कना और चौकपूजना अनिवार्य कामोंमें है। बीच-बीचमें भी झाड़ूका उपयोग होता रहता है। क्या मजाल कि घरमें एक भी चीज़ इधर-उधर बिखरी हो—या कहीं मिट्टी उखड़ी हो। चार बजे प्रात:कालसे लेकर आठ बजे तक ये सफ़ाईका काम करते ही करते हैं—पहले घर और बाहरकी सफ़ाई, फिर कपड़ों और शरीरकी सफ़ाई। घरका फ़र्श, चाहे वह कच्चा ही क्यों न हो, इतना स्वच्छ और पवित्र होता है कि बिना बिछावनके ही सोनेकी इच्छा होती है। यहाँके अछूतों (पंचमों) के घर भी ऐसे साफ़ होते है कि उत्तर-भारतके भलेमानसोंके घर भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते। उत्तर-भारतके लोग सफ़ाईके महत्वको कब समझेंगे?

परन्तु इस सफ़ाईके बीचमें एकाध गन्दगी भी है। मसलन ये लोग इस्तरीकी हुई धोतियोंको कई रोज़ तक—प्राय: अठवारे तक—नहीं बदलते। खोलकर स्नान करते और पुन: उसीको पहन लेते हैं। कुछ गन्दी आदतें भी हैं, जैसे शौचके बाद हाथ और लोटे आदिकी यथोचित सफ़ाई न करना, अथवा मल-मूत्र त्याग करते समय बोलना। इस विषयमें इन्हें उत्तर-भारतके निवासियोंसे शिक्षा लेनी चाहिए।

भोजन और आचार

मेरी समझमें आन्ध्र-देशका भोजन ही आचार है—अर्थात् दोनों अभिन्न हैं। भोजनके समय ही आचारके आडम्बरका प्रत्यक्ष रूप दिखाई पड़ता है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र क्रमसे अपनेसे निम्न-श्रेणीके लोगोंका छुआ हुआ पानी तक नहीं पीते। 'दृष्टि-दोष' का भी—अर्थात् देखने-मात्रसे खाद्य-पदार्थका अशुद्ध हो जाना—बहुत प्रचार है। खानेके समय रेशमी वस्त्र या छाँटा हुआ कपड़ा, जो उसीके लिए रखा रहता है, पहनते हैं। चाहे हफ्तोंसे छाँटा न न गया हो और रोज़ पहना जाता हो, तो भी रेशमी वस्त्र शुद्ध माना जाता है। ये भोजनशालामें बैठकर सामने पत्तल रखकर 'सन्ध्या-बन्दन' और प्रसिद्ध 'द्राविड़ी-प्राणायाम' साधते हैं। उधरसे 'पुलुसु' (खट्टी कढ़ी) और फोरनकी सुगन्धि आती रहती है, इधर गायत्रीका जाप होता रहता है; मुँहमें पानी आता रहता है और 'अघमर्षण' का ज़ोर होता रहता है। चारों ओरके किवाड़ बन्द रहते हैं। और समय तो किसी भी तरह काम चल जाता है; पर भोजनके समय न-मालूम कहाँसे सारा 'द्विजत्व' फूट पड़ता है। लेकिन समयके प्रवाहको कौन रोक सकता है? अब किवाड़ बन्दकर खानेवाले तथा शूद्रोंके हाथका पानी भी पीना पाप समझनेवाले उच्चकुलाभिमानी भी नई सभ्यताके विकाससे काफ़ी-होटलोंमें बड़े प्रेमसे एक ही टेबिलपर

मुसलमान और क्रिश्चियन भाइयोंके साथ मज़ेमें 'उपमा' और 'इडली' खाते हैं। लेकिन यह उदारता घर तक नहीं पहुँचती। घर आते ही फिर 'मड़ी' (रेशमी वस्त्र)की खोज होने लगती है!

भात इनका प्रधान खाद्य है। धान, मुट्टा, ज्वार, बाजरा—सभी चीज़ोंका भात ही बनाकर खाते हैं। रोटीका तो नाम भी नहीं लेते। भातके साथ चटनी इनकी प्रधान उपभोग्य वस्तु है। मध्य-वित्तके लोग तरकारी, पुलुस तथा घीका उपयोग करते हैं। फिर भी ये हरी तरकारियोंको बहुत ही कम खाते हैं। घीका परिमाण मिर्चकी ज्यादतीपर निर्भर करता है। अन्तमें मट्ठे (छाँछ) का उपयोग ज़रूरी है। इनके भोजनमें ५० प्रतिशत अनाजका, ५ प्रतिशत तरकारीका, ५ प्रतिशत घीका, ५ प्रतिशत मट्ठेका, २० प्रतिशत इमलीका तथा १५ प्रतिशत मिर्चका अंश होता है। यहाँकी अपक्व खाद्य-वस्तुओंमें स्वाद बहुत कम होता है, उनमें फोरन और मिर्चसे ही स्वादकी सृष्टि की जाती है।

अब काफी-होटलोंकी बात भी ज़रा सुन लीजिए। इनकी यहाँ बाढ़-सी आ रही है। यहाँ सुबहमें चार बजेसे उपमा (दलिया), इडली (भापसे पकाई हुई उड़दकी टिकरी), पेसरेट (मूँगकी रोटी) तथा काफ़ी व्यवहारमें आती है। सायंकाल—नमकीन बूँदी, सेव, दहीबड़े तथा लड्डू वग़ैरह एकाध मिठाई मिलती है। काफी सुबह-शाम दोनों वक्त व्यवहारमें आती है।

इनकी भोजन-पद्धतिकी विशेषता है जूठा न छोड़ना, (क्योंकि यहाँ कोई जूठा नहीं खाता), ज़रूरतसे ज्यादा न परोसना और न लेना। खाना पत्तेपर ही खाते हैं। सिर्फ कम्मा, रेड्डी लोग तथा अन्य निम्न-श्रेणीके लोग थालीमें खाते हैं। थालीका खाना उत्तम नहीं माना जाता। हाँ, चाँदीकी थालीमें खानेका निषेध नहीं है।

व्रत-त्योहार

हिन्दू-जातिमें त्योहारोंकी भरमार है। हर महीनेमें दो-चार त्योहार होते ही रहते हैं। यहाँ भी वही हालत है। फिर भी कई त्योहारोंमें कुछ भिन्नता दीख पड़ती है। यहाँ षष्ठी (छठव्रत), सूर्यव्रत तथा होली वग़ैरह नहीं मनाई जातीं। दशहरा, संवत्सरादि, संक्रान्ति, दीपावलि, शिवरात्रि, रामनवमी, कृष्णाष्टमी वग़ैरह धूमधामसे मनाई जाती हैं। 'संवत्सरादि' होली ही की तरह होता है; परन्तु होलीके पन्द्रह दिन बाद मनाया जाता है, और मनानेका ढंग भी दूसरा है। दशहरेमें प्रेतोंकी पूजा या बलि-प्रदान बिलकुल नहीं होता। उत्तरमें इसकी जितनी प्रधानता होती है, यहाँ उतनी नहीं।

यहाँ यह त्योहार नये दामादों और स्कूल-मास्टरोंके लिए बड़ा लाभदायक है। स्कूलके बच्चोंको खूब सजाकर हाथमें धनुष-बाण देकर गाँवमें घुमाते हैं। और गुरुजी दक्षिणामें साल-भरके वास्ते काफी रुपया वसूल कर लेते हैं। नये दामाद भी प्रायः दशहरा और संवत्सरादिमें बुलाये जाते हैं, और ससुरालसे मोटी-मोटी रक़में और अच्छे-अच्छे कपड़े प्राप्त करते हैं। 'शमी' (खैर) वृक्षका दर्शन किया जाता है। इसका पौराणिक कारण यह बताया जाता है कि अर्जुनने अज्ञातवासके समय इसी वृक्षपर अपने शस्त्र रखे थे तथा गौओंकी रक्षाके लिए इसी तिथिको उन्हें पुनः उतारा था।

संक्रान्तिमें घरकी सफाई और सफेदी आवश्यक है। कुली-मज़दूर भी घरमें सफेदी अवश्य कराते हैं। यहाँ चूना पोतनेका काम धोबी करते हैं। यों तो चौक पूरनेका काम सभी विशेष अवसरोंपर अधिक होता है; पर यह त्योहार उसके लिए विशेष प्रसिद्ध है। रातके दस बजेसे औरतें चौक पूरना शुरू करती हैं और चार बजे सुबह तक बनाती रहती हैं। चौककी समूची ख़ाली जगह तरह-तरहके नक्शोंसे भरी रहती है।

दीपावलिमें आतिशबाज़ी छुड़ाना ज़रूरी समझा जाता है। आतिशबाज़ीने तो भयंकर आर्थिक संहारका रूप धारण कर लिया है।

शिवरात्रि, रामनवमी आदि त्योहार उत्तर-भारतकी

तरह ही मनाये जाते हैं। मेले लगते हैं। गाँवमें राम और शिवकी मूर्तियोंका जुलूस निकाला जाता है। यही उत्तर तथा दक्षिणके मन्दिरोंमें फर्क है; पर यहाँ भी मूल मूर्तियोंको नहीं उठाते हैं। जुलूसके लिए मूर्तियोंके प्रतिनिधि रखे रहते हैं। वे मूर्तियाँ केवल एक ही दिन काममें आती हैं।

शादी-ब्याह

यों तो शादी-ब्याहके नियम सब जगह भिन्न-भिन्न है; पर आन्ध्र और उत्तरकी भिन्नताको देखकर दिलमें यह शंका उत्पन्न होती है कि हिन्दू-समाजमें ही इतना अन्तर कैसे पड़ा? जिसको उत्तरके लोग भगिनी मानते हैं, उसीको यहाँ धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया जाता है! यहाँ बहनकी पुत्री, बुआकी बेटी, मामकी बेटी—सबसे शादी हो सकती है, और होती है! इस नियमकी यहाँ तक दृढ़ता है कि इस प्रकारकी किसी लड़कीके रहते हुए प्रायः दूसरा नया सम्बन्ध नहीं खोजा जाता। कल तक जिस बहनकी बेटीको गोदमें खिलाया, आज उसीका पाणिग्रहण! इस रीतिसे कई तरहकी भिन्नताएँ और जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। एक तो नज़दीक सम्बन्ध होनेसे परिवारोंमें सदा ही मनमुटाव रहता है, दूसरे दाम्पत्य प्रेममें भी कुछ घाटा आता है। अब धीरे-धीरे यहाँके लोग भी इस प्रकारके सम्बन्धकी बुराई समझते जा रहे हैं; परन्तु उन्नतिकी गति देखते हुए इस प्रथाको दूर होते बहुत दिन लगेंगे।

वैवाहिक रीति भी बहुत-कुछ भिन्न है। प्रायः शादी एक ही गाँवमें—कहीं-कहीं तो एक ही घरमें—होती है। केवल दो परिवारोंसे ही सब काम चल जाता है। इसकी बेटीसे उसका विवाह और उसकी बेटीसे इसका विवाह—इस तरह पुश्तों तक दो ही परिवारोंमें सम्बन्ध चला जाता है। इसीलिए यहाँ तिलक-दहेजकी प्रथा भी भीषण रूपमें नहीं है। कुछ ग़रीब लोग लड़कियाँ बेचते भी हैं; पर यह काम ब्राह्मण ही विशेष और प्रगटरूपसे करते हैं।

लड़की-लड़का प्रायः देखा-सुना ही होता है। यदि नया सम्बन्ध हुआ, तो दोनोंके रूप, गुण, शील, कुलका विचार अच्छी तरह किया जाता है। लड़कीकी परीक्षा भी लड़केकी ही तरह ली जाती है। द्विजकुलमें रजस्वला होनेके पहले शादीका बड़ा कड़ा नियम है। यदि शादीके पहले रजस्वला हो जाय, तो वह गो-हत्यासे कम पाप नहीं समझा जाता! इसलिए ब्राह्मण-वैश्य आदि प्रायः छोटी उम्रमें, अर्थात् सात आठ वर्षकी अवस्थामें, ही लड़कियोंका ब्याह कर डालते हैं। हाँ, वर महाशयकी उम्र अपेक्षाकृत ज्यादा होती है। 'शारदा-बिल' के साल तो चार-चार पाँच-पाँच वर्षकी लड़कियोंकी शादियाँ हुई थीं! मालूम होता था कि अब शादीके लिए लड़कियाँ रहेंगी ही नहीं!

बारातकी प्रथा तो प्रायः यहाँ है ही नहीं। जब एक ही घरमें शादी हो, तो बारातकी क्या ज़रूरत? फिर भी बारात और जनवासेका नाटक खेला जाता है। वर महाशयको घर छोड़कर जनवासेमें रहना पड़ता है। अगर किसी दूर गाँवमें बारात जानी हुई, तो बस बैलगाड़ियोंपर लोग लद जाते हैं। दुलहा पालकीपर रहता है। अब मोटरोंकी उपयोगिता साबित हो रही है। हाथी-घोड़ेका तो कहीं नाम भी नहीं दीखता।

यहाँकी शादियोंमें दो-तीन चीज़ोंकी प्रधानता रहती है—एक तो जुलूसोंकी, दूसरे बाजे-गाजोंकी, तीसरे वेश्याओंकी। खाने-पीनेकी विशेषता कुछ नहीं, क्योंकि ये भातके सिवा और खायँगे ही क्या? हाँ, भात ही पर एक दो लड्डू या उड़दके बड़े चढ़ा जाते हैं और घीकी नदी बहा देते हैं। बाजे-गाजेकी प्रधानता तो उत्तर-भारतमें भी होती है। यहाँ ढोल बजानेका काम हज्जाम करता है। शादी-ब्याहमें ज्यादा काम धोबीसे लिया जाता है। पालकी भी धोबी ही ढोते हैं। वेश्याओंका प्रचलन यहाँ ज्यादा है। मध्य-वित्तके लोग भी शादीमें वेश्याओंका नाच अवश्य कराते हैं। साधारणतः सौ डेढ़ सौ रुपयेमें

वेश्याओंका दल, जिसमें सात-आठ वेश्याएँ और दो-तीन साजिन्दे रहते हैं—पाँच दिन नाच करता है।

आम तौरसे यहाँके लोगोंका विचार है कि वेश्याके नाचके बिना शादी शादी हो नहीं। अच्छे-अच्छे सुधारकोंका भी यही हाल है। परसाल मेरे एक मित्रकी शादी थी, जिसमें शुरूसे ही मैं सहयोग दे रहा था। मेरे मित्र बराबर कांग्रेसका काम करते हैं। दो-तीन बार जेल हो आये हैं, हरिजनोंके साथ बैठकर खानेमें भी नहीं हिचकते; पर शादीके वक्त वेश्याओंका बहिष्कार करनेके लिए राज़ी न हुए। मैंने विरोध किया, पर उन्होंने न माना।

जुलूस भी कई बार निकाला जाता है। शादीके पहले, बाद, वर आनेपर, प्रत्येक अवसरपर जुलूस निकाला जाता है। आगे-आगे बाजेवाले चलते हैं, उसके बाद वेश्याओंका दल, उसके बाद भद्र लोग, उसके बाद दुलहा-दुलहिनकी सवारी—पालकी या मोटरपर। वर-वधू दोनों एक ही सवारीमें आमने-सामने या अगल-बगल बैठते हैं। गाँवकी हरएक मुख्य गलीमें जुलूसका जाना आवश्यक होता है, और हर दरवाज़ेपर ठहरना भी उतना ही ज़रूरी। हर ठहरावपर नाच होता है। इसलिए छोटे-छोटे गाँवोंमें भी १० बजे रातसे शुरू हुआ जुलूस ४ बजे सुबह मुश्किलसे समाप्त होता है।

ब्याहके समयका दृश्य भी बड़ा सुहावना होता है। मंडपके एक ओर पुरुष तथा दूसरी तरफ़ दोनों पार्टी दुलहा और दुलहिनके घरकी औरतें बैठती हैं। किसी तरहका परदा नहीं रहता। नाच होते रहते हैं, या बाजे बजा करते हैं। नाचसे मतलब यहाँ वेश्याओंसे ही है, क्योंकि लौंडोंका नाच यहाँ होता ही नहीं। प्रथम एक पतला कपड़ा वर-वधूके बीचमें डाला जाता है। कुछ मन्त्रोच्चारके बाद वह भी हटा दिया जाता है। वधू सहज संकोचसे सिर झुकाये रहती है। कपड़ा तो सिरपर रहता ही नहीं है, इसलिए सब लोग वधूका निरीक्षण कर सकते हैं। शादीके समय जीरे और गुड़को कूटकर वर वधूकी माँगमें रखता है। सिन्दूर नहीं। माँगमें सिन्दूर लगानेकी प्रथा तो यहाँ है भी नहीं। एक मंगलसूत्र भी वर वधूके गलेमें बाँधता है, जिसका सौभाग्यवती रहने तक उसके गलेमें बँधा रहना अनिवार्य माना जाता है। कुछ मन्त्रोच्चारके बाद वर-वधूका खेल शुरू होता है। हल्दी मिला हुआ चावल होड़ लगाकर एक दूसरेपर डालते हैं। इसी तरह एक-दूसरेपर फूलकी गेंद फेंकना, लोटेमें अंगूठी और रुपया डालकर एक ही बार निकालना आदि दृश्य बड़े सुन्दर होते हैं। उन्हें देखकर एक बार फिर दुलहा बननेकी इच्छा प्रबल हो जाती है!

द्विजकुलकी लड़कियाँ शादीके बाद जब रजस्वला होती हैं, तब छै महीने तक खूब सावधानीसे रखी जाती हैं, जो स्वास्थ्यके लिए बहुत आवश्यक माना जाता है। एकाध वर्ष बाद पुनः धूमधामसे द्विरागमन होता है। फिर दुनियाँ।

पारिवारिक जीवन

इतना जाननेके बाद यह जानना ज़रूरी है कि इतने सुख-सम्पन्न देशके लोगोंका पारिवारिक जीवन कैसा है? साधारणतः अनुमान यही होगा कि वे बड़े सुखी होंगे। प्रेम-प्रवाह बहता होगा; पर ऐसी बात नहीं है। अमेरिका और यूरोपका सर्वसम्पन्न समाज भी आज भँवरमें पड़ा है। आन्ध्र-देश भी पारिवारिक दृष्टिसे सुखी नहीं है।

आन्ध्र-देशका प्रायः सर्वत्र और विशेषकर वहाँका, जहाँ पाश्चात्य-सभ्यताका प्रकाश ज्यादा पड़ा है, परिवार उतना ही ज्याद नीरस और प्रेमविहीन है। इनके पास विलासकी सामग्री भले ही ज्यादा हो, कपड़े और 'काफी' के डब्बे काफ़ी परिमाणमें हों; पर पारिवारिक प्रेम प्राप्त होना दूरकी बात है। यहाँ परिवारका अर्थ है स्त्री, एक-दो बच्चे, सास या सालेका बेटा। भाई-भाई तो कभी मिलकर रहते ही नहीं। जहाँ भाई बालिग हुआ, बस, अलग। घरमें माँको रखना भले ही मंज़ूर न हो; पर सासको रखनेमें

कोई चीं-चपड़ नहीं। अपने भाईको भले ही प्यार न करें; पर सालेके बेटेके लिए जान देंगे।

मैं तो बड़े-बड़े उच्च आदर्शवाले मनस्वी लोगोंको देखता हूँ, जो अपने भाईकी उतनी चिन्ता नहीं रखते, जितनी अपने पड़ोसी या नौकरकी। उनका भाई है या मर गया, बीमार है या अच्छा, खानेको मिलता है या नहीं—ये सब प्रश्न उनके लिए व्यर्थ हैं, समय नष्ट करनेवाले हैं। ओह! पारिवारिक आदर्शका कितना पतन है? यह तो यूरोपको भी मात कर रहा है। माँ-बापकी भी वही हालत है। यहाँ शादीके बाद जो माँ-बापकी चिन्ता रखता है, उसे मैं देवता समझता हूँ। यहाँ मेरे पास मेरे भाईका छै वर्षका एक छोटा लड़का है। उसके बारेमें कई बार मेरे हितेच्छुओंने मुलायम शब्दोंमें कहा कि आप इसको यहाँ क्यों रखे हुए हैं, और इसके माँ-बाप कैसे हैं, जिन्होंने इसे छोड़ दिया है? सचमुच उनका हृदय पत्थरका होगा! मैं उन्हें क्या जवाब दूँ। उन्हें कैसे समझाऊँ कि भाई, आन्ध्र और बिहारके पारिवारिक जीवनमें महान अन्तर है। मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ कि बिहारके परिवारमें लोग अपने बच्चेसे ज़यादा प्रेम भाईके बच्चेपर ही दिखलाते हैं। अगर कहूँ भी तो वे कैसे विश्वास करेंगे?

आन्ध्र-देशकी एक नहरमें हाउस-बोट काश्मीरकी डल झीलकी याद दिलाते हैं
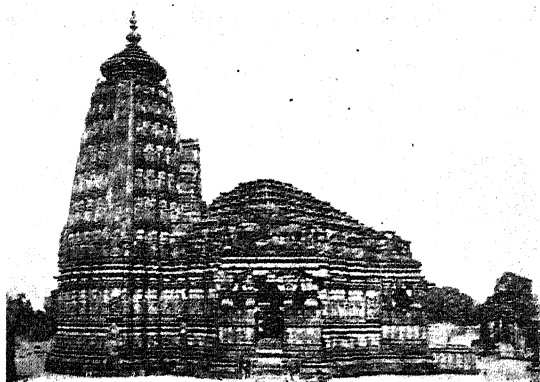
आन्ध्र-देशके स्थापत्यका एक उत्कृष्ट उदाहरण

क्या पारिवारिक प्रेमकी गंगामें स्नान करनेको इनका जी तरसता न रहता होगा? या शायद वैसी इच्छा भी न होगी। भाईसे विरोध और पड़ोसीसे मुहब्बत रखनेवाले लोग उस प्रेमके लिए क्यों तरसेंगे? सारांश यह समाज सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथाका घोर विरोधी है। फलस्वरूप पारिवारिक प्रेम प्राप्त नहीं होता और शान्ति मृगजल ही प्रतीत होती है। पाठक शायद समझेंगे कि इसीमें सुख होगा; पर मैंने देखा है कि नवदम्पति जब अपना सम्बन्ध अन्योंसे छुड़ाकर अलग होते हैं, तब उनके हृदयमें आनन्द और प्रेम, सुख और शान्तिकी कल्पना स्पन्दित होती रहती है। थोड़े दिनों तक असंयत प्रेमकी धारा बड़े वेगसे—पहाड़ी बरसाती नदीकी तरह किनारेको डुबोती हुई बहती है। किन्तु शीघ्र ही वह धारा अपव्यय और अनियमितताके

कारण रूखी और असह्य हो जाती है। जीवन भार हो जाता है।

पर इसका यह मतलब नहीं कि यहाँ सम्मिलित प्रेमपूर्ण परिवार मिलता ही नहीं। हाँ, वैसोंकी
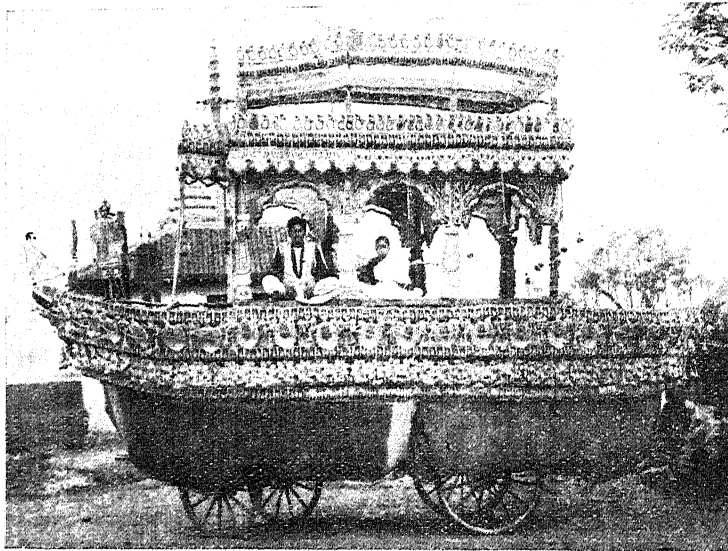
ऐसी नौकाके आकारकी गाड़ीपर बिठाकर आन्ध्रदेशीय वर-वधूका जुलूस निकाला जाता है

संख्या दालमें नमकके बराबर भी नहीं है। यहाँकी सामाजिक स्थितिका अध्ययन करनेसे उसके दो-तीन कारण जान पड़ते हैं। एक तो यहाँ परिवारमें स्त्रियोंका आधिपत्य है, और स्त्रियाँ प्रायः झगड़ालू होती ही हैं। दूसरे यहाँका गृह-निर्माण भी ऐसा होता है कि एक परिवारसे ज्यादा परिवारका गुज़र नहीं हो सकता। न-मालूम यह प्रथा पहले चली या गृह-निर्माण पहले प्रारम्भ हुआ।

तीसरा कारण—जो मेरी समझमें सबसे ज़बरदस्त है—इनका साहित्य है। साहित्यका समाजपर क्या असर पड़ता है, इसका यह समाज प्रत्यक्ष प्रमाण है। तेलुगू-साहित्यका प्रधान प्राप्त काव्य—'महाभारत' है। उसमें कला और शक्ति दोनों है। उसने राजासे रंक, बड़ेसे छोटे तकमें अपना स्थान जमाया है। गाँवोंमें उसकी कथा बाँची जाती है। तुलसी रामायणकी तरह यही यहाँका शास्त्र-पुराण सब-कुछ है। बात-बातमें इसीका उदाहरण दिया जाता है। उसके सिवा आजकलकी कहानियों और उपन्यासोंमें भी किसी ऐसे पात्रकी कल्पना या चित्रण नहीं होता, जो पारिवारिक प्रेमके आदर्शकी स्थापना करे। आधुनिक साहित्य-निर्माताओंको इस ओर प्रयत्न करना चाहिए।

स्त्रियाँ

किसी भी देशकी सभ्यताकी जाँचके लिए यह बहुत ज़रूरी है कि वहाँकी स्त्रियोंकी हालत देखी जाय। आन्ध्र-देशमें स्त्रियोंका स्थान उत्तर-भारतकी स्त्रियोंकी अपेक्षा उच्च है। उत्तर-भारतके बहुतसे लोगोंका विचार है कि स्त्रियोंको पर्देमें रखना, उनसे कोई काम न लेना, उनकी कोई सलाह न लेना ही उनकी इज्ज़त करना है; पर यह तो बेज्ज़इती है। वे भी परिवारकी एक सदस्या हैं। उनको सदस्यका अधिकार प्राप्त होना आवश्यक है। आन्ध्रमें वह अधिकार इन्हें प्राप्त है। हरएक काममें उनकी राय ली जाती है। घरके काममें तो उनको कोई रोक-टोक है ही नहीं। शादी-ब्याह तथा बाहरी कार्योंमें भी उनके विचारकी प्रधानता रहती है। गोया सब कामोंमें इनका उचित हाथ रहता है। जीवन निरुद्देश्य नहीं जान पड़ता।

बचपनमें भी माता-पिता, भाई-बहनमें कोई भेद नहीं रखते। यहाँ तक कि लड़कियाँ ही अपने भाइयोंसे ज्यादा प्यार प्राप्त करती हैं। प्रारम्भिक शिक्षा जितनी लड़कोंके वास्ते आवश्यक है, उतनी ही लड़कियोंके वास्ते भी। प्रायः प्राइमरी स्कूलोंमें लड़कियाँ ही अधिक संख्यामें रहती हैं। गर्ल्स स्कूलोंकी संख्या भी अधिक है। संगीत अवश्य सिखाया जाता है। मा-बापका ध्यान रहता

है कि वह योग्य-गृहिणी हो। पर्दा यहाँ है ही नहीं। शादी भी जान-पहचान और लड़कियोंको खूब देखभाल कर होती है, इसलिए लड़कियोंको गृह-कार्यमें दक्ष बनाना तथा प्रारम्भिक शिक्षा दिलाना एक तरहसे आवश्यक हो गया है। लड़कियाँ भी मायकेमें खूब काम करती हैं। मैं तो कभी स्त्रियोंको बेकार बैठी नहीं पाता हूँ। गृह-कार्यमें यह खूब दक्ष होती हैं। प्राय: खरीद-फरोख्त भी खुद कर लेती हैं। अतिथि-सेवा और सफाईका भार तो स्त्रियोंपर होता ही है। पुरुष जानते भी नहीं कि अतिथिने कब भोजन तथा स्नान किया।

यहाँकी स्त्रियोंका वेष सभ्य तथा सुन्दर होता है। महाराष्ट्रोंसे इनका पहनावा बहुत-कुछ मिलता है। सिरपर कपड़ा नहीं रहता है, साड़ी १४ हाथकी होती है, आँचल पीछे लटकता रहता है, गहने भी पैरोंके सिवा सब सोनेके ही होते हैं, क्योंकि चाँदीका गहना यहाँ कोई नहीं पहनता। पर, जैसी बन-ठनकर ये रहती हैं, वैसा इनका सहज सौन्दर्य नहीं होता। यदि इनमें सहज सौन्दर्य होता, तो शायद हिन्दुस्तानकी सुन्दरता-प्रतियोगितामें (Beauty Competition) में ये अव्वल आतीं। गर्म देशके कारण चमड़ा कुछ रूखा (Rough) होता है; पर शारीरिक गठन अच्छा होता है। ये मज़बूत भी होती हैं। यहाँ लड़कियाँ प्राय: दस-ग्यारह वर्षमें सयानी मान ली जाती हैं। सयानी होने तक लहँगा पहनती हैं—बादमें साड़ी।

स्त्रियोंमें स्वतन्त्रता काफी है; पर उच्छृंखलता नहीं है। लज्जाशीलता उचित मात्रामें है। किसी पुरुषके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह ये खूब जानती हैं। आप किसी अपरिचितके घर भी जाइये, वहाँ आपको ऐसा नहीं मालूम होगा कि आप किसी नई जगहमें हैं।

जो पर्दा-प्रथानुयायी सज्जन यह कल्पना नहीं कर सकते हैं कि पर्दा न रहनेपर समाज कैसा होगा, उन्हें एक बार आन्ध्र प्रदेशकी यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

स्वभाव

साधारणत: आन्ध्रके आदमी बहुत सीधे-सादे होते हैं। छल-कपट बहुत कम जानते हैं। कंजूसी भी कम है। बल्कि मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि यहाँके लोग पैसेकी कद्र करना कम जानते हैं। कंजूसी करके धन जमा करना इनके स्वभावके विरुद्ध है। आरामसे खा-पीकर, कपड़ा-साबुन खरीदकर कुछ बचा तो जमा, नहीं तो बस। फलस्वरूप विलासिता कुछ ज्यादा अंशोंमें है। यहाँके विद्यार्थी भी बहुत विलासी हैं। आराम बहुत चाहते हैं। किसी तरह गुज़र करना तो ये जानते ही नहीं। यहाँके विद्यार्थी यू० पी० तथा बिहारके विद्यार्थियोंके कष्टोंकी कल्पना भी नहीं कर सकते। मुझे मालूम है कि यहाँके गाँवोंसे कृषकोंके लड़के हिन्दी पढ़ने 'प्रयाग-विद्यापीठ' गये थे; पर वहाँ भोजनकी कमी और कामकी तकलीफके कारण भाग आये।

घरसे बाहर निकलना इनके लिए दण्ड-स्वरूप है। यही कारण है कि ये दूर देश जाकर व्यापार वगैरह नहीं कर पाते हैं। शाम तक घर लौट आनेकी व्यवस्था करके ही बाहर निकलते हैं। अगर कहीं बाहर निकलना अनिवार्य भी हुआ, तो घोंघाकी तरह सारा घर सिरपर लाद लेंगे—बाल-बच्चे, हंडा-कुंडा, खाट-गद्दे और काफीके डब्बे इत्यादि, फिर चाहे वहाँ दो ही महीने क्यों न रहना पड़े।

इनकी दूसरी खूबी है अनुकरणप्रियता। जो नई बात देखेंगे, जो नया फैशन देखेंगे, उसे झट अपना लेंगे। आन्ध्र-देशमें आप सब तरहका फैशन देखेंगे—पारसी भी, क्रिश्चियन भी, मुसलमानी भी, बंगाली भी। अपना व्यक्तित्व ये अलग रखना चाहते भी नहीं और जानते भी नहीं।

साधारण हिन्दुओंकी तरह ये धर्मभीरु हैं; पर यह भाव अब शरत्कालीन मेघकी तरह उड़ता जा रहा है। विश्वास करना और विश्वासपात्र बनना इनका स्वभाव है। साहित्यमें श्रृंगार और भक्ति इन्हें

ज्यादा पसन्द है ; पर इसके साथ-साथ आलसका एक दुर्गुण भी है। ये बहुत कम अध्यवसायी हैं।

आतिथ्य सत्कार ये बहुत अच्छी तरह करते हैं। अतिथिको देखकर ये हृदयसे प्रसन्न होते हैं; पर आतिथ्य-सत्कारमें एक बड़ी कमी है। किसी नये आदमीको देखकर ये नमस्कार हर्गिज़ नहीं करते। कुछ नये पढ़े-लिखे लोग Good morning कर लेते हैं; पर गाँवोंमें यह बात नहीं है। यह प्रथा इन्हें उत्तर-भारतीयोंसे सीखनी है।

[अगले अंकमें समाप्य

भारतके अंगरेज़ी दैनिक पत्र

श्री सूर्यनाथ तकरू, एम० ए०

वर्तमान युगमें समाचारपत्र-रूपी स्तम्भोंके ऊपर स्वाधीनताका विशाल प्रासाद टिका रहता है। समाचारपत्र ही जनताके मुख हैं, उसकी आँखें और कान भी। इन्हींके द्वारा वह बोलती है, सुनती है और समझती है। ये ही उसके पथ-पदर्शक और नीति-नियामक हैं। इसी कारण यह भी देखा गया है कि जब कोई स्वेच्छाचारी शासक किसी देशपर निरंकुश शासन करना चाहता है, तब पहले वह समाचारपत्रोंका दमन करता है। मुसोलनीने इटलीमें यही किया और हर हिटलर भी जर्मनीमें यही कर रहा है। भारतमें तो पत्र-व्यवसाय करना मगरसे वैर लेना है ही। फिर भी भारतमें पत्र निकलते ही हैं, और आपत्तियोंका मुक़ाबला करके जीवित भी रहते हैं।

यद्यपि हिन्दी भारतकी राष्ट्र-भाषा है, यह बात सर्वमान्य सत्य हो चुकी है, फिर भी अंगरेज़ी अब भी अन्तर्प्रान्तीय भाषाके रूपमें अपना प्रभुत्व जमाये हुई है। और क्यों न जमाये? क्या वह राजभाषा नहीं है? भारतमें अंगरेज़ीमें अनेक दैनिक निकलते हैं, और बहुतसे निकलकर मर भी चुके हैं। इस लेखमें जीवित अंगरेज़ी दैनिक पत्रोंका ही परिचय देना हमें अभीष्ट है। इन अंगरेज़ी दैनिक पत्रोंमें से अधिकांशने देशकी पर्याप्त सेवा की है, और राष्ट्रीयताके प्रचारमें तथा नवीन भारतके निर्माणमें इनका ज़बर्दस्त हाथ रहा है। इनका परिचय प्राप्त करना हिन्दी-प्रेमियोंके लिए लाभकर होगा।

भारतके अंगरेज़ी दैनिक पत्रोंको हम तीन श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं। पहले तो वे, जो किसी दलके नहीं हैं, केवल सत्य पक्षका ही अवलम्बन करते हैं। ये अपने समाचार रँगते नहीं और न केवल इसी धुनमें रहते हैं कि अपनी ही बात सदा जनताके कानोंमें डालें। इस श्रेणीमें हम मदरासके 'हिन्दू' तथा लाहौरके 'ट्रिब्यून' को रख सकते हैं। ऐसे पत्र सदा ही जनताके विश्वासभाजन बने रहते हैं, क्योंकि जनता जानती है कि ऐसे पत्र अपनी सम्मतिको ज़ोर-ज़बर्दस्तीसे पाठकके गलेसे नीचे नहीं उतारेंगे। ऐसे पत्र प्रायः मोटी-मोटी हेडिंगें (शीर्षक वाक्य) भी नहीं छापते, न उत्तेजक समाचारोंको ही महत्त्व देते हैं। और तो और, सुना है कि मदरासके 'हिन्दू' में स्व० पं० मोतीलालजी नेहरूका मृत्यु-संवादका भी शीर्षक वाक्य एक ही कालममें समाप्त हो गया था! यह बात चाहे सच हो या न हो, पर इससे इस श्रेणीके पत्रोंकी प्रथाका अनुमान किया जा सकता है। इस श्रेणीको हम यथार्थ पत्र-शैली (Journalistic Realism) कह सकते हैं। हिन्दीका प्रसिद्ध दैनिक 'आज' भी प्रायः इसी श्रेणीका पत्र है। दूसरी श्रेणी उन पत्रोंकी है, जो किसी विशेष दलके या

मतके हैं। ये मतवाले पत्र अपने पक्षकी खबरें तो खूब मोटे-मोटे अक्षरोंमें छापते हैं और विपक्षकी खबरोंको दाब देते हैं, या उन्हें उतना महत्त्व नहीं देते। बहुधा इन पत्रोंमें उत्तेजक शीर्षक तथा व्यंगात्मक उपशीर्षकोंकी भरमार होती है। कभी-कभी ये शीर्षक ऐसे बदल दिये जाते हैं कि एक ही घटना कई रंगोंसे दीखकर अलग-अलग प्रभाव डालती है। इस सम्बन्धमें एक मनोरंजक घटनाका वर्णन कर देना उचित जँचता है। स्वराज्यदल कौंसिलों तथा एसेम्बलीसे इस्तीफ़ा देनेका निश्चय कर चुका था। बम्बईके एक प्रमुख स्वराज्यदलवादी सज्जनको यह निश्चय पसन्द नहीं आया। उन्होंने त्यागपत्र तो दे दिया, पर पुनर्निर्वाचनमें वे फिर खड़े हुए। संयोगकी बात कि अपने एक 'नाइट' प्रतिद्वन्द्वीसे उन्हें हार खानी पड़ी। बम्बईके तीन दलके पत्रोंने इसपर तीन तरहके शीर्षक दिये। कांग्रेसवादी पत्रका शीर्षक था—'कांग्रेसद्रोहीकी करारी हार। बम्बईने कांग्रेसकी अवहेलना करनेवालेको नहीं चुना।' नरमदलके पत्रने लिखा—'स्वाधीनतावाला हारा, बम्बई नरमदलके साथ है।' एक गोरे पत्रने लिखा—'कांग्रेसमैन द्वारा बम्बईका 'नाइट' चुना गया।' अब देखिये शीर्षकोंकी महिमा! एक ही घटना तीन तरहसे रखी गई, और सभीने अपनी-अपनी जीत कही। उसपर अभी भारतमें शीर्षक देनेकी कला उतनी उन्नत नहीं हुई है। ऐसे पत्रोंमें दिल्लीका 'हिन्दुस्थान टाइम्स' विशेष उल्लेखनीय है। यह पत्रशैली अमेरिकन पत्रशैली (American Journalism) या 'नार्थक्लिफ स्टाइल' भी कहलाती है। तीसरी श्रेणीमें वे पत्र आते हैं, जो किसी गुट या व्यक्तिके हितों और स्वार्थोंकी पैरवी करते रहते हैं। भारतके ज़मींदार, एंग्लो-इंडियन, अब्राह्मण आदि अपने-अपने दैनिक पत्र चलाते हैं। ये पत्र उनके स्वार्थोंकी रक्षाके लिए तत्पर रहते हैं। यह नहीं कि ये पत्र और समाचार देते ही नहीं। देते हैं, पर इनका मुख्य ध्येय सदा गुट-हित-संरक्षण ही रहता है। इस श्रेणीमें 'पायोनियर', 'स्टेट्समैन' और 'जस्टिस' के नाम उल्लेख्य हैं।

इंग्लैंडके एक कीर्तिप्राप्त अनुभवी पत्र-सम्पादकने दैनिक समाचारपत्रोंकी तुलना समाचारोंकी दूकानसे की थी। पहले श्रेणीके पत्रोंको उन्होंने 'बैंक' कहा था, दूसरे दर्जेकी तुलना उन्होंने फ़ैशन और फ़ैन्सी चीज़ोंकी दूकानसे की थी, और तीसरेको तो सम्भवतः मयख़ानेसे भी निकृष्ट कहा था। अब संक्षेपमें भारतसे प्रकाशित होनेवाले अंगरेज़ी दैनिकोंका परिचय दिया जाता है—

(१) 'स्टेट्समैन'—स्टेट्समैन भारतमें प्रकाशित सभी पत्रोंसे अधिक समृद्धिशाली है। इसका आकार-प्रकार भी सबसे बढ़कर ही है। यद्यपि यह पत्र अंगरेज़ोंका अपना पत्र है, और यह सदा भारतकी राजनैतिक उन्नतिका विरोधी भी है, फिर भी इसका प्रचार खूब है। भारतके सभी प्रान्तोंमें इसका प्रचार और प्रभाव है। हिन्दुस्तानमें 'स्टेट्समैन' ही एक पत्र है, जिसके दो संस्करण दो नगरोंसे निकलते हैं। यह कलकत्ता और देहलीसे प्रकाशित होता है। इस देशके अंगरेज़ 'स्टेट्समैन' को अपनी ही चीज़ समझते हैं, और भारत-सरकारको भी इस पत्रपर बहुत भरोसा है। इसके भवनका उद्घाटन करने स्वयं लार्ड वेलिंगडन गये थे। रविवारको इसका अंक दुगुना होता है। 'स्टेट्समैन' के सम्पादक, सर आर्थर मूरका भी भारतीय योरोपियन समाजपर विशेष प्रभाव है, और इसके भूतपूर्व सम्पादक सर एल्फ्रेड वाटसनपर तो हिंसात्मक आक्रमण भी हुआ था।

(२) 'अमृतबाज़ार पत्रिका'—पत्रिकाका जन्म बंगलामें हुआ था। इसके संस्थापकबन्धु श्रीमान बा० शिशिरकुमार घोष और श्रीमान बा० मोतीलाल घोष भारतीय इतिहासके देदीप्यमान नक्षत्र थे। घोष-बन्धु कुशल पत्रकार तो थे ही, सच्चे राष्ट्रभक्त भी थे। नवभारतके निर्माणमें पत्रिकाका ज़बरदस्त हाथ है। काश्मीरको कर्ज़नी-कुचक्रसे बचाना इसीका कार्य था। बहुत दिनों तक पूर्व-भारतमें 'पत्रिका' ही राष्ट्रीयताका एकमात्र आवाज़ थी। स्व० बा० मोतीलाल

घोषको तो लोकमान्य तिलक भी अपने बड़े भाईके समान मानते थे और उनकी गुरुवत अर्चना करते थे। वर्तमान सम्पादक श्री तुषारकान्त घोषके सम्पादनकालमें इसका प्रचार काफ़ी बढ़ गया है।

(३) 'मुसलमान'—मुसलमानों द्वारा संचालित मुसलमान ही एक पत्र है, जो निर्भय चित्तसे राष्ट्रीयताका पृष्ठपोषक है। इसके सम्पादक श्री मुजब्बररहमान सच्चे भारतीय हैं। 'मुसलमान' अपनी निर्भय नीतिके कारण हिन्दुओं द्वारा भी सत्कार पाता है।

(४) 'फ़ारवर्ड'—'फ़ारवर्ड'का जन्म सन् १९२३ में स्वराज्यदलका पक्ष समर्थन करनेको हुआ था। इसके जन्मदाता और प्रथम सम्पादक देशबन्धु चितरंजन दास थे। फ़ारवर्डने थोड़े ही दिनोंमें इतिहास बना दिया। स्वराज्यदलका पक्ष-समर्थन, तथा बंगाल और भारतमें होनेवाले अत्याचारोंका दिग्दर्शन इसने ख़ूब ही किया। देशबन्धुकी मृत्युके बाद भी यह उनकी नीतिपर अटल रहा ; पर एक रेलवे-दुर्घटनाका भण्डाफोड़ करनेपर इसपर ५ लाख रु० जुरमाना हो गया। दूसरे ही दिन इसका पुनरवतरण 'न्यू फ़ारवर्ड' के नामसे हुआ ; पर सरकारने यह नाम न रखने दिया। फिर यह 'लिबर्टी' नामसे निकलता रहा। 'लिबर्टी'-कालमें यह श्री सुभाषचन्द्र वसुके दलका पत्र था, पर यह अपने उस प्रभावको न रख सका, जो 'फ़ारवर्ड'-कालमें इसका था। पूजाके बाद फिर यह 'फ़ारवर्ड' नामसे अवतरित हुआ है। इसके सम्पादक-मंडलके अध्यक्ष श्री तुलसीचरण गोस्वामी तथा मन्त्री श्री हेमचन्द्र नाग हैं। इसका उद्देश्य स्वराज्यदलकी पुनरस्थापना और देशबन्धुके कार्यक्रमको जीवित करना है। देखना है कि यह पत्र कहाँ तक सफल होगा।

(५) 'एडवान्स'—'एडवान्स' के संस्थापक श्रीमान स्व० यतीन्द्रमोहन सेनगुप्त थे। जनताके सम्मुख सेनगुप्त-पक्षको रखने और 'लिबर्टी' द्वारा सुभाष-दलके लिए जो कार्य हो रहा था, उसीको सेनगुप्त-दलके लिए करनेको इसका जन्म हुआ था। यह पत्र भी राष्ट्रीयता और कांग्रेसका समर्थक है।

(६) 'न्यू उड़ीसा'—उड़ीसा-प्रान्तका नवीन प्रकाशित पत्र है। इसकी नीति निष्पक्ष है।

(७) 'हिन्दू'—'हिन्दू'का जन्म २० सितम्बर १८७८ को हुआ था। इसके आदि-सम्पादक मदरासमें राष्ट्रीयताके प्रधान नेता श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर थे। 'हिन्दू' सदासे निष्पक्ष रहा है, और स्वदेशकी सेवा ही उसकी जीवनचर्या रही है। सन् १८८३ में 'हिन्दू'का अपना प्रेस हो गया और १८८७ से 'हिन्दू' दैनिक रूपमें दर्शन देने लगा। दक्षिण-भारतको जगानेमें, उसको राजनीतिक शिक्षा देनेमें 'हिन्दू' की-सी सेवा और किसी पत्रने नहीं की। मालिकोंसे मतभेद होनेके कारण श्री जी० सुब्रह्मण्यम्ने सन् १८९८ में, बीस वर्षके बाद, 'हिन्दू' के सम्पादकत्वसे त्यागपत्र दे दिया। सन् १९०५ में हिन्दूको कट्टर राष्ट्रभक्त श्री एस० कस्तूरी रंगा ऐयरने ख़रीद लिया। सन् १९२३ तक वे ही इसके सम्पादक रहे। श्री ऐयर कुशल पत्रकार, सच्चे राष्ट्रसेवक और भारतभक्त थे। संयोगसे उनको श्री ए० रंगास्वामी एयंगर सरीखे सहकारी भी मिल गये। दुर्भाग्यवश अब वे भी इस संसारमें नहीं रहे। श्री रंगास्वामी एयंगर बहुत ही सुलझे हुए मस्तिष्कके आदमी थे। उनका ज्ञान विशद था, और उनकी प्रतिभा तथा स्मृति अद्भुत। आप स्वराज्यदलके पाँच वर्षों तक प्रधान-सचिव थे, और पं० मोतीलालजी आपकी प्रतिभाके विशेष क़ायल थे। आप एसेम्बलीके भी छै वर्ष तक सदस्य रहे थे, और वहाँ भी आपकी योग्यताकी धाक थी। दूसरी और तीसरी गोलमेज़-परिषद्में भी आप जा चुके थे, और वहाँ निर्भय होकर आपने भारतका पक्ष-समर्थन किया था। 'हिन्दू'का यह सौभाग्य ही कहना चाहिए कि उसे श्री सुब्रह्मण्य ऐयर, श्री कस्तूरी रंगा ऐयर और श्री ऐ० रंगास्वामी ऐयंगर सरीखे राष्ट्र-धन सम्पादक-स्वरूपमें मिले। 'हिन्दू' की सफलताका श्रेय इन्हीं

महानुभावोंको है। 'हिन्दू' भारतमें प्रकाशित सभी पत्रोंमें श्रेष्ठ है। 'हिन्दू'को सदा यह ध्यान रहता है कि कोई बात ऐसी न छप जाय, जो उसकी पाठक-मंडलीकी रुचि बिगाड़े। वह सभी प्रकारसे प्रथम श्रेणीका पत्र है। 'पायोनियर'के भूतपूर्व सम्पादक मि० विल्सनके मतसे 'हिन्दू' विदेशोंमें प्रकाशित किसी भी प्रथम श्रेणीके पत्रसे मुकाबला कर सकता है। बाहरी रूपरंग 'हिन्दू'का 'स्टेट्समैन'का-सा ही है।

(८) 'स्वराज्य'—'स्वराज्य' कांग्रेसका समर्थक दैनिक पत्र है। इसके सम्पादक श्री टी० प्रकाशम् मदरासके प्रमुख कांग्रेस नेता हैं। आन्ध्र-प्रान्तमें इसका विशेष प्रचार है।

(९) 'इंडियन एक्सप्रेस'—यह एक नया दैनिक पत्र है, और फ्री प्रेस, लि०, द्वारा संचालित होता है।

(१०) 'मदरास मेल'—'मदरास मेल' दक्षिण-भारतके अंगरेज़ोंका पत्र है। यद्यपि यह उतना प्रभावशाली नहीं है, जितना 'स्टेट्समैन' या 'टाइम्स आफ् इंडिया', तथापि प्रान्तीय पत्र होनेके कारण अंगरेज़ों द्वारा पोषित है।

(११) 'जस्टिस'—'जस्टिस' मदरासके अब्राह्मणोंका पत्र है। दक्षिणके अब्राह्मण जस्टिसके मतको अपना मत मानते हैं। मदरासकी सीमाके बाहर इसका कोई भी प्रभाव नहीं है।

(१२) 'बाम्बे क्रानिकल'—'बाम्बे क्रानिकल'का जन्म सन् १९१३ में सर फ़ीरोज़शाह मेहता द्वारा हुआ। इसके प्रथम सम्पादक मि० बेंजामिन जी० हार्नीमैन यद्यपि अंगरेज़ हैं, फिर भी वे सच्चे भारतभक्त हैं, और उनकी नीति सदा उग्र रही है। मि० हार्नीमैनके समयमें क्रानिकलने देशकी ख़ूब सेवा की। पंजाब-हत्याकांडके दिनोंमें शायद ही किसी दूसरे पत्रने पंजाबकी दारुण कष्ट-कहानीको इतनी निर्भयतासे देशके सामने रखा हो। मि० हार्नीमैनको इसका पुरस्कार भी मिला। वे निर्वासित कर दिये गये और लगभग आठ वर्षों तक निर्वासित रहे। लौटनेपर मि० हार्नीमैनकी और क्रानिकलके अधिकारियोंकी निभी नहीं। उन्होंने कई पत्र भी निकाले; पर वे भी चले नहीं। उनके बाद मि० पिकथौल और मि० एस० ए० ब्रेलवीने इसका सम्पादन किया। मि० ब्रेलवी राष्ट्रवादी मुसलमान हैं, और उन्होंने क्रानिकलकी मर्यादाको स्थिर रखा है। क्रानिकल कांग्रेसके पक्षका पत्र है। बम्बई और महाराष्ट्रमें इसका प्रभाव भी ख़ूब है।

(१३) 'फ्री प्रेस जरनल'—'फ्री प्रेस जरनल'का संचालन, जैसा नामसे ही प्रकट होता है, फ्री प्रेस, लि०, करता है। यह पत्र कांग्रेसका समर्थक है, और अपने शीर्षकों और व्यंग्य-चित्रोंके लिए प्रसिद्ध है। इसके सम्पादक श्री एस० सदानन्द हैं।

(१४) 'टाइम्स आफ् इंडिया'—'स्टेटसमैन'के बाद यदि अंगरेज़ों द्वारा संचालित किसी पत्रका नाम लेना चाहिए, तो वह 'टाइम्स आफ़ इंडिया'का है। बम्बई-प्रान्तमें इसका यथेष्ट प्रचार है, और बम्बई-सरकार तथा अधिकारीवर्गकी इसपर विशेष ममता है। इसका साप्ताहिक संस्करण तो ख़ूब ही बिकता है। यहाँ तक कि उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी सफल नहीं हो पाया।

(१५) 'सिंध आब्सर्वर'—यह सिन्धका दैनिक है। इसकी नीति भी स्वतन्त्र है।

(१६) 'डेली गज़ट'—कराचीके गोरोंका पत्र हैं। अभी-अभी महात्माजीको गाली देकर इसने ख़ूब कुयश कमाया है।

(१७) 'बम्बई सेण्टीनल'—इस नामसे मि० हार्नीमैनने एक नया दैनिक पत्र निकाला है। पत्रकी नीति स्वतन्त्र और उन्नतिशील भी है।

(१८) 'सिविल ऐण्ड मिलिटरी गज़ट'—कर्नल कोरीने इसकी स्थापना सन् १८७२ में की थी। यह भी गोरोंका पत्र है। इंग्लैण्डके अभिमान मि० रुडयार्ड किपलिंग (नोबुल-पुरस्कार-विजेता) ने भी इसके कार्यालयमें कुछ दिनों तक काम किया था। 'पायोनियर'को भी बहुत दिनों तक इसी कम्पनीने चलाया था।

(१९) 'डेली हेराल्ड'—पंजाबका एक दलहीन

पत्र है। पहले हिन्दू हेराल्डके नामसे निकलता था।

(२०) 'मुस्लिम आउटलुक'—यह मुसलमानोंका जातीय पत्र है। जातिवाद और कट्टमुल्लापनका प्रचारक तथा सम्प्रदायवादका पृष्ठपोषक है।

(२१) 'ट्रिब्यून'—यद्यपि मदरासके 'हिन्दू'के तुल्य तो नहीं, फिर भी यह प्रायः उसी ढर्रेपर चलनेवाला पत्र है। इसके सम्पादक श्रीयुत बा० कालीनाथ राय अनुभवी और गम्भीर पत्रकार हैं। पंजाबमें यह पत्र विशेष आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है, और सभी दलोंके लोग इसकी सम्पादकीय टिप्पणियोंका सम्मान करते हैं।

(२२) 'हिन्दुस्तान टाइम्स'—यह प्रसिद्ध दैनिक अपने उत्तेजक शीर्षक वाक्योंके लिए, अपने 'डिसप्ले' तथा विनोदात्मक टिप्पणियोंके लिए सर्वसाधारण द्वारा खूब पसन्द किया जाता है। व्यंगचित्रोंके लिए तो इसका नाम है। इसके व्यंगचित्रकार श्री 'शंकर' अपनी तीव्र व्यंगात्मक चित्रणशक्तिके लिए भारत-विख्यात हैं। 'टाइम्स'का प्रचार भी खूब है। इसके समाचारोंका भारत सरकार बहुधा खण्डन भी किया करती है। इसके वर्तमान सम्पादक मि० पोथेन जोसेफ कुशल पत्रकार हैं। पत्र प्रायः कांग्रेसकी नीतिका ही समर्थक है। भारतमें दूसरी श्रेणीके पत्रोंमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स' सर्वश्रेष्ठ है।

(२३) 'नैशनल काल'—'हिन्दुस्तान टाइम्स'के भूतपूर्व सम्पादक श्री० जी० एन० साहिनी ही इसके संचालक-सम्पादक हैं। 'हिन्दुस्तान टाइम्स'से पृथक होनेपर उन्होंने इसको जन्म दिया है। यह पत्र भी व्यंग चित्रादि देता है। सप्ताहमें सातों दिन निकलनेवाला भारतमें यही प्रथम दैनिक है। इसकी नीति भी कांग्रेस-समर्थक है।

(२४) 'लीडर'—प्रयागका 'लीडर' उत्तर-भारतकी एक शक्ति है। यह उदार दलकी नीतिका समर्थक है। सच्ची खबरें, गम्भीर लेख और जिसके पीछे पड़ जाय, उसे हद तक पहुँचा देना 'लीडर'की विशेषताएँ हैं। 'लीडर' मदरासके 'हिन्दू' और लाहौरके 'ट्रिब्यून'के समान ही आदृत है। 'लीडर'ने संयुक्त-प्रान्तका तो जैसे ठेका-सा कर लिया है। कई दैनिक 'लीडर'के मुकाबिलेमें निकले, पर कोई चला नहीं। इसकी सफलताके कारण इसके प्रधान सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि हैं। चिन्तामणिजी अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, अद्भुत तर्कशैली, कटु व्यंग और आश्चर्यजनक स्मृतिशक्ति तथा ज्वलन्त देश प्रेमके लिए विख्यात हैं। उनकी वाणी और लेखनीमें समान बल है। 'लीडर' और श्री चिन्तामणि एक प्राण हैं। एकके गुण दूसरेके गुण हैं, इनके अवगुण इनके दोष। 'लीडर' के संयुक्त सम्पादक मेहता श्री कृष्णारामजीने भी अकथ परिश्रम करके इसकी नींवको अटल कर दिया है। यह देशके इनेगिने समृद्ध और प्रभावशाली पत्रोंमें है। अब तो इसके कार्यालयसे 'भारत' नामका एक हिन्दी दैनिक भी निकलने लगा है। 'लीडर' भारतीय लिबरलोंकी एकमात्र आशा है, और कांग्रेसका तो यह तीव्र आलोचक है ही। भारतीय नौकरशाहीकी भी टीका यह खूब खरी और सच्ची करता है।

(२५) 'पायोनियर'—यह पत्र उत्तर-भारतका प्रथम दैनिक पत्र है। जब तक 'स्टेट्समैन' और 'टाइम्स आव् इंडिया' नहीं निकले थे, तब तक 'पायोनियर'का मत ही भारत-सरकारका मत माना जाता था। बीच-बीचमें अच्छे सम्पादक मिल जानेपर इसने भारतकी भी कुछ सेवा की थी। श्री विल्सनके सम्पादनकालमें 'पायोनियर'ने विशेष उन्नति की थी। गत वर्ष संयुक्तप्रान्तके शिक्षा-सचिव श्री जे० पी० श्रीवास्तवने इसे ख़रीद लिया। अब यह ज़मींदारों और पूँजीपतियोंके हितोंके संरक्षणार्थ निकलने लगा है। इसके वर्तमान सम्पादक मि० डेसमांड यंग हैं। अभी हाल ही से यह लखनऊसे प्रकाशित होने लगा है।

(२६) 'डेली न्यूज़'—मध्यप्रान्तसे स्वतन्त्र विचारोंका यह दैनिक पत्र श्री वेंकटरमणके सम्पादकत्वमें निकलना शुरू हुआ है।

(२७) 'फ्री इण्डिया'—यह पत्र हाल ही में

श्री सदानन्दजी द्वारा कलकत्तेसे निकाला गया है। श्री नीरदचन्द्र चौधरी (भूतपूर्व सहकारी सम्पादक 'माडर्न रिव्यू') इसके सम्पादक हैं।

भारतसे प्रकाशित प्रसिद्ध-प्रसिद्ध दैनिक पत्रोंका संक्षिप्त परिचय हो चुका। ये पत्र प्रायः सभी एक आनेवाले दैनिक हैं। 'नेशनल काल', 'फ्री प्रेस' और 'फ्री-इंडिया' अवश्य दो पैसेवाले हैं। अधिकांश पत्र बड़ी साइज़में प्रकाशित होते हैं। इनमें से किसीमें ६ या ७ कालम होते हैं। किसी-किसीमें तो ८ कालम तक होते हैं। भारतमें प्रकाशित दैनिकोंमें सबसे बड़ी साइज़ है 'स्टेट्समैन' की, और 'सिविल-गज़ट' या 'लीडर' छोटी जमातके हैं। भारतके किसी भी दैनिकमें अभी तक नियमसे 'कलर प्रिंटिंग' (रंगीन छपाई) नहीं हुई है। सचित्र तो प्रायः सभी होने लगे हैं; पर चित्रोंमें प्रायः सामयिकता नहीं होती। व्यंग्य-चित्रोंकी ओर भी अब ध्यान गया है। देहलीके दैनिकोंने कई व्यंग्य-चित्र लाजवाब छापे हैं। 'फ्री प्रेस जरनल'के व्यंग्य-चित्र भी अच्छे होते हैं। ये दैनिक अब विशेष लेख इत्यादि भी देने लगे हैं। भारतके प्रायः सभी दैनिक सप्ताहमें छै दिन ही निकलते हैं; परन्तु 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'नेशनल काल' सप्ताहके सातों दिन निकलते हैं।

अभी भारतमें विशेष विषय-सम्बन्धी दैनिक पत्रोंका सर्वथा अभाव है। विलायतमें और अन्य देशोंमें ऐसे सैकड़ों ही पत्र हैं। भारतको सम्भवतः अभी ऐसे पत्रोंकी आवश्यकता ही नहीं है।

भारतके दैनिक पत्रोंमें प्रातः पत्र ही अधिक हैं। प्रसन्नताकी बात है कि भारतके समाचारपत्रोंपर मदान्ध पूँजीपतियोंका वैसा अधिकार नहीं है, जैसा कि अन्य देशोंमें है। अभी भारतमें नार्थ क्लिफ़, रादरमियर, बीवरब्रुकका समय नहीं आया। परन्तु यहाँके पत्रोंको उतनी स्वाधीनता भी नहीं। एक तो आर्थिक कठिनाइयाँ ही अधिक हैं, दूसरे भारतमें समाचार-पत्रोंका वैसा प्रचार भी नहीं है। इंग्लैण्डके 'डेली मेल' आदि पत्रोंकी बिक्री दस लाख रोज़ तक होती है, और पाँच लाखसे अधिक बिकनेवाले तो बीसियों पत्र हैं; पर भारतमें जिस पत्रकी ग्राहक-संख्या आठ-दस हज़ार हो, वह बड़ा ही भाग्यशाली समझा जाता है। अशिक्षा, उदासीनता और अवज्ञा ही इसके लिए ज़िम्मेदार हैं। फिर सरकारकी भी कृपादृष्टि पत्रोंपर पड़ा करती है। यह मत छापो, वह मत छापो; यह मानिहानि है, वह राजद्रोह है; यह उत्तेजक है, तो वह राजविद्रोह पूर्ण है। यहाँके पत्र और सम्पादकोंका एक पाँव सदा जेलखानेमें रहता है। फिर भी भारतके दैनिक पत्रोंके यदि बाह्य रूप-रंगका विचार न किया जाये, तो कार्यक्षेत्रमें इतनी कठिनाइयोंके रहते हुए भी जो सेवाएँ उन्होंने की हैं, वे आश्चर्यजनक हैं। पत्रिका, हिन्दू, क्रानिकल, ट्रिब्यून, लीडर और फ़ारवर्डके नाम सदा श्रद्धाके साथ लिये जायँगे। न्यू इंडिया, पंजाबी बन्देमातरम्, बंगाली, इंडिपेंडेंट आदि अस्तंगत पत्रोंको भी भारत कभी भूल नहीं सकता। मेरी यह बड़ी इच्छा थी कि उनका वर्णन भी करूँ; पर विस्तार-भयसे न कर सका। सर्वश्री शिशिरकुमार घोष, मोतीलाल घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, अरविंद घोष, विपिनचन्द्र पाल, सुब्रह्मण्य ऐयर, कस्तूरी रंगा ऐयर, हार्नीमैन, रंगास्वामी आयंगर, कालीनाथ राय, चिन्तामणि सरीखे पत्र-सम्पादकोंके कार्य अध्ययन और मननके योग्य हैं। भारतके अंगरेज़ी दैनिक पत्रोंका इतिहास मनोरंजक और शिक्षाप्रद है।

कह नहीं सकते कि भारतके अंगरेज़ी दैनिकोंका भविष्य कैसा है। राष्ट्र-भाषाकी उन्नतिके साथ स्वाधीन भारतमें उनका क्या स्थान होगा, यह प्रश्न भी विचारणीय है; पर यदि भारत विश्व-सभाका सदस्य रहेगा, तो अंगरेज़ीका पूर्ण बहिष्कार होना सम्भव भी नहीं। यदि हिन्दी-प्रेमके अर्थ अंगरेज़ी-द्रोह नहीं है, तो हिन्दी-प्रेमी होते हुए भी मैं यह कह सकता हूँ कि अंगरेज़ी दैनिकोंकी उन्नति होनेसे देशका उपकार ही होगा, अपकार नहीं।

मध्यकालीन भारतके आधुनिक इतिहासकार

श्री रघुबीरसिंह एम० ए०, एल-एल० बी०

विगत शताब्दीके अन्तिम वर्षोंसे भारतमें जिस जाग्रतिका प्रारम्भ हुआ है, वह सर्वतोमुखी हुई है। उसने भारतीय इतिहासके क्षेत्रको भी अछूता नहीं छोड़ा। इन दिनों खोज तथा प्राचीन घटनाओंपर नवीन प्रकाश डालनेके जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उनसे एक प्रकारसे भारतीय इतिहासका पुनर्जन्म हुआ है। अनेकानेक भ्रान्तियोंका नाश हुआ है तथा साथ ही उन विगतकालीन घटनाओंका ठीक-ठीक महत्त्व कूता जाने लगा है। यद्यपि अनेकानेक इतिहासकारोंका इस विषयमें मतभेद है, परन्तु मुसलमानी शासनकाल ही प्रायः भारतीय इतिहासका मध्यकाल गिना जाता है। ऐतिहासिक शोधकी बाढ़के फलस्वरूप भारतके इस मध्यकालीन इतिहासपर भी बहुत प्रकाश पड़ा है, और विशेषतया मुग़लकाल तो शोधकोंके लिए सोनेकी चिड़िया-सा बन गया है। अनेकानेक लेखकोंने इस कालपर बहुत-कुछ लिखा है। मध्यकालीन भारतके आधुनिक इतिहासकारोंकी कुछ चर्चा करना ही इस लेखका उद्देश्य है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासपर विगत चालीस-पचास वर्षोंमें जो पुस्तकें लिखी गईं तथा प्रकाशित हुई हैं, उन्हें हम तीन विभागोंमें विभक्त कर सकते हैं:—

(१) तत्कालीन इतिहासके आधार-ग्रन्थोंका संशोधित संस्करण, उनका अनुवाद तथा खण्डन-मण्डन।

(२) इस कालके क्रमबद्ध इतिहास।

(३) इस कालके विशिष्ट विभागों तथा शासनों आदिके इतिहास।

उपर्युक्त तीन प्रकारोंमें दूसरे तथा तीसरे प्रकारके ग्रन्थोंकी विवेचना करना ही यहाँ उचित होगा, क्योंकि ये पुस्तकें ही इतिहासके अन्तर्गत आती हैं। आधार-ग्रन्थोंका संशोधन, सम्पादन यद्यपि बहुत बड़ी विद्वत्ताके विना नहीं हो सकता; किन्तु फिर भी वे कृतियाँ उन्हीं प्राचीन ग्रन्थकारोंकी ही कृतियाँ मानी जाती हैं। आधुनिक इतिहासकारों-द्वारा उनका सम्पादन इतिहास-लेखकोंके लिए सामग्री अवश्य प्रदान करता है, किन्तु उससे किसी नवीन इतिहासकी सृष्टि नहीं होती।

फिर भी इन सम्पादकों तथा अनुवादकोंका कुछ भी उल्लेख न करना उनके प्रति कृतघ्नता होगी। और साथ ही यह भी अत्युक्ति न होगी कि यद्यपि आधुनिक मध्यकालीन इतिहासोंके लिए आधार-ग्रन्थ वे ही प्राचीन फारसीके ग्रन्थ होते हैं, किन्तु आजकल प्रायः उनको पढ़नेका कष्ट बहुत ही कम व्यक्ति उठाते हैं। इलियट और डॉसनका इतिहास 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज़ टोल्ड टोल्ड बाइ हर ओन हिस्टोरियन्स', जो मोटे-मोटे आठ खंडोंमें समाप्त हुआ है, अनुवादोंका संग्रहमात्र होते हुए भी आधुनिक इतिहासकारोंके लिए एक बड़ी ही उपयोगी वस्तु है। खेद केवल इसी बातका है कि अब यह पुस्तक-रत्न अप्राप्य हो गया है, और इसके पुनः प्रकाशनकी भी कोई सम्भावना नहीं दीख पड़ती। क्या कोई प्रकाशक इस वृहत् ग्रन्थका दो-तीन खंडोंमें समाप्त होनेवाला संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित करनेका साहस न करेंगे? अगर ऐसा हो सके, तो बड़ी बात होगी। इलियट और डॉसनके अतिरिक्त अनेकानेक व्यक्तियोंने भिन्न-भिन्न पुस्तकोंके संशोधित सुसम्पादित संस्करण निकालने या उनके अनुवाद करनेका सत्कार्य किया है। इस प्रकारके ग्रन्थोंके प्रकाशनका कार्य बंगालकी एशियाटिक सोसायटीने बहुत किया है, और इसके लिए भारतीय जनसमाजको इस सभाका कृतज्ञ होना चाहिए। इस सोसायटीने इसी विगत जनवरी मासमें अपनी स्थापनाका १५० वाँ उत्सव मनाया है। इन सम्पादकों

और अनुवादकोंमें ब्रिग्ज़, रावेर्टी, रेकिंग, लो, जेरेट आदि विद्वानोंके नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं।

मौलिक पुस्तकोंमें एलफिन्स्टनकी 'हिस्ट्री आफ इंडिया' का नाम सबसे पहले लिया जाना चाहिए। एक प्रकारसे उसी ग्रन्थके साथ आधुनिक इतिहास-लेखनका श्रीगणेश होता है। यद्यपि यह ग्रन्थ ख़ास तौरपर ख़फीख़ांके फ़ारसी इतिहासके आधारपर लिखा गया था, तथापि आज भी यह एक मान्य पुस्तक है, और विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाई जाती है। इसमें प्राचीनकालके साथ ही साथ मध्यकालीन इतिहासकी भी पूरी-पूरी विवेचना की गई है।

एलफिन्स्टनके बाद लेनपूलका नाम आता है। लेनपूलने 'स्टोरी आफ नेशन्ज़' ग्रन्थमालाके लिए 'मेडीवल इंडिया' की रचना की थी। लेखकका अंगरेज़ी भाषापर पूर्ण अधिकार है, और इसी कारण उनकी ज़ोरदार भाषा तथा यत्र-तत्र लिखे गये विवेचनात्मक वाक्योंके कारण ही यह पुस्तक आज भी पढ़ी जाती है। लेनपूल फारसी तथा अरबीका अच्छा विद्वान था, और इसी लिए उसकी पुस्तकोंका महत्त्व है।

यद्यपि दूसरी पाठ्य-पुस्तकें लिखी गईं; परन्तु लेनपूलके बाद विन्सेण्ट स्मिथका ही नाम लिया जाता है। स्मिथने मध्यकालीन भारतपर कोई अलग पुस्तक नहीं लिखी; परन्तु अपनी 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ् इंडिया' में इस युगका जो इतिहास लिखा है, वह यद्यपि संक्षिप्त है, फिर भी महत्त्वका है। स्मिथ एक प्रकारसे आधुनिक इतिहास-ग्रन्थों तथा आधुनिक भारतीय इतिहास-लेखनका अधिष्ठाता है। यद्यपि अनेकानेक स्थानोंपर उसने भद्दी ग़लतियाँ की हैं और अपने विदेशीपनको नहीं भुला सका है, फिर भी जो कुछ उसने लिखा है, जहाँ तक उसको ग़लत नहीं साबित किया जा सके, वहाँ तक तो माना जाता है। भिन्न-भिन्न घटनाओंकी क्रमावली, उनके सन्, संवत, तिथि आदिको सुलझानेका प्रयत्न तथा भिन्न-भिन्न युगोंकी जो तात्त्विक आलोचना स्मिथने की है, वह भारतीय इतिहास-लेखनमें एक विशिष्ट वस्तु है, और चूँकि उसने प्रथम बार इस प्रकारकी आलोचना की, अतएव मध्यकालीन भारतीय इतिहासके लेखकोंमें स्मिथका नाम आदरके साथ लिया जाता है।

इन विदेशीय ग्रन्थकारोंके बाद एक भारतीय इतिहासकारका नाम लेना एक सन्तोषकी बात है। प्रोफेसर ईश्वरीप्रसादके ग्रन्थोंका प्रधान महत्त्व इसी बातमें है कि वे एक भारतीय द्वारा लिखे गये भारतीय इतिहास-ग्रन्थ हैं। राष्ट्रीय इतिहास उसी देशके निवासियों द्वारा लिखे जाने चाहिए और तभी उनका कुछ महत्त्व हो सकता है। भारतीयोंमें प्रोफेसर ईश्वरीप्रसादको ही यह आदर प्राप्त है कि उन्होंने प्रथम बार मध्यकालीन भारतका एक सम्बद्ध इतिहास लिखा। डाक्टर ईश्वरीप्रसादके विरुद्ध यह बात अवश्य कहनी पड़ेगी कि उनके ग्रन्थोंकी लेखनशैलीमें युगधर्मानुसार होनेवाले परिवर्तनोंका बहुत-कुछ अभाव है, और विदेशीय इतिहासकारोंकी विचार-धाराका भी उनके ग्रन्थोंपर बहुत-कुछ प्रभाव पड़ा है। उनके जो दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हुए हैं, उनमें से एक ग्रन्थ पूर्व-मध्यकालीन भारतीय इतिहास है, और दूसरा भारतमें मुसलमानी राज्यका एक संक्षिप्त इतिहास।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त हेवेल और कीनने भी यथास्थान अपने ग्रन्थोंमें मुसलमानी राज्यके इतिहासपर कुछ लिखा है; किन्तु उनके ग्रन्थोंका ऐतिहासिक विद्वत्ता तथा खोजकी दृष्टिसे विशेष मूल्य नहीं है। हेवेल साहब कला तथा चित्रकारीके विशेषज्ञ हैं, सांस्कृतिक परिवर्तनों आदिका विशेषरूपसे उन्होंने अध्ययन किया है, अतएव 'हिस्ट्री आफ् आर्यन रूल इन इंडिया' नामक उनके ग्रन्थमें सांस्कृतिक दृष्टिसे यत्र-तत्र लिखी गई ऐतिहासिक आलोचना भावी लेखकोंको सोचने-विचारनेके लिए कुछ सामग्री अवश्य प्रदान करती है। कीन साहबकी 'हिस्ट्री आफ् इंडिया'

अंगरेज़ी राज्यके ह्रासके इति लिए ही पढ़ी जाती है, मध्यकालीन इतिहासके वे विशेषज्ञ नहीं हैं। इन्हीं कीनने 'फाल आफ् दी मोगल एम्पायर' नामक ग्रन्थ लिखा है, जो स्मिथके मतानुसार तत्कालीन इतिहासके लिए गौण आधार भले ही बन सकता है। यही बात ओवेन द्वारा लिखित 'फाल आफ् दी मोगल एम्पायर' के बारेमें भी कही जा सकती है।

क्रमबद्ध इतिहासोंका उल्लेख करते समय 'केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ् इंडिया' के मध्यकालीन इतिहास-सम्बन्धी खण्डोंका उल्लेख न करना अनुचित होगा। इस इतिहासके तीसरे खण्डमें पूर्व-मध्यकालका इतिहास है। चौथे खण्डमें मुग़लकालका इतिहास होगा। तीसरा खण्ड कोई चार-पाँच वर्ष हुए प्रकाशित हो गया है। चौथा खण्ड अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। तीसरे खण्डमें यद्यपि कुछ अध्याय सर जान मार्शल आदि विशेषज्ञोंके लिखे हुए हैं; फिर भी विशेषतया यह ग्रन्थ एक ही लेखक सर बुल्ज़ले हेगका लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ भारतीय विश्वविद्यालयोंमें ऊँचीसे ऊँची कक्षामें पढ़ाया जाता है, किन्तु इसमें ऐतिहासिक दृष्टिसे अनेकों ग़लतियाँ भरी पड़ी हैं। नूतनताका भी इस पुस्तकमें पूर्ण अभाव है। सम्भव है कि इंग्लैण्डके प्रख्यात केम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित होनेके कारण ही भारतीय विश्वविद्यालयोंने एम० ए० के विद्यार्थियोंके लिए इसे पाठ्य-पुस्तक नियुक्त कर अपनेको गौरवान्वित समझा हो।

मध्यकालपर लिखे गये क्रमबद्ध इतिहासोंको देखकर यह स्पष्ट जान पड़ता है कि अभी तक ईश्वरीप्रसादजीके "मेडविल इण्डिया" के समान मुग़लकालपर कोई अलग क्रमबद्ध इतिहास नहीं लिखा गया। प्रोफेसर ईश्वरीप्रसादजीने इस पुस्तकमें मुग़लकालपर अलग पुस्तक लिखनेका वादा किया है; परन्तु अभी तक शायद वे उसे समाप्त नहीं कर पाये हों। मुग़लकालपर अभी-अभी 'इंडियन प्रेस'ने एक इतिहास ग्रन्थ अंग्रेज़ीमें प्रकाशित किया है। दो अध्यापकोंने उसकी रचना की है। इस पुस्तकको पढ़नेका सौभाग्य नहीं हुआ है; परन्तु इतिहासके एक-दो विद्वानोंसे सुना कि यह ग्रन्थ अच्छा है।

हिन्दीमें मध्यकालीन भारतपर लिखी गई पुस्तकें नगण्य हैं। श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरीका 'मुसलमानी राज्यका इतिहास' जो मनोरंजन पुस्तकमालामें दो भागोंमें प्रकाशित किया गया था, बहुत पहले लिखा गया था और उसमें आधुनिक खोजोंका समावेश नहीं हो पाया। मुग़लोंके आगमनसे पहले तुर्कोंकी जो बादशाहत दिल्लीमें स्थापित हुई थी, उसके उत्थान और पतनका कुछ वर्णन मैंने अपने 'पूर्व मध्यकालीन भारत' नामक ग्रन्थमें किया है। मुग़ल साम्राज्यपर प्रोफेसर 'इन्द्र' विद्यावाचस्पतिका 'मुग़ल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। अभी उस पुस्तकका दूसरा भाग प्रकाशित नहीं हुआ। यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्यके लिए अनोखी वस्तु है। जिस उद्देश्यको सम्मुख रखकर 'इन्द्रजी'ने यह ग्रन्थ लिखा उसको उन्होंने पूर्ण किया। अपने मतका उन्होंने अच्छी तरह समर्थन किया और हिन्दी भाषापर उनका बहुत ही अच्छा अधिकार है, अतएव यह ग्रन्थ बहुत ही अच्छा बन गया है। रोचकता इसमें कूट-कूटकर भरी है; किन्तु उसमें न तो वह ऐतिहासिक गम्भीरता आ सकी है, जिसके बिना कोई भी ग्रन्थ स्थायी साहित्यकी वस्तु नहीं बन सकता है, और न यह ग्रन्थ सर्वांगपूर्ण ही हो पाया है। मत-विशेषका समर्थन करनेके कारण एकांगीयता ही उस ग्रन्थकी प्रधान विशेषता बन गई है। खेद है कि उपरोक्त पुस्तकोंके सिवाय कोई भी ऐसी पुस्तक हिन्दी-साहित्यमें नहीं है जिसका यहाँ उल्लेख किया जा सके।

जहाँ क्रमबद्ध इतिहास ग्रन्थोंमें पूर्वमध्यकालसे सम्बन्ध रखनेवाले दो-तीन ग्रन्थोंका नाम लिया जा सकता है, और मुग़लकालका अलग सम्बद्ध इतिहास एक भी नहीं देख पड़ता, वहीं उसके विपरीत इन दो कालोंमें आनेवाले भिन्न-भिन्न शासकों आदिपर लिखे

गये इतिहास-ग्रन्थोंकी विवेचना की जावे, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मुग़लकाल ही इतिहास प्रेमियोंको आकृष्ट कर सका है। पूर्व-मध्यकालको 'अन्धकारपूर्ण युग' (Dark Age) समझकर उसपर कुछ लिखने तथा उस अज्ञानान्धकारमें कुछ ज्योति जगानेका किसीने भी साहस नहीं किया। अलीगढ़के प्रोफेसर हबीबने महमूद ग़ज़नी तथा अमीर ख़ुसरोंकी जीवनियाँ लिखी हैं। ईश्वरीप्रसादजीने 'मेडीवल इंडिया'में अपने लिखे हुए 'क़राना टर्क्स इन इंडिया' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है ; परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। लगान तथा अन्य आर्थिक प्रश्नोंपर मुसलमान शासकोंकी नीतिकी विवेचना आदिपर एक ग्रन्थ डबल्यू० एस० मोरलेण्ड महोदयने लिखा है। यह ग्रन्थ अपने विषयका एक ही ग्रन्थ है। अभी इस विषयपर बहुत खोजकी आवश्यकता है, बहुत-कुछ लिखा भी जा सकता है। इन तुर्की शासकोंकी मुद्रा नीतिपर भी एडवर्ड टामस लिखित 'क्रानिकल्ज़ ऑफ पठानकिंग्स' के बाद कोई दूसरी पुस्तक नहीं निकली।

मुसलमानोंके दक्षिण-भारत विजयपर कृष्णस्वामी ऐयंगरका 'साउथ इण्डिया एण्ड हर मुहमडन कॉंकरर्स' एक ही पुस्तक है। उन्होंने विजेताओंके दक्षिण मार्ग तथा उनकी विजयों आदिके प्रभावकी ठीक-ठीक विवेचना की है। किंग रचित 'हिस्ट्री आफ डेकन' अप्राप्य है। अतएव पढ़नेका अवसर प्राप्त न हुआ। पूर्व-मध्यकालके एकमात्र महान हिन्दूराज्य विजयनगरका इतिहास 'ए फारगाटन एम्पायर' नामक पुस्तक लिखकर सिवेल साहबने एक बड़ी कमीकी पूर्ति की है। दक्षिण-भारतके हिन्दू राज्यका संक्षिप्त किन्तु सम्बद्ध इतिहास 'मैसूर गेज़िटियर' के नवीन संस्करणके दूसरे खण्डमें दिया गया है और इसमें आज तककी खोजके परिणाम समाविष्ट हो गये हैं।

इस कालकी कला आदिपर हेवेल आदिने बहुत-कुछ लिखा है, परन्तु तत्कालीन शासनप्रणाली, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा धार्मिक संवर्षण आदि विषयोंपर कुछ भी नहीं लिखा गया। टेट लिखित 'इस्लाम इन इंडिया' शायद धार्मिक प्रश्नपर प्रथम तथा एकमात्र पुस्तक है।

हिन्दीमें तो इस कालपर सिवाय 'इब्नबतूताकी भारत यात्रा' जो फारसी और अंग्रेजी आदिका अनुवादमात्र है, कोई भी पुस्तक नहीं है।

खेद है कि इस कालपर इतिहासकारोंने विशेष दृष्टि नहीं डाली। अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक और फ़िरोज़-जैसे शासकोंपर अलग-अलग ग्रन्थ लिखे जाने चाहिए। अपने-अपने कालके विशेष प्रश्नोंको हल करनेके लिए किये गये विशेष प्रयत्न ऐतिहासिक दृष्टिसे विशेष महत्त्वकी बातें हैं। राजपूतों तथा मुसलमानोंके सम्बन्धपर भी एक विभिन्न ग्रन्थकी रचना की जा सकती है। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब पहले राजपूतोंका सम्पूर्ण सच्चा-सच्चा इतिहास लिखा जावे। पुनः विभिन्न प्रान्तीय शासकों तथा वहाँके राज्योंके विषयमें तद्देशीय साहित्यमें कुछ ग्रन्थ हों तो मालूम नहीं। सुना अवश्य जाता है कि बंग-विजयपर किसी लब्धप्रतिष्ठित बंगाली इतिहासकारने बंगाली लेख या ग्रन्थ लिखा है तथा उसके द्वारा यह बतानेका प्रयत्न किया है कि केवल १८ सवारों द्वारा बंगाल विजय किया जाना एक कपोल-कल्पित कथामात्र है। बहमनी साम्राज्यपर भी कुछ नहीं लिखा गया। राजपूतोंका इतिहास भी अभी ओझाजी-जैसे एकाध ही तपस्वीको आकृष्ट कर सका है। सारांश यह है कि यदि इतिहासकार इस कालपर कुछ खोज करें, तो बहुत कुछ लिखा जा सकता है। सांस्कृतिक दृष्टिसे भी आज इस कालपर लिखे गये साहित्यकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। अनेकानेक प्रश्न जो आज उठ खड़े हुए हैं, उनका प्रारम्भ इसी 'अन्धकारपूर्ण युग'में हुआ था। इस युगका ठीक-ठीक अध्ययन ही अनेकानेक भ्रान्तियोंको दूर कर सकता है। इसके बिना आधुनिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक प्रश्नोंका हल होना कठिन ही नहीं, असम्भव हो रहा है।

मुगलकाल तक पहुँचते-पहुँचते तो पुस्तकोंका ढेरका ढेर लग जाता है। बाबरपर डाक्टर रश बुक विलियम्सने 'एन एम्पायर बिल्डर आफदी सिक्सटीन्थ सेन्चुरी' पुस्तक लिखी है। डाक्टर विलियम्सने बड़ी ही चुस्त भाषामें यह ग्रन्थ लिखा है और उनकी प्रारम्भिक खोजका ही यह फल था। हुमायूँ तो सचमुच अभागा ही रहा, न तो उसका राज्य टिका, और न इस आधुनिक युगमें उसकी कोई ऐतिहासिक जीवनी ही लिखी गई। यदि सन्तोष है तो यही कि मृत्युसे पहिलेके ५-६ मासके नाममात्रके शासनके समान ही बाबू ब्रजरत्नदासजीने हिन्दीमें नाममात्रको एक छोटी-सी जीवनी तो प्रकाशित की है। हुमायूँका प्रतिद्वन्द्वी शेरशाह डाक्टर कालिकारंजन कानूनगोके समान लब्धप्रतिष्ठित इतिहासकारको अपनी जीवनके लेखकके रूपमें पाकर पूर्णतया सफल हुआ। कानूनगोका 'शेरशाह' नामक ग्रन्थ एक पढ़नेयोग्य पुस्तक है। उसमें अकबरके अग्रगामी भारतके उस महान शासककी नीतिकी पूर्णरूपसे विवेचना की गई है।

अकबर-जैसे शासकपर अभी तक विशेष नहीं लिखा गया है। विन्सेण्ट स्मिथ तथा मालेसनके ग्रन्थोंके अतिरिक्त कोई दूसरी पुस्तक नहीं दीख पड़ी। इस बातपर कभी भी दो मत नहीं हो सकते कि स्मिथकी पुस्तक अकबरकी नीतिका ठीक-ठीक विवेचन नहीं करती। सुना जाता है कि प्रयाग-विश्वविद्यालयके डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठीने अकबरके विषयमें बहुत कुछ खोज की है तथा उनकी खोजके परिणाम आश्चर्यजनक होते हुए भी निर्द्वन्द्व हैं, परन्तु अभी तक उनके एक-दो लेखोंके सिवाय अधिक कुछ देखनेको नहीं मिला। आगराके सेन्ट जान्स कालेजके इतिहासके प्रधानाध्यापक प्रो० जीवनचन्द्र तालुकदारने भी अकबरपर बहुत-कुछ खोज की है, और वे अकबरके विशेषज्ञ भी माने जाते हैं। परन्तु खेद है कि उनकी खोजके परिणाम भी अभी तक इतिहासज्ञोंको पुस्तक रूपमें प्राप्त नहीं हो सके हैं।

जहाँगीरको लेकर डाक्टर बेनीप्रसादजीने एक ग्रन्थ लिखा है। उन्होंने अनेक विषयोंपर प्रचलित मतके विरुद्ध लिखा है तथा उन्होंने अपने मतके समर्थनमें प्रमाण भी दिये हैं। ऐसे स्थलोंमें एक विशिष्ट विषय शेर अफगनकी मृत्यु तथा नूरजहाँके प्रति जहाँगीरके प्रेमकी कहानी है। सम्भव है कई स्थलोंपर लेखकसे पाठकोंका मतभेद हो फिर भी अभी तक जहाँगीरपर यही एक पुस्तक लिखी गई है।

शाहजहाँपर डाक्टर बनारसीदास सक्सेनाने एक ग्रन्थ अभी-अभी लिखा है। इसीपर सक्सेनाजीको डाक्टरेट भी मिला है। पुस्तक खोजपूर्ण जान पड़ती है।

औरंगजेबका नाम आते ही पटनाके भूतपूर्व अध्यापक प्रोफेसर सर यदुनाथ सरकारका ख़याल आये बिना नहीं रह सकता। पाँच मोटे-मोटे खण्डोंमें उन्होंने उस अन्तिम महान मुग़ल सम्राटका जीवनचरित लिखा है। उस ग्रन्थके बारेमें कुछ लिखना छोटे-मुँह बड़ी बात होगी। फिर भी यह लिखे बिना नहीं रहा जा सकता कि यह पुस्तक एक जीवनी है, अतएव उसमें तात्त्विक आलोचनाका अभाव पाया जाना असम्भव नहीं। इसी ग्रन्थका एक संक्षिप्त संस्करण भी अब प्राप्य है। लेनपूल लिखित औरंगजेबकी जीवनी एक तरहसे औरंगजेबकी नीतिका समर्थन मात्र है। अतएव उस पक्षको समझनेके लिए इस पुस्तकको पढ़ना आवश्यक है।

औरंगजेबके साथ ही अन्य नवीन सत्ताओंके इतिहासका प्रारम्भ हो जाता है। मराठोंके इतिहासकी नींव औरंगजेबके शासनकालसे ही पड़ती है। उनके इतिहासके दो प्रधान युग, औरंगजेबके समयमें ही बीत गये हैं। मराठोंका इतिहास इस समयसे प्रारम्भ होकर इस मध्यकालके अन्त तक चलता ही जाता है। मराठोंके इतिहासकारोंकी आलोचना करना यहाँ कठिन है। महाराष्ट्रमें इतनी खोज की गई है और उसके फलस्वरूप इतनी सामग्री प्राप्त हुई है कि अब उस

सबका अध्ययन करना तथा उसकी विवेचना करना कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है। इस कठिनाईका उल्लेख सर देसाई-जैसे मराठोंके इतिहासके विशेषज्ञ तक करने लगे हैं। आधुनिक इतिहासकारोंमें रानाडे, किंकड़े, पारसनीस, यदुनाथ सरकार तथा सर देसाईके नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। राजवाड़े, खरे आदिने तत्कालीन सामग्री ही एकत्रित की है, उन्होंने मौलिक इतिहासकी सृष्टि नहीं की। डाक्टर बालकृष्ण तथा डाक्टर सेनने भी मराठोंके इतिहासपर जो मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं, वे मराठोंके इतिहास-साहित्यमें विशेष स्थान रखते हैं।

अन्तिम मुग़लों-सम्बन्धी ऐतिहासिक साहित्य तक पहुँचते ही उस बुड्ढे तपस्वी इतिहासकारका ख़याल आता है, जिसने मरने दम तक 'लेटर मुग़लज़'के अध्याय लिखना बन्द नहीं किए। कनुक्की नामक इटालियन यात्रीकी यात्राओं सम्बन्धी 'Storia Do mogor' नामक चार मोटे-मोटे पोथोंका सम्पादन करके उसने 'लेटर मोग़लज़'को हाथ लगाया, परन्तु उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई और उसका कार्य समाप्त किया उस दूसरे तपस्वीने, जो आज ६३ वर्षकी उम्रमें भी अपनी उसी युवावस्थाकी लगनके साथ इतिहास लिखनेमें लगा है। और यह तपस्वी है उसी 'औरंगज़ेब' का लेखक सर यदुनाथ सरकार। 'लेटर मुगलज़' का सम्पादन तथा उसके अपूर्ण अध्यायोंको सम्पूर्ण करके अब वे 'फाल आफ दी मुग़ल एम्पायर' लिखनेमें लगे हैं। इसका एक खण्ड अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। इन पुस्तकोंके विषयमें कुछ भी लिखना कठिन है। अठारहवीं शताब्दीका इतिहास अभी तक पूरा नहीं लिखा गया, अतएव ऐसे विद्वानोंकी खोजों परिणामोंपर कुछ लिखना, विस्तृत स्वाध्याय करने तथा विद्वत्ता प्राप्त होनेपर ही सम्भव हो सकता है। पुनः उस समय होनेवाले स्वतन्त्र राज्योंके इतिहासोंको लेकर अभी तक बहुत ही कम ग्रन्थोंकी रचना हुई है। 'फर्स्ट टू नवाब्ज़ आफ अवध' नामक डाक्टर आशीर्वादीलालजी श्रीवास्तवकी पुस्तक अवधके इतिहासकी विवेचना करती है तथा एक बड़ी कमीको पूरी करती है। परन्तु अभी पंजाब, राजस्थान, मालवा, बंगाल, दक्षिण हैदराबाद, मैसूर आदिके विषयमें बहुत-कुछ लिखा जाना चाहिए।

विलियम एच मोरलेण्ड लिखित 'इंडिया अण्डर अकबर' 'फ्राम जहाँगीर टू औरंगज़ेब' नामक पुस्तकें तत्कालीन दशाकी बहुत-कुछ विवेचना करती हैं। तथा सरकार महोदयके 'मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन'से राजकीय परिस्थितिका कुछ पता लगता है; परन्तु इस विषयके साहित्यका भी बहुत अभाव है। डॉ० पन्तका 'कमर्श्यल पालिसी आफ दी मुग़लज़' नामक ग्रन्थ मुग़लोंके इतिहासके इस अंगपर प्रकाश डालता है। मुग़लोंकी आर्थिक नीतिपर दिल्लीके भूतपूर्व प्रोफेसर छवक्लानीने भी कोई ग्रन्थ लिखा था, ऐसा सुना जाता है।

हिन्दीमें तो मुग़लकाल-सम्बन्धी साहित्यका इतना अभाव है कि उसके बारेमें कुछ भी लिखते लज्जा आती है, विशेषतया यह जान कि भारतमें मुसलमानी राज्यका इतिहास उर्दूमें कोई १२ जिल्दोंमें लिखा गया है।

भारतमें ऐतिहासिक साहित्यकी बहुत बड़ी कमी है, और उसे पूर्ण करनेके लिए आधुनिक कालमें जो प्रयत्न किये गये हैं, उनका कुछ उल्लेख यहाँ किया गया है। परन्तु जो कुछ भी अब तक लिखा गया है, उसकी सूची देखकर ही एक पाश्चात्य विद्वान द्वारा अपनी मृत्युके समय कहे गये वचनोंका स्मरण हो आता है। कहा जाता है कि जब वह व्यक्ति मृत्युशय्यापर पड़ा था, तब वह ज़ोरोंसे हँसा। ऐसी कुवड़ीमें यह हास्य आश्चर्यजनक अवश्य था, पूछे जानेपर वह विद्वान बोला कि—"संसारमें जो कुछ भी जानने योग्य बातें हैं, वे सब मैं जानता हूँ। मुझे हर्ष इस बातका है कि मेरे बाद कोई भी व्यक्ति इस बातका दावा न कर सकेगा। दिनोंदिन ज्ञान इतना बढ़ रहा है कि सब

कुछ जानना किसी भी एक व्यक्तिके लिए असम्भव हो जावेगा।" अन्य विषयोंकी तो क्या भारतके समग्र इतिहास-सम्बन्धी साहित्य तथा उसके ज्ञानका ख़याल करके ही यह प्रतीत होता है कि उस मृत्युशय्यापर पड़े हुए विद्वानने बहुत ही ठीक कहा था।

कोई भी विद्वान भारतीय इतिहासके सब कालोंका विशेषज्ञ नहीं हो सकता है। आज तो आवश्यकता इस बातकी है कि साधारण जनसमाजके लिए भारतका एक छोटा परन्तु सच्चा राष्ट्रीय इतिहास लिखा जावे, जिसमें प्रत्येक कालके विशेषज्ञ अपने-अपने कालका इतिहास संक्षेपमें लिखें। इस प्रकार लिखे गये इतिहासपर विद्वत्ताकी अमिट छाप रहेगी और साथ-ही-साथ संक्षेपमें सारा इतिहास भी जनताके लिए सुलभ हो जायगा। राष्ट्रके उत्थानमें सच्चा इतिहास कहाँ तक सहायक हो सकता है, यह किसीसे छिपा नहीं है, अतएव भारतके भावी पथको सुलझानेके लिए भी ऐसे इतिहासकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। क्या कभी वह दिन आवेगा, जब राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें ऐसा इतिहास लिखा जावेगा? क्या कभी यह स्वप्न सच्चा भी होगा?

—
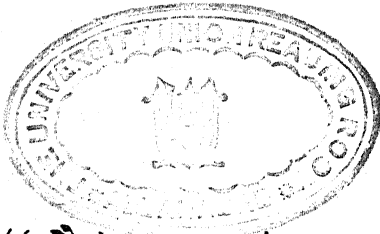
तमाखू लाओ

श्रीराम शर्मा

"नौसौ इकत्तीस ख़ून! क्या तुमने वास्तवमें इतने लोगोंका बध किया है?"—जजने अविश्वासकी ध्वनिमें पूछा।

"साहब! मैंने तो इससे कहीं अधिक लोगोंका ख़ून किया है, और लोगोंके मारनेमें मुझे इतना आनन्द आता था कि जब मुझे विश्वास हो गया कि मैंने एक हज़ार आदमियोंको मौतके घाट उतार दिया है, तब मैंने अपने हाथसे मरनेवालोंका गिनना ही छोड़ दिया।"—शान्त, पर गर्वमिश्रित ध्वनिमें भद्र आकृतिवाले व्यक्तिने उत्तरमें कहा।

जज था ठगोंका विख्यात शिकारी स्लीमान, और अभियुक्त था प्रसिद्ध ठग बहराम, जिसने अपने चालीस वर्षके ठग-जीवनमें प्रतिमास दो बधके औसतसे लोगोंको मारा था। गिरफ्तारीके उपरान्त वह सरकारी गवाह हो गया था। सरकारी गवाहोंमें कुछ ठग तो ठग-विद्यामें बहरामसे भी अधिक प्रवीण थे। उनमें से एक था फिरंगिया। वैसे साहिबसिंह, नासिर, मुरली और दुर्गा भी कम प्रसिद्ध न थे।

× × ×

भीषण गरमी थी। जज और अभियुक्त अदालतके कमरेके भीतर थे। चारों ओर श्मशानकी-सी नीरवता थी। हाँ, सवाल-जवाबसे शान्ति भंग हो जाती थी। पंखेकी धीमी धीमी सायँ-सायँसे अदालतमें बैठनेवालोंको मालूम होता था, मानो ठगी-प्रथारूपी राक्षसी अन्तिम साँसें ले रही हो। और अदालतके कमरेके बाहर प्राणलेवा लूके झकोरे हअर-हअरकर वृक्षोंको झकझोरकर और भूतलको तिलमिलाकर कमरेकी दीवारोंसे टकराते थे। क्या वे ठगोंसे मारे गये लोगोंकी प्रेतात्माएँ थीं, जो अकुलाकर और क्रुद्ध होकर कमरेके भीतर बैठे ठगोंसे बदला लेनेके लिए भीतर घुसी पड़ती थीं? शायद।

जज और अभियुक्तोंके सवाल-जवाब अदालती जिरहके रूपमें न थे, वरन् दो मछुओंके वार्तालापके समान, जो अपनी-अपनी मछलीके आकार और स्वभावकी गुत्थी सुलझानेमें लगे हों।

बात यह थी कि ठग लोग वेशभूषा और आकृतिसे बधिक नहीं प्रतीत होते थे, वरन् ऐसे व्यक्ति जिनका लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा ऐसे अटल

विश्वासमें हुए हों जो बधको जायज़, प्रशंसनीय और लाभप्रद कार्य समझता हो।

× × ×

अबसे सौ वर्ष पूर्व लार्ड विलियम बैंटिंकके कालमें जनरल स्लीमानकी अध्यक्षतामें ठगी प्रथाको मिटानेका निश्चय किया गया था, और जनरल स्लीमानकी देखरेखमें ठगोंकी गिरफ्तारी और ठगी प्रथाकी बारीकियोंको समझनेकी चेष्टा की गई, और इसीलिए ठगोंके मुखियोंको अभयदानका वचन देकर जिरहमें विचित्र प्रश्न किये गये थे।

ठगोंकी एक बड़ी संस्था थी और मनुष्योंका बध करना उस संस्थाके सदस्योंका पैतृक पेशा था। ठगोंका धार्मिक विश्वास था कि लोगोंका मारना उनका कर्त्तव्य है। ठग लोग आदमियोंके बधको वैसा ही समझते थे जैसा शिकारी सूअर, बाघ और हिरनके मारनेको समझते हैं।* जिन लोगोंको वे मारते थे, वे सब अपरिचित होते थे और हिन्दू और मुसलमानोंके लिए उनके यहाँ साम्प्रदायिक भावना न थी। स्वयं ठगोंकी मंडलीमें हिन्दू और मुसलमान थे।

ठग साधारण बधिक न थे। दरिद्रता और भूखके कारण वे इस पेशेको इख्तियार न करते थे, वरन वे तो बड़े चतुर और बाह्य दृष्टिसे बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति होते थे और अपने गृह-जीवनमें तो बड़े ही दायित्वपूर्ण व्यक्ति; पर साथ ही उनको गुप्त रूपसे, रूमालसे गला घोंटनेकी कला बचपनसे ही सिखाई जाती थी। ठगीके प्रत्येक रूपकी विशेष शिक्षा व्यक्ति-विशेषको दी जाती थी। किसीको गर्दनमें रूमाल डालनेकी कलामें दक्ष होना पड़ता था तो किसीकोको टाँगें और हाथ पकड़नेके गुण सीखने पड़ते थे, और किसीको मनोवैज्ञानिक क्षणमें शरीरके अवयव-विशेषको मरोड़ने अथवा प्रहार करनेकी

* संसारमें अब भी बहुत ठग हैं। भारतवर्ष भी कोई अपवाद नहीं है, और हिन्दी साहित्यमें भी उनके मौसेरे भाइयोंकी कमी नहीं है। उनकी दुरुस्तीके लिए किसी साहित्यिक स्लीमानकी बड़ी जरूरत है। —लेखक

कलामें कुशल होना पड़ता था ताकि बध किये जानेवाला व्यक्ति बातकी बातमें मारा जा सके। ठगीकी मुहिमकी समाप्तिपर इस कलाके दाव-पेचोंका अभ्यास ठीक उस भांति होता था जिस प्रकार दंगलके उपरान्त पहलवान लोग आगामी दंगलके लिए अभ्यास करते हैं।

ठग लोग अपनी कलामें इतने दक्ष होते थे कि बड़े कौशलसे बातकी बातमें दर्जनों यात्रियोंको मार गिराते थे, और लाशोंके गाड़नेमें दक्ष ठग तनिक-सी देर ही में उनको दफ़ना देते थे। ठगीकी इस दफ़नानेकी कलामें ठग लोग इतने चतुर थे कि कई दर्जन बध्य लोगोंको आधे घण्टेमें गाड़ देते थे। दफ़नानेकी कलाका कौशल इस बातसे स्पष्टतया समझमें आ जायगा कि कुछ दिनों उपरान्त स्वयं ठग धरातलके चिह्नसे यह नहीं बता सकते थे कि अमुक स्थानपर बध्य लोगोंको गाड़ा गया था। हाँ, चिह्न-विशेषोंसे ही वे ऐसा कर सकते थे।

अबसे सौ वर्ष पूर्वके ठगोंकी सफलताके अनेक कारण थे। उनमें से मुख्य थे उस कालकी भौगोलिक स्थिति, अराजकता और ठगोंकी नाट्यकला और उनका मनोविज्ञान। उस समय रेल, तार, टेलीफोन सड़कें और मोटरें न थीं। पैदल यात्रा होती थी और देशके एक भागसे दूसरे भागमें आने-जानेमें महीने लग जाते थे, और जो लोग ठगों द्वारा मारे जाते थे उनका पता महीनों तक न चलता था, और तब तक ठग लोग अपनी मुहिमसे लौटकर भले आदमियोंकी भाँति अपने घरका काम करने लग जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भ और मध्यमें भारतवर्षकी राजनैतिक परिस्थिति डाँवाडोल-सी थी। मुग़ल साम्राज्य दीर्घ निःश्वास ले रहा था, अंगरेज़ोंकी बढ़तीने उसे निगल ही लिया था। शिवाजी और पेशवाओंका ऐश्वर्य तिमिराच्छन्न था। अंगरेज़ लोगोंकी नवाबी और शासनकी नींव दृढ़ की जा रही थी। ऐसे समयमें लूट खसोट और ठगीका बढ़ना कुछ

आश्चर्यजनक न था—भयंकर परिस्थितिकी इस तलवार पर ठगोंके संगठन और उनके कौशलने तो ग़ज़बकी धार धर दी थी। तीस-तीस और चालीस-चालीसकी टोलीके यात्रियोंको ग़रीब, दुखिया, व्यापारी और धार्मिक यात्रियोंके भेषमें ठगोंकी एक टोली यात्रियोंसे मिला करती। गपशप, सेवाभाव और अन्य बातोंसे ठग लोग यात्रियोंके विश्वासपात्र बन जाते। निष्काम सेवा-भाव—पानी ला देना, बच्चोंको खिला देना, आग और लकड़ी बीन लाना—से वे ईमानदारीका आदर्श रख देते थे। आवश्यकता और परिस्थितिके अनुसार सौ दो सौ मील तक साथ जाते और उचित अवसर पाकर रूमालसे सबको मार डालते। और मारनेमें कोई देर थोड़े ही लगती थी। ठगोंके सरदारने सिगनल दिया कि बस बलशाली पहलवान अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित सैनिक धराशायी हो जाते थे। आवश्यकतानुसार ठग लोग कई टोलियोंमें बँटे रहते थे। यात्रियोंको यदि ठगोंकी एक टोलीसे, जो साधारण यात्री प्रतीत होते थे, किसी प्रकारकी शंका हुई तो संदिग्ध टोली अपने शिकारको छोड़ देती थी और किसी न किसी प्रकार वे यात्री दूसरी और तीसरी टोलीके हाथोंमें फँस जाते थे। यात्री रूपी मछली ठग रूपी कुशल मछुआके जालसे निकल न सकती थी। यात्राकी धारामें ठगोंके अनेक जाल थे। किसी-न-किसीमें और किसी-न-किसी प्रकारसे यात्री फँस ही जाते थे।

तुर्रा तो यह था कि ठग लोग रक्तपात नहीं करते थे, बस रूमालसे गला घोंट कर मारते थे। किसी यात्री या यात्रियोंके दलपर एक बार ठगोंकी दृष्टि पड़ गई तो बस फिर उनकी शामत ही आ जाती थी और शायद कभी ही कोई आदमी उनके चंगुलसे बचता था। ठगोंके एक दलके लोग संशकित हो जाते थे तो ठग लोग उनका साथ छोड़ देते और अपने विशेष हरकारों—दूतों—से अपने अन्य दलोंके लोगोंको ख़बर कर देते, और ठगोंके उसी दलकी दूसरी टोली मार्गमें किसी और स्थानपर मिलती और ठगोंकी पहली टोली द्वारा दी गई सूचनासे लाभ उठाकर किसी-न-किसी प्रकार यात्रियोंको अपने चंगुलमें फँसा लेती।

मान लीजिये, एक धनी व्यापारीको, जिसके साथ रक्षाके लिए अपना निजी अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित दल था, मार्गमें कुछ दीन-से पथिक मिले, और उन्होंने अपनी रक्षाकी दृष्टिसे धनी व्यापारीके साथ यात्रा करनेकी आज्ञा चाही। निहत्थे और अल्पसंख्यक होनेके कारण, धनिकके दलके साथ उनको आज्ञा मिल गई और इस प्रकार कई दिन तक साथ-साथ यात्रा होती रही। ठगोंने—निहत्थे और अल्पसंख्यक लोग ठग ही थे—इस बीच विश्वस्त और धनिकके दलके लिए अपनेको मनोरंजक और लाभप्रद सिद्ध करनेकी पूरी चेष्टा की और उसमें सफलता भी प्राप्त की, और मैत्रीजन्य विश्वाससे सम्मिलित दलने यात्रा जारी रखी। इसी बीचमें जैसे-जैसे यात्रा बढ़ती गई और वाह्य रूपसे अपरिचित लोग मिलते गये जो वास्तवमें पहले दलके ही सदस्य थे, चालबाज़ीसे धनिकके दलके साथ उनको भी यात्रा करनेकी आज्ञा मिल गई। अन्ततोगत्वा इसी ढंगसे वास्तविक यात्रियों—धनिकके साथियोंकी संख्या अल्प हो गई। बध करनेका अवसर तब आता जब ठग लोग बिना किसी दिखावेके यों ही एक-एक यात्रीके पीछे दो-दो या अधिक ठग हो जाते थे। बध करनेका सिगनल—'तमाखू लाओ'—देकर ठग लोग निश्चिन्त तथा अभय यात्रीके गलेमें रूमाल डालकर सेकिंडोंमें ही उसे मार डालते थे, और ऐसे चातुर्यसे अपना जघन्य कार्य करते थे कि बध्य यात्रियोंको न तो बचनेका ही कोई अवसर मिलता था और न लड़नेका। शवोंके सड़कर और फूलकर बिना कटे गाड़नेसे साधारण धरातलके ऊँचे होने और बधके मालूम होनेकी आशंका थी, इसलिए शवोंको छोटे-छोटे गढ़ोंमें दफ़ना दिया जाता था। दफ़नानेके स्थान पहलेसे ही निश्चित कर लिये जाते थे। ठग लोग यात्रियोंका बध इस अन्दाज़से करते थे कि स्थान विशेषपर पहलेसे ही क़ब्रें तैयार रहती थीं

और यदि आस-पास कहीं आदमियोंका कुछ खटका होता था अथवा खुलेमें क़ब्र खोदनेका कोई अवसर न होता था, तब ठग लोग अपने ही तम्बुओंके नीचे वध्य लोगोंको दफ़नानेमें कोई हिचकिचाहट न करते थे, और उन्हींपर बैठ आनन्दसे भोजन किया करते और सोया करते थे।

वधोंको सरल बनानेके लिए ठग लोग बड़ी अद्भुत चालोंसे काम लेते थे। कभी-कभी कोई ठग भयंकर बीमारीका बहाना करता था। अन्य ठग उसकी दवा-दारू करनेका बहाना करते; पर उससे कोई लाभ न पाकर, बीमारीका बहाना करनेवाला और भी भयंकर दशा प्रकट करता, जादू-टोना करनेकी तैयारी की जाती और वध्य लोगोंसे जल कलशके चारों ओर नंगे सिर—जिससे गरदनें खुल जायँ—बैठने और तारागणोंको गिननेका आग्रह किया जाता, ताकि रोगीके लिए देवताकी स्तुति की जा सके। लोगोंके इस प्रकार फाँसेमें आते ही—बीमारीके लिए आकाशकी ओर देखते ही, 'तमाखू लाओ'का सिगनल होता और देखते ही देखते क्षणमें ख़ूनी रूमालसे भोले-भाले लोगोंका अन्त कर दिया जाता। अवसर और सुविधाके अनुसार ठग लोग भिन्न-भिन्न प्रकारकी चालें चला करते थे। रूमाल ढाई फ़ीटके लगभग लम्बा होता था, और उसके दोनों किनारोंपर गाँठ लगी होती थीं। वध्य व्यक्तिके ज़मीनपर गिरते ही रूमाल कुछ ढीला किया जाता और गर्दनमें रुमालका एक चक्कर और देकर गर्दनपर पैर रखकर उसको ऐसे कस दिया जाता जैसे किसान करबकी पूलीको कस देता है।
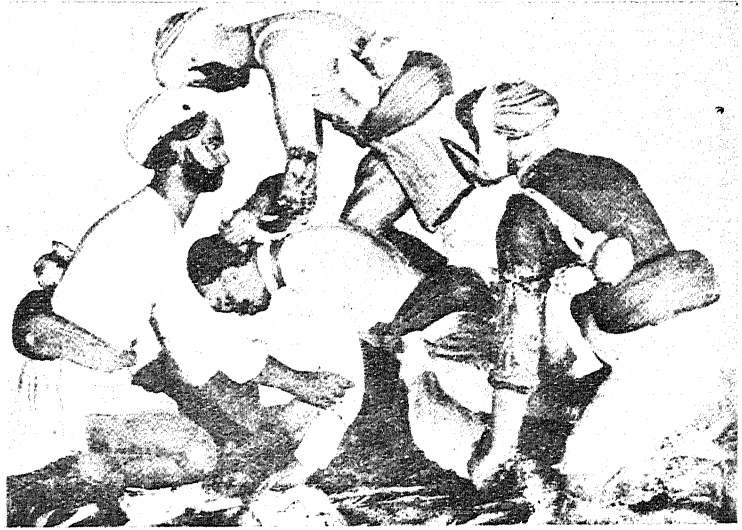
ठगोंका विश्वास था कि कालीदेवी उनके वध्य लोगोंको स्वयं खा जाती थी, और इसीलिए अपनी धार्मिक दृष्टिसे प्रेरित होकर वे शवोंको गाड़कर उस ओर मुड़कर देखते न थे। ठगोंकी धारणा थी कि मारे हुए लोगोंके शवोंकी ओर—गाड़े जानेके उपरान्त—देखनेसे वे कालीमाताके कोपके भाजन बनेंगे। एक बार किसी नवसिखिया ठगने दफ़नानेके उपरान्त चलते समय शवोंकी ओर मुड़कर देखा तो काली माताको उसने साक्षात् लाशोंको खाते देखा, और क्रोधमें माताने शाप दिया कि वह ठगों द्वारा मारे गये लोगोंको न खाया करेगी। आराधना और अनुनय विनयके उपरान्त वह प्रसन्न हुई और अपनी प्रसन्नताके उपलक्षमें उसने अपना एक दाँत उनको दे दिया, और आज्ञा दी कि भविष्यमें वे उसीसे वध्य लोगोंको गाड़ा करें।

'तमाखू लाओ'के करतब

इस गपोड़-गाथा—डुकरिया पुराण—के प्रभावके कारण ठगी प्रथामें कुदालीका आविर्भाव हुआ। इस कुदाली—कसी—का फल सात इंच लम्बा होता था, और कुदालीका फल कमरमें छिपा रहता था और उस ठगके पास वह रहता था जो ठगोंके दलका सिरमौर होता था। खुदाईका काम हो जानेपर कुदालीका बेंट फेंक दिया

जाता था, ताकि उसके ले जानेमें सुविधा हो। ठगीकी मुहिममें रातके समय कुदालीको किसी सुरक्षित स्थानमें गाड़ दिया जाता था और फलकी नोक उस ओरको कर दी जाती थी, जिस दिशामें उन्हें जाना होता था। ठगोंका एक अटल विश्वास यह भी था कि यदि उन्हें अपनी मुहिमपर निश्चित दिशासे भिन्न दिशामें अधिक सफलता मिलेगी, तो कुदालीकी नोक स्वत: ही उस ओरको हो जायगी।

कुदालीके इस प्रकारके प्रयोगसे पूर्व उसको रातमें कुँएमें फेंक दिया जाता था और अगले दिन प्रात:काल कुदाली अपने आप बाहर आ निकलती थी—ऐसा ठगोंका विश्वास था। यह बात हास्यास्पद तो है ही; पर स्लीमानसे ठगोंने प्रबल विश्वासजन्य ध्वनिमें इसकी सत्यताकी बात कही, और यहाँ तक कहा कि उन्होंने स्वयं अपनी आँखोंसे कुदालीको अपने आप कुँएसे बाहर निकलते देखा है और कभी-कभी तो उन्होंने एक ही कुँएसे अनेक कुदालियोंके निकलते और क्रमानुसार अपने ले जानेवालेके पास जाते देखा है।* ठगोंका यह भी विश्वास था कि क़ब्र खोदते समय कसीका शब्द ठगोंको छोड़कर और किसीको सुनाई न पड़ता था।

ठग लोग कुदाली—कसी—को गंगाजल और क़ुरानसे अधिक पवित्र मानते थे, और उनका यह भी ख़याल था कि कुदालीकी झूठी शपथ उठानेवाला छै दिनके भीतर मर जाता है।

ठगोंके विचित्र विश्वासोंपर सहसा यक़ीन नहीं होता; पर उनके विश्वासके प्रमाणमें सौ वर्ष पुराना उनका सुबूत ज्यों-का-त्यों अब भी विद्यमान है। उसका कुछ नमूना लीजिए।

स्लीमान—"क्या वास्तवमें तुम्हारा इस बातमें विश्वास है कि भवानी तुम्हें भावी भयसे बचानेके लिए और सफलताके लिए कुछ शकुन और संकेत भेजती हैं।"

नासिर—"क्या हमको या हममें से किसीको इसमें कोई सन्देह हो सकता है? पूर्वकालमें जब हमारे पूर्वज नियमोंका पालन करते थे—क्या वह स्वयं ही हमारे ख़ातिर बध्य लोगोंकी लाशोंको नहीं गाड़ देती थीं, और ऐसा कोई भी चिह्न न रखती थीं, जिससे हमारा कोई पता चल सके?"

स्लीमान—"तुमने इस बातको अपने बाप-दादासे सुना है, और उन्होंने अपने बाप-दादासे सुना होगा; पर तुममें से किसीने तो कभी इस बातको नहीं देखा और यह बात ठीक भी नहीं हो सकती।"

नासिर—"यह ठीक है और बिलकुल ठीक कि हमने देवीको ऐसा करते नहीं देखा; पर हम सबने कुदालीको शामको कुँएमें फेंकते और अगले दिन प्रात:काल कुँएसे निकलते और ले जानेवालेके पास जाते देखा है। यही नहीं, हमने तो एक ही कुँएसे एक ही साथ ठगोंके भिन्न-भिन्न दलोंकी अनेक कुदालियोंको निकलते और अपने मालिकोंके पास जाते देखा है।"

स्लीमान—"अच्छा, क्या तुमने साधारण मदारियोंको कबूतरसे साँप और साँपसे ख़रगोश बनाते नहीं देखा; पर सब जानते हैं कि ऐसी बातें मदारीके हाथकी सफ़ाईके करिश्मे हैं। जो आदमी तुम्हारी कुदाली ले जाता है वह हाथकी सफ़ाई और चातुर्यके लिए प्रसिद्ध होता होगा और हाथकी सफ़ाईसे लोगोंको दिखा देता होगा कि वह कुँएसे निकली है।"

नासिर (आवेशसे)—"क्या ख़ूब! क्या ठगोंकी सौ पीढ़ियाँ आदमीकी चालाकी और ख़ुदाके करिश्मोंको नहीं जान सकतीं? क्या दैवी और मानवी शक्तिमें कोई भेद नहीं है? करिश्मे और हाथकी सफ़ाईमें कोई भेद नहीं है? एक ही स्थानपर एकत्र सैकड़ों आदमियोंमें से एकको भी नहीं मालूम होगा कि हाथकी सफ़ाई क्या होती है?"

स्लीमान—"साहिब ख़ां! तुम नासिरसे अधिक समझदार हो। क्या तुमने कभी कुदालीको कुँएमें से निकलते देखा है?"

* ऐसी बातोंका विश्वास तो आधुनिक कालके पढ़े-लिखे धूर्त और साम्राज्यवादी ठग भी नहीं करते। —लेखक।

साहिब ख़ां—"केवल एक बार। एक मुहिममें इमाम ख़ां और उसके भाईपर कुदाली ले जानेका भार था और मैंने एक दिन सवेरे उन्हें कुदालीको बुलाते सुना। कुदालियोंको उन्होंने पिछली रातको कुँएमें डाल दिया था। मैंने कुदालियोंको स्वतः ही कुँएसे निकलते और उनके कपड़ोंपर गिरते और उन्हें थामते देखा।"

स्लीमान—"और तुमने कभी अपने निजी दलके किसी आदमीको ऐसा करते नहीं देखा ?"

साहिब ख़ां—"नहीं।"

स्लीमान—"इसका फिर क्या कारण है ?"

साहिब ख़ां—"इसका बस यही कारण हो सकता है कि और लोग मेरी अपेक्षा शकुन-विचारका अधिक ख़याल रखते हैं। हम लोगोंमें स्त्रीको न मारनेका नियम है ; पर यदि कोई धनी स्त्री मिलती है तो हम हिस्सेदारीसे कुछ अधिक भाग देनेका वचन देकर किसी ठगसे उस स्त्रीको मरवा डालते हैं और उसकी ज़िम्मेदारी उसी व्यक्तिपर रहती है। कभी-कभी हम लोगोंसे अन्य वर्जित लोगों—शूद्रों—का भी वध हुआ है, जिनको नियमानुसार हमें छूना भी नहीं चाहिए था। इन नियमोंके उल्लंघन करनेसे ही ठगी प्रथाका अन्त हो रहा है।"

स्लीमान—"क्या तुम्हारे नबी मुहम्मद साहबने कहीं भी ऐसे जुर्मोंको जायज़ ठहराया है ?"

साहिब ख़ां—"नहीं।"

स्लीमान—"क्या तुम्हारे पैग़म्बरने नहीं कहा कि ऐसे जुर्म करनेवालोंको दण्डित होना पड़ेगा ?"

साहिब ख़ां—"हाँ।"

स्लीमान—"तो फिर क्या तुम्हें इस जीवनके बादके दण्डका भय नहीं है ?"

साहिब ख़ाँ—"हम तब तक किसीको नहीं मारते जब तक कि मारनेके लिए प्रेरणा और शुभ शकुन न हों। और जब शुभ शकुन होते हैं तब तो वह देवीकी आज्ञा हुई।"

स्लीमान—"कौनसी देवी और कैसी देवी ?"

साहिब ख़ां—"भवानी।"

स्लीमान—"पर तुम्हारे कहनेके अनुसार तुम्हारी आत्मापर मरनेके उपरान्त भवानीका तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता ?"

साहिब ख़ां—"कुछ भी नहीं, पर हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस जगतमें भवानी हमारे भाग्यकी विधात्री है और हमारा विश्वास है कि जिस बातके लिए भवानी इस दुनियामें प्रेरक होती है उसके लिए दूसरी दुनियामें ख़ुदा कोई सज़ा न देगा।"

स्लीमान—"और तुम्हारा विश्वास है कि यदि शकुन और नियमोंका उल्लंघन करके तुमने किसीका वध किया तो तुमको इस और अगली दुनियामें दण्डित होना पड़ेगा ?"

साहिब ख़ां—"ज़रूर। अनियमित बधसे कोई भी ठग बहुत जीवित नहीं रह सकता। उसकी कुलहानि हो जाती है। उसके सब बच्चे मर जाते हैं।"

स्लीमान—"ठीक उसी भाँति जिस प्रकार कि एक ठगके मारनेसे बधिक ठगका सत्यानाश हो जाता है ?"

साहिब ख़ां—"हाँ, वह दण्डसे बच ही नहीं सकता।"

स्लीमान—"और जब तुम शकुन और नियमके अनुसार बध करते हो तब तुमको इस और अगली दुनियाकी सज़ाका कुछ भी भय नहीं रहता ?"

साहिब ख़ां (बड़ी दृढ़तापूर्वक)—"हर्गिज़ नहीं।"

स्लीमान—"तुमको बध्य लोगोंके प्रति सहानुभूति, दया और आत्मग्लानि नहीं होती ?"

साहिब ख़ां (दृढ़ताके साथ)—"कभी नहीं।"

स्ली०—"क्या तुम्हारी पत्नियाँ तुम्हारी भर्त्सना नहीं करतीं ?"

साहिब ख़ां—"हम अपनी स्त्रियोंको अपने रहस्य बताते ही नहीं, ताकि हमारा भंडाफोड़ न हो जाय।"

स्ली०—"जिस आदमीके साथ तुमने दिखावटी मैत्री कर ली है और जिसको तुमने अपने विश्वाससे

भरमा लिया है उसको निर्दयतापूर्वक मारनेमें तुम्हें ग्लानि नहीं होती ?''

साहिब खां—''कभी नहीं। क्या आप शिकारी नहीं हैं ? क्या आपको बाघके शिकारमें घात लगाने, खोज लेने और शिकारजन्य उत्तेजनामें मज़ा नहीं आता ? क्या आपको अपने शिकारको मारकर अपने पैरोंके नीचे रखनेमें आनन्द नहीं आता ? भेद इतना ही है कि आपको जानवरोंकी पशुबुद्धि, प्राणशक्ति और चालाकीपर विजय प्राप्त करनी होती है, और हमको बुद्धिमान पुरुष और बुद्धिमती स्त्रियोंके तथा कभी-कभी हथियारबन्द स्त्री-पुरुषोंके सन्देह और भयपर विजय प्राप्त करनी पड़ती है, और उन स्त्री-पुरुषोंको इस बातका ज्ञान होता है कि मार्ग भयानक हैं। क्या आप हमारे उस आनन्दकी कल्पना नहीं कर सकते जो हमें सन्देह, शंका और भयको मैत्री और विश्वासमें बदलनेमें होता है। और उसकी पराकाष्ठा तब होती है जब वह आश्चर्यजनक क्षण आता है। तब हम रूमालसे अपने शिकारको मारते हैं। (साहिब खाँने पीले और सफेद रंगके रूमालको दिखाकर और आनन्द-विभोर होकर कहा) इस रूमालसे सैकड़ोंको ही मार डाला। हुँ ! ग्लानि और दुखकी क्या बात ? हाँ आनन्द और सुख प्राय: होता है।''

स्लीमान—''यदि तुम्हारे साथ कोई दीन यात्री या दीन यात्रियोंका दल हो, जिसके पास तुम्हें नाममात्रकी सम्पत्ति दीख पड़ती हो और यदि तुम्हें अच्छे शकुन हों, तब क्या तुम उन्हें जाने नहीं देते और वह इस आशासे कि शकुन-विज्ञानके अनुसार तुम्हें अधिक धन मिलेगा ?''

दुर्गा—''जाने देना ? कदापि नहीं। भला ऐसा कहीं हो सकता है ?''

नासी—''हम उसे जाने कैसे दें ? क्या शुभ शकुन लोगोंके बध करनेके लिए दैवी प्रेरणा नहीं है ? और यदि हम उन्हें चले जाने दें तो फिर और लोग कैसे मिलेंगे ?''

फिरंगिया—''मैंने तो इसका अनुभव किया है और ग़रीब यात्रियोंके छोड़नेपर अमीर मिल गये थे।''

इनायत—''हाँ, ठीक है। शुभ शकुनका असर ग़रीबोंको छोड़नेपर भी रहता है।''

साहिब खाँ (जो घोर कट्टरपन्थी था)—''नहीं नहीं। एक बार लोगोंके छोड़नेपर फिर अच्छा शिकार नहीं मिलता।''

मुरली—''नहीं शुभ शकुन हो और ग़रीब यात्री फन्देमें फंस गये हों, तो उन्हें जाने नहीं देना चाहिए।

बधके उपरान्त ठग लोग प्रसादका गुड़ खाते थे। उनका विश्वास था कि उस गुड़को खानेसे आत्मग्लानि नहीं होती और अधिक बध करनेकी प्रवृत्ति तीव्र होती है। ठगोंका यह भी विश्वास था कि जो कोई उस गुड़को एक बार खाले तो जन्म-जन्मान्तर तक ठग बना रहेगा।

रूमाल डालकर गला घोंटकर मारनेका काम एक दम ही नहीं करना होता था। बाक़ायदा ट्रेनिंग होती थी। बहुत-सी मुहिमोंपर जाना होता था और कोमल भावनाओंको दबाना होता था।

ठगोंके मारनेके इतने ढंग थे और उनकी चालें इतनी विविध थीं कि उनके विशद वर्णनसे कई पोथे भरे जा सकते हैं। ठगोंकी ठगीकी मुहिम, उनके दाव-पेच और उनके वाक्चातुर्यको पढ़कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। 'विशाल भारत'के पाठकोंके मनोरंजनार्थ एक घटनाका वर्णन किया जाता है। उससे ज्ञात हो जायगा कि ठग लोग अपनी कलामें कितने प्रवीण होते थे।

एक सुन्दर, अनुभवी और बलिष्ठ मुग़ल अफ़सर यात्रापर निकला। प्रतिष्ठित व्यक्ति था और इसलिए साथमें काफ़ी भीड़-भब्बड़-सा था। साथमें रक्षाके लिए एक सशस्त्र गारद भी था। मुग़ल अफ़सर स्वयं बड़ा वीर था और एक बढ़िया घोड़ेपर सफर कर रहा था। मार्गमें उसे कुछ शिष्ट और सीधे-साधे और निहत्थे हिन्दू मिले जो उसी ओरको जा रहे थे जिस ओर मुग़ल अफसरका काफिला जा रहा था। उन सीधे-साधे

लोगोंने बड़े विनम्रभावसे मुग़ल अफ़सरको प्रणाम किया और उससे वार्तालाप करनेकी चेष्टा की। पर मुग़ल अफ़सरने ठगोंकी चालाकी और उनके विषयमें अनेक कथाएँ सुन रखी थीं ; इसलिए उसने उन सीधे-सादे यात्रियोंको अपने पास तक नहीं फटकने दिया और वह धता बताई कि उन्हें उसका साथ छोड़ना पड़ा, यद्यपि उन्होंने मुग़ल अफ़सर और उसके साथियोंके सन्देहको दूर करनेका बड़ा प्रयत्न किया। बाध्य होकर उन मुट्ठीभर यात्रियोंको मुग़ल अफ़सरका साथ छोड़ना पड़ा ;

अगले दिन उसे सभ्य मुसलमान यात्रियोंकी एक टोली मिली और उन्होंने बड़ी शिष्टतासे मुग़ल अफ़सरकी कोरनिश बजाई और मार्गके भयका आतंक और अपने निहत्थे होनेका कारण बताते हुए अफ़सरके साथ चलनेकी आज्ञा चाही ; पर मुग़ल अफ़सर तो किसी भी अपरिचित व्यक्तिको साथमें न लेनेका निर्णय कर चुका था। उनके अधिक अनुग्रह और प्रार्थना करनेपर अफ़सरने उन्हें तलवार खींचकर क़त्ल करनेकी धमकी दी। फलस्वरूप उन्हें अफ़सरका साथ छोड़ना पड़ा।

पर नरव्याघ्र हतोत्साहित नहीं हुए और उसी रातको उसी सरायमें, जिसमें मुग़ल अफ़सर दलबल सहित उतरा था, सीधे-सादे यात्रियोंके एक छोटे दलने मुग़लके साईस और खानसामेसे चाटुकारी और वाक्‌चातुर्यसे सहानुभूति प्राप्त कर ली।

अगले दिन प्रातःकाल ही वे दिखावटी भोले-भाले आदमी—ठग—सिदौसे ही उठ गये। पर दिन चढ़े मुग़ल अफ़सरके दलने उन लोगोंको जा पकड़ा। उन लोगोंने बड़े आदर-भावसे मुग़लको सलाम किया और उसके नौकरोंसे वार्तालाप प्रारम्भ किया। मुग़ल अफ़सरने आपत्ति की। मुग़ल अफ़सरके चाकरोंने उन यात्रियोंकी प्रशंसा की तथा उनकी कुलीनता और प्रतिष्ठाका भी बखान किया ; पर मुग़ल अफ़सरने एक न सुनी तथा शिष्टाचार और प्रतिष्ठाके पुतलों—ख़ूँख्वार माननीय भेड़ियों—ठगोंको मुग़ल अफ़सरका साथ छोड़ना पड़ा।

पर वे मायावी राक्षस अपने कुपथसे हटे थोड़े ही, वरन उन्होंने मुग़ल अफ़सरकी मनोवृत्तिका पूरा अध्ययन कर लिया, और उसके तथा उसके दलके लोगोंके लिए क़ब्रें भी तैयार कर ली थीं—स्थान विशेषपर। अगले दिन दोपहरके समय मुग़लको एक निर्जन स्थानमें छै मुसलमान सिपाही मिले। उनके पास एक लाश भी रखी थी और क़ब्र भी तैयार थी। मुग़ल अफ़सरके आते ही उन्होंने रोना-धोना शुरू किया और कहा—"हम अशिक्षित मुसलमान सिपाही हैं। लखनऊ जा रहे हैं। हमारा साथी मर गया है। क़ब्र भी तैयार है। पर हम लोग शरीयतकी रस्म-रिवाज नहीं जानते, इसलिए हुज़ूरवाला शरीयतसे हमारे साथीको दफ़नवाकर इस और अगली दुनियामें सबाब लूटिये।"

मुग़ल अफ़सर द्रवित हो गया। संसारमें कौनसा सहृदय व्यक्ति है, जो ऐसी प्रार्थना और परिस्थितिसे गद्‌गद् न हो उठे! मुग़ल अफ़सर घोड़ेसे उतरा। हथियार दूर रखे और काबेकी ओर सबको बैठाकर नमाज़ पढ़नेको तैयार हुआ। कानोंमें उँगली डालकर जैसे ही मुग़ल और उसके साथी नमाज़को झुके कि घातक रूमाल उनके गलेमें पड़े, और इस तरह एक ही क्षणमें उनका ख़ात्मा कर दिया गया।

× × ×

स्लीमान साहबने इस प्रकारकी ठगीका अन्त कर दिया और सरकारी गवाहों—प्रसिद्ध ठगों—को आजन्म नज़रबन्द रखा ; पर इस प्रकारका रूप संसारमें किसी-न-किसी प्रकार कायम है। हाँ, भेद इतना है कि पहलेकी ठगी यदि विशूचिका थी तो अबकी तपेदिक। हमारे ख़यालसे अमेरिकाके बूटलेगर्स और क्रुक्स (चोर) पुराने ठगोंसे कम भयंकर नहीं है। कविवर रवीन्द्रने तो 'राष्ट्र संघ' तकको लुटेरोंका संघ कहा है।*

---

* कर्नल ए० स्लीमानकी अंगरेज़ी पुस्तक 'ठग और मिलियन मरडर'के आधारपर। चित्र भी उसी पुस्तकसे लिया गया है।—ले०

कम्बोडियाका शिव-मन्दिर

श्री नीलकण्ठ ए० पेरूमल, मलाया

['विशाल भारत' के पिछले अंकमें 'कम्बोडियामें हिन्दू कीर्ति' शीर्षक लेखमें अंगकोर वाटके विष्णु मन्दिरका वृत्तान्त प्रकाशित किया गया था। इस लेखमें लेखकने अंगकोरके एक शिव-मन्दिरका वर्णन किया है। —सम्पादक]

प्राचीनकालके हिन्दू राजाओंका दस्तूर था कि वे अपनी राजधानीके एक अंशकी क़िलेबन्दी करके उसके भीतर राजमहल बनाते थे। राजमहलके साथ-साथ एक मन्दिर संलग्न रहता था, जहाँ राजा निश्चित समयपर पूजाके लिए जाते थे। कम्बोडियाके ख़मेर राजाओंने जहाँ हिन्दू-धर्मको अपनाया था और उच्चकोटिकी हिन्दू सभ्यता और संस्कृतिको ग्रहण किया था, वहाँ उन्होंने इस दस्तूरको भी अपनाया था। ख़मेरोंकी

बयांके मन्दिरके शिखर। शिखरोंके प्रत्येक पहलूपर शिवकी मुखाकृति बनी है

राजधानी अंगकोर नगरीका किलाबन्दीवाला भाग 'अंगकोर थाम' कहलाता है। उसका दूसरा नाम 'यशोधरा गिरि' भी था, क्योंकि कहते हैं कि उसका निर्माण सम्राट यशोवर्मनके शासन कालमें (सन् ८८० से ९०८ ई० तक) हुआ था ! यह स्थान आजकल निर्जन और भग्नावस्थामें पड़ा है ! यहाँकी प्रधान आकर्षक वस्तुओंमें अंगकोरके सम्राटोंके भग्न राजमहल, राजमहलसे सम्बद्ध लोगोंके निवासस्थान, नाना प्रकारके कुञ्जे और कई महत्त्वपूर्ण मन्दिर हैं। लेकिन सबसे महत्त्व पूर्ण चीज़ 'बयां' (Bayon)—अर्थात् सम्राटके पूजा करनेका प्रधान मन्दिर है।

'बयां' एक छोटा मन्दिर है, जो भगवान शिवको समर्पित किया गया था, यद्यपि कुछ लोगोंका यह विचार है कि यह मन्दिर शिवका नहीं, बल्कि ब्रह्माका है। क्योंकि मन्दिरके ऊपर जो अनेक चौपहलू शिखर हैं, उनके प्रत्येक पहलूमें एक-एक मुखाकृति बनी हुई है, जैसा कि चित्रसे प्रकट होगा। कुछ लोग कहते हैं कि शिवके तो चार मुख होते नहीं, अतः यह शिव-मन्दिर नहीं हो सकता, ब्रह्माका ही है। मगर मैं समझता हूँ कि यह उनकी भूल है। शिखरके चार पहलुओंमें जो चार मुख बने हैं, वे एक ही शरीरके चार मुख नहीं हैं, बल्कि निर्माताओंने इस विचारसे कि जिस किसी पहलूसे दर्शक देखे, उसे भगवान शिवका मुख दीख पड़े, शिखरोंके प्रत्येक पहलूपर एक-एक शिवाकृति बना दी है। फिर यह भी कहा जाता है कि मन्दिरके केन्द्रस्थलमें किसी समय शिवलिंग स्थापित था। मन्दिरके बाहरी दालान (गैलरी) की दीवारोंपर जो मूर्तियाँ बनी हैं, उनमें भी शिव-पुराणके कुछ दृश्य दिखाये गये हैं। इन सब बातोंसे प्रकट है कि यह मन्दिर शिवका ही है। इसके विपरीत ब्रह्माका मन्दिर होनेका कोई चिह्न नहीं मिलता।

अंगकोरके भग्नावशेषोंमें सबसे प्रधान अंगकोर वाटका विष्णु-मन्दिर है और दूसरे नम्बरपर बयांका यह शिव-मन्दिर। वाटके मन्दिरके सदृश बयांका मन्दिर भी तिमंजिला है। इसका निर्माण बारहवीं शताब्दिमें हुआ था। मन्दिरके ऊपर अनेक चौपहलू शिखर हैं, जिनके प्रत्येक पहलूपर शिवका मुख बना है। दूसरी मंज़िलपर इस प्रकारके अट्ठाईस और तीसरीपर इक्कीस शिखर हैं। इनमें बीचका प्रधान शिखर बहुत विशाल है। ये शिखर बयांके मन्दिरकी सबसे बड़ी विशेषता हैं। अंगकोर थामके प्राचीरवेष्टित नगरके दक्षिण द्वारसे इस मन्दिरका रास्ता है। बयांका मन्दिर इस नगरीके ठीक केन्द्रमें स्थित है। आजकल इस चारों ओर घनी झाड़ियाँ उग रही हैं और दीवारोंपर जंगली लतायें लिपट रही हैं। दीवारें और शिखर जर्जरित होकर धीरे-धीरे नष्ट हो

रहे हैं, बहुत-कुछ अभी ही नष्ट हो चुका है। खेद है कि इस महान मन्दिरकी भूले-भटके थोड़ी-बहुत मरम्मत करके इसे सुरक्षित रखनेकी किसीने परवा नहीं की। फरासीसी लोग आजकल कम्बोडियाके संरक्षक हैं, उनका कर्तव्य है कि यथासम्भव मरम्मत करके इन कीर्ति-स्थानोंकी रक्षाकी व्यवस्था करें। प्रतिवर्ष अंगकोरके दर्शनार्थ दूर-दूरसे हज़ारों यात्री एकत्रित होते हैं, जिनसे बहुत पैसा भी एकत्रित होता है। इस पैसेका कुछ भाग मरम्मतमें लगना चाहिये।

वयांमें प्रवेश करके पहले हमें बाहरी दालान या गैलरी मिलती है। दक्षिणी गैलरीमें प्रवेश करके मैं पश्चिमसे पूर्वकी ओर चला। इस गैलरीकी दीवारोंपर जनसाधारणके घरेलू जीवनके दृश्य दिखाये गये हैं। स्त्री भोजन बना रही है, बढ़ई बसूला चला रहा है, पहलवान कुश्ती लड़ रहे हैं, कुछ अपनी ताक़तके खेल दिखा रहे हैं, एक पंगतमें आदमी बैठे हुए दाहने हाथसे भोजन कर रहे हैं। उसके बाद युद्धके दृश्य आते हैं। फिर जंगली जानवरोंकी लड़ाइयाँ, मुर्गोंकी लड़ाई, हाटका दृश्य और नर्तकियाँ अंकित हैं। इस गैलरीकी बाईं ओर पूरब दिशावाली गैलरीमें भी ऐसे ही दृश्य हैं, जिनमें नट और बाजीगर भी अपने-अपने करतब दिखाते हुए चित्रित हैं।

उत्तरी गैलरीमें युद्धका दृश्य है। पराजित सेना नायक रस्सीमें जकड़े हुए बड़े हास्यपूर्ण ढंगसे घसीटे जाते दिखाये गये हैं। आगे बढ़नेपर भगवान बुद्धकी एक मूर्ति ध्यानावस्थामें मिलती है। इसके बाद पत्थर खाली छोड़ दिया गया है। एक स्थानपर जान पड़ता है कि युद्धका एक और दृश्य अंकित करनेकी चेष्टा की गई थी, लेकिन वह अधूरा ही छोड़ दिया गया है। उसके बाद योगी, घुड़सवार, जंगल और जंगली जानवर अंकित किये गये हैं।

पश्चिमी गैलरी युद्धके दृश्योंसे आरम्भ होती है। इन दृश्योंके बाद कुछ नग्न योद्धा हाथमें अस्त्र लिये दीख पड़ते हैं। एक सिंहासनपर कोई सरदार बैठा है, और सैनिक दो मनुष्योंके कटे हुए सिर उसके आगे रख रहे हैं। इसके आगेवाले दृश्यमें एक विशाल बाघ-द्वारा पीछा किये जानेपर एक दाढ़ीवाला योगी एक पेड़पर शरण ले रहा है। इस गैलरीके सिरेपर एक राजमहल बनता दिखाया गया है। राज-मज़दूर महल बनानेमें व्यस्त हैं।

इस प्रकार इन गैलरियोंमें घूमकर वयांकी परिक्रमा समाप्त हो जाती है। अब हम दक्षिणी द्वारसे मन्दिरके भीतर प्रवेश करते हैं। मन्दिरकी दूसरी मंज़िलमें भी इसी प्रकारकी गैलरियाँ हैं। इन गैलरियोंकी दीवारोंपर पहले एक दरबारका दृश्य मिलता है, जिसमें राजा-रानी चारों ओर मुसाहबोंसे घिरे हुए सिंहासनपर बैठे हैं। फिर एक सेना जाती दीख पड़ती है, जिसके बाद एक पालकीको दास ले जाते दिखाये गये हैं। थोड़ा आगे चलकर एक मज़ेदार दृश्य दिखाया गया है। एक आदमी नारियलके पेड़पर चढ़कर नारियल तोड़ रहा है और नीचे एक चोर लालच-भरी निगाहसे उसे देख रहा है।

पूरबकी ओरकी गैलरीमें एक भावुकतापूर्ण राजकुमारी बड़ी कोमलतासे एक अंगूठीको अपने हृदयसे लगा रही है। इससे थोड़ी दूर आगे कुछ सुन्दरी स्त्रियाँ हाथमें लकड़ियाँ लिये नाच रही हैं और सिंहासनपर बैठे हुए राजा नाच देख रहे हैं। राजाके समीप कुछ पुजारी फूल और रुद्राक्षकी माला पहने खड़े हैं। इस दृश्यके बाद ही एक पहाड़ दिखाया गया है, जिसपर कुछ साधु धर्मग्रन्थ लिए बैठे हैं।

आगे बढ़कर गजारोही, अश्वारोही और पैदल सेना निकलती दिखाई गई है। एक विदूषक हाथमें घंटा लिए चल रहा है, जिसके पीछे तीन पालकियोंपर राजकुमारियाँ जाती दिखाई गई हैं। इन पालकियोंके ऊपर तीन रथ अंकित हैं, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश आरूढ़ दीख पड़ते हैं।

ऊपरकी उत्तरी गैलरीमें सिंहासनपर बैठे हुए राजा दिखाये गये हैं, जिनके सामने एक पार्षद अदबसे छातीपर बायाँ हाथ रखे हुए झुका खड़ा है। फिर भारतीय ढंगके बाजेवाले और नर्तकियाँ दिखाई गई हैं। फिर भगवान शिवकी प्रतिमा अंकित है, जिसके चारों ओर पूजार्थी खड़े हैं। फिर ताड़ वृक्षोंका एक उद्यान है, जिसमें भगवान विष्णु लक्ष्मीके साथ टहलते दिखाये गये हैं। इस गैलरीमें आगे चलकर रावण कैलाशको उठाये खड़ा है, जिसपर शिवजी विराजमान हैं। एक दूसरे चित्रमें शिवजी वामांगमें पार्वतीको लिए हुए नान्दीपर सवार अप्सराओंका नृत्य देख रहे हैं। इसके बाद काम-दहनका चित्र है। इसके सिरेपर प्राचीन कालके तीन जलयान नदीमें तैर रहे हैं। नदीके तटपर शिवजी खड़े देख रहे हैं।

प्रहरी द्वारा रक्षित एक राजमहलके चित्रके साथ यह गैलरी समाप्त होती है।

पश्चिमी गैलरी समुद्र-मन्थनके दृश्यसे प्रारम्भ होती है। इस चित्रकी विशेषता यह है कि हनुमानजी शेषनागकी दुम पकड़े खड़े हैं, और मन्दराचल पर्वत एक कछुवेकी पीठपर दिखाया गया है। कछुवेका मुख विष्णुका-सा है।

इसके आगे ब्राह्मण पुजारी खड़े स्तुति कर रहे हैं और फूल चढ़ा रहे हैं। फिर एक गुहामठ दिखाया गया है, जिसमें इधर-उधर हरिण, पक्षी और मछलियाँ अंकित हैं। यहाँ एक महल सदृश भवन भी अंकित है, जिसके समीप विष्णु भगवान खड़े हैं।

मैंने ऊपरकी गैलरियाँ दक्षिणकी ओरसे देखनी शुरू की थीं। प्रवेश-द्वार दक्षिणी गैलरीके ठीक बीचोबीच है, अतः मैं दक्षिणी गैलरीका पश्चिमी भाग नहीं देख सका था। अब मैं उसे देखने पहुँचा। यहाँ अनेक मनोरंजक दृश्य दिखाये गये हैं। पहले एक राजा अपने नौकरोंको आज्ञा देता हुआ अंकित किया गया है, फिर वही एक घोड़े जुते रथपर सवार होता दीख पड़ता है। इसके बाद विष्णु भगवान आते हैं, जिनके सामने भक्तगण दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं। फिर एक वनका दृश्य है, जहाँ तपस्वी तपस्या कर रहे हैं। तत्पश्चात् भगवान शिव एक ओर खड़े हैं और अप्सराएँ पद्म-पुष्पोंपर नृत्य करती दीख पड़ती हैं। अगले चित्रमें एक बाघ किसी मनुष्यको चीर-फाड़ रहा है। अन्तमें नटराज त्रिशूल लिये ताण्डव करते दीखते हैं।

अब तीसरी मंजिलपर प्रवेश करना होता है। मगर इस पर चढ़नेमें विशेष सावधानी रखनी पड़ती हैं, क्योंकि सीढ़ियाँ टूटी और लुढ़काऊ हैं। इसके अलावा इस मंजिलपर छोटे-छोटे पेड़-पौधे भी उग आये हैं। इसी मंजिलमें मन्दिरके देवताका मुख्य स्थान था। इस मंजिलपर चारों ओर अनेक चौपहलू शिखर हैं। इनमें केन्द्रस्थित विशाल शिखर विशेषकर दर्शनीय है। आजकल इस शिखरके भीतर जाना कुछ कठिन है, क्योंकि भीतर घनी घास उग रही है और अंधेरा भी काफी है। किसी समय जहाँ मन्दिरकी प्रधान मूर्ति—शिवलिंग—स्थापित थी, वहाँ आजकल सैकड़ों चमगादड़ निवास करते हैं! चीनी लेखक चुवा ता क्वानके कथनानुसार—जो अठारहवीं शताब्दिमें खमेर दरबारमें चीनका राजदूत था—बयांका केन्द्रीय शिखर नीचेसे ऊपर तक खालिस सोनेसे मढ़ा था।

अंगकोर वाटकी भाँति बयांको भी पन्द्रहवीं शताब्दीमें थाई (स्यामी) लोगोंने आक्रमण करके और लूट-खसोटकर नष्ट कर दिया था। कहते हैं कि बयांमें अगाध धन-सम्पत्ति थी। यह कथा प्रचलित है कि जब थाई लोग मन्दिरको लूटनेके लिए आनेवाले थे, तो प्रधान पुजारीने मन्दिरकी समस्त सम्पत्ति किसी गुप्त स्थानमें छिपा दी थी, जिसका उसने किसी अन्य व्यक्तिको पता भी नहीं दिया। जब लुटेरे आये और उन्होंने धनके बारेमें प्रश्न किया, तो पुजारीने बतानेसे साफ इनकार कर दिया। इसपर उन्होंने पुजारीका सिर काटनेकी आज्ञा दी, जिसे उसने शान्तिपूर्वक सहन किया, लेकिन शत्रुओंको धन-सम्पत्तिका पता न दिया। थाई लोगोंने बयांके मन्दिरमें जो कुछ पाया लूट लिया, लेकिन खमेरोंका (कम्बोडियाके निवासी) आज तक यही विश्वास है कि उस पुजारीने जो धन-सम्पत्ति छिपाई थी, आज तक उसे कोई नहीं पा सका है। वे कहते हैं कि अभी भी वह यहीं कहीं गड़ी पड़ी है। लेकिन इन भग्नावशेषोंमें उसकी ढूँढ-खोज करनेकी हिम्मत ही कौन कर सकता है? फिर यह तो केवल एक दन्तकथा मात्र है। कौन निश्चयपूर्वक कह सकता है कि पुजारीके गुप्त तहखानेका पता थाई लोगोंने न लगा लिया होगा और धन न लूट ले गये होंगे? लेकिन ये तर्क कम्बोडियावालोंके शताब्दियों पुराने विश्वासको मिटानेमें असमर्थ हैं और उनका अब भी यह विश्वास है कि कभी-न-कभी कोई बयांकी उस अगाध सम्पत्तिको खोज निकालेगा।

सफाई

धन्यकुमार जैन

कलकत्ता शहर। हज़ारों मोटर, लाखों आदमी, करोड़ों रुपया। बस, इतने ही अन्याय, इतने ही दुराचार और इतनी ही बीमारियाँ।

ज़रा-सा घर। न हवा, न घाम, न उजेला। गरीब आदमी। बारह रुपयेकी नौकरी। बुढ़िया मा, मरीज़ स्त्री, एक बच्चा।

× × ×

आफिसके बाबूने बुलाया—'राम!'

—'हुज़ूर।'

—'तुमको टीका हुआ?'

—'नहीं हुज़ूर।'

—'अच्छा लगाओ, सरकारका तरफसे एइ बाबू लगाने आया, सब-कोईको लगाने होगा, लगा लो।'

रामने चुपचाप टीका लगवा लिया। प्रश्न करनेसे उत्तरके बदले डाँट-डपट मिलती। फिर अपने काममें जुट गया। मगर बाबुओंमें आज दिन-भर यही चर्चा चलती रही। उसके कानमें भी भनक पहुँची—'आजकल शहरमें जोरोंकी चेचक है, लोग बहुत मर रहे हैं, घरमें खूब सफाई रखनी चाहिए, टीका लेना अच्छा है, बच्चोंको तो जरूर ही लगवा देना चाहिए।'

—दो—

शाम। सड़कों और मकानोंमें बिजली। ज़मीनसे ऊपरको मोटरोंकी धूल और आसमानसे नीचेको कोयलेका धुआँ—उसपर कुहरा। आदमी कहाँ जाय? अमीर मोटरपर पार्क। गरीब पैदल अपने पिंजड़े-से, नहीं, बकस-सी कोठरीमें।

—'अम्मा!'

—'क्या बेटा?'

—'लल्लाको टीका लगवा देना है—कल आठ बजे जाकर। सहरमें बड़ी जोरकी माता निकल रही हैं, आदमी बहुत मर रहे हैं।'

—'लल्लाको तो बुखार है, आज दुपहरसे।'

—'ऐं!'

कुछ देर तक सन्नाटा।

—'अम्मा अब!'

—'तू घबरा मत। लल्लाको तो नजर लग गई है। अभी बहूने मिरचें डाली थीं, जरा भी भस नहीं आई। कमबखत किसनाकी माकी ऐसी—''

—'नहीं अम्मा—'

फिर सन्नाटा।

—'जा तू, खा, फिकर मत कर, सब भगवान मालिक हैं।'

—तीन—

आधी रात। नींद नदारद। आफिसके बाबुओंकी बातें—रामके दिमागमें—सफाई! सफाई! पहले तीन बच्चे मर चुके हैं,—अब!

घरके भीतर—दो हाथका कच्चा आँगन, सामने ऊँचे मकानोंके पाखानोंकी भींत, उनकी खिड़कियोंसे बदबू! बाहर—छोटीसी तंग गली, कूड़ेके ढेर, राह-चलतोंका पेशाब!

× × ×

दिन। आफिस। काम-काजका झंझट।

'क्रिङ्'—'क्रिङ् क्रिङ्'—'क्रिङ् क्रिङ्'

रामके कान बंद।

पास बैठे हुए दूसरे बैराने कहा—'राम! बाबू घंटी····'

राम चौंक पड़ा।

इसी तरह एक दिन, दो दिन, तीन दिन।

—चार—

चौथे दिन, जब आफिसका क्लार्क रामके नामके आगे गैरहाज़िरी दर्ज कर रहा था, तब राम घरमें खाटपर बेहोश पड़ा हुआ अपनी मा और स्त्रीसे आँसू वसूल कर रहा था।

अड़ोसी-पड़ोसियोंसे अच्छी तरह पिटनेसे पहले उसकी शायद यही धारणा थी कि सबके हाथ-पैर जोड़नेसे कमसे कम १०-१५ रोज़के लिए कूड़ा-पेशाब बन्द हो जायगा, वकील-बाबूके पैरों पड़नेसे वे १०-१२ रोज़के लिए जरूर पाखानोंकी खिड़कियाँ बन्द करवा देंगे। छोटे बच्चोंपर कौन दया नहीं करेगा?

बे-पढ़ा-लिखा गँवार बेचारा, इतनी-सी बात भी न समझ सका कि दयाके लिए लोग अपने अधिकार थोड़े ही छोड़ देंगे!

—पाँच—

तेरहवें रोज, बिना खाये-पीये ठीक टाइमसे राम आफिस चला। मालूम नहीं, किस चौराहेसे उसकी आँखें बंद-सी हो गईं। दोपहरको उसने अपनेको नीमतल्ला-मरघटमें पाया। यहीं तो वह अपने लल्लाको लाया था! यह तो आफिस नहीं है!

× × ×

जिस दिन वह आफिसका रास्ता न भूलकर ठीक टाइमसे आफिस पहुँचा, उस दिन वहाँ कोई दूसरा ही राम उसका काम बजा रहा था।

ऋतुराज

श्री रामसहाय पाण्डेय 'चन्द्र'

(१)

लतिकाएँ समीरके चुम्बनसे—
सकुचीं, लगीं लाजसे गात छिपाने।
प्रतिमूर्ति-सी स्वर्णिम भावनाकी
तितली लगीं नृत्य-कला दिखलाने।
पिकी प्रेयसी प्रेममें बावली हो,
प्रियको लगी चावसे पास बुलाने।
रति-सी रमणीक वनस्थलीको,
रतिनाथ-सा आया वसंत रिझाने।

(२)

सजे मंजरियोंके मनोरम क्रीट,
रसालकी पंक्ति रसीली हुई।
सरसोंका सुहावना पीत दुकूल,
सँवार मही भी सजीली हुई।
कुछ अग्निके कौतुककी-सी प्रफुल्ल—
पलाश-प्रभा चटकीली हुई।
उषा सुन्दरी स्वर्गके आँगनसे,
छवि देख लजाकर पीली हुई।

(३)

अलि-पुंज निकुंजमें झूम रहे,
अपनापन भूले हुए मतवाले।
हँसती हैं कुतूहलसे कलियाँ,
उन्हें रूप-सुराके पिलाकर प्याले।
परिधान सजे हुए सौरभके,
मकरन्दकी मंजुल माँग निकाले।
कुसुमावली झाँकती हैं किसीको,
नव-पल्लवोंके अवगुण्ठन डाले।

(४)

जब आती उषा मनोहारिणी है,
लिये स्वर्णिम पात्रमें मादक हाला।
जब रत्न बिखेरती प्राची प्रिया,
जब ज्योतिसे खेलता है उजियाला।
जब सूर्यमुखी हँसती पहने—
रवि-रश्मियोंकी नव कांचन-माला।
करती अठखेलियाँ-सी तब हैं,
कुसुमाकरसे नवला खग-बाला।

अनिवार्य समाज-सेवा*

श्री जार्ज रसल 'ए० ई०'

राष्ट्रकी भलाईके लिए सामूहिक रूपमें कार्य करनेके कितने ही तरीके हो सकते हैं ; किन्तु यहाँपर एक ऐसी कार्य-प्रणालीका निर्देश किया जाता है, जिसपर भविष्यमें—जब हमारा देश स्वतन्त्र हो जायगा और जब राष्ट्रीयताके विकासके फलस्वरूप सार्वजनिक कल्याणकी भावना लोगोंमें उदित होगी—विचार किया जा सकता है, और राष्ट्रीय-जीवनमें उसका प्रयोग किया जा सकता है। इस समय संसारमें जितने राष्ट्र हैं, प्राय: उन सबमें यह नियम-सा है कि देशके प्रत्येक युवकको दो वर्ष तक सेनामें अनिवार्य रूपसे काम करना पड़ता है। उन्हें अपने देशकी रक्षा करने, यहाँ तक कि अपने देशवासियोंका बध करने तककी शिक्षा दी जाती है। युद्धकी भावना निन्दनीय अवश्य है ; किन्तु राष्ट्रकी इस भावनामें कि प्रत्येक व्यक्ति अपने देशकी रक्षाके लिए अपने जीवनके कुछ वर्ष प्रदान करे, और आवश्यकता होनेपर देश-सेवामें अपनेको उत्सर्ग कर देनेके लिए प्रस्तुत रहे, जो महत्ता है उसे तो हमें मानना ही पड़ेगा। जिस जातिका पुरुषत्व प्रसन्नतापूर्वक इतना आत्मोत्सर्ग कर सकता है, उस जातिके पुरुषोंके चरित्रमें कुछ-न-कुछ महत्ता अवश्य होगी। हमारे देशमें अनिवार्य सैनिक-शिक्षाका नियम अभी तक प्रचलित नहीं हुआ है, और यह एक तरहसे अच्छा ही है ; क्योंकि इससे हमारे सामने महत्तम राष्ट्र-सेवाका मार्ग खुला हुआ है। इस प्रकारकी राष्ट्रीय प्रचेष्टा—अर्थात् अनिवार्य नागरिक सेवाका प्रयत्न अभी तक किसी राष्ट्रने नहीं किया है।

अनिवार्य सैनिक-शिक्षाके इस सिद्धान्तको क्या हम देश-सेवाके अन्यान्य कार्योंमें प्रयुक्त नहीं कर सकते ? यदि देशके प्रत्येक युवकके लिए यह अनिवार्य कर दिया जाय कि वह अन्य युवकोंके साथ मिलकर अपने जीवनके दो वर्ष सार्वजनिक सेवा-कार्यमें लगावे तो इससे कितना बड़ा काम हो सकता है ? सुयोग्य शिक्षकोंके अधीन रखकर उन्हें ग्रामोंमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदिका प्रचार करने, परती ज़मीनको आबाद करने, जलाशय, वापी, कूप, तड़ाग आदिके जलको स्वच्छ रखने, ग्रामोंके रास्ते और पगडंडियोंको ठीक करने, नगरोंमें सार्वजनिक भवन बनाने तथा इसी प्रकारके अन्य विषयोंकी शिक्षा दी जाय और उनसे काम लिया जाय तो इससे देशके लिए एक सुन्दर सभ्यताके निर्माणमें बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है। संसारके अन्यान्य राष्ट्र अपने देशके नवयुवकोंको युद्धकी शिक्षा देनेके लिए जब उनके जीवनके कुछ वर्ष लेते हैं, तो फिर हमारा देश अपने देशके नवयुवकोंसे युद्धसे भी उच्चतर कार्य अर्थात् प्राणनाशके लिए नहीं बल्कि प्राण रक्षाके लिए, अपने जीवनका कुछ भाग देनेके लिए क्यों न कहे ? राष्ट्रके लिए यह सेवा गरीब और अमीर, उच्च और नीच सबके लिए समानरूपमें माँगी जा सकती है। हाँ, जो लोग किसी कारणसे इसके उपयुक्त न हों, जैसा कि सैनिक सेवामें भी होता है, वे इस अनिवार्य सेवा-कार्यसे बरी कर दिये जायँगे।

इस समय राज्योंकी जैसी स्थिति है, उसमें सरकारकी ओरसे यदि कोई सार्वजनिक कार्य किया जाता है, तो उसमें किसी व्यक्ति द्वारा वही कार्य किये जानेकी अपेक्षा अधिक खर्च पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति सरकारसे या म्यूनिसिपैलिटीसे अपने परिश्रम या अपनी वस्तुके लिए अधिकसे-अधिक मूल्य लेना चाहता है।

---

* श्री जार्ज रसल (ए० ई०) की गणना आयर्लैण्डके अत्यन्त प्रसिद्ध लेखकों तथा विचारकोंमें की जाती है। यह लेख उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक National Being के एक अध्यायका भावानुवाद है। चूँकि आयर्लैण्ड तथा भारतकी स्थिति अधिकांशमें मिलती-जुलती है, इसलिए यह लेख भारतीय जनताके लिए भी हितकर होगा।

—सम्पादक

ज़मीन, मज़दूरी, सामान आदि समग्र वस्तुओंका अधिकसे-अधिक मूल्य लिया जाता है ; किन्तु जनतामें यदि वास्तविक नागरिकता और सरकारके कर्तव्योंकी उच्च भावना वर्तमान हो, तो उस राष्ट्रके नागरिक यह अवश्य चाहेंगे कि सार्वजनिक भलाईके काम या ऐसे काम जिनसे राष्ट्रका गौरव बढ़े, कम-से-कम खर्चमें हों। जहाँ राष्ट्रके लिए त्यागकी भावना नहीं होगी, वहाँ राष्ट्रके लिए गौरव नहीं हो सकता। इस राष्ट्रीय गौरवके अभावके कारण ही आधुनिक सभ्यता अतीतकालीन सभ्यताओंके नगरोंके विशाल भवनोंकी तुलनामें तुच्छ प्रतीत होती है। अपने देशके प्राचीन खंडहरों और भग्नस्तूपोंके बीच विचरण करनेसे आत्माको जिस गौरव और महत्ताका ज्ञान होता है, वह क्या आधुनिक व्यवसाय-प्रधान नगरोंमें हो सकता है ? यहाँ तो आत्मापर एक प्रकारका बोझ-सा पड़ा हुआ मालूम होता है। आधुनिक व्यवसाय-प्रधान सभ्यताके सौन्दर्यके लिए किसी प्रकारकी राष्ट्रीय भावना होती ही नहीं।

इसी प्रकार यदि प्रति वर्ष देशके नवयुवकोंको अनिवार्य औद्योगिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाय, तो इससे एक बड़ा लाभ यह होगा कि देशके प्रत्येक नवयुवकको किसी-न-किसी प्रकारकी औद्योगिक शिक्षा प्राप्त हो जायगी। विनयानुशासन और आज्ञाकारिताके जो गुण सैनिक-शिक्षा द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, वे इस प्रकारकी अनिवार्य शिक्षासे सहज ही प्राप्त किये जा सकेंगे। प्रत्येक व्यक्तिको—जीवनके ऐसे समयमें जब उसे कोई काम करनेकी बड़ी आवश्यकता होती है—काम करनेका अभ्यास हो जायगा। माता-पिता अपने बच्चोंकी इस प्रकारकी शिक्षा और अनुशासनका स्वागत करेंगे। युवकोंको सरकारकी ओरसे सच्चरित्रता और बुद्धिमत्ताका सर्टिफिकेट दिया जायगा, जिसके आधारपर वे देशके औद्योगिक जीवनमें सहज ही प्रवेश पा सकेंगे। एक साथ मिलकर काम करनेसे परस्पर सौहार्द भावकी वृद्धि होगी और देशके युवक परिश्रमकी महत्ताको वास्तविक रूपमें हृदयंगम कर सकेंगे। सार्वजनीन लाभके लिए काम करते हुए इन युवकोंको इस बातका अनुभव होगा कि उनके द्वारा जो कार्य सम्पन्न होगा, उससे उनके राष्ट्रके स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रतिष्ठा एवं समृद्धिमें वृद्धि होगी। इस परिश्रमके बदले राज्यकी ओरसे उन्हें खिलाने-पिलाने और शिक्षित बनानेका प्रयत्न किया जायगा और उन्हें किसी विशेष कार्यसे परिचित कराया जायगा, जिससे अनिवार्य शिक्षाकी इस अवधिके समाप्त होनेपर वे किसी व्यक्तिगत उद्योगमें लग सकें। दो वर्ष तक इस प्रकारकी शिक्षा देनेसे नवयुवकोंमें शिथिलता और आलस्य दूर हो जायँगे, जो इस समयके उन नवयुवकोंमें दीख पड़ते हैं, जिनके ऊपर घरमें कभी कठोर अनुशासन नहीं हुआ और जो अभिभावकोंकी दुर्बलताके कारण जीवनका कोई कठोर कार्य करनेके अयोग्य बन गये हैं।

जिस राष्ट्रकी सरकारके नियन्त्रणमें इस प्रकारकी औद्योगिक सेना होगी, वह क्या नहीं कर सकता ? इस समय जिन सार्वजनिक कार्योंमें अत्यधिक व्यय होता है, वह अपेक्षाकृत कम हो जायगा। जो सार्वजनिक सेवा-कार्य इस समय अत्यधिक खर्चके कारण सरकार द्वारा नहीं किये जा सकते, वे इनकी सहायतासे सहज ही किये जा सकेंगे ; क्योंकि इसमें औद्योगिक शिक्षा और परोपकारी कार्योंका एक साथ समावेश होगा। इस प्रकारकी राष्ट्रीय सेना द्वारा बड़े-बड़े नगरोंमें बच्चोंके लिये क्रीड़ाभूमि, सार्वजनिक उद्यान, स्नानागार, व्यायामशाला, विश्राम-गृह, अस्पताल, स्वास्थ्य-निवास स्थापित हो सकते हैं, ग्रामोंमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाईका प्रबन्ध किया जा सकता है, परती जमीन आबाद की जा सकती है, सड़कोंके किनारे वृक्ष लगाये जा सकते हैं, तालाबका जल स्वच्छ रखा जा सकता है। रात्रि-पाठशाला, कला-भवन, पुस्तकालय, वाचनालय, व्यायामशाला, व्याख्यान-भवन आदि स्थापित करनेके सम्बन्धमें इस समय कितनी ही योजनाएँ शहरकी म्यूनिसिपैलिटियोंके सामने पड़ी हुई हैं, जो अर्थाभावके कारण कार्यान्वित

नहीं की जा सकतीं। सार्वजनिक कार्योंके लिए मजदूरोंको और भी अधिक मज़दूरी देनी पड़ती है। शासन-व्यय तथा देशके ऊपर जो ऋण है, उसके कारण सार्वजनिक लाभके कितने ही काम पड़े रह जाते हैं। तो क्या देशवासियोंको इस राष्ट्रीय ऋणके चुकानेमें ही अपना जीवन व्यतीत कर देना होगा, और जिस सरकारको वे टैक्स देते हैं, वह अर्थाभावके कारण उनके लिए कुछ नहीं कर सकेगी? यदि हम यह चाहते हैं कि सरकार द्वारा सार्वजनिक सेवा-कार्य हो तो शान्तिके सयम हमें देशवासियोंसे उसी प्रकार ज़बर्दस्ती सेवा लेनी होगी, जिस प्रकार युद्ध-कालमें सैनिक सेवा ली जाती है। यदि अनिवार्य सैनिक-शिक्षा उचित एवं युक्तिसंगत कही जा सकती है, तो कोई कारण नहीं कि राष्ट्रकी अन्य प्रकारकी सेवाओंके लिए अनिवार्य शिक्षा क्यों न उचित समझी जाय?

जिस कार्यक्रमका ऊपर उल्लेख किया गया है उसे पाठक निरा कपोलकल्पित न समझें। इसके द्वारा राष्ट्र-सेवकोंमें उसी प्रकारका बन्धुत्व स्थापित हो सकता है, जिस प्रकार एक सैन्यदलके अन्तर्गत काम करनेवाले सैनिकोंमें होता है। जो राष्ट्र अपने युवकोंको इस प्रकारकी अनिवार्य शिक्षा देनेका प्रबन्ध करेगा, सार्वजनिक सेवाकार्यमें वह अनुपम बन जायगा। यदि ऐसा नहीं होता, तो राष्ट्रीय सरकारका काम बस इतना ही रह जायगा कि वह देशवासियोंसे टैक्स वसूल करे, विशाल राष्ट्रीय ऋणका सूद चुकावे और किसी प्रकारके सार्वजनिक सेवाकार्य करनेमें असमर्थ होनेके कारण देशवासियों द्वारा विगर्हित समझी जाय। क्योंकि यह तो स्पष्ट है कि सरकार दोनों काम नहीं कर सकती, सार्वजनिक ऋणका सूद चुकाना और बहुव्ययसाध्य सार्वजनिक सेवाकार्यको चलाते रहना, ये दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। इसके लिए कोई न कोई उपाय ढूँढ़ निकालना ही होगा, और वह उपाय यही है कि सरकार प्रत्येक नागरिकसे सार्वजनिक सेवाकार्यके लिए दो या तीन वर्ष समय लेनेका दावा करे, जैसा कि वह देशकी रक्षाके लिए सैनिक शिक्षाका दावा करती है। आयर्लैण्ड-जैसे ग़रीब देशके लिए—जिसकी आकांक्षाएँ महत् हैं, जो अपनी सभ्यताको अधिक सुन्दर एवं महत् बनाना चाहता है, जिसके अधिवासियोंमें घोर अज्ञानान्धकार फैला हुआ है, जो रोग-शोक और दरिद्रताके कारण जर्जर हो रहे हैं—इस अनिवार्य सार्वजनिक सेवाकार्यके सिवा और दूसरा उपाय ही क्या हो सकता है? अब तक राष्ट्रोंकी ओरसे उनके युवकोंसे अनिवार्य सैनिक शिक्षाका दावा किया गया है, किन्तु आइये हम इस सेवाके स्वरूपको बदलकर अन्य प्रकारके सेवाकार्योंके लिए अपने देशके नवयुवकोंको आह्वान करें। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसकी सम्भावनाओंपर देशके नेताओं और चिन्ताशील विद्वानोंको विचार करना चाहिए।

नूरजहाँ

बंगदेशका सौन्दर्य

श्री गुरुभक्त सिंह

ऊषाकी कोमल किरणें पहिले जिसको नहलाती हैं
जिसके पगपर अगणित नदियाँ आकर सलिल चढ़ाती हैं

जिसका चरणोदक पयोधि ले सूर्य करों द्वारा वह जल
बरसा करके सारे जगपर पावन करता विश्व सकल

जहाँ रसाके सुन्दर तलपर लहराती धानी सारी
जहाँ मलयके झोंकेमें आती सुगन्ध प्यारी-प्यारी

शैलोंपर 'सालों'की शोभा नीचे शालोंके शैली
लतापाश आवद्ध दूर तक तरुओंकी अवली फैली

विरहीके दृग-से, पर्वतके चश्में करते हैं छल-छल
कल्लोलिनी विकल मानसको कहती हाथ उठा कल-कल

नारिकेलकी विटपराशिमें सुभग सरोवरके तटपर
यौवन-कलस भारसे भोरी सजल कलस लादे कटिपर

जहाँ विहरती है नितम्बिनी केश-केतको फहराती
पानराग रंजित होठोंसे मन्द-मन्द-सी मुसकाती

अथवा जहाँ रसिक बंगाली कोमल स्वरमें गाता है
मन्त्रमुग्ध हो निज प्रेयसिको अपनी बीन सुनाता है

अथवा नारिकेल कुंजोंमें नारिकेलि करता रहता
रम्भोंमें रम्भोंके संगमें रसका स्रोत जहाँ बहता

जहाँ वनोंमें वृक्ष डालपर झूला करता मलयानिल
आँखमिचौनी, धूपछाँह, हों नीचे खेल रहे हिलमिल

जिसकी झिलमिलमें चीतेका चीतल तन छिप जाता है
इस प्रकार तमके संगममें मृग भी धोखा खाता है

जिसके अंगोंपर बहती हैं गंगा-जमुनी धाराएँ
जिसके कटिकी देख क्षीणता लज्जित होती दाराएँ

केहरिगतिसे वह सरके तटपर जल पीने जाता जब
जिधर आँख फिर जाती उसकी जंगम जड़ हो जाता सब

रंग-रंगके तोता मैना जहाँ विहरते दलके दल
चातक और चकोर, कोकिला, मोर, धनेश, लवा, दहियल

सरिके तटपर चाहा, बगुला, मछुवा, सारस, आँजन ढेंक
बतें, लालसर, टीका, चकवा विचर रहे हैं विहग अनेक

जहाँ ब्रह्मपुत्रा मानससे निकली हुई बढ़ी आती
शंकर जटा जालसे गंगा निकली हुई चढ़ी आती

जहाँ गले मिल-मिलकर फिर दोनों सरिताएँ हुईं निहाल
बिछ है गया उमँगकर भूपर अगणित स्नेह-स्रोतका जाल

रज लाई हैं मिला-मिलाकर जीवनमें ब्रजमंडलसे
कृष्णचन्द्रकी केलिभूमिसे राधावरके पगतलसे

रामचन्द्रकी अवधपुरीसे ऋषि-मुनियोंके आश्रमसे
वीरोंकी बलिदान भूमिसे ब्रह्मज्ञानके उद्गमसे

रज, जिसमें विभूतियाँ अगणित मिली हुई हैं सतियोंकी
रज, जिसमें समाधियाँ सोई कितने योगी यतियोंकी

रज, वह जिसमें रक्त मिला है अमर शहीदों वीरोंका
जो स्वदेश हित हुए निछावर अटल व्रती रणधीरोंका

रज, जिसको था किलक-किलककर खाया कुँवर कन्हैयाने
जिसे निकाला मुखसे, मोदक खिला, यशोदा मैयाने

यह पावन रज त्रिभुज अंकमें सिन्धु निकट वे भर लेतीं
उठ-उठ कितना जलधि माँगता किन्तु नहीं उसको देतीं

प्रकृति नटीका रंगमंच वह रम्य देश प्यारा बंगाल
वहाँ पहुँचकर, नवदम्पति वह, छटा निरख, हो गया निहाल
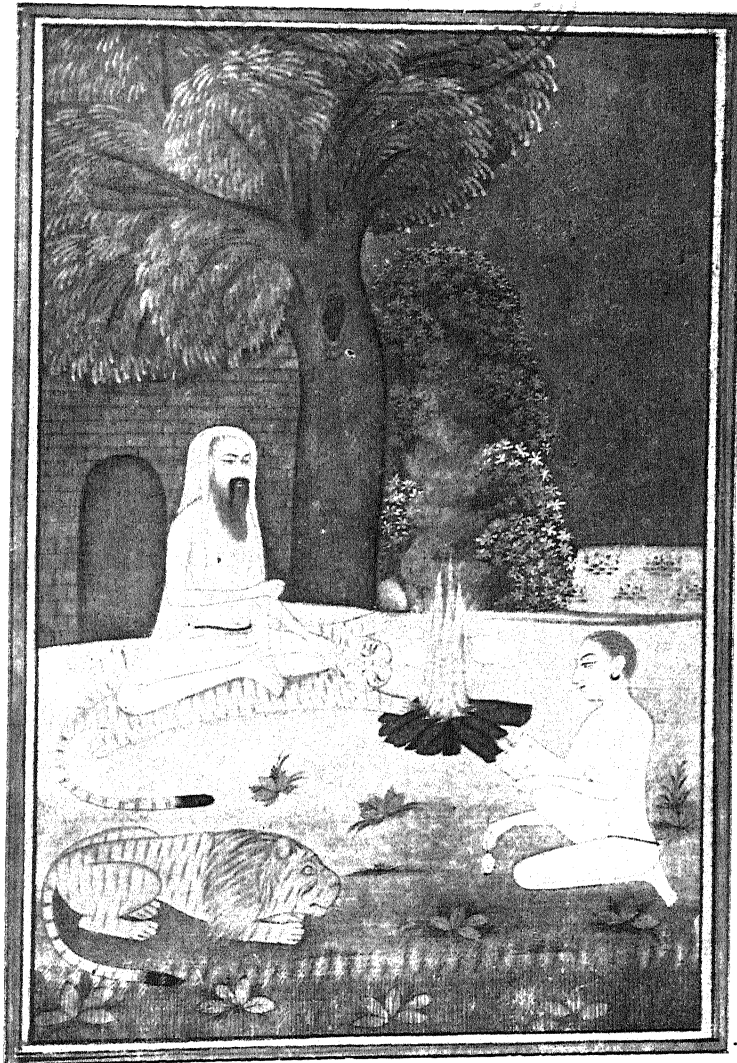
योगी

[एक प्राचीन चित्र

Prabasi Press, Calcutta.

मुंशी जगनकिशोर 'हुस्न'

बनारसीदास चतुर्वेदी

संसार विज्ञापनबाज़ोंका है। विज्ञापनके अभावमें अच्छी-से-अच्छी वस्तु जहाँकी तहाँ पड़ी रहती है, उसे कोई जानता भी नहीं; और विज्ञापनके द्वारा बुरी-से-बुरी वस्तु भी जनताके आदरका पात्र बन जाती है। कवि और उनकी कीर्तिके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। हाँ, जो महाकवि तुलसीदासकी तरह अत्यन्त उच्चकोटिके हैं, उनके बारेमें हम ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि उनकी प्रतिभा-रूपी नदी अनेक कृत्रिम बाधाओं और चट्टानोंको दूर करती हुई धाराप्रवाह रूपमें बहती और सहस्रों-लक्षों हृदय-क्षेत्रोंको अपने अमृतोपम रससे प्लावित कर देती है! विज्ञापनके बिना ही गोस्वामीजीकी रामायणका जितना प्रचार हुआ है, उतना भारतकी किसी भी देशी भाषाकी किसी भी पुस्तकका नहीं हुआ। परन्तु आधुनिक कवियोंको जनताके सम्मुख लानेके लिए अनेक साधनोंकी आवश्यकता है, और इन साधनोंके अभावके कारण कितने ही अच्छे-अच्छे कवि उस सम्मान और कीर्तिसे वंचित रह जाते हैं, जिसके वे पूर्णतया अधिकारी थे। फ़ीरोज़ाबादके उर्दू भाषाके कवि मुंशी जगनकिशोर 'हुस्न' की गणना ऐसे ही कवियोंमें की जा सकती है, जिनकी कीर्ति उपर्युक्त कारणोंसे परिमित रही, यद्यपि उनके काव्योपवनमें वह सौन्दर्य विद्यमान है, जो उनके यशःसौरभको दूर-दूर तक फैलानेमें समर्थ हो सकता है।

मुंशी जगनकिशोरका जन्म सन् १८६६ ई० में फ़ीरोज़ाबादमें एक प्रतिष्ठित भटनागर (कायस्थ) कुलमें हुआ था। उनके पिताका नाम मुंशी रूपकिशोर था। उर्दू और फ़ारसीकी पहली शिक्षा आपने शेख़ कल्लनसे और फिर मौलवी उमरावबेगसे पाई थी। बुद्धि तीव्र होनेके कारण, अपनी कक्षाके सब विद्यार्थियोंसे आप योग्य थे। ज़हीन इस क़दर थे कि सारे दिन खेलते रहनेपर भी, जो पाठ्य-विषय एक दफ़े सुन लेते या पढ़ लेते, वह सदाके लिए कंठस्थ हो जाता। मिडिलकी परीक्षाके थोड़ी ही दिन रहे थे कि आपको उसमें शामिल होनेकी उमंग पैदा हुई। पिताजीसे कहा। वे समय कम रह जानेकी वजहसे पहले तो सहमत न हुए, परन्तु बालक जगनकिशोरके विशेष अनुरोध करनेपर अनुमति देनी ही पड़ी। परीक्षा हुई और आप उसमें बैठे। पर्चे अच्छे हुए थे, और आप सन्तुष्ट ही नहीं, बल्कि ख़ुश थे; परन्तु जब नतीजा आया, तो आपका नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियोंमें न था! आपने तुरन्त परीक्षा-विभागको लिखा। लिखा-पढ़ी होते होते ही दूसरी परीक्षाका भी समय आ गया। आप उसमें भी शामिल हुए। इस बार आप प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। उसके कुछ दिन पीछे ही, गत वर्षवाली परीक्षाका भी नतीजा निकल आया—और आप इतनी थोड़ी तैयारीके बाद भी दूसरी श्रेणीमें पास हुए थे, परन्तु किसी ग़लतीकी वजहसे नाम रह गया था। इस तरह मुंशीजीको दो सर्टीफ़िकेट प्राप्त हुए।

इसके बाद वकालतका इरादा हुआ और आप फ़तहाबादमें स्व० मुंशी कालकाप्रसादके पास रहकर वकालतकी तालीम लेने लगे, और मुख़्त्यारीकी परीक्षा पास की। इनकी मुख़्त्यारी फ़ीरोज़ाबादमें ख़ूब चली, और आगरेमें प्रैक्टिस करते हुए आप राजा साहब अवागढ़के ख़ास वकील भी रहे।

कविता

'कवि बनाये नहीं बनता'—इसी तरह मुंशीजी भी जन्मसे ही कवि थे। सचमुच ही, उनकी कविता-प्रारम्भका समय निर्धारित करना कठिन है। बचपनमें चुटकले 'मिसरों' के रूपमें प्रकट होते थे; फिर ज्यों-ज्यों समझ आती गई, त्यों-त्यों उन चुटकलोंमें भी रंग आने लगा। केवल २१ वर्षकी उम्रमें 'बहार-अजुब्या'-जैसे गम्भीर काव्य-ग्रन्थकी रचना करना निश्चय ही असाधारण कार्य है। यह उनका

प्रथम ग्रन्थ था, पर उससे उनकी प्रतिभा यथेष्ट मात्रामें प्रकट होती है।

कवितामें उनके गुरु कोई नहीं थे। महाकवि ग़ालिबके काव्यमें उनको बड़ी रुचि थी, और उसको वे बहुधा पढ़ते भी थे। एक दिन 'दीवान ग़ालिब' पढ़ रहे थे और उसमें मग्न थे। मित्रगण सामने बैठे हुए थे। उनको ग़ालिबके काव्यकी ख़ूबियाँ समझा रहे थे। उस समय वे इतने उत्साहित हुए कि बहुतसे बताशे मँगवाकर उस पुस्तक ('दीवान ग़ालिब') पर चढ़ाये, जिनसे सारी पुस्तक ढक गई। यही उनकी दीक्षा थी। आगे चलकर एक दिन मित्रोंके अनुरोधसे आपने अमीर मीनाई लखनवीके पास संशोधन (इसलाह) के लिए एक ग़ज़ल भेजी। उत्तरमें महाकवि अमीरने लिखा कि इसलाहकी गुंजाइश तो थी नहीं, परन्तु आपकी इच्छानुसार इधर-उधर क़लम चला दिया है।

ऊपर जिस काव्य-ग्रन्थ 'बहार-अजुव्या' का उल्लेख किया गया है, वह फ़ारसीमें है। काव्य प्रशंसनीय है, और ऐसा मालूम होता है कि लेखककी स्वाभाविक भाषा ही फ़ारसी हो। यही उनकी योग्यता थी। इसमें भगवान रामचन्द्रजीके चरितका वर्णन है। यह ग्रन्थ उन्होंने २१ वर्षकी उम्रमें लिखा था, जैसा कि निम्नलिखित पद्यसे ज्ञात होता है—

"गुज़स्त अज़ उम्रे आजिल बिस्तो यक साल,
तुरा ऐ वा हमें बीनम दरीं हाल।"

यह पुस्तक छप चुकी है।

उनका द्वितीय काव्य था 'नौहा हजरत नासिरअली शाह'। यह एक शोक प्रकाशक कविता थी, जो उन्होंने अपने उस्ताद मौलवी उमरावबेगके गुरु नासिर शाहकी मृत्युके अवसरपर लिखी थी। यह पुस्तक भी छप चुकी है। अपना दुःख वर्णन करते हुए कविने लिखा है—

"ज़ब्त कर नालये पुर दर्दको ऐ हुस्न हज़ीं,
एक आलमको रुलायेगा जो लबपर आया।"

अन्य काव्य-ग्रन्थ

(१) 'मुसद्दिसे-हुस्न'—मुंशीजीके काव्य-ग्रन्थोंमें इस मुसद्दिसका स्थान सर्वोच्च है। इसका पूरा नाम है 'आईन-ए-इबरत' यानी 'मुसद्दिसे हुस्न मौसूम व मद्दो जज़र हिन्द'। यह मौलाना हालीके सुप्रसिद्ध मुसद्दिसके जवाबमें लिखा गया था।

मौलाना हाली साहबने अरबकी उन्नतिका चित्र खींचते हुए लिखा था—

"इधर हिन्दमें हर तरफ था अँधेरा,
उधर था जहालतने फारसको घेरा;
न भगवानका ज्ञान था ज्ञानियोंमें,
न यज़दांपरस्ती थी यज़दानियोंमें।"

यह भ्रमात्मक वर्णन मुंशी जगनकिशोरको पसन्द नहीं आया, और इसी कारण आपने मौलाना हाली साहबके मुसद्दिसके उत्तरमें अपना मुसद्दिस लिख डाला। हिन्दुस्तानकी तारीफ़ करते हुए आपने उसमें लिखा है—

"अरब ले गया इसके खिरमनसे खोशा
मिला इसके भण्डारसे सबको तोशा।"

मुंशीजीका यह काव्य देशभक्तिके भावोंसे परिपूर्ण है। इसके कुछ पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

"जिसे आज सब हिन्द कहते हैं क्या था,
जहाँसे निराला जज़ीरानुमा था,
लताफ़तसे शक्ले जिना दिलकशा था,
शुजाअतसे आलम पै फर्मारवा था।
हरएक जा तहव्वुर नुमायाँ था इसका,
सितारा बलन्दी पै तावाँ था इसका।

इसीकी ज़मींमें शफ़ाका असर था,
इसी खाक़में कीमियाँका असर था,
इसीकी दवामें बलाका असर था,
इसीकी दुआमें दवाका असर था।

तबीबे मरीज़ान आलम यही था,
अज़ीज़े दिलोजान आलम यही था।
खिरदमन्द चीनी हैं जिसके सनाख्वाँ,
सितारा हुआ जिससे यूरोपका तावाँ।

किया मिश्र यूनानको जिसने बुस्तां,
रहा जिसमें खुरशीद हिकमत दुरख्शाँ।
फज़ायलके आदाब जिसने बढ़ाये,
रज़ायलके असबाब जिसने घटाये।
करिश्माँ वह इक हिकमते हिन्दका है,
नतीजा वह इक खिदमते हिन्दका है,
नमूना वह इक फितरते हिन्दका है,
नसीबा वह इक दौलते हिन्दका है।
बिछा फर्कें आलम पै दामाँ इसीका,
रहा सबकी गर्दन पै अहसाँ इसीका।
इसी बागे रंगींसे आलम था रंगीं,
इसी रश्के जन्नतका हर इक था गुलचीं,
इसी गंजे हिकमतकी होती थी तहसीं,
इसी काने पुरज़रसे थी सबको तस्कीं।
मगर आजकल इनक़लाबे ज़माँसे,
फज़ीलतके जौहर हुए गुम यहाँसे।
मुक़ामे तअस्सुफ है, इबरतकी जा है,
कि ये क़ौमे मुमताज दरदर गदा है,
न दरबारमें इसकी वक़अत ज़रा है,
न महफिलमें ताज़ीम इसकी रवा है।
न कोई फज़ीलतका दर्जा है हासिल,
न मुमताज है अब ये बैनुल अमासिल।
तास्सुबसे बरबादियाँ इसकी देखो,
खराबीमें आबादियाँ इसकी देखो,
असीरीमें आज़ादियाँ इसकी देखो,
गमो दर्दमें शादियाँ इसकी देखो।
फक़ीरी है लेकिन अमीरीकी बू है,
फितादा है पर दस्तगीरीकी बू है।
बिगड़कर न बननेको तैयार हैं हम,
फिसलकर न उठनेको नाचार हैं हम,
सम्हलकर न चलनेको बीमार हैं हम,
बनावटकी बातोंमें हुशियार हैं हम।
तनज्जुलको इक खेल जाना है हमने,
बिगड़नेको तक़दीर माना है हमने।

कहाँ हैं वे अहले नज़रके खज़ाने,
कहाँ हैं वे खूने जिगरके खज़ाने,
कहाँ हैं वे इल्मो हुनरके खज़ाने,
कहाँ हैं वे अम्वालो ज़रके खज़ाने।
यकायक ही गैरोंके क़ाबूमें पहुँचे,
वो किसके थे और किसके पहलूमें पहुँचे।
जहाँमें अगर हर मरज़की दवा है,
तो अज़मतकी तदबीर क्यों नारवाँ है,
हर इक दर्द-इन्साका दरमाँ लिखा है,
मगर नाउमेदीका रहना बुरा है।
अलालतमें सेहतकी उम्मेद खुश है,
फलाकतमें दौलतकी उम्मेद खुश है।
वह असलाफ थी जिनकी शमशीर बुर्रा,
उदूपर बवक्ते विगा शोला अफशां,
वह असलाफ थे जिनकी हैबतसे लरज़ां,
सरे चर्ख हर लहज़ा मिरीख्रो-कैवां।
जो देखें कहीं आज नसलोंको आकर,
तो रह जाँय दांतोंमें उँगली दबाकर।
जो सोहताजो बेज़र हो रुसवा तो सच है,
जो मुफलिसको हो जाय सौदा तो सच है,
जो मफ़लूक हो ख्वारे दुनियाँ तो सच है,
जो मायूस हो गर्क़े दरिया तो सच है।
मगर जब कि बेआबरू हों तवंगर,
तो समझो कि बस अब उलटता है दफ्तर।

× × ×

खेद है कि यह उत्तम काव्य-ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित पड़ा हुआ है। आशा है, मुंशीजीके मित्र और उनकी कविताके प्रेमी इसे शीघ्र ही प्रकाशित करावेंगे।

(२) 'मुबाहिसा फीरोज़ाबाद'—सन् १८८२ में आर्यसमाज फीरोज़ाबादने जैनियोंसे शास्त्रार्थ किया था। मुंशीजीने इस शास्त्रार्थका यथार्थ वर्णन बड़ी रोचक कवितामें किया था। आप आर्य-सामाजिक विचारोंके थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक आर्य-सामाजिक दृष्टिकोणसे लिखी गई थी।

(३) 'नाटकावली'—आपको नाटक लिखने और खेलनेका बड़ा शौक़ था। आपके मित्रोंने भारत डिम-डिमा नाटक खेला था, जो लोगोंको बहुत पसन्द आया था। रातोंरात आपने विद्या-अविद्या नाटक लिख डाला। इसमें भारतकी उन्नति और अवनतिका चित्र बड़ी मार्मिक भाषामें चित्रित किया गया था। इस नाटकको आपने अपने इष्टमित्रोंके साथ स्टेजपर खेला भी था। आपके मित्रोंने भारतोद्धारक नाटक कम्पनी बनाई थी, और आपके नाटक दूसरे नगरोंमें भी खेले गये थे।

(४) 'विद्या-अविद्या'—दुर्भाग्यसे यह नाटक कहीं खो गया। इसके एकआध पद्य किसी-किसीको याद रह गये हैं। भारत, जो पहले विद्यासे प्रेम करता था, अविद्यापर आसक्त हो गया है। विद्या फिर भी प्रेमवश होकर उसके पास आती है, और इस प्रकार अपना परिचय देती है—

"मैं विद्या हूँ तुम मुझे पहचानते नहीं,
ऐसे गये हो भूल कि कुछ जानते नहीं।
काशी नगर वतन है पुराना ग़रीबका,
पर इन दिनों नहीं है कुछ इस बदनसीबका।"

परन्तु भारतने इसकी कुछ पर्वाह नहीं की और अन्तमें अपने वैरी कलजुग राजाके हाथ गिरफ्तार हो गया। भारत गढ़ेमें गिरा हुआ अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप कर रहा था, अन्तमें एक संन्यासी (स्वामी दयानन्द) ने हाथ पकड़कर उसे गढ़ेमें से निकाला और उसकी प्रेम-पात्री विद्यासे मिलनेका मार्ग बतलाया।

"है यही फिक्र तो चमकेगा सितारा तेरा,
दुख ज़रा देरमें मिट जायगा सारा तेरा।
विद्याको न ज़मानेमें कहीं पायेगा,
वेद सागरके किनारे पै अगर आयेगा।
हाथ आ जायगी वह जाने-दिलोजाँ तेरे,
फ़ज़्ले खालिक़से निकल जायँगे अरमाँ तेरे।"

भारत उस संन्यासीकी बातपर विश्वास करके फिर अपने दिन फेरनेका उद्योग करता है।

अन्य नाटक—इसके अतिरिक्त आपने और भी कई नाटक लिखे, जैसे गोपीचन्द, प्रह्लाद, नलदमन, शीरीं फ़रहाद और हरिश्चन्द्र। आपकी कवित्व-प्रतिभा बढ़ती ही जाती थी, और अपने अन्तिम दिनोंमें आप फ़ारसीमें शकुन्तला नाटक लिख रहे थे। आपका विचार इस नाटकको ईरान भेजनेका था। दुर्भाग्यसे यह नाटक अपूर्ण ही रहा, और इससे भी अधिक दुर्भाग्यकी बात यह है कि यह अपूर्ण प्रति भी कहीं खो गई। मुंशीजीके जो हस्त-लिखित नाटक अभी मिलते हैं, वे ये हैं गोपीचन्द, प्रह्लाद, नलदमन और शीरीं फ़रहाद।

'गोपीचन्द'—पाठकोंके मनोरंजनके लिए गोपीचन्द नाटकके दो-एक पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

रानी अभयसिंह दरबानसे कहती है—

"ग़ौरसे सुन अरे दरबाँ ये हक़ीक़त मेरी,
है ग़मो रंजसे लबरेज़ हिकायत मेरी।
शबको एक ख़्वाबे परीशां नज़र आया मुझको,
याँ लगी आँख उधर सो गई क़िसमत मेरी।
मैं तो उस ख़्वाबको महशरका नमूना समझी,
क्या बताऊँ हुई उस वक्त जो हालत मेरी।
चूड़ियाँ हाथकी टूटी नज़र आई मुझको,
बढ़ गई देखके इस रंजको हैरत मेरी।
था अयाँ हर दरो दीवारसे वीराँ होना,
खींचती थी सुये सहरा मुझे वहशत मेरी।
साँपकी तरहसे बल नाककी नथने खाये,
नाकमें आया था दम तंग थी हालत मेरी।
हो न ताख़ीर अभैसिंह कि है दिलको अज़ाब,
जल्द राजाको सुना जाके हक़ीक़त मेरी।
बस यहाँ उनको बुला ला कि तसल्ली हो मुझे,
इस घड़ी सख़्त परीशाँ है तबीयत मेरी।"

राजा अपनी मासे कहता है—

"खोये देती है क्यों सुख हमारा,
तूने ऐ मां ये क्या है विचारा?
किस तरह घरसे जंगलको जाऊँ,
किस तरह बनमें धूनी रमाऊँ?

कैसे होंगी ये बातें गवारा,
तूने ऐ मां ये क्या है विचारा ?
छूट सकती है किससे अमीरी ?
मुझसे होगी न ऐ मां फक़ीरी।
कैसे जंगलमें होगा गुज़ारा ?
तूने ऐ मां············
फौजो लश्करको किसपर मैं छोड़ूँ,
किस तरह तुमसे मुँह अपना मोड़ूँ ?
पीछे फिर कौन है मां तुम्हारा ?
तूने ऐ मां············
रानियाँ जब कि रोयेंगी सारी,
रंजो अंदोह फुरकतकी मारी।
जोग हो जायगा नष्ट सारा—
तूने ऐ माँ············"

माका उत्तर—

"छोड़ दे लोभ और मोह सारा,
मान ऐ जान कहना हमारा।
बैठ जा जल्द धूनी लगाकर,
साध अब जोग जंगलमें जाकर।
वहेर हस्तीसे कर अब किनारा।
मान ऐ जान कहना हमारा।
छोड़ दे बेधड़क तख्त शाही,
जल्द ऐ जान हो बनको राही।
ढूँढ़ जाकर गुरुका सहारा।
मान ऐ जान············
फौजो लश्कर हैं किसके प्यारे,
सब ये सुखके हैं साथी तुम्हारे।
दुखमें कर जाते हैं सब किनारा।
मान ऐ जान············
जान ऐ जान इस जगको फानी,
याँ पै राजा बचैगा न रानी।
कालने है नहीं किसको मारा।
मान ऐ जान············"

मुंशीजीके नलदमन तथा शीरीं-फ़रहाद नाटकोंके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

'नल-दमन'—नलका स्वप्नमें दमनको देखकर आसक्त हो जाना। वज़ीरसे कहना, वज़ीरका समझाना और इश्ककी बुराई करना—

स्वर्गीय मुंशी जगनकिशोर 'हुस्न'

नल—"सच है जो कुछ कि कहा तुमने, मगर क्या कीजे,
दिलके लगनेको कोई शग्ल तो पैदा कीजे।"
वज़ीर—"कीजिए वहरे खुदा, सैर गुलिस्ताँ जाकर,
देखिए आँखसे रंगे गुले खन्दाँ जाकर।"
नल—"खन्द-ए गुल तो न ज़िनहार खुश आएगा मुझे,
खन्द-ए यारकी फिर याद दिलाएगा मुझे।"
वज़ीर—"खन्द-ए गुलसे जो नफ़रत है, तो जाने दीजे,
शौक़े दिलको सूए शमशाद ही आने दीजे।"
नल—"सैर शमशादसे बढ़ जायगी वहशत कुछ और,
फिर करेगा क़दे दिलदार, क़यामत कुछ और।"
वज़ीर—"खैर शमशाद गुलिस्ताँसे किनारा कीजे,
आइए, नरगिसे शहलासे इशारा कीजे।"
नल—"देखकर नरगिसे शहलाको क़यामत होगी,
चश्मे जानाँके तसव्वुरसे नदामत होगी।"
वज़ीर—"सर्व शमशादो गुलो नरगिसे शहला न सही,
क़ाबिले दीद किसीका भी तमाशा न सही।
पेचो खम सुंबुले पेचाँसे इशारा कीजे,
दिलके लगनेको यही मशग़ला पैदा कीजे।"

नल—"देखके सुंबुले ज़ोलीदाको, मर जाऊँगा,
याद में ज़ुल्फ़े परेशाँके बिखर जाऊँगा।
सैर गुलशनसे न ठहरेगी तबीयत मेरी,
और भी इससे बिगड़ जायगी हालत मेरी।"

'शीरीं-फ़रहाद नाटक'—शीरींको देखकर, फ़रहादका आसक्त होना—

(ग़ज़ल मुस्तज़ाद)

"हाय तक़दीर मुझे किसलिए लाई इस जा,
हाथसे दिल भी गया।
ख़ूब यह शक्ल नई मुझको दिखाई इस जा,
रंग ही और हुआ।
ढूँढ़ना मुझको पड़ा सरके लिए अब पत्थर,
हो गया ख़ूने जिगर।
दिलमें वहशतने अजब आग लगाई इस जा,
किस मुसीबतमें पड़ा।
हाय, मैंने तो किस उम्मेद पै छोड़ा था वतन,
गोर है और न कफ़न।
साथ-ही-साथ मेरे मौत भी आई इस जा,
यासो हसरतमें मरा।
हिज्रे याराने वतनमें था मेरा हाल ज़बून,
हाय, अब क्या मैं करूँ।
सब्रो ताक़तने भी की मुझसे जुदाई इस जा,
कोई साथी न रहा।"

नाटकके अन्तमें फ़रहाद और शीरींकी मुलाक़ात और बातचीतका कुछ भाग—

फ़रहाद—"पैदा मुझे किया ग़मे हिज्राँके वास्ते,
मैं खस्त: दिल था, हसरतो हिरमाँके वास्ते।
थी मेरी जान फ़ुरक़ते जानाँके वास्ते,
दस्ते जिनूँ बना, मेरे दामाँके वास्ते।
मैं मर गया, तब आई तू, दरमाँके वास्ते,
की चश्म तर तो आशिक़े बेजाँके वास्ते।"

शीरीं—"रोती थी ज़ार-ज़ार तेरे इन्तज़ारमें,
था एकदम भी चैन न लैलो निहारमें।
अब तक नहीं है शक मेरे क़ौलो क़रारमें,
रहना पसन्द है, इसी गर्दो ग़ुबारमें।
रख अपने पास मुझको, तू ए जाँ, मज़ारमें,
आराम बाद मर्ग तो पाऊँ, किनारमें।"

फ़रहाद—"हो अब ग़मे फ़िराक़में ए जाँ न अश्कबार,
कर बहरे वस्ल, रोज़े क़यामतका इन्तज़ार।
फ़ुर्सत नहीं मुझे कि अजल सर पै है सवार,
रुख़सतके वक़्त तुझसे यह कहता हूँ बार-बार।
मैं मर गया तब आई तू दरमाँके वास्ते,
रोई तो हाय, आशिक़े बेजाँके वास्ते।"

शीरीं—"बे तेरे अब बदनमें न ठहरेगी मेरी जान,
ज़िन्दा रहूँगी मैं न कभी ज़ेरे आसमान।
उलफ़तका मेरी तुझको, मुनासिब है इम्तहाँ,
फिर ऐसा वक़्त मुझको मिलेगा भला कहाँ?
रख अपने पास मुझको, तू ए जाँ मज़ारमें,
आराम बाद मर्ग तो पाऊँ, किनारमें।"

फुटकर कविता

मुंशी जगनकिशोर अपने काव्यके बारेमें बड़े लापरवाह थे। काव्य-रचनामें सिद्धहस्त हो चुके थे, इसलिए आपने अपनी कविताओंको संग्रह करनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी; क्योंकि वे चाहे जब चाहे जैसी गज़ल सहज ही में लिख लेते थे। उनकी लिखी हुई सैकड़ों गज़लोंमें से एक भी पूरी नहीं मिलती। जो दो-चार पद्य मुंशीजीकी कविताके प्रेमियोंको याद रह गये हैं, उन्हें हम उदाहरणके लिए यहाँ उद्धृत किये देते हैं :—

"अपनी लगन लगी है उसी महलक़ाके साथ,
जो रश्के आफताब है नूरो ज़याके साथ।
पहलूमें ढूँढ़ते हो बताओ तो किसलिए,
दिल भी चला गया है उसी दिलरुबाके साथ।
रोशनका हाल आप पै रोशन है मूब मू,
फिर पूँछते हो किसलिए नाज़ो अदाके साथ।
ज़िन्दा जो छोड़ देंगी तेरी बेवफाइयाँ,
फिर दिल लगायेंगे न किसी बेवफ़ाके साथ।"

"दिलके हुए न तुम तो हमें दिलसे क्या गिला,
आखिर हुआ है कौन किसीका सिवाय दिल।
आ जाओ तेग लेके करो वार शौक़से,
तुम दिलको आज़माओ तुम्हें आज़माए दिल।
आहन नहीं है, संग नहीं, मोम ही तो है,
दिलमें लगे जो आग तो क्योंकर बुझाए दिल।
अश्कोंसे आब आतिशे ग़मपर छिड़क चुके,
अब भी जले तो शौक़से चूल्हेमें जाय दिल।
यह देखते हैं ख्वाने मुहब्बत बिछाके हम,
ग़मकी गिज़ाये दिल है कि ग़म है गिज़ाये दिल।
थीं क्यों नबर्दे इश्क़में ऐ हुस्न गर्मियाँ,
करते हो अब जो बैठके तुम हाय-हाय दिल।"

× × ×

"तेरी तलवारके पानीके किसी जा हरगिज़,
हमसे होंगे न ज़मानेमें पियासे पैदा।
किस क़दर यारके हैं आरज़े रंगीं नाज़ुक,
बोसा लेनेसे भी होते हैं मुहासे पैदा।"

समस्या-पूर्ति

सुप्रसिद्ध कवि दाग़ने एक गज़ल लिखी थी—

"आरज़ू यह है कि निकले दम तुम्हारे सामने,
तुम हमारे सामने हो हम तुम्हारे सामने।"

दाग़ साहबके एक शिष्यने यह गज़ल एक मुशायरेमें पढ़ी थी। उस समय हमारे चरित-नायकको इसका दूसरा मिसरा महज़ तुकबन्दी जँचा और यह बात आपने उसी वक्त साफ़ कह भी दी। उसपर दाग़ साहबके शिष्यने कहा—आप ही इससे बहतर मिसरा लगाइये। तब आपने दूसरा मिसरा यह लगा दिया—

"आरज़ू यह है कि निकले दम तुम्हारे सामने,
जी उठूँ गर हो मेरा मातम तुम्हारे सामने।"

इसी तरहपर आपने एक गज़ल भी लिखी—

"हम नहीं कहते कुछ अपना ग़म तुम्हारे सामने,
देख लो हैं दीदये पुरनम तुम्हारे सामने।
हुस्ने मुश्ताक़े अजलको क़त्लमें कब उज्र है,
है सरे तसलीम ख़म हर दम तुम्हारे सामने।
जी नहीं सकते लबे जाँबख़शके मारे हुए।
दम बख़ुद हैं ईसये मरियम तुम्हारे सामने।"

ज़ौक़की इस समस्यापर भी 'रूए सहर रंगे शफ़क़' आपने अनेक पद्य लिखे थे। नमूनेके लिए एक पद्य सुन लीजिए—

"तेरी हिनामें कीनावर ख़ूने उदूमें होके तर,
दिखलाती है वक्ते विदा नूरे सहर रंगे शफ़क़।"

फ़ीरोज़ाबादमें आपने कई मुशायरे (कवि-सम्मेलन) कराये थे। एक मुशायरेकी तरह थी—

"मेरी रफ़्तारसे भागे हैं बयाबाँ मुझसे।"

सब शायरोंके इकट्ठे हो जानेपर भी आप अपनी गज़ल नहीं लिख पाये। फिर बड़ी मुश्किलसे आपको फ़ुर्सत मिली और थोड़ेसे वक्तमें ही आपने एक उत्तम कविता लिख डाली, जिसका प्रथम पद्य यह था—

"चश्मे गँवार है ज़ीनत दहे मिज़गाँ मुझसे,
एक काँटे पै कई गुल हैं नुमायाँ मुझसे।

और भी—

या इलाही मेरी उम्मेद न बर आये कहीं,
ग़ैरसे भी वही वादा है जो पैमाँ मुझसे।"

'रखना मेरी मज़ारपै दो संग सब्ज़ सुर्ख़' इस समस्यापर भी आपने पचीस शेर बनाए थे।

आशु-काव्य

मुंशीजी बड़े आशु-कवि थे। एक बार उनके मित्र मुंशी व्रजबिहारीलालने एक तरह उनके पास भेजी—

"मायूस मरीज़ोंको मसीहा नहीं मिलता।"

उन दिनों आप वकालतकी पढ़ाईमें लगे हुए थे, आपने फ़ौरन ही उक्त समस्याके नीचे लिख दिया—

"क़ानूनसे दम भर मुझे वक्तका नहीं मिलता।"

एक बार इनके मित्र अंग्रेज़ी मिडिलकी परीक्षाके कारण बड़े परेशान बैठे हुए थे। आप वहाँ जा पहुँचे। पूछनेपर मित्रोंने कारण बतलाया। आपने उसी वक्त ये पद्य बना डाले—

"रात दिन मेहनतसे न हनत होगी,
ये भी कर लेंगे जो फ़ुर्सत होगी।
स्टडी कोहसे भारी है हमें,
किस पै पत्थरकी तबीयत होगी।

गर मुक़द्दरमें नहीं शीरीनी,
दाल रोटी पै क़नाअत होगी।
ऐ मिडिल तुझ पै खुदाकी लानत!
हिन्दसे कब तेरी रुखसत होगी।
मारे फिरते हैं तेरे शैदाई,
जानें क्या-क्या अभी ज़िल्लत होगी।"

मित्रोंके कहनेसे आपने एक बार अपने एक साथीके विषयमें, जो कभी अपने सौन्दर्यके लिए प्रसिद्ध नहीं थे, तत्काल ही ये शेर बना डाले—

"दहने जिश्तको गोपालका गिलखन कहिये,
या इसे इक खुमे चिरकीनका रोज़न कहिये।
आँखको नंगो हया शर्मका दुश्मन कहिये,
नाकको ग़ार कहे, वादीये ऐमन कहिये।
टाँगें बरगदकी भी टहनीसे बड़ी हैं कुछ-कुछ,
सख्त लकड़ीसे हक़ीक़तमें कड़ी हैं कुछ-कुछ,
पंगी टाँगोंके नमूने पै पड़ी हैं कुछ-कुछ,
तनके छप्पर तले थुनकी-सी खड़ी हैं कुछ-कुछ।
पाँवके वास्ते जूता जो बनाया जावे!
कम-से-कम काममें इक बैलका चरसा आवे।"

जिन महाशयके बारेमें उपर्युक्त पद्य बनाये गये थे, वे वहाँ मौजूद थे। बेतरह नाराज़ हुए। मित्रगण हँसीके मारे लोटपोट गये। उन महाशयसे कहा गया—"भाई कुछ मीठा लाओ, तो तुम्हारी तारीफ़के शेर बनावें।"

आज्ञा-पालन होनेपर आपने कहना शुरू किया—

"अबरू तुम्हारी दश्नओ खंजरसे कम नहीं,
पलकोंकी नोक भी सरे नश्तरसे कम नहीं।
लाखों तुम्हारी आँखकी गर्दिश पै मस्त हैं,
बेशक ये दौर गर्दिशे सागरसे कम नहीं।
क्या ताब माहकी कि करे मुँहका सामना,
चेहरा तुम्हारा महरे मुनव्वरसे कम नहीं।
चेचकसे और चेहर ए अनवरको ज़ेब है,
हरएक दाग़ हुस्नमें अख्तरसे कम नहीं।
क्या जल्द लिया मुल्के दिलको छीन यकबयक,
मूये सियाह जंगके लश्करसे कम नहीं।"

अन्तमें किसी ज़रूरी कामकी वजहसे आखिरी शेर कहकर वहाँसे चले गये—

"कमयाब शै क़लील भी होती है क़ीमती,
इतना भी वस्फ हुस्ने सखुनवरसे कम नहीं।"

स्वभाव

'हास्य-प्रियता'—मुंशी जगनकिशोरजी खूब हँसते और हँसाते थे। आपके एक हास्य-पात्र, जो एकाक्षी थे, बैंगनके नामसे चिढ़ते थे। उनको छेड़नेके लिए आपने तत्काल शायरी की—

"नाम बैंगनसे जो चिढ़ते हो गज़ब करते हो,
क्या कहीं भूलमें तुम खा गये काना बैंगन?
मैं न लूँगा तेरे रुखसार सियहका बोसा,
कौन खाता है ज़मानेमें पुराना बैंगन?
क्यों खफ़ा होते हो थू-थूका तमाशा क्यों है,
हाय, ऐसा तो बुरा भी नहीं नाना बैंगन।"

मुंशीजी सितार बहुत अच्छा बजाते थे। आपको चौसर खेलनेका भी शौक़ था और शतरंजके तो आप बहुत अच्छे खिलाड़ी थे।

मृत्यु

जिसने अपनी प्रखर प्रतिभाके प्रकाशसे तत्कालीन कवि-मंडलको आश्चर्यचकित कर दिया था, जिनके हास्य-प्रिय स्वभावपर सभी मुग्ध थे और जिनसे भविष्यमें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, वही मुंशी जगनकिशोर ३५ वर्षकी आयुमें (३० मार्च सन् १८९९ को) इस संसारसे चल बसे। फीरोज़ाबाद नगरका गौरव बढ़ाकर उन्होंने नगर-निवासियोंको अपना चिरऋणी बना लिया; अतएव आशा है कि नगर-निवासी उनके ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेका प्रबन्धकर उनकी कीर्ति-रक्षामें सहायक होंगे और इस प्रकार यशके भागी बनेंगे। मुंशीजी निःसन्तान मरे, पर उनका काव्य ही चिरकाल तक उनके नामको जीवित रखेगा।

"रहता सखुनसे नाम क़यामत तलक है 'ज़ौक़',
औलादसे तो है यही दो पुश्त चार पुश्त।"

नीति क्या है और ज़िन्दगी किसे कहते हैं ?

प्रिन्स क्रोपाटकिन

मानवीय विचारका इतिहास हमें पेन्डुलमके झूलनेका स्मरण दिलाता है, जिसके झूलनेमें शताब्दियाँ लग जाती हैं। चिरकालीन निद्राके बाद जब जागरणका समय उपस्थित होता है, तो मानवीय विचार अपनेको उन श्रृंखलाओंसे मुक्त कर डालता है, जिन श्रृंखलाओंसे शासक, क़ानून-पेशावाले और धर्मयाजकोंने अपने स्वार्थके लिए उसे बड़ी सावधानीसे आवेष्टित कर रखा है।

वह श्रृंखलाओंको छिन्न-भिन्न कर डालता है। उसे अब तक जो कुछ शिक्षायें मिली हैं, उनकी वह तीव्र आलोचना करता है, और जिन धार्मिक, राजनीतिक, क़ानून सम्बन्धी तथा सामाजिक पक्षपातपूर्ण विचारोंमें होकर वह अंकुरित एवं पल्लवित हुआ है, उनकी शून्यताको वह नग्न रूपमें प्रकट कर देता है। वह नवीन मार्गोंपर चलकर अनुसन्धान करता है, नवीन आविष्कारोंसे हमारे ज्ञानको वर्द्धित करता है और नूतन विज्ञानकी सृष्टि करता है। किन्तु विचारके बद्धमूल शत्रु—सरकार, व्यवस्थापक और पुरोहित—फिर शीघ्र ही अपनी पराजयको भूलकर आगे आ जाते हैं। क्रमशः वे अपनी बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्र करते हैं और अपने धर्म-विश्वास तथा नियम-विधानको नूतन आवश्यकताओंके अनुरूप बनाते हैं। इसके बाद विचार और चरित्रकी दासतासे लाभ उठाकर, जिसको उन्होंने स्वयं बड़ी ही निपुणताके साथ जनतामें पैदा किया है, तथा समाजकी असंगठित व्यवस्थासे भी लाभ उठाकर, और कुछ लोगोंके आलस्य, कुछ लोगोंके लोभ और बहुतोंकी सर्वोत्तम आशाओंसे लाभ उठाकर वे चुपचाप फिर अपने कार्यको—सबसे पहले शिक्षा द्वारा बच्चोंपर अधिकार जमाकर—ग्रहण कर लेते हैं।

बच्चेकी आत्मा दुर्बल होती है। उसे भय दिखाकर बाध्य करना सहज है। वे ऐसा ही करते हैं। वे बच्चेको भीरु बना डालते हैं और तब वे उसे नरककी यन्त्रणाओंके किस्से बतलाते हैं। वे उसके सामने पापियोंके कष्ट और निष्ठुर ईश्वरकी प्रतिहिंसाका चित्र चित्रित करते हैं, फिर दूसरे ही क्षण वे क्रान्तिकी भयंकरताओं और क्रान्तिकारियोंके कुछ अत्याचारोंका वर्णन करके बच्चेको शान्ति और व्यवस्थाका समर्थक बनानेकी चेष्टा करते हैं। पुरोहित बालकको विधि-विधानोंसे अभ्यस्त बनाता है, जिससे वह 'ईश्वरीय नियम' का अच्छी तरह पालन कर सके। वकील ईश्वरीय कानूनके बारेमें बार-बार ज़िक्र करता है, जिससे मानवीय कानूनोंका अच्छी तरह पालन किया जा सके।

आत्म-समर्पणके इस अभ्यासके कारण—जिससे हम लोग अच्छी तरह परिचित हैं—भावी पीढ़ीके विचारमें भी वही टेढ़ापन रह जाता है, जो दाससुलभ होनेके साथ-साथ शासनात्मक होता है; क्योंकि प्रभुता और दासता साथ-साथ चलती हैं।

तन्द्रालसताके इस मध्यवर्तीकालमें नीतिज्ञानपर कदाचित ही विवेचना होती है। धार्मिक अनुष्ठान और न्यायविषयक पाखंड उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। लोग किसी बातकी समालोचना नहीं करते, बल्कि अभ्यास या उदासीनताके कारण वस्तु-स्थितिको ज्योंके त्यों रूपमें स्वीकार कर लेते हैं। चिराचरित नीतिनिष्ठाके विरुद्ध कुछ बोलनेका उनमें साहस नहीं होता। वे इस बातकी पूरी चेष्टा करते हैं कि जो कुछ वे अपने मुँहसे कहते हैं उसके अनुकूल उनका आचरण प्रतीत हो।

मनुष्यमें जो कुछ सत्, महान्, उदार या स्वतन्त्र था, उसपर क्रमशः काई लगने लगती है और उसपर उसी तरह जंग लग जाता है, जिस तरह काममें नहीं आनेवाली छुरीपर। मिथ्या उस समय धर्म बन जाता है

और एक साधारण बात कर्त्तव्य बन जाती है। जो लोग सुख-चैनसे जीवन व्यतीत करते हैं, उनका ध्येय होता है—चाहे जैसे हो, अपनेको धनवान बनाना, आये हुए अवसरोंसे लाभ उठाना, अपनी बुद्धि उत्साह और शक्तिका पूर्ण रूपसे मनमाने उद्देश्यके लिए उपयोग करना। ग़रीब लोगोंका ध्येय भी यही बन जाता है, क्योंकि उनका आदर्श भी तो यही होता है कि मध्यम श्रेणी-जैसा अपनेको प्रदर्शित करें। इसके बाद शासक और न्यायकर्त्ता, धर्मयाजक और धनी तथा मध्यम श्रेणीका अधःपतन इतना घृणास्पद हो उठता है कि पेन्डुलम दूसरी ओर झूलने लगता है।

धीरे-धीरे युवक-सम्प्रदाय अपनेको इन बन्धनोंसे मुक्त कर डालता है। वह अपने पूर्व-निश्चित विचारोंको दूर फेंक देता है और प्रत्येक विषयकी समालोचना करने लगता है। चिन्तना-शक्ति जाग्रत होती है पहले तो थोड़े लोगोंमें, और फिर इसके बाद अज्ञात रूपसे वह जनता तक पहुँच जाती है। फिर आवेग उत्पन्न होता है और उसका परिणाम होता है क्रान्ति।

प्रत्येक बार नीतिनिष्ठाका प्रश्न उपस्थित होता है। 'मैं इस पाखंडपूर्ण नीतिनिष्ठाके सिद्धान्तोंका अनुसरण क्यों करूँ?'—धार्मिक भयसे मुक्त मस्तिष्कमें यह प्रश्न उपस्थित होता है। कोई नीतिनिष्ठा बाध्यतामूलक क्यों होनी चाहिए?

जीवनके प्रत्येक अवसरपर लोगोंके सामने जो नैतिक भावना उपस्थित होती है, उसका कारण बतलानेकी वे चेष्टा करते हैं, यद्यपि वे स्वयं उसे नहीं समझते। और जब तक वे यह समझते रहेंगे कि यह नैतिकताकी भावना केवल मनुष्योंमें ही पाई जाती है, और जब तक वे पशु-जगत या पाषाण-जगतका अध्ययन नहीं करते, तब तक इसे समझनेके लिए वे इसकी व्याख्या कर भी नहीं सकेंगे। किन्तु उपयुक्त अवसर उपस्थित होनेपर वे इसका उत्तर ढूँढ़ते हैं।

और यदि हम यह कहनेका साहस करें, तो कह सकते हैं कि समाजमें प्रचलित नीतिनिष्ठा, अथवा यों कहिये कि पाखंडका—जिसने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है—आधार जितना ही अधिक क्षीण होगा, उतना ही अधिक समाजका नैतिक धरातल ऊँचा उठेगा। ठीक ऐसे समयमें ही, जब कि लोग प्रचलित नीतिनिष्ठाकी आलोचना करते हैं और उसे अस्वीकार करते हैं, नैतिक भावनाकी सबसे अधिक उन्नति होती है। इसी समय इसका विकास होता है, उत्थान होता है और इसमें विशुद्धता आती है।

वर्षों पहले रूसके युवकोंको इसी प्रश्नने अत्यधिक विक्षुब्ध कर दिया था। "मैं नीतिभ्रष्ट बनूँगा!"—एक निहिलिस्ट युवक अपने मित्रके पास आता और उससे कहता। इस प्रकार उसने अपने उन विचारोंको कार्य रूपमें परिणत कर दिखाया, जिनके कारण उसे चैन नहीं मिलता था। "मैं नीतिभ्रष्ट बनूँगा, और मुझे ऐसा क्यों नहीं बनना चाहिये? क्योंकि बाइबिलकी ऐसी शिक्षा है? किन्तु आख़िर बाइबिल भी तो बेबलोनियन और हिब्रू जातिकी परम्परागत कथाओंका—जो कथायें होमरके पद्य-जैसे या इस समय भी बास्कके पद्य और मंगोलियाकी कथाओंका जैसा संग्रह हो रहा है—संग्रह मात्र हैं। तो क्या मैं भी अपने मनकी स्थितिको पूर्वकी अर्द्धसभ्य जातियों जैसी बना लूँ? क्या मुझे इसलिए सदाचारी बनना चाहिए कि दार्शनिक कान्टने बताया है कि मेरे अन्तरतमसे एक रहस्यमय आदेश होता है और वह मुझे सदाचारी बननेके लिए कहता है? किन्तु इसी आदेशका मेरे कार्योंके ऊपर उस आदेशकी अपेक्षा विशेष प्रभुत्व क्यों हो, जो आदेश समय-समयपर मुझे मद्य-पानके लिए प्रेरित करता है। 'ईश्वर' या 'दैव' जैसे शब्द सिर्फ़ इसलिए गढ़े गये हैं कि उनके द्वारा हम अपनी अज्ञानताको छिपा सकें।

"या शायद मुझे इसलिए सदाचारी बनना चाहिए कि दार्शनिक वेन्थमने मुझे बताया है कि यदि मैं एक पथिकको, जो नदीमें गिर पड़ा है, खड़ा होकर डूबते हुए देखनेकी अपेक्षा स्वयं डूबकर बचा लूँ, तो इसमें मुझे अधिक आनन्द प्राप्त होगा? या शायद इसलिए कि

मुझे ऐसी ही शिक्षा मिली है ; क्योंकि मेरी माने मुझे नीतिज्ञानकी शिक्षा दी थी ? तो क्या मैं गिरजामें जाकर और घुटने टेककर उपासना करूँ, राजमहिषीका अभिवादन करूँ, न्यायकर्ताके सामने—जिसे मैं एक दुरात्माके रूपमें जानता हूँ—माथा टेकूँ, सिर्फ इसलिए कि हमारी माताओं—भोलीभाली अबोध माताओं—ने हमेंइस तरहकी बहुत-सी झूठमूठकी बातें सिखलाई हैं ?

"मैं भी, और लोगोंके समान ही पूर्व संस्कारोंसे विजड़ित हूँ। मैं इन संस्कारोंसे अपनेको मुक्त करनेकी चेष्टा करूँगा। यद्यपि नीतिभ्रष्टता मेरे लिए विरक्तिजनक होगी, तथापि मैं अपनेको ज़बर्दस्ती उसी प्रकार नीतिभ्रष्ट बनाऊँगा, जिस प्रकार लड़कपनमें मैंने बलपूर्वक अपनेको अन्धकार, गिरजा, भूत-प्रेत और मृतकके भयसे मुक्त किया था, जिन सबसे भय करना मुझे सिखलाया गया था।

"धर्म द्वारा जिस साधनका दुरुपयोग हुआ है, उसे भंग करना नीतिविरुद्ध होगा ; मैं ऐसा करूँगा, और वह इसलिए कि सदाचारके नामपर पाखंडका जो बोझ हमारे ऊपर लाद दिया गया है, उससे अपनी रक्षा करूँ।"

रूसके युवकोंने जब पुराने ज़मानेके कुसंस्कारोंका परित्याग किया था, और निहिलिष्ट या अनार्किस्ट दर्शनका झंडा फहराया था, उस समय वे इसी ढंगसे तर्क-वितर्क किया करते थे। किसी भी प्रभुताके सामने घुटने नहीं टेकना, चाहे वह कितनी ही सम्माननीय क्यों न हो ; किसी भी सिद्धान्तको तब तक ग्रहण नहीं करना, जब तक वह बुद्धि द्वारा प्रमाणित न हो।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अपने पूर्वजोंके उपदेशको रद्दीकी टोकरीमें फेंककर, और नीतिज्ञानकी सारी पद्धतियोंको जलाकर निहिलिष्ट युवकोंने अपने बीच नैतिक आचारोंका एक ऐसा केन्द्र बना लिया, जो उन सब बातोंसे कहीं श्रेष्ठ था, जिनका आचरण उनके पूर्वजोंने 'धर्मवाक्य', 'अन्त:करण', 'अन्तरात्माका आदेश' या 'परोपकारितासे लाभ' इन सब बातोंके अधीनस्थ होकर किया था ; किन्तु इस प्रश्नका उत्तर देनेके पूर्व कि 'मैं सदाचारी क्यों बनूँ ?' पहले हम यह देखें कि यह प्रश्न ठीक तौरसे रखा गया है या नहीं। आइये हम पहले मानवीय क्रियाके उद्देश्यका विश्लेषण करें।

मनुष्य अच्छा या बुरा काम क्यों करता है, इसका कारण जब हमारे पूर्वज बतलाना चाहते थे, तो वे बहुत ही सीधे ढंगसे काम लिया करते थे। अब तक भी इस प्रकारकी कई कैथोलिक सम्प्रदायकी मूर्तियाँ पाई जाती हैं, जिनसे इस विषयकी व्याख्यापर प्रकाश पड़ता है। एक मनुष्य रास्तेसे होकर जा रहा है। उसे इस बातकी बिलकुल ख़बर नहीं है कि वह अपने बायें कंधेपर एक शैतानको और दाहिने कंधेपर एक देवदूतको वहन किये जा रहा है। शैतान उसे पापकर्म करनेके लिए प्रेरित करता है। यदि देवदूतका आदेश ग्रहण करके वह धर्मनिष्ठ बना रहता है, तो अन्य तीन देवदूत उसे पकड़कर स्वर्ग ले जाते हैं। इस प्रकार सब शुभाशुभ कर्मोंकी व्याख्या बड़े ही अच्छे ढंगसे हो जाती है।

रूसकी बुड्ढी धाइयाँ—जो इस प्रकारकी कहानियोंकी खान होती हैं—आपको बतायँगी कि बच्चेके कुरतेके गलेका बटन खोले बिना उन्हें बिछौनेपर नहीं सुलाना चाहिए। गर्दनके नीचे एक गरम स्थान ख़ाली छोड़ देना चाहिए, जहाँ रक्षक देवदूत सुखसे आश्रय ग्रहण कर सके। ऐसा नहीं करनेपर शैतान सोते हुए बच्चेको भी पीड़ा पहुँचायगा।

इस प्रकारकी सरल भावनाएँ अब लुप्तप्राय हो रही हैं ; किन्तु, यद्यपि पुराने शब्द लुप्त हो रहे हैं ; फिर भी उनका जो वास्तविक भाव है, वह पहलेके समान ही बना हुआ है।

सुशिक्षित व्यक्ति अब भूत-प्रेत या शैतानमें विश्वास नहीं करते ; किन्तु उनकी भावनाएँ हमारी धाइयोंकी अपेक्षा अधिक युक्तिसंगत नहीं कही जा सकतीं। दर्शनशास्त्रके नामपर बाहरी तड़क-भड़कके शब्दोंसे वे शैतान और देवदूतको छिपा देते हैं। आधुनिक

समयमें वे 'शैतान' न कहकर इसे 'इन्द्रिय-लालसा' या 'मनोविकार' कहते हैं। देवदूतके बदले 'अन्त:करण' या 'आत्मा' शब्दका व्यवहार होता है ; किन्तु मनुष्यकी क्रियाओंको इस समय भी दो विरोधी तत्त्वोंके बीच होनेवाले संग्रामका परिणाम बताया जाता है। और मनुष्य ठीक उसी मात्रामें धर्मनिष्ठ समझा जाता है, जिस मात्रामें इन दो तत्त्वोंमें से एक—आत्मा या अन्त:करण — दूसरे तत्त्व—इन्द्रिय लालसा या मनोविकार—पर विजय प्राप्त करता है।

जब अंगरेज दार्शनिकोंने और उनके बाद विश्वकोषके निर्माताओंने इन आदिम भावनाओंके विरुद्ध यह दृढ़तापूर्वक कहना शुरू किया कि 'शैतान या देवदूतके साथ मानवीय कार्यका कोई सम्बन्ध नहीं है, और मनुष्यके सब कार्य—शुभ या अशुभ, हितकर या अहितकर—सिर्फ एक ही अभिप्रायसे उत्पन्न होते हैं ; और वह अभिप्राय है सुखोपभोगकी कामना' उस समय हमारे बाप-दादोंको कितना आश्चर्य हुआ होगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

सम्पूर्ण धार्मिक समाजने और खासकर धर्मध्वजियोंके विभिन्न दलोंने इसे 'दुर्नीति' कह कर चिल्लाना शुरू किया। चिन्ताशील विद्वानोंपर अपमानोंकी बौछार होने लगी और उन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया गया। इसके एक शताब्दी बाद जब बेन्थम, जान स्टुयार्ट मिल, चरनिसमेस्की तथा अन्य बहुतसे दार्शनिकोंने इसी तत्त्वका प्रतिपादन करना शुरू किया, और जब इन मनीषियोंने यह दृढ़तापूर्वक कहना और सिद्ध करना शुरू किया कि अहंवाद या भोगकी वासना ही हमारी समस्त क्रियाओंका वास्तविक अभिप्राय है, तो उनके ऊपर अभिशापकी वर्षा द्विगुणित रूपमें होने लगी। मौनावलम्बनका षड़यन्त्र रचकर उनकी रचनाओंको वर्जित कर दिया गया, और रचयिताओंके प्रति स्थूलबुद्धि व्यक्तियों जैसा व्यवहार किया गया। किन्तु उन्होंने जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था, उससे बढ़कर अधिक सत्य और क्या हो सकता है ?

एक आदमी ऐसा है, जो एक बालकके मुखका अन्तिम ग्रास छीनकर खा जाता है। उसके सम्बन्धमें प्रत्येक व्यक्ति यही कहेगा कि वह एक भयानक स्वार्थपरायण मनुष्य है और एकमात्र स्वार्थपरताके भावसे ही वह उत्प्रेरित होता है।

अब एक ऐसे आदमीको लीजिये, जिसे प्रत्येक व्यक्ति धर्मनिष्ठ समझता है। वह स्वयं भूखा और नंगा रहकर भूखोंको अन्न और नंगोंको वस्त्र प्रदान करता है। नीतिपरायण व्यक्ति अपने धर्म-सम्बन्धी अपलापोंकी पुनरावृत्ति करते हुए फौरन यह कह बैठेंगे कि उक्त मनुष्यका अपने पड़ोसीके प्रति प्रेम आत्मोत्सर्गकी सीमापर पहुँच गया है, और वह स्वार्थपरायण व्यक्तिकी अपेक्षा एक सम्पूर्ण भिन्न मनोविकारके आदेशानुसार आचरण करता है। किन्तु कुछ ही विचार करनेके बाद हमें शीघ्र इस बातका पता चल जायगा कि दोनों प्रकारके कार्योंमें मनुष्य-जातिके लिए परिणामकी दृष्टिसे चाहे कुछ भी अन्तर क्यों न हो, किन्तु दोनोंका उद्देश्य एक ही है। वह उद्देश्य है सुखोपभोगका सन्धान। जिस मनुष्यने स्वयं नंगा रहकर दूसरेको अपना वस्त्र दे दिया, उसे यदि ऐसा करनेमें आनन्द नहीं मिलता, तो वह इस कामको नहीं करता। यदि उसे बालकके हाथसे रोटी छीननेमें आनन्द मिलता, तो वह भी ऐसा ही करता ; किन्तु यह काम उसके लिए विरक्तिजनक था। उसे दान करनेमें आनन्द मिलता है, इसलिए वह दान करता है। जिन शब्दोंका अर्थ बहुत दिनोंसे प्रचलित हो गया है, उनका नये अर्थमें उपयोग करनेमें यदि भ्रम नहीं हो, तो यह कहा जा सकता है कि दोनों ही दशाओंमें उक्त मनुष्योंने अपने अहंकारजनित मनोद्वेगसे प्रेरित होकर कार्य किया था। कुछ लोगोंने ठीक ऐसा ही कहा है, और इस विचारको प्रधानता देने तथा इस भावनाको स्पष्ट रूपमें व्यक्त करनेके लिए उसे इस रूपमें रखा है, जिससे वह चमत्कारपूर्ण प्रतीत हो, साथ ही इस मिथ्या भावनाका अन्त कर डाले कि इन

दो क्रियाओंके अभिप्राय भिन्न-भिन्न हैं। उनका अभिप्राय एक ही है, और वह है सुखका सन्धान अथवा दुःखका परिहार! ये दोनों बातें एक ही हैं।

दृष्टान्तके लिए सबसे अधम दुरात्माको लीजिये। थेयर्स जैसा नराधम, जो ३५ हजार पेरिस-निवासियोंकी हत्या कर डालता है, अथवा एक हत्यारा जो सम्पूर्ण परिवारकी इसलिए हत्या करता है कि जिससे वह व्यभिचार-पंकमें अपनेको निमग्न कर सके। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि उस क्षणमें यश या अर्थकी कामना उनकी अन्य सब कामनाओंको दबा देती है। यहाँ तक कि यह कामना, यह दूसरी पिपासा उनकी दया और करुणा तकको कुछ समयके लिये विनष्ट कर देती है। अपनी प्रकृतिकी वासनाको तृप्त करनेके लिए वे स्वतःप्रेरित भावसे कार्य करने लगते हैं। अच्छा, अब प्रबल मनोविकारकी बात छोड़कर एक ऐसे तुच्छ व्यक्तिको लीजिये, जो अपने मित्रोंको धोखा देता है, जो प्रत्येक व्यक्तिके सामने हाथ फैलाता है, और अपने वाक्चातुर्य या धूर्ततासे कुछ-न-कुछ ऐंठ लेता है। एक ऐसे मालिकको लीजिये, जो अपने नौकरोंको इसलिए ठगता है, जिससे वह अपनी पत्नी या प्रेमिकाके लिए जवाहिरात खरीद सके। चाहे किसी भी तुच्छ दुरात्माको लीजिये। वह जो कुछ करता है, अपने मनोद्वेगके आदेशानुसार। वह अपनी इन्द्रिय-लालसाकी तृप्ति चाहता है, या ऐसी वस्तुसे भागना चाहता है, जिससे उसे कष्ट पहुँचे।

इस प्रकारके तुच्छ दुरात्माओंके साथ हम ऐसे व्यक्तिकी तुलना करनेमें लज्जा बोध करते हैं, जो अत्याचार-पीड़ितोंको मुक्त करनेके लिए अपने अस्तित्व तकका बलिदान कर देता है, और रूसके निहिलिस्टके समान फाँसीके तख्तेपर चढ़ जाता है। इन दो प्रकारके जीवनोंका परिणाम मानवताकी दृष्टिसे जितना ही अधिक विभिन्न होता है, उतना ही हम एककी ओर आकृष्ट होते हैं, और दूसरेकी ओरसे विरक्त बने रहते हैं।

यदि आप एक ऐसी शहीद स्त्रीसे, जो फाँसीपर झूलने जा रही हो, उसके फाँसीके मंचके पास पहुँचते समय उससे बातें करें, तो वह आपको बतायगी कि वह अपने जीवन या मृत्युका विनिमय उस तुच्छ दुरात्माके जीवनसे नहीं करना चाहती, जो अपने मजदूरोंके वेतनसे पैसे चुराकर अपनी जीविका निर्वाह करता है। उसे अपने जीवनमें, महान शक्तिशाली अत्याचारियोंके साथ संग्राम करनेमें अत्यधिक आनन्द मिलता है। इस संग्रामके सिवा और सब कुछ, मध्यम श्रेणीके समस्त आनन्द और कष्ट उसे कितने हेय, कितने क्लान्तिजनक, कितना शोचनीय प्रतीत होते हैं! वह आपके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहेगी—"तुम जीवन धारण नहीं करते, बल्कि अकर्मण्य बनकर घास-फूसकी तरह उगते हो, मैंने प्रकृत जीवन धारण किया है।"

यहाँ हम मनुष्यके सुचिन्तित और सचेतन कार्योंकी चर्चा कर रहे हैं। फिलहाल हम उन बातोंकी चर्चा नहीं करते, जिन्हें हम मनुष्यके अचेतन कार्य कहते हैं, जो कार्य यन्त्रवत् होते रहते हैं और जिनका हमारे जीवनमें एक बहुत बड़ा भाग होता है। मनुष्य जो कार्य सुचिन्तित और सचेतन रूपमें करता है, उसमें वह सदा ऐसी बातोंकी खोज करेगा जिससे उसे आनन्द मिले।

एक व्यक्ति जो मद्य सेवन करके प्रतिदिन अपनेको पशुकी दशामें अधःपतित कर रहा है, वह ऐसा इसलिए करता है कि उसे मद्यमें जो स्नायविक उत्तेजना प्राप्त होती है, वह उत्तेजना उसे अपने मांसपेशियोंसे प्राप्त नहीं हो सकती। दूसरा आदमी मादक पदार्थका सेवन नहीं करता, आनन्द-दायक मालूम होनेपर भी वह शराब नहीं पीता, और वह ऐसा इसलिए करता है जिससे वह अपने विचारोंकी नूतनता और शक्तियोंकी प्रचुरताको क़ायम रख सके, और वह अन्य आनन्दोंका उपभोग कर सके, जिन्हें वह मादकताकी अपेक्षा विशेष वांछनीय समझता है। किन्तु उस समय उसका आचरण क्या वैसा ही नहीं होता, जैसा उस सुस्वादु

भोजनके प्रेमीका, जो भोजमें नाना प्रकारके व्यंजनोंपर दृष्टिपात करके किसी एक व्यंजनका—जिसे वह बहुत पसन्द करता है—परित्याग कर देता है, ताकि वह दूसरे व्यंजनको, जिसे वह पहलेकी अपेक्षा विशेष पसन्द करता है, यथेष्ट ग्रहण कर सके ?

जब एक स्त्री अपना अन्तिम ग्रास किसी आगन्तुकको दे देती है, जब वह अपने शरीरपर के चिथड़े उतारकर दूसरी स्त्रीको, जिसे सर्दी लग रही हो, तन ढकनेके लिए दे देती है, और स्वयं जहाजके डेकपर खड़ी-खड़ी सर्दीसे ठिठुरती रहती है ; तो वह ऐसा इसलिए करती है कि उसे स्वयं अपने भूखे रहने या सर्दीसे ठिठुरनेकी अपेक्षा दूसरे भूखे मनुष्यको देखकर अथवा सर्दीसे ठिठुरते हुए दूसरी स्त्रीको देखकर विशेष कष्टका अनुभव होगा। वह एक ऐसी पीड़ासे बचना चाहती है, जिसकी गुरुता वे ही लोग समझ सकते हैं, जिन्होंने इसे महसूस किया है।

Guyau नामक लेखकने अपनी पुस्तकमें एक ऐसे आस्ट्रेलिया-निवासी मनुष्यका दृष्टान्त दिया है, जो अपने मनमें इस धारणाको पोषण करते रहनेके कारण क्षीण होता जा रहा था कि उसने अब तक अपने कुटुम्बियोंकी मृत्युका बदला नहीं लिया है। वह अपनी भीरुताका ख़याल करके दिन-दिन कृश और म्लान होता जा रहा था, और जबतक उसने प्रतिहिंसाका कार्य पूरा नहीं कर लिया, तबतक उसकी जान-में-जान न आई। वह इस प्रकारका प्रतिहिंसा-मूलक कार्य क्यों करता है—जो कार्य कभी-कभी वीरत्वपूर्ण भी कहा जा सकता है—इसीलिए न, कि जिस धारणाके कारण उसका मन अभिभूत हो रहा है, उससे वह मुक्त हो जाय, और उस आन्तरिक शान्तिको प्राप्त करे, जिससे चरम सुखकी प्राप्ति होती है ?

जिस समय बन्दरोंका एक दल अपनेमें से एकको शिकारीकी चोटसे गिरता हुआ देखता है और उस शिकारीके तम्बूको घेर लेता है तथा बन्दूकका भय दिखानेपर भी मरे हुए बन्दरकी लाशका दावा करता है, और आखिर उस दलका मुखिया खीमेके भीतर चला जाता है, पहले शिकारीको भय दिखाता है, फिर उससे अनुनय-विनय करता है और अन्तमें अपने विलाप द्वारा उसे लाशको दे देनेके लिए राज़ी करता है, और फिर इसके बाद बन्दरोंका दल आर्तनाद करता हुआ अपने मृत साथीको जंगलमें ले जाता है। उस समय ये बन्दर अपने जीवनकी सुरक्षाकी अपेक्षा करुणाकी जो बलवती भावना है, उसका अनुगमन करते हैं। उनकी यह भावना अन्य सब भावनाओंको परास्त कर देती है। यहाँ तक कि उन्हें अपने जीवन तकमें कोई आकर्षण नहीं रह जाता, जब कि उन्हें इस बातका निश्चय नहीं रहता कि वे अपने मृत साथीको पुनरुज्जीवित कर सकेंगे या नहीं। उनकी यह भावना इतनी निदारुण हो उठती है कि उन बेचारे पशुओंको उससे मुक्त होनेके लिए सब कुछ करना पड़ता है।

जिस समय चींटियाँ हजारोंकी संख्यामें जलते हुए वल्मीक—जिसमें किसी नरपशुने आग लगा दी है—की ज्वालाओंकी ओर बड़े वेगसे अग्रसर होती हैं और अपने अंडे-बच्चेको बचानेके लिए सैकड़ोंकी संख्यामें विनष्ट हो जाती हैं, उस समय अपनी सन्तानकी रक्षाकी जो आकांक्षा है, उसका ही वे अनुपालन करती हैं। अपने जिन बच्चोंको उन्होंने बड़े यत्नसे—इतना अधिक यत्न, जितना बहुतसी स्त्रियाँ भी अपनी सन्तानके प्रति नहीं रखती होंगी—पाला है, उन्हें बचानेके लिए वे अपना सब-कुछ खतरेमें डाल देनेको तैयार हो जाती हैं।

सुखका सन्धान और दुःखका परिहार यही जीव-जगतके कार्योंकी मूलरेखा है (या नियम, जैसा कि कुछ लोग कहेंगे)।

इस प्रीतिकर वस्तुके सन्धानके बिना जीवन तक असम्भव हो जायगा। शरीरके अवयव छिन्न-भिन्न हो जायँगे और जीवनका अन्त हो जायगा।

इस प्रकार चाहे मनुष्यके कार्य या उसके कार्योंको

मूलरेखा कुछ भी क्यों न हो, मनुष्य जो कुछ करता है, अपनी प्रकृतिकी कामनाके आदेशानुसार करता है। अत्यन्त विरागजनक कार्य भी उसी प्रकार कर्ताकी व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार अनुष्ठित होते हैं, जिस प्रकार साधारण या अत्यन्त आकर्षक कार्य। मनुष्य जैसा चाहे, वैसा उसे करने दो ; वह वही काम करेगा जिसमें उसे आनन्द मिले और ऐसे कार्यसे विरत रहेगा जिसमें उसे पीड़ा हो।

यह एक सुप्रमाणित तथ्य है। जिसे हम स्वार्थवादका सिद्धान्त कहते हैं, उसीका यह सारतत्त्व है। अच्छा, तो क्या इस परिणामपर पहुँचनेसे हमारी अवस्था कुछ अच्छी हुई है ? हाँ, जरूर हुई है। हमने सत्यपर विजय प्राप्त की है और एक ऐसे पूर्व-संस्कारको नष्ट कर डाला है, जो सब संस्कारोंका मूलकारण है। जितने भौतिक दर्शन हैं, उनका मानवीय सम्बन्ध इस परिणामके अन्दर आ जाता है। तो क्या इससे यह परिणाम निकलता है कि मनुष्यके जितने कार्य होते हैं, वे सब निरपेक्ष होते हैं, जैसा कि कुछ लोगोंने परिणाम निकाला है ? अब हमें इसी बातपर विचार करना है।

हम इस बातपर विचार कर चुके हैं कि मनुष्यके कार्योंका (उनके सुचिन्तित और सचेतन कार्योंका, अचेतन अभ्यासोंके सम्बन्धमें हम आगे चलकर विचार करेंगे) एक ही उद्गम-स्थान होता है। पाप और पुण्य, भक्ति और क्षुद्र दुष्टता, आकर्षक और विरागजनक कार्य, सबका एक ही उद्गम-स्थान होता है। इन सबका लक्ष्य होता है सुखका सन्धान, दुःखके परिहारकी कामना। इस विचारके समर्थनमें कितने ही तथ्य प्रमाणस्वरूप उपस्थित किये जा सकते हैं, और उनपर संक्षिप्तरूपमें पूर्वके अध्यायमें विचार हो चुका है।

जो लोग अब भी धार्मिक भावनाओंसे अनुप्राणित हो रहे हैं, उनका इस व्याख्यापर चीत्कार करना आसानीसे समझा जा सकता है। इसमें अलौकिकके लिए कोई स्थान ही नहीं है। यह अमर आत्माके सिद्धान्तका खंडन करता है। यदि मनुष्य अपनी प्रकृतिकी आवश्यकताओंके अनुसार आचरण करता है, यदि वह एक 'सचेतन स्वयंचालित यन्त्र' है, तो फिर अमर आत्मा क्या वस्तु है ? वह अमरता क्या चीज़ है, जिसकी अन्तिम शरण वे लोग लेते हैं, जिन्होंने अपनी ज़िन्दगीमें बहुत ज्यादा दुःख भोगे हैं और सुख बहुत कम, और जो परलोकमें अपने अभावोंके मोचनका स्वप्न देख रहे हैं।

यह समझना आसान है कि जो लोग रूढ़ियों और पूर्व-संस्कारोंमें पले हैं, और जिन्हें विज्ञानपर बहुत कम विश्वास है—जिस विज्ञानने उन्हें बहुधा धोखा दिया है—जो लोग विचारकी अपेक्षा भावना द्वारा परिचालित होते हैं, वे शुभाशुभ कर्मकी इस व्याख्याको क्यों अग्राह्य कर देते हैं ? इसका कारण यही है कि यह व्याख्या उनकी अन्तिम आशासे उन्हें वंचित कर देती है।

(क्रमशः)

लेखनी द्वारा संसार-भ्रमण

श्रीयुत सेंट निहालसिंह

पत्रकार-कलामें मेरी प्रारम्भिक शिक्षा

'आपको अख़बारनवीसी किसने सिखलाई ?'

मुझसे यह प्रश्न अकसर पूछा जाता है। पुरुषोंने यही प्रश्न पूछा है, महिलाओंने यही सवाल किया है—हिन्दोस्तानमें ही नहीं, यूरोप अमेरिकामें भी !

यह सवाल जितना आसान है, इसका जवाब उतना आसान नहीं है।

सच तो यह है कि मैंने अख़बारनवीसी प्राय: उसी तरह सीखी है, जैसे बत्तकका बच्चा तैरना सीखता है।

मान लीजिये कि बत्तकका अंडा सेनेके लिए किसी मुर्गीके नीचे रख दिया जाय, तो उससे जो बच्चा निकलेगा वह मुर्गीके चूज़ोंके साथ मुर्गीके पीछे-पीछे फिरेगा, लेकिन जिस क्षण बत्तकका बच्चा पानी देखेगा, उसी क्षण उसके हृदयमें तालाबमें कूद पड़नेकी प्रेरणा होगी। मुर्गी और उसके चूज़े तालाबके किनारे मूर्तिवत् खड़े होकर देखेंगे और मनमें सोचेंगे कि यह दुस्साहसी बच्चा अवश्य ही मरेगा। लेकिन कुछ नहीं होता।

मैं मुर्गी द्वारा सेये हुए बत्तकके बच्चेसे अधिक भाग्यशाली था। जैसा मैं अपने पहलेके लेखोंमें बता चुका हूँ, मेरा लालन-पालन ऐसे घरमें हुआ था, जिसके वातावरणमें साहित्य और आध्यात्मिकता थी। अत: मुझे ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें आनेका मौक़ा मिला, जिन्हें साहित्यसे प्रेम ही न था, वरन् जिन्हें साहित्यक-क्षेत्रका ख़ासा अनुभव भी था।

[२]

लेकिन पाठक कहेंगे कि साहित्य और अख़बार-नवीसी एक ही चीज़ नहीं हैं। हाँ, दोनोंका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। अत: यह प्रश्न कि मैंने अख़बार-नवीसी कैसे सीखी, फिर भी विना उत्तरके रह जाता है।

यह बात विचित्र जान पड़ेगी कि मैंने पत्रकार-कला जिन लोगोंसे सीखी, उनमेंसे किसीने भी पत्रकारीकी शिक्षा नहीं पाई थी। उनमें से प्रत्येकने अपने आप पत्रकारी सीखी थी। वे अख़बारोंको पढ़ते और ज्ञातरूपसे या अज्ञातरूपसे उनमें लिखनेवालोंकी शैलीका अनुकरण करते थे। इस प्रकार कुछ समय बाद वे पक्के पत्रकार बन गये थे।

जिन लोगोंसे मैंने पत्रकार-कलाका 'क-ख' सीखा था, उनमें से एक भी ऐसा न था जो केवल पत्र सम्पादनमें ही अपना सारा समय लगाता हो। प्राय: उन सबके लिए पत्रोंमें लेख लिखना एक प्रकारका शौक़-सा था, जिसे वे अपनी जीविकाके अन्य कामोंको समाप्त करके पूरा करते थे। पत्र-संचालनसे आर्थिक लाभ होना तो दूरकी बात है, उन्हें अकसर अपने पाससे पैसा निकालकर अख़बारके घाटेको पूरा करना पड़ता था। यदि उनका हृदय पत्र-संचालनमें न होता, यदि उन्हें पत्र निकालनेमें आनन्द न मिलता, तो पहले तो वे पत्र निकालते ही नहीं, और यदि निकालते भी तो उसे अधिक दिनों तक जारी न रख सकते।

शायद यह अच्छा ही हुआ कि मैंने इस प्रकारके लोगोंसे पत्रकार-कला सीखी। जिन लोगोंने बाक़ायदा उम्मेदवार रहकर पत्रकारीको पेशेके रूपमें ग्रहण किया है, वे लोग मुझे इस कलाकी प्रारम्भिक बातें अधिक वैज्ञानिक ढंगसे सिखला सकते थे ; लेकिन उस दशामें वे मेरे दिमाग़में बनियापन भर देते। इसलिए मैं अपनेको भाग्यवान समझता हूँ कि मेरा लड़कपन ऐसे लोगोंके चरणोंमें बैठकर कटा था, जो पैसेके लिए नहीं, वरन् अपने विचारोंके प्रचारके लिए सामयिक पत्र निकालते थे।

[३]

इन लोगोंके विषयमें कुछ कहते समय सबसे पहले मैं मौलवी साहबके सम्बन्धमें कुछ कहूँगा, जिन्होंने मुझे शार्टहैण्ड सिखलाया था। विदेशोंमें मेरी अख़बार-नवीसीके आरम्भिक दिनोंमें शार्टहैण्डका ज्ञान कितना उपयोगी सिद्ध हुआ यह मैं अगले लेखमें बताऊँगा। मौलवी साहबने सर आइज़क पिटमैनकी शार्टहैण्ड प्रणाली सीखी थी।

पिटमैन साहब ब्रिटिश पार्लामेंटमें रिपोर्टर थे। उन्हें एक ऐसी लेखन-प्रणालीकी आवश्यकता मालूम हुई जिसके द्वारा वे पार्लामेंटके सदस्योंकी स्पीचोंको शब्दशः लिख सकें। सदस्योंमें बहुतसे बड़ी तेज़ीसे—एक मिनटमें १५० से २०० शब्द या उससे भी अधिक तक—बोलते थे। इसके लिए उन्होंने जो प्रणाली निकाली, उसमें अनेक गुण हैं। उसे जाननेवाला व्यक्ति सबसे तेज़ बोलनेवालेकी स्पीच भी आसानीसे लिख सकता है। बादमें शार्टहैण्डके चिह्नोंसे स्पीच साधारण अक्षरोंमें—भूलके अधिक डरके बिना—लिखी जा सकती है।

जिन मौलवी साहबने मुझे यह अमूल्य विद्या सिखाई थी, वे होशियारपुरमें मेरे स्कूलमें शिक्षक थे। उन्होंने इसे स्वयं क्यों सीखा यह उन्होंने मुझे नहीं बताया था।

हम विद्यार्थियोंने अपने सन्तोषके लिए इसका कारण निकाल लिया था। मौलवी साहब कुछ झक्की स्वभावके थे, अतः हम लोगोंने यह समझा कि यह भी उनकी एक झक है। वे हमेशा कोई-न-कोई नया प्रयोग किया करते थे। उदाहरणके लिए एक बार उन्हें 'सारडाइन' मछलियाँ, जो विलायतसे टीनमें बन्द आती हैं, खानेकी धुन सवार हुई। टीनसे निकाले बिना ही इन मछलियोंमें जो बदबू आती थी, उससे उन्हें घृणा थी। पहले-पहल जब उन्होंने उन्हें चखा तो उन्हें मतली हो गई; लेकिन वे उसपर डटे ही रहे। फल यह हुआ कुछ दिन बाद ही उन्हें सारडाइन खानेमें मज़ा आने लगा और वे जालन्धर स्टेशनके रिफ्रेशमेंट रूमसे उसके टीन मँगाने लगे। जब मैंने अपने साथियोंसे यह बात बताई, तो उन्होंने समझा कि शार्टहैण्ड भी मौलवी साहबकी इसी प्रकारकी एक झक है।

कई वर्ष बाद मुझे मालूम हुआ कि मौलवी साहबने स्कूलकी नौकरी छोड़कर इलाहाबाद हाईकोर्टमें शार्टहैण्ड रिपोर्टरकी नौकरी कर ली है। तब मुझे ख़याल आया कि शार्टहैण्ड सीखनेमें मौलवी साहबका एक उद्देश था।

शायद मेरे ही सौभाग्यसे उन्होंने पिटमैनकी प्रणाली सीखना शुरू की थी। भाग्यने ही मुझे पत्रकार और लेखक बनाना निश्चित किया था, शायद इसीलिए उसने मेरे जीवनमें ऐसे साधन उपस्थित कर दिये, जिनसे मैं भाग्यके इस निर्णयको पूरा कर सकूँ। पत्रकार-जीवनके गुप्त भंडारका द्वार खोलनेमें शार्टहैण्डके ज्ञानने वास्तवमें बड़ी सहायता दी।

शार्टहैण्डके लिए मौलवी साहबमें इतना उत्साह था कि उन्होंने मुझे लन्दनसे 'फ़ोनोग्राफ़ी' के सिद्धान्तोंकी पुस्तकें मँगाकर दीं। शार्टहैण्डके संकेत मुझे किसी रहस्यपूर्ण प्रथाके चिह्नसे जान पड़े। मैं बराबर उनका अभ्यास करता रहा, यहाँ तक कि मैं उन्हें अच्छी तरह जान गया।

मैं तो यहाँ तक धृष्टता करता था कि मैं मौलवी साहबसे कहता था कि मेरे संकेत-चिह्न उनसे अच्छे बनते थे, और वे केवल मुझे उत्साह देनेके लिए यह बात मान लेते थे।

लड़कोंको पढ़ानेका पेशा करनेवाले साधारण शिक्षकोंसे वे कितने भिन्न थे! उनमें अपनी ग़लतियोंपर हँसनेका दुर्लभ गुण था।

एक दिन उन्होंने कहा कि उन्होंने यह निश्चय किया है कि वे गिरजेमें जाकर रेवरेंड कालीचरण चटर्जीके (जिनका हाल मैं अपने पिछले लेखमें लिख चुका हूँ) उपदेशको शार्टहैण्डमें लिखेंगे, क्योंकि होशियारपुर जैसी

छोटी जगहमें शार्टहैण्डकी स्पीड बढ़ानेका और कोई साधन ही न था।

शामको जब मैं उनके पास पहुँचा, तो उन्होंने मुझे देखते ही चिल्लाकर कहा—"मैं तो बुरी तरह फेल हुआ!"

"कैसे?"—मैंने पूछा।

"मि० चटर्जी इतना तेज़ बोलते हैं कि मैं उनके साथ चल ही नहीं सका। मैं कुछ दिन और अभ्यास करके फिर कोशिश करूँगा।"

उनकी स्थितमें यदि और कोई होता, तो ऐसी स्पष्टतासे बात न करता— विशेषकर अपने विद्यार्थीके साथ। मगर वे दूसरी धातुके बने थे।

अब, जब मैं अपने प्रारम्भिक जीवनको स्मरण करता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है कि मेरे पिताने मुझे शार्टहैण्ड सीखनेमें इतना समय और शक्ति लगानेकी अनुमति कैसे दे दी थी। मैं अपने स्कूली पढ़ाईके समयमें से वक्त चुराकर हफ्तेमें अनेक घंटे शार्टहैण्ड सीखनेमें लगाता था।

पिताजी इसे जानते थे, क्योंकि मैं उनसे कोई बात छिपाता न था। जिस किसी बातसे मेरा मनोरंजन होता था, उसीमें वे खूब दिलचस्पी दिखलाते थे। वे मुझे पिताकी भाँति डाटने झिड़कनेकी जगह, मेरे साथ मित्र-जैसा व्यवहार करते थे।

[४]

स्कूलकी पढ़ाईके बाहरकी बातोंमें अपनी शक्ति और समय खर्च करनेमें मुझे मना करना तो दूरकी बात है, उल्टे पिताजीने खुद अपनी मर्ज़ीसे मुझे फोटोग्राफी सिखलानेका प्रबन्ध कर दिया था। उस समय (सन् १८९८ में) मैंने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि आगे चलकर यह कला मुझे कितनी सहायता देगी और इसके सहारे मैं अपने लेखोंको सचित्र बनाने, और महत्त्वपूर्ण घटनाओंका चित्र लेकर उन्हें स्थायित्व प्रदान करनेमें कितना सफल हूँगा।

उस समय पिताजीने यह समझा होगा कि फोटोग्राफीका ज्ञान मुझे आगे चलकर उपयोगी सिद्ध होगा। लेकिन उस समय उनका यह विचार बहुत अस्पष्ट ही रहा होगा। मुझे याद है कि उनका सिद्धान्त यह था कि हर आदमीको अपने हाथोंको इस्तेमाल करना सीखना चाहिये, क्या जाने जीवनमें कौन हुनर कब काम आवे।

एक दिन मैं पिताजीके पास बैठा था कि एक पठान उनसे मिलने आया। शक्लसे वह शरीफ मालूम होता था, लेकिन उसके कपड़े उसकी मुफ़लिसी और ज़रूरतको प्रकट कर रहे थे। शीघ्र ही मालूम हुआ कि वह एक गश्ती फोटोग्राफर है और कामकी तलाशमें है।

पिताजीने उसे शामको आफिसका एक ग्रूप लेनेको बुलाया। दूसरे ही दिन वह तस्वीरका 'प्रूफ़' लेकर पहुँचा। जब उसने टीनके चोंगेसे प्रूफ़को निकाला, तो मैंने देखा कि वह प्रूफ़ एक बैंगनीसे रंगका कागज था, जो एक पीले कागज़में लिपटा था।

उसने पिताजीसे कहा कि प्रूफ़को बहुत हल्की रोशनीमें देखना चाहिए, सो भी मिनट दो-मिनटसे अधिक समय तक नहीं। मुझे यह बात बड़ी विचित्र-सी लगी।

मैंने तानेके ढंगपर कहा—"वाह, वाह, आपने क्या खूब तस्वीर बनाई है। हमें तो ऐसी तस्वीर चाहिये जो कड़े पुट्ठेपर चिपकी हुई हो और जो चौखटेमें मढ़ाकर बैठकमें टाँगी जा सके। ऐसी तस्वीरको लेकर क्या होगा जो चोंगेमें बन्द करके बक्सके भीतर रखनी पड़ी।"

फोटोग्राफर खफा होनेके बजाय हँस पड़ा और बोला—"अगर सरदार साहब (यानी पिताजी) प्रूफ़को पसन्द कर लें, तो मैं जितनी कापियाँ कहें उतनी तैयार कर दूँगा, जिन्हें चौखटेमें मढ़ाकर किसी भी कमरेमें टाँगा जा सकेगा।"

"वह कैसे होगा?"—मैंने पूछा।

"अहा !"—उसने कहा—"आप तो मुझसे वह हिकमत पूछ रहे हैं, जिसे सीखनेमें मुझे न जाने कितना पैसा और वक्त लगाना पड़ा है और मेहनत उठानी पड़ी है।"

जब फोटोग्राफर चला गया, तब पिताजीने मुझसे पूछा—"क्यों बेटा, फोटोग्राफी सीखना पसन्द करोगे ?"

"बहुत ज्यादा"—मैंने खुशीसे चिल्लाकर कहा।

"अच्छा तो मैं इस फोटोग्राफरसे तुम्हें फोटोग्राफी सिखलानेका बन्दोबस्त कर दूँगा।"—पिताजीने वादा किया।

दो-एक दिन बाद उसी घुमक्कड़ फोटोग्राफरकी देख-रेखमें मैंने अपना पहला फोटो खींचा। असलमें उसीने सब कुछ किया था, लेकिन वह ऐसा होशियार था कि उसने मुझे यह भास कराया, मानो फोटो लेनेका सारा काम मैंने ही किया हो।

उसने मुझसे कैमेरेपर एक कपड़ा लटकवाया, जिसका एक परत लाल रंगका और दूसरा काले रंगका था। कपड़ा इस ढंगसे लटकाया गया था कि वह कैमेरेके पिछले भागसे थोड़ा लटका हुआ रहे। उसने मुझसे इस कपड़ेके भीतर सिर डालकर देखनेको कहा और पूछा—"शीशेमें क्या दिखाई देता है ?"

"सभी चीज़ें उल्टी नज़र आती है।"—मैंने जवाब दिया।

"उसकी परवा नहीं"—उसने कहा—"यह बताओ कि हर चीज़ साफ़-साफ़ नज़र आती है ?"

"नहीं"—मैंने कहा।

उसने मेरा हाथ पकड़कर कैमेरेके आगेके पेंचपर रखा, और उसे थोड़ा घुमाकर पूछा—"अब सब साफ दिखाई देता है ?"

"हाँ, अब पहलेसे बहुत साफ है।"—मैंने कहा।

अब उसने मुझे अलग हटाकर कपड़ेमें ख़ुद देखा और पेंचको थोड़ा और घुमाकर कैमेरेके आगेके शीशेपर ढक्कन चढ़ा दिया, और पीछेके हिस्सेमें प्लेटका बक्स लगा दिया।

"लो अब हम फोटो लेनेको तैयार हैं। तुम फोटो लोगे ?"—उसने कहा।

उसके बतानेके अनुसार मैंने कैमेरेका अगला ढक्कन खोला और एक १, २, ३ गिनकर फिर उसे जहाँका तहाँ लगा दिया।

"लो फोटो खिंच गई।"—उसने कहा।

फिर वह मुझे एक अंधेरे कमरेमें ले गया, जहाँ चारों ओरसे दरवाज़े बन्द करके लाल शीशेकी लालटेनकी रोशनीमें उसने एक चीनीकी रकाबीमें कुछ दवाएँ घोलकर उसमें प्लेटको धोया। प्लेटको जब बक्ससे निकाला, तब वह साफ़ काँचका एक टुकड़ा था, लेकिन दवामें डालते ही वह काला हो गया। उसने कहा—"देखो, देखो तस्वीर आ रही है।"

मैंने देखा कि प्लेटपर काले-काले चेहरे दीखने लगे हैं। मैंने चिल्लाकर कहा—"अरे, तस्वीर काली हुई जा रही है, इसे बचाओ।"

वह हँस पड़ा और बोला—"ठीक है, ज़रा सब्र करो।"

पाँच मिनट बाद, उसने दरवाज़ा खोल दिया और मुझे प्लेट दिखाया। "सारे चेहरे काले हैं।"—मैंने फिर कहा।

"कोई हर्ज नहीं, जब मैं इसे फोटोके काग़ज़पर छापूँगा, तो सारी काली चीज़ें सफेद आयँगी और सफेद चीज़ें काली आयँगी।"—उसने उत्तर दिया।

"यह कैसे होता है ?"—मैंने पूछा।

"मैं क्या जानूँ ? मैं किसी स्कूलमें तो पढ़ा नहीं। हाँ, मैं यह जानता हूँ कि ऐसा होगा। कल मैं जब तस्वीर छापकर लाऊँगा तब देखना।"

वैसा ही हुआ।

उस फोटोग्राफरने अपने मोटे ढंगसे फोटो लेना जितना आसान बताया था, मैंने देखा कि वास्तवमें यह काम उतना आसान नहीं था। लेकिन पिताजी मुझपर बड़े मेहरबान रहते थे। उन्होंने मुझे एक हाफप्लेट कैमरा खरीद दिया और ढेरके ढेर प्लेट

और मसाला खरीदते रहे। लगातार मेहनतसे मैं किसी न किसी तरह तस्वीर खींचने लगा। मेरे माता-पिता मुझे उत्साह देनेके लिए मेरी तस्वीरोंको 'बहुत अच्छी' बता दिया करते थे। इस प्रकार मैं अपने पिताके खर्चपर फोटोके प्रयोग करता रहा।

अनेक वर्ष बाद जब मैंने फोटोग्राफीका वैज्ञानिक अध्ययन किया, तब मुझे इस बातपर आश्चर्य हुआ कि फोटोमें काम आनेवाले विभिन्न रासायनिक द्रव्योंके वास्तविक गुण और प्रभाव जाने बिना तथा उस अपढ़ फोटोग्राफरके बताये हुए तरीकेपर चलकर भी मेरी आरम्भिक तस्वीरें इतनी अच्छी कैसी आती थीं।

[५]

कुछ दिन बाद, जब मैं गवर्नमेंट कालेज लाहोरमें भर्ती होने गया, तब परिस्थितियोंने मेरी साहित्यिक प्रवृत्तिको और भी दृढ़ किया और मुझे उसी ओर प्रेरित किया। उन दिनों मेरी दृष्टिमें लाहोरका महत्व इसलिए नहीं था कि वहाँ पंजाबकी राजधानी थी, बल्कि इसलिए था कि वहाँ मेरे काल्पनिक आदर्श पुरुष रहते थे—वे थे स्वर्गीय शीतलाकान्त चटर्जी।

कलकत्तेके समीप जन्म लेकर उन्होंने—जहाँ तक मैं समझता हूँ—स्व० सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी सहायतासे पत्रकार-कला सीखी थी। सुरेन्द्र बाबूने खुद भी किसी कालेज, स्कूल या किसी पत्रके दफ्तरमें पत्रकार-कलाकी किसी प्रकारकी भी शिक्षा पाये बिना ही पत्र-सम्पादन प्रारम्भ किया था। उस ज़मानेमें हिन्दोस्तान क्या, यूरोप-अमेरिकामें भी कोई ऐसी संस्था नहीं थी, जहाँ अखबारनवीसी सिखाई जाती हो।

शीतलाकान्त बाबू अबसे लगभग पचास वर्ष पहले लाहोर बुलाये गये थे। सरदार दयालसिंह मजीठिया पंजाबके एक बहुत बड़े ज़मींदार थे। उनके विचार अपने युगसे कहीं आगे बढ़े हुए थे। वही शीतलाकान्त बाबूको—शायद 'बंगाली' आफिससे, अथवा कम-से-कम स्व० सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके परामर्शके अनुसार—कलकत्तेसे लाये थे।

उस समय पंजाब यूनीवर्सिटीका संगठन हो रहा था, इसलिए सरदार दयालसिंहको सन्देह था कि उसमें भारतके शत्रु इस बातकी चेष्टा करेंगे कि हिन्दुस्तानी मध्ययुगके अज्ञानमें ही डूबे रहें। इसके लिए उन्होंने अंगरेज़ी दैनिक पत्र 'ट्रिब्यून' को जन्म दिया, और शीतलाकान्त बाबूको उसका प्रधान बनाकर उसे चलानेकी पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी।

मेरे पिताजीके कथनानुसार शीतलाकान्त बाबू क़दमें छोटे, दुबले-पतले आदमी थे। मैं पन्द्रह वर्षकी उम्रमें जितना लम्बा था, वे उससे अधिक ऊँचे न थे। उनकी आँखें भी टेढ़ी थीं। लेकिन उनके इस हास्योत्पादक शरीरमें बिजलीकी-सी शक्ति भरी थी।

ओह, वे लिखना जानते थे! मैंने सैकड़ों बार अपने पिताको इस बातपर आश्चर्य प्रकट करते सुना था कि वे कैसे इतने प्रवाहके साथ सम्पादकीय लेख और टिप्पणियाँ लिखते थे। उनकी पंखकी कलमसे—वे पंखवाली क़लमसे ही लिखते थे—स्याहीकी धाराके स्थानमें अग्निकी धारा निकलती जान पड़ती थी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस बंगाली पत्रकारके प्रति मेरे पिता जो आदर और सम्मान दिखाते थे, उसने अज्ञातरूपसे मेरे अन्तःकरणको पत्रकार कलाकी ओर प्रेरित करनेमें बड़ा शक्तिशाली प्रभाव डाला था।

[६]

लाहौरके फोरमैन क्रिश्चियन कालेजके एक प्रोफेसर, जिनका नाम रामतीर्थ* था, अपने रहस्यवादके प्रेमके लिए विख्यात थे। सन् १८९७ में स्वामी विवेकानन्दसे मिलनेके पूर्वसे ही उनकी प्रवृत्ति धर्मकी ओर विशेष

* बादमें वे स्वामी रामके नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। सन् १९०६में, मेरे अमेरिका पहुँचनेके एक या दो वर्ष पूर्व वे अमेरिकामें आये थे। यहांकी जनतापर उनका गम्भीर प्रभाव पड़ा, खासकर उन लोगोंपर जो प्रशान्त महासागरके उपकूलमें निवास करते थे।

रूपमें देखी जाती थी। दोनोंका वह मिलन नियतिपूर्ण सिद्ध हुआ।

स्वामी विवेकानन्द हाल ही अमेरिकासे लौटे थे। अमेरिकामें उन्होंने सार्वधर्म-सम्मेलनमें भाग लिया था और वहाँ उनका स्वागत बड़े समारोहसे किया गया था। यह कहा जाता है कि स्वामी विवेकानन्दके शक्तिशाली व्यक्तित्व और उनकी विश्वविश्रुत वाग्मिताका प्रोफेसर रामतीर्थपर इतना ज़बरदस्त असर पड़ा कि उन्होंने अपनी जेबसे सोनेकी घड़ी और चेन निकालकर स्वामी विवेकानन्दसे आग्रह किया कि वे उन्हें ग्रहण कर लें। स्वामीजीको इस प्रकारकी वस्तुओंका कोई प्रयोजन नहीं था; किन्तु वे प्रोफेसर रामतीर्थकी भावनाओंपर आघात पहुँचाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने रामतीर्थकी उत्तम भावनाका ख़याल रखते हुए उपहारको ग्रहण कर लिया।

एक या दो दिनके बाद जब स्वामीजी लाहौरसे विदा होने लगे, तो उन्होंने घड़ी और चेन लेकर प्रोफेसरकी जेबमें रख दी और कहा—"मैं इन चीज़ोंको यहाँ रखूँगा।"

घर पहुँचते ही रामतीर्थने अपनी जेबसे वह घड़ी निकाली। उस समय घड़ीके काँटे ठीक एकपर थे। उन्होंने घड़ीकी स्प्रिंग तोड़ डाली। काँटोंकी चाल रुक गई, घड़ी सदाके लिए बन्द हो गई।

इस घटनाके बाद स्वामी रामतीर्थ अपनी जेबसे घड़ी निकालकर और एकके अंकपर अंगुली रखकर कहा करते थे कि मैं स्वामी विवेकानन्दके साथ एक हूँ।

[७]

जिस गवर्नमेंट कालेजमें मैं दाख़िल हुआ था, उसके एक प्रोफेसरका मेरे ऊपर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा, यद्यपि उनके साथ मेरा समागम बहुत थोड़े दिनोंके लिए हुआ था। उनका नाम था प्रो० रुचीराम साहनी। वे मुझे भौतिक विज्ञानकी शिक्षा दिया करते थे। इसके सिवा उनमें कुछ और भी ख़ास बातें थीं। इस प्रकारकी ख़ास बातोंमें एक बात थी साधारण विषयोंकी पुस्तकें पढ़ना।

एक दिन पढ़नेका घंटा पूरा होनेपर जब मैं अपने क्लाससे बाहर निकल रहा था, उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं अपने अवकाशका समय किस प्रकार व्यतीत करता हूँ।

"पढ़ने-लिखनेमें"—मैंने उत्तर दिया।

"तुम्हें पढ़नेका शौक़ है?"—उन्होंने पूछा, और उनका चेहरा सन्तोषसे खिल उठा।

"इससे अच्छा मुझे और कुछ नहीं लगता, महाशय"—मैंने उत्तर दिया।

"तो क्या तुम यह पसन्द करोगे कि मैं तुम्हें पढ़नेके लिए कुछ किताबोंका नाम बताऊँ?"—उन्होंने पूछा।

"यदि आप ऐसा करेंगे, तो इसके लिए मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा"—मैंने कहा।

उन्होंने मुझे दो-तीन पुस्तकोंके नाम बताये। मैंने उनके नाम एक काग़ज़के टुकड़ेपर लिख लिये और उस काग़ज़को अपनी जेबमें रख लिया।

"इस काग़ज़के टुकड़ेको जेबसे निकालना भूल मत जाना"—उन्होंने मुझे सलाह देते हुए कहा—"फ़ौरन इन किताबोंको ढूँढ़कर ले आओ। उन्हें पढ़नेमें तुम्हें विशेष आनन्द मिलेगा।"

इनमें एक पुस्तक बड़ी ही चित्ताकर्षक सिद्ध हुई। उसका नाम था—"From Log Cabin to White House।"

मुझे शीघ्र ही मालूम हो गया कि 'Log Cabin'का अर्थ है लकड़ीका बना हुआ छोटा झोंपड़ा। इसकी लकड़ीके तख्ते चीरे नहीं जाते और न उनपर रंदा फेरा जाता है। लकड़ी ज्यों-की-त्यों गोलाकार रूपमें रखी रहती है। इस प्रकारके मकानोंमें अमेरिकामें अत्यन्त दरिद्र लोग रहा करते हैं। इसके विपरीत 'ह्वाइट हाउस' अमेरिकाकी राजधानी वाशिंगटनका विशाल भवन है। यह 'श्वेत भवन' इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसका बाहरी हिस्सा सफेद रंगमें रँगा हुआ है। विस्तृत भूमिमें यह भवन

अवस्थित है। घास, झाड़ी और वृक्षोंकी हरियालीसे भरी हुई श्यामल भूमि, ऊपर उज्ज्वल नील गगन और इसके बीचमें अवस्थित इस समुज्ज्वल भवनकी स्वच्छता और भी निखर उठती है। अमेरिकामें संयुक्त-राज्य स्थापित होनेके बाद यह भवन राष्ट्रपतिके सरकारी निवासस्थानके लिए बनाया गया था। राष्ट्रपतिका कार्यकाल समाप्त हो जानेपर उन्हें इस स्थानका परित्याग कर देना पड़ता है और उनके उत्तराधिकारी प्रारम्भिक अनुष्टानके बाद इस भवनमें निवास करने लगते हैं।

इस पुस्तकके नामसे ही विषयका ज्ञान हो जाता था। दरिद्रताकी गोदमें पला हुआ एक बालक आगे चलकर अपने देशका प्रधान बना। उसका नाम था जेम्स गारफील्ड। अध्यापक रुचीराम इस बातको जानते थे कि इस प्रकारकी पुस्तकोंसे मेरी महत्त्वाकांक्षा उद्दीपित होगी। इसलिए उन्होंने मुझसे उक्त पुस्तक पढ़नेकी सिफ़ारिश की थी। किन्तु मुझे यह विश्वास है कि उनका ख़याल इस बातकी ओर बिलकुल नहीं था कि इस पुस्तकको पढ़कर मेरी दृष्टि अमेरिकापर गड़ जायगी (स्वामी विवेकानन्द द्वारा उस ओर मेरी दृष्टि आकर्षित हो चुकी थी) और वह मुझे उस देशमें रहने और काम करनेके लिए उत्कण्ठित बना डालेगी, जहाँ महत्त्वाकांक्षी नवयुवकोंके लिए अपूर्व सुयोग उपस्थित होते रहते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मेरे पाँवमें भ्रमणकी जो रेखाएँ थीं, वे खुजला रही थीं, जैसा कि मेरी मा कहा करती थी।

[८]

इस समय लाहौरमें मैं और भी कई ऐसे लोगोंके सम्पर्कमें आया था, जिनसे समाचारपत्र-जगतमें प्रवेश करनेके लिए मेरे हृदयमें प्रेरणा उत्पन्न हुई। इनमें मैं एकका यहाँ जिक्र करता हूँ, क्योंकि यदि सच पूछा जाय तो इनसे ही मैंने पत्रकार-कलाका 'क-ख-ग' सीखा था, जैसा कि अभी हालमें उन्होंने मुझे स्मरण दिलाया था।

मेरे पिताके जन्मस्थानसे कुछ ही दूरपर भगत लक्ष्मणसिंहका जन्म हुआ था। दोनोंका स्नेह-सम्बन्ध इतना घनिष्ठ था कि मैं बराबर भगतसाहिबको 'चाचा' कहा करता था।

यह सर्वथा स्वाभाविक था--पिताजी भगत 'चाचा' से यह कहें कि वे मुझपर दृष्टि रखें, ख़ासकर इसलिए कि घररूपी घोंसलेसे मैं अभी-अभी उड़कर बाहर निकला था। वे एक स्वदेशी बीमा कम्पनीके—जो भारतकी सबसे पुरानी कम्पनियोंमें से एक थी—सेक्रेटरी थे। किन्तु लेखन-कलाके प्रति प्रेम तथा सिक्खोंकी उन्नतिकी अभिलाषासे उन्होंने 'खालसा' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला था।

वे बड़ी आसानी और प्रवाहके साथ अंगरेज़ी लिखा करते थे। उनके वाक्य छोटे-छोटे और ओजपूर्ण हुआ करते थे। गम्भीर विश्वासयुक्त होनेके कारण वे अपने शब्दोंमें अपनी आत्माको उड़ेलकर रख देते थे।

वाद-विवादसे अलग रहनेकी अपेक्षा भगत लक्ष्मणसिंह उसके पीछे पड़े रहते थे। जिस समय मेरा उनके साथ सम्पर्क हुआ, वे चीफकोर्टके (उस समय हाईकोर्ट नहीं बना था) एक ऐसे फैसलेकी समालोचना कर रहे थे, जिससे सिक्ख-समाज अत्यन्त विरक्त हो उठा था। अपनी समालोचनामें उन्होंने लिखा था कि हिन्दू जज (मि० प्रतापचन्द्र मज़ूमदार, जहाँ तक मुझे स्मरण है) सिक्खोंके पुनरुत्थानके—'चाचा' लक्ष्मणसिंह जिसके प्रधान नायक थे—विरुद्ध पक्षपात-बुद्धिसे प्रेरित होकर न्याय-मार्गसे विचलित हो गये हैं।

उन्होंने फैसलेके विरुद्ध इतना प्रचण्ड आक्रमण किया था कि उनके मित्रगण स्तम्भित हो गये। उनके मित्रोंने उनसे कहा कि इस प्रकारके लेखोंके कारण उनपर मामला चल सकता है। इस चेतावनीसे वे और भी उत्तेजित हो उठे और अपनी लेखनीको और भी प्रखर कर दिया।

[९]

हम दोनोंका यह सम्बन्ध सिर्फ तीन या चार महीने तक रहा ; क्योंकि फर्स्ट टर्मके बीतनेपर मैंने सरकारी कालेज छोड़ देनेका निश्चय किया। लगभग ३५ वर्ष बीत जानेके बाद जब मैं उस समयकी घटनाओंका स्मरण करता हूँ, तो मुझे उनमें काफी दिलचस्पी मालूम पड़ती है।

लाहौरके सरकारी कालेजके होस्टलमें कुछ सप्ताह रहनेके बाद कालेजके अंडर-ग्रेजुयटोंमें एक घटनाको लेकर बड़ी सनसनी फैली। प्रिन्सपल राबसनने यह आदेश दिया था कि कालेजके सब छात्र रंगीन जैकेट पहनकर आवें जिसके ऊपर एक खास निशान जिसे 'ब्लेज़र' कहते हैं, लगा हुआ हो।

फैशनेबुल छात्रोंको तो इस आज्ञापर कुछ भी एतराज नहीं हुआ। किन्तु उनकी संख्या अल्प थी। अधिकांश नवयुवक इस आदेशको निरर्थक और व्ययसाध्य समझकर इसके विरुद्ध थे। उन छात्रोंमें मैं सबसे छोटा था और मैंने यह निश्चय किया कि चाहे कुछ हो जाय, मैं 'ब्लेज़र' नहीं पहनूँगा।

हमारे साथियोंमें दो या तीन व्यक्तियोंने (इनमें मैं शामिल नहीं था) लाला लाजपतरायसे इस सम्बन्धमें बातचीत की, जिससे हमारे विचारमें और भी दृढ़ता आ गई। लाला लाजपतरायने अभी हालमें मुफस्सिलसे आकर लाहौरमें अपनी प्रैक्टिस शुरू की थी। उन्होंने छात्रोंसे कहा कि 'ब्लेजर' पहननेमें मैं कोई विशेष आपत्तिकी बात नहीं देखता, किन्तु मैं यह बात जानना चाहता हूँ कि वह 'ब्लेज़र' देशी कपड़ेका बना होगा या विदेशी कपड़ेका।

आपने कहा कि केवल प्रिन्सपल राबसनकी मर्ज़ीको सन्तुष्ट करनेके लिए गरीब देशका पसीनेसे कमाया हुआ रुपया बाहर भेजा जाय, इसका मैं कोई कारण नहीं देखता।

इस प्रकार मेरे मनमें स्वदेशीका बीज-वपन हुआ।

[१०]

'ब्लेज़र' सम्बन्धी वाद-विवादके बाद एक ऐसी घटना हो गई जो मुझे अक्षम्य मालूम हुई। वह घटना इस प्रकार हुई—

एक दिन क्लासमें लेक्चर देते समय मि० राबसनने बिना किसी प्रसंगके कहा—"कुछ छात्र यह समझते हैं कि उनका चेहरा सोने या चाँदीका बना हुआ है।"

श्री सेंट निहालसिंहके पिता सरदार निहालसिंह
जो इस समय पुत्र और पुत्र-वधूके साथ हैं

इसके कुछ मिनटोंके बाद आप फिर बोल उठे—"कुछ छात्र यह समझते हैं कि उनका चेहरा सोने या चाँदीका बना हुआ है। वे अपने चेहरेपर हमेशा पालिश करते रहते हैं।"

मैंने या और किसी भी छात्रने प्रिन्सपलकी इस उक्तिपर ध्यान नहीं दिया। इसके कई मिनट बाद मि० राबसनने मेरी ओर इशारा करके यह आज्ञा दी कि अपने चेहरेपर पालिश करना बन्द करो। तुम्हारा चेहरा चाँदी या सोनेका बना हुआ नहीं है। उस

समय मुझे तथा अन्य सब छात्रोंको पहले-पहल यह मालूम हुआ कि उन्होंने मेरी ओर इशारा करके ही ये बातें कहीं थीं।

उस समय मैं अबकी अपेक्षा विशेष भावुक था। मि० राबसनकी बात मेरे दिलपर चोट कर गई।

यदि प्रिन्सपलकी नियत अच्छी होती, तो वे निजी तौरसे मुझे बता सकते थे कि एक नवयुवकके लिए यह अच्छा नहीं मालूम होता कि वह क्लासमें हमेशा अपना चेहरा पोंछता रहे। एक प्रकारके भयके कारण ही मैं ऐसा कर रहा था, और सद्भावसे यदि काम लिया जाता तो भयकी इस भावनापर विजय प्राप्त करनेकी ज़रूरत थी। यदि प्रिन्सपल ऐसा करते, तो मैं इस विषयकी ओर ध्यान आकृष्ट करनेके लिए उनका कृतज्ञ होता। किन्तु इस प्रकार मेरे सब साथियोंके सामने मुझे अपमानित करना मेरे लिए असह्य था।

कुछ लड़कोंकी यह राय थी कि प्रिन्सपलकी दृष्टिमें मैं नवागन्तुक होनेपर भी इसलिए खटक रहा था कि मैंने 'प्लेज़र' के वाद-विवादमें भाग लिया था। यह बात ठीक थी या नहीं, मैं नहीं बता सकता, और न मैंने इसकी परवा ही की। उसी वक्त मैंने यह निश्चय कर लिया कि प्रिन्सपल राबसन और लाहौरके सरकारी कालेजसे अब मुझे बिदा ग्रहण करनी पड़ेगी।

[११]

मेरे भाग्यमें यह निश्चय हो चुका था कि मैं पत्रकारका पेशा ग्रहण करूँ। अमृतसरके खालसा कालेजमें दाखिल होते ही भाई वीरसिंहके साथ मेरा सजीव सम्बन्ध स्थापित हुआ। भाई वीरसिंह कवि और साहित्यिक थे, और उन्होंने कुछ समयसे 'खालसा समाचार' नामक एक अंगरेजी साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया था। हम दोनों ही वीरसिंहके पिता डा० चरण सिंहके प्रति स्नेह और श्रद्धाके बन्धनमें आबद्ध थे। डा० चरणसिंह मेरे पिताके बहुत बड़े मित्र थे, और जिस समय हम लोग अमृतसरमें रहा करते थे, उस समय परिवारमें किसीके बीमार पड़नेपर डा० चरणसिंह ही बुलाये जाते थे।

हालबाजारसे खालसा कालेज दो या तीन मील दूर था। हालबाजारके पास वह प्रेस था, जिसे भाई वीरसिंह और उनके एक दूरके सम्बन्धी भाई वज़ीर सिंहने स्थापित किया था और जिससे पंजाबी भाषामें एक साप्ताहिक पत्र (गुरुमुखी अक्षरमें) भाई साहबके सम्पादनमें निकलता था। अकसर मैं संध्याको वहाँ पैदल जाया करता था और घंटे दो घंटे कविके साथ वार्तालाप करने अथवा प्रूफके संशोधनमें उन्हें सहायता पहुँचानेमें व्यतीत किया करता था। इसके बाद फिर कालेज लौट आता था। हम दोनोंका यह समागम इतना स्फूर्ति-जनक था कि इतनी दूर पैदल चलना मुझे ज़रा भी नहीं अखरता था।

उन दिनों भाई वीरसिंहकी प्रकृति बहुत ही भावुकतापूर्ण थी। एक बार मैं उनके साथ बैठा हुआ था कि उन्होंने किसी व्यक्तिको सड़कपर गाना गाते हुए सुना। उस गानेवालेका कंठस्वर बड़ा ही मधुर था। उसका गाना विशुद्ध ताल-लय-संयुक्त था। उन्होंने एक आदमीको उस गवैयेको बुला लानेके लिए भेजा। उसके आनेपर पता चला कि उसका पेशा गवैयेका नहीं था और वह लोगोंको गाना सुनाकर किसी तरह अपना पेट भर लिया करता था।

उस गानके भावोच्छ्वासमें आकर भाई साहबने उस घुमक्कड़ गवैयेके एकताराके सुर-में-सुर मिलाकर गाये जानेके लिए एक गीत लिखना शुरू किया। जिस समय वे पद्य रचना कर रहे थे, उस समय ऐसा मालूम होता था मानो उन्हें कोई दैवी प्रेरणा प्राप्त हो रही हो। जितनी देरमें मैं इस पुरानी घटनाकी यहाँ पुनरावृत्ति कर रहा हूँ, उससे कम देरमें ही उन्होंने उस छन्दकी रचना कर डाली।

हम लोग उनके पास बिलकुल चुपचाप बैठे हुए थे, ताकि उनका ध्यान बँट न जाय। उस समय इस प्रकार चुपचाप बैठे रहना हमें बुरा नहीं मालूम पड़ता था; क्योंकि हम उनके लेखन-प्रवाहको देखनेमें पूर्णतया निमग्न थे।

एकाएक छन्द-रचना बन्द हुई, उसी तरह जिस तरह करघेमें लगा हुआ सूता टूटकर एकाएक बन्द हो जाता है। उसी समय एक आदमी—जिसकी आवाज तेज थी और जिसे अपनेके सिवा और किसीपर खयाल नहीं था—वहाँ पहुँचा, और पागल जैसी बातें करने लगा।

भाई साहबने धीरसे कलम रख दी। उनके मुँहसे प्रतिवादका एक भी शब्द नहीं निकला। किन्तु हम लोग, जो उन्हें जानते थे और उनसे प्रेम करते थे, यह समझे बिना नहीं रहे कि वे मर्माहत हो उठे हैं।

४० वर्षसे अधिक कठोर परिश्रम करनेके परिणाम-स्वरूप भाई वीरसिंह गद्य और पद्यके रूपमें पंजाबके लिए एक समृद्धिशाली साहित्य छोड़ गये हैं। जो पंजाबी भाषा गँवारू समझी जाती थी, उसमें उन्होंने ऐसी चमक ला दी कि वह झलमल करने लगी। उनकी कल्पनाएँ इतनी सुकुमार हैं कि सर्वसाधारण उनकी अनुभूति नहीं कर सकते। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी कुछ रचनाएँ अमर हैं।

सचमुच मैं अपनेको भाग्यशाली समझता हूँ कि उनके चरणोंमें मुझे उस समय बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जब मैं कोमलमति बालक था।
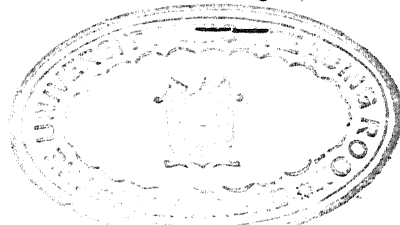
इस जीवनके घन बनमें

श्री रामनरेश त्रिपाठी

जब मैं अति विकल खड़ा था
इस जीवनके घन बनमें।

अगम अपार चतुर्दिक तम था,
न थीं दिशायें, केवल भ्रम था,
साथी एक निरन्तर श्रम था,
या था पथ निर्जनमें,
इस जीवनके घन बनमें।

आकर कौन हँस गया तममें,
अमित मिठास भर गया श्रममें,
पथ है, किन्तु प्रकाश भर उठा
एक-एक रज कनमें,
इस जीवनके घन-बनमें।

चित्र-चयन

डाकुओंकी शिनाख्त

हिन्दोस्तानमें लोग रुपया घरमें रखते हैं, इसलिए यहाँ डाके भी घरोंपर ही पड़ा करते हैं। लेकिन यूरोप-अमेरिकामें लोग नक़द रुपया या क़ीमती गहने आमतौरसे बैंकोंमें रखते हैं, इसलिए वहाँ घरोंपर डाका डालना गुनाह बेलज्ज़त है। वहाँके दलबन्द लुटेरे यह करते हैं कि किसी बैंक या ऐसे ही अन्य स्थानमें जहाँ नक़द रुपया बहुत आता जाता है, भले आदमी बनकर
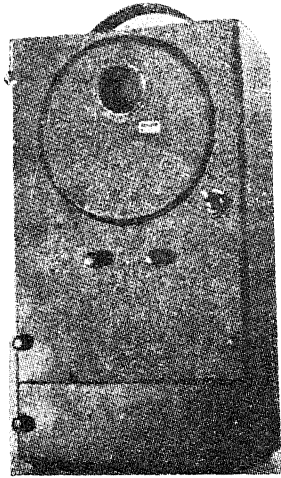
डाकुओंका फोटो लेनेवाला कैमरा

पहुँच जाते हैं, और जेबसे रिवाल्वर निकालकर खज़ांचीके सामने तानकर उसे दोनों हाथ ऊपर उठाकर चुपचाप खड़ा रहनेका हुक्म देते हैं। एक दो आदमी खज़ांचीपर रिवाल्वर ताने निगरानी करते रहते हैं, बाक़ी आदमी मालमता हथियाते हैं।

पुलिसको इन डाकुओंकी शिनाख्तमें बड़ी दिक़्क़तका सामना करना पड़ता है। इसके लिए एक नये प्रकारके कैमरोंका आविष्कार किया गया है। ये कैमरे बैंकमें कई स्थानोंपर गुप्तरूपसे लगे रहेंगे और डाका पड़ते समय ज़रासे बटन दबा देनेसे वे अपने आप डाकेकी सारी कार्रवाइयोंका फोटो लेते रहेंगे। वे प्रति तीन
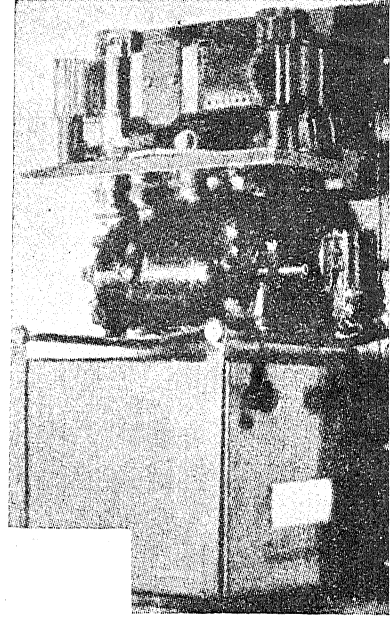
कैमरेके भीतरके कल-पुर्ज़े
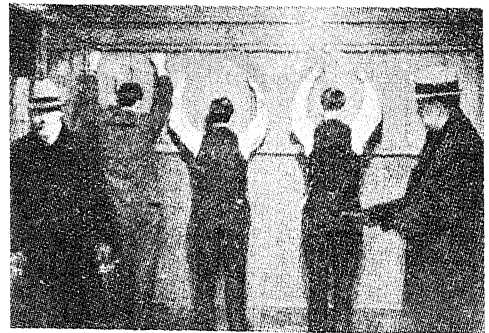
डाकेका एक दृश्य। बैंकके खज़ांचियोंको डाकुओंने दीवारकी ओर मुँह करके हाथ ऊपरको उठाये खड़ा कर रखा है

सेकेंडपर एक फोटो लेंगे और इस प्रकार १२ मिनट तक फोटो लेते रहेंगे। औसतमें इस प्रकारकी डकैतियाँ
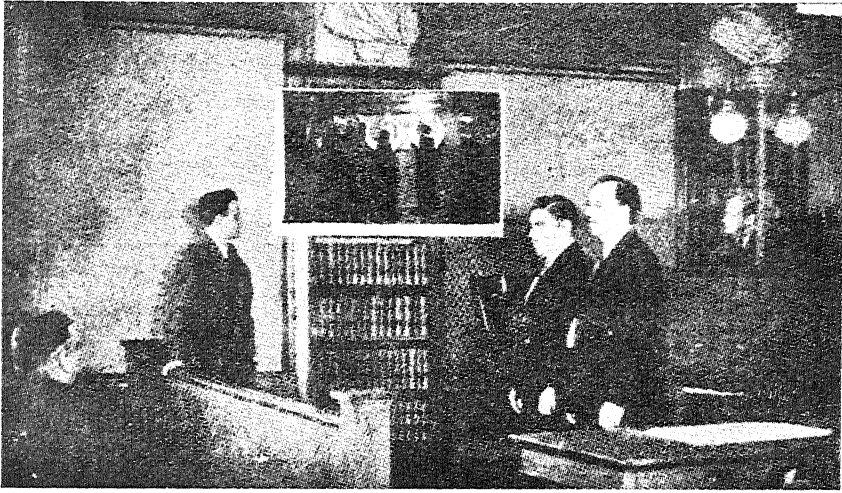
अदालतमें पर्देपर इस कैमरेसे लिया हुआ चित्र दिखाया जा रहा है

तीन मिनटमें समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार ये कैमेरे विभिन्न कोणोंसे कम-से-कम ६० चित्र ले लेंगे। इन कैमरोंका परिचालन बिजलीकी बैटरियोंके द्वारा होता है। उन्हें परिचालित कर देनेके अनेक सुगम उपाय हैं। एक बार चल उठनेपर वे १२ मिनट तक बन्द नहीं हो सकते। यदि डाकू लोग बिजलीका तार भी काट दें, तो भी ये कैमेरे काम करते रहेंगे। कैमरोंके लैन्सपर ऐसा शीशा लगा रहता है जिसपर गोली असर नहीं करती। इसलिए अगर डाकुओंको यह मालूम हो जाय कि इस तरहके कैमेरेमें उनकी फ़ोटो उतर रही है और वे कैमेरेपर गोली चलाना चाहें, तो भी वे कुछ नहीं कर सकते। बादमें इस कैमरेके फिल्मसे पुलिसको डाकुओंका पता लगानेमें सहायता मिलती है और अदालतमें शिनाख्तके लिए ये फिलम परदेपर दिखाये जा सकते हैं और सारी घटना जिस प्रकार घटी है, दिखाई जा सकती है।

—

भूकम्पमें बिजली और गैसकी रोक

जापानके सन् १९२३ के भयंकर भूचालमें भूकम्पसे जितनी हानि हुई थी, उससे कहीं अधिक हानि आगसे हुई थी। आजकलके नये ढंगके नगरोंमें बिजली और गैसका काम बहुत होता है। भूचालके धक्केसे गैसके पाइप फट जाते हैं और बिजलीके तार टूट जाते हैं। बिजलीके तार टूटकर आग लगा देते
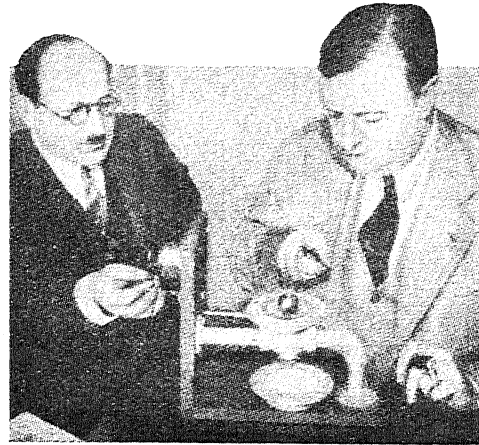
भूकम्पमें बिजली और गैस रोकनेवाला गेंद

हैं और गैस तो जलनेवाली चीज़ है ही। नतीजा यह होता है कि शहरके शहरकी पूर्णाहुति हो जाती हैं। इस नाशको रोकनेके लिए एक पीतलकी गेंदका आविष्कार किया गया है। यह गेंद गैसघर और बिजली-

घरमें इस प्रकार लगाई जाती है कि जब भूचालका इतने ज़ोरका धक्का लगता है, जिससे मकानोंको नुकसान पहुँचे, तब यह गेंद अपने आप गिर पड़ती है। इसके गिरते ही शहर-भरमें बिजली और गैसका जाना एकदम बन्द हो जाता है।

—

सूर्य-किरणोंकी गिरफ्तारी

वैज्ञानिकोंका विचार है कि सूर्यकी किरणोंमें अनेक रोगोंको दूर करनेकी शक्ति होती है। सूर्यकी किरणोंसे इलाज करनेकी प्रणाली भी कुछ लोगोंने निकाली है, जिसे अंगरेज़ीमें Sunbath Treatment कहते हैं।

सूर्य-किरणोंका रोगीके शरीरमें प्रवेश

मगर अभी तक एक बड़ी समस्या यह थी कि सूर्यकी किरणें शरीरके भीतर कैसे पहुँचाई जायँ। परन्तु अब एक ऐसे यन्त्रका आविष्कार किया गया है, जिसके द्वारा सूर्यकी किरणोंको गिरफ्तार करके रोगीके शरीरमें पहुँचाया जा सकता है। साथके चित्रमें देखिये, एक रोगीके गलेके मार्गसे सूर्यकी किरणें भीतर पहुँचाई जा रही हैं।

पेड़के भीतर घर

पेड़के खोखलेमें चिड़ियाँ तो घोंसला रखा ही करती हैं, मगर कभी-कभी हज़रते इंसान भी उनमें घोंसला बना लेते हैं। अमेरिकाके वाशिंगटन नगरके पास लगभग ढाई हज़ार वर्ष पुराना एक पेड़ था। इसकी
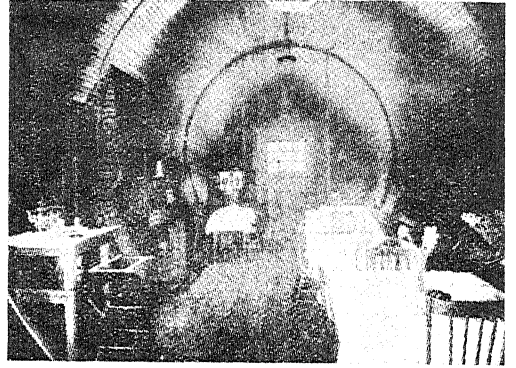
वृक्षके भीतर बना हुआ भोजनालय
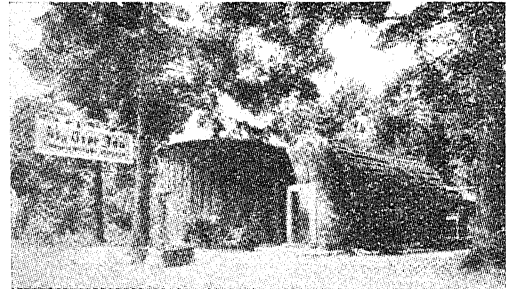
वृक्षके तनेकी बनी हुई अतिथिशाला

ऊँचाई तीन सौ फीट और इसकी परिधि बीस फीट थी। यार लोगोंने इसके तनेके दो टुकड़े कर दिये। एक टुकड़ा खड़ा रखा, दूसरेको लिटा दिया। खड़े अंशको भीतरसे काटकर बीस फ़ीट परिधिका एक गोलाकार घर बनाया गया है, जिसमें मेज़ कुर्सी वग़ैरह सब सामान बाक़ायदा सजाया है। दूसरे लेटे हुए अंशके भीतर तीस फीट लम्बा और अठारह फीट चौड़ा एक भोजनालय बनाया है। यहाँ उनके चित्र दिये जाते हैं।

साहित्य-सेवी और साहित्य-चर्चा

ब्रज-साहित्य-मंडल

श्रीमान सम्पादक महोदय,

गत फरवरीके अंकमें ब्रज-वासियोंको जो उलाहना आपने दिया है, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। पर मेरा आपसे एक प्रश्न है—"क्या आप ब्रजवासी नहीं हैं, और आपका इस ओर कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है?" वास्तवमें ब्रजमाधुरीकी साम्प्रतिक दशा बड़ी शोचनीय है। यदि कोई सुयोग्य व्यक्ति आगे बढ़नेका साहस करे, तो सहयोग देनेवाले तो बहुत मिल जायँगे। कौन ऐसा अभागा ब्रजवासी होगा, जो प्राचीन ब्रज-वनस्थलियोंमें—यहाँके कुंजोंमें—सत्यनारायण जैसे ब्रजकोकिलोंका मधुर स्वर सुननेके लिए उत्कंठित न हो? ब्रजमंडलके अनेक समर्थ पुत्र आज साहित्य-क्षेत्रमें अपने-अपने ढंगपर अच्छा कार्य कर रहे हैं, और यदि वे चाहें तो साहित्यिक दृष्टिसे ब्रजमंडलको पुनः गौरवपूर्ण पद दिला सकते हैं। पर दुर्भाग्यवश इधर उनका ध्यान ही नहीं गया। आपने इस विषयकी चर्चा छेड़कर उचित कार्य किया है। मेरी क्षुद्र सम्मतिमें यह चर्चा आजसे कितने ही वर्ष पहले छेड़ी जानी चाहिये थी। जब आपने यह प्रश्न उठाया है तो इसको अन्त तक निबाहना भी चाहिए। एक ब्रजवासीकी हैसियतसे मैं जानना चाहता हूँ कि आपका इस विषयमें आगे चलकर क्या प्रोग्राम होगा। आशा है कि इस प्रश्नपर आप विस्तार-पूर्वक लिखेंगे।

विनीत—एक ब्रजवासी

[लेखक महोदयके उपर्युक्त प्रश्नके उत्तरमें हम दो-चार बातें स्पष्टतया कह देना चाहते हैं। प्रथम बात तो यह है कि ब्रज-साहित्य-मंडलके संगठनपर विचार करते समय हमारे मनमें ब्रजभाषा तथा खड़ी बोलीके पारस्परिक सम्बन्ध अथवा विरोधका ख़याल बिलकुल नहीं आता। ब्रजमंडलके खड़ी बोलीके भी कवियोंके प्रति हमारे हृदयमें उतना ही सम्मान है, जितना ब्रजभाषाके कवियोंके प्रति। हम ब्रजमंडलका सर्वाङ्गीण साहित्यिक संगठन चाहते हैं और उसमें खड़ी बोली या ब्रजभाषाका भेद किसी हालतमें भी सहन नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि खड़ी बोलीकी धारा समयकी गतिके साथ इतनी अधिक आगे बढ़ गई है कि उसे लौटानेका प्रयत्न उतना ही असम्भव तथा हास्योत्पादक है, जितना हुगलीको लौटाकर गंगोत्री तक ले जाना। खड़ी बोली ही साहित्य-क्षेत्रकी साम्राज्ञी है और भविष्य उसीका है; और उसमें भी खास तौरपर रहस्यवादकी कविताओंका है। इस सत्यसे इनकार नहीं किया जा सकता; पर इसके साथ-ही-साथ हम उन भलेमानसोंकी निन्दा किये बिना नहीं रह सकते, जो मौक़े-बे-मौक़े ब्रजभाषापर कटाक्ष किया करते हैं और ब्रजभाषाको मृत भाषा कहकर उसका और ब्रजवासियोंका भी अपमान करते रहते हैं। ब्रजभाषाके बोलनेवालोंकी संख्या अब भी लाखों है, और कितने ही महानुभाव अब भी ब्रजभाषामें पद्य रचना करते हैं।

जैसा कि कविवर सत्यनारायणजीने अपनी प्रतिभासे सिद्ध कर दिखाया था, ब्रजभाषाकी कवितामें उच्च देशभक्ति-पूर्ण भाव लाना असम्भव नहीं है। यदि कोई ब्रजवासी ब्रजभाषामें कविता करना चाहता है, तो हम उसे रोकें क्यों? क्यों उसका मज़ाक उड़ावें?

साथ ही हम यह भी कहेंगे कि हम ब्रज-साहित्य-मंडलके संगठनके साथ इस प्राचीन ब्रज-साहित्यके उद्धारके प्रश्नको यथोचित स्थान देते हैं। "सूर-सूर तुलसी शशी" इत्यादि कहनेवाले अभी तक सूरसागरका एक भी प्रामाणिक संस्करण नहीं निकाल पाये!

"और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया"* हम लोग हज़ार बार दुहरा चुके हैं, पर नन्ददासके ग्रन्थोंका संग्रह हमसे आज तक प्रकाशित नहीं हो सका। ज़रा इस दुर्घटनापर तो विचार कीजिये कि कविवर सोमनाथने चौदह ग्रन्थ लिखे और बेचारेका एक भी प्रकाशित नहीं हो पाया! जब ब्रजभाषाके पीछे लाठी लिये हुए घूमते कोई महानुभाव हमें दिखाई देते हैं, तब हमें यह सोचकर खेद होता है कि अभी प्राचीन ब्रज-साहित्यका एक मुख्य अंश प्रकाशित भी नहीं हुआ, और ये लोग उसपर फैसला देकर ब्रजभाषाको मृत्युदंड देनेके लिए उत्सुक हैं। कविवर रत्नाकरजीने हमसे कहा था —"ब्रजभाषाकी यदि सब कविताओंका संग्रह किया जाय, तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उसमें श्रृंगारकी कविताओंका प्राधान्य नहीं है। वीर-रसकी कविताएँ श्रृंगारसे कहीं अधिक निकलेंगी।" हम नहीं कह सकते कि कविवर रत्नाकरजीका यह दावा कहाँ तक ठीक था। कुछ भी क्यों न हो, हम यह अवश्य चाहते हैं कि ब्रजभाषाके प्राचीन कवियोंके उन ग्रन्थोंको जो प्रकाशित करनेके योग्य हों, अवश्य छपाया जाय।

ब्रजवासी होनेके कारण हम इस बातके इच्छुक अवश्य हैं कि साहित्य-क्षेत्रमें ब्रजमंडलका स्थान सर्वोच्च हो जाय, और आगरेकी नागरी प्रचारिणी सभा काशीकी ना० प्र० सभासे भी बढ़कर काम कर दिखावे। वैसे राजनैतिक क्षेत्रमें हम प्रान्तीयताके घोर विरोधी हैं, पर साहित्य-क्षेत्रमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंकी स्वास्थ्यप्रद प्रतिद्वन्द्विताके मोहको हम नहीं छोड़ सकते। ब्रजमण्डलकी साहित्यिक उन्नतिके लिए ब्रजवासी लोग जो सेवा हमसे लेना चाहें, ले सकते हैं।

—सम्पादक।

—

* अर्थात् अन्य कवि गढ़ते हैं, नन्ददास जड़ते हैं।

(२)

प्रिय महाशय,

फरवरीके 'विशालभारत' में आपका लेख पढ़ा। 'हिन्दी साहित्यकी सबसे बड़ी आवश्यकता क्या है?' यह प्रश्न बहुत विस्तृत है, और इसका उत्तर हरएक अपनी-अपनी समझके अनुसार देनेका प्रयत्न करेगा, परन्तु इसमें तो किसीका मतभेद नहीं हो सकता कि हिन्दी-साहित्यको सबसे बड़ी आवश्यकता महान् व्यक्तियोंकी है, जो प्रत्येक दृष्टिसे महान् हों और 'जिनके लेखों और कविताओंमें उनका व्यक्तित्व स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो'।

मेरी तुच्छ सम्मतिमें हिन्दी-साहित्यको सबसे बड़ी आवश्यकता Creators निर्माणकर्ताओंकी है; और जो सच्चे अर्थोंमें Creators होंगे, उनकी रचनाओंमें उनके व्यक्तित्वकी छाप न पड़े, यह असम्भव है। सुन्दर साहित्यिक सृष्टिको उत्पन्न करनेके लिए महान् तप, महान् साधना, विस्तृत और गहन अध्ययन, उग्र और ज्वलन्त विचारशक्ति, दूरदृष्टि और स्वार्थत्याग अनिवार्य है। आवश्यकता ऐसे Creators की है, जो अपने और अपने समाज, जाति, देश और संसारके सुखों और दु:खोंको, छोटी-सी-छोटी, तुच्छसे तुच्छ और महान्-से-महान् घटनाओंको, समस्याओंको, विचारोंको, अपने चारों तरफके विस्तृत आकाश और धरतीको, मनुष्य-समाजको अपने अतीत वर्तमान और भविष्यको अपनी परिश्रममयी प्रतिभासे हिन्दीके अन्दर ऐसे सुन्दर और विशाल साहित्यिक रूपोंमें नाना प्रकारसे उपस्थित कर दें, जो आकाशके तारों चाँद और सूर्यकी तरह समस्त संसारकी गर्वपूर्ण सम्पत्ति बन सकें। प्रकृतिकी रंगशालामें जब फूल खिलते हैं, तो इन फूलोंको सूरजकी गरमीकी प्रखर किरणें मुरझा देती हैं, और हवाके ज़बर्दस्त झोंके उन्हें धराशायी कर देते हैं। हमें हिन्दी-साहित्यमें ऐसे सुकुमार, सुगन्धिपूर्ण और अनिर्वचनीय सुन्दर फूलोंकी आवश्यकता है, जो न तो प्रखरसे प्रखर तापमें मुरझा

सकें और न उन्हें युगोंके बड़े-से-बड़े झोंके धराशायी कर सकें। जितनी ही प्रखर तापकी किरणें इनपर पड़ें, वे आगमें पड़े सोनेकी तरह उतना ही अधिक चमकें और युगोंके झोंके तो इनके लिए एकमात्र सुन्दर झूलेका काम करें।

ऐसा विशाल सुन्दर साहित्य उन्हीं लोगोंके द्वारा उत्पन्न हो सकता है, जिनकी रचनाशक्ति सूक्ष्म, व्यापक और प्रतिभामयी हो और जिनके जीवनकी धारा निरन्तर इसी दिशामें आजीवन प्रवाहित होती रहे। प्रतिभा जितनी ईश्वरदत्त होती है, उससे अधिक मनुष्यको अपने असीम परिश्रम द्वारा उत्पन्न करनी पड़ती है, और तभी वह इस योग्य होती है कि वह कोई अलौकिक रचनात्मक कार्य कर सके। ऐसे साहित्यिक पुरुष न धनकी और न यशकी परवाह करते हैं, और न ये दोनों चीजें उनके उद्देश्यके मार्गमें बाधक ही सिद्ध हो सकती हैं।

धनके लिए लिखना और साहित्यिक पुरुषोंको उनकी रचनाओंके लिए धन स्वयमेव दिया जाना, इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। हमारे यहाँ लेखकोंको धन उतनी जल्दी प्राप्त नहीं होता, जितनी जल्दी उन्हें थोड़ा-बहुत यश प्राप्त हो जाता है। इस दीनहीन देशमें धन ही कहाँ है, जो इतना पुण्यवान् हो कि वह साहित्यसेवियोंके काम आ सके। कविवर मौलाना हालीने एक कवितामें अपने एक कविके मुखसे ठीक ही कहा है—

"शायरी करिये तो किस घर जाके रोटी खाइए"

हिन्दी संसारमें कितने व्यक्ति हैं, जो अपनी लेखनीके बलसे ऐसी धनराशि उपार्जन कर सकते हैं, जैसी कि बंगालमें श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय और कई अन्य लेखक प्राप्त कर सके हैं। हाँ, शायद कुछ ऐसे प्रकाशक, या स्वयं ही लेखक और स्वयं ही प्रकाशक, मिल जायँ जिन्होंने विशाल धनराशिको प्राप्त किया हो। परन्तु हमारे हिन्दी-संसारमें लेखकोंको तो पहले मिलता ही क्या है, जिससे उनके हृदयमें एक बार भी अपने परिश्रमका सांसारिक दृष्टिसे कुछ थोड़ासा मूल्य भी अनुभव होने लगे। लेखकोंका त्याग तो उसी अवस्थामें कहा जा सकता है, जब कि उन्हें कुछ प्राप्त हो और वे या तो इसे न लें और या लेकर अच्छे कार्योंमें लगा दें।

अभी पिछले दिनों मैं Times of India में पढ़ रहा था कि चार्ल्स डिकन्सने एक पुस्तक अपने बच्चोंके लिए ही लिखी थी, जिसके विषयमें उन्होंने अपने बच्चोंको यह हिदायत कर दी थी कि वे इसे अपने जीवनकालमें प्रकाशित न करें। उनके अन्तिम पुत्रके दिवंगत हो जानेके बाद जब वह पुस्तक प्रकाशक मंडलीमें पहुँची, तो एक प्रकाशकने इस पुस्तकके लिए जिसमें कुल १४००० शब्द हैं ३०००० पौण्ड देनेके लिए कहा है।

मेरा इस बातके लिखनेका यह आशय नहीं है कि जिस पुस्तककी जितनी क़ीमत हो, वह उतनी ही अधिक सुन्दर या उपादेय होती है। साहित्यके क्षेत्रमें धनको अच्छाईका माप बनाना एक बहुत बड़ी भूल होगी। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि धन भी एक ऐसी वस्तु अवश्य है, जो लेखकोंके हृदयमें सांसारिक दृष्टिसे अपने परिश्रमके लिए कुछ न कुछ मूल्यका थोड़ा-सा अनुभव करा देती है और दूसरोंको इस मार्गमें परिश्रम-पूर्वक आनेका निमन्त्रण देती है। बेचारे साहित्यिक लोग एकमात्र हवा ही के सहारे तो ज़िन्दा नहीं रह सकते। अंगरेज़ी भाषाके जितने अच्छे पत्र हैं, वे प्रायः अपने प्रत्येक नये-से-नये और पुराने-से-पुराने लेखक या कविको उसके प्रत्येक लेख या कविताके लिए, जिसे वे अपने पत्रमें प्रकाशनके लिए स्वीकृत कर लेते हैं, कुछ-न-कुछ पारिश्रमिक अवश्य देते हैं; परन्तु हिन्दीके कितने ऐसे अच्छे, सम्पन्न और चलते हुए पत्र हैं, जो अपने लेखकों, कवियों आदिको ज़रासा भी पारिश्रमिक देनेकी उदारता दिखाते हैं? सुन्दर कविता और सुन्दर लेखकी तो कोई क़ीमत हो ही नहीं सकती। जो कुछ दिया जाता

है, वह तो उस परिश्रमके लिए होता है, जो कि एक लिखनेवालेको अपना बहुत-सा समय देकर करना पड़ता है। मैं तो हिन्दी-संसारमें वह दिन देखना चाहता हूँ, जब कि हिन्दीके छोटे-से-छोटे चलते हुए पत्रमें भी कोई भी ऐसे लेख या कविताएँ प्रकाशित नहीं होंगी, जिसके लिए लेखकको पारिश्रमिक न दिया गया हो। जैसे कि एक मज़दूरको यह विश्वास होता है कि यदि वह अपने शरीरकी शक्तिसे—दोनों हाथोंसे—मज़दूरी करेगा, तो वह कुछ-न-कुछ उपार्जन कर लेगा, इसी प्रकार एक लेखक या कविको यह विश्वास होना चाहिए कि यदि वह साहित्यके मैदानमें आकर अपने मस्तिष्क और मनसे एड़ी चोटीकी मेहनत करेगा, तो उसे इसका इतना फल अवश्य मिलेगा, जिससे कि वह सांसारिक दृष्टिसे भी इस प्रकारके साहित्यिक परिश्रममें लगातार लगा रहे।

हमारे देशमें ऐसे स्वार्थत्यागी महान् प्रकाशक कहाँ हैं, जो अपने उपार्जित धनके एक वांछनीय भागको अपने लेखकों और कवियों आदिमें पारितोषिकके तौरपर नहीं किन्तु पारिश्रमिकके तौरपर दें? यह सत्य है कि हमारे देशमें बहुतसे प्रकाशक ही शायद बहुत नहीं कमाते, परन्तु जो कमाते हैं उन्हें अपने लेखकोंको उनके परिश्रमका थोड़ासा फल देकर अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिए, जिससे वे उनके अन्दर धनलिप्सा नहीं किन्तु अनन्त परिश्रमकी अभिलाषा उत्पन्न कर दें।

आपके लेखमें वर्णित भिक्षुका आदर्श बहुत ऊँचा है, परन्तु उसका मूल्य भी तभी होगा, जब कि उन्हें कुछ मिलेगा और वे लेकर उसे केवल अपने परिवारके कार्योंमें ही नहीं, अच्छे उपयोगी साहित्यिक कार्योंमें व्यय करेंगे या दान कर देंगे। परन्तु इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी मैं इस बातमें आपसे पूर्ण सहमत हूँ कि धनसे अधिक सच्चे साहित्य-सेवियोंकी आवश्यकता है, और सच्चे साहित्य-सेवीके मार्गमें धनाभाव ऐसी बड़ी रुकावट नहीं उपस्थित कर सकता, जिससे कि वह अपने सेवाके मार्गका ही परित्याग कर दें। आज नहीं तो कल, और कल नहीं तो परसों, किसी-न-किसी दिन सच्चे साहित्य-सेवियोंकी सेवा अवश्य स्वीकृत होगी। विनीत—**वंशीधर विद्यालंकार**

कबीर-मेला

कबीर-मेलेकी उपयोगिता

कबीर-मेलेके आन्दोलनको उठाकर 'विशाल-भारत' ने स्तुत्य कार्य किया है। कबीर साहबने हिन्दी-साहित्य, हिन्दू-धर्म और समस्त भारतीय राष्ट्रकी जो सेवा की है, उसका अनुमान पूर्णरूपसे बहुत कम लोगोंने किया है। अशिक्षितोंकी बात तो जाने दीजिये, हमारे उच्च-शिक्षाप्राप्त सज्जनोंने भी कबीर साहबके महत्त्वको नहीं समझा है। यह हमारे दुर्भाग्यकी बात है। उनके नामसे तो प्रायः सभी परिचित हैं, और उनकी वाणीके एक-आध पद भी प्रायः सभीने सुने हैं, किन्तु उनके उच्च संवाद और उपदेशकी महिमा तथा उनके अनुपम जीवनसे लोग प्रायः अनभिज्ञ हैं। हमारे पढ़े-लिखे लोगोंमें से कुछ तो ऐसे हैं, जो कबीर साहबके महत्त्वका अनुमान उनके वर्तमान पन्थानुयायियोंके मानदंडसे करते हैं। वर्तमान कबीरपन्थी भी यद्यपि भारतीय जनताके अन्य सम्प्रदायोंकी तरह अशिक्षित हैं और उनमें भी दुर्गुणोंकी कमी नहीं है, तथापि मैं अपने निजी अनुभवसे यह बात कहता हूँ कि उनमें कुछ अनुकरणीय गुण भी हैं, जो अन्य पन्थियों और जातियोंमें नहीं पाये जाते। फिर भी कबीरपन्थकी वर्तमान दशासे कबीरकी महत्ता प्रकट नहीं हो सकती। हमारे साहित्यिक महारथियोंने

भी कबीरके महत्त्वको कुछ देरमें समझ पाया। कारण यह है कि अभी ७-८ वर्ष पहले तक हिन्दीमें साहित्य-समीक्षाकी जो प्रणाली थी, वह अलंकार नायका-भेद आदिके प्रभावसे इतनी दबी हुई थी कि प्रत्येक बड़ेसे बड़े महाकविका बड़प्पन इसीमें समझा जाता था कि वह कितने अलंकारोंका समावेश एक ही छन्दमें कर सकता है। मिश्रबन्धुओंने अपने 'हिन्दी-नवरत्न' का प्रथम संस्करण लिखते समय तक कबीरकी उपेक्षा की। उन्हें देव, बिहारी आदिके तुल्य भी न समझकर मिश्रबन्धुओंने नवरत्नोंमें गिना तक नहीं। यह बात नहीं है कि प्राचीन साहित्य-समीक्षकोंने कबीरकी साहित्यिक महत्ता न समझ पाई हो। भक्तप्रवर नाभादास तकने कबीर जैसे सुधारवादी एवं उग्र परिवर्तनके पक्षपातीको अपने 'भक्तमाल' में आदरका स्थान प्रदान किया है। प्रियादासजीने अपनी 'टीका' में कबीर साहबकी जीवनीपर और भी अधिक प्रकाश डाला है। मराठीके प्रसिद्ध कवि महीपतिने अपने ग्रन्थोंमें कबीरकी पवित्र लीलाका गुण-गान किया है। 'ग्रन्थ साहब' में तो महात्मा कबीरका स्थान सर्वोपरि है। "कबिरा कही अनूठ" वाली उक्तिसे भी हमारे पूर्वजोंकी साहित्य-मर्मज्ञताका कुछ परिचय मिलता है। परन्तु इधर बीसवीं शताब्दीके पहले चरणके साहित्यालोचकोंने अलंकारप्रियताके वशीभूत होकर कबीरको शायद कवि ही नहीं माना। मैंने कुछ पुराने ढंगवाले समस्यापूरक तुक्कड़ 'महाकवियों' से इस विषयमें बातचीत की। उनकी रायशरीफ़में भी कबीरको कवि मानना सरस्वतीका उपहास करना है। परन्तु इधर कुछ वर्षोंसे कबीर साहबकी साहित्यिक महिमाको नवीन समीक्षक निस्संकोच स्वीकार कर रहे हैं। मिश्रबन्धुओंने हिन्दी-नवरत्नके नवीन संस्करणमें अपने पुराने अपराधका प्रायश्चित्त किया है। नवीन शैलीके आलोचक तो कबीरके भक्त ही हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कबीरके सम्बन्धमें जो यह मत-परिवर्तन-सा हुआ है, उसमें ईसाई-लेखकों और प्रचारकोंके लेखोंका पूरा प्रभाव पड़ा। सबसे पहले एच० एच० विलसन महोदयने अपने "हिन्दुओंके धार्मिक सम्प्रदाय" नामक ग्रन्थमें, कोई १०० वर्षसे अधिक हुए, कबीरपर एक बड़ा विचारपूर्ण निबन्ध लिखा था। कबीरकी स्वच्छन्द विचारधारा ईसाई-लेखकों और प्रचारकोंको इतनी अधिक पसन्द आई और उसमें उन्हें ऐसे भाव मिले, जो उनकी समझमें साधारण हिन्दू-मनोवृत्तिके विरुद्ध जान पड़े। ऐसे बागी विचारवाले उपदेशकके शब्दों द्वारा ईसाई-प्रचारकोंको साधारण हिन्दू-धर्मकी निन्दा करनेका भी अच्छा साधन उपलब्ध हो गया। इन लेखकोंमें से एकआधने तो यहाँ तक कह डाला कि कबीरकी विचार-शैली इतनी अहिन्दू है कि वह अवश्य ईसाई-धर्मके सिद्धान्तोंसे प्रभावित हुई होगी। १९वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें ऐतिहासिक पत्रिकाओं आदिमें इस विषयपर काफी वाद-विवाद हुआ। अन्तमें उन लोगोंने स्वयं लड़-झगड़कर यह मत निश्चित कर लिया कि कबीर साहबके विचारोंपर ईसाई-धर्मके सिद्धान्तोंके प्रभाव पड़नेकी ऐतिहासिक सम्भावना नहीं जान पड़ती। उनके विचार स्वतन्त्र, मौलिक और निजी अनुभवपर स्थित थे।

कुछ भी हो, यह बात निःस्संकोच स्वीकार करनी पड़ेगी कि इन ईसाई लेखकों-द्वारा कबीरके जीवन, उनके उपदेशों आदिकी विशेष छानबीन हुई, उनके शब्दोंका प्रकाश हुआ, उनके सम्बन्धमें हमारे ज्ञानकी वृद्धि हुई और उनकी महत्ताकी ओर हमारी आँखें खुलीं। करीब-करीब जिस समय महर्षि दयानन्द अपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में केवल धर्म-प्रचारककी दृष्टिसे कबीर और उनके पन्थकी आवेशपूर्ण भाषामें संकीर्ण आलोचना कर रहे थे, उसी समय विलसन महोदय कबीरका गुण-गान कर रहे थे। कुछ काल उपरान्त डा० ग्रियर्सन, मि० मैकालिफ़, बिशप वेस्टकट, श्री० सी० एफ़० एन्ड्रूज़, पादरी अहमदशाह, मि० फ़ारकूहर, मि० की आदि महानुभावोंने अंग्रेज़ीमें कबीरके सम्बन्धमें पर्याप्त साहित्यकी सृष्टि की;

और उनके ग्रन्थोंका प्रकाशन भी किया। इन लोगोंके लेख और ग्रन्थ अब भी इस सम्बन्धमें प्रमाण-कोटिमें गिने जाते हैं। भारतीयोंमें डा० भांडारकरने सबसे पहले कबीरका वैज्ञानिक दृष्टिसे अध्ययन किया। इधर कवीन्द्र रवीन्द्रकी पुस्तिका 'कबीरके १०० पद्य' के अंग्रेजीमें प्रकाशित होते ही हमारी आँखें खुलीं, और हमें अपनी भूलोंपर लाज आई। जिस पुरुषको हमने गँवार, कुपढ़, 'नीच' जातियोंका गुरु समझकर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा था, जिसके [illegible] हमारे विदग्ध साहित्य-प्रेमियों और आचार्योंने उपहास किया था, वह तो गुरुओंका भी गुरु निकला। इसके सामने [illegible] जैसे महाकवि भी [illegible] जाते हैं। जिस महापुरुषका लोहा गुरु [illegible] माना, तथा गुरु गोविन्दसिंह जैसे वीर और [illegible] जिसका [illegible] स्वीकार किया, जिसकी अमर वाणीको [illegible] हिन्दुस्तान, पंजाब, [illegible], सिंधु, गुजरात, महाराष्ट्र आदिने [illegible], जिसके उच्च अनुभवोंकी सूक्तियों और [illegible] गहन तत्त्व माना, प्रार्थनासमाजके [illegible] जिसकी महत्ता स्वीकार कर अपनी उपासनामें परिवर्तन किया, और विदेशी विद्वानों तथा धर्म-प्रचारकोंने जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, उसकी उपेक्षा करना हमारे लिए कितना लज्जास्पद है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। कबीर साहबने हमारी कठिन समस्याओंको सुलझानेके लिए जो मार्ग १५वीं शताब्दीमें दिखाया था, वह आज ५०० वर्ष बीत जानेपर भी वैसा ही विशद बना हुआ है, बल्कि समयकी कसौटीपर कसा जाकर वह और भी शुद्ध साबित हो गया है। हिन्दू-मुस्लिम-एकताका महामन्त्र इस महात्माने उस कट्टरताके युगमें फूँका था। उसका तात्कालिक प्रभाव सिक्ख-धर्मके रूपमें व्यक्त हुआ, तथा अनेक सुधारकों और साधुओंके उपदेशोंमें उसकी प्रतिध्वनि हुई। धार्मिक सहिष्णुताकी आवश्यकता सम्राट् अशोकने अपने अमर वाक्योंमें अबसे २२०० वर्ष पहले बतलाई थी। अशोककी भाषा शान्त रससे भरी हुई है, उसकी शब्दावली कोमलता और मार्दवकी साक्षात् मूर्ति है। कबीरकी भाषा उग्र है, उसकी बानीमें सर्जनके चाकूसे भी अधिक तीक्ष्णता है, उसके व्यंगोंमें हृदयको बेधनेकी शक्ति है। जिस भावको अशोक अपनी स्वभावजन्य कोमलतासे व्यक्त करता है, उसी बातको कबीर साहब तीक्ष्ण उपहास तथा उत्कट व्यंगके द्वारा प्रकट करते हैं। कबीरकी वाणीके प्रचारसे हमारे राष्ट्रकी अनेक गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं; हमारी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक मनोवृत्तिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकता है; हमारी [illegible] अन्त हो सकता है और एक नई परिष्कृत राष्ट्रीय संस्कृतिकी स्थापना हो सकती है। हमारे साहित्यमें कबीरका ऊँचा [illegible] प्रभाव दिखा रहा है। भविष्यमें और अधिक व्यापक रूपमें हमारे साहित्यको उनकी वाणी [illegible] प्रभावित करेगी। हमारे समाजसे छुआछूतका कलंक मिट जायगा, जाति-पाँतिका भेद दूर हो जायगा, अनिष्टकारी कुरीतियाँ नष्ट हो जायँगी। हमारा धर्म सहिष्णुताकी मूर्ति होकर हिन्दू-मुसलमानोंको एक सूत्रमें ग्रथित करेगा। हमारी रूढ़ियाँ और हमारे मूढ़-विश्वास हमारी मानसिक उन्नतिको बाधा न पहुँचाकर उसे अग्रसर करेंगे। कबीर-वादके प्रचारसे ये सब विभूतियाँ हमें प्राप्त होंगी। इसीलिए मैं 'विशाल-भारत' के कबीर-मेलेवाले प्रस्तावका हृदयसे स्वागत करता हूँ।

कानपुर-नागरी-प्रचारिणी सभाने ४ वर्ष पहले छोटे रूपमें कबीर-उत्सवकी योजनापर विचार किया था। परन्तु कई कारणोंसे—विशेषकर उसके अधिकारियोंके निरुद्योगसे (यह लेखक उस समय उक्त सभाका प्रधान मन्त्री था), वह पूरा न हो सका। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि यह कार्य अब श्रीयुत सुन्दरलालजी तथा बाबा राघवदासजीके सुयोग्य हाथों द्वारा सुसम्पादित होगा। —**लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, एम० ए०**

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी—लेखक स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा, प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी०, इलाहाबाद, मूल्य अजिल्द १) । [illegible] । पृष्ठ-संख्या १७१+४

मार्च सन् १९३२ में प्रयागकी हिन्दुस्तानी एकेडेमीके सालाना जलसेमें स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माने एक लिखित व्याख्यान दिया था, या यों कहिये कि एक निबन्ध पढ़ा था। वही निबन्ध अब एकेडेमीकी ओरसे इस पुस्तकके रूप प्रकाशित हुआ है। शर्माजीके व्याख्यान या निबन्धका विषय था—"हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी।"

हिन्दुस्तानी एकेडेमीका जन्म इस उद्देशसे हुआ है कि उसके द्वारा हिन्दी, उर्दू भाषाओंकी उन्नति हो। स्वर्गीय पद्मसिंहजी हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, और प्राकृतके विद्वान तथा फ़ारसीके अच्छे जानकार थे। वे कविताके मर्मज्ञ पारखी, साहित्यके निष्पक्ष समालोचक और क़लमके धनी थे। उनके क़लमका लोहा बड़े-बड़े मानते थे। इसलिए शर्माजीके लिए व्याख्यानका उपयुक्त विषय चुननेमें एकेडेमीके अधिकारियोंने बड़ी योग्यताका परिचय दिया था और साथ ही शर्माजीने अपने विषयका निर्वाह करनेमें भी कमाल किया था।

हिन्दी, उर्दूका झगड़ा नया नहीं है। हिन्दी, उर्दूके झगड़ेकी जैसी वैज्ञानिक और युक्तिसंगत विवेचना शर्माजीने इस व्याख्यानमें की है, वैसी इससे पहले शायद ही किसीने की हो। सच है उत्तरी हिन्दुस्तानमें हिन्दू-मुसलमान आमतौरसे जो भाषा बोलते हैं, उसका नाम हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी है। मामूली बिना पढ़े-लिखे हिन्दू-मुसलमानोंकी बोलचालकी भाषामें कोई विशेष अन्तर नहीं है। मगर उच्चकोटिके विद्वानोंने इस आज़ाद ज़बानको अरबी फारसी और संस्कृतकी ज़ंजीरोंमें जकड़कर उसमें एक घरेलू झगड़ा—'सिविल वार'—पैदा कर दिया है, जो दिन-दिन बलवान होकर देश, राष्ट्र और समाजका नुकसान कर रहा है। उर्दूके मुसलमान लेखक एक ओर कुस्तुन्तुनिया, और अल अज़हरसे तुर्की-अरबीके कर्णकटु, कठिन और समझमें न आनेवाले अल्फ़ाज़का कारवाँ लाकर उसके बेमुहार शुतुरोंको उर्दूके चमनमें छोड़ रहे हैं, तो दूसरी ओर हिन्दी लेखकोंका एक गिरोह बनारसकी म्यूनिसिपैलिटीमें शिवजीके नान्दीको नचाना चाहता है। इन दोनों क़िस्मके मुल्लाओंके झगड़ेमें बेचारी भाषाकी बेज़बान मुर्गी हलाल हो रही है। पंडित और मौलवी भाषाको लेकर आपसमें लड़ते हैं, लेकिन उसका दंड भोगना पड़ता है जन-साधारणको। इसके कारण हिन्दुस्तानकी दो प्रधान जातियों—हिन्दू और मुसलमानों—में वैमनस्य बढ़ता है, राष्ट्रीयताकी नींव कमज़ोर होती है और गैरोंको अपना उल्लू सीधा करनेका मौका मिलता है। यही समझ हो रही है कि थोड़े थोड़े लड़ें, [illegible]। शर्माजीने अपने व्याख्यानमें इन सब बातोंपर विस्तृत प्रकाश डाला है।

हिन्दी-उर्दूके झगड़े और भेदका शर्माजीने जो विश्लेषण किया है, उससे निम्न-लिखित कारण ज्ञात होते हैं:—१ नाम-भेद, २ लिपि-भेद, ३ पिंगल-भेद, ४ व्याकरण-भेद और ५ शैली-भेद।

इनमें नाम भेद एक फ़िज़ूल-सी चीज़ है। उससे केवल कुछ कट्टरपन्थियोंकी भावुकताके सन्तुष्ट होनेके सिवा कुछ आता-जाता नहीं। लिपि-भेदके लिए उर्दूके निष्पक्ष विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि फ़ारसी-लिपि बहुत दोषपूर्ण है। देवनागरी उससे हज़ार गुना ज़्यादा पूर्ण और शुद्ध है। अगर उर्दूवाले देवनागरी लिपिको ग्रहण कर लें, तो उर्दूके प्रचारमें बड़ी सहायता मिले। कुछ उर्दूवाले लिपिकी कठिनताको दूर करनेके लिए रोमन-लिपि स्वीकार करनेको भी तैयार हैं। देवनागरीके मौजूद होते हुए रोमनके प्रति उनका झुकाव वही अर्थ रखता है—"अपनी खाँड़ किरकिरी लागै, बाहरको गुड़ मीठा।" पिंगल-भेद और शैली-भेदकी दिक्कतें ऐसी नहीं हैं, जो हल न की जा सकती हों। शर्माजीने इन सब बातोंकी बड़ी अच्छी तरह विवेचना की है। उनकी रायमें ठेठ हिन्दुस्तानीकी कविताका नमूना 'नज़ीर' और 'हाली' के कलामोंमें मिलता है। हिन्दी-उर्दू-साहित्यके प्रत्येक विद्यार्थीके लिए इस पुस्तकको पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। अन्तमें शर्माजीने हिन्दी-उर्दूके कट्टरपन्थी हिमायतियोंसे अपील की है कि वे भाषा, जाति, देश और समाजके कल्याणके लिए हिन्दी-उर्दूको सरल बनाकर दोनोंमें एकता स्थापित करें, क्योंकि वास्तवमें ये दोनों भाषाएँ एक ही हैं। उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। यह तो भाषाके हिमायतियोंकी नासमझी है,

जिसकी वजहसे वे अपनेको हास्यास्पद बना रहे हैं—

"हम उर्दूको अरबी क्यों न करें,
वे उर्दूको भाषा क्यों न करें ?
झगड़ेके लिए अखबारोंमें,
मज़मून तराशा क्यों न करें ?
झगड़ेकी बुना तो कुछ भी नहीं,
पर एक अखाड़ा क़ायम है,
जब इससे फलकका दिल बहले
हम लोग तमाशा क्यों न करें ?"

—अकबर

FIERY STRONGHOLD—By NICHOLAS ROERICH ; published by The Stratford Co. Boston, Mass., U. S. A. Price. $ 3.00. Pp. 460. Beautifully bound in cloth.

सुप्रसिद्ध रूसी चित्रकार निकोलस रोरिक, जिन्होंने आजकल हिमालयकी कुलु-घाटीको अपना निवास-स्थान बना रखा है, केवल चित्रकार ही नहीं हैं, वरन वे मनीषी, लेखक और कवि भी हैं। वे जिस स्वतन्त्रतासे तूलिका चलाते हैं, उसी स्वतन्त्रतासे लेखनी भी चलाते हैं। प्रस्तुत अंगरेज़ी पुस्तक उनकी नवीनतम कृति है। इससे पहले उनकी सात अन्य पुस्तकें रूस, जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैण्ड, अर्जेन्टाइन और जापान आदि देशोंसे प्रकाशित हो चुकी हैं।

रोरिक महाशय शान्ति, संस्कृति और सत्यम् शिवम् सुन्दरम्के भक्त हैं। संसारको उनका यही सन्देश है, जगतको वे इसी बातका पाठ पढ़ाते हैं। वे चाहते हैं कि उच्चकोटिकी संस्कृति रोज़मर्राके मानव-जीवनका एक अंश बन जावे, और वह कुछ थोड़ेसे पढ़े-लिखे या धनी व्यक्तियोंकी सम्पत्ति न होकर दीन-दुखियोंकी टूटी झोंपड़ी तकको अपने प्रकाशसे उज्ज्वल बनावे।

प्रस्तुत पुस्तकमें रोरिक महाशयके अनेक छोटे-छोटे लेखों और निबन्धोंका संग्रह है, जो उन्होंने हिमालयमें बैठकर लिखे हैं। इन लेखोंमें 'धनी दरिद्रता' नामी लेख इस पुस्तकमें प्रकाशित होनेके पहले 'विशाल भारत' में निकल चुका है। रोरिककी एक अपनी निजी शैली है। सभी लेख सुपाठ्य और मनन करने योग्य हैं। —**ब्रजमोहन वर्मा**

'गोद'—लेखक, कविवर श्री सियारामशरण गुप्त ; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झांसी), मूल्य सजिल्द १।) रु०।

यह कथा एक ऐसे युगकी याद दिलाती है, जो लगभग पूर्णतया बीत चुका है, और जिसका अस्तित्व अब कुछ ऐसे घरोंमें ही, जिन्हें हम व्यंगपूर्वक प्राचीनतावादी कहते हैं, पाया जाता है। भ्रातृ-स्नेहके दृष्टान्त अब दुर्लभप्राय: हो रहे हैं।

इस कथामें स्थान-स्थानपर कितने ही वाक्य-रत्न छिटके पड़े हैं और लेखकके मनोविज्ञान-सम्बन्धी अनुभवकी भी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। भाषा साफ-सुथरी है। यह सब होते हुए भी इस कथाका मूल्य केवल इस बातमें है कि वह समयकी गतिसे दूर एक कोनेमें पड़े हुए समाजको चित्रित करता है ; पर नदीका प्रवाह अब दूर निकल गया है और प्रवाहसे दूर आसपासके गढ़ोंमें पड़े हुए शान्त जीवोंकी तरह इस कथाके पात्रोंका जीवन है। इन पात्रोंमें किसीका व्यक्तित्व शक्तिशाली नहीं। Strong personality का उनमें अभाव है। नदीकी गम्भीर भँवरोंमें पड़नेकी शक्ति किसीमें नहीं। हाँ, प्रेमकी कोमलता अनेक पात्रोंमें अच्छी मात्रामें पाई जाती है। दुर्भाग्यवश कहिये या सौभाग्यवश इस कोमलताका मूल्य वर्तमान क्रान्तिकारी युगमें बहुत घट गया है। यदि किसी क्रान्तिकारी लेखकसे पूछा जाय, तो वह कहेगा—"यह कथानक निर्बल व्यक्तित्ववाले जीवोंका घरेलू जीवन प्रकट करता है। पार्वती पातिव्रत्यके बेजा भारसे दबकर निर्बल बन गई है, दयाराम और शोभारामको भ्रातृ-स्नेहकी पराकाष्ठाने निर्बल बना दिया है (दोनोंमें से एक भी किसी क्रान्तिकारी समाजके सदस्य नहीं बन सकते)। किशोरी और कौशल्या मूर्खताके कारण निर्बल हैं और गंगादीन तिवारी धूर्तताके कारण।" यह बात सवा सोलह आना निश्चित है कि यदि निरपराध किशोरीका कौमार्य बलपूर्वक हरण कर लिया गया होता, तो शोभारामको स्वप्नमें भी उसको ग्रहण करनेका साहस न होता, बस यही बात प्राचीन और नवीन मनोवृत्तियोंके भेदको प्रकट करती है।

इस कथानकके विषयमें सम्मति देते हुए मेरे हृदय तथा मस्तिष्कमें द्वन्द्व होने लगता है। हृदय इस पुस्तकमें वर्णित कोमल भावनाओंवाले समाजकी ओर आकृष्ट होता है, पर मस्तिष्क उससे दूर भागता है। विजय अन्तमें हृदयकी होगी

या मस्तिष्ककी, मैं कह नहीं सकता। विजय किसीकी भी क्यों न हो, पर लेखककी विजय निश्चित है; क्योंकि वे इस कथा द्वारा दो घंटे तक सहृदय पाठकोंका मनोरंजन करानेमें सफल हो सकते हैं। किसी क्रान्तिकारी समाजका चरित्र चित्रित करनेमें वे इतनी दूर तक सफल हो सकेंगे या नहीं, यह विवादग्रस्त है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

—

योगेश्वर श्रीकृष्ण—लेखक श्री चमूपति ए० ए० प्रोफेसर तुलनात्मक धर्मविज्ञान, गुरुकुल-विश्वविद्यालय, हरिद्वार; प्रकाशक मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल-विश्वविद्यालय, कांगड़ी; मूल्य २॥)

'योगेश्वर श्रीकृष्ण' कहनेसे सामान्यत: जिन 'तत्वं परं योगिनां' भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बोध होता है उनके परम तात्विक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध रूपोंमेंसे एक रूपके एक प्रधान अंगका इस ग्रन्थमें बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। यह अंग है श्रीकृष्णका महाभारतान्तर्गत राजनीतिक जीवन। कोई समय था जब साधारण आधिभौतिक घटनाओंके भीतर दैविक और आध्यात्मिक सूत्रोंकी खोज की जाती थी, आधिभौतिक सत्यके भीतर परम आत्मिक और मध्यवर्ती दैविक सत्योंका अनुसन्धान किया जाता था और इस विलक्षण प्रयत्नमें आधिभौतिक सत्य घटनाएँ दैवी चमत्कारों और आध्यात्मिक झाँकियोंमें ऐसी छिप जाती थीं, जैसी कि श्रीकृष्णके अमर अनन्त जीवनमें उनके जराव्याधिके बाणसे आधिभौतिक मृत्युको प्राप्त होनेकी आधिभौतिक घटना भक्तोंके हृदयमें कुछ नहींसी ही रहती है। वह एक लोकविलक्षण अलौकिक प्रवाह था, जिसमें अवगाहन करनेवाले लोग इस समयकी लोकदृष्टिमें प्राय: पागलोंकी ही श्रेणीमें गिने जाते हैं। सार्वजनिक आधिभौतिक जीवनसे बिछुड़े हुए वे परम तत्व और उनके दिव्य चमत्कार 'बच्चोंके बहलाव' समझे जाते हैं और इसलिए अब आधिभौतिक सत्य घटनाओंके भीतर दैवी और परमेश्वरीय सूत्रोंके अनुसन्धानका प्रवाह उलटा बहने लगा है, अब आध्यात्मिक और आधिदैविक सम्बन्धोंके बन्धनोंको काटकर निर्बल आधिभौतिक सत्यको ढूँढ़ निकालनेका प्रयत्नप्रवाह चला है, क्योंकि 'देव-लीलाओंकी अलौकिक कल्पनाओंके आकाशमें बिना पंखके' उड़ते और फिर धमसे धरतीपर गिरनेका लोगोंको कुछ ऐसा अभ्यास हो गया है कि उससे पर-अपर कहींके भी हम नहीं रह जाते। ऐसी अवस्थामें आध्यात्मिक और आधिदैविक सत्यको ढूँढ़ने चलनेके पूर्व यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि जिस धरतीपर हम खड़े हैं, जिस धरतीकी देह धारे हुए हैं उसीको जानें कि वह क्या चीज़ है। श्रीकृष्णके आधिभौतिक सार्वजनिक राजनीतिक जीवनका यही महत्त्व है। राजनीति ही यहाँ परम योग है। श्रीकृष्ण उसी योगके यहाँ योगेश्वर हैं। उसके समयमें भारतवर्षकी क्या राजनीतिक अवस्था थी, और उस अवस्थाको बदलकर श्रीकृष्णने क्या किया, उनका लक्ष्य क्या था और उस लक्ष्य तक भारतको उन्होंने कैसे पहुँचाया, किन साधनोंसे काम लिया और कैसे अपना संकल्प पूरा किया इत्यादि विषयोंका बहुत ही सुन्दर वर्णन इस पुस्तकमें लेखकने किया है जिसे पढ़कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

पुस्तककी भाषा और लेखनशैली बड़ी सुन्दर, चुस्त और सुलझी हुई है और विचारशैली भी वैसी ही सरल और सुलझी हुई है। पुस्तक पढ़ते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखकने अपने विषयका अध्ययन किया है और इसलिए इस पुस्तकके पाठकोंको इस अध्ययनसे अनायास लाभ उठानेका अवसर मिलता है। जो बातें कही गई हैं—महाभारतान्तर्गत प्रमाणोंके साथ कही गई हैं, और प्रायश: मूल वचनोंके अवतरण भी दे दिये गये हैं। लेखकका प्रामाणिकपन प्रति पंक्तिसे झलकता है। जिस नायकका यह चरित्र है उसके प्रति श्रद्धा और भावुकता भी यथेष्ट मात्रामें है। दैवी चमत्कारोंके अलौकिक जगतसे निकलकर श्रीराधाकृष्ण नहीं, रुक्मिणी-वल्लभ श्रीकृष्ण यहाँ अपने निरे मानवरूपमें खड़े हैं और इस रूपमें भी अपनी अमानव-सी ऐसी मानवता दिखा रहे हैं कि उसे देख कोई भी उनके चरणोंमें मस्तक रखे बिना न रहेगा। श्रीकृष्णने लक्ष्यहीन-से बने हुए परस्पर कलहकारी छोटे-छोटे राष्ट्रसंघोंका एक महासंघ बनाया, दुष्ट राजाओंका शासन किया, पाशविक बलकी भित्तिपर भारत-सम्राट-सा बना हुआ जरासन्ध उन्हींकी युक्तियोंसे धूलमें मिला, और कौरव-सेनाओंके महा-संहारमेंसे परम सत्यवादी युधिष्ठिरके अधीन भारतके सभी स्वतन्त्र राष्ट्रोंका साम्राज्यसूत्रमें एकीकरण उन्होंने ही कराया और स्वयं नि:संग बने रहे। और यह महान् कार्य उन्होंने वैसे ही महान् सदाचार, महान्

ब्रह्मचर्य व्रत, महान् बुद्धिकौशल और महान् स्वार्थत्यागके लिए। इस सारथ्यनैपुण्य, रणनीति, कूटनीतिचातुर्य, निःस्पृह सदाचरण, विलक्षण प्रसंगावधान, वज्रादपि कठोर हृदयके महाभीषण महाकाल रूपके भीतर परम कोमल कमलवत्-सी स्निग्ध भावना इत्यादिके चमत्कारकारी दर्शन स्थान-स्थानमें इस ग्रन्थको पढ़ते हुए होते हैं।

हाँ, राधाकृष्ण नहीं हैं, गोपालकृष्ण भी नहीं हैं, दैवी जगतकी कोई बात नहीं है। पर क्या नहीं है, यह सवाल क्यों? क्या है, वही देखना चाहिए; जो कुछ है, बहुत है। राजनीतिके प्रत्येक विद्यार्थीके पढ़ने और मनन करनेकी चीज़ है। हाँ, एक बात और, श्रीकृष्णका चरित्र इतना ही नहीं है। श्रीकृष्णके चरित्रकी अमर कीर्ति तो श्रीमद्भगवद्गीतामें है। प्रस्तुत पुस्तकके लेखक उसकी कोई टीका लिखनेवाले हैं। उसकी हमें हमें प्रतीक्षा करनी होगी, और उसे बिना देखे हम इस पुस्तककी यथार्थ आलोचना भी नहीं कर सकते। हाँ, उन्होंने 'विश्वरूप' का जो वर्णन इस ग्रन्थमें किया है, वह मनोविज्ञानकी दृष्टिसे अच्छा होनेपर भी गीताके विश्वरूप तक नहीं पहुँचता, ऐसा हमारा विश्वास है। 'कर्ण' के प्रसंगसे ग्रन्थकारने श्रीकृष्णके एक और अध्याय, और सो भी उज्ज्वलतम अध्याय जोड़नेका अवसर हाथसे निकल जानेकी कल्पना कर हाथ मलते रह जानेका जो भाव बताया है, उस भावमें उन्होंने, ऐसा जान पड़ता है कि, कर्णके चरित्रको और भी अधिक गम्भीरतासे सोचनेकी आवश्यकता बिल्कुल-सी कर दी है। फिर महाभारतका जो विध्वंसकारी युद्ध हुआ, उसका परिणाम भारतवर्षपर अच्छा या बुरा क्या पड़ा, इसका विचार तो इस ग्रन्थमें होना ही चाहिए था, सो नहीं हुआ है। श्री चतुर्वेदीजी अब जब गीताकी टीका लिखेंगे, तब प्रथम अध्यायमें उन्हें इस विषयपर अपने विचार प्रकट करनेका अवसर मिलेगा। पुस्तकमें श्रीकृष्णको छोड़ आदरसूचक बहुवचनान्त प्रयोग लेखकने और किसीके लिए नहीं किया, इसलिए मैं भी उनसे अपने लिए एकवचनान्त प्रयोगकी ही इच्छा करता हूँ। इन सूचनाओंके साथ हम पुनः अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, जो इस पुस्तकको पढ़नेसे हमें प्राप्त हुई और हमारी यह इच्छा है कि सभी राजनीतिक कार्यकर्त्ता, छोटे-बड़े नेता, स्वयंसेवक और विद्यार्थी इस ग्रन्थको अवश्य पढ़ें।

—लक्ष्मणनारायण गर्दे

सम्पादकीय विचार

पंडित जवाहरलाल नेहरूका मुक़दमा और सज़ा

पंडित जवाहरलाल नेहरूने पिछली बार जेलख़ानेसे अपनी पुत्री कुमारी इन्दिराको जो "अन्तिम पत्र" लिखा था, उसमें उन्होंने लिखा था :—

"मैंने अनेक बातोंमें अपनी टाँग अड़ाई है ; कालेजमें विज्ञान पढ़ना शुरू करके मैं क़ानूनमें जा पहुँचा ; बादमें जीवनकी अन्य अनेक बातोंमें अनुराग पैदा करके अन्तमें मैंने भारतके लोकप्रिय पेशे—यानी जेल जानेको—ग्रहण किया।"

जिस समय उन्होंने ऊपरकी पंक्तियाँ लिखी थीं, उस समय उन्हें निश्चित रूपसे यह नहीं मालूम था कि उन्हें शीघ्र ही अपने लोकप्रिय पेशेका अभ्यास करनेका पुनः अवसर मिलेगा। यद्यपि उन्हें इस बातका कुछ अस्पष्ट आभास रहा होगा, क्योंकि जब गत १२वीं फरवरीको पुलिसने उन्हें गिरफ्तार किया था, तब उन्होंने पुलिस अफसरसे मुस्कराते हुए कहा था—"मैं कुछ दिनोंसे आपकी राह देख रहा था।"

पंडितजीको अपनी पुत्रीको शिक्षाप्रद लम्बे पत्र लिखनेका अवकाश जेलमें ही मिलता है। अपना "अन्तिम पत्र" समाप्त करते हुए उन्होंने लिखा था—

"लो, यह अन्तिम पत्र समाप्त होता है। अन्तिम पत्र! हरगिज़ नहीं! मैं तुम्हें और भी अनेक पत्र लिखूँगा।"

उन्हें यह पता नहीं था कि उन्हें जेलसे इन्दिराको नई पत्रमाला लिखनेका अवकाश कितनी जल्दी मिलेगा।

इलाहाबादमें आनन्द भवनमें गिरफ्तार होनेके बाद वे मुकदमेके लिए कलकत्ते लाये गये, क्योंकि उनके जो तीन व्याख्यान राजद्रोहात्मक समझे गये थे, वे इसी शहरमें दिये गये थे। इन व्याख्यानोंमें दो अल्बर्ट हालमें १७ और १८ जनवरीको अंगरेज़ीमें दिये गये थे, और तीसरा १८ जनवरीको माहेश्वरी भवनमें हिन्दीमें दिया गया था। पंडितजीपर चीफ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट आनरेबिल एस० के० सिन्हाके इजलासमें मुकदमा चलाया गया, और उन्होंने उनके खिलाफ ताजीरात हिन्दकी १२४ ए धारा (राजद्रोह) के अनुसार फर्द जुर्म लगाया था। पंडितजीको जमानतपर छूटनेके लिए कहा गया था, मगर उन्होंने मंजूर नहीं किया। अदालत द्वारा उनसे अपराधकी स्वीकृति या अस्वीकृतिकी बात पूछी जानेपर पंडितजीने अदालतकी कार्रवाईमें भाग लेनेसे इनकार किया, फिर भी अदालतकी आज्ञासे उन्होंने एक बयान दिया, जिसमें उन्होंने कहा :—

"मैंने अल्बर्ट हालमें गत १७ और १८ जनवरीको अंगरेज़ीमें जो दो व्याख्यान दिये थे, उनके लिए मैं रिपोर्टरोंको बधाई देता हूँ, क्योंकि उन्होंने उनकी बहुत अच्छी रिपोर्ट लिखी है। उनमें इधर-उधर छोटी-मोटी भूल हो सकती है, जिसका होना अनिवार्य है, क्योंकि मैंने ज़बानी व्याख्यान दिया था और मैं बहुत तेज़ीसे बोला था; फिर भी समूचे तौरसे वे रिपोर्टें बहुत सही हैं और मैंने जो कुछ कहा था उसे प्रकट करती हैं।

लेकिन मुझे भय यह है कि मैं उस रिपोर्टरको यह बधाई नहीं दे सकता, जिसने मेरे माहेश्वरी भवनके व्याख्यानकी रिपोर्ट ली है। मैंने इससे अधिक असम्बद्ध और दुर्बोध (रिपोर्ट) शायद ही कभी देखी हो। जान पड़ता है कि बंगालमें बोली और लिखी जानेवाली उर्दू-हिन्दी उससे बहुत भिन्न है जो मेरे प्रान्तमें बोली या लिखी जाती है। मेरे दिये हुए व्याख्यान राजद्रोहात्मक हों या न हों, मगर उनमें निश्चय ही कुछ युक्ति और अर्थ हुआ करते हैं। यह रिपोर्ट खालिस ऊटपटाँग है, और यह मेरे प्रति न्याय नहीं करती।"

व्याख्यानोंमें जो बातें कही गई थीं, उनके सम्बन्धमें पंडितजीने स्वीकार किया कि केवल इन व्याख्यानोंमें ही नहीं बल्कि इससे कई वर्ष पहलेसे पंडितजीके काम राजद्रोहात्मक रहे हैं।

पंडितजीने आगे कहा—"मैं सरकारके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ, क्योंकि उसने मेरे विरुद्ध यह मामला चला कर मुझे इस बातका अवसर दिया है कि मैं बंगाल-निवासियोंके पिछले और वर्तमान कष्टोंमें यत्किंचित साझीदार बन सकूँ। इस सुविधा (कृपा) को मैं बहुत कालतक याद रखूँगा।

जब पंडितजी यह कह रहे थे कि अल्बर्ट हालके उनके व्याख्यान अधिकांशमें बंगालकी—विक्रमपुर, चटगाँव तथा अन्य स्थानोंकी—घटनाओंके सम्बन्धमें थे, तब उन्हें अदालतने आगे कुछ कहनेसे रोक दिया।

पंडितजीके बयानका ऊपरका उद्धरण अखबारोंमें छपी हुई खबरसे दिया गया है। इसके कुछ अंशका जिक्र मजिस्ट्रेटने अपने फैसलेमें भी किया है, जिसे प्रामाणिक समझना चाहिये। मजिस्ट्रेटके फैसलेका एक अंश यह है :—

"......मुलजिमने अभियोगके उत्तरमें जो बयान दिया है, उसे देखते हुए मुझे उसके व्याख्यानकी एक पंक्तिकी भी विवेचना करना बिल्कुल व्यर्थ जान पड़ता है। मुलजिमने अदालतमें कहा है कि यदि भारतके लिए स्वतंत्रता प्राप्त करनेकी और उसे विदेशी आधिपत्यसे मुक्त करनेकी इच्छाके अर्थ राजद्रोह है तो अनेक वर्षोंसे उसके काम निश्चय ही राजद्रोहात्मक रहे हैं। पिछले अनेक वर्षोंसे वह उसमें अपनी सारी शक्ति लगा रहा है। जैसे-जैसे वर्ष बीतते गये वैसे-वैसे उसके मनमें यह विश्वास दृढ़ होता गया कि जब तक देशमें अंगरेज़ी शासनका चिह्न भी रहेगा तब तक भारतवासियोंको स्वतंत्रता नहीं मिल सकती,—इसलिए उसने छोटे पैमानेमें देशमें अंगरेज़ी शासनका खात्मा करनेका प्रयत्न किया है। यदि यह राजद्रोह है तो वह स्वीकार करता है कि वह अनेक वर्षोंसे राजद्रोही है।

व्याख्यानों पर एक सरसरी निगाह ही प्रकट करती है कि वे स्थापित सरकारके विरुद्ध दुर्दमनीय शत्रुतासे भरे हैं।

पहले व्याख्यानमें मिदनापूर ज़िलेकी कुछ हालकी घटनाओंका ज़िक्र है। उस प्रान्तमें सरकारने क़ानून और व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए जो कार्रवाई की है, उसमें व्याख्याताको धृष्ट साम्राज्यवादी शक्तिकी भारतीयोंको अपमानित करनेकी चेष्टा मात्र ही दीख पड़ती है—केवल मिदनापूर शहरको या ज़िलेके कुछ आदमियोंको ही अपमानित करनेकी नहीं वल्कि खैबरसे कुमारी अन्तरीप तक प्रत्येक भारतीयको अपमानित करनेकी चेष्टा। इसमें वह किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियोंके दल-विशेषका दोष न बतलाकर (शासन) प्रणालीका दोष बतलाता है—एक क्रूर और दुष्ट प्रणालीका, जो उन सबको ग्रसती है जो उसे स्वीकार करते हैं। मुजरिम कहता है कि यह (शासन) यन्त्र ही समूचे देशको कुचल रहा है। इसके बाद वह साम्राज्यवादकी स्वाभाविक और अन्तर्निहित रूढ़ता, क्रूरता, लूट, लज्जाहीनता और निष्ठुरताकी बात कहता है। इसी प्रकारकी और भी बहुत सी बातें हैं।

इस सबको देखते हुए यह कहना व्यर्थ ही है कि मुजरिमके व्याख्यान बड़े राजद्रोही हैं। व्याख्याताका उद्देश्य निश्चित और माना हुआ है।

मैं उसे ताजीरात हिन्दीकी १२४ धाराके अनुसार अपराधी पाता हूँ। पहले जुर्ममें उसे दो सालकी सादी क़ैदकी सज़ा दी जाती है। अन्य दो जुर्मों पर अलग सज़ा नहीं सुनाई जाती।

मुजरिम प्रथम श्रेणीमें रखा जायगा।"

पंडितजीके व्याख्यान राजद्रोहात्मक हैं या नहीं इसपर विवेचना करनेसे कोई लाभ नहीं, और न कहीं उनके समूचे व्याख्यान प्रकाशित ही किये गये हैं, जिसे पढ़कर वकील या जन साधारण किसी नतीजेपर पहुँच सकें। ताजीरात हिन्दकी १२४ ए धारा इतनी व्यापक और प्रसरणशील है, जिसकी गिरफ्तमें सरकारकी प्रत्येक समालोचना—जो प्रार्थनाके रूपमें न हो—आ सकती है। सरकारकी जो भी आलोचना होती है—जिसे आलोचनाका नाम दिया जा सके—वह कभी सरकारके प्रति प्रेम उत्पन्न करनेके लिए या ऐसे भाव उत्पन्न करनेके लिए जो 'घृणा और विद्वेष'के प्रतिकूल हों, नहीं होती। निश्चय ही इस धाराका साधारण अर्थ यही है। लेकिन भारतमें राजद्रोहकी धाराके अर्थ या भाष्यमें हाईकोर्टके प्रमुख न्यायाधीशों तकमें मतभेद दीख पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस उद्देश्यसे यह धारा कानूनमें बनाई गई थी, वह इससे भिन्न था। सर जेम्स स्टीफनने, जो सन् १८७० में भारत सरकारके क़ानूनी मेम्बर थे, अपने एक व्याख्यानमें यह बात स्पष्ट कर दी थी। उन्होंने कहा था—"इस धाराके अनुसार तभी जुर्म समझा जायगा जब कि केवल बलके द्वारा क़ानूनके प्रतिरोधकी भावना होगी। जब तक कोई वक्ता या लेखक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे बलके व्यवहारकी बात नहीं सुझाता या बल प्रयोगका इरादा नहीं दिखाता, तबतक वह राजद्रोहकी धारामें नहीं पड़ता।"

एल्बर्ट हालकी जिस सभामें मिदनापुरमें फौजोंके गश्तके सम्बन्धमें जो बातें घटी बताई गई थीं, उसमें मैं भी उपस्थित था। उसी समय पंडितजीने व्याख्यान दिया था। यदि मैं यह कहूँ कि पंडितजीका व्याख्यान मुझे तो राजद्रोहपूर्ण नहीं जान पड़ा, तो यह बात धृष्टतापूर्ण समझी जायगी। लेकिन यह बात मैं निश्चय और दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि भारतमें साम्राज्यवाद या ब्रिटिश आधिपत्यका ख़ात्मा करनेके लिए बल प्रयोग करनेका रत्ती भर आभास भी पंडितजीके व्याख्यानमें नहीं था। और हमें यह निश्चय है कि उनके अन्य दो व्याख्यान भी "हिंसा" से सर्वथा मुक्त थे। क्योंकि पंडितजी मक्कार नहीं हैं, और अपनी इसी यात्रामें, जिसमें उन्होंने ये व्याख्यान दिये थे, नेहरूजीने विद्यार्थियोंकी एक सभामें आतंकवादकी स्पष्ट शब्दोंमें निन्दा की थी। चीफ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेटके फैसलेका एक अंश है :—

......"मुजरिमने अभियोगके उत्तरमें जो बयान दिया है, उसे देखते हुए मुझे उसके व्याख्यानकी एक पंक्तिकी भी विवेचना करना बिल्कुल व्यर्थ जान पड़ता है। मुजरिमने अदालतमें कहा है कि **यदि भारतके लिए स्वतंत्रता**

प्राप्त करनेकी और उसे विदेशी आधिपत्यसे मुक्त करनेकी इच्छाके अर्थ राजद्रोह हैं तो अनेक वर्षसे उसके काम निश्चय ही राजद्रोहात्मक रहे हैं। पिछले अनेक वर्षोंसे वह उसमें अपनी सारी शक्ति लगा रहा है। जैसे-जैसे वर्ष बीतते गये वैसे-वैसे उसके मनमें यह विश्वास दृढ़ होता गया कि जब तक देशमें अंगरेज़ी शासनका चिह्न भी रहेगा तब तक भारतवासियोंको स्वतंत्रता नहीं मिल सकती,—इसलिए उसने छोटे पैमानेमें देशमें अंगरेज़ी शासनका खात्मा करनेका प्रयत्न किया है। **यदि यह राजद्रोह है, तो वह स्वीकार करता है कि वह अनेक वर्षसे राजद्रोही है।"**

इस उद्धरणसे प्रकट है कि पंडितजीने जो अपराध स्वीकार किया था, वह शर्तिया था। यानी उन्होंने यह कहा था कि यदि इसके अर्थ राजद्रोह हैं, तो वे कई वर्षसे इस अपराधके अपराधी हैं। हमारी रायमें चूंकि उनके विरुद्ध जो इल्ज़ाम था, वह उनके तीन व्याख्यानोंपर अवलम्बित था, इसलिए मैजिस्ट्रेट साहबको यह दिखलाना चाहिए था कि ये व्याख्यान राजद्रोहात्मक हैं। मगर ऐसा नहीं किया गया। एक आम और शर्तिया स्वीकारोक्तिके आधारपर किसी विशेष अवसरपर दिये हुए व्याख्यानोंके लिए सज़ा न दी जानी चाहिए।

नेहरूजीकी शर्तिया स्वीकारोक्तिके विषयमें यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सभी कांग्रेसवाले, दस वर्षसे अधिकसे 'भारतकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए और भारतमें विदेशी आधिपत्यको खत्म करनेके लिए' कोशिश कर रहे हैं। यदि वे कठघरेमें खड़े किये जायँ, तो सबके सब नेहरूजीके साथ यह स्वीकार करेंगे कि अनेक वर्षसे उनके कार्य राजद्रोहात्मक हैं, यदि वैसे कार्य राजद्रोहात्मक माने जायँ। उस दशामें अपनी इस शर्तिया स्वीकारोक्तिके लिए सभी कांग्रेसवाले आजन्म कारावासके भागी होंगे।

फिर इस दंडके भागी केवल कांग्रेसवाले ही नहीं होंगे। सभी प्रमुख माडरेट नेता औपनिवेशिक स्वराज्य मांगते हैं। औपनिवेशिक स्वराज्यका अर्थ होता है कि उपनिवेशोंकी राजनैतिक स्थिति इंग्लैण्डकी बराबरीकी हो। यदि यह बात कही जाय कि उपनिवेश इंग्लैण्डके मातहत हैं, तो कोई भी उपनिवेश—चाहे वह कैनाडा, दक्षिण अफ्रिका, आयरलैण्ड, आस्ट्रेलिया या न्यूज़ीलैण्ड कोई भी हो—इसे स्वीकार न करेगा। प्रत्येक उपनिवेश यही कहेगा कि हम स्वायत्त-शासनके अधीन हैं। हम ब्रिटिश राष्ट्र-संघमें बराबरीके साझीदार हैं, ब्रिटिश साम्राज्यके मातहत नहीं हैं। इसलिए जो कोई औपनिवेशिक स्वराज्य पानेकी कोशिश करता है, वह विदेशी आधिपत्य, ब्रिटिश शासन और साम्राज्यवादका खात्मा करता है। औपनिवेशिक स्वराज्य चाहे कितने ही दूरकी बात हो, परन्तु भारतके वायसरायकी हैसियतसे लार्ड इर्विनने तथा अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने यह स्वीकार कर लिया है कि औपनिवेशिक स्वराज्य भारतका वैध लक्ष्य है। हम नहीं समझते कि सरकार उन सबोंको जेल भेजनेको तैयार होगी, जो स्वतन्त्रता या औपनिवेशिक स्वराज्य चाहते हैं।

अन्तमें यह कहना पड़ेगा कि जब पंडित जवाहरलाल नेहरूने विद्यार्थियों और जनतासे खुल्लमखुल्ला यह कह दिया था कि स्वतन्त्रता आतंकवादसे प्राप्त नहीं हो सकती, बल्कि वह सामूहिक आन्दोलनसे ही प्राप्त होगी और वह आन्दोलन भी अहिंसात्मक होना चाहिए, ऐसी स्थितिमें उन्हें सज़ा देनेसे जो बात पहलेसे प्रत्यक्ष थी, वह और भी प्रत्यक्ष हो जाती है, अर्थात् यह कि अधिकारीवर्ग स्वतन्त्रताके सभी आन्दोलनोंके—चाहे वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक—विरुद्ध हैं।

"राजद्रोही" क्या चाहता है और "माडरेट" क्या चाहता है

चीफ प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेटने पंडित जवाहरलाल नेहरूको राजद्रोहका दोषी बताते हुए अन्य बातोंके साथ यह कहा है कि "वे विदेशी आधिपत्यको समाप्त कर देना चाहते हैं।"

'लीडर' एक "माडरेट" पत्र है। वह गत १७ फरवरीके अपने सम्पादकीय लेखमें कहता है—

"जहाँ तक भारतके अधिकांश लोगोंका सम्बन्ध है, वे इगलैंडके साथ समूचा सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहते, लेकिन वे **चाहते हैं कि मौजूदा मातहती और आधिपत्यकी प्रणाली** खत्म कर दी जाय और लोगोंको अपना प्रबन्ध करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता मिले और उनकी स्थिति अन्य औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशोंकी बराबरीकी हो।"

यह नहीं कहा जा सकता कि नेहरूजी इसलिए राजद्रोही हैं कि वे इंगलैण्डसे सारा सम्पर्क तोड़ देना चाहते हैं। क्योंकि कुछ दिन पहले उन्होंने लन्दनके 'डेली हेराल्ड'में एक लेख लिखा था, जिसे न्यूयार्ककी 'लिविंग एज' नामक पत्रिकाने उद्धृत किया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनके राजनैतिक लक्ष्यकी प्राप्तिका यह अर्थ नहीं है कि "अंगरेज़ोंके साथ या अन्य किसी जातिके साथ, जो हमारा दोहन नहीं करती, पूर्ण सहयोग न करेंगे।"

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका आगामी अधिवेशन

तेरह करोड़ आदमियोंकी मातृभाषा और सम्पूर्ण भारतवर्षकी राष्ट्रभाषाके लिए जिन दो संस्थाओंने अद्भुत और आश्चर्यजनक कार्य किया है, वे हैं काशी नागरी-प्रचारिणी सभा और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन। इनमें सभाने अपनी शक्तियोंको केन्द्रित कर बहुत ठोस काम किया है और सम्मेलनका कार्य अत्यन्त विस्तृत क्षेत्रमें व्यापक रूपसे हुआ है। गोरखपुरके सम्मेलनको जाते समय ट्रेनमें अकस्मात् श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडनके दर्शन हो गये। बातचीतमें जब इन पंक्तियोंके लेखकने कहा—"सभाके मुक़ाबलेमें सम्मेलनका कार्य बहुत कम हुआ है।" टंडनजीने कहा—"जिस प्रकार परमात्माके दो स्वरूप हैं, सगुण और निर्गुण, उसी प्रकार हमारी हिन्दीके भी रूप हैं; सगुण रूपको नागरी-प्रचारिणी सभा प्रकट करती है, निर्गुण रूपको साहित्य-सम्मेलन। चूँकि आप सगुण रूपको प्रत्यक्ष देखते हैं, इसलिए सभाकी प्रशंसा करते हैं। सम्मेलनका कार्य व्यापक है; पर वह आँखोंसे दीख नहीं सकता।"

वास्तवमें यह उपमा बड़ी उपयुक्त है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेमें जो सहायता दी है, हिन्दी-साहित्य-सेवियोंको गौरव प्रदान करनेका जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, प्राचीन कवियों और लेखकोंके पुनरुद्धारके लिए जो प्रयत्न किया है और हिन्दीके विषयमें साधारण जनताके दृष्टिकोणमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेके लिए जो उद्योग किया है, उसका हिसाब अंकोंमें नहीं लगाया जा सकता। इसीलिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशन हम लोगोंके लिए—साहित्य-सेवियोंके लिए—अपने जीवनके सर्वोत्तम उत्सव होने चाहिए। इन उत्सवोंमें जानेके लिए हमारे हृदयमें अत्यन्त उत्कंठा होनी चाहिए। इनसे हमें प्रेरणा तथा उत्साह मिलना चाहिए, जिससे हम वर्ष-भरके लिए कुछ चीज़ वहाँसे लेकर आवें। साल-भर तक साहित्य-सेवियोंको जिन कठिनाइयोंका मुक़ाबला करना पड़ता है, उनको वे इन उत्सवोंमें जाकर कुछ समयके लिए तो भूल जावें और उन्हें वही सान्त्वना मिले जो तंग कोठरियोंमें रहनेवालोंको स्वतन्त्र वायुमंडल और प्राकृतिक सौन्दर्यके निकट जानेसे मिलती है।

इन पंक्तियोंका लेखक कुछ ऐसी ही भावना लेकर सम्मेलनके अनेक अधिवेशनोंमें सम्मिलित हुआ है। इन्दौर, बम्बई, बृन्दावन, भरतपुर, कानपुर, मुज़फ्फ़रपुर, गोरखपुर और कलकत्तेके अधिवेशनोंमें जानेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था और उनसे हमें जो लाभ हुआ है, उसका हम अनुमान नहीं कर सकते। अपने जीवनके अत्यन्त प्रिय अनुभवोंमें हम उन अनुभवोंकी गणना करते हैं, जो इन अधिवेशनोंमें हमें प्राप्त हुए। इसी कारण जब हम देखते हैं कि ये अधिवेशन पहलेकी अपेक्षा अब कम स्फूर्तिदायक हो गये हैं, तो हमें खेद हुए बिना नहीं रहता। सम्भवत:

इसमें हमारा ही दोष हो। शायद अपनी श्रद्धाकी कमीके ही कारण हमें स्फूर्तिमें कमी प्रतीत हुई हो। कुछ भी क्यों न हो, सम्मेलनके अधिवेशनोंके लिए हमारे हृदयमें पहले जैसा आकर्षण नहीं रहा।

हमारी समझमें अब समय आ पहुँचा है, जब कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कर्णधार एक बार एकत्रित होकर इस प्रश्नपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करें। जो त्रुटियाँ हमारी समझमें आती हैं, उन्हें हम नम्रतापूर्वक जनताके सम्मुख रखते हैं।

(१) पहली त्रुटि तो यह है कि सम्मेलन सालभर तक साधारण जनताको प्रकाश नहीं देता। इस विषयमें सम्मेलन मदरासकी हिन्दी-प्रचार-सभासे बहुत-कुछ उपदेश ग्रहण कर सकता है। वे लोग निरन्तर कुछ-न-कुछ काम किया करते हैं। ठोस कार्यके साथ-साथ उनका प्रचार-कार्य बड़े अच्छे ढंगपर संचालित होता है। उत्सव, कानफरेंस, नाटक यात्रा इत्यादिके नवीन-नवीन कार्यक्रम वे जनताके सम्मुख रखते हैं और अपने उद्देश्योंके प्रचारका कोई मौका नहीं छोड़ते। इसके विपरीत हमारा सम्मेलन एक प्रकारसे थक-सा गया है। उसमें वह डाइनैमो (शक्ति-केन्द्र) नहीं है, जो निरन्तर प्रकाश देता रहे। जब तक सम्मेलन कम-से-कम ऐसे दो योग्य व्यक्तियोंको अपने यहाँ नहीं रखता, जो सम्मेलनके कार्यके अतिरिक्त और कोई दूसरा काम न करें, तब तक यह त्रुटि दूर नहीं हो सकती। ऐसे व्यक्ति ख़ूब सोच-समझकर चुने जाने चाहिए, और फिर उन्हें आर्थिक चिन्तासे विमुक्त कर पूर्ण स्वाधीनता दे दी जानी चाहिये। जो रुपया ईंट गारे और पत्थरमें हम लगा देना चाहते हैं, वह पहले उपयुक्त व्यक्तित्व-युक्त साहित्य-सेवियोंको अपने यहाँ रखनेमें लगाना चाहिये। मन्दिर बनाकर खड़ा कर देनेसे क्या लाभ, जब योग्य पुजारी ही नहीं?

(२) सम्मेलनके प्रधान मन्त्रीको देशके भिन्न-भिन्न साहित्य-सेवियोंसे संसर्ग रखना चाहिये। केवल आफिसमें चले जाने और स्थानीय मीटिंगोंमें सम्मिलित होने तक ही प्रधान मन्त्रीका काम परिमित नहीं है। कम-से-कम दो महीनेके लिए तो उन्हें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंका दौरा करना चाहिये। स्वयं काम करनेकी अपेक्षा दूसरोंसे काम लेना कठिन है। ऐसे आदमी तो हमारे यहाँ बहुतसे हैं, जो अपनेको ख़ूब खपा सकते हैं; पर सुव्यवस्थित ढंगपर दूसरोंसे काम लेनेवालोंकी संख्या अत्यल्प है। सम्मेलनका कार्य अब इतना व्यापक और महत्त्वपूर्ण हो गया है कि यदि छोटे-मोटे काम भी प्रधान मंत्रीको ही करने पड़ें, तो वह अपने उच्चकोटिके कर्तव्योंका पालन नहीं कर सकता। जैसे विलायतके प्रभावशाली पत्रोंमें मुख्य सम्पादक केवल नीतिका संचालन करता है, बाक़ी सब काम सहायक सम्पादक करते हैं, उसी प्रकार सम्मेलनके प्रधान मंत्रीका कार्य होना चाहिए। दो सुयोग्य वैतनिक उपमंत्री मिल जानेपर, सम्मेलनके प्रधान मंत्रीके लिए ऐसा करना कठिन न होगा।

(३) सम्मेलनके सभापति महोदयोंपर भी कुछ जिम्मेवारी है। सभापतिका निर्वाचन केवल इसलिए नहीं होता कि हिन्दी जनता सभापति महोदयका केवल सम्मान ही करना चाहती है, बल्कि उसका उद्देश्य यह भी होता है कि सभापति महोदय साल-भर तक कुछ काम भी करें। एक बार सभापति महोदयको भिन्न-भिन्न प्रान्तीय केन्द्रोंकी यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

(४) सम्मेलनकी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेका प्रश्न भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। हम इस प्रस्तावको अनेक बार जनताके सम्मुख रख चुके हैं कि साहित्य-सम्मेलनको अपनी परीक्षाओंमें केवल अपने कार्यालयसे प्रकाशित पुस्तकें ही रखनी चाहिए। यद्यपि प्रारम्भमें कुछ कठिनाई अवश्य होगी, पर चार पाँच वर्षके भीतर यह कठिनाई स्वयं ही दूर हो जायगी। यदि आगामी अधिवेशनमें यह प्रस्ताव पास कर दिया जाय कि चार वर्षके भीतर सम्मेलन अपनी परीक्षाओंके लिए उपयुक्त ग्रन्थोंका निर्माण कर ले, तो इसमें विशेष कठिनाई न होगी। हाँ, शायद उत्तमा परीक्षाके कुछ ग्रन्थ इस

बीचमें तैयार न हो सकेंगे, उनके लिए समयकी अवधि बढ़ाई जा सकती है। इन ग्रन्थोंसे सम्मेलनको स्थायी आमदनी हो जायगी।

(५) मामूली दूकानदार भी इस बातको जानता है कि जिस चीज़की अधिक माँग हो, वह दूकानमें अधिक परिमाणमें रखनी चाहिए। हमें आश्चर्य है कि सम्मेलनके अधिकारी इस साधारण बातको अब तक क्यों नहीं समझ पाये! सम्मेलनका परीक्षा-विभाग प्राय: स्वावलम्बी रहा है। यदि परीक्षार्थियोंकी संख्या दुगुनी-तिगुनी कर दी जाय, तो इस विभागसे अच्छी ख़ासी आय हो सकती है, जो पुस्तक-प्रकाशनके कार्यमें लगाई जा सकती है। परीक्षार्थियोंकी संख्या बढ़ानेके लिए परीक्षा-मंत्रीको भिन्न-भिन्न केन्द्रोंकी यात्रा करनी चाहिए और इस विभागकी पूरी-पूरी व्यवस्था करनी चाहिए।

(६) हिन्दी-क्षेत्रके प्रान्तोंका पुनर्निमाण करना चाहिए! इस विषयपर हम अपने पिछले अंकमें लिख चुके हैं, अतएव उन बातोंको दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। ब्रज साहित्य-मंडल, बुन्देलखंड साहित्य-परिषद, अवध साहित्य-सम्मेलन इत्यादि प्रान्तीय संस्थाओंका निर्माण होना चाहिये। ये प्रान्तीय संस्थाएँ यदि साल-भर थोड़ा-बहुत भी काम करें, तो देशभरमें साहित्यिक जागृति बनाये रखनेमें बड़ी सहायता मिलेगी।

(७) जहाँपर साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशन हों, वहाँ प्रधान कार्यालयकी ओरसे दो-तीन सुयोग्य आदमी कमसे कम पन्द्रह दिन पहले पहुँच जाने चाहिए, जिससे सब काम सुचारु रूपसे हो सके।

—

दिल्लीवालोंसे निवेदन

दिल्लीमें साहित्य-सम्मेलनका आगामी अधिवेशन होनेवाला है, और यदि वहाँके अधिकारी चाहें, तो सम्मेलनकी गतिविधि ठीक करनेमें बहुत-कुछ सहायता दे सकते हैं। उन्हें प्रोग्राम इस ढंगसे रखना चाहिए, जिससे सम्मेलनमें जानेवाले व्यक्तियोंको विचार करनेके लिए काफ़ी अवसर मिले। मुख्य काम साहित्य-सम्मेलनका है, बाक़ी कवि-सम्मेलन इत्यादिका कार्य गौण है। सम्मेलनोंके अधिवेशनोंमें प्राय: यह होता है कि कवि-सम्मेलन रातको एक-दो बजे तक होते रहते हैं, और उनसे साहित्य-सेवियोंके समयपर भयंकर आघात होता है। कभी-कभी स्थानीय सभाएँ अपने जलसे उसी मौकेपर कर बैठती हैं और उनमें भी समयका अपव्यय होता है। उन आदमियोंकी बात छोड़ दीजिये, जो केवल सैर-तमाशेके लिए जाते हैं, और न हम उन आदमियोंकी गणना करते हैं, जो सम्मेलनोंमें उसी भावनासे जाते हैं जिस भावनासे आजसे बीस-पचीस वर्ष पहले वकील लोग बड़े दिनकी छुट्टियोंमें कांग्रेसमें सम्मिलित हुआ करते थे। जिनके जीवनका प्रत्येक दिन साहित्यके लिए चिन्ता करते ही बीतता है, उनके पास इतना फालतू वक्त नहीं है कि वे आशु-कवियोंकी अशुद्ध कविताओंको रातके दो-दो बजे तक सुनते रहें।

समयका उपयुक्त विभाजन होना चाहिये और सब काम ठीक वक्तपर प्रारम्भ हो जाना चाहिए। जिन आदमियोंपर सालभरके लिए सम्मेलनकी नीतिका निर्माण करनेका भार है, उनके पास इतना समय अवश्य बचना चाहिये कि वे गम्भीरता-पूर्वक साहित्यिक प्रश्नोंपर विचार तो कर सकें। हमने प्राय: देखा है कि सम्मेलनके प्रधान कार्यालयसे उचित नेतृत्व समयपर न मिलनेके कारण स्वागत-समितिवाले ऐसी घबराहटमें पड़ जाते हैं, जैसी लड़कीके विवाहमें उसका पिता। विचारे क्या करें और क्या न करें! और कोई-कोई सम्मेलनके डेलीगेट तो अपनेको वर नहीं तो बराती ज़रूर समझते हैं। भरपूर प्रयत्न करनेपर भी स्वागत-समितिवालोंको इस बातकी आशंका रहती है कि हमारी बदनामी न हो। सम्मेलनके अधिवेशनकी सफलता मुख्यतया उस साहित्यिक जाग्रतिके ऊपर निर्भर है, जो हम लोगोंके सालभर तक प्रयत्न करनेपर उत्पन्न हुई हो। स्वागत-समितिवाले तो अपने ऊपर भार लेकर

हम लोगोंको इस बातका अवसर देते हैं कि हम अपनी योग्यतासे साहित्यिक शक्तियोंको जन्म दें और उनका संचालन करें। हाँ, प्रतिनिधियोंको उचित स्थानपर ठहराने और उनके भोजन इत्यादिका समुचित प्रबन्ध करनेकी ज़िम्मेवारी उनपर अवश्य है।

—

प्रतिनिधियोंसे प्रार्थना

सम्मेलन एक जनसत्तात्मक संस्था है और उसका प्रत्येक प्रतिनिधि समान अधिकार रखता है, पर यदि हम लोग अपने कर्त्तव्योंका ख़याल छोड़कर अधिकारोंपर ही ज़ोर देने लगें, तो किसी भी सभा या समितिका कार्य व्यवस्थित ढंगपर नहीं चल सकता। खेदपूर्वक हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि हमारे कितने ही प्रतिनिधि अपनी ज़बानपर वैसा नियन्त्रण नहीं कर सकते, जैसा उन्हें करना चाहिए। कुछ तो प्रत्येक विषयपर, जिसपर उनका ज्ञान न-कुछके बराबर है, बोल बैठते हैं। अनेक महानुभाव मानो प्रस्तावोंमें संशोधन उपस्थित करनेके लिए ही सम्मेलनोंमें जाते हैं और इससे अन्य प्रतिनिधियोंका बहुत-सा समय नष्ट होता है। सम्मेलनमें भाषण देनेवालोंमें ऐसे बहुत कम होते हैं, जो अपना भाषण तैयार करके बोलते हों। समयपर जो कुछ बन पड़ता है, बोल बैठते हैं। बाज़-बाज़ ऐसे आदमी भी सम्मेलनमें जाने लगे हैं, जिनका उद्देश्य ही यह होता है कि ऊटपटाँग विरोध करके जनताका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें। जब तक हम लोगोंमें यह साहस नहीं कि अपने समयको इस प्रकारके अनधिकारी आदमियों द्वारा नष्ट होनेसे बचा सकें, तब तक हमारे अधिवेशन पूर्णरूपसे सफल नहीं हो सकते।

—

अनुचित आक्षेप

हमने देखा है कि सम्मेलनके अधिवेशनोंपर प्रायः प्रधान कार्यालयके विरुद्ध एक प्रकारका वायुमंडल-सा बन जाता है। प्रधान कार्यालय बिल्कुल निर्दोष है, ऐसा हम नहीं मानते ; पर जिन कठिन परिस्थितियोंमें प्रधान कार्यालयको काम करना पड़ता है, उनपर भी हमें ध्यान देना चाहिए। कोई सम्मेलनको मृत संस्था बताता है, कोई उसे निर्जीव कहता है और कोई उसकी उपमा भगवान गौतम बुद्धकी अवशिष्ट हड्डियोंसे देता है। यदि इन निराशावादियोंका कथन ठीक हो, तो हमें यही कहना पड़ेगा कि हिन्दी-भाषाभाषी जनता ही निर्जीव तथा मृतप्राय हो चुकी है, जो सरासर ग़लत है। संस्थाओंका संचालन व्यक्तियों-द्वारा हुआ करता है। जब अच्छे व्यक्ति नहीं मिलते, तो उनका काम शिथिल हो जाता है। दर-असल बात यह है कि सम्मेलनके लिए प्रयागस्थ साहित्य-सेवियोंने जो कार्य किया है, उसका शतांश भी बाहरवालोंसे नहीं बन पड़ता। ऐसी स्थितिमें प्रयागवालोंके सिर सारा दोष मढ़ देना अन्यायपूर्ण है।

सम्मेलनके विषयमें कोई फैसला देनेके पहले हमें उसके कार्यपर एक विहंगम दृष्टि डाल लेनी चाहिए। मार्चकी 'माधुरी'में सम्मेलनके प्रधान मंत्री श्री पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्लका एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। सम्मेलनके आलोचकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे एक बार उक्त लेखको पढ़ जायँ। श्रीयुत शुक्लजी लिखते हैं :—

"इस प्रकार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने जन्म लेकर हिन्दी-जगतमें एक क्रान्ति और उन्नतिकी लहर पैदा की है। राष्ट्र-भाषाके प्रचारमें वह यत्नशील हुआ है ; हिन्दीकी शिक्षा देने-दिलानेमें उसने देशमें उत्साह उत्पन्न किया है। उसकी परीक्षाओंकी शिक्षा देनेके लिए अनेक स्थानोंमें विद्यालय और वर्ग स्थापित हुए हैं। हिन्दीमें उच्च ज्ञानपूर्ण और मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे हैं। अन्य भाषाओंके मुक़ाबिले पचीस-तीस वर्ष पहले हिन्दीकी जो दशा थी, उससे दस-गुना अधिक उसकी उन्नति हुई है। आज हिन्दी गौरव और प्रतिष्ठाके साथ सर उठाकर खड़ी होने योग्य हो गई है ; राष्ट्रभाषाके गौरव, गम्भीर भाव और महत्त्वके अनुरूप वह होती जा रही है। अवश्य ही समयका प्रभाव इसमें सहायक

हुआ है ; किन्तु कहना पड़ेगा कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने उद्योग, समय-सूचकता, संगठन और अध्यवसायसे वह स्वर्णयुग लानेमें बहुत-कुछ कारणीभूत हुआ है। परिस्थिति और व्यक्तिजन्य प्रभावसे उसका कार्य कभी-कभी आलोचनीय हो सकता है ; किन्तु समष्टिरूपसे वह अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें बराबर लगा हुआ है।”

शुक्लजीकी उपर्युक्त बातोंसे हम पूर्णतया सहमत हैं। अभी उस दिन श्रीमान टंडनजीसे सम्मेलन विषयक बातचीत हुई, तो उन्होंने कहा—“हमें इस बातका कुछ भी मोह नहीं कि सम्मेलनका प्रधान कार्यालय प्रयागमें ही रहे। यदि बाहरवाले कोई सज्जन उसे अन्यत्र ले जानेके लिए उद्यत हों, तो वे ख़ुशीसे ले जा सकते हैं। काम करनेवाले आदमी चाहिए, काम चाहे जहाँसे हो।”

सारा मामला यहीं आकर अटक जाता है। सम्मेलनके आलोचक बहुत हैं, पर उसके लिए काम करनेवाले थोड़े। आलोचनासे किसी संस्थाकी हानि नहीं हो सकती, बशर्ते कि वह आलोचना समझ-बूझकर और न्यायपूर्वक की गई हो।

—

भावी कार्यक्रम

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि अब समय आ पहुँचा है, जब कि हमें साहित्य-क्षेत्रका विभाजन छोटे-छोटे प्रान्तोंमें करना चाहिए, उदाहरणार्थ ब्रजसाहित्य-मंडल, बुन्देलखण्ड साहित्य-परिषद, अवध साहित्य-सम्मेलन इत्यादि। जब आगरा, कानपुर, लखनऊ, इन्दौर, पटना, लाहौर और कलकत्ता इत्यादि नगर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने और प्रयाग तथा प्रधान कार्यालयका मुँह ताकते रहनेकी नीतिको तिलांजलि दे देंगे, और स्वयं अपने क्षेत्रमें साल-भर तक साहित्यिक जाग्रति करना अपना उद्देश्य बना लेंगे, तब साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशन फिर स्फूर्तिदायक बन जायँगे। श्रद्धेय टंडनजी और बाबू श्यामसुन्दरदासजीके कार्योंकी आलोचना करनेके बजाय यह कहीं अच्छा है कि भिन्न-भिन्न साहित्यिक केन्द्रोंमें उपर्युक्त दोनों सज्जनोंकी-सी लगनवाले कार्यकर्त्ता उत्पन्न हों।

सारी शक्तिको—सम्पूर्ण प्रकाशको—एक या दो स्थानोंमें केन्द्रित करनेका युग अब बीत चुका। सम्मेलनके अधिकारियोंका कर्तव्य है कि वे भिन्न-भिन्न स्थानोंको अब शक्तिका केन्द्र बनावें। स्थानीय साहित्य-प्रेम Local Literary Patriotism को जन्म दें। न जाने किस नगरसे कब साहित्यके महान यज्ञका प्रारम्भ हो जाय। जिस समय इन्दौरमें सरदार माधवराव विनायक किबेके मकानपर मध्य-भारत हिन्दी साहित्य-समितिका जन्म हुआ था, उस समय किसने इस बातकी कल्पना की थी कि इन्दौर नगर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन तथा दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारके लिए वह काम करेगा, जो किसी अन्य नगरसे नहीं बन पड़ा? डाक्टर सरजूप्रसाद तथा उनके सहयोगियोंके सतत परिश्रमने वह दृश्य उपस्थित कर दिया, जो साहित्य-सम्मेलनके किसी अधिवेशनमें अभी तक नहीं दीख पड़ा।

बहतर तो यही होगा कि एक बार सम्मेलनके अधिकारी दिल्ली जानेसे पहले ही सम्पूर्ण परिस्थितिपर विचार कर लें और वहाँ एक निश्चित कार्यक्रमके साथ पहुँचें। इस समय तो हमारे अधिवेशन परस्पर परिचय प्राप्त करने, साहित्यिक छुट्टी मनाने, सम्मेलनने क्या किया, क्या नहीं किया, इसकी आलोचना करने और स्थायी समितिके ऐसे मेम्बर चुनने—जिनमें से ७० फ़ी-सदी एक भी मीटिंगमें सम्मिलित नहीं होते—के लिए ही होते हैं। इसी लिए उनका आकर्षण जाता रहा है। किन्तु जब हम इन सम्मेलनोंमें अपने सालभरके कार्यको अपने सहयोगी बन्धुओंको बतलानेके लिए जायेंगे, जब भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें अधिक-से-अधिक साहित्यिक कार्य कर दिखानेकी प्रतिद्वन्द्विता होगी, जब हम अगले वर्षके लिए कोई नवीन कार्यक्रम वहाँ ले जायेंगे और नवीन सन्देश तथा स्फूर्ति वहाँसे लायेंगे, तब सम्मेलनके अधिवेशन तीन दिनके तमाशे न रहेंगे,

उस समय वे एक ऐसे महान उत्सवका रूप धारण कर लेंगे, जिनमें सम्मिलित होनेके लिए हम लोग सालभर तक उत्कंठा-पूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। वह दिन शीघ्र ही आवे, यही हमारी आकांक्षा है।

अनुचित और निन्दनीय

कुछ दिनोंसे हमारे अनेक पत्रों और लेखकोंमें—विशेषतः हास्यरसके पत्रों और लेखकोंमें—यह प्रवृत्ति बढ़ चली है कि वे बिना किसी विचारके वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों तथा स्त्री-कवियों और लेखिकाओंके विषयमें बड़े भद्दे ढंगसे लिखते हैं। बन्धुत्त्व Comradeship के भावके सर्वथा पक्षपाती होते हुए भी हम इस प्रवृत्तिकी निन्दा बिना किये नहीं रह सकते। हमारे यहाँ स्त्री-लेखिकाओंकी संख्या वैसे ही बहुत कम है और यदि हमने अशिष्टता-पूर्वक उनका मज़ाक उड़ाना शुरू किया, तो यह संख्या बढ़नेके बजाय उलटी और घट जायगी। कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति इस बातको गवारा नहीं कर सकता कि उसकी बहू-बेटी बहन या माताका मज़ाक बेहूदा तौरपर उड़ाया जाय। जब हमारी प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ तक इस निम्न धरातलपर उतर आती हैं, तो टुटपुँजिए हास्यरसवाले पत्रोंका तो कहना ही क्या! स्वयं स्त्री-लेखिकाओंका कर्तव्य है कि वे इस प्रकारके मज़ाकोंका घोर विरोध करें।

रहे वयोवृद्ध साहित्य-सेवी, सो हम उनके वकील नहीं, वे अपना पक्ष समर्थन स्वयं कर सकते हैं; पर मौक़े-बेमौक़े जिस मनोवृत्ति द्वारा उनपर क्षुद्रतापूर्ण व्यंग्य-बाणोंकी वर्षा की जाती है, उसे देखकर हमें खेद अवश्य होता है। उदाहरणार्थ, कविवर अयोध्यासिंहजी उपाध्याय और बाबू श्यामसुन्दरदासजीसे ग़लतियाँ न हुई हों, यह हम नहीं मानते; पर उनका ज़िक्र करते हुए हमें शिष्टतासे काम लेना चाहिए। कड़ी-से-कड़ी आलोचना शिष्ट-से-शिष्ट शब्दोंमें की जा सकती है। जो लोग हमारे पिताकी उम्रके हैं, उनके विषयमें लिखते हुए हमें कुछ सावधानीसे काम लेना चाहिए। स्वर्गीय राजर्षि गोखले कहा करते थे—"Always respect age and poverty" "वृद्धों तथा निर्धनोंका सदा सम्मान करो।" जिन लोगोंने हमारे साहित्य-मन्दिरकी नींव रखी है, जिनके बनाये हुए पथपर आज हम चल रहे हैं, जिन्होंने हमारी उन्नतिके लिए सीढ़ियोंका काम दिया है, उनका असम्मान करके हम फलफूल नहीं सकते। भद्दे मज़ाकोंसे हम अधपढ़ी जनताका थोड़े दिनोंके लिए भले ही मनोरंजन कर लें, पर सुसंस्कृत पाठकोंकी दृष्टिमें हम अपनेको गिराये बिना न रहेंगे। अपने पत्रको लोकप्रिय तथा प्रभावशाली बनानेके लिए जिन साधनोंकी आवश्यकता है, वे इतनी आसानीसे प्राप्त नहीं हो सकते, जितनी आसानीसे सनसनीखेज़ लेख लिखे जा सकते हैं, अथवा वयोवृद्धों या स्त्रियोंका मज़ाक उड़ाया जा सकता है। सौभाग्यसे अब हिन्दी-जनता पहले-जैसी मूढ़ नहीं रही। वह इन दाव-पेचों और हथकंडोंसे भली भाँति परिचित हो चुकी है, और जो लोग क्षणिक लोकप्रियताकी बालूके आधारपर अपने कीर्ति-रूपी भवनकी नींव रख रहे हैं, वे थोड़े दिनों बाद ही अपनी ग़लती महसूस करनेके लिए मजबूर होंगे, पर तब पश्चात्ताप करना व्यर्थ होगा, क्योंकि इस अव्यापारमें उनकी पूर्वसंचित पूँजी भी घाटेमें चली जायगी।

'आर्यमित्र' और श्री हरिशंकर शर्मा

'आर्यमित्र' के अधिष्ठाताके अनुचित बर्तावसे खिन्न हो कर श्री हरिशंकरजीने 'आर्यमित्र' के सम्पादन कार्यसे त्यागपत्र दे दिया है, यह समाचार पढ़कर हमारे हृदयमें नाना प्रकारके भाव उत्पन्न हुए। श्री हरिशंकरजीकी दृढ़तापर हमें हर्ष हुआ। उन्होंने वही काम किया, जो किसी स्वाभिमानी लेखकको करना चाहिए था, और इसके लिए हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। अधिष्ठाताजीके असद् व्यवहारसे हमें आश्चर्य नहीं हुआ। आर्यसमाजमें जिस पद्धतिके अनुसार अधिकारियोंका चुनाव होता है, वह सर्वथा दोषपूर्ण है। उससे ऐसे व्यक्ति भी, जिन्हें प्रेस तथा समाचारपत्रोंके

विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं, इस विभागके अधिष्ठाता चुन लिये जाते हैं। इन भलेमानसोंको कौन समझावे कि सम्पादकके पदका जो गौरव है, वह आर्य-प्रतिनिधि सभाके उचसे उच भी अधिकारीके पदके गौरवसे कम नहीं। और फिर कविवर हरिशंकरजी तो हिन्दीके किसी भी उत्तमसे उत्तम पत्रका सम्पादन सुचारु रूपसे कर सकते हैं। उन जैसे सुयोग्य आधे दर्जन पत्रकार भी हमारे साहित्यक्षेत्रमें होंगे, इसमें हमें सन्देह है। श्री हरिशंकरजीके साथ सहायक सम्पादकके तौरपर हमें कई महीने काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और उस समयको हम अपने जीवनके स्मरणीय दिवस मानते हैं। हरिशंकरजीके मृदुल स्वभाव, उनके आकर्षक सौजन्य तथा उनके अद्भुत आतिथ्यने हमारे हृदयपर अत्यन्त प्रभाव डाला था, और जो अधिष्ठाता महोदय ऐसे सहृदय सज्जनके साथ असद् व्यवहार कर सकते हैं उनकी बुद्धिपर हमें तरस आता है। 'आर्यमित्र' के तंग दायरेसे बाहर आ जानेसे हरिशंकरजीका और हिन्दी साहित्यका भी लाभ ही होगा, पर आर्यसमाज एक ऐसे कार्यकर्ताकी सेवाओंसे वंचित हो जायगा जिसके स्थानकी पूर्ति वह अभी वर्षों तक नहीं कर सकता।

यदि यह प्रश्न केवल 'आर्यमित्र', कविवर हरिशंकरजी तथा आर्यसमाजका ही होता, तो हम इसपर अधिक न लिखते, पर यह तो सम्पादकीय गौरवका प्रश्न है और इस दृष्टिसे हम इसे जहाँका तहाँ नहीं छोड़ सकते। हरिशंकरजीके अपमानमें हम अपनी भाषाके प्रत्येक स्वाभिमानी पत्रकारका अपमान समझते हैं। हरिशंकरजी आर्यमित्रमें काम करें या न करें, पर अधिष्ठाता महोदयके लिए इस प्रकारकी धृष्टता असम्भव बना दी जानी चाहिये। हमें खेद है कि श्री हरिशंकरजीने हमें अधिकार नहीं दिया कि हम उनके साथ किये हुए वर्तावको साधारण जनताके सम्मुख प्रकट करें। हमारे तार देनेपर जो पत्र उन्होंने भेजा है, उसपर उन्होंने 'प्राइवेट' लिख दिया है! शर्माजीकी यह भलमनसाहत हमें सख्त नापसंद आई। हमारा उनसे आग्रह है कि वे सम्पूर्ण घटनाको विस्तार-पूर्वक जनताके सम्मुख रखें। जैसा कि हम कह चुके हैं, यह उनका व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है, हिन्दी पत्रकारोंकी इज्जतका सवाल है। जो भूल श्रीयुत ज्योतिप्रसादजी निर्मल तथा श्री विशम्भरनाथजी जिज्जाने की थी, वही श्री हरिशंकरजी कर रहे हैं। 'मनोरमा' तथा 'विजय' के संचालकोंने उपर्युक्त दोनों सज्जनोंके साथ जो व्यवहार किया था, उसे जनता आज तक नहीं जान सकी। समाचारपत्रोंमें इस विषयपर आन्दोलन होना चाहिए था, पर नहीं हुआ।

युक्तप्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभाके अधिकारियोंसे हमारा निवेदन है कि इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए वे शीघ्र ही एक मीटिंग बुलावें। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो फिर हमें श्री हरिशंकरजीकी इच्छाके विरुद्ध और उनके आदेशका उल्लंघन करके भी सारी घटना हिन्दी पत्रोंमें प्रकाशित करनेके लिए मजबूर होना पड़ेगा।

भारतेन्दु अर्ध-शताब्दी

वर्तमान हिन्दी-भाषापर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जो ऋण है, उसके विषयमें किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं की जा सकती। हिन्दी-गद्यको वर्तमान रूप देनेमें भारतेन्दुजीका सबसे बड़ा हाथ है। ६ जनवरी सन् १९३५ को भारतेन्दुकी मृत्युको पूरे पचास वर्ष हो जायँगे। 'जागरण' में श्री शिवपूजनसहायजीने प्रस्ताव किया है कि इस अवसरपर समस्त हिन्दी-भाषी स्थानोंमें भारतेन्दुकी अर्ध-शताब्दी मनाई जाय। सुना है भारतेन्दुजीके दौहित्र बाबू ब्रजरत्नदासजीने भी काशी नागरी-प्रचारिणी-सभामें इस आशयका प्रस्ताव रखा है। इस प्रस्तावके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है और हमें पूर्ण आशा है कि इस अवसरपर हिन्दी-भाषाभाषी सब प्रकारसे सहयोग प्रदान करके हिन्दीके इस महान लेखकके प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञताका परिचय देंगे।

बजट-चर्चा

भारत सरकारके अर्थसचिव सर जार्ज शुष्टरने सन् १९३३-३४ का संशोधित बजट (Revised Estimates) और सन् १९३४-३५ का आनुमानिक बजट (Estimates) पेश करते हुए बड़े कौशलसे काम लिया है। गत वर्ष आपने आनुमानिक बजटमें २५ लाखकी बचत दिखलाई थी। यह बचत ६,८८ लाख रुपया ऋणकी मदमें चुकानेके बाद होती थी। किन्तु राजस्वमें ५,०४ लाखकी कमी हो जानेसे २५ लाखकी बचत तो नहीं हुई, उसके बदलेमें १,२९ लाखकी बचत हो गई! सर जार्ज शुष्टरकी यह जादूगरी नहीं तो और क्या है? अपने अन्तिम बजटके इस कौशलपर आपने हार्दिक सन्तोष प्रकट किया है। किन्तु आपके इस कौशलके अन्दर क्या रहस्य छिपा हुआ है, सो सुनिये। गत वर्षके बजटमें ऋण-परिशोध फंडमें ६.८८ करोड़ चुकानेका बजट किया गया था। इसके बदलेमें सिर्फ ३ करोड़ चुकाकर आपने ३.८८ करोड़ बचा लिया है। इसके अलावा Capitation Tribunal के फैसलेके अनुसार भारतको ब्रिटिश सरकारसे गोरी फौजके लिए जो १,७८ लाख मिला करेगा, वह भी आपके हाथ लग गया। इस प्रकार Debt Redemption Fund पर हाथ साफ करके आपने वर्तमान वर्षके संशोधित बजटमें १,२९ लाखकी बचत दिखा दी है, जिसे हम दर-असलमें बचत नहीं कह सकते। क्योंकि यदि ऋण-परिशोध फंडपर हाथ साफ नहीं किया जाता, तो बजटमें १,२९ लाखकी बचत होनेके बजाय ४,३५ लाखका घाटा होता। इस प्रकार घाटेके बजटको बचतके रूपमें दिखाकर अर्थसचिवने अपने कृतित्वपर गौरव प्रकट किया है, किन्तु वस्तुतः इसमें गौरवकी कोई बात नहीं है। आगामी वर्ष १९३४-३५ के बजटमें जो घाटा होगा, उसकी पूर्तिके लिए १,९९ लाखका नया टैक्स लगाया गया है। इसके साथ यदि हम स्वदेशी दियासलाईके टैक्सको भी शामिल कर लें, तो नये टैक्सकी रकम ३७९ लाख तक पहुँच जायगी। इस प्रकार एक तो पहलेसे ही कर-भारके कारण जनताकी कमर टूटी जा रही थी, उसपर यह नया टैक्स लगाकर सर जार्ज शुष्टरने उसे और भी पंगु बना डाला है और अपनी इसी कृतिपर आप भारतकी आर्थिक स्थितिको संसारके किसी भी देशकी बराबरीका बतानेका साहस करते हुए कुछ भी लज्जा अनुभव नहीं करते! किसी देशका बजट उस देशकी आर्थिक परिस्थितिका दर्पण होना चाहिए, जिससे उसे देखते ही देशकी आर्थिक दशाओंका यथार्थ ज्ञान हो जाय। किन्तु सर जार्ज शुष्टरका यह बजट इसके सर्वथा विपरीत है और इसे पढ़कर जो लोग देशकी प्रकृत अवस्थासे परिचित नहीं हैं, वे यही समझेंगे कि भारतकी आर्थिक स्थिति बिलकुल ठीक है और देशवासियोंकी सुख-समृद्धिमें वर्तमान मन्दीके कारण कोई अन्तर नहीं पड़ा।

अन्य टैक्सोंमें दियासलाईपर लगाई गई ड्यूटी आपत्तिजनक कही जा सकती है। दियासलाईका फुटकर मूल्य अभीसे बाज़ारमें दुगुना हो गया है। इससे गरीबोंको असुविधा होगी। दियासलाईपर टैक्स लगानेका कारण बताया गया है बंगालको पाटके रफ्तनी-करकी आमदनीका आधा हिस्सा प्रदान करना। इस व्यवस्थाके अनुसार बंगालको पाटके रफ्तनी-करसे १,९७ लाख, विहार-उड़ीसाको १२॥ लाख और आसामको ९॥ लाख मिलेंगे।

पोस्टेज

पोस्टेज-रेटमें जो कमी की गई है, उससे साधारण जनताको नहींके बराबर लाभ पहुँचेगा। आधे तोलेकी चिट्ठी तथा ८ शब्दोंके तार सिर्फ व्यवसायियोंके फर्मसे भेजे जाते हैं। आध तोला वजन इतना कम है कि इतने वजनकी चिट्ठी सिवा व्यवसायियोंके और लोग शायद ही भेजते हों। गरीबोंके लाभके लिए

पोस्टकार्डके मूल्यमें कमी होनी चाहिये थी, किन्तु पोस्टकार्डका मूल्य ज्योंका त्यों रखा गया है।

—

बिहार-प्रान्तकी सहायता

वर्तमान वर्षके बजटकी बचत १२९ लाख तथा इसके अलावा २। करोड़ कुल मिलाकर ३॥ करोड़ बिहार-प्रान्तके भूकम्प-पीड़ितोंके सहायतार्थ दिये गये हैं। इसमें पिछली रक़म ऋणके रूपमें दी जायगी। बिहार-प्रान्तकी भीषण क्षतिको देखते हुए भारत-सरकारकी यह सहायता बहुत कम कही जा सकती है। बाबू राजेन्द्रप्रसादने ठीक ही कहा है कि भारत-सरकारकी यह कृपणता उसकी हृदयहीनताकी द्योतक है। खुद बिहार-सरकारके अन्दाज़से भूकंपके कारण सब मिलाकर बिहार-प्रान्तको कमसे कम ५० करोड़की क्षति हुई है। कहाँ ५० करोड़की भीषण क्षति और कहाँ ३॥ करोड़की तुच्छ सहायता! कितना अन्तर है! भारत-सरकारकी इस तुच्छ सहायताका एक और बुरा परिणाम यह होगा कि ब्रिटिश सरकार तथा इंग्लैंडकी जनताको भूकंपजन्य क्षतिका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकेगा, और उनसे पीड़ितोंके सहायतार्थ यथेष्ट आर्थिक सहायता भी नहीं मिलेगी।

—

किसानोंकी कर्ज़दारी

किसानोंकी कर्ज़दारीका बोझ किस तरह हलका होगा, खेतोंसे पैदा होनेवाली चीज़ोंके मूल्यमें किस प्रकार वृद्धि होगी, जनताकी क्रयशक्ति किस प्रकार बढ़ेगी तथा देशके उद्योग-धंधे किस प्रकार प्रगतिशील होंगे, इस सम्बन्धमें अर्थ-सचिवने देशके सामने कोई भी कार्यक्रम नहीं रखा। कपड़ा, नमक और किरासनतेलकी खपतमें कुछ वृद्धि हुई है, इसलिए आप इस परिणामपर पहुँचे हैं कि किसानोंकी आर्थिक दशा अच्छी है। किसानोंकी कर्ज़दारी दूर करनेका उपाय आपने यह सोचा है कि आगामी अप्रेलमें भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारोंकी एक कानफरेन्स होगी, जिसमें किसानोंकी कर्ज़दारीकी समस्यापर विचार किया जायगा। बस, इतनेसे ही किसानोंकी कर्जदारी छूमन्तर हो जायगी।

—

उज्ज्वल भविष्य

और, देशके उद्योग-धंधोंकी उन्नति! इसके लिए तो ओटावा-समझौताको कल्पतरु ही समझिये। जार्ज शुष्टरने ओटावा-समझौता और बम्बई-लंकाशायर-समझौतेका खूब गुणगान किया है, और इस प्रकारके समझौतेके आधारपर ही भारतके उज्ज्वल भविष्यका चित्र चित्रित किया है। आपका यह आशा-स्वप्न कभी चरितार्थ होगा या नहीं, यह तो भविष्य ही बतायगा; किन्तु इतना अवश्य है कि आपके कार्यकालमें देशके ऊपर जो अभूतपूर्व कर-भार लाद दिया गया है, उसकी पीड़ासे देश अभी और कुछ समय तक—यह कौन कहे कि बहुत दिनोंके लिए नहीं—कराहता रहेगा। चाहे जिस दृष्टिसे विचार कीजिये, सर जार्ज शुष्टरके इस अन्तिम बजटको हम निराशापूर्ण और असंतोषजनक ही कहेंगे, और हमें इस बातपर आश्चर्य नहीं होगा, यदि आपके उत्तराधिकारीको आगामी वर्षके संशोधित बजट Revised Estimate में वर्तमान वर्षके संशोधित बजटके समान ही अंदाजे (Estimate) की भूल मालूम पड़े और उसकी पूर्तिके लिए फिर नये टैक्सोंकी शरण लेनी पड़े।

—

रेलवे बजट

गत १७ फरवरीको व्यवस्थापिका सभामें रेलवे बजट पेश किया गया था। सन् १९३३-३४ के संशोधित बजटके अनुसार रेलवेको इस वर्ष ७¾ करोड़का घाटा होगा। आगामी वर्ष सन् १९३४-३५ में यदि बजटके अनुसार आय-व्यय हुआ, तो सिर्फ ५॥ करोड़का घाटा रह जायगा। घाटेकी पूर्ति वर्तमान वर्ष और आगामी वर्षमें भी Depreciation Fund से रुपया उधार लेकर की जायगी। आगामी वर्षमें कोई

नई स्कीम काममें नहीं लाई जायगी। भूकम्पके कारण रेलवेको जो क्षति हुई है, उसकी तथा हार्डिंज पुलकी मरम्मतमें लगभग २॥ करोड़ रुपया खर्च होगा। सन् १९३३-३४ में मुसाफिर-गाड़ियोंकी आमदनीमें १ करोड़से अधिककी कमी हुई है, किन्तु मालगाड़ियोंकी आमदनीमें वृद्धि हुई है। रेल और मोटर-बसकी प्रतियोगिताका ज़िक्र करते हुए वाणिज्य-सदस्य सर जोसेफ भोरने अपने भाषणमें कहा है कि "सरकार इस बातको समझती है कि मोटर-बसकी प्रतियोगिता अवश्यम्भावी है, और इसका मुक़ाबला करनेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि रेलवे-यात्राको विशेष आकर्षक बनाया जाय, जिससे जनता इसकी ओर आकृष्ट हो।" अपने भाषणके अन्तमें सर जोसेफ भोरने यह आशा प्रकट की है कि आगामी वर्षमें रेलवेकी आर्थिक स्थिति विशेष सन्तोषजनक होगी; किन्तु आपकी यह आशा कहाँ तक चरितार्थ होगी, यह तो समय ही बतायगा।

गत पाँच वर्षोंसे हम यह देख रहे हैं कि रेलवे बजटमें बराबर भविष्यके लिए आशा प्रकट की जाती है; किन्तु वह आशा मृगतृष्णाकी तरह दूर ही होती जा रही है। आशावादिता कोई बुरी बात नहीं है; किन्तु उसके लिए कम-से-कम कुछ आधार तो अवश्य होना चाहिए। गत पाँच वर्षोंके अन्दर रेलवे बजटमें Depreciation Fund से ३७ करोड़ रुपया लिया जा चुका है। इसलिए यदि रेलवेकी आर्थिक स्थितिमें कुछ सुधार भी होगा और रेलवेको लाभ होने लगेगा, तो सबसे पहले उसे ३७ करोड़का ऋण चुकाना पड़ेगा। भारत-सरकारके राजस्वमें अभी रेलवेकी आमदनीसे कुछ भी नहीं मिल रहा है। Federal Finance Committee ने अपनी रिपोर्टमें यह आशा प्रकट की है कि रेलवे भारत-सरकारके राजस्वमें सालाना ५ करोड़ दिया करेगी; किन्तु अभी रेलवेकी जैसी स्थिति है, उसमें तो रेलवेके लिए अपने घाटेकी पूर्ति करना ही मुश्किल हो रहा है, राजस्वमें कुछ देनेकी बात तो दूर रही। रेलवेकी वर्तमान आर्थिक स्थितिको देखते हुए इस बातकी आशा भी बहुत कम है कि मुसाफिर और मालगाड़ियोंके भाड़ेमें कुछ कमी होगी। ऐसी दशामें रेलवे बोर्डको इस बातपर विचार करना चाहिए कि वह किस प्रकार अपनी आयके साधनको पुष्ट कर सकता है। सर्वसाधारणका यह विश्वास है कि रेलवेके प्रबन्ध-व्ययमें अब भी बहुत-कुछ किफ़ायत करनेकी गुंजाइश है। रेलवे बोर्डने अभी तक अपने कर्मचारियोंके वेतनमें जो कुछ काटछाँट की है, उसका बहुत-कुछ असर निम्न-कर्मचारियोंपर ही पड़ा है। ज़रूरत इस बातकी है कि उच्च-कर्मचारियोंके वेतनमें काफ़ी काटछाँट की जाय।

रेलवेकी आयमें वृद्धि होनेके कई उपाय हो सकते हैं। इनमें सर्वप्रथम उपाय है तीसरे दर्जेकी रेल-यात्राको विशेष सुविधाजनक और सुखप्रद बनाना; किन्तु रेलवेका ध्यान सबसे कम इस विषयकी ओर ही होता है। हर साल रेलवे बजटपर बहस होते समय तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी कष्ट-गाथाओंका एसेम्बलीमें वर्णन किया जाता है। सरकारकी ओरसे आश्वासन भी बहुत-कुछ दिये जाते हैं; किन्तु काम होता है बहुत थोड़ा। इस बार रेलवे बजटपर बहस होते समय श्री एन० एम० जोशीने आँकड़े पेश करके दिखाया है कि पहले दर्जेकी एक सीट सालमें सिर्फ ९० दिन, दूसरे दर्जेकी १८० दिन और तीसरे दर्जेकी ४०० बार काममें आती हैं। और इन सीटोंसे रेलवेको आमदनी क्रमशः २०८ रु०, २३९ रु० और २४१ रु० की होती है। फिर भी रेलवे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी सुख-सुविधाओंकी ओर बहुत कम ध्यान देती है और उनसे प्राप्त हुई आमदनीसे पहले और दूसरे दर्जेके मुसाफिरोंको आराम पहुँचाती है!

पहले दर्जेकी बहुत-सी सीटें सालभर खाली पड़ी रहती हैं, और ज़रूरतसे ज्यादा डब्बे रखे जाते हैं। जानकार लोगोंका कहना है कि भारतमें पहले दर्जेके

मुसाफिरोंको जितना आराम पहुँचाया जाता है, उतना संसारके और किसी देशकी रेलवेमें नहीं। रेलवे विभागके अधिकारी मोटर-बसकी प्रतियोगिताकी शिकायत करते हैं ; किन्तु क्या उन्होंने कभी इस बातपर विचार किया है कि मोटर-बससे अधिकतर तीसरे दर्जेके मुसाफिर ही सफर किया करते हैं। इसलिए यदि रेलवे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी सुख-सुविधाओंकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दे, तो कोई कारण नहीं कि लोग रेल सफर छोड़कर मोटर-बससे सफर करें। भाड़ेमें कमी करने और यात्राको सुखपद बनानेसे सहज ही मोटर-बसकी प्रतियोगिताका सामना किया जा सकता है।

रेलवेके खर्चमें बचत होनेके लिए इस बातकी भी बड़ी आवश्यकता है कि इंजिन तथा रेलवेके अन्य सामान विदेशसे न मंगाकर देशमें ही तैयार किये जायँ। इस सम्बन्धमें यह सन्तोषकी बात है कि सर जोसेफ भोरने एसेम्बलीमें यह घोषणा की है कि सरकार इंजिन बनानेके प्रश्नपर गम्भीरता-पूर्वक विचार कर रही है और वह शीघ्र ही अपना निश्चय प्रकट करेगी। इसके सिवा रेलवे विभागको स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार अधिकाधिक रूपमें करना चाहिए, जिससे देशके उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन मिले। देशके अन्दर अनाज, कोयला, कपास तथा इसी तरहके दूसरे कच्चे मालको एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुँचानेमें रेल-भाड़ेमें सुविधा होनी चाहिए। बम्बई और अहमदाबादकी मिलोंमें बंगाल और बिहारके कोयलेका उपयोग न होकर दक्षिण अफ्रिकाके कोयलेका जो उपयोग होता है, उसका एक खास कारण रेलवे भाड़ा ही है। रेलवेकी नौकरियोंमें भारतीयोंको अधिक संख्यामें नियुक्त करनेकी आवश्यकता बहुत दिनोंसे सुझाई जा रही है ; किन्तु रेलवे विभागके अधिकारियोंने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। 'योग्यता'का बहाना करके भारतीयोंको रेलवे विभागके उच्च पदोंसे वंचित रखना बिलकुल थोथी दलील है। रेलवे बोर्डको यह भूलना नहीं चाहिए कि रेल्वेके उच्च पदोंपर अधिकाधिक संख्यामें भारतीयोंको नियुक्त करनेके प्रश्नके साथ खर्चमें किफायत करनेके प्रश्नका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

भावी शासन-विधानमें रेलवेके ऊपर नियन्त्रण रखनेके लिए एक Statutory Board कायम करनेका निश्चय किया गया है। इस निश्चयके अनुसार स्टैचुटेरी बोर्ड स्थापित होनेपर व्यवस्थापिका परिषद्का रेलवे विभागके प्रबन्धपर बहुत कम नियन्त्रण रह जायगा। ऐसी दशामें यदि रेलवे विभागके अधिकारियोंको निरंकुश अधिकार दे दिये जायँगे, तो इसका परिणाम यही होगा कि वे रेलवेका प्रबन्ध मनमाने तौरसे करेंगे और रेलवे द्वारा देशके वाणिज्य-व्यवसायकी उन्नतिमें यथेष्ट सहायता नहीं पहुँचेगी। इसलिए यदि Statutory Board का स्थापित किया जाना निश्चित हो, तो कम-से-कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि उसके सदस्योंमें जनता-द्वारा निर्वाचित सदस्योंका बहुमत हो! अन्यथा उससे देशको कोई लाभ नहीं हो सकता।

वस्त्र-व्यवसाय-संरक्षण बिल

वाणिज्य सदस्य सर जोसेफ भोरने टेरिफ बोर्डकी रिपोर्टके आधारपर स्वदेशी वस्त्र-व्यवसायको संरक्षण प्रदान करनेके लिए एक बिल व्यवस्थापिका परिषदमें उपस्थित किया है। इस बिलमें भारत-जापान-समझौता और बम्बई लंकाशायर समझौतेका भी समावेश है। भारत-जापान-समझौतेके सम्बन्धमें तो सारा देश यह बात जानता है कि जापान-सरकार और भारत-सरकारके प्रतिनिधियोंने बाकायदा यह समझौता किया है, इसलिए इसकी शर्तोंका टेरिफ बिलमें समावेश होना चाहिए। किन्तु बम्बई मिल ओनर्स एसोसियेशनके एक सदस्य मि० मोदी और लंकाशायरके वस्त्र व्यवसायियोंके प्रतिनिधि-मंडलके प्रधान सर विलियम क्लेयर लीजके बीच किया गया एक प्राइवेट समझौता क्योंकर सरकारके लिए मान्य हो गया और उसे भारत-

जापान-समझौतेका रूप दे दिया गया, यह हमारी समझमें नहीं आता। क्या सरकारको यह मालूम नहीं है कि बम्बई मिल ओनर्स एसोसियेशनके सिवा देशकी और सभी व्यापारिक संस्थाओंने मोदी-लीज पैक्टका घोर विरोध किया है और उसे स्वदेशी व्यवसायके स्वार्थकी दृष्टिसे घातक बताया है? यहाँ तक कि अहमदाबादके मिल-मालिकोंकी सभाने भी उक्त समझौतेका प्रतिवाद किया है। वस्त्र-व्यवसाय एकमात्र बम्बईको लेकर ही सीमाबद्ध नहीं है। अहमदाबाद, नागपुर, कानपुर और बंगाल भी वस्त्र-व्यवसायके केन्द्र हैं। इनमें किसी भी स्थानके वस्त्र-व्यवसायियोंने समझौतेका समर्थन नहीं किया। ऐसी स्थितिमें मोदी-लीज पैक्टको भारत और लंकाशायरके बीच बाक़ायदा समझौतेका रूप देकर उसे टेरिफ बिलके अन्तर्गत कर लेना क्या सरासर अन्याय नहीं है? उचित तो यह था कि सरकार पहले इस समझौतेपर देशकी व्यापारिक संस्थाओंका मत संग्रह कर लेती और उनके बहुमतके अनुसार कार्य करती। किन्तु ऐसा न करके यदि वह कम-से-कम इस समझौतेको एक अलग प्रस्तावके रूपमें पेश करती तो यह बात भी किसी तरह समझमें आ सकती थी। किन्तु इन दोनोंमें एक भी न करके इस समझौतेको एकाएक टेरिफ बिलके अन्तर्गत कर लेना तो सिवा एक चालके और कुछ नहीं है। और वह चाल यही है कि सरकार इस बातको जानती थी कि मोदी-लीज-पैक्ट यदि एक पृथक् प्रस्तावके रूपमें उपस्थित किया जायगा तो उसके स्वीकृत होनेकी सम्भावना बहुत कम है, इसलिए उसे भारत-जापान समझौतेके साथ-साथ टेरिफ बिलमें शामिल कर लिया जाय। इस चालसे एसेम्बलीके सदस्य उभय संकटमें पड़ जायँगे। यदि वे बिलका विरोध करते हैं तो वस्त्र-व्यवसायको संरक्षण नहीं मिलता और यदि समर्थन करते हैं तो ब्रिटिश वस्त्र-व्यवसायको प्रोत्साहन मिलता है। बस, इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर सर जोसेफ भोरने यह बिल पेश किया है जिससे एक ही निशानेमें दो चिड़ियोंपर फायर किया जा सके।

बम्बई लंकाशायर समझौतेसे यदि भारतीय वस्त्र-व्यवसायको कुछ भी वास्तविक लाभ पहुँचता, तो उसका हम किसी कदर समर्थन कर सकते थे। जापानके समान लंकाशायरके व्यवसायी इस बातकी कोई पाबन्दी अपने ऊपर तो लेते नहीं कि वे एक निश्चित तादादमें भारतीय रुई खरीदा करेंगे, इसके बदले उन्हें भारतसे यह निश्चित लाभ प्राप्त होता है कि विलायती कपड़ेपर जो सर चार्ज ड्यूटी लगती है वह उठा दी जाती है। और भारतको क्या मिलता है? सिर्फ इस बातका आश्वासन कि भविष्यमें लंकाशायर भारतीय कपासका अधिकाधिक रूपमें उपयोग करनेकी चेष्टा करेगा। किन्तु इस प्रकारके आश्वासन तो अबसे पहले भी कई बार मिल चुके हैं और उनके अनुसार कहाँ तक कार्य हुआ है इसका हमें काफी अनुभव है।

सन् १९३१ के सितम्बरमें सर जार्ज शुष्टरने Supplementay Budget पेश करके सब वस्तुओंपर सरचार्ज ड्यूटी लगायी थी। उस समय आपने कहा था कि सिर्फ १८ महीनेके लिए यह सरचार्ज ड्यूटी लगाई जा रही है। किन्तु ढाई वर्षके बाद भी अब तक उस ड्यूटीको कायम रखना क्या असफलताका द्योतक नहीं है? यह ड्यूटी अब तक क्यों नहीं हटायी गयी? अपनी इस असफलताको स्वीकार न करके अपनी मिथ्या सफलतापर गर्व करना सर जार्ज शुष्टर जैसे व्यक्तिको ही शोभा दे सकता है।

सैनिक व्यय

सर जार्ज शुष्टरने अपने भाषणमें खास तौरसे इस बातका जिक्र किया है कि सन् १९२९-३० से लेकर सन् १९३४-३५ तक सैनिक व्ययमें १०.७२ करोड़की कमी हुई है; अर्थात् सन् १९३० में सैनिक बजट ५५.१० करोड़ था वह सन् १९३४-३५ के बजटमें

घटा कर ४४ करोड़ ३८ लाख कर दिया गया है। इसके लिए आपने जंगीलाटको बधाई दी है। अर्थ सचिवने यह भी कहा है कि इंचकेप कमेटीने अपनी रिपोर्टमें ५० करोड सैनिक व्यय निर्दिष्ट किया था। उस हिसाबसे भी वर्तमान सैनिक बजटमें ५ करोड़से अधिककी कमी की गई है। किन्तु इसके साथ-ही-साथ क्या सर जार्ज शुष्टरको यह बात मालूम नहीं है कि जिस समय इंचकेप कमीटी अपनी रिपोर्ट तैयार कर रही थी उस समय वस्तुओंका जो मूल्य था उसकी अपेक्षा इस समयका मूल्य सैकड़े ५० या इससे भी अधिक कम हो गया है। इसके सिवा इंचकेप कमेटीने रुपयेकी विनिमयपर १-४ पेंसके अनुसार सैनिक व्ययका अनुमान किया था। उस हिसाबसे यदि वस्तुओंके वर्तमान मूल्यके आधारपर सैनिक बजेट निश्चित किया जाय तो ४४.३८ करोड़का बजट कदापि युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। सर जार्जको यह स्मरण रखना चाहिये कि भारतवासी उनके इस सैनिक बजटसे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। उनका विश्वास है कि सैनिक व्ययमें अब भी बहुत-कुछ काटछाँट करनेकी गुंजाइश है। गत महासमरके पूर्व सेना विभागमें जो ३० करोड़ खर्च किया जाता था उससे अधिक इस समय खर्च करनेका कोई कारण नहीं है। यदि ब्रिटिश सरकार अपने साम्राज्यगत स्वार्थकी रक्षाके लिए भारतमें गोरी फौज रखना चाहती है तो इसका कुल खर्च उसे वहन करना चाहिये न कि ग़रीब भारतवासियोंको।

—

नये टैक्स

अच्छा अब नये टैक्सोंपर विचार कीजिये। देशके कल-कारखानोंमें तैयार होनेवाली चीनीपर १-५ आना प्रति हंडरवेटके हिसाबसे ड्यूटी लगायी गयी है। इस समय विदेशी चीनीपर ९-१ आना संरक्षणात्मक कर लगता है, जिसमें १-१३ आनापर सरचार्ज ड्यूटी भी शामिल है। सर जार्ज शुष्टरने इसी सर चार्ज ड्यूटीसे १-५ आना लेकर एक्साइज ड्यूटी लगाई है। इस मदसे १४७ लाख रुपया आमदनी होनेकी आशा की गई है जिसमें से ७ लाख रुपया ईख पैदा करनेवाले किसानोंकी सहायतामें खर्च किया जायगा। स्वदेशी दियासलाईपर २-४ आना प्रति ग्रास बक्सके हिसाबसे ड्यूटी लगायी गयी है। कच्ची तम्बाकू और सिगरेटपर भी ड्यूटी बढ़ायी गयी है। कच्चे चमड़ेकी रफ्तनीपर जो ड्यूटी लगती थी वह उठा दी गयी हैं। चाँदीपर लगनेवाली ड्यूटी प्रति औंस ७॥ आनासे घटाकर ५ आना कर दी गयी है। आधे तोलेकी चिट्ठीका महसूल एक आना और ८ शब्दोंके तारका महसूल ९ आना कर दिया गया है। किन्तु इसके साथ ही बुक पैकेटका रेट पाँच तोले तक दो पैसेसे बढ़ाकर तीन पैसा—विदेशी बुक-पोस्टके बराबर—कर दिया गया है।

—

चीनीपर ड्यूटी

स्वदेशी चीनीका व्यवसाय इस समय भारतका एक प्रगतिशील व्यवसाय बन रहा है। ऐसे समयमें इसपर ड्यूटी लगाकर इसकी उन्नतिके मार्गमें रुकावट डालना किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता। सरकारने स्वदेशी चीनीकी आवश्यकतासे अधिक पैदावारकी जो धारणा कर रखी है, वह बिलकुल गलत है। इस समय तो यह धारणा और भी भ्रान्तिमूलक सिद्ध होगी, क्योंकि भूकम्पके कारण उत्तर-बिहारकी कितनी ही सुगर मिलें नष्ट हो गयी हैं। अर्थ-सचिवने चीनीपर लगाई गई ड्यूटीका औचित्य सिद्ध करते हुए बताया है कि १४७ लाखमें से ७ लाख किसानोंके हितमें लगाये जायँगे, जिससे किसानोंको ईखका उचित मूल्य मिल सके। प्रान्तीय सरकारोंको ईखकी दर निश्चित करनेका अधिकार क़ानून द्वारा दिया जायगा, मिलोंमें ईख बेचनेके लिए लाइसेन्स-प्राप्त एजेन्सियाँ क़ायम की जायँगी। यह तो ठीक है। किन्तु जब किसानोंको सहायता पहुँचाना ही अभीष्ट था, तो फिर इस मदकी कुल आमदनी इस काममें क्यों नहीं लगा

दी गई। ख़ैर, यदि सर जार्ज शुष्टरके कथनानुसार चीनीपर लगाई गई ड्यूटीसे किसानोंका कुछ भी हित हुआ, तो हम इसे ही ग़नीमत समझेंगे।

—

सम्मेलनका सभापतित्व

समाचारपत्रोंमें यह संवाद पढ़कर कि श्रीमान् गायकवाड़ बड़ोदा-नरेशने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सभापतित्व स्वीकार कर लिया है, हमें हर्ष हुआ था, पर गत ९ मार्चके 'चित्रपट'से यह जानकर कि बड़ौदा नरेश अधिवेशनकी तिथियोंमें सशरीर उपस्थित न हो सकेंगे और वे सिर्फ़ अपना अभिभाषण अधिवेशनमें पढ़े जानेके लिए भेज देंगे, हमारा यह हर्ष खेदमें परिवर्तित हो गया। प्राचीन कालमें कोई-कोई महाराजा लोग स्वयं बरातमें सम्मिलित न होकर अपनी तलवार भेज दिया करते थे और उससे कन्याकी भाँवरें डाल दी जातीं थीं। हमारी समझमें श्रीमान बड़ोदा नरेशका विचार उपर्युक्त प्रथासे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, और हम साहित्य-क्षेत्रमें मध्ययुगकी उस कुप्रथाके पुनर्जीवित करनेका घोर विरोध करते हैं। यदि श्रीमान महाराजा साहब निश्चयपूर्वक अधिवेशनमें सम्मिलित नहीं हो सकते, तो उन्हें सभापतित्व स्वीकार ही न करना चाहिए। श्रीमान महाराजा साहबके केवल भाषण भेज देनेके विचारसे हिन्दी-साहित्य-सेवियोंमें असन्तोष फैले बिना नहीं रह सकता। सम्मेलनकी सफलता और असफलतापर भी उनके निश्चयका प्रभाव पड़ेगा। स्वागत समितिके कार्यकर्ताओंसे हमारा यह अनुरोध है कि वे तार द्वारा महाराजा साहबको जनताके इस असन्तोषकी सूचना दे दें, और यह बात उनकी सेवामें आग्रहपूर्वक निवेदन कर दें कि सभापतित्व स्वीकृत कर लेनेके बाद उनका अधिवेशनमें सम्मिलित होना अत्यन्त आवश्यक है।

चन्देका दुरुपयोग

सार्वजनिक हितके तमाम ग़ैर-सरकारी काम दानसे हुआ करते हैं। धनी और दरिद्र अपने वित्त और श्रद्धाके अनुसार पैसा दान देते हैं और कार्यकर्तागण अपना निस्वार्थ परिश्रम प्रदान करते हैं। जिस किसी देशको ये दोनों बातें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त हों, उसके लिए कोई भी बात दुस्साध्य नहीं है, यदि उसके कर्णधार इन दोनों चीज़ोंका समुचित उपयोग कर सकें। लेकिन यदि इन दोनोंमें से एकका भी समुचित उपयोग न हुआ तो फल भयंकर होता है।

हालके बिहारके भूकम्पने देशको अपनी दान-शक्तिकी—आर्थिक और शारीरिक, दोनों प्रकारकी—परीक्षा देनेका अवसर उपस्थित कर दिया है। इस आकस्मिक घटनाने बिहारमें जो प्रलय उपस्थित की, उसपर देशभर दहल उठा और देशने अपनी शक्तिके अनुसार बिहारको सहायता देनेका प्रयत्न भी किया। हम यह जानते हैं कि बिहारकी आवश्यकताको देखते हुए उसे जो सहायता मिली है, वह बहुत सामान्य है। लेकिन यह देखकर खेद होता है कि जो सेवा-कार्य किया जा रहा है, उसमें भी शक्तिका अपव्यय और धनका दुरुपयोग बहुत हो रहा है।

हम चाहते हैं कि देशका प्रत्येक व्यक्ति इस समय भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायताके लिए जो कुछ भी दे सकता हो, दे; परन्तु साथ ही इस बातकी सावधानी रखना भी बहुत आवश्यक है कि लोगोंकी दी हुई प्रत्येक कौड़ी भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायतामें ही ख़र्च हो। ऐसा न हो कि उसे चन्दाजीवी जन्तु बीचमें ही हड़प जायँ। दुर्भाग्यसे देशमें—विशेषकर सार्वजनिक जीवनमें—कुछ ऐसे जन्तु मौजूद हैं, जिन्होंने पब्लिकका चन्दा खाना ही अपना पेशा बना रखा है। इस प्रकारके चन्दा-जीवी व्यक्ति प्रायः हर जगह मिलते हैं और कलकत्तेमें भी मौजूद हैं। इनमें से बहुतोंकी हरकतोंको लोग जान गये हैं, जिसका फल यह है कि ये लोग जिस किसी संस्थामें पहुँच जाते हैं, उसीपर

लोगोंकी श्रद्धा कम हो जाती है। ये लोग इस प्रकारके अवसरोंकी ताकमें रहते हैं। अखबारोंसे ज्ञात हुआ कि कुछ अज्ञात आदमी बिना किसी प्रमाणपत्रके जगह-जगहपर चन्दा वसूलते फिरते हैं और उससे अपनी जेबें गर्म करते हैं। अत: जनताको ऐसे धूर्तोंसे सावधान रहना चाहिये और किसी अज्ञात व्यक्तिको चन्दा न देना चाहिए। जिस किसीको भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायतार्थ जो कुछ देना हो, उसे वह सीधे 'सेक्रेटरी—सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी, पटना' के नामसे मनीआर्डर कर दे। उसे मनीआर्डरकी फीस भी नहीं देनी पड़ेगी।

दूसरी खराबीकी बात हैं बहुतसी रिलीफ कमेटियाँ, जिनमें धन और शक्ति दोनोंका दुरुपयोग हो रहा है। श्रीयुत राजेन्द्रप्रसादजीने एकसे अधिक बार खुल्लमखुल्ला स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि बिहारके पास कार्यकर्ताओंकी कमी नहीं है, केवल पैसा चाहिए। फिर भी अनेक संस्थाएँ अपनी-अपनी मंडली बनाकर व्यर्थके लिए ही जा पहुँची हैं, जिनसे लाभ तो कुछ होता नहीं, उलटे जिस पैसेसे पीड़ितोंको सहायता पहुँचती, वह पैसा रेल-भाड़े, कार्यकर्त्ताओंके रहने और खाने-पीने आदिमें फूँका जा रहा है। सर्वसाधारणका कर्त्तव्य है कि वे सार्वजनिक धनके इस दुरुपयोगको रोकें। इनमें कुछ मंडलियोंमें भी चन्दा-जावी कीटाणु घुसे हुए हैं और उनकी उपस्थितिका फल प्रत्यक्ष ही है।

हमें मालूम हुआ है कि इस प्रकारकी एक रिलीफ कमेटीने चन्देके धनसे तीस-चालीस रुपये लगाकर अपना साइनबोर्ड बनवाया है। यह सरासर धनका अपव्यय है! रिलीफ कमेटीका काम बिना शानदार साइनबोर्डके भी चल सकता था, अथवा यदि नाम लिखनेकी ही ज़रूरत थी, तो दमड़ीके कागज़पर हाथसे लिख देनेसे ही मतलब निकल सकता था, मगर ऐसा नहीं किया गया और जितने धनसे दो-तीन गरीबोंकी झोपड़ियाँ बन जातीं, उतना धन केवल झूठी ख्यातिके लिए फूँक डाला गया।

रिलीफ कमेटियोंमें जानेवालोंमें भी कुछ ऐसे हैं जिनमें सेवा-भावकी अपेक्षा आत्म-विज्ञप्तिकी भावना अधिक है। इसी भावनासे प्रेरित होकर ये लोग रिलीफ कैम्पोंमें मित्रोंको एकत्रित करके ग्रूप फोटो खिंचवाते और उन्हें अखबारोंमें छपाते हैं। फोटोमें रिलीफ बाँटनेका दृश्य दिखाया जाता है। रिलीफ पानेवालोंकी संख्या दो-ढाई होती है और बाँटनेवालोंकी पूरी एक दर्जन! ये सब चन्देका दुरुपयोग नहीं तो क्या है?

अब समय आ गया है कि जनता अपने पैसेका कौड़ी-कौड़ीका हिसाब माँगे और बेजा खर्चको बन्द करे। साथ ही ज़रूरत इस बातकी है कि प्रथक रिलीफ मंडलियाँ एकदम तोड़ दी जायँ और सारा धन सेन्ट्रल कमेटीके सिपुर्द कर दिया जाय। सेन्ट्रल कमेटके अध्यक्ष श्रीराजेन्द्र बाबूका व्यक्तित्व ऐसा है जिसपर संसारमें कोई भी सन्देह नहीं कर सकता।

—

मध्य-यूरोप

आस्ट्रियाकी विषम परिस्थिति

यूरोपकी राजनीतिक परिस्थितिमें इस समय नाटकीय परिवर्तन हो रहे हैं। हालमें कुछ ऐसी घटनायें हुई हैं, जिनसे समस्त यूरोपके राजनीतिज्ञोंकी दृष्टि मध्य-यूरोपके वायना नगरकी ओर आकृष्ट हो गई है। जिस प्रकार गत महायुद्धके समय तक बेलजियम यूरोपका Cockpit (पाली) समझा जाता था, उसी प्रकार इस समय आस्ट्रियाकी राजधानी वायना यूरोपका Cockpit बन रहा है। आस्ट्रियाके चान्सलर डा० डालफसको इस समय उभय संकटका सामना करना पड़ रहा है। एक ओर जर्मनी मुँह बाये खड़ा है और दूसरी ओर इटली। इसके सिवा घरेलू शत्रु अलग ही उपद्रव मचा रहे हैं। आस्ट्रियामें इस समय तीन राजनीतिक दल हैं; Heimwehr, सोशलिष्ट और आस्ट्रियन नाजी। इनमें पहला दल उन लोगोंका है, जो आस्ट्रियाके राजवंशके अनुयायी हैं।

इस दलमें जमींदार, धर्म-याजक तथा इसी श्रेणीके और लोग हैं। दूसरा दल सोशलिस्ट अथवा समजतन्त्रवादियोंका है। आस्ट्रियन नाज़ीदलमें आस्ट्रियाके जर्मनाभक्त नाज़ी हैं, जो आस्ट्रिया और जर्मनीका एकीकरण चाहते हैं। वायना में अभी हालमें सोशलिस्टोंका जो विद्रोह हुआ था, उसे डा० डलफसने परास्त तो कर दिया, किन्तु विजयी होनेपर भी उन्हें चैन नहीं है। Heimwehr दलसे कहाँ तक सहायता मिलेगी, यह नहीं कहा जा सकता। इस दलसे सहायता मिलनी तो दूर रही, उल्टे उन्हें अशान्ति ही मिल रही है। डा० डालफसके सामने सबसे बड़ी कठिनाई है आस्ट्रियाके नाज़ीदलको लेकर। इस नाज़ीदलको प्रत्यक्षरूपसे जर्मनी द्वारा प्रोत्साहन मिल रहा है। इस दलके नेताओंने डा० डालफसको आस्ट्रियामें फेसिस्ट शासन क़ायम करनेकी धमकी दी है। नाज़ीदलके नेता हेबिचने डा० डालफसको एक Ultimatum दिया था कि वे एक सप्ताहके अन्दर आस्ट्रियाके नाजीदलके साथ सहयोगमूलक व्यवहार करें, अन्यथा नाजीदल उपद्रव खड़ा कर देगा। इस अल्टीमेटमकी मियाद गत २८ फरवरीको पूरी होती थी। मियादके पूरी होनेपर यूरोपकी स्थिति ऐसी नाज़ुक हो उठी थी कि क्षण-क्षणमें युद्धकी चिनगारी प्रज्वलित हो उठनेकी आशंका की जाती थी। अल्टीमेटमकी अवधि बीत जानेके बाद यदि नाज़ीदल आस्ट्रियामें कोई उपद्रव खड़ा करता और इस उपद्रवमें जर्मनीकी ओरसे उसे उत्तेजन मिलता, तो यह निश्चित था कि इटली आस्ट्रियाकी सहायताके लिए आगे बढ़ता; और इस प्रकार इटली और जर्मनीके बीच संघर्ष उत्पन्न होनेसे कौन कह सकता है कि समग्र यूरोप इस संघर्ष-जनित आगकी लपटोंमें पड़कर झुलसने नहीं लगता! नाज़ीदलके उपद्रवकी आशंकासे आस्ट्रियाके सीमान्तपर इटली और आस्ट्रियाकी सेना तक पहुँच चुकी थी। किन्तु नाज़ियोंकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं हुआ और स्थिति ज्यों-की-त्यों रह गई। किन्तु इस बीचमें आस्ट्रियाने अपनी फौज ३० हजारसे बढ़ाकर १ लाख २० हज़ार कर ली है। जर्मनकी सन्धिके अनुसार आस्ट्रियाको सिर्फ ३० हज़ार फौज रखनेका अधिकार है। इटलीने आस्ट्रियाका समर्थन करते हुए आम तौरसे यह घोषणा कर दी कि आस्ट्रियाकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए वह सब प्रकारसे उसकी सहायता करनेको तैयार है। इतना ही नहीं, बल्कि मुसोलिनीने इंग्लैण्ड और फ्रांसकी ओरसे भी आस्ट्रियाकी स्वाधीनता-रक्षाके सम्बन्धमें एक घोषणा करवा दी; किन्तु इस घोषणाका क्या मूल्य है, यह तो आगे चलकर समय ही बतायगा।

इटली और आस्ट्रिया-हंगरीका त्रिगुट

मुसोलिनी मध्य-यूरोपमें इटलीके प्रभुत्वका सुख-स्वप्न देख रहे हैं। अपने इस सुख-स्वप्नको चरितार्थ करनेके लिए उन्होंने आस्ट्रिया, हंगरी और इटलीके बीच एक त्रिगुट क़ायम करनेका प्रस्ताव रखा है। मुसोलिनी इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि इस समय आस्ट्रियाकी जैसी स्थिति है, उसमें उसे किसी-न-किसी शक्तिका सहारा लेना ही होगा; किन्तु यह शक्ति कौन होगी? क्या जर्मनी? रक्त-सम्बन्धकी दृष्टिसे तो जर्मनी और आस्ट्रियाका सम्मिलन अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता; किन्तु फ्रांस और इटली इस सम्बन्धको सशंकित दृष्टिसे देखे बिना नहीं रह सकते। इसलिए इटलीने आस्ट्रियाको जर्मनीसे विच्छिन्न करके आस्ट्रिया-हंगरीको साथ मिलाकर एक गुट क़ायम करनेकी तरकीब सोची है। किन्तु क्षुद्र मित्रशक्ति Little Ententi जुगो-स्लेविया, जेकोस्लोवेकिया और रुमानियाके पृष्ठपोषक फ्रांसके सामने इस समय यह विषम समस्या उपस्थित हो गई है कि या तो वह आस्ट्रिया-हंगरीपर इटलीका प्रभुत्व होने दे अथवा जर्मनीका। जुगो-स्लेविया और रुमानिया आस्ट्रिया और हंगरीपर इटलीका आधिपत्य क़ायम होनेके विरुद्ध हैं। फ्रांसका मित्र जेकोस्लोवेकिया भी बालकन राज्योंमें इटलीका प्रभाव-विस्तार पसन्द नहीं

करता। इसलिए फ्रांस भी मन-ही-मन इटली और आस्ट्रिया-हंगरीके त्रिगुटको वांछनीय नहीं समझता, हालाँ कि वह प्रकाश्यरूपमें अपने इस मनोभावको प्रकट नहीं कर सकता।

इटली और जर्मनी

वर्सेलीजकी सन्धिके परिणाम-स्वरूप आस्ट्रियाके बहुतसे समृद्धिशाली प्रदेश उससे छीन लिये गये, जिससे उसके समृद्ध-साधन बहुत क्षीण हो गये हैं। ऐसी स्थितिमें आस्ट्रियाके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके लिए किसी बड़ी शक्तिका पल्ला पकड़े। इसके लिए यूरोपके दो राष्ट्र—जिन दोनोंमें ही अधिनायकतंत्र स्थापित है—इटली और जर्मनी उम्मीदवार हैं।

चान्सलर डा० डालफस सोशलिस्टोंकी सहायतासे नाज़ीदलका दमन कर सकते थे; किन्तु Heimwehr दलके विरोधी होने और सोशलिस्ट दलको अपना शत्रु बना लेनेके बाद डा० डालफसके लिए नाज़ीदलका दमन करना सहज नहीं है। Heimwehr दल आस्ट्रियामें प्राचीन हैप्सवर्ग राजवंशकी स्थापना करना चाहता है, जिसे इटली सहन नहीं कर सकता। इसलिए डा० डालफस स्वयं इस परिस्थितिमें कोई अन्तर ला सकेंगे, इसका सम्भावना तो बहुत कम है। हाँ, इसके विपरीत इस बातकी सम्भावना बहुत ज्यादा है कि यदि इटली और जर्मनी दोनोंकी यह महत्त्वाकांक्षा क़ायम रही और इस बीच आस्ट्रियाकी स्थितिमें कोई नूतन परिवर्तन नहीं हुआ, तो यूरोपके इस Cockpit से युद्धकी चिनगारी छिटककर एक-न-एक दिन समरानल प्रज्वलित करके ही छोड़ेगी।

—

ब्रज और बुन्देलखण्डके ग्राम-गीत

'विशाल भारत'के सुलेखक श्रीयुत देवेन्द्र सत्यार्थीने ग्राम-गीतोंके विषयमें कई वर्ष तक भ्रमण और अनुसन्धान कर एक पुस्तक लिखी है, जिसे वे शीघ्र ही प्रकाशित करनेवाले हैं। इस पुस्तकके लिए उन्हें ब्रजमंडल तथा बुन्देलखण्डके ग्राम-गीतोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। जो महानुभाव अपने यहाँके ग्राम्य-गीत उन्हें निम्न लिखित पतेपर लिख भेजेंगे, उनके हम कृतज्ञ होंगे। पता—श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, मार्फत 'विशाल भारत'।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

गुरु गोविन्द सिंह

[श्री मणीन्द्रभूषण गुप्त

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १३, अंक ४] वैशाख १९९१ : : अप्रेल १९३४ [पूर्ण-अंक ७६.

कस्मै देवाय ?

बनारसीदास चतुर्वेदी
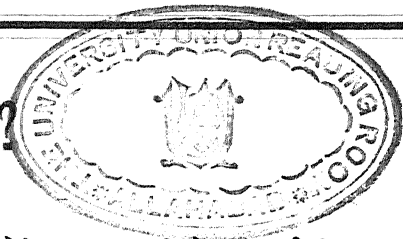
हमारा देश इस समय एक बड़े संकटमें से गुजर रहा है। प्राचीन युग बीत गया है, और नवीन युगका अभी पूर्ण रूपसे प्रादुर्भाव नहीं हो पाया। उषाकालके पहले जैसा अन्धकार रहता है, बस वैसी ही स्थिति इस समय हमारे देशकी है। ऐसी परिस्थितिमें हम सबका—खास तौरसे लेखकों और कवियोंका, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे जनसाधारणके शिक्षक, रहनुमा और ज्ञानदाता हैं—कर्तव्य है कि जगकर और डटकर खड़े हो जायँ और यह निश्चय कर लें कि हमें किस मार्गपर जाना है।

अब समय आ गया है, जब इस बातका फैसला हो जाना चाहिए कि आख़िर हम किसके लिए साहित्य उत्पन्न करना चाहते हैं? हम उन लेखकोंकी बात नहीं कहते, जो पतिव्रता स्त्रीकी भाँति अपने पत्रके मालिककी आज्ञाकारी सेविका हैं,—यदि उनका मालिक कहता है कि उत्तेजक वेश्या-अंक निकालनेसे हमारे ग्राहक बढ़ सकते हैं, तो वे दालकी मंडी और बऊबाज़ारके चक्कर लगाकर वेश्याओंसे 'इंटरव्यू' लेते घूमते हैं। और न हमें उन लेखकोंसे ही मतलब है, जो अपने पापों और दुराचारोंका खाता खोलकर जनताकी जेब काटना चाहते हैं। ऐसे लेखक उन कुष्ठी भिखारियोंकी तरह हैं, जो सड़कोंके किनारे बैठे हुए अपने कोढ़का प्रदर्शन किया करते हैं, और दर्शकोंके हृदयमें करुणा उत्पन्न करके उनसे पैसा लेनेका प्रयत्न करते हैं। फ़र्क केवल इतना ही है कि वे भिखारी करुणा उत्पन्न करते हैं और ये लेखक कामोद्दीपन करते हैं। नहीं, हमें इन लेखकोंसे कुछ भी प्रयोजन नहीं!

हमारा सवाल उन लेखकों और कवियोंसे है, जिनका दिल ठीक जगहपर है, जिनका दिमाग़ साफ़ है और जिनकी आत्मा अभी व्यापारिकताकी भयंकर बीमारीसे पीड़ित नहीं हो पाई। और सवाल यह है कि 'आख़िर हम किन आदमियोंके लिए साहित्य रचना करें?'

सेठजी दिन-भर सट्टेबाज़ी करके रातको दस बजे भरी हुई जेब और ख़ाली दिमाग़ लेकर घर लौटते हैं। अवश्य ही उनकी मोटी अक्ल और कमज़ोर स्नायुओंके लिए किसी हलकी चीज़की ज़रूरत है। वे ऐसी कहानियाँ पढ़ना पसन्द करेंगे, जिनमें कोई निरुद्देश्य युवक किसी कामुक युवतीसे आँखें लड़ा रहा हो। सेठजीके निर्बल अंगोंको तभी सन्तोष हो सकता है, जब गल्प-लेखक उस युवतीको उक्त युवकके साथ भगा दे।

तो क्या हम ऐसे सट्टेबाज़ सेठोंके लिए गन्दा साहित्य उत्पन्न करेंगे?

वकील साहब मुवक्किलोंको दिन-रात ठगा करते हैं। उनका हाज़मा—मानसिक और शारीरिक दोनों

तरहका—इतना खराब है कि वे किसी पुष्टिकर चीजको हज़म ही नहीं कर सकते। मुवक्किलोंको लड़ा-भिड़ाकर इतने रुपये इकट्ठा करना, जिससे उनके लड़के और नाती-पोते ऐशो-आरामकी ज़िन्दगी बसर कर सकें और उनकी असन्तुष्ट पत्नीके पास बहुतसे मोटे-मोटे क़ीमती गहने हो सकें—यही वकील साहबके जीवनका लक्ष्य है। मुवक्किलका मुर्दा बहिश्तमें जाय या दोज़खमें, उन्हें अपने हलुवे-माँडेसे मतलब। हाँ,

"मुवक्किल छूटे उनके पंजेसे जब,
कमाईकी चिन्ता ज़रा कुछ घटी,
तो साहित्यके वास्ते दिल चला,
कहानी उन्हें चाहिए चटपटी।"

क्या इन मन्दाग्नि-पीड़ित वकील साहबके लिए साहित्यिक चाट बनाना हमारे जीवनका उद्देश्य है?

आटेमें लकड़ीका बुरादा और घीमें घासलेटी घी मिलानेका व्यवसाय छोड़कर—जो कार्य उनकी योग्यता और संस्कारोंके सर्वथा अनुरूप था—वर्माजी या शर्माजीने किताबोंकी दूकान कर ली है, और ढाई रुपये फार्मपर 'ग्रन्थ' लिखाना चाहते हैं। कमज़ोर विधवाओंके पतनकी कहानियोंकी आजकल बाज़ारमें खूब माँग है। उनकी बिक्रीसे काफी रुपया कमाया जा सकता है।

क्या वर्माजी या शर्माजीके हाथों अपनी आत्मा बेचकर उन्हें लखपती बनाना हमारी ज़िन्दगीका लक्ष्य हो सकता है?

क्या हम किसी अर्द्ध-शिक्षित अमीरके नामसे किताब लिखकर, या निरंकुश नरेशोंको पुस्तक समर्पित करके, अथवा रीडरबाज़ी या तिकड़मबाज़ी द्वारा धनवान बनना चाहते हैं?

यदि हाँ, तो हमारा मार्ग साफ़ खुला हुआ है, और साथ ही हमारे पतनका मार्ग भी। हम उसपर सरपट भागकर शीघ्र ही कोठियाँ बनवा सकते हैं, और उसके साथ अपनी कीर्तिका मक़बरा भी।

रम्भादेवी अठारह-बीस वर्षकी युवती हैं। विवाह अभी नहीं हुआ है। डिप्टी-साहबकी लड़की हैं; उन डिप्टी-साहबकी, जिनकी कमज़ोर आत्माने सारी ज़िन्दगी सरकार-रूपी उपपतिके साथ व्यभिचार किया है। घरमें भोग-विलासके सारे सामान मौजूद हैं। काम कुछ करनेको नहीं। वक्त काटे नहीं कटता। उनकी अतृप्त कामेच्छाकी पूर्तिके लिए ऐसी कहानियोंकी ज़रूरत है, जिनमें Sex की अपील हो, दुराचारोंका वर्णन हो, जिनसे देवीजीको मानसिक व्यभिचारका अवसर मिले। उनकी इस इच्छाकी पूर्ति करना बड़ा आसान काम है। दुराचार-सम्बन्धी झूठे किस्से गढ़नेमें उतना ही श्रम होता है, जितना मठेमें पानी मिलानेमें। तो क्या उनकी इच्छा-पूर्ति करना हमारे लेखकोंका लक्ष्य हो सकता है?

सामने देखिये, वे लाला अवधबिहारी लाल बी० ए० के एक विद्यार्थी चले आ रहे हैं, जिनकी बैठी हुई आँखों और कमज़ोर कोमल हाथों तथा डगमगाती चाल-ढालसे साफ मालूम होता है कि इन्होंने कभी शारीरिक श्रम नहीं किया। रटाई ('स्टडी!') करनेके बाद उनके लिए कुछ तफ़रीहका सामान भी चाहिए। उनके पिताजी उन्हें नायब तहसीलदारीमें नामज़द करानेकी कोशिश कर रहे हैं, और बी० ए० पास हो जानेके बाद उन्हें पूरी उम्मेद है कि वे नायब तहसीलदार साहब बन जायँगे। हाँ, तो इन भावी नायब तहसीलदार साहबके दिल-बहलावके लिए कुछ Light Literature (हलका साहित्य) चाहिए। और हमारे यहाँ ऐसे लेखक बहुतसे पाये जाते हैं, जो लाला अवधबिहारी लालके लिए साहित्य उत्पन्न करनेको लालायित हैं।

पर, जिन लेखकों तथा कवियोंमें जीवन है, यौवन है और कार्य करनेकी अदम्य इच्छा है, और साथ ही जो अपने सामने कुछ उच्च आदर्श भी रखना चाहते हैं, वे उस पतनके ढलवाँ मार्गपर जाना हर्गिज़ पसन्द न करेंगे। तो आखिर ये लोग किसके लिए साहित्य उत्पन्न करें?

इस प्रश्नका उत्तर ढाई हज़ार वर्ष पूर्व, सारनाथमें, दुनियाके सबसे बड़े मिशनरी भगवान गौतम बुद्धने दे दिया था, जब उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा था—

"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ।"

हज़ारों जानवरोंकी जान बचानेवाला स्व० पीताम्बर

अर्थात्—"हे भिक्षुओ, बहु जनोंके हितके लिए, बहु जनोंके सुखके लिए, लोकपर दया करनेके लिए, देवताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके लिए, हितके लिए, सुखके लिए विचरण करो ।"

अर्थात्—साधारण जनता यानी अधिकसे अधिक लोगोंके हितको, सुखको और कल्याणको ही अपना लक्ष्य बनाकर हमारे साहित्यकी रचना होनी चाहिए ।

रामलाल (उर्फ़ रमल्ला) एक किसान है । जातका चमार है । जिस खेतको उसने और उसके भाई-बन्दोंने वर्षोंसे जोता-बोया था, उसे ज़मींदार साहबने बेदख़ली कराकर छीन लिया है । रमल्लाको साल-भरसे मन्द ज्वर आता है । डाक्टर साहब कहते हैं कि यह तपेदिककी पहली स्टेजमें है । उसका शरीर गलता

पूज्य द्विवेदीजी टहलने जा रहे हैं

[कापी राइट]

जाता है, और जीवन-आशा क्षीण होती जाती है ; पर अब भी उसे पेट भरनेके लिए दूसरोंके खेतपर मज़दूरी करनी पड़ती है ।

यदि आप लेखक हैं, कवि हैं, तो रमल्लाके कष्टों और दुःखोंकी गाथाको जनताके सामने लाइये, और इस प्रकार अपनी लेखनीको पवित्र कीजिये ।

चेता कहार है। अमुक सेठजीकी मिलमें आठ-दस आने रोज़पर काम करता है। उसे कुली-लाइनमें कबूतरखाने जैसे कमरेमें रहना पड़ता है, जहाँ डेढ़ सौ कुलियों पीछे पानीका सिसक-सिसककर रोनेवाला एक नल है।

तपेदिकसे पीड़ित रामलाल (रमला)

जिस समय सेठजी लेजिसलेटिव एसेम्बलीमें बैठकर देशभक्तिके नारे बुलन्द करते हैं, उस वक्त बेचारा चेता इस बातकी चिन्ता करता है कि उसके बीमार लड़केके लिए दवाईके दाम कहाँसे आयेंगे। सेठजी मिलके शेयरोंके भारी डिवीडेगड खाते हैं, और चेता गालियाँ। सेठजीको मन्दाग्नि है और चेताको भर-पेट भोजन नहीं मिलता। दोनों सूखते जाते हैं,—एक तो करोड़पति बननेकी चिन्तामें और दूसरा पेट भरनेकी फ़िक्रमें।

आप इन दोनोंमें से किसकी सेवा करना चाहते हैं? क्या इस प्रश्नके भी दो उत्तर हो सकते हैं?

धनगोपाल एक निर्धन कम्पोज़ीटर है। पत्रके स्वामी उसे सवेरे दस बजेसे लेकर रातके आठ बजे तक दस घंटे रगड़ते हैं। जब वह बेचारा साढ़े आठ बजे रातको हारा-थका घर पहुँचता है, (वह घर है या घोंसला, जिसे उसने दो रुपये महीनेपर ले रखा है?) तो, न तो उसमें इतनी दम रहती है कि वह अपने बच्चोंको प्यार कर सके और न इतनी इच्छा रहती है कि पत्नीसे दो मीठी बातें कह सके। रूखा-सूखा खाना खाकर वह पड़ रहता है और दस-बारह वर्ष इस प्रकारका जीवन बिताकर उस धामको चला जाता है, 'जहाँकी ख़बर नहीं आती।'

पूज्य द्विवेदीजी बननेवाले ग्राम-स्कूलका निरीक्षण कर रहे हैं

क्या कभी आपने स्वप्नमें भी ख़याल किया है कि आपके घसीटकर लिखे गये अक्षरोंको किसने कम्पोज़ किया था? किसने आपके लेखके तीन-तीन प्रूफ़ोंका संशोधन करते समय अपनी आँखोंकी दृष्टि मन्द कर ली थी?

क्या इन श्रमजीवियोंके, इन मज़दूरोंके साथ आपने अपनी एकात्मताका कभी अनुभव किया है?

पाठक कह सकते हैं कि इस प्रकारकी भावुकतापूर्ण बातें बहुत सुनी हैं। दृष्टान्त देकर बतलाइये कि आख़िर हम किसे आदर्श मानें।

आदर्श? आदर्श इस युगके लिए हमारे साहित्यमें

एक ही थे—यानी गणेशशंकर विद्यार्थी। उनका जीवन-चरित पढ़िये। आपको अपने प्रश्नका उत्तर मिल जायगा।

और आदर्श आप चाहते हैं ? तो उस इकहत्तर वर्षीय युवकका आदर्श आपके सामने है, जो शहरों और अमीरोंकी तड़क-भड़कसे दूर दौलतपुरके ग्राममें अब भी दिन-रात परिश्रम करके अपने जीवनको सार्थक बना रहा है। जब द्विवेदीजीसे पूछा गया कि देव-पुरस्कार किस प्रकारकी पुस्तकोंपर दिया जाय, तो उन्होंने कहा—"ग्राम्य जीवनके लाभ और उसमें आये हुए वर्तमान दोष और उनके दूरीकरणके उपायपर लिखी गई पुस्तकके लिए एक हज़ार रुपये दिये जायँ, और एक हज़ार किसी ग्रामीणके जीवन-चरितपर, जिसने अपने चरित्रबल, अध्यवसाय और परिश्रमसे अपनेको उच्च बनाया हो।"

पूज्य द्विवेदीजी एक रोगी ग्रामवासीसे कुशल पूछ रहे हैं

यदि हम आँख खोलकर देखें, तो हमें ग्रामोंमें ऐसे कितने ही महापुरुष मिलेंगे, जिनका जीवन साधारण जनताके लिए बड़े लाट-साहबकी कौन्सिलके कितने ही मेम्बरोंके जीवनसे कहीं अधिक उपयोगी है। उदाहरणार्थ, पीताम्बरको ही लीजिए, जिसका संक्षिप्त चरित हम अन्यत्र छाप रहे हैं। यदि पीताम्बर किसी स्वाधीन देशमें होता, तो किसी भी बड़े-से-बड़े वैटरनरी सर्जनसे अधिक उसका सम्मान होता। पीताम्बरने हज़ारों ही जानवरोंको भयंकर बीमारियोंसे आराम किया था, और अपने जीवन-भरमें उससे केवल आठ केस

ग्रामीण समस्याओंके विशेषज्ञ श्री कृष्णदत्त पालीवाल

ख़राब हुए थे; और उसने अपने इस कार्यके लिए एक पैसा भी किसी आदमीसे नहीं लिया। यदि आप किसान हों, और आपके दो बैल हों, और उनमें से एक बीमार पड़कर मर जाय और दूसरा बीमार हो, तब आप पीताम्बर जैसे महापुरुषके महत्त्वका अनुमान कर सकते हैं। ग्रामोंमें अनेक पीताम्बर पड़े हुए हैं, उनके पहचाननेवालोंकी कमी है।

क्या निम्न-लिखित पंक्तियोंको पढ़कर कोई कह सकता है कि ये किसी वृद्धकी लिखी हुई हैं ?

"अवध ही का सूबा नहीं, प्रायः यह साराका सारा देश किसानों ही की बदौलत आबाद है,

तअल्लुकेदारोंकी बदौलत नहीं। किसान ही उसके आधार-स्तम्भ हैं। उन्हींकी कृपासे तअल्लुकेदारोंकी तअल्लुकेदारी है और उन्हींकी कृपासे सरकारकी जहाँदारी। उन्हें खोखला कर दीजिये, उन्हें और भी निर्बल कर दीजिये, उन्हें और भी पीस डालिये, फिर कहीं कुछ न रह जायगा। तअल्लुकेदारी और जहाँदारी दोनों ही नामनिःशेष हो जायँगी। जो लोग गाय-भैंस पालते हैं, वे जब उन्हें यथेष्ट दाना-चारा देते हैं और उनकी सेवा भी करते हैं, तभी उन्हें उनसे दूध मिलता है और बहुत दिन तक मिलता जाता है। तअल्लुकेदार इस बातको न भूलें। किसानोंको गाय-भैंससे भी बदतर न समझें। उनके पेटका दाना हर लेने और उन्हें बुरी तरह अपनी मुट्ठीमें रखनेकी चेष्टा न करें। किसानोंको सुखी रखने ही से वे सुखी रह सकेंगे। नज़राना, बेगार, चारा-बास, इजाफ़ा और बेदखलीका दौरदौरा बहुत हो चुका। अब तो दया करें। किसानोंको भी अपने हक हासिल करने दें। प्रकारान्तरसे उन्हें गुलाम बना रखनेका समय गया।

"जिन किसानोंकी दुरवस्थाकी सीमा न थी, वही किसान अब रूसके राज्य-संचालक बन गये हैं। जो किसान अवधमें पशुवत् समझे जाते हैं, वही किसान खुद सरकारके स्वदेशमें महासभा (पार्लियामेन्ट) के आधार हो रहे हैं। अमेरिका और जापानमें किसानोंका क्या दरजा है, यह क्या पढ़े-लिखे तअल्लुकेदार नहीं जानते? तअल्लुकेदार अपने समुदायको देखें और किसानोंके भी समुदायको। पददलित जनसमुदाय सदा उसी स्थितिमें नहीं रहता। अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंका ज्ञान होनेपर वह भी कभी उठता है, और जब उठता है, तब फिर किसकी शक्ति है, जो उसके उत्थानमें बाधा डाल सके।"

यदि हमारे लेखक द्विवेदीजीको ७१ वर्षकी आयुमें एक दिन भी अपने ग्राममें श्रम करते हुए देखें, तो उन्हें वह शिक्षा मिल सकती है, जो अनेक वर्ष तक यूनिवर्सिटियों और पत्रकारोंके कालेजोंमें पढ़नेपर भी नहीं मिलेगी।

आइये, हम लोग उन्हींके आदर्शको सामने रखकर साहित्य-सेवा करें।

पीछे छोड़िये उन डरपोक साहित्य-सेवियों और समालोचकोंको, जो यह जानते हुए भी कि अमुक महानुभाव बिलकुल ऊटपटाँग ऊल-जलूल बकते हैं—जिनके लेख विक्षिप्तके बर्राने और पागलके प्रलापसे कम नहीं है—उनका विरोध करनेकी हिम्मत नहीं रखते।

हमें कुछ गरज़ नहीं है उन पद्य-लेखकोंसे, जो साधारण जनतासे कोसों दूर रहते हुए कोमल नारीत्वसे भरी-हुई भावनाओंके झूठे मोतियोंकी लड़ियाँ पिरोया करते हैं। और न हमें कुछ मतलब है उन कवियोंसे, जिन्होंने कभी एक दिनके लिए भी भूखों रहनेका कष्ट नहीं भोगा, पर जो भूखे आदमियोंकी दुर्दशाके नाटकका ढोंग रचा करते हैं। अब, बीत गये उन गल्प-लेखकोंके भी दिन, जो साम्प्रदायिकतापूर्ण गल्प लिखकर इस सुन्दर भूमिमें कलह उत्पन्न करते हैं, अथवा अपने ही दुश्चरित्रोंका प्रदर्शन करते हुए आत्म-चरित लिख डालते हैं। और, क्या वे भी कोई पत्रकारोंमें पत्रकार हैं, जो अपनी पत्रिकाको चित्रित करनेके लोभमें मिस फलानी और मिस ढिकानीके लम्बे-चौड़े चित्र, जिनके ब्लाक मुफ्तमें मिल जाते हैं, छापकर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं?

हमें युगधर्मके अनुरूप साहित्यकी रचना करनी है। अत्यन्त विज्ञापित महानुभावोंके, जो अपने चित्र और चरित्रको सदा अख़बारोंमें छपते हुए देखना पसन्द करते हैं, जीवन-चरित लिखनेका ज़माना अब लद गया, और हमारा स्वाभिमानी साहित्य अब हर्गिज़ गुलामी नहीं करेगा, उन मध्यम श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंकी, अमीर-उमरावोंकी, जिनके पास भोग-विलासकी काफी सामग्री है, और व्यर्थ बितानेके लिए पर्याप्त समय है। उनका सहारा पकड़ना डूबती हुई नावका आश्रय लेना है।

हम तो उन लोगोंके लिए साहित्य उत्पन्न करना चाहते हैं, जो प्रकृतिके निकट रहते हैं, जिनकी नीवें पातालमें है, और जिनकी जड़को बड़ी-बड़ी हलचलें भी नहीं हिला सकतीं। हम उन ग्रामीण शिक्षकोंके लिए साहित्य उत्पन्न करना चाहते हैं, जिनके द्वारा ही छन-छनकर हमारे विचार गाँववालों तक पहुँच सकते हैं। हम उन कार्यकर्ताओंको मानसिक भोजन देना चाहते हैं, जो हिन्दीके सिवा दूसरी कोई भाषा नहीं जानते और जो संसारके भिन्न-भिन्न आन्दोलनोंकी मूल बातोंसे परिचित रहनेके इच्छुक हैं। लेखकों तथा कवियोंका कर्तव्य अत्यन्त पवित्र है। बड़ी जिम्मेवारीका काम है। पाखंडपर प्रहार करना, दम्भको दूर करना और अन्याय तथा अत्याचारके विरुद्ध आवाज़ उठाना उनका परम धर्म है।

प्रिन्स क्रोपाटकिनने एक जगह लिखा है :—

"If you feel within you the strength of youth, if you wish to live, if you wish to enjoy a perfect, full and overflowing life—that is, know the highest pleasure which a living being can desire—be strong, be great, be vigorous in all you do.

"Sow life around you. Take heed that if you deceive, lie, intrigue, cheat, you thereby demean yourself, belittle yourself, confess your own weakness beforehand, play the part of the slave of the harem who feels himself the inferior of his master. Do this if it so pleases you, but know that humanity will regard you as petty, contemptible and feeble, and will treat you as such. Having no evidence of your strength, it will act towards you as one worthy of pity—and pity only. Do not blame humanity if of your own accord you thus paralyze your energies. Be strong on the other hand, and once you have seen unrighteousness and recognized it as such—inequity in life, a lie in science, or suffering inflicted by another—rise in revolt against the inequity, the lie or the injustice.

"Struggle! To struggle is to live, and the fiercer the struggle the intenser the life. Then you will have lived; and a few hours of such life are worth years spent vegetating.

"Struggle so that all may live this rich, overflowing life. And be sure that in this struggle you will find a joy greater than anything else can give."

"अगर तुम्हें अपने भीतर जवानीकी ताक़त महसूस होती है, अगर तुम जीते रहना चाहते हो, अगर तुम निर्दोष सर्वांगपूर्ण और उमगती हुई ज़िन्दगीका आनन्द लेना चाहते हो—यानी, अगर तुम उन सर्वोच्च आनन्दोंको जानना चाहते हो, जिनकी कोई भी जीवित प्राणी आकांक्षा कर सकता है—तो मज़बूत बनो, महान बनो और जो कुछ भी तुम करो, उसमें दृढ़तासे काम लो।

अपने चारों तरफ़ जीवनके बीज बोओ। ख़बरदार! अगर तुम धोखा दोगे, झूठ बोलोगे, षड्यन्त्र रचोगे, चरका दोगे, तो तुम उससे ख़ुद अपने-आपको पतित करोगे, अपने-आपको छोटा बनाओगे, पहलेसे अपनी कमज़ोरियाँ क़बूल करोगे और तुम्हारी हालत ज़नानखानेके उस ग़ुलामकी तरह होगी, जो हमेशा अपनेको अपने मालिकसे छोटा समझता है। अगर तुम्हें यही बातें भाती हैं, तो इन्हींको करो ; लेकिन उस हालतमें लोग तुम्हें नाचीज़, घृणास्पद और कमज़ोर समझेंगे और तुम्हारे साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे। तुम्हारी ताक़तका कोई सबूत न होनेके मानी यह होंगे कि जनता तुम्हें करुणाका पात्र समझेगी—केवल करुणाका पात्र बस!

जब तुम ख़ुद अपने-आप अपनी शक्तियोंको पंगु बनाते हो, तो दुनियाको दोष मत दो। इसके ख़िलाफ़ अपनेको शक्तिशाली बनाओ, और अगर कहीं तुम्हें कोई अन्याय दिखाई दे और तुम उसे अन्याय या अधर्म मानते हो—चाहे वह जीवनका कोई अन्याय हो, विज्ञानका कोई झूठ हो, या किसीपर किसीका किया हुआ ज़ुल्म हो—तो तुम उस अन्याय, उस झूठ या उस ज़ुल्मके ख़िलाफ़ उठकर बग़ावत कर दो।

संघर्ष करो, ताकि सारी दुनिया सुखी और उभरता हुआ भरपूरा जीवन बिता सके। विश्वास रखो कि इस संघर्षमें तुम्हें वह आनन्द मिलेगा, जो और कोई चीज़ नहीं दे सकती।''

हम युवकोंको ऐसा सजीव साहित्य उत्पन्न करना है, जो जनसाधारणमें जान फूँक सके; पर उसके पहले हमें स्वयं अपने जीवनको सर्वथा निर्भय निश्शंक और सत्यप्रिय बनाना पड़ेगा।

इस लेखके शीर्षकपर प्रश्न किया गया था 'कस्मै देवाय ?' हम किसके लिए साहित्य उत्पन्न करें ? उसका उत्तर है 'जनता जनार्दनके लिए'। उस जनता जनार्दनको—किसान-मज़दूरोंको, जो भारतकी आबादीकी ८० फीसदी हैं—हम शत बार नतमस्तक हो प्रणाम करते हैं। वही हमारे आराध्य हैं, वही पूज्य।*

* इस लेखके चित्र श्रीराम शर्मा द्वारा लिये गये हैं।
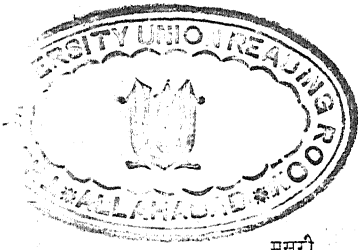
मसूरीसे शिमला

श्री दीनदयालु शास्त्री

मसूरी

हिमालय भारतकी सबसे बड़ी विभूति है। यह पहाड़ काश्मीरसे लेकर आसाम तक भारतकी सारी उत्तरी सीमामें फैला हुआ है। इसका प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है। हिमालयकी सारी शृंखलामें ऐसे-ऐसे सुन्दर, आकर्षक तथा दिव्य स्थान मौजूद हैं, जिनका वर्णन महाकवि कालिदासकी प्रगल्भ लेखनी ही कर सकती है। काश्मीर तो यथार्थमें भूतलका स्वर्ग है, उसकी बात जाने दीजिए। कूर्माचल, कुल्लु तथा नेपाल भी प्रकृतिके क्रीड़ा-कानन हैं। कैलाश तथा मानसरोवरका मार्ग कूर्माचल होकर ही गया है। कालिदासने 'मेघदूत' तथा 'कुमारसम्भव' में इस मार्गका जो विशद वर्णन किया है, वह पढ़नेके लायक़ है। कालिदास विलक्षण कवि थे। हिमालयने कविके सामने अपनी अतुल विभूति प्रस्तुत की। उस महाकविने काव्य द्वारा हिमालयकी विभूतिको अमर कर दिया और साथ ही उसके द्वारा स्वयं भी अमर हो गया।

हिमालयकी प्राकृतिक सुषमा विलक्षण है। साथ ही वहाँका जलवायु भी स्वास्थ्यके लिए हितकर है। प्राचीनकालके ऋषि-मुनि इससे अनभिज्ञ न थे। उनके आश्रम नदियों, वनों तथा घाटियोंमें बसे थे। जनता भी पहाड़ोंका आनन्द ले सके, इसके लिए बदरी, केदार, अमरनाथ, पशुपतिनाथ आदि तीर्थोंकी कल्पना की गई थी। प्रतिवर्ष हज़ारों योगी धर्मकी भावनासे प्रेरित होकर तीर्थ-यात्रा करते थे। साथ ही हिमालयकी शुद्ध वायुका सेवन करके स्वास्थ्य-लाभ करते थे। यह सब कुछ होते हुए भी यात्राके साधन अपूर्ण थे। सड़क आदिके न होनेसे सर्वसाधारण यात्री इससे लाभ न उठा सकते थे; किन्तु अब परिस्थितिमें धीरे-धीरे परिवर्तन हो चला है। शासनके व्यवस्थित होने तथा मेशीनकी मदद मिल जानेसे अब देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें यात्राकी सुविधा हो गई है। रेल और मोटरने काश्मीर तथा कन्याकुमारीको आपसमें मिला दिया है। हिमालय जैसे दुर्गम गिरिमें भी जगह-जगह मोटरोंके चलनेकी सुविधा हो गई है। यही कारण है कि आजसे एक सदी पहले जिस नागराज हिमालयके दर्शनोंका सौभाग्य किन्हीं तपस्वियोंको ही प्राप्त था, वहाँ आज शिमला, मसूरी तथा नैनीताल जैसे सुन्दर शहर बस गये हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री इन स्थानोंमें सैरके लिए जाते हैं।

अंगरेज़ लोग सर्द मुल्कके रहनेवाले हैं। गरमियोंमें स्वभावतः उनकी नज़र भारतके पहाड़ोंकी

ओर गई। मैदानकी गरमीसे बचनेके लिए पहाड़ोंमें ग्रीष्मकालीन राजधानियोंका सूत्रपात हुआ। शिमलेको भारत-सरकारकी राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी प्रकार युक्त-प्रान्तको नैनीताल, बंगालको दार्जिलिंग तथा आसामकी राजधानी शिलांगमें क़ायम हुई। गरमियोंमें मुख्य-मुख्य सरकारी दफ्तर इन स्थानोंमें चले जाते हैं। उन दिनों अफसरों तथा बाबुओंके कारण इन स्थानोंकी रौनक बढ़ जाती है। गोरी फौजोंके आरामके लिए पहाड़ोंपर छावनियाँ भी क़ायम की गईं। डलहौसी, मरी, लैन्सडाउन तथा अन्य पहाड़ी छावनियोंके बसनेका यही कारण है।

मसूरीका महत्व

भारतके अधिकतर पहाड़ी स्थान (Hill Stations) इन्हीं दो कोटिके हैं—या तो वे प्रान्तीय सरकारके केन्द्र हैं, अथवा वहाँ फौज रहती है। केवल मसूरी इसका अपवाद है। मसूरीमें न तो फौज ही रहती है और न वहाँ सरकारी दफ्तर ही हैं। फिर भी मसूरी उन्नतिपर है और दूसरे स्थानोंसे कई बातोंमें बढ़कर है। इसका पहला कारण यह है कि यह देश (Plains) के निकट है। दूसरा कारण यह है कि सरकारी वातावरण न रहनेसे स्वतन्त्र प्रकृतिके लोग गरमियोंमें मसूरी जाना ही अधिक पसन्द करते हैं। बन्धनोंसे हैरान होनेवाले राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार तथा मध्यवृत्तिके सैलानी लोग मसूरीमें बहुत हैं। और जनाब, सच तो यह है कि कांग्रेस समुदायके लोग भी थकान उतारने या स्वास्थ्य सुधारनेके लिए मसूरीकी ही शरण लेते हैं।

मसूरीसे एक मार्ग पहाड़ोंमें से होकर शिमलेको गया है। इस रास्तेसे शिमला १५० मील है। बहुत दिनोंसे इस मार्गकी प्रशंसा सुनी थी। सुना था कि पंजाबके उस समयके गवर्नर सर मालकम हेलीने इसी मार्गसे शिमलेसे मसूरीकी यात्रा की थी। उन्हींके आग्रहसे उस समयके वायसराय लार्ड इरविनने भी दो बार इस रास्तेसे यात्रा की और मार्गके प्राकृतिक सौन्दर्यको सराहा था। इस वर्ष गुरुकुल कांगड़ीके विद्यार्थियोंके अनुग्रहसे हमें भी इस यात्राका सौभाग्य हुआ। मसूरीसे शिमले तक सारा मार्ग बहुत ही सुन्दर और देखने योग्य है। जंगल, लता, पुष्प तथा किलोल करती सरिताओंके प्रवाह मुरझाये दिलको भी हरा कर देते हैं। कई स्थानोंपर तो हिमालय अपने शुद्ध स्वरूपमें प्रकट होता है। यात्रा भी पन्द्रह-बीस दिनमें हो जाती है। हमारा तो यात्रा-प्रेमी लोगोंसे आग्रह है कि वे यथासाध्य अवकाश निकालकर इस मनोरम मार्गके दर्शन अवश्य करें।

डिपो या लालटिब्बा

यात्राका प्रारम्भ

हम लोग कुल ग्यारह आदमी थे। मैं, गुरुकुलके आठ विद्यार्थी, वहींके एक अध्यापक श्री विष्णुदत्त विद्यालंकार तथा साथमें एक रसोइया। हमने २० अगस्तको प्रातः हरद्वारसे प्रस्थान किया। रेलसे देहरादून आये। रातको वहाँ ही विश्राम किया। २१ के सवेरे मोटरसे राजपुर आये और यहाँसे पैदल यात्राका उपक्रम हुआ।

सहस्रधारा

राजपुरसे चार मील पूर्व पहाड़की तलहटीमें सहस्रधारा नामका सुन्दर स्थान है। यहाँ गन्धकका पानी प्रचुर परिमाणमें मिलता है। वैसे भी जलधाराका नज़ारा अच्छा है। गन्धकके जलमें स्नान करनेसे चर्म रोग दूर हो जाते हैं। मसूरी जानेवाले बहुतसे

यात्री मसूरी जानेसे पहले ही सहस्रधारा हो आते हैं, क्योंकि यह रास्तेसे थोड़ा हटकर है। जो लोग सीधे मसूरी चले जाते हैं, वे भी मसूरीसे या वहाँसे लौटकर एक दिनके लिए इसे देखने अवश्य जाते हैं। यह स्थान वास्तवमें दर्शनीय है।

गिमतीका झरना

आजसे आठ-दस वर्ष पहले सभी यात्री राजपुरसे मसूरी तक पैदल मार्गसे ही जाते थे; किन्तु अब मोटरकी सड़क हो जानेसे अमीर तथा आरामपसन्द लोग अधिकतर सवारीसे ही सफर करते हैं। हमारी रायमें पहाड़का आनन्द पैदल चलनेमें ही है। जो पैदल न चल सकें, वे घोड़ेपर जा सकते हैं। मसूरी जानेके लिए घोड़े राजपुरमें ही मिल जाते हैं। पैदलके रास्ते राजपुरसे मसूरी केवल आठ मील है। राजपुरके बाज़ारसे ही चढ़ाई शुरू हो जाती है। बाज़ारके अन्तमें शक्ति-आश्रम है। डा० केशवदेव शास्त्रीके देहान्तके बादसे इस आश्रमकी उपयोगिता कम हो गई है।

झड़ीपानी

बाज़ारसे निकलकर दो मील सख्त चढ़ाई है। पसीना ख़ूब आता है; लेकिन धीरे चलनेसे थकान कम होती है। दो मील चढ़नेके बाद फिर सममार्ग मिलता है। यहाँ ठंडे पानीका नल है, और छोटीसी दूकान भी है। चढ़ाईसे परेशान यात्रीको आराम मिल जाता है। इस सममार्गमें सदा छाया रहनेसे गरमीका कष्ट नहीं होता। थोड़ा और चलनेपर यात्री झड़ीपानी पहुँच जाता है। यह स्थान मसूरीके आधे मार्गकी सूचना देता है, इसीलिए यहाँ 'हाफ़ वे हाउस' नामका एक होटल भी है। सामने दो-चार दूकानें हैं। एक ओर ऊँचे टीलेपर ऐंग्लो-इंडियन विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिए बढ़िया स्कूल है। बाँझके झुरमुटमें यह स्कूल बना है। इसका नाम 'ओक ग्रोव हाई स्कूल' है। इसमें विद्यार्थी गुरुकुलके ढंगपर रखे जाते हैं। पढ़ाई-लिखाईका प्रबन्ध उत्तम है। यहाँकी सफ़ाईका तो क्या कहना? यह तो इन लोगोंके स्वभावका एक आवश्यक अंग हो गया है। झड़ीपानीसे रास्ता नेपालके राजाकी कोठीके साथ-साथ होकर जाता है। आज सूर्यग्रहणका दिन था। सूर्य-पृथिवीके मध्यमें चन्द्रमाके आ जानेसे सूर्यमें छल्लेके सिवा कुछ दिखाई न देता था। उस दिन उत्तर-भारतके अधिकांश शहरोंमें सूर्य-ग्रहणके दर्शन लोगोंने किये होंगे; लेकिन मसूरीके उस मार्गमें मेघमालामें आँखमिचौनी खेलते तथा झिलमिल करते सूर्यके जो दर्शन हमने किये, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सेन्टजार्ज कालेज

बार्लूगंज मसूरीका एक मुहल्ला है। यहाँसे मसूरी दो मील है। बार्लूगंजमें सेन्टजार्ज कालेज नामसे एक बड़ी शिक्षा-संस्था है। इसके विशाल भवन एक ऊँचे टीलेपर बने हैं। छै बरसके बच्चे भी यहाँ पढ़ते हैं, और यहाँ आश्रममें ही रहते हैं। आगरा-यूनिवर्सिटीकी

इंटरमीडिएट परीक्षा तककी पढ़ाईका यहाँ प्रबन्ध है। अधिकतर ऐंग्लो-इंडियन विद्यार्थी ही यहाँ शिक्षा लाभ करते हैं। प्रतिबन्ध न होनेपर भी भारतीय विद्यार्थियोंकी संख्या कम है। इस कालेजके विद्यार्थियोंकी खेल-कूदमें ख़ूब धाक है। मसूरीके हाकी-टूर्नामेन्टमें विजयका
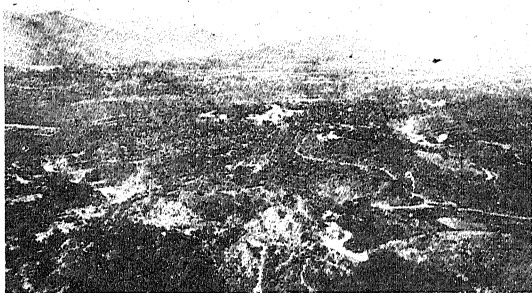
दून यानी घाटीका दृश्य

सेहरा प्रायः यहाँके विद्यार्थियोंके सिरपर बँधता है। बार्लूगंजसे थोड़ा आगे जाकर दो मार्ग हो जाते हैं— एक लंधौरको जाता है, दूसरा मसूरीको। हम लंधौर गये। इस रास्तेके शुरूमें थोड़ी चढ़ाई है, फिर रास्ता अच्छा है। सदर अस्पताल पार करते ही लंधौर बाज़ार दिखलाई देता है।

मसूरी

मसूरीके दो भाग हैं। पश्चिमके भागको, जहाँ अधिकतर बँगले तथा अंगरेज़ी ढंगकी दूकानें हैं, मसूरी कहा जाता है। लंधौर पूर्वी भागका नाम है। मुख्य बाज़ार यहाँ ही है। दोनोंके मध्यमें टाउन-हाल तथा कुलड़ी बाज़ार हैं। हम लोग लंधौरके आर्यसमाज-मन्दिरमें ठहरे। मन्दिर नया है, और अच्छा बना हुआ है। सिक्खोंका गुरुद्वारा, मुसलमानोंकी मस्जिद, सनातनधर्म-मन्दिर आदि सब धार्मिक स्थान लंधौरमें ही हैं। मध्यम वृत्तिके लोग अधिकतर ऐसे ही स्थानोंमें ठहर जाते हैं, और दो-चार, दस दिन मसूरीकी सैर करके अपने-अपने घरोंको लौट जाते हैं। इतने दिनोंमें सैर अवश्य हो जाती है; किन्तु न तो स्वास्थ्य सुधारता है और न पहाड़का आनन्द ही मिलता है। अप्रेल, मई तथा सितम्बर, अक्टूबर मसूरीके लिए उपयुक्त दिन हैं। इन दिनों स्वतंत्र स्थान लेकर मसूरीका आनन्द लेना चाहिए।

हम लोगोंके लिए तो मसूरी केवल पड़ावमात्र ही था। मसूरीमें दो दिन रहे। वर्षा थमी और हम लोग सैरके लिए निकले। मसूरीमें देखने लायक़ स्थान अधिक नहीं हैं। हैपी वेली, कैमेल्स बैक रोड तथा लालटिब्बा घूमनेके लिए यह तीन स्थान हैं। पहले दो तो केवल घूमनेके लिए हैं। एकान्तमें होनेसे सैरका आनन्द भी ख़ूब आता है। कैमेल्स बैक रोड कुलड़ी बाज़ारसे शुरू होती है। यह पहाड़के उत्तरमें है। इधर ही जंगल है। ऊँटकी पीठकी तरह इसका घुमाव होनेसे इसका नाम कैमेल्स बैक रोड पड़ गया है। पहाड़के दूसरी ओर मालरोड है। यह दोनों सड़कें लायब्रेरीके निकट जाकर मिल जाती हैं। कैमेल्स बैक रोडपर घने पेड़ोंकी छाया है। तीन मीलका मार्ग बहुत ही सुन्दर है। सुबह-शाम शीतल समीर बहा

मसूरी। बीचमें तिलक पुस्तकालय है

करता है। हैपी वेली मसूरीके अन्तिम छोरमें है। यह स्थान भी अच्छा है। किसी समय इधर अधिक एकान्त था, अब तो जगह-जगह बँगले बन रहे हैं।

लालटिब्बा

लालटिब्बा मसूरीका सबसे ऊँचा स्थान है। यह लंधौरके निकट है; किन्तु चढ़नेमें थकान आ जाती है।

पुलपर से यमुनाका दृश्य

लालटिब्बेका महत्व वर्षाऋतुमें कुछ नहीं है। जिस दिन आकाश साफ़ हो, लालटिब्बेकी सैर कीजिए। इस ऊँचे शिखरसे सुदूर हिमालयपर बिछे हिमका नज़ारा बहुत अच्छा मालूम देता है। वर्षावाले दिन यह दृश्य दिखाई न देगा; किन्तु अठखेलियाँ खेलती हुई मेघमाला अमृतमयी बूँदोंसे आपका स्वागत करेगी। शुद्ध पवनका आपको आनन्द मिलेगा। लंधौरसे ही एक रास्ता गंगोत्रीको जाता है। अनेक तीर्थ-यात्री इधरसे जाते हैं। इसी रास्तेपर जबरखेत नामका स्थान है। मसूरीके बहुतसे लोग घूमनेके लिए इधर भी चले जाते हैं।

मालरोड

शामको यूरोपियन लायब्रेरीके निकट बड़ी रौनक रहती है। यह लायब्रेरी मालरोडके अन्तमें है। मसूरीकी सबसे बड़ी लायब्रेरी यही है; किन्तु इसमें भारतीयोंका प्रवेश नहीं है। इसके सामने ही बैंडका स्थान है, जहाँ बुध तथा शनिवारको अंगरेज़ी बाजा बजा करता है। इस जगहसे इनका बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। मसूरीके पहाड़ तथा दूर हरद्वारके निकटवर्ती शिवालक पहाड़के मध्यमें हरी-भरी देहरादूनकी विस्तृत घाटी निश्चिन्त होकर सो रही है। जंगल, नदी तथा बीच-बीचके कुंजोंमें उभरे हुए मकान क्या ही सुन्दर दिखाई देते हैं। बीचमें कहीं-कहीं चीड़के पेड़ोंसे लदा टीला निकल आया है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो शत्रुसे रक्षाके लिए क़िलेकी रचना की गई है। टेढ़ी-मेढ़ी, चक्कर खाती मोटरकी सड़क भी क्या अच्छी मालूम होती है? मालरोडपर अधिक दूकानें अंगरेज़ी मालकी हैं। ग्राहक भी अंगरेज़ या उनकी शिक्षा-दीक्षामें पड़े हमारे भाई ही होते हैं। दो-एक स्वदेशी स्टोर भी देखनेमें आये; किन्तु ग्राहकका पता न था।

तिलक-पुस्तकालय

यह पुस्तकालय मसूरीके गौरवकी वस्तु है। इस शानो-शौकतकी जगहमें लोकमान्यका यह स्मारक निस्सन्देह अद्वितीय है। नाभाके निर्वासित महाराज तथा अन्य सहयोगी इसके लिए वस्तुतः धन्यवादके पात्र हैं। कुलड़ी बाज़ारसे थोड़ा हटकर सड़कके किनारे इसकी लाल इमारत दूरसे दिखाई देती है। मसूरीको देखते इमारत खासी बड़ी है। पुस्तकालयमें पुस्तकोंका अच्छा संग्रह है। हिन्दी तथा अंगरेज़ीके दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र अधिक संख्यामें आते हैं। कोई भी यात्री आठ आने मासिक चन्दा देकर

पुस्तकालयसे लाभ उठा सकता है। शिमला, नैनीताल आदि पहाड़ी स्थानोंमें ऐसे सार्वजनिक पुस्तकालयोंका प्राय: अभाव है। इस पुस्तकालयसे मसूरीवासियोंकी अच्छी सेवा हो रही है।

गिमती तथा मासी

मसूरीसे पाँच मीलपर गिमतीका सुन्दर झरना है। इसे यहाँके लोग कैम्पटी जलप्रपात कहते हैं। पहाड़ी लोग इसे गिमती कहते हैं। यह झरना चकरौतेकी सड़कपर है।

मसूरीमें ऐंग्लो-इंडियन बालकोंकी शिक्षाके लिए कई अच्छे-अच्छे स्कूल हैं। भारतीय बालकोंके लिए भी इधर कुछ वर्षोंसे घनानन्द हाई स्कूल खुल गया है। कन्याओंकी शिक्षाके लिए आर्यसमाजमें एक छोटीसी पाठशाला है, जो कि अपर्याप्त है।

हमारी यात्राका प्रारम्भ मसूरीसे ही होना था। मसूरीमें भारतीय सर्वेका दफ्तर है। यहाँ हर जगहके नक़शे मिल जाते हैं। हमने भी नक़शों द्वारा अपनी यात्राका मार्ग निश्चय कर लिया। 'मसूरी टू शिमला' नामकी एक छोटीसी पुस्तिका भी मिल जाती है। इसमें हर पड़ावका थोड़ा हाल तथा एक सुन्दर नक़शा दिया हुआ है। पुस्तककी क़ीमत सवा रुपया है। एक सज्जनसे हमें यह पुस्तक कुछ दिनोंके लिए मिल गई। यात्रामें इससे अच्छी मदद मिली। हमने अपनी लम्बी यात्राके लिए पूरी तैयारी कर ली, और दो दिन बाद ही मसूरीसे विदा ले ली।

चकरौतेके राहमें

२३ अगस्तके प्रात: हमने मसूरीसे चकरौतेको प्रस्थान किया। मसूरीसे चकरौता अड़तीस मील है। तीन मील तक मसूरीके बँगलोंके दर्शन होते रहते हैं। उसके बाद जमना नदी तक एकदम उतार है। रास्ता साफ़-सुथरा है, और जंगलमें से होकर गया है। हम लोग पगडंडीसे गये, जिसमें कंकर अधिक, आराम कम था। ६ मीलके बाद जंगल समाप्त हुआ, और एक गाँव दिखाई दिया। यहाँ ब्रिस्टल काफे नामका उत्तम होटल है। होटलके सामने पहाड़के दूसरे छोरपर गिमतीका सुन्दर झरना झर रहा था। ऊँचे गिरि-शिखरसे आती हुई यह जलधारा यहाँ क्रमश: तीन प्रपात बनाकर गिर रही थी। जलका परिमाण भी बहुत था। फेन उमड़-उमड़कर बह रहा था, मानो क्षीरसागरमें से दूधकी धारा उमड़ पड़ी हो। क्या ही सुन्दर दृश्य था। उस नील जलके प्रपातोंमें कौनसा अच्छा था, यह कैसे कहा जाय? आँखें तो वहीं गड़ गईं, फिर भेद करनेकी कौन सुझावे? हममें से हरएक कौतूहल दृष्टिसे निहार रहा था। इसी सुन्दर झरनेको देखनेके लिए मसूरीसे यात्री इधर आते हैं। उन्हींके आरामके लिए एक इटैलियनने ब्रिस्टल काफेकी योजना की है। गिमती तक सुन्दर रास्ता गया है। होटलसे झरना आध मील है। प्रपातको देखकर आगे बढ़े। तीन मीलपर सैंझीका पड़ाव आता है। यहाँ यात्रियोंके ठहरनेके लिए डाकबँगला बना है। दूकान नहीं है। सैंझीसे रास्ता अगलार नदीके किनारे-किनारे जाता है। गिमतीका जल इसी नदीमें आ मिलता है। वैसे भी इसका जल बहुत साफ़ है। तीन मील चलकर जमनाके किनारे आ रहे।

मसूरीसे जमना नदी १२ मील है। यहाँ गरमी ख़ूब पड़ती हैं। कालिन्दीकी विशाल धारापर विश्राम किया। इस स्थानसे आध मील ऊपर ही कालिन्दीका तथा अगलार नदीका संगम है। कलिन्दी काली है, और उसकी सखी नीली साड़ी ओढ़े हुए है। अगलार अभी किशोरावस्थामें है और कालिन्दी उमड़ती हुई बहती है। दोनों जब मिलती हैं, तो एक साथ ही अट्टहास करती हैं। एक मील तक संयुक्त धारा चट्टानोंसे टकराती, घनघोर गर्जना करती, चली जाती है। इसी जगह नदीपर झूलेका पुल तना है, जिसे पार करके चकरौतेका मार्ग जाता है। नदीके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। ऐसा मालूम होता है कि कालिन्दीको अपनेमें ही समा लेंगे, आगे न बढ़ने देंगे; किन्तु कालिन्दी कालिन्दी है। उसे

तेजस्वी सूर्यने जन्म दिया है। वह छोटे-मोटे पहाड़ोंकी क्या परवा करती है? उसकी अविचल धारा पहाड़ोंको चीरती हुई आगे चली जाती है। इसी सुन्दर स्थानपर हमने विश्राम किया।

जमनासे पुन: चढ़ाई शुरू होती है। नीचा स्थान, गरमी अधिक है। रास्तेमें पानी नहीं मिलता। पसीनेसे भीग गये। बहुत परेशान हुए। धीरे-धीरे चलकर लखवाड़ पहुँचे।

लखवाड़

मसूरीसे लखवाड़ १६ मील है। यहाँ महाशिवका मन्दिर है। स्कूल है, डाकखाना है और दो-चार दूकानें हैं। आबादी बहुत काफ़ी है। हमने मन्दिरके निकट ही पड़ाव डाला। आज यहाँ बड़ा भारी मेला था। महाशिवके मन्दिरमें चकरौते तथा टिहरीके गाँवोंके लोग एकत्र हो रहे थे। बकरेकी बलि दी जा चुकी थी, और अब उसका प्रसाद तैयार हो रहा था। इसी प्रसादके लिए लोगोंका जमाव था। कैसा वीभत्स दृश्य था! वे लोग अज्ञानमें थे; किन्तु ख़ूब खुश थे। स्त्री-पुरुषोंका सम्मिलित नाच हो रहा था। शराबका दौरदौरा था। उसीकी मस्ती थी। रात-भर यही प्रोग्राम था। सवेरा होते ही भगवानका प्रसाद मिलना था। वाह रे धर्म! भगवान तो अनन्त प्रसादवाले हैं, उन्हें इस छागल मांसकी क्या ज़रूरत? परन्तु मनुष्य भी विचित्र जन्तु है। अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भगवानका स्वरूप गढ़ लेता है। भादोंमें हर साल यह मेला लखवाड़में हुआ करता है। चकरौता तहसील, टिहरी तथा शिमलेके पहाड़ोंमें देवी-देवताकी बड़ी पूजा होती है। हर गाँवका अपना देवता पृथक् होता है। उसकी सवारी बड़ी धूमधामसे निकाली जाती है। महाशिव सबसे बड़ा देवता है। लखवाड़ तथा टोंसके निकटके उजलाह गाँवमें इनकी प्रतिष्ठा की गई है। मेलेवाले दिन इलाकेके लोग हज़ारोंकी संख्यामें दर्शनके लिए आते हैं, और प्रसाद पाकर वापस जाते हैं।

नागथाट

सवेरे लखवाड़से चले। नागथाट तक चढ़ाई है। तीन मील रास्ता खेतोंमें होकर जाता है। आगे पहाड़पर घासके सिवा कुछ नहीं नज़र आता। नागथाट ऊँचा स्थान है, ठंड काफी पड़ती है। यहाँ चोटीपर डाकबँगला है। एक छोटीसी दूकान भी है। यहाँ पहाड़के दूसरे छोरकी ओर रास्ता चला जाता है। रास्तेसे ऊपर गिरि-शिखर तक जंगल है, नीचे खेत-ही-खेत हैं। जगह-जगह झरनोंके किनारे बड़े-बड़े गाँव बसे हैं। नागथाटसे चुरानी ७ मील है। रास्ता सीधा है। यात्री आरामसे चले जाते हैं।

चुरानी

चुरानीमें भी डाकबँगला है। जगह बहुत सुन्दर है। देवदारके ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंका छोटासा एक कुंज है। इसी कुंजमें डाकबँगला है। यात्री अनायास इस सुन्दर स्थानमें ठहरनेके लिए उतावला हो जाता है; लेकिन बस्ती नहीं है। रसदके लिए पहाड़की तलहटीमें बसे गाँवमें जाना पड़ता है। हम लोग चुरानी नहीं ठहरे। सीधे चकरौता चले गये। दो मील तक शीतल मार्ग है। घनी छाया और पद-पदपर शीतल जलकी माया। बढ़े चले गये और चकरौतेसे तीन मील इधर जाकर दम लिया।

यहाँ दो पहाड़ोंके मध्यमें सुन्दर घासका फ़र्श बिछा है। फूल खिल रहे थे और ठंडी बयारका आनन्द था। मंडली बैठ गई। पहाड़ी सफ़रका यह भी एक नमूना है। बेदाम सभी अलभ्य चीज़ें मयस्सर हो रही हैं। हाँ, आनन्द लूटनेके लिए हिम्मत चाहिए। बड़ी देर मस्त पड़े रहे। दूसरे यात्री आये और थकान मिटाकर चले गये; लेकिन अपनेको क्या? यह स्वर्गीय सुख बार-बार थोड़े ही मिलता है। कोई होशमें आकर उठे भी, तो हमारे मस्त मौला धारेश्वर उठने ही न दें। ख़ूब आनन्द रहा। धीरे-धीरे काले बादल घिर आये। उठनेको

जी न चाहता था। बूँदोंने उठाकर ही छोड़ा। यहाँसे आगे चकरौता तक इसकी चढ़ाई है। एक मील इधरसे ही देवदारुका जंगल शुरू हो जाता है। कैलाना चकरौतेका मुहल्ला है। यहाँ फौजका पोलो खेलनेका मैदान है। कैलानेसे निकलकर बाज़ारमें आये।

चकरौता

चकरौता छावनी है। यह देहरादून ज़िलेकी तहसील भी है। बाज़ार बहुत बड़ा नहीं है; किन्तु आवश्यक सामग्री सब मिल जाती है। सहारनपुरसे यहाँ तक मोटरका रास्ता है। देहरादूनसे भी मोटरें आती-जाती हैं। छावनीका स्थान ख़ूब खुला बसा है। पाँच मील तक बस्ती चली गई है। आज २२ मील चले थे, अतः इस बाज़ारमें आर्यसमाजमें आराम किया। सवेरे उठकर जंगलके दफ्तरमें पहुँचे। बाबू मथुरादासजीके यहाँ अतिथि रहे। यह स्थान छावनीसे बाहर तथा एकान्तमें है। बाबूजी प्रेमी सज्जन हैं। उनका प्रेम स्मरण रहेगा।

चकरौतेमें हम तीन दिन रहे। मालरोडपर घूमनेका अच्छा स्थान है। फौजकी परेडका मैदान भी ख़ूब अच्छा है। चकरौतेमें जंगलका नज़ारा अच्छा है। मुझे तो मसूरीसे यह स्थान अधिक अच्छा मालूम दिया। जहाँ हम ठहरे थे, वहाँ घरके पाससे ही जंगल शुरू हो जाता था। पहाड़का सिरा थोड़ा घूमकर ऊँचा उठ गया था और आगे टेढ़ा होकर सिंहाकृति हो गया था। उसकी पीठपर घासका सुन्दर वितान था और मध्यमें होकर पेड़ोंकी सुन्दर कतार चली गई थी। उसीके निकटसे होकर एक छोटा रास्ता गया था। यहाँ कुछ दरिद्र किन्तु प्रकृतिके साथ उड़ान लेनेवाले पहाड़ियोंने अपने झोंपड़े खड़े किये थे। वे स्वयं दरिद्र थे तो क्या? प्रकृतिने उन्हें धनी बनाया था, और वे इसीमें सन्तुष्ट थे।

चकरौतेका झरना देखनेकी चीज़ है। बाज़ारसे उतरते ही इसका रास्ता अलग हो जाता है। बाज़ारसे झरना तीन मील है। एकदम उतार है। शुरूमें रास्ता ठीक है, आगे वह भी लुप्त होने लगता है। दो मील तक हम ठीक चले गये, आगे भटक गये। फिर एक नाला दिखाई दिया। उसीमें हो लिये। रास्ता नदारद। आगे काँटेदार झाड़ियाँ, पीछे बिच्छू घासका भय। कहीं लेट गये, कहीं कूद गये; किन्तु बिच्छू घासने न छोड़ा। बिच्छू घासका पौधा चार-पाँच फीट ऊँचा होता है। उसके पत्ते तथा शाखाओंपर छोटे-छोटे काँटे होते हैं, जिनको छूते ही काँटे चुभ जाते हैं और बिच्छूके डंककी तरह वेदना करने लगते हैं। यह भगवानकी लीला है। उसीकी जड़में ही पालकके पत्तेकी तरह दो-चार पत्ते हैं। इन पत्तोंको रगड़ दें, तो बूटीके काटेका दर्द शान्त हो जाता है। हम तो झाड़ियोंमें उलझ गये थे। बिच्छू घासने ख़ूब तंग किया। एक साथी घायल भी हुए, गिरते-पड़ते किसी तरह नीचे जलधारापर पहुँचे।

चकरौतेका प्रपात

यही धारा पहाड़के ऊपरसे आती है। आते-आते सहसा एक मोड़पर पहुँचती है। यहाँ घूमनेका स्थान नहीं। अतः सवा सौ फीटका प्रपात बनाकर नीचेको आई है। यह विशाल धारा आज न-जाने कितनी सदियोंसे इसी रूपमें बही जा रही है। प्रपातके कारण गिरिमें बड़ासा गह्वर हो गया है। उसमें प्रपात बड़े ज़ोरसे फुकार मारता हुआ गिरता है। यद्यपि झरना गिरि-गह्वरमें छिपा है; किन्तु उसका गर्जन दूरसे सुनाई देती है। नीचे बड़ा गड्ढा हो गया है। जल अत्यधिक ठंडा है। फुहारें उड़-उड़कर दूर तक जाती हैं। कपड़े उतारकर हम भी प्रपातके निकट पहुँचे। अभी प्रपातसे दूर थे; किन्तु फुहारोंने देहको सराबोर कर दिया। सिरपर ऐसा मालूम देता था, मानो मोती जड़ दिये गये हों। जलके गिरनेकी आवाज़से कान फटे जाते थे। पहुँचे और कुंडमें प्रवेश किया। मनने चाहा कि धाराके नीचे सिर करें; किन्तु शरीरमें एक दम कँपकँपी छा गई। कहीं खोपड़ी न उड़ जाय।

मैंने हिमालयमें काश्मीरसे नैनीताल तक सब स्थानोंका भ्रमण किया है; किन्तु इतना ऊँचा प्रपात देखनेमें नहीं आया। स्नानकर वापस आये। लौटते समय कोई तकलीफ़ नहीं हुई। हमारे भाग्यसे असली रास्ता मिल गया था।

चकरौतेसे शिमलेका रास्ता बीहड़ जंगलमें है। रास्तेमें रसद नहीं मिलती। हमने २७ अगस्तको ही आगेके लिए सब तैयारी कर ली। तीन दिनका खान-पानका सब सामान साथ रख लिया। मार्गमें ठहरनेके लिए जंगलातके महकमेकी ओरसे बँगले हैं। ठहरनेके लिए आवश्यक चिट्ठी-पत्री ले ली। अब तक दुनियासे सम्पर्क था। चिट्ठी-पत्रीका साथ था। अब आगे ऐसे रास्तेपर जाना था, जहाँ डाकका कोई प्रबन्ध न था। २७ अगस्तकी रातको ख़ूब मस्त होकर सोये। २८ अगस्तका प्रातः हुआ। बादल सब उड़ गये थे। देववनका रास्ता सामने दिखाई दे रहा था। हमने भी अपने यजमान बाबू मथरादासजीसे विदा ली और शिमलेके लिए रवाना हुए।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका संग्रहालय
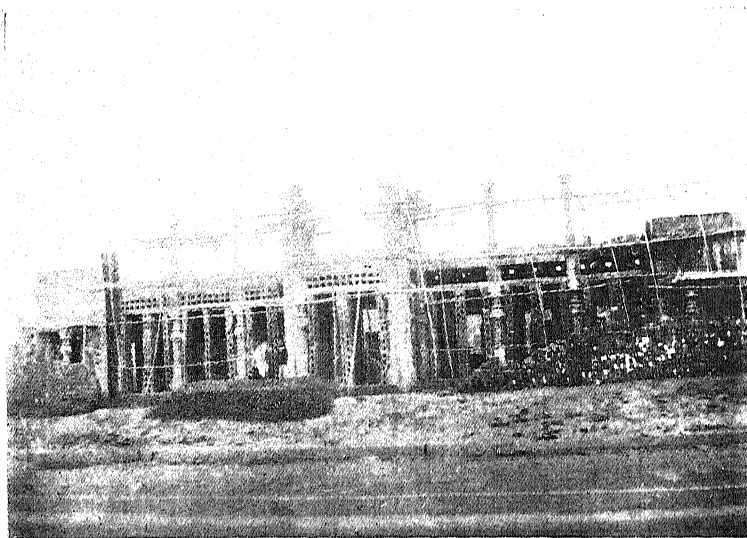
प्रयागका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हिन्दी-लेखकों और कवियोंकी कीर्ति-रक्षाके लिए एक संग्रहालय बना रहा है, जिसमें हिन्दीके प्रमुख सेवकोंकी स्मारक वस्तुएँ, हिन्दी-साहित्यकी ऐतिहासिक पुस्तकें, चित्र, शिलालेख आदि संग्रहीत किये जायँगे। श्री पुरुषोत्तमदास टंडन इस संग्रहालयके लिए धन एकत्रित करनेका उद्योग कर रहे हैं। संग्रहालयके भवनका निर्माण-कार्य आरम्भ हो गया है। हिन्दी-भाषी जनताका कर्तव्य है कि वह आर्थिक सहायता देकर हिन्दीके साहित्यिक तीर्थके निर्माणमें हाथ बटाये।

कालिदासकी शकुन्तला

श्री वंशीधर विद्यालंकार
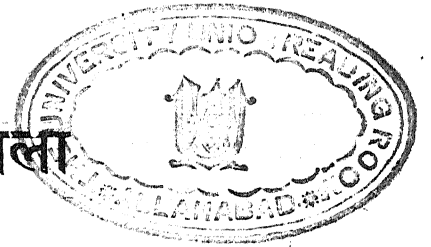
कालिदासकी शकुन्तला कविके हृदयकी परम सुकुमार, अश्रुपूर्ण करुणाकी दारुण वेदनाके संगीतका वह सुन्दर चित्र है, जिसमें इतनी शताब्दियाँ व्यतीत हो जानेके बाद भी अपने प्रथम दिनकी वही नवीनता, वही आकर्षण-शक्ति, वही मर्म-व्यथा, वही सरलता और वही महत्ता श्वास ले रही है, जैसे कि मानो उसने अपनी मुग्ध आँखें अभी इस संसारमें पहली बार ही खोली हों। इतना समय व्यतीत हो जानेके बाद भी, इतने युगान्तरकारी, उथल-पुथल करनेवाले परिवर्तनोंके अनन्तर भी जब आज पुराने युगकी खिड़कीसे कालिदासकी वाणी इस नवीन युगको झाँककर देखती है, तो उसे अपने संसार और इस संसारमें न समयका और न मानव हृदयोंका लेशमात्र भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

श्रीकृष्णने गीताके दसवें अध्यायके अन्तिम श्लोकमें अर्जुनसे कहा है—"मैं इस समस्त संसारको अपने केवल एक अंशसे ही धारण कर रहा हूँ।"* यदि इस बातको दूसरे शब्दोंमें कहा जाय, तो इसका यह आशय होगा कि इस समस्त विशाल विश्वमें सदा उनका एक अंश ही दृष्टिगोचर होता है। महापुरुष, महाकवि और जितनी भी महान् वस्तुएँ हैं, वे सब अपने दृश्य और परिचित संसारमें एकमात्र एक अंशसे ही रहती हैं, उनका शेष अंश तो संसारमें अदृश्य और अपरिचित ही रहता है। कोई मनुष्य आकाशको मुट्ठीमें बन्द करके यह नहीं समझ सकता कि उसने समस्त आकाशको अपनी मुट्ठीमें बन्द कर लिया है। जितना आकाश उसकी मुट्ठीमें बन्द होता है, वह उसका एक अंश ही तो होता है। यह मुट्ठीमें बन्द हुआ अंश उस विराट् आकाशके विशालरूपके सम्मुख क्या होता है, जो कि कभी किसी प्रकार पकड़में नहीं आता। इसी प्रकार वह संसार, वह युग, जिसमें कि वे महापुरुष और महाकवि विद्यमान होते हैं, अपनी मुट्ठीमें उनकी महत्ताको एक महान् क्षुद्र अंशमें ही पकड़ सकता है, उनका विराट् रूप तो उससे बाहर ही अपने पूर्ण विशालरूपमें स्थित रहता है। यही कारण है कि महापुरुष, महाकवि और महान् वस्तुएँ हमेशा जीवित रहती हैं, और उनपर समयका या अन्य बड़ेसे बड़े परिवर्तनोंका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता।

कालिदास भी इसी प्रकारके महान् कवि हैं और उनकी कविता इसी प्रकारकी एक महान् वस्तु है। वह इतनी महान् है कि संसारकी विशाल सीमाओंके अन्दर किसी भी प्रकार समा नहीं सकती। वह हर युगमें अपने एक अंशसे ही अपनी महत्ताका परिदर्शन कराती रहती है। अमरीकाके कोलम्बिया यूनिवर्सिटीके संस्कृतके प्रोफेसर आर्थर डब्ल्यू राइडर (Arther, W. Ryder) जिन्होंने संस्कृत भाषाकी अनेक पुस्तकोंका अंगरेज़ीमें अनुवाद किया है—कालिदासके ग्रन्थोंके अपने अनुवादकी भूमिकामें लिखते हैं—"ऐसे व्यक्ति कभी अपने जीवनकालमें ही पूर्णतया उचित सम्मानको नहीं प्राप्त करते। उनकी मृत्युके बाद उनकी कीर्ति निरन्तर वृद्धि करती है।"* इन शब्दोंको यदि हम ज़रा बदलकर कहें, तो यों कह सकते हैं कि ऐसे महान् कवि अपने जीवनमें ही समाप्त नहीं हो सकते। मानो मृत्युके द्वारा उनकी महत्ता सीमित संसारसे निकलकर असीम विश्वमें विचरण करने लग जाती है।

जिस समय पहले-पहल कालिदासकी शकुन्तला

---

* विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्। भगवद्गीता, अध्याय १०, श्लोक ४२।

* Such men are fully appreciated during their life. They Continue to grow after they are dead.

यूरोपमें टूटे-फूटे रूपमें अनूदित होकर पहुँची* उस समय वहाँके महाकवियोंके हृदयको एकदम ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कि उसकी भाषामें उन्हें अपने ही हृदयकी मूर्तियाँ, अपने ही हृदयका स्वर और अपने ही हृदयकी भाषा सुनाई पड़ रही है। इस एक पुस्तकने भारतवर्षके गौरवमय कलापूर्ण हृदयका ऐसा महान् परिचय दिया, जिससे संसारके विद्वान मन्त्रमुग्ध होकर इस देशकी विशाल सभ्यताके स्वप्न देखने लगे। अब तो संस्कृत भाषाका अध्ययन संसारके प्रत्येक विभागमें धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। अगर यह कहा जाय कि कालिदासके इस एक नाटकने भारतवर्षके प्राचीन गौरवका विचार संसारके बड़े-बड़े हृदयों और मस्तिष्कोंको उस समय अत्यन्त स्वाभाविक रूपसे अनुभव करा दिया था, जब कि उन्हें भारतवर्षकी सभ्यताका जो कुछ भी ज्ञान था वह एक अन्धकारमयी छाया और भ्रान्तिपूर्ण धारणाओंके सिवा और कुछ भी नहीं था, तो इसमें ज़रा भी अत्युक्ति न होगी।

संस्कृत भाषाका सौभाग्य है कि उसे कालिदास जैसा महान् कवि मिला। उसके काव्योंके रस लेनेवालोंको कविके हृदयके साथ जो अभिन्नता और एकात्म्यका बोध होता है, उससे हृदयमें एक तरहके आनन्दोल्लास तथा अभिमानका संचार हो जाता है। संसारकी जितनी भी महान् वस्तुएँ हैं, वे अत्यन्त सरलतासे प्राप्य होकर भी बिलकुल अप्राप्य-सी रहती हैं। मनुष्य उन्हें दूरसे देखकर ही यह समझ लेता है कि जैसे उसने उन्हें पा लिया, परन्तु ज्यों-ज्यों वह उनके निकट आता है, त्यों-त्यों वह देखता है कि वे हिमालयकी उच्चतम शिखाओंसे भी इतनी अधिक उच्च हैं कि वह उन तक किसी भी तरह नहीं पहुँच सकता। महान् कविता भी ऐसी ही होती है। उसे सुनते ही, उसकी मामूली-सी आहट मात्रसे ही हमें ऐसा अनुभव होने लगता है कि जैसे हमने उसे समझ लिया, अच्छी तरह प्राप्त कर लिया, परन्तु जब हम उसका विश्लेषण करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह तो ऐसा विशाल संसार है कि जिसे अगर समस्त संसार भी चाहे तो भी किसी प्रकार पूर्णतया प्राप्त नहीं कर सकता, समझ नहीं सकता, और जो कुछ वह प्राप्त भी करता है वह ऐसा ही होता है जैसे कि सागरमेंसे लिया हुआ एक अंजलिभर जल। यही कारण है कि हम ऐसी कविताको बारम्बार पढ़ते हैं, बारम्बार उसका आनन्द अनुभव करते हैं, तो भी न तो कहीं उसका अन्त दिखाई देता है और न हमारी तृप्तिका ही। कवितामें जो वाणी अपने आपको प्रकाशित करती है, जब हम उस वाणीका अपनी वाणी-द्वारा वर्णन करना चाहते हैं, तो वाणी चलती ही नहीं—वह पूर्णतया मूक हो जाती है, वह स्वयं 'गूँगेका गुड़' बन जाती है।

कालिदासकी शकुन्तलाकी कविता आँखों और हृदयका, भाव और भाषाका एक आश्चर्यजनक और कभी किसी भी प्रकारसे अलग न होनेवाला दैवी मेल है। उसकी वाणी वर्णनीय पदार्थका शब्दोंमें अत्यन्त स्वाभाविक और सहज रीतिसे आनन्दमय मूर्त्तिरूप धारण कर लेती है। उसके शब्द बोलती आँखें हैं—आँखोंकी अपनी वाणी हैं। उसकी भाषा वह स्वच्छ निर्मल दर्पण है, जिसके अन्दर उसके हृदयके भावोंका प्रतिविम्ब बिलकुल स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। जैसे चैत्र-पूर्णिमाकी चाँदनी वृक्षकी डालियों और पत्तोंपर पड़कर छायारूपमें उनका धरतीपर चित्रण करती है, ठीक उसी प्रकार कविके हृदयका आन्तरिक

---

* हमने 'टूटे-फूटे' शब्द जान-बूझकर लिखा है, क्योंकि हमने अब तक शकुन्तल के जितने भी अंगरेज़ी अनुवाद देखे हैं, उनमेंसे एक भी हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता जो हमें मूल नाटकके सामने कुछ भी पसन्द आ सके। कई बार तो यह भी इच्छा हुई है कि इन अनुवादोंपर एक लेख लिखा जाय, जिसमें मूलके साथ इन अंगरेज़ी रूपान्तरोंकी तुलना की जाय। कई स्थानोंमें तो इन अंगरेज़ी अनुवादकोंने अर्थका अनर्थ कर डाला है। ऐसे लेखसे यह पता लग सकेगा कि समय और असमयमें अंगरेज़ लेखक जो भारतीयोंकी अंगरेज़ी भाषाके अज्ञानपर हँसी उड़ाया करते हैं, स्वयं उनकी इतर भाषाओंके ज्ञानके विषयमें क्या अवस्था है। —लेखक

प्रकाश जिन वस्तुओंपर पड़ता है, उनकी शब्दमयी छाया कविके काव्यमें इतनी विशद रूपसे पड़ती है कि वह बिलकुल असली वस्तुओं-सी प्रतीत होती है। बाह्य प्रकाश और हृदयके आन्तरिक प्रकाशमें इतना ही भेद है कि बाह्य प्रकाशकी छाया केवल कृष्ण-रूप लिये हुए होती है; परन्तु आन्तरिक प्रकाश जिन वस्तुओंकी छायाको प्रकाशित करता है, वे अपने पूर्ण रंगोंमें समस्त आभास-इंगितोंके साथ प्रकाशित हो जाते हैं। आजकल वैज्ञानिक लोग एक्स-रे (X-Ray) से शरीरके भीतरकी वस्तुओंको दिखला देते हैं, परन्तु इस महाकविकी एक्स-रे ऐसी है, जिससे वह मनुष्यके मनकी तहोंका बिलकुल स्पष्ट दर्शन करा देता है। शकुन्तलाको पढ़ते हुए बहुत जगह ऐसा प्रतीत होता है कि कवि राजा दुष्यन्तके रूपमें छुपा-हुआ शकुन्तलाकी भिन्न-भिन्न शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं (Poses) का —अपनी प्रतिभाके प्रकाश-द्वारा—अपने हृदयके कैमरेसे शब्दोंमें फ़ोटो खींच रहा है। प्रथम और तृतीय अंकमें ऐसा ही हुआ है। वह इसी प्रतिभाके प्रकाशके सहारे जहाँ शकुन्तलाके चित्रोंकी रचना करता है, वहाँ इसीसे राजाके हृदयकी आन्तरिक अवस्थाओंका भी चित्र ले लेता है।

संस्कृतके नाटकोंमें जैसे भाव-विशेषका चित्रण देखनेमें आता है, वैसे व्यक्ति-विशेषके चरित्रका चित्रण नहीं। यूरोपीय नाटकोंमें हरएक पात्रके चरित्रकी पूर्ण विशेषताओंके प्रदर्शनके साथ उसके मानसिक भावोंका प्रदर्शन किया जाता है। उन नाटकोंमें जो भाव प्रकाशन होता है, वह पात्रके वैयक्तिक जीवनका एक भाग ही होता है; इसलिए उन नाटकोंके एक पात्रके स्थानपर यदि हम किसी अन्य पात्रको लाना चाहें, तो बड़ी कठिनाई होगी, और किसी ऐसे व्यक्तिको परिश्रम-पूर्वक खोजना पड़ेगा, जिसके चरित्रमें उसी प्रकारकी समस्त विशेषताएँ हों। परन्तु संस्कृतके नाटकोंमें व्यक्तिके समस्त चरित्रपर इतना गहरा प्रकाश नहीं डाला जाता। एक पात्रके चरित्रपर उतना ही प्रकाश पड़ता है, जितना कि कवि भावोंको चित्रित करता हुआ दिखलाना चाहता है। इस कारण यदि उन पात्रोंके स्थानपर कोई उन्हींकी स्थितिका पात्र बदल दिया जाय, उसके नाममें भेद कर दिया जाय, तो नाटकके कथानकमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ सकता। शकुन्तला नाटकमें यदि राजा दुष्यन्तके स्थानमें किसी और शक्तिशाली राजाको बिठा दिया जाय और शकुन्तलाके स्थानपर किसी और सुन्दरी नायिकाको, तो महाभारतकी लिखी हुई घटनामें भेद पड़ जायगा; परन्तु नाटककी कथा, भाव-चित्रण और रसास्वादमें शायद कुछ विशेष अन्तर नहीं होगा। इसलिए संस्कृत नाटकोंमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके मानव-चरित्रका परिचय नहीं मिलता, केवल मानसिक-आन्तरिक भावोंके सूक्ष्म रूपका विस्तृत परिचय मिलता है। इस भाव-प्रधानताके कारण इन नाटकोंमें नाटककी अपेक्षा काव्यका अधिक आनन्द आता है; और कई जगह तो ऐसा भी देखनेमें आता है कि नाटकका पात्र नहीं, किन्तु उसके रूपमें कवि ही अपने-आपको अभिव्यक्त कर रहा है। इन नाटकोंके पात्र और उसकी उक्तियोंमें वह अभिन्न—निकटतम एकात्म्यता—नहीं अनुभव होती, जो यूरोपीय नाटकोंमें होती है। यूरोपीय नाटकोंमें पात्रोंके चित्रणमें कविका हाथ स्पष्टतया नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु भारतीय नाटकोंमें कविका हाथ साफ़ दीख जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि भावोंको पूर्णतया निश्चित करना ही संस्कृतके कवि अपना मुख्य लक्ष्य समझते हैं, शेष पात्र तो उसके साधनमात्र ही समझे जाते हैं। इसलिए इनमें व्यक्तिकी विशेषताकी प्रधानताका उतना मूल्य नहीं है, जितना भावोंकी विशेषताकी प्रधानताका। हाँ, इस बातपर अवश्य ध्यान रखा जाता है कि जिस व्यक्तिके द्वारा उस भावका परिदर्शन किया जा रहा हो, वह उसके योग्य और अनुरूप होना चाहिए।

कई लेखक और टीकाकार शकुन्तलाको शृंगार-रसका प्रधान नाटक कहते हैं, परन्तु हम समझते हैं कि

श्रृंगार-रसके होते हुए भी यह नाटक इस रसका नहीं किन्तु प्रधानतया करुणा-रसका है। यह प्रायः कहा जाता है कि संस्कृत-भाषामें महाकवि भवभूतिका उत्तर-रामचरित करुण-रसका प्रधान नाटक है ; परन्तु हमारी तुच्छ सम्मतिमें कालिदासका यह नाटक केवल करुणाका ही नहीं अपितु निष्ठुरतम, अमानुषीय करुण-रसका अपूर्व नाटक है। हम नहीं समझते कि करुणाका ऐसा कठोर निष्ठुर रूप संसारके किसी अन्य नाटकमें दिखलाया गया है। यद्यपि इस नाटकको कविने सुखान्त ही किया है, परन्तु सुखान्त-रूपमें यह एक महान दुःखान्त नाटक है। दुःखान्त नाटक (Tragedy) का तात्पर्य यह समझा जाता है कि अन्तमें किसी प्रकारकी हत्या हो, चाहे वह अपनी हो या दूसरेकी।* अंगरेज़ीके साहित्यकार प्रायः दुःखान्त नाटक (Tragedy) की यही व्याख्या करते हैं। परन्तु नाटकको दुःखान्त बनानेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसीकी या अपनी ही हत्या की जाय। जिस प्रकार मनुष्य जीवित रहता हुआ भी ऐसी स्थितिमें रह सकता है कि उसका जीवन मृत्युकी अपेक्षा भी अधिक दुःखप्रद और भयानक हो, इस प्रकार दुःखान्त नाटक बिना हत्याके भी ऐसे दुःखकी सृष्टि कर सकता है, जो उस हत्यासे भी अधिक दुःखपूर्ण और निराशाको उत्पन्न करनेवाला हो।× कालिदासने 'शकुन्तला' नाटकको सुखान्त बनाकर भी जिस दुःखकी सृष्टि की है, वह—इस सुखका परदा पड़ जानेके बाद भी—किसी भी तरह ज़रा भी कम नहीं होता। इस सुखमें यद्यपि नायक और नायिकाका अन्तमें स्वर्गमें सम्मिलन हो गया है ; परन्तु जैसे उस स्वर्गके गवाक्षमें से वह अतीत दारुण दुःख झाँकता-सा रह जाता है, और वह एक ऐसे प्रश्नके रूपमें मनुष्यके हृदयके सम्मुख आता है, जिसका उत्तर देना असम्भव-सा प्रतीत होता है। इस नाटकका परदा गिरा तो सुखपर ही है ; परन्तु जहाँ यह पूरी तरहसे उठा है, वहाँ तो केवल दुःख ही दुःख दिखाई देता है।

साधारण तौरपर समालोचक इस नाटकके चतुर्थ अंकको सबसे अच्छा और करुणापूर्ण कहा करते हैं, क्योंकि उसमें इस महाकविने बेटीकी बिदाईके करुणामय दृश्यको प्रदर्शित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि बेटीकी विदाई एक बड़ी दुःखमय और करुणापूर्ण घटना होती है। एक ओर माता-पिता हमेशाके लिए अपने जीवनके एक 'अंग' से विदाई ले रहे हैं, और दूसरी ओर कन्या अपने माता-पिता, अपने सहवासियों और उस घर तथा स्थानसे जहाँपर उसने अपना समस्त बाल्यकाल व्यतीत किया था, हमेशाके लिए छुट्टी ले रही है। जीवनकी यह एक ऐसी विषादपूर्ण और महान घटना होती है कि शायद ही कोई ऐसा कठोरहृदय व्यक्ति होगा, जिसकी आँखोंसे ऐसे अवसरपर भी आँसुओंकी धारा न बहने लग जाय। कालिदासने 'बेटीकी विदाई' के दृश्यको स्टेजपर लाकर जिस स्वाभाविक मार्मिकतासे दिखाया है, वैसा कोई अन्य कवि दिखा सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। परन्तु हमारी तुच्छ सम्मतिमें इस अंकमें कविने करुणाका वह व्यथापूर्ण दृश्य नहीं दिखाया, जो उसने इस नाटकके पाँचवें अंकमें दिखाया है। शकुन्तला नाटकका चौथा अंक करुणात्मक है, परन्तु पाँचवाँ अंक तो निष्ठुरतम, निर्दय और अमानुषीय करुणासे भरा हुआ है। यह वह अंक है, जिसको पढ़कर और देखकर साक्षात् करुणा भी रोने लग जायगी। माता-पितासे जब लड़की बिछुड़ती हैं, तो उसके माता-पिताको यह आनन्द भी होता है कि लड़की अपने प्रियतमके घर—अपने घर—जा रही है। इसके लिए उसे अनेक प्रकारके अखंड सौभाग्यके आशीर्वाद दिये जाते हैं, और लड़कीको भी जहाँ माता-पितासे

---

* Tragedy=A fetal and mournful event; Any event in which human lives are lost by human violence, more especially by unauthorised violence. webster Dictionary.

× जैसे कि रवीन्द्रनाथकी 'कुमुदिनी'। —सम्पादक

अलग होनेका दुःख होता है, वहाँ उसके हृदयके अन्तरतम प्रान्तमें एक हर्षमय उल्लास अपने प्रियतमके पास जानेका होता है। इसमें आनन्दकी इतनी अधिक अधिकता होती है कि वह इस समस्त दुःखमें एक ऐसे वृहत् आनन्दका संचार कर देती है कि वहाँ करुणामें भी एक प्रकारके काव्यमय आनन्दका सम्मिश्रण हो जाता है। यदि वह दुःख भी है तो ऐसा दुःख है, जिसका किनारा अत्यन्त स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर हो जाता है; परन्तु पाँचवें अंकमें इस महाकविने जिस निष्ठुर दुःखको स्टेजपर लाकर खड़ा कर दिया है, उसका कम-से-कम उन अवस्थाओंमें तो कहीं अन्त ही दिखाई नहीं पड़ता। शायद इस पृथिवीपर उस दुःखका अन्त नहीं हो सकता था, इसलिए कविने इस दुःखका अन्त स्वर्गमें ले जाकर किया है। इस दुःखकी तो कल्पना करने मात्रसे दुःख होता है।

इस पाँचवें अंकमें शकुन्तला अपने पतिके घर पहुँचती है। उस पतिके, जिसने कि उसे अपने हृदयके प्रेम संसारकी एकच्छत्र रानी बना दिया था, जो उसके लिए ऐसा हो गया था जैसे कि दूसरे शरीरमें श्वास लेनेवाली इसकी अपनी ही आत्मा। वह अपने तपोवनके माता-पितासे बिछुड़कर—जिनका दुःख कि अभी उसके हृदयमें बिलकुल ताज़ा है—अपने ऋषिपिताके दो शिष्यों और तपस्विनी माताके साथ राजा दुष्यन्तके दरबारमें पहुँचती है। उसके हृदयमें तरह-तरहकी प्रेममयी उमंगें उठ रही हैं; परन्तु राजाके सामने पहुँचनेपर प्रेमकी बातें तो दूर रहीं, वह उसे पहचानता तक नहीं! उसे देखकर वह सोचने लग जाता है कि यह कौन है? जिसके साथ अभी कुछ दिन पहले वह सब-कुछ भूलकर प्रेम-क्रीड़ा करता फिरता था, जिसके साथ उसने उसके ऋषिपिताकी आज्ञा बिना लिये ही अपने राजत्वसे विश्वास पैदा करके गान्धर्व-विवाह कर लिया था, आज जब यह अपने अन्दर उसके 'तेज'को धारण किये-हुए उसके सम्मुख आती है, तो वह विचारमें पड़ जाता है कि यह कौन है! जो राजा छुप-छुपकर उसपर अपनी आँखें गड़ाता फिरता था, आज उसके अपने सामने आनेपर भी अपने हृदयमें प्रसन्नता तो दूर रही, किसी तरहके भावकी अनुभूति ही नहीं करता। यह समस्त लहराता हुआ प्रेम-सिन्धु इतनी जल्दी इतना सूख गया कि उसकी एक बूँद भी अवशिष्ट न रही!

अपना ही हृदय 'अपने' को पहचान नहीं सकता और अब उसका परिचय देना पड़ता है! ऋषिके शिष्य राजाको उसका परिचय देते हैं कि यह आपकी पत्नी शकुन्तला है। परन्तु राजा जैसे कुछ समझता ही नहीं, और पूछने लग जाता है—'एं! यह बात क्या!' शकुन्तला अपने मनमें यह कहती है कि यह बोल रहा या आग बरसा रहा है।* उसकी तपस्विनी माता यह समझती है कि शायद शकुन्तलाके मुँहपर परदा पड़ा रहनेकी वजहसे राजा इसको पहचानता नहीं है, इसलिए वह उसके मुँह परसे परदा हटा देती है। उसे क्या मालूम कि सच्चा परदा तो राजाके हृदयपर पड़ा हुआ है, इसलिए उसके मुँहसे परदा हट जानेके बाद भी वह उसे पहचानता ही नहीं। अब शकुन्तला निराश होकर सोचती है कि जब वह मुझे पहचानते तक नहीं, तो उन्हें अपने उस प्रेमकी याद दिलानेसे लाभ ही क्या? फिर भी 'मरता क्या न करता', इसलिए वह साहस करके उसे बीती प्रेम-कथाकी स्मृतियोंकी एक-एक करके याद दिलाना प्रारम्भ करती है; परन्तु राजा टससे मस नहीं होता। वह कहने लग जाता है कि ये सब तुम्हारी ही बनाई हुई बातें हैं। अब ऋषिकी पत्नी गौतमी चिन्तामें पड़ जाती है कि क्या करना चाहिए। ऋषिके चेले कहते हैं कि हमारा काम तो शकुन्तलाको यहाँ पहुँचा देना था, अब उसका पति उसे रखे या न रखे, यह उसकी इच्छापर निर्भर है। यह कहकर वे वहाँसे चल पड़ते हैं। हताश होकर शकुन्तला उनके पीछे जाना चाहती है परन्तु वे उसे धमका और डाँट बता कर कहते हैं—"निर्लज्जे! तू स्वतन्त्र होना चाहती

* पावकः खलु वचनोपन्यासः।

है ! अगर तू वैसी ही है जैसा कि राजा कहता है, तो तुझे लेकर तेरा पिता क्या करेगा ? तू तो अपने कुलके लिए अभिशाप रूप है। और यदि तू सच्ची है और तेरा आचरण पवित्र है, तो तेरे लिए पतिके घरमें नौकरानी बनकर रहना भी अच्छा है।''

पहले तो पहचानना ही नहीं, फिर परिचय देनेके बाद भी न पहचानना, फिर पर्दा उठनेके बाद मुँह देखकर भी न पहचानना, फिर प्रेम-स्मृतियाँ सुननेके बाद भी न पहचानना और किसी भी प्रकार अपने घरमें रखनेकी असमर्थता दिखाना और फिर उसके अपने पितृगृहके लोगोंका भी अपने घरमें रखनेसे इनकार कर देना---इनमें से एक-एक सीढ़ी करके मानो करुणाकी नदी ऊपर उठती आती है और अन्तमें अपने अन्दर सबको बिलीन कर लेती है।

पितृगृहके लोगोंके इनकारने तो कठोरताकी पराकाष्ठा कर दी है। इस अन्तिम अवहेलनाके बिना शायद करुणा किसी प्रकार इतनी पूर्णतासे निर्दय न बन सकती। इसके बारेमें यह कहा जा सकता है "This was the unkindest cut of all." (यह बात सबसे अधिक क्रूरतापूर्ण है)। अब शकुन्तला किधर जाय। उसे न पति रखनेको तैयार है और न पितृकुलके लोग। गर्भवती शकुन्तलाको एक ओरसे उसका पति ठुकरा देता है और दूसरी ओरसे उसके अपने घरवाले लोग उसे ठोकर मार देते हैं। बेचारी पतिके होते हुए पतिहीन और माता-पिताके होते हुए मातृपितृ-विहीन हो गई ! हम नहीं जानते कि किसी और कविने स्टेजपर एक प्रेमिकाके इस तरह आश्रयहीनतासे ठुकराए जानेका रूप प्रदर्शित किया है। शकुन्तलाका कोई सहारा न रहा। वह धाड़ें मार-मारकर रोने लगी। मालूम होता है कि करुणाको इतनी अधिक निर्दय बनाकर कवि भी इस दृश्यको देख नहीं सका, और इसीलिए उसने इसे अपनी माता अप्सरा द्वारा स्वर्गमें उठा लिया। इस अंकके अन्तमें दुष्यन्तके ''बलबत्तु दूयमानं·······हृदयम्'' शब्दोंसे जैसे वह अपने ही बलपूर्वक दुखते हुए हृदयका परिचय दे रहा है।

कविने अपनी नायिकाको तपस्वीके तपोवनसे इसीलिए चुना है कि उसकी सरलता, असन्दिग्ध पवित्रता और नागरिक जीवनसे अपरिचय उसकी इस करुण-कथाको और भी करुणतम बना दे। शकुन्तलाका सौन्दर्य-वर्णन, उन दोनोंके हृदयके स्वाभाविक आकर्षणमय असीम प्रेमका चित्रण, उसका गर्भवती होना पाँचवें अंककी निर्मम कठोरताको और भी अधिक निष्ठुर बना देता है और। और फिर इसपर 'दुर्वासाके शाप'के कारण यह निर्दयता बिलकुल भोली बनी हुई है, अपनेको जानती ही नहीं है और इसलिए वह एक मशीनकी तरह जितनी क्रूरतम हो सकी है, हो गई है। यदि इसे अपनी इस कठोरताका, हृदयहीनताका, रत्तीभर भी अनुभव हो जाता, तो इसमें शायद इस निष्ठुरतम करुणाका ऐसा व्यथापूर्ण चित्र कवि इस तरह अंकित न कर सकता।

हमने ऊपर इस कथानकको इसलिए ज़रा विस्तारके साथ लिखा है कि जिससे हम अपनी बातको पूर्णतया स्पष्ट कर सकें। क्या चतुर्थ अंककी करुणा इस पंचम अंककी करुणाके सामने कोई विशेषता रखती हैं ? वह करुणा तो मानो इस करुणाकी एक भूमिका है। पंचम अंककी करुणाके सामने चतुर्थ अंककी करुणा तो पानी-पानी हो जाती है।

छठे अंकमें जब राजा दुष्यन्तको अंगूठी मिलनेके बाद शकुन्तलाकी याद हो आई है, तब ऐसा मालूम होता है कि उसके रोनेमें कविके आँसू भी मिल गये हैं। एक जगहपर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि स्वयं दुष्यन्तके मुखसे कह रहा है---

> ''इत: प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता,
> स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
> पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती,
> मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥''

''मैंने तो शकुन्तलाका निराकरण किया ही था,

मैंने तो उसे ठुकराया ही था, तब वह अपने सम्बन्धियोंके—पितृकुलके लोगोंके—पास जाने लगी। तब उन पिताके समान गुरुके शिष्योंने गुर्राकर ज़ोरसे कहा—"खबरदार! जो इधर आई।" इस प्रकार उन्होंने भी उसे ठुकरा दिया। तब उस बेचारीने फिरकर जो मुझ क्रूर पाषाणहृदयपर दृष्टि डाली, वह दृष्टि विषसे बुझे तीरकी तरह मेरे हृदयको जला रही है।"

यही 'अश्रुभरी दृष्टि' कालिदासकी 'शकुन्तला' है। यही पति और पितृकुल दोनों ओरसे ठुकराई हुई मूर्ति, जिसके लिए संसारमें कोई आश्रय नहीं रहा, कालिदासकी 'शकुन्तला' है। यह 'शकुन्तला' स्त्री-जातिकी महान् असहायताका—सर्वथा बलहीन अबलापनका—वह जीता-जागता चित्र है कि जिसे देखकर मूर्त्त करुणाकी आँखोंसे भी अविरल अश्रुधारा बहने लग जाती है। इस 'अश्रुभरी दृष्टि' को देखकर कालिदासके हृदयसे जो करुणाका स्रोत फूट निकला है, वही इस नाटकके रूपमें परिवर्तित हो गया है। प्रकृतिने स्त्री-जातिके अन्दर कुछ ऐसी सीमाएँ (कमज़ोरियाँ) उत्पन्न कर दी हैं कि जिनसे मनुष्य लाभ उठा लेता है। हम नहीं कह सकते कि इस अबलापनपर अब तक भी पूर्ण विजय हो सकी है या नहीं। जिस सीमाको कविने इस नाटकमें चित्रित किया है, वह अबलापनकी चरम सीमा है।

कालिदासने जहाँ-जहाँ भी अपने काव्योंमें करुणा चित्रित की है, उनमें दो ही दृश्य हैं, जिनको पढ़ते हुए यह अनुभव होता है कि उसकी वाणी और उसकी अपनी आँखोंसे एक साथ अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। इनमेंसे एक दृश्य तो शकुन्तलाका है। पाँचवें अंकमें कठोरतापूर्ण इस क्रूर करुणाके दृश्यको दिखाकर छठे अंकमें उसने इसकी प्रतिक्रियामें दुष्यन्तको जिस प्रकार रुलाया है, उसे पढ़नेसे कई जगह ऐसा अनुभव होता है कि जैसे राजाको आँखोंसे कविके हृदयके आँसू निकल रहे हैं। दूसरा दृश्य रघुवंशके चौदहवें सर्गमें है। राजा रामचन्द्रने सीताको मिथ्या अपवादके भयसे लक्ष्मणके द्वारा एक जंगलमें चुपचाप निर्वासित कर दिया है। सीताको जंगलमें ले जाकर जब लक्ष्मण निर्वासनका समाचार सुनाता है, तब वह दुःखमें बेहोश होकर गिर पड़ती है और जब वह होशमें आती है, तो उसका होशमें आना बेहोशीसे भी अधिक कष्टप्रद होता है—"मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः"। लक्ष्मणके जानेके बाद जब सीता 'कुररी'की तरह रोना प्रारम्भ करती है, तब उसके रोनेमें कविके हृदयके रोनेकी सिसकियाँ स्पष्ट सुनाई पड़ती हैं। इस रोनेमें जो करुण पूर्ण व्यथा है, उससे उसने समस्त जंगलको रुला दिया है।

"नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः, दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव, मत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥"

उसके रोनेसे दुःखी होकर मोरोंने नाचना छोड़ दिया, वृक्ष फूल (मानो आँसुओंके रूपमें) गिराने लगे और हरिणियोंके मुँहसे घास छूट गई। सारा जंगल उसके आर्तस्वरमें रोने लग गया। सीताके रोनेमें न केवल चारों ओरका समस्त वातावरण रो उठा है, अपितु उसमें कविका करुण क्रन्दन भी सुनाई पड़ता है। उसके इस सर्गमें रोती हुई करुणाका जो अश्रु-प्रवाह है, वही इस नाटकमें 'शकुन्तला' के रूपमें स्टेजपर मूर्तिमान् हो गया है। इन दोनों दृश्योंमें स्त्री-जातिके चरम अबलापनका रूप ही कविने प्रदर्शित किया है।

कई सज्जन समालोचक इसपर यह आपत्ति उठायेंगे कि 'शकुन्तला' को न पहचाननेमें दुष्यन्तका कोई दोष नहीं था। यह तो दुर्वासा ऋषिका शाप था जिसके कारण राजा दुष्यन्त अपनी प्रियतमाको पहचान न सके। हम इस लेखमें दुष्यन्तका दोष था या नहीं, इसपर विचार नहीं करना चाहते, यद्यपि महाभारतको पढ़नेसे दुष्यन्त इस दोषका अपराधी प्रतीत होता है। महाभारतमें लिखा है कि राजा दुष्यन्त शकुन्तलाको देखकर पहचान गया, परन्तु

पहचानकर भी उसने यही कहा कि मुझे नहीं मालूम कि यह कौन है ?

"सोऽथ श्रुत्वैव तद्वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि,
अब्रवीन्न स्मरामीति ...."

इस लेखमें हम दोषके प्रश्नको उठाना नहीं चाहते। प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकारके प्रेमकी स्मृतिपर पर्दा पड़ जाना सम्भव है ? क्या इस प्रकारके प्रेमको याद दिलानेके लिए अंगूठी जैसी क्षुद्र वस्तुओंकी आवश्यकता है ! यह तो ऐसा ही है कि जैसे एक प्रकाशमान् दीपकको दिखानेके लिए एक दूसरे दीपककी आवश्यकता हो ! इससे अधिक आश्चर्य और दु:खकी बात क्या होगी कि शकुन्तलाको देखकर उसे शकुन्तलाका स्मरण नहीं होता, परन्तु अंगूठीको देखकर होता है, मानो वह अंगूठीको तो पहचानता था, परन्तु शकुन्तलाको नहीं ! इस प्रेमको याद दिलानेके लिए साधनकी आवश्यकता होना स्वयमेव इस घटनाको दु:खमयी बना देता है ।

यद्यपि कालिदासने 'दुर्वासाके शाप' द्वारा अंगूठीकी सहायतासे शकुन्तलाकी स्मृति दिलाकर दुष्यन्तको इस अपराधसे बचा लिया है और वह इस कारण अपने नाटकको सुखमें पर्यवसित करके फिर जीवनकी साँस ले सका है, तो भी जो घटना हो गई है, वह उसके हृदयमें ऐसी चुभ रही है कि उससे इसकी ओर इशारा किये बिना नहीं रहा जाता। छठे अंकमें सानुमती अप्सराके मुखसे मानो कवि चुपचाप कह रहा है— "संमोह: खलु विस्मयनीय: न प्रतिबोध:" इस बातपर आश्चर्य नहीं है कि अब तेरी स्मृतिपर से शकुन्तलाके विषयमें पर्दा उठ गया है, आश्चर्य तो इस बातपर है कि तेरी स्मृतिपर पर्दा पड़ ही कैसे गया था। फिर सातवें अंकमें स्वर्गके हेमकूट पर्वतपर अप्सराओंके यहाँ जब राजा दुष्यन्त अपने पुत्रको और फिर एक वेणी, दु:खी शकुन्तलाको देखता है और उसके पैरोंपर गिरकर क्षमा-याचना करता है, तब शकुन्तला अपने पूर्व कर्मोंका इसे कारण बताती है, फिर पूछती है कि आख़िर मैं अभागिन आपको कैसे याद आई ? उस समय उसकी नज़र उस अंगूठीपर पड़ती है, जो उसकी उँगलीमें से गिर गई थी। राजा समस्त वृत्तान्त सुनाता है और फिर शकुन्तलासे अनुरोध करता है कि वह फिर उस अंगूठीको पहन ले। परन्तु उसके उत्तरमें शकुन्तला जो कुछ कहती है, वह भी बड़ा भाव-पूर्ण है।

"नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु।"

'मुझे अब इसका विश्वास नहीं रहा। आप ही इसे पहने रखिये।' इस प्रकार उसने उस अंगूठीको दंड दे दिया, यद्यपि यदि यह अँगूठी न मिलती, तो दुर्वासाका शाप भी न टलता। परन्तु जब प्रेमपर आवरण पड़ सकता है, तो फिर इन क्षुद्र वस्तुओंका भरोसा ही क्या ? जो प्रेम हृदयमें पहुँचकर अपनेको जीवनकी तरह स्वयमेव अनुभव न कराये, वह प्रेम भी क्या कोई प्रेम है ? प्रेमका प्रमाण अन्तरतम हृदय हो सकता है, न कि अँगूठी-जैसी क्षुद्र वस्तुएँ और जो प्रेम स्वयं एक स्मृति न बन जाय और उसे स्वयं दूसरी वस्तुओंके बलसे जागृत करना पड़े, उसे 'प्रेम' नहीं किसी और नामसे कहा जाना चाहिए। प्रेम तो अन्तर्हृदयसे रोम-रोममें फूटकर अपने-आपको स्वयमेव निरन्तर अभिव्यक्त करता है। क्या उसे बतानेके लिए किसी वाह्य प्रमाण (Certificate) की आवश्यकता है ! यह तो ऐसा ही है कि जैसे इत्रकी मस्त सुगन्धको इतर न बता सके और अत्तार बताये। यदि ऐसा हो, तो इससे अधिक प्रेमकी छीछालेदर और करुणापूर्ण कहानी और क्या हो सकती है ? प्रेमके विषयमें महात्मा और महाकवि कबीरके निम्न-लिखित शब्द बिलकुल सच्चे हैं :—

"प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परघट होय ;
जो पै मुख बोले नहीं, नैन देत हैं रोय।"

चाहे इस प्रेमकी स्मृतिपर पर्दा पड़नेका कारण दुर्वासाका शाप हो, या उसका अपना अमीरी चरित्र, परन्तु इस करुणाकी निष्ठुरतामें किसी प्रकारकी कमी

नहीं होती। इस प्रेमके छुप जानेसे जो वेदनापूर्ण करुणाका प्रलयकारी दृश्य उपस्थित हो गया है, उसे कविने दुर्वासाके शापके सहारे सुखके रूपमें परिवर्तित कर लिया है। परन्तु इस घटनासे हृदयपर जो गहरी चोट लगती है, उसके दर्दको यह सुख किसी तरह कम नहीं कर सका। मनुष्यके जीवनकी घटनाओंमें भाग्यकी जो युक्ति दी जाती है, उससे अधिक हमें इस शापकी युक्तिका कुछ मूल्य प्रतीत नहीं होता। कवि मानो इस महान दुःख-सागरसे पार होनेके लिए दुर्वासाके शापको एक सुरक्षित नाव बना लेता है। इस नावके सहारे धरतीके उस पार, स्वर्गमें, कवि उस सुखकी सृष्टि कर सका है, जो शायद वह इस ओर धरतीपर न कर सकता। इस सुखमय स्वर्गीय सम्मिलनमें एक ओर करुणाकी मूर्ति शकुन्तला है, और दूसरी ओर पश्चात्तापके दुःखसे उद्विग्न दुष्यन्त। दोनोंके हृदयोंमेंसे उनके प्रेमके प्रसाद और पुण्य-फल पुत्रको बीचमें रखकर वह इस शापके सहारे इस घटनाके दुःख-शल्यको निकाल लेता है। यह सुख इस धरतीकी मानवी वस्तु नहीं, किन्तु स्वर्गकी कल्पनामय दिव्य वस्तु ही हो सकती है। इस तरह यह नाटक कल्पित स्वर्गीय दिव्य रूपमें तो सुखकी सृष्टि कर सका है, परन्तु वास्तविक धरतीके मानुषी रूपमें वह उसी दुःखकी करुणापूर्ण कहानी ही बना रहता है। मानो सुखका स्वर्गीय प्रकाश आकाशसे इस धरतीकी दुःखमय निष्ठुर करुणाकी कहानीको चुपचाप आलोकित कर देता है। यही कारण है कि नाटकके अन्तमें उन दोनोंके प्रणय मिलन हो जानेके बाद भी वह करुण व्यथा चुभती रहती है और उसका आर्त्त स्वर हृदयमें गूँजता रहता है। हमें ऐसा अनुभव होता रहता है कि यद्यपि शकुन्तला और दुष्यन्तका मेल हो गया, तो भी संसारमें ऐसी दुःखपूर्ण घटनाओंके होनेकी तो आशंका बनी ही हुई है, और यह आशंका हमें न केवल दुःखी करती है, किन्तु हमारे हृदयोंमें एक प्रकारके भयका भी संचार कर देती है। हमारा हृदय सोचने लगता है कि यदि यह अँगूठी न मिलती तो? हमारी आँखोंके सामने कवि स्त्रियोंके उस चरम अबलापनके करुणतम दृश्यकी गहरी झलक दिखा देता है, जो शायद दुर्वासारूप दुर्भाग्यके शापसे इसी तरह ठुकराई गई है और जिनके लिए संसारमें कोई भी सहारा नहीं रहा है। इस प्रकार कालिदासने इस नाटकको सुखान्त बनाकर भी ऐसे चरम दुःखकी सृष्टि की है, जिसको देखकर सुख भी दुःखी-सा प्रतीत होता है। ऐसा मालूम होता है कि इस नाटकका रूप—बाह्य शरीर तो सुखका बना हुआ है, परन्तु उसके अन्दर जो आत्मा निवास कर रही है, वह ऐसे वेदनापूर्ण तीव्र दुःखकी है, जिसके श्वास-श्वासमें ऐसी सिसकियाँ भरी हुई हैं कि जिन्हें मनुष्यके हृदयके आँसू किसी भी प्रकार अभिव्यक्त नहीं कर सकते।
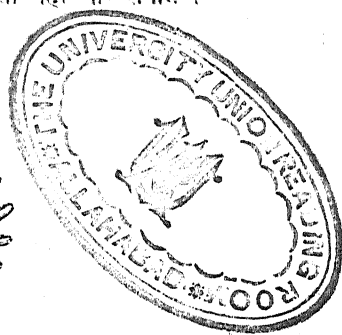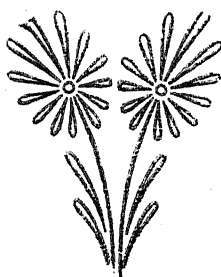
तीन महाद्वीपोंका दिग्दर्शन

श्री रामनारायण मिश्र, सम्पादक 'भूगोल'

[दिसम्बरके अंकसे आगे]

खारतूम एक नया शहर है। आलीशान मकान बहुत कम हैं। लेकिन नये ढंगके मकान बहुत बड़े बने हैं। अधिकतर सड़कोंपर बालू मिलती है। यही ब्रिटिश-सूडानकी राजधानी और 'गार्डन कालेज' है। इस शहरकी स्थिति बड़ी अच्छी है। शहर श्वेत-नील और ब्लू-नीलके संगमपर बसा है। दोनों ही नदियाँ यहाँ बड़ी गहरी हैं। उनमें स्टीमर चला करते हैं। संगमके पास स्थालकी सूरत हाथीकी सूँड़के समान है। सूँड़को अरबी भाषामें खरतूम कहते हैं। इसीसे शहरका यह नाम पड़ा। पुराना और अधिक बड़ा शहर ओमदर्मन है। यह नदीके दूसरे किनारेपर बसा है। अंगरेज़ी राज्यको उखाड़ फेंकनेके लिए मेंहदीने यहीं विद्रोहका झंडा खड़ा किया था। गोर्डन साहब और उनके साथी विद्रोहकी भेंट चढ़ गये। अपने समयमें मेंहदीका बड़ा मान था। यहाँके लोग समझते थे कि मेंहदीमें दैवी शक्ति है। खारतूम और ओमदर्मनके बीचमें ट्रामगाड़ी चला करती है। मैं खार्तूमके एक होटलमें ठहरा था। दूसरे दिन ट्रामगाड़ीपर सवार होकर ओमदर्मन देखने गया। मैं एक सड़कपर किसी ध्यानमें जा रहा था। इतनेमें मुझे किसीने हिन्दीमें पुकारा। घरसे हज़ारों मील दूर हिन्दीके शब्द कानमें पड़ते ही आनन्द और आश्चर्यसे शरीरमें बिजली-सी दौड़गई। आँख उठाते ही हिन्दुस्तानी चेहरे भी दिखाई दिये। फिर क्या था, इन भाइयोंने मुझे अपने यहाँ ठहरनेके लिए बाध्य किया।

यहाँ हिन्दुस्तानियोंकी कई दुकानें हैं। इन लोगोंका नगरमें बड़ा मान है। कईने अपने घर बनवा लिये हैं। कई घरोंके बच्चे गुजरातीके साथ यहाँकी भाषा मातृभाषाके समान बोलते हैं। सच तो यह है कि सूडानके व्यापारको बढ़ानेका श्रेय हिन्दुस्तानियोंको है। यहाँ कोई बड़ा शहर ऐसा नहीं है, जहाँ हिन्दुस्तानी धनी व्यापारी न हों। लेकिन सरकारकी नज़रोंमें इनकी क़द्र नहीं है। गोरे यूनानी आर्मेनियन और दूसरे लोग सरकारी दरबारोंमें आमन्त्रित किये जाते हैं, लेकिन धनी-मानी होते हुए भी हिन्दुस्तानियोंको कोई नहीं पूछता।

ओमदर्मनमें एकबार इच्छा हुई कि अफ्रिकाको पार करके केप-आफ-गुड-होपके रास्तेसे हिन्दुस्तानको लौट आऊँ। लेकिन कुछ भारी सामान केरोके एक होटलमें रखा था। यूरोप देखनेकी इच्छा भी तीव्र थी। इसलिए ओमदर्मनसे लौटकर केरो आया। यहाँसे एलेग्ज़ेन्ड्रिया गया। वहाँसे एक फ्रांसीसी जहाज़पर सवार होकर बेरूत गया।

सिकन्दरिया या एलेग्ज़ेन्ड्रियासे बेरूतका सफर सत्रह-अठारह घंटेमें समाप्त हो जाता है। बन्दरगाह कुछ उथला है, इसलिए जहाज़ ठीक किनारेपर नहीं लगता। किनारेपर ले जानेके लिए छोटी-छोटी नावें मिलती हैं। इधरके गाइड लोग बड़े लोभी हैं। पुलिसवाले भी बड़ी अन्धेरबाज़ी करते हैं। पासपोर्ट ठीक होते हुए भी मुसाफिरोंको तंग करते हैं। मुझे दैवयोगसे अंगरेज़ी जाननेवाला एक टूरिस्ट कम्पनीका नौकर मिल गया, उससे बड़ी सहायता मिली।

शहरकी ऊँची-नीची सड़कें बड़ी सुन्दर हैं। यह शहर तेज़ीके साथ बढ़ रहा है। यहाँ एक अमरीकन कालेज है। इसमें दूर-दूरके लड़के पढ़ने आते हैं। सिरियामें बड़ी लड़ाईके बाद फ्रांसीसी शासन हुआ था। जब तुर्कोंसे अरबोंने पीछा छुड़ाया, और फ्रांसीसी राज्य हुआ तो अधिकतर लोग खुश हुए, लेकिन उन्हीं दिनों एक कविने किसी जल्सेमें अपनी कवितामें अपने

देशवासियोंको चौकन्ना किया था। कविताके एक पदका अर्थ है—"लदे हुए गधेके लिए दोनों बोझ बराबर हैं। बोझ किसका लादा है, इससे उसे क्या लाभ ? इसलिए देशवासियो, आँखें खोलो।"

आजकल सिरियावाले फ्रांसीसी शासनसे सन्तुष्ट नहीं हैं। सिरियाके ड्रूस लोगोंके कई धार्मिक संस्कार हिन्दुओंसे मिलते हैं, वैसे वे मुसलमान हैं। बेरूत और अड़ोस-पड़ोसके स्थानोंको देखकर मैं यहाँके प्राचीन सूर्य-मन्दिर देखनेके लिए बालबक पहुँचा। यह मन्दिर जीर्णावस्थामें भी बड़ा आश्चर्यजनक है। यह बहुत बड़े पत्थरोंका बना है। ये विशाल पत्थर किस प्रकार इतने ऊपर पहुँचाये गये होंगे, यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। बालबकसे मैंने अलप्पोके लिए टिकट लिया। वहाँसे आगे चलकर मैंने टर्कीमें प्रवेश किया।

अब वायुमंडल एकदम निराला था। अभी तक मैंने अधिकतर पराधीन देश देखे थे। वहाँ शासक और प्रजावर्गमें बड़ा-भारी भेद था। टर्कीमें यह बात नहीं है। यहाँ एक स्वावलम्बी और प्रबल राष्ट्रका विकास हो रहा है। फौजी मुस्तैदी सब-कहीं दिखाई देती है। अपने देशकी रक्षाके लिए पुलिस बड़ी चौकन्नी रहती है; पर सबसे बड़ी बात यहाँ यह है कि राष्ट्रके बड़े-बड़े कर्मचारी अपनेको प्रजाका सेवक समझते हैं। यदि किसी गाँवमें किसी किसानका घर गिर जाय, तो नया मकान बनानेके लिए सरकारी ओवरसियर बिना फीस लिये ही उसे राय देता है। वह किसानको बतलाता है कि नये मकानमें कितनी खिड़कियाँ और दरवाज़े हों, और वह किस चीज़का बनाया जाना चाहिए। फल यह हुआ है कि टर्कीमें जहाँ पुराने मकान मैले, बेढंगे और रोगग्रस्त थे, वहाँ अब नये मकान एक ढंगके सुडौल और सुन्दर बन गये हैं। नये मकान यूरोपके किसी देशके मकानोंसे टक्कर ले सकते हैं।

टर्कीवालोंका रहन-सहन और पहनावा एकदम यूरोपीय बन गया है। उन्हें देखकर यह कोई नहीं कह सकता है कि वे यूरोपीय नहीं है; पर उनका हृदय एशियाई है। वे हिन्दुस्तानके साथ बड़ी सहानुभूति रखते हैं। उनकी समझमें यह नहीं आता कि हिन्दुस्तानी मुसलमान स्वाधीनताकी लड़ाईमें सबसे आगे क्यों नहीं रहते।

अंगोरा शहरमें मैंने दो दिन बिताये। यह शहर बड़ा नहीं है, लेकिन नये मकान बड़े ही शानदार हैं। गाजी मुस्तफ़ा कमाल पाशाका भवन सबसे ऊँची पहाड़ीपर है। शहरमें हथियार आदिके कई कारखाने भी चल रहे हैं। हवाई जहाज़ और कला-कौशलकी वृद्धिके लिए यहाँके लोग दूसरे देशोंके विशेषज्ञोंको बुलाते हैं। तुर्क लोग नई बातोंके सीखनेमें बड़ी दिलचस्पी दिखलाते हैं, लेकिन वे स्वीज़रलैण्ड, आस्ट्रिया आदि ऐसे छोटे देशोंसे शिक्षक बुलाते हैं, जिन्हें वे आसानीसे अपने देशसे निकाल सकें। प्रबल साम्राज्यवादी देशोंसे शिक्षक मगाना ये लोग ख़तरनाक समझते हैं। वे ऐसे देशोंके शिक्षकोंको पसन्द नहीं करते जो निकालनेसे न निकलें।

अंगोरासे मैंने स्तम्बोल (कुस्तुन्तुनिया) के लिए प्रस्थान किया। यह मार्ग भी बहुत ऊँचा-नीचा था। रास्तेमें कई सुरंग पड़ीं। बीच-बीचमें घास और गेहूँकी हरी-भरी घाटियाँ थीं। कहीं-कहीं फलोंके पेड़ भी मिलते थे। दूसरे दिन सबेरे ही रेलगाड़ी मारमोरा सागरके निकट पहुँच गई। इधर हरियाली बहुत थी। एक ओर समुद्र था, दूसरी ओर टूटी-फूटी लेकिन पेड़ोंसे ढकी हुई पहाड़ियाँ थी। यहाँका दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। प्रधान स्टेशनोंपर पुराने किले भी मिलते थे। डार्डनल-प्रणाली (जल-संयोजक) अधिक चौड़ी नहीं है। लेकिन इसका सैनिक महत्व बहुत अधिक है। लगभग दस बजे रेलगाड़ी हैदरपाशा स्टेशनपर रुक गई। दूसरी ओर जानेके लिए स्टीमर तयार था।

स्टीमरसे हैदरपाशा और स्तम्बोलका दृश्य बड़ा

सुहावना लगता है। कुछ ही देरमें स्टीमर किनारे आ लगा। बन्दरगाहपर बड़ी भीड़ थी। मेरे लिए भाषाकी भी बड़ी कठिनाई हो रही थी। इतने ही में अपने-अपने होटलोंका बिल्ला लगाये हुए कई होटलोंके प्रतिनिधि दिखाई दिये। मैंने एक यूनानी होटलको पसन्द किया और होटलके प्रतिनिधिके साथ मोटरपर सवार होकर होटलमें पहुँच गया। रास्तेमें एक हिन्दुस्तानी सज्जनसे भेंट हुई, यह हीरा जवाहरातका काम करते हैं। इनके मिल जानेसे बड़ी सुविधा हुई शहरको देखने, पासपोर्टपर विज़ा कराने और दूसरे कामोंमें इनसे बड़ी मदद मिली।

इस्तम्बोल शहरकी स्थिति बड़ी सुन्दर है, ऊँचे-नीचे बसे हुए मुहल्ले बड़े अच्छे मालूम होते हैं। यहाँकी चौड़ी सड़कोंके दोनों ओर आलीशान मकान हैं। ट्राम्बे और मोटरकारोंकी बड़ी भीड़ रहती है। शहरके एक तरफ अधिकतर ईसाइयों और यहूदियोंके मकान हैं, तुर्की और मुसलमान लोग दूसरी ओर बसे हैं। यहाँ बहुतसी देखने-योग्य चीजें हैं। सेंनसोफिया नामकी मसजिद दुनिया-भरमें प्रसिद्ध है। पहले यह ईसाई गिरजाघर था, पीछेसे विजयी मुसलमानोंने इसे मसजिदमें परिणत कर दिया। इस्लामी दुनियाँमें शायद ही कोई दूसरी मसजिद इससे टक्कर ले सके। इसी ओर खलीफ़ाका महल है। महलके एक कमरेसे दूसरे कमरेको जानेमें शक्तिशाली खलीफ़ाओंकी शानका पताबड़ी आसानीसे लग जाता है। उनके हीरा जवाहरातको देखकर यात्री दंग रह जाता है। सारा महल भलीभाँति देखनेमें कई घंटे लग जाते हैं।

इधर कई अजायबघर भी हैं। सैनिक-अजायबघर (Military museum) देखने योग्य है। इस अजायबघरमें कई सदियोंके हथियार रखे हुए हैं। जब-जब तुर्कोंने अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त की, तब-तब वे उनके कुछ हथियार भी छीन लाये। कई सदियोंमें इनका संग्रह होते-होते अब इनका एक अजायबघर बन गया है।

शहरसे बासफ़ोरसके लिए बराबर स्टीमर छूटता रहता है। वह जगह-जगह घाटोंपर ठहरता भी जाता है। स्टीमरकी यह यात्रा बड़ी मनोहर लगती है, लेकिन आने-जानेमें इसमें लगभग पूरा दिन लग जाता है। पहले इस ओर बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, फिर तुर्क लोगोंने इस शहरकी रक्षाके लिए मज़बूत किले बनवा दिये। इन्हें ये लोग हिसार कहते हैं।

तीन दिन ठहरनेके बाद मैंने वियनाका टिकट लिया; लेकिन शहरको छोड़नेके पहले पुलिसका विज़ा (आज्ञापत्र) लेना ज़रूरी है। इस विज़ाको लेकर मैं गाड़ीपर सवार हुआ। स्टेशनपर तुर्कोंकी भीड़ यूरोपीय भीड़से किसी बातमें कम न थी। अपने मित्रोंसे विदा माँगनेका ढंग भी एकदम यूरोपीय था। कुछ घंटेके सफ़रके बाद तुर्की हद समाप्त हो गई। पासपोर्ट और सामानकी जाँच करनेके लिए बलगेरियाके आफिसर लोग गाड़ीके अन्दर आ गये। चाँद और तारेकी मोहरवाले तुर्की लोग पीछे छूट गये। बलगेरियाकी पोशाक यूरोपीय होते हुए भी कुछ निराली है। इनका पुलिसमैन कमरबन्दमें एक लम्बी तलवार लटकाये रहता है। यह एक ही दो अंगुल ज़मीनसे ऊपर रहती है। इसके साथ-ही-साथ दूसरी ओर वह एक तमंचा भी लटकाये रहता है।

बलगेरियाके गाँव कुछ पुराने ढंगके हैं। वे बहुत सीधे-सादे हैं। खेती करनेका ढंग भी पुरानी चालका है, पर हराभरा दृश्य बड़ा मनोहर है। रेलगाड़ी मारितसर नदीके समानान्तर चलती है, पर जैसे-जैसे नदी दाहनी या बाईं ओर मुड़ती है, वैसे ही रेलवे लाइन नदीको पार करके सीधी हो जाती है। रास्तेमें बहुत ही छोटे स्टेशन मिले। संध्याके समय बलगेरियाकी राजधानी सोफियामें पहुँच गया। शहरका बाहरी भाग बहुत ही मामूली और मैला है। घर बहुत ही छोटे और खपरैलसे छाये हुए हैं, कई भागोंमें सुअर चरते हैं; लेकिन असली शहर काफ़ी अच्छा है। स्टेशन बड़ा नहीं है। इधर यात्री कम आते हैं, इसलिए यहाँ

होटलका पता लगानेमें कठिनाई पड़ती है। बलगेरियाकी भाषा भी आसान नहीं है। सौभाग्यसे रेलगाड़ीमें एक ऐसे यहूदी सज्जनसे भेंट हो गई थी, जो कुछ-कुछ अंग्रेज़ी जानते थे। उनसे पूछ कर मैंने कुछ मतलबके वाक्य लिख लिये थे ; साथ ही एक ऐसे भी सज्जन मेरे मित्र हो गये थे, जो अंग्रेज़ी नहीं जानते थे, लेकिन मुझे शहर दिखानेके लिए राज़ी हो गये थे। दोभाषियेके द्वारा इन्हें समझा दिया गया था कि मैं निरामिष भोजन करता हूँ, इसलिए ये मुझे एक शाकाहारी (Vegetarian) भोजनालयमें ले गये। ठहरनेके लिए होटल अलग था। इस होटलमें बड़ी सफ़ाई थी।

सोफियाका शाही महल और गिरजाघर बहुत प्रसिद्ध है। जब यहाँका प्रधान पादरी सुनहली पोशाक पहनकर और घंटा बजाकर पूजा करता है, तो यहाँके श्रद्धालु बड़े ध्यानसे उसकी ओर देखते हैं। छोटे-छोटे बच्चे दरवाज़ेके बाहर टिकट बेचकर किसी अच्छे कामके लिए पैसा इकट्ठा करते हैं। नहानेके लिए यहाँ एक अजीब चश्मा है। इसके ऊपर एक इमारत बनी हुई है। अन्दर कुछ-कुछ नीला गन्धकका पानी भरा हुआ है। इसके एक ओर गरम पानीके नल भी लगे हुए हैं, इसमें सब लोग नंगे नहाते हैं। यहाँके लोगोंका विश्वास है कि इस चश्मेमें नहानेसे त्वचाके रोग दूर हो जाते हैं। दिनकी गाड़ीसे मैंने सोफियासे बेलग्रेडके लिए प्रस्थान किया। इस गाड़ीमें दूसरे दर्जेका टिकट लगता था, साथ ही सोनेके गद्दे (Sleeping Car) के लिए अलग टिकट लेना पड़ा। यह मार्ग बहुत ऊँचा-नीचा और पहाड़ी था, पर हरियाली सभी जगह थी। बलगेरियाकी हद समाप्त होते ही नई भाषा शुरू हुई। सफ़र काफी लम्बा था। रातमें गाड़ी बलग्रेड पहुँची। भाषाकी कठिनाईको दूर करनेके लिए मैं यहाँके सर्वोत्तम होटल क्रालसरबिस नामके होटलमें ठहरा। इस होटलमें एक रात ठहरनेका किराया लगभग १५) होता है। पर होटल सचमुच बड़ा शाही है। कई मंजिल ऊपर कमरेमें पहुँचानेके लिए लिफ्ट लगा हुआ है। कमरेके अन्दर ही गरम और ठंढे पानीके नल हैं। यहाँकी सजावट एकदम शाही है।

बलग्रेड शहर सावा और दूना (Denube) के संगमपर बसा हुआ है। लेकिन अधिकतर अच्छे मकान सावाकी ओर हैं ; पार्क म्यूजियम, महल और बाजार बड़े सुन्दर हैं। शाही सड़क और पैदल चलनेवाले रास्तेके बीचमें छोटे-छोटे पेड़ और घासके मैदान हैं। यहाँके लोग इस घासके ऊपर नहीं चलते। ट्रामकार शहरके बाहर तक जाती हैं। इधर ही डेन्यूब नदीका प्राकृतिक दृश्य भलीभाँति देखा जा सकता है। इस शहरमें कई जातियोंके लोग हैं। बड़ी लड़ाईके पहले सरबिया एक छोटा देश था। लड़ाईके बाद आस्ट्रियाका राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, लेकिन इससे सरबियाको बड़ा लाभ हुआ। सरबियाका प्रदेश कई गुना बढ़ गया और समुद्र तक पहुँच गया। इस बढ़े हुए देशमें कहीं समतल उपजाऊ मैदान हैं तो कहीं ऊँची-नीची जंगली पहाड़ियाँ हैं। भिन्न-भिन्न भागोंमें सर्ब, क्रोट और स्लोवीन नामकी भिन्न-भिन्न जातियाँ रहती हैं। इनमें आपसमें बड़ी अनबन रहती है। लेकिन इन सबके प्रतिनिधि बलग्रेड शहरमें देखे जा सकते हैं। शासनकी बागडोर सर्ब लोगोंके हाथमें है। मोटा-झोटा काम दूसरी जातियाँ करती हैं। इस शहरमें दो दिन बितानेके बाद तीसरे दिन मैं बूदापेस्टके लिए चल दिया। हँगारीका देश, जिसे यहाँके लोग मेज्यार रिपब्लिक कहते हैं, एक समतल उपजाऊ मैदान है। यहाँके खेत बहुत ही लम्बे-चौड़े हैं। खेतके एक सिरेपर किसानका घर होता है। एक खेतमें एक घर मिलता है। बहुतसे लोग मिलकर गाँवमें एक जगह कम बसते हैं, लेकिन दूर-दूर बसे हुए अलग-अलग घरोंमें भी बालकोंकी शिक्षाका पूरा प्रबन्ध है। यहाँके देहाती किसान बराबर अख़बार पढ़ते हैं और बाहरी दुनियाका पूरा परिचय रखते हैं।

पहले यह देश आस्ट्रियासे मिला था और बहुत बड़ा था। बड़ी लड़ाईके बाद इस देशके कई भाग इस देशके पड़ोसी दुश्मनोंके हाथ लगे। लेकिन हँगारीके लोग अपनी जातिवालोंको दूसरी जातियोंसे शासित देखना पसन्द नहीं करते। मौका पाते ही यह लोग अपने छिने-हुए भागोंको फिर हथियानेकी कोशिश करेंगे। हँगारी किसानोंका देश है; लेकिन इसकी राजधानी बूदापेस्ट यूरोपके सर्वोत्तम नगरोंमें एक है। डेन्यूब नदी यहाँ बहुत चौड़ी और गहरी है। इसके बीच-बीचमें कई टापू हैं। एक टापू बहुत बड़ा है। इसमें पार्क, खेलके मैदान और भोजनालय हैं। शामको यहाँ दर्शकोंकी बड़ी भीड़ रहती है। नदीके दोनों किनारोंपर भी बड़े अच्छे मकान और भोजनालय हैं। नदीको पार करनेके लिए कई पुल बने हुए हैं। इनपर ट्रामकार और मोटरकार बराबर चला करती हैं। कई भागोंमें स्टीमर भी चलते हैं। यहाँसे वियनाको स्टीमर बराबर आया-जाया करते हैं। बूदापेस्ट इतना बड़ा और सुन्दर है कि यहाँ कई दिन बिताये जा सकते हैं। राजभवन, किला, पार्लमेन्ट, पार्क, म्यूज़ियम आदि यहाँ अनेक दर्शनीय वस्तुएँ हैं। किसानोंका देश होनेसे यहाँ एक खेतीका अजायबघर अलग है। यहाँ खेतीके सम्बन्धमें तरह-तरहकी बातें दिखाई गई हैं। खेतीके ढंग, गोपालनके तरीके, घरेलू धन्धे और दूसरे कामोंको समझानेके लिए यहाँ एक अत्यन्त उपयोगी म्यूज़ियम है। इसमें चक्कर लगानेके बाद किसानको बड़ी शिक्षा मिलती है।

बूदापेस्टका संग्रहालय भी अपूर्व है। इसमें पुराने पत्र लेख आदि ऐतिहासिक सामग्रीके पदार्थ बड़ी सावधानीसे रखे गये हैं। यह इमारत ऐसी है, जिसमें आग लगनेका डर नहीं है। कोई-कोई पत्र कई सदियोंके पुराने हैं। एक पत्र क्रामऊलके हाथका लिखा हुआ रखा है। इसके संचालकने बड़ी नम्रतासे मुझसे कहा, खेद है कि भारतवर्षसे हमें प्राचीन समयका कोई भी ऐतिहासिक पत्र न मिल सका।

यहाँके लोग बड़े सज्जन हैं, और भारतीयोंके प्रति बड़ी सहानुभूति रखते हैं। मैं जहाँ गया, वहाँ उन्होंने मेरा बड़ा स्वागत किया। इनके वयोवृद्ध लोग भी आतिथ्य-सत्कार दिखलानेके लिए सदा मेरे पीछे चला करते थे। मैं जब यहाँके विश्वविद्यालयमें भूगोलके अध्यक्षसे मिलने गया, तो उसने कहा—"मुझे अत्यन्त खेद है कि आपने समयसे सूचना न भेजी, जिससे विश्वविद्यालयवाले आपका उचित स्वागत न कर सके।" पर सच तो यह है कि इन लोगोंने मुझे बहुत ही आराम पहुँचाया। वे दो दिन तक लगातार मेरे साथ रहे, मेरे सामानको बढ़ता हुआ देखकर उसको हिन्दुस्तान भेजनेका भार अपने ऊपर ले लिया। इनसे विदा होनेमें मुझे ऐसा दुःख हुआ, मानो मैं अपने सगे भाइयोंसे अलग हो रहा हूँ।

बूदापेस्टमें लगभग एक सप्ताह ठहरनेके बाद मैं वियना गया।

क्या उर्दू विदेशी भाषा है?

श्री गुलाम मुस्तफा अन्सारी, लखनवी

क्या उर्दू विदेशी भाषा है? इस प्रश्नका उत्तर खुले हुए शब्दोंमें यह है कि उर्दू निश्चय ही एक स्वदेशी भाषा है। परन्तु कौनसी उर्दू? मीर और मिरज़ाकी उर्दू, मीर अनीस और मीर हसनकी उर्दू देशी भाषा है, या आजकलके नामनात्रके उर्दू अखबारोंकी उर्दू देशी भाषा है, जिसको एक बोले या लिखे, तो दूसरा समझ ही नहीं सकता? जैसे मिरज़ा ग़ालिबका यह शेर है—

"नक़्शे नाज़ बुते तन्नाज़ बा आग़ोशे रक़ीब,
पाये ताऊस पये खामये मानी मांगे।"

इस शेरकी भाषाको कोई भी हिन्दोस्तानी भाषा नहीं कह सकता, जिसमें एक शब्द 'मांगे' के सिवा और कोई भी शब्द देशी भाषाका नहीं, और जो शब्द काममें लाये गये हैं, वे भी फारसी व्याकरण ही के अनुसार इस्तेमाल किये गये हैं। इसके विरुद्ध मीर साहबका शेर है—

"बावलेसे जब तलक फिरते थे सब करते थे प्यार,
अक़्लकी बातें कहीं क्या हमसे नादानी हुई!"

इस पद्यको देखिये। इसमें केवल दो शब्दों 'अक़्ल' और 'नादानी'को छोड़कर, और कोई भी फ़ारसी या अरबीका शब्द नहीं है। फिर भाव कितना ऊँचा और भाषाकी सुन्दरताका तो कहना ही क्या। 'अक़्ल' और 'नादानी' भी ऐसे आसान शब्द हैं, जिनका समझना हिन्दोस्तानी बोले जानेवाले सूबोंमें ज़रा भी कठिन नहीं हैं। इस पद्यको भारतवर्षके किसी कोनेमें जाकर पढ़ दीजिए, बे-पढ़े-लिखे लोग भी आसानीसे मतलब समझकर इसका रस ले सकेंगे। इस मुक़ाबिले या तुलनासे मेरा यह मतलब नहीं है कि ग़ालिबके, जो फारसी तथा उर्दू भाषाके बहुत बड़े पंडित थे, विद्वान होनेमें मुझे कोई शंका है; अथवा वे जिस भाषामें कभी पद्य कह गये हैं, उसको सामने रखकर कविता करना या उस भाषामें लेख लिखना भाषाके विषयमें बहुत बड़ा पाप है। मिरज़ा ग़ालिब दोनों भाषाओंमें एक-सी कविता कर सकते थे, परन्तु उन्हें फ़ारसीसे बहुत ज्यादा प्रेम था, इसी कारण उनकी हिन्दोस्तानी भाषाकी कवितामें भी अनजानमें फ़ारसी तथा अरबीके शब्द बहुतायतसे आ जाते होंगे। फिर उनकी फ़ारसी कविता जितनी है, हिन्दोस्तानी कविता परिमाणमें उसकी चौथाई भी नहीं है। हाँ, जहाँ मिरज़ा साहबने फ़ारसीसे बचकर कहा है, वहाँ मीरकी भाषाका रंग नज़र आता है।

अब मैं आसानीके लिए यहाँपर लिखना उचित समझता हूँ कि उर्दूका जन्म कैसे हुआ। जब भारतवर्षमें फारसी—जिसमें अरबी और तुर्की शब्द भी मिले हुए थे—बोलनेवाले मुसलमान आये और उन्होंने भारतको अपना घर बना लिया, तो उन्हें यह आवश्यकता हुई कि भारतवासियोंके साथ व्यवहारके लिए कोई ऐसी भाषा निकाली जाय, जिसको दोनों आसानीसे समझ सकें, क्योंकि बिना इसके कोई काम ही नहीं चल सकता था। इसलिए पहले तो यह होता रहा कि मुसलमान लोग कुछ अपनी मातृभाषाके शब्द और कुछ इस देशकी प्रचलित भाषाके शब्द मिलाकर बोलते थे, जिसकी कोई तुक न होती थी। कभी कोई वाक्य फारसी व्याकरणके अनुसार बन जाता था और कभी हिन्दी व्याकरणके अनुसार, परन्तु अधिकतर हिन्दी व्याकरणसे ही काम लेना पड़ता था, क्योंकि इस नई भाषाकी बनावट हिन्दी-सी ही थी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मुसलमानोंने भारतके आचार-विचार सीखने आरम्भ कर दिये। इसका असर भाषापर भी पड़ा और वे फ़ारसी शब्दोंको छोड़कर उनकी जगह सुन्दर हिन्दी शब्दोंको लेने लगे। इस प्रकार उर्दूका जन्म हुआ। एक समय ऐसा भी आया, जब मुसलमान

साहित्यकार ठेठ हिन्दीकी लुनाईपर ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने इस भाषामें कविता और लेख लिखना आरम्भ कर दिया। इस प्रकारके मुसलमान साहित्यकारोंमें अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना, अमीर ख़ुसरो, रसखान, रसलीन, मुबारक आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

जब उर्दू एक पूरी भाषा बन गई, उस समय उसमें जितने बेतुके और बे-ज़रूरी विदेशी शब्द चल रहे थे, वे निकाल दिये गये, और वह हिन्दुस्तानकी शरीफ़ोंकी भाषा समझी जाने लगी। देहातोंकी भाषा गँवारी कहलाती थी। धीरे-धीरे देहात तथा शहरके भले आदमियोंमें उर्दू प्रचलित हो गई।

शुरूमें उर्दू-हिन्दीमें कोई ख़ास फ़र्क़ न था, पर बदक़िस्मतीसे एक बहुत बड़ी ग़लतीके कारण, यानी उर्दूकी लिपि विदेशी ही रहनेसे, बादको हिन्दी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ समझी जाने लगीं। फिर देशद्रोही सम्प्रदायवादियोंका ज़माना आया। उनका लाभ इसीमें था कि वे एक ही देशके रहनेवालोंकी एक ही भाषाको दो अलग-अलग भाषाएँ बनाये रखें। उन सूबोंके उर्दू अख़बारोंने तो और भी ग़ज़ब ढाया, जहाँकी भाषा उर्दू नहीं है। जैसे कोई अंगरेज़ी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाएँ सीखकर उनमें लेख लिखने लगता है, इसी प्रकार वहाँवाले भी उर्दू सीखकर उसमें कविता और लेख लिखने लगे। जो लोग 'हवाई-जहाज़' जैसे आसान शब्दकी जगह—जिसे सब समझ सकते हैं—'तैयारा' और हिन्दी शब्द 'जुगनू'की जगह 'किरमके शब ताब' (दो हाथका भद्दा शब्द), लिखकर भाषाको बिगाड़ें, और अंगरेज़ी शब्द Democracy को अरबी पत्रोंमें डिमोक्रीती देखकर नक़ल करनेमें न झिझकें, उनसे भाषाकी उन्नतिकी आशा क्या हो सकती है? यदि वे उर्दूको जीता ही छोड़ दें, तो बहुत है। फिर ज़्यादातर उनको ख़तावार भी नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि जो किसी अपराधको अपने अज्ञानसे पाप ही न समझे, उसे हम मूर्ख अपराधी ही कह सकते हैं; इसके सिवा और कुछ नहीं कह सकते। सबसे अधिक ज़िम्मेदारी हम लोगोंपर है, जो इस भाषाके मालिक हैं। यह माना कि लखनऊ और दिल्लीकी तबाहीके बाद उर्दूके सहायक न रहे, परन्तु ऐसे हरएक आदमीकी भी तो कुछ ज़िम्मेदारियाँ थीं, जो इस भाषाको अपनी भाषा कहता था। मगर अफ़सोस है कि हम लोगोंने अपनी ज़िम्मेदारीको पूरी तरह नहीं निबाहा।

बड़ी ख़ुशीकी बात है कि अब फिर कुछ जाग्रति हो रही है। दिल्ली और लखनऊवाले चौंकते हुए जान पड़ते हैं। इससे यह आशा की जा सकती है कि अन्धकारका समय बीत चुका और समझका सूर्य अपने प्रकाशसे फिर उर्दूकी अँधेरी दुनियाँको प्रकाशित करेगा। उर्दूके कुछ आचार्य लेखकों और कवियोंका ध्यान उर्दूको सरल और 'ठेठ हिन्दुस्तानी' बनानेकी ओर गया है। इस ठेठ हिन्दी-भाषाका क्या रूप होता है, इसके लिए हज़रत अनवर हुसैन 'आरज़ू' का एक लेख नीचे दिया जाता है, जिसे 'आरज़ू' साहबने दो-तीन वर्ष पहले लिखा था :—

एक कठिन रात

"तुम जीत रहो जिसके हाथों मरनेके सहारे जीते हैं
खाते हैं कलेजेपर चरके औ घूँट लहूके पीते हैं।

"दुःखोंकी मारी कामिनी, जो अपने छूटे हुए सुहागके ध्यानमें आठो पहर मुँह लपेटे कोनेमें पड़ी रहती थी, आज एक लिखा हुआ पुरज़ा हाथमें थामे, कलेजेसे लगाये, जीको ढारस देती हुई, पहाड़-सी रात टहल-टहलकर और तारे गिन-गिनकर काट रही है। आनेवाला दिन, जो उसके आँसुओंका उजाला है, मक्र चाँदनीका रूप भरभर सामने आता है, और पलक मारते ओझल हो जाता है। यही गोरखधन्धा है, जो एक भोला-भाली चाहतकी मतवाली लड़कीको सहारा देता हुआ, रातके अगले पहरसे पिछले पहर तक खींच लाया है। जगमगाते हुए सूर्यका ध्यान रहे-सहे धुँधलकेको भी पीछे ढकेलता चला जा रहा है। घरके रहनेवाले, पड़ोसके बसनेवाले अपने-अपने बिछौनोंपर

यक्षका चित्रांकन

[श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

'विशाल भारत'

गहरी नींदमें खर्राटे ले रहे हैं, और कामिनी है कि चुपचाप सारी अगनाईमें इधरसे उधर, उधरसे इधर आहर-बाहर लगाये हुए है। जिसकी आँखें नीचे तो देखती ही नहीं, वह कभी घरके किवाड़को देखती है, कभी जगमगाते हुए तारोंको घूर-घूरकर खाये जाती है। यह वही है, जो अबसे पहले इन्हीं तारोंको बड़े प्यारसे देख-देखकर हँसा करती थी। साड़ीके आँचलमें जुगनू पकड़-पकड़के बाँधती थी और तारोंको दिखाया करती थी। आज वह तारे उसके लिए दहकते हुए अंगारे बन गये हैं, जो कलेजा जलाये देते हैं। इसका बस नहीं कि उन्हें तोड़कर फेंक दे। सूरज तक हाथ नहीं पहुँचता कि उसे खींच लाये। रात किसी जतनसे काटे नहीं कटती। नींद है कि आँखोंसे कोसों दूर भागी हुई है। टहलते-टहलते जी ऊब गया। उलझन होने लगी। एक लम्बी-सी साँस खींची, जिसके साथ ही टपटप दोनों आँखोंसे आँसू टपकने लगे। घबराकर खुलते हुए भेदको साड़ीके आँचलमें छिपा दिया। मुड़-मुड़कर इधर-उधर देखने लगी कि किसीने देख तो नहीं लिया कि अचानक तारा टूटा और उसकी छूट धुँधलेको फाड़ती हुई कोठेकी छतपर पड़ी। कामिनी आँसू पोंछ चुकी थी कि एकाएकी इसकी आँखोंमें बिजलीकी-सी चकाचौंध हुई ; दिनकी धूप फैलती दिखाई दी। ढारस बँधी, धड़कन रुकी, आँसू थमे, कलेजेमें अंश हाथ-पाँवमें सकत आई। फिर पलक मारते ही इसके आसरोंका उजाला अँधेरेसे बदल गया। पल-भरमें सुहावना समा धोखेमें डालके आँखोंसे ओझल हो गया। इस दूसरे धचकेने कामिनीको निढाल कर दिया। कलेजेमें उछलनेकी सकत भी न रही। जी बैठने लगा ; डील-भरमें थरथरी पड़ गई ; पसीने छूटने लगे कि इस कठिन घड़ीमें साथकी सहेली जलायेकी साथी कमलकी लहराती हुई बत्ती भी पुकारी कि मुझे भी देख, 'मैं चली मैं चली' कहती हुई जहाँ सबको जाना है, चली गई। कामिनीने अबकी और गहरी साँस ली, ऊपरको देखा और बिगड़ीको सम्हारनेवालेसे लौ लगाई। ऐसी कठिन घड़ीमें तो उसे भी तरस आ जाता है। देखा कि तारे डूब रहे हैं। सूरजकी फूटती हुई सुनहरी किरन सुथराईसे तारोंके बिखरे हुए खलियानको बुहार-बुहारकर पच्छिमके गढ़ेमें फेंक रही है। रातकी उखड़ी हुई साँसके पिछले थपेड़ेने सारी जलती हुई बत्तियाँ बुझा दीं। अब कामिनीके मुरझाये हुए गालोंपर भी रूहत आई। ओठोंकी हलकी मुसकराहटने छेड़ा। सूरज देवताको पानी चढ़ाने चली ही थी कि घरके किवाड़ खुलनेका धड़ाका हुआ, और जिस देवतापर आप भेंट चढ़ जानेके लिए महीनोंसे बेकल थी, वह आता हुआ दिखाई दिया, उसके दर्शन हुए। पाँव छूनेको दौड़ी, पास पहुँची ही थी कि लहराकर गिर गई।"

देखिये, यही वह ठेठ हिन्दुस्तानी भाषा है, जो कई शताब्दियों तक हिन्दू और मुसलमानोंके दिलोंपर राज्य करती रही है, और आज भी इसमें वह ताक़त मौजूद है कि अपने खोये हुए राज्यपर फिरसे अधिकार कर ले। सिर्फ थोड़ेसे हिम्मतवालोंकी सहायता चाहिए।

अब लिपिके विषयमें अपनी समझके अनुसार कुछ लिखकर लेखको समाप्त करता हूँ। आजकल हमारे कुछ विद्वान नेताओंका विचार है कि एक लिपि करनेके लिए रोमन करेक्टर ले लिये जायँ। यह उनकी देशभक्ति है। परन्तु एक बात विचारणीय है। देवनागरी लिपि और रोमन लिपि दोनों ही लिखनेमें बराबर आसान हैं, मगर देवनागरी लिपिकी यह बड़ाई है कि उसमें जैसा बोला जाय, वैसा ही लिखा भी जा सकता है। रोमन लिपि इस बातमें देवनागरीका मुक़ाबला नहीं कर सकती, और न एक-एक अक्षरमें जैसे देवनागरीमें दोहरी-तेहरी आवाज़ें हैं, उसका ही मुक़ाबला कर सकती है—जैसे 'ढ', यहाँ देवनागरीमें सिर्फ एक अक्षरसे काम निकलेगा, लेकिन रोमनमें तीन अक्षर लगाने पड़ेंगे, जैसा कि फ़ारसी लिपिमें होता है। ऐसी हालतमें रोमन करेक्टर लेनेसे क्या लाभ है ?

अभी तक दुनियामें जितनी लिपियाँ मालूम हैं, उन सबमें देवनागरी लिपि परिपूर्ण है। हिन्दीमें दो-चार मात्राएँ लगाकर काम निकल जाता है, रोमन लिपिमें अनेकों मात्राएँ लगाई जायँ; तब मतलब हल होगा। जितने कागज़में रोमनका एक पन्ना छपेगा, उतनेके लिए देवनागरीका चौथाई पन्ना काफ़ी होगा। ख़ैर, फ़िलहाल इस बातको यहीं छोड़ देना चाहिए। जब लोगोंमें समझ पैदा होगी और हिन्दी शब्दोंकी तरहसे देवनागरी लिपिकी अच्छाइयाँ भी उनकी समझमें आ जायँगी, तब वे सब आपसे आप देवनागरी लिपिको अपना लेंगे।

भूकम्पके बाद

प्रो० मनोरंजन, एम० ए०

—१—

श्मशान है आज वहींपर जहाँ अभी थी चहल-पहल;
खंडहर हैं बस खड़े वहाँपर जहाँ खड़े थे दिव्य महल;
सहसा पृथ्वी काँप उठी, बस हुई पलक झँपनेकी देर;
आँखें खुलीं, सामने देखा लाशोंपर लाशोंका ढेर।

—२—

बिछुड़ गई प्यारी प्रियतमसे, बिछुड़ गये गोदीके लाल;
टूट गये हाथोंके कंगन, शून्य हुए सिन्दुरसे भाल;
अरे, अभी तो अलग हुए थे बदन चूमकर बारम्बार;
कौन जानता था क्षणमें ही होगा यह निष्ठुर व्यापार।

—३—

उजड़ गया बाज़ार बसा था, बिगड़ गया सारा शृंगार;
जहाँ हँसीकी थी मंजुल ध्वनि, आज वहीं है हाहाकार;
आज प्रलयकी धूल उड़ी, दिनमें ही हुआ तिमिरका राज;
भग्न भवनमें कितने ही अरमान पड़े सोते हैं आज।

—४—

घायल पड़े पुकार रहे हैं हाय, उन्हें पानी दे कौन ?
आया निष्ठुर काल आज भयसे सारे प्राणी हैं मौन;
है जीवित समाधि कितनोंकी कौन करे उनका उद्धार;
अब भी थर-थर काँप रहा है भयसे यह सारा संसार।

—५—

छाती दरक गई पृथ्वीकी, निकल पड़ी जलकी धारा;
चली आज प्लावित करनेको मानो विश्व जगत सारा;
दग्ध-हृदयकी छार बिछी है, हुई बालुकापूर्ण मही;
ज्वाल अग्निकी धधक उठी, है विकट प्रलयका दृश्य यही।

—६—

आज अमावसकी रजनीमें दीपकका भी नाम नहीं;
कहाँ जायँ, क्या करें माघकी विकट शीत है बेध रही;
दानोंके मुहताज बने, रहनेका भी न ठिकाना है;
भग्न भवनके पास बैठकर आज मसान जगाना है।

—७—

रहा नहीं वह मृदुल दृश्य नयनोंको सुख देनेवाला;
दलित कुसुम-सी पड़ी हुई है सुकुमारी मिथिला बाला;
वैशालीका आँगन सूना, सूना लिच्छवियोंका देश;
अंग-भंग हो गया कर्णका, रहा नहीं खँडहर भी शेष।

—८—

शस्य-श्यामला भूमि हमारी हाय हुई अब तो वीरान;
क्या न कभी फिर देखेंगे इन खेतोंमें लहराते धान ?
यह सीताकी जन्मभूमि, यह बुद्धदेवका पुण्य-प्रदेश;
हे प्रभु, क्या फिर बस न सकेगा मेरा यह उजड़ा-सा देश ?

'भ्रम'

श्रीमती कमलादेवी चौधरी
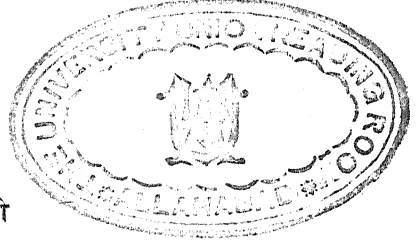
हम दोनोंमें धीरे-धीरे मित्रता हो गई, किन्तु मित्र होते हुए भी एक दूसरेके स्वभावसे भली-भाँति परिचित न थे। दूसरोंके लिए तो हमारी मित्रताका अनुमान करना बहुत मुशकिल था। एक घरमें रहते हुए भी एक दूसरेसे बहुत कम मिलते-जुलते, फिर भी मित्र थे। एक दूसरेके प्रति स्नेह था, अनुराग था और थी श्रद्धा। यह किस प्रकारकी मित्रता थी, इसपर विचार करनेकी शायद आवश्यकता न थी। सतीशके लिए मेरे हृदयके किसी कोनेमें यह अनुभूति छिपी बैठी थी कि वह सत्पुरुष है, उसके विचार पवित्र और उच्च हैं। उसके रहन-सहनमें अत्यन्त सादगी थी, मुँहपर पवित्रताकी आभा झलका करती। मुझे उसकी सादगी ही ऐश्वर्य-समान प्रतीत होती।

मेरी तीव्र अभिलाषा थी, सतीशके संसर्गसे लाभ उठाऊँ, परन्तु वह अवसर ही न देते। वे ऐसे पढ़नेके धुनी थे कि दिन रात पुस्तकों ही में तल्लीन रहते। मुझे कभी अपने साथ वे सिनेमा, थियेटर या सैरको ले जाते, तो मैं विशेष आनन्दका अनुभव करती; पर ऐसा अवसर विरले ही दिन मिलता। उन्हें पुस्तकोंसे अवकाश कहाँ?

मेरी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। जो कुछ पढ़ती, शीघ्र याद कर लेती। इस कारण पुस्तकोंके पन्ने अधिक न उलटती। पढ़नेसे जो कुछ बाक़ी समय बचता, सतीश ही के लिए खर्च करना चाहती। स्कूलसे आकर उनके लिए अपने हाथसे गरम-गरम नाश्ता तयार करती। कभी वह मुस्कराकर कह देते—"माधवी, तुम तो अन्नपूर्णा हो!" प्रशंसाके इस छोटेसे वाक्यसे परीक्षामें उत्तीर्ण होनेसे कम आनन्द न होता था। इस प्रकार मनकी श्रद्धा-भक्तिसे दिन बीत रहे थे।

मेरे पिताजी सम्पत्तिशाली थे। हम दोनों बहनोंके सिवा उनकी सम्पत्तिका अधिकारी कोई और न था। असमयमें ही माता-पिता मेरा भार बहन-बहनोईपर छोड़कर इस दुनियाको छोड़ चुके थे। परन्तु माता-पिता ही की भाँति मेरे भाई साहब (बहनोई) और बहनजी दोनों मुझसे स्नेह करते थे। उनके हृदयमें सदा मेरे प्रति करुणाके भाव जाग्रत रहते, वे सदा ऐसी कोशिश करते, जिससे मुझे माता-पिताका अभाव अनुभव न हो।

भाई साहबके अपने परिवारमें भी एक विधवा चाची तथा उनके पुत्र सतीशके सिवा और कोई न था। सतीश पढ़ाईके कारण हम लोगोंके साथ लखनऊ रहते, पर उनकी माताजी किसी प्रकार पूर्वजोंका स्थान छोड़नेको तैयार न थीं। इसलिए वह बाराबंकी ही में रहती थीं। वे आदर्श महिला थीं, उनके जीवनका ध्येय कंगाल और पीड़ितोंकी सेवा करना था। अपने सेवा-भावसे वे बाराबंकीके आसपासके गाँवोंमें भी प्रसिद्ध थीं। कदाचित् माता-पिताके गुण पुत्रमें भी विद्यमान थे।

[२]

शरदऋतुका आगमन था। शहरमें खूब बीमारी फैल रही थी। एक दिन मुझे भी ठंड लगकर बुखार आ गया। घरमें मैं और सतीश दो ही जने थे। भाई साहब बहनजीको लेकर सैरकी इच्छासे बम्बई गये थे। सतीश अपना पढ़ना-लिखना छोड़कर मेरी सेवा-सुश्रुषामें लग गये। क्षण-भरके लिए भी वे मेरी शय्याके पाससे हटते न थे। मुझे आश्चर्य होता, कैसे ये मेरे लिए अपना अमूल्य समय नष्ट कर रहे हैं, इन्हें तो पढ़ाईके आगे खाने-नहानेकी भी सुध न रहती थी।

पाँच दिन इसी हालतमें बीत गये, बुखार कम न हुआ। रातमें मेरे सिरमें बड़ा दर्द होने लगा, मैं पीड़ासे बेचैन थी, सतीशने पूछा—"माधवी, क्या बहुत ज्यादा दर्द है? सिर दाब दूँ?"

—"तुम सो रहो, कई रातोंसे जाग रहे हो।"

—"तुम दर्दसे बेचैन रहो और मैं सो जाऊँ?"

वे सिर दाबने लगे, मैं मना न कर सकी। उनके कर-स्पर्शसे मेरे सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई। जो अंकुर जड़ पकड़ चुका था, स्नेहका सिंचन पाकर उभर आया। मैं अपने हृदयके स्पन्दनको छिपा न सकी। वाणी मौन धारण

किये थी, परन्तु आँखोंने हृदय निकालकर सामने रख दिया। कई रातों बाद, मालूम नहीं कब, मैं सतीशके घुटने पर सिर रखकर सो गई। पूरी रात भी न बीती थी, प्रातः चार बजेके लगभग आँख खुली, तो देखा, सतीश उसी तरह बैठे हैं। मुझे जगा देखकर बोले—"अब तबीयत कैसी है?"

—"अच्छी है, तुम रात-भर क्या ऐसे ही बैठे रहे? ज़रा लेटे भी नहीं?"

—"मेरी चिन्ता न करो, दिनमें सो लूँगा, मुझे तो रात तुम्हारी दशासे बड़ी चिन्ता हो गई थी।"

—"हाँ, रात तकलीफ ज्यादा थी, अब तो तुम्हारी दयासे तकलीफ बहुत कम है।"

—"नहीं माधवी, दया तो तुम्हारी ही है।"

—"उलटी बात!"

वह कुछ बोले नहीं, मेरी ओर देखकर ज़रा मुस्करा दिये। न-मालूम उस दृष्टिमें कैसा आकर्षण था, मेरा मन जाने कैसा होने लगा। लज्जासे मेरे सारे शरीरमें रोमांच हो आया। पहले तो कभी मुझे ऐसी लज्जा न हुई थी! मैंने अपनी आँखें तकियेमें छुपा लीं।

× × ×

उस दिनसे हम दोनोंमें कुछ नवीनता आ गई थी। अपनेसे अधिक मैं सतीशमें परिवर्तन देखती। अब उन्हें मेरे पास बैठकर गपशप करना शायद पुस्तकोंसे अधिक रुचने लगा था। मैं स्वस्थ हो गई, फिर भी मेरी बीमारीका बहाना ले, वे कालेज न जाते। मुझे भी उनके पास बने रहनेसे बड़ी प्रसन्नता होती। पर दो ही चार दिनके अनुभवसे मैं यह अच्छी तरह समझ गई कि अगर हम लोगोंका यही ढंग बना रहा, तो पढ़ाई-लिखाई सब खतम हो जायगी। मैं मनमें सोचने लगी—बहनजी देखेंगी तो क्या कहेंगी? प्रेमके अर्थ तो यह नहीं है कि मनुष्य अपने आदर्शसे गिर जाय। जीवनके प्रत्येक कार्यमें संयम और साधनाकी आवश्यकता होती है। जिसमें शान्ति और धैर्यका अभाव है, वह अपनी मर्यादाका पालन कदापि नहीं कर सकता। प्रेम मर्यादाका परिपालक है, संहारक नहीं। मैंने निश्चय कर लिया कि जब तक विवाह न हो, हम लोग उसी तरह रहेंगे, जैसे अब तक थे।

[३]

एक दिन संध्याके समय मैं सतीशके कमरेकी सफ़ाई कर रही थी। रद्दी छाँटनेमें मुझे एक लिफाफेमें किसी परम सुन्दरी तरुणीका चित्र मिला, जिसे देखकर मैं एकाएक चौंक-सी पड़ी। सतीशके पास यह चित्र किसका हो सकता है! उन्हें तो चित्र एकत्रित करनेका व्यसन भी नहीं दीखता। कमरेमें महात्मा गांधी, तिलक आदिके दो-एक चित्रोंके सिवा और कोई चित्र न था। जितना ही सोचने लगी, उतना ही अधिक मन चंचल होने लगा। एकबारगी विचार उठा, हो सकता है कि किसीने अपनी कन्याका विवाह-सम्बन्ध स्थिर करनेकी इच्छासे यह चित्र भेजा हो। सतीशने इस अनुपम सौन्दर्यकी रूपराशिको क्यों ठुकरा दिया? ऐसा रूप विरले ही को प्राप्त होता है। मेरा मन कहने लगा—"शुद्ध प्रेमके आगे रूप कुछ भी सामर्थ्य नहीं रखता।" मेरे मनमें आनन्दकी लहरें बहने लगीं, ओटोंपर मुस्कराहट आ गई। इस तरुणीका परिचय जाननेको मन उत्सुक हो उठा। मैं उस पत्रको खोलकर पढ़ने लगी। बनारससे किसीने लिखा था—

"प्रियतम,

बड़ी लम्बी प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा प्रिय पत्र मिला। पत्र देरसे लिखनेका कारण तुमने लिखा है—'तुमने अपना चित्र क्यों नहीं भेजा?' लो, अब भेज रही हूँ, अब तो ऐसी घोर प्रतीक्षा कराकर दुखी न करोगे?

उफ! तुम बड़े निर्दयी हो, मेरे हृदयकी व्यथा क्या समझोगे? एक तो बहुत दिनोंसे दर्शनोंसे वंचित रख रहे हो और उसपर जल्दी-जल्दी चिट्ठी न लिखकर दूना दुख बढ़ा देते हो। जाओ, आज मैं भी और कुछ न लिखूँगी।

तुम्हारी—सरोज।"

पत्र पढ़कर मेरा सर चकरा गया, मैं वहीं ज़मीनपर बैठ गई। यह क्या, सतीशके पास ऐसा पत्र क्यों? कोई इनके पतेसे मँगाता, तो कम-से-कम लिफाफेपर उसका नाम तो होता। फिर अपना ऐसा गोपनीय पत्र क्यों किसीके पास छोड़ देता? कुछ बुद्धि काम नहीं देती, हो न हो, इसमें कुछ रहस्य है। मैं अपने भाग्य और भगवानको कोसने लगी। सतीशके प्रति अनेक प्रकारके कुविचार मेरे मस्तिष्कमें उठने लगे।

परन्तु फिर सोचने लगी, उनके चरित्रपर सन्देह करके मैं अनुचित कर रही हूँ। उनके आचरणमें कदापि कोई त्रुटि नहीं हो सकती। ऐसे देवतातुल्य पुरुषके लिए सन्देहका अंकुरित होना उचित नहीं है। मैं व्यर्थ ही चिन्तामें पड़ी हूँ, क्यों न अभी चलकर उनसे पूछ लूँ ? उनसे दुराव कैसा ? परन्तु दूसरे ही क्षण फिर वही भाव उत्पन्न होने लगे। इस दुविधामें पड़कर मन बहुत ही खिन्न हो गया, कोई भयंकर ज्वाला मेरे हृदयको जलाने लगी। बुद्धि कहती, सन्देहके प्रत्यक्ष प्रमाण सामने हैं; पर हृदय अपने दृढ़ विश्वासपर अटल था। सतीश, मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रही हूँ। कैसे मान लूँ कि तुम्हारा प्रेम शुद्ध प्रेम नहीं। विश्वासघात है ? कदापि नहीं। मेरे साथ तुमने तो कभी कोई कठोर व्यवहार नहीं किया।

मैं जानती हूँ, कितने दिनोंसे तुम मुझे चाहते हो; फिर भी जब तक मैंने अवसर नहीं दिया, कुछ भी प्रकट होने न दिया। इन्हीं विचारोंमें डूबते-उतराते रात बीत गई, मैं निश्चय न कर सकी कि सतीशसे कुछ पूछूँ या नहीं।

कई पत्र और मेरे हाथ लगे। अब सन्देहके यथेष्ट प्रमाण एकत्रित थे, फिर भी सतीशसे पूछनेका साहस न हुआ। मेरी सारी प्रसन्नता लोप हो गई। उदासी छिपानेकी बहुत कोशिश करती, पर छिपा न सकती। सतीश अवसर मिलते ही पूछते—"माधवी, तुम्हें हो क्या गया है ? किस चिन्तामें डूबी रहती हो ? मुझसे तो कुछ अपराध नहीं हो गया ? बात ही नहीं करती हो, जैसे मेरी सूरतसे डरने लगी हो। मुझसे तुम्हारा यह उदास चेहरा देखा नहीं जाता।"

मैं उलटा-सीधा उत्तर देकर भाग खड़ी होती। वह बात करनेकी ताकमें रहते, मैं मौक़ा मिलने ही न देती।

[४]

रातमें, दो बजेके लगभग, आँख खुल गई। देखा, सतीश दोनों हाथ मेरी चारपाईपर रखे ज़मीनपर बैठे हैं। वे आँखोंमें आँसू भरे एकटक मेरी ओर देख रहे हैं। इधर कई दिनोंसे मेरा उनसे साक्षात न हुआ था, इतने ही दिनोंमें कितना अन्तर हो गया ! निशीथ रात्रिमें, बत्तीके उस कृत्रिम धुँधले प्रकाशमें, मैंने उनका फीका-ज़र्द चेहरा देखा; देखकर मेरे हृदयमें बड़ा-भारी आघात लगा। मैं मन्त्रमुग्ध-सी उनकी ओर निहारती रही, दोनोंमें से कोई कुछ बोल न सका। मैं चारपाईसे नीचे उतरकर खामोश खड़ी हो गई।

सतीशने मेरा हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचनेकी विफल चेष्टा की। उनके इस व्यवहारसे मुझे क्रोध आ गया। जो भाव क्षण-भर पहले जाग्रत हुए थे, न-जाने वे कहाँ लोप हो गये। हाथ छुड़ाते हुए मैंने कहा—"आधी रातमें, चोरोंकी तरह मेरे कमरेमें आते तुम्हें लज्जा नहीं आई। अपने हृदयसे तो पूछो—तुम कहाँ हो ?"

—"माधवी, मैं कहाँ हूँ और कहाँ था, मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं तो तुम्हींसे पूछने आया हूँ। बताओ, मैं कहाँ हूँ ? बताओ, मेरे किस अपराधका तुम दंड दे रही हो—क्या तुम सचमुच मुझसे घृणा करने लगी हो ?"

—"हाँ।"

—"हाँ !—किसलिए ? अपने मुँहसे कारण बता दो। फिर मैं कभी अपना मुँह न दिखाऊँगा।"

—"अभी उसका समय नहीं आया, अभी मैं कुछ नहीं कह सकती, कृपाकर आप अभी लौट जाइये।"

सतीश गहरी साँस लेकर धीरे-धीरे कमरेसे निकल गये। क्रोध और इस भयसे कि पास ही बहनजीका कमरा है, कहीं आ न जायँ, सतीशसे यह शब्द तो मैंने कह दिये; पर क्षण-भर बाद ही मेरा हृदय व्यथित हो उठा। अपना व्यवहार कठोर और रूखा जान पड़ा। सब जानकर भी उनपर अविश्वास करनेको मन नहीं चाहता। उनकी यह दशा क्यों हो गई ? कैसे जानूँ कि उनके मनमें क्या है। उनकी आँखोंमें कपटके आँसू थे या व्यथाके। कुछ हो, मुझे ऐसा दुतकारना न चाहिये था। मेरा मन भी पाषाणसे कम कठोर नहीं है। मैं सीधे बोली तक नहीं !

किसी प्रकार रोते-कलपते सो गई। सुबह कुछ मधुर स्वप्न देखते आँख खुली। चित्त कुछ प्रसन्न जान पड़ा, पैर आप-ही-आप सतीशके कमरेकी ओर चलने लगे। बरांडे ही में रुक गई, देखा सतीश मोटरपर बैठे कहीं जानेको तैयार हैं। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोरसे धड़कने लगा—'कहाँ जा रहे हैं ?'—मैं सोचती ही रही, मोटर सर-से चली गई। मैं अपना हृदय थामकर वहीं बैठ गई।

[५]

कदाचित् सतीश मुझसे निराश और असन्तुष्ट होकर बिना कुछ कहे बाराबंकी चले गये। मैं अभागी इस सोच-विचार ही में रही—क्या करूँ, पहले पत्रमें सब बातें लिखूँ या बाराबंकी जाऊँ ? पर उन्हें भी तो पत्र लिखना चाहिए था। सम्भव है, वह समझ गये हों कि उनकी भीतरी बातें मैं सब समझ गई हूँ। ओह ! इसीलिए मुँह छिपाकर चल दिये। इसी उधेड़-बुनमें छुट्टियाँ बीत गईं, मैं मैट्रिकमें उत्तीर्ण हो गई। उसके बाद भाई साहबकी सलाहसे मैं बनारस बसन्त-आश्रमका प्रबन्ध करने लगी।

भाई साहबने सतीशको लिखा कि मैं बनारस जा रही हूँ, फिर भी वह नहीं आये ; लिख दिया—"यहाँ गाँवोंमें बीमारी फैल रही है। गाँववालोंकी दशा अत्यन्त दयनीय है, मैं यथाशक्ति उनकी सेवामें लगा हुआ हूँ।···इस वर्ष कालेज जॉइन करनेका भी विचार नहीं है।"

मैं अपना सम्पूर्ण व्यथाका भार सँभाले, एक वार उन्हें आँख-भर देखनेको तरसती-सी बनारस चल दी।

बनारसमें सरोजसे भेंट हुई। घर शहरसे बहुत दूर होनेके कारण वह होस्टल ही में रहती थी। मालूम नहीं, दुर्भाग्यसे या सौभाग्यसे, उसके कमरेके पास ही मुझे कमरा मिला। फिर भी मैं उससे दूर रहनेकी कोशिश करने लगी। मैं उसके सरल स्वभावपर तो मुग्ध थी ; पर ऐसी उदारता मुझमें कहाँ थी कि मैं उससे मित्रताका व्यवहार करती। पर शायद, मनुष्य जिस ओरसे उदासीन रहनेकी चेष्टा करता है, उसी ओर उसका मन ज़्यादा आकर्षित होता है। मेरे लाख उदासीन रहनेपर भी सरोजने मुझे बिना अपना मित्र बनाये नहीं छोड़ा। मैं चाहती तो सरोजके हृदयकी सारी बात जान लेती, पर मैंने कभी कोशिश नहीं की। इसलिए कि कहीं उसे सन्देह हो गया तो बेचारीको बहुत क्लेश होगा।

× × ×

किसी प्रकार बनारसमें भी तीन-चार महीने बीत गये। इधर कुछ दिनोंसे सरोज भी उदास रहती थी। जिस चेहरेपर हँसी हर समय नृत्य करती रहती, वह अब मुरझाया दीखता था। कुछ दिनोंमें ऐसा अन्तर हो गया कि जो देखता, यही प्रश्न करता, 'सरोज, तुम्हें कोई रोग तो नहीं हो गया ?'

सरोज—'कुछ तो नहीं'—कहकर चुप हो जाती। मुझे उसकी इस दशासे बड़ी चिन्ता हुई और कौतूहल भी। अब मैं अपनेको रोक न सकी। मैंने सरोजसे पूछा—"सरोज, तुम इतनी उदास क्यों रहती हो ? अपने मनकी बात मुझसे कहोगी ?"

—"क्यों नहीं कहूँगी बहन, मैं तो स्वयं ही तुमसे सलाह लेनेका विचार कर रही थी। शायद मेरी चिन्ता मिटानेका तुम कुछ उपाय बता सको।"

—"बोलो, क्या बात है ?"

"पर तुम मेरी निर्लज्जतापर हँसना मत।"—उसने धीरेसे कहा—"मैं अपना हृदय किसीको भेंट कर चुकी हूँ।"

आगे जो कुछ सुनना है, मानो मेरे कानोंमें गूँजने लगा। रोकनेकी कोशिश करनेपर भी शरीरमें कँपकपी आ गई। मुँह दूसरी ओर फेरकर मैंने कहा—"अच्छा, यह बात है ! वह भाग्यशाली कौन हैं, मैं भी तो सुनूँ !"

—"पहले मेरी चिन्ताका कारण सुनो।"

—"कहो।"

—"एक माहके लगभग हुआ, कितने पत्र लिख चुकी, उत्तर ही नहीं आता।"

—"किसी कार्यवश न लिख सके होंगे।"

—"ऐसा क्या काम हो सकता है ! मुझे पत्र-व्यवहार करते एक वर्षसे ज़्यादा हो गया, अब तक कभी ऐसा नहीं हुआ। एक बार मेरे चार-पाँच पत्र बीच ही में खो गये, उन तक पहुँचे ही नहीं ; तब वे बनारस मेरे पास आये थे।"

मैं सोचने लगी, सतीश बाराबंकीसे यहाँ आये होंगे ; पर मैं अपना भाव छिपाकर बोली—"अच्छा ! यहाँ तक नौबत पहुँच चुकी है ! तब तो सरोज तुम दोनोंके घरवालोंको भी मालूम हो गया होगा। किसी औरके मारफत पत्र लिखकर समाचार मँगा लो।"

—"नहीं बहन, आज तुमसे यह बात कही है, और किसीको कुछ नहीं मालूम।"

—"तुम चोरीसे पत्र-व्यवहार कैसे करती हो, किसीको मालूम हो जाय तो ?"

"मेरे घरवाले कुछ न कहेंगे, वे मेरे बचपनके मित्र भी तो हैं। हाँ, वे अवश्य अपने घरवालोंसे छिपाकर पत्र भेजते हैं।

पहले अपने एक मित्रके पतेसे पत्र मँगवाते थे, जबसे मेरे पत्र खो गये, तबसे घर ही के पतेसे मँगवाते हैं; पर कुछ ऐसा प्रबन्ध कर रखा है, जो किसीको कुछ मालूम न हो।"

—"तो ऐसा षड्यन्त्र रचनेकी ज़रूरत ही क्या है? अब विवाह ही क्यों नहीं कर लेतीं?"

—"उसमें एक कारण है, उनके माता-पिता दूसरी जातिमें विवाह करनेको सहमत न होंगे, इसलिए उन्होंने मुझसे प्रतीक्षा करते रहनेको कहा है। पढ़ाई समाप्त कर, जब वे घरवालोंके अधीन न रहकर कुछ पैदा करने लग जायँगे, तो घरवालोंकी अनिच्छा होनेपर भी विवाह कर सकते हैं। और दूसरा उपाय ही क्या है? देखना बहन, किसीसे इस विषयमें कुछ कहना नहीं।"

—"तुम्हारी उनसे मित्रता किस तरह हुई?"

—"मेरे मकानके पास ही उनके नानाका मकान है, वहीं वह आते हैं। बचपन ही से एक दूसरेके प्रति स्नेह था, प्रेम था। धीरे-धीरे उस प्रेमने आज यह रूप धारण किया है।"

अब मुझे सन्देह हुआ। क्या रहस्य है? अबकी तो सतीशने बी० ए० होनेपर कालेजमें पढ़ना ही छोड़ दिया। उनका यहाँ कोई सम्बन्धी भी नहीं। जबसे बनारस-कालेज छोड़ा, फिर शायद कभी बनारस आये भी नहीं। मेरे मुँहसे निकल गया—"हाँ! तुम तो सारी रामायण बाँच गई; पर यह न बतलाया कि राम कौन हैं? ज़रा नाम तो बताओ। जब वह लखनऊमें ही रहते हैं, तो उनका समाचार मँगा लेना मेरे लिए कठिन नहीं है।"

"उनका नाम?···"—कहकर सरोज कुछ देर तक अन्यमनस्क-सी रही, बोली नहीं। फिर उसने काँपते हुए हाथसे अपने हृदयके पाससे एक छोटी-सी तसवीर निकाली—उसके नीचे अंगरेज़ीमें लिखा था—'रामकिशोर गुप्त'।

सारा रहस्य मेरी समझमें आ गया। उन्हें मैं जानती थी, वह सतीशके घनिष्ट मित्र थे।

अब तक शायद मुझे उस ढीठ सन्देहने ही स्वस्थ बना रखा था। उसके हटते ही मेरी देह आश्रयहीन लताकी तरह सरोजसे लिपट गई जब चेतना आई, तो मैंने देखा, सरोजको मेरी इस दशासे बड़ा आश्चर्य हुआ है! वह ज़ोरसे मुझे हिलाते हुए बोली—"माधवी, तुम्हें हो क्या गया? क्या तुम उनको जानती हो, जल्दी बताओ, तुमने उनके बारेमें कुछ सुना है?"

सरोजके चेहरेपर किसी अशुभ आशंकाकी एक रेखा-सी दौड़ गई। मैंने कहा—"चिन्ताकी कोई बात नहीं। मैं सच कहती हूँ,—एक गिलास पानी दो, मुझे प्यास लगी है। तुम्हारे खोये हुए पत्र, तुम्हारा खोया प्रेम, सब तुम्हें मिल जायगा।"

सरोज आश्चर्य-चकित होकर मेरा मुँह निहारने लगी। मैं सोचने लगी—अपने प्रेमीके लिए क्या सबके मनमें सन्देह ही उत्पन्न होता है!

धीरे-धीरे मैंने अपने प्रेम और उसके पत्रोंकी आद्योपान्त सारी कहानी कह डाली।

दूसरे दिन मैं बनारस छोड़कर बाराबंकीको चल दी।

[६]

जिस समय मैं सतीशके घर पहुँची, गोधूलिका समय था। सतीश अपनी फुलवारीमें एक लता-मंडपके पास बैठे गायके बच्चेसे खेल रहे थे। धीरे-धीरे मैं सतीशके पास जा खड़ी हुई। अचानक उनकी दृष्टि मुझपर पड़ी।

—"कौन, माधवी!"

उत्तर देनेका तब मुझमें साहस कहाँ था! मेरी तो राह-भर वह दशा रही, जो किसी परीक्षार्थीकी परीक्षाके लिए जाते समय होती है। उनके पास तक पहुँच गई, यही कौन कम साहसका काम था!

मैं उनके पैरोंसे लिपट गई। हम दोनोंके हृदय बड़ी देर तक रोते रहे। हृदयावेग कुछ घटनेपर, बहुत देर बाद, रुमालसे मेरे आँसू पोछते हुए उन्होंने काँपते हुए स्वरमें कहा—"माधवी, इन आँसुओंसे मुझे अधीर मत करो। किस लिए इतने दिनों तक तुम मुझसे रूठी रहीं, मैं अब तक न समझ सका। फिर भी, मैं निश्चित जानता था कि एक-न-एक दिन मेरी आराध्य देवी प्रसन्न होंगी ही, वह दिन दूर नहीं है। उस दिन, रातकी घटनाके बाद तुम्हें छेड़नेका साहस न हुआ, इसीसे पत्र भी न लिख सका। दूर ही से मैं अपनी आराध्य देवीको प्रेमार्घ्य देकर अपने व्यथित हृदयको सन्तोष देता था।

माधवी, उस दिनकी घटनाने स्वयं मुझे अपनी दृष्टिमें गिरा दिया। अब मैं समझ पाया हूँ कि मैं कहाँ था और कहाँ हूँ।"

मैंने अपनी आत्म-कथा सुनाकर उनसे क्षमा माँगी। दोनों उलझे हुए हृदय सुलझकर एक हो गये।

[७]

लखनऊ पहुँचकर जो-कुछ सुना, उससे मुझे दुःख और चिन्ता हुई। रामकिशोरके माता-पिताको किसी तरह इस गुप्त प्रेमका रहस्य मालूम हो गया। पुत्रके यह इच्छा प्रकट करनेपर कि 'मैं सरोजसे विवाह करूँगा' माता-पिताके क्रोधका पारावार न रहा।

रामकिशोरको माता-पिताने बहुत समझाया, डाँटा-फटकारा और अन्तमें पिताने सम्पत्तिसे वंचित करनेकी भी धमकी दी; पर उसका कोई असर नहीं हुआ। अन्तमें पिताको एक दिन कहना ही पड़ा—"मेरे घरसे निकल जाओ, तेरे लिए मैं समाजमें सर नीचा नहीं कर सकता।" पर माताने रो-रोकर ज़मीन-आसमान एक कर दिया। पिताके क्रोध और माताके रुदनके सामने रामकिशोरकी 'समाज-क्रान्ति' काफ़ूरकी तरह उड़ गई।

× × ×

सतीशने रामकिशोरसे कहा—"एक निर्दोष बालिकाका जीवन नष्ट करते तुम्हें लज्जा नहीं आती? पिता घरसे निकालते हैं, तो घर छोड़ दो—चाहे भीख ही माँगनी पड़े। कर्तव्यसे विचलित न हो। तुम्हारा हृदय ऐसा ही भीरु था, तो क्या समझकर, प्रेमकी दुहाई देकर, सरोजको धोखेमें डाला?—अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। साहससे काम लो।—मैं यथाशक्ति तुम्हारी सहायता करनेको तैयार हूँ।"

रामकिशोरके पिताको सहमत करनेके लिए भाई साहब तथा अन्य सुधारकगण भी इस कार्यमें शामिल हो गये। सरोजके पिताको भी यहाँकी स्थितिका समाचार भेज दिया गया।

रामकिशोर दूसरोंका सहारा पाकर वीरतासे कर्तव्य-युद्धमें अग्रसर हुए, किन्तु पिताके सामने जानेका साहस न हुआ। जब तक कुछ परिणाम न निकले, उन्होंने हमारे ही घर रहनेका निश्चय किया।

मैं यह सोचती ही रही कि सरोजको क्या लिखूँ, इस बीचमें उसका पत्र मिला। उसमें लिखा था—

"प्यारी बहन माधवी,

मैं जानती हूँ कि तुम मुझे पत्र क्यों न लिख सकीं। मुझसे कुछ छिपा नहीं है। उनके पिताने मेरे पिताजीको पत्र लिखा है। उसमें मेरे लिए 'कलंकिनी' और 'वेश्या' जैसे अपवित्र शब्दों तकका प्रयोग कर डाला है। लिखा है, मैंने उनके पुत्रको बिगाड़ दिया! मैं अपराधिनी हूँ। लिखते हैं, 'मेरे लड़केका क्या बिगड़ा, वह तो पुरुष है। उसके हज़ार ब्याह हो जायँगे, तुम्हारी लड़की अपने कियेका फल भोगेगी!' बहन, लज्जासे मरी जा रही हूँ। आज स्वयं मुझे अपनेसे घृणा हो रही है। मैं अपनी दशासे तुम्हारा मिलान कर रही हूँ। तुम दोनों घरमें रहते हुए भी—और यह जानते हुए कि घरवाले इस विवाहसे सहमत हैं—मर्यादाका पालन करते रहे। और एक मैं अभागिनी!

मेरे पिता समाज-सुधारकोंकी श्रेणीमें हैं। वे सदा यही बात कहा करते थे कि 'मैं सरोजको विवाहके विषयमें पूरी स्वतन्त्रता दूँगा।' पर आज वे ही मेरे इस गुप्त पत्र-व्यवहारका रहस्य जानकर अत्यन्त अप्रसन्न हैं। और माताजीका तो कहना ही क्या, बहुत ही क्रुद्ध और दुःखित हैं। मुझसे कहती हैं—मैं तुझे ऐसी मूर्ख न समझती थी। हमारे कुलमें कलंक लगानेमें तूने कुछ न उठा रखा। अगर यह ब्याह न हुआ, तो बड़ी बदनामी होगी। वे कहती हैं—मैं मानती हूँ कि लड़के-लड़कियोंको अपने विवाहमें पूर्ण अधिकार है, पर यह विलायत नहीं, हिन्दुस्तान है। उन्हें दुःख है कि आजकल पश्चिमी सभ्यतामें रँगकर हमारे देशके युवक-युवतियाँ समझने लगे हैं कि माता-पिताको उनके बीचमें बोलनेका कुछ अधिकार ही नहीं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि आजकलके लड़के-लड़कियाँ यौवनकी चंचलताको प्रेम समझकर अपना सारा जीवन नष्ट कर डालती हैं। भगवान ही इनकी रक्षा करें।

बहन, मैंने सिर नीचा करके सब कुछ सुना। ठीक है। मैं पहले ही से उनको अपना विचार बता देती, तो मेरा यह प्रेम आज 'कलंक' तो न कहा जाता। पिताजी अवश्य ही कोई युक्ति निकालकर कार्यको सुगमतासे सिद्ध कर लेते; पर अब मारे ग्लानिके मेरा हृदय फटा जा रहा है। मन यह चाहता है कि जब वे मेरे प्रेमको ठुकराकर समाज और

सम्पत्तिके आगे कायर बन गये, तो मैं भी कायरताको अपनाकर आत्म-हत्या कर लूँ। सुना है, तुम दोनों कोशिश कर रहे हो। जो चाहो, करो। अब विवाह मर्यादाके लिए करना है। अब वे खोये हुए सुखद स्वप्न, भूली हुई मधुर अभिलाषाएँ कहाँ मिलेंगी, बहन? मेरी जिस हँसीपर तुम मुग्ध थीं, मेरी वह हँसी शायद हमेशाके लिए खो गई! क्या जीवन-भर ढूँढ़े न मिलेगी।

पत्र तो दोगी ही। तुम्हारी अभागिनी—

सरोज।"

[८]

मेरा और सरोजका विवाह एक ही दिन—समाजके व्यर्थ रीति-रिवाज़ोंको तोड़कर—हो गया। सरोजकी सरलतापर ईश्वरको भी करुणा आ गई, जो बिगड़कर भी यह कार्य बन गया। रामकिशोरके पिताको जब मालूम हुआ कि रामकिशोर उनकी आज्ञाका उल्लंघनकर सिविल-मैरिज करनेको तैयार है, तब उन्होंने, न-जाने क्या समझकर, सम्मति दे दी।

माताजी बहूका मुँह देखकर सारा दुःख-सन्ताप भूल गईं। समाजकी लीला ही विचित्र है। बड़े आदमीका कौन समाजसे बहिष्कार करनेका साहस करे!

विवाह हुए सप्ताह भी न बीत पाया था कि बनारसके लिए बिस्तर बाँधने पड़े। परीक्षाके दिन निकट आ रहे थे, छुट्टीमें और ज्यादा गुंजाइश न थी।

रामकिशोर तो स्टेशनसे ही लौट गये; पर सतीशको तो इस वर्ष पुस्तकोंसे छुट्टी मिल गई थी, वे मेरे साथ बनारस तक पहुँचाने गये। सरोज खिड़कीसे बाहर मुँह किये, चुपके-चुपके वियोगमें आँसू बहा रही थी। मैंने उसे छेड़ा—"बता, अब तो रामकिशोरसे रूठी नहीं है?"

उसने गर्दन हिलाकर संकेत किया—"नहीं।"

"तू तो कहती थी कि जीवन-भर अब मुँहपर हँसी ही न आयेगी! अब तो खोई चीज़ मिल गई?"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, मुझे भी हँसी आ गई।

विस्मृतिके फूल

श्री भगवतीचरण वर्मा

ये ममत्वके भाव देवि थी, यह ममत्वकी चाह,
कसक रहे हैं विक्षत उरमें काँटे बनकर आह;
शिलाखंड-सा बँधा हुआ हूँ मैं अपनेमें और
मुक्त तथा स्वच्छन्द समयका कितना तीव्र प्रवाह!

इस प्रवाहकी सीमा कैसी? यह है सीमाहीन,
कितने युग, कितने कल्पान्तर होते यहाँ विलीन:
देवि, तुम्हारा पल अनादि है, निश्चय यही अनन्त,
अगर हो सको तुम ममताके बन्धनसे स्वाधीन।

है अखण्ड यह समय, देवि है जीवन यहीं अखण्ड,
वह मैं हूँ जो करता रहता इस अखण्डके खण्ड;
मैंने ही निर्माण किये हैं यहाँ घड़ी, पल, वर्ष,
देश लोक मैं बना चुका हूँ तोड़-तोड़ ब्रह्माण्ड।

देवि, आज जीवन है, कल है अन्धकारकी मूल,
जिसके उरमें सिसक रही हैं चिन्ताएँ निर्मूल;
है अनन्त जल-राशि यहाँपर, मैं हूँ उसकी बूँद,
अरे व्यर्थ है व्यर्थ ढूँढ़ना इधर-उधरके कूल!

बीता कल था आज, और होगा भावी कल आज,
देवि, आजपर ही तो स्थित है इस जगतीका साज;
कल सब कुछ था शून्य और होगा कल सब कुछ शून्य,
इसी शून्यपर बना हुआ है जन्म-मरणका राज।

उसकी एक उमंग हमारी जगतीका उल्लास,
एक आह है देवि, वहींपर जगतीका निःश्वास;
मुझसे ही तो विश्व बना है, विश्व और मैं एक;
मेरे सुख-दुखमें है जगके सुख-दुखका आभास!

मधुकी ही थी हँसी कि जिससे कली हँस पड़ी और,
कोकिलके ही प्रणय-गानसे बौर उठे थे बौर;
पतझड़ रोया हिमके आँसू लता हुई श्रीहीन,
है अनन्तका जीवन-कणके जीवनका सिरमौर!

मैं अपना किस भाँति? देवि, मैं निखिल विश्वका अंग,
पृथक् भागका भाव पूर्णताको करता है भंग;
इस दुखदैन्य और दुविधाका मैं कारण हूँ हाय,
'अपनापन' है इस अखण्ड जीवनका कुत्सित व्यंग!

खुदाईके पहले पहाड़पुर

भारतीय पुरातत्त्व-विभागके कार्य

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

भारतके प्राचीन इतिहासका एक गौरवपूर्ण अंश अब भी हमारी दृष्टिसे छिपा हुआ है। इस अंशपर अज्ञानताका जो परदा पड़ा हुआ है, उसे उठानेके लिए हमें पुरातन चिह्नों—शिलालेखों, स्तूपों, स्मारकों, डीहों, धुस्सो, प्राचीन मुद्राओं, मन्दिरों और भवनोंके भग्नावशेषों, ताम्रपत्रों आदि—की शरण लेनी पड़ेगी। इन्हीं साधनोंके उपयोगसे भारतके उस युगका इतिहास हमारे लिए बोधगम्य हो सकता है, जिसके सम्बन्धमें इस समय हमारा ज्ञान नहींके बराबर है। भारत-सरकारके पुरातत्त्व-विभागने इस सम्बन्धमें अब तक जो कुछ कार्य किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय कहा जा सकता है। इस पुरातत्त्व-विभागकी बदौलत ही मुहेनजोदड़ो, हरप्पा, तक्षशिला, नालन्द, नागार्जुनीकुण्ड, पहाड़पुर आदि स्थानोंकी खुदाई हुई है, और खुदाईमें पाये गये बहुमूल्य ऐतिहासिक तथ्योंके आधारपर भारतके पुरातन इतिहासका विच्छिन्न सूत्र किसी प्रकार क्रमबद्ध किया जा रहा है। किन्तु अब भी भारतमें इस प्रकारके कितने ही प्राचीन स्मृति-चिह्न वर्तमान हैं, जिनपर ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रकाश डाला जाना अत्यावश्यक है। यह काम करे कौन? सरकारी पुरातत्त्व-विभाग द्वारा अब तक यह काम होता आ रहा है; किन्तु कुछ समयसे इस विभागके कार्यमें भी शिथिलता दृष्टिगोचर हो रही है। इसका मुख्य कारण है अर्थाभाव। यों तो अर्थाभावके कारण सरकारके प्रत्येक विभागको किसी-न-किसी रूपमें क्षतिग्रस्त होना पड़ा है, किन्तु सबसे अधिक क्षति इस पुरातत्त्व-विभागको ही सहन करनी पड़ी है। इसका एक खास कारण है देशके नेताओंकी—विशेषतः राजनीतिज्ञोंकी—इस महत्त्वपूर्ण
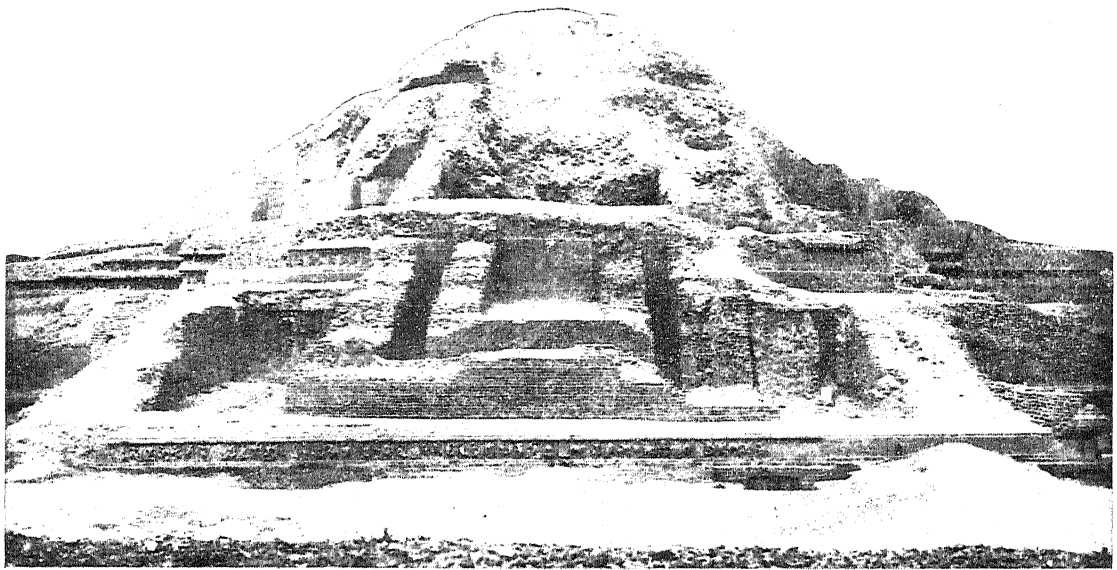
पहाड़पुरका स्तूप खुदाईके बाद

विषयके प्रति उदासीनता। देशवासियोंके हृदयमें अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृतिके प्रति गौरव-भाव उद्दीपित करके उनमें देशात्मबोधका भाव भरनेके लिए देशका सच्चा इतिहास जितना शक्तिशाली साधन हो सकता है, उतना और कोई दूसरा साधन नहीं हो सकता। इस साधनकी उपेक्षा करके हम देश-प्रेमके अक्षय स्रोतको पुनरुज्जीवित नहीं कर सकते।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि अब तक भारतमें प्राक् बौद्धकालके एक भी प्राचीन स्थानकी खुदाई नहीं हुई है। पुरातत्त्व-विभागके अधिकारियोंमें यह भ्रान्त धारणा बहुत दिनों तक फैली हुई थी कि भारतका प्राचीन इतिहास यवन सम्राट् सिकन्दरके भारत-आक्रमणके बादसे शुरू होता है ; किन्तु यह धारणा कितनी भ्रमपूर्ण थी, यह मुहेनजोदड़ोकी खुदाईसे सिद्ध हो गई है। इसे एक दैवसंयोग ही समझना चाहिए कि स्वर्गीय श्रीयुत राखालदास बनर्जीने मुहेनजोदड़ोका पता लगाकर अपने बुद्धि-बलसे उसके ऐतिहासिक तथ्यपर प्रकाश डाला, नहीं तो अब तक हम पहलेके समान ही अज्ञानान्धकारमें भटकते रहते। इसी प्रकारके और भी कितने ऐतिहासिक साधन हैं, जो उपलब्ध होनेपर भी अब तक प्रकाशमें नहीं लाये जा सके हैं। भारतका इतिहास यूनानके बादशाह सिकन्दरके समयसे आरम्भ नहीं होता। उससे बहुत पहले भी भारतवासी सभ्यताके उच्चतम शिखरपर पहुँच चुके थे। उनकी तत्कालीन सभ्यता प्राचीन मिस्र और यूनानके लिए स्पर्द्धाकी वस्तु थी। पंजाब प्रान्तमें रावी नदीकी उपत्यकामें कुछ ऐसे स्थानोंका पता चला है, जिनपर प्रकाश डाले जानेसे भारतके प्राक् बौद्धकालके सम्बन्धमें बहुत कुछ ऐतिहासिक बातें जानी जा सकती हैं। सरकारी पुरातत्त्व-विभागकी ओरसे यदि इन स्थानोंकी खुदाईके सम्बन्धमें कोई कार्य नहीं हुआ, तो इसका परिणाम यही होगा कि विदेशी अभियानकारी दल इन स्थानोंपर अपना अधिकार कर लेगा, और हम मुँह ताकते ही रह जायँगे।

गत दिसम्बर महीनेमें बड़ोदेमें जो प्राच्य-सम्मेलन हुआ था, उसके सभापति सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवालने अपने भाषणमें पुरातत्त्व-विभागकी इस सोचनीय शिथिलतापर खेद प्रकट करते
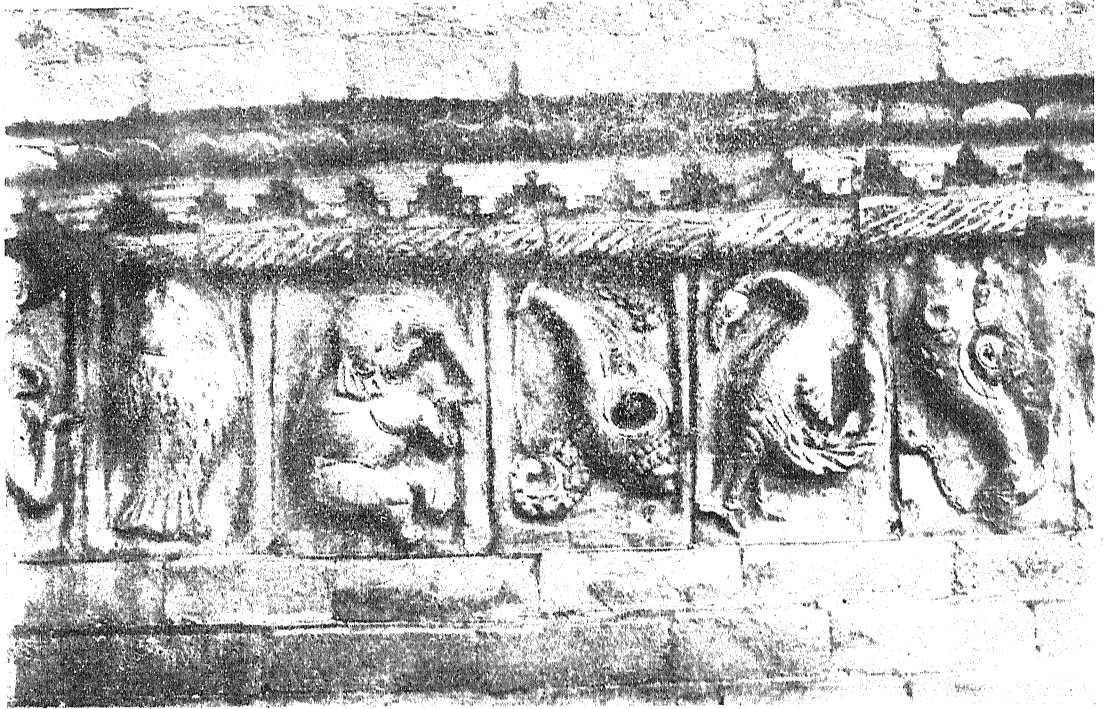
पहाड़पुर। दीवारपर खुदी हुई जीव-मूर्तियाँ

हुए कहा था—"हमें स्मरण रखना चाहिए कि बुद्धसे पहलेका ब्राह्मी लिपिमें लिखा हुआ एक भी शिलालेख अब तक नहीं मिला है। इसका एकमात्र कारण यही है कि अब तक किसी भी प्राचीन हिन्दू स्थानकी खुदाई नहीं हुई, जिसका परिणाम यह है कि हिन्दू इतिहासकारोंकी दृष्टिमें जो मध्यकाल है, वह भारतीय इतिहासका प्रारम्भकाल समझा जाता है। हिन्दू इतिहासकारकी दृष्टिमें भारतके प्राचीन इतिहासका अन्त ईसवी सन्‌से १४०० वर्ष पूर्व महाभारत-युद्धके साथ होता है, और इससे पहले मुहेनजोदड़ो (ईसवी सनसे ५०० वर्ष पूर्व) के सिवा पुरातत्त्व-विभागने और कुछ किया ही नहीं।" श्रीयुत जायसवालने गैर-सरकारी ऐतिहासिक अनुसन्धान-समितियोंसे यह अपील की है कि वे खुदाईके कार्यको अपने हाथमें लें। इस प्रकारके स्थानोंका निर्देश करते हुए श्रीयुत जायसवालने कहा है कि—"यदि कौसाम्बीमें खुदाई हो, तो मुझे विश्वास है कि प्राक् बौद्धकालके अवशिष्ट चिह्न प्राप्त होंगे।" भरत-वंशके राजा लोग हस्तिनापुर छोड़कर कौसाम्बीमें आकर बस गये थे। कौसाम्बीमें खुदाई होनेसे उन स्थानोंका पता चल सकता है, जहाँ सतनीक और सहस्रनीक वंशके राजाओंने राज्य किया था। इस दिशामें हमारे देशकी शिक्षण-संस्थाएँ भी बहुत-कुछ कार्य कर सकती हैं। यूरोप और अमेरिकाकी शिक्षण-संस्थाएँ बहुत ज्यादा खर्च करके सुदूर देशोंमें अभियानकारी यात्रीदल भेजा करती हैं। गंगोत्री और यमुनोत्रीके दुर्गम पथमें हिमालयके गौरीशंकर-शृंगपर, नेपाल और तिब्बतके पार्वत्य प्रदेशोंमें विदेशी यात्री अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करनेके लिए विचरण किया करते हैं। और हम क्या करते हैं? हम बैठे-बैठे अखबारोंमें उनके गौरवपूर्ण कृत्योंका वर्णन पढ़ा करते हैं। देशके विश्वविद्यालय छात्रोंको डिगरियाँ देनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझते हैं!

ब्रिटिश भारतके सिवा देशी राज्योंमें भी इस प्रकारके कितने ही पुरातन चिह्न बिखरे पड़े हैं। उनका संग्रह करके, उनके रहस्यका उद्घाटन करके, उन्हें ज्ञानालोक द्वारा जनताके सामने कौन प्रकट करे?

पहाड़पुरमें मिली हुई श्रीकृष्णकी मूर्ति

अजयगढ़ राज्यके नचना स्थानमें गुप्त-राज्यवंशके पूर्वकालका एक मन्दिर नष्टप्राय हो चुका है। राज्यकी ओरसे इस मन्दिरको सुरक्षित रखनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इस प्रकारके और न-मालूम कितने ऐतिहासिक और कला-सम्बन्धी अवशिष्ट चिह्न देशमें यत्रतत्र अरक्षित अवस्थामें पड़े हुए हैं। क्या हमारे देशी नरेशोंका यह कर्तव्य नहीं है कि जहाँ वे व्यर्थके कामोंमें लाखों रुपया फूँक डालते हैं, वहाँ अपने राज्यके अन्तर्गत प्राचीन मन्दिरों, स्मारकों, स्तूपों, शिलालेखों और कलात्मक वस्तुओंकी रक्षाके लिए कुछ भी तो खर्च करें? अपने पूर्वजोंकी कीर्ति-रक्षा करके वे अक्षय पुण्यके भागी बनेंगे।

श्रीकृष्ण द्वारा धेनुकासुरका वध

गत चार-पाँच वर्षोंके अन्दर भारत-सरकारके पुरातत्त्व-विभागने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, उनका पाठकोंकी जानकारीके लिए यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

मुहेनजोदड़ो

सर जॉन मार्शलने 'Mohenjodaro and the Indus civilization' नामक एक महत्त्वपूर्ण विवरण ग्रन्थका तीन भागोंमें सम्पादन किया है। इस ग्रन्थके सम्पादनमें और भी कितने ही पुरातत्त्व-विशारदोंकी

सहायता ली गई है। जो लोग इस सम्पूर्ण ग्रन्थको नहीं पढ़ सकें, उन्हें कम-से-कम इसके प्रथम भागके प्रारम्भके ११२ पृष्ठ अवश्य पढ़ने चाहिए। इन पृष्ठोंमें सर जॉन मार्शलने पुरातत्त्व-विषयक सामग्रियोंके अपने चिरकालिक अध्ययनके परिणामोंपर बड़ी योग्यतासे प्रकाश डाला है। ईसवी सन्‌से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व सिन्धु नदीकी उपत्यकामें रहनेवाले लोगोंके जीवनका ज्वलन्त चित्र इन पृष्ठोंमें अंकित हुआ है; उनकी सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, धर्म, कला-कौशल, शस्त्रास्त्र आदिका सजीव वर्णन इन पृष्ठोंमें मिलता है। संसारके और किसी भी भागमें जिस समय लोग सूती वस्त्रका व्यवहार करना नहीं जानते थे, उस समय ही सिन्धु नदीके तट-प्रदेशमें रहनेवाले लोग सूती वस्त्रका व्यवहार करते थे तथा सुन्दर सुखप्रद मकानोंमें रहा करते थे। इन मकानोंके साथ परनालेका प्रबन्ध भी था। सर जॉन मार्शलने लिखा है—
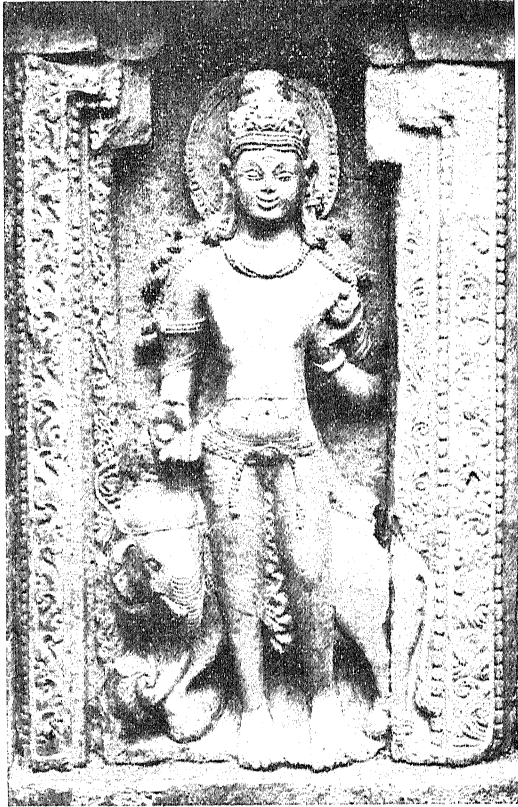
खुदाईमें निकली हुई भारतमाताकी मूर्ति

पहाड़पुरमें निकली हुई बलरामकी मूर्ति

"Among the many revelations that Mohenjodaro and Harappa have had in store for us, none perhaps is more remarkable than this discovery that Saivaism has a history going back to the Chalcolithic Age or perhaps even further still, and that it thus takes its place as the most ancient living faith in the world."

अर्थात्—'मुहेनजोदड़ो और हरप्पाकी खुदाईसे जिन अनेकानेक रहस्योंपर प्रकाश पड़ा है, उनमें इससे

बढ़कर उल्लेखनीय बात और कुछ नहीं है कि शैव-धर्मका इतिहास ताम्रयुगसे, या इससे भी बहुत पहले, प्रारम्भ होता है, और इस प्रकार यह संसारका सबसे प्राचीन जीवित धर्म है।"
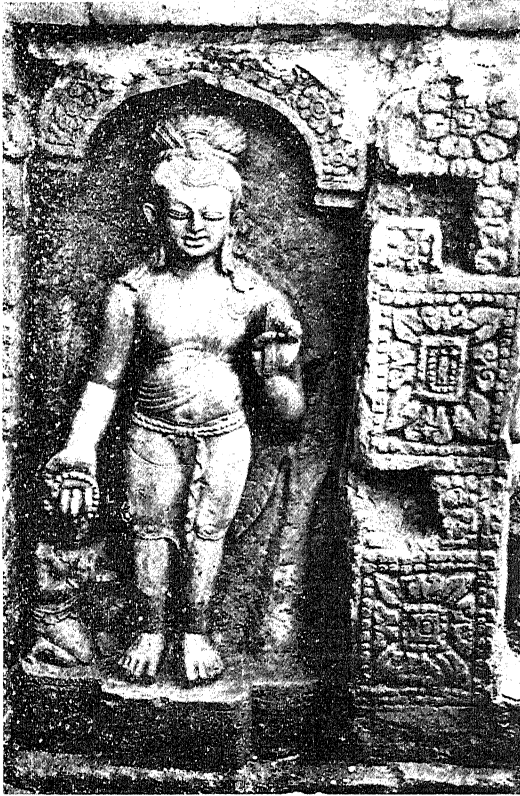
पहाड़पुरकी एक मूर्ति

हरप्पा

मुहेनजोदड़ो और हरप्पामें जो प्राचीन मुद्राएँ मिली हैं, उनके सांकेतिक अक्षरोंका रहस्योद्‌घाटन करनेका काम विशेष महत्त्वपूर्ण है। सिन्धु-प्रदेशकी यह लिपि इस समय संसार-भरके पुरातत्ववेत्ताओंके लिए महत्त्वका विषय हो रही है। प्रोफेसर लैंगडन इस सांकेतिक लिपिको देखकर इस परिणामपर पहुँचे हैं कि यह लिपि प्राचीन सुमेरियन लिपिसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। बौद्धकालकी ब्राह्मी लिपि सिन्धु-प्रदेशकी लिपिसे निकली थी। आर्य लोगोंका सिन्धु नदीके तटपर रहनेवाले लोगोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था, जिससे मालूम होता है कि ऐतिहासिक कालसे बहुत पहले ही भारतमें उनका आगमन हो गया था। हिन्दू-विश्वविद्यालयके डा० प्राणनाथ विद्यालंकारने इस सांकेतिक लिपिका जो अर्थ लगाया है, उससे मालूम होता है कि Elam, Cypres, Crete आदि सुदूर स्थानोंसे सिन्धु-तटवासी भारतवासियोंका सम्बन्ध था।
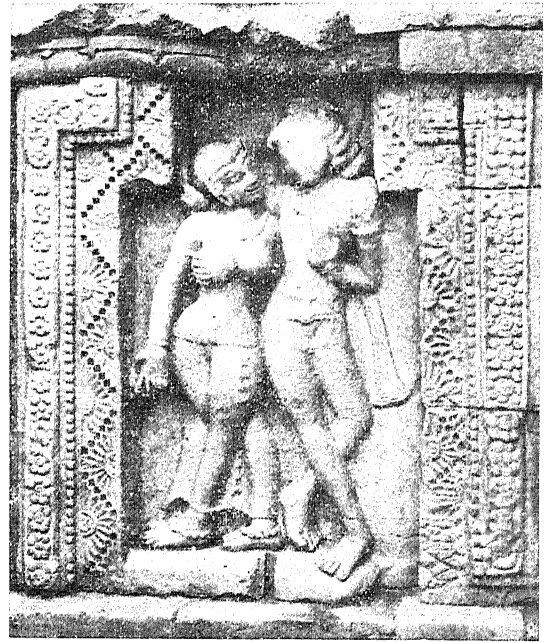
राधाकृष्ण

इस प्रकार सिन्धु नदीकी उपत्यकासे लेकर प्रशान्त महासागरके तटवर्ती प्रदेश तक एक ही सभ्यतापर प्रकाश पड़ता है। Ur और Kish में जो प्राचीन मुद्राएँ मिली हैं, उनसे यह अनुमान होता है कि सिन्धु-तटवासी भारतीयोंका मेसोपोटामिया और एलमके साथ वाणिज्य-सम्बन्ध था। मुहेनजोदड़ो और हरप्पाकी खुदाईमें मेसोपोटामियाकी बनी हुई कुछ चीज़ें भी मिली हैं।

तक्षशिला

तक्षशिलामें धर्मराजिका स्तूपसे सटा हुआ जो

बौद्ध विहार है, उसका सफाईका काम किया गया है। तक्षशिलाके आसपास हथियल तथा अन्य पार्वत्य प्रदेशोंमें बौद्ध वासस्थानोंका पता लगा है। सात भवनोंमें एक स्तूप-प्रांगनके साथ दो बड़े-बड़े स्तूप, तीन मन्दिर और दो मठ सम्बद्ध हैं। इनमें एक मन्दिरका आकार अष्टकोण गुम्बदके रूपमें है, और उसमें एक चतुष्कोण मण्डप है, जिसमें एक हौज़ है। यह हौज़ स्वच्छ काँचके खपरैलोंसे पाटा हुआ है, जिससे अनुमान होता है कि यात्रियों और संन्यासियोंकी सुविधाके लिए इसमें जल भरा रहता था। गुम्बदमें गान्धार-शैलीकी बहुतसी मूर्तियाँ अंकित हैं, जिनमें मायादेवीका स्वप्न, बोधिसत्त्वका प्रलोभन, बुद्धकी तपस्या आदि दृश्य दिखलाये गये हैं।

बालि-सुग्रीव-युद्ध

नालन्द

सन् १९१५से नालन्द स्थानकी खुदाई हो रही है। सन् १९३१-३२ सालमें हुएन सांग द्वारा वर्णित एक बृहत् मन्दिर खुदाईमें निकला है। जहाँपर यह मन्दिर है, उस स्थानपर एक बहुत बड़ा विहार था, जिसे राजा बालादित्यने बनाया था। यह ३०० फीट ऊँचा था, और आकार-प्रकारमें यह गयाके बोधीवृक्षके विहारके सदृश था। नालन्दकी खुदाईमें अब तक सात हज़ारसे अधिक प्राचीन चिह्न प्राप्त हो चुके हैं।

पहाड़पुर

पहाड़पुरकी खुदाईमें सम्पूर्ण मन्दिर और उसके चतुष्कोण तथा उसके भीतरका प्रांगण निकला है। भारतमें अब तक जितने स्थानोंमें खुदाई हुई है, उनमें इतना बड़ा स्मारक और कहींसे नहीं निकला है। इसका बाहरी घेरा उत्तरसे दक्षिण तक ९२२ फीट और पूर्वसे पश्चिम तक ९१९ फीट है। बीचका मन्दिर तीन छतोंपर खड़ा है, और इन छतोंके सिरपर प्रधान मन्दिर है। इस मन्दिरका आकार-प्रकार काश्मीरके मार्तण्ड-मन्दिर और अवन्तीपुरके मन्दिरसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। ऐसा मालूम होता है कि जावाके बोरोबूदर स्थानमें जो बौद्ध स्तूप है, उसके निर्माताओंने इसकी नकल की थी। नालन्दके एक शिलालेखसे इस बातका प्रमाण मिलता है कि जावा-द्वीपके राजा शैलेन्द्र और पालवंशके राजा देवपाल देवके बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित था। प्राप्त वस्तुओंमें एक मूर्त्तिखण्ड है, जिससे सन् १९२८ में प्राप्त एक खंडित बौद्ध मूर्त्तिकी पूर्त्ति होती है। इस मूर्त्तिके ९ मस्तक और १६ हाथ हैं। उसके प्रत्येक हाथमें एक नर-कपाल है, और वह एक नारी-मूर्त्तिका आलिंगन करती है। उस नारी-मूर्त्तिके दाहने हाथमें एक छोटा छुरा और बाएँमें एक खप्पर है। यह मूर्त्ति उस समय की है, जब बंगालमें पाल राजवंशके राजाओंका राज्यकाल था।

नागार्जुनकुंड

कृष्णा नदीके तट-प्रदेशमें नागार्जुनकुंड स्थानमें बहुमूल्य वस्तुएँ मिली हैं। इस स्थानपर कई सौ शिलाशिल्प मिले हैं, जिनका फोटो लीडन-

विश्वविद्यालयके डा० भोगेलके पास भेजा गया है। अमरावती-शैलीके भी भास्कर्यशिल्पके कुछ नमूने मिले हैं। इनमें एक चित्र चार घोड़ोंसे जुते हुए एक रथका है, जिसके आगे-आगे बहुतसे सैनिक चल रहे हैं। दूसरा चित्र बोधीवृक्षका है, जिसके नीचे बहुतसे उपासक बैठे हुए हैं।

संक्षेपमें भारतीय पुरातत्त्व-विभागका यही कार्य है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। भविष्यके लिए जो कार्य उपस्थित है, वह अतीतकी अपेक्षा विशेष महत्त्वपूर्ण और गौरवान्वित है। हालमें जो सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनसे भारतीय विषयोंपर सर्वथा नया प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारतकी जिस भौगोलिक परिधिकी अब तक हमने कल्पना कर रखी थी, वह कल्पना अब भ्रान्त सिद्ध हो रही है, और हमारे मानस-चक्षुओंके सामने बृहत्तर भारतका वह भव्य चित्र चित्रित हो जाता है, जिसका अतीत बड़ा ही महिमोज्ज्वल था। अब पुरातत्त्ववेत्ताओंका यह काम है कि वे भारतके इस लुप्तप्राय युगको ऐतिहासिक रूप प्रदान करें।

मेरा पुत्र

श्री डब्ल्यू० ई० बी० डु बॉय

[संयुक्त राज्य अमेरिकामें लगभग एक करोड़ हब्शी बसते हैं। ये लोग उन हब्शियोंकी सन्तान हैं, जिन्हें यूरोपियनोंने अफ्रिकासे पकड़ लाकर ग़ुलाम बनाकर बेच डाला था। इस समय यद्यपि अमेरिकासे ग़ुलामीकी प्रथा उठ चुकी है, और अमेरिकन हब्शियोंने अपने बल-पौरुषसे बहुत-कुछ उन्नति भी की है, फिर भी उन्हें केवल अपने काले रंगके कारण पद-पदपर अपमानित और लांछित होना पड़ता है। रेलपर वे गोरोंके डिब्बोंमें नहीं बैठ सकते, हरएक होटलमें वे ठहर नहीं सकते, उन्हें काम मिलनेमें दिक़्क़त होती है। गोरे अमेरिकन प्रतिवर्ष एक दर्जनसे अधिक हब्शियोंको जीवित जलाकर (Lynch) राक्षसी क्रूरताका परिचय देते हैं। इस कहानीके लेखक श्री डब्ल्यू० ई० बी० डुबॉय (W. E. B. Du Bais) इसी जातिके हैं। वे अमेरिकन हब्शियोंके जातीय पत्र 'Crisis' के सम्पादक हैं। उनकी लेखनीमें गजबकी शक्ति है। इस लेखनीके पीछे एक अत्याचार-पीड़ित और पददलित जातिका आहत किन्तु दुर्द्धर्ष स्वाभिमान प्रत्यक्ष दीख पड़ेगा। —सम्पादक]

'तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है।'

बादामी काग़ज़की एक छोटीसी चिट्ठीने, अक्टूबर मासके एक कुहरा-भरे सवेरे, मेरे कमरेमें प्रवेश किया और अपने मूक संगीतमें गाकर ख़बर दी--"तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है!"

मेरे हृदयमें पितृत्वके भयके साथ सृष्टि-रचनाका अलौकिक आनन्द एक अजीब ढंगसे मिश्रित हो उठा। मैं आश्चर्यसे सोचने लगा कि बच्चा कैसा दीख पड़ता होगा, उसका स्पर्श कैसा मालूम होता होगा; उसकी आँखें किस प्रकारकी होंगी; उसके बाल किस तरह छल्लेदार हो-होकर रह जाते होंगे। फिर उसकी माताका ध्यान आते ही मेरे हृदयमें भय और श्रद्धाका संचार हुआ।

ओह, जब मैं अचेतन अवस्थामें इधर-उधर भटक रहा था, तब उसने मृत्युके समीप लेटकर अपने हृदयके अधोभागसे एक पुत्र-संतानको प्रसव किया! मैं फौरन ही अपनी स्त्री और पुत्रके पास भागा। रास्ते-भर मैं अर्द्ध-आश्चर्यसे मन-ही-मन गुनगुनाता जाता था—"स्त्री और पुत्र? पुत्र और स्त्री?" रेल और जहाज़ जितनी तेज़ीसे जा सकते थे, मैं उनसे भी अधिक तेज़ीसे उड़ा जा रहा था, शोर-गुलसे भरे नगरसे दूर, फेनिल समुद्रसे दूर, अपने गाँवको, जिसके चारों ओर शोकाच्छन्न पहाड़ियाँ पहरेपर बैठी हैं, मैं बड़ी बे-सबरीसे उड़ा जा रहा था।

सीढ़ीपर दौड़कर मैं दुर्बल माँ और कें-कें करते हुए बच्चेके पास पहुँचा,—उस पवित्र स्थानमें, जिसकी

वेदीपर एक प्राणी (मेरी स्त्री) ने मेरे कहनेपर एक नवीन जीवनकी प्राप्तिके लिए अपने प्राणोंकी बाज़ी लगा दी और उसमें सफलता पाई !

यह नन्हीं-सी आकारहीन वस्तु, जिसमें केवल सिर और स्वर ही दीख पड़ता है, क्या है ? एक अज्ञात जगतसे यह नवीन शब्द कैसे आया ?—मैंने कौतूहलसे उसे स्पर्श किया। उसके छींकने, साँस लेने और आँख मटकानेको मैं अजीब हैरतसे देखता था। मैं उस समय उससे प्रेम नहीं करता था। भला, इतनी नन्हीं और ऐसी हास्यास्पद चीज़से क्या प्रेम हो सकता है ? परन्तु उसकी युवती मातासे—जो इस समय प्रातःकालीन प्रकाशकी तरह फैलकर मातृत्वमें परिणत हो रही थी—मैं प्रेम करता था—अत्यन्त प्रेम करता था।

जैसे-जैसे वह बढ़ता गया, जैसे-जैसे उसकी नन्हीं आत्मा तोतले अस्फुट शब्दोंमें प्रस्फुटित होती गई, जैसे-जैसे उसकी आँखोंमें जीवनकी ज्योति और चमक आती गई, वैसे-वैसे उसकी माताके द्वारा उसके प्रति मेरा प्रेम बढ़ता गया। ओह, वह कैसा सुन्दर था ! उसका नील-श्याम रंगका शरीर, उसकी गहरी सुनहली लटोंके छल्ले, उसकी नीली रतनारी आँखें, उसके नन्हें सुडौल हाथ-पैर और वह कोमल चंचलता, जिसे अफ्रिकन रक्तने उसके अंगोंमें उँडेल दिया था,—सब चीज़ें कितनी सुन्दर थीं ! जब मैं उसे लेकर अपने दक्षिणी घरमें* पहुँचा, तो मैंने उसे अपने हाथोंमें लिया और जार्जियाकी लाल भूमि और सैकड़ों पहाड़ियोंसे घिरे हुए निस्तब्ध नगरपर निगाह डाली। मेरे मनमें एक अस्पष्ट-सी बेचैनी पैदा हो गई। उसके बालोंका रंग सुनहरा क्यों है ? सुनहरे बाल मेरे जीवनमें एक अशकुन हैं। उसकी आँखोंके रतनार रंगने उसकी पुतलियोंसे नीलिमाको कुचलकर निकाल क्यों नहीं दिया—क्योंकि उसके पिताकी और उसके पिताके पिताकी आँखें रतनारी ही थीं ? इस प्रकार इस वर्ण-विद्वेषी भूमिमें मुझे बच्चेपर वर्ण-भेदकी छाया पड़ती दिखलाई पड़ी।

हब्शी और हब्शीका बच्चा वर्णभेदके पर्देके पीछे उत्पन्न हुए हैं, और वहींपर उन्हें रहना पड़ेगा। आह, यह अपने छोटेसे मस्तकमें एक दुतकारी हुई जातिका अपराजित आत्म-गौरव धारण किये है, इसकी नन्हीं क्लान्त अंगुलियाँ उस आशाका दामन थामे हुए हैं, जो यद्यपि बिलकुल निराशामें परिणत नहीं हुई, फिर भी जिसमें उम्मीद बहुत कम बाक़ी है, और इसकी चमकदार जादू-भरी आँखें—जो मेरी आत्माके भीतर झाँकती हैं—उस भूमिकी ओर देख रही हैं, जहाँकी आज़ादी हमारे लिए मक्कारी है, जहाँ स्वतन्त्रता एक व्यर्थ आडम्बर है। मैंने बच्चेके नन्हेंसे कोमल गालको अपने गालसे सटा लिया। उसे आसमानपर खेलनेवाले तारोंके बच्चे और उनकी झिलमिलाती हुई लालटेनें दिखलाईं, और अपने मनके मूक भयको एक गाना गाकर शान्त करने लगा।

वह ऐसी स्वस्थता और दृढ़तासे बढ़ने लगा, उसमें ऐसा उबलता हुआ जीवन भरा था, जीवनके अनिर्वचनीय ज्ञानसे वह ऐसा चंचल था—यह नन्हीं-सी चीज़, जो सिर्फ़ अठारह महीने पहले सब प्रकारके जीवनसे दूर थी—कि हम दोनों परमेश्वरके इस प्रकाशको प्रायः पूजने लगे थे। उसका (माताका) तो सारा जीवन ही बच्चेके अनुरूप ढल गया था। इस शिशुने उसके प्रत्येक स्वप्नको रंगीन और उसकी प्रत्येक चेष्टाको आदर्शपूर्ण बना दिया था। उसके नन्हें-नन्हें अंगोंको केवल माताके हाथोंको छोड़कर कोई और छू न सकता था; उसके शरीरपर कोई ऐसा कपड़ा न चढ़ता था, जिसे सीनेमें माताकी अँगुलियाँ दुखने न लगी हों; माताकी लोरीको छोड़कर अन्य कोई शब्द उसे सुलाकर स्वप्नलोकमें न पहुँचा सकता था। माता और शिशु किसी अज्ञात कोमल भाषामें बातें करके एक दूसरेका रहस्य समझा करते थे। मैं भी उसके सफेद पालनेके पास खड़ा होकर सोचा करता था। मैंने देखा कि मेरी भुजाओंकी शक्ति उसकी

* संयुक्त-राज्य अमेरिकाकी दक्षिणी रियासतोंमें हब्शी अधिक संख्यामें बसते हैं।

नन्हीं भुजाओंके द्वारा भावी युगमें फैल रहीं हैं। मैंने देखा कि संसारके इस जटिल माया-जालमें मेरे काले पुरुषोंका स्वप्न इस बच्चेके रूपमें डगमगाता हुआ एक पग और आगे बढ़ गया है। मुझे इस बच्चेकी आवाज़में वर्णभेदके पर्देमें उत्पन्न होनेवाले पैग़म्बरकी आवाज़ सुनाई दी।

इस प्रकार हम दोनों सुनहरे स्वप्न देखते, बच्चेसे प्रेम करते और भविष्यके लिए मन्सूबे बाँधते रहे, यहाँ तक कि वर्षा समाप्त हो गई, जाड़ा आया और निकल गया, दक्षिणका सुदीर्घ वसन्त अपने पूर्ण यौवनका समा दिखला गया, मेक्सिकोकी दुर्गन्धिपूर्ण खाड़ीसे गर्म हवाएँ आने लगीं, गुलाब कुम्हला गये और ग्रीष्मका प्रचंड सूर्य एटलाँटाकी पहाड़ियोंपर अग्नि बरसाने लगा।

एक दिन बच्चा अपने छोटे पालनेपर क्लान्त भावसे पैर पटकने लगा, नन्हें हाथ काँपने लगे, तमतमाया हुआ चेहरा तकियेपर बेचैनीसे इधर-उधर होने लगा। हमें मालूम हुआ कि बच्चा बीमार है। दस दिन तक वह इसी तरह पड़ा रहा। एक सप्ताह कितनी शीघ्रतासे कटा और तीन दिन कैसे पहाड़-से जान पड़े, कह नहीं सकता। दिन-प्रतिदिन उसका शरीर छीजता जाता था। माता पहले कई दिन तक हँसी-खुशी उसकी तीमारदारी करती रही। वह बच्चेकी आँखोंमें आँखें डालकर हँसती, तो उत्तरमें बच्चेकी आँखें भी मुस्करातीं। वह प्रेमसे उसके पालनेका चक्कर लगाती रही;—यहाँ तक कि बच्चेकी मुस्कराहट धीरे-धीरे उड़ गई और उसके स्थानमें पालनेके आसपास भय मँडराने लगा।

दिन ख़तम होने ही न आता; रात एक स्वप्नहीन भयमें परिणत हो गई; प्रसन्नता और निद्रा चुपकेसे खिसक गई। आधी रातको मैंने स्वप्नहीन, जाग्रत निद्रामें किसीको पुकारते सुना। जान पड़ा कि कोई चिल्लाकर कह रहा है—"मृत्युकी छाया! मृत्युकी छाया!" तारोंसे भरी रातमें मैं धौली दाढ़ीवाले डाक्टरको जगानेके लिए गया। लेकिन वह आवाज़ बराबर आती जान पड़ती थी—"मृत्युकी छाया, मृत्युकी छाया!" घंटे काँपते हुए गुज़र रहे थे; रात कान उठाये सुन रही थी; भयावना सवेरा भरे हुए

श्री डब्ल्यू० ई० बी० डु बॉय

परोंसे आ रहा था— जैसे कोई थकी हुई चीज़ दीपकके प्रकाशके सामनेसे निकले। फिर हम दोनोंने बच्चेकी ओर देखा, जैसे ही उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें हमारी ओर फिराई और अपने सूतसे महीन हाथ फैलाये—ओह, मृत्युकी छाया! हमने मुँहसे एक शब्द भी न कहा और मुँह फेर लिया।

सन्ध्याको जब उद्विग्न शोकाच्छन्न सूर्य पश्चिमी पहाड़ियोंमें मुँह छिपा रहा था, जब हवा गूँगी हो रही थी और पेड़—हरे पेड़, जो उसे इतने प्यारे थे—निस्तब्ध खड़े थे, उस समय वह चल बसा! मैंने

देखा कि उसकी साँस तेज़ और उससे भी तेज़ चलने लगी और फिर रुक गई। उसकी नन्हीं आत्मा उसके शरीरसे कूदकर बाहर निकल गई, जैसे आकाशसे तारा टूटकर अपने पीछे अन्धकारका एक संसार छोड़ जाता है! दिन जैसे-का-तैसा था। वे ऊँचे पेड़ उसी तरह खिड़कीसे झाँक-से रहे थे। वह हरी घास डूबते सूर्यकी आभामें उसी तरह झलमला रही थी। केवल उस मौतके कमरेमें वेदनासे तड़प रही थी संसारकी सबसे करुणाजनक वस्तु—पुत्रहीना माता।

मैं पीछे नहीं हटता। मैं कामके लिए व्याकुल हूँ। मैं व्यस्त और उद्योगपूर्ण जीवनके लिए मर रहा हूँ। मैं ऐसा कायर नहीं हूँ, जो तूफ़ानके कठोर झकझोरोंके सामनेसे हट जाऊँ, यहाँ तक कि मैं वर्णभेदके भयंकर पर्देके सामने भी विचलित नहीं होता। फिर भी, हे मृत्यु! क्या मेरा जीवन काफी कठोर नहीं था, क्या यह देश—जिसने हमारे सामने घृणा-भरे उपहासका जाल फैला रखा है—कुछ कम कठोर था, क्या इन चार छोटी दीवारोंके बाहरका संसार कुछ कम निष्ठुर था, जो तुझे यहाँ आनेकी ज़रूरत पड़ी? मेरे सिरके चारों ओर सन्नाता हुआ तूफ़ान हृदयहीन गर्जनकी भाँति थपेड़े मार रहा हो, विक्षिप्त जंगल दुर्बलोंके शापसे धधक रहे हों, लेकिन अपने घरमें अपनी पत्नी और पुत्रके पास बैठकर मैं इन सबकी क्या परवा करता था? हे मृत्यु, क्या तुझे हमारे सुखके इस एकमात्र क्षुद्र कोनेसे इतनी ईर्ष्या हुई कि तुझे यहाँ आनेकी ज़रूरत पड़ी?

उसका जीवन सर्वांगपूर्ण था, जिसमें आनन्द और प्रेम-ही-प्रेम था। आँसू आते थे, इस आनन्द और प्रेमको और भी उज्ज्वल बनानेके लिए। सारा संसार उसे प्यार करता था। स्त्रियाँ उसके घुँघराले बालोंको चूमती थीं, पुरुष गम्भीरतासे उसकी जादू-भरी आँखोंको देखते थे, बच्चे उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटते और कलरव करते थे। वह वर्ण-सीमासे अनजान था। वर्णभेदके पर्देकी छाया उसपर थी; लेकिन उसने अभी तक उसके सूर्यको आधा भी न ढक पाया था। वह अपनी गोरी दाईको प्यार करता था; वह अपनी काली धायको प्यार करता था; उसके छोटे-से संसारमें केवल आत्माएँ ही चलती-फिरती थीं—वर्णहीन, वस्त्रहीन आत्माएँ। हम लोग—ऐसे ही एक क्षुद्र जीवनके अनन्त विस्तारसे बड़े होते हैं, पवित्र होते हैं। उसकी माताने—जो अपनी सरल दृष्टिसे तारोंकी उस ओर देख सकती है, जहाँ वह उड़कर चला गया है—कहा—"वह वहाँपर सुखी रहेगा; वह सदा ही सुन्दर वस्तुओंको चाहता था।" मैं—जो उसकी मातासे कहीं अधिक अज्ञान हूँ और अपने ही बिने हुए जालमें अन्धा हो रहा हूँ—चुपचाप बैठकर इन शब्दोंको गुनगुनाता हूँ—"यदि वह अब भी हो, यदि वह 'वहाँ' हो और यदि वहाँ कहीं कोई 'वहाँ' हो, तो हे भाग्य, हे नियति, उसे सुखी कर।"

जिस प्रातःकालको उसका अन्तिम संस्कार हुआ, वह बहुत सुहावना था! चिड़ियाँ गा रही थीं, फूल खुशबू बाँट रहे थे। पेड़ घासके साथ कानाफूँसी कर रहे थे, लेकिन छोटे-छोटे बच्चे सहमे हुए चेहरेसे बैठे थे। फिर भी वह अजीब भयावना दिन जान पड़ता था—मानो जीवनका प्रेत इधर-उधर घूम रहा हो।

हम लोग एक अनजान सड़कपर लड़खड़ाते हुए जा रहे थे। हमारे आगे सफेद फूलोंसे सजी हुई छोटीसी अरथी थी। कानोंमें गीतोंकी अस्पष्ट छाया पड़ रही थी। शहरके काम-काजी लोग हमारे पाससे भागते हुए निकल रहे थे। वे कुछ अधिक बोलते न थे—वे पीले चेहरोंवाले पुरुष और स्त्रियाँ। वे केवल आँख उठाकर देखते और कहते—"हब्शी!"

हम उसे वहाँ जार्जियामें दफ़ना न सके, क्योंकि वहाँकी मिट्टी कुछ अजीब तरहकी लाल थी, इसलिए हम उसे—उसके सिकुड़े हुए नन्हें हाथोंको सफेद फूलोंसे ढके हुए—उत्तरकी ओर ले गये। लेकिन सब व्यर्थ था! हे ईश्वर! तेरे इस विस्तृत

नीलाकाशके नीचे कौनसा ऐसा स्थान है, जहाँ मेरा काला बच्चा शान्तिसे सो सके—किस स्थानपर भक्ति और साधना रहती हैं, कहाँपर स्वतन्त्रता—जो वास्तवमें स्वतन्त्र है—विचरती है ?

उस दिन, समूचे दिन और समूची रात मेरे हृदयमें एक भयानक प्रसन्नता छाई रही । इस अमानुषिक प्रसन्नताके लिए मुझे दोष मत देना, क्योंकि वर्णभेदके काले पर्देकी ओटसे यदि मैं संसारको काला देखूँ, तो मेरा दोष नहीं है । मेरी आत्मा बराबर मुझसे कहती है—"मरा नहीं, मरा नहीं, वल्कि अपमानसे बच गया । अब वह बन्धनमें नहीं है, आज़ाद है ।" अब कोई भी कटुता-भरी क्षुद्रता उसके बाल-हृदयको जलाकर जीते-जी मुर्दा न बना सकेगी, अब कोई व्यंग्य उसके सुखी कौमार्यको विक्षिप्त न कर सकेगा ।

मैं भी कैसा मूर्ख था, जो चाहता था कि उसकी नन्हीं आत्मा वर्णभेदके काले पर्देके अन्दर बढ़कर पंगु बने ! मुझे जानना चाहिए था कि उसकी आँखोंमें रह-रहकर जो अलौकिक गम्भीर ज्योति आती थी, वह संकीर्ण वर्तमानके उस पार दूर तक देखती थी । क्या उसके धुँवराले सिरपर अस्तित्वका वह अदम्य गर्व नहीं था, जिसे उसका पिता भी कुचलकर अपने हृदयसे नहीं निकाल सका ? पाँच करोड़ आदमियों द्वारा पद-पद पर किये जानेवाले अपमानोंके बीच एक हब्शी गर्वको लेकर क्या करेगा ? जाओ बच्चे, जाओ,—इसके पूर्व कि संसार तुम्हारी आकांक्षाओंको धृष्टता कहके पुकारे, इसके पूर्व कि तुम्हारे आदर्श अप्राप्य बन जायँ, इसके पूर्व कि संसार तुम्हें गिड़गिड़ाना और दीनतासे सिर झुकाना सिखाये, तुम यहाँसे चले जाओ । मेरे जीवनमें एक अज्ञात शून्य उत्पन्न हो गया है, जो जीवन-स्रोतको ही रोक रहा है । लेकिन इस शून्यका उत्पन्न होना इससे बेहतर है कि तुम्हारे लिए दु:खोंका समुद्र पैदा हो ।

यह व्यर्थके शब्द हैं । सम्भव है कि वह हम लोगोंकी अपेक्षा अपने भारको अधिक वीरतासे वहन करता—यह भी सम्भव है कि किसी दिन उसका भार शायद हलका भी हो जाता, क्योंकि निश्चय ही समस्याका अभी अन्त नहीं हुआ है । निश्चय ही एक ऐसा शक्तिशाली दिन उदय होगा, जो वर्णभेदके इस पर्देको फाड़कर बन्दियोंको मुक्त कर देगा । मेरे लिए वह दिन नहीं है, मैं तो बन्धनमें ही मरूँगा । हाँ, नवीन युवा आत्माएँ—जिन्होंने वर्णभेदकी रात नहीं देखी है—एक दिन जागकर ऐसा सुप्रभात देखेंगी, जब लोग मज़दूरोंसे यह न पूछेंगे—'क्या तुम गोरे हो ?' बल्कि यह पूछेंगे—'क्या तुम काम कर सकते हो ?' जब लोग कारीगरोंसे यह न पूछेंगे—'क्या तुम काले हो ?' बल्कि यह पूछेंगे—'क्या तुम काम जानते हो ?' किसी दिन ऐसा होगा,—अनेक सुदीर्घ वर्षों बाद । लेकिन फिर वर्णभेदके काले तटपर वही गम्भीर स्वर कराहता है—'तुझे त्यागना पड़ेगा !' और मैंने इस स्वरकी आज्ञापर बिना चूँचराके सभी कुछ त्यागा—केवल उस सुकुमार मुखड़ेको छोड़कर, जो मृत्युकी गोदमें नन्हीं-सी क़ब्रमें जा सोया है ।

अगर कोई चला गया है, तो मैं क्यों न जाऊँ ? मैं इस बेचैनी और इस लगातार जागनेसे क्यों न आराम करूँ ? क्या उसके हाथमें समयकी डोर न थी, और क्या मेरे हाथोंसे वही डोर तेज़ीसे खिसक नहीं रही है ? क्या संसारके उद्यानमें इतने अधिक काम करनेवाले हैं कि उसके आशा-भरे जीवनको उपेक्षासे निकाल बाहर किया जा सकता था ? मेरी जातिके अभागे —बिना माता-पिताके—राष्ट्रकी गलियोंमें ठोकरें खाते फिरते हैं, परन्तु उसकी दशा ऐसी नहीं थी । प्रेम उसके पालनेके पास बैठकर चौकसी करता था और बुद्धि उसके कानमें मन्त्र फूँकनेकी प्रतीक्षा करती थी । शायद अब वह उस प्रेमको जान गया है, जिससे उसे बुद्धिमान होनेकी ज़रूरत ही नहीं रही। सोओ बच्चे, सोओ,—तब तक सोओ, जब तक मैं भी मृत्यु-निद्रामें सोकर, वर्णभेदके पर्देके नष्ट हो जानेपर, फिर बालरूपमें उत्पन्न नहीं होता ।

भारतीय इतिहासका आधुनिक युग

श्री रघुवीर सिंह, एम० ए०, एल-एल० बी०

इतिहासमें युग-परिवर्तन होना, राष्ट्रीय जीवनमें एक नवीन युगका उद्भव कोई साधारण घटना नहीं है। परन्तु कब और क्योंकर यह युग-परिवर्तन होता है, यह जानना कठिन बात है। राष्ट्रीय जीवनमें जो एकता पाई जाती है, वह इन परिवर्तनोंके फलस्वरूप भी टूटने नहीं पाती। ये परिवर्तन राष्ट्रीय जीवनकी जंजीरकी कड़ियाँमात्र हैं, जो एक विभागको दूसरेके साथ जोड़ती हैं। पुन: बहुत कम ऐसा देखा गया है कि राष्ट्रीय जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन इकबारगी हो जायँ। युग-परिवर्तन एक बहुत बड़ी बात है; प्राचीन युग धीरे-धीरे पूर्णतया नवीन युगमें परिवर्तित हो जाता है। अतएव किसी एक घटनाको या किसी एक संवत्‌को लेकर यह निश्चित करना कि इस वर्षके पहले एक युग था सरल नहीं।

किस घटनाको लेकर हम राष्ट्रीय जीवनमें नवीन युगके आगमका चिह्न देखते हैं, यह भी अभी तक निश्चित नहीं किया जा सका है। कई बार किसी विशिष्ट राजनैतिक घटना और उसके फलस्वरूप होनेवाले राजनैतिक परिवर्तनको नवीन युगके आगमका चिह्न गिनते हैं; उदाहरणार्थ, फ्रान्सकी राज्यक्रान्ति, इंग्लैण्डमें सन् १६८८ की शान्तिपूर्ण क्रान्ति। कई बार सांस्कृतिक या धार्मिक दृष्टिसे होनेवाली घटना ही से युग-परिवर्तनका निर्देश होता है; उदाहरणार्थ, यूरोपमें रिनेसेन्स तथा रिफार्मेशन ही आधुनिक कालके आगमके चिह्न समझे जाते हैं। परन्तु इस प्रकारकी एक विशिष्ट घटनाके ही आधारपर युग-परिवर्तन मानना कठिन होता है। किसी भी राष्ट्रके जीवनमें जहाँ तक कोई विशिष्ट परिवर्तन न हो, वहाँ तक युग-परिवर्तन नहीं होता। कुछ राजनैतिक परिवर्तन, तथा कुछ विजयों या हारोंका राष्ट्रके जीवनपर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। जब धीरे-धीरे प्राचीन जीवन-धारा विशिष्टरूपसे क्षीण होती देख पड़ती है तथा जब नवीन जीवन-धाराकी प्रगति बढ़ती नजर आती है, तब ही युग-परिवर्तन होता है। इतिहासकार ऐसे समयमें अपनी सुविधाके लिए किसी विशिष्ट घटनाको चुनकर वहाँ युग-सीमा निश्चित करते हैं; परन्तु यह युग-सीमा निश्चित करना तभी सम्भव हो सकता है, जब उस कालकी अन्तर्निहित राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और जातीय जीवनकी प्रगतियोंका पूरा-पूरा अध्ययन किया जा सके।

युग-परिवर्तनके अनुसार प्रत्येक इतिहासके विभिन्न युग निश्चित करना तथा उसीके अनुसार इतिहासका अध्ययन करना, पाश्चात्य परिपाटी है और अब इसका समावेश भारतीय इतिहासमें किया जाने लगा है। इसी प्रवृत्तिके फलस्वरूप भारतीय इतिहासके तीन प्रधान युग निश्चित किये गये हैं:—

(१) प्राचीनकाल—हिन्दू-युग (इसमें बौद्धोंका शासनकाल आदि भी सम्मिलित है)।

(२) मध्यकाल—मुसलमानी युग (भारतमें मुसलमानोंकी स्थापना, उनके साम्राज्योंका उत्थान और पतन)।

(३) अर्वाचीनकाल—अंगरेज़ी युग।

यह काल-विभाग एक प्रकारसे अब मान्य हो गया है, तथा भारतीय इतिहास इसी पद्धतिपर लिखा जाता है।

परन्तु इतिहासकार इस अनिश्चित साधारण युग-विभागको करके ही सन्तुष्ट नहीं हुए। विंसेंट स्मिथने सन् ११९३ ई०से मध्यकालका तथा सन् १७६१ ई०से आधुनिक कालका प्रारम्भ माना है। स्मिथके इस निर्णयको अभी तक प्राय: सब इतिहासकार मानते आये हैं। परन्तु जब आजकल राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे इतिहासका पुनर्निर्माण किया जा रहा है, तब यह प्रश्न अवश्य उठता है कि क्या यह काल-विभाग ठीक है,

या इसमें कुछ फेर-फारकी आवश्यकता है ? आज हम इसी प्रश्नपर विचार करनेवाले हैं कि—"क्या भारतीय इतिहासका आधुनिक काल सन् १७६१ ई०से प्रारम्भ होता है ?"

स्मिथ अपने निर्णयके पक्षमें लिखता है— "इतिहासकारोंने सन् १७६१ ई०को मुग़लकाल और ब्रिटिश कालकी सीमा मानी है ; परन्तु इस निश्चयका कारण यही नहीं है कि इसी साल पानीपतकी तीसरी लड़ाई हुई थी। इस घटनाके चार साल पहले क्लाइवने प्लासीकी लड़ाई जीतकर बंगाल तथा उसके अधीनस्थ प्रान्त ईस्ट इंडिया कम्पनीके अधिकारमें कर दिये। सन् १७६४ ई०में बक्सरके युद्धके बाद ही कम्पनीकी सैनिक सत्ता मानी जाने लगी, और सन् १७६५ ई०में इन प्रान्तोंकी दीवानी या मालगुज़ारी वसूल करनेका अधिकार, मुग़लोंके शाही फरमान द्वारा, कम्पनीको प्राप्त हुआ। सन् १७६० ई० में वाण्डीवाशमें फरासीसी हार चुके थे, अतएव जब पानीपतवाले साल अंगरेज़ोंने फरासीसियोंके भारतीय प्रान्तोंकी राजधानी पाण्डीचरीको जीत लिया, तो फरासीसियोंकी सत्ताका अन्त हो गया। पुनः सन् १७६१ ई०के जून मासमें हैदरअली मैसूरका शासक बन बैठा, और इस प्रकार उसने जिस सत्ताकी नींव डाली, वह अठारहवीं शताब्दीके अन्त तक स्थित रही। सन् १७६४ ई०में सिक्खोंने लाहौर अपने अधिकारमें कर लिया और स्वाधीन बन बैठे। इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् १७६१ ई०में, या अधिक सूक्ष्म दृष्टिसे सन् १७६० ई०से सन् १७६५ ई० तकके कालमें, पुराने युगका अन्त हो गया और नवीन युग आरम्भ हुआ।"

(विंसेंट स्मिथ ऑक्सफोर्ड स्टूडेन्ट्स हिस्टरी आफ् इंडिया ; पृष्ठ २३८)

अपने वृहत् ग्रन्थ 'आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ् इंडिया' में इसी विषयपर लिखते समय स्मिथने सन् १७६१ से सन् १८१८ तकके कालको 'परिवर्तनकाल' कहा है। क्यों सन् १७६१ ई०से ब्रिटिश कालका आरम्भ लेखकने माना है, इस विषयपर लेखकने इस ग्रन्थमें कुछ नहीं लिखा है।

स्मिथके इस उपर्युक्त कथन तथा उसके मतके समर्थनमें दिये गये कारणोंपर विचार करनेपर हम उससे सहमत नहीं हो सकते। लेखकने कुछ युद्धोंमें होनेवाली हार और विजय तथा अन्य कुछ राजनैतिक घटनाओंके आधारपर ही इस युग-भेदका निरूपण किया है! लेखकने राजनैतिक सत्ताओंके उत्थान और पतनकी ही मोटी दृष्टिसे विवेचना करके यह निश्चय किया है, यह स्पष्ट है। भारतके राष्ट्रीय तथा जातीय जीवनमें युग-धर्मके अनुसार होनेवाले परिवर्तनों तथा अन्य घटनाओंके आधारपर यह निश्चय किया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। युग-परिवर्तन-सम्बन्धी प्रश्नको हल करनेमें राष्ट्रीय जीवनमें होनेवाले परिवर्तनोंका भी उतना ही महत्व है, जितना राजनैतिक परिवर्तनोंका ; बल्कि एक दृष्टिसे तो राष्ट्रीय जीवनको अत्यधिक महत्त्व देना चाहिए। इस प्रश्नका उत्तर देनेमें इस प्रधान अंगकी उपेक्षा करके ही स्मिथने अपने पक्षको निर्बल कर दिया। यही एक बात स्मिथके मतका खण्डन करनेमें पर्याप्त है ; किन्तु इस विषयपर अधिक विचार करना चाहिए।

सन् १७६१ ई०को युग-विच्छेदक माननेमें जो शंकाएँ उठती हैं, उनमें से पहली तो यही है कि जब सन् १७६१ ई०से १८१८ तक परिवर्तन होता रहा, तो क्योंकर सन् १७६१ से नवीन युगका आरम्भ हो गया, यह माना जाय ? नवीन युगका प्रारम्भ तभीसे माना जाता है, जब विगत युगकी शक्तियाँ स्पष्टरूपसे छिन्न होकर विनष्ट होने लगें। जब नवीन युगका स्पष्टरूपसे प्राधान्य होने लगता है, तथा जब नवीन प्रगतियाँ अन्तर्निहित न रहकर राष्ट्रीय जीवनमें प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगती हैं, तभीसे उस नवयुगका प्रारम्भ माना जाता है। सन् १७६१ ई०के बाद भी मुग़लकालीन युग चलता रहा, इस मतके पक्षमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। सर्वप्रथम यद्यपि मुग़ल-साम्राज्य भंग हो गया था, और यद्यपि मुग़लोंकी सत्ता नगण्य हो गई थी, फिर भी

मुगल-सम्राट् विजेताओं तथा आक्रमणकारियोंके लिए एक मूल्यवान वस्तु थी। मुगल-सम्राट्की बहुमूल्यता इसी बातसे प्रकट होती है कि सन् १७६५ ई० बाद कई वर्ष तक अंगरेज़ोंने कड़ा और इलाहाबादके प्रान्त मुगल-सम्राट् शाह आलमके अधीन कर दिये तथा बंगालके प्रान्तकी मालगुज़ारीमें से २६ लाख सालाना देकर शाह आलमको अपने अनुकूल बनाये रखना उचित समझा। पुन: महादजी सिन्धिया द्वारा मुगल-साम्राज्यके पुनर्स्थापनाके लिए प्रयत्न करना तथा उसमें मराठोंका प्राधान्य रखनेका प्रयत्न भी यही बताता है कि भंग होकर भी तब तक मुगल-साम्राज्यका सम्पूर्ण विनाश नहीं हुआ था। मुगल-साम्राज्यका भूत तो स्मिथके मतानुसार भी सन् १८०३ ई०में जब दिल्ली भी अंगरेज़ोंके अधिकारमें आ गई तथा मुगल-सम्राट् अंगरेज़ोंसे पेन्शन पाने लगा, तभी सर्वदाके लिए विलीन हो गया। अंगरेज़ोंको बंगाल-प्रान्तकी दीवानी देकर ही इकबारगी मुगल-सम्राट् एक नगण्य व्यक्ति हो गया, यह बात समझमें नहीं बैठती। जिस दीवानी देनेकी घटनाको स्मिथने एक युग-परिवर्तनकारी घटना माना है, उसका महत्व इसी कारण है कि मुगल-सम्राट् द्वारा यह फरमान दिया गया था। यदि यह माना जाय कि सन् १७६१ ई०के बाद, या सन् १७६५ ई०के बाद ही, मुगल-साम्राज्यका अस्तित्व न रहा, तो यह निश्चित करना होगा कि यह साम्राज्य कब भंग हुआ। सन् १७६५ ई०में दीवानी देकर ही इकबारगी मुगल-साम्राज्य भंग हो गया, इस मतका इतिहास समर्थन नहीं करता। जिस कारण दीवानी देनेकी घटनाका महत्त्व है, उसीसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मुगल-साम्राज्यके अन्तकी पूर्णाहुति सन् १७६५ ई० तक नहीं हुई थी।

पुन: मुगलकाल या मध्यकालके अन्तिम दिनोंकी प्रधान विशेषता—मराठोंका उत्कर्ष—सन् १७६१ ई०के बाद भी कोई ४० वर्ष तक ज्यों-की-त्यों बनी रही। यह बात आजकल प्राय: सब इतिहासकारों द्वारा मानी जा चुकी है कि पानीपतका युद्ध मराठोंकी बढ़ती हुई सत्ताके लिए घातक नहीं हुआ। और पानीपतके युद्धके कोई ११ वर्ष बाद इस युद्धसे भी अधिक घातक घटना—पेशवा माधवरावकी अकाल मृत्यु—घटी, तब भी मराठोंकी सत्ताको बनाये रखने तथा उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि करनेको नाना फड़नवीस और महादजी सिन्धिया विद्यमान थे। इन दोनों महान पुरुषोंने मराठोंकी सत्ताको अक्षुण्ण ही नहीं बनाये रखा; किन्तु उसे शक्तिशाली भी बनाये रखनेका प्रयत्न किया। खड़ीकी महान विजय सन् १७६१ ई०के बादमें ही प्राप्त की गई थी। खड़ीके युद्ध तक इस शक्तिके अन्तके चिह्न नहीं दीख पड़ते थे, और ऐसी शक्तिशाली सत्ताके स्थित रहते हुए नवीन युगका प्रारम्भ हो गया हो, यह बात नहीं मानी जा सकती। मराठोंका राज्य तथा उनकी सत्ता प्रधानतया मध्यकालीन ही थी। मराठे ही मध्यकालीन आदर्श, सत्ता, शासन और नीतिके अन्तिम प्रतिनिधि थे। जो चित्र मराठोंकी नीतिका सर देसाईने खींचा है, उसे पढ़कर यह मानना उचित नहीं कि मध्यकालका अन्त मराठोंके अन्तके पहले ही हो गया हो। पुन: यदि यह मान लिया जाय कि मराठोंका साम्राज्य पुराना था, अतएव उसमें कोई परिवर्तन न हो पाया, तो कम-से-कम इस नवीन युगमें स्थापित तथा विकसित होनेवाले राज्यमें तो कुछ नूतनता पाई जानी चाहिए; किन्तु हैदरअली और टीपूके मैसूर-राज्यमें कोई नवीनता नहीं पाई जाती। देश, काल तथा परिस्थितिके फलस्वरूप पाई जानेवाली विभिन्नताको छोड़कर स्मिथके मतानुसार आधुनिक युगमें स्थापित होनेवाला यह मैसूर-राज्य मुगलोंके अन्तिम दिनोंमें स्थापित निज़ामके राज्यसे अधिक उन्नतिशील कदापि न था।

सन् १७६१ ई० तक यद्यपि अंगरेज़ोंकी जड़ जम चुकी थी; किन्तु उस समय तक आक्रमण करके सारे भारतको पदाक्रान्त करनेकी नीति उन्होंने अंगीकार न की थी। अंगरेज़ोंकी स्थिति भारतमें

ऐसी न थी कि उससे पूर्णतया नवीन युगका आगम जान पड़े। अंगरेज़ोंके भारतीय प्रान्तोंके शासनमें भी कोई नूतनता नहीं पाई जाती। वारेन हेस्टिंग्स तक बंगालका शासन उसी पुराने मुसलमानी ढंगपर चलता रहा। कम्पनीका चार्टर भी अठारहवीं शताब्दीके अन्त तक प्राय: वही रहा, जो कोई सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें उन्हें मिला था। यदि कोई विशेष घटना हुई थी, तो केवल रेग्यूलेटिंग ऐक्ट तथा पिट्स इंडिया ऐक्टका पास होना। कुछ शासन-सम्बन्धी सुधार करना ही उन क़ानूनोंका ध्येय था; इन क़ानूनोंमें कोई युग-परिवर्तनकारी विशेषता न थी।

राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिसे भी सन् १७६१ के बाद कोई ऐसे चिह्न नहीं दीख पड़ते, जिनसे इकबारगी नवीन युगके आरम्भकी सूचना मिले। अंगरेज़ोंने अभी तक बराबरीके मित्र या शत्रुके तौरपर भारतीय राज्यों तथा सत्ताओंके साथ सन्धियाँ की थीं, और कोई २५-३० वर्ष तक यही नीति चलती रही। निज़ाम खड़ीके युद्धके समय तक एक प्रकारसे पूर्णतया स्वाधीन थे। जिन राज्योंपर अंगरेज़ोंका पूर्ण अधिकार हो गया था और जिनको उन्होंने अपने अधीन कर लिया था, वहाँके शासकको एक तरफ़ सरका दिया गया था; उदाहरणार्थ, बंगाल और कर्नाटकके नवाबोंका नाम लिया जा सकता है। सहायक नीति तथा अधीनता स्वीकार कराकर उन शासकोंको अपनी छत्रछायामें लानेकी नीतिका उद्भव अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम दिनोंमें ही हुआ। यही वह नीति थी, जिससे भारत अंगरेज़ोंके अधिकारमें आया; अतएव इस नीतिका आरम्भ होनेके साथ ही आधुनिक या ब्रिटिश युगका आरम्भ माना जा सकता है, इससे पहले नहीं।

यदि अठारहवीं शताब्दीका इतिहास पढ़ा जाय, तो उसको पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस इतिहासमें कहीं भी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। राजनैतिक परिवर्तन हुए; किन्तु कोई भी ऐसा नहीं है, जहाँ इकबारगी श्रृंखला टूटती हो। बंगालकी नवाबीका पतन, बक्सरका युद्ध, पानीपतका युद्ध, मराठोंकी राजनीतिमें होनेवाले परिवर्तन—ये सब एक मार्गकी ओर बहनेवाले प्रवाहकी भिन्न-भिन्न तरंगें मात्र हैं। फिर उन दिनों अठारहवीं शताब्दीमें भी इन परिवर्तनोंको युग-परिवर्तक समझा गया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। 'सियार-उल-मुताख़रीन' नामक इतिहास-ग्रन्थ अठारहवीं शताब्दीमें ही लिखा गया था, अतएव उसको पढ़नेसे उपर्युक्त कथनकी सत्यता प्रकट हो जायगी। आगामी भविष्यमें होनेवाले राजनैतिक परिवर्तनोंके कुछ चिह्न दीख पड़ने लगे थे; किन्तु तब वे तत्कालीन परिस्थितिके परिणाम-स्वरूप ही थे। आगामी भविष्यमें होनेवाले राजनैतिक परिवर्तनोंके फलस्वरूप ही धीरे-धीरे उन बातोंने आधुनिक स्वरूप धारण किया। इन चिह्नोंमें विशेषरूपसे उल्लेखनीय है—कलकत्ता-मदरसाकी सन् १७८१ में स्थापना होना। यह मदरसा प्रारम्भमें फ़ारसी-अरबीके पठनके लिए ही था, फिर कोई ४० वर्ष बाद अंगरेज़ीका क्लास खुला। मदरसेकी स्थापना नवयुगके आगामी आगमकी सूचना देती है, और साथ ही फ़ारसी-अरबीका पठन-पाठन यह घोषित करता है कि मध्ययुग अभी तक भूतकालकी वस्तु नहीं हुआ था। जो बीज इस वक्त बोया गया, वही आगे जाकर आधुनिक अंगरेज़ी शिक्षाके रूपमें फला। परन्तु यह बीज बोया गया था पानीपतके युद्धके २० वर्ष बाद, और इसमें पृथक् अंकुर फूटा सन् १८१३ ई०में, जब शिक्षाके लिए द्रव्य व्यय करनेकी आज्ञा दी गई। क्यों ३० वर्ष तक यह बीज बिना अंकुरित हुए पड़ा रहा? इस प्रश्नका उत्तर यही है कि बीजके लिए उपयुक्त समय अब तक आया न था; अनुकूल अवसर आनेपर ही यह फूटा। सन् १७८१ ई० में भी भारतीय इतिहासका मध्यकाल समाप्त नहीं हुआ था, और उस कालकी समाप्तिके पहले आधुनिक शिक्षा-प्रणालीका अंकुरित होना कठिन था।

तब किस समय मध्यकालका अन्त हुआ?

सब बातोंपर विचार करनेपर यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई सन् मध्यकालकी समाप्ति सूचित करता है, तो वह है सन् १८०३ ई०। अठारहवीं शताब्दीके अन्तके साथ ही मध्यकालका भी अन्त हो गया। सन् १८०२ ई० के अन्तिम दिन ३१ दिसम्बरको पेशवा बाजीराव (द्वितीय) ने अंगरेज़ोंके साथ बेसीनकी सन्धि की, जिसके फलस्वरूप पेशवाने वेलेस्लीकी सहायक नीति स्वीकार की, और यद्यपि एक बार फिर पेशवा अपने स्थानपर अंगरेज़ों द्वारा स्थापित किया गया; परन्तु मराठोंकी सत्ता तथा स्वाधीनताका अन्त हो गया। सन् १८०२ ई० के बाद पेशवाई एक प्रकारसे मृतप्राय हो गई थी, जन-समाजकी उसके प्रति कोई सहानुभूति न रही थी तथा पेशवा मराठोंका अधिपति न रहकर एक दूसरी सत्तापर आश्रित रहनेवाला शासकमात्र रह गया था। मराठोंकी सत्ताका अन्त मध्यकालके अन्तकी सूचना देनेवाली अन्तिम घटना थी। कोई एक युगसे धीरे-धीरे मध्यकालीन भारत विनष्ट हो रहा था। सन् १७९५ ई० में खड़ीके युद्धमें निज़ामकी घोर पराजय हुई, जिसके फलस्वरूप ही इकबारगी सन् १७९८ ई० में निज़ामको अंगरेज़ोंकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। निज़ामकी यह हार मध्यकालके अन्त होनेकी प्रथम घटना है। सन् १७९६ ई० में पेशवा माधवराव नारायणरावकी मृत्यु दूसरी प्रधान दुर्घटना थी। यदि वह पेशवा न मरता, तो बाजीरावके पेशवा बननेका अवसर न आता, और यों मराठोंकी सत्ताको नष्ट करनेवाले दो प्रधान व्यक्तियोंमें से एक बाजीरावको कोई अवसर नहीं मिलता। सन् १७९७ ई० में अवधके किये जानेवाले हस्तक्षेपोंने अंगरेज़ोंकी नवीन नीतिको स्पष्टरूपसे प्रकट कर दिया। सन् १७९८ ई०में निज़ामके प्रति जो नीति काममें लाई गई, उसीसे अंगरेज़ोंकी भारतीय नीतिका एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। सन् १८०२ ई०से पहले जहाँ सर जॉन शोर आदिने उनसे पहलेके गवर्नर-जेनरलोंकी नीतिको पूर्ण परित्याग करके देशी राज्योंसे नाता तक तोड़ डाला, इस नीतिके प्रारम्भके बाद ही अंगरेज़ोंकी नीतिमें कोई महान परिवर्तन नहीं हुआ। सर जॉन बार्लोने बेसीनमें पेशवाके साथ की गई सन्धिमें कुछ भी परिवर्तन करनेसे सन् १८०६ ई० में इनकार कर दिया था। राजनीतिमें पाई जानेवाली स्थिरता नवीन युगके प्रारम्भका प्रधान चिह्न है। सन् १७९९ ई० में चतुर्थ मैसूर-युद्धके फलस्वरूप टीपूका अन्त हुआ, और एक और मध्यकालीन सत्ता नष्ट हो गई। तंजोर और सूरतका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना भी नवीन युगके आगमकी सूचनामात्र है। सन् १८०० में मराठोंके अन्तिम महान राजनीतिज्ञ नाना फड़नीसकी मृत्यु हुई, और सर देसाईके मतानुसार—"उसके साथ ही शिवाजी द्वारा स्थापित स्वराज्यका अन्तिम अध्याय समाप्त हो गया।" स्वाधीन भारतकी जिन शक्तियोंके अस्तित्वके आधारपर ही मध्यकालका अस्तित्त्व स्थापित था, वे सब शक्तियाँ इस प्रकार सन् १८०३ ई० तक या तो विनष्ट हो गईं, या अपनी स्वाधीनता खो बैठीं।

और जब नवीन युगका आरम्भ हुआ, तो मध्य-युगकी अन्तिम ज्योति-रेखाएँ विलीन हो गईं। जो तारे अब भी चमचमा रहे थे, वे फीके ज्योतिविहीन हो गये थे, और साथ ही नवीन भारतके उद्भवकी रेखाएँ स्पष्ट हो रही थीं। सन् १८०३ ई०में मुग़ल-सम्राट्—नाममात्रके ही लिए क्यों न हो—अपनी स्वाधीनता खोकर अंगरेज़ोंसे प्राप्त पेंशनपर ही अपना गुज़र चलाने लगे। इसी घटनाके साथ ही मुग़ल-साम्राज्यका भी अस्तित्त्व विनष्ट हो गया, उसके पुनरुत्थानकी कोई आशा न रही।

अब नवीन नीतिका भी प्रस्फुटन होने लगा, और लार्ड मिन्टोको अत्यावश्यक प्रतीत हुआ कि बुन्देलखण्डमें शान्ति स्थापित करे। सन् १८१३ ई० में प्रथम बार शिक्षा-प्रचारके लिए कुछ द्रव्य व्यय करना उचित जान पड़ा। सन् १८१९ ई० में भारतके प्राय: सब राज्योंसे अंगरेज़ोंने समझौता करके उनपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, और

नाममात्रके मुग़ल-सम्राट्को गवर्नर-जेनरलने नज़र देना बन्द कर दी। शासन-प्रणाली आदिमें भी अनेकानेक सुधार किये गये, तथा लगान-सम्बन्धी प्रश्नोंपर पुनः विचार करके कोई नीति निर्धारित की जाने लगी। सन् १८१८ ई० में भारतीय भाषाओंमें छपनेवाला प्रथम साप्ताहिक प्रकाशित हुआ। इसी कालके बादमें राष्ट्रीय जीवनमें राममोहन रायकी ख्याति होना, सुधार आदिके लिए उनके प्रयत्न, ब्राह्मसमाजकी स्थापना, अंगरेज़ी शिक्षाका प्रचार, देशी भाषाओंमें गद्य तथा अन्य बातोंका प्रस्फुटन, बंगालकी ऐशियाटिक सोसाइटीमें भारतीयोंका प्रवेश होना आदि बातें ऐसी थीं, जो स्पष्ट बताती हैं कि उस कालमें आधुनिक युगका प्रवाह पूर्ण वेगके साथ बह रहा था।

सन् १८१३ ई० में ही कम्पनीका व्यापारिक एकाधिकार भी नष्ट हो गया, और जो नीति इस वर्ष प्रारम्भ हुई, वही सन् १८३३ ई० तथा १८५८ ई०में जाकर पूर्णरूपसे फलीभूत हुई। सन १८१३ ई०में इस बातपर ज़ोर दिया गया कि कम्पनीका व्यापारसे कोई सम्बन्ध न रहने दिया जाय, और उसी वक्त यह भी प्रस्ताव किया गया था कि भारतीय देशोंका शासन कम्पनीके हाथसे लेकर पार्लामेंट स्वयं ग्रहण करे।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे हम इसी निश्चयपर पहुँचते हैं कि भारतीय इतिहासका आधुनिक काल सन् १८०३ ई०से ही आरम्भ होता है। और यदि यह बात इतिहासकार स्वीकार करें, तो उनसे हम यही प्रार्थना करेंगे कि वे इसी परिवर्तनके आधारपर अठारहवीं शताब्दीका भारतीय इतिहास पुनः लिखें।

यदि हम आजकलके विद्यमान भारतीय इतिहास-ग्रन्थ देखें, तो उनमें अठारहवीं शताब्दीका इतिहास नहीं मिलता। सन् १७६१ ई० तकका इतिहास मुग़लोंके पतनके इतिहासके स्वरूपमें पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किया जाता है। इसके बाद भारतीय इतिहासकी शृंखला टूट जाती है, और आधुनिक युगके आरम्भके साथ ही भारतीय इतिहास, भारतीय इतिहास न रहकर, भारतमें अंगरेज़ी सत्ताकी स्थापनाका इतिहासमात्र रह जाता है। यदि निष्पक्ष दृष्टिसे देखा जाय, तो अठारहवीं शताब्दीमें चार घटनाएँ बड़ी महत्व की हैं:—

(१) मुग़ल-साम्राज्यका भंग होना।

(२) मराठोंकी सत्ताका उद्भव, उसकी वृद्धि तथा उसका पतन।

(३) भारतीय मुसलमानी शक्तियोंका पतन।

(४) भारतमें यूरोपीय सत्ताओंके युद्धमें अंगरेज़ोंकी सफलता तथा अंगरेज़ोंकी सत्ताका भारतमें स्थापित किया जाना।

भारतीय दृष्टिकोणसे अठारहवीं शताब्दीके इतिहासमें जितना महत्त्व प्रथम तीन घटनाओंको दिया जाना चाहिए, उतना उन्हें नहीं दिया जाता है। जहाँ तक इन प्रश्नोंकी ठीक-ठीक विवेचना नहीं की जायगी, जब तक उन्हें यथोचित महत्त्व नहीं दिया जायगा, वहाँ तक तत्कालीन भारतीय इतिहासमें ऐतिहासिक समीकरणका पता भी नहीं लगेगा; और इस समीकरणके बिना इतिहास महत्त्व-रहित हो जाता है। भारतीय इतिहासमें मराठोंके इतिहासको समुचित स्थान प्रदान करना अत्यावश्यक है। अठारहवीं शताब्दी और विशेषतया १७२५—१८०२ तकके युगको मराठा-युग कहा जा सकता है। मराठोंका इतिहास—सांस्कृतिक दृष्टिसे भी—बड़े महत्त्वका है। मध्ययुगीन ही नहीं, प्राचीन हिन्दू भारतके भी ये मराठे ही एकमात्र उत्तराधिकारी थे। और यद्यपि कई कारणोंसे उनमें सांस्कृतिक गम्भीरताका अभाव पाया जाता है, किन्तु फिर भी वे अन्तिम भारतीय सत्ता थे। अतएव उसकी विवेचना न करना अनुचित होगा। आधुनिक युगका प्रारम्भ यदि १८०३ ई०से माना जाय, तब यह पूर्णतया शक्य होगा कि अठारहवीं शताब्दीका सम्बद्ध इतिहास लिखा जाय और तभी मराठोंके इतिहासकी भी पूर्ण विवेचना की जा सकेगी।

युग-परिवर्तन कब होता है, यह निश्चित करना ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिसे ही नहीं, किन्तु अन्य

कारणोंसे भी अत्यावश्यक हो जाता है? इन निश्चयोंका राष्ट्रपर बहुत प्रभाव पड़ता है। और जिस प्रश्नको यहाँ उठाया है, वह तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—विशेषतया इसलिए कि इसका आधुनिक कालके इतिहासपर बहुत प्रभाव पड़ेगा। क्या अन्य इतिहासकार तथा अधिकारी लेखक इस प्रश्नपर अपने विचार प्रकट करेंगे? क्या वे इस प्रश्नको सुलझाकर अपने ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें तदनुरूप परिवर्तनकर उसी दृष्टिसे अठारहवीं शताब्दीकी विवेचना करेंगे?

नूरजहाँ

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त', बी० ए०, एल-एल० बी०

[बारहवें सर्गका एक दृश्य। मेहरुन्निसाकी पुत्री लैलाको सर्वसुन्दरी नामक स्त्री लोरी गाकर सुना रही है। —सम्पादक]

निन्दी, आ जा निन्दी आ जा, लैला तुझे बुलाती है;
इन्तज़ारमें जाग रही है आँखें नहीं लगाती है।
मिट्टीके पकवान बनाकर लैला तुझे खिलावेगी;
और धूलका महल बनाकर उसमें तुझे सुलावेगी।
'चम्पाकली' तुझे पहिनाकर 'जौमाला' पहिनावेगी;
और 'करौंदे'के लटकनसे तेरा कान सजावेगी।
ऊषासे सुरंग चुँदरी ले, 'बिजली' घनमालासे ला,
लहर-जालसे छीन करधनी, कीर कण्ठसे ले कण्ठा,
तेरा कर शृंगार भली विधि दुलहिन तुझे बनावेगी;
छत्रक-मण्डपमें गुड्डेसे अपने, ब्याह रचावेगी।
तेरी मुँहदेखीमें मैं भी लूँगी माँग स्वप्नका देश;
जहाँ सदा वसंत रहता है, नहीं किसी दुखका लवलेश।
अच्छे-अच्छे फल चख-चखके लैला तुझको देवेगी;
और बिठा कागद-नौकामें बड़े प्रेमसे खेवेगी।
आ जा निन्दी, आ जा निन्दी, लैला तुझे बुलाती है;
आते-आते बड़ी दूरसे निन्दी भी थक जाती है।
ध्रुव-प्रदेशके छोटे बच्चे नहीं सोलाये सोते हैं;
पड़े पीठपर झोलेमें, खा शीत, काँपकर रोते हैं।
घात लगाकर जमे सिंधुपर, बैठी हुई अकेलेमें;
माता मछली मार रही है, विद्युत-लहर उजेलेमें।
बर्फ-गेहमें जाकर जब भालूकी खाल ओढ़ाई है;
तब बच्चोंको थपकी दे दे नींद सोलाने पाई है।
मरु-प्रदेशके बच्चे भी प्यासे 'मम मम' चिल्लाते हैं;
हिचकोलोंपर हिचकोले बैठे ऊँटोंपर खाते हैं।
लू उनका मुँह झुलस रही है, धूप आग बरसाती है;
सूखी छाती मुँहमें दे बच्चेको माँ बहलाती है।
नखलिस्तान पहुँचकर पानीने ठंडक पहुँचाई जब;
निन्दी उन छोटे बच्चोंको कहीं सोलाने पाई तब।
माँ समझाती है कितना ही कि हो गया अँधेरा है;
पर शिशु-खग उड़ता फिरता है लेता नहीं बसेरा है।
स्यारोंकी बोली सुनवाकर उन्हें डराकर लाई है;
तब निन्दी उस खग-कुमारको कहीं सोलाने पाई है।
इन्हें सुलाकर अभी पहुँचती है आई बस वह आई;
चलो सो गई लैला भी ले-लेकर कितनी जमुहाई।
पलनेकी तरंगमें शशि नौका-सी मेरी लैला सो;
मेरे दृग-दोलोंमें सोती रहे चपल पुतली-सी हो।

निन्दी भी भ्रमरी-सी बनकर कमल-दृगोंमें सोई है;
धीमे स्वरसे मेरी लोरी अब गाता सब कोई है।

नीति क्या है और ज़िन्दगी किसे कहते हैं?

प्रिन्स क्रोपाटकिन
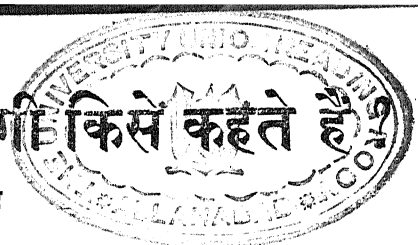
पाप और पुण्यमें भेद बतानेके लिए यहूदी, बौद्ध, ईसाई और मुसलमान धर्मशास्त्रकारोंने ईश्वरीय अनुप्रेरणाकी शरण ली है। उन्होंने देखा कि मनुष्य, चाहे वह सभ्य हो या बर्बर, पंडित हो या मूर्ख, सरल हो या कुटिल, इस बातको बराबर जानता है कि वह अच्छा कर रहा है या बुरा,—खासकर जब वह कोई बुरा कर्म करता है, तब तो वह उसे अवश्य ही जानता है। इस साधारण बातकी कोई व्याख्या उन्हें मालूम नहीं पड़ी, इसलिए उन्होंने इसका कारण ईश्वरीय अनुप्रेरणा बताया। रहस्यवादी दार्शनिकोंने हमें अंत:करण या एक रहस्यपूर्ण 'आदेश'का संकेत बताया है; परन्तु इसमें नाम-परिवर्तनके सिवा पहली व्याख्यासे और कोई भेद नहीं है। इन दोनोंमें किसीकी भी समझमें यह सरल और उल्लेखनीय बात नहीं आई कि सामूहिक रूपसे रहनेवाले पशु भी मनुष्यके समान ही अच्छे और बुरेकी पहचान कर सकते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि अच्छे और बुरेके सम्बन्धमें उनकी भावना ठीक मनुष्य-जैसी ही होती है। मछली, कीट, पक्षी और स्तन्यपायी जीवोंकी प्रत्येक श्रेणीमें जो सर्वोत्तम विकसित प्राणी होते हैं, वे ठीक मनुष्यके अनुरूप होते हैं।

चींटियोंके सम्बन्धमें अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाले वैज्ञानिक फ्लोरेलने अपने चिरकालिक अनुभवके आधार पर दिखाया है कि एक चींटी, जिसका पेट शहदसे भरा हुआ है, जब खाली पेटवाली दूसरी चींटियोंसे मिलती है, तो वे चींटियाँ उससे भोजन माँगती हैं। इन छोटे-छोटे कीटोंमें भी—जिनका पेट भरा हुआ होता है—यह कर्त्तव्य समझा जाता है कि वे अपने पेटका कुछ भोजन उगल दें, जिससे उनके भूखे भाइयोंको तृप्ति हो। इन चींटियोंसे पूछिये कि उसी बाँबीकी दूसरी चींटियोंको—जब कि एक चींटीको अपना हिस्सा मिल चुका है—भोजन नहीं देना क्या उचित होता? वे अपनी क्रियाओंसे—जिनका अभिप्राय समझनेमें कोई भूल हो ही नहीं सकती—यह स्पष्ट बता देंगी कि ऐसा करना बिलकुल ग़लत होता। इस प्रकारके स्वार्थपर चींटीके साथ अन्य जातियोंके शत्रुओंकी अपेक्षा कठोरतर बर्ताव किया जायगा। यदि दो भिन्न-भिन्न जातियोंके बीच संग्राम होते समय इस प्रकारकी कोई घटना हो, तो चींटियाँ लड़ना बन्द करके अपने स्वार्थी साथीपर टूट पड़ेंगी। यह बात प्रयोगसे सिद्ध हो चुकी है, इसमें सन्देहके लिए कोई स्थान ही नहीं है।

अपने बागीचेमें रहनेवाली गौरैयासे पूछिये कि अनाजके दाने छींटे जानेपर अपने समाजके और सब गौरैयोंको नोटिस देना उसके लिए उचित है या नहीं, ताकि वे सब भी वहाँ पहुँचकर भोजनमें शामिल हो सकें? उससे पूछिये कि अपने पड़ोसकी गौरैयोंके घोंसलेसे एक पुआल चुराकर एक दूसरे गौरैयाने—जिसे वह चोर पक्षी आलस्यके कारण खुद जाकर संग्रह नहीं कर सकता था—क्या उचित किया है? वे सब गौरैया उस डाकू पक्षीपर आक्रमणकर उसे चोंचसे मार-मारकर यह उत्तर देंगी कि उसने बहुत बुरा काम किया है।

पहाड़ी चूहोंसे पूछिये कि क्या उनकी जातिके एक पहाड़ी चूहेके लिए यह उचित है कि वह अपने तहखानेके भंडारमें उसी स्थानके रहनेवाले अपने जात-भाइयोंको नहीं घुसने दे? वे उस कंजूस चूहेके साथ सब प्रकारसे लड़-झगड़कर यह बता देंगे कि ऐसा करना बहुत ही अनुचित है।

एक जंगली आदमीसे पूछिये कि उसके दलके किसी व्यक्तिके तम्बूमें—जिस समय वह उपस्थित न हो—भोजन करना क्या उचित है? तो वह उत्तर देगा कि यदि वह आदमी अपना भोजन स्वयं ही प्राप्त कर सकता है, तो उसके लिए ऐसा करना बहुत ही अनुचित है। परन्तु यदि वह थका हुआ हो, या उसके

लिए भोजनका अभाव हो, तो उसे जहाँ भोजन मिले, वहाँ ग्रहण कर लेना चाहिए; किन्तु ऐसी दशामें उसके लिए यह अच्छा होगा कि वह अपनी टोपी या छुरी या रस्सीका एक टुकड़ा वहाँ छोड़ दे, जिससे बाहर गया हुआ शिकारी जब लौटकर आये, तो उसे इस बातका पता चल जाय कि उसका कोई बन्धु वहाँ आया था—कोई चोर या डाकू नहीं। इससे वह इस परेशानीसे बच जायगा कि उसकी अनुपस्थितिमें उसके खीमेके पास शायद कोई डाकू या लुटेरा तो नहीं आया था।

इस प्रकारकी हज़ारों बातें कही जा सकती हैं, बल्कि पूरी किताबें लिखी जा सकती हैं, जिनसे यह मालूम होगा कि मनुष्यों तथा पशुओंमें अच्छे और बुरेकी भावनाएँ किस प्रकार एक समान होती हैं।

उस चींटी, पक्षी, चूहा अथवा जंगली आदमीने कान्ट (Kant) के दर्शन या धर्माचार्योंके धर्मोपदेश नहीं पढ़े। यदि आप एक क्षणके लिए इस बातपर विचार करें कि इस भावनाके अन्दर कौनसा रहस्य छिपा हुआ है, तो आपको प्रत्यक्ष मालूम हो जायगा कि चींटियों, चूहों, ईसाइयों या नास्तिक सदाचारियोंमें जो कुछ अच्छा समझा जाता है, वह यह है कि जिससे उनकी जातिके संरक्षणमें लाभ पहुँचे; और जिससे उनकी जातिके संरक्षणमें हानि पहुँचे, वह बुरा समझा जाता है। केवल व्यक्तिके संरक्षणके लिए नहीं—जैसा कि बेन्थम और मिल ने कहा है—बल्कि सम्पूर्ण जातिके संरक्षणके लिए जो अच्छा है, वही दरअसल अच्छा है।

इस प्रकार भले और बुरेकी भावनाके साथ धर्म या रहस्यपूर्ण अन्तःकरणका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्राणियोंमें स्वतः इसका बीज निहित रहता है। धर्म-संस्थापक, दार्शनिक और सदाचारपंथी जब ईश्वरीय या आध्यात्मिक सज़ाकी बात बताते हैं, तो वे उसी बातको अन्य रूपमें कहते हैं, जिसका आचरण प्रत्येक चींटी और गौरैया अपने क्षुद्र समाजमें करती है।

क्या यह समाजके लिए लाभदायक है? यदि हाँ, तब तो यह अच्छा है। क्या यह हानिकारक है? यदि हाँ, तो यह ख़राब है। निम्नतर प्राणियोंमें यह भावना बहुत ही संकुचित हो सकती है, उनकी अपेक्षा उन्नत प्राणियोंमें यह अधिक विकसित हो सकती है; पर उसका मूलतत्त्व बराबर एक समान ही बना रहता है।

चींटियोंमें उनकी बाँबीसे बाहर इस भावनाका विस्तार नहीं होता। सामाजिक रीति-नीति तथा सदाचरणके कुल नियम उस बाँबीकी चींटियों तक ही परिमित रहते हैं, किसी दूसरेके साथ नहीं। एक बाँबीकी चींटियाँ किसी दूसरी चींटीको, सिवा अपवाद दशाओंमें (जैसे, दोनोंपर एक समान ही विपत्ति पड़ी हो) अपने वंशकी नहीं समझेंगी। इसी प्रकार एक स्थानमें रहनेवाली गौरैया—यद्यपि परस्पर एक दूसरेकी सहायता विशेष रूपसे करेंगी—किसी दूसरे स्थानकी गौरैयाके साथ, जो उसके स्थानमें आनेका साहस करे, जानपर खेलकर लड़ेगी। एक जंगली आदमी किसी दूसरे दलके जंगली आदमीको एक ऐसा मनुष्य समझेगा, जिसके प्रति उसके दलकी रीति-नीति लागू नहीं हो सकती। उसके हाथ कोई चीज़ बेचना भी जायज़ है; चूँकि बेचनेका अर्थ ही है ख़रीदारको न्यूनाधिक रूपमें ठगना, और बिक्रीमें कोई न कोई ज़रूर ठगा जाता है—बेचनेवाला या ख़रीददार। किसी जंगली जातिका आदमी अपने दलवालोंके हाथ कोई चीज़ बेचना अपराध समझता है, उन्हें वह बिना किसी गिनतीके ही दे देता है। और सभ्य मनुष्य—जब कि वह यह समझता है कि अपने तथा मनुष्य-जातिके साधारणसे साधारण व्यक्तिके बीच घनिष्ट सम्बन्ध है, और वह सम्बन्ध पहली बारके देखनेसे प्रत्यक्ष नहीं होता—सम्पूर्ण मानव-जाति, यहाँ तक कि पशुओंके प्रति भी, एकताके सिद्धान्तोंका विस्तार करेगा। माना कि सभ्य मनुष्यकी यह भावना अत्यन्त विस्तृत होती है; किन्तु उसका मूलाधार एक समाजसे बना रहता है।

दूसरी ओर अच्छे या बुरेकी भावना बुद्धि या अर्जित ज्ञानकी मात्राके अनुसार बदलती रहती है। इसमें कोई बात ऐसी नहीं होती, जो बदली न जा सके।

जंगली आदमी इस बातको बहुत ठीक समझ सकता है (अर्थात् अपनी जातिके लिए लाभदायक) कि वह अपने वृद्ध माता-पिताको —जब कि वे समाजके लिए भारस्वरूप हों—चट कर जाय। वह समाजके लिए यह भी लाभदायक समझ सकता है कि वह अपने नवजात बच्चोंकी हत्या कर डाले और प्रत्येक परिवारमें सिर्फ दो या तीन बच्चोंको रहने दे, जिससे मा तीन वर्ष तक बच्चेको दूध पिला सके और उन्हें अधिकसे अधिक लाड़-प्यार कर सके।

आधुनिक समयमें विचारोंमें परिवर्तन हो गया है ; किन्तु जीवन-धारणके जो साधन प्रस्तर-युगमें थे, वे अब नहीं रहे। इस समयका सभ्य मनुष्य उस जंगली परिवारकी स्थितिमें नहीं है, जिसे दो बुराइयोंमें से एकको चुन लेना पड़ता था,—या तो वह अपने वृद्ध माता-पिताको चट कर जाय, या फिर सारे परिवारको काफी पुष्टिकर भोजन नहीं दे सके और शीघ्र ही अपने वृद्ध माता-पिता और बच्चोंको खिलानेमें असमर्थ हो जाय। पहले हमें कुछ समयके लिए अपनेको उस युगमें ले जाना चाहिए, जिसे हम कदाचित ही अपने मनमें ला सकते हैं, तब हम इस बातको समझ सकते हैं कि उस समय जैसी अवस्थाएँ थीं, उनमें अर्द्ध-सभ्य मनुष्यका इस प्रकार तर्क करना ठीक हो सकता था। विचार-प्रणालीमें परिवर्तन हो सकता है। जातिके लिए क्या लाभदायक है और हानिकारक—इस सम्बन्धमें हमारा जो अनुमान है, उसमें परिवर्तन हो सकता है, किन्तु उसका मूलाधार एक ही रहता है।

यदि हम जीव-जगतके सम्पूर्ण दर्शनको एक ही वाक्यमें कहना चाहें, तो हम देखेंगे कि चींटी, पक्षी, चूहा और मनुष्य—सब एक बातपर सहमत हैं। सम्पूर्ण जीव-जगतको ध्यानपूर्वक देखनेसे जिस नीति-ज्ञानका बोध होता है, उसे हम थोड़े शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं—"दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा उनकी-जैसी अवस्थामें होनेपर तुम स्वयं अपने साथ व्यवहार किया जाना पसन्द करोगे।"

और इस नीति-विज्ञानमें यह भी कहा गया है—"इस बातपर ध्यान रखो कि यह सिर्फ एक सलाह है ; किन्तु इसके साथ ही यह समाजके प्राणियोंके दीर्घ अनुभवका परिणाम है। सामाजिक प्राणियोंमें, जिसमें मनुष्य भी शामिल है, इस सिद्धान्तपर कार्य करना एक अभ्यास जैसा हो गया है। बिना इसके कोई भी समाज क़ायम नहीं रह सकता। बिना इसके कोई भी जाति प्राकृतिक बाधाओंपर, जिसके विरुद्ध उसे संग्राम करना पड़ता है, विजय प्राप्ति नहीं कर सकती।"

क्या सचमुच यही साधारण सिद्धान्त सामाजिक जीव-जन्तुओं और मानव-संस्थाओंके निरीक्षणसे उत्पन्न होता है ? और यह सिद्धान्त किस प्रकार अभ्यासके रूपमें परिणत होता है, और निरन्तर विकसित होता रहता है ? हमें अब इस बातपर विचार करना है। अच्छे और बुरेकी भावना मानवताके अन्दर ही मौजूद रहती है। मनुष्य—चाहे वह कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, या उसकी भावनाएँ पक्षपात और व्यक्तिगत स्वार्थसे कितनी ही म्लान क्यों न हो गई हों—उसी बातको अच्छा समझता है, जो समाजके लिए लाभदायक है ; और समाजके लिए जो हानिकारक हो, उसे वह बुरा समझता है।

किन्तु वह धारणा कहाँसे उत्पन्न होती है, जो बहुधा इतनी अस्पष्ट हुआ करती है कि अनुभूतिसे उसे पृथक् समझना कठिन हो जाता है ! इस प्रकारके लाखों मनुष्य हैं, जिन्होंने मानव-जातिके सम्बन्धमें कभी कुछ सोचा ही नहीं। उनका ज्ञान विशेषतः अपनी जाति या परिवार तक ही सीमाबद्ध रहता है। राष्ट्रको वे कदाचित ही जानते हैं, और मानव-जातिको तो और भी कम जानते हैं। फिर यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है कि वे मानव-जातिके लिए जो शुभ हो, उसे लाभदायक समझें, या अपने संकीर्ण आत्मपरायण स्वार्थोंके होते हुए भी अपने वंशके साथ भी एकताकी अनुभूति प्राप्त करें ?

सभी युगोंके मनीषी विद्वानोंने इस तथ्यपर विशेष

रूपसे विचार किया है, और इस समय भी विचार कर रहे हैं। हम भी इस विषयपर अपना विचार प्रकट करते हैं। किन्तु इस प्रसंगमें हम यह भी कह देना चाहते हैं कि यद्यपि इस तथ्यकी व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं; पर स्वयं तथ्यके सम्बन्धमें कोई विवाद नहीं रह जाता। और यदि हमारी व्याख्या सच्ची न हो, अथवा वह अपूर्ण हो, तथापि यह तथ्य मानव-जातिके प्रति अपने परिणामोंके साथ ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। सूर्यके चारों ओर ग्रह-नक्षत्र क्यों घूमते हैं? इसकी पूर्ण रूपसे व्याख्या करनेमें हम असमर्थ हो सकते हैं; किन्तु फिर भी नक्षत्रोंके घूमनेमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, और उनमें से एकपर यानी पृथिवीपर हम विद्यमान हैं।

धार्मिक व्याख्याके सम्बन्धमें हम ज़िक्र कर चुके हैं। धर्मशास्त्रकारोंका कहना है कि भगवान द्वारा अनुप्राणित होकर ही मनुष्य भले-बुरेकी तथा पाप-पुण्यकी पहचान करता है। उसका काम यह नहीं है कि वह इस बातका अनुसन्धान करे कि क्या लाभदायक है और क्या हानिकारक। उसका काम है केवल अपने स्रष्टाके आदेशका पालन करना। इस व्याख्यापर—जो असभ्य युगके भय और अज्ञानताका परिणाम थी—हम कुछ विशेष कहना नहीं चाहते। इसकी उपेक्षा करके आगे बढ़ते हैं।

कुछ लोगोंने इस तथ्यकी व्याख्या क़ानून द्वारा करनेकी चेष्टा की है। उनका कहना है कि क़ानूनने ही मनुष्यमें न्याय और अन्याय तथा सद् और असद्का ज्ञान विकसित किया है। पाठक इस व्याख्याके सम्बन्धमें स्वयं विचार कर सकते हैं। वे इस बातको जानते हैं कि क़ानूनने केवल मनुष्यकी सामाजिक अनुभूतियोंका उपयोग-मात्र किया है। क़ानूनने नैतिक उपदेशोंके बीचमें ऐसी बातें घुसेड़ दी हैं, जो शोषण करनेवाले अल्प जनसमुदायके लिए लाभजनक हों; पर जिनके अनुसार आचरण करनेमें साधारण मनुष्यकी प्रकृति इनकार करती है। कानूनने न्यायकी भावनाको विकसित करनेके बदले उसे और भी विकृत कर दिया है। अच्छा, अब हम आगे बढ़ें।

उपयोगिता-वादियोंकी व्याख्यापर भी रुकनेकी ज़रूरत नहीं। वे इस बातको मान लेते हैं कि मनुष्य स्वार्थवश नैतिक दृष्टिसे कार्य करता है; पर वे यह भूल जाते हैं कि मनुष्यके अन्दर अपनी सम्पूर्ण जातिके प्रति एकताकी भावना मौजूद रहती है, चाहे उसका मूल कारण कुछ भी क्यों न हो। उपयोगिता-वादियोंकी व्याख्यामें कुछ सत्य अवश्य है; किन्तु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है, इसलिए अब हम लोग आगे बढ़ें।

अठारहवीं शताब्दीके विचारशील विद्वानोंके सामने हम इस बातके लिए ऋणी हैं कि उन्होंने नैतिक चित्तवृत्तिके आदिकारणका कम-से-कम आंशिक रूपमें तो अनुमान किया था।

ऐडम स्मिथने "The Theory of moral sentiments" नामक पुस्तकमें नैतिक चित्तवृत्तिके सच्चे मूल कारणपर प्रकाश डाला है। वह रहस्यपूर्ण धार्मिक अनुभूतियोंमें इसका सन्धान नहीं करता; वह इसे सिर्फ़ समवेदनाकी अनुभूतिमें पाता है।

आप एक मनुष्यको किसी बच्चेको पीटते हुए देखते हैं। आप यह जानते हैं कि पीटे जानेवाले बच्चेको कष्ट पहुँचता है। आपकी कल्पनाशक्ति आपके अन्दर वही पीड़ा उत्पन्न कर देती है, जो पीड़ा उस बच्चेको दी गई है, या उस बच्चेके आँसू तथा उसका पीड़ित चेहरा आपको कष्टकी अनुभूति करा देते हैं। और यदि आप भीरु नहीं हैं, तो आप उस नर-पशुपर—जो बच्चेको पीट रहा है—टूट पड़ते हैं, और उस बच्चेका उद्धार करते हैं।

इस उदाहरणसे ही प्रायः समस्त नैतिक चित्त-वृत्तियोंकी व्याख्या हो जाती है। आपकी कल्पनाशक्ति जितनी ही प्रखर होगी, उतनी ही कुशलताके साथ आप अपने मनमें इस बातका चित्र चित्रित कर सकते हैं कि पीड़ित होनेपर किसी प्राणीका अनुभव कैसा होता है, और इसके अनुरूप ही आपका नैतिक ज्ञान गहरा

जावा द्वीपका नृत्य

[श्री धीरेन्द्रकृष्ण देव-वर्मन

और कोमल होगा। जितना ही अधिक आप अपनेको दूसरे मनुष्यकी स्थितिमें रखेंगे, उतना ही अधिक आप उसकी पीड़ाका, उसके अपमानका, उसके प्रति किये गये अन्यायका अनुभव करेंगे, और उसी मात्रामें आपके अन्दर कार्य करनेकी प्रेरणा उत्पन्न होगी, जिससे आप पीड़ा, अपमान या अन्यायका निवारण कर सकें। अवस्थाओं द्वारा, अपने आसपासके लोगोंकी वजहसे या अपने विचारोंकी प्रगाढ़ताके कारण आप अपने विचार और कल्पनाशक्तिसे प्रेरित होकर जितना ही अधिक कार्य करेंगे, उतना ही अधिक नैतिक उच्छ्वास आपमें उत्पन्न होगा, और उतना ही अधिक आप उसके अभ्यस्त हो जायँगे।

ऐडम स्मिथने अनेक दृष्टान्त देकर अपनी पुस्तकमें इसी सिद्धान्तपर प्रकाश डाला है। अपनी युवावस्थामें उसने इस पुस्तककी रचना की थी; किन्तु उसकी यह कृति उसकी वृद्धावस्थाकी रचना राजनीतिक अर्थ-शास्त्रकी अपेक्षा कहीं अच्छी है। धार्मिक पक्षपातसे मुक्त होकर उसने मानव-प्रकृतिके भौतिक तथ्योंमें नीतिज्ञानकी व्याख्याका अनुसन्धान किया था, और यही कारण है कि सरकारी और ग़ैर-सरकारी लोगोंने धार्मिक पक्षपातके कारण एक शताब्दी तक इस पुस्तकको वर्जित कर रखा।

ऐडम स्मिथकी एकमात्र भूल यही थी कि उसने इस बातको नहीं समझा था कि सहानुभूतिकी यह भावना मनुष्योंके समान जानवरोंमें भी पाई जाती है।

समाजमें रहनेवाले सभी जानवरोंमें एकताकी भावना विशेषरूपमें दीख पड़ती है। गरुड़ पक्षी गौरैयोंको निगल जाता है, और भेड़िया पहाड़ी चूहेको चट कर जाता है। किन्तु गरुड़ और भेड़िये शिकार खेलनेमें अपनी-अपनी जातिकी सहायता करते हैं। गौरैयाँ और पहाड़ी चूहे शिकार करनेवाले पशु-पक्षियोंके विरुद्ध इस प्रकार आपसमें मेल कर लेते हैं कि उनमें जो बोदा होता है, वही शिकारीके चंगुलमें फँसता है। पशु-समाजमें जीवन-संग्रामकी होड़की—जिसका गुणगान शासकदल प्रत्येक अवसरपर करता रहता है, जिससे हम लोगोंकी उन्नति रुक जाय—अपेक्षा यह एकता विशेष महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक नियम है।

जब हम पशु-जगतका अध्ययन करते हैं, और अपने मनमें इस बातकी व्याख्या करनेका प्रयत्न करते हैं कि प्रत्येक प्राणी प्रतिकूल अवस्थाओंके और अपने शत्रुओंके विरुद्ध जीवन-संग्राम जारी रखता है, तब हमें इस बातका अनुभव होता है कि पशु-समाजमें एकता और समानताके सिद्धान्त जितने ही अधिक विकसित होते हैं और उनसे वह जितना अधिक अभ्यस्त होता है, उतना ही उसे इस बातका मौक़ा मिलता है कि वह कठिनाइयों और शत्रुओंके विरुद्ध संग्राम करके विजयी हो और जीवित रहे। समाजका प्रत्येक अंग समाजके दूसरे अंगके साथ अपनी एकताको जितने ही सम्यक् रूपमें अनुभव करता है, उतने ही पूर्णरूपमें उन सबमें दो गुणोंका विकास होता है। वे दो गुण हैं—साहस और स्वतन्त्र वैयक्तिक नेतृत्व। और यही सब प्रकारकी प्रगतियोंके मुख्य कारण हैं। इसके विपरीत, किसी पशु-समाज या क्षुद्र पशुदलमें एकताकी यह अनुभूति जितनी कम होगी, उतना ही अधिक उसमें प्रगतिके दो कारणोंका—साहस और वैयक्तिक नेतृत्वका—ह्रास होता जायगा। इस एकताके भावका ह्रास या तो चीज़ोंके बिलकुल ही अभावसे अथवा उनके बहुत ज्यादा होनेसे उत्पन्न होता है। अन्तमें ये दो गुण सर्वथा लुप्त हो जाते हैं, और समाज क्षीण होकर अपने शत्रुओंके सामने परास्त हो जाता है। बिना पारस्परिक विश्वासके कोई संग्राम सम्भव नहीं है। साहस, वैयक्तिक नेतृत्व अथवा एकताके बिना विजय प्राप्त नहीं हो सकती—पराजय निश्चित है।

बहुसंख्यक दृष्टान्तों द्वारा हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि किस प्रकार पशु और मानव-जगतमें पारस्परिक सहायताका नियम प्रगतिका नियम है, और किस प्रकार सहायता और उसके साथ-साथ साहस और वैयक्तिक नेतृत्वसे उस श्रेणीकी जीत होती है, जो इसका अभ्यास करनेमें विशेष सामर्थ्य रखता है।

अब हम एकताकी उस अनुभूतिकी कल्पना करें, जो

युग-युगान्तरसे—जबसे इस भूमंडलपर पशु-जीवनका प्रारम्भ हुआ—काम कर रही है। हम इस बातकी कल्पना करें कि किस प्रकार यह अनुभूति क्रमशः अभ्यासके रूपमें परिणत हो गई और वंशानुक्रम द्वारा सूक्ष्मतर जीवोंसे उनके वंशजोंमें—कीट, पक्षी, सरीसृप, पशु और मनुष्यमें—संचारित हो गई, और तब हम नैतिक भावनाके आदिकारणको हृदयंगम कर सकेंगे, जो पशुओंके लिए उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार भोजन या उसे पचानेकी इन्द्रिय-विशेष।

नैतिक अनुभूतिका यही मूल कारण है। इस महान प्रश्नपर यद्यपि हमने संक्षेपमें विचार किया है; किन्तु जो कुछ कहा गया है, वह यह दिखलानेके लिए काफी है कि इसमें कोई रहस्य या भावुकताकी बात नहीं है। व्यक्तिका जातिके साथ एकताका जो यह सम्बन्ध है, वह यदि न होता, तो पशु-राज्यका न तो विकास हुआ होता, और न वह अपनी वर्तमान पूर्णतापर पहुँचता। पृथिवीपर रहनेवाले सबसे प्रगतिशील प्राणी भी इस समय जलके ऊपर तैरनेवाले कीटाणुकी तरह सूक्ष्मवीक्षणयंत्रसे भी कठिनतासे देखे जाते। किन्तु क्या उनका अस्तित्व भी सम्भव था? क्योंकि क्षुद्र कोषोंकी आदिम समष्टि क्या इस संग्राममें एकताका उदाहरण नहीं है?

इस प्रकार पशु-राज्यका निष्पक्ष दृष्टिसे निरीक्षण करनेपर हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि जहाँ समाजका अस्तित्व है, वहाँ यह सिद्धान्त अवश्य पाया जायगा—"दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा व्यवहार उसी अवस्थामें तुम अपने साथ किया जाना पसंद करते हो।"

पशु-जगतके विकासका जब हम ध्यानपूर्वक अध्ययन करते हैं, तो हमें इस बातका पता चलता है कि उपर्युक्त सिद्धान्तने—जिसका अनुवाद एक शब्द 'एकता'में किया गया है—पशु-राज्यके विकासमें जितना काम किया है, उतना उन सब उपयोगिताओंने नहीं किया, जो व्यक्तिगत सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए व्यक्तियोंके बीच होनेवाले संग्रामके फल-स्वरूप उत्पन्न हुई हैं।

यह प्रत्यक्ष है कि मानव-समाजमें यह एकता और भी विशेष मात्रामें पाई जाती है। बन्दरोंके समाजमें भी हमें इस व्यावहारिक एकताका उल्लेखनीय दृष्टान्त दीख पड़ता है। और मनुष्यने तो इस दिशामें एक क़दम और आगे बढ़ाया है। इस एकताके कारण ही मनुष्य, प्राकृतिक बाधाओंके होते हुए भी, अपनी क्षुद्र जातिको सुरक्षित रखनेमें तथा अपनी बुद्धिको विकसित करनेमें समर्थ हुआ है। जंगली मनुष्योंके उन समाजोंका जो इस समय भी प्रस्तर-युगसे आगे नहीं बढ़े हैं, ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेसे हमें इस बातका पता चलता है कि किस प्रकार एक ही समाजके मनुष्य परस्पर एकताका अभ्यास करते हैं।

यही कारण है कि व्यावहारिक एकता कभी रुकती नहीं, मानव-इतिहासके सबसे ख़राब समयमें भी वह क़ायम रहती है। यहाँ तक कि जब प्रभुत्व, दासता और शोषणकी क्षणस्थायी अवस्थाओंके उत्पन्न हो जानेसे एकताका सिद्धान्त अस्वीकृत हो जाता है, उस समय भी बहुतसे लोगोंके विचारोंमें वह क़ायम रहती है, और दूषित संस्थाओंके विरुद्ध उसकी प्रबल प्रतिक्रिया क्रान्तिके रूपमें होती है। यदि ऐसा न हो, तो समाजका अन्त ही हो जाय।

बहुसंख्यक मनुष्य और पशुओंमें यह अनुभूति वर्तमान रहती है, और एक अभ्यासके रूपमें इसे क़ायम रहना ही चाहिए। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जो मनमें बराबर उपस्थित रहता है, चाहे क्रियामें उसकी निरन्तर उपेक्षा ही क्यों न हो रही हो।

इसमें हमें पशु-जगतके सम्पूर्ण विकासका स्पष्ट आभास मिलता है। यह विकास बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। इसे करोड़ों वर्ष बीत चुके। यदि हम इससे मुक्त होना भी चाहें, तो नहीं हो सकते। मनुष्यके लिए अपने दो हाथ और दो पाँवसे जानवरोंकी तरह चलनेका अभ्यास करना सहज हो सकता है; किन्तु इस नैतिक अनुभूतिसे मुक्त होना सहज नहीं।

घ्राणेन्द्रिय या स्पर्शेन्द्रियके बोधकी तरह नैतिक बोध भी हमारे अन्दर एक प्रकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

क़ानून और धर्मने भी इस सिद्धान्तका उपदेश दिया है ; किन्तु विजेता, शोषणकर्ता और पुरोहितोंके लाभके लिए अपने आदेशोंपर पर्दा डालनेके उद्देश्यसे ही उन्होंने इस सिद्धान्तकी चोरी की है। एकताके इस सिद्धान्तके बिना—जिसकी न्यायशीलताके सब लोग कायल हैं—वे मनुष्योंके मनपर अपना अधिकार ही किस प्रकार जमा सकते थे ?

क़ानून और धर्मने इस सिद्धान्तका लबादा अपने ऊपर ओढ़ लिया है,—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अधिकारी अपनेको बलवानोंके विरुद्ध दुर्बलोंका रक्षक बताकर अपनी स्थितिका औचित्य सिद्ध करते हैं।

क़ानून, धर्म और शासनका परित्याग करके मनुष्य-जाति उस नैतिक सिद्धान्तको पुनः प्राप्त कर सकती है, जो उससे छीन लिया गया है। उसे फिरसे प्राप्त करना इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य उसकी समालोचना कर सके, और उसे उन विकारोंसे मुक्त कर सके, जिनसे पुरोहित, न्यायकर्ता और शासकने उसे विषाक्त बना डाला है, और इस समय भी बना रहे हैं।

दूसरेके साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम अपने साथ व्यवहार किया जाना पसन्द करते हो, यही तो अराजकताका मौलिक सिद्धान्त है। और तब तक कोई अपनेको अराजक (अनार्किस्ट) क्योंकर समझ सकता है, जब तक कि वह इस सिद्धान्तके अनुसार आचरण न करे ?

हम लोग अपने ऊपर किसीका शासन नहीं चाहते। क्या इसी बातसे हम इस तथ्यकी घोषणा नहीं करते कि हम किसीपर शासन नहीं करना चाहते ? हम किसीसे ठगा जाना पसन्द नहीं करते ; हम बराबर सत्यशील बनना चाहते हैं। क्या इसी बातसे हम यह घोषणा नहीं करते कि हम किसीको धोखा देना नहीं चाहते, हम सदा सत्य (सम्पूर्ण सत्य, एकमात्र सत्य ही) बोलनेकी प्रतिज्ञा करते हैं ? हम यह नहीं चाहते कि हमारे परिश्रमकी कमाई हमसे कोई चुरा ले, तो क्या इस बातसे हम यह घोषणा नहीं करते कि हम दूसरोंके परिश्रमकी कमाईके प्रति आदर-भाव रखते हैं ?

हम किस हक़से यह दावा कर सकते हैं कि हमारे साथ तो एक प्रकारका व्यवहार हो और हम दूसरोंके साथ बिलकुल दूसरे ढंगसे व्यवहार करें ? इस प्रकारकी भावनाके विरुद्ध हमारा समानताका ज्ञान विद्रोह कर बैठता है।

परस्परके व्यवहारमें समानता और इससे उत्पन्न होनेवाली एकता, यही पशु-जगतका सबसे बढ़कर शक्तिशाली शस्त्र है, जिससे उसे जीवन-संग्राममें सहायता मिलती है। समानता ही न्याय है।

अपनेको अराजकवादी घोषित करके हम इस बातकी पहले घोषणा कर देते हैं कि हम दूसरोंके साथ इस प्रकारका व्यवहार करना नहीं चाहते, जिस प्रकारका व्यवहार हम अपने साथ किया जाना पसन्द नहीं करते। हम अब इस अन्यायको सहन नहीं करेंगे, जिसके कारण हममें से कुछ लोगोंने अपनी शक्ति, चालाकी या योग्यताका इस ढंगसे उपयोग किया है, जिस ढंगसे उक्त गुणोंका अपने प्रति प्रयोग किये जानेपर हम बेहद नाराज़ हो उठेंगे। सब बातोंमें समानता, जो न्यायका पर्यायवाची शब्द है, यही सक्रिय अराजकता है। इससे हम सिर्फ़ क़ानून, धर्म और प्रभुता—इस त्रिमूर्तिके विरुद्ध ही युद्धकी घोषणा नहीं करते, बल्कि अराजक-वादी बनकर हम ठगी, धूर्तता, शोषण, चरित्र-भ्रष्टता, पाप—एक शब्दमें असमानताके विरुद्ध युद्धकी घोषणा करते हैं, जो हमारे हृदयमें क़ानून, धर्म तथा शासनने डाल दी है। वे जिस ढंगसे कार्य करते हैं, जिस ढंगसे विचार करते हैं, उसके विरुद्ध हम युद्धकी घोषणा करते हैं। शासित, वंचित, शोषित और दूषित—ये सबसे बढ़कर हमारे समानताके ज्ञानपर आघात पहुँचाते हैं। समानताके नामपर हम इस बातके लिए कृतसंकल्प हैं कि समाजमें कोई स्त्री-पुरुष भ्रष्ट, शोषित, वंचित और शासित रूपमें न रह जाय।

[क्रमशः

बदला

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

सम्राट् बिन्दुसारके बड़े पुत्र युवराज सुमन बहुत ही शान्त प्रकृतिके नवयुवक थे। बचपन ही से उनकी मनोवृत्ति वैरागियोंके समान थी। इधर सुमनके छोटे भाई राजकुमार अशोक शुरू ही से ज़रा तेज तबीयतके थे। यही कारण था कि दोनों भाई एक दूसरेसे कुछ खिंचे-से रहते थे। सुमन अशोकको उथली तबीयतका समझता था, और अशोककी निगाहमें सुमनका जन्म परमेश्वरकी गलतीसे ही राज-घरानेमें हो गया था।

सम्राट् बूढ़े हो गये थे। उन्हें पक्षाघातकी बीमारी थी। इससे राजकाज युवराज सुमनके हाथोंमें ही था। अपने स्वभावकी मधुरतासे युवराज सुमनने प्रत्येक राजकर्मचारीका दिल मोह लिया था। उनकी देखरेखमें सम्पूर्ण पाटलीपुत्र सुखकी नींद सोता था। कहीं कोई अशान्ति नहीं थी। किसीको कोई शिकायत नहीं थी। सुमनको यदि कहींसे बाधा आती थी, तो वह अपने छोटे भाई अशोककी ओरसे। अशोककी निगाहमें सुमनकी शान्त-नीतिसे मौर्य-साम्राज्यके विमल यशपर कलंकका टीका लग रहा था। अशोकका कहना था कि यदि कुछ और बरसों तक मागध-साम्राज्यमें वैरागियोंकी-सी इस नीतिका अनुसरण किया गया, तो हमारे दादा महान चन्द्रगुप्त मौर्यका विशाल साम्राज्य शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। अपने इसी विश्वासके कारण अशोक सभी जगह युवराज सुमनकी नीतिका घोर विरोध करते थे। सभामें, मंत्री-परिषद्में, राज-दरबारमें—सभी जगह युवराजके लिए अपने उद्दण्ड छोटे भाईका मुँह बन्द करना कठिन हो जाता था। आखिर तंग आकर सुमनने अशोकको तक्षशिलाका क्षत्रप बनाकर राजधानीसे बाहर भेज दिया।

सुमन अब अपने महलमें अकेले रह गये। अशोकके जानेके बादसे उन्हें अपना प्रासाद कुछ सूना-सा प्रतीत होने लगा। बचपन ही से दोनों भाई एक साथ रहते आये हैं। अब, एक दूसरेसे बहुत खिंच जानेपर भी, उन्हें बीसियों बार एक दूसरेके आमने-सामने होनेका अवसर मिलता था। इसीसे सुमनको अब महलका अकेलापन अनुभव होने लगा। अपने रुग्ण पिताकी देखभाल और राजकाजकी व्यवस्थासे उन्हें जो समय बचता था, उसे वे अपने राजप्रासादमें, गंगाके किनारे, संगमरमरके सफ़ेद घाटपर बिताया करते थे।

युवराज सुमनकी उम्र ३० बरसके क़रीब हो चुकी थी; परन्तु उन्होंने अभी तक विवाह नहीं किया था। सम्राट् बिन्दुसारने अपने उत्तराधिकारी युवराज सुमनसे अनुरोध किया कि वह विवाह कर लें। मंत्रियोंने प्रार्थना की और मित्रोंने दबाव डाला; मगर नतीजा कुछ न निकला। सुमन विवाह करनेको तैयार न हुए।

[२]

परन्तु होलीके दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई, जिसने युवराज सुमनकी वैराग्यपूर्ण मनोवृत्तिको एकदम बदल डाला।

पाटलीपुत्रके राजमहलोंमें होलीका त्यौहार उस वर्ष भी खूब उत्साहके साथ मनाया गया। नगरके कुलीन घरोंकी बीसियों कुमारियाँ अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनकर इस होलिकोत्सवमें सम्मिलित हुईं। परन्तु राजप्रासादमें इस वर्ष कोई रौनक नहीं थी। सम्राट् बीमार थे। कुमार अशोक भी, जो अपनी अदम्य चंचलताके कारण होलीमें सम्मिलित होनेवाली सम्पूर्ण कुमारियोंको जी भरकर खिजाया करते थे, इस साल बाहर गये हुए थे। राजपरिवारकी महिलाओंमें भी सम्राट्की बीमारीके कारण कुछ उत्साह नहीं था। बाकी बचे युवराज, सो युवराजका होना न होना बराबर था। खेल-कूद और आमोद-प्रमोदमें सुमनको कभी दिलचस्पी हुई ही न थी। वह उन व्यक्तियोंमें थे, जिनके लिए जीवन एक ऐसी गम्भीर समस्या होती है, जिसमें हँसी, मज़ाक या आरामकी गुंजाइश ही नहीं होती।

तो भी होलिकोत्सव शुरू हुआ। युवराजके महलमें थोड़ी देरके लिए जीवनका संचार हो गया। रंग और सुगन्धकी वर्षा शुरू हुई। हँसीका फव्वारा फूट पड़ा। युवराजको सभी लड़कियोंने मिलकर खूब परेशान किया। जब उनसे और कुछ न बन पड़ा, तो वे अपने महलसे ही भाग खड़े हुए।

उत्सवका उत्साह शीघ्र ही ठंडा पड़ गया। सभी कुलीन कुमारियाँ आज राजकुमार अशोककी अनुपस्थितिको बहुत अधिक अनुभव कर रही थीं। निस्सन्देह अशोककी उपस्थितिमें युवराजको बेवकूफ़ बनानेमें उन्हें और भी अधिक मज़ा आता।

रंग-वर्षा समाप्त हुई। अब अन्य खेलोंकी बारी थी। आँखमिचौनी, लुकन-छिपन, इसी तरहसे और भी न-जाने क्या-क्या। ये सब खेल बँधी गतके समान होते रहे और साँझ होते-होते सभी लड़कियाँ अपने-अपने घरोंमें वापस चली गईं।

उधर युवराज सुमन अपने पुस्तकालयमें छिपे बैठे थे। होलिकोत्सवका शोरगुल उन्हें यहाँसे भी भली प्रकार सुनाई पड़ रहा था। जब राजमहलमें सन्नाटा छा गया, तब उनकी जानमें जान आई, और वे अपने पुस्तकालयका दरवाज़ा खोलकर बाहर आये। अपने कमरेके पास, महलके आँगनमें पहुँचकर, उन्होंने उस सन्नाटेमें जो दृश्य देखा, उससे उनका वैरागी हृदय भी कुछ देरके लिए प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने देखा, सामने गंगा नदीके दूसरे तटपर सूर्य अस्त हो रहा है, और उसकी अन्तिम किरणोंसे नदीका सम्पूर्ण विस्तृत वक्षस्थल भी लाल-लाल हो उठा है। इधर महलके आँगनका सफ़ेद फर्श होलीके रंगोंसे इस तरह रंजित दिखाई दे रहा है, मानो वह शरदऋतुकी साँझका बादलोंके छोटे-छोटे रंग-बिरंगे टुकड़ोंसे भरा आस्मान हो। सुगन्ध और विशाल सौन्दर्यके इस समन्वयने युवराजके हृदयमें एक विशेष तरहकी प्रसन्नताका संचार कर दिया।

उनके जीमें आया कि चलो, ज़रा देखूँ तो सही कि लड़कियाँ मेरे सामानके साथ क्या-क्या उत्पात कर गई हैं। युवराज अपने कमरोंका चक्कर लगाने लगे।

परन्तु जब वह अपने चित्रागारमें पहुँचे, तो यह देखकर उनके विस्मयका ठिकाना न रहा कि उनकी शय्यापर एक युवती मज़ेकी नींदमें सो रही है। युवराजको जैसे काठ मार गया। युवतीका चेहरा इतना आकर्षक था कि एक बार उसपर निगाह पड़ जानेके बाद यह नामुमकिन था कि आँखें उसे अच्छी तरह देख लेनेके लिए ज़िद न करें। तो भी युवराज सुमनका दिल जैसे काँप-सा गया। वे बड़ी शीघ्रतासे कमरेसे बाहर निकलने लगे।

मगर युवराजकी बदकिस्मती। बदकिस्मती क्यों, इसे खुशकिस्मती कहना चाहिए। हड़बड़ाहटमें शीघ्रतासे बाहर निकलते हुए उनका पैर एक तिपाईसे जा टकराया, और उस तिपाईपर पड़ा चाँदीका बड़ासा फूलदान नीचे आ गिरा। नतीजा यह हुआ कि युवराजका चित्रागार एक साथ अनेक अजीब-सी आवाज़ोंसे गूँज उठा।

फूलदान जब फर्शपर लुढ़का, तब उससे जो 'खन्न'-सी आवाज़ हुई, उसके साथ-ही-साथ युवराजके मुँहसे निकला—"ओह !"

इस आवाज़की गूँज सुनाई दी युवतीके आभूषणोंमें। युवतीकी नींद उचट गई; उसकी सुन्दर कलाइयोंको घेरकर जो निर्जीव आभूषण चुपचाप पड़े थे, वे भी बज उठे—"खन्न।" और इसके साथ ही उसके मुँहसे भी एक अजीब-सी आवाज़ निकल गई।

युवराज सुमन इस समय तक दरवाज़ेके निकट पहुँच चुके थे; मगर अब यह सोचकर कि किसी अपरिचित भद्र महिलाको सोती दशामें देखकर उसके नज़दीकसे चोरोंकी तरह निकल भागना नितान्त असभ्यता है, वे धीरे-धीरे वापस लौटे।

वह वापस तो लौटने लगे; मगर उन्हें अब भी यह नहीं सूझ रहा था कि इस अपरिचित युवतीसे क्या कहकर वे अपने अनजानमें यहाँ चले आनेके अपराधके लिए क्षमा माँगें। तो भी हठात् उनके मुँहसे निकला—"क्षमा कीजिए, मुझे ज्ञात नहीं था !…"

युवती अब तक सँभलकर उठ बैठी थी। उसपर मानो घड़ों पानी पड़ गया। कुछ क्षणके लिए वह किंकर्तव्य-विमूढ़-सी बन गई। इसके बाद ज़रा सँभलकर उसने कहा—"क्षमा कीजिए। आज मेरा चित्त अस्वस्थ था, इसीसे।…"

वह बेचारी अपनी बात पूरी न कर सकी। युवराजको स्वयं भी इस ढंगकी बातें करना नहीं आता था; मगर यह युवती जैसे उनसे भी कहीं अधिक भोली थी। युवराजने बड़े संकोचके साथ कहा—"यह तो नितान्त सामान्य बात है।"

युवतीने कहा—"जी !"

युवराजने देखा कि वह बिलकुल घबरा-सी गई है।

उन्होंने कहा—"आज्ञा कीजिये, आपको कहाँ भिजवानेका प्रबन्ध कर दूँ ?"

युवती अब धीरे-धीरे दरवाज़ेकी ओर बढ़ने लगी। वह लज्जाके पूर्व-स्वरूपके समान प्रतीत हो रही थी।

इसके बाद वे दोनों चुपचाप बाहर चले आये। सूरजकी अन्तिम किरणें युवतीके चेहरेपर पड़ीं। युवराजने छिपी निगाहसे एक बार देखा—इतना सुन्दर, इतना भोला, इतना पवित्र और इतना आकर्षक चेहरा उन्होंने और भी कभी कहीं देखा है, इसका उन्हें आभास तक न हुआ।

युवराजने यह मालूम कर लिया कि युवती आज पहली बार अपनी सहेलियोंके तीव्र अनुरोधसे यहाँ आई थी। उसकी तबीयत कुछ खराब थी, अतः वह एकान्तमें जाकर लेट गई। उसकी सखियोंने समझा होगा कि वह पहले ही घर लौट गई है। उस एकान्तमें शीघ्र ही गहरी नींद आ जानेका यह परिणाम हुआ। उसका नाम था शीला, और वह विक्रम-शिलाके अर्थशास्त्रके महोपाध्यायकी एकमात्र कन्या थी।

कुमारी शीलाको उसके घर पहुँचा आनेके लिए युवराजने शीघ्र ही अपना रथ मँगवा भेजा। युवती जब चलने लगी, तो उसने बहुत ही मधुर स्वरमें धीरेसे सिर्फ इतना ही कहा—"कष्टके लिए धन्यवाद। मैं आपकी हृदयसे कृतज्ञ हूँ।"

सुमनने देखा कि कुमारीकी बड़ी-बड़ी आँखें मानो सौन्दर्यके बोझसे नीचे झुकी जा रही हैं।

युवराज सुमन कृतकृत्य हो गये। आज उनके नीरस हृदयके किसी अज्ञात कोनेसे सहसा रसका एक सोता-सा फूट पड़ा। इस दुनियामें इतनी कोमलता और इतना सौन्दर्य छिपा पड़ा है, इसका अनुभव युवराज सुमनको आज पहली बार हुआ।

युवराजके भाव-परिवर्तनकी यह बात छिपी न रही। शीघ्र ही युवराज सुमन और कुमारी शीलाकी सगाई हो गई। यह निश्चय हो गया कि कुमारी शीला भारत-साम्राज्यकी भावी राजरानी बनेगी। शीला पाटलीपुत्रकी एक उज्ज्वल रत्न थी। उसके समान सुन्दरी और मधुरस्वभाव कन्याको अपनी भावी पुत्रवधूके रूपमें पाकर सम्राट् बिन्दुसारने अपनेको धन्य माना।

[३]

युवराज और शीलाके विवाहकी तिथि निश्चित हो चुकी थी; परन्तु इसी बीचमें एक भारी बाधा आ खड़ी हुई। सम्राट्की बीमारीने सहसा उग्र रूप धारण कर लिया, और एक दिन साँझको अचानक उनका देहान्त हो गया। पाटलीपुत्रको सम्राट्के देहावसानका शोक मनाते हुए अभी एक सप्ताह भी न बीता था कि अचानक यह खबर मिली कि कुमार अशोकने सीमाप्रान्तकी सुशिक्षित सेनाकी सहायतासे राजधानीपर चढ़ाई कर दी है।

इसके बाद घटनाओंकी रफ्तार बहुत तेज़ हो गई, मानो वे दौड़ने लगी हों। नतीजा यह हुआ कि जिसे सम्राट् बिन्दुसार भारतका सम्राट् बना गये थे, वह तो चला गया जेलमें, और जो एक समय राजधानीसे निर्वासित कर दिया गया था, वह बन बैठा भारत महासाम्राज्यके प्रबलप्रतापी मौर्य-वंशका उत्तराधिकारी।

दो सप्ताहोंमें ही ये सब घटनाएँ हो गईं। जैसे एक विशाल समुद्र सूख गया हो और एक ऊँचा पहाड़ समुद्र बन गया हो।

सम्राट्ने सुमन और शीलाके विवाहकी जो तिथि निश्चित की थी, उसे आनेमें अभी तक एक सप्ताह बाकी था। शीलाको विश्वास था कि निश्चित मुहूर्तके आनेपर अवश्य ही सुमनसे उसका विवाह हो जायगा। राज्यकी इस छीना-झपटीका उसके विवाहके साथ सम्बन्ध भी क्या था।

तथापि इन पिछले दो सप्ताहोंकी बात सोचकर शीलाका दिल काँप जाता था। सम्राट्की मृत्यु हुई, उसके बाद पाटलीपुत्रमें घोर युद्ध हुआ! हज़ारों आदमी मारे गये और उसके बाद सुमन युवराजसे कैदी बन गये।

विवाहकी तिथिमें अब भी तो एक सप्ताह बाकी है। कौन कह सकता है कि इस एक सप्ताहमें और क्या-कुछ नहीं हो जायगा।

[४]

विवाहके निश्चित मुहूर्तसे सिर्फ़ दो दिन पहले शीलाको समाचार मिला कि सम्राट् अशोक अपने बड़े भाई सुमनकी हत्याका निश्चय कर चुके हैं। शीलाने यह समाचार इस तरह सुना, जैसे वह कोई सपना देख रही हो। उसे

विश्वास ही न आया कि कभी भाई भाईकी हत्या कर सकता है।

तो भी उसके जीमें आया कि वह अशोकके पास जाकर उसीसे इस समाचारकी सत्यताके सम्बन्धमें जाँच-पड़ताल करे।

निराभरण शीला सिर्फ़ एक सफ़ेद धोती पहनकर सम्राट् अशोकके सम्मुख उपस्थित हुई।

अशोकने अपनी वाग्दत्ता भाभीके दर्शन आज तक कभी न किये थे। इस अनिन्द्य सुन्दरी युवतीने आज अचानक उसके सामने आकर कहा—"अशोक, परसों मैं तुम्हारी भाभी बनने जा रही हूँ।"

अशोक सहम गया।

शीलाने पुन: कहा—"क्यों अशोक, तुम्हें इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है न?"

अशोकने जैसे मन्त्रमुग्ध-सा होकर कहा—"नहीं। मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?"

शीलाने कहा—"धन्यवाद।"

वह लौटकर चल दी। अशोक अभी तक आश्चर्यमें आकर इस भोलीभाली, परन्तु अदम्य साहसी नारीके अनुपम सौन्दर्यकी ओर देख ही रहा था कि शीला इस तरह पुन: लौटी, जैसे उसे कोई भूली बात याद आ गई हो। अबकी बार पहलेकी अपेक्षा भी अधिक नज़दीक आकर उसने अशोककी आँखोंमें अपनी आँखें गड़ाकर बड़ी शान्तिके साथ कहा—"अशोक, मैंने इधर-उधरसे सुना था कि तुम अपने भाईकी हत्या करना चाहते हो। मैंने तो पहले भी इस समाचारपर विश्वास नहीं किया था। भला, यह भी कभी सम्भव हो सकता है?"

इतना कहकर शीला बहुत ही भोलेपनसे ज़रा-सा मुसकराई।

अशोक काँप उठा। उसके माथेपर पसीना आ गया। चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। तो भी अपनेको सँभालकर, लड़खड़ाती हुई आवाज़में उसने सिर्फ़ इतना ही कहा—"नहीं राजकुमारी, मैं इतना नीच नहीं हूँ।"

शीलाने ज़रा अपनेपनके साथ कहा—"नहीं अशोक, मुझे 'राजकुमारी' मत कहो, सिर्फ़ 'भाभी' कहो। मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है।"

अशोकके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। अठारह-बीस वर्षकी इस भोलीभाली कुमारीने भारत-विजेता सम्राट् अशोकके सामने मानो उनकी क्रूरता और पाशविकताका नंगा चित्र खींच दिया हो। अशोकका पापी मन काँप उठा। ओह, वह इतना पतित कैसे हो गया!

अपने देवरको चुप देखकर शीलाने शासनके ढंगपर कहा—"परसों विवाहमें पुरोहित महोदयको छोड़कर सिर्फ़ तुम्हीं आने पाओगे। यह विवाह जेलमें जो होगा। उसके बाद, अगर तुम खुशीसे अनुमति दोगे, तो हम दोनों काश्मीर चले जायँगे, अन्यथा पाटलीपुत्रके बन्दीगृहका एक कमरा ही हम दोनोंके लिए पर्याप्त होगा।"

अशोककी आँखोंसे बरबस आँसू बह चले। उसके जीमें आया कि वह अपनी कुटिलताओंके लिए अपनी भावी भाभीके चरणोंपर सिर रखकर क्षमा-याचना करे। मगर वह ऐसा न कर सका। वह पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह चुपचाप बैठा रहा। इस समय अशोकके मनमें विभिन्न भावोंकी जो आँधी-सी उठ खड़ी हुई थी, उसकी छाया उसके चेहरेपर साफ़-साफ़ देखी जा सकती थी। मगर यह शीलाका सौभाग्य था कि चलनेके पूर्व उसने आंख उठाकर अशोकके चेहरेकी ओर नहीं देखा।

शीला धीरे-धीरे वापस चली गई। कई मिनट तक अशोक चुपचाप एकटक दृष्टिसे उसी ओर देखते रहे, जिस ओरसे शीला बाहर गई थी। इसके बाद सेनापतिके बुलानेपर सहसा वह इस तरह चौंके, जैसे वह नींदसे जगे हों। उस दिन फिर राज-दरबारमें और-कोई काम नहीं हो सका। अशोक उठकर राजप्रासादसे उसी स्थानपर चले गये, जहाँ बैठकर युवराज सुमन गंगा नदीकी लहरोंका चढ़ाव-उतार देखा करते थे।

[५]

विवाहकी रात, निश्चित समयसे सिर्फ़ एक घंटा पहले, शीला राजमहलके फाटकपर पहुँची। उसके साथ एक ब्राह्मण भी था। शीलाके पास राजाज्ञा मौजूद थी। पहरेदारने दरवाज़ा खोलकर उन दोनोंको अन्दर जाने दिया।

कुमार सुमनने जब शीलाको अन्दर आते देखा, तो उनकी प्रसन्नता और विस्मयका ठिकाना न रहा। सुमन जैसे यह

भूल ही गये थे कि आजकी रात उनके विवाहकी रात है। सच बात तो यह है कि पिताकी मृत्युके बाद, राजपाटसे हाथ धोकर, जेलखानेमें जीवन बिताते हुए वे यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि अब कभी शीला उन्हें मिल सकेगी। इस दशामें सहसा शीलाको वरमाला हाथमें लिये अपनी ओर आते देखकर पहले तो उन्हें अपनी आंखोंपर विश्वास ही न हुआ। उसके बाद वे इतने भावावेशमें आ गये कि उनसे कुछ बोला भी न गया।

शीला आज बड़ी प्रसन्न थी। उसने मुसकराकर सुमनकी ओर देखा; परन्तु सुमनके मुरझाये हुए दुर्बल-से चेहरेकी ओर देखकर उसका हृदय काँप गया। किसी भारी अनिष्टकी आशंकासे उसके चेहरेपर पीलापन छा गया।

तो भी वह आगे बढ़ी, और अपने हाथकी वह 'वरमाला' उसने कुमार सुमनके गलेमें डाल दी।

पुरोहितने आशीर्वाद देना चाहा; मगर अभी उसकी आवाज़ नहीं निकल पाई थी कि जेलखानेमें तीन बधिकोंके साथ एक आदमीने प्रवेश किया। शीला दूर ही से पहचान गई कि यह कौन आदमी है। सहसा उसके मुँहसे एक चीख निकली और वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

इसके बाद शीलाको कुछ भी मालूम नहीं कि कब क्या हो गया।

जब उसकी मूर्छा छूटी, तो उसने देखा कि कुमार सुमनका शव एक अर्थीपर रखा हुआ है, और वही ब्राह्मण देवता जो विवाहकी विधि पूरी करवाने आये थे, कुछ दूरीपर घुटने टेके हाथ जोड़कर, बहुत ही डरे हुए स्वरमें धीरे-धीरे भुनभुना रहे हैं—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !"

शवके पास एक तरफ़ तीनों बधिक खड़े थे और दूसरी ओर भारतके वर्तमान सम्राट् अशोक। शीलाने आँख उठाकर अपने इस दानव देवरकी ओर देखा। वह पत्थरकी मूर्तिकी तरह चुपचाप खड़ा था, और उसकी आँखें सुमनके शवकी ओर झुकी हुई थीं। कौन कह सकता है कि इस समय अशोकके मनमें किस-किस तरहके भावोंकी आँधी चल रही होगी!

[६]

उस घटनाको पूरे बारह साल बीत गये। यह उन दिनोंकी बात है, जब कलिंगका इतिहास-प्रसिद्ध भयंकर महायुद्ध शुरू हुए करीब दो साल बीत चुके थे। सम्राट् अशोकके इस भारी आक्रमणकी बदौलत कलिंग-भरमें महामारी, अकाल और गरीबीका प्रकोप था। लोग भूखों मर रहे थे। लाखों आदमी मारे जा चुके थे। सब ओर हाहाकार मचा था। दुनियाँके सब रिश्ते, सदाचारकी सम्पूर्ण मर्यादायें और राज्यकी पूरी व्यवस्था—इन सभीकी लगभग समाप्ति हो चुकी थी। मनुष्य पतित होकर हिंसक पशु बन गया था।

कलिंगके इस महायुद्धमें क्रमशः नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि दिन-भरके हत्याकांडमें जितने लोग ज़ख्मी होते या मरते थे, उनकी खोज-खबर लेना भी दोनों दलोंमेंसे किसीके लिये सम्भव नहीं रहा। ज़ख्मी लोग युद्धक्षेत्रमें तड़प-तड़पकर जान दे देते थे और सुबह उन सबकी लाशोंको एक साथ ज़मीनमें गाड़ दिया जाता था।

इन्हीं दिनों कलिंगमें एक विचित्र घटना रोज़ दिखाई देने लगी। युद्धमें जितने भी लोग ज़ख्मी होते, उन्हें रात ही रातमें सफ़ेद कपड़े पहने हुए कुछ व्यक्ति—जिनका सिर मुँडा हुआ होता था—अपने साथ उठा ले जाते। सुबह सैनिकोंको आश्चर्य होता कि रातके ज़ख्मी किधर चले गये।

दोनों सेनाओंके सैनिकोंमें अधिक संख्या अन्ध विश्वासी हिन्दुओंकी थी। इन लोगोंमें शीघ्र ही यह मशहूर हो गया कि रातके समय प्रेतोंकी एक पूरी फौज़ युद्धक्षेत्रमें आती है और ज़ख्मियोंको सशरीर अपने साथ उठा ले जाती है। कलिंग युद्धमें जितने लोगोंकी मृत्यु हुई थी, उनमें से अधिकांशका क्रियाकर्म तो किया ही नहीं जा सकता था; इससे सैनिकोंका यह विश्वास और भी अधिक पक्का हो गया कि ये सफ़ेद वस्त्रधारी मुंडितशिर व्यक्ति कलिंग युद्धके मृत सैनिकोंके प्रेत हैं। नतीजा यह हुआ कि दोनों दलोंके सैनिक अपने-अपने कैम्पोंमें चले जाते थे।

थोड़े ही दिनोंके बाद, दोनों सेनाओंमें तब और भी अधिक भयका संचार हुआ, जब अनेक गुम हुए आहत व्यक्ति भले-चंगे होकर सैनिकोंसे पुनः आ मिले। इन

लोगोंकी ज़बानी सम्राट् अशोक और कलिंग-राजकी सेनाओंमें यह किम्वदन्ती ज़ोरोंसे प्रसिद्ध हो गई कि इस महायुद्धकी समाप्तिके लिए एक देवीने अवतार लिया है, और रातके ये सम्पूर्ण चर उसी देवीके सेवक हैं। उनका कहना था कि वह देवी स्वयं अपने हाथोंसे घायलोंकी सेवा करती है; उसके हाथमें कोई ऐसा जादू है, जिसकी बदौलत प्रत्येक बीमारी बहुत शीघ्र रफ़ा हो जाती है। घायलोंको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदानकर वह देवी उनसे सिर्फ़ एक प्रतिज्ञा लेती है, और वह यह कि भविष्यमें वे किसी युद्धमें सम्मिलित न होंगे।

शीघ्र ही वह देवी कलिंग-भरमें 'माता'के नामसे प्रसिद्ध हो गई, और उसके सम्बन्धमें विचित्र-विचित्र प्रकारकी अलौकिक बातें सुनी जाने लगीं।

[७]

रातका समय था। गरमियोंके दिन थे। आसमानसे त्रयोदशीका चाँद पृथिवीपर सफ़ेद चाँदनी बरसा रहा था। दिन-भरका कोलाहल इस समय तक समाप्त हो चुका था। इस सन्नाटेमें खल्वाट सिरोंवाली अनेक श्वेतवस्त्र-धारिणी नर-मूर्त्तियाँ चुपचाप अनेक ज़ख्मियोंको अपने शिविरमें लाईं। एक श्वेतवस्त्र-धारिणी देवी स्वयं अपने हाथोंसे इन ज़ख्मियोंकी मरहम-पट्टी कर रही थी।

एक ज़ख्मीके कपड़ोंका बंधन ढीला करते हुए उस देवीने देखा कि आहत व्यक्तिके कपड़ोंमें से एक सफ़ेद कागज़ ज़मीनपर आ गिरा है। देवीने चुपकेसे वह कागज़ उठा लिया। आहत व्यक्ति कलिंग-राजकी सेनाका कोई नायक प्रतीत होता था। चाँदके उज्ज्वल प्रकाशमें देवीने उड़ती निगाहसे इस कागज़की ओर देखा। उसके कौतूहलकी कुछ सीमा न रही, जब उस कागज़के लेखमें उसे सम्राट् अशोकका नाम दिखाई दिया।

चिकित्साका काम रुक गया। देवीने उस कागज़को पढ़ना शुरू किया। सहसा उसके मुँहसे एक हलकी-सी चीख निकल गई। आसपासके सब लोग हैरान हो गये कि बात क्या है!

शिविरका सन्नाटा दूर हो गया। सब लोग शीघ्रतासे उस देवीके पास आये। ये सब लोग बौद्धभिक्षु थे, और वह देवी उनकी संचालिका थी।

प्रधान बौद्धभिक्षुने धीरेसे पूछा—"माता! क्या आज्ञा है?"

कुछ क्षणोंकी चुप्पीके बाद माताने ज़रा तीक्ष्ण-सी आवाज़में कहा—"मेरे लिए एक घोड़ा लाओ। मैं अभी युद्ध-क्षेत्रमें जाऊँगी।"

माता अपने शिविरमें चली गई, और कलम उठाकर एक चिट्ठी लिखने लगी। इसी समय एक घोड़ा वहाँ ले आया गया, और वे युद्ध-क्षेत्रकी ओर रवाना हो गईं। उन्होंने अपने साथ एक भी व्यक्तिको नहीं लिया। सम्पूर्ण भिक्षुसंघ चकित था कि बात क्या है! कलिंग सेनाका वह आहत व्यक्ति भी अभी तक मूर्छित पड़ा था, इस कारण उससे भी कुछ पूछ लेना सम्भव नहीं था।

इसके एक घंटा बाद वह देवी युद्ध-भूमिमें दिखाई दी। आज पहली बार वह युद्ध-क्षेत्रमें आई थी। उन्हें देखते ही सम्पूर्ण बौद्धभिक्षु उनके निकट आ गये। माताने पूछा—"सम्राट् अशोक, मौर्यका शिविर किस ओर है?"

एक भिक्षु उन्हें अपने साथ-साथ सम्राट् अशोककी सेनाकी ओर ले चला। सम्राट् अशोकके शिविरके चारों ओर पहरा था। उसके निकट पहुँचकर माताने अपने साथीको वापस लौट जानेका हुक्म दिया। वह भिक्षु बड़ी अनिच्छा और आशंकाके साथ चुपचाप वापस लौट गया। माताने अपना घोड़ा भी उसी बौद्धभिक्षुके हाथ लौटा दिया।

माता चुपचाप आगे बढ़ी। उसके अलौकिक और गम्भीर चेहरेका तेजोमय सौन्दर्य इस खिली चाँदनीमें मानो प्रस्फुटित हो रहा था। सम्राट्के शरीर-रक्षकोंकी निगाह जब उसपर पड़ी, तो एकने चिल्लाकर पूछा—"कौन जा रहा है?"

देवीने आगे बढ़कर धीरेसे कहा—"मैं हूँ, कलिंग-युद्धकी माता।"

इस नाममें कुछ ऐसा जादू था कि सम्पूर्ण पहरेदार घुटने टेककर माताके सम्मुख बैठ गये। सबके सिर झुके हुए थे।

इसी समय माताने आदेशके तौरपर कहा—"सम्राट् अशोकको जगाकर कहो कि माता आई है।"

शीघ्र ही प्रधान शरीर-रक्षक शिविरके अन्दर चला गया। इस समय तक माताने एक सफेद कपड़ेसे अपना सारा शरीर ढक रखा था।

माताके सम्मुख पहुँचकर सम्राट् अशोकने घुटने टेककर उन्हें नमस्कार किया ।

माताने सम्राट्के नमस्कारका कुछ भी जवाब न देकर उनसे कहा—"इन सबसे कहो कि वे कुछ क्षणोंके लिए चले जायँ ।"

सम्राट्के इशारा करते ही वहाँ सन्नाटा हो गया ।

तब माताने अशोकसे सवाल किया—"क्या तुम इस युद्धमें विजय प्राप्त करना चाहते हो ?"

अशोकने सिर झुकाकर कहा—"जी हाँ ।"

—"तुम्हें कल ही विजय प्राप्त हो जायगी ।"

अशोक सिर झुकाये खड़े रहे ।

माताने कहा—"देखो, एक ज़रूरी बात है। मुझसे कोई सवाल मत करो और आजकी बाकी रात तुम अपने शिविरमें मत सोओ । तुम्हारी जगह मैं यहाँ सोऊँगी। मगर यह बात किसीको मालूम भी न होने पाये। तुम यह देखनेका प्रयत्न भी न करना कि मैं वहाँ क्या कर रही हूँ ।"

सम्राट् अशोकने मन्त्रमुग्धकी-सी दशामें कहा—"जैसी आपकी आज्ञा ।"

माता अन्दर जाकर अशोकके बिस्तरेपर लेट गई। अशोकने ताली बजाई, और सम्पूर्ण शरीर-रक्षक तथा पहरेदार अपनी-अपनी जगह आ खड़े हुए । अशोक भी शिविरके अन्दर ही अन्दरसे अपने वस्त्रागारमें चले गये। उनकी आँखोंमें नींद न थी। हृदयमें असीम कौतूहल भरा था कि छिपकर देखूँ कि माता क्या अनुष्ठान कर रही है; मगर उनपर माताका इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि वह उसकी आज्ञाका भंग कदापि नहीं कर सकते थे ।

तीन बजे पहरेदारोंकी ड्यूटी बदलती थी, और इस समय सिर्फ़ एक ही बजा था। क्रमशः सभी काम यथापूर्व चलने लगा। जैसे कुछ हुआ ही न हो। पहरेदार भी चुपचाप मार्चिंग करनेमें लग गये। इस समय बातचीत करनेकी उन्हें आज्ञा नहीं थी ।

क्रमशः तीनका घंटा बजा। पहरेदारोंकी ड्यूटी बदली, और इसके सिर्फ़ १५-२० मिनट बाद ही सम्राट् अशोकके शिविरमें इतना शोरगुल मच गया कि सम्पूर्ण मगध-सेनाके शिविरोंमें कोई भी सैनिक सोता न बचा ।

सचमुच एक बड़ी भयंकर दुर्घटना हो गई थी। सैनिकोंने आश्चर्यके साथ देखा कि सम्राट् अशोकके बिस्तरेपर एक महिलाका सिर कटा पड़ा है और उसके पास ही खड़े हुए सम्राट् बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रो रहे हैं ।

किसीकी कुछ समझमें न आया कि माजरा क्या है। इसी समय मगध-सेनापतिको 'माता'के शवके निकट एक काग़ज़ प्राप्त हुआ । उन्होंने पढ़ा ; इस काग़ज़पर लिखा था—

"प्रिय अशोक,

इच्छा थी कि इसी तरह जीवन बिता दूँ, और तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें, आजसे बारह साल पहले, जो तीव्र प्रतिहिंसाके भाव उत्पन्न हुए थे, उन्हें भगवानकी कृपासे सफलतापूर्वक दमन किये रहूँ ; परन्तु सहसा आज परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई कि मुझे तुम्हारे सम्पर्कमें आना ही पड़ा ।

"आज रातके सवा तीन बजे तुम्हारी हत्या कर डालनेके लिए एक भयंकर षड्यन्त्र रचा गया था। मुझे जब इस षड्यन्त्रके सम्बन्धमें ज्ञात हुआ, तब मेरे सामने सिर्फ़ तीन मार्ग खुले हुए थे। पहला तो यह कि तुम्हारी हत्या हो जाने दूँ। दूसरा यह कि तुम्हें षड्यन्त्रकी सूचना दे दूँ ; इस दशामें तुम स्वभावतः सतर्क रहते और उन सबकी हत्या करवा डालते। तीसरा यह कि मैं स्वयं अपना जीवन देकर तुम्हारा और षड्यन्त्रकारियोंका जीवन बचा लूं ।

"मैंने इसी तीसरे मार्गका अवलम्बन करनेका निश्चय किया है, और इस तरह मेरे देवर, मैंने अपने पतिकी हत्याका बदला ले लिया है ।

अशोक, यह बौद्धोंका बदला है !

भगवान बुद्ध तुमपर कृपा करें ।

मेरा आशीर्वाद ।

तुम्हारी भाभी—शीला ।"

इस घटनाके अगले ही दिन कलिंग-युद्ध सचमुच समाप्त हो गया ।

× × ×

शीघ्र ही सम्राट् अशोक हत्यारे सम्राट्से 'धम्मविजयी' और 'देवानां प्रिय' भारत-सम्राट् बन गये। और इस तरह अपनी भाभी शीलाके प्रति किये गये अमानुषिक अपराधका थोड़ा-बहुत प्रायश्चित्त करनेका उन्होंने आजीवन भरसक प्रयत्न किया ।

४८२

राष्ट्रका स्वरूप

श्री जार्ज रसल 'ए० ई०'
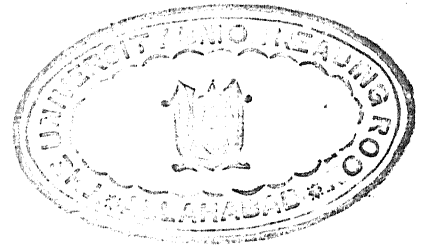
इस लेखमें आयरलैण्डके राज्य, उसके स्वरूप और उसके भविष्यके सम्बन्धमें कुछ कल्पनात्मक चिन्तापूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। राज्य एक भौतिक शरीर है, जिसका निर्माण किसी जातिकी आत्माका अवतार ग्रहण करनेके लिए होता है। राष्ट्रीय आत्माके शरीरमें आध्यात्मिक या लौकिक, आभिजातिक (Aristocratic) या गणतान्त्रिक, नागरिक या सैनिक अवयवोंकी प्रधानता हो सकती है। इनमें से कोई-न-कोई सबसे अधिक शक्तिशाली होगा, और जातिके शरीरका प्रतिविम्ब उसकी आत्माको उसी प्रकार प्रभावान्वित करेगा, जिस प्रकार वंशानुक्रमके अनुसार उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त हुई प्रवृत्तियाँ और भावनाएँ मानव-शरीरकी अन्तरात्माको प्रभावान्वित करती हैं। राज्यके सम्बन्धमें हमारी यह चिन्तना दो प्रकारकी होनी चाहिए, और उसका सम्बन्ध केवल स्थूल शरीरसे ही नहीं, बल्कि आत्मासे भी होना चाहिए। जब हम अपने देशमें स्वराज्य स्थापित करनेकी चेष्टा करेंगे, उस समय यह बहुत सम्भव है कि हमारी भावनाएँ ब्रिटिश पार्लामेंटसे ली गई हों, जिस प्रकार बचपनमें लड़के अपने माता-पिताकी बातोंको दोहराया करते हैं। किन्तु कुछ समयके बाद हमारी राष्ट्रीयता और जातीय विशिष्टताके जो मौलिक सिद्धान्त होंगे और जिनका सन्धान हमें अपने जातीय चरित्रमें समय-समयपर मिलेगा, उनका प्रयोग हम कर सकेंगे। जिस प्रकार एक बच्चा जीवनके रहस्योंको क्रमशः हृदयंगम करता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र भी अपने साहसिक कार्यों द्वारा क्रमशः अपने जातीय चरित्र और इच्छाशक्तिको हृदयंगम करता है।

स्वराज्यके सम्बन्धमें भावावेशमें आकर हम चाहे कितना ही वाद-विवाद क्यों न करें, किन्तु इसमें हमें अपने जातीय चरित्र और सभ्यताके स्वरूपपर, जिसका निर्माण हम अपने लिए करना चाहते हैं, विचार करनेका बहुत कम अवसर मिलता है। कोई भी राष्ट्र प्रारम्भमें किसी सम्पूर्ण आदर्शको लेकर उन्नति-पथपर अग्रसर नहीं होता। राष्ट्रके अन्दर ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत ही कम होती है, जो अपने जातीय आदर्शोंको अपने जीवनमें भलीभाँति चरितार्थ करनेमें समर्थ हुए हों। किन्तु यदि हम अपनी आशाओं तथा चिरकालव्यापी संग्राम और बलिदानके अनुरूप सभ्यताका निर्माण करना चाहते हैं, तो हमें जातीय आदर्शोंका प्रचार सर्वसाधारणमें करना होगा। जातीय आदर्शोंको सर्वसाधारणमें व्यापक रूपसे प्रसार करनेकी आवश्यकता इसलिए है कि हमें देशमें गणतन्त्रकी स्थापना करनी है। सम्भ्रान्त और कुलीन श्रेणीके लोग, जो परम्परासे शासन-कार्य करते आ रहे हैं, और शिल्पी तथा व्यापारी, जिन्हें आर्थिक अनुभव प्राप्त हैं, ये दोनों ही देशके किसानों और मजदूरोंकी अपेक्षा गौण ही समझे जायँगे। देशवासियोंमें जो भाव सामान्य रूपमें प्रचलित है और उनमें चरित्र तथा बुद्धिकी कुलीनता परखनेकी जो शक्ति है, उसपर ही हमें भरोसा करना होगा। किसी जातिकी आत्मा और उसके चरित्रका वाह्य स्वरूप हमें उसकी सभ्यतामें परिलक्षित होता है। जातिकी आत्मामें जिस प्रकारके सौन्दर्य, कल्पना, इच्छा और विचारोंकी निधि संरक्षित रहती है, उसके अनुसार ही उस जातिकी सभ्यता महत या निम्न होती है। यूरोपमें जर्मन राष्ट्रके सर्वशक्तिशाली होनेका कारण केवल उसकी समर-प्रवणता ही नहीं थी। इस सामरिक शक्तिका पोषण तेजस्वी बौद्धिक जीवन तथा ज्ञान-विज्ञानके व्यापक प्रसार द्वारा सम्भव हुआ था। बहुसंख्यक महान चिन्ताशील व्यक्तियोंने अपने विचारों द्वारा राष्ट्रके स्वरूपको समृद्धिशाली बनाया था। जर्मन जाति

शताब्दियोंसे जो स्वप्न देख रही थी, वे ही स्वप्न उसकी शक्ति और समृद्धि द्वारा चरितार्थ हुए थे। सभी राष्ट्रों और सभी व्यक्तियोंके लिए यह आवश्यक है कि वे अपने वाह्य जीवनका मेल किसी-न-किसी रूपमें अपने आभ्यन्तरिक स्वप्नके साथ स्थापित करें। जो व्यक्ति सौन्दर्यका उपासक है, वह किसी ऐसे घरमें रहकर सन्तुष्ट नहीं रह सकता, जहाँकी सब वस्तुएँ सुरुचि-विहीन हों। बुद्धिमान मनुष्य ऐसे समाजसे अवश्य घृणा करेगा, जिसमें किसी प्रकारकी कोई व्यवस्था न हो। हम निश्चयपूर्वक यह बात कह सकते हैं कि किसी जातिकी वाह्य दशाओंको देखकर उसके आन्तरिक जीवनका पता लगाया जा सकता है। हमारे देशके नगरों और ग्रामोंकी कुव्यवस्था तथा उनके मदिरालयोंको देखकर, और स्वच्छता, सौन्दर्य, सदाचार और नीतिनिष्ठाके सम्बन्धमें उनके निवासियोंकी उपेक्षा देखकर हमें उनके चरित्रका आभास मिलता है। जिस समय हममें बौद्धिक जीवनका विकास होगा और हमारी प्रवृत्ति आध्यात्मिक होगी, उस समय हमें इन छोटी-छोटी बातोंमें भी परिवर्तन दीख पड़ेगा। व्यक्तियोंके चरित्रमें जिस क्रमसे परिवर्तन होता है, उसी क्रमसे हमें एक घरसे दूसरे घरमें, एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें सभ्यताके रूपमें भी परिवर्तन दीख पड़ता है। जिस समय हम राष्ट्रीय आत्माके अन्तरमें एक महत् विश्वका निर्माण करने लगते हैं, उसी समय देश सुन्दर रूप धारण कर लेता है, और उसके वाह्य लक्षण सम्मान-योग्य प्रतीत होने लगते हैं। उस आन्तरिक जगतके निर्माणकी हमने उपेक्षा की है। उत्तेजनामें आकर हमने जो राजनीतिक वाद-विवाद किये हैं तथा युद्धवादके साथ क्रीड़ा की है, उससे हमारे विचार केन्द्रीय गम्भीरतासे उठकर समतलपर आ गये हैं। हमारा जीवन इस समय आध्यात्मिक आधारसे विच्छिन्न हो गया है, और उसके समतलके पीछे अवलम्बके लिए कोई भी वस्तु नहीं रह गई है। ख्यातिप्राप्त देशके प्रमुख व्यक्तियोंमें भी बहुत थोड़े ऐसे होंगे, जो किसी आर्थिक या सामाजिक समस्यापर सम्पूर्ण रूपसे योग्यताके साथ विचार कर सकें। वस्तुओंके वाह्य रूपको ठीक करनेमें ही वे व्यस्त रहा करते हैं। इस समय हमें क्रियाशील मनुष्योंसे भी अधिक विद्वान, अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, मनीषी, शिक्षाविद और साहित्यिकोंकी आवश्यकता है, जो अपने गम्भीर विचारों द्वारा राष्ट्रीय चैतन्यकी गम्भीर मरुभूमिको हरा-भरा बना दें और शून्यको पूर्णतामें परिणत कर दें। जिस समय हम राष्ट्रगठनके महान कार्यमें अपनेको संलग्न करेंगे, उस समय हमें मालूम होगा कि हमारे बौद्धिक जीवनके स्रोतमें इतनी सरसता नहीं रह गई है, जिससे हम संजीवित होते रहें। यद्यपि लोग रुष्ट होकर इस बातको अस्वीकार करेंगे; किन्तु, मेरे विचारसे, यह कहना यथार्थ है कि हमारे देशके अधिकांश मनुष्य सद् और असद् विचार तथा मानवी प्रकृतिकी गम्भीरता और अगम्भीरतामें जो भेद है, उससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जिन लोगोंने समाचार-पत्रोंके सिवा और कभी कुछ पढ़ा ही नहीं, उन्हें इस जगतके किसी विषयका वास्तविक ज्ञान तथा किसी स्वर्गीय सुन्दर पदार्थकी कल्पना ही किस प्रकार हो सकती है? हमारे देशके अधिकांश मनुष्य जिन्हें भ्रमवश विचार समझते हैं, वे हमारी भावनाओंके सिवा और कुछ नहीं हैं। किसी विषयपर अपनी इच्छा या अनिच्छा, पूर्व संस्कार अथवा अतिशय अनुराग प्रकट कर देनेको ही वे विचारोंकी अभिव्यक्ति समझते हैं। हमारे राजनीतिक वाद-विवादोंकी प्रवृत्तिने हमारे भावोंको उत्तेजना प्रदान की है, और वे भाव ही इस समय हमारी राजनीतिमें सर्वप्रधान हो रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यके लिए भावावेश एक बहुत बड़ी शक्ति है; किन्तु राष्ट्रीय नीतिमें इसका समावेश कदापि नहीं होना चाहिए। मानव-जीवनमें आवेश एक भयंकर उपादान है, यद्यपि हमारी विचित्र मिश्रित प्रकृतिका यह एक आवश्यक अंग है। किन्तु हमारे राष्ट्रीय जीवनमें यह सबसे बढ़कर खतरनाक पथप्रदर्शक है।

हममें शक्तिके ऐसे स्रोत विद्यमान हैं, जिनसे भावावेशमें आकर हम रस ग्रहण करते हैं और उनकी गम्भीरता एवं गुरुतापर विस्मित होते हैं; किन्तु फिर भी हम इन्हें अपने जीवनका पथप्रदर्शक प्रकाश नहीं बनाते, बल्कि उन दैवी नियमोंको बनाते हैं, जिनपर हमने गम्भीरतापूर्वक चिन्तना की है और जो हमारे अन्तस्तलको उज्ज्वल एवं स्थिर प्रकाशसे प्रोद्भासित कर रहे हैं। प्राणी जिस प्रकार अपने जीवनकी तुलामें उत्थित होते हैं, उसी क्रमसे उनके जीवनकी सर्वप्रधान प्रवृत्तिमें भी परिवर्तन होता है। उद्भिद् जगतमें यह प्रवृत्ति क्षुधाके रूपमें होती है; पशु-पक्षियोंमें उनकी सहज बुद्धि और मनुष्यमें भाव-प्रवण एवं बौद्धिक जीवन; किन्तु तारा, ग्रह, नक्षत्र आदि, जो उच्च प्राणी हैं, अपरिवर्तनीय एवं स्थिर नियम द्वारा परिचालित होकर आकाशमें भ्रमण करते हैं। व्यक्तिकी अपेक्षा राज्यकी सत्ता बहुत ही उच्च है, और इसका परिचालन एकमात्र नैतिक एवं बौद्धिक सिद्धान्तों द्वारा ही होना चाहिए। ये सिद्धान्त भावावेश या पक्षपातके फलस्वरूप नहीं, बल्कि गम्भीर चिन्तनाके फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। राष्ट्रीय आदर्शोंका गठन पूर्ण विवेचनाके पश्चात् ही होना चाहिए। जो राष्ट्र भावावेशमें आकर अपने आदर्शोंका गठन करते हैं और उन्हें अपनाते हैं, उन्हें बादमें पछताना पड़ता है, और उन आदर्शोंका परित्याग करनेमें बड़ी-बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। यदि हम अपने देशकी आत्माके उपयुक्त शरीरका निर्माण करना चाहते हैं, तो यह काम अटरं-सटरं तरीक़ेपर नहीं हो सकता। हमसे यह कहा जाता है कि हम अपने नेताओंकी आलोचना न करें, उनपर विश्वास करें। इसका परिणाम यह होगा कि मानसिक विवेचनाका स्रोत ही रुक जायगा और वे उच्च सिद्धान्त, जिनपर राष्ट्रीय कार्योंका अवलम्ब होना चाहिए, सर्वसाधारणसे दूर होते चले जायँगे। इसका अर्थ यह हुआ कि हम राष्ट्रकी कल्पना ऐसे गणतन्त्रके रूपमें न करें, जिसके नियमोंपर जनता स्वतन्त्रतापूर्वक तर्क-वितर्क कर सके, बल्कि उसकी कल्पना एक ऐसी गुप्त समितिके रूपमें करें, जिसके प्रमुख राजनीतिक व्यक्ति किसी गुप्त स्थानमें एकत्र होकर आदेश जारी करते हों। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे राजनीतिज्ञ अपने देशके प्रति प्रेम-भाव रखते हैं; किन्तु इस प्रेमकी अभिव्यक्ति महत्तमसे लेकर नीचतम रूपोंमें हो सकती है। नीचतम प्रेम अपनी हीन आकांक्षाओंकी तृप्तिके लिए प्रत्येक वस्तुका, यहाँ तक कि अपने प्रेमपात्रके जीवनका भी, ध्वंस कर डालेगा। उच्चतम प्रेम कल्पनात्मक बुद्धिके साथ मिलकर अपने प्रेमपात्रके चारों ओर ऐसी सुन्दर अवस्थाओंका निर्माण कर देता है, जिससे जीवनका उच्चतम विकास सम्भव हो जाता है। इस बौद्धिक चिन्तनासे पृथक् कोई वास्तविक प्रेम नहीं है। जो लोग आयरलैण्डके प्रति असद् रूपमें प्रेम रखते हैं, वे अपने देशके सम्बन्धमें अपने पड़ोसीसे लड़ाई-झगड़ा करते हैं, दूसरेको देशके सम्बन्धमें विचार करने या देशकी सेवा करनेकी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते और दलबन्दियोंके दलदलमें इसलिए फँसते हैं कि उनकी अपनी हीन कल्पनाके अनुरूप देशका गठन हो। जिन लोगोंका यह देशप्रेम महत होता है, वे अपने देशके लिए उच्चतम भाग्यकी आकांक्षा रखते हैं। वे अपने देशके युगयुगान्तरकी संचित ज्ञानराशिसे ऐसे रत्नोंको ढूँढ़ निकालेंगे, जिससे उनका जातीय जीवन संसारकी दृष्टिमें महत्तम प्रतीत हो। प्रत्येक जातिके मनीषी विद्वानोंने कल्पनात्मक बुद्धिके प्रयोगसे भावावेश एवं पक्षपातको दूर करके अपने देशवासियोंके सामने ऐसे आदर्शोंका व्यक्त किया है, जो आदर्श राष्ट्रीय चरित्रके साथ सहज ही प्रतीयमान होते हैं। हमें यह पता लगाना है कि हमारे जातीय चरित्रका, स्नेह-सम्बन्धका तथा उन सनातन सिद्धान्तोंका, जिनके द्वारा मानवीय इतिहासके प्रारम्भसे ही समस्त महती सभ्यताएँ और महान मानवीय प्रयत्न अनुशासित एवं अनुप्राणित होते आ रहे हैं, मूलतत्त्व क्या है। सम्पूर्ण

देशवासियोंको एकताके सूत्रमें आबद्ध करके अपने देशके भाग्यको पूर्ण करनेके लिए हमें इन्हीं बातोंका पता लगाना है। राष्ट्र ऐसे मनुष्योंका समुदाय है, जो किसी ईश्वरप्रदत्त चित्तवृत्ति द्वारा या स्वाधीनताकी आशा द्वारा या किसी शक्ति, सौन्दर्य, न्याय या बन्धुत्त्व द्वारा परस्पर संयुक्त रहते हैं, और जब तक एकीकरणकी वह सर्वश्रेष्ठ भावना हममें उदित नहीं होती, तब तक हमारे भाग्यकी नौकाको पथ-प्रदर्शित करनेके लिए कोई उज्ज्वल प्रकाश नहीं हो सकता।

हमारी राष्ट्रीय सत्तामें जिस प्रकारके विचार उत्पन्न होंगे, उसके ऊपर ही हमारी सभ्यता निर्भर करेगी। जर्मनीके ख्यातनामा दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, कवियों और कलाविदोंने देशकी सभ्यता एवं संस्कृतिको महत्तम बनानेके लिए जो कुछ किया था, तथा प्राचीन कालमें यूनानके कलाविदोंने इसके लिए जो कुछ किया था, उसी पद्धतिका अनुसरण करते हुए हमें अपने वैशिष्ठ्यके अनुरूप राष्ट्रीय आदर्शोंका निर्माण करना होगा। यही आदर्श राजनीतिज्ञोंकी शासन-नीतिको, नागरिकोंकी क्रियाशीलताको, देशकी शिक्षण-संस्थाओंको सामाजिक संस्थानोंको तथा राजके विभिन्न विभागोंके शासनोंको ध्रुव नक्षत्रकी तरह परिचालित करते रहेंगे और देशके ग्राम्य एवं नागरिक जीवनको एक भावनामें संयुक्त कर देंगे। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक हमारे देशमें विभिन्न सम्प्रदायों एवं स्वार्थोंके बीच निरन्तर कलह एवं वाद-विवाद होते ही रहेंगे, जिसके कारण न तो देशमें सुख-शान्तिकी सृष्टि हो सकती है और न सच्ची राष्ट्रीयताका विकास ही हो सकता है। इस प्रकारकी राष्ट्रीयताका अर्थ यह होगा कि उसका वाह्यरूप हमने उपलब्ध किया है, किन्तु उसकी भावना अभी तक हमसे दूर ही है।

इस लेखमें राष्ट्रीय स्वरूप और आयरलैण्डकी राजनीतिके सम्बन्धमें जो विचार प्रकट किये गये हैं, उनमें कतिपय आवश्यक विषयोंका ही समावेश किया गया है। आयरलैण्डकी सभ्यताके लिए जो सिद्धान्त उपयुक्त समझे जायँ, उनपर विचार करने तथा तर्क-वितर्क करनेके लिए मेरे देशवासियोंमें अनुप्रेरणा उत्पन्न हो, इसी उद्देश्यसे ये विचार प्रकट किये गये हैं। दूसरे देशके लोगोंको ये विचार भले ही प्रारम्भिक प्रतीत हों ; किन्तु उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि एक राष्ट्रके रूपमें हमारा यह प्रयोग बिलकुल नवीन है, और हमें अपने मौलिक सिद्धान्तोंको निश्चित करना अभी बाक़ी है। यूरोपके राष्ट्र अपनी राजनीतिक बुद्धिमत्ताके अहंकारमें एक शिशु राष्ट्रकी राजनैतिक चिन्तनाओं या सभ्यताके सिद्धान्तोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देख सकते हैं ; किन्तु उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि एक बालकके लिए स्वाभाविक विचार और उसकी आदर्शवादी कल्पनाएँ क्षम्य होती हैं। विकसित मानवतामें वे कल्पनाएँ भले ही क्षम्य न हों ; किन्तु यदि नवयुवकोंकी कल्पनाओंमें स्वर्ग और मर्त्यका एकीकरण नहीं हो, तो बड़े होनेपर कोई तेजस्वितापूर्ण काम उनसे नहीं हो सकेगा। इस लेखमें केवल प्रगाढ़ चिन्ताका आरम्भमात्र किया गया है, और मुझे आशा है कि मेरी अपेक्षा महत्तर विचारशील और प्रतिभाशाली व्यक्ति इस चिन्ता-कार्यमें सम्मिलित होकर आयरलैण्डकी आत्माको उसके आदर्शके निकटतम और उसके शरीरको उसकी आत्माके निकटतम पहुँचानेमें सहायता प्रदान करेंगे।*

अनुवादक —जगन्नाथप्रसाद मिश्र

* श्री जार्ज रसल 'ए० ई०' की सुप्रसिद्ध पुस्तक "National Being" के एक अध्यायका भावानुवाद। अनुवादककी अप्रकाशित पुस्तकसे।

—सम्पादक

आन्ध्र-देशका रहन-सहन

श्री व्रजनन्दन शर्मा

शिक्षा

भारतवर्षमें शिक्षाकी कितनी कमी है, यह सभी जानते हैं। फिर भी हिन्दुस्तानमें बंगाल और मद्रास-प्रान्त ही शिक्षामें अन्य प्रान्तोंसे अग्रसर हैं। मद्रास-प्रान्तमें भी आन्ध्रका स्थान इस विषयमें अच्छा है। प्रायः हरएक गाँवमें बोर्ड स्कूल हैं, जिनमें बालक-बालिकाओंकी संख्या प्रायः समान होती है। प्राइमरी स्कूलोंमें फीस नहीं ली जाती। इन स्कूलोंके अलावा प्रायः हरएक गाँवमें पुराने ढंगके दो-एक खानगी स्कूल भी होते हैं, जिनकी पढ़ाई प्राचीन पद्धतिसे होती है। उत्तर-भारतमें मद्रासी अंगरेज़ीकी प्रशंसा अकसर सुनी जाती है। इसका कारण है अंगरेज़ीका ज्यादा व्यवहार। साधारण अंगरेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी आधी तेलुगु और आधी अंगरेज़ीकी खिचड़ी पकाते रहते हैं। जो कालेजका मुँह देख आते हैं, वे तो सब काम—पुर्ज़ी-खत लिखनेसे लेकर डायरी लिखने तकका काम—अंगरेज़ीमें ही करते हैं। स्त्री और पिताको भी लोग अंगरेज़ीमें ही पत्र लिखते है। अपने छोटे-छोटे बच्चोंसे अंगरेज़ीमें ही बोलते हैं। फिर उनकी अंगरेज़ी क्यों न अच्छी हो ? यह रोग उत्तर-भारतके विद्यार्थियोंमें भी है ; पर इतने प्रबल रूपमें नहीं। यहाँ सर्वसाधारणमें भी यह रोग घर करता जा रहा है। यहाँ ऐसे बहुतेरे पढ़े-लिखे लोग मिलेंगे, जो तेलुगुमें एक वाक्य भी शुद्ध-शुद्ध लिख या बोल नहीं सकते, लेकिन अंगरेज़ीमें धारा प्रवाह लेक्चर झाड़ते हैं। पर ऐसे लोग शहरोंमें ही हैं। गाँवोंमें अभी अधिकांश लोग ऐसे ही हैं, जो बारहवीं शताब्दीके मालूम पड़ते हैं। ज्ञानका प्रकाश (?) उन तक सरकारने पहुँचाया है।

आन्ध्र-देशके इस भागमें (समुद्रके किनारे-किनारे जहाँ मैं रहता हूँ) शिक्षाका ज्यादा प्रचार है। कोई भी ऐसा गाँव न मिलेगा, जहाँ पुस्तकालय और उसका मकान न हो और जहाँ 'आन्ध्र-पत्रिका' (तेलुगु-दैनिक) या 'कृष्ण-पत्रिका' (साप्ताहिक) न आती हो। पुस्तकालयोंका उपयोग कम होता है ; पर अब धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। प्रायः दस फीसदी गाँव ऐसे भी मिलेंगे, जहाँका कोई-न-कोई निवासी इंग्लैण्ड या विदेशसे शिक्षा प्राप्त कर आया हो। गाँवोंमें यह बात नहीं है कि चिट्ठी पढ़ाने या लिखानेके लिए लोगोंको खोजना पड़े।

आन्ध्र स्त्रियाँ भी काफी पढ़ी-लिखी हैं। शहरोंमें तो 'डिग्रीधारी' औरतें भी काफी संख्यामें मिल जाती हैं ; पर गाँव अभी इतने अग्रसर नहीं हैं। भगवान उन्हें ऐसी अग्रसर होनेसे बचावे। फिर भी गाँवोंकी स्त्रियाँ प्रारम्भिक शिक्षा तो अवश्य प्राप्त करती हैं। लड़कियोंको संस्कृतकी शिक्षा विशेषकर दी जाती है। छोटी-छोटी लड़कियाँ जब 'मेघ-सन्देश' और 'कुमारसम्भव' के श्लोकोंका मधुर स्वरसे उच्चारण करती हैं, तब सुननेमें तो बड़ा अच्छा लगता है ; पर उनके व्यावहारिक जीवनपर उसका असर या लाभ कुछ नहीं होता। इसके बदलेमें यदि तेलुगुमें ही जीवनके उपयोगी विषयोंकी शिक्षा दी जाती, तो अच्छा होता। अब लोगोंका ध्यान इस ओर जा रहा है।

आन्ध्रका साहित्य-संगीत

तेलुगुका प्राचीन साहित्य बहुमूल्य है—अच्छे-अच्छे काव्योंका भंडार है। शृंगार-समुद्रमें भक्तिकी धाराएँ भी आकर मिली हैं। काव्यका पठन-पाठन बहुत है ; पर जीवनमें काव्यका अंश बहुत थोड़ा है। भावनाकी कमी है। अब तक ये प्राचीन साहित्यके ढंगपर ही कविता करते हैं ; पर इधर 'भाव-कवित्व' अर्थात् छायावादी ढंगकी कविताएँ भी लिखी जा रही हैं ; पर ऐसी कवितायोंकी संख्या अभी दालमें नमकके

बराबर है। जनता इस तरहकी कविताएँ चाहती भी नहीं है। यहाँके साहित्यमें राष्ट्रीयताकी कमी बेहद खटकती है। इस विषयमें आन्ध्र लोग हिन्दीकी सराहना करते हैं।

राजनीतिक पत्रोंके सिवा साहित्यिक पत्रोंकी खपत भी कम है। उनकी संख्या भी कम है—खासकर ऊँचे स्टैन्डर्डके मासिकोंकी बहुत कमी है। अगर देशभक्त श्री काशीनाथ नागेश्वररावजी न होते, तो तेलुगूके वर्तमान सामयिक साहित्यकी दशा और भी खराब होती। उन्हींकी 'भारती' मासिक पत्रिका मासिक कहने लायक है। 'गृहलक्ष्मी' भी 'चाँद'की तरह निकलती है। बिक्री इसीकी ज्यादा है। कहानी-साहित्यने हिन्दीमें जो स्थान प्राप्त किया है, तेलुगूमें वैसा होनेमें अभी देर लगेगी। उपन्यासके विषयमें भी लोगोंकी रुचि अभी परिमार्जित नहीं हो पाई है। साधारणतः लोग जासूसी उपन्यास ही पसन्द करते हैं। जन-साधारणमें 'भागवत' और 'भारतम्' (महाभारत) ने ज्यादा स्थान अधिकृत कर रखा है। पंडित लोग 'मनुचरित्र' और 'वसुचरित्र' की ज्यादा प्रशंसा करते हैं। ये दोनों काव्य-ग्रन्थ शृंगाररससे भरे हैं।

आन्ध्र-निवासियोंमें साहित्यसे ज्यादा महत्त्व संगीतने प्राप्त किया है। गाँवोंके खेतोंमें भी निकल जाइये, तो भी कोई-न-कोई ऊँची आवाज़में (जो आध मील तक सुनाई पड़े !) रागके साथ गाता हुआ मिल ही जायगा। स्वरका साधारण ज्ञान सर्वसाधारणमें भी अधिकांश लोगोंको होता है। लोग साधारण पद्य दूसरे ढंगसे और 'कीर्त्तन' (पद) दूसरे ढंगसे गाते हैं। 'कीर्त्तन' तो उत्तर-भारतके लोग भी प्रायः इसी ढंगसे गाते हैं; पर उनके पद्य गानेका ढंग निराला है। मुझे यह ढंग बड़ा अच्छा लगता है। इनके नाटक इन्हीं पद्योंसे भरे रहते हैं। यह इनकी अपनी चीज़ है। मैं तो इन पद्योंका भक्त हो गया हूँ। हरएक आदमी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार दो-चार पद्य ज़रूर याद रखता है तथा समयपर रागके साथ गाता भी है। यहाँ शुभ कर्मोंमें भोजनके समय भी बाज़ी लगाकर पद्य गाते हैं। सुननेवाले संगीत-मुग्ध हो दो-चार लड्डू ज्यादा उड़ा जाते हैं ! संगीतने इनके सरल जीवनमें अच्छा स्थान प्राप्त किया है।

लड़कियोंको संगीतकी शिक्षा ज्यादा दी जाती है। इधर ग्रामोफोनने भी संगीतका सौन्दर्य बिगाड़नेमें बड़ी मदद पहुँचाई है। नाटकों द्वारा राग और पद्योंका प्रचार खूब हुआ है। जो गा नहीं सकता, वह आन्ध्रके स्टेजपर पैर नहीं रख सकता। एक अभिनय-कलासे कोरा व्यक्ति भी 'नाटक-शिरोमणि' हो सकता है, यदि वह अच्छा गाता हो। इनके स्टेजमें कईएक त्रुटियाँ हैं; पर उन्हें मैं फिर कभी लिखूँगा। संगीत-प्रेमने ही आन्ध्र-देशमें नाटकोंका बेहद प्रचार कराया है।

गृह-शिल्प और कला

बंगालकी तरह आन्ध्र-देशका गृह-शिल्प पूरा-पूरा नष्ट नहीं हो गया है। भारतका प्रधान 'गृह-शिल्प' चर्खा और करघा अभी तक यहाँ लुप्त नहीं हुआ है। गांधीजीको चर्खेका नमूना खोजनेमें जितनी तकलीफ गुजरातमें उठानी पड़ी, उतनी यहाँ न उठानी पड़ती। गाँवोंके प्रायः हर घरमें चर्खा चलता था। वह बन्द होनेवाला ही था कि गांधीजीने पुनः उसमें गति भर दी है। अब चर्खे-करघेका काम जोरोंसे चल रहा है, इसीलिए यहाँका खद्दर बहुत बारीक होता है। यहाँकी बुनाई भी अन्य स्थानोंकी अपेक्षा उच्चकोटिकी थी, और अब तो ज़ोरोंपर है। दूसरे, यहाँके लोगोंको बुनाई नहीं सीखनी पड़ी, क्योंकि 'साली' जातिकी यह वृत्ति पहलेसे थी, और अब भी वे उसीपर जीते हैं। यही कारण था कि आन्ध्र-देशमें दो कपड़ोंका चलन ज्यादा था—एक तो खास लंकाशायरका और दूसरे इन करघोंका। हिन्दुस्तानी मिलोंके कपड़े यहाँ बहुत ही कम खपते थे। खद्दर मँहगा होनेसे अब स्वदेशी मिलके कपड़े भी खूब बिकने लगे हैं।

दस्तकारीके नाते मिट्टीके बर्तन बनाना तथा पत्थरका काम, बाँसकी टट्टी बुनना, चमड़े और बढ़ईका काम यहाँके मुख्य धन्धोंमें है। कहीं-कहीं मिट्टीकी ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ बनती हैं कि उनके आगे सोने-चाँदीकी मूर्ति व्यर्थ-सी जान पड़ती है। इन मूर्तियोंका प्रचार झोपड़ीसे महलों तक है। लकड़ी मँहगी मिलती है ; पर उसका काम अच्छा होता है। बल्लारी ज़िलेमें कम्बल अच्छे बनते हैं। विशाखपट्टम ज़िलेमें सींग और दाँतका काम भी होता है।

शिल्प-कलाके नाते आन्ध्र-देश बहुत आगे बढ़ा हुआ है। छोटे-छोटे गाँवोंके मन्दिर भी म्यूज़ियम हैं। पत्थरका काम देखकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। जिन लोगोंने जगन्नाथपुरीके मन्दिरका पत्थरका काम देखा है, वे यहाँकी कारीगरीका अनुमान कर सकते हैं। उस ढंगकी कारीगरी यहाँ प्राय: सभी मन्दिरोंमें होती है। उसे देखकर आश्चर्य होता है कि इनको बनाने और बनवानेवाले कितने कलाप्रेमी और कलापोषक थे। यहाँ मैं एक गाँवमें रहता हूँ ; पर यहाँके मन्दिरोंकी कारीगरी भी देखने लायक है। लेकिन वैसे कलाकार और कलापोषक अब कहाँ ?

गृहनिर्माण-कला भी यहाँकी अच्छी है। एक भी बेढंगा घर देखनेको न मिलेगा। घरके भीतरकी सजावट भी अच्छी होती है। हर घरमें रवि वर्माके एक-दो चित्र अवश्य फ्रेममें लटकते रहते हैं।

चौक पूरना (आलीपन) तो सचमुच एक कला है। हरएक स्त्रीके लिए इसे सीखना आवश्यक है। यहाँकी प्रत्येक गृहकार्य-दक्षा गृहिणी एक अच्छी ड्राइंग-मास्टर होती है। चौक पूरनेसे कितनी सौन्दर्य-वृद्धि होती है, यह यहाँके घर देखनेसे ही जाना जा सकता है। तारीफ़ यह कि हरएक दरवाज़ेके चौकमें कोई-न-कोई भिन्नता अवश्य मिलेगी। सब बातें देखते हुए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ये लोग बड़े कलाप्रेमी होते हैं।

वेश्याएँ

वेश्याएँ मानव-समाजका प्रत्यक्ष कलंक हैं। आन्ध्र-देशके समाजमें भी यह गलित अंग मौजूद है। आन्ध्र-समाजने उन्हें एक आवश्यक वस्तु बना डाला है। यहाँ वेश्याओंकी संख्या अन्य प्रान्तोंसे ज्यादा है, क्योंकि समाजने इनको गौरवका पद प्रदान किया है, तथा इनकी आजीविकाका निश्चित उपाय कर दिया है। यहाँ वेश्याओंकी एक ख़ास जाति है। उत्तर-भारतकी तरह जो कोई स्त्री चाहे इनमें नहीं मिल सकती। अगर और कोई इस पेशेको अख्तियार भी करे, तो कोई उसे नृत्यादिमें नहीं बुलाता। ये अपनेको 'कलावन्त' जातिका बतलाती हैं। यहाँके प्रधान-प्रधान मन्दिरोंमें रोज़ इनकी आवश्यकता होती है। आरतीके समय इन्हींका गाना होता है, क्योंकि यह नियम है कि आरती करनेवाली स्त्रियाँ विवाहित न हों। इसके लिए इन्हें जागीर भी काफी मिली है। इसलिए गाँवोंमें भी इनकी संख्या काफी है। आन्ध्र-देशकी स्त्रियोंका फैशन इन्हीं लोगों द्वारा परिवर्तित होता रहता है।

अब इनमें सुधारकी लहर चली है। इस समाजके नेता भी आगे आ रहे हैं। जब तक 'देवदासी-बिल' पास न हुआ था, तब तक इनमें जाग्रति बहुत कम थी ; पर अब तो यह जाति तेज़ीके साथ सुधारकी ओर जा रही है। इस अवसरपर मैं श्रीमती डा० मुत्तु लक्ष्मी रेड्डीका नाम नहीं भूल सकता, जिन्होंने इसी कुलमें जन्म लेकर अन्तर्जातीय विवाह किया है और जो स्त्री जातिके लिए लगातार परिश्रम कर रही हैं। 'देवदासी-बिल' आप ही के परिश्रमका फल है। आप मदरास-कौन्सिलकी वाइस-प्रेसिडेन्ट भी रह चुकी हैं। आप ही के उद्योगसे आज वेश्या-समाजमें क्रान्ति हो रही है।

इस जातिने देखते-देखते जैसा सुधार किया है, वह आश्चर्यजनक है। सनातनसे आई हुई नाच-पार्टियाँ अब बन्द हो रही हैं। कुमारियाँ धड़ल्लेसे

शादी कर रही हैं। इस जातिके युवक उच्च शिक्षा और उच्च विचारोंकी ओर तेज़ीसे बढ़ रहे हैं। इनका भविष्य उज्ज्वल है।

नई रोशनीका प्रभाव

नई रोशनीकी ऊपरी तड़क-भड़क कितनी आकर्षक और भीतरी प्रभाव कितना हानिकर है, इस बातको अब लोग अच्छी तरह समझ रहे हैं। आन्ध्र-देशके कुछ ज़िले तो आधुनिक प्रकाशसे बिलकुल अछूते हैं; पर कुछ ज़िले—ख़ासकर गुन्टूर, कृष्णा, नेल्लूर, गोदावरी वग़ैरह—इस रोशनीकी चकाचौंधसे एकदम चौंधिया गये हैं। आन्ध्र-देशपर इस रोशनीके प्रभावका थोड़ासा वर्णन अनुपयुक्त न होगा।

इस रोशनीके प्रभावका सबसे बड़ा और प्रत्यक्ष परिणाम है फ़ैशनकी वृद्धि। आन्ध्रवालोंने भी फ़ैशन बनाना ख़ूब सीखा है। यहाँ हम देख रहे हैं कि बालों और कपड़ोंमें, रिष्टवाच और चेनोंमें, पेरिसकी तरह, नित्य नहीं तो महीने-दो-महीनेमें अवश्य एक-आध बार परिवर्तन हो जाता है। नये फ़ैशनकी चीज़पर लोग टूट पड़ते हैं। यह गुन्टूर आदि ज़िलोंके गाँवोंकी हालत है। अन्य ज़िलेवाले भी इनसे सीखते जा रहे हैं। चोटी गायब हो रही है। French Cutting (फ्रेंच कटिंग) का ज़ोर बढ़ता जा रहा है। गाँवके नवयुवक भी बिला नागा सेफ्टी रेज़र चलाने लगे हैं।

श्रृंगार-सामग्रियों (Toilets) की खपत दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही है। मामूली किसानकी स्त्रियाँ भी Lux साबुन मलकर Rose-Powder से अपने मुँहकी सौन्दर्य-वृद्धि करती हैं। सेन्टकी एकआध शीशी घरमें ज़रूर रहेगी। पुरुषोंको भी सौन्दर्यका इतना शौक बढ़ रहा है कि ये हरदम ज़ुल्फ़ो-ख़ालमें ही लगे रहते हैं। फाउन्टेनपेन (लिखना न आता हो तो कोई हर्ज़ नहीं), रिस्टवाच, छड़ी, छाता, इस्तरी किये हुए कपड़े, साबुन, सेन्ट, हैज़लीन स्नो तथा टॉलकम आदि विदेशी वस्तुओंका प्रचार गाँवों तकमें बढ़ रहा है।

कपड़ोंका शौक यहाँ बेहद है। विदेशी कपड़ोंकी खपत जितनी इस भागमें होती है, उतनी शायद हिन्दुस्तानके किसी अन्य भागमें न होती होगी—वह भी ख़ासकर लंकाशायर तथा ग्लासगोके कपड़ेकी ही। औरतोंके हाथमें पैसा रहता है। वे अपनी चीज़ें ख़रीदनेको स्वच्छन्द हैं। बस, फेरी करनेवालोंकी बन आती है। यदि यह कहा जाय कि यहाँके लोग कपड़ोंका दुरुपयोग करते हैं, तो अनुचित न होगा। मामूली तौरसे मध्यम श्रेणीकी औरतें हमेशा सात-आठ साड़ियाँ रखती हैं, जिनमें दो-चार बेशक़ीमती विदेशी साड़ियाँ होती हैं। पुरुषोंका काम साधारणतः चार जोड़ी धोती और दस-बारह कुर्त्तेसे कममें नहीं चलता। अमीरोंकी बात कहना ही व्यर्थ है। एक बार मैं अपने एक हिन्दी-विद्यार्थी महाशयके घर बैठा था। उसी वक्त धोबी कपड़े लेने आया। विद्यार्थीजीके एक पुत्र था, जो अभी डेढ़ वर्षका ही था। वे बड़े प्रेमसे उसे पालते थे। जब धोबी उसके कुर्त्तोंकी गिनती करने लगा, तो मुझे आश्चर्य हुआ। पाठक सोचेंगे कि दस-बीस होंगे। नहीं महाशय, पूरे ७५ थे!

इसी तरह 'होटलों' की भी वृद्धि हो रही है। गाँवोंमें भी उनकी जड़ जमती जा रही है। होटल दो तरहके होते हैं—एक सिर्फ भोजनके और दूसरे सिर्फ जलपानके। होटलवाले प्रायः ब्राह्मण ही होते हैं। होटलोंमें मांस-मछलीका नाम नहीं होता। धीरे-धीरे होटलमें खाना फ़ैशनसे आवश्यकतामें परिवर्तित हो रहा है; यह चिन्ताकी बात है। घरकी अपेक्षा लोग होटलोंको ज्यादा पसन्द कर रहे हैं। शहरोंमें अब ऐसे परिवार भी मिलते हैं, जो अपने घरमें धुआँ करना नहीं चाहते। होटलसे खाना आता है, और स्त्री-बच्चे सब मिलकर खाते हैं। ये यूरोपीय जीवनका मज़ा यहीं उठाना चाहते हैं। ख़ैर, यह हवा अभी तक गाँवोंमें नहीं पहुँची है। होटलोंमें 'कॉफी' का प्रचार बहुत ज्यादा है। कॉफी-होटल जाकर 'कॉफी' या 'टी' न पीना असभ्यता है। इस हिसाबसे यहाँ रहकर मैं भी अभी तक असभ्य ही हूँ।

पाश्चात्य रोशनीके आवश्यक अंग शराबका भी ख़ूब प्रचार हो रहा है। बड़े कहे जानेवाले लोगोंमें ही यह रोग बढ़ रहा है। सनातनी ब्राह्मण—जो अछूतोंकी छायासे ही अपवित्र हो जाते हैं—काफी संख्यामें इस पुण्यकार्यमें भाग ले रहे हैं। कुक्कुट (मुर्गी) वंशका भी नाश बढ़ रहा है। यहाँवाले दिल्लगीमें कहा करते हैं कि जबसे ब्राह्मण लोगोंने अंडे खाने शुरू किये, तभीसे अंडे मँहगे होते जाते हैं। यह सब करते हुए भी ब्राह्मण-देवता अपने झूठे ब्राह्मणत्वका अभिमान नहीं छोड़ते, और शुद्ध-पवित्र अब्राह्मणोंको नीच समझते हैं। इस तरह अंगरेज़ी पढ़े-लिखे सभ्य (?) लोग समाजको रसातलकी ओर ढकेल रहे हैं। शराब और फैशनकी वृद्धिके साथ-साथ उसका तीसरा साथी व्यभिचार भी बढ़ रहा है। वेश्याओंकी संख्या बढ़ रही है। उनके पौ-बारह हैं। यही प्रलोभन उनके सुधारमें भी बाधक हो रहा है। फलस्वरूप रोगोंकी—खासकर दुराचार सम्बन्धी रोगोंकी—संख्या बढ़ती जा रही है।

नई रोशनीके साथ-साथ अपराधोंमें भी वृद्धि हो रही है। गाँवमें किसी आदमीको २५ रुपया बिना प्रामेसरी नोटके मिलना मुश्किल है। नेतागीरीका रोग भी यहाँ बढ़ता जा रहा है। नेता बननेवाले बहुतेरे मिलते हैं, अनुयायी बननेवाले कम।

एक और भयंकर रोग यहाँ फैल रहा है, वह है एलेक्शन या चुनावका रोग। पाठकोंको आश्चर्य होगा कि यहाँ मामूली डिस्ट्रिक्ट-बोर्डके चुनावमें लाखोंका वारा-न्यारा हो जाता है। चुनावमें सब तरहके हथकंडे चलते हैं। कृष्णा जिलेका चुनाव तो अमेरिका और यूरोपके टक्करका हो रहा है। इसके अलावा अब गाँवोंमें भी दलबन्दियाँ हो रही हैं। ब्राह्मण-अब्राह्मणके सिवा अब भिन्न-भिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न पार्टियाँ खड़ी कर रही हैं, जिससे गाँवोंके शुद्ध वातावरणमें भी गुटबन्दी फैल रही है। इस दलबन्दीका परिणाम हानिकर ही दीख पड़ता है।

कांग्रेस आन्दोलन

इस आन्दोलनने भी इस देशमें अच्छा प्रचार पाया है। आँख मूँदकर महात्माजीकी आज्ञाओंका पालन करनेवाले प्रान्तोंमें यह भी एक है। गत १९३० के स्वराज्य-संग्राममें भी आन्ध्रने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। गुंटूरने इस आन्दोलनमें बड़ा भाग लिया था। हज़ारों स्वयंसेवकोंने लाठियाँ खाईं और जेल गये। इन स्वयंसेवकोंमें प्रायः ९५ प्रतिशत गाँवोंके ही थे, और बिना बुलाये ही शामिल हुए थे। इनमें अब्राह्मणोंकी संख्या अधिक थी। स्त्रियोंने भी काफी संख्यामें युद्धमें भाग लिया था। गाँवोंमें कांग्रेसने अपनी मज़बूत धाक बना ली है। गाँवके लोग भी कांग्रेसके कार्यक्रमको समझते हैं। इसका श्रेय 'आन्ध्र-पत्रिका' और 'कृष्ण-पत्रिका' को ही है। इतना प्रचार किसी नेता या व्याख्याताने नहीं किया। कांग्रेसके साथ-ही-साथ खद्दरने भी आन्ध्र-देशका ख़ूब विज्ञापन किया है। आज भी 'आन्ध्र-खादी' अपनी बारीकी तथा मज़बूतीके लिए प्रसिद्ध है। मैं पहले बतला चुका हूँ कि यहाँ पहले भी चर्खेका प्रचार मरा नहीं था, इसीलिए उसके पुनरुद्धारमें देर न लगी, और बारीक सूत बनने लगा। यहाँ जुलाहोंको भी सिखाना नहीं पड़ा था। यहाँके लोगोंने खद्दरको अपनाया भी जल्दी। अब तो खद्दर पहनना यहाँ फैशन हो रहा है। मैंने 'खद्दरकी फेरी' में छोटे-छोटे गाँवोंमें दो-चार घंटोंमें ही दो-दो सौ रुपयेकी खादी बेची है। आन्ध्रसे लाखों रुपयेकी खादी हर साल बाहर जाती है।

समाज-सुधार

समाज-सुधारका जो बीज १९वीं सदीमें बोया गया था, वह इस सदीमें वृक्षका रूप धारण करता जा रहा है। लेकिन उसमें सिर्फ पाश्चात्य सभ्यताकी नकलके सिवा तत्त्व कम दीखता है। यहाँ भी इसी तरहके सुधारकी धारा चली है। पर, हाँ, कुछ आवश्यक सुधार भी हो रहे हैं। बहुतसी जातियाँ जो कुचली हुई थीं, अब उन्नति कर रही हैं। विधवा-

विवाह और सहपंक्ति भोजनका भी ज़ोर-शोर हो रहा है। साथ ही अन्तर्जातीय और अन्तर्प्रान्तीय विवाह भी हो रहे हैं। समाज-सुधारमें गाँवोंमें अब्राह्मण ही आगे बढ़ रहे हैं, परन्तु शहरोंमें ब्राह्मण लोग ही ज़ोर लगा रहे हैं। जाति-पाँति तोड़नेमें होटल बड़ी मदद कर रहे हैं। लोग भी इस बन्धनसे ऊब रहे हैं। स्त्रियाँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त करके आगे बढ़ रही हैं। पर, ये फैशनको प्रधानता दे रही हैं, जो राष्ट्रके लिए घातक है। ब्राह्मण-अब्राह्मण द्वेष भी अब कम हो रहा है। आर्यसमाजका प्रचार बहुत कम है, यद्यपि उसके लिए कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है। हिन्दू-सभाका तो अधिकांश लोग नाम भी नहीं जानते। युवक-संगठनकी रफ्तार तेज नहीं है। उनकी जो एक-दो संस्थाएँ हैं भी, वे भी अपना काम नहीं करतीं। बूढ़ोंसे लड़नेमें ही उनकी शक्ति ख़र्च हो जाती है।

हरिजन और ईसाई

हरिजन तो यहाँ बहुत निकृष्ट समझे जाते हैं। उच्च जातिके लोग इन्हें पशु समझते हैं; उन्हें कूएँपर पानी भरने नहीं देते, ओसारेपर चढ़ने नहीं देते, ख़ास-ख़ास सड़कोंपर चलने नहीं देते—विशेषकर ब्राह्मणोंकी गलियोंमें। पर, इस ज़मानेमें यह बातें कुछ कम हो रही थीं, तब तक गांधीजीने अपना आन्दोलन आरम्भ करके, इस असहिष्णुताके ख़िलाफ जेहाद ही बोल दिया। अब लोग अनेक स्थानोंमें हरिजनोंको पानी भरने दे रहे हैं। पर, इस पापका प्रायश्चित्त इतनेसे ही न होगा।

'हरिजनों' अर्थात् यहाँकी भाषामें 'माला' 'मादिगा' की बात उठानेपर ईसाई मिश्नरियोंको नहीं भूला जा सकता। हिन्दुस्तानमें सबसे ज्यादा सफलता मिश्नरियोंको दक्षिण-भारतमें—ख़ासकर मद्रास प्रेसिडेन्सीमें—ही मिली। उसमें भी किसी-किसी ज़िलेमें तो इनकी बड़ी प्रबलता है। इन ज़िलोंमें गुंटूर (Guntur) भी एक है। प्रायः आन्ध्र-देशकी हरएक 'माल-पल्ली' में दस-पाँच घर ईसाई ज़रूर हो गये हैं। कहीं-कहीं तो साराका सारा टोला ईसाई है। बहुतसे गाँवोंमें तो उच्चकुलके लोग भी प्रलोभनमें पड़कर ईसाई हो गये हैं। छोटे-छोटे गाँवोंमें—जहाँ एक भी पक्का मकान नहीं है, वहाँ भी—विशालकाय चर्च खड़ा अपने घंटेकी आवाज़से आकाशको गुँजा रहा है। हिन्दू-समाजकी इस मूर्खताको देखिये कि अमेरिकासे आये हुए मिश्नरी तो उनके भाइयोंको ईसाई बनाते रहें और समाज उन्हें अपनानेकी जगह उनसे घृणा ही करता रहे। ये ईसाई नाममात्रके ईसाई हैं। वे इतना भी नहीं जानते कि ईसाई और हिन्दू-धर्म क्या है। अभी तक ये अपना पुराना आचार-विचार नहीं छोड़ने। पर, मिशन-स्कूलोंमें पढ़नेवाली उनकी सन्तान भी न छोड़ेगी, यह कौन कह सकता है?

अमेरिकन-मिश्नरियोंने यहाँ बड़ा जाल फैला रखा है। हर जगह अस्पताल, स्कूल और कालेजोंकी भरमार है। मिश्नरियोंमें रोमन-कैथलिक लोगोंका ज्यादा प्रभाव है।

हमें यह माननेमें भी संकोच न होगा कि मिश्नरियोंने इन हरिजनोंको गले लगाकर आदमी बनाया। उन्हें सफाई और सभ्यता सिखलाई। मैं आमने-सामने स्थित हरिजन (हिन्दू) टोलों और ईसाई टोलोंको देख चुका हूँ। यह देखकर मुझे बड़ी लज्जा और खेद हुआ कि हमारे हरिजन भाई बहुत ही गन्दी और पतित अवस्थामें रहते हैं। हरिजन टोली गन्दगीमें नरक है। हमसे तो वे मिश्नरी ही अच्छे जिन्होंने इतनी दूरसे आकर इस पद-दलित मनुष्यताको उठानेका यत्न किया।

हिन्दी-प्रचार

अब मैं उस विषयपर आता हूँ, जिसके लिए मैं यहाँ पाँच वर्षसे काम कर रहा हूँ। यह लिखते हुए मुझे हर्ष होता है कि आन्ध्र-देशमें 'हिन्दी-प्रचार' एक ऐसा मजबूत आन्दोलन बन गया है, जिसकी जड़ काफ़ी नीचे पहुँच चुकी है। पन्द्रह वर्ष पहले इस

देशने हिन्दीका जैसा स्वागत किया था, आज भी उसे उसी प्रेम और उत्साहसे अपनाये हुए है। बहुतसे लोग तो हिन्दीका अत्यधिक प्रचार देखकर यह समझ रहे हैं कि कहीं तेलुगु इससे दब न जाय। पर, सभी समझदार लोग जानते हैं कि इस प्रकारकी आशंका निर्मूल है, क्योंकि हिन्दी किसी भी प्रान्तीय भाषासे प्रतियोगिता नहीं करती। उसका प्रचार राष्ट्रीय एकताकी दृढ़ता तथा देशोद्धारकी भावनासे ही किया जा रहा है। इसलिए वह किसी प्रान्तीय भाषाके विकासमें बाधक न होकर सहायक रूपमें ही उपस्थित होगी।

हिन्दीने अब यहाँके देहातियोंके हृदयमें भी घर करना शुरू किया है। खादी तो वही लोग पहनते हैं, जो कांग्रेसी हैं। पर हिन्दी पढ़नेवाले कांग्रेसी, सरकारी कर्मचारी, लिबरल, क्रिश्चियन सभी हैं। आज आन्ध्र-देश हिन्दी-प्रचारमें मद्रासके अन्य सब प्रान्तोंसे बढ़ा हुआ है। प्रायः डेढ़ सौ केन्द्रोंमें प्रतिवर्ष दो-बार परीक्षाएँ होती हैं और हज़ारोंकी संख्यामें परीक्षार्थी बैठते हैं। आज आन्ध्र-देशमें एक सौके करीब प्रचारक हैं, जिन्हें जनता पचीस-तीस रुपया महीना देती है। पढ़नेवाले भी ७० वर्षके बूढ़ोंसे लेकर ७ वर्षके बच्चे तक हैं। स्त्रियाँ भी अधिकाधिक संख्यामें हिन्दी पढ़ रही हैं। हिन्दी नाटक-मण्डलियोंकी स्थापना भी हो रही है। जब मेरे पास बहुतसे तेलुगु लिखना-पढ़ना न जाननेवाले लोग हिन्दी पढ़ने आते हैं, तो मैं समझने लगता हूँ कि हिन्दीने लोगोंको कितना आकर्षित किया है।

अब तक यह कार्य दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास कर रही है। इसका विशेष श्रेय श्री पं० हरिहर शर्मा (मन्त्री), श्री मो० सत्यनारायण तथा पं० हृषीकेशजी वगैरह सज्जनोंको है। उनका विशेष परिचय 'विशाल भारत'में प्रकाशित हो चुका है। पर आन्ध्र-देशको अब केवल हिन्दी-प्रचार-सभाके कार्यसे सन्तोष नहीं है, वह अपना प्रचार-संगठन अलग कर उसे और भी व्यापक बनाना चाहता है। इस अवसरपर मैं आन्ध्रके उन सर्वमान्य नेताओं, जनता तथा आन्ध्र-हिन्दी-प्रचारक भाइयोंको बधाई दूँगा, जिनके प्रयत्नसे यह सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही बिहार और युक्त-प्रान्तके उन नवयुवकोंको भी धन्यवाद दूँगा, जिन्होंने बड़ी लगनके साथ यहाँ प्रचार शुरू किया था।

इस विषयमें उत्तर-भारतके विद्वानोंसे एक शिकायत है। वह यह कि जब इस प्रदेशमें हिन्दीका क्षेत्र इस तरह विस्तृत हो रहा है, तब भी वे इधर आकर एक बार इस कार्यको देखना नहीं चाहते। क्या यह हिन्दी-प्रेमी और विद्वानोंके लिए तीर्थ-स्थानसे कम महत्त्व रखता है? अगर उत्तरके विद्वान एक-एक बार भी इधरकी यात्रा करें, एकआध महीना समय भी निरीक्षणमें लगावें, यहाँके देहातोंमें घूमें, तो कितना उपकार हो? प्रचारकों और विद्यार्थियोंका कितना उत्साह बढ़े और साथ ही उन्हें कितने नये अनुभवोंका लाभ हो? न मालूम हममें मिश्नरी-स्पिरिट कब आवेगी। आज आन्ध्र-देश प्रेमचन्दजी और श्री मैथिलीशरण गुप्त, द्विवेदीजी और श्री रामनरेश त्रिपाठीसे कितना परिचित है और उन्हें कितना चाहता है—यह वे तभी जान सकते हैं, जब एक बार भी इधर भ्रमण करें। मैं तो प्रेमचन्दजी तथा गुप्तजीको विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि वे अपना थोड़ासा आलस्य छोड़, आन्ध्र-देशका पर्यटन किसी जाड़ेकी ऋतुमें करें—क्योंकि यहाँ जाड़ेसे भी छुट्टी मिल जायगी, एक चादरसे काम चल जायगा—तो उनका स्वागत कांग्रेस-नेताओंसे कम न होगा। क्या वे तथा अन्य हिन्दी-विद्वान् इसपर ध्यान देंगे?

उपसंहार

आन्ध्र-देशसे मुझे स्वाभाविक प्रेम हो गया है। मैंने जीवनके कई सुखद वर्ष यहाँ काटे हैं। मुझे आन्ध्र-देश और बिहारमें कुछ भी फर्क नहीं मालूम पड़ता—यद्यपि बिहार मेरी मातृभूमि है। आन्ध्र-देशने

मुझपर जैसी प्रेमकी वर्षा की है, उससे मैं चिर-बाधित रहूँगा। हिन्दी-विद्यार्थी न होते हुए भी अनेक सज्जनोंने मेरे परिवारके प्रति जो प्रेम-प्रदर्शित किया है, और कर रहे हैं, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। आन्ध्रके लोग सीधे-सादे स्वभावके होते हैं। इसीलिए उन्होंने अपना हृदय खोलकर हमारे परिवारको रख लिया। मेरी स्त्री और बच्चे कभी यह अनुमान नहीं करते कि वे किसी दूसरे प्रान्तके हैं। मेरे बच्चोंकी उतनी फिक्र मुझे नहीं होती, जितनी मेरे मित्रोंको होती है। यह मेरा सौभाग्य और उनकी उदारता है। ऐसा सामाजिक प्रेम मैंने बिहारमें भी प्राप्त नहीं किया था। यह सब मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि पाठक आन्ध्र-देशवालोंके प्रेमपूर्ण स्वभावका कुछ अनुमान कर सकें।

क्षणभंगुर यौवन

श्री गंगाप्रसाद 'प्रेम'

वन-उपवन सब बिहँस रहे थे
नववसन्त के आने से,
कोना-कोना गूँज रहा था
भ्रमरों के मँडराने से।

मलय-समीरण के चुम्बन से
कलियाँ मुसका देती थीं;
नवयौवनकी छटा दिखाकर
सबका मन हर लेती थीं।

कल जो फूली नहीं समाती,
आज गिरीं वे मुरझाकर;
जीवन बीत गया सपना-सा,
किया न कुछ यौवन पाकर।

कहा एकने नवकलिकासे,
'जगमें आ क्या पायेगी;
सुख-सम्पतिकी मृगतृष्णामें
अपना मूल गँवायेगी!'

नव उमंगमें बहती थी वह,
सुनते ही यह ठहर गई;
'इस मधुके चखनेसे मुझको'—
कहा—'बहन! क्यों रोक रही?

यौवन-मदिरा उमड़ रही है
इन आँखों की प्याली में;
तनक इसे छलकाने दे हाँ!
उपवन की हरियाली में।

कहाँ मिलेगा फिर प्रभात यह
और उषाका मुसकाना;
कहाँ मिलेगा मलय-समीरण
और मधुपका मँडराना?'

'पगली! ठहर, निरख मुझको क्षण
मैंने सब-कुछ देखा है,
यौवनका सुख-स्वप्न जाल-सा
केवल धुँधली रेखा है।

वैभवमें नश्वरता रहती,
विलासितामें शान्ति कहाँ?
उठ! चल खोजें उस उपवनको,
रहता सतत वसन्त जहाँ।'

दक्षिण-मेरुके नये यात्री

श्री खगेन्द्रनाथ मित्र
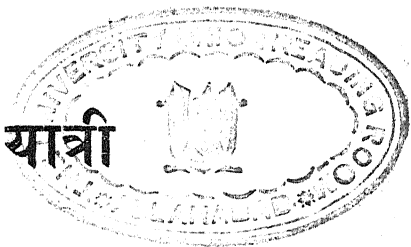
पृथिवीके दो चरम सीमान्त उत्तर और दक्षिण मेरु-प्रदेश बहुत दिनों तक मनुष्यके लिए अज्ञात थे। इन दो प्रदेशोंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए अनेक बार चेष्टाएँ की गईं ; किन्तु वे सफल नहीं हुईं। इन दो प्रदेशोंका प्रभाव पृथिवीकी जलवायुपर बहुत-कुछ पड़ता है—खासकर दक्षिण-मेरुका। लगभग १७५ वर्षकी बात है, दक्षिणी समुद्रमें भ्रमण करते हुए कैप्टेन कुकने कई कारणोंसे यह अनुमान किया था कि पृथिवीके दक्षिण-भागमें एक सुविशाल स्थल-प्रदेश वर्तमान है, जिसके सम्बन्धमें अब तक भी मनुष्य अनभिज्ञ बना है।

इसके बादसे उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक यूरोपके कई यात्रियोंने इन दो प्रदेशोंके आविष्कारकी चेष्टा की ; किन्तु वे सफल प्रयत्न नहीं हुए। इन दोनों प्रदेशोंपर एक गम्भीर रहस्यका आवरण पड़ा ही रहा। लेकिन इससे यूरोपवालोंकी अनुसन्धान-प्रवृत्ति घटनेके बजाय बढ़ती ही गई। इसका परिणाम यह हुआ कि गत तीस वर्षके अन्दर यूरोप और अमेरिकाके कई असीम साहसिक यात्रियोंकी अनुपम चेष्टासे ये दो प्रान्त मनुष्योंके लिए अज्ञात नहीं रह सके।

पियरीकी उत्तर-मेरु-विजय, एमन्डसेन और नोबेलके आकाश-मार्ग द्वारा उत्तर-मेरुकी यात्रा और वहाँसे लौटते समय नोबेलके वायुयानमें भयंकर दुर्घटना होनेकी कहानी लोगोंसे अविदित नहीं है। बहुतसे लोगोंने यह भी पढ़ा होगा कि कैप्टेन स्कॉटने दक्षिण-मेरुके आविष्कारके लिए दो बार वहाँकी यात्रा की थी। पहली बारमें वे विफल हुए। दूसरी बार दक्षिण-मेरुका आविष्कारकर सन् १९१२ की १२ वीं जनवरीको उन्होंने वहाँ बर्फके ऊपर इंग्लैण्डका झंडा आरोपित किया ; किन्तु इस विजय-गौरवसे युक्त होकर वे स्वदेश नहीं लौट सके। मेरु-प्रदेशके मार्गमें ही एक स्थानपर भयंकर तुषारपातके प्रचण्ड शीत और अनाहारके कारण अपने तीन साथियोंके साथ वे मृत्युको प्राप्त हुए। मृत्युके कुछ क्षण पूर्व कैप्टेन स्कॉट अपनी नोटबुकमें अपने हाथसे वहाँका कुछ हाल लिखकर छोड़ गये थे। स्थिरता और धीरताका ऐसा समुज्ज्वल दृष्टान्त संसारमें विरला ही पाया जाता है।

किन्तु दक्षिण-मेरुके प्रथम आविष्कारकका गौरव कैप्टेन स्कॉटको नहीं मिलना चाहिए। उनसे एक वर्ष पहले सन् १९११ के १४ दिसम्बरको एमन्डसेनने दक्षिण-मेरुके चिरतुषारमय प्रदेशमें नारवे देशका राष्ट्रीय झंडा आरोपित किया था। एमन्डसेन द्वारा निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करके ही बादके यात्रीगण वहाँका दुर्गम पथ अतिक्रमणकर मेरु-प्रदेशमें उपस्थित हुए थे। यहीं एक पहाड़पर तुषारस्रोतमें एक "स्लेज" (Sledge—बर्फपर चलनेवाली गाड़ी) के पास, पत्थरोंके ढेरके नीचे, टिनके एक डिब्बेमें, एमन्डसेनकी नोटबुकका एक पृष्ठ अभी उस दिन पाया गया था।

एमन्डसेन और स्कॉटके अभियान-कालमें हवाई-जहाज़ और बेतारके तारका आविष्कार नहीं हुआ था। बर्फके ऊपर चलनेके लिए एस्किमो कुत्ता और 'स्लेज' गाड़ीके सिवा और कोई साधन न था। इसलिए अनेक कष्ट और असुविधाओंको सहन करते हुए उन्होंने आविष्कार-कार्य सम्पन्न किया। एमन्डसेन और स्कॉट तथा उनके पूर्ववर्ती यात्री पियरी, शकल्टन, उदलकिस आदिने, कुछ समयके लिए लौकिक जगतसे सर्वथा विच्छिन्न होकर, इस दुर्गम पथकी यात्रा की थी। उस समय उनकी सफलता या विफलताका समाचार संसारके लोगोंको नहीं मालूम हो सका था। स्कॉट और एमन्डसेनने केवल दक्षिण-मेरुका ही आविष्कार नहीं किया, बल्कि वहाँके कई भाग, पर्वत-श्रेणी, उपत्यका और मार्गका आविष्कार करके उनका नामकरण

भी किया था। इनसे पहले शैकल्टन प्रभृति यात्रियोंने कितने ही पहाड़, खाड़ी, उपसागर और भूमिखंडका पता लगाया था। दक्षिण-मेरुके आविष्कार-गौरवका अधिकारी न होनेपर भी उनके आविष्कारका गौरव कम नहीं है। उनके ही प्रबल उद्यम, त्याग, साहस और अभिज्ञताकी बदौलत परवर्ती यात्रियोंके हृदयमें अनुसन्धानकी प्रबल प्रेरणा उत्पन्न हुई। यहाँ तक कि शैकल्टन दक्षिण-मेरुसे १११ मील दूरवर्ती स्थान तक पहुँचनेमें समर्थ हुए थे।

দক্ষিণমেরুপ্রদেশের আকৃতি
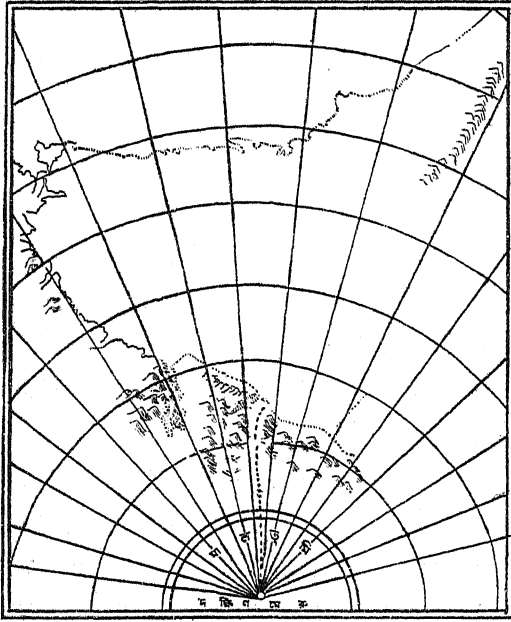
दक्षिण-ध्रुवका नकशा

किन्तु इन सब यात्रियोंके प्रयत्न और चेष्टाके होते हुए भी मेरु-प्रदेशकी लम्बाई-चौड़ाई, वहाँके भूभागकी आकृति, पर्वतोंकी ऊँचाई, तुषार-राशिकी गम्भीरता, समुद्र और स्थलका मिलन-तट, भूगर्भ आदिके सम्बन्धमें अब भी लोगोंको यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ है। आज भी दक्षिण-मेरुका मानचित्र असम्पूर्ण है; वहाँका इतिहास अन्धकाराच्छन्न है। क्या यहाँ भी किसी समय शस्यश्यामल भूमि शोभित थी? क्या यह स्थान भी किसी समय विचित्र अरण्यवासियोंके पदशब्द, चीत्कार, उत्पात, युद्ध और कोलाहलसे मुखरित होता था? इसके बाद क्या एक दिन हिम-युगके सन्धि-कालमें प्रकृतिने घन-तुषार-विस्तार करके इस स्थानमें सहसा पट-परिवर्तन कर दिया था? इस प्रकारके अनेकों प्रश्न मनमें उठते हैं।

स्कॉटके बाद लगभग १६ वर्ष तक दक्षिण-मेरुकी किसीने यात्रा नहीं की और न इस अवधिमें कहीं किसीने इस प्रदेशके अभियानके लिए कोई उद्योग या आयोजन ही किया। इसके बाद सन् १९२८ के २५ अगस्तको फिर एक दल यात्रीने कमांडर बर्डके नेतृत्वमें अमेरिकासे दक्षिण-मेरुकी यात्रा की। इस अभियानमें बहुत ज्यादा खर्च हुआ। अमेरिकाकी कुछ मासिक पत्रिकाओं—खासकर National Geographical Magazine ने इस खर्चका अधिकांश भाग अपने ऊपर लिया था। बर्डकी इस यात्राके प्रति समग्र देशकी सहानुभूति थी। उनके देशवासियोंमें पूर्ण उत्साह और आग्रह-भाव दीख पड़ता था। यात्राकालमें सारे देशमें एक प्रकारकी उत्तेजना फैल गई थी। एक स्वाधीन और सम्पत्तिशाली देशके लिए ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

बर्डने अपने दलबल, खाद्यपदार्थ और अन्यान्य साधनोंको लेकर जिस जहाज़से यात्रा की थी, उसका नाम था "सीटी आफ् न्यूयार्क"। वह जहाज़ तेंतालीस वर्ष पुराना था। आकार-प्रकारमें भी बहुत बड़ा नहीं था। उसका वजन था ५१२ टन। वह लकड़ीका बना हुआ था। जहाज़ नारवेमें तैयार हुआ था, और उसका मालिक भी नारवे देशका रहनेवाला था। भापके बल चलनेवाला तेंतालीस वर्षोंसे आँधी-पानीका सामना करनेवाला यह जहाज़ मेरु-प्रदेशके बर्फीली चट्टानोंसे युक्त समुद्रके वक्षस्थलपर क्षिप्र गतिसे चल रहा था। बर्डने इस जहाज़में कई पाल लगा दिये थे। उन्होंने ही जहाज़का नाम "सीटी आफ् न्यूयार्क" रखा था।

इस जहाज़के साथ एक दिलचस्प बात यह थी कि वर्डके साथ जो रसद गई थी, उसका परिणाम और तादाद दोनों ही बढ़े-चढ़े थे। उसमें से सिर्फ कुछके नाम यहाँ दिये जाते हैं—मझोले आकारके तीन इंजनवाले दो हवाई-जहाज़, मोटर ट्रैक्टर, रेडियो-यंत्र, स्लेज, स्लेजमें जोते जानेवाले ८२ एस्किमो कुत्ते, एक छोटासा पुस्तकालय, एक छोटा-मोटा अस्पताल, लगभग एक सौ मन मदा, मांस, जमा हुआ दूध, चाय, कहवा, अंडा तथा नाना प्रकारके खाद्य-पदार्थ। जहाज़ जितने वजनकी चीज़ोंको ढो सकता था, उसकी अपेक्षा इन सब चीज़ोंका वजन कहीं अधिक था, जिससे समुद्रकी तरंगोंमें—विशेषकर तूफ़ानमें—पड़कर जहाज़के डूबनेकी पूरी सम्भावना थी।

बर्फकी दीवार

यात्रा आरम्भ होनेके चार महीने बाद २५ दिसम्बरको बयालीस यात्रियोंको लेकर जहाज़ निरापद अवस्थामें मेरु-प्रदेशके उपकूलमें उपस्थित हुआ। मेरु-प्रदेशके पास पहुँचनेपर रास्तेमें एक बार बर्फकी भयंकर आँधी उठी। इससे जहाज़की गति कुछ धीमी अवश्य हो गई; किन्तु वह अपने लक्ष्यसे च्युत नहीं हुआ।

जहाँ पहुँचकर जहाज़ ठहरा था, वहाँ मिट्टीके बदले बर्फ थी। वहाँसे मिट्टी कितनी दूर थी, यह कौन बता सकता था? समुद्रका जल जमकर चट्टान बन गया था और उसकी गहराई थी ४० फीट। उसका विस्तार सब समय एक-सा नहीं रहता—कभी मीलों बेशी और कभी मीलों कम हो जाता था। दूरपर कठोर बर्फसे आच्छादित पहाड़ सूर्यकिरणोंके नाना रंगोंसे अभिरंजित हो रहा था। जहाँ तक दृष्टि दौड़ाइये, केवल श्वेत तुषार और नील समुद्रके सिवा और कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होता था। बीच-बीचमें नाना आकारके तुषारपिंड जलमें बह रहे थे। आकाशमें कहीं एक भी पक्षी नहीं दीख पड़ता था। चित्र-विचित्र मेघोंका आडम्बर भी देखने योग्य था। निर्जन तुषार-प्रदेशमें कहीं निस्तब्ध पेंगुइन पक्षीदल

बर्फका एक स्रोत
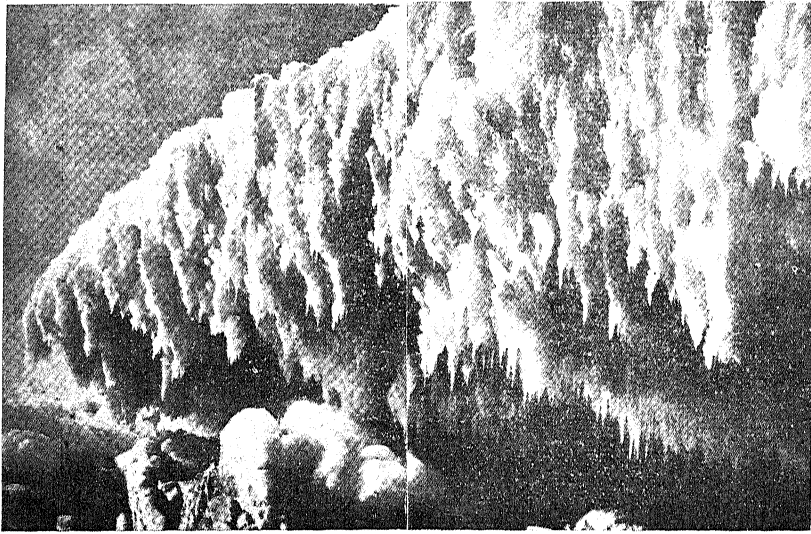
बर्फका विशाल आच्छादन

या पेट्रेल जातिका पक्षी, कहीं दो-एक सील मछली, या समुद्रके किसी कोनेमें तिमि जातिकी दो-चार दानव मछलीके सिवा वहाँ और किसी प्राणीका चिह्न तक नहीं मिलता था। ऐसा मालूम होता है, मानो मृत्युलोकमें आ गये हों।

समुद्र-तटसे कुछ मील दूर एक स्थानमें यात्रियोंने एक छोटासा गाँव बसाया। वहाँ लेबोरेटरी, अस्पताल, जिमनासियम, भंडार, मेस, आफिस, कारखाना, गैरेज, कुत्ता-घर और बेतारका स्टेशन आदि स्थापित किये गये। दीर्घकाल तक इस स्थानमें वास करनेके लिए जिन सुविधाओंकी आवश्यकता थी, उन सबका प्रबन्ध किया गया; किन्तु बिजलीका कोई प्रबन्ध न हो सका। किरासन तेलकी रोशनीसे ही काम चलाया जाता था। यात्रीदलकी यह धारणा थी कि उन्हें तीन वर्ष तक वहाँ रहना होगा। बर्डने इस ग्रामका नाम रखा था— "लिटिल अमेरिका।" इसके निवासियोंमें ४२ मनुष्य और ८२ कुत्ते थे, और पड़ोसी थे पेट्रेल, पेंगुइन, सील और तिमि।

पेंगुइन बड़े ही निरीह और निर्भीक पक्षी होते हैं। मनुष्य या कुत्तेसे वे बिलकुल नहीं डरते। संसारमें एक दानव तिमि (Grampus) को छोड़कर और किसीसे डरना वे जानते ही नहीं। निर्भीक भावसे वे कुत्तोंके साथ मित्रता करते हैं। और इस मित्रताका फल क्या मिलता है? मृत्यु। किन्तु फिर भी इन बेचारोंको होश नहीं होता। पेंगुइनका अंडा और मांस यात्रियोंका एक प्रिय खाद्य था। सील और तिमि भी मनुष्यसे नहीं डरती थीं। कुछ गज़ोंकी दूरीपर ही वे बर्फके ऊपर सोतीं या जलमें मुँह उठाये उतराती रहती थीं। सीलका स्वभाव भी निरीह था। ये दोनों ही—पेंगुइन और सील—मनुष्य और कुत्तोंके प्रिय खाद्य थे।

तिमि जातिकी मछलीको हम दक्षिण-मेरु-प्रदेशका हिंस्र प्राणी कह सकते हैं। मनुष्य या मेरुवासी प्राणियोंकी आहट पाते ही यह शिकारके लिए उन्मत्त हो उठती है। शिकार करते समय यह बड़ी युक्तिसे काम लेती है। जलमें बर्फके ऊपर किसी सील मछलीको शरीर फैलाकर आँख मूँदे हुए, निश्चिन्त भावसे धूप सेवन करते देखकर, तिमि डुबकी लगाकर
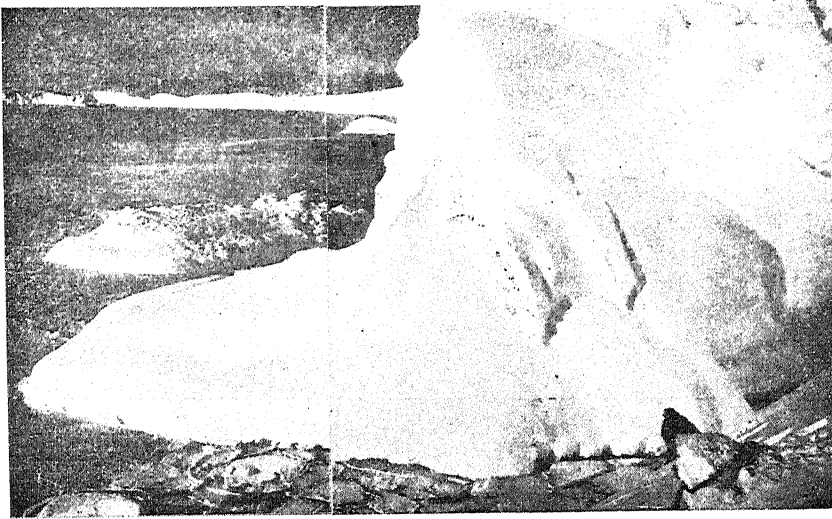
सौ फीट ऊँची बर्फकी चट्टान

बर्फके नीचे चली जाती है। फिर वहाँ अपनी नाकके धक्केसे बर्फके ढेरको तोड़ देती है और सीलको जलमें गिरा देती है। उस समय उस विस्मित और भयविह्वल प्राणीके लिए भागनेका कोई उपाय ही नहीं रह जाता। एक क्षणमें ही वह इस दानव जलचरके उदरस्थ हो जाती है। तिमिके इस दुष्टतापूर्ण व्यवहारके कारण सील और पेंगुइन उसके समीपसे बराबर दूर ही रहनेकी चेष्टा करते हैं। पेंगुइन जलमें उतरनेके पूर्व कुछ समय तक किनारेमें बैठकर कलरव करते हैं। इस प्रकार कलरव करके वे यह जाननेकी चेष्टा करते हैं कि आसपास कोई दानव तिमि है या नहीं। इतनेपर भी जब उन्हें किसी दानव तिमिका सन्धान नहीं मिलता, तो वे अपने दलमें से एक पक्षीको अचानक धक्का देकर जलमें गिरा देते हैं। वहाँ यदि कोई दानव तिमि होती है, तब तो उस बेचारे पक्षीका निस्तार नहीं, मृत्यु निश्चित है। ऐसी अवस्थामें बाक़ी सब पक्षी तत्क्षण वहाँसे खिसक जाते हैं, जलमें नहीं उतरते। कमांडर बर्ड स्वयं एक बार इस दानव तिमिके चंगुलमें फँस गये थे; किन्तु सौभाग्यवश वे बच गये।

दक्षिण-मेरु-प्रदेश मनुष्य-वासके योग्य नहीं है। केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि इन सब प्राणियोंको छोड़कर और कोई भी प्राणी वहाँ अपना वंश-विस्तार नहीं कर सकता। हाँ, एस्किमो जातिके कुत्तोंके सम्बन्धमें निश्चित रूपमें कुछ कहना सहज नहीं है। कम-से-कम तापमानसे भी ५० या ६० डिगरी नीचे, बर्फकी भीषण आँधीमें वे बड़े आरामसे सो जाते हैं, निद्रामें कुछ भी व्याघात नहीं पहुँचता। इसका खास कारण है इस जातिके कुत्तेका स्वाभाविक शारीरिक आच्छादन। मेरु-प्रदेशमें समुद्र-तीरके सिवा और कहीं कोई प्राणी नहीं पाया जाता। चारों ओर केवल अनन्त तुषार-राशि दीख पड़ती है। उसके ऊपरसे होकर घोर गर्जन करती हुई बर्फकी भयंकर आँधी बहती है। चारों ओर गहरा कोहरा छाया रहता है, और समुद्रके बीचसे कभी-कभी भाप उठती हुई दीख पड़ती है। उत्तर-मेरु-प्रदेशके समान यहाँ भी छै मास दिन और छै मास रात रहती है।

यात्रीगण जिस समय यहाँ पहुँचे थे, उस समय वहाँ दिन था। कई महीने तो मेरु-विजयकी तैयारीमें ही बीत गये। इसी समय बर्डने आकाश-मार्गसे
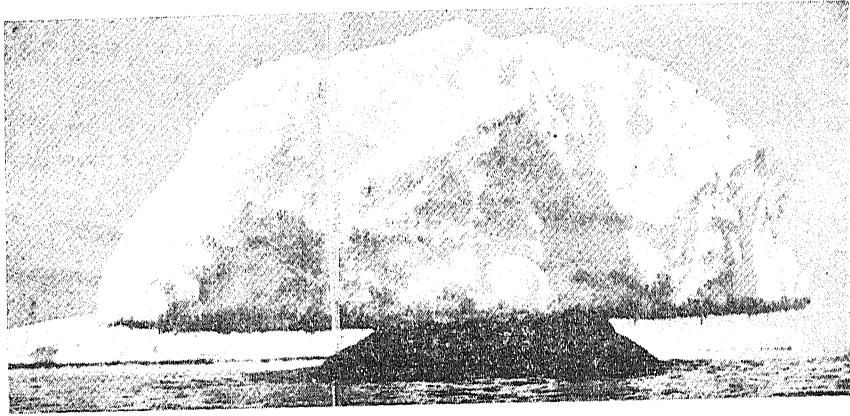
बर्फकी विशाल चट्टान

कई भूखंडों, पर्वतों और खाड़ियोंका पता लगाकर उनका नामकरण किया। इसके बाद छै महीनेकी लम्बी रात शुरू हुई। अप्रेल महीनेमें एक दिन निस्तब्ध दिनान्तमें, असीम तुषार-मंडित मेरु-प्रदेशमें, अपना म्लान किरण-जाल समेटते हुए भुवनभास्कर अस्ताचलगामी हो रहे थे।
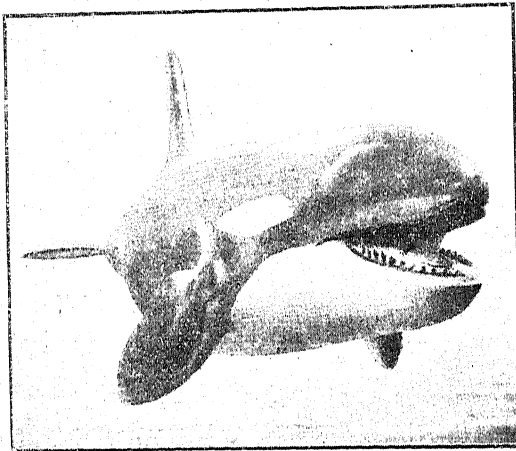
दानवी तिमि मछली

चारों ओर क्षीण अन्धकार छा गया। इसके बाद वह क्रमशः गाढ़ा होने लगा। इसके साथ ही विराट् आकाशके प्रांगणमें मेरुकी अपूर्व छटा प्रस्फुटित हो उठी। यह समय दक्षिण-मेरुका शीतकाल था। उस समयका शीत कल्पनातीत था। धातु-निर्मित किसी वस्तुका स्पर्श करना तक कठिन था। अँगुलीके ज़रा भी छू जानेपर ऐसा मालूम होता था, मानो अंगुली गली जा रही हो।

किन्तु ऐसे समयमें भी यात्रीगण वहाँ घरमें बैठे कथा-कहानीमें, आहार-निद्रामें और अमेरिकासे रेडियो द्वारा गान-वाद्य सुननेमें समय व्यर्थ नहीं खोते थे, बल्कि सोनेका समय कम हो जानेसे वे और भी नाना प्रकारके काम किया करते थे। इसी समय दूरके एक पहाड़के ऊपर उनका एक वायुयान आँधीके कारण गिरकर चूर-चूर हो गया। सौभाग्यवश कोई हताहत नहीं हुआ। आँधीका वेग प्रति घंटा १२० मील था।

शीतकालमें सर्दीसे रक्षा पानेके लिए 'लिटिल अमेरिका'के निवासियोंने एक अद्भुत उपायका अवलम्बन किया था। अपने विभिन्न झोंपड़ोंमें जानेके लिए बर्फके नीचे सुरंग खोदकर एक मार्ग बनाया था। इस मार्गसे होकर टार्चलाइटकी सहायतासे यात्री लोग आया-जाया करते थे। कुत्तोंने भी तुषारके अन्दर समाधि ग्रहण की थी। लगातार बर्फ गिरते रहनेसे समस्त भूमिका रूप-रंग बिलकुल बदल गया था। यहाँ तक कि घरोंके अन्दर भी छतमें पाला जम गया था।

इसके बाद अगस्त महीनेके अन्तिम भाग (२० अगस्त) में एक दिन सुदीर्घ रात्रिका अवसान
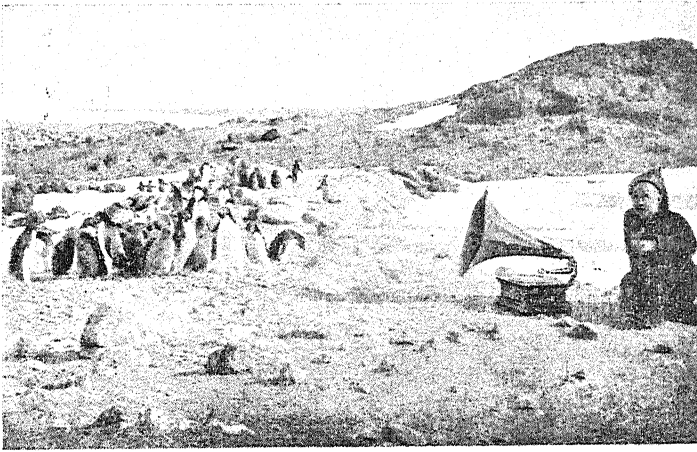
ग्रामोफोनके संगीतपर मुग्ध पेंगुइनका झुंड

हुआ और उत्तरमें सूर्योदय हुआ। यात्रीगण उदात्त कंठसे सूर्य भगवानकी उपासना करने लगे। फिर पूर्ण उद्यमके साथ कार्य होने लगा। कई महीनेके अन्दर तैयारी पूरी हुई। यात्रीगण कई दलोंमें विभक्त हो गये। कुछ लोग ग्राममें ही रह गये, कुछ गाँव छोड़कर सैकड़ों मील दूर भयंकर तुषारके बीच स्लेज गाड़ी लेकर गये और कुछ लोग वायुयानसे दक्षिण-मेरु गये। अन्तिम दलमें स्वयं कैप्टेन बर्ड भी थे। इनमें प्रत्येक दलके साथ रेडियोका सम्बन्ध लगा हुआ था। सुदूर अमेरिकाके साथ भी बेतारके तार द्वारा बातचीत चलती रहती थी। कौन कितनी दूर गया था, मार्गकी अवस्था क्या थी, वहाँका तापमान कितना था, इत्यादि बातोंका परस्पर आदान-प्रदान होता रहता था।

बर्डने घंटेमें प्रायः एक सौ मीलके वेगसे दीर्घ पथ अतिक्रमण करके तुषारमंडित उच्च पर्वत और तुषाराच्छन्न विशाल उपत्यकाको पार करते हुए सन १९२९की २९वीं नवम्बरको दक्षिण-मेरुकी मालभूमिसे २५०० फीटकी ऊँचाईसे अमेरिकाका राष्ट्रीय झंडा नीचे गिराया। इस झंडेके साथ उनके प्रिय मित्रके समाधि-स्तम्भका एक प्रस्तरखण्ड भी बँधा हुआ था। अपने इसी मित्रके साथ एकान्तमें बैठकर बर्डने दक्षिण-मेरु विजय करनेकी कल्पना की थी। कर्नल लिंडेनबर्गके बाद इन्हींके साथ वायुयान द्वारा ऐटलांटिक समुद्र पार करके वे फ्रांस पहुँचे थे।

मेरु-प्रदेशकी ओर वायुयान द्वारा उड़ते समय बर्डनके वायुयानका इंजन एक बार सहसा बन्द हो गया, दो बार वायुयानको भारी बोझके कारण नीचे उतरना पड़ा। ऐसी अवस्थामें एक बार उनके मनमें अत्यन्त निराशा उत्पन्न हुई। "हाय! क्या यह अभियान निष्फल हो गया! इस मेरु-प्रदेशमें मृत्यु निश्चित है?" किन्तु अन्तमें इस बुद्धिमान, धैर्यशाली और साहसी

बर्फसे ढका हुआ पहाड़

व्यक्तिकी विजय हुई, और उसका आनन विजय-गौरवसे उत्फुल्ल हो उठा।

बर्ड चौदह महीने तक मेरु-प्रदेशमें रहे। इस अवधिमें उनका कोई साथी विशेष रूपसे अस्वस्थ नहीं हुआ। सब लोग स्वस्थ, सबल और क्रियाशील बने रहे। हाँ, लौटते समय भयंकर तुषारपातके कारण सब लोगोंको कष्ट सहना पड़ा; किन्तु उन बातों तथा इस अभियानके विषयमें और कई विषयोंका इस छोटेसे लेखमें उल्लेख नहीं किया गया है।

भग्नदूत*

श्री श्यामसुन्दर खत्री

'भग्नदूत' श्री 'अज्ञेय'जीकी गद्य और पद्यकी फुटकर रचनाओंका एक छोटासा संग्रह है। मुखपृष्ठपर 'भग्नदूत'का इकरंगा चित्र है, जिसमें वह एक हाथमें झंडा लिये हुए और ज़मीनपर एक घुटना टेके हुए अर्द्धोपविष्ट मुद्रामें चित्रित किया गया है। भीतर श्रीयुत 'अज्ञेय' जीका एक चित्र है। कविने यह पुस्तक अपने पूज्य पितृदेवको समर्पण की है। आरम्भमें 'भग्नदूत'के प्रति कविका आदेश है—

> "भग्नदूत! उनके आगे
> नतशिर हो आँखें लेना मीच—
> कविकी असफलताका
> जीवित-चित्र वहीं देना तुम खींच!"

इस आडम्बरशून्य (unceremoneous) आदेश-वाक्यपर दृष्टि पड़ते ही कविकी सरलता और सौजन्यपर चित्त आकृष्ट हो गया, और यह जाननेकी उत्कंठा हुई कि आखिर यह 'भग्नदूत' कौनसा सन्देश लेकर अवतारित हुआ है। पुस्तक साद्यन्त पाठकर हमें ज्ञात हुआ कि 'भग्नदूत' एक उदीयमान कवि-हृदयका भव्य सन्देश लेकर उपस्थित हुआ है, जिसकी नवीनता पवित्रता, उपयोगिता और सत्यताका क़ायल प्रत्येक सहृदय होगा। श्रीयुत 'अज्ञेय'जीमें प्रतिभा है, और बड़ी ही सुन्दर प्रतिभा है। कवियशः प्रार्थी होकर उन्होंने काव्य-रचना नहीं की है, बल्कि उनकी रचनाओंको देखकर यही विश्वास होता है कि ये उनकी हृत्तंत्रीकी सच्ची झंकार हैं। उनके गद्य और पद्य— दोनों ही प्रकारके प्यालोंमें कवित्व-रस झलक रहा है। पुस्तकमें चौहत्तर विभिन्न शीर्षक हैं। इनमें अधिकांशमें अनन्य प्रणयकी निर्झरिणी प्रवाहित हो रही है। शेष अन्यान्य विषय-सम्बन्धी हैं। कविने आनुषंगिक रूपसे सौन्दर्य, प्रकृति, जीवनकी गतिविधि, देशकी अवस्था, कर्ममार्ग, स्वानुभूति, आत्मतत्त्वान्वेषण इत्यादि विषयोंपर, अपने दृष्टिकोणके अनुसार, हलका किन्तु सुन्दर प्रकाश डाला है। कविने जो कुछ पर्यवेक्षण किया है, उससे तथ्य संग्रह किया है। उनकी प्रत्येक रचना अपना एक निजी सन्देश रखती है। उनमें काफ़ी मौलिकता है। कल्पनाकुशलता और भाव-प्रवणताका परिचय पद-पदपर प्राप्त होता है।

'भग्नदूत'में कविकी सूक्ष्म दृष्टि, गहरी चिन्ताशीलता और विचारगाम्भीर्य यद्यपि यथेष्ट परिमाणमें परिलक्षित होते हैं, तथापि भावोच्छ्वास (sentiment) और कोमल हृदयकी सहज उत्तेजना (emotion) की ही प्रधानता विशेषरूपसे दृष्टिगोचर होती है। उनकी

---

* रचयिता, श्री 'अज्ञेय'; प्रकाशक, श्रीयुत बी० एच० वात्स्यायन, बी० एस-सी०, किंग एडवार्ड मेडिकल कालेज, लाहौर; पृष्ठ-संख्या १५१; मूल्य बारह आने; प्राप्ति-स्थान, हिन्दी-भवन, अनारकली, लाहौर।

सारी चिन्ताशीलता और दार्शनिकता उनके भावोछ्वासके आगे नतमस्तक हो जाती हैं। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि वे असफल प्रेमी प्रतीत होते हैं। उनका प्रेम सफल नहीं हुआ—यह उनकी कविता मुक्तकण्ठसे स्वीकार करती है। सम्भवत: इसीलिए उनकी रचनाओंमें प्राय: सर्वत्र कोई अव्यक्त वेदना, कोई छिपी हुई टीस, कोई यन्त्रणाजनित अशान्ति ध्वनित होती है। साथ ही साथ घोर नैराश्य और विवशताके भाव भी अभिव्यंजित होते हैं; परन्तु इतना होनेपर भी सबसे बढ़कर मार्केकी जो बात इन रचनाओंमें पाई जाती है, वह है कविकी आत्मोत्सर्गकी भावना। यह सर्वत्र परिव्याप्त है। घोर निराशामें भी कविको आशाकी क्षीण रेखा परिलक्षित होती है। परिणामकी चिन्ता नहीं। इष्ट साधनके मार्गमें आत्मोत्सर्ग-भर कर देना उनका काम है। उनकी यह भावना अचल अटल प्रतीत होती है।

'भग्नदूत'की विचारधारा मर्मस्पर्शिनी है। सीधी हृदयमें उतर जानेकी क्षमता रखती है। एकाध स्थलपर जिस कठोर सत्यका प्रतिपादन किया गया है, उसे देखकर हृदय सिहर उठता है। कहीं-कहीं ऐसे प्रकरण भी हैं, जिन्हें पढ़कर सिर पकड़कर विचार-सागरमें गोते लगानेके लिए विवश हो जाना पड़ता है।

इन रचनाओंमें ऊपरी सिंगार-पटारकी न्यूनता दिखाई पड़ सकती है; परन्तु कविता यदि हृदयकी वस्तु है, तो उस हृदयके दर्शन इन रचनाओंमें सम्यक् रूपसे होते हैं। बात सीधी-सादी ही क्यों न हो, यदि वह सच्ची हो और हृदयके अन्तस्तल प्रदेशसे निकली हो, तो उसका जो महत्व और प्रभाव होगा, वह कृत्रिम अलंकारमयी वाग्मिताका कदापि नहीं हो सकता।

वर्तमान हिन्दी-काव्य-जगतमें निरंकुशता और उच्छ्रंखलताका साम्राज्य-सा हो रहा है। अलंकार-संहति, भाव-व्यंजना, रस-निरूपण इत्यादिकी तो बात ही जाने दीजिए, भाषा, व्याकरण और पिंगलके साधारण नियम तक ठोकरोंसे ठुकराये जा रहे हैं। हम प्राचीन परिपाटीके पक्षपाती नहीं, बल्कि नवीन उत्क्रान्तिका हम हृदयसे स्वागत करते हैं; परन्तु जैसी मनमानी-घरजानी आजकल मची हुई है, वह हमें मान्य नहीं। आख़िर कुछ तो नियमबद्धता चाहिए। वर्तमान काव्य-जगतके वातावरणका कुछ भी प्रभाव 'अज्ञेय'जीकी रचनापर न पड़ा हो, सो बात नहीं। 'भग्नदूत' में यतिभंग, अनियमित छन्द यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। एकाध शब्द-प्रयोग भी विचारणीय है; परन्तु इन नगण्य बातोंके लिए उनपर उँगली उठाना अन्याय होगा। जिन महानुभावोंकी रचनामें कुछ तत्त्व हो, वे यदि अपनी रुचि-विशेषके वशीभूत होकर कुछ निर्धारित नियमोंका उल्लंघन करें भी, तो उनका यह कार्य उन्हें शोभा दे सकता है। क्रोध तो उन महापुरुषोंपर आता है, जो दुनिया-भरका कूड़ा-कर्कट बटोरकर साहित्यके मत्थे मढ़ा करते हैं, और दोहाई देते फिरते हैं युग-स्वातन्त्र्यकी!

इस छोटेसे परिचयमें 'भग्नदूत'की कविताओंकी आलोचनात्मक व्याख्या सम्भव नहीं। अतएव हम उसके कुछ अवतरण यहाँ उद्धृत करते हैं। विज्ञ पाठक हमारे कथनकी सत्यताका अन्दाज़ा स्वयं लगावें। कविताका उद्भव कैसे हुआ? कविका कथन है—

"मानस-मरुमें व्यथा-स्रोत
स्मृतियाँ ला भर-भर देता था,
वर्तमान के सूनेपन को
भूत छवित कर देता था।
वातावलियों से ताड़ित हो
लहरें भटकी फिरती थीं
कविके विस्तृत हृदय-क्षेत्रमें
नृत्य हिलोरें करती थीं।
चिर-संचय से धीरे-धीरे
कवि-मानस भी भर आया
किन्तु न फूट निकलनेको पथ
भाव-तरंगिनि ने पाया।

फिर भी कूलोंसे पागल-सा
छलक गया वह पारावार—
'कविता ! कविता !!' कहता
उसमें बहा जा रहा सब संसार !"

कविने दार्शनिकताको स्पर्श अवश्य किया ; परन्तु भावोच्छ्वासमें वह स्वयं बह गया। प्रकारान्तरसे कवि भावोच्छ्वासको ही कविताके उद्भवका कारण मानता है। इस बातको उसने कैसे सुन्दर ढंगसे व्यक्त किया है !

पंकज-सम्पुटमें फँसे हुए मधुपको सम्बोधनकर कवि कहता है—

"सन्ध्याको पंकजमें तू अलि !
बद्ध हुआ तो रोता क्यों है ?
निशि आएगी आने दे, मधुके
स्वादनको खोता क्यों है ?
इस सुरभित बन्धनसे आकर
मुक्त करेगी तुझको ऊषा—
पर तब झड़ जाएगी अविकच—
कमलकलीकी मृदु मंजूषा !
क्यों विकल्प करता है प्रेमी !
तू प्रतिमाके आगे आकर ?
क्यों भावीकी चिन्तामें तू
भूला है रसनिधिको पाकर ?
आभासे प्रदीपकी मनमें
उसकी मंजुल मूर्ति बसा ले—
जाने फिर किन संचित स्मृतियों—
को ऊषा खण्डित कर डाले !"

वास्तवमें जिससे प्रेम है, उसे पाकर विषाद कैसा ? उसके बन्धनमें ही तो मुक्ति है। रसनिधिका रसास्वादन न कर कलकी चिन्ता करना कहाँकी बुद्धिमानी है ? और फिर इसीका क्या भरोसा कि कल क्या हो ! सुरभित बन्धन, मृदु मंजूषा इत्यादि पद कितने साभिप्राय हैं !

भ्रमरपर अन्य कवियोंने भी अन्योक्तियाँ कही हैं। इस सम्बन्धमें कविवर श्री मैथिलीशरणजी गुप्तकी एक रचना बड़ी सुन्दर है। 'साकेत' में एक स्थलपर उन्होंने लिखा है—

"भ्रमरी ! इस मोहन मानसके
बस मादक हैं रस-भाव सभी,
मधु पीकर और मदान्ध न हो,
उड़ जा, बस है अब क्षेम तभी।
पड़ जाय न पंकज-बन्धनमें,
निशि यद्यपि है कुछ दूर अभी,
दिन देख नहीं सकते सविशेष
किसी जनका सुख-भोग कभी !',

गुप्तजीकी यह चेतावनी अपना दार्शनिक मूल्य रखती है, और "हा हन्त ! हन्त !! नलिनी गजमुज्जहार" की याद दिलाती है। परन्तु श्री 'अज्ञेय' जी ठीक इसके विपरीत परामर्श देते हैं। कारण स्पष्ट है। वे भावुकतावादी (Sentimentlist) हैं ; अतः दार्शनिकताको वहीं तक प्रश्रय देते हैं, जहाँ तक उनका भावोच्छ्वास (Sentiment) अक्षुण्ण रह सके।

एक बात और हो सकती है। गुप्तजीकी 'भ्रमरी'के लिए भाग निकलनेका अभी अवसर है, इसलिए उसे वैसा उपदेश देना उचित है ; पर 'अज्ञेय'जीका 'अलि' पंकज-बन्धनमें फँस चुका है ; अब उसे उपदेशकी अपेक्षा प्रथमोक्त प्रोत्साहनकी ही अधिक आवश्यकता भी है।

'वन्य-पुष्पकी कामना' भी अवलोकनीय है—

"कहाँ देवोंके उन्नत भाल—
कहाँ मेरा यह घोर लघुत्व।
कहाँ सुर-बालाके अवतंस—
कहाँ वन-कण्टकसे बन्धुत्व !

× × ×

चाह यदि हो सकती सम्पूर्ण,
यही रो उठते याचक प्राण—
मिटा लूँ यह जीवनकी प्यास
कामना ही से पा लूँ त्राण !"

कामनासे ही त्राण पानेकी कामना ! कितनी सारगर्भित बात है !

किसी प्रवासित बन्दीके पास उसकी बहन रक्षा-बन्धनके अवसरपर राखी भेजती है। उस राखीको पाकर उसकी सोई स्मृतियाँ जाग उठती हैं, और उसे व्याकुल कर देती हैं। उसकी मानसिक अवस्थाका बड़ा ही करुण चित्र कविने खींचा है। कुछ पंक्तियाँ ये हैं--

"कठिन हथकड़ी जिस करको
करती थी केवल मण्डित,
वह ही इस कोमल बन्धनसे
क्यों हो उठता कम्पित ?
जाने क्या-क्या रक्तकाण्ड
देखे थे जिन आँखोंसे—
लख रक्षाको क्यों आँसू
भर-भर आते हैं उनमें ?

बहन, कभी इस बन्धनकी
दृढ़ताको जान सकोगी ?
'तरल तन्तुमें बँधे विश्व'का
क्या रहस्य समझोगी ?
केवल स्नेह-भावसे भेजी—
थी रक्षा यह तुमने—
पर निःसीम शून्यकी संज्ञा
आन जगाई इसने !"

भीषण रक्तकाण्ड देखकर भी जो हृदय टससे मस नहीं हुआ, वह राखीको देखकर पानी-पानी हो गया। स्नेहकी ऐसी ही महिमा है ! किस सहृदयका हृदय इन पंक्तियोंको पढ़कर उमड़ न उठेगा !

कविने अपने और अपने प्रेम-पात्रके सम्बन्धपर कहा है—

"जैसा बिखर गिरे पत्तोंका
विजन विपिन वीथीसे प्रेम—
वैसा ही है तेरे-मेरे—
प्रणय-मार्गका चित्रित नेम।

भग्न चाहकी धूली-सा मैं
चरणोंमें हूँ बिछ जाता—
किन्तु समीरणके हर झोंके
में तू हँसता उड़ जाता।

× × ×

'तू है मेरे लिए नहीं' यह
तत्व लिया है मैंने जान—
फिर भी हृदय तरंगोंमें है
भरा हुआ तेरा ही ध्यान !"

अनन्य प्रणय इसीका नाम है। कवि जानता है कि उसके लिए इष्ट-प्राप्ति असम्भव है; परन्तु इस निराशासे उसके प्रणयमें बिन्दुमात्र न्यूनता नहीं आने पाती, बल्कि उसमें और भी अधिक दृढ़ता ही आती है !

'असीम प्रणयकी तृष्णा' शीर्षक कवितामें कविने दरसाया है कि वह सीमित पार्थिव प्रेमका पुजारी नहीं; उसे असीम प्रणयकी आकांक्षा है। इष्टदेवके प्रति एकान्त निष्ठाके सिवा उसे अपने प्रत्येक कृत्यमें अपदार्थता अनुभूत होती है—

"भूल मुझे जाती हैं अपने
जीवनकी सब कृतियाँ—
कविता, कला, विभा, प्रतिभा—
रह जातीं फीकी स्मृतियाँ।
अब तक जो कुछ कर पाया हूँ,
तृणवत् उड़ जाता है—
लघुताकी संज्ञाका सागर
उमड़-उमड़ आता है—

तुम, केवल तुम—दिव्य दीप्तिसे,
भर जाते हो शिरा-शिरामें,
तुम ही तनमें, तुम ही मनमें,
व्याप्त हुए ज्यों दामिनि घनमें,
तुम, ज्यों धमनीमें जीवन-रस—
तुम, ज्यों किरणोंमें आलोक !"

ऐसी परिस्थितिमें वह इष्टदेवको कौन-सी वस्तु भेंट करे ? वह कहता है—

"क्या दूँ, देव ! तुम्हारी इस
विपुला विभुताको मैं उपहार ?
मैं, जो क्षुद्रोंमें भी क्षुद्र ;
तुम्हें, जो प्रभुताके आगार !"

× × ×

अन्तमें वह अत्यन्त कातर होकर पुकार उठता है—

"विश्वदेव ! यदि एक बार,
पाकर तेरी दया अपार,
हो उन्मत्त, भुला संसार—
मैं ही विकलित, कम्पित होकर—
नश्वरताकी संज्ञा खोकर—
हँसकर, गाकर, चुप हो, रोकर—
क्षणभर झंकृत हो—विलीन हो—
होता तुझ से एकाकार !
पाकर तेरी दया अपार,
हे विश्वनाथ ! बस एक बार !"

पार्थक्य मेटकर असीमसे एकाकार हो जानेमें ही कविकी असीम प्रणयकी तृष्णा सन्निहित है।

खण्डित स्मृतिमें कवि कहता है—

"तुझे खोजती कहाँ-कहाँपर
भटकी मारी - मारी,
पर निष्ठुर तू पास न आया
मैं रो - रोकर हारी !
आज लगा जब मेरा पिंजर
उसी व्यथा से जलने
तब तू आया उसी राखको
पैरों तले कुचलने।"

हाय ! "वह" आया भी तो जलेको और जलाने ही आया।

सैनिकके प्रति कविके उद्गार बड़े चुभते हुए हैं—

"रणक्षेत्र जानेसे पहले
सैनिक ! जी-भर रो लो !
अन्तर की कातरता को
आँखोंके जलसे धो लो !
मत ले जाओ साथ जली
पीड़ाकी सूनी साँसें,
मत पैरोंका बोझ बढ़ाओ
लेकर दबी उसाँसें।
वहाँ ? वहाँपर केवल तुमको
लड़-लड़ मरना होगा,
गिरते भी औरोंके पथसे
हट कर पड़ना होगा !

× × ×

एक लपेट—धधकती ज्वाला—
धूमकेतु फिर काला ;
शोणित, स्वेद, कीचसे भर
जायेगा जीवन - प्याला।
अभी, अभी पावन बूँदोंसे
हृदय - पटलको धो लो !
तोड़ो सेतुबन्ध आँखोंके
सैनिक ! जी-भर रो लो !"

'आँखोंके सेतुबन्धु'में नवीनता है।

अपनी असफलतापर कविकी स्वीकृति है—

"कहाँ ? देव ! कितना भी चाहूँ,
नहीं दिखा वह पाता हूँ—
रोकर, हँसकर, दाँत पीसकर
असफल ही रह जाता हूँ !
दिया हृदय तो तुमने प्रेमी
जिसमें भर लूँ रुदन अथाह—
खोले नयन-द्वार तो भी क्या
बह पावे वह प्रलय प्रवाह !
गायनकी यतिमें ही तुम कर
लेना कविताका निर्माण—
रुद्ध गीतमें भी पा लेना
भाव - पयोनिधिका परिमाण !
विश्वनाथ ! ठुकरा मेरे कल्पना—
जगत् को मत देना—
तेरी सेवामें अर्पित है
यही जान अपना लेना !"

इस कातरोक्तिका लक्ष्य क्या केवल काव्य-रचना ही है ? हम तो समझते हैं, इसका इंगित जीवनके समस्त उद्यमोंपर है।

कविका आत्म-विश्वास निम्न-लिखित पंक्तियोंमें दर्शनीय है—

"दूर है वह भविष्य, अति दूर !
भाग्य रे, निष्ठुर क्रूर !

× × ×

आशा वह ! वास्तवमें क्या है ? वह मरीचिका !
प्राणोंको तड़पानेवाली, वह विभीषिका !
वश होता तो मायाका कर
देता शीशा चूर !
पिघलेंगे कब पत्थर ? लोहा पानी होगा ?
जीवनकी इस निविड़ रात्रिमें दिन भी होगा ?
अन्तर्पट पर कोई लिख-लिख
जाता 'अरे ज़रूर !'
क्या है ? क्रूर कालकी है गति तो भी क्या है ?
मैंने भी तो आज मृत्युको साथ लिया है !
प्राणोंकी है होड़ देख लें—
कौन निकलता शूर !"

कवि जानता है कि उसकी इष्ट-प्राप्ति टेढ़ी खीर है ; परन्तु उसके लिए वह प्राणोंकी बाज़ी लगाने तकको उद्यत है। यही नहीं, उसे अपने उद्देशकी सिद्धिपर पूरा-पूरा विश्वास है और इसके लिए वह क्रूर कालकी गतिको भी 'चैलेंज' देता है।

'लक्षण' नामक कवितामें कवि कहता है—

"आँसूसे भरनेपर आँखें
और चमकने लगती हैं।
सुरभित हो उठता समीर
जब कलियाँ झड़ने लगती हैं।

बढ़ जाता है सीमाओंसे
जब तेरा यह मादक हास,
समझ तुरत जाता हूँ मैं—
'अब आया समय विदाका पास।"

निर्वाणोन्मुख दीप-शिखा समधिक उद्दीप्त हो उठती है। वियोगके पूर्व आकर्षण पराकाष्ठाको पहुँच जाता है !

पद्यके इतने ही उदाहरण अलम होंगे। अब ज़रा कविके गद्य-काव्यकी छटाका दिग्दर्शन भी कीजिए—

बहुरूपिया

"संन्यासी कहता है, संसारका सार त्यागमें ही है। त्याग ही धर्म है, त्याग ही ध्येय है।

पुजारी कहता है, प्रतिमाकी उपासनामें ही हमारा निस्तार है, उसे छोड़कर हमें शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

युवक कहता है, प्रेमके बिना संसार फीका है। जिसने प्रेम नहीं किया, उसका जीवन ही निष्फल है।

वृद्ध कहता है, यह प्रेम मरीचिका है। इस स्वप्नको छोड़कर हमें संयमकी ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

गृहस्थ कहता है, प्रवृत्ति-पथ निवृत्ति-पथसे उत्तम है, हमें उसीका अनुगमन करना चाहिए। कर्म ही हमारा एकमात्र आधार है।

सबके हृदयमें बसा हुआ स्वार्थ हँसता है और कहता है, लोग मेरे इतने रूपोंकी उपासना करते हैं ; किन्तु फिर भी मुझे कोई नहीं पहचान पाया !"

कविकी इस तत्त्वदर्शिताका क़ायल कौन नहीं होगा !

चेतावनी

"तुम गौरवर्ण हो, हम श्यामल हैं। किन्तु इस वर्ण-भेदसे गर्वान्वित न होना।

यह तो मानते हैं कि श्वेत बादल काले बादलोंसे उच्चतर होते हैं। किन्तु क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि वायुके हलके-से झोंकेसे भी श्वेत बादल अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, क्योंकि उनमें जलका अभाव है।

ये काले बादल सौन्दर्यविहीन हैं, बेडौल भी हैं; किन्तु इनमें स्थिरता तो है, ये वायुके आगे छिन्न तो नहीं होते !

तुम वर्ण श्रेष्ठ तो हो; किन्तु स्मरण रखना, इस श्यामलताकी ओटमें भीषण विद्युज्योति है, इस स्थूलताके पीछे प्रलयका घोर प्रवाह छिपा हुआ है !

गौरतनु, सोचो और सँभलो !''

यह चेतावनी कितनी कवित्वपूर्ण है !

आतंक

''मैं बन्दी हूँ; किन्तु मेरे बन्धनोंकी झंकार मानो कह रही है, 'तू स्वतन्त्र है, यह बन्धन तेरी स्वतन्त्रताके साक्षी हैं।'

तुम स्वतन्त्र हो; किन्तु भयभीत होकर कह रहे हो, 'इसे बन्दी रखे बिना हमारा निस्तार नहीं है !' ''

विशेष टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। किसका किसपर आतंक है, बिलकुल स्पष्ट है।

प्रवृत्ति-पथ

''तुम्हारी नगरी जल रही है, तुम खड़े देख रहे हो। किस आशामें खड़े हो?

वर्षा? वर्षा इस आगको नहीं बुझा सकती। और वर्षा भी कहाँ? इस ज्वलन्त तापके आगे मेघ कहाँ टिक सकेंगे? क्षण-भर ही में वे वाष्प होकर उड़ जायेंगे, आग उसी प्रकार धधकती ही रह जायगी !

वह? दु:स्वप्न है, दुराशा है! जिसे तुम कृष्ण वर्ण मेघ समझकर प्रसन्न हो रहे हो, जिससे तुम घोर वृष्टिकी आशा कर रहे हो, वह मेघ नहीं है, वह तुम्हारी जलती नगरीसे उठता हुआ काला धुआँ है। उसमें बिजलीकी चमक नहीं, बल्कि दीनोंकी आह प्रदीप्त हो रही है, शीतल जलकण नहीं, बल्कि उत्तप्त अश्रुकणोंका प्रवाह थमा हुआ है !

इस व्यर्थ आशाको छोड़ो, उठो, प्रवृत्ति-पथपर आओ !''

निष्क्रिय परमुखापेक्षी इस आह्वानको सुनेंगे?

ऊपरके अवतरणोंसे यह स्पष्ट है कि 'भग्नदूत' एक भव्यभविभूषित कवि-हृदयकी कोमल रचना है। भविष्यमें हमारे साहित्यको श्री अज्ञेयजीसे बहुत-कुछ आशा है। भगवानसे हमारी प्रार्थना है कि वे श्री अज्ञेयजीको अधिकाधिक साहित्य-सेवा करनेका सुयोग प्रदान करें।
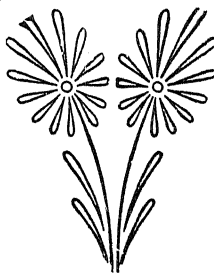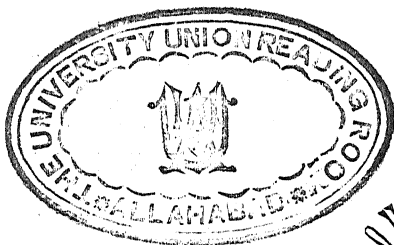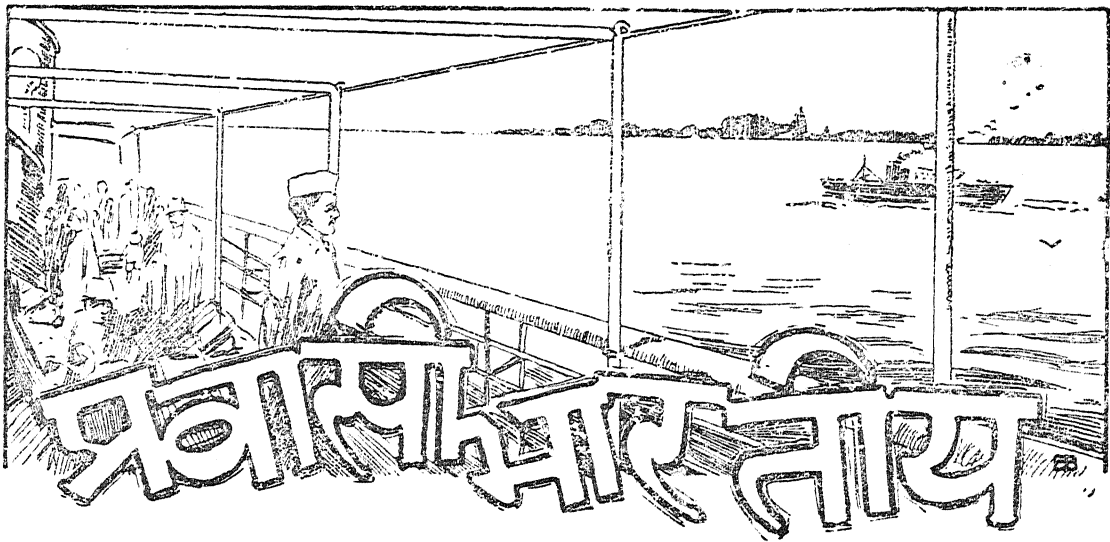
उपनिवेशोंसे लौटे हुए भारतीय

श्री पी० बी० सिंहसे बातचीत

"माफ़ कीजिये, मैंने आपको जगा दिया। मुझे आपसे मिलना ज़रूरी था।" रातको पौने दस बजे आकर एक महानुभावने मुझे भरी नींदसे जगाकर ये शब्द कहे। मैंने कहा—"कोई बात नहीं, कहिये, आपकी क्या सेवा करूँ?" दरबनके मि० पी० बी० सिंह मेरे सामने कुर्सीपर बैठ गये। मि० सिंहका जन्म दक्षिण-अफ्रिकामें हुआ था। आप 'कालोनियल बार्न' हैं, और इन 'कालोनियल बार्न' आदमियोंसे मैं बहुत डरता हूँ। भाई भवानीदयालजीका मुझे बहुत कटु अनुभव है। जब वे किसी कामको हाथमें ले लेते हैं, तो फिर न तो वे स्वयं विश्राम करते हैं, और न अपने साथी-संगियोंको ही विश्राम करने देते हैं! ये लोग पुनर्जन्ममें बिलकुल विश्वास नहीं करते। भवानीदयालजीको हमने बहुत बार समझाया कि सब काम एक ही जन्ममें तो ख़तम नहीं कर डालना है, दूसरे जन्मके लिए भी तो कुछ उठा रखिये; ऐसी जल्दी क्यों कर रहे हैं? पर उनका मर्ज़ लाइलाज है।

श्री पी० बी० सिंहजी भी उसी कोटिके हैं, नहीं तो भला सोते हुए आदमीको क्यों जगाते! मि० सिंह नेटाल इंडियन टेनिस ऐसोसियेशनके प्रेसिडेन्ट हैं, और दक्षिण-अफ्रिकाके इंडियन फुटबाल ऐसोसियेशनके प्रतिनिधि बनकर भारत आये थे। जब उन्होंने मुझसे कहा कि वे 'कालोनियल बार्न ऐण्ड सेटलर्स इंडियन ऐसोसियेशन' की कौंसिलके मेम्बर भी हैं और उक्त संस्थाकी ओरसे लौटे हुए प्रवासी भारतीयोंकी जाँच करेंगे, तो मुझे हर्ष हुआ; पर इस विषयपर बातचीत

नेटाल-प्रवासी मि० पी० बी० सिंह

करनेके पहले मैंने उनसे अपने हृदयके भाव उक्त नवजात संस्थाके विषयमें कह देना मुनासिब समझा, और साथ ही कुँवर महाराजसिंहपर जो अन्यायपूर्ण आक्षेप उस संस्थाके जिम्मेवार मेम्बरोंने किये हैं, उनपर अपना क्षोभ भी प्रकट किया। रातके सवा ग्यारह बजे

तक बातचीत होती रही। गरमागरम बहस हुई। कुछ उन्होंने कहा और हमने सुना, और कुछ हमने कहा, सो उन्होंने सुना। पर उस बातचीतका ज़िक्र यहाँ नहीं किया जायगा। दो दिन बाद मैंने उनके होटलपर जाकर उनसे इंटरव्यू लिया, जिसका सार यहाँ दिया जाता है।

मि० सिह स्वयं टेनिसके बड़े अच्छे खिलाड़ी हैं। मैंने उनसे कुँवर महाराजसिंहके विषयमें पूछा कि वे टेनिस कैसा खेलते हैं? मि० सिंहने कहा—"पहले वे बहुत अच्छा खेलते थे, और अब भी उनको हराना आसान काम नहीं है।" मि० पी० बी० सिंहमें फुर्ती है और उत्साह है। उनके पिता हाथरसके निकटके किसी ग्रामके हैं। यदि मि० सिंहका मुक़ाबला उक्त ज़िलेके किसी युवकसे किया जाय, तो दोनोंमें ज़मीन-आसमानका अन्तर दीख पड़ेगा। कूपमंडूक और ह्वेल मछलीमें जो अन्तर है, वही अन्तर साधारण भारतीय विद्यार्थियों और औपनिवेशिक विद्यार्थियोंमें है। दोनोंकी मनोवृत्ति ही भिन्न-भिन्न है।

नेटालसे लौटा हुआ गुलजर और उसका परिवार। जब यह परिवार अफ्रिकासे आया था, तब इसमें अठारह प्राणी थे। अब केवल पाँच बाक़ी हैं। बाक़ी सब भूख और दरिद्रताकी भेंट हो गये!

प्रश्न—आपके ऐसोसियेशनने आपको क्या आदेश दिया?

उत्तर—मेरे ऐसोसियेशनकी यह आज्ञा है कि मैं यहाँ दक्षिण-अफ्रिकासे लौटे हुए भारतीयोंकी दशाकी जाँच करूँ। जबसे वापस भेजनेकी (Repatriation) नीतिका प्रारम्भ हुआ है, तबसे तेरह हज़ार आदमी दक्षिण-अफ्रिकासे यहाँ लौट चुके हैं, और समय-समयपर इन लोगोंकी दुर्दशाकी हृदय-विदारक कथाएँ हमारे कानों तक पहुँचती रही हैं। सन् १९३० में स्वामी भवानीदयालजीने इन लोगोंकी हालत अपनी आँखों देखी थी, और मई सन् १९३१ में अपनी रिपोर्ट भी प्रकाशित की थी। इस रिपोर्टमें अनेक सच्ची घटनाओं, पक्के प्रमाणों तथा अंकों द्वारा यह बात सिद्ध की गई थी कि उपनिवेशोंसे भारतीयोंको वापस भेजनेकी नीति उनके लिए कितनी विघातक सिद्ध हुई है। लेकिन तबसे अब तक यह Repatriation निरन्तर जारी है, और दक्षिण-

प्रश्न—कहिये, आप कब भारतमें पधारे और तबसे अब तक क्या काम करते रहे?

उत्तर—मैं भारतवर्षमें १८ नवम्बरको पहुँचा। पहले तो मैं अपने पिताजीसे, जो कराचीमें हैं, मिला, और उसके बादसे उत्तर-भारतके मुख्य-मुख्य नगरोंकी यात्रा कर रहा हूँ। कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद और बनारसकी यात्रा मैंने इस उद्देश्यसे की है कि यहाँपर एक 'आल इंडिया फुटबाल ऐसोसियेशन' की स्थापना कराऊँ। यहाँ कलकत्तेमें मैं 'इंडियन फुटबाल ऐसोसियेशन' के अधिकारियोंसे मिल चुका हूँ। सन् १९३१ में हम लोगोंने इन्हें दक्षिण-अफ्रिकाके लिए निमन्त्रित किया था; पर वे अभी तक वहाँ नहीं पधार सके। अब मुझे आशा है कि आगामी जूनमें यहाँकी फुटबाल टीम दक्षिण-अफ्रिकाकी यात्रा कर सकेगी।

अफ्रिकामें उसके रोकनेके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया। जब मैं यहाँ भारतको आ रहा था, तो मेरे ऐसोसियेशनने इन लोगोंकी दशा अपनी आँखोंसे देखनेका काम मेरे सुपुर्द कर दिया।

मदरासमें अफ्रिकासे लौटे हुए प्रवासी। जिनके पास न रहनेका ठिकाना है, और न काम तथा भोजनका

प्रश्न—आपने यहाँ कलकत्तेमें लौटे हुए औपनिवेशिक भारतीयोंकी दशा देखी?

उत्तर—हाँ, मैं मटियाबुर्ज़ गया था, और जो कुछ मैंने वहाँ देखा, उसका वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा गन्दा मुहल्ला मैंने ज़िन्दगीमें शायद ही कभी देखा हो। किसी भी म्यूनिसिपैलिटीके लिए, जिसके अधीन इस प्रकारका मुहल्ला हो, यह शर्मकी बात है। मटियाबुर्ज़में बसे हुए प्रवासी भारतीयोंको देखकर मैं इस परिणामपर पहुँचा कि रिपैट्रियेशनकी नीति वास्तवमें अत्यन्त भयंकर भूल थी, और अगर हम लोगोंको यह पता होता कि आगे चलकर इसके ये दुष्परिणाम होंगे, तो हम एक भी आदमीको दक्षिण-अफ्रिकासे यहाँ न आने देते। मैं कितने ही आदमियोंको तो, जिनसे मैं अफ्रिकामें भलीभाँति परिचित था, पहचान भी नहीं सका! वहाँ वे कितने हृष्ट-पुष्ट थे, और यहाँ आकर उनमें सिर्फ हड्डियाँ ही बाक़ी हैं। यहाँ भारतमें जिस प्रकार उन्हें भूखों मरना पड़ा है, और नाना प्रकारके कष्ट उठाने पड़े हैं, उसीका यह परिणाम हुआ है। ये लोग मुझे पहचान गये और आँखोंमें आँसू भरकर तथा हाथ जोड़कर मुझसे कहते थे "किसी तरह हमें नेटाल ले चलिये!" स्त्रियाँ और बच्चे मेरे सामने आकर खड़े हो गये। उनके शरीरपर उनकी लज्जाको ढकने लायक कपड़े भी नहीं थे! क्या कभी उन लोगोने, जिन्होंने प्रवासी भारतीयोंको वापस लौटानेकी नीतिका समर्थन किया था, इस दृश्यकी कल्पना भी की थी कि उनकी स्कीम आगे चलकर क्या-क्या रंग लायेगी? मेरे सामने जो करुणाजनक दृश्य उपस्थित था, वह कोई नवीन दृश्य नहीं था। इस प्रकारके दृश्य सन् १९२० से नित्य प्रति भारतीय जनताकी आँखोंके सामने आते रहे हैं। मैं तो वहाँ बिना सूचना दिये गया था, इसलिए यह

कलकत्तेके पास अकरा नामक स्थानमें प्रवासी भारतीयोंका एक दल

भी नहीं कहा जा सकता कि उन लोगोंने मुझपर प्रभाव डालनेके लिए ही यह नाटक रचा हो। जिम्मेदार आदमियोंने—मि० सी० एफ० ऐराड्रूज़, मि० एफ० ई० जेम्स (भूतपूर्व सेक्रेटरी, वाइ० एम० सी० ए० कलकत्ता, आजकल एम० एल० ए०), मि० एस० ए० वाइज़ (सेक्रेटरी, इम्पीरियल इंडियन सिटीजनशिप ऐसोसियेशन), मि० एच० के० मुकर्जी (सेक्रेटरी, वाई० एम० सी० ए०, कालेज ब्राँच) इत्यादिने—इन
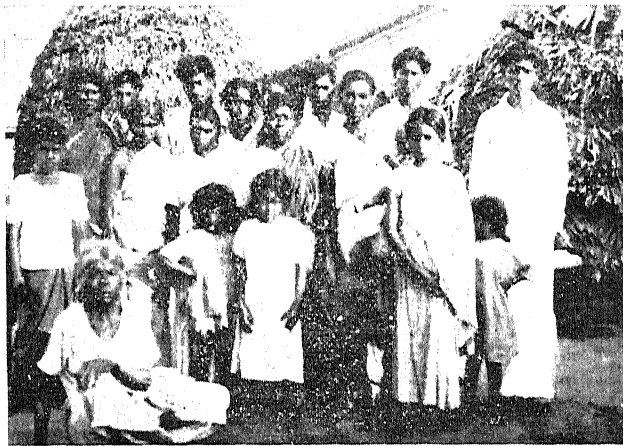
मदरासमें अफ्रिकासे लौटे हुए प्रवासियोंका एक दल

लौटे हुए प्रवासी भारतीयोंकी दशाकी जाँच की थी। खेद है कि इन महानुभावोंकी रिपोर्टोंके हिन्दी तथा तैमिल अनुवाद दक्षिण-अफ्रिकामें छपवाकर नहीं बँटवाये गये। मुझे विश्वास है कि अगर ऐसा किया जाता, तो बहुतसे आदमी इन भयंकर आपत्तिसे बच गये होते।

प्रश्न—अब तक लौटे हुए प्रवासी भारतीयोंके लिए जो कुछ कार्य हुआ है, उसके विषयमें यहाँ आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—अब तक जो कार्य यहाँपर हुआ है, वह व्यवस्थित ढंगपर नहीं हुआ। यदि प्रारम्भसे ही 'इंडियन ऐमीग्रान्ट फ्रैराडली सर्विस कमेटी' के ढंगकी कोई संस्था, जिसमें सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों प्रकारके मेम्बर होते, इस कार्यको अपने हाथमें ले लेती और इन लौटे हुए भारतीयोंकी दुर्दशाको दूर करनेके लिए निरन्तर उद्योग होता रहता, तब यह प्रश्न इतना भयंकर रूप धारण न करता। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, इन अभागे आदमियोंके दुःख दूर करनेके लिए अभी तक डटकर प्रयत्न नहीं किया गया। अब भी यदि भारत-सरकार चाहे, तो बहुत-कुछ काम कर सकती है। इन लौटे हुए भारतीयोंकी सहायता करना भारत-सरकारका कर्त्तव्य है। इसके लिए वह बाध्य है। रिपैट्रियेशनकी स्कीमको स्वीकार करते समय भारत-सरकारने इन लौटे हुए भारतीयोंकी देखभाल करनेका वादा किया था। हम लोगोंके—दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी भारतीयोंके—हृदयमें यह भावना दृढ़ होती जाती है कि भारत-सरकार अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो गई है, उसने अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं किया; और यदि अब भी भारत-सरकारने इस प्रश्नको अपने हाथमें नहीं लिया, तो प्रवासी भारतीयोंकी उपर्युक्त भावना बिलकुल दृढ़ हो जायगी, और फिर पारस्परिक सहयोग ही असम्भव हो जायगा। अभी उस दिन 'माडर्न रिव्यू' आफिससे बाहर आते हुए मुझे कितने ही प्रवासी भारतीय मिले। वे लोग करुणाजनक स्वरसे सहायताके लिए भीख माँग रहे थे। उनके चेहरेसे यह टपक पड़ता था कि उन्हें खानेको नहीं मिलता। उनके शरीरका ढाँचा निकल आया था, और वे बीमार-से प्रतीत होते थे।

प्रश्न—तो फिर उनके लिए क्या किया जाय?

उत्तर—मेरी समझमें यह बात भलीभाँति आ गई है कि यह कार्य एक आदमीका नहीं है। कोई सार्वजनिक संस्था ही इस प्रश्नको हल कर सकती है। यंग मेन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन, रामकृष्ण-मिशन, आर्यसमाज इत्यादि सुसंगठित संस्थाएँ ही इस कामको

उठा सकती हैं। इस प्रसंगमें मैं मि० ऐच० के० मुकर्जीका नाम लिये बिना नहीं रह सकता। उन्होंने पिछले बारह-तेरह वर्षसे लौटे हुए प्रवासी भारतीयोंके लिए सर्वथा निस्स्वार्थ-भावसे जो कार्य किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। मि० सी० एफ० ऐराड्रूज़ तथा मि० मुकर्जीके प्रयत्नसे अभी कुछ महीनों तक बिड़ला ब्रदर्सने इन लौटे हुए भाइयोंकी सहायता की थी; लेकिन इस प्रकारकी सहायता चिरकाल तक जारी नहीं रखी जा सकती और न इससे यह प्रश्न हल ही हो सकता है। आवश्यकता तो इस बातकी है कि भारत-सरकार इनकी मददके लिए एक कमेटी कलकत्तेमें क़ायम करे, जो इनके लिए काम तलाश करे और इनके स्वास्थ्य इत्यादिकी भी चिन्ता करे।

मि० पी० बी० सिंह ये बातचीत कर रहे थे और मैं दिलमें सोच रहा था कि भारतीय प्रवाससे जहाँ हानियाँ हुई हैं, वहाँ कुछ लाभ भी हुए हैं। यदि मि० सिंहके पिता भारतमें ही रहते, तो मि० सिंह मामूली क्लार्कीका काम करते हुए और कलम घिसते हुए कहीं दीख पड़ते। हमारा तो यह दृढ़विश्वास है कि उपनिवेशोंमें उत्पन्न हुए भारतीय हम लोगोंसे कई दर्जे अच्छे हैं। उनमें जीवन है, उत्साह है, अन्ध-विश्वासोंसे वे कोसों दूर हैं और उनका दृष्टिकोण हम लोगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है।

पीताम्बर

श्रीराम शर्मा

असाढ़का महीना था। पहली भलके सम्पूर्ण लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। पछवाका ज़ोर रुका और पुरवाका जीवन-स्रोत वह चला। तीतरपाँखी बदली उठ रही थी; पर गाँवके किसानोंके हृदयोंमें उमंगकी हिलोर न उठी। प्रत्येककी आकृतिपर वेदनाकी घटा छाई हुई थी। बात यह थी कि आसपासके गाँवोंमें पशुओंके रोगकी महामारी फैल रही थी। ख़ूनके दस्त—पेटकी चेचक (Rinderpest)—की बीमारीके प्रकोपके कारण हाहाकार मचा हुआ था। भाड़में जैसे चने भुनते हैं, वैसे ही रोज़ दस-बीस जानवर—गाय, भैंस और बैल—चट-पट मर रहे थे। अधिकांश जानवर बीमार थे। दो-चार ही अछूत थे। 'घरके सौ व्यक्ति मर जायँ, पर एक कमानेवाला—सबको रोज़ी देनेवाला न मरे भगवान'—की करुणध्वनि घरों और छप्परोंको पारकर मेरी कुटिया तक आ रही थी, मानो मेरी भर्त्सना की जा रही थी कि वह शिक्षा और अख़बारनवीसी किस कामकी, जो आड़े समयमें गाँववालोंकी एकमात्र सम्पत्ति—बैलोंको बीमारीसे नहीं बचा सकती।

× × ×

"पंडितजी, अब कैसें गुजर होइगी। बधिया हती सो काल्हि मर गई। रुक्का (Pronote) करिकैं बधिया लई। आज भैंसि बीमार ऐ। साँझ सवेरैं बियान हार है।"—कातर दृष्टिसे और भर्राई आवाज़में गोविन्दा चमारने कहा।

"भई, क्या करूँ। कुछ समझमें नहीं आता। पशुओंकी साधारण दवा-दारू मैं जानता हूँ। उससे काम नहीं चलता। रहे-बचे जानवरोंके टीका लगवा दिया है; पर बीमार जानवरोंको कौन अच्छा करे? डाक्टर उस दिन साफ़ जवाब दे गया और कह गया कि पीताम्बरसे अधिक मैं नहीं जानता। सो दवा करते-करते और भाग-दौड़ करते बेचारा बीमार पड़ गया। सैकड़ों जानवरोंको उसने बचाया है और

अब वह स्वयं खाट गोड़ रहा है। कल ही उसके लिए मैंने दवा भेजी है।"—सान्त्वना देते हुए मैंने कहा।

गोविन्दा—"परि पीतू आइ सकत ऐं। कलि मैंने चौंतरा (चबूतरा) पै बैठे देखे।"

मैं—"हाँ, तबीयत ठीक है ; पर चल-फिर नहीं सकता। और फिर एकके यहाँ जानेसे चारों ओरसे दैया-तोबा मचैगी कि हमारे पौहे भी देखो। इसलिए मैंने कहला भेजा है कि जब तक अच्छे न हो जाओ, कहीं न जाओ।"

गोविन्दा (लम्बी साँस लेकर)—"सो तौ ठीक ऐ ; परि मेरी भैंस मरि गई तौ फिर हिल्लौ नाऐं। लरिका-बारे सिब बिलिख-बिलिखकैं मारि जांगे।"

मैं—अच्छा जा। कुछ करूँगा।

× × ×

"अरे भैया, बीमारी बड़ी करी ऐ। भैंसि गाभिन ऐ। कामु तौ तौ होइ जो भैंसिऊ बचि जाय और तौय (गर्भपात) ऊ न जाय।"—पीताम्बरने गम्भीरतासे कहा।

"हाँ, हकीम कामु तौ तबई बनै।"—मैंने अनुमोदन करते हुए कहा।

पीताम्बरने खेतोंसे कुछ जड़ी-बूटी उखाड़ी और दो आनेकी औषधि पासके बाज़ारसे मँगाकर दी। भैंस अच्छी हो गई और ठीक समयपर उसने बच्चा दिया। गोविन्दाका उद्धार हो गया।

× × ×

पीताम्बर कुम्हार उन तपस्वी, ईमानदार, परहित-कातर और परोपकारी महानुभावोंमें से था, जो निष्काम सेवाको मानव-जीवनकी भित्ति समझते हैं। वे सेवा करते हैं किसीको दिखाने और नाम करनेके लिए नहीं, वरन् इसलिए कि सेवा करना उनका स्वभाव है—कोयलकी भाँति, जो दूसरेके लिए नहीं, वरन अपने लिए ही कंटकित होकर मधुर आलाप करती है।

पीताम्बर ज़ातका कुम्हार, स्वभावका ब्राह्मण और पेशेसे किसान था। मेरा पड़ोसी—पासके गाँव अंगदपुरका रहनेवाला—नैष्ठिक पीताम्बर पशु-चिकित्साका आचार्य था। पशुओंका कोई भी रोग ऐसा न था, जिसकी अचूक औषधि वह न जानता हो। और औषधि भी कैसी ? दस-बीस रुपयेकी विलायतसे सील होकर आनेवाली दवा ? तोबा कीजिए। गाँवके किस आदमीमें इतना बूता है, जो जानवरोंकी औषधिमें दस-बीस रुपये ख़र्च कर सके ? आदमियोंके इलाजके लिए तो रुपया दो रुपया उनके पास है नहीं, जानवरोंके लिए इतना ख़र्च कहाँसे और कैसे करें ? पीताम्बरकी क़ीमतीसे क़ीमती दवाका मूल्य चार आनेसे अधिक न होता था। साधारणसी बीमारियोंके लिए, जिनके लिए अंगरेज़ी दवाकी क़ीमत चार-चार रुपया होती, पीताम्बरकी दवाका मूल्य कुछ नहीं था। कुछ नहींके मानी यह कि वह खेतोंसे ही जड़ी-बूटी उखाड़कर और घरसे हल्दी और फिटकरी मँगाकर अचूक दवा बना देता था।

चारों ओर बीसों मील दूरसे उसके पास आदमी आते थे। बीमारीके दिनोंमें तो वह परेशान रहता था। घरपर परोसी थाली रखी है। उसकी स्त्री बाट जोह रही है। हाथ धोकर पीताम्बर चौकेमें जाना चाहता था कि घिघियाते आदमी आ गये कि पासके ही गाँवमें बैल बीमार है। खेत भरनेको पड़े हैं। जुताई आधी रही है। बैल अच्छे न हुए तो सर्वनाश हो जायगा।

पीताम्बर झल्ला जाता, उसकी स्त्री बड़बड़ाती कि रोटी बनी रखी है। जानवरोंके इलाजकी ढोलकी गलेमें डाल ली है। अपने यहाँ कोई बीमार होता है, तब कोई पूछने भी नहीं आता। किसी प्रकार पेटमें रोटी डाल पीताम्बर पासके गाँवमें दवा देने जाता।

पीताम्बर सफल किसान था। दिन-रात चींटीकी भाँति लगा रहता और जब लोग अपने पशुओंको दिखानेके लिए पीताम्बरको बुलाने आते, तब वह आगन्तुकोंमें से किसीको अपने स्थानमें काम करने

छोड़ देता और पशुओंकी चिकित्सा करने चला जाता ।

नंगे पैर, मैले-कुचैले कपड़े पहने इस सीधे-साधे देहातीको देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह अपने विषयका आचार्य होगा—असाधारण आचार्य। हज़ारों पशुओंका उसने इलाज किया—दो-एक हज़ारका नहीं, दसों हज़ारका, और जितने पशुओंपर उसने हाथ डाला, उनमें से आठ ही मरे थे !

बात यह थी कि उसके हाथमें यश था। यशकी बातको वैज्ञानिक न मानें ; पर जो पावन भावनाओंमें विश्वास रखते हैं और जिनका ख़याल है कि प्रेमकी चितवन, माँके आशीर्वाद और विरहकी तड़पनसे हृदयपर आघात होता है, वे समझ सकते हैं कि औषधि देते समय पवित्र हृदयके आशीर्वादके भी कुछ मानी होते हैं। ऐसा व्यक्ति दवा देते समय प्रभुसे प्रार्थना करता है कि भगवन्, आपकी बनाई औषधिको मैं आपके ही बनाये जीवको दे रहा हूँ। मैं तो कोई चीज़ नहीं, आपकी अनुकम्पासे रोगी अच्छा होगा और मुझे भी बार-बार न दौड़ना पड़ेगा—ऐसी ही भावनासे पीताम्बर औषधि देता था।

ऐसे सफल चिकित्सककी आमदनी क्या होगी ? प्रति पशु यदि वह चार आना भी फ़ीस लेता, तो वह दस-बीस हज़ार कमा लेता ; पर पीताम्बर बड़प्पनकी कसौटी रुपया न मानता था। उसका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दुओंके पुराने आदर्शके अनुसार औषधि करनेके लिए कुछ लेना घोर पाप—जघन्य व्यभिचार है। शिक्षा, आयुर्वेद और संगीत स्वार्थके लिए नहीं, वरन परमार्थके लिए हैं। किसीका भला करके कुछ लेना वह पाप समझता था। जिसके यहाँ इलाजको जाता, खाना तो दूर, पानी तक न पीता। दो-चार बार पूछे जानेपर कि हकीम फ़ीस क्यों नहीं लेते ? हकीम पीताम्बर बाल-स्वभावजन्य सरलतासे उत्तर देता कि पंडितजी, कुछ लेनेसे औषधिका असर न रहेगा और मेरे गुरुकी आत्माको कष्ट होगा।

हकीम पीताम्बरकी इन सरल बातोंकी फ़िलासफ़ी कितनी गूढ़ है। उसके मतसे संग्रह करनेकी—ग़रीबोंसे फ़ीस लेकर संग्रह करनेकी—लालसा भयंकर, दूषित और पापमयी थी, और दूसरोंकी निःस्वार्थ सेवा धर्मका परम पद था। नाम और प्रकाशकी उसे चाह न थी।

"मुझ-सा कोई गुमनाम ज़मानेमें न होगा,
गुम हो वह नगीं जिसपै खुदे नाम हमारा।"

× × ×

दो-चार बार बुलाकर मैंने उसकी निष्काम सेवाकी प्रशंसा की, तो वह मुसकराकर कहने लगा कि इसमें कौनसी तारीफ़की बात है। दूसरोंको दवा देना तो ठीक वैसा ही है, जैसे कोई अपने पेट भरनेके लिए रोटी खा ले। दवा देनेसे अपनी आत्माको सन्तोष मिलता है।

कई बार कोशिश की कि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति वर्ष दो वर्ष साथ रहकर हकीम पीताम्बरसे उस विद्याको सीख ले ; पर कोई व्यक्ति नहीं मिला। एक दिन मैंने ही दीक्षा लेनी चाही और उसकी औषधियों, जड़ी-बूटियों और रोगोंके नाम लिखनेकी ठानी ; पर पीताम्बर स्वयं सब जड़ी-बूटियोंके नाम नहीं जानता था। उन्हें पहचानता भर था। उसके गुरु एक साधूने उसे पशु-चिकित्सा सिखाई थी और जड़ी-बूटियोंको पहचानवा दिया था। इस कठिनाईके कारण हकीम पीताम्बरसे मैं कुछ न लिख सका। दो-चार बार उसके फोटो लेनेका भी प्रबन्ध किया ; पर कोई फोटोग्राफ़र न मिला।

अभी उस दिन अपने नये रोलेफ्लेक्स कैमेरेके आनेपर हकीम पीताम्बरको मैंने बुलाया और फोटो लिया, तथा उसकी मुलाक़ात अपने एक साहित्यिक मित्रसे कराई। यह बात गत २७ जनवरीकी है।

× × ×

गत पहली मार्चको कलकत्तेसे लौटकर शिकोहाबाद स्टेशनपर पहुँचा और गाँवके लिए इक्का किया। अपने आदमीसे मार्गमें मालूम हुआ कि

हकीम पीताम्बरकी तबीयत बहुत ख़राब है। इक्का लेकर सीधा हकीम पीताम्बरके यहाँ पहुँचा—रास्ता ही अंगदपुरमें होकर था। मुझे देखकर पीताम्बरके मुरझाये चेहरेपर उल्लासकी रेखाएँ अंकित हो गईं। उसकी आँखें कहती थीं कि बीमारीमें उसका भी कोई धनीधोरी है। कितनी ख़ामख़याली थी हकीमकी! सैकड़ों बार अपने और दूसरोंके पशुओंके लिए मैंने हकीम पीताम्बरको मौक़े-बेमौक़े बुलाया था। सान्त्वना देकर मैंने कहा—"हकीम घबराओ नहीं। आज तो रात है। कल ही तुम्हारे लिए फ़िरोज़ाबादसे डाक्टर जीवारामजीको बुला दूँगा।"

"बस अबके बचा लो पंडितजी"—अवरुद्ध कंठसे पीताम्बरने कहा। आँसुओंको रोकते हुए और ध्यान बटानेके लिए मैंने पीताम्बरको उसका फोटो निकालकर दिया। देखकर वह प्रसन्न हो गया। घर आकर मैंने 'नक्स वोमिका' (Nux Vomica 6×) की दो खुराकें भेजी और डाक्टर जीवारामको पत्र लिखा।

अगले दिन प्रातःकाल ही नौकरीपर जाना था—हाज़िरी थी। पर मनमें मैं लज्जित था कि नौकरीकी ख़ातिर हकीम पीताम्बरको छोड़कर मैं क्यों जा रहा था! स्वार्थ और अशिष्टताके अतिरिक्त और क्या कहा जाय?

तीन दिन बाद मालूम हुआ कि हकीम पीताम्बर मेरी दवाके खानेके बाद ही बैलगाड़ीमें लेटकर आधी रातके समय—फ़िरोज़ाबाद गया। पेटमें भयंकर पीड़ा थी। १०४ डिग्रीका ज्वर था। जाड़ा था और तेज़ हवा चल रही थी। जीवारामजीने ऐनीमासे दस्त कराया। पीताम्बरको कुछ चैन मिला। घरको लौट आया, और अगले दिन उसकी बीमारी अंतड़ियोंमें रोक (Intestinal obstruction) ने इतना ज़ोर पकड़ा कि हकीम चल बसा! उस बेचारेका ठीक इलाज भी न हो पाया!

× × ×

आज हकीम पीताम्बर नहीं है। और उसके साथ उसकी अनुपम विद्या भी चली गई। अख़बारी दुनियाके आदमी उसे नहीं जानते, और वे डाक्टर उसे क्या समझ सकते हैं, जो रोगीको मुफ़्त औषधि देकर उससे वोटके इच्छुक होते हैं और उससे वोट न मिलनेपर अपनी करनीका उलाहना देते हैं; पर हकीम पीताम्बर बहुत बड़ा आदमी था—कोरे धुआँधार और मेज़तोड़ भाषण देनेवाले अनेक कार्यकर्त्ताओंसे बहुत ऊँचा। उसकी चरण-रजसे वे अपनी आत्माको उन्नत कर सकते थे।

हकीम पीताम्बरपर मुझे नाज़ था। इंग्लैण्ड और अमेरिकाके मित्रोंसे मैं उसका परिचय कराकर कहता था कि मेरे गाँवोंके आसपास सरकार पशुओंके लिए कुछ न करे। हमारा हकीम बरक़रार चाहिए। ग्राम-सेवामें मैं उसे अपनेसे बढ़कर मानता था। उसपर मुझे भरोसा था। ग्राम-सेवाके वृहत काममें हकीम पीताम्बरपर बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं। बड़े-बड़े मंसूबे बाँधे थे; पर क्या किया जाय।

"हमने जो कोई शाख़ चुनी शाख़ जल गई।"
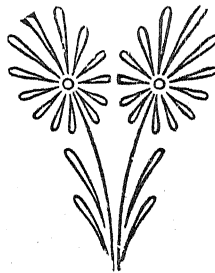
चित्र-चयन

धूल और धुआँ दूर करो

इस वैज्ञानिक ज़मानेमें भी बड़े शहरोंकी हवामें धूल-धुएँने इस्तेमरारी कब्जा कर रखा है। जितना ज्यादा बड़ा शहर है, उसके वायुमंडलमें उतना ही ज्यादा

वायु-परीक्षाकी प्रयोगशाला

एक कारखाना, जहाँ कोयला जलता है, फिर भी जहाँकी हवा धुएंसे मुक्त रखी जाती है
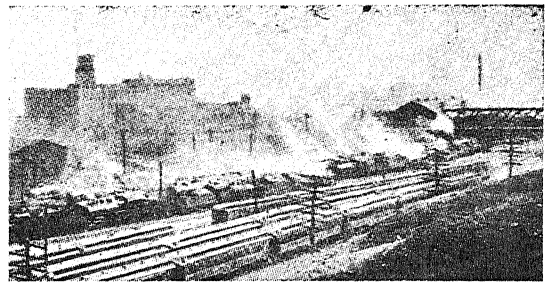
धूल और धुआँ मौजूद है। और यह धूल और धुआँ नगर-निवासियोंके फेफड़ोंको जर्जर करने और उन्हें क्षय-कीटाणुओंका निवास-स्थान बनानेमें दिन-रात अविराम गतिसे प्रयत्न किया करता है। धूलके ज़र्रे ज़मीनसे उड़कर हवामें पहुँचते हैं, और धुआँ चूल्हों, रेलगाड़ियों और कल-कारखानोंकी चिमनियोंकी देन है। मगर दो पैरके जानवर हज़रत इंसानने अब

हवा दूषित है या नहीं, इसकी परीक्षा हो रही है

बिना धुएँकी रेलगाड़ी

मि० धुआँ और मिस धूलके खिलाफ भी जेहाद शुरू कर दिया है। विद्रोहका यह झण्डा अमेरिकाके कुछ शहरोंमें उठाया गया है। पिट्सबर्गकी म्यूनिसिपैलिटीने सड़कोंकी सफाईकी तरह हवाकी सफाईका भी एक

मोहकमा खोल रखा है, जिसका काम वायुमंडलको धूल और धुएँसे मुक्त करना है। इस काममें वैज्ञानिक, इंजीनियर और डाक्टर—इन तीनोंकी शक्तियोंका उपयोग किया जाता है, और वायुको निर्दोष और स्वास्थ्यप्रद बनाया जाता है।

अनाजमें बिजलीकी धारा

बिजलीसे रोज़-बरोज़ एक-से-एक आश्चर्यजनक काम लिये जा रहे हैं। बिजलीके सिपुर्द सबसे नया काम यह किया गया है कि वह अनाजके कीड़ोंको मार दे।
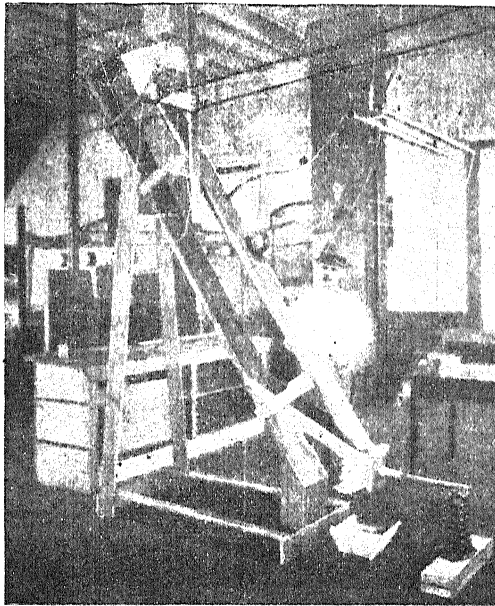
मशीन द्वारा अनाजमें बिजलीकी धारा दौड़ाई जा रही है

अनाजको एक जगहसे दूसरी जगह भेजते समय या कोठे या गोदाममें भरते समय उसमें जो कीड़े, मकोड़े, घुन वगैरह रह जाते हैं, वे और उनकी सन्तान अन्नको बहुधा ख़राब कर डालती है। अब यह तरीका निकाला गया है कि अनाजको रवाना करने या गोदाममें भरनेके पहले उसमें एक बार बिजलीकी धारा दौड़ा दी जाती है। बिजली अपने प्रकोपसे कीड़ों और उनके अंडे-बच्चोंको समाप्त कर डालती है। इस प्रकार अनाज सुरक्षित हो जाता है।

गतियोंकी तुलना

विज्ञानके ज़ोरसे चार मील प्रति घंटेकी मन्थर गतिसे चलनेवाले मनुष्यने अपनी बनाई हुई चीज़ोंमें अपने सामर्थ्यके अनुसार बलाकी तेज़ी भरनेकी कोशिश की है, और दिन प्रतिदिन इस तेज़ीमें इज़ाफ़ा करनेकी दौड़ हो रही है। स्थलपर मनुष्यकी बनाई हुई मोटरको इंग्लैण्डके सर मालकम कैम्बेलने २७२·१०८ मील प्रतिघंटेकी गतिसे दौड़ाया है; जलमें अमेरिकाके मि० गार वुडने मोटर-बोटको १२४·६१ मीलकी तेज़ीसे तैराया है; आकाशमें हवाई-जहाज़को जेम्स वेडल
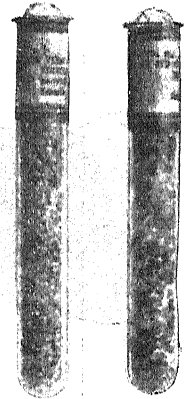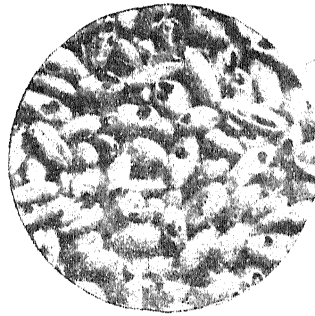
कीड़े लगे हुए गेहूँ — बिजली दौड़े हुए गेहूँ — कीड़े लगे हुए गेहूँ

नामक अमेरिकनने ३०५·३३ मील प्रति घंटेकी तेज़ीसे उड़ाया है, और समुद्रके ऊपर एफ़० एजेलो नामक इटेलियने सीप्लेनको ४२० मील प्रति घंटेकी रफ्तार तक दी है। यह तो गति हुई आदमियों द्वारा बताई हुई सवारियोंकी। आवाज़की लहरें वायुमंडलमें ७४० मील प्रति घंटेकी तेज़ीसे दौड़ती हैं। पिस्तौलकी गोलीकी गति कुल ५४५.४ मील प्रति घंटा है। हमारी धरती माता अपनी धुरीपर हज़ार मील फी घंटे चलती हैं और दिन-रातमें २४,००० मीलकी मंज़िल मारती हैं। मगर हज़रते इंसानकी राइफेल अपनी तेज़ीमें धरतीको भी चुनौती देती है। उसकी गोलीकी औसत चाल १२७० मील प्रति घंटा है!
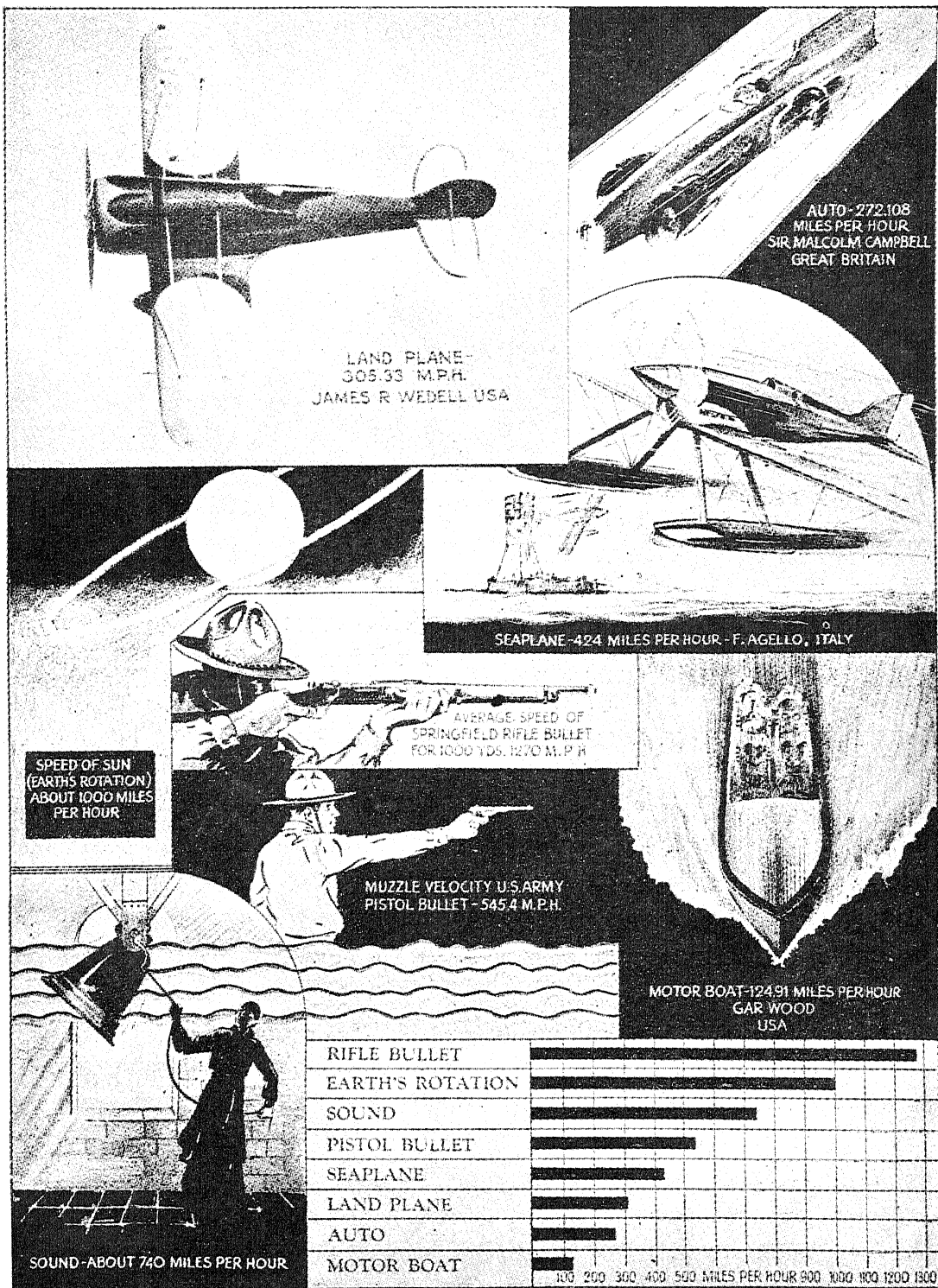
जल, थल और आकाशमें आदमीकी बनाई चीज़ों और गोली, आवाज़ तथा पृथिवीकी गतियोंकी तुलना

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास'—(प्रारम्भसे लेकर राव सीहाजीके मारवाड़ आने तक)—लेखक, पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ ; प्रकाशक, आर्कियालॉजिकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर ; पृष्ठ ४+२६८ ; सजिल्द मूल्य २)

प्राचीन भारतका इतिहास इतना बिखरा पड़ा है, उसकी सामग्री इतनी विशद होते हुए भी कितनी अज्ञात विलुप्त हो गई है, और जो प्राप्त है, उसमें स्थान-स्थानपर कितनी असम्बद्धता पाई जाती है कि उसके आधारपर ठीक-ठीक इतिहासका ढाँचा बनाना कोई साधारण कार्य नहीं है। विशेषतया तेरहवीं शताब्दीसे पहलेका राजपूतोंका इतिहास इतना अस्पष्ट हो रहा है कि उसके लिए महान पाण्डित्य तथा ज्ञानकी आवश्यकता होती है। उन बिखरे सूत्रोंमें ठीक-ठीक सम्बन्ध स्थापित करके इतिहास-निर्माण करना कोई खेल नहीं है। और इसपर भी उस कालका निर्विवाद इतिहास लिखना असम्भव-सा हो रहा है। जो विद्वान इन सूत्रोंको समेटने तथा सुलझानेका प्रयत्न कर रहे हैं, उनमें जोधपुर राज्यके आश्रित पं० विश्वेश्वरनाथजी रेऊका भी नाम लिया जाना चाहिए। इस आलोच्य पुस्तकमें उन्होंने आधुनिक मारवाड़-स्थापनाके पहले उसी राठोड़ राजघरानेका इतिहास लिखनेका प्रयत्न किया है।

रेऊजी अपने इतिहासमें विशेषतया चार बातोंपर ज़ोर देते हैं। उनके मतानुसार इस इतिहासको ठीक-ठीक समझनेके लिए यह निश्चित होना आवश्यक है :—

(१) राष्ट्रकूटोंका यह घराना बहुत ही प्राचीन है, अशोकके लेखोंमें भी इनका उल्लेख आया है, पहलेसे ही इनका तेज-प्रताप बढ़ा-चढ़ा था और जब वे पंजाबमें शासन कर रहे थे, तभी दक्षिणमें उनकी एक शाखा गई थी, जिसने दक्षिण ही नहीं, मध्य-भारत, गुजरात, राजपूताना आदि स्थानोंपर भी समय-समयपर अपनी सत्ता स्थापित की। (अध्याय १)

(२) ये राष्ट्रकूट सूर्यवंशी थे, और प्रारम्भमें शिवके उपासक समझे जाते थे ; किन्तु बादमें समय-समयपर ये वैष्णव तथा शाक्त मतानुयायी भी हुए थे। अमोघवर्षने तो जैनमत भी स्वीकार कर लिया था ; किन्तु फिर भी इन राजाओंके कालमें पौराणिक मतकी बहुत वृद्धि हुई। (अध्याय ३ और ६)

(३) राष्ट्रकूट और गाहड़वाल एक ही हैं, केवल राज्यशासनमें स्थान-परिवर्तन होनेसे नाममें भेद हुआ। उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारतके राष्ट्रकूटोंमें वंशैकता थी। (अध्याय ४ और ५)

(४) राष्ट्रकूटोंका प्रताप बहुत बढ़ा-चढ़ा था, और अपने समयमें अन्य सब भारतीय नरेश उन्हें सर्वश्रेष्ठ शासक समझते थे। कन्नौजमें जब जयचन्द्र राज्य कर रहे थे, उस समय भी उनका वही पहले जैसा ही प्रताप तथा मान था। (अध्याय ८) इनके समयमें विद्या, कला-कौशल आदिकी उन्नति हुई। लेखकने एक पैराग्राफमें समस्त विशिष्ट विद्वानोंकी सूची दी है। (अध्याय ७)

अन्तमें ये राष्ट्रकूटोंके इतिहासका संक्षेपमें यों वर्णन करते हैं—

"सारे ही उद्धृत प्रमाणोंपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि पहले किसी समय राष्ट्रकूटोंकी एक शाखाने कन्नौजमें राज्य क़ायम किया था ; परन्तु कुछ काल बाद उसके निर्बल हो जानेसे वहाँपर क्रमशः गुप्त, बैस, मौखरी और पड़िहार नरेशोंका राज्य हुआ। इसके बाद वि० सं० ११३७ (ई० सन् १०८०) के क़रीब एक बार फिर राष्ट्रकूटोंकी दूसरी शाखाने कन्नौज विजयकर वहाँपर अपने राज्यकी स्थापना की। यही दूसरी शाखा कुछ काल बाद "गाधिपुर" (कन्नौज) के सम्बन्धसे गाहड़वाल कहाने लगी। वि० सं० १२५० (ई० सन् ११९४) में, शहाबुद्दीन गोरीके आक्रमणके कारण, इस शाखाका अन्तिम प्रतापी नरेश जयचन्द्र मारा गया। यद्यपि शहाबुद्दीनके लूट-मारकर चले जानेपर जयचन्द्रका पुत्र हरिश्चन्द्र कन्नौज और उसके आसपासके प्रदेशका अधिकारी हुआ, तथापि वह विशेष प्रतापी न था। इसके बाद जब कुतुबुद्दीन ऐबक और उसके अनुयायी शम्सुद्दीन अल्तमशने, उक्त प्रदेशपर अधिकार कर, इस वंशके स्वतन्त्र राज्यकी समाप्ति कर दी, तब जयचन्द्रके पौत्र राव सीहाजी महुईमें जा रहे ; परन्तु कुछ काल बाद वहाँपर भी मुसलमानोंका अधिकार हो गया, और वह महुई छोड़कर

देशाटन करते हुए वि० सं० १२६८ के करीब मारवाड़में आ पहुँचे।" (पृष्ठ ४४)

इस प्रकार राष्ट्रकूटोंके विषयमें इन विशिष्ट मतोंपर पहुँचकर रेऊजी इतिहास-प्रसिद्ध कन्नौज-नरेश जयचन्द्रसे लेकर आधुनिक मारवाड़ राज्यके संस्थापक सीहाजी तककी वंशावली निश्चित करते हैं।

इस उपसंहारके बाद राष्ट्रकूटोंका कुछ विशद इतिहास पढ़नेको मिलता है। यहाँ लेखकने मान्यखेट (दक्षिण) के, लाट (गुजरात) के राष्ट्रकूट, सौंदन्ति (धारवाड़) के रट्ट (राष्ट्रकूट) तथा कन्नौजके गाहड़वालोंका इतिहास दिया है। भूतकालके राष्ट्रकूटोंके महत्वको जाननेके लिए उन राजघरानोंका इतिहास जानना अत्यावश्यक है। राष्ट्रकूटोंके विशिष्ट राजघरानोंके सम्बद्ध इतिहासको लिखकर रेऊजीने भारतीय इतिहासकी एक बड़ी कमी पूरी की।

परिशिष्टमें लेखकने राजा जयचन्द्रपर तथा राव सीहाजीपर किये गये मिथ्या आक्षेपोंका उत्तर दिया है। रेऊजीने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि 'पृथ्वीराजरासो'में वर्णित कथाके आधारपर जयचन्द्रको हिन्दू-साम्राज्यका नाशक तथा टॉडके 'राजस्थान'के आधारपर सीहाजीको पल्लीवाल ब्राह्मणोंको धोकेसे मारकर पालीपर अधिकार करनेवाला समझना अनुचित होगा।

रेऊजीने अपने मतके प्रतिपादनमें जो कुछ लिखा है, वह इतिहासकारोंको पूर्णरूपेण मान्य न हो ; परन्तु वह विचारणीय अवश्य है। सम्भव है, रेऊजीके मतके विरुद्ध अकाट्य प्रमाण दिये जा सकें, फिर भी रेऊजीने राष्ट्रकूटोंका सम्बद्ध इतिहास लिखकर ऐतिहासिक साहित्यमें एक बड़ी कमीकी पूर्ति की है, और इस मार्गपर चलनेवालोंके लिए कुछ स्थायी आधार बनाकर बहुत-कुछ सुविधा कर दी है। अब आशा की जा सकती है कि इस विषयपर विस्तारपूर्वक लिखा जा सकेगा, क्योंकि इस पुस्तकमें प्राप्य सामग्रीका बहुत-कुछ उल्लेख आ गया है, जिससे ऐतिहासिक खोज करनेवालोंको सहायता मिलेगी।

इस पुस्तकमें दो बातें कुछ खटकती हैं। प्रथम तो इस पुस्तकमें जो विषय लिखा गया है, उसका क्रमबद्ध विकास तथा विवरण नहीं पाया जाता। यदि लेखक महोदय विशिष्ट विषयोंपर विचारकर सम्बद्ध इतिहास तदनन्तर ही लिखना चाहते थे, तो पुस्तकको दो विभिन्न भागोंमें विभक्त कर सकते थे। उपसंहारके बाद भी पुस्तकके विषय-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण और प्रधान अध्यायोंका रहना तथा एक सौसे अधिक पृष्ठोंकी पठनीय सामग्रीका पाया जाना ज़रा खटकता है। प्रारम्भिक अध्यायोंमें भी विषयका सम्बद्ध विवरण नहीं पाया जाता। भिन्न-भिन्न अध्याय, विभिन्न विषयोंपर अलग-अलग लेखमात्र जान पड़ते हैं। पुनः लेखकने जो कुछ लिखा है, वह बहुत ही संक्षेपमें है। पुस्तकमें नीरसता बहुत आ गई है। और कुछ स्थानोंमें विषय कुछ नामोंकी सूचीमात्र रह जाता है। राष्ट्रकूटोंके समयकी विद्या और कला-कौशलकी अवस्था आदिपर कुछ अधिक लिखा जाना चाहिए था। उनके विभिन्न राज्योंके प्रसारकी कुछ रूपरेखा भी वर्णित की जाती, तो अच्छा होता।

अन्तमें यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि पुस्तक ऐतिहासिक खोज करनेवालोंके लिए महत्वकी वस्तु है और संग्रहणीय है। इस पुस्तककी रचना करनेके लिए लेखक तथा उसे प्रकाशित करनेके लिए जोधपुर-राज्याधिकारी धन्यवादके पात्र हैं।

—रघुवीर सिंह

—

'कलकत्ता म्यूनिसिपल गज़ट' (अंगरेज़ी)—
छठवां स्वास्थ्य-अंक—सम्पादक, श्री अमल होम ; प्रकाशक, कलकत्ता कार्पोरेशन ; मूल्य ।)

अन्य वर्षकी भाँति इस वर्ष भी 'कलकत्ता म्यूनिसिपल गज़ट'का स्वास्थ्य-अंक उपदेशप्रद और नयनाभिराम निकला है। कवर-पृष्ठपर एक आकर्षक रंगीन डिज़ाइन है। भीतर लेखोंमें सर जार्ज न्यूमैन, एच गोर्डन हापकिर्क, सर हसन शोहरावर्दी, ले० कर्नल ई० ओ० जी० किरवन, श्री मदनमोहन बर्मन आदिके लेख विशेष सुपाठ्य हैं। इन लेखोंके अतिरिक्त स्थान-स्थानपर तन्दुरुस्तीके जो छोटे-छोटे चुटकले बताये गये हैं, वे बहुत उपयोगी हैं। यक्ष्मा-निवारणके विषयमें और बच्चोंके स्वास्थ्यके लिए कई पृष्ठ अलग दिये गये हैं। यह अंक मि० होमकी सम्पादन-कलादक्षताका सुन्दर नमूना है, जिसके लिए वे हार्दिक बधाईके पात्र हैं।

—

'भारती'—मासिक पत्रिका। सम्पादक, श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द और श्री हरिकृष्ण प्रेमी ; प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मंडल लिमिटेड, लाहोर ; वार्षिक मूल्य ६) ; एक प्रतिका ॥=)

पाँच नदियों और पचासों नहरोंसे सींचा जानेवाला पंजाब अब तक हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओंके लिए ऊसर ही बना हुआ है। अबसे पहले इस भूमिमें हिन्दीके पौधे रोपनेके लिए अनेक प्रयत्न हो चुके हैं ; मगर किसीमें सफलता नहीं हुई। ऐसी स्थितिमें हिन्दी-साहित्य-मंडल लिमिटेड, लाहोरने 'भारती' को जन्म देकर जिस अदम्य साहसका परिचय दिया है, उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

'भारती' सचित्र मासिक पत्रिका है। 'विशाल भारत' साइज़, कवर-पेजपर सुन्दर तिरंगा चित्र, भीतर दो तिरंगे और अनेक सादे चित्र हैं। अब तक दो अंक प्रकाशित हुए हैं। इन दोनों अंकोंमें लेखोंका चुनाव काफी सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हुआ है। प्रस्तुत दोनों अंकोंमें बाबू भगवानदास, श्री क्षितिमोहन सेन, काका कालेलकर, प्रिन्सपल नरेन्द्रदेव, श्री प्रेमचन्द, श्री श्रीप्रकाश, श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, 'एक भारतीय आत्मा' आदि लब्धप्रतिष्ठ लेखकोंकी रचनाएँ हैं। लेखोंके अतिरिक्त देश-विदेश, रंगभूमि, नारी-जगत्, परिचय, परख आदि स्थायी उपयोगी स्तम्भ हैं। सम्पादकीय टिप्पणियाँ विचारपूर्ण हैं। ऐसी सुन्दर पत्रिकाके लिए सम्पादक-द्वय तथा प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। हम 'भारती'का स्वागत करते हैं, और आशा करते है कि पंजाबका पौरुष और मालवाके उर्वर मस्तिष्क इस बार पंचनदमें हिन्दीका विशाल वृक्ष खड़ा करनेमें सफल होंगे।

—ब्रजमोहन वर्मा

सम्पादकीय विचार

साहित्य-सेवा और राजनीति

किसी साहित्य-सेवीको राजनैतिक हलचलोंमें पड़ना चाहिए या नहीं ? यह प्रश्न अनेक बार अनेक साहित्य-सेवियोंके सम्मुख आया है, और इसका उत्तर भी क्रियात्मक रूपसे अनेक साहित्य-सेवियोंने दिया है। पर यह सवाल ऐसा नहीं है कि इसका एक बना-बनाया उत्तर दिया जा सके, जिसके अनुसार सब साहित्य-सेवी कार्य कर सकें। प्रत्येक साहित्य-सेवीके लिए इसका उत्तर उसकी प्रवृत्ति, शक्ति तथा परिस्थितिके अनुकूल होगा। पर इसका यह मतलब हर्गिज़ नहीं है कि इस तर्कका आश्रय लेकर कोई आदमी अपनी कायरताको छिपानेका प्रयत्न करे, जैसा कि महात्माजीके आन्दोलनमें भाग लेनेसे डरनेवाले कुछ महानुभाव किया करते थे।

मिस्टर····में इतनी शक्ति नहीं है, स्वार्थत्यागका माद्दा नहीं है और उज्ज्वल देशभक्ति नहीं है कि वे स्वाधीनता-संग्राममें कुछ भाग लेकर अपनेको खतरेमें डाल सकें ; पर अपने डरपोकपनको छिपानेके लिए वे कहते हैं—"महात्माजीके आन्दोलनमें हम शामिल तो हो जाते, पर हम अपनेको 'कन्ट्रोल' नहीं कर सकते। जब हमारे सामने कोई सिपाही किसी निरपराधपर हाथ उठायेगा, तो हमारा खून खौलने लगेगा और हम अहिंसात्मक नहीं रह सकेंगे ! बस, हम इसी कारण आन्दोलनमें भाग नहीं लेते।"

ऐसे महानुभावोंकी कलई जल्द ही खुल जाती है, चाहे वे देशभक्तिका कितना ही आडम्बर क्यों न करें। न हम उन साहित्य-सेवियोंको सच्चा साहित्य-सेवी या सच्चा देशभक्त मानते हैं, जो खून लगाकर शहीद बननेका प्रयत्न किया करते हैं, जिनकी दृष्टिमें जेल जाना अपने लिए एक ऐसी नवीन 'क्वालिफिकेशन' पैदा कर लेना है, जिसकी पूँजीके आधारपर वे साहित्यिक दुनियामें अधिक दिनों तक अपने व्यापारको चमका सकें।

इसके सिवा कितने ही महानुभाव ऐसे भी हैं, जो साहित्य-क्षेत्रमें राजनैतिक तिकड़मबाज़ीसे काम लिया करते हैं और उनके लिए साहित्य-क्षेत्रसे राजनैतिक

क्षेत्रमें जाना कोई विशेष अन्तर नहीं रखता।

उपर्युक्त तीन प्रकारके लोगोंको छोड़कर भी कितने ही साहित्य-सेवी ऐसे बच रहते हैं, जिनके सामने उपर्युक्त प्रश्न (किसी साहित्य-सेवीको राजनैतिक हलचलोंमें पड़ना चाहिए या नहीं?) प्रायः उपस्थित होता है। राजनैतिक उथल-पुथलके जमानेमें प्रत्येक समझदार आदमीका कर्तव्य है कि वह अपने कार्यकी दिशाका निरन्तर अध्ययन करता रहे और अपनेको समयकी गतिसे पिछड़ने न दे। निर्भयतापूर्वक अपनी सम्मति प्रकट कर देना प्रत्येक जिम्मेदार साहित्य-सेवीका फर्ज़ है। हम उन लोगोंकी बात नहीं कहते, जो "जैसी चले बयार पीठ तब तैसी दीजै" के सिद्धान्तका अनुसरण करते हैं। यदि आज हिन्दू मुसलमानोंको लड़ानेसे उनके पत्रके ग्राहक बढ़ सकते हैं, तो हिन्दू मुसलमानोंमें झगड़ा करानेका भरपूर प्रयत्न करते हैं, और यदि कल हिन्दू मुसलमानोंके मेलका विषय लोकप्रिय हो गया है, तो वे अपने पत्रको वैसा ही 'टर्न' दे देते हैं। ऐसे बेपेंदीके लोटोंको साहित्य-सेवीके नामसे पुकारना ही साहित्य-सेवाका अपमान करना है।

हम यह मानते हैं कि प्रत्येक आदमी राजनैतिक आन्दोलनोंमें भाग लेनेके लिए नहीं बनाया गया, और साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि कितने ही आदमियोंके लिए, जो खतरमें पड़नेसे डरते हैं, साधारण गृहस्थका जीवन ही शायद सर्वोत्तम है; फिर भी प्रत्येक जिम्मेदार पत्रके सम्पादकसे यह आशा की जा सकती है कि वह नम्रतापूर्वक अपने पाठकोंके सम्मुख अपने विचार रखे। इसी दृष्टिसे हम निम्न-लिखित पंक्तियाँ लिख रहे हैं।

हमने राजनीतिका विधिवत अध्ययन नहीं किया और न हम राजनैतिक प्रश्नोंपर किसी एक भी आदमीके 'गाइड' बननेके इच्छुक हैं। जो कुछ हमने थोड़ासा पढ़ा है, उससे हमें प्रिंस क्रोपाटकिनके अराजकवादी वर्गवादके सिद्धान्त अपने हृदयके निकटतम प्रतीत होते हैं। हम प्रैक्टीकल राजनीतिज्ञ नहीं और न हम यह बतला सकते हैं कि व्यवहारमें यह चीज़ कहाँ तक सफल हो सकती है; पर जिस भयंकर वस्तुके सामने हमारी रूह काँपती है, जिसे हम कभी स्वेच्छापूर्वक सहन नहीं कर सकते, वह है डिक्टेटर शाही, चाहे यह लेलिन और स्टैलिनके मतानुयायियोंकी हो, अथवा मुसोलिनी या हिटलरके अनुगामियोंकी। हम पूर्ण व्यक्तिगत स्वाधीनताके पक्षपाती हैं, और उक्त दोनों सम्प्रदायोंमें यह वस्तु अप्राप्य ही है। हम इस चिन्तामें ही थे कि इस विषयपर किस प्रकार अपने विचार प्रकट करें कि हमें संसारके सर्वोच्च गणितज्ञ प्रोफेसर आइनस्टीन साहबका 'सडे क्रानीकल'में लिखा हुआ एक लेख पढ़नेके लिए मिला। वह हमें बहुत पसन्द आया, और उसके एक अंशको हम यहाँ उद्धृत करते हैं। आइनस्टीन साहब लिखते हैं—

"हमारे आधुनिक जीवनमें अगर कोई मूल्यवान चीज़ है, तो वह इस वजहसे है कि व्यक्तियोंको स्वाधीनतापूर्वक अपना व्यक्तित्व विकसित करने, आपसमें विचार-परिवर्तन करने, मनमाने धर्मका पालन करने और मानव-समाजका जहाँ तक अहित न हो, वहाँ तक अपने इच्छानुसार काम करनेकी स्वाधीनता है। इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि आज हमारे अस्तित्वके मूल आधारपर ही कुठाराघात किया जा रहा है। आज संसारमें ऐसी शक्तियाँ काम कर रही हैं, जो यूरोपियन समाजकी परम्परागत स्वाधीनता, सहनशीलता तथा मानवी गौरवको नष्ट करनेके लिए प्रयत्नशील हैं। हमारे राजनीतिक जीवनमें यह खतरनाक चीज़ें हिटलरिज़्म, मिलिटैरिज़्म और कम्यूनिज़्मके नामसे मशहूर हैं, और उनकी वजहसे सहनशीलता तथा व्यक्तिगत स्वाधीनताका अन्त हो गया है। अगर हम लोग डटकर इनका विरोध नहीं करेंगे, तो फिर हम एक ऐसे जीवन-क्रममें ढकेल दिये जायँगे, जो पुराने एशियाटिक ज़ालिमोंके ज़मानेकी प्रजाके जीवनसे कुछ भिन्न न होगा। बल्कि यों कहना चाहिए कि पुराने ज़ालिमोंकी पराधीनतासे यह पराधीनता और भी खराब होगी, क्योंकि आजकलके ज़ालिमोंमें उतनी अकल तो है नहीं, जितनी उनके प्राचीन साथियोंमें थी; पर उनकी भुजासे इन नवीन ज़ालिमोंकी भुजा बहुत लम्बी है, उनके पास पाशविक शक्तियोंके ज़बरदस्त

साधन हैं, और ये लोग स्कूल, रेडियो और समाचारपत्र रूपी अस्त्रों द्वारा दूर-दूर तक अपने विचारोंका प्रभाव फैला सकते हैं, और मामूली आदमी उनके नैतिक तथा मानसिक प्रभावका विरोध कर ही नहीं सकता। इस ज़ुल्मका सार तत्त्व यही नहीं है कि एक आदमीको असीम शक्ति दे दी जाती है, बल्कि यह भी है कि समाज ही व्यक्तिकी गुलामीका साधन बन जाता है।''

हम गुलामीके विरोधी हैं, चाहे वह किसीकी ही हो। हमारी समझमें प्रत्येक सच्चे साहित्य-सेवीका कर्तव्य है कि वह निर्भयतापूर्वक अपनी सम्मति प्रकट करता रहे, चाहे जनता और उसके लीडर उसे पसन्द करें या न करें। राजनीति वार-वधूकी तरह चंचला है, और सच्चे साहित्य-सेवीको संन्यासीकी तरह निश्चल होना चाहिए। साहित्य-सेवीका दरजा किसी भी हालतमें राजनीतिज्ञसे नीचा नहीं। सम्राट् अकबरके ज़मानेके राजनीतिज्ञोंका नाम लोग कबके भूल गये; पर तुलसीदासको कौन भूल सकता है?

गुजरात, सिंध और बीजापुरकी लड़ाइयोंमें पराक्रम दिखलानेवाले नवाब अब्दुल रहीम खानखानाको लोग भले ही भूल जायँ; पर अमर दोहोंके रचयिता रहीमको कौन भूल सकता है? हम यह हर्गिज़ नहीं कहते कि किसी साहित्य-सेवीको क्रान्तिके दिनोंमें ''हाथ-पाँव बचाये और मूजीको टरकाये'' की नीतिसे काम लेना चाहिए। कदापि नहीं। हमारे कहनेका अभिप्राय केवल इतना है कि उसे सरकारकी कुदृष्टि अथवा लोकप्रियताकी परवा न करके अपनी अन्तरात्माके विचार जनताके सम्मुख रख देने चाहिए, और अन्यायकी, चाहे वह सरकारकी ओरसे किया गया हो, अथवा अपने पराधीन देशवासियोंकी ओरसे, निन्दा करनेके लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। साहित्य और राजनीति दोनोंसे भी ऊँची चीज़ है मनुष्यत्त्व। जब मनुष्यत्त्व हमें किसी विशेष कार्यके लिए अग्रसर होनेको पुकार रहा हो, तो फिर हमें सर्वथा निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ना चाहिए।

यदि साहित्य-सेवी ईमानदारीके साथ बिना किसीका शासन माने और बिना अपने कार्यक्षेत्रको किसी भी प्रकार सीमित किये अपने कर्तव्यका पालन करते रहें, तो उन्हें अपने मार्गमें भयंकर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा, और उनका मार्ग राजनैतिक कार्यकर्ताओंके मार्गसे कम कंटकाकीर्ण न होगा, क्योंकि दर-असल साहित्यमें राजनीतिका भी समावेश होता है।

दिल्लीका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

दिल्लीमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका तेईसवाँ वार्षिक अधिवेशन सकुशल समाप्त हो गया। स्वागत-कारिणीके प्रधान श्रीमान घनश्यामदासजी बिड़ला और अधिवेशनके सभापति श्रीमान बड़ौदा-नरेशके भाषण हमने ध्यानपूर्वक पढ़े। बिड़लाजीके निम्न-लिखित विचारसे हम सर्वथा सहमत हैं—

''सबसे बड़ी आवश्यकता इस समय हिन्दीको ऐसा रूप देनेकी है, जिससे वह 'हिन्दुस्तानी'—अर्थात् देश मात्रके लोगोंकी भाषा—बन सके और विभिन्न प्रान्तोंके हिन्दू और मुसलमान उसे बोल-चाल या लिखने-पढ़नेके काममें ला सकें। हर प्रकारकी कृत्रिमतासे हमें अपनी भाषाको बचाना चाहिए, चाहे उस कृत्रिमताका आधार पंडितोंकी संस्कृत हो, चाहे मौलवियोंकी अरबी या फ़ारसी। भाषा आख़िर एक साधन है, जिसका उपयोगकर हम किसी कार्य-विशेषकी सिद्धि करना चाहते हैं। ऐसी अवस्थामें हमें बराबर यह देखते रहना चाहिए कि हमारा साधन या औज़ार कहाँ तक हमारे कामके लायक़ है, और अगर हमारी ज़रूरत बदल गई है, तो हमें उसमें कौनसा हेर-फेर करना चाहिए। हिन्दी ही राष्ट्र-भाषाका काम दे सकती है—इसमें सन्देह नहीं; पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसका रूप आगेके लिए भी वही बना रहे, जो आजसे सौ वर्ष पहले था, या जिस रूपमें उसने दिल्ली या आगरेके पास उससे भी बहुत पहले जन्म लिया था। अगर हमें हिन्दीका भंडार भरना है और इस प्रकार इसे सब भाषाओंकी चोटीपर पहुचाना है, तो हमें प्रान्तीय भाषाओंसे बहुत कुछ लेना होगा। राष्ट्र-भाषा बननेवाली चीज़

राष्ट्रमात्रकी सम्पत्ति होगी, और उसकी परिपुष्टिके लिए यह आवश्यक होगा कि वह राष्ट्रके प्रत्येक अंगसे कुछ ग्रहण करनेको तैयार रहे। हिन्दीका हित इसीमें है कि उसे इस बातकी स्वतन्त्रता दे दी जाय कि वह अपने व्यक्तित्वकी रक्षा करती हुई गुजराती, मराठी, मारवाड़ी, बँगला, तामिल, तेलुगू आदि सबसे व्यावहारिक और उपयुक्त शब्दोंका आदान-प्रदान कर सके।"

बिड़लाजीने अपने भाषणमें दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारके सम्बन्धमें जो कुछ कहा, वह सर्वथा उचित ही था। वहाँ जो कार्य हुआ है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

श्रीमान बड़ौदा-नरेशका भाषण सम्भवत: पहले अंगरेज़ीमें लिखा गया था, और उसका अनुवाद हिन्दीमें छपवाया गया है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी और देवनागरी लिपिके समर्थनमें उन्होंने अनेक युक्तियोंका प्रयोग किया है। उनके भाषणका सारांश 'प्रताप'ने इस प्रकार किया था—

"भारतको एक साधारण भाषाकी ज़रूरत है, यह निर्विवाद है। भाषाकी अड़चनें हमारी जातीय कमज़ोरीकी मुख्य कारण हैं। स्वभावत: भारतकी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी ही होने योग्य है, और देवनागरीमें ही भारतकी सब प्रान्तिक भाषाएँ लिखी जानी चाहिए। भारतवर्षमें अनेक भाषाओंका रहना स्वाभाविक और अनिवार्य होनेपर भी राष्ट्र-भाषाका स्थान हिन्दीको ही प्राप्त होना चाहिए; क्योंकि व्यवहार, उपयोगिता, सुगमता आदि सब दृष्टिसे यही उचित है कि प्रत्येक हिन्दुस्तानीको कम-से-कम तीन भाषाएँ जाननी चाहिए—राज-कार्यके लिए अंगरेज़ी, राष्ट्रीय जीवनके लिए हिन्दी और घरेलू व्यवहारके लिए प्रान्तीय भाषा। विदेशी भाषा हम अवश्य सीखें; पर अपने साहित्यिक उपयोगके लिए उसे न लावें। जो बात राष्ट्रीय भावोंको नष्ट करती है, वह दासताको भी जन्म देती है। इंग्लैण्ड जब विदेशी दासतासे मुक्त हुआ, तभी उसने शेक्सपियर, मिल्टन आदि साहित्य-महारथियोंको जन्म दिया। जापानने जब चीनका अनुकरण करना छोड़ दिया, तभी उसने अपनी संस्कृति उत्पन्न की। उसी प्रकार जब हम अपनी भाषापर भरोसा करेंगे, नक़ल करना छोड़ देंगे, तभी हम भी बड़े-बड़े साहित्यिकोंको पैदा कर सकेंगे। रोमन लिपि हमारे देशके अनुकूल नहीं है। यह एक कृत्रिम प्रबन्ध है, जो स्वाभाविक विकास नहीं करती। जैसे हिन्दी राष्ट्र-भाषा बन सकती है, वैसे ही देवनागरी अपनी स्वाभाविक एक लिपि है। तुलसीदास और कबीरने सिद्ध कर दिया है कि महान साहित्यका माध्यम हिन्दी ही होगी। यदि हम प्रयत्न करें तो कोई कारण नहीं कि भारतवर्ष एक लिपि और एक भाषामें संगठित होकर नवीन राष्ट्रीय साहित्यका निर्माण न कर सके। यह एक ध्येय है, जिसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।"

हमें खेद है कि न तो श्रीमान बिड़लाजीके और न बड़ौदा-नरेशके ही भाषणमें हमें कोई रचनात्मक परामर्श दीख पड़ा। साहित्य-परिषद्‌में दिया हुआ श्रीमान माखनलालजी चतुर्वेदीका भाषण भी छपाकर समाचार-पत्रोंको भेजा जाना चाहिए था। स्थायी समितिके लिए ऐसा प्रबन्ध करना असम्भव न था। श्रीमान चतुर्वेदीजीके भाषणके जो अंश पत्रोंमें छपे हैं, उनमें साहित्यिक छटाका पुट ख़ूब है और उनमें गद्य-काव्य कैसा आनन्द आता है; पर दुर्भाग्यवश वे अधूरे ही हैं। शायद चतुर्वेदीजी अपना भाषण तैयार करके नहीं ले गये थे। हाँ, कविवर अयोध्यासिंहजी 'हरिऔध' ने प्रदर्शिनी-सम्बन्धी भाषणको परिश्रमसे लिखा है, और यह पहलेसे तैयार किया हुआ प्रतीत होता है।

श्रीमान हरिऔधजीने ब्रजभाषाके विषयमें जो कुछ कहा, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"ब्रजभाषा हिन्दी-साहित्यकी जननी है। वह प्राचीन है, अतएव उसके पास बड़े सुन्दर-सुन्दर रत्न हैं, वह अपनी भगिनी अवधीके साथ इस विषयमें बड़ी भाग्यवती है। यदि इन दोनोंके रत्न अलग कर दिये

जावें, तो हिन्दी भांडार ही रिक्त हो जावेगा। अवधीमें ब्रजभाषा जैसी व्यापकता नहीं, वह उतनी आगाधिता भी नहीं, फिर भी वह अपना विशेष स्थान रखती है। इन दोनोंमें इतनी घनिष्ठता है कि अधिकांश स्थलोंमें इनकी एकरूपता भिन्नताका बाधक हो जाती है। इनके पादाम्बुजोंकी अर्चना ऐसे-ऐसे आचार्यों और महाकवियोंने की है, जो आज भी हिन्दू-संसारके लिए प्रातःस्मरणीय हैं। ऐसे-ऐसे राजा-महाराजाओंने इनके चरणोंमें पुष्पांजलि अर्पण की है, जो राज्यसुख त्यागकर उन्हींके लिए उत्सर्गीकृत जीवन कहे जा सकते हैं। चाहे गुरु गोरखनाथकी रचनाओंको लें, चाहे कबीर साहब जैसे सन्तोंकी ग्रन्थमालाओंको, चाहे गुरु नानक देवके आदि ग्रन्थ साहबको लें, चाहे दशम गुरुके दशम ग्रन्थको, चाहे अष्टछापके वैष्णवोंकी कृतियोंको देखें, चाहे गोस्वामी तुलसीदास जैसे महात्माओंकी महान विभूतियोंको, चाहे महाकवि केशवदास एवं कविवर देवदत्त जैसे काव्यकारोंके काव्योंको अवलोकें, चाहे सरस हृदय बिहारीलाल और घन आनन्दकी कान्तकलाओंको—सबोंमें ही इनकी छाप लगी दृष्टिगत होती है, और तो क्या, खुसरो, जायसी, रहीम खां खानखाना, रसखान जैसे मुसलमान सहृदयोंको भी इनकी पदवन्दना करते अवलोकन करते हैं, वरन् सम्राट् अकबरको भी। ऐसी अवस्थामें ये भाषाएँ उपेक्षणीय नहीं। आप भक्तिसे नत सिर होकर इनकी सेवामें पहुँचिये और सहृदयतासे इनकी विभूतिपर दृष्टिपात कीजिये, आपको आज दिन भी उनसे बहुत-कुछ प्राप्त होगा। इनमें कहीं-कहीं सामयिकता न मिले, कहीं-कहीं असम्भवता और अपरिमार्जित रुचिकी केलि-क्रीड़ा दिखलाई पड़े; परन्तु आर्य संस्कृतिका सुन्दर आदर्श और विकास प्रायः दृष्टिगत होता रहेगा। इनमें माधुरी मोहती, मनोहरता विहँसती, सरसता विलसती, कोमलता किलकती, रसिकता मुसुकराती, मंजुता मधु बरसाती और रस छलकता मिलेगा।"

कविवर हरिऔधजीने वर्तमान साहित्यकी त्रुटियोंके विषयमें जो कुछ कहा, वह भी विचारणीय है। हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षाका प्रश्न हमें अप्रासंगिक जँचा, क्योंकि हिन्दी केवल हिन्दुओंकी ही राष्ट्र-भाषा नहीं है, वह मुसलमानोंकी भी है।

इस वर्षका मंगलाप्रसाद-पारितोषक सुप्रसिद्ध लेखक श्री जयचन्द्र विद्यालंकारको उनकी विद्वत्तापूर्ण पुस्तक 'भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा'पर मिला।

कवि-सम्मेलनके कुप्रबन्धके विषयमें जो कुछ समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ है, उसे पढ़कर हमारा विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि ये कवि-सम्मेलन हमारी कुसंस्कृतिका परिचय देते हैं, और यदि इनमें आमूल परिवर्तन नहीं हो सकता, तो इन्हें बन्द कर देना ही उत्तमतर होगा।

हमें खेद है, सम्मेलनके विषयमें पूरी-पूरी रिपोर्ट किसी पत्रने प्रकाशित नहीं की। सच बात तो यह है हमारे यहाँ अच्छे रिपोर्टरोंकी बहुत कमी है। सम्मेलनके सजीव संस्मरण भी अभी किसी पत्रमें प्रकाशित नहीं हुए, जिनसे दिल्ली न जा सकनेवाले आदमियोंको वहाँके दृश्योंका कुछ आनन्द तो आ जाता।

अगला अधिवेशन इन्दौरमें होगा। हमें दृढ़ विश्वास है कि श्रीमान डाक्टर सरजूप्रसाद और श्रीमान माधवराव विनायक किबेके सहयोगसे इन्दौरका सम्मेलन अत्यन्त सफलतापूर्वक होगा।

फाइनेन्स बिल

गत २८ मार्चको व्यवस्थापिका परिषद्में फाइनेन्स बिलपर अन्तिम भाषण करते हुए अर्थ-सचिव सर जार्ज शुस्टरने कुछ ऐसी बातें कही हैं, जिनपर विचार किया जाना आवश्यक है। सर जार्ज शुस्टरका कार्यकाल समाप्त हो रहा है, इसलिए आपने अपने इस अन्तिम भाषणमें अपने पंच वर्षव्यापी कार्यों तथा सरकारकी अर्थनीतिपर प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि उन्होंने जो कुछ किया है, एकमात्र

भारतकी भलाईके लिए ही किया है। अर्थ-सचिवने कहा है --"भारत-सरकारका ऐसा कोई भी सदस्य नहीं है, जिसने किसी भारतीय समस्यापर भारतके स्वार्थके सिवा किसी अन्य दृष्टिकोणसे विचार किया हो। हमने समय-समयपर ऐसे मार्गका अवलम्बन किया है, जो अपेक्षाकृत कठोर और कम लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। कारण, हमारा यह विश्वास था कि अन्ततः ब्रिटिश कार्य-प्रणाली श्रेष्ठ प्रमाणित होगी।" सर जार्ज शुस्टरको इस बातका दुःख है कि उनपर यह दोषारोपण किया जाता है कि उन्होंने ब्रिटिश स्वार्थसे प्रभावित होकर कार्य किया है। आपने यह विश्वास प्रकट किया है कि भविष्यमें जब भारतवासी उनके कार्यकालको गौरसे देखेंगे, तो वे ऐसी समालोचना नहीं करेंगे, जैसी कि अभी करते हैं।

सर जार्ज शुस्टरके इस कथनका हम किसी प्रकार भी समर्थन करनेमें असमर्थ हैं। उन्होंने 'अपने पाँच वर्षके कार्यकालमें जो कुछ किया है, वह 'एकमात्र भारतकी स्वार्थदृष्टिसे' यह कथन तो इतना असंगत है कि इसपर एकक्षणके लिए भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इस बातके दो-एक नहीं, अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं कि उन्होंने भारतीय अर्थनीतिके संचालनमें पहले इंग्लैण्डके स्वार्थपर ध्यान रखा है, फिर भारतके स्वार्थपर। पहला प्रमाण लीजिए। इंग्लैण्डने स्वर्णमानको उठा दिया। बस, यहाँ भी फौरन आर्डिनेन्स जारी करके सोनेकी रफ्तनीपर रोक कर दी गई। इसके बाद फिर दूसरा आर्डिनेन्स जारी करके सोनेकी रफ्तनीपर से निषेधाज्ञा उठा ली गई। इसका परिणाम यह हुआ कि देशसे सोनेकी अबाध रफ्तनी होने लगी, और अब तक पौने दो अरबसे अधिकका सोना विदेश जा चुका है! एक्सचेंजकी दरको क़ायम रखनेमें सोनेकी इस रफ्तनीसे बहुत बड़ी सहायता मिली है, इसलिए सर जार्ज शुस्टरने---देशवासियोंके बार-बार आग्रह और अनुरोध करनेपर भी---सोनेकी रफ्तनीपर किसी प्रकारकी रुकावट डालनेकी आवश्यकता नहीं समझी। सोनेकी इस रफ्तनीसे इंग्लैण्डको प्रत्यक्ष लाभ हुआ है, और भारतका स्वर्णभंडार रिक्त बन गया है! क्या सर जार्ज शुस्टरका यह कार्य भारतीय स्वार्थकी दृष्टिसे हुआ है?

सर जार्ज शुस्टरने अपने कार्यकालमें भारतवासियोंके ऊपर ४५ करोड़ रुपयेके नये कर लगाये हैं। विदा होते समय भी आप चीनी और दियासलाईपर टैक्स लगाकर अपनी अमर कीर्ति छोड़े जा रहे हैं। सन् १९३१ में आपने विदेशसे आनेवाली सब तरहकी चीज़ोंपर तथा इनकम-टैक्सपर जो सर-चार्ज लगाया था, उसकी मियाद १८ मासकी होनेपर भी अब तक---ढाई वर्ष बाद भी---वह ज्यों-का-त्यों क़ायम है! क्या ये सब टैक्स भारतवासियोंके स्वार्थोंपर ध्यान रखकर ही लगाये गये हैं? सर जार्ज शुस्टरको अपने कार्यकालमें लगातार कई वर्षों तक बजटके घाटेका सामना करना पड़ा। इस घाटेकी पूर्तिके लिए उन्होंने एक ही उपायसे काम लिया, और वह उपाय यह था कि देशवासियोंके ऊपर टैक्सोंका बोझ लादते चले जाओ, चाहे इस भारको वहन करनेकी क्षमता उनमें हो या नहीं। सर जार्ज शुस्टरकी अर्थनीति इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि भारतका शासन-प्रबन्ध भारतवासियोंके लिए नहीं है, बल्कि शासन-प्रबन्धको क़ायम रखनेके लिए भारतवासी हैं।

अन्तमें हम सर जार्ज शुस्टरसे एक सीधा सवाल पूछना चाहते हैं। यदि आपने भारतकी अर्थनीतिका संचालन एकमात्र भारतीयोंके स्वार्थपर ध्यान रखकर किया है, तो क्या आप बता सकते हैं कि आपके समयमें भारतीय जनताकी दरिद्रता कहाँ तक दूर हुई है, उसमें किस सीमा तक शिक्षा और ज्ञानका प्रसार हुआ है, देशके समृद्ध-साधनोंका शोषण कहाँ तक बन्द हुआ है और देशकी सम्पत्तिमें कितनी वृद्धि हुई है? क्या सर जार्ज शुस्टर इन सब प्रश्नोंका कोई सन्तोषजनक उत्तर दे सकते हैं?

बिहारका पुनर्निर्माण

'बिहार केन्द्रीय भूकम्प-सहायक कमेटी' का नवीन संगठन अखिल भारतीय आधारपर किया गया है। इस नवगठित कमेटीमें देशके सभी प्रान्तोंके कितने ही प्रमुख व्यक्ति प्रतिनिधि-रूपमें सम्मिलित किये गये हैं। इस कमेटीका एक मुख्य अधिवेशन गत मार्चमें पटनेमें हुआ था। इस अधिवेशनमें महात्मा गांधी तथा देशके और कितने ही नेता उपस्थित थे। सरकारकी ओरसे प्रान्तके दोनों मिनिस्टर भी मौजूद थे। बाबू राजेन्द्रप्रसादने अपने एक वक्तव्यमें भूकम्पकी विध्वंस-लीलाका सांगोपांग वर्णन करते हुए बतलाया कि अब तक विभिन्न सहायक समितियों द्वारा और खासकर केन्द्रीय सहायक कमेटी द्वारा कहाँ तक कार्य हुआ है और अभी कितना कार्य करना बाक़ी है। इस बैठकमें स्वयं महात्मा गांधीने सरकारके साथ सादर सहयोग करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया। कांग्रेसके सर्वेसर्वा और असहयोग-आन्दोलनके प्रवर्त्तक महात्मा गांधी सरकारके साथ भूकम्प-सहायता-कार्यमें सादर सहयोगका प्रस्ताव उपस्थित करें, यह बात सचमुच कुछ लोगोंके लिए विस्मयजनक थी; किन्तु महात्मा गांधीकी मनोवृत्तिसे जो लोग परिचित हैं, उन्हें इस प्रस्तावपर कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। महात्मा गांधीका असहयोग अहंकारजनित नहीं होता। उसमें विजयोल्लासयुक्त गर्वकी अपेक्षा विनय और नम्रताका भाव ही अधिक पाया जाता है। गांधीजीने अपने इस प्रस्तावपर भाषण करते हुए बताया कि सरकारके जिस कार्यसे जनताकी भलाई होती हो, उसमें सहयोग प्रदान करना कांग्रेसवादियोंका कर्त्तव्य है। यदि इस प्रकारके सहयोगसे भी कांग्रेसवादी विरत रहेंगे, तो फिर इससे यह कहीं अच्छा है कि वे भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायता करें ही नहीं। सरकारके ऐसे कार्योंसे ही हम असहयोग करते हैं, जिनसे जनताका अनिष्ट होता हो। भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायता करके सरकार जनताकी सेवा कर रही है, इसलिए जनताकी सेवा करना जब कांग्रेसवादियोंको भी अभीष्ट है, तो फिर सरकारके साथ क्यों न सहयोग किया जाय? गांधीजीके इस युक्ति-प्रदर्शनसे लोगोंके सन्देहका निराकरण हुआ और प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हुआ। सिर्फ नागपुरके डा० खरेने प्रस्तावमें 'सादर' शब्दपर आपत्ति प्रकट की।

कमेटीने जो कार्यक्रम स्थिर किया है, उसके अनुसार मकान बनानेका काम और खेतोंमेंसे बालू हटानेका काम सरकारके ऊपर छोड़ दिया गया है। इस कार्यमें बहुत ज्यादा रुपये खर्च होनेकी सम्भावना है, और केन्द्रीय कमेटीके पास पर्याप्त धन नहीं है कि वह इस कार्यको अपने हाथमें ले सके। सरकार पीड़ित जनताको ऋण देकर तथा अन्य रूपमें आर्थिक सहायता देकर पुनर्निर्माणके कार्यमें प्रोत्साहन दे रही है, इसलिए कमेटीने इन दो कामोंको अपने ऊपर नहीं लिया। कमेटी अन्य रूपमें सहायता-कार्य करेगी—अर्थात्, अन्न, वस्त्र, औषधि आदि वितरण करके तथा बालूसे भरे हुए कुओंकी सफाई कराकर। इसके सिवा यदि किसी व्यक्ति-विशेषकी सहायता सरकार द्वारा नहीं की जा सकेगी और कमेटी उसे सहायता देना उचित समझेगी, तो ऐसी दशामें कमेटी सहायता कर सकती है। और सब बातोंमें कमेटी सरकारके साथ पूर्ण सहयोग करेगी।

महात्मा गांधीकी उपस्थिति तथा उनके परामर्शसे केन्द्रीय सहायक कमेटीको अपना कार्यक्रम निर्धारित करनेमें बहुत सहायता पहुँची है। महात्माजीने भूकम्प-पीड़ित स्थानोंका दौरा किया है और दुःखित जनताको सान्त्वना दी है। महात्माजीके आश्वासनसे जनताकी उत्साहहीनता और निराशा बहुत कुछ दूर हुई है, और लोग अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार पुनर्निर्माणके कार्यमें जुट गये हैं। यों तो वास्तविक पुनर्निर्माणका कार्य नियमित रूपमें आगामी वर्षाऋतुके बाद ही शुरू हो सकता है; किन्तु फिलहाल खेतों और कुओंकी बालू साफ करनेका कार्य और

क्षतिग्रस्त मकानोंकी मरम्मत करनेका कार्य क्रमशः अग्रसर हो रहा है। इधर बिहार-प्रान्तके गवर्नरने मकान बनानेके सामान तैयार करनेवाले फर्मोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा की थी, जिसमें उन लोगोंसे कहा गया कि वे उत्तर-बिहारके चार शहरोंमें अपनी एजेन्सियाँ मुकर्रर करें। ये एजेन्सियाँ निर्धारित मूल्यपर मकान बनानेके सामान लोगोंको मुहय्या करेंगी। यदि कोई एजेन्ट निर्धारित मूल्यसे अधिक मूल्यपर सामान बेचेगा, तो उसकी एजेन्सी छीन ली जायगी। गवर्नरने प्रतिनिधियोंसे यह भी अपील की है कि वे इस परोपकारके कार्यमें अपना माल कुछ रियायती दरमें बेचनेकी कोशिश करें। इससे अन्ततः उन्हें भी लाभ होगा। इसमें सन्देह नहीं कि विध्वस्त नगरोंको फिरसे बसानेमें सबसे बढ़कर आवश्यकता मकान बनानेके सामानकी पड़ेगी, और इसके लिए जितनी ही अधिक सुविधाएँ पहुँचाई जायँगी, उतना ही यह कार्य सुगम होगा।

हमें आशा है कि सरकार और केन्द्रीय सहायक कमेटीके सहयोगके फलस्वरूप बिहार-प्रान्तके विध्वस्त स्थानोंका पुनर्निर्माण-कार्य सुसंगठित रूपमें अग्रसर होगा, और हम पहलेकी अपेक्षा सुन्दर, स्वस्थ और सुखप्रद नगरोंका निर्माण करनेमें समर्थ होंगे।

—

फिलीपाइनकी स्वाधीनता

फिलीपाइन-द्वीपपुंज बहुत दिनोंसे स्वाधीनता प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा था; किन्तु अभी तक उसकी यह आकांक्षा पूरी नहीं हुई थी। यों तो नाममात्रकी स्वाधीनता प्रदान करनेका प्रलोभन उसे कई बार दिया गया; किन्तु स्वाधीनताके जो अनन्य साधक होते हैं, वे अपने लक्ष्यसे थोड़े ही भ्रष्ट होते हैं। उनका तो सिद्धान्त होता है "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि।" फिलीपाइन अपनी साधनापर दृढ़ रहा और वास्तविक स्वाधीनताके लिए अनवरत संग्राम करता रहा। कोई भी प्रलोभन उसे अपने उच्चादर्शसे विचलित नहीं कर सका। अब इतने दिनोंके बाद उसकी साधना सफल होने जा रही है।

कुछ वर्ष पहले फिलीपाइनको स्वाधीनता प्रदान करनेके लिए अमेरिकाकी प्रतिनिधि-सभामें जो बिल पेश किया गया था, उसमें कुछ ऐसी शर्तें थीं, जिनसे फिलीपाइनपर अमेरिकाका किसी-न-किसी रूपमें प्रभुत्व बना ही रहता। प्रतिबन्धोंके साथ स्वाधीनता प्राप्त करना फिलीपाइनने आत्म-प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझा, इसलिए वहाँकी व्यवस्थापिका सभाने बिलके विरुद्ध प्रस्ताव पास किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिकाकी प्रतिनिधि-सभामें बिल स्थगित हो गया।

अब अमेरिकाकी प्रतिनिधि-सभामें राष्ट्रपति रूज़वेल्टने एक नया बिल पेश किया है। इससे पहले जो बिल पेश किया गया था, उसमें कहा गया था कि फिलीपाइन बारह वर्षमें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा और फिलीपाइनमें अमेरिका अपना स्थल-सेना और नौ-सेनाका केन्द्र स्थापित कर सकेगा। वर्तमान बिलमें ये शर्तें उठा दी गई हैं, क्योंकि इन्हीं शर्तोंके कारण फिलीपाइनकी व्यवस्थापिका सभाने पहले बिलको स्वीकार नहीं किया था। संशोधित रूपमें इस बिलको फिलीपाइन स्वीकार कर लेगा, इसकी पूर्ण सम्भावना है।

राष्ट्रपति रूज़वेल्टने कांग्रेसमें घोषणा करते हुए कहा है—"अमेरिका किसी दूसरे राज्यको हड़पनेकी आकांक्षा नहीं रखता और न वह यही चाहता है कि किसी विजित राष्ट्रकी इच्छाके विरुद्ध उसके ऊपर शासन किया जाय।" राष्ट्रपतिकी यह वाणी कितनी उदार और गौरवपूर्ण है। क्या कोई ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भी इस प्रकारकी उदार वाणी घोषित कर सकता है? यहाँ तो भारतवासियोंकी इच्छाके विरुद्ध ब्रिटिश राजनीतिज्ञ उनके ऊपर ज़बर्दस्ती शासन-विधान लादना चाहते हैं, हालाँकि सारे देशने एक स्वरसे उसका विरोध किया है! स्वाधीनताकी बात

तो दूर रही, ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अभी भारतको इस योग्य भी नहीं समझते कि वह औपनिवेशिक स्वराज्य या स्वायत्त-शासन प्राप्त करे। इंग्लैण्डके राजनीतिज्ञ यही चाहते हैं कि भारत सदाके लिए ब्रिटिश साम्राज्यका Hewer of wood and drawer of water (लकड़ी काटनेवाला और पानी भरनेवाला) बना रहे। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और वर्तमान ब्रिटिश सरकारके कर्णधारोंकी मनोवृत्तिमें कितना बड़ा अन्तर है।

—

अंगरेज़ी फ़ौज और उसका खर्च

राज-परिषद् (कौंसिल आफ़् स्टेट) में कैपिटेशन ट्रिब्यूनलके फैसलेको लेकर जो वाद-विवाद हुआ था, उसके उत्तरमें जंगीलाट सर फिलिप चेटउडने एक मार्केका भाषण दिया है। हम मार्केका भाषण इसलिए कहते हैं कि इसमें तर्क और युक्तिकी अपेक्षा सैनिकोचित रोबका ही आभास ज्यादा है। कैपिटेशन ट्रिब्यूनलके फैसले तथा भारतीय सेनाके संगठन और उपयोगके सम्बन्धमें जंगीलाटने बहुतसी बातें कह डाली हैं; पर उनमें एक भी ऐसी बात नहीं है, जिससे भारत-सरकारकी सैनिक नीतिके समालोचक अपनी राय बदलनेकी ज़रूरत समझें।

प्रश्न यह है कि भारतमें गोरी फ़ौज क्यों रखी जाती है? इसका उपयोग किन अवसरोंपर होता है, और इसका सारा ख़र्च किसे सहना चाहिए? क्या देशकी भीतरी शान्ति-रक्षाके लिए सचमुच गोरी फ़ौजकी ज़रूरत है? क्या भारतका सैनिक व्यय भारतवासियोंकी आर्थिक शक्तिके अनुरूप है? क्या ब्रिटिश साम्राज्यके स्वार्थके लिए भारतमें गोरी फ़ौज नहीं रखी जाती? इन सब प्रश्नोंके उत्तरमें जंगीलाटने जो कुछ कहा है, वह इतना सारहीन है कि उसपर विचार करना भी असंगत-सा जान पड़ता है। भला, जंगीलाटकी इस युक्तिपर कौन विश्वास कर सकता है कि भारतमें जो फ़ौज रखी जाती है, वह सिर्फ भारतकी रक्षाके लिए है, न कि साम्राज्यके स्वार्थके लिए। क्या सर फिलिप चेटउडने इंग्लैण्डके वर्तमान प्रधान-मन्त्री मि० रैमसे मैकडॉनल्डकी "Awakening in India" नामक पुस्तक नहीं पढ़ी है? उस पुस्तकमें तथा साइमन-कमीशनकी रिपोर्टमें यह बात स्पष्ट रूपमें स्वीकार की गई है कि भारतीय सेनाका उपयोग बहुत-कुछ साम्राज्यके स्वार्थके लिए होता है। खुद जंगीलाटके कथनसे यह मालूम होता है कि गत पचास वर्षोंके अन्दर सात बार भारतसे बाहर सेना भेजी गई। गत महासमरमें फ्रांसके समर-क्षेत्रमें भारतीय सेनाने जो वीरोचित कार्य किये थे, उनकी प्रशंसा ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने कई बार की है। अभी कुछ वर्ष पहले, सन् १९२६ में, जब संघाईमें उपद्रव हुआ था, व्यवस्थापिका परिषद्में प्रतिनिधियों द्वारा विरोध किये जानेपर भी भारतीय सेना संघाई भेजी गई। भारतीय सेनाका यह उपयोग साम्राज्यकी स्वार्थ-रक्षाके लिए नहीं है, तो और किसके लिए है? ब्रिटिश सरकारने भी इस बातको स्वीकार किया है कि पूर्वके देशोंमें किसी प्रकारका संकट उपस्थित होनेपर भारतीय सेना तैयार रहती है। ऐसी स्थितिमें क्या ब्रिटिश सरकारका यह कर्तव्य नहीं है कि वह भारतकी विशाल सेनाका आंशिक ख़र्च अपने ऊपर ले?

जंगीलाटकी दूसरी दलील यह है कि देशमें आन्तरिक शान्ति बनाये रखनेके लिए फ़ौजकी ज़रूरत पड़ती है। इस सम्बन्धमें उन्होंने सीमा-प्रान्तकी अफ़रीदी कौमका उपद्रव, लाल कमीजवालोंका आन्दोलन, वर्मा-विद्रोह, कानपुर और बम्बईके दंगे, देशी राज्योंमें उपद्रव तथा बंगालके आतंकवादियोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि ये सब उपद्रव यदि एक साथ ही देशमें उपस्थित हो जायँ, तो क्या हो? कई अवसरोंपर वे स्वयं इस बातको लेकर पशोपेशमें पड़ गये थे कि कहाँ फ़ौज भेजी जाय और कहाँ न भेजी जाय। जंगीलाटने यह भी कहा है कि यदि अंगरेशी फ़ौज

हटानेका प्रस्ताव किया जाय, तो सबसे पहले प्रान्तीय गवर्नर और उनके मिनिस्टर ही इसका विरोध करेंगे। उन्होंने भारतवासियोंको यह उपदेश दिया है कि देशमें पहले राष्ट्रीय एकता स्थापित करो। जब तक राष्ट्रीय एकता क़ायम नहीं होती, तब तक विभिन्न सम्प्रदाय परस्पर एक दूसरेके रक्तके प्यासे बने रहेंगे। विभिन्न सम्प्रदायोंको एक दूसरेका गला काटनेसे रोकनेके लिए अंगरेज़ी फ़ौजका रहना आवश्यक है। भीतरी शान्ति-रक्षाके लिए इतनी बड़ी तादादमें फ़ौज रखना आवश्यक है, यह बात किसी कदर भी युक्तिसंगत नहीं मानी जा सकती। देशमें ऐसे अवसर कदाचित ही उपस्थित होते हैं, जब कि किसी उपद्रवको शान्त करनेके लिए फ़ौजकी मदद ली जाय। आन्तरिक शान्ति बनाये रखनेका काम पुलिसका है, न कि फ़ौजका। यदि भीतरी शान्ति-रक्षाका काम भी फ़ौज द्वारा ही लिया जायगा, तो फिर पुलिस किस मर्ज़की दवा है? और, यदि हम यह मान भी लें कि किसी-किसी मौकेपर दंगा या विद्रोह शान्त करनेके लिए फ़ौजकी ज़रूरत पड़ती है, तो फिर इसके लिए अंगरेज़ी फ़ौज रखी जाय, और सो भी इतनी बड़ी तादादमें, इस बातका किसी प्रकार भी समर्थन नहीं हो सकता। रही राष्ट्रीय एकताकी बात, सो किन कारणोंसे विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच राष्ट्रीय एकता क़ायम होनेमें बाधा पहुँच रही है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। स्वयं जंगीलाट भी इन कारणोंको मन-ही-मन समझते होंगे। एक ओर साम्प्रदायिक निर्णयके द्वारा विभिन्न सम्प्रदायोंको पृथक् निर्वाचन और विशेष प्रतिनिधित्वका प्रलोभन देकर उन्हें एक दूसरेसे अलग रखनेकी कोशिश करना और दूसरी ओर राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय एकताकी बात करना हास्यास्पद ही जान पड़ता है। क्या जंगीलाट नहीं जानते कि इस तरहकी पुरानी दलीलें अब बिलकुल कारगर नहीं हो सकतीं तथा इनसे अंगरेज़ी फ़ौजका औचित्य सिद्ध नहीं हो सकता। सर फिलिप चेटउडकी इस युक्तिका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि जब तक देशमें राष्ट्रीयता-विरोधी कारण मौजूद हैं, तब तक राष्ट्रीय एकता क़ायम नहीं हो सकती, और जब तक राष्ट्रीय एकता नहीं होती, तब तक अंगरेज़ी फ़ौजकी अनिवार्य आवश्यकता बनी ही रहेगी—अर्थात् "न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेंगी।"

जंगीलाटने विदेशी आक्रमणका हौआ खड़ा करके राज-परिषद्‌के सदस्योंको भयभीत करनेकी कोशिश की है। भारतपर विदेशी आक्रमणका ख़तरा है; रूस या अफ़ग़ानिस्तान भारतपर आँख गड़ाये हुए हैं; इस तरहकी बातें तो हम बहुत दिनोंसे सुनते आ रहे हैं; मगर क्या सचमुच भारतके ऊपर यह ख़तरा है, या सेना-विभागके अधिकारियोंके उर्वर मस्तिष्ककी यह कल्पनामात्र है? जिस तरह यूरोपके War lords युद्धकी मिथ्या कल्पना खड़ा करके शस्त्रास्त्र तैयार करनेवाले कल-कारखानोंको प्रोत्साहन प्रदान करते हैं और अपनी राजनीतिक आकांक्षाओंकी पूर्तिका साधन ढूँढ़ा करते हैं, उसी प्रकार भारतमें भी कभी विदेशी आक्रमण, कभी आन्तरिक शान्ति-रक्षा और कभी कुछ, कभी कुछका बहाना लेकर अंगरेज़ी फ़ौजको क़ायम रखनेकी आवश्यकता बताई जाती है। तर्कके लिए यदि हम यह मान भी लें कि भारतके ऊपर विदेशी आक्रमणकी आशंका सर्वथा निर्मूल नहीं है, तथापि यह प्रश्न उठता है कि क्या भारतके साथ ब्रिटिश साम्राज्यका स्वार्थ-सम्बन्ध नहीं है? क्या भारतकी फ़ौजसे अनान्य प्राच्य देशोंमें साम्राज्यके स्वार्थकी रक्षा नहीं होती? क्या कोई भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस तथ्यको अस्वीकार कर सकता है? यदि भारतके साथ साम्राज्यका स्वार्थ अविच्छेद रूपमें सम्बद्ध है—जैसा कि हमें समय-समयपर बताया जाता है—तो क्या उस साम्राज्यका, जो भारतकी अपेक्षा कई गुना अधिक समृद्धिशाली है, यह कर्तव्य नहीं है कि वह भारत जैसे ग़रीब देशकी सैनिक रक्षाका भार अपने ऊपर ले? क्या ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी उपनिवेशमें गोरी फ़ौजकी शिक्षाके लिए उस उपनिवेशसे ख़र्च

वसूल किया जाता है ? मिस्रकी रक्षाके लिए दस हज़ार अंगरेज़ी फौज रखी जाती है। इसका ख़र्च कौन जुटाता है ? ब्रिटिश सरकार। जब मिस्रकी रक्षाके लिए ब्रिटिश सरकार अंगरेज़ी फ़ौजका व्यय-भार अपने ऊपर ले सकती है, तो फिर वह भारतकी अंगरेज़ी फ़ौजका व्यय-भार अपने ऊपर क्यों नहीं ले सकती ? क्या इसीलिए कि भारत-सरकार उसके अधीनस्थ है, और भारतवासियोंको अपने देशकी सैनिक नीतिमें कुछ भी चीं-चपट करनेका अधिकार नहीं है ?

कैपीटेशन ट्रीब्यूनलके फ़ैसलेके अनुसार भारतको गोरी फ़ौजके ख़र्चके लिए ब्रिटिश सरकारके खजानेसे प्रतिवर्ष पौने दो करोड़ रुपया मिला करेगा। अंगरेज़ी फ़ौजके ख़र्चको देखते हुए यह संख्या बहुत कम कही जा सकती है। युद्धके पहले सन् १९१३-१४ में गोरी फ़ौजकी मदमें भारतको ९१७,२८७ स्टर्लिंग ब्रिटिश सरकारको देना पड़ता था। युद्धकालमें यह संख्या ८७२,००० और ९३०,७०० स्टर्लिंगके बीच थी। इसके बाद सन् १९२१-२२ में सेनाके लिए १,९७६,०७८ और आकाश सेनाके लिए ९२,००० स्टर्लिंग और सन् १९२२-२३ में क्रमशः १,७०२,००० और ९५,५०० स्टर्लिंग देना पड़ा। सन् १९२३ में ब्रिटिश युद्ध-आफिससे २,२८३,००० पौण्ड की माँग पेश की गई थी। एक अंगरेज़ पैदल सैनिकको भरती करने और उसे सैनिक शिक्षा देनेमें जंगीलाटके कथनानुसार प्रतिवर्ष १९०½ पौण्ड ख़र्च पड़ता है। इस हिसाबसे अंगरेज़ी फ़ौजके ख़र्चमें भारतको एक बहुत बड़ी रक़म प्रतिवर्ष इंगलैण्ड भेजनी पड़ती है। इस बढ़े हुए ख़र्चकी तुलनामें ब्रिटिश सरकार द्वारा सिर्फ पौने दो करोड़ रुपया दिया जाना बहुत ही तुच्छ प्रतीत होता है। चाहिए तो यह था कि भारत-सरकार इससे अधिक रक़म पानेके लिए दावा करती और तब तक चैन नहीं लेती जब तक कि उसकी माँग पूरी न हो जाय; किन्तु जंगीलाटके भाषणसे यही आभास मिलता है कि इस सम्बन्धमें भारतको ब्रिटिश सरकारसे जो कुछ मिल गया, उसीपर उसे सन्तोष कर लेना चाहिए, और इस अनुग्रहके लिए ब्रिटिश सरकारका कृतज्ञ होना चाहिए। ट्रीब्यूनलके फैसलेके सम्बन्धमें जंगीलाटने कहा है कि मैंने कभी ऐसा कोई मोकदमा नहीं देखा, जिसमें विजयी पक्षकी ओरसे फैसलेके विरुद्ध अपील की जाय। किन्तु क्या सर फिलिप चेटउडने ऐसा कोई मोकदमा देखा है, जिसमें मोकदमेके फैसलेके लिए एक पक्ष द्वारा जज नियुक्त किये जायँ और दूसरे पक्षको इस नियुक्तिके सम्बन्धमें कुछ भी बोलनेका अधिकार न हो ? ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकारके बीच इस विवादके निपटारेके लिए यदि कोई निष्पक्ष अदालत बैठाई जाती, तो अवश्य ही उसका फैसला भारतके लिए मान्य हो सकता था; किन्तु यहाँ तो हम दूसरी ही बात पाते हैं। कैपीटेशन ट्रीब्यूनल किसके द्वारा नियुक्त किया गया था ? ब्रिटिश सरकार द्वारा। उसके सदस्योंमें ग़ैर-हिन्दुस्तानियोंका बहुमत था। दो हिन्दुस्तानी सदस्य सर मुहम्मद सुलेमान और सर शादीलालने अपनी मतभेदसूचक रिपोर्ट अलग दी थी, जिसे भारत-सरकारने अब तक प्रकाशित नहीं किया। इस प्रकारके ट्रीब्यूनलका फैसला हमारे लिए कदापि मान्य नहीं हो सकता।

अंगरेज़ी फ़ौजके ख़र्चके सम्बन्धमें भारतका दावा इतना न्यायोचित है कि इसका किसी प्रकार खण्डन किया ही नहीं जा सकता। भारतीय राजस्वका सैकड़े ३९·३ भाग सेना-विभागमें ख़र्च किया जाता है। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी उपनिवेशमें यह ख़र्च बीस फीसदीसे अधिक नहीं है। यूरोपके किसी-किसी देशमें तो यह ख़र्च आमदनीका सैकड़े १० वाँ भाग ही है। इतने बड़े ख़र्चका बोझ अकेले ग़रीब भारतवासियोंके ऊपर हो और इसमें सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्यका स्वार्थ-साधन हो, यह न्याय, नीति और औचित्य किसी भी दृष्टिसे युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता।

मुसोलिनीकी कूटनीतिकी विजय

इटलीके डिक्टेटर मुसोलिनीकी कूटनीतिकी विजय हुई, और इटली आस्ट्रिया और हंगरीके बीच एक राजनीतिक आर्थिक समझौता सम्पन्न हुआ। आस्ट्रियामें नाज़ीदलका प्रभाव और जर्मनीके साथ आस्ट्रियाके संयुक्त होनेकी सम्भावना देखकर मुसोलिनी इस बातके लिए उद्विग्न हो उठे थे कि जर्मनी और आस्ट्रियाका चिराकांक्षित मिलन किसी प्रकार चरितार्थ न हो सके। वर्साईकी सन्धिकी शर्तोंके कारण आस्ट्रियाकी आर्थिक दशा इतनी पंगु हो गई है कि उसके लिए किसी बड़े राष्ट्रका सहारा लिये बिना काम चल ही नहीं सकता, इसलिए आर्थिक लाभकी दृष्टिसे आस्ट्रियाके लिए जर्मनीके साथ मिलना वांछनीय था; किन्तु आस्ट्रिया और जर्मनीका यह प्रस्तावित मिलन मुसोलिनीकी आँखोंमें शूलकी तरह खटक रहा था। मुसोलिनीने अपनी कूटनीति द्वारा आस्ट्रियाके चान्सलर डा० डालफसको इस बातके लिए राज़ी किया कि जर्मनीसे वे जिन आर्थिक सुविधाओंकी आशा कर रहे हैं, वे सुविधाएँ उन्हें इटलीके साथ मित्रता करनेसे सहज ही प्राप्त हो सकती हैं, इसलिए बेहतर हो कि जर्मनीके साथ न मिलकर आस्ट्रिया इटलीके साथ मित्रता करे, और इस मैत्री बन्धनमें हंगरीको भी शामिल कर लिया जाय। मुसोलिनीका यह चकमा चान्सलर डा० डालफसके ऊपर काम कर गया। डा० डालफस आस्ट्रियाके जर्मन भक्त नाज़ीदलसे तो असन्तुष्ट थे ही। उन्होंने मुसोलिनीके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया, और फलस्वरूप इटली और आस्ट्रिया-हंगरीके बीच उक्त समझौता हुआ।

इस समझौतेसे फ्रांस और क्षुद्र मित्र शक्ति (Little Entente) विक्षुब्ध हो उठी है, और जर्मनी तो फूटी आँखों भी इसे सहन नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं कि मध्य-यूरोपके राष्ट्रोंके सामने यह एक नई समस्या उपस्थित हुई है, जिसका यूरोपकी भावी राजनीतिपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि इस त्रिगुट समझौतेमें यूरोपके भावी राजनीतिक कलहका बीज निहित है, जो निकट-भविष्यमें ही किसी न किसी समय अंकुरित होकर एक वृक्षका रूप धारण कर लेगा।

इटलीका उद्देश्य

मुसोलिनीने किस उद्देश्यसे इस समझौतेकी सृष्टि की है, यह समझना कठिन नहीं है। पहली बात तो यह है कि आस्ट्रियामें नाज़ीदलके प्रभावको बढ़ता हुआ देखकर मुसोलिनीने यह सोचा कि आस्ट्रियाके चान्सलर डा० डालफसकी स्थिति जैसी नाज़ुक हो रही थी, उसमें यदि हस्तक्षेप नहीं किया जायगा, तो किसी प्रकार भी नाज़ीदलका प्रभाव रुक नहीं सकता। दूसरी बात यह थी कि मध्य यूरोपमें फ्रांसके बढ़ते हुए प्रभावको भी इटली सहन नहीं कर सकता। मुसोलिनी इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि यद्यपि आस्ट्रियाके समाज-तन्त्रवादियों (Social Democrats) का पूर्णतया दमन कर दिया गया है, फिर भी वहाँके Heimwehr दल और डा० डालफसकी राजनीतिक स्थिति इतनी मजबूत नहीं कही जा सकती, जिससे वे नाज़ीदलके प्रभाव—विस्तारको रोक सकें, क्योंकि डा० डालफस और Heimwehr दलको आस्ट्रियाकी जनताका समर्थन बहुत कम प्राप्त है। इसलिए इटलीकी सहायतासे आस्ट्रियाकी वर्तमान सरकारको और उसकी नीतिको जर्मनी और क्षुद्र मित्र-राष्ट्रके विरुद्ध क़ायम रखा जाय। एक ओर तो आस्ट्रिया और हंगरीके बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करके इटली उसके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है, दूसरी ओर मुसोलिनी यह भी चाहते हैं कि यदि आस्ट्रिया-हंगरीके मिलनके लिए सम्भव हो, तो हैप्सबर्ग राजवंशकी भी पुनःप्रतिष्ठा की जाय। इस सम्बन्धमें वायनाके एक जानकार पत्रने लिखा है कि हैप्सबर्ग राजवंशके विरुद्ध जो क़ानून बना हुआ है, वह शीघ्र ही रद्द किया जानेवाला है। चाहे जो कुछ हो, किन्तु मुसोलिनीका यह आन्तरिक उद्देश्य जान पड़ता है कि आस्ट्रिया और

हंगरीके मेलके साथ-साथ इन दोनोंके ऊपर इटलीका प्रभुत्व क़ायम रहे।

जर्मनी

आस्ट्रियाके सम्बन्धमें इटलीके इस रुखको जर्मनी सन्देहकी दृष्टिसे देख रहा है अवश्य; किन्तु फिर भी नाज़ीदलको यह आशा है कि आस्ट्रियाको जर्मनीके पक्षमें मिलानेके लिए आन्दोलन करनेका मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ है। आस्ट्रियाके समाजतन्त्रवादियोंके दमन तथा डालफसका देशमें कोई विशेष प्रभाव नहीं होनेसे नाज़ीदलको अपने आन्दोलनका मार्ग और भी प्रशस्त दीख पड़ रहा है। जर्मनीका ध्यान इस समय विशेषत: ब्रिटेनकी ओर लगा हुआ है। जर्मनी यह चाहता है कि ब्रिटेन फ्रांसका साथ नहीं दे, क्योंकि यदि ब्रिटेनने इटलीके विरुद्ध फ्रांस और क्षुद्र मित्र-राष्ट्रका साथ दिया, तो इससे जर्मनीकी महत्त्वाकांक्षाके मार्गमें भी बाधा उपस्थित हो जायगी।

क्षुद्र मित्र-राष्ट्र

ज़ेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया और हंगरीके ऊपर इटलीका प्रभाव-विस्तार उतना ही नापसन्द करेगा, जितना आस्ट्रिया और जर्मनीका एकीकरण। जुगोस्लेविया भी इस त्रिगुट समझौतेको घोर आशंकाकी दृष्टिसे देख रहा है। उसकी यह आशंका यहाँ तक बढ़ी हुई है कि बेलग्रेडमें इस बातकी ओर झुकाव देखा जा रहा है कि जर्मनीके साथ मेल करके आस्ट्रिया-हंगरीका मिलन और उसके ऊपर इटलीका प्रभाव-विस्तार रोका जाय।

इस प्रकार मध्य यूरोपकी राजनीतिमें इस समय नाटकीय परिवर्तन हो रहे हैं, जिनका परिणाम दूरव्यापी हुए बिना नहीं रह सकता। बाहरसे तो शान्ति और निरस्त्रीकरणकी चर्चा चलर ही है, और भीतर-ही-भीतर सब राष्ट्र शस्त्रास्त्रोंसे अपनेको सुसज्जित कर रहे हैं। निकट-भविष्यमें युद्धकी कोई सम्भावना न होनेपर भी राष्ट्रोंकी यह समरसज्जा और उनके राजनीतिक दावपेच उन्हें किधर लिये जा रहे हैं, यह अनुमान करना कठिन नहीं।

सम्मेलनके दो उपयोगी प्रस्ताव

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके दिल्लीवाले अधिवेशनमें अनेक प्रस्ताव पास हुए हैं। उनमें दो निम्न-लिखित हैं :—

प्रस्ताव नं० ११

यह सम्मेलन हिन्दी-भाषा-भाषी जनताका ध्यान आकर्षित करता हुआ अनुरोध करता है कि हिन्दी-साहित्यकी उन्नतिके लिए समय-समयपर सभा-सम्मेलन, जयन्ती, उत्सव तथा वसन्तोत्सव जैसे अनुष्ठानों द्वारा जनतामें हिन्दीके प्रति अनुराग बढ़ानेका प्रयत्न होना आवश्यक है। स्थायी समिति इस प्रस्तावको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए समय-समयपर उन तिथियोंके सम्बन्धमें सूचना प्रकाशित करती रहे।

प्रस्ताव नं० १२

राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी विस्तृत अभिवृद्धि और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कार्यों और उद्देश्योंका सुसंगठित प्रचार करनेकी दृष्टिसे यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि प्रत्येक प्रान्तमें प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन और महत्त्वपूर्ण बोलियोंके क्षेत्रमें मंडल-सभाएँ स्थापित की जायँ, जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे सम्बद्ध होकर व्यवस्थित रीतिसे निरन्तर कार्य करती रहें।

वसन्तोत्सव-सम्बन्धी आन्दोलन 'विशाल भारत' द्वारा ही उठाया गया है, और प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनों और मंडलोंकी स्थापनाका प्रस्ताव भी सर्वप्रथम इसी पत्रने किया था। आशा है कि सम्मेलनके अधिकारी इन प्रस्तावोंको जहाँका तहाँ न छोड़कर उनके अनुरूप कार्य भी करेंगे। जनताका कर्तव्य है कि वह उनका साथ दे।

कबीर-मेला

सद्धर्म-प्रचारक कबीर-महासभाके छटवें वार्षिक अधिवेशनमें, जो मिश्रिख सीतापुरमें हुआ था, निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया गया था—

"यह महासभा पूज्य बाबा राघवदासजीके

'कबीर-मेला' वाले प्रस्तावका, जिसके विषयमें मासिक पत्र 'विशाल भारत'में बराबर आन्दोलन किया जा रहा है, हार्दिक समर्थन करते हुए सहानुभूति प्रकट करती है, और अपने कबीर-पंथी भाइयोंसे अनुरोध करती है कि वे इस महान कार्यमें यथोचित सहायता देते रहें।"

हमें यह देखकर हर्ष है कि कबीर साहबके अनुयायियोंने श्रीमान् बाबा राघवदासजीके प्रस्तावको अपना लिया है। आशा है कि बाबाजी अब इस कार्यको अग्रसर करनेके लिए भरपूर प्रयत्न करेंगे। 'शुभस्यशीघ्रं' सिद्धान्तके अनुसार इस मेलेका ठीक प्रकारसे संगठन हो जाना चाहिए। जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं, मेलेके पहले कबीर साहबके सत्साहित्यके प्रचारके लिए पर्याप्त उद्योग होना आवश्यक है। जो महानुभाव इस विषयमें कुछ परामर्श अथवा अन्य किसी प्रकारकी सहायता देंगे, उनके हम कृतज्ञ होंगे।

—

स्वर्गीय सय्यद ज़हुरुल्लहुसैन हाशमी

मौलवी हाशमी साहबकी मृत्युका समाचार पढ़कर हमें हार्दिक दुःख हुआ। उनके सत्संगका सौभाग्य हमें अनेक बार प्राप्त हुआ था, और पिछली बार तो उन्होंने सम्माननीय अथितिके तौरपर बीस-बाईस दिन हमारे घरपर ही ठहरकर हमें अपने सरल स्वभाव, उज्ज्वल देशभक्ति और निस्स्वार्थ सेवा-भाव तथा निष्कपट बन्धुत्वका भरपूर परिचय दिया था। साम्प्रदायिकताका उनमें नामोनिशान नहीं था और न उनके हृदयमें लीडरीकी कुछ ख्वाहिश थी। जब कोई ग़रीब मुसलमान देशकी सेवा करना चाहता है, तो उसके मार्गमें जो-जो संकट आते हैं, उनका हमने तब तक अनुमान भी नहीं किया था, जब तक हमने हाशमी साहबके दर्शन नहीं किये। एक ओर तो फिरकेपरस्त मुसलमान उसे काफिरोंका संगी साथी—काफिरोंका ज़रखरीद—समझकर उसकी निन्दा करते हैं, और दूसरी ओर कुछ अदूरदर्शी हिन्दू लोग भी उसपर अविश्वास करते हुए कहते हैं—"ज़रूर ही यह कोई बना हुआ आदमी है! मुसलमानोंमें सच्ची देशभक्ति हो ही नहीं सकती।" इस प्रकार दोनों ओरसे उपेक्षित होनेपर उस निर्धन मुसलिम राष्ट्रीय कार्यकर्ताकी आत्माको असह्य कष्ट और भयंकर ग्लानि सहनी पड़ती है, और मामूली आदमी तो हिम्मत हारकर फिर फिरकापरस्त बन जाते हैं। मौलवी हाशमी साहब अत्यन्त निर्धन व्यक्तियोंमेंसे थे। हमने उन्हें कलकत्तेमें छै मील पैदल चलकर अपने पास आते हुए देखा था। हाशमी साहब अकसर मुसकराते हुए आकर कहते—"माफ कीजिये, कुछ देर हो गई, ज़रा दूरपर ठहरा हुआ हूँ, यही वजह है।" प्रायः उनकी जेबमें एक पैसा भी न होता था, ट्रेममें आते, तो कैसे आते। सुना है कि अगर उनके घरपर कोई मेहमान आ जाता, तो उसको खिलाकर कभी-कभी वे खुद भूखे पेट सो जाते थे! हमारे कितने ही पाठकोंको यह बात न मालूम होगी कि मौलवी साहब आल इंडिया कांग्रेस कमेटीके मेम्बर थे। देशके स्वाधीनता-संग्राममें उन्होंने कई वर्ष तक भाग लिया था और कई बार सरकारके अतिथि रह चुके थे; पर मौलवी साहब अपनेको मामूली सिपाही ही समझते थे, उन्हें आडम्बरसे घृणा थी, अभिमान उनसे कोसों दूर रहता था।

एक दिन उन्होंने आकर कहा—"पंडितजी, आज तो हमने खासी फटकार खाई! आपके हिन्दू-मुसलिम एकतावाले लेखको लेकर अमुक पत्रके सम्पादकके पास गया, तो उन्होंने हमें खूब डाँट बतलाई—"आप अपने मुसलमान भाइयोंको जाकर क्यों नहीं समझाते? हम हिन्दुओंके पास बार-बार क्यों आते हैं?" राष्ट्रीयताका दम भरनेवाले हिन्दुओंसे उन्हें इस प्रकार कितनी ही बार अपमानित होना पड़ा था; पर एक घटनासे, जो उन्होंने हमें सुनाई, हम दंग रह गये।

मौलवी साहबने कहा—"मैं एक हिन्दू भाईके यहाँ ठहरा हुआ था। वे खुद तो भले आदमी थे; पर उनके घरवाले उतने उदार विचारोंके नहीं थे।

एक दिन शौच जानेके बाद मैंने गलतीसे उनके लोटेसे हाथ धो लिये, इसपर उनकी धर्मपत्नीने मुझे बड़ी डाँट बतलाई—'हमारा सब धरम-करम नष्ट कर दिया। ऐसा मलेच्छपन फैलाया है !' यही नहीं अपने नौकरसे भी हमें फटकार दिलवाई !" यह सुनकर हमें बड़ी शर्म आई और हमने कहा—"मौलवी साहब, सैकड़ों वर्षोंके संस्कार हैं। यह जहालत धीरे-धीरे ही दूर होगी। आप इससे बुरा न मानिये। हम हिन्दुओंने आदमीको आदमी नहीं समझा, इसीसे तो हम सदियोंसे गुलामीके बन्धनमें बँधे हुए रहे हैं। मौलवी साहब, आप इस अपराधके लिए आप हम लोगोंको क्षमा कीजिये, इसे दिलमें न रखिये।"

हाशमी साहब इतने उदार विचारोंके थे कि उन्होंने इस तरहकी घटनाओंसे अपने जीवनमें कटुता नहीं आने दी थी। हिन्दुओंकी निन्दा करनेके बजाय वे मुसलमानोंकी साम्प्रदायिकताकी ही निन्दा करते थे। अपनी पुस्तक 'कुरान और धार्मिक मतभेद'की भूमिकामें उन्होंने हिन्दू-मुसलमानोंकी सांस्कृतिक एकताके लिए बहुत-कुछ लिखा था।

इस एकताके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना उन्होंने अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया था। हमारी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि कभी हम और वे सालभर साथ रहकर इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कुछ काम करें। इसके लिए हमने अपने मनमें निश्चय और प्रबन्ध भी कर लिया था। कुछ लिखापढ़ी करने भरकी देर थी। उस दिन अकस्मात उनके स्वर्गवासका समाचार पढ़कर हृदयको बड़ा धक्का लगा। सारे मनसूबे ख़ाकमें मिल गये। दिलमें यही ख़याल आया कि जो कुछ शुभ काम करना हो उसे जल्दी ही करना चाहिए। उसमें दीर्घसूत्रता करना भयंकर पाप है।

मौलवी साहब निस्सन्तान मरे। उनकी निस्सहाय विधवाकी सहायता करना, जिससे कि वे भूखों न मरने पावें, प्रत्येक राष्ट्रप्रेमीका कर्तव्य है।

'विशाल भारत'के पाठकोंसे प्रार्थना

'विशाल भारत'के इस अंकमें प्रकाशित 'कस्मै देवाय' शीर्षक लेखकी ओर हम अपने पाठकों और लेखकों तथा कवियोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। आशा है कि 'विशाल भारत'के अनेक प्रेमी उसके विचारोंको पसन्द करेंगे। इस लेखके द्वारा हमने अपने दृष्टिकोणको बिलकुल साफ तौरपर जनताके सम्मुख रख दिया है। हम यह जानते हैं कि पत्रको पूर्णतया उक्त आदर्शपर ले जानेमें अनेक कठिनाइयाँ हैं। पाठकोंकी रुचिमें परिवर्तन करना आसान काम नहीं। जो लोग बहुत हलके चटपटे साहित्यके अभ्यस्त हो गये हैं, वे ठोस सात्विक साहित्यको धीरे-धीरे ही पसन्द कर सकते हैं। फिर भी जो पत्रकार साधारण जनताकी सेवा करना ही अपने जीवनका लक्ष्य समझते हैं, वे लोगोंकी पसन्दगी और नापसन्दगीकी परवा नहीं करते। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि थोड़े समय बाद हमारी अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ किसान-मज़दूरोंके हितको ही सर्वप्रधान समझकर उनकी सेवा करना परम धर्म मानने लगेंगी। 'विशाल भारत' इसी उद्देश्यको सामने रखकर उपर्युक्त पथपर अग्रसर होता है।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
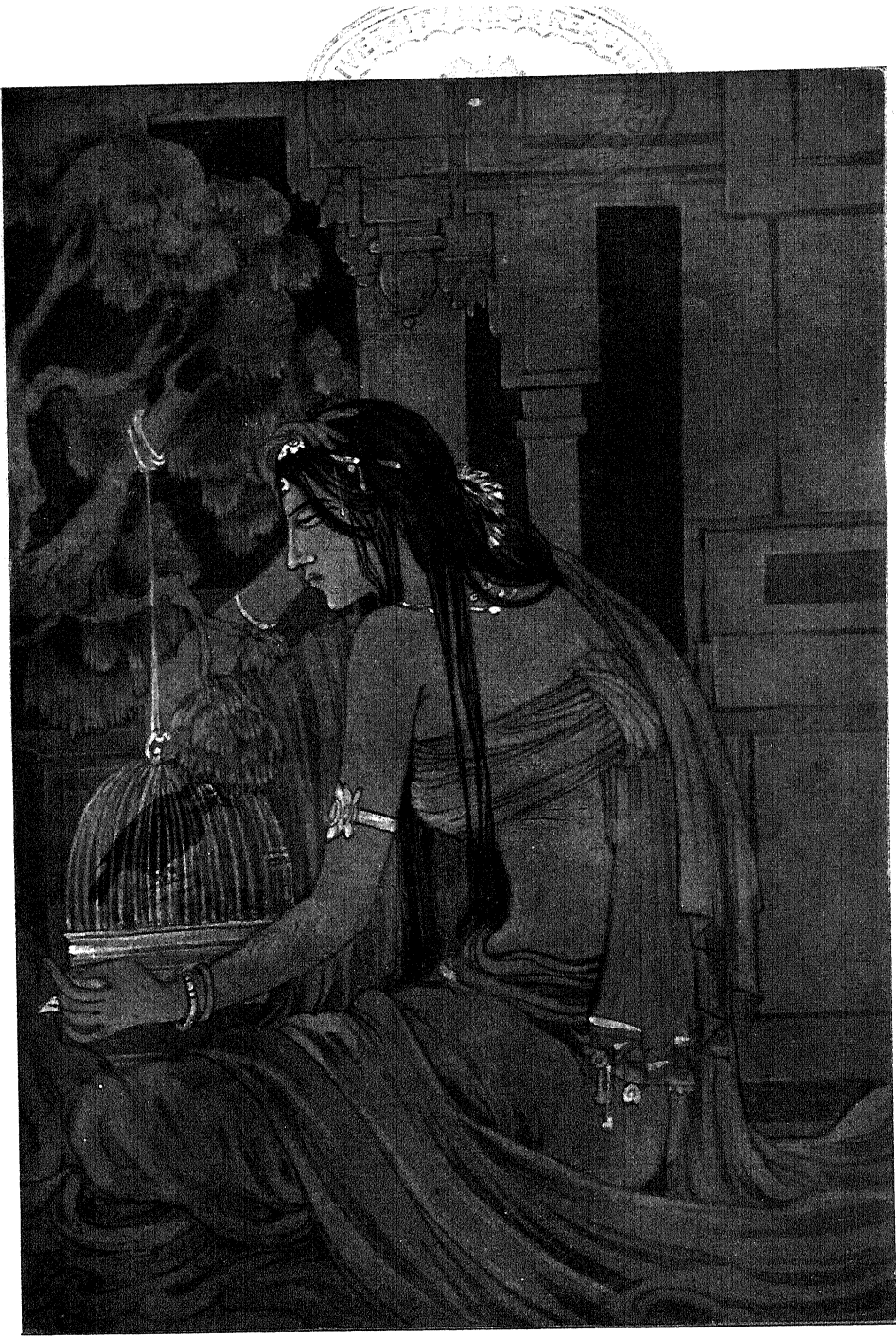
यक्षपत्नी

[श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

'विशाल भारत'

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १३, अंक ५] जेठ १९९१ :: मई १९३४ [पूर्ण-अंक ७७.

सत्याग्रह

प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति
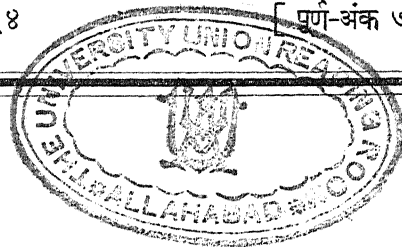
(१) सत्याग्रहका अर्थ

'सत्याग्रह' का अर्थ समझनेके लिए हमें यह जाननेकी आवश्यकता नहीं है कि 'सत्य क्या है ?' यह एक अलग प्रश्न है। सत्य मूलवस्तु है, और उसके लिए आग्रह मनकी एक वृत्ति है। प्रत्येक मनुष्य जिसे सत्य समझता है, हम उसीको सत्य मान लेते हैं, और उस माने हुए सत्यके लिए आग्रह कहाँ तक और कैसे किया जा सकता है, उसकी कौनसी सीमा है, इन्हीं प्रश्नोंके उत्तरके लिए यह निबन्ध लिखा जा रहा है। शायद हमारे बहुतसे पाठक इस मतसे सहमत न होंगे कि सत्य एक सापेक्षिक वस्तु है। पर हम इस समय किसी पाठकसे झगड़ना ही चाहते हैं। हम तो इस निबन्धके लिए स्वीकार कर लेते हैं कि प्रत्येक मनुष्य ईमानदारीसे जिस वस्तुको सत्य मानता है, उस समय वही उसके लिए सत्य है। उस सत्यपर बाहरसे आक्रमण होते हैं। आक्रमण कई प्रकारके होते हैं। एक मनुष्य ईश्वरमें विश्वास रखता है—विज्ञान और तत्वज्ञानके आचार्योंकी विचार-रूपी सेनायें उसके विश्वासपर आक्रमण करती हैं। उस समय वह क्या करे ? विरोधी विचारोंको सुने या नहीं ? यदि विरोधी विचारोंसे अपना विश्वास-रूपी दुर्ग गिरता हो, तो आग्रहपूर्वक उसकी रक्षा करे, या विरोधीके लिए द्वार खोल दे ? एक मनुष्यने ईमानदारीसे कमाकर पूँजी जमा की है—वह उसकी मेहनतका फल है। उसके लिए सबसे बड़ा सत्य यही है कि वह उस पूँजीका मालिक है। चोर, डाकू या राजकर्मचारी उसे लूटने आते हैं। वह क्या करे ? अपनी वस्तुकी आग्रहपूर्वक रक्षा करे, या 'विश्वप्रेम' के प्रवाहमें बहकर लुटेरोंको कहे कि 'लूट लो।' व्यक्तिकी तरह जातियोंके लिए भी 'सत्य' हो सकते हैं। हरएक व्यक्ति और जातिके अधिकार उसके लिए सत्य हैं। उस सत्यके लिए कहाँ तक और किस विधिसे आग्रह किया जा सकता है, इस निबन्धमें इन्हीं प्रश्नोंपर विचार करना है।

(२) सत्याग्रहकी शर्तें—(क) ईमानदारीसे विश्वास

'सत्याग्रह' शब्द 'सत्य' और 'आग्रह' इन दो शब्दोंसे बना है। सत्यपर आग्रह करना, उसपर डट जाना, विचलित हुए बिना उसपर दृढ़ रहना—सत्याग्रह कहलाता है। उसपर आग्रह किया जाय, इससे पहले आवश्यक है कि आग्रह करनेवाला व्यक्ति या समाज हृदयको टटोलकर देखे कि जिसे वह सत्य समझ रहा है, वह केवल उसके मनकी मौज या बनावट ही तो नहीं है। सत्य और ईमानदारीमें कोई भेद नहीं है। सत्याग्रहकी तहमें जो पहली वस्तु होनी चाहिए, वह ईमानदारी है। हमने बग़ैर सोचे-विचारे या सुनी-सुनाई बातके आधारपर कोई सम्मति दे डाली। अब

उसपर लड़ने और मरनेको तैयार हो गये। यह सत्याग्रह नहीं है। जिस वस्तुपर हमारा विश्वास नहीं है, उसके लिए आग्रह करना अपने-आपको और दुनियाको धोखा देना है।

(ख) दूसरेके अधिकारपर आक्रमण न हो

प्रत्येक अधिकारकी यही विशेषता और यही सुन्दरता है कि वह सबके लिए समान होता है। जो अधिकार एकको प्राप्त हो, दूसरेको नहीं—वह अधिकार नहीं है, उसे रियायत कहना चाहिए। उसकी तहमें या तो धूर्तता होगी, या ज़बरदस्ती। अधिकार वही है, जो सबपर समानतासे लागू हो सके। यदि मैं चाहता हूँ कि मुझे अपने धार्मिक विचारोंपर चलने या उसके प्रचार करनेका अधिकार हो, और उस अधिकारपर आग्रह करनेको भी उद्यत हूँ, तो यह देखना आवश्यक होगा कि क्या मैं दूसरोंको वही अधिकार देनेको उद्यत हूँ। यदि उद्यत हूँ, तो मैं अधिकार चाहता हूँ—यदि उद्यत नहीं हूँ, तो मैं या तो रियायत चाहता हूँ, या दूसरोंके अधिकारपर डकैती। दोनों ही दशाओंमें मेरा उसके लिए सत्याग्रहका कोई अधिकार नहीं है। एक जाति अपनी राजनीतिक सत्ताकी रक्षा या प्राप्तिके लिए सत्याग्रह करनेको उद्यत होती है। हमें देखना यह है कि क्या वह जाति किसी दूसरी जातिके राजनीतिक अधिकारोंको दबाकर तो नहीं बैठी है, या उसका लक्ष्य अपने अधिकारोंकी रक्षाके नामपर दूसरेके अधिकारोंको हड़पना तो नहीं है। जो जाति स्वयं अधिकार चाहती है और दूसरोंके अधिकारोंको दबाना चाहती है, उसका कोई यत्न सत्याग्रह नहीं कहला सकता। वह तो दुराग्रह या बलात्कार ही कहलायेगा। सत्याग्रह एक विश्वव्यापी उसूलके लिए हो सकता है, स्वार्थके लिए नहीं। इस दृष्टिसे सत्याग्रहीका हरएक युद्ध विश्व-भरके लिए है, क्योंकि वह केवल अपने लिए नहीं लड़ता, प्रत्युत संसार-भरके लिए लड़ता है।

(ग) सदा समझनेको तैयार

जो मनुष्य सत्यपर इस कारण आग्रह करता है कि उसे सत्यसे प्रेम है, वह अपने हृदयको सत्यके लिए सदा खुला रखता है, वह कभी इस भ्रान्तिमें नहीं पड़ सकता कि उसने सारे सत्यको जान लिया है—उसके आगे सत्य है ही नहीं। सत्यके मुँहपर कपाट बन्द करना दुराग्रहीका काम है। सत्याग्रह और हठमें यही भेद है। सत्याग्रही सदा समझनेके लिए उद्यत रहता है, और हठधर्मीने जो रास्ता पकड़ लिया, उसे छोड़नेको तैयार ही नहीं होता। कुछ लोग इसे निर्बलता समझते हैं—वस्तुतः यही सत्याग्रहीका बल है। जिसे वह सोच-विचारकर सत्य मान लेता है, उसके लिए प्राण तक देनेको तैयार रहता है; परन्तु यह कभी नहीं समझता कि सत्य मुझ तक ही समाप्त हो गया। सत्य किसी मनुष्य तक समाप्त हो सकता है, यही सबसे बड़ा असत्य है। सत्याग्रहीको अपना हृदय सत्यके लिए सदा खुला रखना चाहिए। जो सत्यसे इनकार करे, वह सत्याग्रही कैसा?

(२) निश्चेष्ट सत्याग्रह

अपने अधिकारपर जमे रहना सत्याग्रह है। जमे रहनेका अभिप्राय यह है कि हुक्मसे, धमकीसे या अत्याचारसे न डरना और कठोर-से-कठोर कष्ट सहकर भी अधिकारकी रक्षा करना। बच्चेसे लेकर बूढ़े तक और गरीबसे अमीर तक सभीके लिए ऐसे सत्याग्रहके अवसर आते रहते हैं। घरमें और सामाजिक जीवनमें समान रूपसे इसका स्थान है। एक लड़केको स्कूलके साथी किसी शरारतमें शामिल करना चाहते हैं। वह शामिल नहीं होना चाहता। साथी उसे डराते हैं, धमकाते हैं, तंग करते हैं; परन्तु वह फिर भी अपने संकल्पपर दृढ़ रहता है। सब साथी उससे बोलना छोड़ देते हैं, तंग करते हैं; परन्तु वह परवा नहीं करता। सब कष्ट सहन करता है; परन्तु अपनी बातपर क़ायम रहता है, यह प्रारम्भिक और निश्चेष्ट सत्याग्रह है। वह साथियोंके उत्तरमें कोई नई बात

नहीं करता—वह उनके विरुद्ध कोई आन्दोलन खड़ा नहीं करता, केवल अपनेपनको निभाता है। भक्त प्रह्लाद, मीराबाई आदिके दृष्टान्त इसी प्रकारके सत्याग्रहके हैं। वे अपने सत्यपर जमे रहे, यद्यपि उनके प्राणोंपर आ बनी। अत्याचार करनेवाला चाहे कोई व्यक्ति हो, बिरादरी हो, समाज हो, या हुकूमत हो—वह व्यक्ति, जिसे बलात्कार द्वारा अपने निर्णीत मार्गसे हटानेका यत्न किया जाता है, यदि स्वयं ही उस बलात्कारको सहता रहे, तो उसे हम निश्चेष्ट सत्याग्रह कहेंगे। उसमें सत्याग्रही अपने मार्गपर जमे रहनेके सिवा दूसरे किसी मार्गका अवलम्बन नहीं करता। वह अत्याचारीके विरुद्ध किसी प्रकारका भी आक्रमण नहीं करता।

जैसे एक व्यक्ति निश्चेष्ट सत्याग्रह कर सकता है, वैसे ही एक व्यक्ति-समूह या समाज भी निश्चेष्ट सत्याग्रह कर सकता है। वह बलात्कार या अत्याचारकी परवा न करके अपने मार्गपर चला जाता है—उत्तर कुछ नहीं देता।

(४) अहिंसा

सत्याग्रह और अहिंसाका परस्पर सम्बन्ध निश्चित करनेसे पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि हिंसा और अहिंसाके ठीक अर्थ क्या हैं? हिंसाका शब्दार्थ तो दर्शनकारके इस वाक्यमें आ जाता है—'परपीडनं हिंसा'—दूसरेको पीड़ा देनेका नाम हिंसा है। हमारे इशारेसे, शब्दसे, चेष्टासे या शस्त्र-प्रयोगसे—किसी प्रकारसे भी दूसरेको कष्ट हो, तो उसे हिंसा कहा जायगा। यह तो शब्दार्थ है; परन्तु आचारशास्त्रमें केवल शब्दार्थसे काम नहीं चल सकता। पाप और पुण्य—कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका निर्णय केवल धात्वर्थसे करना असम्भव है। हिंसाको पाप बतलाया गया है; परन्तु कई अवस्थाओंमें दूसरेको पीड़ा देना ही पुण्य कहलाता है। बच्चोंको शिक्षा देनेके लिए झिड़कना या कान उमेठना कई बार अनिवार्य हो जाता है। रोगीको नीरोग करनेके लिए कड़वी दवा देनी पड़ती है। मनुष्य समाजको कष्ट देनेवाले दस्युओंको दण्ड देना पड़ता है। गहरे फोड़ेको चीरना पड़ता है। इन सभी कार्योंमें 'परपीड़न' है। केवल शब्दार्थ लें, तो यह भी हिंसामें ही हैं; परन्तु इन्हें पाप नहीं कहा जा सकता। कारण यह कि इन कार्योंका उद्देश्य दूसरेको कष्ट देना नहीं, अपितु कष्ट निवारण करना है। काँटेकी घोर पीड़ाको दूर करनेके लिए जो सूई पैरमें चुभोई जाती है, वह कष्ट तो अवश्य देती है; परन्तु वह अधिक कष्टका निवारण करती है, इस कारण वह हिंसा हो, तो भी पाप नहीं है। यदि हिंसा पाप है, तो हम कह सकते हैं कि हिंसा उस परपीड़नका नाम है, जिसका उद्देश्य दूसरेके कष्टका निवारण न हो। समाजके या उस व्यक्तिके कष्टका निवारण करनेके लिए जो कष्ट दिया जाता है, वह आचारशास्त्रकी दृष्टिसे पाप नहीं हो सकता। यदि हरएक 'परपीड़न' का नाम हिंसा रखना ही हो, तो हम कहेंगे कि प्रत्येक हिंसा पाप नहीं है; केवल वही हिंसा पाप है, जिसका उद्देश्य सारे समाज या उस व्यक्तिके बड़े कष्टका निवारण न हो, जिसके साथ वह सलूक किया जा रहा हो। जो हिंसा औषधिरूपमें प्रयोगमें लाई जाय, वह पाप नहीं है। अहिंसाके आचार्य महात्मा गांधीने अपने आश्रममें एक बीमार बछड़ेको कष्टसे छुड़ानेके लिए जानसे मरवा डाला था। लोगोंने इसपर कोलाहल किया। उस कोलाहलका कारण केवल यह था कि वे हिंसा और अहिंसाके अभिप्रायको नहीं समझते थे। बछड़ेके प्राण गये; पर वह बहुत बड़े कष्टसे बच गया, इस कारण उसका मारना पाप नहीं—पुण्य था।

क्योंकि हिंसाको पाप कहा है, और बड़े कष्टके निवारणके लिए छोटे कष्टका निवारण पाप नहीं है, इस कारण हम उसे हिंसा न कहकर तीव्र औषधि-प्रयोग या उपचार ही कहेंगे। वह हिंसा नहीं—वह कष्टका इलाज है।

(५) निश्चेष्ट सत्याग्रह और अहिंसा

ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट है कि निश्चेष्ट सत्याग्रहमें हिंसाकी कोई सम्भावना नहीं है। निश्चेष्ट सत्याग्रही

लोक-प्रसिद्ध अर्थोंके अनुसार भी हिंसक नहीं हो सकता। वह कोई नई बात नहीं करता। जो मार्ग उसे पसन्द है, उसपर चलता है। दूसरेको सीधे रास्तेपर लानेके लिए वह सत्याग्रहका आक्रमण नहीं करता, प्रत्युत अपने मार्गपर चला जाता है, और जो कष्ट आते हैं, उन्हें उठाता है।

कहा जा सकता है कि प्रह्लादके भगवत-भजनसे हिरण्यकशिपुको दु:ख होता था—यह भी हिंसा थी; परन्तु लोक-व्यवहारके अनुसार भी इसे हिंसा नहीं कह सकते। यदि हिरण्यकशिपुके चिढ़ानेके लिए, खास उसके सामने आकर प्रह्लाद 'नारायण'का नाम लेता, तो उसे हिंसा कह सकते थे; परन्तु जो आदमी दूसरेके व्यवहारमें ऐसी वस्तुएँ तलाश करके, जो अपने लिए अप्रिय हैं, दु:खी होता है, उसके दु:खके लिए दूसरा उत्तरदायी नहीं हो सकता। निश्चेष्ट सत्याग्रहमें हिंसाका कोई लेश नहीं है, फिर वह हिंसा शब्द चाहे व्यावहारिक अर्थोंमें प्रयुक्त किया जाय, चाहे आचारशास्त्र-सम्बन्धी अर्थोंमें।

(६) सचेष्ट सत्याग्रह

अब हम सचेष्ट सत्याग्रहपर आते हैं। हम अपने ढंगपर ईश्वर-पूजा करते हैं, दूसरा आदमी, या बिरादरी, या कोई समाज हमारे उस ढंगको पसन्द नहीं करता। वह बलपूर्वक हमें दूसरे ढंगपर लाना चाहता है। यदि हम केवल इतनेपर ही सन्तोष करें कि हर प्रकारके कष्टको सहते हुए भी अपने पूजाके ढंगपर क़ायम रहें, तो वह निश्चेष्ट सत्याग्रह रहेगा; परन्तु हम विरोधीकी इच्छाशक्तिके दमनके लिए उसके सामने, सबके सामने, बार-बार अपने उस कार्यको दुहराते हैं। हम अत्याचारीको डंकेकी चोटसे चैलेंज देते हैं। हम कहते हैं कि हम वैसा ही करेंगे, जैसा हम चाहते हैं। आओ, तुम हमें रोको। हमें एक विशेष तरहकी टोपी पहननेसे रोका जाता है। हम वैसी ही टोपी पहनकर विरोधीके सामनेसे गुज़रते हैं। हम अपने कार्यसे उसे आह्वान करते हैं, और कहते हैं कि हम सैकड़ों कष्ट सहकर अपने अधिकारको न छोड़ेंगे। यह सचेष्ट सत्याग्रह है। हम एक प्रकारसे विरोधीपर अपने सत्यका आक्रमण करते हैं। राज्यकी ओरसे कोई ऐसा क़ानून प्रचारित होता है, जिसे प्रजा अन्याययुक्त समझती है। प्रजा चिल्लाती है, तो कोई सुनता नहीं। तब प्रजा चिल्लाना छोड़कर उस अन्याययुक्त क़ानूनको तोड़नेका प्रण करती है। राज्यकी ओरसे जो दण्ड मिलता है, उसे सहर्ष स्वीकार करती है। यदि राज्य इसपर भी सीधे रास्तेपर नहीं आता, तो प्रजा उस राज्यके सब अन्याययुक्त क़ानूनोंको तोड़ने लगती है। क़ानून तोड़नेसे पहले राज्यको सूचना दी जाती है कि हम अन्यायी राज-नियमको तोड़ेंगे, जो करना चाहो, कर लो। यह सचेष्ट सत्याग्रह है। प्रजा केवल चुपचाप अन्यायके फलको बर्दाश्त नहीं करती। वह अन्यायसे लड़नेके लिए नये-नये रास्ते निकालती है, अन्यायीको चैलेंज देकर मैदानमें डटती है। यह सचेष्ट सत्याग्रह है। इसे हम असत्यपर सत्यका आक्रमण कह सकते हैं।

(७) सचेष्ट सत्याग्रह और अहिंसा

यह तो स्पष्ट है कि इस सत्याग्रहमें बहुतसे कार्य ऐसे करने पड़ते हैं, जिनसे सत्याग्रहीके विरोधीको मानसिक कष्ट हो। वह जिस वस्तुको नापसन्द करे, जिससे दु:खित हो, उसीको करना सचेष्ट सत्याग्रहीका कर्तव्य हो जाता है। हमने देखा है कि लोक-व्यवहारके अनुसार दूसरेको पीड़ा पहुँचाना ही हिंसा समझा जाता है। 'पीड़न' एक मानसिक क्रिया है। इशारा, वाक्य या शस्त्र—इन सभी साधनोंसे पहुँचाई चोट पीड़ा कहलायेगी। सत्याग्रहीके शब्दोंसे और कार्योंसे विरोधीको थोड़ी-बहुत पीड़ा होना तो आवश्यक ही है। लोक-व्यवहारके अनुसार उसे हिंसा कह सकते हैं; परन्तु आचारशास्त्रके अनुसार उसे हिंसा कहना अशुद्ध है। सत्याग्रहीका उद्देश्य विरोधीको पीड़ा देना नहीं, अपने अधिकारकी रक्षा करना और विरोधीको यह अनुभव कराना है कि वह दूसरेके अधिकारको छीनकर एक अत्याचार कर रहा है। कोई कार्य स्वयं बुरा या

भला नहीं, जिस उद्देश्यसे वह किया जाता है, उसीसे उसकी परीक्षा होती है। यदि दूसरेके अधिकारको छीननेके लिए एक इशारा भी किया जाय, तो वह महापाप है; परन्तु यदि अपने अधिकारकी रक्षाके लिए कार्योंका ढेर भी लगा दिया जाय, तो वह पुण्य है। हम मानते हैं कि सत्याग्रही अपने सचेष्ट सत्याग्रह द्वारा उन कार्योंको बार-बार करता है, जो विरोधियोंको मानसिक कष्ट पहुँचानेवाले हों, उन्हें भले ही व्यावहारिक अर्थोंमें हिंसा कहा जा सके; परन्तु आचारशास्त्रकी दृष्टिसे वह पाप नहीं है—प्रत्युत पुण्य है।

यदि लोक-व्यवहारके अनुसार हिंसा शब्दका अर्थ किया जाय, तो हम कहेंगे कि सत्याग्रहमें की गई हिंसा पाप नहीं है, और यदि आचारशास्त्रके अनुसार हिंसा शब्दका प्रयोग किया जाय, तो सत्यकी रक्षाके लिए दूसरेको दी गई मानसिक पीड़ाका नाम हिंसा नहीं है।

(८) निःशस्त्र सत्याग्रह

दूसरेको पीड़ा देनामात्र बुरा नहीं है। अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिए, या केवल मनकी मौजको तृप्त करनेके लिए दूसरेको थोड़ासा कष्ट देना भी महापाप है; परन्तु दूसरेके अधिक कष्टको दूर करनेके लिए, या अपने अधिकारपर होते हुए आक्रमणको रोकनेके लिए चेष्टा करनेमें यदि दूसरेको कष्ट हो जाय, तो वह बुरा नहीं हो सकता—वह धर्म या आचारशास्त्रके विरुद्ध नहीं हो सकता। यदि कोई धर्म उसे बुरा बताता है, तो उस धर्मको अपना सुधार करना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्म-रक्षामें शस्त्र ग्रहण करना पाप नहीं है—प्रत्युत कई अवस्थाओंमें वह पुण्य हो जाता है। उस दशामें दूसरेपर शस्त्र चलाना आचार-शास्त्रकी दृष्टिमें 'हिंसा' नहीं कहा जायगा।

परन्तु फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि पीड़ा देकर पीड़ाको हटाना, या शस्त्र द्वारा आत्म-रक्षा करना तभी उचित है, जब मनुष्य अन्य उपायोंसे लाचार हो चुका हो। जिस फोड़ेको दवाके लेपसे बिठाया जा सके, उसे चीरा नहीं दिया जाता। जो काम समझानेसे हो सके, उसके लिए थप्पड़ लगाना मूर्खता है। शस्त्र चलानेमें उत्तेजना पैदा होती है, और उत्तेजनामें सम्भव है, मनुष्य औचित्यकी सीमासे आगे बढ़ जाय। इस कारण जहाँ तक सम्भव हो, शस्त्रहीन साधनोंसे ही कार्य-सिद्धिकी चेष्टा करनी चाहिए।

कई अवसरोंपर और कई दशाओंमें तो बलात्कारके सामने सिर झुकाकर कष्ट सहनेसे और शस्त्रके सामने छाती खोल देनेसे ही सत्यकी रक्षा हो जाती है।

(९) कठिन रोग

परन्तु कई रोग बहुत कठिन होते हैं। वे सरल उपायोंसे दूर नहीं हो सकते। सरल उपायोंके निष्फल हो जानेपर हमारे सामने दो ही रास्ते हैं—या तो हम उन रोगोंको दूर करनेके कठोर उपायोंका अवलम्बन करें, या सत्यको हार जाने दें। कुछ दृष्टान्त लीजिए :—

किसी प्रान्तमें दुर्भिक्ष पड़ गया है। दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायताके लिए कपड़े, अन्न और धन लेकर एक मंडली पहाड़ी रास्तेसे जा रही है। डाकू लोग उनपर आक्रमण कर देते हैं। वहाँ समझानेका प्रश्न नहीं है। डाकू तो जितनेमें आँख झपकी जाती है, उतनी ही देरमें माल लूटकर भाग जायँगे। संख्यामें स्वयंसेवक भी कम नहीं हैं। उनके पास डंडे भी हैं। चाहें तो वे वीरतासे लड़कर डाकुओंको भगा सकते हैं; परन्तु उसमें डाकुओंके चोट लगनेका अन्देशा है, जिसे साधारण भाषामें हिंसा कहा जाता है, उसका भय है। उस मंडलीका क्या कर्तव्य है? क्या वह चुपचाप जमीनपर लेटकर सत्याग्रह करे और उन दुर्भिक्ष-पीड़ितोंको भूखा-नंगा मर जाने दे, जिनके लिए सामान जा रहा था?

दस्यु हमारे घरमें घुस आये हैं। वे घरकी औरतोंको पकड़कर मारते हैं—बेइज्ज़त करते हैं। रातको दस्युताके लिए घरमें आकर उपदेश कौन सुनता है? हमारे सामने केवल दो मार्ग हैं—या तो

अपने सामने स्त्रियोंको बेइज्ज़त होने दें, या फिर हथियार जुटाकर दस्युओंपर आक्रमण करें ? उस समय हथियार उठाना भी क्या पाप होगा ? उस समयकी आशंकासे अपने पास हथियार रखना और हथियार चलानेका अभ्यास करना क्या हमारा कर्तव्य नहीं है ?

(१०) कठोर उपाय

सबसे अन्तिम और कठोर सत्याग्रह सशस्त्र सत्याग्रह है। जब तक दूसरे किसी भी उचित उपायके सफल होनेकी आशा हो, तब तक इस उपायका अवलम्बन न करना चाहिए। इसके अवलम्बनमें कई ख़तरे हैं। प्रथम तो इसमें सत्याग्रही दूसरेको बहुत अधिक पीड़ा देता है। वह पीड़ा केवल इसी आधारपर क्षन्तव्य हो सकती है कि सत्यकी रक्षाका अन्य कोई उपाय ही न हो। दूसरे शस्त्रकी लड़ाईमें मनुष्यके रुधिरमें जोश पैदा होता है। वह जोश यदि संयममें न रखा जाय, तो विचारशक्तिपर हावी भी हो सकता है। विचारशक्तिपर हावी होनेवाला जोश अन्धा हो जाता है। अन्धे जोशका परिणाम यह हो सकता है कि सत्याग्रह दुराग्रहके रूपमें परिणत हो जाय। जो युद्ध हमने आत्म-रक्षाके लिए आरम्भ किया था, वह सीमाका अतिक्रमण करके दूसरेके अधिकारोंको छीननेका साधन बन जाय। सशस्त्र सत्याग्रहमें यह ख़तरा है।

इस कारण सशस्त्र सत्याग्रह उसी प्रकार ख़तरोंसे भरा हुआ है, जैसे शरीरमें कोई बहुत बड़ा ऑपरेशन। बड़े ऑपरेशनमें जानका ख़तरा रहता है। सशस्त्र सत्याग्रहमें सत्याग्रहीके मार्गभ्रष्ट होनेकी बहुत अधिक सम्भावना होती है। सशस्त्र सत्याग्रहकी दो आवश्यक शर्तें हैं—पहली शर्त यह है कि जब तक सत्यकी रक्षाके सब शान्त उपाय निष्फल न हो जायँ, तब तक सशस्त्र सत्याग्रह प्रारम्भ नहीं करना चाहिए ; दूसरी शर्त यह है कि सत्यकी रक्षाके लिए सशस्त्र युद्धको आरम्भ करनेवाला मनुष्य संयमी और मर्यादाको समझनेवाला होना चाहिए। युद्ध करनेका अधिकार केवल उस व्यक्तिको है, जिसके हृदयपर मस्तिष्कका और मस्तिष्कपर आत्माका राज्य हो। जिस मनुष्यका मस्तिष्क आत्मापर शासन करता है, या हृदय मस्तिष्कपर, वह युद्धकी उत्तेजनामें आकर अवश्य ही दुराग्रही बन जायगा। सशस्त्र सत्याग्रह सत्यकी रक्षाका सबसे ख़तरनाक, इसी कारण सबसे अन्तिम और लाचारीका उपाय है।

(११) क्या सत्याग्रह और सशस्त्र युद्धमें कोई विरोध है ?

हम जानते हैं कि हमने सशस्त्र सत्याग्रहके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, उससे बहुतसे लोगोंको आश्चर्य होगा। समझा जाता है कि सत्याग्रहमें दण्डके लिए कोई स्थान नहीं है, दण्ड देनेके लिए शस्त्र प्रयोग करना पड़ता है, इस कारण सत्याग्रह और शस्त्र-प्रहार इकट्ठे नहीं रह सकते। इस युक्तिमें कई हेत्वाभास हैं। प्रथम तो केवल शस्त्र-संचालनसे ही परपीड़न नहीं होता, परपीड़नके अन्य भी बहुतसे उपाय हैं। सचेष्ट सत्याग्रहका ढंग ही यह है कि जिसे अत्याचारी नापसन्द करता है, जिससे दुःखी होता है, उसी कार्यको हम डंकेकी चोटसे करते हैं, उससे अत्याचारीको पीड़ा अवश्य होती है ; परन्तु उसके लिए वही उत्तरदाता है, हम नहीं। शारीरिक कष्ट ही कष्ट नहीं, कभी-कभी मानसिक कष्ट शारीरिक कष्टकी अपेक्षा कहीं अधिक असह्य होता है।

सारांश यह कि केवल शस्त्र-प्रयोगसे ही पीड़ा नहीं होती। जब किसी अनधिकार चेष्टाके विरुद्ध शान्त-से-शान्त प्रयोग किया जाय, तो अत्याचारीको मानसिक पीड़ा पहुँचती है। केवल शस्त्र-प्रयोगके साथ परपीड़नको नत्थी करना अनुचित है।

सत्याग्रह और शस्त्र-प्रयोगको परस्पर विरोधी माननेवालोंकी युक्तिमें दूसरा हेत्वाभास यह है कि वे प्रत्येक परपीड़नको हिंसा और हिंसाको पाप मानते हैं। यदि यह सत्य हो, तो किसी प्रकारका भी सत्याग्रह नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक सत्याग्रहमें अत्याचारीके हृदयको दुःख पहुँचता है, उसकी

इच्छाका विघात होता है। फिर यह कहना कि परपीड़न सब दशाओंमें बुरा है, ठीक नहीं। परपीड़न वहीं बुरा है, जहाँ वह स्वार्थके लिए हो, या केवल पीड़ा देकर मज़ा लेनेके लिए हो, या सत्यकी रक्षाके लिए जितनी पीड़ा देना आवश्यक है, उससे अधिक पीड़ा दी जाय। यदि शस्त्र-प्रयोग तब किया जाय, जब शान्त उपाय निष्फल हो चुके हों, अन्य कोई उपाय शेष न हो, यह भय हो कि यदि अत्याचारीका शस्त्रसे सामना न किया गया, तो निरपराध सीताके प्राणोंका भय है, ऐसे समयपर लंकापर आक्रमण करनेसे पाप नहीं है। वह आक्रमण नहीं, एक प्रकारसे आत्म-रक्षा है। ऐसे परपीड़नमें कोई पाप नहीं है। वह तो उलटा धर्म है।

चन्दा

श्रीराम शर्मा
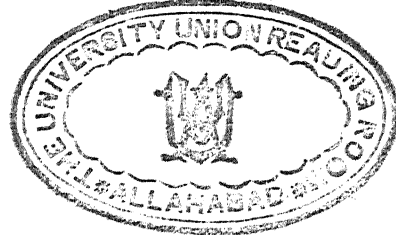
चन्दा ? हाँ, वह चन्दा है। आकाशमें उगनेवाले—विरहिन दुखदाई और बच्चोंके मामा—चन्दाकी भाँति अंगदपुरका चन्दा चमार अपने घरवालोंकी दरिद्रता-रूपी रजनीके लिए विमल विधु है। उसकी वृद्धा माँ उसे देखकर, थोड़ी देरके लिए, अपने कष्ट भूल जाती है और सन्तोषकी साँस लेती है। अपनी पुत्रबधू—चन्दाकी स्त्री—को सुनाकर, इसलिए, वह दिनमें कई बार कहती है—"बहू, बेदख़ली हो गई, तो कोई बात नहीं। तेरा सुहाग बना रहे। बुरे दिन किसीके नहीं रहते। ईमानदारी नहीं छोड़नी चाहिए। कहीं-न-कहीं मजूरी मिल ही जायगी। बुरे दिन और भूक-प्यासकी कोई चिन्ता नहीं। राजा हरिश्चन्द्र जैसे भले राजापर आफ़त पड़ी थी। हाँ, मुझे रमल्लाकी चिन्ता है। वह बीमार है।"

बुढ़ियाकी बातोंको चन्दाकी स्त्री अन्यमनस्क भावसे सुनती और चमौटे-जैसे अपने हाथोंसे घर और बाहरका काम किया करती। उसकी दौरानी—रमल्लाकी स्त्री—को रमल्लाकी देखरेखसे ही अवकाश न मिलता, इसलिए वह अपनी जिठानीका हाथ न बँटा सकती।

यों गर्मियोंके दिनोंमें कोई विशेष काम भी न था। खेतीके दिनोंमें जब चन्दाका सब घर खेतपर जुट जाता था, तब दोनों बहुओंको रोटी करने तककी फ़ुरसत न मिलती थी; पर परिश्रमी आदमी—विशेषकर परिश्रमी स्त्रियाँ—पड़े हुए कामसे ऐसे घिनाते हैं, जैसे ख़ून-ख़च्चरसे परम वैष्णव। काम करनेकी उनकी प्रवृत्ति ऐसी होती है, जैसे ढलावकी ओर पानीकी। चन्दाकी स्त्री भी बड़ी कमाऊ थी। थोड़ेसे कामपर भी वह ऐसे टूट पड़ती, मानो उसे ढेरों काम करना हो, इस कारण बुढ़ियाकी बातोंपर वह विशेष ध्यान न देती। गर्मीके दिनमें अवकाश ही अवकाश था। चन्दा कामकी तलाशमें दिन-भर घूमता और मुँह फुलाये शामको घर आ जाता। कहीं काम होता, तो मिलता। जिस प्रकार ध्रुव-प्रदेशमें भालू शीतनिद्रा (Hibernation)में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार उत्तर-भारतके गाँवोंमें काम और मजूरी ग्रीष्मकी उष्णतासे सूख जाती हैं। दस दिनतक चन्दा और उसकी माँने माँग-जाँचकर और उधार लेकर काम चलाया; पर दस दिनके बाद खानेकी समस्या और भी उग्र हो गई। खानेकी समस्यासे अधिक कष्टदायक उधारवालोंके तक़ाज़े थे। ऋण भी तो हैसियतपर ही मिलता है। जीवनकी जड़ें, पेड़की जड़ोंके समान, अनुकूल परिस्थितिमें ही पौढ़ती हैं। चन्दाके कौटुम्बिक जीवन-रूपी पौधेको बेदख़लीने उपजाऊ भूमिसे उखाड़कर दरिद्रता और भूककी शुष्क चट्टानपर रख दिया था। दस दिन तक तो किसी प्रकार गुज़र-बसर हुई, उसके बाद

फ़ाके होने लगे। खानेके लिए हवा और ग़म ही थे, सो ग़मसे पेटकी अग्नि कुंठित भले ही हो जाय, बुझती कदापि नहीं। और हवा—अच्छे स्वास्थ्य—से तो वह और भी प्रज्वलित हो जाती है।

× × ×

जेठकी दुपहरीमें, जब पशु-पक्षियोंने पेड़ोंकी शरण ले ली थी, मैं पक्की सड़कसे बर्रका-सा काटा घरकी ओरको लपका आ रहा था। कोई आध मील ही जाना था और ऊसरमें होकर था रास्ता। दूरसे कुदालीकी आवाज़ सुनाई पड़ी। मैंने सोचा कि ऐसा कौनसा पागल है, जो लूमें कंकड़ खोद रहा है। खयाल किया, कोई कामचोर ठेकेवाला होगा, जो ठंडमें सोता होगा और दोपहरको काम करता होगा। पास आया, तो चौंककर खड़ा हो गया। शीघ्र ही पालागनसे अभिवादन हुआ।

"अरे चन्दा, मरेगा क्या? जीव-जन्तु घबराकर पेड़ोंके नीचे हैं, और तू दुपहरीको अपने ऊपर काट रहा है!"—मैंने भर्त्सनाकी भावनासे कहा।

"पंडितजी, मरना तो है ही। मेहनत करके क्यों न मरूँ? छाया और आराम पशु-पक्षियोंको बदा होगा। यहाँ तो भाग्यमें ज़हर भी नहीं।"—वेदना मिश्रित मुस्कानसे चन्दाने कहा।

लंगोटा पहने, नंगे शरीर, नंगे पैर और कुदालीके सहारे चन्दा खड़ा था। उसकी दग्ध आत्मा उसके रोम-रोमसे प्रस्फुटित होकर ज़मींदारी-प्रथाको श्राप दे रही थी। मैं दो मास उपरान्त गाँवमें आ रहा था। चन्दाकी बेदख़ली और परेशानी सुनकर हृदयको एक चोट लगी। मन-ही-मन मैंने कहा कि चन्दा कंकड़ोंका गड्ढा नहीं खोद रहा है, वरन ज़मींदारी-प्रथाकी क़ब्र, जिसमें, यदि अत्याचारकी यही गति रही तो, ज़मींदारी-प्रथाकी पूतना गड़ जायगी। "अरे, तू दो-चार घड़ी नाज मेरे भाई जगन्नाथसे ले आता।"—मैंने शिकायतन कहा।

"माँग-जाँचकर कब तक काम चलाता? ले तो आया था; पर फिर दुबारा जानेकी हिम्मत न हुई।" चन्दाने नीचा सिर करके कहा।

मैं—"चल मेरे साथ। पहले खाना खा और घरवालोंको आटा-दाल पहुँचा।"

चन्दा—"सो पंडितजी, आपका ही खाता हूँ। आज ही ठेका लिया है। कंकड़ खोदकर ठेकेदारको दिखाना है, नहीं तो ठेकेदार निकाल देगा।"

मैं—"चल। ठेकेदारसे मैं भुगत लूँगा।"

घर आकर चन्दाको खाना खिलाया। उसकी पेटकी ज्वालाका बस चलता, तो पेट फाड़कर निकल पड़ती और सब खाना खा जाती। पानी पीकर चन्दा कुछ लेटा और अरहरकी दाल और आटा लेकर घर पहुँचा।

× × ×

अगले दिन प्रातःकाल मैं अपना सामान बाँध रहा था। बच्चे चारों ओर खेल रहे थे। कोई बिस्तरेपर आ बैठता, तो कोई मेरी किताबें लाता। कठोरताको पिघलानेके लिए बच्चोंका दृश्य मोमबत्तीसे अग्नि स्पर्श करना है। संसारमें कौन ऐसा है, जो अबोध और सौन्दर्यकी प्रतिमा—बच्चों—को देखकर द्रवित न हो जाय। नराधम और नरपशु ही बच्चोंपर हाथ उठा सकते हैं। किसी बच्चेको हटकता, तो किसीसे सामान बँधानेमें सहायता लेता। सामान बाँधकर खड़ा हुआ, तो सामने मुँह लटकाये चन्दा खड़ा था।

"अरे, क्या हुआ? गुम-सुम क्यों खड़ा है?" मैंने आश्चर्यसे पूछा।

चन्दा—"कुछ कहनेकी बात नहीं, पंडितजी!"

मैं—"क्यों? क्यों? क्या हुआ?"

चन्दा—"कल तो परसी थाली सामनेसे उठ गई।"—कहकर चन्दाकी आँखें नीचेको हो गईं और उसके क्लान्त कपोलोंपर आँसू ढरक गये।

× × ×

चन्दाकी बेदख़ली तो हुई थी; पर साथमें उसके

सिरपर बक़ाया लगानकी डिग्री भी थी। पास-पल्ले तो उसके कुछ था ही नहीं ; पर हुकूमतकी धाक जमानेके लिए ज़मींदार साहबने घरके बर्तन-भाँड़े भी कुर्क़ कराने चाहे। कई बार कुर्क़ी आई थी ; पर घर भीतरसे बन्द मिलता। उस दिन चन्दा आटा और दाल लेकर पहुँचा, तो उसके घरमें चहल-पहल मच गई। गेहूँका आटा, अरहरकी दाल, जिसमें हरी खटाई पड़ी हो और पोदीनाकी चटनी मिलनेकी पूर्ण आशा एक ग़रीब परिवारके लिए, जो कई दिनसे फ़ाक़े कर रहा हो, कितनी सुखदायी होती है, इस बातका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकते हैं। बच्चे भूकसे तड़प रहे हों और माँकी गोदमें भाग-भागकर रोटीके लिए रूठ पड़ते हों तथा आसपासके बच्चोंको खाना खाते देखकर अपनी माँसे मचल जाते हों और माँके पास अपनी गोद और चुमकारके अतिरिक्त पेटकी अग्निकी शान्तिके लिए कुछ न हो ; ऐसी दशामें किसीको भरपेट भोजनकी सामग्री मिल जाय, तो उसकी कल्पना सहृदय ही भले कर सकें।

चन्दाने विजयीकी भाँति घरमें जाकर जो आटा—गेहूँका आटा—और दाल रखी, तो उसकी वृद्धा माँ और उसकी स्त्रीकी आँखोंमें ज्योति प्रज्वलित हो गई। थोड़ी देरमें चूल्हा चढ़ा और खाना बन गया। लाल मिर्च डालकर और खूब बँटकर आमकी चटनी भी तैयार की गई।

घरमें तीन थालियाँ, एक बटलोई और एक कटोरा था। दोनों बहुओंने एक थालीमें भोजन परोसा। चन्दाने अपनी थालीमें एक बालिश्त ऊँची रोटियाँ परसीं। उसकी माँने पानी रखकर कौर तोड़ा। एकआध रोटी ही वे लोग खा पाये होंगे कि एकदम चन्दाके मकानमें बीसों आदमी भर गये। वे कुर्क़ीवाले और ज़मींदारके गुर्गे थे। भूके कुटुम्बके सामनेसे परसी थालियाँ पकड़ ली गईं। स्त्रियाँ एक ओरसे परसी थालियोंको खींच रही थीं और दूसरी ओरसे ज़मींदारके गुर्गे। भूक और नृशंसतामें रस्साकशी थी। पीड़ित और अत्याचारीका युद्ध था। स्त्रियों और चन्दाके पेटमें छिपी भूकने तड़पकर अपनी सारी शक्ति हाथोंको दे दी। आँखोंकी ज्योतिने हाथोंको बिजली दी, और एक-एक आदमी उन

ज़मींदारकी ज्यादतीसे सताया हुआ चन्दा

भुक्कड़ोंके हाथसे थालियाँ न छिन सका। तब और आदमियोंने औरतोंके हाथोंको एक ओरको खींचा और दूसरी ओरको थालियाँ खींची गईं।

× × ×

थालियाँ, कटोरा और बटलोई चली गईं ; पर उनके साथ भूक न गई। घरमें मुरदनी-सी छा गई। औरतें सिसक-सिसककर रोने लगीं। चन्दाकी स्त्रीकी गोदका बच्चा, जो मातृ-स्तनसे खूनका पान कर रहा था, गिरकर रो रहा था, और रमल्ला परेशान एक दूसरी ओर पड़ा था।

× × ×

चन्दा अब भी मज़दूरी करता है। खेती-पातीसे हाथ धो बैठा है; पर ज़मींदारीके प्रति उसके हृदयमें बड़ी कटुता है। उसकी और उसके जैसे करोड़ों किसानोंकी कटुता उन्हींके दिलोंको जला रही है। दिलमें एक ग़ुबार-सा भरा है।

चन्दासे जब कोई और, विशेषकर कोई अहीर, उसकी कुर्क़ीकी चर्चा करने लगता है, तब वह अर्द्ध-मुस्कानसे व्यंग्यमें कह उठता है—"अरे ठाकुर, अबैनू (अब तक) भंगी पातरें उठावत ए—अब अहीर लोग मेरी झूठी थरिया उठावन लागे।"

झिड़के जानेपर वह हँस पड़ता है। कितना करुणापूर्ण है यह व्यंग्य।

नीति क्या है और ज़िन्दगी किसे कहते हैं ?

प्रिन्स क्रोपाटकिन

अब तक हम मनुष्यके सचेतन-विवेचनायुक्त कार्योंकी—ऐसे कार्योंकी, जिन्हें वह जान-बूझकर करता है—चर्चा करते आये हैं; किन्तु हमारे इस सचेतन जीवनके साथ-साथ एक अचेतन जीवन भी है, जो बहुत ही व्यापक है। प्रातःकालमें हम किस प्रकारकी पोशाक पहनते हैं; हम यह जानते हुए भी कि रातमें कोटका एक बटन खो गया है, बटन लगानेकी कोशिश करते हैं, और जिस चीज़को हमने खुद हटाकर अलग कर दिया है, उसे लेनेके लिए हाथ फैलानेकी चेष्टा करते हैं—यह देखकर ही हमें अपनी इन क्रियाओंमें उस अचेतन जीवनका आभास मिल सकता है, और हम इस बातका अनुभव कर सकते हैं कि हमारे अस्तित्वमें इसका कितना बड़ा स्थान है।

दूसरोंके साथ हमारा जो सम्बन्ध है, उसमें तीनचौथाई भाग इस अचेतन जीवनका है। हम जिस प्रकार बोलते हैं, हँसते हैं, वाद-विवादमें उत्तेजित हो जाते हैं, या शान्त रहते हैं, हमारे ये सब काम अनिच्छाकृत होते हैं। ये हमारे अभ्यासके परिणाम स्वरूप हैं, जिन्हें हमने अपने पूर्वजोंसे उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त किया है, अथवा चेतन या अचेतन रूपमें पाया है।

हम लोग दूसरोंके साथ जिस प्रकारका आचरण करते हैं, वह इस प्रकार अभ्यासगत हो जाता है। कोई जैसा अपने साथ व्यवहार किया जाना पसन्द करता है, वैसा ही दूसरोंके साथ व्यवहार करना, मनुष्यके लिए तथा समस्त सामाजिक प्राणियोंके लिए अभ्यास-सा बन जाता है। यह अभ्यास इतना बद्धमूल हो जाता है कि मनुष्य अपने-आपसे यह पूछता तक नहीं कि उसे ऐसी अवस्थाओंमें किस प्रकारका आचरण करना चाहिए। अवस्था-विशेषमें, या किसी जटिल विषयमें, अथवा किसी शक्तिशाली मनोवेगके आवेशमें आकर मनुष्य आगापीछा सोचने लगता है और उसके मस्तिष्कके विभिन्न भागोंमें संग्राम-सा होने लगता है; क्योंकि मस्तिष्क एक जटिल चीज़ है, जिसके विभिन्न भाग एक निश्चित सीमा तक एक दूसरेसे बिलकुल स्वाधीनतापूर्वक कार्य करते हैं। जब इस प्रकारकी घटना होती है, तो मनुष्य अपनी कल्पनामें अपने विरोधी मनुष्यके स्थानमें अपनेको रखकर अपने-आपसे पूछता है कि क्या वह अपने साथ इस प्रकारका व्यवहार किया जाना पसन्द करेगा, वह अपनेको उस व्यक्तिसे जिसकी प्रतिष्ठा या स्वार्थपर वह क्षति पहुँचानेवाला था, जितना ही अधिक अभिन्न समझेगा, उतना ही अधिक नीतियुक्त उसका निर्णय होगा। या यह भी हो सकता है कि उसका कोई मित्र आ जाय, और उससे कहे—"अपनेको उसके स्थानमें कल्पना कर लो; जैसा तुमने

उसके साथ व्यवहार किया है, वैसा ही व्यवहार यदि तुम्हारे साथ किया जाता, तो क्या तुम सहन करते ?" बस, इतना ही काफी है।

इससे यह सिद्ध होता है कि हम समानताके सिद्धान्तके नामपर उसी अवस्थामें अपील करते हैं, जब हम स्वयं संशयमें पड़ जाते हैं, और फी-सदी ९९ अवसरोंपर हम अभ्यासके कारण नीतिसंगत आचरण करते हैं।

यह प्रत्यक्ष है कि अब तक हमने जो कुछ कहा है, उसमें किसी प्रकारके आदेश देनेकी चेष्टा नहीं की है। हमने केवल इस बातका निर्देश कर दिया है कि पशु-जगत और मनुष्य-समाजमें किस प्रकार घटनाएँ हुआ करती हैं।

प्राचीनकालमें मनुष्यको नीतिज्ञानकी शिक्षा देनेके लिए धर्माधिकारीगण नरकका भय दिखलाया करते थे। परिणाम-स्वरूप लोग उल्टे और नीतिभ्रष्ट बन जाते थे।

जज लोग उन सामाजिक सिद्धान्तोंके नामपर, जिन्हें उन्होंने समाजसे चुरा लिया है, कैद, बेंत और फाँसीकी सज़ाकी धमकी देते हैं, और वे उन्हें नीतिभ्रष्ट कर डालते हैं। फिर भी जब यह कहा जाता है कि जज लोग भी पुरोहितोंकी तरह इस मानव-समाजसे उठ जायँगे, तो अधिकारी लोग चिल्लाने लगते हैं कि इससे तो समाजको बड़ा ख़तरा है।

किन्तु हम जजों और उनके दण्डोंकी उपेक्षा करनेसे डरते नहीं। हम सब प्रकारके आदेशोंकी, यहाँ तक कि सदाचारके दायित्वकी भी उपेक्षा करते हैं। हम यह कहनेसे डरते नहीं कि—"तुम जो कुछ करना चाहते हो, करो ; तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो।" क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि अधिकांश मनुष्यका जिस अनुपातमें ज्ञान बढ़ेगा और जिस पूर्णताके साथ वे वर्तमान बन्धनोंसे अपनेको मुक्त करेंगे, उसी अनुपातमें वे समाजके लिए सदा लाभदायक दिशामें कार्य करेंगे ; ठीक वैसे ही, जैसे हम लोग पहले ही यह विश्वास कर लेते हैं कि एक बच्चा किसी दिन अपने दो पाँवोंसे चलेगा, न कि चारों हाथ और पाँवोंसे ; क्योंकि माता-पितासे उसका जन्म हुआ है और वह मनुष्य-जातिका है।

हम लोग सिर्फ इतना ही कर सकते हैं कि सलाह दें। सलाह देते समय हम इतना और कहते हैं—"इस सलाहका कोई मूल्य न होगा, यदि तुम्हारा अपना अनुभव और समीक्षा तुम्हें यह नहीं बतलावे कि यह सलाह मानने योग्य है।"

हम जब किसी युवकको झुकते हुए और अपनी छाती तथा फेंफड़ेको सिकोड़ते हुए देखते हैं, तो हम उसे सलाह देते हैं कि वह सीधा हो जाय, अपने मस्तकको ऊँचा रखे और छातीको तानकर चले। हम उसे यह सलाह देते हैं कि वह अपने फेंफड़ेको हवासे भरे और ज़ोर-ज़ोरसे साँस ले, क्योंकि क्षयरोगसे बचनेका यही सर्वोत्तम उपाय है। किन्तु इसके साथ ही हम उसे शरीर-विज्ञानकी भी शिक्षा देते हैं, जिससे वह फेंफड़ेकी क्रियाएँ समझ सके और अपने लिए ऐसी चाल-ढाल चुन ले, जिसे वह सर्वोत्तम समझता है।

और नीतिके सम्बन्धमें भी हम इतना ही कर सकते हैं। हमें सलाह देने-भरका अधिकार है, इसके साथ-साथ हम इतना और कहते हैं—"यदि यह सलाह तुम्हें अच्छी लगे, तो इसके अनुसार कार्य करो।"

किन्तु यद्यपि हम प्रत्येक व्यक्तिको यह अधिकार देते हैं कि वह अपनी समझके अनुसार कार्य करे और समाजको यह अधिकार बिलकुल नहीं देते कि वह किसी व्यक्तिको समाज-विरोधी कार्य करनेके लिए किसी भी रूपमें दण्ड दे, तथापि जो बात अच्छी लगे, उससे प्रेम करने और जो बात बुरी लगे, उससे घृणा करनेकी जो क्षमता हममें मौजूद है, उसे हम छोड़ते नहीं। प्रेम करना और घृणा करना, ये दो अस्त्र हमारे पास हैं। क्योंकि जो लोग घृणा करना जानते हैं, वही यह भी जानते हैं कि प्रेम किस प्रकार किया जाता है। हम इस क्षमताको अपनेमें क़ायम

रखते हैं, और यदि केवल इस क्षमतासे ही प्रत्येक पशु-समाजमें भी नैतिक भावनाओंका विकास क़ायम रहता है, तो फिर यह मानव-जातिके लिए और भी पर्याप्त होगा।

हम सिर्फ़ एक बात चाहते हैं। वर्तमान समाजमें इन दो भावनाओंके विकासमें—प्रेम-भाव तथा घृणा-भावमें—जो सब वस्तुएँ बाधा पहुँचाती हैं, उन्हें अलग कर दिया जाय; उन सब वस्तुओंको छाँटकर दूर कर दिया जाय, जो हमारी न्याय-बुद्धिको विकृत कर देती हैं—अर्थात्, राज्य, धर्माचार्य, जज, पुरोहित, शासक और शोषक।

आज जब हम किसी जैक नामक हत्यारेको एक-एक करके ग़रीब और दुःखिनी स्त्रियोंकी हत्या करते देखते हैं, तो सबसे पहले हममें घृणाकी भावना उत्पन्न होती है। यदि हमें वह उस दिन मिल गया होता, जिस दिन उसने उस स्त्रीकी, जिससे उसने सरायमें रहने और खाने-पीनेका ख़र्च माँगा था, हत्या की थी, तो हम उसके (जैकके) सिरमें गोली मार देते, और इस बातपर बिलकुल विचार नहीं करते कि उसे गोली मारनेकी अपेक्षा उस सरायके मालिकको गोली मारना कहीं अच्छा होता।

किन्तु जब हम उसकी कलंक-कथाओंकी याद करते हैं, जिसके कारण उसकी यह दुर्गति हुई है; जब हम उस अन्धकारके विषयमें सोचते हैं, जिसमें उसे विचरण करना पड़ता है; जब हम उन चित्रोंके विषयमें विचार करते हैं, अथवा उन अश्लील पुस्तकोंके बारेमें, जिनके कारण उसके मनमें बार-बार बुरे भाव उदित हुए हैं और उन विचारोंका ख़याल करते हैं, जो मूर्खतापूर्ण पुस्तकोंसे उसे प्राप्त हुए हैं, तो हमारी भावना कुछ और ही हो जाती है। और किसी दिन जब हम यह सुनते हैं कि जैकका मुक़दमा किसी ऐसे जजके यहाँ हो रहा है, जिसने इतनी अधिक संख्यामें निष्ठुरतापूर्वक स्त्री, पुरुष और बच्चोंकी हत्याएँ की हैं, जितनी हत्याएँ जैक-जैसे और कितने ही लोगोंने मिलकर भी न की होंगी—यदि हम उसे इस प्रकारके किसी पागलके हाथमें देखते हैं, उस समय जैकके प्रति हमारी सारी घृणा काफ़ूर हो जाती है। उस समय हमारी यह घृणा भीरु और पाखंडी समाज तथा उसके माने हुए प्रतिनिधियोंके प्रति घृणाके रूपमें परिवर्तित हो जाती है। क़ानूनके नामपर जो बहुसंख्यक कलंकजनक कार्य किये जाते हैं, उनके सामने जैकके कुकृत्य नगण्य प्रतीत होते हैं। इन क़ानून-जनित कलंकोंसे ही हम घृणा करते हैं।

वर्तमान समयमें हमारी भावनाएँ बराबर विभाजित-विच्छिन्न बनी रहती हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि हम न्यूनाधिक ज्ञात या अज्ञात रूपसे इस समाजके प्रोत्साहक हैं। हम घृणा करनेका साहस नहीं करते। क्या हम प्रेम करनेका साहस करते हैं? शोषण और दासतापर जो समाज अवस्थित होता है, उसमें मानवीय प्रकृतिका अधःपतन होता है।

किन्तु दासताके लुप्त हो जानेपर हम अपने अधिकारोंको पुनः प्राप्त करेंगे। हम अपने अन्दर इतनी शक्तिका अनुभव करेंगे, जिससे हम जटिल अवस्थाओंमें भी घृणा और प्रेम कर सकें।

अपने दैनिक जीवनमें हम सहानुभूति या विद्वेषकी अनुभूतिको स्वतन्त्ररूपमें प्रकट करते हैं, और प्रत्येक क्षण हम ऐसा करते रहते हैं। हम लोग नैतिक शक्तिसे प्रेम करते हैं तथा नैतिक दुर्बलता और कायरतासे घृणा करते हैं। प्रत्येक क्षणमें हमारे शब्द, हमारी मुखाकृति और हमारी मुसकुराहट हमारे उस आनन्दको प्रकट करती है, जो आनन्द हमें मानव-जातिके लिए हितकर कार्योंको, जिन कार्योंको हम अच्छा समझते हैं, देखकर होता है। प्रत्येक क्षण हमारी मुखाकृति और हमारे शब्द हमारी उस घृणाको प्रकट करते हैं, जो घृणा हम भीरुता, ठगविद्या, षड्यन्त्र और नैतिक निर्बलताके प्रति प्रकट करते हैं। हम उस समय भी अपनी विरक्ति प्रकट करते हैं, जब दुनयबी शिक्षाके प्रभावमें आकर हम अपनी घृणाको उन मिथ्या रूपोंके अन्दर छिपानेकी चेष्टा करते हैं, जो मिथ्या रूप हम

लोगोंके बीच समानताका सम्बन्ध स्थापित होते ही लुप्त हो जायँगे।

अच्छे और बुरेकी भावनाको एक निश्चित धरातलपर क़ायम रखने और एकको दूसरेसे परिचित रखनेके लिए इतनाही काफ़ी है। यह भावना उस समय और भी अधिक प्रभावशाली हो जायगी, जब समाजमें जज या पुरोहित नहीं रह जायँगे, जब नैतिक सिद्धान्तोंकी बाध्यता नष्ट हो जायगी और जब वे समान स्थितिके मनुष्योंके बीच केवल पारस्परिक सम्बन्धके रूपमें समझे जायँगे।

इसके सिवा जितना ही अधिक यह सम्बन्ध स्थापित होगा, उतनी ही उच्चतर नैतिक भावना समाजके अन्दर उदित होगी। इसी भावनाका हम विश्लेषण करने जा रहे हैं।

८

अब तक हमने जो विश्लेषण किया है, उसमें सिर्फ़ समानताके सरल सिद्धान्त बताये गये हैं। हमने विद्रोह किया है, और दूसरोंको भी उन लोगोंके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए आमन्त्रित किया है, जिन्होंने अपना यह अधिकार मान रखा है कि वे अपने साथ जैसा व्यवहार किया जाना पसन्द करते हैं, वैसा व्यवहार दूसरोंके साथ नहीं करें। हमने उन लोगोंके विरुद्ध भी विद्रोह किया है, जो स्वयं तो ठगा जाना, शोषित किया जाना, दूषित किया जाना या बुरा व्यवहार किया जाना नहीं चाहते; किन्तु दूसरोंके साथ ऐसा ही व्यवहार करते हैं। हमने कहा है कि मिथ्या-भाषण और पाशविकता घृणाजनक हैं; किन्तु ये चीज़ें घृणोत्पादक इसलिए नहीं हैं कि वे स्मृतियोंके विरुद्ध हैं, बल्कि इसलिए कि इस प्रकारका आचरण ऐसे प्रत्येक व्यक्तिके मनमें समानताके विरुद्ध विद्रोहकी भावना उत्पन्न करता है, जिसके लिए समानता एक निरर्थक शब्दमात्र नहीं है। और सबसे बढ़कर यह उन लोगोंके मनमें विद्रोहकी भावना उत्पन्न करता है, जो विचार करने और कार्य करनेमें सच्चे अराजकवादी हैं।

यदि ये सरल, स्वाभाविक और स्पष्ट सिद्धान्त जीवनमें काममें लाये जायँ, तो इसका परिणाम होगा एक उच्च नीतिज्ञान। इस नीतिज्ञानमें उन सब बातोंका समावेश हो जायगा, जिनकी शिक्षा बहुत पुराने ज़मानेसे हमें नीतिनिष्ठोंने दी है।

समानताके सिद्धान्तमें नीतिनिष्ठोंकी शिक्षाओंका सार है; किन्तु इसके सिवा इसमें और कुछ भी है, और यह और कुछ व्यक्तिके प्रति सम्मान है। अपनी समानता-सम्बन्धी नीति-विज्ञानकी या अराजकताकी घोषणा करके हम उस अधिकारको माननेसे अस्वीकार करते हैं, जिसका नीतिनिष्ठोंने बराबर दावा किया है। वह अधिकार है किसी आदर्शके नामपर व्यक्तिको अंगहीन करना। हम स्वयं अपने लिए या किसी दूसरेके लिए इस अधिकारको बिलकुल नहीं मानते।

हम व्यक्तिकी पूर्ण-स्वाधीनताको मानते हैं; हम उसके लिए जीवनकी प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओंका स्वतन्त्र विकास चाहते हैं। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नहीं चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं, जिस सिद्धान्तको Fourierने धार्मिक नीतिज्ञानके विरोधमें रखते हुए कहा था—"मनुष्यको बिलकुल स्वतन्त्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योंकि धर्म उनको बहुत कुछ अपंग—ज़रूरतसे ज्यादा अपंग—बना चुका है। उनके मनोविकारोंसे भी मत डरो। स्वतन्त्र समाजमें ये ख़तरनाक नहीं होते।"

यदि आप स्वयं अपनी स्वाधीनताका परित्याग न करें, यदि आप स्वयं अपने-आपको दूसरों द्वारा गुलाम न बनने दें और यदि आप किसी व्यक्तिके प्रचण्ड और समाज-विरोधी मनोविकारका समान रूपमें अपने प्रचण्ड—समाजके लिए उपयोगी—जोश द्वारा विरोध करें, तो आपके लिए स्वतन्त्रतासे डरनेकी कोई बात नहीं रह जायगी।

हम किसी भी आदर्शके नामपर व्यक्तिको अंगहीन

करनेकी भावनाका परित्याग करते हैं। हम अपने लिए सिर्फ इतना ही सुरक्षित रखना चाहते हैं कि हमें जो कुछ अच्छा या बुरा मालूम हो, उसके प्रति हम स्पष्टरूपसे अपनी सहानुभूति और विरक्ति प्रकट करें। एक मनुष्य अपने मित्रोंको धोखा देता है। उसकी प्रवृत्ति ही ऐसी है, ऐसा करना उसका स्वभाव है। अच्छा, तो यह हमारा स्वभाव है—हमारी यह प्रवृत्ति है कि हम झूठ बोलनेवालोंसे घृणा करें। चूँकि यह हमारा स्वभाव है, इसलिए हमें स्पष्टरूपमें ऐसा करना चाहिए। हम दौड़कर उसे न छातीसे न लगावें और न उससे हाथ मिलावें, जैसा कि आजकल कभी-कभी किया जाता है। हमें अपने सक्रिय मनोविकारके द्वारा उसके मनोविकारका प्रचण्ड रूपमें विरोध करना चाहिए।

हमें सिर्फ इतना ही करनेका अधिकार है ; समाजमें समानताके सिद्धान्तको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमें केवल इसी कर्त्तव्यका पालन करना है। आचरण द्वारा समानताके सिद्धान्तको इसी प्रकार चरितार्थ किया जा सकता है।

किन्तु उस हत्यारेके सम्बन्धमें, उस मनुष्यके सम्बन्धमें, जो बच्चोंपर बलात्कार करता है, क्या कहा जाय ? इस प्रकारके हत्यारे अब बहुत ही कम पाये जाते हैं, जो केवल रक्त-पिपासाके ही कारण हत्या करते हों। वे ऐसे पागल मनुष्य हैं, जिनका इलाज होना चाहिए, अथवा उनका परित्याग कर देना चाहिए।

लम्पटके सम्बन्धमें हमें पहले यह देखना है कि समाज यदि हमारे बच्चोंकी भावनाओंको विकृत न करे, तो हमारे लिए बदमाशोंसे डरनेका कोई कारण नहीं रह जायगा।

किन्तु यह समझ रखना चाहिए कि ये सब बातें पूर्णरूपमें तब तक प्रयुक्त नहीं हो सकतीं, जब तक कि नैतिक अधःपतनके मूल कारणों—पूँजीवाद, धर्म, न्याय और सरकार—का अन्त न हो जाय। पर इसके एक बहुत बड़े अंशको आजसे ही कार्य रूपमें परिणत किया जा सकता है। यह पहलेसे कार्यान्वित हो भी रहा है।

यदि समाज सिर्फ समानताके इसी सिद्धान्तको जान जाय, यदि प्रत्येक व्यक्ति एक बनियेके समान हिसाबी दृष्टि रखे, जो तमाम दिन इस बातकी सावधानी रखता है कि उसे जितने पैसे मिलते हैं, उससे अधिककी वस्तु वह किसीको न दे, तो समाजकी इससे मृत्यु हो जायगी। तब तो समानताका सिद्धान्त तक हमारे पारस्परिक सम्बन्धसे लुप्त हो जायगा। क्योंकि यदि समानताको क़ायम रखना है, तो केवल न्यायकी अपेक्षा कुछ महत्तर, अधिक मनोहर, अधिक शक्तिशाली वस्तुका जीवनमें सतत स्थान होना चाहिए। और वह न्यायसे वृहत्तर वस्तु यह है।

अब तक मानव-समाजमें ऐसे महामना व्यक्तियोंका अभाव नहीं रहा है, जो करुणा, बुद्धिमत्ता और सद्भावनाके भावसे ओतप्रोत हैं ; जो अपनी अनुभूति, प्रतिभा और सक्रिय शक्तिका प्रयोग मानव-जातिकी सेवामें करते हैं तथा उसके बदलेमें कुछ नहीं चाहते।

मस्तिष्क, अनुभूति या सद्भावनाकी उर्वरता अनेक प्रकारके भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होती है। यह सत्यके उन जिज्ञासुओंमें पाई जाती है, जो अन्य आनन्दोंका परित्याग करके जिस बातको वे सत्य और यथार्थ समझते हैं, उसके सन्धानमें अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं—भले ही वह सत्य उनके आसपास रहनेवाले अज्ञानी लोगोंके कथनके विपरीत क्यों न हो! यह उर्वरता उस आविष्कर्तामें पाई जाती है, जो अपने विषयका—जिसे वह दुनियामें युगान्तरकारी समझता है—अनुगमन करते हुए अपने दैनिक जीवनमें भोजन तक करना भूल जाता है। कदाचित् ही वह भोजनका स्पर्श करता है, और उसके प्रति अनुरक्त कोई स्त्री उसे अपने हाथसे बच्चेकी तरह भोजन कराती है। इसका एक रूप उस व्याकुल क्रान्तिकारीमें पाया जाता है, जो संसारके उद्धारके लिए दुःख एवं यातना सहन करते हुए कार्य करता है ; जिसे कला, विज्ञान, यहाँ तक कि पारिवारिक जीवनके आनन्द तक कटु

मालूम होते हैं, जब तक कि सब लोग उनका उपयोग न कर सकें। यह उस युवकमें पाई जाती है, जो विदेशियोंके आक्रमणके अत्याचारोंको सुनकर और देश-प्रेमके वीरतापूर्ण आख्यानोंको ज्योंका त्यों समझकर किसी स्वयंसेवक दलमें भरती हो जाता है, और भूख तथा सर्दी सहन करते हुए साहसपूर्वक आगे बढ़ता है, जब तक कि वह गोलियोंका शिकार नहीं बनता। यह पेरिसकी गलियोंमें घूमनेवाले उस अनाथ बालकमें पाई जाती है, जो अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और द्वेष एवं सहानुभूतिपूर्वक अपने छोटे भाईके साथ दौड़कर दुर्ग-प्राचीरके पास जाता है, और वहाँ गोलोंकी वर्षाके बीच स्थिर भावसे खड़ा यह गुनगुनाते हुए मर जाता है—"साम्यवादी समाज चिरजीवी हो!" यह उस मनुष्यमें पाई जाती है, जो किसी अन्यायको देखकर विद्रोही हो उठता है। इसका परिणाम क्या होगा, इसका विचार किये बिना ही, और जब सब लोग मस्तक झुका देते हैं, वह दृढ़ भावसे खड़ा होकर अन्यायपर पड़ा हुआ पर्दा हटा देता है, और शोषणकर्ताका, कारखानेके तुच्छ स्वेच्छाचारीका, या साम्राज्यके बड़े अत्याचारी शासकका नग्न रूप प्रकट कर देता है। अन्ततः यह उन असंख्य अनुरागपूर्ण कार्योंमें पाई जाती है, जो चमत्कारपूर्ण न होनेके कारण अज्ञात रहते हैं और जिनका उचित मूल्य कभी भी नहीं कूता जाता। यदि हम लोग आँख खोलकर देखें कि मानव-जीवनके मूलमें क्या है, तो हमें वह मस्तिष्क-अनुभूति या सद्भावनाकी उर्वरता निरन्तर दीख पड़ेगी—खासकर स्त्रियोंमें। शोषण तथा अत्याचारके होते हुए भी किसी-न-किसी रूपमें यह अवश्य पाई जाती है।

इस प्रकारके स्त्री-पुरुष ही—जिनमें कुछ तो अप्रसिद्ध रूपमें और कुछ बृहत्तर क्षेत्रमें—मानव-जातिकी उन्नतिकी सृष्टि करते हैं। मानव-जाति भी इस बातसे परिचित है। यही कारण है कि वह इस प्रकारके जीवनको श्रद्धा और पौराणिक कथाओंसे आच्छादित कर देती है। मानव-जाति उन्हें अलंकृत करके कथा, कहानी, गीत और उपन्यासका विषय बना देती है। यह उनके साहस, साधुता, प्रेम और भक्ति आदि गुणोंकी पूजा करती है, जिनका हममें से अधिकांश लोगोंमें अभाव पाया जाता है। यह उनकी स्मृतिको युवकोंमें संचारित कर देती है। मानव-जाति उन लोगोंका भी स्मरण करती है, जिन्होंने अपने कुटुम्बियों और मित्रोंकी संकीर्ण परिधिमें काम किया है, और पारिवारिक रीति-नीति और परम्परामें उनकी स्मृतिके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करती है।

इस प्रकारके स्त्री-पुरुष ही सच्चे नीतिज्ञानकी सृष्टि करते हैं। यही वह नीतिज्ञान है, जो दरअसल नीतिज्ञानके नामको चरितार्थ करता है। और सब जितने हैं, वे सब सामानताके सम्बन्धमात्र हैं। उनके साहस और उनकी अनुरक्तिके बिना मानव-समाज तुच्छ हिसाबीपनकी कीचड़में फँसकर हतबुद्धि बना रहता है। इस प्रकारके स्त्री-पुरुष ही भविष्यके नीतिज्ञानकी सृष्टि करते हैं। यह नीतिज्ञान उस समय आयगा, जब हमारे बच्चे हिसाबी बनना छोड़ देंगे, और इस भावको धारण कर लेंगे कि शक्ति, साहस और प्रेमका सर्वोत्तम उपयोग यही है कि जहाँ इस शक्तिकी सबसे अधिक आवश्यकता समझी जाय, वहीं इसका प्रयोग किया जाय।

प्रत्येक युगमें इस प्रकारका साहस और भक्ति पाई जाती है। सामाजिक पशुओंमें भी यह गुण दीख पड़ता है। अधःपतनके युगमें भी मनुष्योंमें यह गुण पाया जाता है।

धर्मोंने बराबर इसपर अधिकार जमानेकी तथा अपने लाभके लिए इसके सिक्के बनाकर चलानेकी चेष्टा की है। धर्म यदि अब भी जीवित हैं, तो इसका कारण यह है कि उन्होंने बराबर भक्ति और साहसके नामपर—अज्ञानताके अलावा—अपील की है। क्रान्तिकारी भी इन्हींके नामपर अपील करते हैं।

कर्तव्यकी नैतिक भावनाको, जिसे प्रत्येक मनुष्यने

अपने जीवनमें अनुभूत किया है और जिसकी प्रत्येक प्रकारके रहस्यवाद द्वारा व्याख्या करनेकी कोशिश की गई है, सम्बन्धमें Guyau नामक लेखक कहता है—"कर्तव्यकी नैतिक भावनाका श्रोत है जीवनका उभार। जब जीवनमें उभार आता है, तो वह मनुष्यको मजबूर करता है कि वह अपनी शक्तिका प्रयोग करे। इसके साथ ही वह शक्तिकी अनुभूति भी है।"

जब शक्तियाँ संचित हो जाती हैं, वे तो अपने सामने उपस्थित होनेवाली बाधाओंपर दबाव डालती हैं। कार्य करनेकी क्षमताका अर्थ है कर्तव्य। जिसमें शक्ति है, वह काम करनेके लिए मजबूर है। नैतिक बाध्यताका, जिसके सम्बन्धमें अत्यधिक कहा और लिखा गया है, कुछ शब्दोंमें अभिप्राय है—"यदि तुम ज़िन्दगी क़ायम रखना चाहते हो, तो उसका विस्तार करो। यानी जीवनकी शर्त ही यह है कि उसका विस्तार किया जाय। पौधा अपनेको पुष्पित होनेसे रोक नहीं सकता। कभी-कभी फल लगनेका अर्थ होता है मृत्युको प्राप्त होना। फिर भी रस तो ऊपर चढ़ता ही रहता है।" अराजकवादी दार्शनिक युवक इस प्रकार विचार करता है।

जो बात पौधोंके बारेमें होती है, वही आदमियोंके बारेमें भी, जब कि वह शक्ति और स्फूर्तिसे परिपूर्ण रहता है। शक्ति उसमें इकट्ठी होने लगती है। फिर वह अपने जीवनको विस्तीर्ण करता है। वह बिना किसी हिसाब-किताबके दान करता है, क्योंकि इसके बिना वह जीवित रह नहीं सकता। जिस तरह फूल खिलनेपर मुरझाकर सूख जाता है, उसी प्रकार यदि दान करते हुए उसके भी जीवनका अन्त हो जाय, तो कुछ भी हर्ज नहीं; यदि जीवनमें रस है, तो वह ऊपर चढ़ेगा ही।

शक्तिशाली बनो। मानसिक आवेग तथा बौद्धिक शक्तिके उच्छ्वाससे अपनेको परिप्लावित कर दो, तभी तुम अपनी बुद्धि, अपने प्रेम और अपनी क्रियाशक्तिका दूसरोंमें प्रचार कर सकोगे। सब नैतिक शिक्षाओंका सार यही है।

सच्चे नीतिनिष्ठ पुरुषकी जिस बातकी मनुष्य-समाज प्रशंसा करता है, वह है उसकी शक्ति—उसके जीवनका बाहुल्य, जो उसे इस बातके लिए प्रेरित करता है कि वह अपनी बुद्धि, अपनी अनुभूति, अपनी क्रियाशक्ति दूसरेको प्रदान करे और बदलेमें कुछ भी न चाहे।

प्रबल चिन्ताशील व्यक्ति, जो बौद्धिक जीवनसे भरपूर बना रहता है, स्वभावतः अपने भावोंको बाँटना चाहता है। विचार करनेमें क्या आनन्द मिल सकता है, जब तक कि वे विचार दूसरों तक पहुँचाये न जा सकें? जो लोग मानसिक दृष्टिसे दरिद्र होते हैं, वे ही अत्यन्त कष्टसे ढूँढ़ निकाले हुए भावोंको यत्नपूर्वक छिपाते हैं, ताकि वे उसपर अपने नामकी छाप लगा सकें; किन्तु परिपक्व बुद्धिवाले मनुष्य अपने भावोंको लेकर उच्छ्वसित हो उठते हैं, और वे उन्हें दोनों हाथोंसे वितरण करते हैं। यदि वे अपने विचारोंका भागी दूसरोंको नहीं बना सकने और यदि वे उन्हें चारों दिशामें विकीर्ण नहीं कर सकते, तो उन्हें अपना जीवन कष्टप्रद प्रतीत होता है, क्योंकि इस दानमें ही उनका जीवन है।

यही बात अनुभूतिके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। हम अपने लिए ही पर्याप्त नहीं हैं—"हमारे पास जितने आँसू हैं, वे हमारे निजी कष्टोंसे कहीं अधिक हैं (यानी वे दूसरोंके कष्टोंके लिए भी बहाये जाने चाहिए), और हमारे जीवनके लिए जितना आनन्द उचित होना चाहिए, उसकी अपेक्षा हममें कहीं अधिक आनन्द-उपभोगकी क्षमता है।" Guyauने इन दो पंक्तियोंमें हमारे नीतिशास्त्रका सार निचोड़कर रख दिया है। एकाकी मनुष्य दुःखी और अशान्त बना रहता है, क्योंकि वह अपने विचारों और अनुभूतियोंमें दूसरोंको शामिल नहीं कर सकता। जब हम किसी महान आनन्दका अनुभव करते हैं, तो हमारी यह इच्छा होती है कि हम दूसरोंको यह बतावें कि हम ज़िन्दा हैं, हम अनुभव करते हैं, हम प्रेम करते हैं, हम जीवन धारण करते हैं, हम जीनेके लिए संग्राम करते हैं, हम युद्ध करते हैं।

इसके साथ ही हम इस बातकी भी आवश्यकता अनुभव करते हैं कि हम अपनी इच्छाशक्तिका—अपनी सक्रिय शक्तिका प्रयोग करें। बहुसंख्यक मनुष्योंके लिए कार्य करना एक आवश्यक वस्तु हो जाता है। यह आवश्यकता इतनी बड़ी होती है कि जब असंगत दशाओंके कारण स्त्री-पुरुष किसी लाभदायक कार्यसे विच्छिन्न हो जाते हैं, तो वे कोई उटपटाँग कार्य या व्यर्थके दायित्व ढूँढ़ निकालते हैं, जिससे अपनी सक्रिय शक्तिके लिए वे क्षेत्र प्रस्तुत कर सकें। वे किसी सिद्धान्त, धर्म या सामाजिक कर्त्तव्यका आविष्कार करते हैं, जिससे वे अपने मनको यह विश्वास दिला सकें कि वे कोई लाभदायक कार्य कर रहे हैं। जब वे नाचते हैं, तो परोपकारके लिए। जब वे कीमती पोशाक पहनकर अपनी बर्बादी करते हैं, तो इसलिए कि वे अपने सम्भ्रान्त कुलकी स्थितिको क़ायम रख सकें! जब वे कुछ नहीं भी करते हैं, तो सिर्फ सिद्धान्तके लिए!

Guyauने लिखा है—"अपने साथियोंको सहारा देना हमारे लिए आवश्यक है ; मानव-समाज द्वारा जो गाड़ी बड़ी कठिनतासे खींची जा रही है, उसमें हम भी कन्धा लगा दें ; हर हालतमें हम उसके इर्दगिर्द मँडराते रहें।" सहारा पहुँचानेकी यह आवश्यकता इतनी बड़ी होती है कि यह सब सामाजिक प्राणियोंमें पाई जाती है, चाहे उनकी स्थिति कितनी ही निम्न क्यों न हो। प्रतिदिन राजनीतिमें जो विशाल शक्तिका अपव्यय होता है, वह इसके सिवा और क्या है कि मानवताकी गाड़ीको सहारा दिया जाय, या कम-से-कम उसके चारों ओर घूमा जाय।

'इच्छाशक्तिकी उर्वरता' कार्य करनेकी पिपासा जब अनुभूतिकी दरिद्रतासे युक्त होती है और बुद्धि सृष्टि करनेमें अक्षम्य होती है, तो उससे नेपोलियन या बिस्मार्क जैसे व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारके पाण्डित्याभिमानी व्यक्ति संसारको ज़बर्दस्ती पीछेकी ओर घसीटकर ले जानेकी चेष्टा करते हैं। दूसरी ओर यदि मानसिक उर्वरता विकसित अनुभूतिसे शून्य होती है, तो उसके फलस्वरूप ऐसे अहंकारी साहित्यिक और वैज्ञानिक व्यक्ति उत्पन्न होते हैं, जो केवल ज्ञानकी प्रगतिमें बाधा पहुँचाते हैं। अन्तमें यह जान रखना चाहिए कि यदि अनुभूतिको पथ-प्रदर्शित करनेके लिए बुद्धिका अभाव होगा, तो इससे उस स्त्री-जैसे व्यक्ति उत्पन्न होंगे, जो किसी नरपशुके लिए, जिसे वह तन-मन-प्राणसे प्रेम करती है, अपना सब कुछ न्योछावर कर देनेको तैयार रहती है।

यदि जीवनको वस्तुतः सफल बनाना है, तो बुद्धि, अनुभूति और इच्छाशक्तिमें सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। जीवनकी प्रत्येक दिशाकी यह उर्वरता ही जीवन है, और इसीका नाम ज़िन्दगी है। इस जीवनके एक क्षणके लिए जिन्होंने एक बार भी इसकी झाँकी प्राप्त कर ली है, वे अपने घास-फूसकी तरह बढ़नेवाले कितने ही वर्ष प्रदान कर देते हैं। इस प्रचुर जीवनके बिना मनुष्य समयसे पहले ही वृद्ध हो जाता है। वह एक नपुंसक प्राणी बन जाता है। वह उस पौधेके समान है, जो फूलनेके पहले ही सूख जाता है।

"इस जीवनको, जिसमें ज़िन्दगी है ही नहीं और जो सड़ी-गली चीज़ोंसे परिपूर्ण है, धता बताओ।" एक युवक बोल उठता है—वह सच्चा युवक, जिसमें जीवन-रस उच्छ्वसित हो रहा है, जो जीवित रहना चाहता है और जो अपने चारों ओर जीवनको वितरण करना चाहता है। प्रत्येक अवसरपर जब समाजका पतन होता है, तो इस प्रकारके युवकोंके आक्रमणसे प्राचीन आर्थिक राजनीतिक और नैतिक स्वरूप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, जिससे नवजीवनकी उत्पत्तिके लिए स्थान हो। यदि इस संग्राममें कितने ही नवयुवक खेत रहें, तो इसकी कोई चिन्ता नहीं। फिर भी जीवन-रसका तो संचार होता ही रहता है। क्योंकि यौवनके अस्तित्वका अर्थ है पुष्पित होना, चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

नवयुवक इस बातकी फ़िक्र नहीं करता कि उसके कार्यौंका नतीजा क्या होगा, और चाहे जो भी परिणाम हो, नवयुवक उसके लिए खेद नहीं करता।

मानव-जीवनके वीरत्वपूर्ण अवसरोंकी बात जाने दीजिए, यदि हम मनुष्यके दैनिक जीवनपर ही विचार करें, तो क्या अपने आदर्शसे विच्छिन्न होकर रहना भी कोई ज़िन्दगी है ?

इन दिनों अकसर यह कहा जाता है कि मनुष्य आदर्शके नामपर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। इसका कारण समझना कठिन नहीं है। इस 'आदर्श' शब्दका सरल हृदय मनुष्योंको धोखा देनेके लिए इतना अधिक दुरुपयोग हुआ है कि इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होनी अवश्यम्भावी है और साथ ही लाभप्रद भी है। हम भी यह चाहते हैं कि 'आदर्श' शब्दके, जो इतना अधिक कलंकित और दूषित हो चुका है, स्थानमें कोई नया शब्द रखा जाय, जो नवीन भावोंके अनुकूल हो।

किन्तु शब्द चाहे कुछ भी क्यों न हो, असल बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्यका उसका अपना आदर्श होता है। बिस्मार्कका भी अपना निजी आदर्श था—वह आदर्श कितना ही विचित्र क्यों न था—यानी तलवारके बलपर शासन। यहाँ तक कि प्रत्येक असभ्य व्यक्तिका भी अपना आदर्श होता है, चाहे वह आदर्श कितना ही अधम क्यों न हो।

किन्तु इन लोगोंके सिवा ऐसे मनुष्य भी हैं, जिन्होंने उच्चतर आदर्शकी कल्पना की है। पशुवत जीवनसे वे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। दासता, मिथ्याभाषण, विश्वासघात, षड्यन्त्र, मानवीय सम्बन्धमें असमानता—इन सब बातोंसे उन्हें घृणा होती है। वे स्वयं दासवत, मिथ्याभाषी, षड्यन्त्रकारी और दूसरेपर प्रभुत्व करनेवाले क्योंकर हो सकते हैं ? यदि मनुष्योंमें परस्परका सम्बन्ध अच्छा हो, तो जीवन कितना सुन्दर बन सकता है, इसका आभास उन्हें मिल जाता है। वे अपनेमें इस बातकी क्षमताका अनुभव करते हैं कि वे उन लोगोंके साथ अच्छा सम्बन्ध स्थापित करनेमें सफल हो सकते हैं, जिनके साथ उनका सम्पर्क हो। उनके मनमें एक ऐसी भावनाका जन्म होता है, जिसे हम आदर्श कहते हैं।

यह आदर्श कहाँसे आता है ? एक तो वंशानुक्रमसे और दूसरे जीवनकी धारणाओंसे। किस प्रकार इसका गठन होता है ? हम लोग यह नहीं जानते। अधिक-से-अधिक हम इसकी कहानी न्यूनाधिक सत्य रूपमें अपने आत्म-चरितमें वर्णन कर सकते हैं। पर यह एक यथार्थ तथ्य है—परिवर्तनशील और प्रगतिशील है, वाह्य प्रभावोंसे प्रभावित होता है ; किन्तु बराबर सजीव बना रहता है। यह आदर्श विशेषतः वह अचेतन अनुभूति है, जिससे अधिक-से-अधिक परिमाणमें प्राणशक्ति और आनन्द प्राप्त हो सकता है।

जीवन सबल, उर्बर और संवेदनशील तभी हो सकता है, जब आदर्शकी अनुभूतिके अनुसार काम किया जाय। इस अनुभूतिके विरुद्ध कार्य कीजिए और आपको अपना जीवन झुका हुआ—अवनत—मालूम पड़ेगा। उसकी सजीवता नष्ट हो जायगी। अपने आदर्शके प्रति यदि आप सच्चे नहीं बने रहेंगे, तो अन्तमें आपकी इच्छाशक्ति और क्रियात्मक शक्तिको लकवा मार जायगा। फिर आप शीघ्र अपनी जीवनशक्तिको प्राप्त नहीं कर सकेंगे और आप खो बैठेंगे अपने निर्णयकी उस स्वच्छन्दताको, जिसे आप पहले जानते थे। आपका जीवन टूट जायगा—भग्न हो जायगा।

यदि आप मनुष्यको स्नायु और मस्तिष्क-सम्बन्धी केन्द्रोंका—जो स्वतन्त्र रूपसे कार्य करते हैं—सम्मिश्रण समझ लें, तो फिर इन बातोंमें कोई रहस्य नहीं रह जायगा। आपके अन्दर जो विभिन्न अनुभूतियाँ संग्राम कर रही हैं, उनके बीच दुविधामें पड़े रहिये ; फिर आप देखेंगे कि कितनी जल्दी आपके अवयवोंका सामंजस्य नष्ट हो जाता है।

इच्छाशक्तिके विना आप रोगी बन जायँगे। आपके जीवनकी प्रगाढ़ता कम हो जायगी। फिर आप समझौते करनेकी फ़िक्र करेंगे; पर क्या ऐसे समझौतोंसे ज़िन्दगी वापस आ सकती है? फिर आप कभी पूर्ण, सुदृढ़, सबल व्यक्ति नहीं बन सकेंगे, जैसा आप उस समय थे, जब कि आपके कार्य मस्तिष्ककी आदर्श-भावनाओंके अनुकूल होते थे।

ऐसे युग भी आते हैं, जब नैतिक भावनाओंमें पूर्णतया परिवर्तन हो जाता है। मनुष्य यह अनुभव करता है कि जिस बातको उसने नीतियुक्त समझा था, वह घोर नीतिभ्रष्टता है। उदाहरणार्थ, कोई प्रथा, जो परम्परासे नीतिमूलक समझी जाती रही है, अब स्पष्टतया नीतिभ्रष्ट मालूम पड़ती है। दूसरे उदाहरणोंमें हम ऐसी नैतिक पद्धति पाते हैं, जो किसी श्रेणी-विशेषके स्वार्थके लिए बनाई गई हो। उस समय हम उन्हें अलग फेंक देते हैं और "नीतिमत्ताका अन्त कर डालो" यह आवाज़ उठाते हैं। उस समय नीति-विरुद्ध कार्य करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है।

हमें ऐसे युगोंका स्वागत करना चाहिए, क्योंकि ये युग समालोचनाके युग हैं। वे इस बातके निर्भ्रान्त लक्षण हैं कि समाजमें चिन्ताशक्ति कार्य कर रही है; उच्चतर नीतिनिष्ठा काम करने लग गई है। यह नीतिमत्ता क्या होगी, उसकी हमने सूत्र रूपमें व्याख्या की है, और इसके लिए हमने मनुष्य और पशु जीवनके अध्ययनको अपना आधार माना है।

हमने नीतिज्ञानके उस रूपको देखा है, जो इस समय भी जनता और विचारशील लोगोंके भावोंमें आकार धारण कर रहा है। इस प्रकारके नीतिज्ञानमें आदेश जारी नहीं किये जायँगे। यह सदाके लिए किसी अमूर्त्त भावनाके अनुसार व्यक्तियोंको साँचेमें ढालना अस्वीकार कर देगा, क्योंकि यह उन्हें धर्म, क़ानून या सरकार द्वारा अंगहीन नहीं बनाना चाहता। यह व्यक्तिके लिए पूर्ण और सर्वांगसम्पन्न स्वाधीनता देगा। यह तथ्योंका एक सरल विवरण—एक विज्ञान होगा। और यह विज्ञान मनुष्यसे कहेगा—"यदि तुम अपनी आन्तरिक शक्तिसे परिचित नहीं हो, यदि तुम्हारी शक्तियाँ सिर्फ़ इसी बातके लिए पर्याप्त हैं कि तुम अपने निस्तेज और अपरिवर्तनशील जीवनको, बिना किसी गहरी छापके, बिना गम्भीर आनन्द और साथ ही बिना किसी गम्भीर शोकके, क़ायम रख सको, तो न्यायानुकूल समानताके सरल सिद्धान्तोंपर अपनेको संलग्न रखो। समानताके सम्बन्धसे तुमको अपनी दुर्बल शक्तियोंके अनुसार यथासम्भव अधिक-से-अधिक आनन्द मिलेगा।

"किन्तु अगर तुम्हें अपने भीतर जवानीकी ताक़त महसूस होती है, अगर तुम जीते रहना चाहते हो, अगर तुम निर्दोष, सर्वांगपूर्ण और उभरती हुई ज़िन्दगीका आनन्द लेना चाहते हो—यानी, अगर तुम उन सर्वोच्च आनन्दोंको जानना चाहते हो, जिनकी कोई भी जीवित प्राणी आकांक्षा कर सकता है—तो मज़बूत बनो, महान बनो और जो कुछ भी तुम करो, उसमें दृढ़तासे काम लो।

अपने चारों तरफ़ जीवनके बीज बोओ। ख़बरदार! अगर तुम धोखा दोगे, झूठ बोलोगे, षड्यन्त्र रचोगे, चकमा दोगे, तो तुम उससे ख़ुद अपने-आपको पतित करोगे, अपने-आपको छोटा बनाओगे, पहलेसे अपनी कमज़ोरियाँ क़बूल करोगे और तुम्हारी हालत ज़नानखानेके उस ग़ुलामकी तरह होगी, जो हमेशा अपनेको अपने मालिकसे छोटा समझता है। अगर तुम्हें यही बातें भाती हैं, तो इन्हींको करो; लेकिन उस हालतमें लोग तुम्हें नाचीज़, घृणास्पद और कमज़ोर समझेंगे, और तुम्हारे साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे। तुम्हारी ताक़तका कोई सबूत न होनेके मानी यह होंगे कि जनता तुम्हें करुणाका पात्र समझेगी—केवल करुणाका पात्र, बस!

जब तुम ख़ुद अपने-आप अपनी शक्तियोंको पंगु बनाते हो, तो दुनियाको दोष मत दो। इसके ख़िलाफ़ अपनेको शक्तिशाली बनाओ, और अगर कहीं तुम्हें कोई अन्याय दिखाई दे और तुम उसे अन्याय या अधर्म मानते हो—चाहे वह जीवनका कोई अन्याय हो,

विज्ञानका कोई झूठ हो, या किसीपर किसीका किया हुआ ज़ुल्म हो—तो तुम उस अन्याय, उस झूठ या उस ज़ुल्मके ख़िलाफ़ उठकर बग़ावत कर दो।

संघर्ष करो, ताकि सारी दुनिया सुखी और उभरता हुआ भरापूरा जीवन बिता सके। विश्वास रखो कि इस संघर्षमें तुम्हें वह आनन्द मिलेगा, जो और कोई चीज़ नहीं दे सकती।"

नीतिशास्त्र आपको जो कुछ बतला सकता है, वह सिर्फ़ इतना ही है। इसे मानना या न मानना आपकी इच्छापर निर्भर है।

अनुवादक—जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

मौलवी अब्दुल हक़ साहब

श्री बंशीधर विद्यालंकार

राजनैतिक या धार्मिक क्षेत्रोंमें काम करनेवाले महानुभावोंको जितनी जल्दी सम्मान और लोक-यश प्राप्त हो जाता है, उतनी जल्दी साहित्य-क्षेत्रमें कार्य करनेवालोंको नहीं प्राप्त होता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि साहित्य-सेवियोंको राजनैतिक या धार्मिक क्षेत्रमें कार्य करनेवालोंसे किसी प्रकार कम परिश्रम करना पड़ता है, या उनके मार्गमें विशाल विघ्न-बाधाएँ ऊँचे पहाड़ोंकी तरह अपना सिर उठाकर खड़ी नहीं होतीं। उन्हें जनताकी सहायता उतनी जल्दी प्राप्त नहीं होती, जितनी जल्दी राजनैतिक या धार्मिक क्षेत्रके कार्यकर्त्ताओंको प्राप्त हो जाती है। राजनैतिक या धार्मिक आवश्यकताओंके लिए सर्वसाधारणसे जिस सुगमतासे धन संग्रह किया जा सकता है, उतनी सुगमतासे किसी देशकी साहित्यिक आवश्यकताओंके लिए नहीं।

प्रकाशन और छापाख़ानेके क्षेत्रमें आकर भी अपने-आपको प्रकाशित करनेसे बचाये रखना उन्हीं लोगोंका काम हो सकता है, जो अपने महान कार्यके सामने अपना कुछ भी मूल्य न समझते हों। मनुष्य-स्वभावका यह दुर्भाग्य है कि वह प्रायः अपनेको जितना महत्त्व और अहमियत देता है, उतना अपने कार्यको नहीं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं, जो अपने-आपको किसी महान उद्देश्यकी पूर्तिका एक मामूली-सा निमित्त समझते हों, या उसकी प्राप्तिके लिए अपनेको उसका एक क्षुद्र साधन बनानेका प्रयत्न करते हों। सूर्यकी किरणोंसे ही सूर्यका प्रकाश फैलता है; परन्तु सूर्यकी किरणें बड़ी सावधानीसे देखनेपर ही दृष्टिगोचर होती हैं, और सूर्य सदा स्पष्टरूपसे दृष्टिके सामने रहता है। जिस प्रकार सूर्यकी किरणें प्रकाशका साधन बनकर भी अपने-आपको सूर्यके उज्ज्वल प्रकाशमें छिपाये रखती हैं, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपने महान उद्देश्यकी क्रियात्मक पूर्तिका साधन बनकर भी अपने-आपको उस उद्देश्यकी महानतामें छुपाये रखता है—अपने-आपको उससे पृथक् कभी प्रकाशित नहीं होने देता, वही सच्चे अर्थोंमें अपने महान् कार्यकी महत्ताको पूर्ण रीतिसे समझता है। सच तो यह है कि कार्यके महत्त्वसे ही मनुष्यको महत्त्व प्राप्त होता है, इसके सिवा मनुष्यके महत्त्वका कोई विशेष अर्थ नहीं रहता।

मौलवी अब्दुल हक़ साहेब ऐसे ही लोगोंमें से हैं। एक तो हमारे देशमें साहित्य-क्षेत्रमें वैसे ही एक व्यक्तिको शीघ्र प्रसिद्धि नहीं प्राप्त होती, दूसरे उन्होंने अपने-आपको प्रकाशित होनेसे बड़ी सावधानीसे इस तरह बचा रखा है कि शायद उर्दू-जगत्में भी ऐसे गण्यमान्य व्यक्ति मिल जायँ, जो उनके कार्यसे परिचित होकर भी उनके नामसे परिचित न हों। वे अपने

जीवन-वृत्तान्त बहुत ही कम सुनाते हैं, और इस कारण उनके विषयमें जो वृत्तान्त ज्ञात हैं, उनका आधार अधिकतर श्रुति-परम्परा ही है। जो लोग जनताके लिए कार्य करते हैं, यदि वे जनताको अपने वृत्तान्त स्वयं नहीं बताते, तो फिर जनता उनके जीवन-वृत्तान्तोंकी स्वयमेव रचना करने लग जाती है। ऐसी अवस्थाओंमें उनके जीवनके विषयमें यथार्थ रीतिसे, प्रामाणिक तौरपर लिखना बड़ा कठिन है। ऐसे लोगोंके जीवन-वृत्तान्तको उनके कार्य-वृत्तान्तसे ही लिखा जा सकता है।

मौलवी अब्दुल हक़ साहबने उर्दू-भाषाको सर्वांगरूपसे उन्नत, संगठित, महान, शक्तिशाली और संसारकी समस्त सभ्य और उन्नत भाषाओंके बीचमें पूर्ण आदरके साथ विराजमान होनेके योग्य बनानेके लिए अपने जीवनकी समस्त शक्तिको हृदयकी उच्च और विशाल भावनाओंके साथ पूर्ण तत्परतासे लगा दिया है। उन्हें अपने इस उद्देश्यको पूर्ण करनेमें जितने महान कष्टोंका सामना करना पड़ा है, उनकी कठोरता उन्हें अपने उद्देश्यकी महानताके सम्मुख कुछ भी प्रतीत नहीं हुई, और इसी कारण उन्होंने उनपर शीघ्र ही विजय प्राप्त कर ली। जब वे अलीगढ़-कालेजमें शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उन्होंने तभीसे अपने जीवनके उद्देश्यको अच्छी तरह सोच-समझकर स्थिर कर लिया था। अपने कालेजके जीवनमें उन्हें सर सैयद अहमद जैसे महापुरुषोंके सीधे संसर्गमें आनेका सौभाग्य मिला, और उसी समय उनके तरुण हृदयमें अपनी भाषाकी सेवा करनेकी अदम्य भावनाएँ तीव्रताके साथ जाग्रत हो उठी थीं। कालेजके तरुण जीवनमें, उच्च विचारोंकी पुस्तकों और विचारशील अध्यापकोंके संसर्गसे, न-जाने कितने नवयुवकोंके हृदयमें भविष्य जीवनमें उच्च और महान कार्य करनेकी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत होने लग जाती हैं; परन्तु ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता है, वे महत्त्वाकांक्षाएँ जीवनकी कठोर ठोकरें खाकर लुप्त हो जाती हैं। क्रियात्मक जीवनकी चिन्ताएँ फिर इन स्वप्न-सदृश महत्वाकांक्षाओंका स्वप्न भी नहीं लेने देतीं। परन्तु जो नवयुवक उसी समयसे अपनी शक्तिके अनुसार अपने आदर्शको एक जीवित वस्तु बनानेका प्रयत्न करते हैं, और अपने उद्देश्यकी उपेक्षा नहीं करते, चाहे वे किसी भी क्षेत्रमें कार्य करें। वे अपने आदर्शोंका जीवित रूप इस संसारमें कुछ-न-कुछ अवश्य उपस्थित कर जाते हैं।

मौलवी साहबने जिस दिनसे उर्दू भाषाकी सेवाके व्रतको अपनाया, उसी दिनसे उसके लिए अपनी शक्तिके अनुसार क्रियात्मक प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने उर्दू-साहित्यका गहरा अध्ययन किया, और विद्यार्थी-जीवनसे ही वे उर्दूकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंको इकट्ठा करने लगे। उन्होंने इन पुस्तकोंको प्राप्त करनेके लिए कितना व्यय और परिश्रम किया, इसकी कल्पना भी कठिन है। वे ऐसी बहुतसी जगहोंमें गये, जहाँ रेलगाड़ी नहीं थी—सिर्फ़ इसलिए कि वहाँ किसी प्राचीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकको हस्तलिखित प्रति प्राप्त कर सकेंगे। कई जगहोंमें उन्हें कुछ पुस्तकें प्राप्त भी हुईं; परन्तु वे ऐसे काग़ज़ोंपर लिखी हुई थीं कि ज्यों ही उन्होंने हाथ लगाया, त्यों ही वे चूर-चूर हो गईं। पर इतनेपर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी।

हैदराबाद रियासत बहुत दिनोंसे उर्दू-साहित्य-सेवियोंकी न केवल आश्रयदाता रही है; बल्कि उन्हें हर तरहसे सहायता पहुँचाती रही है। उर्दूके महाकवि दाग़को इस रियासतसे १५००) महीना मिलता था और कविवर मौलाना हालीको १००) महीनेकी सहायता मिलती थी। इसी प्रकार रियासतने उर्दूके बहुतसे गण्यमान्य साहित्य-सेवियोंको समय-समयपर मदद पहुँचाई है। यद्यपि अब तो अन्य रियासतोंकी तरह इस रियासतमें भी मुल्की और ग़ैर-मुल्कीका प्रश्न बड़ी कटुताके साथ खड़ा हो गया है; परन्तु पहले समयमें यह रियासत उर्दूकी सेवा करनेवालोंके हृदयोंमें बिना किसी

भेद-भावके बड़ी-बड़ी आशाओंका संचार कर देती थी। मौलवी साहबने उर्दूकी सेवाके लिए जितने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, उनमें हैदराबाद रियासतने काफ़ी आर्थिक सहायता दी है, और सच तो यह है कि यदि मौलवी साहबको इस रियासतसे सहायता न मिलती, तो उन्हें अपने विचारोंको क्रियात्मक रूपमें परिणत करनेमें भयंकर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता।

अनेक आशाओंको लिये हुए मौलवी अब्दुल हक़ साहबने इस रियासतमें प्रवेश किया था। मौलवी साहब हापुड़ ज़िला मेरठके रहनेवाले हैं। उनका जन्म पंजाबमें भेरा नामक स्थानमें हुआ था। उस समय अलीगढ़-यूनिवर्सिटीके ग्रेजुएटोंको आसानीसे अच्छी-अच्छी नौकरियाँ मिल जाती थीं; परन्तु मौलवी साहब नौकरीका लालच छोड़कर उर्दू-भाषाकी सेवाके लिए इस रियासतमें आये। पहले-पहल उन्होंने बम्बईमें व्यापार करनेकी सोची, वह भी इसलिए कि शायद व्यापारसे उन्हें इतना आर्थिक लाभ हो जायगा, जिससे वे निश्चिन्त होकर उर्दूकी सेवा कर सकें। इसलिए वे बम्बई गये भी; परन्तु बम्बईका जलवायु उन्हें अनुकूल न पड़ा, इसलिए वे बम्बईको छोड़कर हैदराबाद लौट आये। हैदराबादमें उन्होंने आसफ़िया मदरसा क़ायम कराया। पहले-पहल वे इस मदरसेके हेडमास्टर हुए। फिर वे रियासतके गृह-विभाग (Home Department) में अनुवादक होकर गये। बादमें औरंगाबाद सूबेके सदर मोहतमीम तालीमात (Chief-Inspector of Schools) हुए। इसके बाद वे औरंगाबाद इन्टरमीडिएट कालेजके प्रिन्सिपल हुए। यहाँसे पेन्शन लेकर वे हैदराबादमें उस्मानिया यूनिवर्सिटीके उर्दू-विभागके प्रधान प्रोफेसर होकर आये। आज भी वे इसी पदपर कार्य कर रहे हैं। जीवनकी जिस अवस्थामें भी वे रहे, निरन्तर उर्दूकी सेवा करते रहे, और उसके महत्त्वको बढ़ानेके लिए लगातार अथक परिश्रम किया। उन्होंने ऊँचे-से-ऊँचे पद पर पहुँचकर भी, बड़ी-से-बड़ी तनख्वाह पाकर भी, अपने उद्देश्यको नज़रोंसे कभी ओझल न होने दिया।

सन् १९१३ में जब वे अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दूके अवैतनिक मन्त्री चुने गये, उस समय अंजुमनकी सम्पत्ति एक रजिस्टर और एक खाली बक्सके सिवा और कुछ भी न थी। 'अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू' की स्थापना सन् १९०३ में अखिल भारतीय मुस्लिम शिक्षा सभाकी तरफ़से हुई थी। मौलाना शिबलीके मन्त्रित्वमें इस अंजुमनको प्रारम्भ किया गया था। इस संस्थाकी तरफ़से अंजुमनको ५००) की वार्षिक सहायता मिला करती थी; किन्तु वह भी कुछ समय बाद बन्द हो गई। इस अंजुमनके दो-तीन और भी मन्त्री चुने गये। सन् १९१३ में मौलवी अब्दुल हक़ साहब इस अंजुमनके मन्त्री चुने गये। उन्होंने इसे अपने हाथमें लेते ही एक जीवित संस्था बना दिया। इस संस्थाका विस्तृत परिचय हम फिर कभी 'विशाल भारत' के पाठकोंको देंगे। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि मौलवी अब्दुल हक़ साहबने अपनी सारी शक्ति इसके उद्धारमें लगा दी। इस समय यह अंजुमन औरंगाबादमें है। आज इस अंजुमनके पास ३६०००) नक़द सुरक्षित कोषमें है। लगभग ३५०००) की पुस्तकें प्रतिवर्ष बिक जाती हैं। बहुतसे प्रसिद्ध व्यक्ति इसके सभासद हैं। भारतवर्षमें इसकी बहुतसी छोटी-छोटी शाखाएँ खोली गई हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि इस अंजुमनके पास एक लाख रुपया सुरक्षित कोषमें हो जाय, जिसके सूदसे यह अंजुमन चलता रहे। अंजुमनकी तरफसे बहुतसी उर्दूकी प्राचीन और अच्छी-अच्छी पुस्तकोंका आधुनिक पद्धतिसे प्रकाशन हो रहा है। लगभग ७० पुस्तकें इस अंजुमनकी ओरसे प्रकाशित हो भी चुकी हैं। उर्दूकी हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रहालयके लिए भी अंजुमन प्रयत्नशील है। इसका अपना प्रेस भी

है। यहाँसे दो त्रैमासिक पत्र प्रकाशित होते हैं—एक 'उर्दू' और दूसरा 'साइन्स'। दोनों पत्र बड़े परिश्रम और कुशलताके साथ सम्पादित होते हैं। 'उर्दू' साहित्यिक पत्र है और 'साइन्स' विज्ञान-विषयक। इन दोनों पत्रोंमें साहित्य और विज्ञानके उच्चकोटिके लेख छपते हैं। 'उर्दू'का यह चौदहवाँ वर्ष और 'साइन्स'का सातवाँ वर्ष चल रहा है। इन दोनों पत्रोंपर उर्दू-भाषावालोंको अभिमान हो सकता है। हैदराबाद रियासतकी तरफ़से अंजुमनको ५०००) की और भोपालसे ५००) की वार्षिक सहायता मिलती है।

पुराने कवियोंकी पुस्तकोंका वर्तमान पद्धतिसे सुन्दर और शुद्ध प्रकाशन, नई पुस्तकोंका लेखन, दूसरी भाषाओंसे अच्छी-अच्छी पुस्तकोंका उर्दूमें अनुवाद, उर्दूके कवियोंपर समालोचनात्मक पुस्तकें आदि बातोंकी ओर मौलवी अब्दुल हक़ साहब विशेष रूपसे प्रयत्नशील हैं। बहुतसी समालोचनात्मक पुस्तकें उन्होंने स्वयं लिखी हैं। अंगरेज़ी भाषासे उर्दूमें अनुवाद करनेवालोंको ठीक शब्दोंका मिलना कठिन होता था, इसलिए उन्होंने एक प्रामाणिक अंगरेज़ी-उर्दू कोश तैयार कराया है। यह कोश अब अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू प्रेसमें छप रहा है। इसे तैयार करनेमें सात वर्ष लगे हैं। इसपर लगभग ४००००) व्यय हो चुका है, और शायद अभी २५००० रुपया और लगेगा। इस प्रकार यह एक वृहत् कोश होगा। इसके साथ-साथ एक छोटा कोश विद्यार्थियोंके लिए भी तैयार हो रहा है। इन कोशोंसे उर्दूमें अंगरेज़ीकी अच्छी-अच्छी पुस्तकोंको भाषान्तरित करनेमें जो सुविधाएँ होंगी, उनकी बड़ी आसानीसे कल्पना की जा सकती है।

पुरानी पुस्तकोंको पढ़ते समय मौलवी साहबको उर्दू-भाषाकी लिपिकी बहुतसी न्यूनताओंका अनुभव हुआ। उन्हें इन पुस्तकोंको पढ़नेमें बड़ी दिक़्क़तें उठानी पड़ीं। बहुतसे शब्द अशुद्ध पढ़े जाते थे, जिससे अर्थका अनर्थ हो जाता था। पुरानी उर्दूमें हिन्दीके शब्दोंकी बहुतायत है, और इस समयकी उर्दूमें अरबी और फ़ारसी शब्दोंकी अधिकता हो गई है, इसलिए उन शब्दोंको ठीक तौरपर पढ़ना भी असम्भव-सा है, और फिर अशुद्ध पढ़े जानेके कारण अर्थोंमें भी बड़ी खींच-तान करनी पड़ती है।

मौलवी अब्दुल हक़ साहब

कभी-कभी तो अर्थका पता ही नहीं लगता। उर्दू-लिपिमें मात्राएँ बहुत कम हैं, इसीलिए ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। इन कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए मौलवी साहबने उर्दूकी लिपिमें परिवर्तनकी आवश्यकताका अनुभव किया। अंजुमन-तरक़्क़ी-ए-उर्दूकी ओरसे उर्दू-भाषाका जो क़ायदा और रीडरें प्रकाशित हुई हैं, उनमें उर्दू-लिपिमें इस प्रकारका परिवर्तन किया गया है। मौलवी साहबने इस प्रकारके परिवर्तनोंको अकेले ही नहीं किया, बल्कि उन्होंने विद्वानोंकी बहुतसी सभाएँ कीं, तत्पश्चात् ये परिवर्तन किये। इन परिवर्तनोंका उद्देश्य यही है कि उर्दू-भाषा

शुद्ध रीतिसे पढ़ी जा सके। परन्तु लिपिके इन परिवर्तनोंका रियासतमें बड़ा विरोध हुआ। यह विरोध यहाँ तक बढ़ा है कि मौलवी साहबको रियासतके शिक्षा-विभागके निर्देशोंके कारण क़ायदे और रीडरोंके नये एडीशनोंसे शायद इन परिवर्तनोंको हटा देना पड़ेगा। यदि रियासतके अधिकारियोंको प्राचीन पुस्तकोंका अध्ययन करना पड़ता, तो उन्हें यह मालूम हो जाता कि उर्दूके विकासमें इस प्रकारके परिवर्तनोंकी कितनी अधिक आवश्यकता है। यह देशका दुर्भाग्य है कि हमारे लकीरके फकीर देशवासी आवश्यक परिवर्तनोंके विरुद्ध भी व्यर्थका आन्दोलन खड़ा कर देते हैं, और इस प्रकार अपनी उन्नतिके मार्गमें अड़चनें उपस्थित कर देते हैं।

मौलवी साहब बहुत वर्षोंसे यह प्रयत्न कर रहे थे कि उर्दू-भाषाके शब्दोंका एक कोश तैयार हो, जिसमें उर्दूके पूरे शब्द हों, उनकी शुद्ध व्युत्पत्ति हो और उन शब्दोंका बिलकुल ठीक अर्थ सप्रमाण दिया गया हो, और जिसमें भाषाके मुहावरों और कहावतोंका यथास्थान उल्लेख हो। परन्तु इस कार्यके लिए विपुल धनराशिकी आवश्यकता थी। आख़िरकार बहुत प्रयत्न करनेपर मौलवी साहबको दस सालके लिए १०००) महीनेकी सहायता मिलनी स्वीकृत हुई है। इस कोशमें मौलवी साहब अवैतनिक कार्य कर रहे हैं। इसमें बहुत ज्यादा ख़र्च हो रहा है, और बहुतसा रुपया मौलवी साहबको अपने पाससे ही लगाना पड़ता है। जब यह कोश पूरा हो जायगा, तो उस्मानिया यूनिवर्सिटीकी तरफ़से प्रकाशित होगा।

इस ६३ वर्षकी आयुमें, जब दूसरे लोग मानव-जीवनसे छुट्टी लेनेकी तैयारी करते हैं, मौलवी अब्दुल हक़ साहबने उत्साहके साथ इस उर्दू कोशका श्रीगणेश किया है। इस कोशकी तैयारीमें कम-से-कम बीस या पचीस साल लगेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। परन्तु इस कार्यके करनेमें उनके हृदयमें इतना उत्साह और उमंग है कि जैसे उन्हें यह अनुभव ही नहीं होता कि उनका बुढ़ापा भी कोई तक़ाज़ा कर रहा है।

हैदराबादमें उस्मानिया यूनिवर्सिटीके सूत्रधार मुख्यतया आप ही हैं। शिक्षाका माध्यम उर्दू बनाई जाय, उर्दू-भाषामें वह क्षमता है, जिसके द्वारा उच्च-से-उच्च शिक्षा दी जा सकती है, इस प्रकारके विचारोंको उन्होंने रियासतके उच्च अधिकारियोंको हृदयंगम कराके अन्ततः यूनिवर्सिटीको क़ायम करा दिया था। इस यूनिवर्सिटीमें उर्दू-भाषाके द्वारा ही उच्च शिक्षा दी जाती है।

हैदराबाद रियासतके कालेज-विभागमें उर्दूके साथ हिन्दीको भी एक अनिवार्य विषय बनाया जाय, इस प्रकारके विचारको उठाने और क्रियात्मक रूपमें परिणत करानेका सारा श्रेय भी उन्हींको ही है। उर्दूमें फ़ारसी और अरबी शब्दोंकी भरमारको वे अवांछनीय समझते हैं। उनका विचार है कि उर्दू ऐसी भाषा होनी चाहिए, जो सर्वसाधारणकी हो। उन्होंने इस आशयके बहुतसे लेख भी लिखे हैं। देहलीकी उर्दू और लखनऊकी उर्दूमें यही भेद था कि देहलीकी उर्दूमें हिन्दीके शब्द प्रचुरतासे हैं; परन्तु लखनऊकी उर्दूमें अरबी और फ़ारसी शब्दोंकी बहुतायत है। हैदराबाद रियासतकी उर्दूमें तो अरबी और फ़ारसीके शब्द इतनी अधिकतासे हैं कि अब यह भाषा कृत्रिम-सी मालूम पड़ने लगी है। इसे सरल और सर्वसाधारणके योग्य बनानेके लिए आपने कालेज-विभागमें उर्दूके छात्रोंके लिए हिन्दीका पढ़ना एक आवश्यक विषय कर दिया है। उनके विचारोंके अनुसार यद्यपि हिन्दी हैदराबाद रियासत यूनिवर्सिटीके पाठ्यक्रममें रख दी गई है, तो भी वह जिन उद्देश्योंको लेकर रखी गई थी, वे फलीभूत नहीं हुए, और जब तक हिन्दीकी शिक्षा इसी पद्धतिपर दी जायगी, तब तक इसका फलीभूत होना, हमारी तुच्छ सम्मतिमें सर्वथा असम्भव है। तो भी मौलवी अब्दुल हक़

साहबका हैदराबाद रियासतमें हिन्दीको रखनेका प्रयत्न सराहनीय है। मौलवी साहबने स्वयं भी हिन्दी सीखनेका प्रयत्न किया है।

पिछले वर्ष वे बड़ौदेकी ओरिएन्टल कानफरेन्सके उर्दू-विभागके सभापति थे। उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषाको क्रियात्मक रूप देनेके लिए जो निर्देश दिये थे, उनमें एक यह भी था कि हिन्दीकी पुस्तकोंमें से अरबी और फ़ारसीके शब्द चुने जायँ, जिन्हें हिन्दी-भाषा-भाषी निस्संकोच होकर अपनी भाषा ही की तरह इस्तेमाल करते हैं और इसी प्रकार उर्दू-भाषामें से हिन्दीके ऐसे शब्दोंको चुना जाय, जो उर्दूमें आ चुके हैं, और इस प्रकारका एक शब्द-कोश तैयार किया जाय। इस कोशको 'हिन्दुस्तानी' भाषाका शब्द-कोश कहा जाय। हिन्दी और उर्दू भाषावालोंकी एक विद्वत्सभा बनाई जाय, और हिन्दुस्तानी भाषामें जो भी नये शब्द व्यवहृत हों, वे इस सभाकी स्वीकृतिसे हों। इस प्रकार धीरे-धीरे एक भाषाका विकास किया जाय, जिसे हम हिन्दुस्तानी कह सकें। आज हिन्दी और उर्दू जिस दिशामें जा रही हैं, वह ऐसी नहीं हैं, जो एक हो। आज ये दोनों भाषाएँ बहुत दूर तक ऐसी अवस्थामें पहुँच गई है, जिससे उन्हें एक करना बिलकुल असम्भव हो गया है।

ये विचार कहाँ तक क्रियात्मक रूपमें परिणत हो सकते हैं, यह एक बिलकुल पृथक प्रश्न है; परन्तु इससे यह तो साफ़ मालूम पड़ता है कि मौलवी साहबकी यह प्रबल इच्छा है कि किसी प्रकार ऐसी भाषा प्रचलित हो, जो सबके लिए सरल तथा सुबोध हो और जिसमें सब तरहका उच्च साहित्य उत्पन्न हो।

मौलवी साहबने जहाँ उर्दू-लिपिमें विशेष परिवर्त्तन करनेके लिए आन्दोलन किया, वहाँ उर्दूके अच्छे टाइपके लिए भी बहुत प्रयत्न किया है। उर्दूकी नस्तालीक़ लिपि टाइपके रूपमें भी वैसी ही सुन्दर हो, जैसी कि लिथोमें आती है—इसके लिए मौलवी अब्दुल हक़ बहुत समयसे प्रयत्न कर रहे हैं। उर्दू-भाषाके पत्रोंवाले प्रायः अपने पत्रोंको लिथोमें ही छपाते हैं; परन्तु मौलवी साहब अंजुमनके 'उर्दू' और 'साइन्स' दोनों त्रैमासिक पत्रोंको टाइपमें ही प्रकाशित कराते हैं, और अंजुमनके द्वारा जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे भी प्रायः टाइपमें ही प्रकाशित हुई हैं। अपनी पुस्तकों और पत्रोंको टाइपमें प्रकाशित करनेमें मौलवी साहबको उर्दू-भाषाकी जनताकी रुचिके विरुद्ध कार्य करना पड़ा है। इस समय हैदराबादमें नस्तालीक़ लिपिका टाइप भी बन गया है, जो देखनेमें लिथो-जैसा ही सुन्दर है; परन्तु अभी तक यह टाइप ऐसा नहीं बना है कि वह व्यावहारिक तौरपर उपयोगमें आ सके। यदि इसी प्रकारका भगीरथ प्रयत्न जारी रहा, तो आश्चर्य नहीं कि कुछ समय बाद हैदराबाद रियासतमें उर्दूका सर्वांगपूर्ण नस्तालीक़ टाइप तैयार हो जाय। इसके तैयार हो जानेसे उर्दूको छापनेकी बड़ी सुविधा हो जायगी।

मौलवी साहबने उस्मानिया यूनिवर्सिटीमें उर्दू भाषाका रिसर्च-विभाग भी खोला है। इस समय इस विभागमें कुछ योग्य व्यक्ति कार्य भी कर रहे हैं। मौलवी साहबने उर्दू-भाषाको सर्वांगपूर्ण और सब दृष्टियोंसे महान और उन्नत बनानेमें किसी प्रकारकी कमी नहीं की, और आज भी वे निरन्तर जागरुक होकर इसी तरहके प्रयत्नोंमें लगे हुए हैं। इस भाषाकी सर्वतोमुखी उन्नतिके लिए उन्होंने अपने जीवनको बहुत-कुछ तपस्वियोंका-सा बना रखा है। इसी कारण वे गृहस्थ-जीवनसे अलग रहे। कहनेको तो वे अकेले हैं—न उनकी पत्नी है और न कोई बालबच्चा—परन्तु न जाने उन्होंने कितने साहित्य-सेवियोंको अपने आत्मीयोंकी भाँति आर्थिक सहायता प्रदान की है, और आज भी प्रदान कर रहे हैं। अगर यों कहा जाय कि उन्होंने अपना सारा धन साहित्य-सेवा और साहित्य-सेवियोंको अर्पण कर दिया है, तो इसमें ज़रा भी अत्युक्ति न होगी। यदि वे चाहते, तो आज बहुत बड़ी धनराशि और सम्पत्तिके

मालिक बन सकते थे; परन्तु उन्होंने अपने जीवनको उस दिशामें कभी जाने ही नहीं दिया, और हमेशा एक सिपाहीकी तरह अपने कर्त्तव्यपर डटे रहे। उनकी दानशीलता इस ढंगकी है कि उनके विषयमें यह कहा जा सकता है कि उनके बाएँ हाथको भी मालूम नहीं पड़ता कि उनके दाएँ हाथने क्या दिया है। जिस प्रकार निःस्वार्थ भावसे साहित्य-सेवियोंको उन्होंने आर्थिक सहायता दी है और दे रहे हैं, वह आदर्श रूप है। इस प्रकार साहित्य-सेवियोंकी सेवा करना वे अपना परम धर्म समझते हैं। उनका सारा उपार्जित धन इसीमें व्यय होता है।

मौलवी अब्दुल हक़ साहबके द्वारा की गई उर्दू-साहित्यकी सेवाओंकी क़ीमत शायद किसी तरह आँकी भी जा सके; परन्तु उनमें विकसित मनुष्यताकी जो आकर्षक विशेषताएँ हैं, उनकी क़ीमत तो किसी भी तरह आँकी नहीं जा सकती। उर्दू-भाषाकी प्रगतिशील सेवाको एकमात्र लक्ष्य बनाकर उन्होंने अपने जीवनके अन्दर स्वार्थत्यागके जिस महत्त्वका विस्तार किया है, वह बहुत अंशोंमें अतुलनीय है। इसी कारण मनुष्य-रूपमें वे स्वयं एक जीवित और जाग्रत संस्था बन गये हैं।

"मौलवी" शब्दको उनके नामके आगे जुड़ा देखकर हृदयमें यह विचार उठ खड़ा होता है कि शायद मौलवी अब्दुल हक़ साहब पुराने ढर्रेके और धर्मान्ध मनुष्य होंगे। नीचे खादीका पाजामा और ऊपर खादीके बटनोंवाली बिना कालरकी खादीकी कमीज़ पर औरंगाबादके हिमरू और मशरूके कारख़ानोंकी* रेशमी शेरवानी, लाल तुर्की टोपी और दाढ़ी देखकर उन्हें कोई भले ही पुराने ढर्रे या पुरानी वज़ाका आदमी समझ ले; परन्तु जो कोई उनसे आन्तरिक परिचय प्राप्त करेगा, उसे शीघ्र ही पता लग जायगा कि वे हमेशा नई और पुरानी दोनोंमें से जीवित रहनेवाली और जीवनको पूर्ण रीतिसे विकसित करनेवाली वस्तुओंके पक्षपाती हैं। 'मज़हबी-ताअस्सुव' उनमें नामको भी नहीं है। वे अन्य धर्मावलम्बियोंपर कभी किसी प्रकारका कटाक्ष नहीं करते, बल्कि वे सदा अपने धर्मकी भी बिलकुल सीधे और ठोस शब्दोंमें समालोचना किया करते हैं। इसीलिए बहुतसे लोग उनसे अप्रसन्न रहते हैं, और उन्हें 'दहरिया' (नास्तिक) तक कहते हैं; परन्तु उन्होंने कभी इसकी परवा नहीं की। वे अपने विचारोंको पूर्ण निर्भीकतासे प्रकट करते हैं। उनमें किसी भी प्रकारका धार्मिक पक्षपात नाममात्रको भी नहीं है।

मौलवी साहब जब औरंगाबाद उस्मानिया कालेजके प्रिन्सिपल थे, तब उन्होंने अपने समयमें विद्यार्थियोंपर एक पैसा फ़ीस भी कालेज-विभागमें नहीं लगने दी। औरंगाबादमें उस्मानिया कालेज भी उनके प्रयत्न और प्रभावके कारण ही बना। यूनिवर्सिटीके अधिकारियोंने औरंगाबादके कालेजके छात्रोंसे फ़ीस लेनेके प्रश्नको जब-जब उठाया, तभी उन्हें इस प्रश्नको मौलवी साहबके इनकारके कारण छोड़ देना पड़ा। इसके अलावा उन्होंने बहुतसे विद्यार्थियोंकी धनसे सहायता की और उन्हें इस योग्य

---

* औरंगाबादमें हिमरू और मशरूके बहुत पुराने कारख़ाने हैं। उन कारखानोंमें जो कपड़ा तैयार होता है, वह बहुत सुन्दर होता है। इस कारीगरीको उन्नत करनेके लिए मौलवी साहबने अपना बहुतसा धन व्यय कर दिया है। वे चाहते थे कि किसी प्रकार इस उद्योग-धन्धेको नवजीवन मिल जाय। इसी प्रकार उन्होंने हैदराबाद रियासतके बहुतसे घरेलू उद्योग-धन्धोंमें भी काफ़ी सहायता दी है। इस रियासतमें हाथसे कागज भी तैयार होता है। इस धन्धेको भी उन्होंने अपना बहुतसा धन लगाकर पुनर्जीवित करनेका और उसे उन्नत व्यापारिक स्थितिमें लानेका प्रयत्न किया है। औरंगाबादमें खद्दर आदिकी उत्पत्तिके लिए भी आपने एक अंजुमन-तरक्की-ए-दस्तकारीकी स्थापना करवाई है। आप उसके प्रधान भी हैं, और उसे आर्थिक सहायता देते रहते हैं।

बना दिया कि वे अपने जीवनको सम्मानपूर्वक व्यतीत कर सकें। इन विद्यार्थियोंमें बहुतसे हिन्दू विद्यार्थी भी हैं। आज भी मुक्तहस्त होकर विद्यार्थियोंकी जैसी सहायता वे करते हैं, वैसी शायद ही कोई कालेजका अध्यापक करता हो। उन्होंने इस रियासतमें बहुतसे हिन्दुओंको गज़टेड अफ़सर बनवाया है।

मौलवी साहबका क़द ऊँचा, मस्तिष्क चौड़ा, आँखें गहरी और विचारशील, कान बड़े और रंग साँवला है। उनकी दाढ़ी सफ़ेद और शानदार है। मौलवी साहब जिस समय अपने काममें लगे हुए होते हैं, यदि उन्हें कोई उस समय थोड़ी देरके लिए व्यस्त कर दे और वे ज़रा आँख उठाकर देखें, तो उनकी आँखोंमें उनके मस्तिष्कके गम्भीर विचार झलकते हुए दिखाई देंगे।

वे बहुत ही कम बोलते हैं। प्रायः चुप ही रहते हैं। वे अपने कार्यके द्वारा ही बोलते हैं। औरोंको भी चुपचाप कार्य करनेके लिए ही वे निर्देश करते हैं। वे गम्भीर तो हैं ही; परन्तु हास्य और विनोदप्रिय भी बहुत हैं। मीठी-मीठी चुटकियाँ लेनेमें बड़े सिद्धहस्त हैं। बड़े ज़िन्दादिल हैं। कभी-कभी ख़ूब दिल खोलकर ठहाका मारकर हँसते हैं। उनको यदि मालूम हो जाय कि उनके दो मित्रोंमें किसी विषयपर ऐसा मतभेद है कि उसकी चर्चा छेड़ते ही वे झट आपसमें विवाद करने लग जाते हैं, तो उन दोनोंके सम्मुख होनेपर वे किसी न किसी प्रकार जान-बूझकर इस विषयकी चर्चा इस प्रकार चलायेंगे कि उनमें बहस छिड़ जाय। तभी तक वे कुछ बोलते हैं, जब तक उनमें विवाद नहीं छिड़ जाता। जब विवाद छिड़ जाता है, तो फिर चुपचाप उस विवादको सुनते और उनमें आपसकी व्यंगोक्तियोंका आनन्द लेते रहते हैं। देहली और लखनऊवालोंमें तो वे प्रायः इसी प्रकारके विवाद करा देते हैं। इन विवादोंसे वे मनुष्यकी मानसिक अवस्थाका भी अध्ययन करते हैं।

उनका स्वभाव बिलकुल सरल है। वे बड़े ही मिलनसार हैं। उन्हें किसी प्रकारके दिखावेसे सख्त नफ़रत है। वे एक ही समय भोजन करते हैं। खानेसे अधिक उन्हें खिलानेका शौक़ है। उन्हें यदि कभी अकेलेमें भोजन करना पड़ता है, तो उनसे खाया नहीं जाता, और वे कहा करते हैं कि अकेले भोजन करनेमें उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई चोर छुपकर खा रहा हो। भोजन करके चाँदीके नक़्क़ाशीदार 'हुक़्क़ेशरीफ़' में खाचरोदका सुगन्धित किया हुआ तमाखू पीते हैं। इधर धुएँकी धाराएँ ऊपरको उठती हैं और उधर उनकी आँखोंमें उनकी गम्भीर विचार-धाराएँ विचरण करने लग जाती हैं। पहले वे तमाखू नहीं पीते थे; परन्तु पीछे एक बीमारीमें उन्हें एक हकीमने हुक्का पीनेकी सलाह दी। तबसे वे हुक्का पीने लग गये हैं। अब तो यह हुक्का ख़ास बेंतके बक्समें बन्द होकर उनकी यात्राओंमें उनके साथ जाता है।

६३ वर्षकी आयुमें उन्हें सात-आठ घंटे लगातार अपनी कुर्सीपर, एक बड़ा फ़ाउन्टेन-पेन लिये, कोई काम करता हुआ देखे, तो उसे मालूम पड़ेगा कि इस वृद्ध मनुष्यके हृदयमें अभी तक कार्य करनेकी कितनी अपार उमंग है, कितना जोश है और कितनी श्रान्तिहीन तत्परता है।

वे बड़े एकान्त पसन्द हैं, और पर्वतमालाओंसे घिरे हुए किसी निर्जन स्थानमें रहना पसन्द करते हैं। वे चाहे लोगोंसे कितनी ही दूर जाकर रहें, तो भी लोग उनका पीछा नहीं छोड़ते। वे उन्हें वहाँ भी जाकर पकड़ लेते हैं। यद्यपि वे हैदराबादसे आठ-नौ मील दूर एक रमणीय जंगली स्थानमें रहते हैं (जो अब धीरे-धीरे आबाद होता जा रहा है, और इसी कारण वे उसे छोड़नेकी फ़िक्रमें हैं), तो भी उनको अपना निवास-स्थान औरंगाबाद, जो सचमुच बड़ा ही सुन्दर और उनके कार्यके लिए मौज़ूँ है, पसन्द है। औरंगाबादमें औरंगज़ेबकी बेगम साहबाके मक़बरेके बड़े बग़ीचेकी उन्नत

प्राचीरसे बाहर, मक़बरेके द्वारसे दाईं तरफ़, बालाघाटकी पर्वतमालाकी तराईमें एकान्त स्थानमें उनका बँगला है। एक ओर सम्राज्ञीका मक़बरा, जो बिलकुल ताजमहलके नमूनेपर बना हुआ है, अपने मुग़ल ज़मानेके ऐतिहासिक महत्त्वकी कथाओंको उछ्वसित करता रहता है, और दूसरी ओर बालाघाटकी पहाड़ियाँ अपना छोटासा घेरा बनाकर प्रकृतिकी सुन्दरताका परिदर्शन कराती रहती हैं। बालाघाटकी पहाड़ियोंमें दूर औरंगाबादकी गुफाएँ (Caves) दृष्टिगोचर होती हैं। वे अपने जालीदार बँगलेके प्रांगणमें, प्रशान्त, निस्तब्ध वातावरणमें, घंटों चुपचाप बैठे अपना कार्य करते रहते हैं। बरसातके मौसममें बालाघाटकी इन पहाड़ियोंका और इसके घेरेमें फैली हुई तराईका दृश्य अत्यन्त नयन-विनोदक हो जाता है, और उस समय यह पता लगता है कि आख़िर क्यों बालाघाटकी इस पर्वतमालामें ही इतनी प्राचीन गुफाएँ बनी हुई हैं। मैंने एक बार मौलवी साहबसे कहा था कि इतने सुन्दर स्थानको छोड़कर आप कैसे हैदराबादमें चले गये ? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा था कि यद्यपि मैं इस स्थानको छोड़कर चला गया हूँ, तो भी मेरा हृदय यहीं रहता है। जैसे एक पक्षी अपने दिनका कार्य समाप्त होते ही अपने घोंसलेमें भाग आता है, उसी प्रकार हैदराबादसे छुट्टी मिलते ही मौलवी साहब अपने इस स्थानमें आ जाते हैं। उनका यह स्थान किसी भी प्रसिद्ध साहित्य-सेवीकी कुटियासे किसी तरह कम सुन्दर और चित्ताकर्षक नहीं है। उन्हें अपने इस स्थानसे आन्तरिक प्रेम है। यहीं रहकर मौलवी साहबने अपने जीवनका बहुतसा साहित्यिक कार्य किया है, और यहींपर उन्होंने अपने जीवनके स्वप्नोंको कार्यरूपमें परिवर्तित किया है।

निर्धनकी ईद

श्री जोश मलीहाबादी

अहले दवल[1] में धूम थी योमे सईदकी[2],
मुफलिस[3] के दिलमें थी न किरन भी उमीदकी,
इतनेमें और चर्ख़[4] ने मिट्टी पलीद की,
बच्चेने मुस्कराके ख़बर दी जो ईदकी।
फर्ते-मेहनसे[5] नब्ज़की रफ्तार रुक गई,
माँ-बापकी निगाह उठी और झुक गई।

आँखें झुकीं कि दस्ते-तिही[6] पर नज़र गई,
बच्चेके वलवलोंकी दिलों तक ख़बर गई,
ज़ुल्फे सबात[7] ग़मकी हवासे बिखर गई,
बर्छी-सी एक दिलसे जिगर तक उतर गई।
दोनों हुजूमे-ग़मसे[8] हम आग़ोश[9] हो गये,
इक दूसरेको देखके ख़ामोश हो गये।

(ज़माना)

१ धनवानोंमें, २ पवित्र दिवसकी, ३ निर्धन, ४ आस्मान, ५ दुःखोंकी अधिकतासे, ६ खाली हाथ, ७ शान्तिकी अलकें, ८ शोककी भीड़से, ९ बग़लगीर।

कुनैन

मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई

वैसे तो हमारी बहुतसी मौसियाँ हैं, मगर उनमेंसे एक, जो सबसे छोटी हैं, बहुत फर्स्ट क्लास हैं। इसलिए नहीं कि वे हमें बहुत चाहती हैं, बल्कि इसलिए कि वे हमारी बीवीको बहुत पसन्द करती हैं। एक बार वे हमारे घर आईं, तो हमारी बीवीका नाम 'चाँदनी' रख गईं। कहने लगीं—"तेरी बीवी चाँदनी-सी खिली रहती है, इसलिए इसका नाम चाँदनी ठीक होगा।"

हमने कहा—"आपको मालूम नहीं। यह इस लायक़ नहीं कि इसका नाम चाँदनी रखा जाय। हम तो इसका नाम अँधेरा या अमावस रखनेवाले थे।"

मगर वे न मानीं और उन्होंने हमारी सीधी-सादी बीवीको 'चाँदनी'का खिताब दे ही दिया। हम दो-चार दिन 'अँधेरा' ही पुकारा किये लेकिन बादमें हमें भी मजबूर होकर 'चाँदनी' पुकारना पड़ा।

[२]

नौकरी ऐसी चीज़ है कि एक जगह रहना नहीं होता। जगह-जगह बदली होती रहती है; मगर यह ज़रूर है कि जहाँ जाना होता है, वहीं नये यार-दोस्त पैदा हो जाते हैं। इस नई जगहमें भी हमारे एक दोस्त पैदा हो गये। वे काश्मीरी पंडित थे और नहरके इंजीनियर थे। थोड़े ही दिनोंमें उनसे गहरी दोस्ती हो गई, जिसका सबब शायद यह था कि उनकी पंडितानी और चाँदनीमें ख़ूब घुटती थी। चाँदनी उनके यहाँ अकसर जाती थी। उनके बँगलेपर एक बड़ासा नहानेका हौज़ था, जो तैरनेके लिए बनाया गया था। उसमें नहरसे पानी आनेका रास्ता भी था; मगर उन दिनों वह कूड़ा-करकटसे भरा था। हौज़ चारों तरफ़से दीवारोंसे घिरा और टीनसे छया था। चाँदनीने पंडितानीसे कहा कि इसे क्यों न साफ कराकर काममें लाया जाय? पंडितानीजी राज़ी हो गईं, और उन्होंने सफाई शुरू करा दी। चाँदनी इस हौज़के शौक़में दीवानी-सी हो गई। कई दिन हौज़की मरम्मत और सफाई देखने गई, और बड़ी दिलचस्पी लेती रही। हमने उसके लिए कलकत्तेसे नहानेका ज़नाना सूट मँगाया। उसे देखकर पंडितानीने भी वैसा ही सूट मँगवाया। बड़े शौक़ और इन्तज़ारके बाद वह दिन आया कि हौज़ भरा गया और वह नहाने गई। ज़िन्दगीमें पहली बार उसे पानीमें खेलनेका मौक़ा जो मिला, तो चस्का लग गया, और वह रोज़ाना जाने लगी। धीरे-धीरे यह शौक़ छुतैली बीमारीकी तरह बढ़ा और पास-पड़ोसकी बहुतेरी औरतोंको भी उसका चस्का लग गया। अब इंजीनियर साहबके घर नहानेका एक ज़नाना क्लब क़ायम हो गया। हम इस क्लबसे सख्त परेशान थे, क्योंकि यह तो रोज़का झगड़ा हो गया कि चाँदनी नहाने चली जाती और हम शामको इधर-उधर मारे-मारे फिरते। हम बहुत कोशिश करते कि किसी रोज़ तो न जाय। उसे रोकते, तो वह कहती—"तुम अब शामको क्लब वग़ैरह जाना शुरू कर दो। मैं तैरना सीख रही हूँ।" हम कहते थे—"एक-न-एक दिन तू डूबेगी और उल्टी लटकाई जायगी, और हम ख्वाहमख्वाह परेशान होंगे।"

पंडितानीजीने सलाह दी कि मोटरके ट्यूबमें हवा भरकर उसकी मददसे तैरना चाहिए, इसलिए हमने मोटरके दो ट्यूब मँगा कर दिये। क़िस्सा मुख्तसर यह कि उसको ऐसा शौक़ लग गया कि दिन-भर इसी इन्तज़ारमें रहती कि कब शाम हो और मैं जाऊँ। वहाँसे आकर वह अपने तैरनेके दिलचस्प किस्से सुनाया करती। शरारतें वहाँ भी उसके साथ रहती थीं। उसका दिलचस्प खेल यह था कि पानीमें चुपकेसे बैठकर किसी नवागन्तुक स्त्रीका पैर पकड़कर घसीट लेती थी।

हौज़ नहाने और तैरनेके लिए ही बनाया गया था। एक तरफ़ उसमें तीन सीढ़ियाँ थीं और पानी भी कम गहरा था; मगर आगे उसकी सतह ढलवाँ होती गई थी, जिससे दूसरी तरफ़ उसमें क़दे-आदमसे ज़्यादा गहराई थी।

एक दिन चाँदनीने कहा कि आज मैं बहुत जल्द जाऊँगी, क्योंकि इंजीनियर साहबके यहाँ कुछ मेहमान आये हुए हैं। कुछ और स्त्रियाँ भी आयँगी। चाँदनी मुझसे कहती थी कि हम अब कुछ-कुछ तैर लेते हैं। उस दिन वहाँ ज़्यादा औरतें जमा हुई थीं। उनमें चाँदनीको एक और नटखट युवती मिल गई। दोनोंने सलाह की कि एक स्त्रीको, जो

पानीसे बहुत डर रही थी, चुपकेसे घसीटा जाय। अतः दोनोंने ऐसा ही किया, और उन्हें घसीटकर ऐसा हुल्लड़ मचाया कि वे गहराईकी तरफ जा गिरीं। इस गड़बड़में उन्होंने उनको भी धर घसीटा। फल यह हुआ कि दोनों गहरे पानीमें गोते खाने लगीं। हालाँ कि मोटरके ट्यूब पानीमें मौजूद थे; मगर वहाँ होश ही ठिकाने न थे कि उनकी मदद ली जाती। इसलिए एक दूसरेको पकड़कर इस तरह गोते खाने लगीं कि डूबने तककी नौबत आ पहुँची। अन्तमें अन्य स्त्रियोंने एक साड़ी पानीमें फेंकी, जिसे पकड़कर किसी तरह दोनों निकल आईं। लेकिन बुरा हाल था। नाक और मुँहसे न-जाने कितना पानी पेटमें जा चुका था, और आश्चर्य नहीं कि अगर थोड़ी देर और न निकलतीं, तो दोनों ही डूब जातीं।

हम घरपर इन्तज़ार कर रहे थे कि वह मुसकराती हुई पहुँची। हमने कहा—"आज क्या मामला है, जो जल्दी आ गई?" इसपर उसने पूरा क़िस्सा सुनाया। हमने समझा कि मामूली-सी बात है, इसलिए हमने भी लगे हाथों उसका ख़ूब मज़ाक़ उड़ाया। उसे प्यास लग रही थी। उसने दो बार दो-दो ग्लास पानी पिया, फिर भी प्यास न बुझी। खाँसी भी थी। थोड़ी देर बाद उसे एक क़ै हुई, और इतनी तकलीफ़ बढ़ी कि डाक्टर बुलाना पड़ा। डाक्टरने कहा कि शायद उसके फेफड़ोंपर भी पानीका कुछ असर पहुँच गया है, क्योंकि खाँसी बहुत आ रही है। उन्होंने कहा कि दवा तो कल सुबह दी जायगी, पहले पेटसे पानी निकलना चाहिए। डाक्टरने जो इलाज किया, वह हमें बहुत पसन्द आया। एक चारपाई मँगाकर उसका पैताना ख़ूब ऊँचा कर दिया। फिर चाँदनीको उसपर इस तरह औंधा लिटाया कि उसका मुँह सिरहानेके नीचे लटकता रहे। पेटके नीचे एक तकिया रखकर हम इसपर तैनात किये गये कि रह-रहकर ऊपरसे उसे दबाते रहें। डाक्टरके जाते ही हमने कहा—"कहो, हम न कहते थे कि उल्टी लटकाई जाओगी। वही हुआ कि नहीं?"

ख़ैर दो-तीन घंटे तक हम उसे दबाते रहे। उसे रह-रहकर क़ै होती रही, और इतना पानी निकला कि हमें बड़ा ताज्जुब हुआ। क़ै करते-करते बेचारी परेशान हो गई। हलकानीके मारे हरारत-सी हो आई। उसे बड़ी बेचैनी थी, प्यास भी बनी थी। नींद भी न आती थी। हमने बड़ी मुश्किलसे थपकी देकर और सुहला-सुहलाकर उसे सुलाया। सुबह उठी, तो रातकी तकलीफ़की वजहसे तबीयत बहुत सुस्त और कमज़ोर थी।

हम कचहरीसे लौटे, तो देखा कि चाँदनी चारपाईपर चादर ताने लेटी है। हम जानते थे कि ज़रूर जाग रही होगी और बनी पड़ी होगी, इसलिए हमने आते ही गुदगुदाया। उसने हँसते हुए चादर जो मुँहसे हटाई, तो देखा कि चेहरा तमतमाया हुआ लाल हो रहा है। हमने माथेपर हाथ जो रखा, तो बुख़ार था। अब चाँदनीको पारीसे बुख़ार आने लगा। हमने हकीमका इलाज तजवीज किया। वह न-जाने क्यों हकीमी इलाजके ख़िलाफ़ थी। बड़ी मुश्किलसे राज़ी हुई। हमने दूसरे ही दिन हकीमको बुलवाया। हकीम साहब भी कुछ यों-ही-से थे। उन्हें देखकर चाँदनी और भी बिगड़ गई। उन्होंने मर्ज़का पूरा हाल सुना। हाज़मेका जो हाल पूछा, तो चाँदनीको नटखटपन सूझा। उसने कहा कि मेरा हाज़मा इतना अच्छा है कि आजकल जो कुछ भी खाती हूँ, सब हज़म होकर ख़ून बन जाता है। हकीम साहबकी समझमें कुछ न आया। ख़ैर, उन्होंने एक नुस्ख़ा लिख दिया। चाँदनी उठकर दो खोटे रुपये निकाल लाई, जो हमने हक़ीम साहबके हवाले किये। यह बात हमें बादमें मालूम हुई, और हमने हकीमजीके रुपये बदल दिये। चाँदनीने हकीमका नुस्ख़ा फ़ौरन फाड़ डाला, और फिर डाक्टरी इलाज शुरू कर दिया। इस इलाजमें कुनैनका इस्तेमाल ज़्यादा हुआ; मगर जल्द ही आराम हो गया। डाक्टर साहबने कहा कि अगर इनको नैनीताल ले जाओ, तो तबीयत जल्द दुरुस्त हो जायगी। हमने भी चाँदनीसे वादा कर दिया कि तुझे ज़रूर ही नैनीतालकी सैर करायेंगे।

[३]

कुनैनके इस्तेमालसे चाँदनीको न-जाने क्या हो गया। वह पहले ही नटखटपनमें कौन कम थी; मगर अब तो दीवानी-सी हो गई। उसने बोतलमें सैकड़ों ग्रेन कुनैन घोलकर निहायत तेज़ मिक्सचर बनाया। सूखी कुनैनकी पुड़ियाँ और शकर मिली हुई कुनैन अलग बनाई गई। यह सब सिर्फ़ शरारतकी नीयतसे। इन शरारतोंका प्रयोग मौक़े-बमौक़े

हमारे दोस्त ही नहीं बनते थे, बल्कि खुद हम और दूसरे लोग भी। कभी-कभी ऐसे लोग भी उसकी शरारतोंका निशाना बन जाते थे, जिनसे मज़ाक करनेका कभी इरादा ही न होता था।

हमारी बाहरकी अल्मारीमें खाने-पीनेकी चीज़ें रखी रहती थीं। हम तो वक्तपर चाँदनीके साथ ही खाते थे, और वही उन चीज़ोंको अल्मारीसे निकालती थी; मगर हमारे मनचले दोस्त कभी-कभी बेमौक़े अल्मारीपर डाका डाला करते थे। एक दिन एक साहबने इस अल्मारीपर हमला किया। उन्होंने उसमेंसे एक बिस्कुट निकालकर, उसपर रसभरीका मुरब्बा लगाकर जो खाया, तो बल खा गये। लगे इधर-उधर थू-थू करने। दौड़कर बरामदेसे सुराही लेकर जो कुल्ला किया, तो और भी मज़ा आ गया। आज वहाँ एककी जगह दो सुराहियाँ रखी थीं, और एकमें चाँदनीने कुनैन घोल दी थी। हमने देखा कि उस सुराहीपर एक लेबिल लगा है कि यह पानी पीनेका नहीं है। हम अन्दर पहुँचे कि बीबीसे इस नालायक़ीका सबब पूछें, तो वहाँ और ही रंग देखा। चाँदनी मुर्गियोंको घेरकर धीरे-धीरे पानीके कूंड़ेकी तरफ ला रही थी। हमारे पहुँचते ही मुर्गियाँ कूदकर भाग गईं। इसके पहले कि हम कुछ कहें, वह हमपर बिगड़ने लगी कि मुर्गियोंको क्यों भगा दिया। हमने कहा—"क्या हुआ?"

वह बोली—"हम इन्हें पानी पिलाने लाये थे।"

हमने पूछा क्यों, तो वह हँसने लगी। मालूम हुआ कि मुर्गियोंके कूंड़ेमें कुनैन मिलाकर रखी गई है। हमने कहा—"आखिर तू क्यों इतनी मूज़ी हो गई है कि जानवरों तकको परेशान करती है? यह क्या बेवक़ूफ़ी है कि खाने-पीनेकी चीज़ों और पीनेके पानी तकमें कुनैन मिलाई है?"

"इसलिए कि हर कोई न खाय।"—वह बोली—"सुराहीमें इसलिए कुनैन मिलाई है कि देखूं, दिनमें कितने अक़्लमन्द आते हैं और कितने बेवकूफ, क्योंकि उसपर साफ लिखा है कि यह पानी पीनेका नहीं है, फिर भी लोग न मानें, तो क्या किया जाय?"

हम खड़े बातें ही कर रहे थे कि नौकरका लड़का कुत्तेको बुला लाया। उसका खाना उसके बर्तनमें रखा था। हमने कहा कि कुत्तेको इस वक्त खाना क्यों दिया जा रहा है, तो वह कहने लगी—"तुम रहने दो।" हँसीसे हम समझ गये। ग़रीब कुत्तेने दूध-रोटीपर जो तेज़ीसे मुँह मारा, तो वह भी थूकता फिरा, और चाँदनी तमाशा देखकर दीवानोंकी तरह हँसीके मारे लोटती फिरी।

हम भी हँसने लगे कि हमें क्या तमाशा बीबी मिली है। इतनेमें वह दौड़ी गई और एक रक़ाबी ले आई। उसे जो खोला, तो देखा कि उमदा बादामका हलुवा है। केसर और केवड़ेकी खुशबू निकल रही है, पिस्ते छिड़के हुए हैं और ऊपर चाँदीका वर्क़ चढ़ा है। हमने कहा कि यह हलुवा तो बड़ा बढ़िया बनाया है। हमें यह खयाल ही न आया कि उस नालायक़ने इतने दाम खराब करके उसे भी कड़ुवा कर डाला है। फ़ौरन एक कौर ले ही तो लिया। वह रक़ाबीको रखकर हँसीके मारे बेदम होकर पलंगपर लोट-पोट हो गई। हमने हलक़ कड़ुवा होनेके पहले ही कौर थूक दिया, और उसकी इस शरारतकी सज़ामें उसे गुदगुदा-गुदगुदाकर बेदम कर डाला। ग़रज़ यह कि दिन-रात उसे अब कुनैनके ही मज़ाक़ सूझते। वह कहती कि मेरा बस चले, तो बाज़ारकी सारी मिठाइयोंमें कुनैन मिला दूं। इस तरह आजकल कुनैनकी खिलाई ज़ोरोंपर थी, लेकिन हम यह न जानते थे कि यह कुनैनी उन्माद क्या-क्या रंग लानेवाला है।

[४]

हमने चाँदनीसे कहा—"अगर तुझे सचमुच नैनीताल चलना है, तो कुनैनकी खिलाई बन्द कर, वरना नैनीतालकी सैर रद्द कर दी जायगी।"

उसने कहा—"अगर ऐसा हुआ, तो समझ लो कि सारे घरमें कुनैन-ही-कुनैन नज़र आयगी।"

उस दिनसे उसने नैनीताल जानेकी तैयारियाँ बड़े ज़ोरोंसे शुरू कीं। असबाब थोड़ा ही रखा; मगर गर्म कपड़े काफ़ी रख लिये। चलते वक्त हमने देखा कि एककी जगह दो डिबियोंमें पान बनाये जा रहे हैं। हमें मालूम न था कि एक डिबियामें कड़ुवे पान हैं, वरना हम इस शरारतको रोकते। सिर्फ पानोंकी वजहसे इतनी देर हुई कि हम टिकट तक न ले सके और बड़ी मुश्किलसे किसी तरह असबाब रखकर सामनेके एक मर्दाने इंटर क्लासमें बैठ गये। डिब्बेमें काफी गुंजाइश थी। चाँदनीने फौरन बिछौने खोलनेको कहा। हमने

कहा कि यह इंटर क्लास है, अभी खाली है, आगे शायद भर जाय, इसलिए आगे सेकेण्डमें चलकर बिस्तर खोलेंगे। उसने कहा कि जब जगह काफी है, तो फिजूलमें क्यों पैसा बरबाद किया जाय ? बात भी ठीक थी। डिब्बा बड़ा था, और कुल तीन ही मुसाफिर थे ; मगर हम जानते थे कि आगे और मुसाफिर ज़रूर आयेंगे, और मुमकिन है कि सोनेको न मिले। उसने कहा कि ऊपरके बर्थपर बिछौने लगा लो, झगड़ा ही जाता रहे। अतः हमने यही किया, और एकपर उसका बिस्तर जमा दिया। उसके नीचेकी सीटपर हम बैठ गये, क्योंकि हमें अगले स्टेशनपर टिकट खरीदने जाना था। चाँदनीको हमने ऊपर चढ़ा दिया। वह मज़ेसे तकियेके सहारे लेट गई। अगले स्टेशनपर मौक़ा न मिला ; मगर हमने गार्डसे कह दिया था। दूसरे स्टेशनपर जब हम टिकट लेकर लौटे, तो देखा कि एक भारी-भरकम लालाजी हमारी जगहपर कब्ज़ा किये हुए लेटे हैं। उनका ढेर-का-ढेर असबाब ऊपर-नीचे रखा है। हमने कहा—"हजरत, दूसरी जगह खाली होते हुए भी आपने हमारी जगह क्यों ले ली ?"

वह बोले—"मैं कोनेकी जगह चाहता था।"

मैंने दूसरी कोनेकी जगह दिखाकर कहा—"वह कोनेकी जगह भी तो खाली थी।"

वह बोले—"उधर पाखाना है।"

जब हमने कुछ और बहस की, तो बिगड़कर कहने लगे—"न तो आपका नाम इस जगहपर लिखा है और न आपने इसकी रजिस्ट्री कराई है। जितना हक़ आपको है, उससे ज्यादा मुझे है।"

हम चुप हो गये।

डिब्बा काफी बड़ा था ; मगर धीरे-धीरे मुसाफिरोंकी भीड़ बढ़ने लगी। हमने देखा कि अगर इसी तरह मुसाफिर बढ़े, तो आरामसे सोना न नसीब होगा, इसलिए हमने ऊपरवाली दूसरी सीटपर—जो चाँदनीकी सीटके बिलकुल पास थी, सिर्फ एक खिड़की भरका फासला था—अपना बिस्तर लगाया और लेट रहे। हमें नींद आ ही रही थी कि नीचे कुछ पोलिटिकल बातें होने लगीं। हमें भी पोलिटिक्समें काफी खलल है, इसलिए इस बहसमें हिस्सा लेनेके लिए हम भी नीचे आ गये। हम तो पोलिटिक्सपर बहस कर रहे थे ; लेकिन हमारी नटखट बीबी अपनी आदतके मुताबिक कुछ और ही कर रही थी। उसे अपने नीचेकी सीटमें रहनेवाले मुसाफिरपर बड़ा गुस्सा आ रहा था, और वह उनसे बदला लेनेकी फिक्रमें थी।

अगले स्टेशनपर उन्होंने कुछ खानेका इन्तज़ाम किया। पहले लोटेमें पानी भरकर रखा। चाँदनीने जेबसे छोटी शीशी निकालकर चुपकेसे लोटेमें ऊपरसे ही कुनैनकी कुछ बूंदें इस सफाईसे टपकाई कि उन्हें कानों-कान खबर न हुई, क्योंकि लालाजी मोल-भावमें लगे हुए थे। वे उठकर बाहर गये और खिड़कीकी राह अपनी जगहपर पूड़ी-तरकारी खरीद कर रखी। वे तो मिठाईवालेसे बातोंमें लगे। इतनेमें उस शरीरने सागको भी कड़ुवा कर दिया। लोग बहसमें इतने मशगूल थे कि किसीको इसका पता भी न चला।

हम तो पालिटिक्सपर बहस कर रहे थे कि ज़ोरसे थूकने और 'खा-खा' की आवाज़ आई। मुड़कर देखा, तो लाला साहब चलती गाड़ीसे सिर निकाले थूक रहे हैं। लोटेसे कुल्ला जो किया, तो और भी मज़ा आ गया। बुरी तरह खखार-खखारके थूकने लगे। हमने पूछा कि जनाब, यह क्या मुसीबत है, तो वह परेशान होकर थूकते हुए बोले—"साहब, मालूम होता है कि पूड़ीवालेने मुझे ज़हर दे दिया।"

मगर पानी कैसे कड़ुवा हो गया, यह भेद किसीकी समझमें न आया।

हमने मनमें कहा कि ग़ज़ब हो गया। हम समझ गये कि यह किसकी कारस्तानी है। चाँदनी अपनी चादरके कोनेसे झाँककर तमाशा देख रही थी। जैसे ही हमने उसकी तरफ देखा, उसने मुंह बन्द कर लिया। लालाजीने पूड़ियाँ, साग और पानी फेंक दिया और मिठाईपर ही सन्तोष करके रूमालसे मुंह पोंछकर लेट गये। उनके सिरहाने एक बक्स रखा था, उसपर एक बंडल था और बंडलके ऊपर एक टोकरी थी। वे उठे और उन्होंने उस टोकरीमें से एक बड़ा-सा, निहायत खुशबूदार अमरूद निकालकर खाया और फिर उसी तरह लेट रहे। हम सब बातोंमें मशगूल थे। जब थक गये और नीचे काफी मुसाफिर भर गये, तो हम सोनेकी नीयतसे उठे। नीचेकी सीटपर लालाजी बेखबर सो रहे थे। हम चाँदनीके पास आये और हमने उसके कानमें उँगली डालकर

चुपकेसे कहा—"अगर तू शरारतोंसे बाज़ न आई, तो इस सफ़रमें कहीं ज़रूर ही मारी-पीटी जायगी।"

हम अपनी ऊपरकी सीटपर चढ़कर लेटे ही थे कि पीठमें कोई गोल-गोल चीज़ गड़ी। उठकर देखा, तो तीन बड़े-बड़े इलाहाबादी अमरूद पाये। हम फौरन जान गये कि चाँदनीने उस टोकरीमेंसे यह अमरूद चुराये हैं। हमने उसकी तरफ़ देखा, तो वह चुपके-चुपके हँस रही थी और उँगलीके इशारेसे चाक़ू माँग रही है। वह दरअस्ल चादरमें मुँह छिपाये अमरूद कुतरकर खा रही थी। हमने चाक़ूसे अमरूद काटकर उसे दिया। अमरूदकी टोकरी उसके पाँयते रखी हुई थी, और ऊपरके तख़्तेके बिलकुल पास ही थी। अब उसने अपना सर उधरको किया और चुपके-चुपके टोकरीसे अमरूद निकालना शुरू किये। लाला साहबको पता ही न था कि क्या हो रहा है। वह एक-एक करके अमरूद हमारे ऊपर फेंकने लगी। हम इशारेसे कह रहे थे कि तू ज़रूर मारी जायगी। सचमुच हम बड़े परेशान थे कि कहीं वह चोरीमें पकड़ी न जाय। उसने एक-एक करके सारे अमरूद निकाल लिये और इशारेसे कहा कि नीचेके लोगोंको बाँट दो। हमने देखा, तो अमरूदके मालिकको बेख़बर सोते पाया। लिहाज़ा हमने जल्दीसे उतरकर बेतकल्लुफ़ीसे, हरएक आदमीके हाथमें दो-दो अमरूद धर दिये, और बाक़ीको सबके बीचमें एक बेंचपर रख दिया कि खाइये।

मुसाफिरोंमें एक साहब शायद चाँदनीकी यह सब शरारतें देख रहे थे, क्योंकि वे कोनेमें बैठे चुपके-चुपके मुस्करा रहे थे। चाँदनी यह देखकर समझ गई, इसलिए उसने उँगलीसे चुप रहनेका इशारा किया। वे भी सिर हिलाकर हँसने लगे—यानी उन्होंने कहा कि मैं न बोलूँगा। ख़ैर, हम अपनी जगह जाकर लेट गये। नीचे लोग बेतकल्लुफ़ीसे अमरूदकी दावत उड़ा रहे थे कि अगला स्टेशन आया। रेलके झटकेसे लालाजी जाग उठे। उन साहबने जो कोनेमें बैठे थे और जो इस शरारतसे वाक़िफ थे, कहा—"लालाजीको भी अमरूद खिलाइये।" जब लोगोंने उनसे कहा, तो लालाजीने कहा—"मेरे पास ख़ुद इलाहाबादके अमरूद मौजूद हैं।" इसपर एकने कहा—"तो कम-से-कम आप अपने अमरूदोंका नमूना ही हमें चखाते।" लालाजीने मुस्कराकर कहा—"शौक़से टोकरीसे निकाल लीजिए।" एक साहबने उठकर टोकरीमें हाथ डाला और उसे ख़ाली पाकर कहा—"वाह जनाब, आप ख़ूब मज़ाक़ करते हैं। यहाँ तो अमरूदका नाम तक नहीं है।" यह सुनकर लालाजी तड़पकर उठे और टोकरीको ख़ाली पाकर चाँदनीकी तरफ देखा, जो उस वक्त टोकरीकी तरफ पैर किये हुए, चादर ओढ़े, मानो बेख़बर सो रही थी। उनकी इस परेशानीपर शायद लोग मामला समझ गये, और एक फरमाइशी क़हक़हा उड़ा। बेचारे लालाजी यह कहकर अपनी जगह बैठ गये कि ऐसा मज़ाक़ ठीक नहीं है।

सुबह बरेली स्टेशनपर उतरे। असबाब वेटिंग-रूममें रखवाया; नाश्ता किया और बरेली शहरकी ख़ूब सैर की। दोपहरको स्टेशन लौटकर खाना खाया। जब चाँदनीको मालूम हुआ कि खानेका चार्ज पूरे साढ़े सात रुपये लगेंगे, चाहे हम कुल खायें या थोड़ा, तो उसे बड़ा गुस्सा आया। दरअस्ल सुबह हमने नाश्ता इतना ज्यादा कर लिया था कि इस वक्त कुछ खाया ही न गया। जब हम हाथ धो रहे थे, तो चाँदनीने सारा बचा हुआ खाना कुनैन डालकर ख़राब कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि मौक़ा पाकर बरामदेमें जो चायकी बड़ी केतली अँगीठीपर चढ़ी थी, उसे भी ख़राब कर दिया।

हम दोनों फिर शहरको चल दिये, जहाँ घूम-फिरकर कुछ फर्निचर घर भेजनेका आर्डर दिया। चिराग़ जलनेके कुछ देर बाद स्टेशन वापस आये, तो मालूम हुआ कि होटलके नौकरोंने खाना खा-खाकर ख़ूब थूका और कई मुसाफिरोंको कड़ुवी चाय पिलानेकी वजहसे यह क़िस्सा तूल पकड़ गया है। यहाँ तक कि एक अंगरेज़ने होटलके बैरेको मारते-मारते छोड़ा। हम चुप थे। हमने ख़फा होकर चाँदनीसे कहा—"मालूम होता है कि तेरी पूरी शामत आई है। तू ख़ुद मार खायगी और शायद हमें भी पकड़वायगी, सो भी सिर्फ़ अपने मूज़ीपनकी बदौलत। न ख़ुद खाय, न दूसरेको खाने दे। आख़िर इससे फ़ायदा?" इस लेकचरका असर उलटा हुआ। वह कहने लगी—"तुम्हारी बलासे। हम मारे जायँ, तो तुम न बचाना।"

हम तो एक जगह बैठ गये, और वह बिगड़कर प्लैटफार्मपर

टहलने चली गई। सबसे पहले उसने मुसलमानोंकी पानीवाली घड़ौंचीका मुआयना करके सारा पानी कड़ुवा कर दिया। उसके बाद यह गज़ब किया कि रेलवे अफसरोंके कमरेके आगे जो सुराही रखी थी, उसमें भी कुनैन टपकाई। वहाँसे वह हिन्दुओंके पानीके पास गई; मगर वहाँ कड़ा पहरा था। वह वहाँ घूम ही रही थी कि हम पहुँचे। चूँकि उसके चेहरेसे शरारत ज़ाहिर थी, इसलिए हम उसे पकड़ लाये। हमने कहा—"तुझे आज क्या हो गया है, क्यों मार खानेकी बातें कर रही है ?" मगर यह सब बेकार था। वह फिर हमारे पाससे खिसक गई। अब उसने एक नई शरारत की। एक निराली-सी जगहमें खड़े होकर पानवालेको बुलाया। उससे दो आनेके पान लिये और हमारे लिए एक डिब्बी सिगरेट लिया। उसने पहले पूछ लिया था कि पाँचके नोटके रुपये हैं; मगर सौदा लेकर दसका नोट दिया। पानवाला खोंचा रखकर नोटके रुपये लेने गया। यहाँ उसने कत्था-चूना खराब कर डाला। हमें इसका बिलकुल पता न था। जब वह मुस्कराती हुई वापस आई, और हमने उसके चेहरेसे शरारत टपकती देखी तो पूछा कि क्या कोई नया शिगूफ़ा छोड़ आई है। पहले तो उसने न बताया; मगर ज़ोर देनेपर बोली—"मैंने तो कुछ नहीं किया, सिर्फ पानवालेसे दो आनेके पान और तुम्हारे लिए सिगरेट लाई हूँ।" हमने चौंककर कहा—"क्या तूने पानवालेके साथ भी कुछ किया ?" इसपर हँसीके मारे उसका बुरा हाल हो गया। उसने चुपके-चुपके सारा किस्सा सुनाया। हमने कहा—"अब तुम ज़रूर ही पुलिसमें पकड़ी जाओगी, यह जुर्म है।" मैंने बड़ी मिठाईके साथ उसे इस जुर्मकी गम्भीरता समझाई, और उससे कहा कि अगर अब तुमने कुछ किया, तो खैर नहीं। वह नीम राज़ी होकर बोली कि अगर बहुत ज़रूरत पड़ी तो करूँगी, वरना न करूँगी।

कुछ देर बाद वह फिर उठकर जो चलने लगी तो हमने कहा—"अब तुझे न जाने देंगे। हमारे पास बैठी रह। तू फिर शरारत करेगी।" उसने बहुत-कुछ वादा किया; मगर हमने न छोड़ा। इसपर वह कहने लगी कि मैं अपने सब वादे वापस लेती हूँ। मैंने उसकी एक न सुनी।

रातका वक्त था, इसलिए हमने थोड़ासा नाश्ता और चाय वेटिंग रूममें मँगवाई। दो प्यालियोंमें चाय ढाल ली। पान खा रहे थे, इसलिए कुल्लेके लिए पानी भी मँगवाया। हम बाहरसे कुल्ला करके जो आये, तो हमने चाँदनीके चेहरेपर खामोशी देखी—वह खामोशी, जो किसी बड़ी शरारतसे ताल्लुक़ रखती है। हमने अपनी प्यालीकी तरफ देखा, तो हम जान गये, यह शरीर शायद अब हमारे ऊपर हाथ साफ कर रही है। हमने फिर गौरसे उसका चेहरा देखा, तो हमारा शक पक्का हो गया। वह हँसने लगी। हमने कहा—"पगली हुई है, क्यों हँसती है ?" वह हँसकर पानवालेका किस्सा फिर सुनाने लगी। इसपर हमारा शक कुछ कुछ दूर हो गया। हम चमचेसे चाय चला रहे थे। इतनेमें हमने पीनेके लिए जो प्याली उठाई, तो उसे फिर बड़ी ज़ोरकी हँसी आई। उसने थूकनेके बहाने हँसीको टालना चाहा। वह थूकनेको जो उठी, तो मैंने इस सफाईसे चायकी प्याली बदल ली कि उसे शक तक न हुआ। हम अब तक चायसे इस तरह खेल रहे थे, मानो ठंडी होनेके इन्तज़ारमें हों। उसने अपने सामनेवाली प्याली उठा ली, जिसमें उसने हमारे लिए कुनैनका हलाहल डाल रखा था। पहले ही घूँटमें मज़ा आ गया। चाय ठंडी हो चुकी थी, और उसे कुछ शक भी न था, इसलिए उसने एक बड़ासा घूँट ऐसा लिया कि हलक़के पार हो गया। क्या बतायें कि हमने कैसे झुक-झुककर उसे सलाम किये और क्या-क्या मज़ा आया। उसका भी हँसीके मारे बुरा हाल था, थूकना मुहाल हो गया!

[५]

इसके बाद ही काठगोदाम वाली गाड़ी आ गई। हमने एक खाली सेकेण्ड क्लासमें अपना असबाब लगवा दिया। अब हम उस पानवालेका तमाशा देखने गये, जिसके कत्थेपर चाँदनीने इनायत की थी। ज्यादा तलाश न करना पड़ा, क्योंकि बहुत जल्द ही हमने देखा कि कुछ लोग एक पानवालेसे झगड़ रहे हैं। झगड़ा देखकर और भी लोग इकट्ठा हो गये। कुछ आदमी उससे कह रहे थे कि हमारा पैसा फेरो, क्योंकि तूने हमारा पान कड़ुवा कर दिया। हम तो इधर इस दिलचस्प झगड़ेको देखकर अपनी बीवीकी शरारतका लुत्फ ले रहे थे, उधर हमारी सीधी-सादी बीवी कुछ और ही कर रही थी।

एक सालन-रोटीवाला मुसलमान हमसे कई बार तकाज़ा कर चुका था कि हम उसके मैले सौदेमेंसे भी कुछ खरीदें। चाँदनीने उसे कई बार टाला, मगर वह न माना। मजबूर होकर चाँदनीने उससे कहा कि एक प्याला नमूनेके तौरपर पेश करो। हमारी भली बीवीने प्याला खिड़कीके भीतर लेकर बिजलीकी रोशनीमें देखा और नापसन्द करके वापस कर दिया! उस ग़रीबको क्या मालूम कि क्या हरकत हुई है। उसने प्यालेके सामानको अपनी बड़ी देगचीमें उलट लिया। हम पानवालेका तमाशा देखकर लौट रहे थे कि ड्योढ़े दर्जेके एक मुसाफिरको उस रोटीवालेसे लड़ते देखा। हमने कहा कि ग़ज़ब हो गया! अपने डिब्बेमें वापस आये, तो देखा कि किसी दूसरे साहबका अस्बाब भी रखा है, और बीचकी बेंचपर चायकी किश्तीमें कुछ मक्खन, टोस्ट और चाय रखी है। मैंने चाँदनीसे चुपकेसे कहा—"क्या ग़ज़ब कर रही है?" चाँदनी इस वक्त बुर्क़ा ओढ़े पूरी पर्दानशीन औरत बनी बैठी थी। यह उसने इसलिए किया था कि अकेली ज़नानी सवारी देखकर शायद कोई भलामानुस न आये। फिर भी एक साहब आ ही गये। पहले तो वे कुछ झिझके, फिर उन्होंने कहा—"यह ज़नाना डिब्बा नहीं है।"

इसपर चाँदनी बोली—"यह ज़नाना डिब्बा है।" उन्होंने कहा—"आप मेहरबानी करके ज़नाने डिब्बेमें चली जायँ।" चाँदनीके इनकार करनेपर उन्होंने नौकरोंसे उसी डिब्बेमें अपना अस्बाब रखवा दिया, चाय मँगवाई और खुद किसी दूसरी जगह बातोंमें लग गये। उनकी अनुपस्थितिमें चाँदनीने चायके साथ क्या कार्रवाई की, यह कहना फिज़ूल है। इतनेपर ही उसने सन्तोष नहीं किया, बल्कि उनके खाली लोटेमें भी काफी बूँदे टपका दीं और उनकी बरफकी बोतलको भी अछूता न छोड़ा। यह हमें बादमें मालूम हुआ। कुछ मिनटमें वह हज़रत आये। बहुत भले आदमी थे। हमसे दो-चार बातें हुईं। उन्होंने हमें भी चायके लिए निमन्त्रित किया। केतलीसे चाय उडेलते हुए उन्होंने कहा—"यहाँ स्टेशनपर आज कुछ अजीब मामला है।"

हमने कहा—"वह क्या?"

वे बोले—"एक पानवालेसे तमाम आदमी झगड़ रहे हैं।"

मैंने पूछा क्यों, तो वे हँसकर बोले—"बड़ा लुत्फ आया।"

मैंने कहा—"क्या लुत्फ आया?"

"अजी जनाब, तमाम लोगोंके मुँह उस पानवालेने कड़ुवे कर दिये"—उन्होंने बहुत हँसकर कहा—"और अब वे सब उससे लड़ रहे हैं। उधर सालन-रोटीवालेको भी दो-तीन आदमी घसीट रहे हैं कि सब सालन कड़ुवा कर दिया। अजी, आज तो मालूम होता है कि सारा बरेली कड़ुवा हो रहा है।" उन्होंने चायमें शकर मिलाते हुए क़हक़हा लगाया।

"क्या और भी कोई किस्सा हुआ?"—हमने बनकर पूछा।

"अजी, मुसलमानोंका"—वे बोले—"सारा पानी कड़ुवा हो रहा है। वह लुत्फ आ रहा है कि मैं हँसते-हँसते लोट······खड़प खा! थू! थू!" चायकी प्यालीका घूँट उन्होंने जो लिया, तो हलक़में वह कड़ुवा फंदा लगा कि लगे थूकने।

हमने कहा—"हज़रत, क्या हुआ?"

वह थे बड़े खुश-मिजाज़। खूब ज़ोरसे हँसे। हँसीके मारे दोहरे हो हो गये और कहने लगे—"साहब, मालूम होता है कि किसी शरीरने चायवालेपर भी हमला कर दिया। सारी चाय कड़ुवी है।" यह कहकर नौकरसे चायवालेको बुलवाया। चायवालेने ताज्जुबसे कहा—"हुज़ूर, क्या बतायें, आज दोपहरसे न-मालूम क्या हो रहा है। कई मुसाफिरोंने मारते-मारते छोड़ा।" खैर, वह बेचारा चाय वापस ले गया। इतनेमें उनका नौकर खाली लोटा भरकर लाया। उन्होंने पानीसे कुल्ला जो किया, तो और भी थूकने लगे। कहने लगे, यह क्या मुसीबत आई। पूछा, तो मालूम हुआ कि नौकर नलसे पानी लाया था।

अजीब चक्कर था। हम दोनों बाहर निकले, तो मालूम हुआ कि रेलवे पुलिसका इन्स्पेक्टर इस मामलेकी तहक़ीकात कर रहा है। हम सन्नाटेमें आ गये। हमने घबराकर चाँदनीके कानमें कहा—"ले, आज तू पकड़ी जायगी।" चाँदनी पुलिस वग़ैरहसे कभी न डरती थी; मगर इस वक्त वह सचमुच चुप हो गई। हम दोनों फिर आकर बैठ गये।

वे हज़रत यू० पी० कौंसिलके मेम्बर थे। वे इस कड़वे मज़ाकपर ख़ूब हँस रहे थे। इतनेमें उनके एक दोस्त आये और वे भी बैठ गये। उनके पास लेमोनेडकी बहुतसी बोतलें थीं। दोस्त साहबने एक बोतल ग्लासमें खोली, फिर उसे बर्फ़की बोतलमें डालकर फिर ग्लासमें वापस लेकर जो पिया, तो क्या बतायें वे कैसे कूदे। ग्लास फेंककर थू-थूकी झड़ी लगा रहे थे। उनके दोस्तका और हमारा हँसीके मारे बुरा हाल हो गया। अब वह साहब बड़ी हैरतमें थे। कहने लगे—"बोतलें शहरकी हैं, बर्फ़ भी शहरकी है, फिर इनमें कड़ुवाहट कहाँसे घुस गई ?"

हमारी बीवी ग़रीब और भोली बनी हुई, बुर्क़ा ओढ़े अपने बिस्तरपर ऐसे बैठी थी, मानो उससे कुछ मतलब ही न हो। हमने उससे पानकी डिबिया माँगी, उसने हैण्डबेगमें बताई। हमने डिबिया निकालकर दोनों साहबोंको पान दिये। वह हज़रत हँसकर कहने लगे—"कहीं इन पानोंमें भी तो वही मुसीबत नहीं है ?"

हमने कहा—"साहब, पान तो हमारे घरके हैं।" उन्होंने और उनके दोस्तने एक-एक पान लिया। दरअस्ल हमें मालूम भी न था कि एक डिबिया कड़ुवे पानोंकी है। हमने भी एक पान मुँहमें रख लिया। फ़ौरन ही सबको थूकने पड़े। उन हज़रतका हँसीके मारे बुरा हाल था। कहते थे कि आखिर यह क्या बला है। चाँदनीने बात बना दी और कहा—"मालूम होता है आपने स्टेशनवाले पान खाये हैं। दूसरी डिबियामेंसे लीजिए।" हमने कुल्ला करके दूसरे पान खाये, कड़ुवे पान फेंक दिये।

[६]

ख़ुदा-ख़ुदा करके नैनीताल पहुँचे। बीचमें कोई खास घटना नहीं हुई। हमारे सहयात्री रह-रहकर बरेलीवाली घटनापर ग़ौर कर रहे थे, क्योंकि उनके और साथी भी, जो यू०पी० कौंसिलकी बैठकमें शामिल होनेके लिए आये थे, कुनैनका ज़ायका या तो खुद चख चुके थे, या उसका तमाशा देख चुके थे। हर शख़्स ताज्जुब करता था कि आखिर यह कैसे मुमकिन है कि शहरसे बोतलमें बर्फ़ आवे और वह कड़ुवी हो जाय। यहाँ तक कि नलकी टोंटीसे पानी निकले, सो भी कड़ुवा। काठगोदाममें हम उनसे रुख़सत हुए।

हमने एक पूरा मोटर किराये किया और बीबीके साथ नैनीतालकी चढ़ाई शुरू की। हमने चाँदनीको धमकाया कि अगर फिर शरारत करेगी, तो पुलिसमें दे दी जायगी; मगर वह तो रातकी घटनाओंपर हँसीके मारे बेताब हो रही थी। इस तरह इस चढ़ाईको हमने बड़े लुत्फ़के साथ तै किया।

नैनीताल पहुँचकर हिमालय होटलमें डेरा डाला। दूसरे ही दिनसे चाँदनीने हल्के पैमानेपर फिर कुनैनका इस्तेमाल शुरू कर दिया। नामुमकिन था कि चाय आये और वह बाक़ी दूध-शकरको कड़ुवा न कर दे।

नैनीतालमें यह दस्तूर था कि हम रोज़ मीलों पैदल चलते, दिन-भर सैर-सपाटेमें गुज़रता। न-मालूम कबके और कहाँके दोस्तोंसे मुलाक़ात हुई। हम और चाँदनी जगह-जगह दावतें खाते। कौंसिलकी बैठकें भी देखने लगे। वहाँ हमारे सहयात्री दोस्तसे भी भेंट हुई। हमने उनसे अपनी बीबीका बाक़ायदा परिचय कराया। वे भी अजीब मसखरे और दिलचस्प आदमी थे। भला ऐसा कौन होगा, जो नैनीताल जाय, और आनरेबिल नवाब मुहम्मद यूसुफ़से परिचय प्राप्त न करे, और उनके यहाँ बिना बुलाये हुए तरह-तरहके अंगरेज़ी और हिन्दुस्तानी खाने न खाये ?

ये हज़रत उन्हींके यहाँ ठहरे हुए थे। उन्हें बरेलीकी घटना ऐसी याद थी कि फिर ज़िक्र करके हँसने लगे। कहने लगे—"भई, वहाँ ख़ूब ही लुत्फ़ रहा; मगर यह न मालूम हुआ कि आखिर यह किसकी शरारत थी।"

दो-तीन दिनमें उनसे ख़ूब गहरी जान-पहचान हो गई; क्योंकि हम रोज़ ही कौंसिलकी बैठक देखने जाते थे। चाँदनीको शरारत किये काफ़ी दिन हो गये थे; लेकिन वह फिर एक ऐसी शरारत कर गुज़री कि हम बहुत घबरा गये। कौंसिलके रिफ़िरेशमेंट रूममें हम प्रायः रोज़ ही जाते थे। एक दिन हमारी देवीजीको वहाँ भी मौक़ा मिल गया, और न जाने किस तरह वहाँ भी चाय, दूध, शकर वग़ैरहको उसने कड़ुवा कर दिया। हमें पता भी न चला। पता तो तब चला, जब कौंसिलके इंटरवेलमें वही साहब हँसते हुए हमारे पास दौड़े आये और कहने लगे—"लो भई, होशियार हो जाओ। बरेलीवाला आ गया है।" हमने पूछा—"क्या मामला है ?" तो वे हमें और चाँदनीको कौंसिलके

रिफ़्रेशमेंट रूममें ले गये, जहाँ आनरेबिल मेम्बर लोग कड़ुवाहट दूर करनेके लिए कुल्लोंका फौवारा छोड़ रहे थे। हमने चुपकेसे चाँदनीके कानमें कहा—"अब तेरी शामत आ गई है। बेहतर है कि यहाँसे भाग चल।" चुनांचे हम फौरन वापस आये।

जिस दिन हम जानेवाले थे, उससे एक दिन पहले कौंसिलके वही मेम्बर साहब झीलके किनारे मिल गये। उनके बार-बार ज़िक्र करनेसे और हँसमुख स्वभावसे खुश होकर हमने यह मुनासिब समझा कि उनसे उस कड़ुवाहटका असली भेद बता दिया जाय; इसलिए हमने उनसे चाँदनीकी शरारतको माफ़ी माँगी, तो वे हक्का-बक्का खड़े-के-खड़े रह गये, और पूरा क़िस्सा सुनकर कहने लगे—"अब तो हम आपको दो-तीन दिन न जाने देंगे।" उन्होंने दो-तीन दिन तक अपने तमाम दोस्तोंको, जो बरेली स्टेशनपर खुद कुनैनका शिकार हो चुके थे, या दूसरोंको शिकार बनते देख चुके थे, चाँदनीसे मिलाया। नतीजा यह हुआ कि हमारी बीवी अब खुद लोगोंकी नज़रसे बचनेके लिए हमें लेकर ऐसी ग़ायब हुई कि लोग तलाश करते ही रह गये।

[७]

वापसीमें बदक़िस्मती या खुशक़िस्मतीसे हमारे एक दोस्तका साथ हो गया। उनकी बीवी पर्देकी बड़ी पाबन्द थीं। ये उन्हें तीसरे दर्जेमें बिठाते और खुद सेकेण्ड क्लासमें बैठते थे। फिर लुत्फ़ यह कि बीवीके पास तक न फटकते थे, नौकर या नौकरनीके ज़रियेसे खबरगीरी रखते थे।

हमने चाँदनीको भी तीसरे दर्जेमें ठूँसा और कहा—"ले, अब अपनी हैसियतके मुताबिक़ सफ़र कर और बुर्क़ा ओढ़कर भली औरतोंकी तरह मुँह लपेटकर बैठ।" उसे मजबूरन बैठना पड़ा। हमारे दोस्तकी बीवी बहुत शर्मीली, खामोश और सीधी-सादी थीं। हालाँ कि वे उम्रमें चाँदनीके बराबर ही थीं; मगर बेचारीको दुनियाका तजरुबा बिलकुल न था। हमारा उनका बरेली तक साथ हुआ। काठगोदामसे सुबहकी गाड़ीमें रवाना हुए। हम कभी बीवीसे मुलाक़ात कर आते थे; मगर हमारे साथी साहब दूर ही से खड़े होकर सिर्फ इतना देख लेते थे कि उनकी बीवी खिड़कीका पट बन्द किये है या खोले।

एक स्टेशनपर ज़नाने डिब्बेके पाससे कोई गुंडा निकला, और उसने हमारे दोस्तकी बीवीको, जो उस वक्त खिड़की खोले बैठी थीं, देखा, तो पाससे गुज़रते हुए कहा—"कहाँ जा रही हो?" वह बेचारी धकसे रह गईं। मारे डरके उनका कलेजा काँपने लगा। घबराकर चाँदनीसे कहने लगी—"बहन, खुदाके लिए खिड़कियाँ चढ़ा लो, कोई बदमाश मुझसे ऐसा कहकर चला गया।" हमारी तेज़-तर्रार बीवीने हँसकर कहा—"आपने बता क्यों न दिया कि बरेली जा रही हूँ।" वह बेचारी हँसने लगी, और कहने लगी—"मेरे मुँहसे तो आवाज़ ही नहीं निकल सकती, मैं बहुत घबराती हूँ।" ये बातें हो ही रही थीं कि वह फिर खिड़कीके सामनेसे गुज़रा और उसने फिर वही कहा। दोस्तकी बीवी घबराकर एकदमसे खिड़की चढ़ाने लगी। इतनेमें वह चलते-चलते बोला—"यह ग़ज़ब तो न करो।" इसपर बेचारीके हाथ-पैर फूल गये। खिड़की हाथसे छूट पड़ी और बेदम होकर कोनेमें मुँह छिपाकर बैठ गई। चाँदनी हँस रही थी, और वह चाँदनीसे कह रही थी कि इसी मारे तो खिड़कीके पास औरतोंका बैठना ठीक नहीं होता। दर अस्ल उसकी हालत क़ाबिले रहम थी। चाँदनी दौड़कर खिड़कीके पास आई, मगर वह गुंडा जा चुका था।

हम जो अगले स्टेशनपर आये, तो उसने यह घटना सुनाई, और दूरसे उस शख्सको दिखाकर कहा—"मालूम होता है कि आज उसकी शामत आई है।" हमने देखा, एक मामूली लफ़ंगा-सा आदमी था। मैला पाजामा, टर्की टोपी और काला अचकन पहने था। वहाँ गाड़ी देर तक ठहरती थी। हम थोड़ी देर बाद ही चले आये। हमने अपने दोस्तसे कहा, तो वे बेचारे कहने लगे—"क्या बतायें, बस, इसी मारे तो औरतोंका सफ़र करना ठीक नहीं होता।" हमने कहा—"जनाब, आपने पर्देकी हद करके ही यह हाल कर दिया है, अगर आप अपने साथ बिठायें, तो क्या हर्ज हो?" मगर यह सब बेकार था, क्योंकि हमारे उनके खयालातमें ज़मीन-आसमानका फ़र्क़ था।

चाँदनीपर नटखटपनका भूत फिर सवार हो गया। उसने पहले तो हमारे दोस्तकी बीवीकी बुज़दिलीपर खफ़ा होकर, सज़ाके तौरपर उसे एक कड़ुवा पान खिलाया। इसके बाद उसने देखा कि वही हज़रत आ रहे हैं। वह खिड़कीकी तरफ

मुँह खोले बैठी थी, पानकी डिबिया उसके हाथमें थी। जैसे ही वह पास आया, वैसे ही इसने डिबिया खोली। गुंडा मुसकराकर बोला—"अकेले-ही-अकेले?" चाँदनीने फौरन एक पान उसे दे दिया, जिसे उसने फौरन ले लिया। थोड़ी देर बाद हमने देखा कि वह हज़रत नलपर खड़े थूक-थूककर अपनी चोंच साफ़ कर रहे हैं, क्योंकि सारा मुँह कड़ुवा हो रहा था।

वह हज़रत जले-भुने फिर लौटकर आये और पानकी कड़ुवाहटके बारेमें चाँदनीसे कोई बेहूदा शब्द कहा। उसने डाँटकर कहा—"शरीफ़ोंकी-सी बातें करो।" उसे बेहद गुस्सा आ रहा था। हमारे दोस्तकी बीवीका यह बातें देखकर जो हाल हुआ, वह बयानसे बाहर है। जब चाँदनीने उसे पान दिया, तो वह कहने लगीं—"अगर तुम्हारे मियाँ देख लेते, तो क्या होता?"

चाँदनीने कहा—"कुछ नहीं। इसमें क्या हर्ज है?" वे कहने लगीं—"खुदाके लिए रहने दीजिये, वरना यह बदमाश और भी पीछे पड़ जायगा।"

इतनेमें वह फिर आया, और उसने पहलेसे भी ज्यादा कोई बेहूदा बात कही। चाँदनी मारे गुस्सेके काँपने लगी। उसकी आँखोंसे आँसू निकल पड़े। नैनीतालमें हमने उसे सीपके हेंडिलका एक बढ़िया-सा छाता साढ़े सात रुपयेमें ले दिया था। उसने आव देखा न ताव, छाता लेकर गाड़ीसे उतरी और पीछेसे उस गुंडेके सिरपर एक हाथ ज़ोरसे मारा! उसने जो मुड़कर देखा, तो एक डाँट बताकर जो छाते मारने शुरू किये, तो एक गुल मच गया। लोगोंने समझा, इस शख्सने न-जाने क्या बदमाशी की होगी। चारों तरफ हुल्लड़-सा मच गया। पासमें एक अंगरेज़ मुसाफिर खड़ा था, उसने उसे पकड़ लिया। चाँदनी अपनी गाड़ीमें चली गई, और वह गुंडा पुलिसके सिपुर्द कर दिया गया। हम चाँदनीके पास आये, जो इस जंगके बाद गुस्सेसे काँप रही थी। उसके ओठ सूख रहे थे। हमारे दोस्तकी बीवी कोनेमें सहमी बैठी थीं। हमने चाँदनीकी पीठ ठोंकी और कहा—"शाबाश, खूब किया।"

[८]

बरेली स्टेशनपर हमारे दोस्त हमारी बहादुर बीवीकी तारीफ़—मगर ऐतराज़के साथ—करते हुए विदा हुए। इतनेमें एक पुलिस सब-इंस्पेक्टर साहब आये, और उन्होंने हमारा पता वगैरह लिखा! वे कहने लगे—"अगर आपको ऐतराज़ न हो, तो आपकी बीवीका नाम भी गवाहोंमें लिख लूँ, क्योंकि उस बदमाशके पास कोकेन भी बरामद हुई है?"

थोड़े ही दिन बाद चाँदनीके नाम बरेलीके रेल्वे-मैजिस्ट्रेटकी अदालतसे समन आया कि फलाँ तारीखको आकर मुलज़िमको शिनाख्त करो और गवाही दो। चाँदनी इस अदालतकी पेशीसे चकराई। वह कहने लगी—"मैं तो न जाऊँगी।"

हमने कहा—"क्या तेरी शामत आई है? अगर समनसे न जायगी, तो वारंट कट जायगा और पुलिस पकड़कर तुझे ले जायगी। फिर मुलज़िमके वकील तुझसे जिरह करके तेरी सारी शरारतोंकी इकट्ठी कसर निकाल लेंगे।"

समन तो लेना पड़ा, मगर चाँदनी सख्त परेशान थी। अगर हम चाहते, तो उसे इस झगड़ेसे निकाल सकते थे; मगर हमने सोचा कि कुछ तजरुबा होना अच्छा ही है, इसलिए हमने उससे कहा—"घबराओ नहीं, हम तुम्हारे साथ चलेंगे।"

रेल्वे-मैजिस्ट्रेट एक डिप्टी-कलक्टर थे। जब हम खुद अपनी बीवीको लेकर हाजिर हुए, तो उन्होंने अपने क़रीब कुर्सी दी। मुलजिमकी शिनाख्त हुई। जब मैजिस्ट्रेट चाँदनीके बयान लेने लगे, तो हमने चुपकेसे उसके कानमें कहा—"वकील तुझसे जिरह करेगा। अगर कहीं तूने ज़रा भी झूठ कहा, तो समझ ले कि तुझपर झूठी गवाही (दरोग़-हल्फी) का मुक़दमा चल जायगा और तुझे जेलकी हवा खानी पड़ेगी।" यह सुनकर वह और भी बौखला गई।

जब उससे मुलज़िमके वकीलने जिरह की, तो वह और भी घबराई। उसे मजबूरन यह कबूल करना पड़ा कि उसने सज़ाके तौरपर मुलज़िमको कुनैन डालकर कड़ुवा पान दिया था। इत्तिफ़ाक़से बरेलीकी घटना अभी ताज़ी ही थी। मैजिस्ट्रेटने दिन और तारीख जो पूछी, तो मालूम हुआ कि जिस रोज़ बरेली स्टेशनपर तमाम चीजें कड़ुवी हुई थीं, वही दिन बरेली स्टेशनपर चाँदनीकी उपस्थितिका था। उस मामलेकी तहक़ीक़ात पुलिस पहले ही कर चुकी थी। तमाम कड़ुवी

चीज़ोंकी डाक्टरी परीक्षा भी हो चुकी थी। परीक्षकने बताया था कि सारी चीज़ें कुनैनसे कड़ुवी की गई थीं। हर जगह तहक़ीक़ातसे साबित हो चुका था कि कोई औरत थी। पानवालेने कहा था कि मैंने एक औरतके हाथ पान बेचे थे। यही बात रोटीवालेने कही थी। होटलवालेका बयान भी मौजूद था। मैजिस्ट्रेटने इन सब बातोंको मिलाकर देखा, तो मामला और ही नज़र आया। इसके अलावा तहक़ीक़ातमें लोगोंने जो बयान दिये थे, उनमें भी चाँदनीकी हुलिया दर्ज थी। मैजिस्ट्रेट बेचारे बड़े नेक आदमी थे। उन्होंने कुछ हमारा लिहाज़ किया और कुछ हमारी बीवीका, जो इस वक्त बेतरह घबरा रही थी। उन्होंने एक तरफ तो वकीलको बहुतसे ऐसे सवाल करनेसे रोका, जिनका जवाब देनेके पहले ही शायद चाँदनी रो पड़ती और दूसरी तरफ इस कड़ुवाहटकी बातको अप्रासंगिक कहकर बन्द कर दिया।

अदालतसे छुट्टी मिली, तो उसकी जान-में-जान आई; लेकिन डबल फर्स्ट क्लासके किरायेका परवाना जो उसके हाथ आया, तो फिर वही हालत हो गई। हमने कहा—"क्यों, इस परवानेको आधे दामपर हमारे हाथ बेचोगी ?"

"जी, मुँह धो आइये,"—चाँदनी बोली—"उन्हीं आधे दामोंसे कुनैन खरीदी जायगी।"

अदालतमें जो परेशानियाँ नज़र आई थीं, वह सब दूर हो गईं। हमने कहा—"तू न-मालूम किस भूलमें है। ताज्जुब नहीं कि अभी तेरी पेशी मुलजिमके तौरपर कुनैनवाले मुक़दमेमें हो।"

यह वह भी जानती थी कि मजिस्ट्रेट और सब-इंस्पेक्टर रेलवे पुलिस कुनैनवाले मामलेकी खुद तहक़ीक़ात कर चुके थे, और दोनों यह जान गये थे कि तमाम चीज़ें उसीने कड़ुवी की थीं। इसलिए वह मेरी बात सुनकर कुछ घबरा गई। शामको हम रेलवेके बँगलेपर अपनी मुलजिम बीवीको लेकर गये और उनके सामने उसकी तरफसे हमने उसका जुर्म कबूल किया। उन्होंने आश्चर्य और दिलचस्पीसे सारा क़िस्सा सुना और अन्तमें इतमीनान दिलाया कि कुनैनवाला मुक़दमा दाखिल दफ्तर कर दिया जायगा।

चाँदनीकी कुनैनका इस्तेमाल इतना बढ़ गया था कि अगर कुछ दिन बाद इस शरारतसे खुद उसका जी न भर गया होता, तो वह ज़रूर ही पुलिसमें पकड़ी जाती।

———

कविताकी पुकार

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', बी० ए०
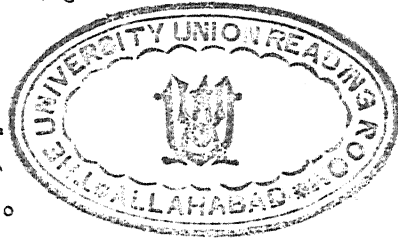
आज न उडुके नील-कुंजमें स्वप्न खोजने जाऊँगी;
आज चमेलीमें न चन्द्र-किरणोंसे चित्र बनाऊँगी;
अधरोंमें मुसकान न लाली बन कपोलमें छाऊँगी;
कवि! तेरी किस्मतपर भी मैं आज न अश्रु बहाऊँगी।

नालन्दा, वैशालीमें तुम रुला चुके सौ बार,
धूसर भुवन-स्वर्ग—ग्रामों—में कर पाई न विहार।
आज यह राजवाटिका छोड़,
चलो कवि! वनफूलोंकी ओर।

चलो, जहाँ निर्जन काननमें वन्य-कुसुम मुसकाते हैं,
मलयानिल भूलता, भूलकर जिधर नहीं अलि जाते हैं।
कितने दीप बुझे झाड़ी-झुरमुटमें ज्योति पसार,
चले शून्यमें सुरभि छोड़कर कितने कुसुम-कुमार!
क़ब्रपर मैं कवि! रोऊँगी,
जुगुनु-आरती संजोऊँगी।

विद्युत छोड़ दीप साजूँगी, महल छोड़ तृण-कुटी-प्रवेश;
तुम गाँवोंके बनो भिखारी, मैं भिखारिणीका लूँ वेश।
स्वर्णांचला अहा! खेतोंमें उतरी संध्या श्याम परी,
रोमन्थन करती आती है गाय कुचलती घास हरी।
घर-घरसे उठ रहा धुआँ, जलते चूल्हे बारी-बारी,
चौपालोंमें बैठ कृषक गाते—"कहँ अटके बनवारी ?"

पनघटसे आ रही पीतवसना युवती सुकुमार,
किसी भाँति ढोती गागर, यौवनका दुर्वह भार।
बनूँगी मैं कवि इसकी माँग,
कलस, काजल, सिन्दूर सुहाग।

वनतुलसीकी गन्ध लिये हलकी पुरवैया आती है,
मंदिरकी घंटा-ध्वनि युग युगका सन्देश सुनाती है।
टिम-टिम दीपकके प्रकाशमें पढ़ते निज पोथी शिशुगण,
परदेशीकी प्रिया बैठ गाती यह विरह-गीत उन्मन—
"भैया, लिख दे एक कलम खत मो बालमके योग,
चारो कोने खेम-कुशल माँझे ठाँ मोर वियोग।"
दूतिका मैं बन जाऊँगी,
सखी, सुध उन्हें दिलाऊँगी।

पहन शुक्रका कर्णफूल है दिशा अभी भी मतवाली,
रहते रात रमणियाँ आईं ले-ले फूलोंकी डाली।
स्वर्ग-श्रोत, करुणाकी धारा, भारत माँका पुण्य तरल,
भक्ति-अश्रु-धारा-सी निर्मल मंदाकिनि बहती अविरल।
लहर-लहरपर लहराते हैं मधुर प्रभाती गान,
भुवन स्वर्ग बन रहा, उड़े जाते ऊपरको प्राण।
पुजारिनकी बन कंठ-हिलोर
भिगो दूँगी अग-जगका छोर।

कवि, असाढ़की इस रिमझिममें धनखेतोंमें जाने दे,
कृषक-सुन्दरीके स्वरमें अटपटे गीत कुछ गाने दे,
दुखियोंके केवल उत्सवमें इस दम पर्व मनाने दे,
रोऊँगी खलिहानोंमें, खेतोंमें तो हर्षाने दे।

मैं बच्चोंके संग ज़रा खेलूँगी दूब-बिछौनेपर,
मचलूँगी मैं ज़रा इन्द्रधनुके रंगीन खिलौनेपर।
तितलीके पीछे दौड़ूँगी नाचूँगी दे-दे ताली,
मैं मकाकी सुरभि बनूँगी, पके आम फलकी लाली।

वेणु-कुंजमें इधर-उधर जुगनूँ बन मैं मुसकाऊँगी,
हरसिंगारकी कलियाँ बन मैं वधुओंपर झड़ जाऊँगी।
सूखी रोटी खायेगा जब कृषक खेतमें धरकर हल,
मैं दूँगी तब तृप्ति उसे बनकर लोटेका गंगाजल।
उसके तनुका दिव्य स्वेद-कण बनकर गिरती जाऊँगी,
और खेतमें उन्हीं कणोंसे मोती बन उग आऊँगी।

शस्यश्यामता निरख करेगा कृषक अधिक जब अभिलाषा,
तब मैं उसके हृदय-स्रोतमें उमड़ूँगी बनकर आशा।
अर्द्ध-नग्न दम्पतिके घरमें मैं झोंका बन आऊँगी;
लज्जित हों न अतिथि सम्मुख वे, दीपक तुरत बुझाऊँगी।

ऋण-शोधनके लिए दूध-घी बेंच-बेंच धन जोड़ेंगे,
बूँद-बूँद बेचेंगे अपने लिए नहीं कुछ छोड़ेंगे।
शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलायेगी,
मैं फाड़ूँगी हृदय, लाजसे आँख नहीं रो पायेगी।

इतनेपर भी धनपतियोंकी उनपर होगी मार,
तब मैं बरसूँगी बन बेबसके आँसू सुकुमार।
फटेगा भूका हृदय कठोर,
चलो कवि! वनफूलोंकी ओर।

यह सुन्दर कविता कविवर 'दिनकर'जीने 'कस्मै देवाय?' शीर्षक लेखके उत्तरमें लिख भेजी है। —सम्पादक

देहाती पूजा

[श्री पंचानन कर्मकार

'विशाल भारत'

कौन कहानी कैसे लिखते हैं ?

श्री नरोत्तमप्रसाद नागर

इस युगमें, जब कि कहानी-लेखकोंकी एक बाढ़-सी आ गई है, और प्रत्येक नवीन लेखक सबसे पहले कहानी ही लिखना चाहता है, यह जानना कि सफल कहानी-लेखक किस तरह कहानी लिखते हैं, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक होनेके अतिरिक्त नये लेखकोंके लिए पथ-प्रदर्शक भी सिद्ध हो सकता है। उर्दूके प्रसिद्ध पत्र 'नैरंग ख़याल' के सम्पादक हकीम मुहम्मद यूसुफ़ हुसेनने इस सम्बन्धमें उर्दूके अनेक सफल कहानी-लेखकोंसे पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया ; फल-स्वरूप हज़रत नियाज़ फतेहपुरी, सम्पादक 'निगार', मि० एम० अस्लम, मुंशी प्रेमचन्द और प्रो० जलील क़िदवईके अनुभव 'नैरंग ख़याल' के वार्षिकांकमें प्रकाशित हुए हैं। पाठकोंके मनोरंजनके लिए उनके आवश्यक अंश यहाँ दिये जाते हैं।

हज़रत नियाज़ फतेहपुरी

'मैं कहानी कैसे लिखता हूँ ?' यह प्रश्न जीवनमें सबसे पहले मुझसे १४ जुलाई सन् १९३३ को किया गया, और वह भी ऐसे अचानक ढंगसे कि थोड़ी देरके लिए तो मेरी बुद्धिने इस प्रश्नको समझनेकी भी इजाज़त नहीं दी।

सम्पादक 'नैरंग ख़याल' ने यह प्रश्न (जिसे माँग कहना ज्यादा ठीक होगा) क्यों किया, इसका जवाब तो फिर कभी दूँगा ; लेकिन इस वक्त तो यह फ़िक्र सवार है कि इस प्रश्नका क्या उत्तर दूँ, जब कि मैं खुद ही नहीं जानता कि मैं कहानी क्योंकर लिख लेता हूँ ?

जब मैंने अपने कहानी-लेखनके दौरपर और उसकी विभिन्न दिशाओंपर नज़र डाली, तो मालूम हुआ कि यह खुद एक कहानी है, और कहीं ऐसा न हो कि इस प्रश्नका उत्तर देते-देते 'कहानीमें कहानी' की उलझनमें फँस जाऊँ !

इस प्रश्नके दो पहलू हो सकते हैं। एक वह, जो व्यक्तित्वसे सम्बन्ध रखता है, और दूसरा वह, जो 'कला' से ; लेकिन सम्भवत: कलाकी हैसियतसे कुछ कहना ठीक न होगा, अत: इस समस्याको मुझे अपने तक ही परिमित रखना चाहिए।

सबसे अधिक विचित्र और आश्चर्यजनक बात, जो सम्भवत: कहानी-लेखनके सिद्धान्तोंके विरुद्ध है, मैं अपने अन्दर यह पाता हूँ कि आज तक मैंने कोई भी कहानी प्लाट गढ़कर नहीं लिखी। यहाँ तक कि एक-आध बार तो मैं यह भी नहीं जानता कि इसके आगे मुझे कौन-सा शब्द लिखना है ; पर चूँकि मेरी कहानियोंका प्रारम्भ चरित्र-चित्रणसे ही होता है, इसलिए शुरू ही में कुछ हलका-सा नक्शा ज़रूर पैदा हो जाता है, जो प्लाटकी सृष्टिमें अपने-आप ही सहायता पहुँचाता रहता है।

मेरी सबसे बड़ी, और सम्भवत: उतनी ही प्रसिद्ध भी, कहानी 'शहाबकी सरगुज़श्त' है ; लेकिन उसकी रचना भी इसी तरह हुई कि आये महीने कुछ पृष्ठ प्रेसमें भेजकर दिमाग़ एकदम ख़ाली कर डालता था। जब वह छपकर सामने आते थे, तो फिर बिना किसी प्लाटके और लिख देता था। यहाँ तक कि मैंने उसे ख़त्म करनेका निश्चय किया, तो समझमें ही न आता था कि इसका परिणाम क्या दिखाऊँ ? लेकिन चूँकि इस कहानीका ध्येय विवाहित प्रेम और सुख पहले ही से तय हो चुका था और संयोगवश उन्हीं दिनों एक घटना-विशेष भी आ घटी, जिससे विवाहकी समस्यापर मुझे अधिक गौर करना पड़ा, इसलिए मैंने इस कहानीको भी उसी भावनाके साथ ख़त्म कर दिया।

मेरी सबसे पहली कहानी 'एक शायरका अंजाम' थी, जो सन् १९[illegible]३ में लिखी गई थी,

यों ही बिना प्लाटके लिखी गई, और सबसे अन्तिम 'शबनिस्तानका क़तरा गौहरमें' भी, जो सन् १९३२ में लिखी गई, इसी तरह पूरी हुई। इससे सिद्ध हुआ कि यह आदत मेरी प्रकृति है, और मैं इसपर तर्क न कर सकनेके लिए लाचार हूँ।*

इसी सम्बन्धमें एक प्रश्न प्रेरणाका भी उठता है, अर्थात् कहानी लिखनेका कोई-न-कोई कारण भी होना चाहिए, सो इस दिशामें भी मेरा अनुभव कुछ विचित्र-सा है। आधी कहानियाँ तो निश्चय ही मैंने किसी-न-किसी चीज़से प्रेरित होकर लिखी हैं ; लेकिन आधी ऐसी हैं, जिनके लिए सिवा इसके और कोई प्रेरणा न थी कि मुझे कहानी लिखनी चाहिए ! परन्तु यह अजीब बात है कि दोनों तरहसे लिखी गई कहानियाँ बादमें एक ही रंग धारण कर लेती हैं, और कोई यह नहीं कह सकता कि अमुक कहानीके लिए प्रेरणा मौजूद थी और अमुकके लिए नहीं। बाज़ कहानियोंका श्रीगणेश तो मैंने इस तरह बिना कुछ सोचे-विचारे किया है, जैसे कोई कहानी कहना शुरू कर दे—'एक राजा था, उसके एक लड़का था और....' और इसके बाद क्या कहना है, यह ख़ुद कहनेवालेको भी मालूम नहीं।

यह तो हुआ कहानीके ढाँचेके सम्बन्धमें। रह गये भाव, सो उनके सम्बन्धमें कुछ बताना कठिन भी है और उसके लिए काफी समय भी चाहिए ; लेकिन इतना निवेदन कर देना आवश्यक है कि मैं चाहे किसी तरह और किसी हालतमें कहानी लिखूँ, 'हीरो' और 'हीरोइन'का आदर्श चित्र मेरे सामने अवश्य होता है, जिसका मैं एक विशेषताके साथ परिचय कराता हूँ, और सम्भवत: इसी वजहसे मुझे न प्लाटकी ज़रूरत होती है और न किसी तरहका ख़ाका बनानेकी।

मैं एक कहानीको एक ही बैठकमें कभी पूरी नहीं कर सकता (बशर्ते कि वह बहुत ही छोटी और चलती हुई न हो)। आध घंटे तक बराबर लिखनेके पश्चात् कम-से-कम दस मिनटकी ज़रूरत मुझे विचार-धारामें परिपक्वता लानेके लिए पड़ती है—चाहे यह दस मिनट मैं पान खानेमें लगाऊँ, या सामने पड़े हुए परदेके रंगीन बूटोंको ध्यानपूर्वक देखनेमें।

किसी व्यक्तिकी उपस्थिति मेरे काममें बाधा नहीं पहुँचाती, बशर्ते कि वह मुझसे बेतकल्लुफ़ हो, और न मेरे लिए किसी स्थान-विशेषकी ही रोक है, बशर्ते कि मैं वहाँ बेतकल्लुफ़ हूँ।

काग़ज़, क़लम और दावात जितने अच्छे होंगे, उतनी ही सुन्दरताके साथ मैं लेखका श्रीगणेश कर सकूँगा, हालाँ कि लिखते समय यह ख़बर नहीं होती कि क़लम लाल दावातकी तरफ़ जा रहा है, या कालीकी तरफ़। जिस जगह मैं काम करूँ, उसका साफ़-सुथरा होना अज़हद ज़रूरी है। अगर मेरे कमरेमें किसी जगह तिनका भी पड़ा होगा, तो मैं उस वक़्त तक नहीं लिख सकता, जब तक कि उसे उठाकर फेंक न दूँ।

जाड़ोंमें कहानी लिखनेकी प्रवृत्ति मुझे ज्यादहतर रातको होती है, जब मेरे चारों ओरका वातावरण सोया होता है, और लैम्प मेरा अकेला साथी होता है। गरमियोंमें सूर्योदयसे पहले लिख लूँ, तो लिख लूँ, इसके बाद कोई सुन्दर विचार नहीं सूझता। बरसातमें अगर ठंडी हवा बह रही हो और सूर्यकी गरमी बिलकुल शान्त हो, तो मैं लिख-पढ़ सकता हूँ, वरना नहीं। मतलब यह कि सूर्य और उसकी धूपसे मेरे मस्तिष्ककी पुरानी दुश्मनी है, और मजबूरीका तो ख़ैर कोई ज़िक्र ही नहीं। जेठ-बैसाखकी दुपहरीमें एक-आध बार मैंने दफ्तरके दफ्तर लिख डाले हैं ; लेकिन स्वच्छन्दतासे लिखनेके लिए मुझे सुहावनी ऋतुकी आवश्यकता होती है।

---

* सम्भवतः इसी वजहसे नियाज साहबकी अधिकांश कहानियाँ ज़रूरतसे ज्यादा बड़ी हैं, और भाव-भाषा तथा चरित्र-चित्रणका कमाल होते हुए भी उनका यह विस्तार कहीं-कहीं अखरता है। —अनु०

जनाब एम० असलम साहब

प्रथम इसके कि मैं इस विषयपर अपने विचार प्रकट करूँ, मैं सबसे पहले यह बता देना चाहता हूँ कि मैं फ़रमायशपर कहानी नहीं लिख सकता। अगर कोई यह चाहे कि जब मुझसे कहा जाय, मैं क़लम लेकर बैठ जाऊँ और कहानी तैयार कर दूँ, यह मेरे लिए बहुत मुश्किल है।

साधारणतया मुझे कहानी लिखनेके लिए प्लाट तीन तरहसे सूझते हैं:—(१) कोई उदासीपूर्ण वातावरण हो, (२) कोई टूटा-फूटा निर्जन मकान हो, (३) राह चलते कोई ऐसा व्यक्ति नज़र आ जाय, जो सच्चे मानीमें सूरते-सवाल हो।

मेरी कहानियोंमें दुःख और प्रेमके चित्रणका प्राधान्य रहता है, और वह किसी ऐसे ही वातावरणका परिणाम होता है, जहाँ निस्तब्धतापूर्ण उदासीका साम्राज्य हो। भूत-प्रेतोंकी कहानियाँ मुझे टूटा हुआ मकान देखकर सूझती हैं। जब किसी व्यक्तिकी काल्पनिक तसवीर मेरी आँखोंके सामने हो, तो मैं वे कहानियाँ लिखता हूँ, जिनमें दाम्पत्य-जीवनकी झलक हो।

सांसारिक दृष्टिकोणसे चूँकि मैं एक बेकार व्यक्ति हूँ, अतः समय काटनेके लिए मैंने दो शग़्ल बना रखे हैं—एक शिकार और दूसरा ग्रामोफोन। मेरी कहानियाँ बहुधा ग्रामोफोनके रेकर्डोंसे प्रभावित होनेपर लिखी गई हैं। जब कोई ख़ास राग या किसी रेकर्डका कोई ख़ास शेर मुझे पसन्द आता है, तो मैं उसे बार-बार सुनता हूँ, बल्कि कई-कई दिन तक वही एक रेकर्ड बजाता रहता हूँ, और फिर उस राग या शेरका जो प्रभाव मेरे दिलपर पड़ता है, उसके अनुसार मुझे कोई-न-कोई कहानी सूझ जाती है।

मिस इन्दुबालाका एक रेकर्ड है—'जग झूठा सारा साइयाँ', ज़ोहराका—'जबसे पिया परदेश गवन कीनो' या 'आँखें तरसें तेरे देखनको'—मैंने अकसर इसी तरहके रेकर्डोंसे प्रभावित होकर कहानियाँ लिखी हैं। भावुकता मुझमें इतनी अधिक है कि अगर मैं यह कहूँ कि मेरे इस दोषने ही मुझे निकम्मा कर दिया है, तो अतिशयोक्ति न होगी। ज़रासी बातसे मेरे दिलको ठेस लगती है, चुनांचे मेरे भावावेशका पूरा-पूरा परिचय मेरी कहानियोंमें मिलता है। उस वक़्त तक मैं कोई कहानी नहीं लिख सकता, जब तक कि किसी वारदात या घटनाका नक्शा मेरी कल्पनामें न खिंच जाय।

कहानीका चित्र जब कभी मेरे मस्तिष्कमें आता है, तो पूर्ण होकर आता है। कभी-कभी तो यह हालत होती है कि मैं दो-दो, तीन-तीन कहानियाँ एक साथ लिखने बैठ जाता हूँ! एकके लिखनेमें तबीयत उकताई, तो दूसरी लिखने लगा, और उससे दिल उचटा, तो तीसरीको ले लिया—इस तरह दो-तीन बैठकमें तीनों कहानियाँ पूरी हो जाती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि महीनों हो जाते हैं, कोई कहानी नहीं सूझती, और कभी एक साधारण-सी घटना कहानीकी दाग़बेल डाल देती है। इसके लिए दो-तीन उदाहरण देना मनोरंजनसे ख़ाली न होगा:—

मेरी कहानियोंमें एक 'राधाकी कंठी' है, और जहाँ तक मेरा ख़याल है, यह कहानी बहुतोंने पसन्द की है। मैं सिन्ध नदीमें मगरका शिकार खेलकर वापस आ रहा था। एक जगह ख़ानाबदोशोंके झोंपड़े थे। वहाँ मैं ज़रा सुस्तानेके लिए बैठ गया। सामने एक वृक्षपर झूला पड़ा हुआ था, और एक अन्धा लड़का झूलेपर बैठा था। एक लड़की उसे झुला रही थी। फिर वह झूलेपर बैठी और अन्धा बालक, जहाँ उस बालिकाने उसे खड़ा कर दिया, वहींसे हाथ आगे बढ़ाकर बालिकाको झुलाने लगा। मैं कुछ देर बैठा इस तमाशेको देखता रहा। रातको जब घर पहुँचकर एक नये रेकर्डको—'एक झूला डाला मैंने सइयाँकी गोदमें'—मैंने कई बार बजाकर सुना, और उसी रात 'राधाकी कंठी', जो पवित्र प्रेमकी मार्मिक कहानी है, तैयार हो गई।

सम्पादक 'नैरंग' लाहोर तशरीफ़ लाये थे।

मुझसे मिलने आये, तो उन्होंने वार्षिकांकके लिए कहानी लिखनेको कहा और केवल तीन दिनकी मुहलत दी। मैंने असमर्थता प्रकट की, मगर वह न माने। अगले रोज़ जब वह फिर आये और तक़ाज़ा किया, तो मैंने फिर अपनी मजबूरी प्रकट की। दिमाग़में कोई प्लाट जमता ही न था। तीसरे रोज़ वे फिर तशरीफ़ लाये। सुबह उन्हें देहली वापस जाना था। मैंने हर तरह उन्हें यक़ीन दिलाना चाहा कि दरअसल मैं मजबूर हूँ ; लेकिन उनकी बातोंसे प्रकट हो रहा था कि मेरे इनकारसे उनकी दिलशिकनी हुई है। जब वह चलने लगे, तो मैं उन्हें बाज़ारके नुक्कड़ तक छोड़ने गया। वहाँ एक वृद्ध मछली तलकर बेच रहा था। उसी जगह खड़े होकर उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया। उसी समय एक वृद्ध अपनी बच्चीको गोदमें उठाये उसे मछली खिला रहा था। बच्ची जब मछलीकी ओर हाथ बढ़ाती, तो वह बड़े दुलारसे कहता—"ठहरो बिटिया, मैं काँटा निकाल दूँ।"

एक-दो बार जो मैंने यह दुलार-भरे शब्द सुने, तो उस व्यक्तिकी वृद्धावस्थाने और बच्चीकी शैशवताने मेरे दिलो-दिमाग़पर एक अजीब कैफियत तारी कर दी। मैंने सम्पादकजीसे कहा—"लीजिए हज़रत! कहानी कल सुवह लेते जाइयेगा।"

उस वक्त तो सम्भवतः वह यही समझे कि मैं उनसे मज़ाक कर रहा हूँ ; लेकिन मेरे मस्तिष्कमें उस वक्त कहानीका पूरा ढाँचा तैयार था। उसी रात मैंने 'ज़दो पशेमान' शीर्षक कहानी तैयार कर ली। सुबह वे तशरीफ़ लाये, तो मैंने उन्हें पढ़कर सुनाया, और आख़िरी हिस्सेपर जब पहुँचे, तो यह हालत थी कि उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे और मेरी आवाज़ इस क़द्र भर्रा गई थी कि शब्द बड़ी मुश्किलसे मुँहसे निकल रहे थे।

'साक़ी' के इस सालके वार्षिकांकके लिए जो कहानी 'सोहागकी रात' लिखी है, उसकी प्रेरणा इस इस शेरसे हुई—

"हुजलये गोरमें सामान ज़रूरी होगा,
लाश आरामसे सोयेगी सुहागिन बनकर।"

गरमीके मौसममें जाड़ोंकी अपेक्षा अधिक लिख सकता हूँ। गरमियोंमें साधारणतया बारह बजे दोपहरसे तीन बजे तक एक भीगी हुई चटाईपर बैठकर और बिजलीका पंखा लगाकर लिखता हूँ, और फिर चारसे पाँच या छै तक सोता हूँ। मेरे ख़यालमें कड़ी गरमीका वक्त काटनेके लिए यही उचित रास्ता है। मेज़पर बैठकर लिखनेका आदी नहीं। हाँ, मेज़पर बैठकर उसे साफ़ करता हूँ। मेरी मेज़ और कबाड़ीकी दूकानमें सिर्फ़ इतना अन्तर होता है कि मेज़ छोटी है और कबाड़ीकी दूकान बड़ी। मुझे लम्बे-चौड़े वाक्य लिखना पसन्द नहीं, कथोपकथन लिखनेमें मुझे आनन्द आता है। वे कहानियाँ, जो मुझे बहुत पसन्द हों, किसी उस्तादके शेरके साथ ख़त्म करता हूँ।

—

श्री प्रेमचन्द

मेरे किस्से अकसर किसी-न-किसी दृष्टान्त या अनुभवकी नींवपर बने होते हैं। उनमें मैं ड्रैमेटिक क्लामेक्स पैदा करनेकी कोशिश करता हूँ। सिर्फ़ किसी घटनाका चित्रण करनेके लिए मैं कहानियाँ नहीं लिखता। मैं उसमें किसी मनोवैज्ञानिक समस्याके तथ्यका उद्घाटन करना चाहता हूँ। जब तक उसमें इस तरहकी कोई बुनियाद नहीं मिलती, मेरी लेखनी नहीं उठती। ज़मीन तैयार होनेपर मैं कैरेक्टरोंकी सृष्टि करता हूँ। कभी-कभी ऐतिहासिक स्टडीसे भी प्लाट मिल जाते हैं ; लेकिन कोई घटना, (बज़ाते ख़ुद) कहानी नहीं होती, जब तक कि वह किसी मनोवैज्ञानिक तथ्यको प्रकट न करे।

मैं, जब तक कहानीको अथसे इति तक ज़हनमें न बिठा लूँ, लिखने नहीं बैठता। व्यक्तियोंके चित्रणमें इस बातका ध्यान रखता हूँ कि वे उस कहानीके अनुकूल हों। मैं इस बातको ज़रूरी नहीं समझता

कि कहानीकी बुनियाद किसी दिलचस्प (शानो-शौकत वाली) घटनापर रखूँ। अगर कहानीमें मनोवैज्ञानिक क्लाइमेक्स मौजूद हो, तो मैं इस बातकी परवा नहीं करता कि वह किसी जाति या सम्प्रदाय-विशेषसे सम्बन्ध रखता है। अभी हिन्दीमें मैंने एक कहानी लिखी है—'दिलकी रानी'। मैंने तारीख इस्लाममें तैमूरकी ज़िन्दगीकी एक घटना पढ़ी थी, जिसमें हमीदा बेगमसे उसकी शादीका ज़िक्र है। मुझे तुरन्त ही इस ऐतिहासिक घटनाके ड्रैमेटिक पहलूका ध्यान आया। ऐतिहासिक घटनामें 'क्लाइमेक्स' न था। कैसे पैदा होगा, इसकी फ़िक्र सवार हुई। हमीदा बेगमने बचपनमें अपने बापसे शस्त्र-विद्याकी तालीम पाई थी, और युद्धक्षेत्रमें कुछ अनुभव भी प्राप्त किया था। तैमूरने हज़ारहाँ तुर्कोंको क़त्ल कर दिया था—ऐसे दुश्मनसे क़ौमपर एक तुर्की महिला क्यों आसक्त हो गई ? यह प्रश्न हल होनेसे क्लाइमेक्स निकल आता था। तैमूर कुरूप था, इसलिए ज़रूरत हुई कि उसमें चरित्र और भाव-सम्बन्धी ऐसे सूत्र पैदा किये जायँ, जो एक उच्च महिलाको उसकी तरफ़ झुका सकें। इस तरह वह किस्सा तैयार हो गया।

कभी-कभी सुनी-सुनाई घटनाएँ ऐसी होती हैं कि उनपर कहानीकी बुनियाद बड़ी आसानीसे रखी जा सकती है; लेकिन कोई घटना सिर्फ़ लच्छेदार और चुस्त भाषा लिखनेसे और श्रेष्ठ कल्पनाके आधार पर ही कहानी नहीं बनती। मैं उसमें क्लाइमेक्स लाज़मी समझता हूँ, और वह भी मनोवैज्ञानिक। यह भी आवश्यक है कि कहानीकी गठन इस तरह क़ायम की जाय कि क्लाइमेक्स क़रीबतर आता जाय।

जब कोई ऐसा मौक़ा आ जाता है, जहाँ ज़रा तबीयतपर ज़ोर डालकर साहित्यिक और कवित्वपूर्ण कैफ़ियत पैदा की जा सकती है, तो मैं उस अवसरसे ज़रूर फ़ायदा उठानेका प्रयत्न करता हूँ, यही कैफ़ियत अफ़सानेकी जान है।

मैं बहुत सुस्त रफ़्तार हूँ। महीने-भरमें शायद मैंने दो कहानियोंसे अधिक कभी नहीं लिखीं। कभी-कभी तो महीनों कोई कहानी नहीं लिखता। घटना और कैरेक्टर तो सब मिल जाते हैं; मगर मनोवैज्ञानिक बुनियाद मुश्किलसे मिलती है। इस समस्याके सुलझ जानेपर कहानी लिखनेमें देर नहीं लगती।

इन चन्द पंक्तियोंमें कहानी-लेखकके सिद्धान्त बयान नहीं कर सकता। यह एक बुद्धिगत बात है। सीखनेसे भी लोग कहानी-लेखक बन जाते हैं; लेकिन कविताकी तरह इसके लिए भी और साहित्यके प्रत्येक विषयके लिए कुछ प्राकृतिक सम्बन्ध ज़रूरी है। प्रकृति आप-से-आप प्लाट बनाती है, ड्रैमेटिक वातावरण तैयार करती है, प्रभाव लाती है, साहित्यिक विशेषताएँ जमा करती है—अप्रकट रूपसे सब कुछ होता रहता है। हाँ, कहानी समाप्त हो जानेपर मैं स्वयं उसे पढ़ता हूँ, और अगर उसमें मुझे कुछ यथार्थता, कुछ नवीनता, कुछ जीवन पैदा करनेकी शक्तिका अनुभव होता है, तो मैं उसे सफल समझता हूँ, वरना समझता हूँ कि फेल हो गया—हालाँ कि फेल और पास दोनों तरहकी कहानियाँ छप जाती हैं, और बहुधा ऐसा होता है कि जिस कहानीको मैं फेल समझा था, उसे मित्रोंने बहुत ज़्यादा पसन्द किया, इसलिए मैं अपने स्टैन्डर्डपर ज़्यादा ऐतबार नहीं करता।

—

मि० जलील क़िदवई *

कहानी लिखनेका मेरा तरीक़ा इस सिद्धान्तमें 'इन्सानके लिए बेहतरीन स्टडी खुद इन्सान है' छुपा है, और मैं बिना किसी पसोपेशके स्वीकार करता

* आपका पत्र काफ़ी बड़ा है और उसका अधिकांश भाग उपदेशात्मक ढंगका है। कहीं-कहीं उर्दूके कहानी-साहित्यकी भी विवेचना की गई है। यहाँ उनके पत्रका केवल वही भाग दिया जा रहा है, जो वस्तुतः उनके अपने अनुभवोंसे सम्बन्ध रखता है।—अनु०

हूँ कि मेरी कहानियाँ या तो मेरी अपनी बीती हैं, या आँखों-देखी घटनाएँ हैं, अथवा दूसरोंपर बीती हुई हैं, जिन्हें मैंने भुक्तभोगियोंके मुखसे सुना और कभी आप-बीती, कभी जगबीती बनाकर कहा। मेरे कितने ही दोस्त मेरी कहानियोंके असली प्लाटसे परिचित हैं, क्योंकि वे खुद मेरे शरीके सैरकी हैसियतसे शामिल थे, और जहाँ तक हो सका, मैंने उन्हीं दोस्तोंके नाम कहानियाँ समर्पित की हैं, जो कहानीके भेदसे परिचित हैं। मुझे कहानियोंमें 'सचाई' बहुत पसन्द है, और जीवनके सच्चे चित्रणको कहानी-कलाका सबसे पहला और सबसे बड़ा सिद्धान्त समझता हूँ।

इसलिए मैं कोशिश करता हूँ कि बीती हुई घटनाओंपर ही कहानियाँ लिखूँ। घटना चाहे संयोगवश घटी हो, या वह सिर्फ दिमागी कैफियत हो, या मानसिक जद्दोजहद हो। मैंने कहानियोंके लिए अपने-आप कभी कैरेक्टर नहीं बनाये। दरअसल कैरेक्टर पैदा करना औपन्यासिकोंका काम है, जो किसी ध्येय-विशेषको लेकर कलम उठाते हैं·······संक्षिप्त कहानी जीवनकी एक बहती हुई लहरके सदृश है, जिसे बर्फ़की सिल बनाकर साहित्यके बर्फ़िस्तानमें सुरक्षित रख देना चाहिए। इसी तरह मैंने पहलेसे प्लाट भी कभी तैयार नहीं किये। जो घटना जिस तरहसे पेश आई, उसे मैं कमोबेश उसी तरह लिख देता हूँ। प्लाटको मनोहर बनानेके लिए अपनी तरफ़से शायद ही कहीं घटाता-बढ़ाता हूँ।····मेरा यही तरीक़ा है। उदाहरणके तौरपर यहाँ एक घटना पेश करता हूँ, जिसकी अब तक कहानी तैयार नहीं हो पाई है :—

कई साल हुए। 'अलीगढ़ मैगज़ीन' के एडीटर साहबने भूतपूर्व व नवीन सम्पादकोंकी तसवीर लेनी चाही। वह ग्रूप लिया गया और पत्रमें छप भी गया। जिस दिन शामको तसवीर ली जानेवाली थी, हम स्वीमिंग बाथ लॉनपर जमा हुए। ४ बजेका समय दिया गया था ; मगर इन्तज़ार करते-करते ५ बज गये और फ़ोटोग्राफरका पता न था। सबको बेहद बेचनी थी—विशेषकर हमारे एक प्रतिष्ठित मित्रको, जिन्हें टेनिस खेलनेके लिए क्लब भी जाना था। वे एडीटर साहबके प्रबन्धकी दाद दिये बग़ैर नहीं रह सके। उधर एडीटर साहब, जो एक विद्यार्थी थे, निहायत पशेमान थे, और हम लोगोंको परेशान देखकर भागे-भागे फिरते थे। गर्ज़ कि बिलकुल निराश होकर और एडीटर साहबकी असमर्थतापर उनकी ख़ता माफ़कर हम लोग वहाँसे चले ही थे कि फ़ोटोग्राफर साहब एक इक्केपर तसवीरका सामान लिये आये।····हम लोग फिर रोक लिये गये। बैठनेका दोबारा प्रबन्ध किया गया, और मुसव्वर साहबने कैमेरेको फिट करना शुरू किया। हमारे उन दोस्तका, जिन्हें बहुत पेचोताब था, अब तक गुस्सा उतरा न था। उन्होंने निहायत संजीदगीसे फ़ोटोग्राफर साहबको क़ायल और अपनी ग़लतीसे ख़बरदार करनेके लिए कहा—"जनाबको ४ बजेका समय दिया गया था, और हम लोग मशरूफ़ आदमी हैं, आपको वक़्तकी पाबन्दी लाज़मी थी।"

मगर मुसव्वर साहब कब क़ायल होनेवाले थे। उन्होंने तुरन्त जवाब दिया—'यही तो तसवीर लेनेका बेहतरीन वक़्त है। इससे पहले तसवीर ली जाती, तो मेहनत बेकार जाती।'

हमारे दोस्तने फिर कहा—'जो कुछ भी हो, वादेका निभाना और वक़्तकी पाबन्दी तो करनी चाहिए।'

मगर मुसव्वर साहबकी राय इसके ख़िलाफ़ थी। वे तुरन्त ही बोले और निहायत ही बेपरवाही और बेतकल्लुफ़ीके साथ—'अजी घंटे दो घंटेकी देर कोई देर नहीं है।'

प्रकट है कि उनके इस तर्कको समझना हमारे क़ाबिल दोस्तके लिए दुश्वार था, अतः हारकर उन्होंने मुसव्वरसे ज्यादा अपनेसे कहा—'आप क़ायल न होंगे।' इस वाक्यका मुसव्वर साहबसे कोई जवाब न बन पड़ा, तो असमर्थता खुद जवाब बन गई, और उन्होंने अपने दोनों हाथ हवामें ऊँचे उठाकर माशूक़ाना अन्दाज़से एक बड़ी लम्बी जम्हाई ली, और 'निज़ाम'

रामपुरीके कथनानुसार—'अँगड़ाई भी वह लेने न पाये उठाके हाथ'*—बनकर दूसरी तरफ़को मुँह फेर लिया!

अब ज़रा मुझे यह बताइये कि इस क़िस्सेमें प्लाटकी दिलचस्पीके लिए वह क्या चीज़ रह जाती है, जिसे आप शामिल करेंगे? इस क़िस्सेकी दिलचस्पी किसी काल्पनिक या बाहरके प्लाट या 'कहानीमें कहानी' पर निर्भर नहीं, बल्कि इन सच्ची घटनाओंको जैसाका तैसा बयान कर देनेमें है।

कुछ दिन पहले तक मैं डायरी लिखनेका आदी था। रोज़ाना रातको सोनेसे पहले दिन-भरकी घटनाओंको क़लमबन्द कर लेता था, और कभी फ़ुरसतमें दोबारा उसको पढ़ता था, तो कहानियोंके लिए मसाला मिल जाता था; मगर अब ऐसा नहीं करता। मैं इसे बेकार समझता हूँ कि आदमी अपने ऊपर यह कर्ज़ लाद ले कि रोज़ाना इस नीरस शग्लमें सर खपाये। फिर आये दिनकी घटनाएँ साधारणतया इतनी दिलचस्प और असाधारण नहीं होतीं कि उन्हें क़लमबन्द किया जाय। अतः रसमें एक तरहकी एकरसताका समावेश हो जाता है, और यह काम नीरस बन जाता है। हाँ, किसी ख़ास हालतमें, जब कोई दिलचस्प वाक़या पेश आया हो, या कोई ऐसी घटना, जिसमें ड्रैमेटिक कैफ़ियत हो, या मस्तिष्ककी अथवा मानसिक अवस्था-विशेषकी, जिससे हृदय प्रभावित हुआ हो, तो उसको लिख लेनेमें कोई हर्ज नहीं। मगर इसे भी मैं अपने लिए बेकार समझता हूँ, क्योंकि जितनी देरमें कोई डायरीके पृष्ठ काला करे, उतनी देरमें एक अच्छी ख़ासी—छोटीसी—कहानी तैयार हो सकती है। हाँ, रेलके सफ़रमें या यात्राओंके अवसरपर डायरी ज़रूर रखना चाहिए; क्योंकि स्टेशनों और होटलोंमें, तफ़रीहगाहों और रेलके डिब्बोंमें अकसर ऐसी घटनाएँ पेश आती हैं, जो कहानियोंके लिए सुन्दर प्लाट बन जाती हैं।

कहानी लिखते समय मैं बेचैन हो जाता हूँ। जिस समय मैं भावावेशसे विचलित होता हूँ, उस वक़्त निहायत अच्छा लिख लेता हूँ, यह अजीब बात है। अगर भावावेश और लिखनेमें कुछ देर हो जाय, तो लिखना तबीयतको भार मालूम होता है, और मैं कामसे जी चुराता हूँ। मेरे पास बाज़ कहानियाँ अपूर्ण रखी हैं, सिर्फ़ इस वजहसे कि ठीक वक़्तपर मैंने काम करनेसे जी चुराया।

मेरी लिखावट बहुत ख़राब है, कम-से-कम मेरे प्रेमी मित्रोंको मुझसे यही शिकायत है, गो मैं उनकी इस रायसे सहमत नहीं। असग़र साहबने एक बार लिखा—'मुझे यही एक हसरत रह जायगी कि ज़िन्दगीमें एक बार तुम्हारा ख़त जैसा-का-तैसा पढ़ लेता।' मजीद साहब लिखते हैं—'आपकी तहरीर दूरसे मोतियोंकी लड़ी नज़र आती है, मगर आँखके पास लाओ, तो सुइयोंकी खटक महसूस होती है।' एक स्वर्गीय बुज़ुर्गको (ख़ुदा उन्हें जन्नत नसीब करे) अगर शामको मेरा ख़त मिले, तो रख देते थे और फ़रमाते थे—'अब इसे इतमीनानसे सुबहके वक़्त पढ़ेंगे'—वग़ैरह। लेकिन इसमें शक नहीं कि कहानी लिखते वक़्त या बहुत ज्यादा लिखना हो, तो मेरी तहरीर बहुत ख़राब हो जाती है, इसलिए कभी-कभी लिखनेका काम अपनी बीवीसे भी लिया है, जिन्हें अपने ख़तपर बड़ा नाज़ है, और जिनकी वजहसे मुझे 'जन्नाती तहरीर'* का ख़िताब मिला है।

कहानी लिखनेके लिए बेहतरीन वक़्त रात है। उस वक़्त भावोंका ज़ोर होता है और विचारोंकी धूम; यहाँ तक कि रातकी नींद उड़ जाती है—कम-से-कम मेरा तो यही अनुभव है:—

* पूरा शेर यह है:—
अँगड़ाई भी वह लेने न पाये उठाके हाथ,
देखा जो मुझको छोड़ दिया मुस्कराके हाथ।

* अपनी भाषाकी लिपिको जापानी और चीनी लिपिका रूप देनेवाले लेखकोंके लिए अच्छा ख़ासा नुस्ख़ा है। प्रयोग करके देखिये, कहाँ तक कारगर होता है। —लेखक

अक्सर शबे तनहाईमें कुछ देर पहले नींदसे
गुज़री हुई दिलचस्पियाँ बीते हुए दिन ऐशके
बनते हैं शमअ ज़िन्दगी और डालते हैं रोशनी
मेरे दिले सद चाक पर !

रातका वक़्त सोलहो आना अपना होता है, और दिनके मुक़ाबलेमें ज्यादा तवील। सबसे बड़ी बात यह है कि रातके वक़्त ख़यालात भागते नहीं, या कम-से-कम इस तरह नहीं भागते कि पकड़े न जायँ। विचारोंके खेरेके खेरे आते हैं, और खुशी-खुशी अपनेको तहरीरके फन्देमें गिरफ्तार करा देते हैं। रातके समय जब चूल्हा ठंडा हो चुका हो और दिन-भरका खटराग ख़त्म—

'वह घरवाली सुन्दर चतुरा घरकी सेवा करनेवाली ।'

बच्चों समेत सो रही हो, नौकर-चाकर नज़रोंसे दूर हों और चारों ओर सन्नाटा हो, उस वक़्त अपने लिखने-पढ़नेके कमरेमें हुक़्क़ेसे दिल बहलाते हुए कहानी लिखनेका मज़ा है।

वक़्तमें लचक पैदा हो जाती है और विचारोंमें गहराई तथा विकास। यहाँ तक कि क़िस्सा ख़त्म करके बिस्तरेपर जाओ, तो भी विचारोंकी आमद कम नहीं होती, और बिस्तरेपर पड़े-पड़े कहानीमें संशोधन किये जाते हैं।

× × ×

जनाब हकीम साहब! क्षमा कीजिएगा। मैंने यह मज़मून उन्नावमें लिखना शुरू किया था और दो महीने बाद अलीगढ़में आकर भी इसे ख़त्म नहीं कर पाया, मजबूरन इसे यहीं ख़त्म करता हूँ।

नहीं सुना

श्री वेरियर एलविन एक सहृदय, ईमानदार अंगरेज़ पादरी हैं। उन्हें भारतके राष्ट्रीय संग्रामसे भी सहानुभूति है। कुछ दिन पहले वे मध्यप्रान्तके जंगलोंमें बसनेवाली बैगा जातिकी बस्तीमें गये थे। बैगा जाति सुदूर जंगलोंमें रहती है, और अब तक एकदम आदिम अवस्थामें है। इस यात्राके विषयमें एलविन साहब लिखते हैं—

"बहुत दिनोंसे मेरी यह इच्छा थी कि मैं महात्मा गांधीको चिट्ठी लिखूँ, जिसमें उन्हें बतलाऊँ कि मुझसे एक ऐसे आदमीसे मुलाक़ात हुई, जिसने कभी आपका नाम ही नहीं सुना; लेकिन आज तक मेरी यह इच्छा पूरी न हो सकी, क्योंकि आज तक मुझे कोई भी ऐसा हिन्दोस्तानी नहीं मिला, जो महात्माजीके नामसे अपरिचित हो। मैंने सोचा कि बैगोंकी इस जंगली बस्तीमें, जहाँ साल-भरमें मुश्किलसे दो-चार बाहरी आदमी पहुँचते हैं, मेरी यह इच्छा ज़रूर पूरी होगी; लेकिन नहीं, यहाँ भी हरएक कम-से-कम गांधीजीका नाम ज़रूर जानता है। बहुत पूछ-ताछ करनेपर अन्तमें उन लोगोंने एक बुड्ढे बैगाकी ओर इशारा करके कहा—'इस आदमीने कभी गांधीजीका नाम नहीं सुना।'

'अच्छा!'—मैंने प्रसन्नतासे कहा—'इसने कभी गांधीका नाम नहीं सुना?'

उन्होंने कहा—'हाँ, क्योंकि यह बीस वर्षसे वज्र बहरा है!' "

उत्तराखंडके पथपर

प्रो० मनोरंजन, एम० ए०

पटनेसे हरद्वार

लक्ष्मणभूलेके पुलके पास खड़े होकर मैंने देखा—'बदरीनाथ १६६ मील'। मेरे साथ थे मेरे मित्र श्री रामरक्षजी और नीचे बह रही थी गंगा—उछलती, कूदती, गरजती हुई। आसपास चारों ओर पहाड़-ही-पहाड़ थे—सुन्दर, रमणीक, हरे-भरे। सामने जा रहा था श्रीबदरीकेदारका पथ—जिस पथसे पांडव गये थे अपनी अन्तिम यात्रामें हिमालयकी ओर। मेरे जीमें आया, क्या मैं वहाँ न जाऊँगा? क्या वह दिन कभी न आवेगा, जब मैं अपनी इन्हीं आँखोंसे अम्बरचुम्बित भाल हिमाचलका भव्य दर्शन करूँगा? मेरा जी मचल उठा; किन्तु पासमें साधन न थे। लाचार लौट आना पड़ा वहींसे मन मसोसकर।

यह सन् १९१८ की बात है। उसके बाद कई साल बीत गये। बीचमें सुना भयंकर बाढ़ आई थी—शायद १९२४ में। उसकी भीषणताके आगे लक्ष्मणभूलेका वह पुल ठहर न सका; किन्तु जब मैं दोबारा सन् १९३१ में गया, तो देखा एक दूसरा पुल उसके स्थानकी पूर्ति कर रहा है—उससे भी मज़बूत, उससे भी सुन्दर। उस बार मेरे साथ थी मेरी धर्मपत्नी, प्रिय गोपाल और भतीजा प्रियरंजन। उस बार हम लोग लक्ष्मणभूलेसे भी कुछ आगे बढ़े—गरुड़चट्टी तक—सिर्फ दो मील। रास्ता बहुत अच्छा था और गरुड़चट्टी पहुँचकर तो जो आनन्द आया, उसका वर्णन नहीं हो सकता। सुन्दर रम्य स्थान, सुहावने फलोंका बाग़, आम, अमरूद, केला इत्यादि अपने ही देशके फल; ऊपरसे आता हुआ सुन्दर झरनेका जल, गरुड़ भगवानकी भव्य मूर्ति—सभी एक-से-एक बढ़कर थे। ऊपर गया—वशिष्ठाश्रम। सुन्दर जलप्रपात दृष्टिगोचर हुआ। उसके नीचे स्नान करनेसे रास्तेकी सारी थकावट दूर हो गई। लौटकर नीचे आया, तो गरुड़ भगवानके मन्दिरके पास बैठा। इस यात्राके रक्षक वे ही हैं। लोगोंका विश्वास है कि उनकी ही कृपासे सारी यात्रा निर्विघ्न समाप्त होती है और राहकी थकावट भी कुछ नहीं मालूम पड़ती। इसीसे आप देखेंगे कि बदरीकेदारके श्रद्धालु यात्री जब तीर्थ-यात्राको अग्रसर होते हैं, तो उनके मुँहसे बारम्बार यही निकलता है—"बोलो बदरीविशाल लालकी जय, बाबा केदारनाथकी जय, गरुड़ भगवानकी जय!"

उस बार भी मैंने देखा था कि बहुतसे यात्री बदरीकेदारको जा रहे थे—बूढ़े, बूढ़ी, बच्चे, जवान सभी थे। उन्हें देखकर मेरे हृदयमें भी उत्साह हुआ। पंडेसे बातें कीं। मालूम हुआ, आगे भी रास्ता वैसा ही है। फिर क्या था। निश्चय कर लिया कि ज़रूर जाऊँगा; किन्तु उस बार भी बात वहीं तक रही। वहींसे घर लौट आया। पटनेमें बातें कीं मायसे—अपनी धर्मपत्नीकी पूजनीया जननीसे, क्योंकि मेरी अपनी माँ तो है नहीं; बस, इन्हींको पाकर माँके अभावकी पूर्ति करता हूँ। वे तीनों धाम घूम चुकी थीं—बस, बाक़ी रह गया था यही बदरीनाथ। उन्होंने बड़ी उत्कट इच्छा प्रकट की। मैंने भी साथ चलनेका वचन दिया; किन्तु विश्वास नहीं होता था अपने भाग्यपर। जीमें आता था, क्या सचमुच वह अवसर भी आयेगा, "जब इन नयनोंसे देखूँगा मैं वह गिरिवर प्यारा?" बस, रह-रहकर यही विचार उठता था।

आखिर वह स्वर्ण-संयोग भी आ पहुँचा—इसी सन् १९३३ की गर्मीकी छुट्टियोंमें। मेरे पास खबर आई कि छपरेसे एक बड़ी पार्टी बदरीनाथ जा रही है—राय साहब बाबू शुकदेव नारायण डिप्टी की। वे रिश्तेमें मायके चाचा लगते हैं, और उन्हींके साथ वे तीनों धाम घूम आई थीं। इस बार भी वे उन्हींके साथ जाना चाहती हैं। क्या मैं भी जा सकूँगा? अवश्य। खासकर जब तिथि अनुकूल हो, क्योंकि ११ मईको पटनेसे प्रस्थान करनेकी बात थी।

मैं यूनिवर्सिटीकी चौकीदारीसे फ़ुर्सत पाकर, परीक्षाफल इत्यादि सब आफिसको सौंपकर, सीधे पटने गया। वहाँ मालूम हुआ, बात पक्की है। छपरे गया डिप्टी साहबसे ट्रेन इत्यादिका निश्चय करनेके लिए। फिर मुज़फ़्फ़रपुर गया अपने बड़े भाई श्री राजरंजनप्रसाद सिंहजीसे विदा होने।

जब मुज़फ़्फ़रपुरमें अपने परिवारवालोंसे विदा होकर चला, उसी समय मालूम हुआ, मानो यात्रा शुरू हो गई। शामका

समय था। घाटवाली ट्रेन धीरे-धीरे अपनी मतवाली चालसे झूमती हुई पलेज़ाकी ओर जा रही थी। बाहर सुन्दर चाँदनी खिली हुई थी; किन्तु मेरा ध्यान उस ओर न था। मेरा मन तो उस स्वर्गीय प्रदेशका कल्पित चित्र अपनी आँखोंके आगे खींच रहा था, जिसकी सुषमापर मोहित होकर न-जाने किस कालसे हमारे अनेकानेक धर्मप्राण, प्रकृति-उपासक, बराबर जाते ही रहते हैं। मेरे मनमें भावोंका उद्रेक हुआ। मैं गुनगुनाने लगा—

अरे बटोही, चल उस ओर,
प्रकृत नटी जहँ नटवरके गुण गाती है हो प्रेम-विभोर।
जहाँ सुनाती है विहगावलि नित उठ मीठी तान,
कुसुमावलि सूनेमें करती जहाँ सतत मधु दान।
मतवाला अलिवृन्द जहाँ लेता मकरन्द बटोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

जहाँ सदा हो मस्त हवा चलती मतवाली चाल,
शीश हिलाकर देते तरुवर पत्तोंसे मृदु ताल।
शीतल पवन जहाँ देता है कलियोंको झकझोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

मेघावलि उड़ती-फिरती है जिसके चरण समीप,
जहाँ चमककर चपला अनुछन दिखला जाती दीप।
उमड़-उमड़कर जहाँ कभी घिर आते हैं घनघोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

पथके पथरीले विघ्नोंको कर विदीर्ण सहरोष,
जहँ अनन्तकी ओर भागती है सरिता बेहोश।
विजय-गर्वमें करती हैं मतवाली लहरें शोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

अचल तपस्वी-से जहँ गिरिवर पाकरके सुनसान,
शान्त मौन हो करते हैं उस निर्विकारका ध्यान।
एक भावसे हिम आतपमें करते तपस कठोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

ऊँची हिमकी चोटीपर ऊषा आकर मुसकाती,
रविकी किरणें जगमग करतीं, ज्योत्स्ना ज्योति बढ़ाती।
शीश उठाकर सदा चूमता है जो नभके छोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

भागीरथी जहाँ करती है निशि-दिन मंगल-गान,
मन्दाकिनी अलकनन्दा करतीं सप्रेम आह्वान।
आओ चलकर लेवें उनके जलके विमल हिलोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

श्री बद्रीकेदार जहाँपर करते हैं विश्राम,
चलो आज देखें प्रभुका प्रिय दिव्य रम्य वह धाम।
सफल जन्म कर लें पा करुणामयकी करुणा कोर।
अरे बटोही, चल उस ओर।

मैं आनन्दातिरेकसे विभोर हो उठा। महेन्द्रू पहुँचते-पहुँचते यह गीत तैयार हो गया। पटने पहुँचकर उसे अपनी दिनचर्यामें उतार लिया।

[२]

पटने पहुँचकर मैं यात्राकी तैयारीमें लग गया। मुज़फ़्फ़रपुरमें ज़िला स्कूलके हेडमास्टर बाबू कालिकाप्रसाद सिंहसे यात्रा-विषयक बहुतसी बातें ज्ञात हो चुकी थीं। वे दो बार बदरीनाथकी यात्रा कर चुके थे। उन्होंने बताया था कि यात्राके लिए हल्के कनवासका जूता और रास्तेके लिए एक बड़ी लाठी और छाता आवश्यक है। साथमें कुछ दवाइयाँ भी अवश्य ले लेनी चाहिए। गोपालके पिताजी भी उधर घूम आये थे। उन्होंने मार्गदीपिका भेज दी थी और आवश्यक सलाह भी दी थी।

मैं दवाएँ लेने भिषगाचार्य पं० ब्रजविहारी चौबेके यहाँ गया। उन्होंने अपनी इच्छासे वे सारी दवाइयाँ दे दीं, जिन्हें उन्होंने यात्राके लिए आवश्यक समझा। मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि यदि वे दवाएँ साथ न होतीं, तो मुझे बहुतसी मुसीबतोंका सामना करना पड़ता। उनमें भी खारकी दवा, सर्दीकी दवा और आँवकी दवाने तो बहुतसे यात्रियोंका उपकार किया, और मैं वहाँ एक छोटा-मोटा वैद्य ही बन गया। अमृतधाराकी शीशीने भी बड़ा काम किया। इन सारी दवाओंसे बड़ा सहारा मिला। इनके अ[illegible] मैंने अपनी सुविधाके लिए और भी कुछ सामान ले लिया—हजामतका सामान, शरीरमें लगानेका साबुन, कपड़ा धोनेका साबुन, तैल, छुरी, कैंची, मोमबत्ती, दियासलाई आदि। इस प्रकार सब सामानसे लैस होकर मैं यात्राके लिए बिलकुल तैयार हो गया।

११ मईको हम लोग पटनेसे चले। साथमें थी माँ और सेवा-शुश्रूषाके लिए फेंकू नौकर। ट्रेन थी वही दिनके दस बजेवाली। प्रोग्राम था उस दिन बनारस उतर जानेका।

जिस डिब्बेमें हम लोग सवार हुए, उसमें यात्रियोंका एक और बड़ासा दल था, जो हमारे ही गन्तव्य स्थानकी ओर जा रहा था। कितना बड़ा आकर्षण है भगवान बदरीविशालका!

उस ट्रेनमें न-जाने कितनी बार आया-गया हूँ; किन्तु इस बार हृदयके भाव कुछ अजीब थे। वे ही चिरपरिचित स्थान नवीन-से प्रतीत होते थे। खासकर जब राजघाटके पुलपर पहुंचकर मैंने पतित-पावनी गंगाकी निर्मल जलधारा देखी, उस समय एक अजीब भावका उद्रेक हुआ। मैं मन-ही-मन गुनगुनाने लगा। साथ ही दिनचर्याके पृष्ठ रँगने लगा। मेरे वे टेढ़े-मेढ़े अक्षर अब भी उस हिलती ट्रेनकी याद दिला देते हैं। मैं गंगाको उद्देश्य करके लिख रहा था—

"अरी देवि, बतला दे क्या तू उसी देशसे आती है,
जिसकी छविकी छाया मेरे मानसको ललचाती है।
मम मानस-नयनोंके सम्मुख आता है तब पितृ-प्रदेश,
हिम-मडित, वनराजि सुशोभित, सौम्य, शाम्य, सुन्दर वह वेष।
तजकर वह स्वर्गीय विभव क्यों मर्त्यलोकको आई है,
नीची पंकिल भूमि बोल क्यों यों तेरे मन भाई है?
अथवा तेरे यों आनेका है कोई कारण गम्भीर,
जिससे प्रेरित हो आती है विह्वल-सी तू परम अधीर।
भूल पितृ-गृहके सारे सुख पगली-सी हो प्रेम-विभोर,
उतावली-सी सुध-बुध खोकर जाती है यों किसकी ओर?
अथवा हम सन्तप्त जनोंके हरनेको सारे सन्ताप,
विभवोंसे मुँह मोड़ दूसरों हित भूतलपर आती आप।

× × ×

जाता हूँ तेरे पीहरको, कह, जो कहना हो सन्देश,
तेरी बातें सुननेको आकुल होगा तब पितृ-प्रदेश।
तेरे सुख-दुखकी सब गाथा जाकर वहाँ सुनाऊँगा,
नानिहालके नाते मैं भी कुछ तो आदर पाऊँगा।"

अन्तिम लाईनपर मुझे स्वयं हँसी आ गई; किन्तु हास्यास्पद होनेपर भी उस कल्पनाने बहुत-कुछ सहारा दिया। आखिर गंगा-मैयाका पितृ-प्रदेश हमारा ननिहाल नहीं, तो और क्या है?

उस दिन बनारस ही उतरा। चिर-अभ्यासानुसार बनारस छावनीपर उतरनपर जब गाड़ीवालेने पूछा, तो मुँहपर नगवाका ही नाम आया। आखिर उसी घरमें आया, जहाँ आज भी रहता हूँ; किन्तु उस दिन वहाँ बिलकुल यात्रीके रूपमें ठहरा।

दूसरे दिन ता० १२-५-३३ को दशाश्वमेध घाटपर स्नान किया और भगवान विश्वनाथके दर्शनकर फिर स्टेशन आया। देहरा-एक्सप्रेससे जाना था। थोड़ी ही देरमें वह भी आ पहुँची; पर भीड़ इतनी थी कि मुश्किलसे खड़े होनेकी जगह मिली। आगे भी आरामकी जगह मिलेगी, ऐसी आशा न थी, इसलिए जौनपुरमें ही थर्डसे इंटरमें आ गया।

वहीं डिप्टी साहब शुकदेव बाबू मिले। इन्स्पेक्टर पं० रामजन्म तिवारी और बाबू ब्रह्मदेव सिंह वकील भी उनके साथ थे। वे सभी उसी ट्रेनसे बदरीनाथको जा रहे थे; किन्तु मुझे उनका पता न था। लखनऊमें पं० जनकलाल झा, स्टेशन-मास्टर छपरा, हम लोगोंके साथ हुए। ट्रेनमें ही बदरीनारायणके पंडे भी मिल गये। इन लोगोंको यात्रियोंकी गन्ध-सी मालूम हो जाती है। इनका यही रोज़गार है, इसीलिए शायद अभ्यासानुसार इन्हें यात्रियोंको पहचाननेकी शक्ति आ जाती है। बड़ी कठिन होती है इनकी जिरह। क्या कोई वकील जिरह करेगा।

१३ के सुबह हम लोग हरद्वार पहुँचे। गंगा-तटपर ही एक मकानमें ठहरे—पक्के यात्रीके समान। सामने गंगा घहरा रही थी—

तू घहर - घहर घहराती है,
क्यों इतना शोर मचाती है,
किन बाधाओंसे विह्वल हो पागल-सी भागी जाती है?

वह सुन्दर नेपाल

श्री धर्मवीर, एम० ए०

अपने निराले-से गहरे फ्राई-पैनमें कुली अपना खाना बना रहा था। सोनेके बिस्तरपर कम्बल ओढ़े मैं उसे देख रहा था। तीन पत्थरोंके दर्मियान आग जलाकर उनके ऊपर उसने फ्राई-पैन रखा था। उसके हैंडलको वह अपने बाएँ हाथसे पकड़े हुए था। जब पानी कुछ गरम हो गया, तो उसने उसमें मक्केका आटा डाल दिया, और एक पतली-सी लकड़ीसे वह उसे लगा हिलाने। थोड़ी देरमें कुछ पानी जज्ब हो गया, कुछ उड़ गया। भापसे बड़ी सोंधी सुगन्धि निकल रही थी। देखनेवाले यात्रीको हलवा याद आ जाता था।

अपने साथीसे मैंने पूछा—"क्यों साहब, यह क्या कर रहा है ?"

"क्या कर रहा है ? भई, अपने लिए खानेका इन्तज़ाम कर रहा है और क्या कर रहा है ?"

मेरे देखते-देखते ही कुलीने फ्राई-पैनको आगसे नीचे उतार लिया। दो मिनटके बाद उसने भोग लगाना भी शुरू कर दिया। उस आटेके (जो उसे हलवेसे ज्यादा मज़ेदार मालूम हो रहा था) गोले बना-बनाकर वह मुँहमें डालने गला। बीचमें कभी-कभी वह पास रखी सूखी लाल मिर्चको दाँतोंसे कुतर लेता।

हमारे हेमबहादुरका यह 'ब्रेकफ़ास्ट' था।

बिस्तर बाँधकर जब वह उसे पीठपर उठा चुका, तो मैंने आहिस्तेसे पूछा—"अब नेपाल कितनी दूर है ?"

हेमबहादुर हिन्दुस्तानी समझ लेता था ; लेकिन बोल न सकता था। एक सेकेंड खाँसनेके बाद नेपालीमें कहने लगा—"कती हो, कती हो ? थाह छैन। आज पुग्नु पर्छ।"

मैं इनका कुछ मतलब न समझ सका। मेरी हैरानीको देखकर मेरे मित्रने कहा—"कहता है, '(नेपाल) कितना है, पता नहीं है। आज (नेपाल) पहुँचना ज़रूर है।' "

× × ×

शाम हो गई थी। कुछ-कुछ अँधेरा भी हो रहा था। तो भी अभी तक हम नेपालकी राजधानीमें नहीं पहुँचे थे। पूछनेपर मेरे साथीने बताया कि अभी नेपाल ढाई-तीन मील दूर है। हम एक छोटीसी पहाड़ीपर से जा रहे थे (यह पहाड़ी नेपालके रास्तेमें शायद अन्तिम है)। दूर, वृक्षोंके बीच, मुझे दिवालीके-से दीये नज़र आये। मैं हैरान था कि दिवाली हुए तो अभी कुछ ही मास हुए हैं, फिर यह दीये कैसे ? शायद यहाँ दिवाली रानी देरसे पहुँची हैं। इस समय हेमबहादुरने मेरी मदद की ; कहा—"हो हो, यही तो नेपाल छ: (हाँ हाँ, यही तो नेपाल है)।"

"अरे, इतनी बत्तियाँ कहाँसे आ गई हैं ?"—मैंने पूछा।

"हजूर, बिजुली-बत्ती छन।"—हेमबहादुरने अपनी छोटी-छोटी आँखोंसे हँसीकी ज्योति निकालते हुए कहा।

यह रात हमने थानकोटमें गुज़ारी। यहाँसे नेपाल सिर्फ़ डेढ़ मील है।

× × ×

मुँह-अँधेरे हम थानकोटसे चल पड़े। आज हेमबहादुरने अपना 'ब्रेकफ़ास्ट' नहीं खाया था। उसने ख़याल किया होगा कि आज तो नेपालमें ही पहुँचकर माल उड़ाऊँगा।

भटमास (भुने राजमाष) और 'ढींड़ो' (मक्केका वह नमकीन हलवा) खाते-खाते जी भी उकता गया होगा।

सूर्य निकलते-निकलते हम नदीके किनारे जा पहुँचे। कुछ देर हमें पुलिसकी चौकीपर लग गई। नाम और पता बताया। पुलसे पार होकर हम राजधानीके अन्दर दाखिल हुए। नगरके इस भागका नाम 'काठमाडी' अर्थात् 'लकड़ीका वर' है। काठमाडी बिगड़कर काठमांडव हो गया है। नेपालकी राजधानीका नाम केवल नक्शोंमें ही काठमांडु है, या फिर डाकखानेवालोंने 'काठमांडु'की मुहर बना रखी है। बस, इनके अतिरिक्त नेपालमें काठमांडु नाम कोई नहीं जानता।

एक ढक्कीपर चढ़ते हुए मैंने देखा कि सड़कके दोनों तरफ़के मकान कुछ विचित्र ढंगके बने हैं। हरएक मकानका ऊपरका हिस्सा ऐसा दिखाई देता था, जैसे बर्माका कोई बौद्ध-मन्दिर हो। दूकानें खुल गई थीं। अक्सर दूकानदार मर्द थे, लेकिन कहीं-कहीं स्त्रियाँ भी बैठी हुई थीं ; पर इस समय सबसे अधिक मनोमोहक दृश्य तो रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने भोलीभाली ललनाओंका था, जो अपने-अपने हाथोंमें पूजाकी सामग्री और छोटी-छोटी सुन्दर टोकरियाँ लटकाये मन्दिरोंको जा रही थीं बहुत तेज़ीके साथ। सिर प्राय: सभीके खुले हुए। जिस किसीने कपड़ा ओढ़ रखा था, वह सम्भवत: हवाके कारण।

इतनेमें हम एक बड़े बाज़ारमें से गुज़रे। इसके एक तरफ़ बड़ी-बड़ी ऊँची इमारतें थीं, जो प्राचीन कालकी बनी मालूम देती थीं। आजकल इनमें नेपाल-गवर्नमेंटके कई दफ्तर हैं। आसनटोलके चौकसे निकलकर हम सीधे टुंडीखेल* के मैदानमें पहुँचे। हरा मखमली लिबास पहने यह ख़ूबसूरत मैदान क़रीब डेढ़ फ़र्लांग चौड़ा और डेढ़ मील लम्बा होगा। इसके गिर्द थोड़े-थोड़े फ़ासलेपर नेपालके महामंत्रियोंकी धातुकी मूर्तियाँ खड़ी हैं। मैदानमें हर रोज़ ड्रिल होती है। नेपालकी फ़ौज सुबह-शाम कई घंटे तक यहाँ परेड करती है।

* 'टुंडीखेल' शब्द क्या अंगरेजी शब्द 'टूर्नी' और हिन्दी 'खेल' का समास है? —लेखक

सड़ककी बाईं ओर रानीपोखरी नामका तालाब है—बड़ा पक्का और मज़बूत। इसके ठीक बीचोबीच एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसमें जानेका रास्ता दरबार हाई-स्कूलके सामनेसे है। स्कूलकी इमारतसे लगा हुआ टाउन-हाल है। इसमें भी इंजीनियरिंग आदि सरकारी महकमोंके दफ्तर हैं। स्कूलके सामने रानीके तालाबकी दूसरी तरफ़ डिग्री-कालेज है। इमारत बड़ी शानदार है। निचले हिस्सेके कई कमरोंमें नेपालकी वह बड़ी-भारी लाइब्रेरी है, जिसमें संस्कृत, पाली आदिकी हज़ारों हस्त-लिखित पुस्तकें संग्रहीत हैं। इसीको देखनेके नेपालमें प्रतिवर्ष फ्रांस, इटली आदि देशोंके विद्वान आया करते हैं। इस पुस्तकालयके सामने (कालेजकी इमारतके अन्दर ही) घंटाघर है। महाराजा वीर शमशेरने इसे बनवाया था। यह घंटाघर हर पन्द्रह मिनटके बाद जब अपनी सुरीली आवाज़में टन-टन करता है, तब ऐसा मालूम होता है कि अपने निर्माता वीर शमशेरकी याद करता है। इसी महामंत्रीने* राजधानीमें वाटर-वर्क्स लगवाये थे। इसे नेपाली भाषामें 'जलधारा' कहा जाता है। कालेजके साथ ही एक तरफ़ मस्जिद है, दूसरी तरफ़ तकिया। ये दोनों ही नेपालके शासकोंकी उदारताके प्रमाण हैं। मस्जिदसे परे सड़कके पार बिजलीका सब-स्टेशन भी है। इलेक्ट्रिक पावर-हाउससे, जो शहरसे चार-पाँच मील परे है, पहले इसी छोटे स्टेशनमें बिजली आती है। यहाँसे उसे सारे नगरमें पहुँचाया जाता है, और चीनी आदिके कुछ कारख़ाने भी उसीसे चलते हैं।

× × ×

सामान वग़ैरह अपने इंजीनियर दोस्तके मकानपर रखकर हम घोड़ेपर सैरके लिए निकले। सबसे पहले पशुपतिनाथके दर्शनको गये। यह मन्दिर शहरके बाहर नदीके किनारेपर बना हुआ है। इसके रास्तेमें

* नेपालमें 'प्राइम मिनिस्टर' को 'महाराज' या 'श्री ३ सरकार' और 'हिज मेजेस्टी दि किंग' को 'अधिराज' या 'श्री ५ सरकार' कहते हैं। —लेखक

कितने ही दूसरे मन्दिर हैं—गणेश, महाकाल आदि विभिन्न देवताओंके। कलाकी दृष्टिसे इनमें से कई बहुत सुन्दर हैं। प्राय: सभीपर बौद्ध-कलाकी मुहर लगी हुई है। कुछएकमें तो वाममार्गके चिह्न भी पाये जाते हैं। पशुपतिनाथके मन्दिरका अहाता बहुत ही बड़ा है। उसमें अनेक साधु, ब्रह्मचारी और महन्त रहते हैं। गवर्नमेंटकी ओरसे मन्दिर और उसके आश्रितोंको ख़र्च मिलता है। नेपालमें एक सामाजिक रीति है कि जब कोई बड़ा आदमी सख़्त बीमार हो जाता है, तो उसे नदीके किनारे इस मन्दिरमें लाया जाता है। यहाँ ही वह प्राण-त्याग करता है। इस बातको वहाँके लोग बहुत अच्छा समझते हैं।

पशुपतिनाथके मन्दिरसे लौटकर हमने खाना खाया। कुछ देर आराम करनेके बाद दोपहरको 'सिंह-दरबार' देखा। नेपाली भाषामें 'दरबार' का अर्थ महल है, इसलिए सिंह-दरबारका मतलब हुआ शेर-महल। यह प्रासाद टुंडीखेलके मैदानके उत्तरमें एक ढलवाँपर बना हुआ है, और महामन्त्रीके लिए सरकारकी ओरसे बनाया गया निवास-स्थान है। हर समय फाटकपर सख़्त पहरा रहता है। अन्दर बाग़ और बग़ीचे हैं। स्वयं राजप्रासाद बहुत आलीशान है। कहते हैं कि इसके अन्दर बजाय मर्दोंके औरतोंका पहरा रहता है, और ये पहरेदार औरतें हथियारबन्द होती हैं।

जनसाधारणके लिए महलके फाटक हर रोज़ सुबह खुले होते हैं। महाराज ऊपर महलपर बैठते हैं, नीचे फ़र्यादी और अफ़सर खड़े रहते हैं। इस समय शहर या राज्यका कोई भी मनुष्य किसी भी सरकारी अफसरके ख़िलाफ़ शिकायत कर सकता है। महाराजको शिक़ायत वाजिब मालूम हुई, तो वे उसी समय तहक़ीक़ातका आदेश देते हैं; लेकिन प्राय: देखा जाता है कि कोई मनुष्य बिना किसी उचित कारणके शिकायत नहीं करता। पिछले एक महामन्त्री श्री चन्द्रशमशेरके सम्बन्धमें सुना गया है कि उन्हें विभिन्न मामलोंका बहुत ही ज्यादा ज्ञान था, और वे प्राय: कुछ ही क्षणमें मामलेकी तह तक पहुँच जाया करते थे। नीचे खड़े क्लार्क महाराजकी आज्ञाओंको झटपट लिखते जाते हैं। यह दृश्य देखते ही बनता है। ऐसा भी देखा गया है कि जिस मनुष्यको पुलिसने धोखेबाज़ समझकर धक्के दिये, महाराजने उसे इनाम दिया और कई अफ़सरोंपर जुर्माना कर दिया।

सिंह-दरबारके ठीक सामने टुंडीखेलकी दूसरी ओर सरकारी अस्पताल है। यहाँपर ऐलोपैथिक दवाइयाँ मुफ्त भी मिलती हैं और मोल भी बिकती हैं—ग़रीबोंको मुफ्त, अमीरोंको मोल। अस्पताल दुमंज़िला है। इनडोर और आउटडोर मरीज़ोंके इलाजके लिए अच्छा प्रबन्ध है। अस्पतालके साथ ही आयुर्वेदिक औषधालय और चिकित्सालय भी हैं। इनमें प्रतिदिन सैकड़ों बीमार आते हैं।

नेपालमें जहाँ बिजली पैदा होती है, वह जगह भी देखने क़ाबिल है। राजधानीसे चार-पाँच मील परे ऊँचाईपर एक गाँव फरफिंग है। इसके पास लोहेके बड़े-बड़े नलोंके द्वारा एक बड़े भारी तालाबमें पानी जमा किया जाता है। तालाबसे काफ़ी दूर निचाईपर पावर-हाउस है, क्योंकि पानी ऊपरसे नीचे बहुत ज़ोरके साथ आता है, इसलिए इस आवेगकी सहायतासे मेशीन चलाना बहुत आसान हो जाता है। पावर-हाउसके पास ही एक नदी बहती है, जिसमें बिजली-घरका पानी गिरता है। यहाँ काम करनेवाले इंजीनियरोंके क्वार्टर एक ऊँची पहाड़ीपर बने हैं। स्थान बहुत सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद है।

शहरके इर्द-गिर्द कई प्रसिद्ध मन्दिर हैं, जहाँ ख़ास मेलोंके दिनोंमें ख़ूब भीड़भाड़ होती है। लाखों मनुष्य आते हैं। इमारतोंकी दृष्टिसे पाटन-नगर बहुत सुन्दर है। राजधानीके बाद इसका नम्बर दूसरा है। मन्दिर, मकान आदि अधिकतर बौद्ध-शैलीपर बने हैं। नेपालकी कलाओं—स्थापत्य-कला, चित्र-कला तथा संगीत—पर बौद्धधर्मकी जो छाप लगी है, उससे नेपालकी अपनी कला तथा उसका व्यक्तित्व बिगड़ने नहीं पाया, बल्कि

और भी ज्यादा सुन्दर बन गया है। पाटनके बाज़ारोंमें पीतल, लकड़ी और हाथी-दाँतकी कलाकी सजीव मूर्तियाँ बनानेवाले अपनी-अपनी दूकानें लगाये बैठे हैं। इनके बैठने-उठने, लिखने-पढ़ने और कारोबारके तरीक़े पूर्वी हैं। बिरली ही कोई बात पश्चिमी मिले। नेपालियोंने जो भी चीज़ें पश्चिमसे ली हैं, उन्हें अपने अन्दर जज्ब कर लिया है। यही कारण है कि अब वे पश्चिमी नहीं रहीं, बल्कि पूर्वी और नेपालकी बन गई हैं।

पाटनके अतिरिक्त नेपालका एक और बड़ा शहर भादगाँव है। यहाँकी दर्शनीय वस्तुएँ केवल प्राचीन इमारतें और कुछ बौद्ध-मन्दिर हैं। राजनीतिक दृष्टिसे यह नगर इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यहाँपर नेपाल-सरकारने पुलिस आदिका विशेष प्रबन्ध कर रखा है। नेपालकी यह एक हद है।

नेपालके संस्कारोंको यदि कोई एक वाक्यमें बन्द करना चाहे, तो कह सकता है कि वहाँपर अभी तक प्राचीन हिन्दुत्त्व शेष है। इस देशके जनसाधारणमें पश्चिम तो कहीं नामको भी नहीं मिलता। हाँ, अमीरोंके घरोंमें केवल कपड़ों और फर्नीचरमें ही पश्चिम दिखाई देगा, बल्कि शायद बातचीतमें भी। नेपाली जनसाधारणमें तो अब तक भी वह पुराना सन्तोष-भाव पाया जाता है, जो एक दृष्टिसे मनुष्यके जीवनको सुखी बनाये रहता है। भालोंपर तिलक लगाये, कानोंसे फूल लटकाये नेपाली किसान और मज़दूर जब हर दूसरे-चौथे दिन झाँझ और ढोलकियाँ बजाते और सुरीले 'कोरस' गीत गाते हैं, तो उनके जुलूसोंसे उसी चीज़की वर्षा होती है, जिसकी भारतके हिन्दुओं और हिन्दुस्तानियोंको बड़ी ज़रूरत है। उन गाने-बजानेवालोंकी हरएक गतिसे, चाहे वह हाथकी हो या मुँहकी, सिरकी हो या पाँवकी, जीवन-ही-जीवन टपकता है। कभी इनकी गौ-यात्रा होती है, तो कभी घोड़ा-यात्रा। ऐसा जान पड़ता है कि सालके तीन सौ पैंसठ दिनमें ये लोग तीन सौ छियासठ दिन सिर्फ़ खुशियाँ बनानेमें बिताते हैं; लेकिन कोई यह न समझ ले कि ये लोग सिर्फ़ हँसने-खेलनेमें ही मस्त रहते हैं और काम कुछ नहीं करते। नहीं, जब ये काम करते हैं—और काम करते हैं घरके सभी सदस्य, बच्चे औरतें और मर्द—तो देवोंकी तरह। खेतोंमें प्रायः मुँह-अँधेरे आते हैं, और फिर घरोंमें जाकर ही दिया जलाते हैं; लेकिन कामके ये जादूगर अपनी जीवन-शक्तियोंको बढ़ाना भी ख़ूब जानते हैं। खेतमें धान बो रहे कि बादल घिर आये। ये इकट्ठे मिलकर गाना शुरू कर देते हैं। पानीमें खड़े-खड़े, कमरके बल झुके हुए परिवारके परिवार हाथोंसे धान बो रहे हैं और मुँहसे सुरीले राग निकाल रहे हैं।

× × ×

बलवान पुरुषों, सुन्दर ललनाओं, हँसी और फूलोंके इस देशमें भूचाल आता है। महाराजके महल सिंह-दरबार और घंटाघरको भी चोटें पहुँचाता है। राजधानीके अन्दर कई पुरानी इमारतोंको नुक्सान होता है; लेकिन सबसे ज्यादा नुक्सान जानका होता है। कई सौ स्त्री-पुरुष और बच्चे हाथोंमें पूजाकी सामग्री लिये हुए जहाँके तहाँ रह जाते हैं! ऐसा मालूम पड़ता है कि वे भूचालकी देवीको प्रसन्न करनेके लिए उसकी पूजाको जा रहे थे कि उसने उन्हें वहीं खड़ा कर दिया। शायद इसलिए कि पूजामें कुछ देर हो गई थी।

मुन्नू-चुन्नू

यह कहानी अमेरिकाके प्रसिद्ध गल्प-लेखक विलियम जेम्स स्टिलमैनकी रचना है। मानव-हृदयके निःस्वार्थ प्रेम और सहानुभूति जैसी उच्च कोमल भावनाएँ केवल मानव-हृदय तक ही परिमित नहीं हैं। गिलहरी जैसे छोटे प्राणियोंमें भी उनका अस्तित्व है। लेखकने इसी बातको इस कहानीमें बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकट किया है। कहानी पढ़नेसे जान पड़ता है कि यह लेखककी आपबीती घटना है। अनुवादकी सरलताके लिए भारतीय नाम दिये गये हैं, और एक-आध स्थानमें कुछ नाममात्रका परिवर्तन किया गया है।

—अनुवादक

महान हिमालयके पादतलके समीप बसी हुई कलिम्पोंगकी पुरानी बस्ती मुझे बहुत प्रिय है। मैं अपनी गरमीकी छुट्टियाँ वहीं बिताता हूँ। कलिम्पोंगमें रहते समय एक दिन एक भोटिया लड़का पहाड़ी गिलहरीका एक बच्चा बेचनेके लिए लाया। बच्चा बहुत छोटी उम्रका था, शायद अभी दुधमुँहा ही रहा होगा। मैदानकी मामूली गिलहरियोंसे उसका रंग कुछ ज्यादा गहरा भूरा था, और उसके कान और दुम काली थी। जब वह दूध पीकर सोया, तो मुझे पहले भ्रम हुआ कि यह गिलहरी ही है या पहाड़ी चूहेका बच्चा है। लेकिन परीक्षा करनेपर उसके पंजोंमें आदमियोंके हाथों जैसी लचक और काम करनेकी शक्ति देखकर उसकी जातिमें कोई शक न रहा, और यह निश्चय हो गया कि वह गिलहरी ही है। बचपनमें मैं एक गिलहरी पाल चुका था, इसलिए उस समयकी याद करके मैंने उसे ख़रीद लिया, और उसका नाम रखा मुन्नू। जिस क्षणसे वह मेरे पास आया, उसने मुझपर पूर्ण विश्वास किया। वह उसी क्षणसे ऐसा पालतू बन गया कि यह जान ही न पड़ता था कि वह मेरी क़ैदमें है। जब कोई जंगली जानवर आदमीकी क़ैदमें आता है, तो पालतू बननेके पहले कुछ दिन तक वह एक प्रकारके मूक विद्रोहकी अवस्थामें रहा करता है। उस समय उसके हृदयमें आज़ादीकी इच्छा रहा करती है, इसलिए इस बातकी सावधानी रखनी पड़ती है कि वह भागने न पावे। मगर मुन्नूके साथ यह नौबत कभी आई ही नहीं। शुरूसे ही वह मेरे पास दूध-रोटीके लिए आने लगा और मेरी जेबमें सोने लगा। जब मैं उसे पुचकारता और दुलराता, तो वह उस दुलारका आनन्द इस तरहसे लेता था, मानो वह मेरे ही यहाँ पैदा हुआ हो। एक तन्दुरुस्त गिलहरी जितनी सफ़ाईसे रहती है, उतनी सफ़ाईसे शायद ही कोई जानवर रहता हो। मुन्नूके पालने (गहवारे) के लिए मैंने जो छोटीसी डलिया बना दी थी, मुन्नूने शीघ्र ही उससे इस्तीफ़ा दे दिया, और वह मेरे बिछौनेकी तहमें सोने लगा। कभी-कभी वह मेरे तकियेपर आ जाता और मेरे गालपर सो रहता। उसने कभी यह जाना ही नहीं कि पिंजड़ा कैसा होता है। हाँ, जब मैं यात्रा करता था, तब पिंजड़ेकी ज़रूरत होती थी। लेकिन तब भी अकसर वह मेरी जेबमें ही रहता था। यहाँ तक कि होटलमें मैं जब टेबिलपर खानेको बैठता, तब भी वह मेरे साथ ही रहता था। खाते समय जब मैं उसे निमन्त्रित करता, तो वह मेज़के कोनेपर बैठकर अपने हिस्सेकी रोटी इस शानसे खाता था कि होटलके तमाम लड़के और यात्री उसे बड़े चावसे देखते थे। इस प्रकार मेरी तमाम यात्राओंमें वह मेरे साथ रहा करता था। उसे गुनगुनी मीठी चाय पीनेका ऐसा शौक हो गया, और मैंने उसके इस शौकको पूरा करनेकी इतनी आज़ादी दी कि थोड़ी ही उम्रमें मुझे उसे खो देना पड़ा। सुबह कलेवेके वक़्त जैसे ही मैं उसे अपनी मेज़पर बैठाता, वैसे ही वह मेरे प्यालेकी ओर दौड़ता और जब चाय उसे झुलसानेके लिए काफी गर्म होती थी, तभी वह उसमें अपनी नाक डाल देता था। उसके इस विचित्र शौक़का कारण मैं कभी न जान पाया। उसे मेरे कमरेमें घूमनेकी पूरी आज़ादी थी ; लेकिन उसकी सबसे प्यारी जगह थी मेरी

लिखने-पढ़नेकी मेज़, सो भी उस वक़्त, जब मैं काम करने बैठता था। जब मैं उसे खानेके लिए मूँगफली देने लगा, तब वह मूँगफलियोंको मेरी किताबोंमें छिपा देता और फिर उन्हें खोजता—ठीक वैसे ही, जैसे बच्चे अपने खिलौनेके साथ करते हैं। अकसर चलते-चलते मेरा टाइपराइटर रुक जाता, जब मैं इसका कारण खोजता, तो देखता कि उसके यन्त्रमें कोई मूँगफली अड़ी हुई है। जब मुन्नू इस लुका-चोरीके खेलसे थक जाता, तो मेज़के किनारेपर आकर अपनी मूँड़ी हिलाता, जिसके मानी यह होते थे कि वह मेरी जेबमें जाना चाहता है, या कमरेमें इधर-उधर दौड़ना चाहता है। उसने शीघ्र ही इशारोंकी एक भाषा बना ली, जिसके द्वारा वह अपनी गिनी-चुनी आवश्यकताओंको—जैसे भूख, प्यास, नींद अथवा कमरेके सबसे बड़े फर्नीचरपर चढ़नेकी इच्छाको—प्रकट करता था। वह शुरूसे ही मुझसे बहुत हिल गया था, और शीघ्र ही लाड़-प्यारमें बिगड़े हुए बच्चोंकी तरह हो गया। उसका प्यारसे मूँड़ी हिलाना देखकर मुझसे इनकार न होता था, और वह जो कुछ चाहता था, मैं उसे पूरा कर देता था। मैं उसे अपने साथ चाय पिलाता और उसकी मूँगफलियाँ छीलता था—संक्षेपमें यह कि मैं, जहाँ तक मेरी समझमें आता था, वहाँ तक मैं उसे सुख देनेकी कोशिश किया करता था।

उसके आनेके थोड़े ही दिन बाद मैंने सोचा कि आसपास यदि कहीं उसके लिए कोई साथी—कोई मादी गिलहरी—मिल सके, तो बड़ा अच्छा हो। मैंने सुना कि तिस्ता नदीके उस पारके गाँवमें पकड़ी हुई कोई गिलहरी बिकाऊ है। इसपर मैंने अपने लड़केको भेजा कि अगर वह मादा हो, तो उसे खरीद लाओ। इत्तिफ़ाक़से वह भी नर गिलहरी ही निकली, फिर भी मेरा लड़का उसे खरीद लाया। वह मुन्नूसे उम्रमें दो महीने बड़ा था; लेकिन बहुत तेज़ और चंचल जानवर था। वह अनिच्छुक क़ैदी था। उसका रंग लाल था। मैंने उसका नाम चुन्नू रखा। वह इतना ही पालतू हो पाया था कि हाथसे चारा ले सके; लेकिन उसे गलेमें पट्टा डालकर डोरीसे बाँध रखनेकी ज़रूरत थी। अपने शरीरमें हाथ लगानेका वह अपनी शक्ति-भर विरोध करता था। इस नन्हें-से प्राणीको रस्सीमें बाँध रखना एक प्रकारका अत्याचार था, क्योंकि किसी जानवरको पिंजड़ेमें बन्द करके रखना मुझे एकदम नापसन्द है, इसलिए मैंने उसका पट्टा काट दिया और उसे अपने कमरेमें छुट्टा छोड़ दिया, जहाँ वह अनिच्छासे मुन्नूके साथ रहता था। इस अध-पालतू और असन्तुष्ट जन्तुको क़ैदमें रखना उसकी अपेक्षा मुझे ज्यादा अखरता था। पहले तो मेरे मनमें आया था कि उसे उसके जन्म-स्थान जंगलमें भाग्यके भरोसे छोड़ दूँ; लेकिन फिर सोचा कि यह ठीक न होगा, क्योंकि उसने आदमीके हाथसे चारा लेना सीख लिया है, इसलिए भूखके पहले ही हमलेमें वह चारेके लिए किसी अजनबी आदमीके पास दौड़ेगा, क्योंकि आदमीके हाथसे चारा पानेका वह आदी हो गया है। नतीजा यह होगा कि या तो गाँवका कोई शरीर लड़का लाठी मारकर उसका भेजा निकाल देगा, अथवा वह मेरी क़ैदसे भी बदतर क़ैदमें फिर जा फँसेगा। उसकी माका पता ही न था, और वह अभी बिलकुल बच्चा ही था। इसलिए मैंने यही निश्चय किया कि उसे अपने ही पास रखूँ और यथासम्भव उसे सुख पहुँचाऊँ। अगर मैं उसे छोड़ देता—जैसा कि मैंने सोचा था—तो मुझे एक दुःख न उठाना पड़ता, और यह किस्सा भी न कहना पड़ता।

थोड़े दिनोंकी अपरिचितिके बाद मुन्नू और चुन्नूमें इतनी मित्रता हो गई, जितनी दो विभिन्न प्रकृतियोंवाली गिलहरियोंमें हो सकती है। मुन्नू बड़ा यारबाश था, वह हिले-हुए छोटे कुत्तेकी भाँति मित्रतापूर्ण बर्ताव रखता था; परन्तु चुन्नू हमेशा पज़मुर्दा रहता था और बेतकल्लुफ़ीके बर्तावको स्वीकार करनेके लिए जल्द तैयार न होता था। मुन्नू

मित्र-भावसे चुन्नूकी ओर बढ़ता भी, तो चुन्नू पहले तो देखी अनदेखी कर जाता था, फिर यदि उसका उत्तर भी देता, तो अनिच्छासे। मालूम होता था कि मुन्नू लाड़से बिगड़ा हुआ लड़का हो और चुन्नू उसका बड़ा भाई हो, जिसे अनिच्छासे सबके दुलारे छोटे भाईकी बातें सहनी पड़ती हों। मुन्नू बड़ा खिलाड़ी और शरारती था, उसे चुन्नूको सोतेमें तंग करनेमें मज़ा आता था। वह चुन्नूके पंजों, कान, या जहाँ पाता वहाँ धीरेसे काट लेता था। चुन्नू पहले तो जगकर गुस्सेसे गुर्राता, फिर भागकर किसी दूसरी जगह छिप कर सो रहता। दोनोंको मेरे सोनेके बड़े कमरेमें विचरण करनेकी पूर्ण-स्वतन्त्रता थी। हाँ, कमरेका दरवाज़ा ज़रूर हिफ़ाज़तसे बन्द रहता था, क्योंकि चुन्नू हमेशा बाहरके अज्ञात संसारमें निकल भागनेकी ताकमें रहता था। उस बड़े कमरेमें उन्हें आज़ादीसे घूमने, दौड़ने और चढ़ने-उतरनेकी काफी जगह थी। कुछ दिन बाद चुन्नूने भी मुन्नूकी तरह मेरे विस्तरकी तहमें सोनेकी आदत सीख ली, और कभी-कभी वह मुन्नूके साथ मेरे सिरके पास आकर भी सोने लगा। मुन्नूको नींद कम आती थी—शायद चायकी वजहसे—इसलिए जागते समय उसका बँधा हुआ मज़ाक़ था चुन्नूको चुपकेसे काट लेना। चुन्नू इससे परेशान होकर चारपाईसे नीचे उतर जाता और पायेके पास लेट रहता; लेकिन उसे वहाँ ज्यादा देर तक चैन न पड़ती थी। वह फिर ऊपर चढ़ आता और फिर मुन्नूसे मिलकर सो रहता। जब मैं चुन्नूको मूँगफली देता तो मुन्नू इस बातकी इन्तज़ारी करता रहता कि चुन्नू उसे छीले। जब चुन्नू उसे छीलकर खाने लगता, तब मुन्नू दौड़कर उसके मुँहसे मूँगफली निकालकर खा जाता। चुन्नू इस बातको बिना गुर्राये या लड़े-भिड़े ही सहन कर लेता। बात यह थी कि मुन्नूका बर्ताव ऐसा कोमल और प्रेमपूर्ण था कि उसकी किसी बातके लिए इन्कार करना मुश्किल हो जाता था। पहले तो चुन्नू मूँगफलीको ज़रा ज़ोरसे पकड़नेकी कोशिश करता था, बादमें वह उसे हँसी-खुशी छोड़ देने लगा। मैंने कभी उसे इस बातके लिए चुन्नूसे बदला लेते नहीं देखा।

एक ही जातिके पालतू जानवरोंमें किन्हीं दो जानवरोंके स्वभावमें इतना अधिक अन्तर न मिलेगा, जितना मुन्नू-चुन्नूके स्वभावोंमें था। चुन्नू पालतू जीवनकी पहली अवस्थामें अपने ऊपर हाथ फेरे जानेकी नफ़रत कभी दूर न कर सका, इसके विरुद्ध मुन्नू अपने ऊपर हाथ फिरवानेमें खुश होता था।

पहाड़ी गिलहरी स्वभावसे ही भीरु होती है—खरगोशसे भी ज्यादा। मान लीजिए कि गिलहरीको उसका मालिक, जिससे वह बहुत हिली हो, हाथमें लिये है। उसी समय यदि गिलहरी किसी बातसे डर जाय, तो वह बन्धनसे छूटकर भागनेके लिए मालिकके हाथ ही को काट खायगी। चुन्नूकी जंगली प्रवृत्तिके कारण मुझे यात्रामें अपनी इच्छाके विरुद्ध मजबूर होकर उसे पिंजड़ेमें बन्द करके ले जाना पड़ता था। मैंने एक चिड़ियोंके तारवाले पिंजड़ेमें अँधेरा-सा छोटा खाना बनाया, और उसीमें दोनों गिलहरियोंको यात्रामें अपने साथ ले चला। आरम्भिक यात्राओंमें गाड़ी या रेलके चलनेसे चुन्नू एकदम बौखला उठा, मगर मुन्नूपर इसका कोई असर न पड़ा। होटलमें पहुँचकर मैं प्रायः उन्हें अपने कमरेमें छोड़ देता था, जहाँ वे स्वच्छन्दतासे घूमते-दौड़ते और मेज़, कुर्सी आदिपर चढ़ते थे। परन्तु सोनेके लिए वे मेरे कम्बलमें ही आ जाते थे। इन यात्राओंमें चुन्नू मुझसे बहुत-कुछ हिल गया। वह मेरे पास दाने-पानीके लिए आने लगा और मेरे ऊपर चढ़ने लगा। जब मैं हाथ बढ़ाता तो वह मेरे हाथमें आ जाता था, मगर फिर भी उसके बदनको चारों ओरसे मुट्ठीमें पकड़नेसे भागता था, और हमेशा दरवाज़ा खुला पानेकी ताकमें रहता था। कलकत्ते पहुँचकर मैंने अपने पढ़नेके कमरेकी एक खिड़कीका दरवाज़ा बन्द करके उसमें उन दोनोंके रहनेका स्थान बनाया;

मगर उन्हें कमरेमें दौड़नेकी पूरी स्वतन्त्रता थी। चुन्नू जो हमेशा भागनेकी ताकमें रहता था, कभी-कभी दरवाज़ा खुला पाकर बग़लवाले कमरेमें घुस जाता था। फिर भी वह इस नये स्थानमें प्रसन्न था। वह पर्देके डंडोंपर चढ़ता और मेरी किताबोंकी मेज़की यात्रा करता। लेकिन दोनोंके खेलका प्रिय स्थान था मेरी लिखने-पढ़नेवाली मेज़। उसपर दोनोंकी उछल-कूद बन्दरोंकी उछल-कूदसे कम मज़ेदार न थी। सालकी समाप्तिके करीब मुन्नूके स्वभावमें एक आलसीपन आ गया। अब मुझे ज्ञात होता है कि यह आलसीपन उस बीमारीके करण था, जिसकी बदौलत वह हम लोगोंको छोड़कर चल बसा। फिर भी मेरी मेज़ उसका प्रिय स्थान बनी रही। वह मेज़पर आकर चुपचाप पड़ रहता और घंटों मुझे काम करते देखा करता। चुन्नूने भी शीघ्र ही अपने खिड़कीवाले घरसे उतरना और मेरी टाँगोंसे होकर मेज़पर चढ़ना सीख लिया। जब वह पेन्सिल और होल्डर काटते-काटते अथवा किताबोंमें पिछले दिन छिपाई हुई मूँगफली ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक जाता, तब वह उसी राहसे मेज़के नीचे उतर जाता। मगर मैं उसे मुन्नूके साथ अपनी जेबमें रहनेके लिए कभी राज़ी न कर सका। जाड़ेके दिनोंमें मुन्नूको मेरी जेबमें रहना पसन्द था। मेरे शरीरकी गरमी उसे अपने मख़मल मढ़े हुए घोंसलेसे अधिक अच्छी लगती थी। मुन्नूमें कुछ अलौकिक बात थी—एक प्रकारकी अपार्थिव पशु-बुद्धि, जो प्राय: उन्हीं पालतू जानवरोंमें दीख पड़ती है, जिन्हें पुश्तहा-पुश्तसे उसकी शिक्षा दी जाती है। वह अपनी संकेत-भाषामें बड़े धड़ल्लेसे बातें करता था, और हर मौक़ेपर अपनी आज्ञाओंको मनवानेके लिए मुझसे बड़ी शानके साथ आग्रह करता था। उसकी एक बात, जो मेरी स्मृतिसे भुलाये नहीं भूलती, यह है कि वह बड़ी प्यारी अदासे अपने खिड़कीके घोंसलेके किनारे आकर सिर हिलाता था, जिसके अर्थ यह होते थे कि मैं उसे उठा लूँ, क्योंकि उसने देखा कि खिड़कीसे उतरकर और कमरे-भरमें दौड़कर मेरे पास पहुँचनेकी बनिस्बत यह आसान है कि वह सिर हिलाकर मुझे बुला ले। वह तब तक अपना सिर हिलाता रहता, जब तक मैं जाकर उसे उठा न लेता था। मेरे उठा लेनेपर वह अपनी चंचल नाकसे इस तरहकी भाव-भंगी दिखाता था, मानो वह मुस्करा रहा हो। प्रेम-प्रदर्शन अथवा प्रार्थनाके जितने ढंग कोई जानवर दिखा सकता है, वे सब उसे मालूम थे।

इस प्रकार हम दोनों एक दूसरेकी बातें इतनी अच्छी तरह समझने लगे कि मुझे उसकी इच्छा जाननेमें—चाहे वह भोजन या पानीकी हो, अथवा मेरी मेज़पर बैठने या मेरी जेबमें सोनेकी हो—कभी भ्रम न होता था। चुन्नू मुन्नूकी सब बातें सह लेता था, उसकी तमाम शरारतोंको बर्दाश्त कर लेता था। उसे मुन्नूके साथ सच्चा प्रेम भी था। इतना सब होते हुए भी यह प्रत्यक्ष था कि मुन्नू अपने साथीकी अपेक्षा मुझे अधिक चाहता था। अगले जाड़ेमें जब मुझे सर्दी लग गई और कई दिन तक मुझे अपने बिस्तरपर ही लेटा रहना पड़ा, उस समय, मेरी अनुपस्थितिके दूसरे दिन, जब मेरी पत्नी मेरे पढ़नेवाले कमरेमें गई, तो उसने देखा कि मुन्नूकी विचित्र दशा थी—कुछ वैसी दशा, जैसी स्त्रियोंकी हिस्टीरियाके दौरेमें होती है। मुन्नूने बाहर आनेका बड़ा आग्रह किया। मेरी पत्नीको जान पड़ा कि वह मेरे पास आनेके लिए आतुर है, इसलिए वह उसे दोतल्लेपर मेरे कमरेमें ले आई। उसने फौरन अपनी नाकसे मेरे पास जानेका संकेत किया। मेरी पत्नीको कौतूहल हुआ कि देखें यह क्या करता है, इसलिए वह दरवाज़ेपर ही ठिठक रही। इसपर मुन्ने धीरेसे उसके हाथमें काट लिया, जिसके अर्थ यह थे कि वह जल्दीसे उसे मेरे पास पहुँचा दे। जब उसे मेरे बिस्तरपर रखा गया, तो वह बड़े सन्तोषसे मेरे पास कम्बलमें दुबककर पड़ रहा। जितने दिन तक मैं बिस्तरपर पड़ा रहा, उतने दिन तक वह प्रति दिन ऊपर लाया जाता और सारा दिन मेरे साथ बिताता

था। साधारणतः वे दोनों, मखमलसे मढ़े हुए बक्समें अथवा सूखी हुई घासपर साथ-साथ सोते थे, और अकसर ऐसे लिपटकर सोते थे कि कभी कभी यह मालूम न होता था कि वे दो हैं या एक। सोते समय वे ऐसे सुन्दर दीख पड़ते थे कि मेरी लड़कीने अनेक बार उनकी तसवीर बनानेकी कोशिश की; लेकिन सोते समय भी उनकी चंचलता कम न होती थी, और वे कभी इतनी देर तक एक ही स्थितिमें चुपचाप लेटे न रहते थे, जितनी देरमें सन्तोषजनक तसवीर बनाई जा सके। उनकी यह चंचलता यदि कुछ कम होती थी, तो मेरे बिस्तरकी तहमें।

वे अपनी कुछ जंगली प्रवृत्तियोंको भी—जैसे कि अपने सोनेके स्थानको अकसर बदलते रहना—भूल रहे थे, मैंने इसीलिए कई ऐसी चीज़ें बना रखी थीं, जिनमें वे सो सकें; लेकिन उनमें उनके सोनेका प्रिय स्थान था पर्दोंका एक थैला। लेकिन कभी-कभी जब मुन्नू वहाँ न दीख पड़ता, तो वह मेरी मेज़की दराज़में, या रद्दीकी टोकरीमें सोता हुआ मिलता था। जंगलमें गिलहरी हमेशा अपने सोनेका स्थान बदलती रहती है। वह अपने बच्चोंको एक पेड़से दूसरे पेड़में ले जाकर छिपाती है, ताकि वे शरारती लड़कोंकी नज़रसे बचे रहें। मैंने उनके लिए जो घोंसला बनाया था, उसमें लुकने-छिपनेकी काफ़ी गुंजाइश थी, और चुन्नू अपनी प्रवृत्तिके अनुसार बहुत दिनों तक उसमें छिपता रहा। बादमें वह मुझसे इतना हिल गया कि उसे छिपनेकी ज़रूरत न रही। इसी प्रकार जब उन्हें प्रतिदिन काफी भोजन मिलने लगा, तो उन्होंने अगले दिनके लिए भोजन छिपा रखनेकी आदत भी छोड़ दी।

शरतऋतुमें जब बाज़ारमें जैतून (जलपाई) के नये फल आये, तो मैं कुछ फल ले आया। चुन्नूको अपने जन्म-स्थानके इन फलोंको देखकर जो प्रसन्नता हुई, वह बड़ी मर्मस्पर्शी थी। उसने प्रसन्नतासे उसके चारों ओर चक्कर लगाये, और उसे ऊपर-नीचे दाएँ-बाएँ—सभी तरफ़से कुतरनेकी कोशिश की। मैंने छीलकर जब मिंगी उसे दी, तो वह उसकी खुशबूसे मस्त हो गया। उसने जिस उत्सुकतासे उसे खाना शुरू किया, वह बड़ी मनोरंजक थी। मुन्नू चुपचाप बैठता देखता रहा और जब चुन्नूको मिंगी मिल गई, तो उसने जाकर बड़े प्रेमसे उसे चुन्नूसे छीन लिया। चुन्नूने मुन्नूकी इस डकैतीको जिस तरह सहा, वह देखने लायक चीज़ थी।

दोनोंकी दोस्ती भी बड़ी मनोरंजक थी। यद्यपि मुन्नू चुन्नूके साथ रहनेकी अपेक्षा मेरे साथ रहना पसन्द करता था, फिर भी कभी-कभी वह चुन्नूके साथ रहनेके लिए ही ज़िद करता था। चुन्नू सदा मुन्नूके लिए छटपटाया करता था, और जब तक मुन्नू ज़िन्दा रहा, तब तक उसने अपनी इच्छासे कभी उससे अलग होना पसन्द नहीं किया। गर्मी आनेपर मैं फिर कलिम्पोंग गया। मैंने मुन्नू-चुन्नूको नौकरोंके भरोसे छोड़ना उचित न समझा, इसलिए उन्हें भी साथ लेता गया। यहाँ भी चुन्नू अपने बन्धनकी घृणाको न छोड़ सका, और वह मेरे कमरेके दरवाज़ेके एक छेदको बड़ी होशियारीसे ताकता था। वह अब तक अपरिचितोंसे दूर भागता था, लेकिन मेरे ऊपर मज़ेमें चढ़ आता था। इसके विरुद्ध मुन्नूको बाहरकी आज़ादी पसन्द न थी। मैंने उसे उसके जन्मस्थान—जंगलमें ले जाकर छोड़ दिया। पहले तो वह कुछ दूर इधर-उधर दौड़ा, लेकिन शीघ्र ही लौटकर मेरे ऊपर चढ़ आया, और ऐसे परिचित ढंगसे मेरी जेबमें जाकर सो रहा, मानो वही उसका जन्मस्थान हो। आज़ादीके लिए चुन्नूकी लालसा देखकर मुझे बड़ी पीड़ा होती थी। वह खिड़कीकी देहलीपर उचककर एक पंजेको खिड़कीके सीखचेपर और दूसरेको अपनी छातीपर रखकर सामने बहती हुई तिस्ता नदी और फैले हुए जंगलको ऐसी हसरत-भरी नज़रसे देखता था कि मेरा दिल दुखने लगता। अगर मुझे कोई ऐसा बाग़ मिलता, जहाँ उसे चारा मिल सकता और जहाँ वह शरारती लड़कोंसे सुरक्षित रह सकता, तो

मैं उसे फौरन छोड़ देता। मगर इस प्रान्तमें यह बात मशहूर है कि गिलहरियाँ चीड़के पौधोंकी फुनगियाँ कुतर खाती हैं, जिससे पौधोंकी बाढ़ मारी जाती है। बस, इसी बहाने यहाँवाले गिलहरियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर मार डालते हैं। मगर यह दोष झूठा था।

कलकत्तेसे चलनेके पहलेसे ही कृत्रिम जीवन और गिलहरियोंकी तन्दुरुस्तीके बारेमें मेरे अज्ञानका प्रभाव मुन्नूके ऊपर पड़ने लगा था, और उसका स्वाभाविक परिणाम भी हुआ। वह मराऊ-सा हो गया, और कुछ भीतरी बीमारीके लक्षण दीख पड़ने लगे। यद्यपि मेरे प्रति उसका प्रेम अधिकाधिक होता गया; लेकिन दौड़ने-चढ़ने और खेल-कूदकी उसकी इच्छा घटती गई। यह साफ़ जाहिर होने लगा कि सभ्यतापूर्ण जीवनने उसके साथ भी वही किया, जो हममें से बहुतेरोंके साथ करता है—अर्थात् ज़िन्दगीकी मियादको घटा देना। यद्यपि उसकी आकृतिसे पीड़ाके चिह्न दिखाई न पड़ते थे, फिर भी उसका हिलना-डुलना कम हो गया। वह मेरे पास आकर चुपचाप पड़ा-पड़ा छोटे कुत्तेकी तरह मेरा हाथ चाटा करता था। नये ताज़े बादाम और आड़ू पाकर दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार जितने नये फल ख़रीद सकता था, उन्हें देता था, क्योंकि मेरा दोषी मन यह बार-बार कहता था कि मैंने उनकी जो स्वतन्त्रता छीनी है, उसका प्रायश्चित्त हो ही नहीं सकता। गर्मीकी छुट्टियोंके बाद हम लोग फिर कलकत्ते लौट गये।

मगर यहाँ पहुँचकर मुन्नूकी दशा बहुत जल्द और ख़राब हो गई। मुझे जान पड़ने लगा कि मेरी पशुशालापर कोई संकट आनेवाला है। मुन्नू और भी निश्चेष्ट हो गया। अब वह आस्मानकी ओर निश्चल दृष्टिसे देखता हुआ पड़ा रहता था, मानो कोई स्वप्न देख रहा हो। यह देखकर मेरा दिल बैठ गया, क्योंकि उसके रोगके लक्षण ठीक वैसे ही थे, जैसे कई वर्ष पहले मेरे छोटे बेटेमें देख पड़ते थे, जो आजकल क़ब्रिस्तानमें चिर-निद्रामें सो रहा है। किसी समय वह मेरे पितृ-हृदयको कितना आनन्दित करता था। मैंने उसे अपनी आँखोंसे बिना पीड़ाके इस संसारको छोड़ते हुए देखा था। ईश्वरको धन्यवाद है कि वह इस महान परिवर्तनसे अनजान था। जब उसकी बोली बन्द हो गई थी, तब उसने इशारेसे मुझे बुलाकर अपने पास एक ही तकियेपर लिटा लिया था। उसकी मृत्यु ज़हरबादसे हुई थी। मुन्नूकी मृत्यु भी ज़हरबादसे हुई। मुन्नूके रोगमें वही लक्षण देखकर मुझे उस रातकी याद आ गई, जिसमें मेरा पुत्र मरा था। उसकी आँखें मुन्नूकी भाँति ही ज्योतिहीन होकर पथरा गई थीं। मुन्नूका अन्त जितना निकट आया, उतना ही उसका लगाव मेरे साथ बढ़ता गया। जब उसकी सुस्ती दूर होती थी—यद्यपि उस समय भी वह और किसी चीज़को न पहचानता था—तब वह अपने नन्हें-नन्हें पंजोंमें मेरी उँगली दबाकर चाटता। यहाँ तक कि वह चाटते-चाटते थक जाता था। यह प्रत्यक्ष था कि उसका अन्त समीप आ पहुँचा था। मृत्युसे एक दिन पहले तीसरे पहर मैं उसे पार्कमें ले गया। मैंने सोचा कि शायद धूप खाकर और प्रकृति माताकी गोदमें उसे कुछ आराम मिले। वह कुछ क्षण तक तो घासपर बैठकर आस्मानकी ओर ख़ाली दृष्टिसे देखता रहा, फिर उसने उठा लेनेके लिए मुझे इशारा किया। मुझे याद है कि मृत्युसे एक दिन पहले मैं अपने पुत्रको भी थोड़ी ताज़ी हवा देनेके लिए बाहर ले गया था। इस समय मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरा पुत्र ही मुन्नूकी आँखोंमें से झाँक रहा हो। मुन्नूने मेरी जेबमें जानेकी इच्छा प्रकट की, वहाँ वह निश्चेष्ट भावसे मेरी उँगली चाटता रहा। ओह, अपने अन्तिम समयमें भी उसकी इच्छा मेरे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करनेकी थी।

दूसरे दिन सवेरे ही टहलने निकल गया। वहाँसे लौटकर देखा कि मुन्नू चल बसा! उसका शरीर तब तक गर्म था। वह अपने बक्समें उस ढंगसे बैठा

था, जिस ढंगसे बैठकर वह अपने शरीरकी सफाई किया करता था। अन्तिम क्षण तक वह अपने शरीरकी सफाईको न भूला था। मुझे यह कहनेमें शर्म नहीं है कि मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रोया।

मुन्नू मेरे वास्ते केवल खाली समयके मनोरंजनके लिए एक पालतू जानवर ही न था, यद्यपि मेरे थके हुए दिमाग़के निद्राहीन ख़ाली घंटोंको वह अपनी प्यारी हरकतोंसे और अपने प्रेमसे सुखद बनाता था, क्योंकि वह मेरे ही बिस्तरपर सोता था। नहीं, मुन्नू मेरे लिए एक ऐसा द्वार था, जिससे मैं भगवानके छोटे जीवोंके संसारमें झाँकता था। प्रत्येक जीवित प्राणीके लिए वह दया और कोमलताका अवतार था। उसकी स्मृति अनन्तके द्वारपर खड़ी हुई मुझे भीतर आकर समस्त सृष्टिके साथ एकात्मता बोध करनेके लिए संकेत कर रही है। अब, जब तक जीवन है, मैं भगवानके किसी भी क्षुद्रातिक्षुद्र जीवपर निर्दयता नहीं कर सकता। यदि यह सच है कि एक क्षुद्र कीटके हृदयका मर्म जान लेनेसे आध्यात्मिक जीवनका मार्ग खल जाता है, तो मेरे और मुन्नूके हृदयोंमें जो पारस्परिक प्रेम था—और अब भी है—वह हमारे आध्यात्मिक सहानुभूतिके क्षेत्रको इतना विस्तृत बना देगा कि अन्तमें वह जीवन और प्रेमके अनन्त उद्गम तक जा पहुँचेगा। मूक प्रकृतिके इस आन्तरिक संसर्गने मुझे जीवनकी वह गुप्त शिरा दिखाई है, जो सारे संसारमें दौड़ी हुई है। जिस प्रकार सेबके गिरनेने न्यूटनको गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त प्रकट कर दिया था, उसी प्रकार मुन्नूने मुझे प्रेम-जगतके उन महान सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन कराया, जो भगवानके क्षुद्रतम प्राणियोंको बाँधे है, जिसके द्वारा हम अपने चारों ओर फैली हुई ईश्वरकी महिमाको देखते हैं।

तब मैंने समझा कि उस स्रष्टाकी मर्ज़ीके बिना पतिंगा भी नहीं गिरता। मैं और मन्नू उस प्रेम-शृंखलाकी दो कड़ियाँ हैं, जिनसे हमारा सम्मिलित अस्तित्व बँधा है। सहसा मुझे ज्ञात हुआ कि यह प्रेम प्रत्येक जीवित प्राणीके जीवनका एक अंग है। मुन्नूने अपने जीवन और मृत्युसे मेरे लिए उस अनन्त भवनका द्वार खोल दिया है, जिसमें—मेरा विश्वास है—कभी-न-कभी मैं ज़रूर प्रवेश करूँगा। उसने मेरे जीवनको उच्च बनाया। यदि प्रेम अमरत्व प्रदान कर सकता है, तो स्वर्गमें मुझे मुन्नूका सत्संग प्राप्त होगा, जिसके लिए मैं स्रष्टाका कृतज्ञ होऊँगा।

लेकिन मेरी कहानी अभी अधूरी ही है। मुन्नूने मुझे जो चीज़ दिखाई, चुन्नूने अपने प्रेमसे उसे पूरा किया। जब मैंने मुन्नूको मरा पाया, तो उसे लिटा दिया। इसपर चुन्नू उसके पास आया। उसने सावधानी और कौतूहलसे उसे अच्छी तरह देखा। उसे मालूम हुआ कि कोई अनहोनी बात हुई है। वह मुन्नूके पूरे शरीरको ढककर लेट रहा। शायद वह उसे गरमी पहुँचाकर पुन: जीवित करना चाहता था, अथवा उसे यह जान पड़ा कि मुन्नूमें किसी चीज़की कमी हो गई है, जिसे वह अपने शरीरसे पूरा कर सकता है। जब लेटनेसे कोई फल न निकला, तो वह मुन्नूका शरीर चाटने लगा। जब ये सब बातें व्यर्थ हुईं, तब शायद उसने समझा कि यह अन्तिम विदा—मृत्यु—है। अब वह मुन्नूमें भ्रातृ-प्रेमको नहीं जगा सकता। तब वह खिड़कीके सबसे दूरवाले कोनेमें जा बैठा। अब वह वहाँ लेटनेसे इनकार करने लगा, जहाँ दोनों मिलकर लेटते थे। उस दिन और रात उसने दाना-पानी छुआ भी नहीं। अगले कई दिन तक वह मुश्किलसे दाना छूता था। उसे किसी बातमें दिलचस्पी ही नहीं रह गई थी। मुझे डर हुआ कि कहीं वह बिना खाये-पिये भूखों न मर जाय, इसलिए मैं उसे अपने बरामदेमें ले गया, जहाँ मैं उसकी भागनेकी प्रवृत्ति देखकर पहले उसे कभी नहीं ले जाता था। वहाँ मैंने उसे पौधोंमें छोड़ दिया। वह आश्चर्य और परेशानीसे दो-चार क़दम इधर-उधर घूमा। उसने अपने चारों ओरकी चीज़ोंको देखा, फिर जान-बूझकर मेरी टाँगपर चढ़कर जीवनमें पहली बार अपनी इच्छासे

ही उस जेबमें चला गया, जहाँ लेटना मुन्नूको बहुत पसन्द था, और जहाँ अनेक बार मेरे प्रयत्न करनेपर भी वह मुन्नूके साथ बैठनेके लिए कभी राज़ी न हुआ था। चुन्नूका सारा स्वभाव ही बदल गया। अब वह साधारण जीवनकी प्रत्येक बातको सहन करने लगा ; मगर पहले जो बात थी, वह फिर न हुई। उसकी सारी ज़िन्दादिली जाती रही, घूमने-फिरनेकी आकांक्षा ग़ायब हो गई, और उसका प्रिय स्थान मेरी जेब—मुन्नूकी जेब—बन गई। उस समयसे उसकी निकल भागनेकी इच्छा भी लुप्त हो गई। यहाँ तक कि मैं उसे जंगलमें ले जाकर छुट्टा छोड़ देता, तो भी उसे मुझे छोड़नेकी इच्छा न होती। वह कुछ दूर जाता, या अनमने भावसे किसी पेड़पर कुछ दूर तक चढ़नेकी चेष्टा करता ; लेकिन शीघ्र ही अपनी इच्छासे मेरे पास लौट आता। अब वह मुन्नूकी भाँति थपथपाया जाना भी पसन्द करने लगा। जान पड़ता था कि मुन्नूके साथ उसका जो प्रेम था, उसने उसे मुन्नूकी तरह बना दिया। संकेत-विद्यामें मुन्नू जितना होशियार था, उतना वह कभी न हो पाया। मेरी पत्नीको चुन्नूको तंग करनेमें मज़ा आता था, इसलिए मेरी स्त्रीसे वह बराबर खिंचा-सा रहता था, और यदि वह उसके पास चार-छै गज़की दूरीपर भी आती, तो वह मुँह बनाने लगता था ; लेकिन मेरे लिए तो उसने मुन्नूका पूरा स्थान ग्रहण कर लिया। मैंने कुरसियांगसे उसके लिए एक साथी मँगवाया। बेचनेवालेने नौजवान मादा गिलहरी कहकर एक जानवर भेजा ; मगर वह नर और बुड्ढा निकला, और इसके पूर्व कि चुन्नू उससे अच्छी तरह परिचित हो सके, वह मर भी गया। उसकी मृत्युसे पहली रातको मैं देरसे घर लौटा। अपने पढ़नेके कमरेका दरवाज़ा खोलते ही मैंने देखा कि चुन्नू देहलीपर खड़ा सिर हिला रहा है। उसने मुझे उठा लेनेका संकेत किया। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी रातको वह क्यों जाग रहा है। मैंने उसे उठा लिया और ले जाकर अपने साथ बिस्तरपर लिटा लिया। थोड़ी देर बाद मुझे फिर विचार हुआ कि कोई अनहोनी बात तो नहीं हुई है, इसलिए मैं उठकर फिर पढ़नेके कमरेमें गया। वहाँ देखा कि नई गिलहरी पर्देमें उलझी हुई लटक रही है। जान पड़ता है कि उसे मृत्युका आभास मिला और वह भागकर कहीं छिपना चाहती थी ; मगर पर्देसे पंजा उलझ गया, जिसे वह सुलझा न सकी। ख़ैर, मैंने उसे छुड़ाया। वह दूसरे ही दिन मर गई। दो-चार दिनके अँतरेके बाद मुन्नू फिर मेरे पास सोने लगा, और जब तक जिया, मेरे ही पास सोता रहा।

वास्तवमें जब सोनेका समय आता, वह स्वयं आग्रह करने लगता। वह खिड़कीके सिरेपर आकर तब तक सिर हिलाता रहता, जब तक मैं उसे उठा न लेता। अगर मुझे जानेमें देर होती, तो वह स्वयं पर्देपर होकर नीचे उतरकर मेरे पास आ जाता। एक रातको मैं बहुत देरसे लौटा। पढ़नेवाले कमरेमें मैं उसे लेने गया, तो देखा कि वह ग़ायब है। मैंने शोर मचाकर घर-भरको उसे ढूँढ़नेको बुलाया। बहुत खोजके बाद मैंने उसे अपनी बैठनेकी कुरसीके नीचे बैठे पाया। यदि मुझे उसे सुलानेमें थोड़ी भी देर होती, तो वह बहुत असन्तुष्ट हो जाता था। वह मेरे पास आकर मेरा हाथ कुतरकर अपना असन्तोष प्रकट करता। पहले धीरेसे कुतरता, फिर तब तक ज़ोर-ज़ोरसे कुतरता जाता, जब तक मैं उसकी बात न सुन लेता। जब वह देखता कि मैं ऊपर शयनागारको जा रहा हूँ, तब वह शान्त हो जाता।

कृत्रिम जीवनसे अथवा मुन्नूकी मृत्युके धक्केसे—जैसा कि अब अनेक गिलहरियोंके अनुभवसे मुझे विश्वास होता है—उसकी पिछली टाँगें अंशतः पंगु हो गईं। उसे दौड़नेमें दिक़्क़त होने लगी ; लेकिन उसकी आँखें और बुद्धि पहलेकी भाँति ही तेज़ थीं, और उसके पैर वैसे ही चंचल थे। जैसे-जैसे उसकी बीमारी बढ़ती गई, मेरे प्रति उसका प्रेम भी बढ़ता गया। यद्यपि अपनी आदतके अनुसार वह मेरी स्त्रीसे

चिढ़ता था ; लेकिन अपने अन्तिम समयके करीब वह उससे भी बहुत प्रेम करने लगा था ।

जब फिर गर्मी आई, तो मैं उसे फिर कलिम्पोंग ले गया । मैंने सोचा कि उसकी रहस्यपूर्ण बुद्धिको अपने जन्म-स्थानकी आब-हवामें शायद कुछ आराम मिले । वह दिन-ब-दिन कमज़ोर होता जाता था । कभी-कभी ऐसी बेचैनी दिखाता था, मानो उसे पीड़ा हो रही हो ; लेकिन अधिकांश समयमें वह मेरे जेबमें ही आराम करता था । जब मैं अपना हाथ उसे तकिया बनानेके लिए दे देता था, तब वह बहुत ख़ुश होता था । रातमें बिस्तरपर भी वह खोजकर मेरे हाथका तकिया बनाकर लेटता था । जान पड़ता था कि उसे मेरे स्पर्शसे आनन्द मिलता है । कभी-कभी वह मेरे हाथको चाटता भी था, मगर बहुत कम अवसरोंपर ऐसा करता था, क्योंकि तब तक भी वह अपने भावोंको प्रकट करनेमें मुन्नूकी भाँति बेतल्लुफ़ न हो पाया था । कभी-कभी वह खिड़कीपर बैठकर पहाड़ी हवा सूँघता हुआ सामनेके प्राकृतिक दृश्यको देखता था । उस समय उसकी आँखोंमें उस उत्कंठाका कुछ आभास दीख पड़ता था, जिसे देखकर पहले मैं इतना पीड़ित होता था । लेकिन आध घंटे तक इस प्रकार देखते रहनेके बाद वह सिर हिलाकर मुझे बुलाता और चुपचाप मेरी जेबमें चला जाता । कभी-कभी वह छोटे बच्चोंकी भाँति बेचैनी दिखाकर संकेत करता था, जिसका अर्थ यह होता था कि वह हिलना-डुलना चाहता है । तब मैं उसे जेबमें रखकर इधर-उधर टहलता, तो वह शान्त हो जाता । उसे गुलाबकी सूखी पत्तियाँ बहुत पसन्द थीं, जिनपर वह लोटता-पोटता था, और जिनमें वह अपना सिर डालता था ; लेकिन जैसे-जैसे उसके दिन समीप आते गये, वैसे-वैसे उसका सारा समय—दिनका समय—मेरी जेबमें और रातका समय मेरे बिस्तरपर मेरे हाथके ऊपर कटता गया । उसकी मृत्युके एक दिन पहले उसे वास्तवमें तकलीफ़ जान पड़ी । उसकी बेचैनी बहुत बढ़ गई । रह-रहकर उसे आसपासकी चीज़ोंको काट खानेके दौरे-से होने लगे । जब उसे दौरा आता, मैं उसे ज़रा-सा क्लोरोफार्म सुँघाता, यहाँ तक कि दौरा उतर जाता और वह चुपचाप मेरे हाथपर लेट रहता । बार-बार ऐसा होता था । अन्तमें उसने मेरी जेबमें अपनी दम तोड़ी । मैं उसके हृदयपर हाथ रखकर ही जान गया कि वह चल बसा । मैंने, जैसा मैं चाहता था, उसे उसके जन्म देनेवाले जंगलमें गुलाबकी पत्तियोंके नीचे एक बड़ी चट्टानकी छायामें गाड़ दिया । वह मुन्नूकी मृत्युके बाद कुल छै मास और जीवित रहा था । उसकी मृत्युसे मुझे चिरस्थायी शोक हुआ । पाठक यदि इसे मेरी कमज़ोरी कहें, तो मैं इसका प्रतिवाद न करूँगा । मैंने शोक और विपदाको सब प्रकारके विभिन्न रूपोंमें देखा है । भगवानको धन्यवाद है कि उसने मुझे इतना प्रेम दिया, जिससे मेरे हृदयमें इन क्षुद्र जीवों तकके लिए कोमल स्थान बना रहा । मैं आज तक यह निश्चय नहीं कर सका कि अनजानमें उनकी स्वतन्त्रता हरण करके और उन्हें कृत्रिम जीवनमें रखकर मैंने उनके प्रति अन्याय किया या नहीं । सम्भवत: मैंने ही उनके जीवनको छोटा कर दिया होगा ; लेकिन शायद मैंने उन्हें उस जंगली जीवनसे अधिक सुखी बनाया, जिसमें उनका पग-पगपर पीछा किया जाता था । मुन्नूने निश्चिन्ततासे जीवन बिताया । उसके कोई इच्छा भी न थी, और वह मरा भी बिना कष्टके । वह सब चीज़ोंसे अधिक मुझसे प्रेम करता था । कौन जानता है कि उसके नन्हें-से हृदयको यह प्रेम कैसा लगता होगा ? चुन्नूको मैंने बन्धनमें तो रखा ; लेकिन जिस बन्धनसे वह आया था, वह कहीं अधिक बुरा था । मेरा विश्वास है कि उसने मेरे और मुन्नूके साथ जो समय बिताया, जिसमें वह उन तमाम चिन्ताओं और ख़तरोंसे मुक्त था, जो इस प्रकारके जानवरोंको जंगलमें सहने पड़ते हैं, उसमें उसे अपनी स्वतन्त्रता खोनेका पूरा बदला मिल गया ।

मुझे आशा है कि यह कहानी सहानुभूतिपूर्ण हृदयमें जंगली जानवरोंके प्रति करुणा जाग्रत करेगी। यदि ऐसा हुआ, तो एक छोटे जीवका अनजानमें किया गया बलिदान अपनी जातिके जीवोंके लिए हितकर सिद्ध होगा। हमारे मानवी जीवनमें तो यही सबसे महान और पवित्र कार्य है—अर्थात् इसलिए मर जाना, ताकि दूसरे लोग जीवित रह सकें।

—ब्रजमोहन वर्मा
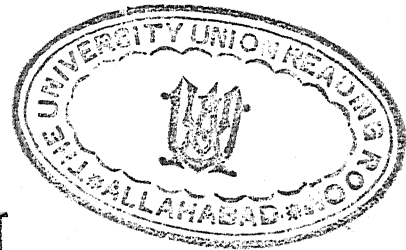
विस्मृतिके फूल

श्री भगवतीचरण वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०

बन-बनकर फिर मिट-मिट जाना, यह क्रम नियम अबाध,
मिटनेकी ही साध यहाँ है फिर बननेकी साध।
बूँद-बूँद से सागर बनता कण-कणसे ब्रह्माण्ड,
यहाँ कौनसा आराधक है और कौन आराध?

जप तप पूजा व्यर्थ देवि री! व्यर्थ स्वर्गकी चाह,
और व्यर्थ है मुक्ति-साधनाका अदम्य उत्साह।
जगके आँसूमें बह जाना, यही एक है मुक्ति,
स्वर्ग-लाभ है बन-बन जाना उत्पीड़ितकी आह!

उस दिन मन्दिरमें गूँजा था भक्तगणोंका गान,
"देव! मुक्ति मिल सके जगतसे ऐसा दो बरदान।
भव-सागरसे हमें उबारो, निजमें कर लो लीन,
तोड़ सकें मायाके बन्धन, हमें बता दो ज्ञान!"

एक विचित्र बात थी, उस दिन देव-मूर्ति तत्काल,
हिल-सी पड़ी, चढ़ गईं भौंहें और तन गया भाल।
उठी एक हुंकार, "कहाँकी माया, कैसा ज्ञान?
तुमसे निर्मित जग, जगसे निर्मित ब्रह्माण्ड विशाल!

"यह ब्रह्माण्ड असीम, अहम् है सीमाका अभिशाप,
आत्म-ज्ञानकी यही विषमता जगतीका सन्ताप।
जीवन तो है कर्म, कर्म है जगमें होना लीन,
जिसे मुक्ति कहते हो, वह है अकर्मण्यता पाप।

"पृथक्-पृथक् अस्तित्व यहाँपर, पृथक्-पृथक् हैं काम,
विश्व व्यक्तियोंका है, जीवन है कर्मोंका नाम।
भेद-भावका नाम मिटाकर मिले व्यक्तिमें व्यक्ति,
और कर्ममें डूब जाय सब दुविधाका संग्राम।

"तुम लेने-देनेवाले हो, और विश्व बाज़ार,
यहाँ घृणाका मूल्य घृणा है और प्यारका प्यार।
निजको देकर ही कर सकते हो जीवनका मोल,
निजपर ही तो लदा हुआ है असफलताका भार।

"जग-जीवनके महायज्ञकी बलिवेदी है त्याग,
जहाँ चढ़ाना होगा तुमको अपना-अपना भाग।
एक यन्त्र ब्रह्माण्ड और तुम सब हो उसके भाग,
जीवनपर मिट-मिट जाना है जीवनका अनुराग।

"हँस-हँस देना रो-रो पड़ना कैसा हाहाकार,
अपनापनका भार कठिन है पीड़ित है संसार!
नहीं जानता वह जीवनकी सुन्दरताका रूप,
दया करो यह जग निर्बल है, दया करो प्रतिबार!"

इंग्लैण्डका ग्रामीण जीवन और पादरी

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यह बात बहुधा कम देखी जाती है कि मनुष्यको अपनी क्षमताके उपयुक्त अपना पेशा चुननेका मौक़ा मिले। अनुपयुक्त, ग़ैरमौज़ूँ, चीज़ोंके भारी बोझसे लदी हुई कार्यरूपी गाड़ीका पहिया पृथिवीपर चलते समय कराह-भरी करुणाजनक आवाज़ करता है। हम देखते हैं, जिस मनुष्यमें सफल पहलवान बननेकी समस्त सम्भावनाएँ मौजूद हैं, वह स्कूलमें छोटे-छोटे बच्चोंका शिक्षक बनता है। दूसरी ओर ऐसे व्यक्तिको, जिसका जन्म और लाल-पालन जासूसी करनेके उपयुक्त ही हुआ है, पादरी बनना पड़ता है। इस प्रकारकी असंगति अन्य पेशोंमें उतनी बुराइयाँ उत्पन्न नहीं करती, जितनी धर्मके पवित्र पेशेमें।

ईसा मसीहने जिस धर्मकी शिक्षा दी थी, उसमें और इंग्लैण्डकी जनताकी प्रकृतिमें कहीं-न-कहीं कोई महान विरोधी बात जान पड़ती है। प्रकृतिपर और मनुष्यपर प्रभुत्व जमानेकी भावना उनके स्वभावका अंग हो गई है, और पुश्तहा-पुश्तसे उनके रक्तमें प्रवाहित है। इसीलिए ईसाई धर्म, जो श्वेत कमलके समान है, उनके हाथमें पड़कर रक्त कमल बन जाता है। युद्धके समयमें वे ईश्वरको अपने दलका नेता बनाते हैं, और समझते हैं कि उसे उन्होंने उपासना और प्रार्थना द्वारा अपने पक्षमें ख़रीद लिया है। प्रेमकी आड़में तो वे अपने हृदयमें जातीय और साम्प्रदायिक घृणाका भाव ही नहीं, बल्कि दूसरे देशों और धर्मोंके मनुष्योंके प्रति राजनीतिक द्वेषका भी पोषण करते हैं। हम लोगोंके मनमें यह बात स्पष्टरूपसे जम गई है कि मिशनरी लोग एक ओर हैं, और हम दूसरी ओर। वे हमें अपने धर्ममें दीक्षित करनेके लिए सदा तैयार रहते हैं; किन्तु वे हमें अपनेमेंसे एक समझनेके लिए तैयार नहीं हैं। संसारके और सब लोगोंकी अपेक्षा ईसाई पादरियोंका यह कर्तव्य था कि वे एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रके साथ मिलाने तथा समस्त मानवोंके स्वत्वों और सुविधाओंके प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करनेका महान कार्य अपने हाथमें लेते; किन्तु जो कुछ हम देख रहे हैं, वह इसके सर्वथा विपरीत है। ईसाई पादरियोंने ही और लोगोंकी अपेक्षा विशेषरूपसे ईसाइयों और ग़ैर-ईसाइयोंके बीच भेद-भावकी सृष्टि की है। भारतमें शासक और शासितोंके बीच दुर्दमनीय अहंकारकी एक बड़ी राष्ट्रीय दीवार खड़ी है। ईसाई पादरियोंने अपनी धार्मिक और सामाजिक पृथकता और अपनी राजनीतिक ठसकसे इस अहंकारको और भी बढ़ा दिया है। भारतमें ईसाई पादरीकी चित्तवृत्ति उस मनुष्यके समान होती है, जिसके विवाहिता पत्नीके साथ ही रखेली भी हो, जिसके पास वह प्रायः खुल्लम-खुल्ला जाया करता हो। ईसाई धर्म उसकी पत्नी है, तो राजनीति उप-पत्नी। एक ऐसा अवसर उपस्थित होता है, जब कि पादरीके राष्ट्रीय स्वार्थका हमारे स्वार्थके साथ संघर्ष होता है। उस कठिन अवसरपर वे महान और विनीत ईसा मसीहके आदेशोंको अनुपालन करनेके लिए सिर नहीं झुकाते। भारतमें बहुत दिनोंसे मेरी ऐसी ही धारणा थी, जो इस प्रकारकी परिस्थितिमें अपूर्ण ही बनी रहती, इसलिए लन्दनमें मेरे एक मित्रने मुझे यह सलाह दी कि इंग्लैण्डसे सदाके लिए विदा होनेके पूर्व मैं अंगरेज़ोंके देहाती जीवनका निरीक्षण कर लूँ।

उन्होंने मुझे बताया कि अंगरेज़ोंके धार्मिक वातावरणका सबसे अच्छा और असली चित्र इंग्लैण्डके शान्त ग्रामीण घरों और देहाती गिरजोंके अन्तर्गत क्षेत्रोंमें ही देखा जा सकता है। इसलिए उन्होंने अपने एक मित्रके घरमें, जो स्टैफोर्डशायरके एक गाँवमें पादरी थे, अतिथिके रूपमें मेरे ठहरनेका प्रबन्ध किया।

अगस्तका महीना था। इंग्लैण्डमें अगस्त तक ग्रीष्मऋतुका ही राज होता है। इस मौसिममें यहाँके लोग देहातोंमें जानेके लिए बहुत ही उत्कण्ठित

हो उठते हैं। भारतमें हमें हवा, रोशनी और धूप इतनी ज्यादा मिलती है कि वर्षके किसी ख़ास मौसिममें इन सब चीज़ोंका आनन्द लेनेके लिए कोई विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि ये सब हमेशा हमारे साथ मौजूद रहती हैं; किन्तु इंग्लैण्डमें मनुष्यको प्रकृतिके अपना घूँघट हटानेकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। छोटी-छोटी छुट्टियोंमें झुण्ड-के-झुण्ड स्त्री-पुरुष गाँवोंके खेतोंमें एकत्रित होते दीख पड़ते हैं। लम्बी छुट्टीमें तो वे और भी बहुत बड़ी संख्यामें देहातोंमें जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति उन्हें बराबर चलने-फिरनेके लिए मजबूर रखती है। छुट्टीके दिनोंमें रेल्वे ट्रेनें मुसाफिरोंसे भरी रहती हैं—अकसर बैठने तकका स्थान नहीं मिलता। इसी प्रकारकी घुमक्कड़ भीड़के साथ हमने भी नगरसे प्रस्थान किया।

हमारे मेज़बान महाशय स्टेशनपर अपनी खुली गाड़ीके साथ हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। आकाश मेघाच्छन्न था। उस शान्त ग्राममें प्रकृति धूसर मुखसे भरी बैठी जान पड़ती थी, और शीघ्र ही वह ज़ोरोंसे बरस भी पड़ी। आख़िर वर्षासे थोड़े-बहुत भीगे हुए जब हम अपने मेज़वानके घर पहुँचे, तो वे हमें अपनी आरामदे बैठकमें ले गये, जहाँ इस मौसिममें भी तेज़ आग जल रही थी, और ग्रीष्मऋतु होनेपर भी आगके पास बैठनेमें हमें आनन्द मालूम पड़ा। यह मकान पुराना न था, जैसे कि गाँवके पादरियोंके मकान अकसर हुआ करते हैं। इस मकानको बने अभी थोड़े दिन हुए थे। उसका बगीचा भी नये ढंगका ही था। शायद मकानके वर्तमान मालिकोंने ही उसे बनाया था। हरे कचोइया मैदान और उनके चारों ओर रंगे-बिरंगे फूलोंका हाशिया अत्यन्त नयनरंजक प्रतीत हो रहा था। ग्रीष्मऋतुमें इंग्लैण्डमें फूल-पत्तियोंकी आश्चर्यजनक प्रचुरता दीख पड़ती है। भारतका कोई व्यक्ति, जिसने इस स्थानको पहले कभी नहीं देखा है, यह विश्वास नहीं कर सकता कि यहाँके दूब-भरे मैदान कितने गहरे हरे होते हैं।

इस घरकी हर चीज़ एकदम साफ-सुथरी है। कमरे अच्छी तरह सजे हुए हैं और पुस्तकालयमें उपयोगी पुस्तकोंका संग्रह है। कहीं असावधानता और लापरवाहीका चिह्न भी नहीं दीख पड़ता। इंग्लैण्डकी मध्यम श्रेणीके भले आदमियोंके जीवनकी इस विशेषताका मेरे ऊपर और सब बातोंसे बढ़कर प्रभाव पड़ा है। उनके पास आराम, सजावट और व्यवहारके लिए हम लोगोंकी अपेक्षा अधिक वस्तुएँ रहती हैं; किन्तु छोटी-से-छोटी चीज़के लिए भी घरका मालिक सदा सतर्क रहता है। वे इस बातको बहुत गम्भीरतासे समझते हैं कि अपने आसपासकी वस्तुओंके प्रति असावधानी रखना स्वयं अपना अपमान करना है। बड़े और छोटे सभी विषयोंमें आत्म-सम्मानकी भावना समान रूपमें काम करती है। वे मनुष्यके रूपमें अपने गुणकी अवहेलना नहीं करते, इसलिए उन्होंने इस बातका भरसक प्रयत्न किया है कि उनका घर-द्वार और चारों ओरकी चीज़ें उनकी मनुष्योचित आत्म-प्रतिष्ठाके सर्वथा अनुरूप हों।

तीसरे पहर हम अपने मेज़वानके साथ बाहर घूमनेके लिए निकले। वर्षा बन्द हो चुकी थी; किन्तु आकाश अब भी मेघाच्छन्न था। यद्यपि यह पहाड़ी स्थान था, फिर भी पहाड़ियोंमें सहसा चढ़ाई नहीं थी। जमीन थोड़ी-थोड़ी करके क्रमशः ऊँची होती हुई ढलुवाँ हुई, और उसका चढ़ाव-उतार उसी तरह जान पड़ता था, जैसे भारतीय संगीतमें सुरोंका चढ़ाव-उतार। हमारे देश-जैसी पहाड़ोंकी कठोर ऊँचाई यहाँ नहीं है। यहाँ ऐसा जान पड़ता है, मानो प्रकृति अपने उग्र रूपको त्यागकर सौम्य और शान्त बन गई हो।

जिस समय हम लोग घूम रहे थे; मार्गमें एक आदमी मिला, जिसके साथ हमारे मेज़वानने कुछ काम-काजकी बातें कीं। बात यह थी कि हाल ही में एक कमेटी बनी थी, जिसका उद्देश्य एक ऐसी योजना बनाना था, जिसके द्वारा प्रत्येक किसानके घरके चारों

तरफ़की ज़मीन छोटे बगीचेके रूपमें परिणत की जा सके। कमेटीने इस बातका भी प्रबन्ध किया था कि जिस किसानकी बाग़वानी जितनी अच्छी होगी, उसे उसीके अनुसार इनाम मिलेगा। यह परीक्षा एक दिन पहले ही समाप्त हो चुकी थी। जो आदमी हम लोगोंके साथ बातें कर रहा था, उसे ही इनाम मिला था, और इसलिए वह बहुत ही ख़ुश था। हम लोग किसानोंके घरकी तरफ़ गये। उन्होंने अपने झोंपड़ोंके आसपासकी ज़मीनको बड़े परिश्रमसे फूल और तरकारियोंके छोटे-छोटे सुन्दर बग़ीचोंमें परिणत किया था। खेतोंमें कठिन परिश्रम करनेके बाद सन्ध्या समय वे अपने बाग़ोंमें काम करते हैं। इस कामसे उन्हें इतना प्रेम है कि यह अतिरिक्त परिश्रम उन्हें ज़रा भी नहीं अखरता। इस परिश्रमका एक और अच्छा परिणाम यह होता है कि वे शराबख़ोरीसे बचे रहते हैं।

बहिरंगके सुन्दर बनानेका प्रयत्न करते हुए वे अपने अन्तरंगको भी सुन्दरता और माधुर्यसे सुशोभित करनेमें सफल होते हैं। जिन पादरीके साथ हम लोग ठहरे थे, ग्रामीणोंकी भलाईके अनेक कार्योंसे उनका सम्बन्ध था। उनके प्रतिदिनके आचरणसे हम यह जाननेमें समर्थ हुए कि भगवानकी सेवामें अनुरक्त जीवन कितना सुन्दर होता है।

अब मैं इस बातको हृदयंगम कर सका हूँ कि कुछ गाँवोंकी हितरक्षामें एक पादरीकी उपयोगिता कितनी अधिक है। सारे देशके संगठित प्रयत्नके फल-स्वरूप सुदूर ग्रामोंमें भी नैतिक आदर्शका एक सर्वजन-सम्मत मापदंड स्वीकार किया जाने लगा है।

मनुष्य इस प्रकारका कोई संगठन नहीं बना सकता, जो बुराईसे (दोषसे) बिलकुल अछूता हो। यह एक जानी हुई बात है कि इस देशके लोगोंका धर्म-विश्वास और धर्म इस युगकी उन्नत भावनाके पूर्ण अनुरूप नहीं है। बहुतसे अच्छे अंगरेज़ोंको बहुधा यह कहते सुना गया है कि उनके लिए गिरजाघरमें उपस्थित होना असम्भव है। जिस बातमें वे विश्वास नहीं करते, उसका आँख मूँदकर अनुसरण करनेके पापमें वे नहीं पड़ना चाहते। इसलिए यह देखा जाता है कि जो लोग हृदय, बुद्धि और विद्यासे वास्तवमें महान हैं, वे बहुधा धर्मकी सीमासे सर्वथा बहिर्गत समझे जाते हैं। इस प्रकारकी स्थिति देशके लिए कल्याणप्रद नहीं हो सकती; किन्तु यूरोपकी सहज प्राणशक्ति उसकी रक्षा करती है। वह स्थिर होकर कभी ठहर नहीं सकता। वह स्वभावसे ही चंचल है, इसलिए वह अपनी प्रगतिके बलसे ही बाधाओंको दूर करता है। धर्म जितना ही इस लहरको रोकनेका प्रयत्न करता है, उतना ही उसकी शक्तिसे आहत होकर वह व्यापक बनता जाता है। संघर्षणकी यह क्रिया नित्य होती रहती है। इस प्रकार जिस ईसाई धर्मको सुशिक्षित लोगोंने स्वीकार किया है, उसमें उसके बहिरंगके जीर्ण अंशोंका परित्याग कर दिया गया है।

किन्तु यद्यपि पादरियोंने इस प्रकार सम्पूर्ण देशमें धार्मिक सम्प्रदायोंका जाल बिछाकर किसी हद तक धर्मकी प्रगतिमें बाधा डाली है, फिर भी ग्रामीण पादरियोंने इंग्लैण्डके उच्च आन्तरिक नीतिज्ञानको अक्षुण्ण बनाये रखा है। हमारे देशमें ब्राह्मणोंका भी यही कार्य था; लेकिन चूँकि ब्राह्मण अपने अच्छे गुणोंके कारण नहीं, बल्कि केवल ब्राह्मणके घर जन्म लेनेके कारण ही ब्राह्मण माने गये, इसलिए समयके फेरसे वे अपने कर्तव्यके उत्तरदायित्वको बिलकुल भूल गये। ब्राह्मणका आदर्श जितना ही ऊँचा होगा, उतना ही वह व्यक्ति-विशेषके गुण, योग्यता और संस्कृतिपर निर्भर करेगा। किन्तु जब-जब इस बातका प्रयत्न किया गया है कि इस दायित्वको एक श्रेणी तक ही आबद्ध करके रखा जाय, तभी उस आदर्शमें हीनता आ गई है। यह विचार करना भी असंगत है कि एक ब्राह्मणका लड़का, केवल अपने जन्मके कारण, अवश्य ही सच्चा ब्राह्मण सिद्ध होगा। हमारा समाज अन्धा बनकर मिथ्याके इस भारको बहुत दिनोंसे वहन

करता आ रहा है, इसलिए हमारा धर्म भी निर्जीव-सा बन गया है, और उसका अस्तित्व कुछ निरर्थक रीति-नीति और आचार-अनुष्ठानों तक ही सीमित रह गया है। अभ्यासके कारण ही हम इस बातको अच्छी तरह नहीं देख सकते कि ब्राह्मणोंका कितना पतन हुआ है। ब्राह्मणकी पूजा करना समाजका आवश्यक कर्तव्य है; किन्तु ब्राह्मण अपने चरित्र-बल और आचरण द्वारा अपनेको उस पूजाके योग्य बनानेके लिए प्रयत्न करना अपना कर्तव्य नहीं समझता। वह तो केवल अपने यज्ञोपवीतकी लगामसे ही समाजपर नियन्त्रण रखना चाहता है।

मैं यह विश्वास नहीं करता कि अंगरेज़ पादरियोंमें ईसाई धर्मके विश्वास और कार्यमें विशेष सामंजस्य पाया जाता है। ऐसे लोग इनेगिने ही होंगे, जो अपने जीवनमें सचाई और हार्दिकताके साथ ईसाई धर्मके आदर्शोंके समस्त महान मूल-सूत्रोंका अनुसरण करते हों। किन्तु एक बात बिलकुल स्पष्ट है; वे ब्राह्मणोंकी तरह अपने जन्मके कारण ही पादरी नहीं होते। अपने कार्योंके लिए वे समाजके सामने उत्तरदायी हैं। उन्हें अपने चरित्र और आचरणकी विशुद्धता अक्षुण्ण रखनी पड़ती है, इसलिए उन्होंने कम-से-कम इतना तो अवश्य किया है कि अपने नैतिक जीवनके उच्च भावको समाजके सामने रखा है। हिन्दू-समाजमें एक ब्राह्मणको, चाहे नैतिक दृष्टिसे वह कितना ही पतित क्यों न हो, समाज द्वारा बिना किसी हिचकिचाहटके गृहस्थ-आश्रमके समस्त पवित्र अनुष्ठान करने दिया जाता है। ऐसी स्थितिमें स्वभावतः धर्म और नीतिके बीचमें खाईका होना अवश्यम्भावी है। इससे हम मनुष्यत्व तकका अपमान कर रहे हैं। किन्तु इंग्लैगडमें, हम देखते हैं कि, नैतिक चरित्रसे हीन एक पादरीको समाज कदापि क्षमा नहीं कर सकता। वह एक सच्चा, भक्त ईसाई भले ही न हो, किन्तु उसका सच्चरित्र होना आवश्यक है। इसी मार्गपर चलकर समाज अपने आत्म-सम्मानको क़ायम रखे है और उसे अपने नैतिक जीवनकी समृद्धिमें इसका सच्चा पुरस्कार भी मिल रहा है।

इसलिए मेरी रायमें इंग्लैगड अपने व्यक्तिगत नैतिक और धार्मिक जीवनके लिए पादरियोंका बहुत कुछ ऋणी है। किन्तु हम इतनेसे ही बराबर सन्तुष्ट नहीं रह सकते। बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय समस्याओंका, जो इस समय उत्पन्न हो रही हैं, समाधान पादरी लोग ईसाके उपदेशोंके अनुसार नहीं करते। मैं पग-पगपर यह देख रहा हूँ कि राष्ट्रोंके हृदयमें ईसाको प्रतिष्ठित करनेका जो महत कार्य पादरियोंने अपने ऊपर लिया है, उससे वे पथभ्रष्ट हो रहे हैं। गत बोअर-युद्धमें ईसाई पादरी केवल तमाशा ही क्यों देखते रहे? यूरोपके दो बड़े-बड़े राष्ट्र—इंग्लैगड और रूस—जिस समय ग़रीब ईरानके दो टुकड़े करनेके लिए छुरे पैना रहे थे, उस समय ईसाई पादरी चुपचाप क्यों बैठे थे?

भारतमें भी क्या कुलियोंकी भरतीमें, उपनिवेशोंमें शर्तबन्द कुलियोंके साथ तथा भारतमें ही भारतीयोंके प्रति यूरोपियनोंके व्यवहारमें अन्याय नहीं किया जाता? क्या कभी ऐसा स्वर्गीय दृश्य भी देखनेका हमें अवसर मिला, जब किसी महान उद्देशको लेकर सारे-के-सारे पादरी ईसा मसीहके नामपर हमारे देशके लक्ष-लक्ष दीन दुःखी दुर्बल और अत्याचार-पीड़ितोंका साथ देनेके लिए तैयार हो गये हों? एक अंगरेज़ी कहावत है—"मोहरोंकी लूट और कोयलेपर छापा।" हम इस कहावतको भारतके पादरियोंके धार्मिक जीवनमें नित्य ही चरितार्थ होते हुए देखते हैं, क्योंकि वे कोयलेको लेकर अपनी सारी बुद्धिमानी खर्च कर देते हैं। वे साधारण बातोंमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा देंगे और बड़े-बड़े अन्यायोंको साफ हज़म कर जायँगे। ईसा मसीहके धर्मका उपदेश करते हुए भी वे स्वयं ईसाके अस्तित्वको अस्वीकार कर रहे हैं। वे छोटी-छोटी बातोंको लेकर तो बड़े सतर्क बने रहते हैं; पर बड़ी-बड़ी बातोंमें ईसाका अपमान करते हैं। उनमें कुछ ऐसी महान आत्माएँ अवश्य हैं, जो

मनुष्य-जातिकी सच्ची बन्धु हैं ; किन्तु यह उनकी वैयक्तिक महत्ताके कारण है, लेकिन उन्हें विवश होकर अलग रहना पड़ता है और अपना काम एकान्तमें करना पड़ता है ।

इस प्रकारके अध:पतनके दिनोंमें भी हमने ऐसे महान पुरुषोंको देखा है, जो राष्ट्रकी दुष्टताके विरुद्ध निर्भयतापूर्वक युद्ध कर रहे हैं । लेकिन अब इनमें थोड़े ही पादरी रह गये हैं । उनमें से अधिकांशको ईसाई धर्मके प्रचलित रूपमें श्रद्धा नहीं रह गई है, और वे उसे बिलकुल नहीं मानते ।

किसी अनुष्ठान या परम्परागत उपासनाके वाह्यरूपमें अणुमात्र भी प्रतिकूलता होनेपर सारेका सारा पादरी-समाज षड्गहस्त हो उठता है ; पर क्या इन्हीं सब बातोंके लिए ईसा मसीह शूलीपर चढ़े थे ? क्या ईसाने यही उपदेश संसारके सामने रखा था ? लौकिकताने सनातन भावको दबा रखा है, इसलिए इंग्लैण्डके तमाम ग्रामोंमें पादरियोंके मौजूद रहते हुए भी अंगरेज़ राजनीतिक नेता इंग्लैण्डके नामपर निष्ठुर हत्याएँ और डाकाज़नी करनेमें आगापीछा नहीं करते और संगठित ईसाई धर्म-सम्प्रदाय चुपचाप यह सब देखकर उसकी ओर ध्यान नहीं देता, अथवा निराशासे अपनी असमर्थता प्रकट करता है ।

('करेन्ट थॉट' से)

स्व० देवकीनन्दन खत्री

श्री सूर्यनाथ तकरू, एम० ए०

हिन्दीके इतिहासमें 'चन्द्रकान्ता' इत्यादि अनेकों पुस्तकोंके प्रणेता बाबू देवकीनन्दन खत्रीका शुभ नाम अमर है । वे हिन्दीके प्रथम सफल और मौलिक उपन्यास-लेखक तो हैं ही, साथ ही हिन्दी-गद्यका जो स्वरूप उन्होंने निर्धारित किया है, वही भविष्यमें उसका स्थिर स्वरूप होगा, यह भी निर्विवाद है । हिन्दी-साहित्यके इस गौरव-स्तम्भकी जीवनचर्यासे आज कितने हिन्दी-भाषा-भाषी परिचित हैं ? हिन्दी-नवयुगके इस निर्माताके सम्बन्धमें आजकलके हिन्दी-पाठक कितनी बातें जानते हैं ? शायद बहुत कम ।

स्वर्गीय देवकीनन्दनके पूर्वजोंमें दीवान नौनिध राय नामके महापुरुष हो गये हैं । वे बहुत ही समृद्धिशाली और ऐश्वर्यवान व्यक्ति थे । सारे पंजाब-प्रान्तपर उनका प्रभाव था । पहले तो वे मुलतानमें रहते थे ; पर बादमें आकर लाहोरमें रहने लगे । कुछ कालके बाद इसी कुलमें श्री ईश्वरदासजीका जन्म हुआ । ईश्वरदासजी बहुत ही सैलानी और स्वतन्त्र प्रकृतिके मनुष्य थे । ऐसे व्यक्तियोंका पारिवारिक जीवन सुखमय हो ही नहीं सकता । इनका भी नहीं था । घरकी तोबा-तिल्लासे तंग आकर ये काशी चले आये । उन दिनों 'लाहोर-मेल' या 'पंजाब-एक्सप्रेस' नहीं चलती थी । घोड़े ही यात्राके सर्वोत्तम साधन थे । इक्कोंपर ही लम्बे-लम्बे सफ़र तय करने पड़ते थे । ईश्वरदासजीको भी लगभग तीन महीने लग गये । यहाँ आनेपर उन्होंने 'क्षेत्रे भोजनम् मठे निद्रा' का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया । यहाँ उन्होंने प्रयत्न किया और शीघ्र ही लक्ष्मीपति हो गये ।

देवकीनन्दनजीका जन्म आषाढ़ वदी ७, संवत् १९१८ वि० (सन् १८६१ ईस्वी) को हुआ था । ये शिशु ही थे, जब ईश्वरदासजी निकल भागे थे । इतना काल इन्होंने ननिहालमें बिताया । जब इनके पिता यहाँपर जम गये, तब उन्होंने अपना परिवार भी

यहीं बुला लिया। देवकीनन्दनजीने ननिहालमें ही उर्दू-फ़ारसीकी शिक्षा पाई। काशी आनेपर इनको थोड़ीसी अंगरेज़ीकी भी शिक्षा मिली। यहाँपर इनको संगत भी अच्छी नहीं मिली। इन्होंने पिताकी कमाई भी दोनों हाथोंसे उड़ानी आरम्भ की। इनके पिताको इससे अत्यधिक कष्ट हुआ। उन्होंने यह सोचा कि यदि ये काशीसे बाहर चले जायँ, तो सम्भव है कि उस कुसंगतिसे इन्हें छुटकारा मिल जाय। इसीलिए प्रयत्न करके उन्होंने महाराजा काशी-नरेशके चकिया-इलाक़ेका ठेका इनको दिला दिया। उदारताका कमल बढ़कर घटता नहीं। वहाँ भी इन्होंने ख़ूब शाहख़र्ची की। लगभग बाईस हज़ार रुपये घरसे देने पड़े। तब इनके पिताने इनको घरपर बिठा रखना ही ठीक समझा। कुछ समयके बाद इनके पिताने इनको एक दूकान गया खुलवा दी ; पर वहाँ भी ये सब कुछ गँवा आये। इसके बाद उन्होंने सहायता देनी एकदम बन्द कर दी। फल-स्वरूप इनको बहुत ज़बरदस्त अर्थ-संकटका सामना करना पड़ा।

उन दिनों इनके एक मित्र श्री अमरसिंह पुस्तक-प्रकाशनका व्यापार करते थे। हरिप्रकाश यन्त्रालय नामका उनका एक प्रेस भी था। वहाँसे उन्होंने कई पुस्तकें छपवाई थीं, और उनसे उन्हें कुछ लाभ भी हुआ था। देवकीनन्दनजीकी भी इच्छा लेखक बननेकी हुई। इन्होंने उसी झोंकमें 'चन्द्रकान्ता' उपन्यासके दस-पन्द्रह पृष्ठ लिख डाले। एक दिन इन्होंने श्री अमरसिंहको वह अंश दिखाया ; पर यह न बताया कि यह किसका लिखा है। अमरसिंहने उस पुस्तकको पसन्द किया, और उन्होंने उस अज्ञात लेखकको ख़ूब प्रोत्साहित करनेको कहा। तब तो ये समझ गये कि पुस्तक एकदम रद्दी नहीं है। चटपट इन्होंने 'चन्द्रकान्ता' का प्रथम भाग लिख डाला। पुस्तकको इन्होंने स्वयं प्रकाशित किया, पर वह छपी हरिप्रकाश प्रेसमें थी। पुस्तकके छपते ही धूम मच गई। चारों ओर उस पुस्तककी और उसके लेखककी चर्चा होने लगी। इनको आर्थिक लाभ भी ख़ूब हुआ। फिर तो इन्होंने 'चन्द्रकान्ता' पूरी लिख डाली। हिन्दी-जगतने देवकीनन्दनजीकी प्रतिभाका लोहा मान लिया। इसके बाद इन्होंने निम्न-लिखित पुस्तकें लिखीं :—

'वीरेन्द्रवीर', 'कुसुमकुमारी', 'काजरकी कोठरी', 'चन्द्रकान्ता-सन्तति', 'नरेन्द्रमोहिनी', 'गुप्तगोदना', (असमाप्त) और 'भूतनाथ' (असमाप्त)। इसके अतिरिक्त इन्होंने दो पुस्तकोंके अनुवाद भी किये थे ; पर वे अब अप्राप्य हैं।

इन्होंने केवल पुस्तकें ही नहीं लिखीं, और भी अनेक प्रकारसे हिन्दी-साहित्यकी सेवा की। आपका पहले काशी-नागरी-प्रचारिणी सभासे भी सम्बन्ध था, और कुछ समय तक उसके ये मन्त्री भी रहे थे। आपने स्वयं 'लहरी प्रेस' नामका एक प्रेस स्थापित किया था। इस प्रेसने आधुनिक हिन्दीके आरम्भकालमें उसकी ख़ूब सेवा की थी। यहींसे इन्होंने हिन्दीके पुराने कवियोंके काव्य-ग्रन्थोंको प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विदेशी उपन्यासोंका अनुवाद प्रकाशित कराया। जिन दिनों इन्होंने वे पुस्तकें प्रकाशित की थीं, उन दिनों हिन्दीवाले विदेशी भाषाके सौन्दर्यसे परिचित तक न थे। इन्होंने 'उपन्यास लहरी' नामका एक पत्र भी निकाला। यह अभी तक चल रहा है। आज तो 'हंस' और 'माया' इत्यादि अनेक कहानियोंके पत्र निकलते हैं ; पर इस क्षेत्रका प्रथम पत्र 'उपन्यास लहरी' ही है। इसके अतिरिक्त 'सुदर्शन' नामका इन्होंने उच्चकोटिका एक मासिक पत्र पं० माधवप्रसाद मिश्रके सम्पादकत्वमें निकाला था। अपने समयमें इस पत्रकी अच्छी धूम थी, और स्व० मिश्रजी हिन्दी-गद्यके इनेगिने लेखकोंमें एक विशेष स्थान रखते थे। 'सुदर्शन' दो-ढाई साल तक निकलता रहा। इसके अतिरिक्त 'साहित्य-सुधानिधि' नामका एक मासिक भी इन्होंने निकाला था। आज इन पत्रोंका हम केवल नाम

जानते हैं ; पर हम अनुमान भी नहीं कर सकते कि आधुनिक हिन्दी-गद्यके विकासकालमें इन पत्रोंने कितनी सेवा की थी ।

देवकीनन्दनजीके मित्रोंमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी, 'भारत-जीवन' संपादक रामकृष्ण वर्मा, स्व० किशोरीलाल गोस्वामी, स्व० बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और पं० रामनारायणजी मिश्रका नाम उल्लेखनीय है। आपकी सन्तान संख्या चार है, एक कन्या और तीन पुत्र। बड़े पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद खत्रीको अपने पिताकी उपन्यास-निर्माणकला विरासतमें मिली है। इन्होंने स्वयं भी कई उपन्यास लिखे हैं। इनमें 'रक्तमंडल' विशेष प्रसिद्ध हुआ था ; किन्तु उसे सरकारने ज़ब्त कर लिया। आप ही 'उपन्यास लहरी' (मासिक) तथा 'लहरी' (साप्ताहिक)के सम्पादक हैं। दूसरे, श्री परमानन्द खत्री हिन्दू-विश्वविद्यालयके हिन्दीके पहले एम० ए० हैं और अच्छे साहित्य-रसिक हैं। तीसरे, श्री मथुराप्रसाद खत्री भी बड़े ही शान्त हिन्दी-प्रेमी सज्जन हैं और अपने व्यवसायमें लगे रहते हैं।

स्वर्गीय देवकीनन्दनजीको बहुमूत्रका रोग लग गया। डाक्टरोंकी राय थी कि यदि आप मांसाहार आरम्भ कर दें, तो विशेष लाभ हो सकता है ; पर इन्होंने न माना। अवस्था बिगड़ती ही गई। अन्तमें इन्होंने स्वेच्छासे गंगातटपर रहना आरम्भ कर दिया। वहीं श्रावण कृष्ण चतुर्दशी संवत् १९७० को हिन्दी-साहित्यके इस सेवकने अमरधामकी यात्रा की। खत्रीजीकी आयु केवल ५२ वर्षकी ही थी, जब ये हिन्दी-साहित्य-वाटिकासे चले गये।

हिन्दीके इतिहासमें इनका एक विशेष स्थान है। हिन्दी-प्रचारके नाते इनकी सेवाएँ बहुमूल्य हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीकी उस पुण्यमयी कृतिको छोड़कर किसी भी हिन्दी-पुस्तकका इतना प्रचार नहीं हुआ। हज़ारों प्राणियोंने 'चन्द्रकान्ता' पढ़नेके लिए ही हिन्दी पढ़ी। सैकड़ों मुसलमानोंने इसी पुस्तकको पढ़नेके लिए हिन्दी सीखी। मैंने अपनी आँखोंसे लोगोंके सिनेमा-हालमें ज़रासा 'गैप' मिलते ही 'चन्द्रकान्ता' पढ़ते देखा है। एक ऐसे सज्जनको मैं जानता हूँ, जिन्होंने 'चन्द्रकान्ता-सन्तति'को अड़तीस बार पढ़ा था। मेरे नाना (स्व० पं० त्रिभुवननाथ मुंशी) भी इसके बड़े प्रेमी थे, और उनकी मृत्यु-शैयापर 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' का एक भाग मिला था। जिस लेखककी कृति इतनी व्यापक हो, वह क्या साधारण लेखक कहा जा सकता है ?

रोचकताकी तो उस पुस्तकमें हद है। ड्यूमा या वाल्टर स्कॉटको छोड़कर इतना रोचक लेखक मुझे और कोई नहीं मिला। आप उनकी पुस्तकें पढ़िये। कभी ऊबियेगा नहीं। ये केवल मनोरंजनके लिए लिखते थे, और इसमें पूर्णतः सफल भी हुए। ये रोम्या रोलाँ, टालस्टाय या गोर्कीके ढंगके लेखक नहीं थे। इनकी श्रेणी स्कॉट और ड्यूमाकी श्रेणी है। आजकलके कुछ अल्पज्ञ समालोचक उन बातोंको 'असम्भव' कहकर हँस देते हैं। इस सम्बन्धमें स्वयं स्व० खत्रीजीने लिखा है—"कौन-सी बात हो सकती है और कौन नहीं हो सकती, इसका विचार प्रत्येक पुरुषकी योग्यता और देश-काल-पात्रसे सम्बन्ध रखता है।" फिर जब तक मनुष्य कौतूहलको कुप्रवृत्ति नहीं मान लेता, तब तक कौतूहलमयी रचनाएँ भी बुरी नहीं मानी जा सकतीं। स्कॉटकी सभी कृतियाँ, ड्यूमाके सभी ग्रन्थ, वेल्स और चेस्टर्टनकी अनेक कृतियाँ क्या सभी सम्भव हैं ? क्या समूची 'अरेबियन नाइट्स' सम्भव है ? पर क्या आप उनपर हँस सकते हैं ? यदि नहीं, तो फिर किस लिए अपने स्कॉटपर, अपने ड्यूमापर हँसते हैं ? क्या केवल इसीलिए कि वह आपके 'घरका सिद्ध पुरुष' है ? इसी तरह लोग खत्रीजीकी कृतियोंमें 'अश्लीलता' का आरोप करते हैं। इनमें कितने ही तो ऐसे हैं, जो खत्रीजीकी रचनाओंसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मैं उन्हें निमन्त्रण देता हूँ कि वे इस आक्षेपको कहींसे भी सिद्ध करें।

यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। पहले यह कुत्सित उद्देश्यसे फैलाया गया था; पर अब तो लिखी लकीरोंकी फ़क़ीरी की जाती है।

देवकीनन्दनजीकी भाषाके सम्बन्धमें भी थोड़ासा विचार कर लेना आवश्यक है। हम हिन्दीको राष्ट्रभाषा तो बनाना चाहते हैं; पर चलते उलटे मार्गपर हैं। राष्ट्र-भाषा वह है, जो सभी बोल-समझ सकें। आज जिस ढंगपर हिन्दी-गद्यका निर्माण हो रहा है, वह ग़लत और प्रमादपूर्ण है। वह स्थिर हो नहीं सकेगा। उस गद्यकी और उस गद्यके प्रवर्तकोंकी साहित्यिक मृत्यु अनिवार्य है। हिन्दीकी जो सबसे बड़ी हानि काशी-स्कूलके कुछ साहित्य-सेवियोंने की है, वह यह है कि—उन्होंने हिन्दीको उर्दू-द्रोही बना दिया। आज जब आधुनिक युगका नाटककार गद्य लिखने बैठता है, तब उसकी मतिपर हँसी आती है, क्योंकि उसका गद्य कुछ इस प्रकार होता है—"आकाशकी अनन्त नीलिमामें जब निशाकरका आसव नृत्य होता है, तभी दिनमणिकी मंजुल चन्दन-चितासे ओसका रंगीन रुदन नीरवतापत्रों पर छा जाता है।" हर्षकी बात है कि स्वर्गीय देवकीनन्दनजीने ऐसी भद्दी ग़लती नहीं की। वे स्वयं लिखते हैं—"फ़ारसी और अरबी भाषाके शब्द हिन्दू-समाजमें 'न पठेत यावनीं भाषा' की दीवार लाँघकर उसी प्रकार आ घुसे, जिस प्रकार हिमालयके उन्नत मस्तकको लाँघकर वह स्वयं आ गये।" और भी उदाहरण सुनिये। "किसी भी दार्शनिक ग्रन्थ या पत्रकी भाषाके लिए यदि कोष टटोलना पड़े, तो कुछ परवा नहीं, परन्तु साधारण विषयोंकी भाषाके लिए भी कोष (वह भी संस्कृत-कोष) की खोज करनी पड़े, तो निस्सन्देह दोषकी बात है।" देवकीनन्दनजीकी भाषा भी वैसी ही है। वह साधारण बोलचालकी भाषा है—वह भाषा, जो आगे चलकर राष्ट्र-भाषा होगी। सुना है, महात्मा गांधी तकने चन्द्रकान्ताकी भाषाको ही आदर्श बताया है। हर्षकी बात है कि हिन्दीके सभी सफल गद्य-लेखकोंने यही सिद्धान्त पकड़ा, या यों कहिये कि इसी सिद्धान्तको पकड़कर वे सफल हो सके। स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा, जो राष्ट्र-भाषाके अन्यतम सफल लेखक थे, स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी और देवकीनन्दनके सिंहासनके उत्तराधिकारी श्रीमान प्रेमचन्दजीकी भाषा यही है।

देवकीनन्दनजीके लिखनेकी क्षमता अद्भुत थी। सुनते हैं, इधर मैटर कम्पोज़ होता था, उधर वे लिखते जाते थे। वे मित्रमंडलीसे गप करते-करते भी लिख सकते थे। उनकी स्मरणशक्ति भी अत्यन्त तीव्र थी। मित्र-वत्सल, विनोद-प्रिय, उदार-हृदय, शाहख़र्च आराम-पसन्द—ऐसे थे हिन्दीके प्रथम औपन्यासिक सम्राट। हिन्दीवाले उन्हें पहचाने और उनकी क़द्र करें।
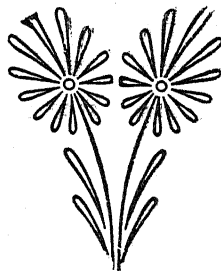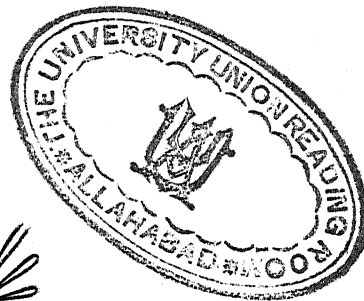
गुदड़ीका लाल

श्री मौलवी अब्दुल हक़

लोग बादशाहों और अमीरोंके कसीदे[1] और मरसिए[2] लिखते हैं, नामवर और मशहूर लोगोंके हालात क़लमबन्द करते हैं। मैं एक सिपाहीका हाल लिखता हूँ—इस खयालसे कि शायद कोई पढ़े और समझे कि दौलतमन्दों, अमीरों और बड़े लोगों ही के हालात लिखने और पढ़नेके क़ाबिल नहीं होते, बल्कि ग़रीबोंमें भी बहुतसे ऐसे होते हैं कि उनकी ज़िन्दगी हमारे लिए सबकआमोज़ (शिक्षाप्रद) हो सकती है। इन्सानका बेहतरीन मुतालआ[3] इन्सान है, और इन्सान होनेमें अमीर और ग़रीबका कोई फ़रक नहीं है—

"फूलमें गर आन है काँटेमें भी एक शान है।"

नूरखाँ मरहूम कैन्टोन्मेन्टके अव्वल रिसालेमें सिपाहियोंमें भरती हुए। अंगरेज़ी फ़ौजोंमें हैदराबादकी कैन्टोन्मेन्ट खास हैसियत और इम्तियाज़[4] रखती है। हर शख्स इसमें भरती नहीं हो सकता था। बहुत देख-भाल होती थी। बाज़ औक़ात[5] नसबनामे[6] तक देखे जाते थे। तब कहीं जाकर मुलाज़मत मिलती थी। कोशिश यह होती थी कि इसमें सिर्फ़ शुरफ़ा[7] भरती किये जायँ। यही वजह थी कि कैन्टोन्मेन्टवाले इज्ज़तकी नज़रसे देखे जाते थे; लेकिन बादमें यह क़ैद भी उठ गई, और इसमें तथा अंगरेज़ोंकी दूसरी फ़ौजोंमें कोई फ़रक न रहा। पहले ज़मानेमें सिपाहगरी बहुत मुअज़्ज़िज़[8] पेशा समझा जाता था। अब इसमें और दूसरे पेशोंमें कोई फ़रक नहीं रहा। बात यह है कि शरीफ़ आदमीका सँभलना बहुत मुश्किल काम है। इसमें एक आनबान और खुददारी[9] होती है, जो बहादुरी और इन्सानियतका असल जौहर है। हर कोई इसकी क़द्र नहीं कर सकता, इसलिए शरीफ़ रोता और रज़ील[10] हँसता है। यह जितना फैलता है, वह उतना ही सिकुड़ता है। कर्नल नवाब अफ़सर-उल-मुल्क बहादुर भी नूरखां मरहूम ही के रिसालेके हैं। कैन्टोन्मेन्टके बहुतसे लोग अकसर तो कर्नल साहब मौसूफ़[11]के तवस्सुत[12]से और बाज़ और ज़रायेसे हैदराबाद रियासतमें आकर मुलाज़िम हो गये हैं। इनमें से बहुतसे नवाब, कर्नल, मेजर, कप्तान और बड़े-बड़े ओहदेदार हैं; लेकिन देखना यह है कि उनमें कोई नूरखाँ भी है।

अव्वल रिसालेके बाज़ लोगोंसे मालूम हुआ कि खाँसाहब मरहूम फ़ौजमें भी बड़ी आनबानसे रहे, और सिपाहगिरी तथा फ़रज़शनासी[13]में मशहूर थे। वे ड्रिल-मास्टर थे, यानी गोरोंको, जो नये भरती होकर आते थे, ड्रिल सिखाते थे। इसलिए अकसर गोरे अफ़सर उनसे वाक़िफ़ थे। वे बड़े समझदार थे। घोड़ेको खूब पहचानते थे। बड़े-बड़े सरकश घोड़े, जो पीठपर हाथ न धरने देते थे, इन्होंने दुरुस्त किये। घोड़ोंको सिधाने और फेरनेमें इन्हें कमाल था। चूँकि बदनके छरहरे और हलके-फुलके थे। इसलिए घुड़दौड़में घोड़े दौड़ाते थे, और अकसर जीतते थे। इनके अफ़सर इनकी मुस्तैदी, खुशतदबीरी और सलीकेसे बहुत खुश थे; लेकिन खरेपनसे अकसर औक़ात नाराज़ हो जाते थे। एक दफ़ाका ज़िक्र है कि इनके कमांडिंग अफ़सरने किसी बातपर खफ़ा होकर, जैसा कि अंगरेज़ोंका आम क़ायदा है, इन्हें 'डैम' कह दिया। यह तो गाली थी। खाँसाहब किसीकी तिरछी नज़रके भी रवादार न थे। इन्होंने फ़ौरन रिपोर्ट कर दी। लोगोंने चाहा कि मामला रफ़ा-दफ़ा हो जाय और आगे न बढ़े; मगर खाँसाहबने एक न सुनी। मामलेने तूल खींचा और जेनरल साहबको लिखा गया। कमांडिंग अफ़सरका कोर्ट-मार्शल हुआ, और उससे कहा गया कि खाँसाहबसे माफ़ी माँगे। हरचन्द[14] बचना चाहा; मगर पेश न गई और मजबूरन उसे माफ़ी माँगनी पड़ी। ऐसी खुददारी और नाज़ुक-मिज़ाजीपर तरक्क़ीकी आशा रखना बेकार है। नतीजा यह हुआ कि दफ़ादारीसे आगे न बढ़े।

अच्छे-बुरे हर क़ौममें होते हैं। शरीफ़ अफ़सर

---

१ स्तोत्र। २ रुदन-कथा। ३ अध्ययन। ४ मुख्यता। ५ कभी-कभी। ६ वंशावलियाँ। ७ भद्र लोग। ८ सम्मान्य। ९ आत्म-सम्मान। १० नीच।

११ उपर्युक्त। १२ जरिया-वसीला। १३ कर्तव्य परायणता। १४ बहुत।

खाँसाहबकी सचाई, दयानत और जफ़ाकशी[1] की बहुत क़द्र करते थे, और इनको अपनी अर्दलीमें रखते थे; मगर बाज़ ऐसे भी थे, जिनके सिरमें खन्नास[2] समाया हुआ था। उन्हें खाँसाहबके यह ढंग पसन्द न थे, और वे हमेशा उनके नुक़सानके दरपै[3] रहते थे। ऐसे लोग अपनी और अपनी क़ौमवालोंकी खुददारीको जौहरे शराफ़त समझते हैं; लेकिन अगर यही जौहर किसी देशीमें होता है, तो उसे गुरूर और गुस्ताखी समझते हैं। ताहम इनके अकसर अंगरेज़ अफ़सर इनपर बहुत मेहरबान थे। खासकर कर्नल फ़्रेन्ट्रिन इनपर बड़ी इनायत करते थे, और खाँसाहबपर इस क़दर ऐतमाद[4] था कि शायद किसी और पर हो। जब कर्नल साहबने अपनी खिदमतसे इस्तीफ़ा दिया, तो अपना तमाम माल और असबाब और सामानको, जो हज़ारहा रुपयेका था, खाँसाहबके सुपुर्द कर गये। यह काम अंगरेज़ अफ़सरोंको बहुत नागवार हुआ। उस वक्तके कमांडिंग अफ़सरसे न रहा गया। उसने कर्नल मौसूफ़को खत लिखा कि आपने हमपर ऐतमाद न किया और एक देशी दफ़ादारको अपना तमाम क़ीमती सामान हवाले कर गये! अगर आप वह सामान हमारे सुपुर्द कर जाते, तो उसे अच्छे दामोंमें फ़रोख्त करके क़ीमत आपके पास भेज देते। अब भी अगर आप लिखें, तो इसका इन्तज़ाम हो सकता है। कर्नलने जवाब दिया कि मुझे नूरखाँपर तमाम अंग्रेज़ अफ़सरोंसे ज्यादा ऐतमाद है। आपको ज़हमत[5] करनेकी ज़रूरत नहीं। इसपर यह लोग और बरहम[6] हुए। एक बार कमांडिंग अफ़सर यह सामान देखने आया, और कहने लगा कि फ़लाँ-फ़लाँ चीज़ मेम साहबने हमारे यहाँसे मँगाई थीं। चलते वक्त वापस करना भूल गई। अब तुम यह सब चीज़ें हमारे बँगलेपर भेज दो। खाँसाहबने कहा—"मैं एक चीज़ भी नहीं दूँगा। आप कर्नल साहबको लिखिए। वह अगर मुझे लिखेंगे, तो मुझे देनेमें कुछ उज्र न होगा।" वह इस जवाबपर बहुत बिगड़ा और कहने लगा कि तुम हमें झूठा समझते हो? खाँसाहबने कहा—"मैं आपको झूठा नहीं समझता। यह सामान मेरे पास अमानत है; और मुझे किसीको इसमें से एक तिनका भी देनेका मजाज़[7] नहीं।" ग़रज़ वह बड़बड़ाया हुआ खिसियाना होकर चला गया। खाँसाहबने एक अंगरेज़ी मुहर्रिरसे इस सामानकी मुकम्मल फ़ेहरिस्त तैयार कराई और कुछ तो खुश खरीदपर और कुछ नीलामके ज़रिये बेचकर सारी रक़म कर्नल साहबको भेज दी।

न-मालूम यही कर्नल था या कोई दूसरा अफ़सर। जब मुलाज़मतसे क़तअ ताल्लुक़[8] करके जाने लगा, तो इसने एक सोनेकी घड़ी, एक उम्दा बन्दूक़ और पाँच सौ रुपये नक़द खाँसाहबको बतौर इनाम या शुक्राने[9] के दिये। खाँसाहबने लेनेसे इनकार किया। कर्नल और उसकी बीबीने बहुतेरा इसरार किया, मगर उन्होंने सिवा एक बन्दूक़के दूसरी कोई चीज़ न ली और बाक़ी सब चीज़ें वापस कर दीं।

कर्नल स्टूअर्ट, जो हंगोली छावनीके अफ़सर कमाण्डर थे, इनपर बहुत मेहरबान थे। रिसालेके शरीफ़ अंगरेज़ इनसे कहा करते थे कि हमारे बाद अंगरेज़ अफ़सर तुमको बहुत नुकसान पहुँचायेंगे। वे उनकी रविश[10] से खुश क्योंकर होते। खुशामदसे उन्हें चिढ़ थी, और गुलामाना इताअत आती नहीं थी। एक बारका ज़िक्र है कि अपने कर्नलके यहाँ खड़े थे कि एक अंगरेज़ अफ़सर घोड़ेपर सवार आया। घोड़ेसे उतरकर उसने खाँसाहबसे कहा कि घोड़ा पकड़ो। उन्होंने कहा—"मैं साईस नहीं हूँ।" उसने ऐसा जवाब काहेको सुना था। बहुत चीं बजबीं[11] हुआ; मगर क्या करता? आखिर वाग दरख्तकी एक शाखसे अटकाकर अन्दर चला गया। अब न-मालूम यह खाँसाहबकी शरारत थी, या इत्तफ़ाक़ था कि वाग शाखमें से निकल गई और घोड़ा भाग निकला। अब जो साहब बाहर आये, तो घोड़ा नदारद। बहुत झुँझलाया। बड़ी मुश्किलसे तलाश करके पकड़वाया, तो जगह-जगहसे ज़ख्मी पाया। इसने कर्नल साहबसे खाँसाहबकी बहुत शिकायत की। मालूम नहीं कि कर्नलने इस अंगरेज़को क्या जवाब दिया; लेकिन वह खाँसाहबसे बहुत खुश हुआ और कहा कि तुमने खूब किया।

खाँसाहबने जब वह रंग देखा, तो खैर इसीमें देखी कि किसी तरह बीमार बन गये और अस्पतालमें रुजू[12] हुए।

---

१ कठोर श्रम। २ शैतानियत। ३ पीछे। ४ विश्वास। ५ कष्ट। ६ खफ़ा। ७ हक़।

८ सम्बन्ध-विच्छेद। ९ पारितोषिक। १० चाल। ११ युद्ध। १२ प्रविष्ट।

कर्नल स्टूअर्टने डाक्टरसे कहकर उनको मदद दी, और इस तरह वह कुछ दिनों बाद डाक्टरकी रिपोर्टपर वज़ीफ़ा लेकर फ़ौजी मुलाज़मतसे सुबुकदोश[१] हो गये। सच है, इन्सानकी बुराइयाँ ही उसकी तबाहीका बायस नहीं होतीं, बाज़ वक्त उसकी ख़ूबियाँ भी उसे ले डूबती हैं।

कर्नल स्टूअर्टने बहुत चाहा कि वह मिस्टर हैन्किन नाज़िम पुलिससे सिफ़ारिश करके इन्हें एक अच्छा ओहदा दिला दें; मगर ख़ाँसाहबने इसे क़ुबूल न किया और कहा कि मैं अब अपने वतन दौलताबादमें ही रहना चाहता हूँ। अगर आप सूबेदार साहब औरंगाबादसे सिफ़ारिश फ़रमा दें, तो बहुत अच्छा हो। कर्नल साहब बहुत इसरार करते रहे कि देखो, तुम्हें पुलिसमें बहुत अच्छी खिदमत मिल जायगी, इनकार न करो। मगर ये न माने। आख़िर मजबूर होकर नवाब मुक्तदर जंग बहादुर* सूबेदार सूबा औरंगाबादसे सिफ़ारिश की। सूबेदार साहबकी इनायतसे वह क़िला दौलताबादकी जमीअत[२]के जमादार हो गये और बहुत ख़ुश थे।

नवाब मुक्तदर जंगके बाद नवाब बशीरनवाज़ जंग बहादुर औरंगाबादकी सूबेदारीपर आये। वह भी ख़ाँसाहबपर बहुत मेहरबान थे। उसी ज़मानेमें लार्ड कर्ज़न वायसराय दौलताबाद तशरीफ़ लाये। ख़ाँसाहबने सलामी देनेकी तैयारी की। कई तोपें साथ-साथ रखकर सलामी देनी शुरू की। लार्ड कर्ज़न घड़ी निकालकर देख रहे थे। जब सलामी खत्म हुई, तो नवाब साहबसे ख़ाँ साहबकी उन्होंने तारीफ़ की। सलामी ऐसे क़ायदे और अन्दाज़से हुई कि एक सेकेण्डका भी फ़र्क़ न होने पाया। नवाब साहबने इसका तज़किरा[३] ख़ाँसाहबसे किया, और कहा कि मियाँ, अब तुम्हारी ख़ैर नहीं मालूम होती।

लार्ड कर्ज़न जब क़िलेके ऊपर बालाहिसारपर गये, तो वहाँ सुस्तानेके लिए कुरसीपर बैठ गये, और जेबसे सिगरेटदान निकालकर सिगरेट पीना चाहा। दियासलाई निकालकर सिगरेट सुलगाया ही था कि यह फ़ौजी सलाम करके आगे बढ़े, और कहा कि यहाँ सिगरेट पीनेकी इजाज़त नहीं है। लार्ड कर्ज़नने जलता हुआ सिगरेट नीचे फेंक दिया और जूतेसे रगड़ डाला। यह हरकत देखकर नवाब बशीरनवाज़ जंग बहादुर और दूसरे ओहदेदारोंका रंग फ़क़ हो गया; मगर मौक़ा ऐसा था कि कुछ कर नहीं सकते थे। लहूके घूँट पीकर चुप रह गये। बादमें बहुत-कुछ ले-दे की। मगर अब क्या हो सकता था। ख़ाँसाहबने क़ायदेकी पूरी पाबन्दी की थी। इसमें चूँ व चरा[४]की कोई गुंजाइश न थी।

अब इसे इत्तफ़ाक़ कहिये या ख़ाँसाहबकी तक़दीर कि लार्ड कर्ज़नने जानेके बाद ही फ़ाइनेन्सकी मोहतमदी[५]के लिए मिस्टर वाकरका इन्तख़ाब[६] किया। रियासतके मालिये[७]की हालत इस ज़मानेमें बहुत ख़राब थी। मिस्टर वाकरने इसलाहियत[८] शुरू की। इस लपेटमें क़िला दौलताबाद भी आ गया। औरोंके साथ ख़ाँसाहब भी तख़फ़ीफ़[९]में आ गये।

दौलताबादमें उनकी कुछ ज़मीन थी। इसमें बाग़ लगाना शुरू कर दिया। मिस्टर वाकर दौरेपर दौलताबाद आये, तो एक रोज़ टहलते हुए इस बाग़में आ पहुँचे। ख़ाँसाहब बैठे घास खुरप रहे थे। मिस्टर वाकरको आते देखा, तो उठकर सलाम किया। पूछा—"क्या हाल है?" कहने लगे—"जान व मालको दुआ देता हूँ। अब आपकी बदौलत घास खोदनेकी नौबत आ गई है।" मिस्टर वाकरने कहा—"यह तो बहुत अच्छा काम है। देखो, तुम्हारे दरख़्त अंजीरोंसे कैसे लदे हुए हैं। एक-एक आनेको भी एक-एक अंजीर बेचो, तो कितनी आमदनी हो जायगी।" ख़ाँसाहब घबराये। कहीं ऐसा न हो कि यह कम्बख़्त अंजीरोंपर टैक्स लगा दे। तड़से जवाब दिया कि आपने अंजीर लदे हुए तो देख लिये और यह न देखा कि कितने सड़-गलकर गिर जाते हैं। कितने हवा-आँधीसे गिर जाते हैं। कितने परिन्दे खा जाते हैं, और फिर हमारी दिन-रातकी मेहनत। मिस्टर वाकर मुस्कराते हुए चल दिये।

इसी ज़मानेमें डाक्टर सैयद सिराज-उल-हसन साहब औरंगाबादके सदर-मोहतमीम-तालीमात (Chief-Inspector of Schools) होकर आये। डाक्टर साहब बलाके मर्दुमशनास[१०] हैं। थोड़ीसी देरमें और चन्द ही बातोंमें आदमीको ऐसा परख लेते हैं कि हैरत होती है। फिर जैसा वह आदमीको समझते हैं, वैसा ही निकलता है।

१ मुक्त। २ फ़ौज। ३ जिक्र।
* हैदराबाद रियासतमें 'जंग बहादुर' की पदवी दी जाती है।

४ चूँ-चाँ। ५ मन्त्रित्व। ६ चुनाव। ७ लगान। ८ सुधार, ९ reduction घटौती। १० आदमीको पहचाननेवाले।

कभी खता[1] होती नहीं देखी। डाक्टर साहब ऐसे क़ाबिल जौहरोंकी तलाशमें रहते हैं। फ़ौरन ही अपने साया-आतफ़त[2] में ले लिया। डाक्टर साहबका वर्ताव इनसे बहुत शरीफ़ाना और दोस्ताना था। नवाब बरज़ोरजंग इस ज़मानेमें सूबेदार थे। मक़बरेका बाग़ इनकी निगरानीमें था। डाक्टर साहबने सिफ़ारिश करके बाग़से पाँच रुपया महीना एलाउन्स मुक़र्रर करा दिया।

नवाब बरज़ोरजंगके पास एक घोड़ा था। वे इसे बेचना चाहते थे। अफ़सरोंके क्लबमें भी इसका ज़िक्र आया। डाक्टर साहबने कहा—मुझे घोड़ेकी ज़रूरत है। मैं उसे खरीद लूँगा; मगर पहले नूरख़ाँको दिखा दूँ। वहाँसे आकर डाक्टर साहबने ख़ाँसाहबसे यह वाक़या बयान किया, और कहा कि भई, इस घोड़ेको देख आओ। कोई ऐब तो नहीं। ख़ाँसाहबने कहा—"आपने ग़ज़ब किया कि मेरा नाम ले दिया। घोड़ेमें ऐब होगा, तो मैं छुपाऊँगा नहीं, और सूबेदार साहब मुफ़्तमें मुझसे नाराज़ हो जायँगे।" डाक्टर साहबने कहा—"तुम ख़्वामख़्वाह वहम करते हो। कल जाके ज़रूर घोड़ा देख लो।" ख़ाँसाहब गये। घोड़ा नसलका तो अच्छा था; मगर पाँचों शरई ऐब मौजूद थे। उन्होंने आकर साफ़-साफ़ कह दिया। डाक्टर साहबने घोड़ा ख़रीदनेसे इनकार कर दिया। सूबेदार साहब आगबबूला हो गये। दूसरे रोज़ मक़बरेमें आये। नामका रजिस्टर मँगवाया और नूरख़ाँके नामपर इस ज़ोरसे क़लम खींचा कि अगर हरफ़ों और लफ़्ज़ोंमें जान होती, तो वे बिलबिला उठते। डाक्टर साहबको मालूम हुआ, तो बहुत अफ़सोस हुआ; मगर उन्होंने तलाफ़ी कर दी। यह सुनकर सूबेदार और भी झुँझलाये।

डाक्टर साहब तरक्की पाकर हैदराबाद चले गये। उनकी ख़िदमतका दूसरा इन्तज़ाम हो गया। कुछ दिनों बाद डाक्टर साहब नाज़िम तालीमात (Director of Education) हुए, और मैं उनकी इनायतसे सदर मोहतमीम तालीमात (Chief-Inspector of Schools) होकर औरंगाबाद आया। डाक्टर साहब ही ने मुझे नूरखाँसे मिलाया, और इनकी सिफ़ारिश की। डाक्टर साहबने इन्हें आरज़ी तौरपर दौलताबादमें मुदर्रिस[3] कर दिया था। मैंने आरज़ी तौरपर अपने दफ़्तरमें मुहर्रिर[4] कर दिया। वह मुदर्रिसी और मुहर्रिरी तो क्या करते; मगर बहुतसे मुदर्रिसों और मुहर्रिरोंसे ज़्यादा कार आमद[5] थे। डाक्टर साहबने जब बाग़की निगरानी मेरे हवाले की तो ख़ाँसाहबका एलाउन्स भी जारी हो गया।

आला हज़रत[6] और अक़दस बाद तख़्तनशीनी औरंगाबाद रौनक[7] अफ़रोज़ हुए, तो वहाँकी ख़ुश आबो-हवाको बहुत पसन्द फरमाया, और एक अज़ीम-उल-शान बाग़ लगानेका हुक्म दिया। यह काम डाक्टर साहबके सुपुर्द हुआ, और उनसे बेहतर कोई यह काम कर भी नहीं सकता था। डाक्टर साहबकी मेहरबानीसे आख़िर इस बाग़के अमलेमें[8] ख़ाँसाहबको भी एक अच्छी-सी जगह मिल गई, जो उनकी तबीयतके मुनासिब थी। आख़िर दम तक वे इसी ख़िदमतपर रहे, और जब तक दममें दम रहा, अपने कामको बड़ी मेहनत और दयानतसे करते रहे।

यों मेहनतसे काम तो और भी करते हैं; लेकिन खां साहबमें बाज़ ऐसी ख़ूबियाँ थीं, जो बड़े-बड़े लोगोंमें भी नहीं होतीं। सचाई बातकी और मामलेकी उनकी सरिश्त[9] में थी। ख़्वाह जानपर भी क्यों न बन जाये, वह सच कहनेसे कभी नहीं चूकते थे। इसीमें इन्हें नुक़सान भी उठाने पड़े; मगर वह सचाईकी खातिर सब-कुछ गवारा कर लेते थे। मुस्तैद ऐसे थे कि अच्छे-अच्छे जवान उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। दिन हो, रात हो, हर वक्त काम करनेके लिए तैयार। अकसर दौलताबादसे * पैदल आते-जाते थे। किसी कामको कहते, तो ऐसी ख़ुशी-ख़ुशी करते थे कि कोई अपना काम भी इस क़दर ख़ुशीसे न करता होगा। दोस्तीके बड़े पक्के और बड़े वज़नदार थे। चूँकि अदना-आला[10] सब उनकी इज्ज़त करते थे, इसलिए उनसे ग़रीब दोस्तोंके बहुत-से काम निकलते थे। उनका घर मेहमान-सराय था। औरंगाबादके आने-जानेवाले खानेके वक्त बेतकल्लुफ़ उनके घर पहुँच जाते, और वह उनसे बहुत ख़ुश होते थे। बाज़ लोग जो मुसाफ़िर-बँगलेमें आकर ठहर जाते थे, उनकी भी दावत कर

---

१ ग़लती। २ दयाकी छाया। ३ अध्यापक।

४ क्लर्क। ५ काम आनेवाले। ६ His Exalted Highness the Nizam। ७ पधारे। ८ स्टाफ़। ९ प्रकृति। १० छोटे-बड़े।

* दौलताबाद औरंगाबादसे ७ मीलकी दूरीपर है।

देते थे। बाज़ औक़ात टोलियोंकी टोलियाँ पहुँच जाती थीं, और वह उनकी दावतें बड़ी फ़ैयाज़ीसे[१] करते थे। इस क़दर क़लील मुआश (निर्धन) होनेपर उनकी यह मेहमान-नवाज़ी देखकर हैरत होती थी। उनकी बीवी भी ऐसी नेकबख्त थीं कि दफ़ातन मेहमानोंके पहुँच जानेसे कभी नाराज़ न होतीं, बल्कि ख़ुशी-ख़ुशी काम करतीं और खिलाती थीं। ख़ुददार ऐसे थे कि किसीके एक पैसेके रवादार न होते थे। डाक्टर सिराज-उल-हसन हरचन्द तरह-तरहसे उनके साथ सुलूक करना चाहते थे, मगर वह टाल जाते थे। मुझसे उन्हें ख़ास उन्स[२] था। कोई चीज़ देता, तो कभी इनकार न करते, बल्कि कभी-कभी ख़ुद फ़रमाइश करते थे। मीठेके बेहद शाइक[३] थे। उनका क़ौल था कि 'अगर किसीको मीठा खानेको मिले, तो वह नमक क्यों खाय।' वह कहा करते थे कि नमकीन खाना मजबूरीसे खाता हूँ। मुझमें अगर इस्ताअत (सामर्थ्य) हो, तो हमेशा मीठा ही खाया करूँ और नमकीनको हाथ न लगाऊं। उन्हें मीठा खाते देखकर हैरत होती थी। अकसर जेबमें गुड़ रखते थे। एक बार मेरे साथ दावतमें गये। क़िस्म-क़िस्मके तक़ल्लुफ़के खाने थे। खाँसाहबने छूटते ही मीठेपर हाथ डाला। एक साहब, जो दावतमें शरीक़ थे, यह ख़याल करके कि खाँसाहबको धोखा हुआ है, कहने लगे—"हज़रत! यह मीठा है।" मगर उन्होंने कुछ परवा न की और बराबर खाते रहे। जब वह ख़त्म हो गया, तो दूसरे मीठेपर हाथ बढ़ाया। उन साहबने फिर टोका कि हज़रत यह मीठा है। उन्होंने कुछ जवाब न दिया, और इसे भी ख़त्म कर डाला। जब कभी वह किसी दोस्तके यहाँ जाते, तो वह उन्हें ज़रूर मीठा खिलाता, और वे खुश होकर खाते।

खाँसाहब बहुत ज़िन्दादिल थे। चेहरेपर हमेशा मुसकुराहट रहती थी, जिसे देखकर खुशी होती थी। वह बच्चोंमें बच्च, जवानोंमें जवान और बूढ़ोंमें बूढ़े थे। ग़म और फ़िक्रको पास न आने देते थे—हमेशा खुश रहते थे और दूसरोंको भी खुश रखते थे। इनसे मिलने और बातें करनेसे ग़म ग़लत होता था। आख़िर दम तक उनकी ज़िन्दादिली वैसी ही रही।

डाक्टर सिराज-उल हसन साहब जब कभी औरंगाबाद आते, तो स्टेशनसे उतरते ही अपना रुपया-पैसा सब उनके हवाले कर देते थे, और सब ख़र्च उन्हींके हाथोंसे होता था। जानेसे एक रोज़ क़बल वह हिसाब लेकर बैठते। बाज़ वक्त जब विध न मिलती, तो आधी-आधी रात तक लिए बैठे रहते। हरचन्द डाक्टर साहब कहते कि खाँसाहब, यह तुम क्या करते हो? ख़र्च होकर जो बाक़ी बचा, वह दे दो, या ज्यादा ख़र्च हुआ तो ले लो; मगर वह कहाँ मानते थे। जब तक हिसाब ठीक न बैठता, इन्हें इतमीनान न होता। चलते वक्त कहते कि लीजिए साहब, यह आपका हिसाब है। इतना ख़र्च हुआ और इतना बचा था। कुछ ज्याद ख़र्च हो जाता, तो कहते कि इतने पैसे हमारे ख़र्च हुए, यह हमें दिलवाइये। कभी ऐसा हुआ कि इन्हें कुछ सुबह हुआ, तो जानेके बाद फिर हिसाब ले बैठते और ख़त लिखकर भेजते कि इतने आने आपके रह गये थे, वह भेजे जाते हैं—या इतने पैसे मेरे ज्यादा ख़र्च हो गये थे, वह भेज दीजिएगा। डाक्टर साहब इन बातोंपर बहुत झुँझलाते थे, मगर वह अपनी वज़ा[४] न छोड़ते थे।

वह हिसाबके खरे, बातके खरे और दिलके खरे थे। वह महर[५] व वफ़ाके पुतले और ज़िन्दादिलीकी तसवीर थे। ऐसे नेक नफ्स[६], हमदर्द[७], हँसमुख और वज़ादार[८] लोग कहाँ होते हैं? इनके बुढ़ापेपर जवानोंको रश्क[९] आता था। और उनकी मुस्तैदीको देखकर दिलमें उमंग पैदा होती थी। उनकी ज़िन्दगी बेलौस[१०] थी, और उनकी ज़िन्दगीका हर मिनट किसी-न-किसी काममें सर्फ़ होता था। मुझे वह अकसर याद आते हैं, और यही हाल उनके दूसरे जाननेवालों और दोस्तोंका है। और यह सबूत है इस बातका कि वह कैसे अच्छे आदमी थे। कौमें ऐसे ही आदमीसे बनती हैं। काश, हममें बहुतसे नूरखाँ हों।

---

१ उदारता। २ मुहब्बत। ३ शौकीन।

४ तरीका। ५ प्रेम। ६ सज्जन। ७ सहानुभूतिपूर्ण। ८ अपने तरीकेके पाबन्द। ९ ईर्ष्या। १० बेलाग।

आँखें खुलीं

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

हिन्दू-समाज। एक भाई, तीन बहनें। हरएकका दहेज पाँच हज़ार। पूरे पन्द्रह हज़ार! सुधा बड़ी है तो क्या, कन्या जो ठहरी! मनोहर पुत्र है—दस हज़ारकी हुंडी। फिर मनोहरका लाड-प्यार क्यों न हो? और चुन्नीके लिए? उपेक्षा।

नौचन्दीका मेला। सुन्दर-सुन्दर खिलौने, गुड़िया, गुड़ियोंके छोटे-छोटे बर्तन—कढ़ाई, करछुली, चूल्हा, चकिया। मोटर, रेलगाड़ी। हरी-लाल मिठाइयाँ। हवामें उड़नेवाले गुब्बारे।

'भइया बाबूजीके साथ गया है। सारी ही चीजें तो लायेगा। मैं—मुझे कुछ भी नहीं। खेल भी न सकूँगी। भइया छूने कब देगा? बाबूजी मारेंगे।'

'अम्मा एक दिन मेला देखने जायँगी। मैं भी जाऊँगी। सारे मेलेमें एक ही दिन न? दो पैसेकी मिट्टीकी गिरस्ती ले देंगी। बाबूजीकी जेब पैसोंसे भरी रहती है। दूकानसे ढेर-भर पैसे लाते हैं। भइया जो कहता है, ले देते हैं। अम्माके पास पैसे कहाँ हैं?'

× × ×

—'सुधा मेला देखने चल, पर किसी चीज़के लिए रोई तो घर आकर पिटेगी।'

सुधाका नन्हा-सा हृदय सहम गया। मेला देखनेका लोभ न छूटा।

मोहल्लेकी सारी-की-सारी लड़कियाँ रोज़ मेला देखने जाती हैं। कैसी अच्छी-अच्छी बातें सुनाती हैं। खिलौनोंकी दूकानें हैं। झूले लगे हैं। एक पैसा दे दो, झूलेवाला झुला देता है। कटा सर बोलता है। हाँ, सर कट गया है, लड़की ज़िन्दा है! शान्ति यही तो कह रही थी।

सुधा खिलौने लेनेमें किसीकी बराबरी नहीं कर सकती, तो क्या मेला भी न देखेगी? सहेलियाँ उससे क्या कहेंगी! अचरज मानेंगी। उसे जो मुँह छिपाना पड़ेगा। मेला तो ज़रूर देखेगी।

अपने बाबूजीकी उँगली पकड़े सुधा घसिटती चली जा रही थी। जापानी खिलौनोंकी दूकान। उसका मन चलने लगा। दूकानवाला बुड्ढा, वही दाढ़ीवाला! कैसा अच्छा है।

सुधाके मनकी बात वह कैसे जान गया?

बोला—'बाबूजी, लड़कीको मोटर पसन्द है,—लो बेटी।'

हाथसे छीनकर बाबूजीने मोटर जहाँकी तहाँ रख दी। बोले—'फिर ले देंगे।'

कोमल हृदय, बच्चेका मन। इतनी चोट काफ़ी है। ओठ काँपे, नाक फूली, आँसू चमके, डरके मारे आँखोंमें ही निगल गई। घर जाकर पिटनेका डर। पर 'मोटर बड़ी अच्छी है!'

माने घरमें ही चलते वक्त कह दिया था—'ज़िद न करना, तेरे बाबूजी नाराज़ होंगे; फिर तुझे कभी न ले जायँगे, मेरा भी जाना बन्द हो जायगा।'

बच्चेका मन। मार भी भूल जाता है, डर भी याद नहीं रहता।

—'मैं तो मोटर लूँगी। मो⋯ट⋯र! अम्मा मोटर ले दो।—बाबूजी,—'

× × ×

घर आकर दुखियाने रोटी भी न खाई। खाई घुड़कियाँ और डाँट। मोटर फिर भी न भूली। मोटर ले आती, तो गुड़ियोंको बिठाती। शान्तिसे कहती—'मैं भी मोटर लाई हूँ।' दयासे कहती—'तेरी रेलगाड़ी किस कामकी! देख मेरी मोटर।'

पर कहती कहाँसे! बाबूजी तो गुस्सा हो गये। मा ज़रा कह देती तो—। माने कहा—'तू रोई क्यों मेलेमें—सबके सामने। रोती न तो शायद आज ला देते। अब न लायँगे।'

—'कभी नहीं लायँगे! कभी नहीं!'

मुँह फुला लिया। मनमें आई अम्मासे अड्डी कर दे।

दादी बोली—'चुड़ैलका गुस्सा तो देखो,—हर बातमें भइयाकी नकल !'

माकी आँखें छलछला आईं।

सुधा सिसकने लगी। मा बेटीको गोदमें पाकर और बेटी माकी गोद पाकर सब भूल गईं। बिटिया सो गई।

× × ×

सुधा फूली नहीं समाती—'सान्ती देख मेरी मोटर! मौसीने ले दी है। घर चल, तो और भी दिखाऊँ—गुब्बारे, सोने-जगनेवाली गुड़िया, पिटारी-भर गुड़ियाके बर्तन। बहुत-सारी चीजें! हमारी मौसी ऐसी अच्छी है! गोटेकी साड़ी भी ले दी है। देख आ चलके, तेरी साड़ीसे भी अच्छी!'

पतले ओठोंपर भीनी मुस्कुराहट, आँखोंमें बाल-सुलभ सरलता, खुशीकी चमक।

—'मैं तो मौसीके साथ उसके घर जाऊँगी। मौसीकी एक बिटिया है, सरोज। पढ़ती है। भइयाकी-सी उसके पास बहुत-सी किताब हैं—सिलेट पेन्सिल। उसके बाबूजी खूब प्यार करते हैं!'

—'मेरी भी मौसी खूब प्यार करती है!'

—'मैं तो पढ़ूँगी, सरोजके मास्टरसे। फिर बाबूजी, और सब-कोई, मुझे खूब प्यार करेंगे।'

× × ×

मौसीका घर। मौसी खूब प्यार करती है; पर अम्माकी याद आती है। किसीसे कहती नहीं। मौसी कहीं भेज न दे! वहाँ फिर भइयाकी होड़ कैसे करेगी! अम्माकी यादके मारे आँखोंमें आँसू आते हैं, आँखें मल डालती है। मौसी जान गई तो?

एक दिन मौसीने देख लिया, पूछ बैठीं—'आँखमें क्या हो गया, लाल क्यों है?'

सुधा चुप।

मौसीने साड़ीका पल्ला फूँककर आँखें सेक दीं।

सब कहते हैं—'कैसी लड़की है, तोताचश्म! एक दिन भी किसीकी याद नहीं की! मा रोती होगी।' सुधाका जी चाहता है, कह दे।

× × ×

सुधा बीमार है। एक सौ चार डिगरी बुखार। टायफाइड।

मौसी बोली—'बिटिया, तार देकर तेरी अम्माको बुला दूँ!'

होश कहाँ जो बोले! ज़रासी आँखें खोलीं, फिर मींच लीं।

दूसरे दिन सबेरे बुखार घटा। मौसीने पूछा—'अम्माको बुला दूँ?'

कहीं बाबूजी आकर गुस्सा न हों। कहेंगे—'तूने तो कहा था, आनेके लिए जिद न करूँगी।' बाबूजीने तो पहलेसे ही कह दिया था—'किसीको हैरान किया, तो फिर कभी न जाने पायगी।'

—'फिर बाबूजी कभी न भेजेंगे। पढ़ूँगी कैसे?'

दिन चढ़ता गया—बुखार भी बढ़ता गया। सुधाकी सबेरेकी चिन्ता शाम तक बिलकुल दूर हो गई। मौसाने थर्मामीटर लगाया १०३½ डिगरी! झपकी—बेहोशी।

कई दिन बाद आँखें खुलीं। अम्माकी गोदमें चिपटकर रोई, खूब रोई। मा-बेटी—दोनों हृदय रोये। तीसरा हृदय भी पिघला। पिताका हृदय ठहरा। गला भर आया। मुँहसे आवाज़ न निकली।

सुधाके बाबूजी कुर्सीसे उठकर बाहर बरामदेमें चले गये। उनसे रहा न गया। रेलिंगपर कुहनी टेककर रूमालसे आँसू पोंछने लगे। पश्चात्तापके आँसू थे, रोके न रुके। पिता होकर अपनी ही सन्तान—पुत्र और कन्यामें इतना भेद-भाव! अपने-आपको धिक्कारने लगे। आँखें खुल गईं।

सुधाने देख लिया। चिल्लाई—'बाबूजी!'

भर्राई हुई आवाजमें—'हाँ, बिटिया!'

बाबूजीके भीतर आते-आते सहसा सुधाकी आँखें बन्द हो गईं, ज़र्द चेहरा और भी ज़र्द पड़ गया। मा चीख उठी।

सब घबरा गये—'यह क्या हुआ!'

सलीम

[श्री सोभागमल गहलोत

कविवर मुकुटधर

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

रात्रिके आठ बज चुके थे। तारिका-मंडित नीलाकाशसे शिशिरकी बूँदें झर रही थीं। मैं शीतसे ठिठुरता हुआ अपने छोटसे कोटके भीतर मुट्ठियोंको दवाये हुए सड़कके फुटपाथसे धीरे-धीरे जा रहा था। पास ही मेरे एक कवि-मित्रका सुन्दर गृह था। मनमें आया कि चलूँ, एक प्याला चायके लिए कह दूँ।

किन्तु वहाँ पहुँचते ही हम दोनोंमें वार्तालाप प्रारम्भ हो गया। प्रसंग चल पड़ा हिन्दी-कविताका। मैंने कहा—"भई, अपने स्वास्थ्यके शुभ नामपर पहले एक प्याला चाय पिलाओ, तब बातोंमें कुछ मिठास आये।

इसके बाद हम लोग कविता-सम्बन्धी अपनी-अपनी व्यक्तिगत रुचिकी बातें करने लगे। नवयुवक कवियोंकी चर्चा चलनेपर मेरे मित्रने कहा—"मुझे तो 'मुकुटधर' अधिक प्रिय जान पड़ते हैं। उनके भाव सरल, स्पष्ट और मार्मिक हैं। मुझे याद आया, आजसे सात वर्ष पहले भी उन्होंने यही बात मुझसे काशीमें कही थी। इतने दिनों बाद, एकाएक इस तरह मुकुटधरजीके कवित्वका स्मरण आ जानेसे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे मित्रने अनन्त आकाशमें चिरपरिचित किन्तु भूले हुए एक उज्ज्वल नक्षत्रकी ओर इशारा कर दिया हो।

मुकुटधरजी द्विवेदी-युग और वर्तमान नवीन स्वर्ण-युगके सन्धिकालके कवि हैं। आज तो हिन्दीके मधुवनमें अनेक मधुपोंके गुंजन, अनेक विहगोंके कल-कूजन सुन पड़ते हैं; परन्तु उस युगमें जब कि वर्तमान खड़ी बोलीकी कवितामें कलाका प्रथम दर्शन ही हुआ था, मुकुटधरजीने ही पहले-पहल कोमल, मधुर और परिमार्जित रचनाएँ हमारी वनलक्ष्मीके चरणोंमें भेंट की थीं। हिन्दी-कविताके नवीन युगके पूर्व भाषामें सुघड़ता और सरसता, भावोंमें सहृदयता और मार्मिकता, छन्दोंमें यथोचित गतिशीलता और सुचारुताका श्रेय अनेक अंशोंमें मुकुटधरजीको दिया जा सकता है।

हिन्दी-कविताकी प्रगतिमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हुए भी मुकुटधरजी इन दिनों वर्तमान साहित्यिकोंकी स्मृति-तालिकामें अंकित नहीं हैं। अस्वस्थ रहनेके कारण वे साहित्यिक अज्ञातवास कर रहे हैं। वे सबकी ओटमें हैं। हम उन्हें भूल गये हैं, वे हमें भूल गये हैं। परन्तु कितनी जल्द?—यही सब सोचता हुआ मैं धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगा।

[२]

राष्ट्रके विशिष्ट व्यक्तियोंकी तरह ही साहित्यमें भी प्रतिभाशाली व्यक्तित्वके कवि विरले ही होते हैं। अधिकांश तो ऐसे ही होते हैं, जो उन भगीरथ-पुरुषोंकी प्रतिभाके रथके पीछे-पीछे भागीरथीकी भाँति अनुसरण करते रहते हैं। अनुशरणशील कवि युग-प्रधान कविके स्वरमें अपना स्वर उसी भाँति मिला देते हैं, जिस प्रकार समुद्रके महागानमें नदियाँ अपने-अपने छोटे-छोटे गीतोंको। उनका गान समुद्रका गान हो जाता है, समुद्रका गान उनका गान हो जाता है। परन्तु अतीतके उस पार खड़े होकर हम समुद्रका ही अजस्र गान सुनते रहते हैं, हमें स्मरण भी नहीं रहता कि इसमें कितनी नदियोंका कल-कल निनाद मिला हुआ है। इसी भाँति साहित्यके इतिहासमें भी अपने समयके उन्हीं सप्तसिन्धुओंका नाम रह जाता है, जो अगाध प्रतिभासे अनेक सरिताओंको उन्मुखकर अपनेमें लीन कर लेते हैं।

परन्तु जब कवि अनुशरणशील न होकर एक स्वतन्त्र गायक बना रहता है, तब उसके व्यक्तित्वकी कुछ और ही कोटि होती है, जैसे महाकाशमें भिन्न-भिन्न वर्णोंके विहंगोंकी। महाकाशमें अनेक रंग, अनेक स्वरके नाना विहंग, अपनी कलरव-क्रीड़ासे दिगन्तको गुंजरित करते रहते हैं—सबका स्वर एक ही अनन्त लयमें गूँजते हुए भी विशिष्ट विहंगोंके स्वर अपनी स्वतन्त्र वाणीका स्पष्ट परिचय देते हैं, ज़रा ध्यानसे सुनते ही हम तत्काल कह सकते हैं, यह तो अमुक खगका कलकण्ठ है। इसी भाँति साहित्यके विशाल गगनमें गूँजते हुए अनेक स्वरोंके बीच जिसने अपने कण्ठकी मौलिकता खो नहीं दी है, जिसने अपने स्वतन्त्र चेतनको सुरक्षित रखा है, उसपर हमारी दृष्टि सहज ही अटक जाती है। हम उसके यश और नामसे परिचित हो जाते हैं। ऐसे स्वतन्त्र-चेता कवियोंसे ही साहित्य अनुप्राणित होता है। मुकुटधरजी एक ऐसे ही स्वतन्त्रचेता कवि हैं। उन्होंने थोड़ी ही कविताएँ

लिखी हैं; परन्तु उनमें उनका अस्तित्व है। उनके कवित्वमें हृद्स्पन्दन और आकर्षण है।

त्रिपाठीजीने 'कविता-कौमुदी' (द्वितीय भाग) में उनका चरित देते हुए लिखा है—"मुकुटधरजी प्रकृतिके बड़े उपासक हैं। बचपनसे ही उन्हें चित्र, कविता और संगीतसे बड़ा प्रेम है। हरे-हरे खेतों, मैदानों, नदीके किनारे चट्टानोंपर अकेले घूमनेमें उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। खेतोंमें काम करते हुए किसानों और मज़दूरोंसे बातें करनेमें ये मानसिक सुखका अनुभव करते हैं।"

उनकी इस प्रकृतिका परिचय उनकी कृषक-सम्बन्धी कविताओंमें मिल जाता है। दूर खेतोंमें हल जोतते हुए किसानके मर्मस्पर्शी गानको लक्ष्यकर वे कहते हैं :—

"जब वर्षाऋतुकी ऊष्मामें
होकर श्रमसे क्लान्त महान,
हल जोतते किसान छेड़ता
है जब अपनी लम्बी तान,
सुन तब उसे वाटिकासे निज
करता मैं उर-बीच विचार,
खेतोंमें यों आर्त्तस्वरसे
यह किसको है रहा पुकार!
या कि शिशिरकी शीत-निशामें
मींज रहा हो जब वह धान,
सुनता हूँ तब शय्यासे मैं
उसका करुणा पूरित गान।
भर जाता है जी, नेत्रोंसे
निद्रा करती शीघ्र प्रयाण,
हृदय सोचता—जलते किसके—
विरहानलसे इसके प्राण?"

मुकुटधरजीका जीवन नगरोंकी अपेक्षा ग्रामोंमें ही अधिक बीता है, इसी कारण उनकी प्रकृति और कवितामें इतनी सरलता है। कविने कितनी आकुलताके साथ अपने हृदयको कृषकके गानपर न्योछावर कर दिया है। हृत्तन्त्रीके तारमें अपने-अपने जीवनका तराना हम सभी लोग गुनगुना लेते हैं; किन्तु उस तारमें अखिल विश्वकी विकल आत्माका गान कितने लोग सुन पाते हैं? यदि हम दिन-भरके थके मज़दूरों, झोंपड़ोंमें कराहनेवाले निर्धनोंकी करुण मूर्ति और वाणी अपने-अपने छन्दोंमें साकार कर सकें, तो हमारे काव्य-जगतकी मानवताका क्षेत्र कितना विस्तीर्ण हो जाय। हमें भूल नहीं जाना चाहिए कि कला केवल आत्म-विनोदकी सामग्री नहीं।

इसी प्रसंगमें मुझे एक बात याद आ रही है। एक प्रतिष्ठित कहानी-लेखकने 'पत्थरकी पुकार' शीर्षक कहानीमें लिखा है:—

"क्यों जी, तुमने इस पत्थरको कितने दिनोंसे यहाँ ला रखा है? भला वह भी अपने मनमें क्या समझता होगा! सुस्त होकर पड़े हो, उसकी कोई सुन्दर मूर्त्ति क्यों न बना डालो?"—विमलने रूक्ष स्वरसे कहा।

पुरानी गुदड़ीमें ढकी हुई जीर्ण-शीर्ण मूर्त्ति खाँसीसे कँपकर बोली—"बाबूजी, आपने तो मुझे कोई आज्ञा नहीं दी थी।"

"अजी, तुमने बना ली होती, फिर कोई-न-कोई तो इसे ले लेता। भला देखो तो, यह पत्थर कितने दिनोंसे पड़ा तुम्हारे नामको रो रहा है!" विमलने कहा।

शिल्पीने कफ़ निकालकर गला साफ़ करते हुए कहा—"आप लोग अमीर आदमी हैं, अपने कोमल श्रवणेन्द्रियोंसे पत्थरका रोना, लहरोंका संगीत, पवनकी हँसी इत्यादि कितनी सूक्ष्म बातें सुन लेते हैं, और उसकी पुकारमें दत्तचित्त हो जाते हैं; करुणासे पुलकित हो जाते हैं। किन्तु क्या कभी दुखी हृदयके नीरव क्रन्दनको भी अन्तरात्माके श्रवणेन्द्रिय द्वारा सुनने देते हैं, जो करुणाका काल्पनिक नहीं, वास्तविक रूप है।"

हिन्दीके नवीन कवियोंका कल्पनामूलक हृदय क्या शिल्पीके इस कथनकी मार्मिकताको ग्रहण करेगा? साहित्यकी अन्तरात्मामें हमें इस करुण चेतनके स्वरको भी स्पन्दित करना है। मुझे विश्वास है कि वर्तमान हिन्दी-कविता अनन्त आकाशमें तारिकाओंकी भाँति स्वच्छन्द विहार कर लेनेके बाद अपने सुखसे आप थक जायगी। तब वह वहाँसे खिसककर इसी पार्थिव चेतन लोकमें विश्राम लेगी, उस समय यहींकी वाणी उसके कंठोंमें फूट पड़ेगी; यहींके हास-उच्छ्वास उसे पुलकाकुल कर देंगे।

मुकुटधरजी इसी पार्थिव विश्वके कवि हैं। उनकी कल्पना, यथार्थताके पंखोंसे उड़-उड़कर इसी जग-जीवनके उद्यानमें अपने जीकी बातें कहती हैं। उसकी उड़ानमें साकारता है,

अदृश्यता नहीं। वह शून्यमें नहीं, बल्कि मनुष्यों, वृक्षों और फूलोंके आकाशमें उड़ती है।

वे एक सौन्दर्यप्रेमी और भक्त कवि हैं। कहते भी हैं—

"मेरे नयनोंकी चिर-आशा
प्रेमपूर्ण सौन्दर्य - पिपासा,
मत कर नाहक और तमाशा ;
आ, मेरी आहोंमें भर जा।
मानस-भवन पड़ा है सूना
तमोधामका बना नमूना
कर उसमें प्रकाश अब दूना
मेरी उग्र वेदना हर जा।
मोहित तुझको करनेवाली
नहीं आज वह मुखकी लाली
हृदय-यन्त्र यह रक्खा खाली
अब नूतन सुर इसमें भर जा।"

ये कितनी सीधी-सादी साफ़ लाइनें हैं। द्विवेदी-युगकी यह एक मार्जित और भावपूर्ण मार्मिक कविता है।

मुकुटधरजीकी कृतियोंमें, मानवीय रूपमें सौन्दर्यने प्रेमका स्वरूप धारण किया है ; प्राकृतिक रूपमें भक्तिका।

आदिकालसे ही सौन्दर्य कविताका रूप है, प्रेम उसका प्राण। यह सौन्दर्योपासना, यह प्रेमोपासना, विविध भावनाओंमें विविध प्रकारसे साकार होती आई है। ब्रजभाषा-कालके कवि कबीर, सूरदास, तुलसीदास और रसखानकी तरह मानवी सौन्दर्यसे प्रभावित होकर ईश्वरकी ओर उन्मुख हुए थे ; किन्तु खड़ी बोलीके नवीन कवि प्रकृति-छबिसे प्रेरित होकर उस परम शोभामयकी ओर आकृष्ट होते हैं। उस परम शोभामयकी उपासना, आर्य-संस्कृतिमें देवता और देवीके रूपमें प्रकट हुई है—जहाँ विष्णु हैं वहीं लक्ष्मी हैं, जहाँ राम हैं वहीं सीता हैं, जहाँ कृष्ण हैं वहीं राधिका हैं ; किन्तु दोनों विभिन्न नहीं, एक ही परमचेतनके दो मनोरम आवरण हैं :—

"जो हरि सोई राधिका,
जो शिव सोई शक्ति।
नारी जो सोई पुरुष
यामें कछु न विभक्ति।"

हमारे प्रत्यक्ष जीवनके भी ये ही दो अभिन्न रूप हैं। अपनी भावनाओंकी सुकुमारता और पौरुषके अनुरूप ही भिन्न-भिन्न भारतीय कवियोंने इनमें से किसी एक रूपका चिन्तन किया है ; किन्तु सबका अभीष्ट एक ही है—उस अनन्त सौन्दर्य और प्रेमकी उपासना।

हिन्दीके नवीन युगके प्रकृति-प्रधान कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त हैं। वे उस अलौकिक छबिके अखिलव्याप्त सुकुमार नारी-रूपके उपासक हैं। वही एक नारी-रूप, प्रकृतिके विभिन्न स्वरूपोंमें कहीं माता है, कहीं सहचरी है, कहीं प्रेयसी—ठीक हमारी गृहलक्ष्मियों ही की तरह। वह अखिल भुवनमोहिनी एक रूपमें अनेक होकर चतुर्दिक प्रकृतिमें अपनी शोभा-सुषमा छाये हुई है। इसीलिए पन्तजीने उसे सम्बोधित किया है—"देवि, मा, सहचरि प्राण !"

किन्तु, मुकुटधरजी उस परम शोभाके पुरुष-रूपके उपासक हैं। प्रकृतिमें यह जो नाना रूप-रंग दिखाई पड़ते हैं, वे उसी एक मोहनकी व्यापक छबिके प्रतिबिम्ब हैं। बिहारीने बाँसुरीके लिए कहा है :—

"अधर धरत हरिकैं परत
ओठ, डीठि, पट-जोति।
हरित बाँसकी बाँसुरी
इन्द्रधनुष - रँग होति।"

जैसे हरित बाँसकी बाँसुरी उसी एकके भिन्न-भिन्न रंगोंसे इन्द्रधनुषकी भाँति रंगीली हो उठी है, वैसे ही यह बाह्य प्रकृति भी उसी एककी छबिसे छबिमान, द्युतिसे द्युतिमान है। अखिल प्रकृतिके भीतरसे नाना सुरोंमें उसी एक परम-पुरुषकी वंशी बजती रहती है।

प्रकृतिने विविध रूपोंमें उसी एक भुवनमोहनका स्वागत करते हुए मुकुटधरजीने लिखा है :—

"स्वागत, हे सुन्दर सुकुमार !
आओ हृदय - मार्गसे—
मेरे प्रियतम प्राणाधार !
आओ हे घनश्याम उदार !
आओ, प्रेमवारि बरसाओ,
विटप - बेलियोंमें लहराओ,
आओ, झरनोंसे मिल गाओ—
हे कवि - कुशल अपार !

आओ, साथ उषाके आओ,
किरणोंके मिस कर फैलाओ,
विकसित अमल-कमल बन जाओ—
पहनो मुक्ताहार।

सरस वसन्तानिल सरसाओ,
सावन-घन बनकर नभ छाओ,
शरदाकाश-विलास दिखाओ,
चारु चन्द्रिका गार!

आओ भाव-सरित बन धाओ,
हृदयस्थित सब कलुष बहाओ,
तन-मन-नयन-मध्य भर जाओ,
मोहन! छवि-आधार!
स्वागत, हे सुन्दर सुकुमार!"

मुकुटधरजीकी तरह ही पन्तजी भी सुन्दरी कविताका प्रकृतिमें स्वागत करते हुए कहते हैं :—

"नव वसन्तऋतुमें आओ,
नव कलियोंको विकसाओ,
प्रेयसि कविते!
हे निरुपमिते!

आओ, कोकिल बन आओ,
ऋतुपतिका गौरव गाओ,
प्रेयसि कविते!
हे निरुपमिते!"
—वीणा

वर्तमान युगमें पन्तजीने अपनी सुकुमार भावनाओंसे हिन्दीके आँगनमें जिस प्राकृतिक शोभा-श्रीका सृजन कर दिया है, उस युगमें मुकुटधरजीने भी कुछ वैसी ही शिल्पकलाका मनोहर परिचय दिया था। मुकुटधरजीकी कविताओंमें ओज और श्री दोनों हैं।

उनके प्रकृति-सौन्दर्यकी एक झाँकी और देख लीजिए :—

"प्राचीमें अरुणोदय अनूप,
है दिखा रहा निज दिव्य रूप,
लाली यह किसके अधरोंकी—
लख जिसे मलिन नक्षत्र-हीर।

विकसित सरमें किंजल्क जाल,
शोभित उनपर नीहार-माल;
किस सदय-बन्धुकी आँखोंसे—
है टपक पड़ा यह प्रेमनीर?
प्रस्फुटित मल्लिका पुंज-पुंज,
कमनीय माधवी कुंज-कुंज,
पीकर कैसी मदिरा प्रमत्त—
फिरती है निर्भय भ्रमर-भीर!"

इन पंक्तियोंमें कैसी संस्कृतसे मिली हुई बेलेकी तरह खिली हिन्दी है! साथ ही कितना प्रांजल, नयन-मनोरम प्रकृति चित्र!

'विश्वबोध' शीर्षक कवितामें भगवानकी खोज करता हुआ कवि कहता है :—

"खोजमें हुआ वृथा हैरान,
यहाँ ही था तू हे भगवान!
दीन-हीनके अश्रुनीरमें
पतितोंकी परिताप - पीरमें,
संध्याकी चंचल समीरमें,
करता था तू गान।
सरल-स्वभाव कृषकके हलमें,
पतिव्रता रमणीके बलमें,
श्रमसीकरसे सिंचित धनमें,
विषय-मुक्त हरिजनके मनमें,
कविके सत्य पवित्र वचनमें,
तेरा मिला प्रमाण।"

सम्भवत: पं० रामनरेश त्रिपाठीने भी इन्हीं हृद्गत भावोंसे प्रेरित होकर 'तेरी छवि' शीर्षक एक सुन्दर प्रवाहयुक्त कविता लिखी है। उनकी भी कुछ पंक्तियाँ देखिये :—

"हे मेरे प्रभु! व्याप्त हो रही
है तेरी छवि त्रिभुवनमें,
तेरी ही छबिका विकास है
कविकी वानीमें, मनमें।

ऊषाके चंचल समीरमें,
खेतोंमें, खलियानोंमें,
गाते हुए गीत सुख-दुखके
सरल-स्वभाव किसानोंमें,

श्रमी किन्तु निर्धन मज़ूरकी
अति छोटी अभिलाषामें,
पतिकी बाट जोहती बैठी
गरीबिनी की आशामें।

भूख-प्याससे दलित दीनकी
मर्म्म-भेदिनी आहोंमें,
दुखियोंके निराश आँसूमें,
प्रेमी - जनकी राहोंमें,
निर्जनता की व्याकुलतामें,
सन्ध्या के संकीर्त्तन में,
तेरी ही छविका विकास है
सन्तत परहित चिन्तनमें।

एक ही युगके दो कवियोंका यह सुन्दर भाव-साम्य (जो आकस्मिक भी हो सकता है) दर्शनीय है।

मुकुटधरजीने अनेक सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। कुछ प्रकाशित रचनाओंके नाम ये हैं—बसन्त समीर, ओसकी निर्वाण-प्राप्ति, रूपका जादू, कुररीके प्रति, उद्गार, क्षमा-याचना, लज्जात्रस्त, विश्वबोध, इत्यादि। ये सभी रचनाएँ आचार्य द्विवेदीजीके सम्पादन-कालमें 'सरस्वती'में प्रकाशित हो चुकी हैं। इन रचनाओंकी भाषा और भावके साथ ही छन्दोंमें भी सुघड़ता है। नवीन हिन्दी-कविताके उस प्रथम विकासमें ही मुकुटधरजीने भावोंके अनुरूप छन्दोंको कवित्वका सौन्दर्य प्रदान कर दिया था। यही नहीं, पाश्चात्य साहित्य-कलासे परिचित होते हुए भी मुकुटधरजीके भावोंमें आर्यत्व है, उनमें आर्य संस्कृति गंगाजलकी तरह सुरक्षित है।

बालकपनसे ही उनकी रुचिका झुकाव हिन्दी-साहित्यकी ओर हो चला था; बहुत छोटी अवस्थासे ही वे पद्य-रचना करने लगे थे। सबसे प्रथम सं० १९६६ में उनकी कविताएँ पत्रोंमें प्रकाशित हुईं। सं० १९७२ में उन्होंने प्रयाग-विश्वविद्यालयकी प्रवेशिका-परीक्षा पास की। इसके बाद उच्चशिक्षा प्राप्त करनेके लिए प्रयागके क्रिश्चियन कालेजमें भरती हुए; किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहनेके कारण थोड़े ही दिन पीछे घर लौट गये। वे आजकल अपने ही गाँवमें अपने पिता द्वारा स्थापित पाठशालामें शिक्षक हैं। भगवान करें, वे फिर कभी नवीन स्वास्थ्य और नवीन स्फूर्त्तिसे प्रेरित होकर भगवती वीणापाणिकी सेवामें प्रस्तुत हों।

एक - दो - तीन

श्रीमती मेरी बायल ओ'रीली

यूरोपियन महायुद्धकी बात है।

बर्लिन-स्टेशनसे मुसाफिरोंसे भरी रेलगाड़ी रेंगती हुई रवाना हुई। गाड़ीमें औरतें, बच्चे, बूढ़े—सभी थे; पर कोई पूरा तन्दुरुस्त नज़र न आता था। एक डब्बेमें, भूरे बालोंवाला एक फौजी सिपाही एक अध-बूढ़ी स्त्रीके पास बैठा था। स्त्री कमज़ोर और बीमार-सी नज़र आती थी। तेज़ चलती हुई गाड़ीके पहियोंकी किच-किच आवाज़में मुसाफिरोंने सुना कि वह स्त्री रह-रहकर गिनती-सी गिन रही है—'एक-दो-तीन!'

शायद वह किसी गहरे विचारमें मग्न थी। बीच-बीचमें वह चुप हो जाती, और फिर वही—'एक - दो - तीन!'

सामने दो युवतियाँ बैठी थीं। उनसे रहा न गया, और वे खिलखिलाकर हँस पड़ीं। साथ ही इस वृद्धाके अजीब बरतावका वे आपसमें मज़ाक उड़ाने लगीं।

इतनेमें एक बुज़ुर्ग आदमीने उन्हें झिड़क दिया।

कुछ देरके लिए सन्नाटा छा गया।

'एक - दो - तीन'—वृद्धाने कुछ बेसुध-सी हालतमें कहा। युवतियाँ फिर भद्दे ढंगसे हँस पड़ीं।

भूरे बालोंवाला सिपाही कुछ आगेकी ओर झुका, और बोला—'श्रीमतीजी, यह सुनकर आपका खिलखिलाना शायद बन्द हो जायगा कि जिसपर आप हँस रही हैं, वह मेरी स्त्री है। अभी हाल ही में हमारे तीन जवान बेटे लड़ाईमें मारे गये हैं। मैं खुद भी लड़ाईपर जा रहा हूँ; लेकिन जानेके पहले उन बेटोंकी माको पागलखाने पहुँचा देना ज़रूरी है।'

सहसा डब्बेमें एक भयंकर सन्नाटा छा गया, जैसे सबकी छातीपर साँप लोट गया हो। — ब्र० व०

सम्पादकीय संस्मरण

श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे

'भारतमित्र' के बाद 'श्रीकृष्ण-सन्देश'

श्रावण कृष्ण १० संवत् १६८२ के दिन 'भारतमित्र' से मेरा सम्बन्ध-विच्छेद हुआ। सम्बन्ध-विच्छेदका कारण यह हुआ कि हिन्दू-महासभाके प्रसंगसे सनातनधर्म-मंडलके साथ मेरा मतभेद था। सनातनधर्म-मंडलकी यह उत्कट इच्छा थी कि 'भारतमित्र' का सम्पादन पूर्ववत् मैं ही करता रहूँ। परन्तु ईश्वरकी ऐसी इच्छा नहीं थी। मतभेदके होते हुए भी यदि मैं योग-क्षेमकी चिन्तासे या वेतन-वृद्धिके लोभसे सम्पादक बना रहता, तो मेरा यह काम ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध होता। ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध मैंने बहुतसे काम किये हैं, सारा जीवन ही तो कामाचारमें बीता है; पर प्रसंगकी बात यह है कि विचार-व्यभिचारका दोष मेरे लेखन-कार्यमें नहीं हुआ, तो यह ईश्वरकी असीम दया है, और यदि कहीं कोई ऐसा दोष ज्ञाताज्ञातरूपसे हुआ हो, तो वह मेरा पाप है। मतभेद हिन्दू-महासभाके प्रसंगसे हुआ था, इस कारण 'भारतमित्र' के साथ मेरा जो सम्बन्ध-विच्छेद हुआ, उससे हिन्दू-महासभाके पक्षके लोगोंकी बड़ी गहरी सहानुभूति मुझे मिली। हिन्दीके प्रायः सभी समाचारपत्रोंने मेरी बड़ी प्रशंसा की। जनता जब किसीपर प्रसन्न होती है, तब वह कामधेनु ही बन जाती है। मैं इस प्रसंगमें उसे कामधेनु यों कहता हूँ कि समाचारपत्रोंने मुक्तकंठसे इतनी स्तुति की, जितनी मेरी योग्यता नहीं। स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे विद्वज्जनमान्य लेखक अपने एकान्तवासको छोड़कर इस प्रसंगपर लेख लिखने लगे, और धनी-मानी लोग प्रभूत धन-राशि लेकर सहायताको दौड़ आये। दिल्लीसे श्री घनश्यामदास बिड़लाने पत्र लिखकर अपना कंचन-कर आगे बढ़ाया। कलकत्तेमें श्री जुगुलकिशोरजी बिड़ला खड़े हुए। श्री रामकृष्ण मोहता द्रव्य-साहाय्य करनेके साथ दौड़-धूप करनेको तैयार हुए। श्री जुगुलकिशोरजीकी मैं क्या तारीफ़ करूँ! उन्होंने इस बार और इस तरह अनेक बार द्रव्य देकर मेरी सहायता की है, दबे हृदयसे नहीं—बड़ी प्रेममयी उदारताके साथ। श्री घनश्यामदासजीने भी बड़ी सुकुमार उदारताके साथ समय-समयपर मेरी सहायता की है। श्री रामकृष्णजीने भी किसी समय सहायता की है। और अत्यधिक सहायता अन्य कई सज्जनोंने की है, जिनके नाम और गुण किसी समय लिखना आवश्यक होगा। पर सहायताकी ये बातें कुछ विषयान्तर-सा कर रही हैं, क्योंकि 'भारतमित्र'से सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर जब तक मैं खाली था, तब तक सिवा जुगुलकिशोरजीके और किसीसे मैंने कोई सहायता नहीं ली थी, और श्री जुगुलकिशोरजीसे भी वही सहायता ली, जो अयाचित ही मेरे पास उन्होंने भेज दी! यह विचार पक्का हो चुका था कि २५०००) मूलधन लगाकर 'भारतमित्र'के मुक़ाबले गर्देजीका दूसरा दैनिक पत्र जारी किया जाय। परन्तु इसी समय श्री चुन्नीलालजी बर्मनने अपने एक साप्ताहिक पत्रके लिए मेरे सहयोगकी इच्छा की। हम लोगोंकी २५०००) की स्कीमपर श्री चुन्नीलालजीके प्रेमने विजय पाई, और दूसरे दैनिकका विचार स्थगित हो गया। स्थगित हो गया, यह एक तरहसे अच्छा हुआ; क्योंकि दूसरोंका रुपया लेकर अपना काम करना तभी तक शुभ रहता है, जब तक रुपया लगानेवालोंका और अपना चित्त एक है। यदि कभी इनके विचारोंसे अपने विचार भिन्न हुए, तो उस कार्यमें दृष्टादृष्ट रूपसे अशुभता आ जाती है। श्री चुन्नीलालजी बर्मनके प्रस्तावमें ऐसी अशुभताकी कोई आशंका नहीं थी। इसलिए 'श्रीकृष्ण-सन्देश' निकला।

'श्रीकृष्ण-सन्देश'

'श्रीकृष्ण-सन्देश'का नामकरण श्री चुन्नीलालजी बर्मनकी पितृ-भक्तिका गोलोकवासी श्रीकृष्णकी भक्तिके साथ सम्मिलन था। गोलोकवासी श्रीकृष्णके ही सन्देशका वह ध्यान था। मुझे जहाँ तक स्मरण है, इस आकार-प्रकारके सचित्र साप्ताहिक पत्रोंका ढंग हिन्दीमें 'श्रीकृष्ण-सन्देश'ने ही चलाया है। पर 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का सम्पादकीय उद्देश्य उसके अन्तरंगमें है। बहिरंग सजानेका काम श्री चुन्नीलालजी बर्मनने जैसा कुछ किया, उसकी प्रशंसा हिन्दी-संसारने की है, और तब तक करता ही रहेगा, जब तक बहिरंगमें उसका मुक़ाबला कर सकनेवाले अन्य पत्र देखनेमें नहीं आ रहे हैं। बहिरंगमें अभी तक कोई उसका जोड़ा नहीं है। अन्तरंगकी बात तो एक प्रकारका 'रहस्यवाद' है। रहस्यकी ही एक बात कहता हूँ कि 'श्रीकृष्ण-सन्देश'की फाइलें ऐसी जगहोंमें मौजूद हैं, जहाँ अन्य किसी साप्ताहिक या दैनिक पत्रके लिए कोई स्थान

नहीं है। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' कहीं रद्दीखानेमें या पनसारीकी दूकानपर नहीं मिलेगा। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में कोई ऐसी बात थी, जिसको मैं भी ठीक तरहसे नहीं कह सकता। इसीलिए उसे 'रहस्यवाद' कहकर डा० चतुष्पादको कुछ कहनेका अवसर देता हूँ—चाहे कहें, पर ज़रा ज़ोरसे कहें। डा० चतुष्पाद भी उसके एक लेखक थे। मेरे सहकारी थे पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा और पं० रमेशचन्द्र त्रिपाठी तथा पं० चन्द्रदीप त्रिपाठी।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' में जो कुछ काम होता था, वह ये ही लोग करते थे। मैं सचमुच ही आराम करता था। 'भारतमित्र' में मैंने जो कुछ परिश्रम किया, उसके लिए जिस विश्रामकी आवश्यकता थी, वह विश्राम मुझे 'श्रीकृष्ण-सन्देश'में मिला, और यह विश्राम आवश्यकतासे अधिक मिला। आर्थिक कष्ट भी वैसे नहीं रहे। कर्मियोंका संग-साथ छूट गया, और न-जाने कहाँ बहे जाने लगा! सचमुच ही बह जाना ही था। पर श्रीकृष्णकी ही कृपा समझिये कि इस अपवित्र शरीरके संसर्गसे 'श्रीकृष्ण-सन्देश' की पवित्रता कभी कलंकित नहीं हुई। मेरे सहकारियोंने मुझे निद्रामें निश्चिन्त पड़ा रहने दिया और आप ही सब काम सम्हाला। श्री चुन्नीलालजी बर्मन यह लेख पढ़कर कहेंगे कि हमको यदि ऐसा मालूम होता कि गर्देजी ऐसा आराम करेंगे, तो हम उन्हें कभी न बुलाते। इसलिए इस बातको ढंगसे समझ लेना चाहिए। मैंने तो सच-सच ही लिखा है।

और एक बात। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का संकल्प और उसकी नीतिके सिद्धान्त हम साधारण मनुष्योंके लिए इतने महान थे कि प्राय: उसके अन्त:करण और वाह्य शरीरमें बड़ा अन्तर पड़ जाता था। और श्रीकृष्णके पथके पथिक यह बतलाते हैं कि जब यह अन्तर बहुत बढ़ जाता है, तब अन्त:करण वाह्य शरीरको छोड़ देनेके लिए विवश होता है। और 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के बन्द होनेका कारण मुख्यत: यही हो सकता है।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' एक बार बन्द होकर फिर निकला था और फिर बन्द हुआ। इस प्रसंगमें एक विशेष बात कहनी है। पहली बार बन्द होनेपर श्री चुन्नीलाल बर्मन उसे मुझे सौंपना चाहते थे; परन्तु किसी कारणवश मैंने उसे ग्रहण नहीं किया। यह बात मेरे चित्तमें ही रह गई कि ऐसे आर्थिक लाभका प्रसंग मैंने छोड़ दिया, और श्री चुन्नी बाबूके चित्तमें भी यह बात रही कि ऐसा लाभ गर्देजीको करा देनेका अवसर उनके हाथसे जाता रहा। पर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' फिर निकला, और दोनोंकी यह इच्छा पूर्ण हुई। दूसरी बार 'श्रीकृष्ण-सन्देश'को 'लिबर्टी'के मालिक ऐसी शर्तोंपर लेना चाहते थे, जिनसे डाबर कम्पनी अर्थात् उसके मालिक श्री चुन्नीलालजी बर्मनको बड़ा लाभ होता; पर बातके धनी चुन्नी बाबूने बड़े-बड़ोंका कोई प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने दिया, और 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मुझे अर्पण किया। मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ। यह बात दूसरी है कि मैं उससे लाभ नहीं उठा सका; पर चुन्नी बाबूने 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का नाम, ग्राहक, चन्देका रुपया, सहायताकी भी रक़म, विज्ञापनकी सहायता—सब-कुछ दिया था, और उससे लाभ भी होता, यदि लाभ कर लेनेकी बुद्धि मुझमें होती। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' लेकर मैं काशी चला आया। कलकत्तेमें ही रहता, तो श्री जुगुलकिशोरजी बिड़ला प्रमुख कई व्यक्ति सहायक होते, और मेरी भी एक कोठी बन जाती; पर कोठी क़ायम करनेकी यह कल्पना मुझे विषवत् त्याज्य प्रतीत हुई। कारण, जीवनके इस शेष अंशको अब इस काममें लगाना और अन्धकारमें मिल जाना मुझे अच्छा नहीं लगा, इसीलिए 'श्रीकृष्ण-सन्देश'को लेकर मैं काशी चला आया। इसी कामका यह समय था।

काशीमें कुछ काल 'श्रीकृष्ण-सन्देश' चला। पीछे आर्थिक अवस्था बड़ी कठिन हुई। तब पत्र बन्द करना पड़ा। २०००) 'श्रीकृष्ण-सन्देश' पर ग्राहकोंका कर्ज़ रहा। इसे चुकानेके लिए श्री बैजनाथजी केडियाके साथ सहयोग करके 'विजय' पत्र निकाला, और 'विजय' देकर ग्राहकोंका कर्ज़ चुक जानेपर मैं फिर काशी लौट आया। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' और 'विजय' का एक उद्देश्य था। जो उद्देश्य 'नवनीत'का था, वही 'भारतमित्र'का, वही 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का और वही 'विजय'का था। 'विजय'के ७वें पृष्ठके लेखोंमें 'विजय'का प्राण था। अब काशीमें हूँ, और काशीमें बैठकर यह सिंहावलोकन कर रहा हूँ।

मसूरीसे शिमला

श्री दीनदयालु शास्त्री

देहरादून ज़िलेके उस भागको, जो यमुना तथा टौंस नामकी नदियोंके मध्यमें है, जौन्सार कहते हैं। इसका अधिक भाग सघन जंगलोंसे घिरा है। यहाँ चीड़, देवदार, बाँझ तथा अन्य पहाड़ी पेड़ोंकी बहुतायत है। खेती बहुत कम होती है। यहाँके निवासी आलसी हैं। पोस्त अधिकतासे पैदा किया जाता है, इसीलिए अफीमका सेवन भी अधिक है। चावल तथा अन्य अनाज भी होते हैं; किन्तु कम मात्रामें। लोगोंका तो यहाँ तक कहना है कि यहाँके लोग अपना खेत बोना भी आफत समझते हैं। मेहतनका सब काम गढ़वाली करते हैं। जंगलके मोहकमे, डाक, बोझा ढोने आदि सब कामोंमें गढ़वाली लगे हुए हैं। जौन्सारी तो देवी-देवताकी पूजासे ही फ़ुरसत नहीं पाते कि उन्हें अफ़ीमका दौरा सताने लगता है। विवाहकी प्रथा विचित्र है। घरमें चार-पाँच भाइयोंमें एक ही स्त्री होती है। सभी उसके पति समझे जाते हैं। बाहरी दुनियाके सम्पर्कके कारण अब यह प्रथा कम हो रही है। स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं, और नाकमें इतना बड़ा छल्ला पहनती हैं कि वह दोनों कानोंको छूने लगता है। दरिद्रता अधिक है, फिर भी आभूषण लदे रहते हैं। स्कूल वग़ैरह नहींके बराबर हैं। पढ़े-लिखे अंगुलियोंपर गिने जा सकते है। अंगरेज़ी इलाका होनेके कारण आने-जानेका सुभीता है। जंगलकी उपज बहुत है। उसके ले जानेके लिए अच्छी सड़कें हैं। जंगलके मोहकमेके बँगले थोड़ी-थोड़ी दूरपर बने हैं, जिनमें ठहरनेका सुभीता है। जौन्सारका प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुन्दर है। चकरौता इसी जौन्सारका केन्द्र है। भारतकी तिब्बती सीमाके निकट होनेके कारण ही चकरौतेमें छावनी क़ायम की गई है।

चकरौतेसे शिमलेका मार्ग इसी जौन्सार-प्रान्तमें होकर जाता है। २८ अगस्तको प्रातःकाल हम चकरौ रवाना हुए। चकरौतेसे देवबन सात मील है। जंगलके दफ्तरसे, जहाँ हम ठहरे थे, चार मील रास्ता चढ़ाईका है। कई स्थानोंपर चढ़नेमें खासी थकान हो जाती है; लेकिन सवेरेकी ठंडी हवामें हमें कोई कष्ट नहीं हुआ। हम लोग जंगलमें होकर जा रहे थे, पहाड़का मोड़ समाप्त हुआ और देवबनका बँगला सामने दिखाई दिया। आरामसे वहाँ जा पहुँचे।

देवबन बहुत सुन्दर स्थान है। समुद्रतलसे ६२०० फीट ऊँचा है। चारों ओर घना जंगल है। मध्यमें घासका मैदान है, जिसमें बँगला तथा देहरादूनके जंगलातके कालेजके विद्यार्थियोंके रहनेके लिए कमरे बने हुए हैं। इस कालेजके विद्यार्थी प्रति वर्ष भिन्न-भिन्न लकड़ियोंकी जाँचके लिए जौन्सारमें घूमा करते हैं। बँगलेसे थोड़े नीचे एक एकान्त स्थानमें सुन्दर जलकी धारा बह रही है। आसपासका स्थान बहुत मनोरम है। यह वास्तवमें देवबन और भगवद्-भक्तोंके लिए भजन करनेकी उत्तम समाधि-स्थली है। यहाँ आकर दुनियाका सम्पर्क भूल जाता है। स्वामी सियारामजीके दो शिष्य यहाँ समाधि लगाये हुए थे। उनसे मिलकर आनन्द लाभ हुआ।

देवबनसे चले, तो जलधारामें स्नानकी सूझी। उसका जल अत्यन्त शीतल था। बहुत हिम्मत करके दो साथियोंने स्नान किया; किन्तु ऐसा मालूम हुआ कि शरीर सन्न हो गया है। देहसे प्राण निकलने ही चाहते हैं। ख़ैर, किसी तरह स्नान हो गया; लेकिन बादमें बड़ा सुखकर मालूम हुआ। आज हमें मुण्डाली जाना था।

देवबनसे मुण्डाली १२ मील है। रास्ता अत्यन्त मनोरम है। शुरूमें देवदारके पेड़ आते हैं, जिनके

ऊँचे शिखर आकाशसे बातें करनेके लिए कमर कसे खड़े हैं। उनकी छाया इतनी शीतल है कि सिर झूमने लगे। सारे तनेपर लताएँ लिपटी हुई देव-वनिताओंका स्मरण कराती हैं। दो-तीन मील चलनेपर पेड़ समाप्त हो गये। पहाड़ोंके निचले भागमें चीड़के पेड़ अधिक होते हैं। छै-सात हज़ार फ़ीटकी ऊँचाईपर तो देवदारुके दर्शन होते हैं। दस हज़ारके ऊपर वृक्षोंका साम्राज्य समाप्त होकर केवल घास-ही-घास रह जाती है। हम खडाम्बेकी चोटीकी ओर जा रहे थे, अतः पेड़ कम हो रहे थे। गिरिशिखर सुन्दर दूर्वासे आवृत था। थोड़ी ही देरमें फूलोंका राज्य आ गया। अब जिधर देखिये, फुलवाड़ी नज़र आ रही थी। पीले, सफ़ेद, लाल फूल धीरे-धीरे झूल रहे थे, और अपनी-अपनी सुन्दरता निहारनेके लिए निमन्त्रण दे रहे थे। हरएक अपनी शानमें मस्त था। सफ़ेदसे बसन्ती अपनेको बढ़िया समझता था, तो लाल अपने पूर्ण विकासमें दोनोंको तुच्छ समझ रहा था। शायद यह उनकी अपनी समझ थी। हमारे लिए तो एकसे एक बढ़कर था और किसी दिव्य-सन्देशको सुना रहा था। एकाएक परदा हटा, क्या देखा कि नीले, बैंगनी तथा चित्रित पुष्पोंका समूह हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। उन्होंने तो उन लाल फूलोंको भी मात कर दिया। वाह रे माली! तू धन्य है! तूने क्या बढ़िया बग़ीचा रचा है! हम दुनियाके जीव छोटीसी बग़ीचीमें दो-चार फूल देखकर गद्गद् हो जाते हैं। तेरी इस फुलवाड़ीमें क्या कमाल है! नाना रंग हैं, नाना जातियाँ हैं, और फिर थोड़ीसी हवाके संस्पर्शसे उनका झूमना भी ख़ूब है। थका-माँदा यात्री क्यों न रीझेगा? लोग रसिकताकी दाद देते हैं। ठीक है। कुछ लोगोंको सहज ही रसिक स्वभाव मिला है; किन्तु कमाल तो उसमें ही समझना चाहिए, जिसको देखकर हरएक ही वाह-वाह कह उठे, नीरस हृदयमें भी रसका प्रवाह हो जाय। देवबनसे आगेके उस पुष्पोद्यानमें यही चमत्कार था। वह मामूली मालीका माल न था। उसका माली साथ ही चतुर चितेरा भी था। तिसपर ख़ूबी यह कि सब चीज़ें जानदार थीं। आज इस मार्गका महत्त्व समझा। चोटीसे इधर ही कृष्ण मेघका एक पतला आवरण हमारे सामने उठ खड़ा हुआ। फुलवाड़ीका नज़ारा ओझल हो गया। हमने समझा, वर्षा आ गई, अब आनन्द न आयगा। सहसा वायुके झोंकेसे मेघ-खंड उड़ गया। सामने ही थोड़े उठे हुए पहाड़की गोदमें वही रंग-बिरंगे फूल

काननके भीतर

हँस रहे थे। अब तक भिन्न-भिन्न रंगोंके फूल भिन्न-भिन्न स्थानोंमें ही खिल रहे थे। यहाँ सबका एकत्र वितान था। इस गुलदस्तेको देखकर हमारा भी दिल बाग़-बाग़ हो गया। हम भी नशेमें झूमने लगे। चलना रुक गया। एक शिलापर बैठकर उस सौन्दर्यको निहारने लगे। उस आभाको देख-देखकर आँखें न थकती थीं। वाणीने साथ छोड़ दिया। शरीर और मन पहले ही विलीन हो चुके थे। हमने मन-ही-मन उस चतुर कारीगरको धन्यवाद दिया।

एकाएक बादल घिर आये और बूँदें पड़ने लगीं। हमें भी होश आया और उस फुलवाड़ीको निर्निमेष नेत्रोंसे निहार आगेकी राह ली।

धीरे-धीरे बूँदें बढ़ने लगीं। रास्तेमें कीचड़ भी हो गया। खडाम्बेकी चोटी तक फूल आते रहे। फुलवाड़ीका आनन्द लेते हुए चोटीपर पहुँचे। यह स्थान दस हज़ार फीटसे अधिक ऊँचा है। फिर दो मील उतार है। मुंडाली भी आ गया। मुंडाली ठंडी जगह है। जंगलके बीचों-बीच थोड़ा-सा खाली स्थान है, जहाँ बँगला तथा विद्यार्थियोंके लिए कुछ कमरे हैं। चौकीदार रहता है। दूकान नहीं हैं। शामको यात्री यहाँ आते हैं, और रात बसेरा करके चले जाते हैं। स्थान बहुत सुन्दर है। हाँ, पानीकी कमी है, जो दूरके झरनेसे लाना होता है। हमने भी रात यहीं पड़ाव किया।

सवेरे खाना खाकर चले। केवल आठ मील जाना था। दो मील तक सघन जंगल है। मोहकमेकी ओरसे नये पौधे लगाये जा रहे हैं। रास्तेमें उतार है। गाँव आया। यहाँ आड़ू बहुत होता है। उतरकर दरागाड आये। जौन्सारमें छोटी नदीको गाड कहते हैं। इस नदीका नाम दरागाड है, जो एक सुन्दर संकीर्ण घाटीसे होकर बहती है। अब हम नीचे आ गये, अत: चीड़के पेड़ अधिक थे। उनकी पत्तियाँ सड़कपर गिरकर मखमली बिछौना बिछा देती हैं, जिसपर चलनेमें सुविधा रहती है। घाटी बहुत ही सुन्दर है। जगह-जगह जल-धाराएँ किलोलें करती चली जा रही हैं। नदीके निकट छोटे-छोटे खेत हैं। सड़कके आसपास चीड़के पेड़ और ऊपर संड-मुंड गिरिशिखर है, जिसपर केवल कोमल दूर्वा बिछी है। रास्ता नदीके आर-पार जाता है—कभी दाएँ, कभी बाएँ। अंगरेज़ यात्रियोंने इस घाटीकी सुन्दरताका बड़ा-बड़ा बखान किया है। है भी यह प्रशंसाके योग्य। इसी सुन्दर मार्गमें हम बढ़े चले गये। कथ्यानसे दो मील इधर सरल चढ़ाई है। एक मील चढ़नेपर देवदारु पुन: नज़र आये। उन्हींके एक बड़े झुरमुटमें बना बँगला सुन्दर घाटीमें झाँक रहा है।

कथ्यान सात हज़ार फीट ऊँचा स्थान है। स्वयं स्थानका क्या कहना! बड़ी रमणीक जगह है। बँगला ऊँचाईपर है। गाँव आध मील नीचे है। रात-भर वर्षा होती रही। कमरेकी अँगीठी जलती रहनेसे गरमी रही। यहाँसे त्यूनी बारह मील है। टौंस नदीके किनारे होनेसे वह स्थान नीचा है। कथ्यान ऊँचेपर है। रास्तेमें एकदम उतार है। पहाड़ी यात्रामें यह तो होता ही है कि कभी एकदम ऊँचा, कभी एकदम गढ़ेमें। सारे मार्गमें चीड़का जंगल है। सामनेका पहाड़ बड़ा सुन्दर है। हमारे और उसके बीचमें गाड बह रही है। महेन्द्रु गाँव तक भगे चले गये। कथ्यानसे महेन्द्रु आठ मील है। यहाँसे एक मार्ग चतरेको जाता है, जिसके पास ही महाशिवका प्रसिद्ध मन्दिर है। महेन्द्रुके आगेका रास्ता टौंस नदीके साथ-साथ जाता है। टौंस बहुत बड़ी है। टिहरी, बुशायर जौनसार तथा शिमलेका अधिकांश जल अपनेमें समेट लेती है। यह यमुनाकी छोटी सखी मानी जाती है; परन्तु पानी इसीमें अधिक है। खूब मदमाती चलती है। इसे अपने यौवनका गर्व है। यहाँ इसपर रस्सेका पुल है। गाँवके लोग आर-पार जानेके लिए इसी पुलका उपयोग करते हैं। नीचे भीमकाय नदी बह रही है। ऊपर रस्सेको पकड़कर यात्री जा रहा है। नदीको देखकर कहीं उसके हाथसे रस्सा छूटा, तो वह भी सदाके लिए टौंसके गर्भमें समा गया! इस पुलसे पार जाना साहसका काम है; लेकिन इधरके पहाड़ियोंके लिए यह आये दिनकी बात है। कैलावाके मार्गमें हमने भी ऐसे पुलसे यात्रा की थी।

महेन्द्रुसे त्यूनी चार मील है। मार्गमें दाड़िम बहुत हैं। अनारको इधर दाड़ू कहते हैं, जो खानेमें बड़ा खट्टा होता है। इलाका गरम है। बादल न थे। सूर्यदेवता उग्र रूपमें थे; परन्तु हमें भी उनकी परवा

न थी। बारह बजे तक त्यूनी जा पहुँचे।

टौंसके किनारे त्यूनी एक छोटासा गाँव है। बँगला नदीके किनारे ही है। उसके साथ ही तीन-चार दूकानें हैं, जहाँ सब आवश्यक सामग्री मिल जाती है। दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। मध्यमें टौंस नदी विकराल रूपमें बह रही है। यहाँ उसपर झूलेका पुल है। शिमलेका मार्ग इसी पुलपर होकर जाता है। बँगलेके नीचे ही नदी दहाड़ रही है। यहाँ उससे एक धारा अलग होती है, जो अपेक्षाकृत अधिक शान्त है। जहाँ दोनों धाराओंका संगम है, उसी स्थानपर छोटेसे टापूमें चीड़का एक पेड़ गरदन निकाले खड़ा है। टौंसकी विकराल धारा भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकी, इसका उसे अभिमान है। न-जाने कबसे वह इसी रूपमें यहाँ खड़ा है। टौंसकी प्रचण्ड धारा आती है, और उसके चरण पखारकर चली जाती है। छोटी धारामें स्नान करके स्वस्थ हुए और बँगलेमें आकर आराम किया। यहाँके रेंजर श्रीरामप्रसादजी बड़े भले आदमी हैं। दिन-भर उनसे विचार विनिमयमें बीता।

शामका समय था। थोड़े-थोड़े मेघ छा रहे थे। सामनेके शिखरपर एकाकी खड़ा हुआ एक पेड़ झूम रहा था। मालूम होता था कि इस घाटीकी देखरेखके लिए वह पहरेपर खड़ा हो। शीतल समीर बह रहा था। हम भी प्रकृतिसे पाठ लेनेके लिए नदी-तीरपर जा धमके। जहाँ दोनों धाराओंके मिलनेसे उत्ताल तरंगें उठ रही थीं, वहाँ ही एक वृहत् शिलाखण्डपर आसन जमाया। साथ ही हमारे रसिक मित्र धारेश्वर, कवि राजेश्वर तथा दो एक अन्य सज्जन भी आ बैठे। ठीक आगे टौंस नदी नाचती चली जा रही थी। बड़ी-बड़ी शिलाओंने उसका मार्ग रोक रखा था, फिर भी उसके वेगमें कोई कमी न आई थी, अपितु वह उनसे लड़ती-भिड़ती चली जाती थी। उसकी प्रबल धाराके सामने ये सब शिलाएँ पराजय स्वीकार कर चुकी थीं। नदी अपने विजय-मार्गमें चहुँदिशि फेन फेंक रही थी। चट्टानोंसे टकराकर जल जब नीचे आता था, तो बड़े-बड़े आवर्त्त बनाकर चलता था। थोड़ी देरमें एक महाकाय वृक्ष बहता हुआ आया। शान्त धारामें वह मस्तानी चालसे चल रहा था। लो! वह फेनमें धुला और एक वज्रशिलासे टकराकर आवर्त्तमें जा पड़ा। देखते-ही-देखते उसके चिथड़े उड़ गये, फिर भी वह उसी छिन्न-भिन्न हालतमें चट्टानोंसे लोहा लेनेके लिए आगे बढ़ा जा रहा था। नदीके थपेड़ोंने उसे कहींका न रखा और वह अपनी किस्मतको रोता उसी

सुन्दर जल-प्रपात

धारामें विलीन हो गया। हम नदी-तीरपर बैठे इस संग्रामको देखते रहे। थोड़ी देरमें एक और थपेड़ा आया और हमारी शिलाको सराबोरकर आगे निकल गया। जान पड़ा कि नेपोलियनकी भाँति टौंस भी चतुर्मुखी लड़ाई लड़ रही है।

अँधेरा छाने लगा। साथी उठकर चल दिये। गिरिशिखरकी हरियाली और पुलके निकट नदी-प्रवाहमें श्यामता आ चली। घाटीमें से जल-धाराके साथ-साथ आता हुआ शीतल समीर मनको लुभा रहा था।

एकाकी बैठा हुआ मैं वहाँ इस अमृतका पान कर रहा था। क्या ही सुन्दर समाँ बँधा था! उस विरंचीकी अलौकिक माया है। यह गिरि, नदी तथा अन्य सब सामान उसीकी लयमें लीन किसी मधुर सन्देशके सुनानेमें मस्त थे। मैं बैठा-बैठा यह सब देख रहा था। थोड़ी देरमें अन्धकारका साम्राज्य छा गया। टापूका वह दुर्दान्त चीड़ भी, जो मुझसे कुछ गज़ दूरीपर था, अदृश्य हो गया। मैं अब भी नदी-तीरपर बैठा साँय-साँय बहती हवाका आनन्द ले रहा था।

टौंसकी लहरें फेन बिखेर रही हैं

निकट ही खड़े एक साथीने कहा—"आप यहाँ कहाँ हैं?" मुझे झटका-सा लगा। देखा, तो रात हो गई है। भगवानका नाम लेकर उठा और डेरेपर आया। काश्मीरकी डल झीलमें नावपर बैठकर मैंने प्रकृतिकी छटाका अवलोकन किया है। सचमुच दुनियामें वह दृश्य अपना सानी नहीं रखता। कैलाशके मार्गमें मानसरोवरके सन्ध्याकालीन दृश्यको भी अभी तक मैं नहीं भूला हूँ। वह भी एक विलक्षण चीज़ थी; किन्तु उस दिन टौंसके किनारेकी साँझमें एक अजीब मोहकता थी। मेरे लिए तो वह प्रभुका प्रसाद था। सच तो यह है कि जौन्सारका वह दृश्य सदाके लिए हृदय-पटलपर अंकित हो गया है।

त्यूनी जौन्सारका अन्तिम पड़ाव है। यहाँसे शिमलेको दो मार्ग जाते हैं—एक चौपाल होकर और दूसरा जुब्बल होकर। चौपालका मार्ग छोटा, अधिक सुहावना तथा कठिन है। हमारा विचार इधरसे ही जानेका था; किन्तु मार्गमें शलोगाडका पुल वर्षाकी अधिकतासे टूट गया था। जुब्बलका मार्ग लम्बा तथा सरल था। दृश्य भी मनोरम थे। साथ ही कोटगढ़ जानेके लिए इधरसे ही सुभीता था। युक्तप्रान्तमें देहरादून सबसे उत्तरी ज़िला है। जौन्सार उसीका एक भाग है। त्यूनीके बाद युक्तप्रान्तमें हमारी यात्रा थोड़ी ही रह गई। आगे पंजाबके शिमला ज़िलेकी छोटी-छोटी रियासतें हैं। आज हमने युक्तप्रान्तमें अन्तिम रात बिताकर सवेरे पंजाबके लिए प्रस्थान किया।

जुब्बलमें

३१ अगस्तके प्रातःकाल त्यूनीसे चले। रास्ता एक मील तक टौंस नदीके बाएँ किनारेपर होकर जाता है। झूलेके पुलको पारकर रास्तेपर आये। पुलसे निकलते ही रास्ता नदीके साथ हो लेता है। ऊपर ऊँचा ढीला पहाड़ खड़ा है, जिसकी शिलाएँ जब-तब गिरा करती हैं। भयके साथ नीचेसे निकले। एक बड़ी शिला पहाड़से बढ़ी चली आ रही थी। सहमकर सिरको झुकाया। परमात्माकी कृपासे वह हमपर न गिरकर एक फुट दूर नदी-गर्भमें जाकर विलीन हो गई। राम-राम करके वहाँसे भागे। थोड़ी देरमें ठीक मार्ग आ गया। एक मीलपर टौंसके साथ पाबर नदीका संगम है। टौंस दाईं ओरसे आती है, पाबर बाईं ओरसे। टौंस मलिन है, वह शुभ्रवर्णा। टौंसमें जलका परिमाण थोड़ा अधिक है। दोनों बड़े प्रेमसे आकर मिल रही हैं, और फिर त्यूनीकी ओर चली जाती हैं। अब टौंसने विदा ले ली और मार्ग पाबर

नदीके बाएँ किनारेसे होकर जाने लगा। हम उसके निकासकी ओर जा रहे थे, अतः चढ़ाईका रास्ता था। चढ़ाई बहुत मामूली थी। पाबरकी घाटी खूब हरी-भरी है। लोग भी मेहनती मालूम देते हैं। जगह-जगह धानके खेत हैं। कहीं-कहीं मक्का भी है। मार्ग कभी खेतोंमें से होकर जाता है, कभी चीड़के जंगलसे।

त्यूनीसे चार मीलपर कठन्तर है, जहाँ एक छोटीसी दूकान है। निकट ही एक सुन्दर झरना झर रहा है। वृक्षोंके कुंजकी छाया बड़ी अच्छी है। आज गरमीका दिन था, अतः यह स्थान बहुत पसन्द आया। थोड़ा विश्राम करके चले। तीन मीलपर काष्ठामें अच्छी बस्ती है। दो-तीन कपड़ेकी दूकानें भी हैं। अब हम देहरादून ज़िलेसे निकलकर टेहरी रियासतमें चल रहे थे। एक मीलपर अराकोटका पड़ाव है।

अराकोटमें टेहरी रियासतका बँगला है। ठहरनेके लिए यहाँके तहसीलदारसे, जो यहाँसे २५ मील दूर कडियारमें रहता है, इजाज़त लेनी पड़ती है। बँगलेके निकट न पानीकी सुविधा है और न कोई दूकान है। गाँव भी नदी पार है। हम लोग अराकोटमें नहीं ठहरे। यद्यपि अराकोट त्यूनीसे केवल आठ ही मील दूर है; किन्तु गरमी अधिक होनेसे आज चलनेमें अनिच्छा-सी थी।

अराकोटसे कोडू तीन मील है। रास्ता ऊबड़-खाबड़ है। चढ़ाई भी काफ़ी है। कोडू शिमला ज़िलेकी ढाडी रियासतमें है। शिमलेमें अंगरेज़ी इलाका कम है। छोटी-छोटी दो दर्जनसे अधिक खुद मुख्तार रियासतें हैं। सन् १८१५ में यह सब इलाका नेपालके अधिकारमें था। उस साल गोरखों और अंगरेज़ोंमें युद्ध हुआ। अंगरेज़ोंने इन रियासतोंमें गश्ती चिट्ठी भेजी कि जो राजा हमारी मदद करेगा, उसकी रियासत क़ायम रहेगी। रियासतोंने अंगरेज़ोंका साथ दिया, जिससे गोरखोंको यह प्रान्त छोड़ना पड़ा। अंगरेज़ी हुकुमत क़ायम हो गई। छोटी-छोटी रियासतें बनी रहीं। कुछ मुख्य स्थान अंगरेज़ोंने हथिया लिये और वहाँ छावनियाँ बना दीं। कसौली, डगशाई, सबाटू तथा सोलनकी छावनियाँ तभीसे हैं। उन्हीं छोटी रियासतोंमें से ढाडी भी है। सारे राज्यमें पाँच-सात गाँव हैं। आबादी छै सौके लगभग है, और वार्षिक आय भी इतनी ही है। इनमें जुब्बल रियासतको टैक्स भी देना पड़ता है। कोडू रियासतका बड़ा गाँव हैं। बजाज़की दूकान है। राजधानी यहाँसे तीन मील ऊपर ढाडी गाँवमें है। हमारा इरादा कोडूमें ठहरनेका था; किन्तु बनियेने नहीं ठहराया। रियासतमें झरनोंका आनन्द है। जगह-जगह जल बह रहा है।
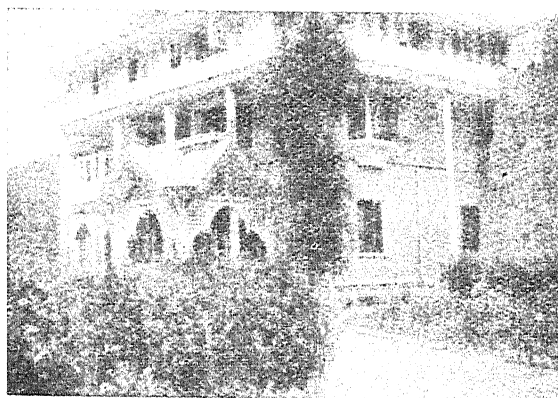
जुब्बलका राजमहल

ढाडीसे आगे रवाईं नामकी रियासत आती है। रवाईं भी छोटी रियासत है; किन्तु ढाडीसे बड़ी है। इसमें चीड़का जंगल अधिक है। कोडूके बाद रास्ता बहुत सुन्दर है। न चढ़ाई, न उतार, पाबर नदीके साथ-साथ चले जाते हैं। नदी पार टेहरी रियासत है पहाड़ोंपर पेड़-पत्ता कुछ नहीं, केवल घास-ही-घास है। भेड़, बकरियोंके समूह जगह-जगह चर रहे हैं। नदीके इधर जंगलका आनन्द है। पाबरका दृश्य बहुत ही सुन्दर है। धारा शान्त बही चली जा रही है। कहीं-कहीं वह अपना रोष भी प्रकट कर देती है। रवाईंकी राजधानी भी रास्तेसे थोड़ी दूर है।

रवाईं रियासतसे निकलकर क्योंथलमें आये। क्योंथल शिमलेकी बड़ी रियासतोंमें से है; किन्तु है चार स्थानोंमें बँटी हुई। यह उसका एक भाग है, जो पाबरके दोनों किनारोंपर फैला है। इसकी राजधानी शिमलेके निकट जुंगामें है। यहाँ सुण्डामें तहसीलदार रहता है। बहुत बड़ा गाँव है। कई तल्लेके मकान हैं; स्कूल है, जिसमें एक सौसे अधिक बालक शिक्षा पाते हैं; डाकखाना भी है; दूकानें तो एक दर्जनसे अधिक हैं। हम यहाँसे आध मील दूर हाटकोटीमें ठहरे।

हाटकोटी त्यूनीसे १६ मील है। यहाँ पाबर नदी अर्ध-वृत्ताकार होकर बही है। अर्धवृत्त टेहरीमें है। नदीके साथ गोलाईमें धानके लहलहाते खेत चले गये हैं। इन खेतोंसे सौ फीट उठकर एक और गोलाई है, उसमें भी खेत लहलहा रहे हैं। इससे भी सौ फीट ऊपर एक गोल पहाड़ी है, जिसपर दूब बिछी है। यह पहाड़ी एक सकरे टीले द्वारा ऊँचे पहाड़से जा मिली है। हाटकोटी इसी अर्धवृत्तसे बाहर पाबर नदीके बाएँ किनारेपर विराजमान है। हाटकोटीका किनारा अधिक ऊँचा है। उसपर खड़े होकर पारके अर्धवृत्तों, खेतों तथा पहाड़ियोंका नज़ारा बहुत ही आकर्षक मालूम देता है। बीचमें पाबर नदी अट्टहास करती हुई चली जाती है। थोड़ा ऊपर पाबर तीन धाराओंमें होकर बही है। परिश्रमी पहाड़ियोंने मध्यके इन टापुओंमें धान बोकर इस अनोखे नज़ारेको चार चाँद लगा दिये हैं।

हाटकोटीमें देवी दुर्गाका प्राचीन मन्दिर है। हम इसीमें ठहरे थे। पुजारीका कहना था कि यह मन्दिर पाण्डवोंके ज़मानेका है। यद्यपि यह मन्दिर है तो काफ़ी पुराना; किन्तु पुजारीके कथनकी सत्यतामें हमें सन्देह है। शिमलेके गैज़ेटियरमें भी इस मन्दिरकी प्राचीनताका उल्लेख है। मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है। दुर्गाकी प्रतिमा स्थापित है। इसके पश्चिममें शिवजीका एक छोटासा मन्दिर है, और आसपासमें यात्रियोंके ठहरनेके लिए धर्मशालाएँ बनी हैं। भादोंमें इस मन्दिरमें बड़ा भारी मेला लगता है। मन्दिरके निकट ही जुब्बलके राजाकी ओरसे एक छोटा बँगला यात्रियोंके लिए बना हुआ है।

दुर्गादेवीके मन्दिरके आसपास जुब्बल, क्योंथल तथा रामपुर बुशायरकी रियासतोंकी सीमाएँ मिलती हैं। यह मन्दिर किसी रियासतमें नहीं है। तीनों रियासतोंने अपनी थोड़ी-थोड़ी भूमि देवार्पण कर दी है। अब यह स्थान अन्तर्राष्ट्रीय-सा है। कोई मामला विवादका उठ खड़ा हो, तो तीनों रियासतोंकी पंचायत उसका निर्णय करती है।

मन्दिरसे सवेरे विदा हुए। हाटकोटीसे शिमलेको दो मार्ग जाते हैं—एक टोडूसे, दूसरा जुब्बलसे। हम लोग जुब्बल होकर गये। हाटकोटीसे जुब्बल सात मील है। रास्ता सुहावना है, और अधिक चढ़ाई भी नहीं है। विषकलटी नदीके किनारे जाना होता है। यह पाबरकी सहायक नदी है। यहाँ पाबरका साथ छूट गया। विषकलटीके एक ओर बुशायर-राज्य है, दूसरी ओर जुब्बल। थोड़ी देरमें बादल घिर आये, और हमें मूसलधार वर्षामें ही सफ़र करना पड़ा। दस बजे जुब्बल पहुँचे, तो वर्षा थम चुकी थी।

जुब्बल शिमलेकी बड़ी रियासत मानी जाती है। यद्यपि क्षेत्रफलमें क्योंथल, नाहन तथा रामपुर बुशायर रियासतें इससे कहीं बड़ी हैं, और आबादीके लिहाज़से भी रामपुर, बिलासपुर इससे बड़ी हैं; किन्तु जंगलके कारण आमदनीमें यह रियासत सर्वोत्तम है। इसकी आबादी २६ हज़ार है। जंगलकी आमदनी दस लाख है। चालीस हज़ार मालगुज़ारीसे आय हो जाती है। पिछले दिनों राजा साहबने देहरादून ज़िलेमें डोईवालाके निकट ज़मींदारी ख़रीदी थी। उसकी मालगुज़ारी भी सालाना चालीस हज़ारसे अधिक हो जाती है। यहाँका जंगल बहुत सुव्यवस्थित और लकड़ी क़ीमती है। राजा साहब प्रगतिशील विचारोंके हैं। सब देशी राज्योंमें अन्धाधुन्धी चलती है।

प्रजा दुःखी रहती है। यद्यपि जुब्बल इस अंशमें अपवाद नहीं है, फिर भी शिमलेके अन्य राजाओंसे इनके विचार अधिक उदार, स्वतंत्र तथा उन्नतिकी ओर हैं। उनके शासनमें प्रजाकी अवस्था सुधर रही है। निजी खर्चके लिए ये रियासतके कोषसे पाँच हज़ार रुपया मासिक लेते हैं। इसीमें उनका सब तरहका खर्च होता है। अभी यूरोप तथा अमेरिका गये थे। व्यापारी प्रकृति होनेसे रुपया व्यवसायोंमें लगाते हैं, और अच्छा लाभ होता है। वज़ीर सनातनी विचारोंके हैं। राजा साहबपर उनका प्रभाव भी अधिक है। पिछले दिनों जुब्बलके कुछ सज्जनोंने सामाजिक कार्योंके लिए 'सोशल सुधार-सभा' नामसे एक सभा क़ायम की थी। यह समझा गया कि शायद यह सभा यहाँ कोई क्रान्ति न कर दे, इसलिए उसके सभासदोंसे नेकचलनीके मुचलके लिए गये और सभा अकालमें ही दफ़ना दी गई। रियासतमें शिक्षा मुफ्त है, और सुना तो यह भी गया है कि अनिवार्य होनेवाली है। चौपाल तथा जुब्बलमें मिडल स्कूल हैं। बड़े-बड़े गाँवोंमें प्रायमरी स्कूल हैं। एक डी० ए० वी० स्कूल भी है। जुब्बलके निकट धारगाँवमें महता करमदासजी इसको अपने खर्चसे चला रहे हैं। शिमले तथा कांगड़ा कुल्लूकी रियासतोंमें पहले सब कारबार हिन्दीमें हुआ करता था। जुब्बलके सरकारी काग़ज़ोंमें अभी तक हिन्दीमें ही सब कुछ छपा रहता है; किन्तु लिखा उर्दूमें जाता है। यह हाल पिछले पन्द्रह-बीस सालसे हो रहा है। यद्यपि रियासतमें हिन्दी-उर्दू दोनों पढ़ाई जाती हैं; परन्तु अदालतोंमें उर्दूका बोलबाला है। रियासतके अफ़सरोंने मिलनेपर यही कहा कि क्या करें, पंजाबमें उर्दूकी ही प्रतिष्ठा है। किन्तु अभी तक लोग हिन्दीसे ही प्रेम करते हैं। पहाड़ोंमें आबादी भी हिन्दुओंकी है। हमारी रायमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी ओरसे प्रतिष्ठित विद्वानोंका एक डेपूटेशन इन रियासतोंमें घूमे, तो यहाँ पुनः हिन्दीकी प्रतिष्ठा होनेमें देर न लगेगी।

जुब्बलका पुराना गाँव यहाँसे एक मील है। पहले राजा साहब वहीं रहते थे। अब कुछ वर्षोंसे देवढ़ामें रहने लगे हैं। अब दोनों गाँवोंका सम्मिलित नाम जुब्बल हो गया है। जुब्बल बड़ा गाँव है। राजाका महल देखने लायक़ है। स्कूल, अस्पताल तथा दूसरे सब दफ्तर यहाँ ही हैं। एक छोटासा जेल भी है। उस समय उसमें कुल छै क़ैदी थे। महलके सामने पन्द्रह-बीस दूकानें तथा राजमन्दिर हैं। राजाका एक पुराना महल पुराने जुब्बलमें भी है। एक पहाड़ी नदी द्वारा बिजली पैदा की जाती है। सारे शहरमें बिजलीकी रोशनी होती है। बाज़ारके मध्यमें छोटासा थाना है। राज्य-भरमें सत्रह पुलिसके आदमी हैं।

हम लोग जुब्बलमें दो दिन रहे। विषकलटी नदीके किनारे राज्यकी ओरसे सराय बनी हुई है। हम लोग इसीमें ठहराये गये। दोनों दिन राज्यका आतिथ्य रहा। दोपहरको जब हम आराम कर रहे थे, तब एक दरिद्र पहाड़ीने दरवाज़ा खटखटाया। पूछनेपर उसने कहा—"मुझे तहसीलदारने आपकी ख़िदमतमें भेजा है।" पहाड़ीका नाम साद था। सादको देखकर हमें रोमांच हो आया। वह एक फटा पाजामा पहने था। बदनके कुरतेके तार-तार अलग हो रहे थे। उससे उसका बदन भी ढँकता था, इसमें सन्देह है, तो भी चीवरसे गया बीता। दाढ़ी बढ़ी हुई, बाल लम्बे-लम्बे बिखरे हुए और मुखपर झुर्रियोंके सिवा कुछ शेष न था। साफ़ दरिद्रताकी सजीव प्रतिमा था। कवियोंने करुण-रसका यत्र-तत्र विश्लेषण किया है; किन्तु साद तो स्वयं सजीव करुणा था। ओफ़! दरिद्रते! तेरा यह भी एक रूप है। आज भारतके अधिकतर गाँवोंमें दरिद्रता इसी रूपमें नंगा नाच-नाच रही है। हमने कहा—"हमें ख़िदमतगारकी ज़रूरत नहीं है।" वह कातर स्वरमें बोला—"मुझे तो करना ही है। राज्यमें सबसे बेगार ली जाती है। जो बेगार नहीं देते, उन्हें टैक्स अधिक देना होता है।

मैं न बेगार देता हूँ, न टैक्स। जब रियासतके मेहमान आते हैं, मैं ख़िदमतके लिए बुला लिया जाता हूँ। मैं राजपूत हूँ। दस बीघे ज़मीन है। दो-तीन बाल-बच्चे हैं। उनका पालन मैं ही करता हूँ, क्योंकि उनकी माँको वह उठा ले गया है।" फिर आकाशकी ओर मुँह करके बोला—"बाबूजी! अब कुछ नहीं चाहिए। बाल-बच्चे बड़े हो जायँ और वह मुझे भी उठा ले।" यह कहकर साद गम्भीर हो गया। हम लोगोंके आँसू निकल आये। सँभलकर कहा—"अभी कोई काम नहीं है। आराम करो।"

साद हमारे पास दो दिन रहा। बाज़ारसे सब सामान वही लाता। उसे राज्यसे दैनिक तीन आने मिल जाते। खाना हमारे यहाँ खाना और जो बच रहता, उसे पोटलीमें बाँधकर रख लेता। हमारे जानेके बाद वह यह सब सामान अपने घर ले गया। वह ख़िदमतगारीको ओहदा मानता था, और इसमें बड़ा सन्तुष्ट था।

दो दिनमें हमने अस्पताल, स्कूल आदि देखे। तीन सितम्बरको महलमें गये और राजा साहबके दर्शन किये। कहते हैं, राजा साहबको व्यसन छू तक नहीं गया है। सवेरे ही उठकर स्नान-ध्यानसे निवृत्त हो जाते हैं। हमने उन्हें दस बजेसे पहले ही दफ़्तरमें राजकार्य करते पाया। सुन्दर सुडौल शरीर है। उनके आचारकी सारे राज्यमें प्रशंसा है। राज्यके प्रत्येक विभागको ख़ुद देखते हैं। दस मिनट वार्तालाप हुआ, फिर हमने विदा ली। राजा साहबका नाम श्री भगतचन्द है। नेक हैं, निर्व्यसनी हैं। यदि कार्यवाहक साथी अच्छे मिल जाते, तो जुब्बलकी कायापलट हो जाती। हाँ, शिमलेके राज्योंमें अभी भी अग्रणी हैं। शामको पुराना जुब्बल देखा। राजाका महल खाली, पड़ा है। बाज़ार भी बड़ा नहीं है। सरायमें पहुँचे, तो अँधेरा हो चुका था। देखा, राजा साहब जेलसे लौटे आ रहे हैं। हमसे भी कुशल-मंगल किया और आगे बढ़े।

जुब्बल दो पहाड़ोंके बीचमें समुद्र-तटसे छै हज़ार फ़ीट ऊँचा है। इसके दाएँ ओरका पहाड़ दस हज़ार फ़ीट ऊँचा है, नीचेसे शिखर तक जंगलसे लदा है। यही जुब्बलकी सम्पत्ति है। पुराने जुब्बलसे इस शिखरका नज़ारा देखते ही बनता है। हम लोग जुब्बलमें दो दिन रहे। ये दिन ख़ूब आनन्दसे बीते और हमारे दिलोंमें एक विचित्र भाव अंकित कर गये।
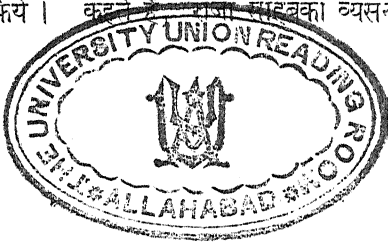
हिमालय

दूरे दूरे गाम अधिक अन्तर सों सोहत
रूपवती, पर्वती, सती, जुवती मन मोहत
अगनित पर्वत-खंड चहूँ दिसि देत दिखाई
सिर परसत आकाश, चरन पाताल छुआई
सोहत सुन्दर खेत-पाँति तर ऊपर छाई
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग-सोपान बिछाई
गहरे गहरे गर्त खड्ड दीरघ गहराई
शब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई

तहाँ निपट निरशंक, वन्य पशु सुख सों विचरत
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित विहरत
कहुँ ईंधन को ढेर सिद्ध-आवास जनावत
कहुँ समाधि-स्थित जोगीकी गुहा सुहावत
विविध विलच्छन दृश्य, सृष्टि-सुखमा-सुख-मंडल
नन्दन-वन-अनुरूप-भूमि-अभिनय-रंगस्थल
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम अचरज-आलय
श्रीधर-दृग छकि रहत 'अटल छवि' निरख हिमालय

—श्रीधर पाठक

हमारे ग्राम-गीत

बनारसीदास चतुर्वेदी

आजकल हमारे देशके सुशिक्षित आदमियोंका ध्यान ग्रामीण जनताके विचारों और आवश्यकताओंके अध्ययन करनेकी ओर अधिकाधिक जा रहा है, और यह वास्तवमें जाग्रतिका लक्षण है। जब तक हम लोग अपने किसान और मज़दूर भाइयोंकी मनोवृत्तिसे अच्छी तरह परिचित न होंगे, तब तक उनके सुख-दुःखको भलीभाँति नहीं जान सकते और न उनमें नवजीवनका संचार ही कर सकते हैं। हमारे नेता और सरकारी अफ़सर भी इस बातको अब समझने लगे हैं कि अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ग्रामीण जनताको प्रभावित करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। बम्बई, युक्त-प्रान्त तथा पंजाबके गवर्नरोंने भिन्न-भिन्न समयपर अपने भाषणोंमें ग्रामीण जनताके प्रति जो सहानुभूति दिखलाई है, उसका यही उद्देश्य है, और महात्मा गांधीजीके खादी-आन्दोलनके मूलमें यही भावना काम कर रही है कि किस प्रकार उस खाईको, जो भारतके पढ़े-लिखों और ग्रामीण लोगोंके बीच पैदा हो गई है, पाट दिया जाय। सरकारी अफ़सर रेडियो इत्यादिके साधनोंसे ग्रामीण जनताको अपने विचारोंसे प्रभावित करना चाहते हैं, और पंजाबमें तो सरकार इसकी स्कीम भी बना रही है। पर न तो सरकार और न हमारे कांग्रेसके नेता ही अपने कार्यमें सफलताकी आशा कर सकते हैं, जब तक कि वे ग्रामीण जनतासे उन्हींकी बोलीमें बातचीत करना न सीख लें।

रशियन लेखक तुर्गनेवके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'Virgin Soil' में एक मुख्य पात्रका नाम आता है Nezhdanov (नेज़डैनोव)। वे सुशिक्षित हैं। वे कविता भी करते हैं। उनके विचार क्रान्तिकारी हैं; पर उनका जीवन-क्रम और उनकी भाषा जनताकी भाषासे इतनी भिन्न है कि सर्वसाधारण तक अपना सन्देश पहुँचाना उनके लिए असम्भव है। पुराने ढंगकी ठर्रा शराब पीकर, जिसका प्रचार रूसी किसानोंमें था, वे जनताको क्रान्तिके लिए भड़काने जाते हैं। एक खलिहानके पास खड़े हुए आठ-दस किसान भी उन्हें मिल जाते हैं, 'स्वाधीनता' और क्रान्ति आदि शब्दोंका प्रयोग भी वे अपने भाषणमें करते हैं; पर किसानोंकी समझमें खाक नहीं आता कि वक्ता महोदय क्या बक रहे हैं। एक किसान उनके भाषणको सुनके कहता है—"बात तो बानें बड़ी कड़ी-कड़ी कहीं।" दूसरा बोलता है—"मोइ तो फौजको कोई अफसर दीखतु है।" तीसरा उसपर टिप्पणी करता है—"अरे हम सब जानतें। सरकारी आदमी है। सरकार हमसें टिक्कस लेति है, सो वाकैं बदलैं जि बकवास अपने दरोगनसैं कराउति है।" बेचारा नेज़डैनोव घबराता है और सिर धुनकर कहता है—"क्या मूर्खोंसे पाला पड़ा है; लेकिन मुश्किल तो यह है कि हम लोगोंमें से कोई वह ढंग ही नहीं जानता, जिससे इन कृषकोंको क्रान्तिके लिए उत्तेजित किया जा सके।" अन्तमें नेज़डनोव आत्मघात करके अपने प्राण त्याग देता है। कुछ ऐसी ही दशा हमारे यहाँके अनेक राजनैतिक नेताओंकी है। वे जनताकी भाषामें अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते। श्रीयुत श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल अपने पिछले पत्रमें लिखते हैं—

"जब मैं किसी नेता अथवा धुरन्धर विद्वानको गाँवोंमें किसानोंमें व्याख्यान देते हुए सुनता हूँ, तब मेरा दिल बैठने लगता है। सोचता हूँ, हे राम, इनकी बातोंको कोई समझ भी रहा है। देखता हूँ, बेचारे श्रोता मुँह बाये, वक्ताके होठोंको हिलते, उनके शरीरको डुलते और शरीरके अन्य अंगोंको चलते देखकर समझते हैं कि ये कुछ कह ज़रूर रहे हैं। पर क्या कह रहे हैं, राम जाने! यह बात मैंने पहले-पहल स्वयं अपने व्याख्यानोंमें अनुभव की थी। तबसे

अब तक मैं गाँवोंके कार्यकर्ताओंके व्याख्यान सुनकर उनसे गाँवोंमें व्याख्यान देना सीखता रहता हूँ। उन द्रोणोंको इस एकलव्यका क्या पता ?"

'लेनिनके संस्मरण' नामक सुप्रसिद्ध पुस्तकमें उनकी पत्नीने लिखा है—"लेनिनने ख़ूब परिश्रम और प्रयत्न करके किसान-मज़दूरोंकी समझमें आने लायक़ भाषण देना और लेख लिखना सीखा था। जो लेखक जनसाधारणके लिए लिखते हैं, उनकी रचनाओंका लेनिनने अध्ययन किया था ; लेकिन इसमें उन्हें सबसे अधिक सहायता मिली थी स्वयं मज़दूरोंसे। वे मज़दूरोंसे घंटों बात करते थे। मिलोंमें जिस तरहका जीवन उन्हें व्यतीत करना पड़ता था, उसके बारेमें पूरा-पूरा हाल सुनते थे। जो टीका-टिप्पणी वे करते थे, उनको याद रखते थे और अपने ज्ञानके धरातलको इस ढंगसे ऊँचा-नीचा करते थे, जिससे वह मज़दूरोंकी समझके अनुकूल बन जाय, और तब उन्हें यह पता लग जाता था कि मज़दूर क्या चीज़ नहीं समझ रहे हैं और उनकी नासमझीका कारण क्या है। कितने ही मज़दूरोंने लेनिनके जो संस्मरण लिखे हैं, उनमें उन वार्तालापोंका, जो लेनिन उनके साथ करता था, ज़िक्र किया है।"

वैसे तो ग्राम-गीतोंका संग्रह कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है ; पर देशकी वर्तमान परिस्थितिमें सबसे अधिक महत्त्व उनका यह है कि वे हमें जनताकी मनोवृत्तिके अध्ययन करनेमें बड़ी भारी सहायता देते हैं। कभी-कभी ग्रामवासी इस ख़ूबीके साथ अपने विचारोंको प्रकट करते हैं कि उससे आश्चर्य होता है।

हम सत्यनारायणके ग्राम धाँधूपुर गये हुए थे। कविरत्नजीके ग्रामीण मित्रोंसे उनकी चर्चा चल रही थी। वृद्ध गेंदालाल जाट बोले—

"हम का कहैं, धाँधूपुरको भागई फूटि गयौ। बड़ौ साहिर (शायर) आदमी हो, ताई तैं बाकौ नाम दूरि-दूरि फैलि गयौ—

"कायर कूर अनिष्ठा नारी चुगल मरौ काऊ जानी ना।
अरु कौआ कुत्ता किरिमि गिजाई इनकी मौत बखानी ना॥
मरिबौ जगत सराहैं राजा साहिर सूर सती कौ।
रन देखौ करन जती कौ॥"

अभिप्राय यही है, संसार शायर (कवि) शूरवीर तथा सतीकी मृत्युकी सराहना करता है, वैसे इस संसारमें कौआ, कुत्ता, क्रिमि (गिजाई इत्यादि) तो लाखों ही मरते रहते हैं।

यदि ब्रजके आसपासके ग्रामोंमें सत्यनारायणजीके विषयमें भाषण देते समय उपर्युक्त पद्यका प्रयोग कर दिया जाय, तो किसानोंको सत्यनारायणका महत्त्व समझानेमें देर न लगेगी।

एक बार ग्रामके किसी संगीत-प्रेमीके आँगनमें कोयल बोल गई। उन्होंने सोचा कि इसे फँसाकर पिंजड़ेमें बन्द करना चाहिए। फंदा डाल दिया ; पर कोयलके बजाय उसमें एक उल्लू आ फँसा ! अब वे ग्रामीण महानुभाव उस उल्लूको तंगकर करके कहने लगे—"गाती क्यों नहीं ?" उस समय खूसट महोदय कहते हैं—

"कोइल बोलि गई अँगना।
खूसट आइ फँसे फँदना।
अकल हैरान सकल मति हरी।
कहौ तो चिंच-पिंच चिंच-पिंच करी।"

जब कोई अयोग्य आदमी उच्चकोटिके कार्यमें जा फँसता है, तब उस बेचारेकी मनोवृत्ति कैसी हो जाती है, इसका बड़ा सुन्दर वर्णन उपर्युक्त पंक्तियोंमें किया गया है। श्रीराम शर्माने यह कविता हमें सुनाई थी, और इसने एक बड़े धर्म-संकटसे हमारा उद्धार कर दिया। कुछ अदूरदर्शी कृपालु महानुभावोंने एक साहित्य-परिषदके लिए प्रधान बननेकी आज्ञा हमें दी थी। कुछ समझमें नहीं आता था कि क्या करें। इस संकटसे हम बचना भी चाहते थे, और उन महानुभावोंका दिल भी नहीं दुखाना चाहते थे। बस, उस वक्त उपर्युक्त कविता काम कर गई।

ग्राम-गीतोंके साहित्यिक मूल्यको यथोचित महत्त्व देते हुए भी इस समय हम उनका मनोवैज्ञानिक मूल्य

ही अधिक समझते हैं, और इसलिए जो भी साहित्य-प्रेमी इस दिशामें प्रयत्न कर रहे हैं, उनका अभिनन्दन करना हमारा कर्त्तव्य है। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि हिन्दी-मन्दिर प्रयागके प्रवर्त्तक श्री रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी-जगतमें इसके pioneer या पथप्रदर्शक हैं। त्रिपाठीजीसे अनेक विषयोंमें हमारा घोर मतभेद रहा है, हमने उनका मज़ाक उड़ाते हुए दो कार्टून भी छापे हैं और उनके खिलाफ़ लिखा और कहा भी है; पर न्यायपूर्वक हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि इस दिशामें उनका प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है, और भविष्यमें वे अपनी अन्य रचनाओंकी अपेक्षा 'कविता-कौमुदी' पाँचवें भागके द्वारा ही भावी जनताके श्रद्धा-भाजन बनेंगे।* अपनी पुस्तककी भूमिकामें वे लिखते हैं—

"मुझे हार्दिक हर्ष है कि इस नये रास्तेपर चलनेवाला मैं पहला व्यक्ति हूँ, जिसने एक मंज़िल ख़तम कर ली है। मेरा काम गीतोंकी उपयोगिता प्रकट करके उनके संग्रहके लिए जनतामें सुरुचि और प्रयत्न जाग्रत करनेका था। अपनी समझमें मैंने उसे पूरा कर लिया। अब रास्ता खुल गया है। उसकी सब मंज़िलें चलकर पूरी करनेवाले लोग आगे आयेंगे। मैंने जो कुछ किया, वह हिन्दी-संसारके सम्मुख है। वह चाहे भला हुआ हो, या बुरा, सब हिन्दी-संसारको समर्पित है। गीत उसीके रत्न हैं, जो उसीके चारों ओर बिखरे पड़े हैं। उनका कोई क़द्रदान नहीं था। मैंने उनमें से थोड़े रत्नोंको उठाकर आगे रखा है, और बताया है कि ये रत्न हैं, इनकी रक्षा होनी चाहिए। मैं इतना ही कर सकता भी था।

"ये रत्न मुझे बहुत ही प्यारे हैं, क्योंकि इनको मैंने अपना बहुमूल्य स्वास्थ्य, जिसका मूल्य रुपयोंसे नहीं आँका जा सकता, व्यय करके प्राप्त किया है। यह वह पौधा है, जिसे मैंने अपने स्वास्थ्यसे सींचा है। ईश्वर करे, यह बढ़े, फूले, फले। इसकी छायामें संसारके घोर दुःखोंसे दग्ध जन कुछ देर विश्राम लेकर शीतल, स्वस्थ और सुखी हों।"

त्रिपाठीजीकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो रही है, और उनके प्रदर्शित मार्गपर कम-से-कम एक सज्जन और भी चल रहे हैं, जिनका नाम है श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, और जिन्होंने अपने जीवनके छै-सात वर्ष इसी कार्यके लिए व्यय कर दिये हैं, और जो उनके जीवनका एक मिशन बन गया है। नौ-दस हज़ार मीलकी यात्रामें त्रिपाठीजीको कैसे-कैसे कष्ट सहने पड़े और 'गुड़ और पूरी' खाते-खाते उनकी डाइबिटीज़ (बहुमूत्र रोग) किस प्रकार बढ़ गई, इसका वृत्तान्त पाठक ग्राम-गीतकी भूमिकामें पढ़ सकते हैं; पर इसमें सन्देह नहीं कि वे कितने ही रत्न जनताके सम्मुख रखनेमें समर्थ हुए हैं। यद्यपि श्रीमान डा० भगवानदासजीकी इस तुलनाको हम अवांछनीय ही समझते हैं कि किसी-किसी ग्राम-गीतमें रसकी मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास और सूरदासकी रचनाओंसे भी अधिक जान पड़ी, फिर भी इस बातसे कोई समझदार न्यायप्रिय आदमी इनकार नहीं कर सकता कि ग्राम-गीतोंका अपना एक निराला सौन्दर्य है। महाकवियोंकी कविता उपवनोंके सुसंस्कृत सौन्दर्यकी तरह है, और ग्रामीण कवियोंकी रचनाएँ वनोंके ऊबड़-खाबड़ दृश्योंकी भाँति। अपनी-अपनी जगह दोनोंका महत्त्व है। तुलना करनेसे ग़लतफ़हमी पैदा हो सकती हैं, बल्कि हमारा तो यह अनुमान है कि व्यास, वाल्मीकि और तुलसी इत्यादिको इस मामलेमें घसीटनेसे ग्राम-गीतोंके संग्रह-कार्यमें कुछ बाधा ही पड़ी है। इस प्रकारके मतभेदकी दो-एक छोटी-मोटी बातोंको छोड़कर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि त्रिपाठीजीका यह कार्य साहित्यिक और राजनैतिक दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हुआ है। इतने ज़बरदस्त कार्यमें, जो किसी एक आदमीका नहीं, बल्कि साधन-सम्पन्न संस्थाका है, त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है। त्रिपाठीजीने अपनी भूमिकामें लिखा भी है कि वे इस संग्रहमें युक्त-प्रान्तके

* मूल्य ३); पता—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

पूर्वी ज़िलोंके और बिहारके ही गीत अधिक रखनेमें समर्थ हुए हैं, और इस वजहसे हमारे जैसे ब्रजवासी उनसे सख्त नाराज़ भी हैं। बुन्देलखंडी ग्राम-गीत भी ब्रजके गीतोंके मुक़ाबलेके ही हैं। यद्यपि अभी हम श्रीमान ओरछा-नरेश महाराज वीरसिंहजू देव तथा उनके राजकवि श्री मुंशी अजमेरीजीके इस दावेको माननेके लिए तैयार नहीं कि बुन्देलखंडी ग्राम-गीत सर्वोच्च हैं, फिर भी ब्रजवासी और बुन्देलखंडियोंका एक बातमें समझौता हो सकता है, वह यह कि दोनों मिलकर त्रिपाठीजीपर निन्दाका प्रस्ताव पास करें। जो भूल त्रिपाठीजीने की थी, वही श्री देवेन्द्रजी भी करने जा रहे थे। जुलाई सन् १६३२ के 'विशाल भारत'में एक सम्पादकीय नोट द्वारा हमने सत्यार्थीजीके प्रशंसनीय उद्योगकी ओर अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया था। अभी उस दिन उन्होंने स्वयं कलकत्ते पधारकर भारतीय ग्राम-साहित्य (प्रथम भाग) नामक पुस्तक हमें दी। पुस्तक कई सौ पृष्ठमें समाप्त हुई है, और उसमें निम्न-लिखित भाषाओं तथा उप-भाषाओंके ग्राम-गीतोंका नमूना दिखालाया गया है :—

(१) बँगला, (२) उड़िया, (३) आसमिया, (४) गुजराती, (५) मराठी, (६) सिंधी, (७) तेलगु, (८) तामिल, (९) बरमी, (१०) पंजाबी, (११) काश्मीरी, (१२) मारवाड़ी, (१३) सावरा, (१४) संथाली, (१५) मणिपुरी, (१६) डोगरा इत्यादि।

इनकी सूची तीस-बत्तीस तक पहुँच गई है ; पर इस विस्तृत सूचीमें ब्रजभाषा तथा बुन्देलखंडीका नाम न देखकर हमें बहुत खेद हुआ, और हमने सत्यार्थीजीसे अनुरोध किया कि वे तब तक अपनी पुस्तकका छपाना स्थगित रखें, जब तक वे इन दोनों प्रान्तोंमें घूमकर वहाँके गीत संग्रह न कर लें। हर्षकी बात है कि उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, और वे इसी महीनेमें ब्रज तथा बुन्देलखंडकी यात्रा करेंगे। हमें दृढ़ विश्वास है, इस प्रान्तोंके साधन-सम्पन्न सज्जन सत्यार्थीजीके इस प्रयत्नमें उनकी भरपूर सहायता करेंगे।

श्री त्रिपाठीजीको कुछ महानुभावोंने आर्थिक सहायता दी थी, यह बात हमने सहर्ष उन्हींकी पुस्तककी भूमिकामें पढ़ी है, और इसीलिए हमें आशा है कि सत्यार्थीजीको भी इस प्रकारकी सहायता मिलेगी। सत्यार्थीजीका प्रयत्न त्रिपाठीजीके प्रयत्नकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक क्षेत्रमें हुआ है, और यह होना भी चाहिए था, क्योंकि त्रिपाठीजीको बहुतसे कार्य हैं (और अब तो वे साहित्यिक मैदानमें ऐसे सरपट भाग रहे हैं कि पाँच-पाँच दिनमें एक-एक नाटक लिख डालते हैं !) और सत्यार्थीजी हाथ धोके केवल इसी कामके पीछे पड़े हैं। होना तो यह चाहिए कि हिन्दू-विश्वविद्यालय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इत्यादि संस्थाएँ हज़ार-हज़ार रुपये व्यय करके इन दोनों महानुभावोंके भाषण ग्राम-गीतोंपर करायें और इस प्रकार इनका सम्मान करें ; पर सम्भवत: अभी वह दिन दूर है। तब तक साधारण जनता तथा साधन-सम्पन्न व्यक्तियोंको ही इधर ध्यान देना चाहिए। कम-से-कम सम्मेलनको ही यह कार्य करना चाहिए कि अगली वसन्त-व्याख्यानमालामें त्रिपाठीजीके कई भाषण भिन्न-भिन्न साहित्यिक क्षेत्रोंमें कराये, जिससे त्रिपाठीजीका यह भ्रम कि सम्मेलनका महत्त्व भगवान गौतम बुद्धकी हड्डियों कैसा रह गया है, दूर हो जाय !

त्रिपाठीजीकी प्रकाशित और सत्यार्थीजीकी अप्रकाशित पुस्तकके कुछ ग्राम-गीतोंको हम किसी अगले अंकमें देनेका प्रयत्न करेंगे।

सत्यार्थीजीकी ब्रज तथा बुन्देलखंड यात्राके इस शुभ अवसरपर हम इन मंडलोंके साहित्यिक कार्यकर्ताओंसे प्रार्थना करते हैं कि वे सत्यार्थीजीको इस संग्रहमें पूरी-पूरी सहायता दें। अभी उस दिन सत्यार्थीजीने शान्ति-निकेतन पहुँचकर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको अपने संग्रहके कुछ अंश सुनाये थे। उन्हें सुनकर कविवरने जो पत्र लिखा है, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"UTTARAYAN"
SANTINIKETAN, BENGAL
APRIL 23, 1934

I have been delighted to listen to Professor Devendra Satyarthi reciting and singing some of the folk poems and songs which he has been collecting from all parts of India. It is a valuable work requiring delicate sensibility for the exploration of an obscure region of literature which is a spontaneous creation of the sub-conscious mind of the people. Prof. Devendra Satyarthi has evidently the gift of a sensitive imagination that has enabled him to do his work so thoroughly because he has enjoyed doing it.

The creative aspect of the popular mind has its own revelation which is of immense interest and I feel deeply thankful to Prof. Satyarthi for helping us to realise it.

—RABINDRANATH TAGORE.

अर्थात्—"मुझे प्रोफेसर देवेन्द्र सत्यार्थीने कुछ ग्राम-कविताएँ और ग्राम-गीत पढ़कर और गाकर सुनाये, जिन्हें उन्होंने सारे भारतवर्षमें घूमकर संग्रह किया है। उन्हें सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। साहित्यके इस अल्प ज्ञात अंगकी खोजके लिए, जो जनताकी अन्त: चेतनाके आकस्मिक उद्‌गार हैं, बहुत कोमल भावशीलताकी आवश्यकता है। यह प्रत्यक्ष है कि प्रोफेसर देवेन्द्र सत्यार्थीमें भावनापूर्ण कल्पनाका गुण मौजूद है। इसी गुणके कारण वे इस कार्यको ऐसी अच्छी तरह कर सके हैं, क्योंकि उसे करनेमें उन्हें आनन्द प्राप्त हुआ है।

"जनसाधारणकी बुद्धिका रचनात्मक पहलू अपना निजी रहस्य रखता है, जिसमें असीम मनोरंजन भरा है। इस रहस्यको समझनेमें प्रोफेसर सत्यार्थीने हमें जो सहायता दी है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।"

—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जब कवीन्द्र जैसे महापुरुष अपना बहुमूल्य समय निकालकर सत्यार्थीजीके ग्राम-गीत सुन सकते हैं, तो यह आशा करना व्यर्थ न होगा कि ब्रज तथा बुन्देलखंडके साहित्य-प्रेमी सज्जन भी इस अवसरसे लाभ उठायेंगे।

प्रणाम

श्री सियारामशरण गुप्त

प्रणत प्रणाम!
प्रेमयुत शत-शत प्रणत प्रणाम!
देखकर यह समुदाय समाज,
जान पड़ता है मुझको आज,
सभीसे है मेरी पहचान,
सभीसे है सम्बन्ध महान!
विगत जन्मोंमें भी बहु बार
मिले हैं हम सब इसी प्रकार।
हँसे-खेले हैं मिल-जुल संग,
रहा है प्रेम-प्रसंग अभंग।
नहीं अब यद्यपि वह सब याद,
तदपि उसका आह्लाद-विषाद
नहीं हो गया समस्त समाप्त;
अभी तक है उर-उरमें व्याप्त।
तभी तो एक तनिक-सी दृष्टि
कर गई अतुल पुलककी वृष्टि।
न होनेपर भी कारण ज्ञात,
हो गया है रोमांचित गात।
बोलकर दो ही मीठे बोल,
उठाकर एक मृदुल हिल्लोल,
अरे भाई, तुममें से कौन
हो गया मेरे भीतर मौन?
प्रणत प्रणाम!
उसे है शत-शत प्रणत प्रणाम!

[२]

प्रणत प्रणाम !
सभीको शत-शत प्रणत प्रणाम !
आह ! कैसा मेरा अविवेक
कहूँ कैसे तू है बस एक ?
एक ही हो, मैं तो साह्लाद
आज लूँगा सहस्र शत स्वाद ।
तुम्हींमें से किस-किसके गेह,
तुम्हींमें से किस-किसका स्नेह,
न-जानें पाकर कितने काल
हुआ हूँ मैं कृतकृत्य, निहाल !
जन्मदात्रीकी, माँकी, गोद,
पिताका प्रेम प्रपूर्ण प्रमोद,
बहिनका शुचि स्निग्ध बर्त्ताव,
बड़ोंकी वत्सलताका भाव ;
अन्य स्वजनोंका प्यार-दुलार
पा चुका मैं फिर-फिर बहु बार !
अयुत जन्मोंकी भी पथ-श्रान्ति
हुई तब तो मेरे हित शान्ति ।
आज जो कुछ मुझमें अभिराम,
पूर्वका ही है वह परिणाम ।
किन्तु हा ! कैसे हो यह ज्ञान
कि किससे पाया है क्या दान ?
सिन्धुमें मेरा घट भर नीर
किस तरह खोजूँ मैं अगभीर ?
किन्तु मैं आज नहीं हूँ क्षुद्र,
हुआ मेरा ही निखिल समुद्र ।
प्रणत प्रणाम !
सभीको शत-शत प्रणत प्रणाम !

[३]

प्रणत प्रणाम !
बन्धुवर, शत-शत प्रणत प्रणाम !
पूर्वमें मैंने किसी प्रकार
किया हो यदि कुछ दुर्व्यवहार,
निरंकुश होकर क्रूर अबाध
किया हो गुरुतर गुरु अपराध,
अकारण ही करके विद्वेष
हृदयको पहुँचाई हो ठेस,
क्षमा उसके निमित्त शत बार
चाहता हूँ मैं हाथ पसार ।
नहीं है स्वयमपि यद्यपि याद
मुझे अपने वे प्रचुर प्रमाद,
आजके मेरे दोष तमाम
उसी दुष्कृतिके हैं परिणाम ।
इन्हें भूलोगे प्रिय, किस भाँति
भुलाना होगा, हो जिस भाँति ।
जन्म-जन्मान्तरसे चिर काल
भूल जानेकी प्रकृति विशाल
रही है तुममें परम विचित्र,
यहाँ भी रहने दो वह मित्र !
प्रणत प्रणाम !
आज है शत-शत प्रणत प्रणाम !*

* इस कवितामें श्री सियारामशरणजीने जनता-जनार्दनको श्रद्धांजलि अर्पित की है। —सम्पादक

'मानसार'

ब्रजमोहन वर्मा

गत १५ जनवरीको अचला धरतीने सात मिनटके कम्पनमें समूचे उत्तरी बिहारको धूलमें मिला दिया। आलीशान इमारतें ज़मीदोज़ हो गईं; गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ चरणचुम्बी धूलमें परिणत हो गईं; मुहल्ले वीरान हो गये, गाँव तबाह हो गये, क़स्बे खंडहर हो गये और नगर विध्वंस हो गये।

प्रकृतिके इस आकस्मिक ताण्डवने मनुष्यको हतबुद्धि बनाकर उसके होश-हवास ग़ायब कर दिये। चारोंओरसे त्राहि-त्राहिकी आवाज़ आने लगी। भूचाल-पीड़ित बिहारियोंके करुण-क्रन्दनसे सारा देश हिल उठा। दो-तीन मासके बाद अब लोगोंके होश हवास दुरुस्त हो रहे हैं। अब उन्हें सारी बातोंपर ग़ौर करके अपने भावी कार्यक्रमको निश्चित करना है। बिहार-निवासियों, बिहारी नेताओं और बिहार-सरकारके सामने सबसे बड़ी समस्या है ध्वंस स्थानोंका पुनर्निर्माण। अनेक कस्बों और शहरोंको नये सिरसे बसाना पड़ेगा, हज़ारों—लाखों—मकानोंकी तामीर करनी पड़ेगी। अब सवाल यह है कि यह पुनर्निर्माणका कार्य किस प्रकार किया जाय। सुना है कि बिहार-सरकारने पुनर्निर्माणके लिए म्यूनिसिपैलिटियोंको इंजीनियरी सहायता देनेका वचन दिया है।

लेकिन देशमें आजकल जो स्थापत्य प्रणाली प्रचलित है, वह या तो विदेशी है या वर्णसंकरी। वह न तो कलाकी दृष्टिसे ही उत्तम है और न लागतकी दृष्टिसे ही किफ़ायती। आजकल ही नहीं, वरन पिछली कई शताब्दियोंसे देशकी स्थापत्य प्रणालीमें इस प्रकारकी वर्णसंकरता चली आ रही है। लेकिन प्रश्न यह होता है कि क्या भारतीयोंने किसी ऐसी स्थापत्य शैलीको जन्म देकर विकसित किया है, जो भारतकी परिस्थिति, आब-हवा, सामाजिक आवश्यकता और भारतीय संस्कृति और कलाकी आत्माके अनुरूप हो? इस प्रश्नका उत्तर प्रयाग-विश्वविद्यालयके संस्कृत-विभागके प्रधान श्री प्रसन्नकुमार आचार्य द्वारा सुसम्पादित और हालमें आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित 'मानसार' नामक संस्कृत-ग्रन्थमें मिलता है।

'मानसार' स्थापत्य कलाका एक अत्यन्त प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थका अस्तित्व सौ-सवा सौ वर्ष पहलेसे ज्ञात था; लेकिन उसका प्रकाशन अब तक न हो सका था। ग्रन्थ इंजीनियरों, शिल्पियों, मूर्तिकारों और कारीगरोंके लिए व्यावहारिक ढंगपर लिखा गया था, और जान पड़ता है कि उन्हीं लोगोंके हाथमें रहा। प्राचीनकालमें छापेख़ाने तो थे नहीं, सभी ग्रन्थ हाथसे ही नक़ल किये जाते थे। 'मानसार'का काम जिन्हें पड़ता था, वे प्रायः बे-पढ़े-लिखे शिल्पी और कारीगर होते थे। उनके द्वारा नक़ल किये जानेमें अशुद्धियाँ रह जाना सम्भव ही नहीं, वरन अवश्यम्भावी था। फल यह हुआ कि समयके फेरसे 'मानसार'की जो प्रतियाँ वर्तमान काल तक पहुँचीं, वे अशुद्धियोंका भंडार बन गईं। उनकी भाषा इतनी अशुद्ध हो गई है कि सर भंडारकर और डाक्टर बूलरने उसकी भाषाको अत्यन्त 'बर्बर संस्कृत' लिखा है।

श्री प्रसन्नकुमार आचार्यने बीस वर्षके सुदीर्घ परिश्रमके बाद 'मानसार'को तीन जिल्दोंमें प्रकाशित किया है। पहली जिल्दमें 'मानसार'का मूल संस्कृत पाठ है, दूसरी जिल्दमें संस्कृत मूलका, विवेचनात्मक टिप्पणियोंके साथ, अंगरेज़ी अनुवाद है और तीसरी जिल्दमें नक़्शे और चित्र हैं। सम्पादक महोदयने ग्यारह विभिन्न प्रतियोंसे संस्कृत-पाठको यथासम्भव शोधा है।

'मानसार' अपने ढंगका अनोखा ग्रन्थ है। इससे भारतकी प्राचीन सभ्यता और कलापर जो प्रकाश पड़ेगा, उसका मूल्य आँका नहीं जा सकता। पुस्तक सत्तर अध्यायोंमें विभक्त है। पहले आठ अध्याय प्रस्तावना-स्वरूप हैं। उसके बादके बयालीस अध्याय स्थापत्य कलाके ऊपर हैं, और बाक़ी अध्याय मूर्तिकला-सम्बन्धी।

कारीगर चार श्रेणियोंमें विभाजित किये गये हैं:—(१) स्थपित (प्रधान इंजीनियर), (२) सूत्रग्राही (नक्शा बनानेवाला ड्राफ्ट्समैन), (३) वर्धकी (रंग-मिस्त्री), (४) सूत्रधार (बढ़ई)।

प्रत्येक अपने-अपने विषयका विशेषज्ञ होता था ; परन्तु हर एकको समूची स्थापत्य कलाका ज्ञान रखना आवश्यक था। 'मानसार'में सबके गुण-दोष वर्णित हैं।

वस्तु-प्रकरणमें चार प्रकारके स्थापत्य अर्थात् भूमि, इमारतें, सवारियाँ और रथोंका वर्णन है। भूमिका चुनाव किस प्रकारका हो और कैसे किया जाय, यह बताया गया है। अगले अध्यायमें मकानोंकी स्थिति और दिशाका वर्णन है।

नगर बसानेका ढंग दो अध्यायोंमें 'ग्राम-लक्षण' और 'नगर-विधान'के नामसे बड़े विशद रूपसे दिया गया है। आठ प्रकारके ग्राम और आठ प्रकारके नगर बताये गये हैं, जिनमें प्रत्येकके बसानेका ढंग अलग-अलग है। नाप-जोख तथा अन्य बातोंका नियमित विवरण पुस्तकमें मौजूद है। दुर्ग और सैनिक इमारतोंके भेद और बनानेकी व्यवस्था भी दी गई है।

समाजकी विभिन्न श्रेणियोंकी हैसियतके अनुसार उनके मकान भी एकसे लेकर बारह तल्ले तकके बताये गये हैं, और उनकी हर तरहकी लम्बाई-चौड़ाईका अनुपात आदि विशद रूपसे समझाया गया है। यह सुनकर आश्चर्य होता है कि अबसे लगभग दो हज़ार वर्ष पहले भी भारतमें बारह तल्ले ऊँचे मकान बनते थे। ज़मीनके भेदके अनुसार गाँवों, इमारतों और तालाबोंकी बुनियादें, खम्भे, उनके भेद और आकार, छतें, गुम्बद, शिखर, इमारती सामान (पत्थर, ईंटे, लकड़ी और धातुकी चीज़ें), तोरण, नालियाँ, सीढ़ियाँ और ज़ीने, अहाता, आँगन, दरवाज़े, खिड़कियाँ, महराबें इत्यादि स्थापत्यसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तुके आकार, प्रकार, भेद, लम्बाई, चौड़ाई, बनानेका तरीक़ा आदि प्रत्येक विवरण 'मानसार'में मौजूद है।

इसके अतिरिक्त, सवारियाँ, रथ, सिंहासन, फर्निचरकी चीज़ें और हिन्दू, बौद्ध, जैन मूर्तियाँ इत्यादि बनानेके सम्बन्धमें भी व्यावहारिक शिक्षा 'मानसार'में मौजूद है।

श्रीयुत आचार्यने जिन कठिनाइयोंका सामना करते हुए इस कार्यको पूरा किया है, उन्हें देखते हुए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। भारत-सरकार और युक्त-प्रान्तीय सरकारने इस महान ग्रन्थके प्रकाशनमें जो सहायता दी है, उसके लिए वे भी बधाईके पात्र हैं।

ज़रूरत इस बातकी है कि बिहारके पुनर्निर्माणके कार्यमें जो इंजीनियर तथा अन्य लोग भाग ले रहे हैं, वे इस ग्रन्थको अच्छी तरह पढ़ें और नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों और जानकारियोंका आवश्यक समावेश करके 'मानसार'में वर्णित स्थापत्य और नगर-रचना आदिको काममें लायें।

डाक्टर गंगानाथ झाका यह विचार अत्यन्त उपयोगी है कि श्री प्रसन्नकुमार आचार्यको फौरन एक सस्ती, दो-ढाई सौ पृष्ठकी, पुस्तक बिहार-निवासियोंके उपयोगके लिए निकालना चाहिए, जिसमें 'मानसार'की मुख्य बातोंका सारांश हो। इस पुस्तकका हिन्दीमें निकलना अत्यन्त आवश्यक है।

दो महापुरुष :—अमेरिकामें, एक सभामें यह विवाद उत्पन्न हुआ था कि इस समय संसारमें ऐसे कौन दो व्यक्ति हैं, जो सबसे अधिक ख्यातिसम्पन्न और माननीय हैं। सभापतिने कहा—"ऐसे दो व्यक्ति हैं सही ; किन्तु क्या वे अमेरिकावासी हैं ?" श्रोताओंमें से 'हाँ' कहनेवालोंके संकेत देखनेपर उनकी संख्या अधिक नहीं थी। अतः उन्होंने पूछा—"तब क्या वे अंगरेज़ हैं ?" इस बार भी स्वीकृति-सूचक संकेत अधिक नहीं देखे गये। उन्होंने फिर पूछा—"तब क्या वे फरासीसी, जर्मन अथवा यूरोपके अन्य किसी देशके निवासी हैं ?" कई व्यक्तियोंने इस विषयमें भी सन्देह प्रकाशित किया। तब सभापतिने खड़े होकर पूछा—"तब क्या उनमें के एक व्यक्ति भारतके सुप्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और दूसरे भारतके महान जननायक (नेता) और महापुरुष महात्मा गांधी हैं ?" चारों ओरसे उसी समय एक स्वरसे 'हाँ-हाँ' की ध्वनि गूँज उठी। —'स्वराज्य'

चित्र-चयन

सर आशुतोष मुकर्जीकी मूर्त्ति

कलकत्ता-हाईकोर्टके जज और भारतके सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जीके स्मारकमें कलकत्तेमें उनकी एक काँसेकी मूर्त्तिका उद्‌घाटन किया गया है। मूर्त्तिका डिज़ाइन और साँचा श्री देवीप्रसाद राय-चौधुरीने तैयार किया था; लेकिन
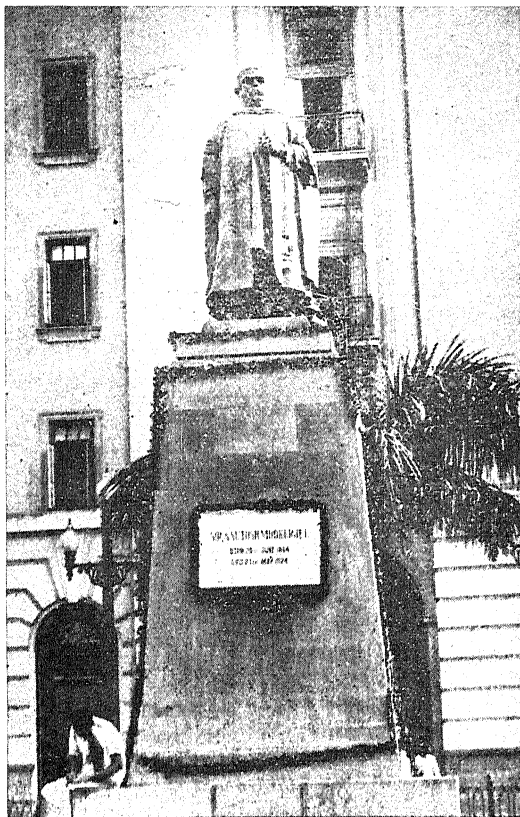
सर आशुतोष मुकर्जीकी मूर्त्ति
बगलमें बैठे हुए आदमीसे मूर्त्तिके आकारका अनुमान कीजिये

भारतमें इतनी बड़ी मूर्त्तिकी ढलाई नहीं होती, इसलिए ढलाईका काम इटलीमें इटेलियन कारीगरोंने किया है। मूर्त्ति चौरंगी और सेन्ट्रल एविन्यूके चौराहेपर एक छोटेसे पार्कमें स्थित है।

भोजन करनेका ढंग

हिन्दोस्तानी लोग ज़मीन, पीढ़े या चटाईपर बैठकर हाथसे भोजन करते हैं। चीनी, जापानी भी ज़मीनपर बैठकर भोजन करते हैं, लेकिन भात खानेके लिए लकड़ी या बाँसकी तीलियाँ इस्तेमाल करते हैं। यूरोपियन लोग मेज़-कुर्सीपर बैठकर छुरी-काँटेसे खाते हैं। लेकिन लेटकर या बाईं कोहनीपर भार देकर खानेकी रीति विचित्र-सी है। यह रीति प्राचीन ग्रीसमें प्रचलित थी। यद्यपि होमरके कालमें भोजनका यह तरीक़ा नहीं था; लेकिन उसके बादके कालमें ग्रीकों और रोमनोंमें यह तरीक़ा प्रचलित हुआ था। प्राचीनकालके मिट्टीके जो बर्तन मिलते हैं, उनमें अनेकोंमें इस ढंगसे भोजन करनेके चित्र अंकित दीख

अधलेटी अवस्थामें भोजन

पड़ते हैं। कहते हैं कि भोजनका यह ढंग पूर्वीय देशोंसे ग्रीस और रोम पहुँचा था; लेकिन इस बातका पता नहीं है कि किस पूर्वीय देशसे यह तरीक़ा लिया गया था। इस प्रकार भोजन करनेमें लोग कोचपर लेटकर या अधलेटे होकर खाते थे। उनकी छाती और बाईं कोहनीके नीचे तकिया या गद्दी रहती थी। यह तो निश्चय ही है कि इस प्रकारके भोजनका तरीक़ा आलसी, निकम्मे और विलासियोंके ही उपयुक्त हो सकता है।

अफ्रिका महाद्वीपके उगांडा-प्रदेशके राजा साहब अपने हाथसे भोजन करना अपमानकी बात समझते थे। जिसके अनेकों नौकर हों, वह कोई भी काम

उगांडाके राजा साहबको रसोइया खिला रहा है

एक मेस्टिजो रमणी
(स्पेनिश इंडियन मिश्रित रक्तका उदाहरण)

अपने हाथों क्यों करे, खाना भी अपने हाथों क्यों खाय ? इसलिए इन राजा साहबको उनका रसोइया अपने हाथसे खिलाता था। उसपर भी तुर्रा यह कि अगर खिलाते वक्त बेचारा रसोइया राजा साहबके दाँत छू ले, तो उसे मौतकी सज़ा मिलती थी !

मैक्सिकोकी सभ्यता

हिन्दोस्तानका पता लगानेके लिए कोलम्बस जो निकला, तो अमेरिका जा पहुँचा। उसने अमेरिकाको हिन्दोस्तानका ही एक हिस्सा समझा। बादमें जब ज्ञात हुआ कि वह हिन्दोस्तान नहीं है, तो उसे 'वेस्ट इडीज़' (पश्चिमी भारत) का नाम दिया गया और वहाँके निवासियोंको, उनके ताम्रवर्णके अनुसार, रेड इंडियन पुकारने लगे।

गोरोंने गोलियाँ मार-मारकर संयुक्त राज्यसे वहाँके आदिम-निवासियोंको प्रायः निश्शेष कर डाला है। लेकिन मैक्सिकोंमें वहाँके आदिम-निवासी अब तक

मिस्रके समान मैक्सिकोका एक प्राचीन पिरामिड

पानेकी कोशिश कर रहे हैं। मिस्रके प्राचीन पिरामिडोंके सदृश्य मैक्सिको-निवासियोंने भी पिरामिडके आकारकी विशाल इमारतें बनाई थीं, जिनका अब उद्धार हो रहा है।

—

सेकसरिया-पुरस्कार

इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर सेकसरिया पुरस्कार, जो सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिकाको दिया जाता है, श्रीमती चन्द्रावती लखनपालको उनके 'स्त्रियोंकी स्थिति' नामक ग्रन्थपर मिला है।

बच रहे हैं, और उनकी संख्या अब भी मैक्सिकोकी आबादीमें ३९ प्रतिशत है। स्पेनवालोंने सन १५२१ ई० में मैक्सिकोको विजय किया था और तबसे प्राय: तीन सौ वर्ष तक वहाँ स्पेनिश लोगोंका राज्य रहा। स्पेनिश लोगोंके संसर्गसे और आपसमें ब्याह-शादी हो जानेसे मैक्सिकोके आदिम-निवासियोंमें बहुत कुछ स्पैनिश रक्त आ गया है और इन मिश्रित रक्तवालोंकी एक अलग जाति ही बन गई है, जो 'मेस्टिजो' कहलाती है। मैक्सिकोकी जनसंख्यामें 'मेस्टिजो' लोग ५३ प्रतिशत और विशुद्ध स्पेनिश कुल ७॥ प्रतिशत हैं।

स्पेनिश लोगोंके आगमनके पहले भी मैक्सिको-निवासी नितान्त जंगली न थे। उनकी अपनी एक प्राचीन सभ्यता थी। उन लोगोंने स्थापत्य, मूर्त्तिकला, चित्रकला और साहित्य आदिकी उन्नति की थी। उनका प्रधान देवता 'कोयेट्सकाटल' है, जो मनुष्यके समस्त महान गुणोंका प्रतीक माना जाता है। स्पेनिश लोगोंकी गुलामीमें आकर मैक्सिको-निवासियोंकी अपनी विशेषताओंका भी ह्रास हो गया; मगर आजकल वे फिर अपनी प्राचीन आत्म-प्रतिष्ठाको

सींककी बड़ी-भारी टोपी दिये-हुए एक मैक्सिकन बालक

श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल, एम० ए०

आदि मनुष्योंके चित्र

हज़रते-इंसान कैसे पैदा हुए, इस बातपर साइंसदाँ अभी तक लड़ रहे हैं। हाँ, यह बात निर्विवाद रूपसे मान ली गई है कि मनुष्योंके पुरखे पहले जंगलोंमें रहते थे, पत्थरके हथियारोंसे शिकार मारते और कच्चा-पक्का गोश्त खाते थे। अनेक चित्रकारोंने कल्पनाके बलपर अपने आदि पुरखोंके चित्र भी बनाये हैं। यहाँ इस प्रकारके दो चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

नूतन प्रस्तर-युगके मनुष्य
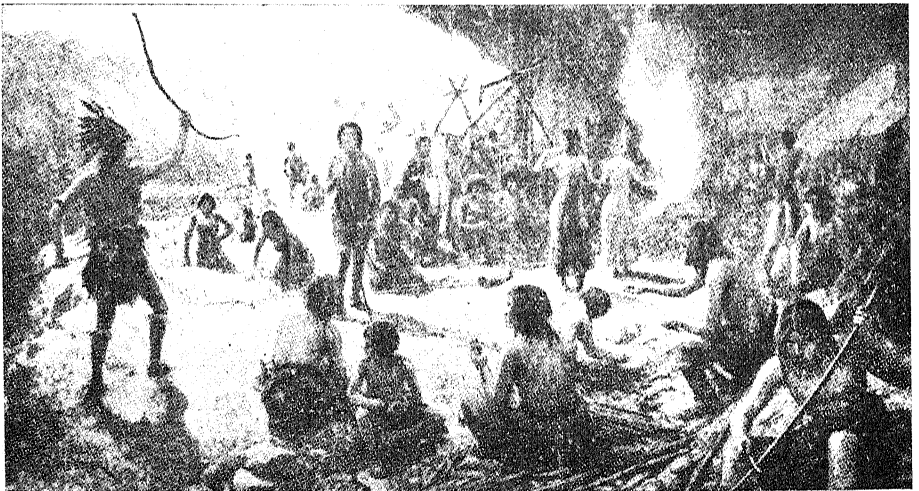
एक स्पेनिश चित्रकारकी कल्पनामें प्रस्तर-युगके मनुष्य
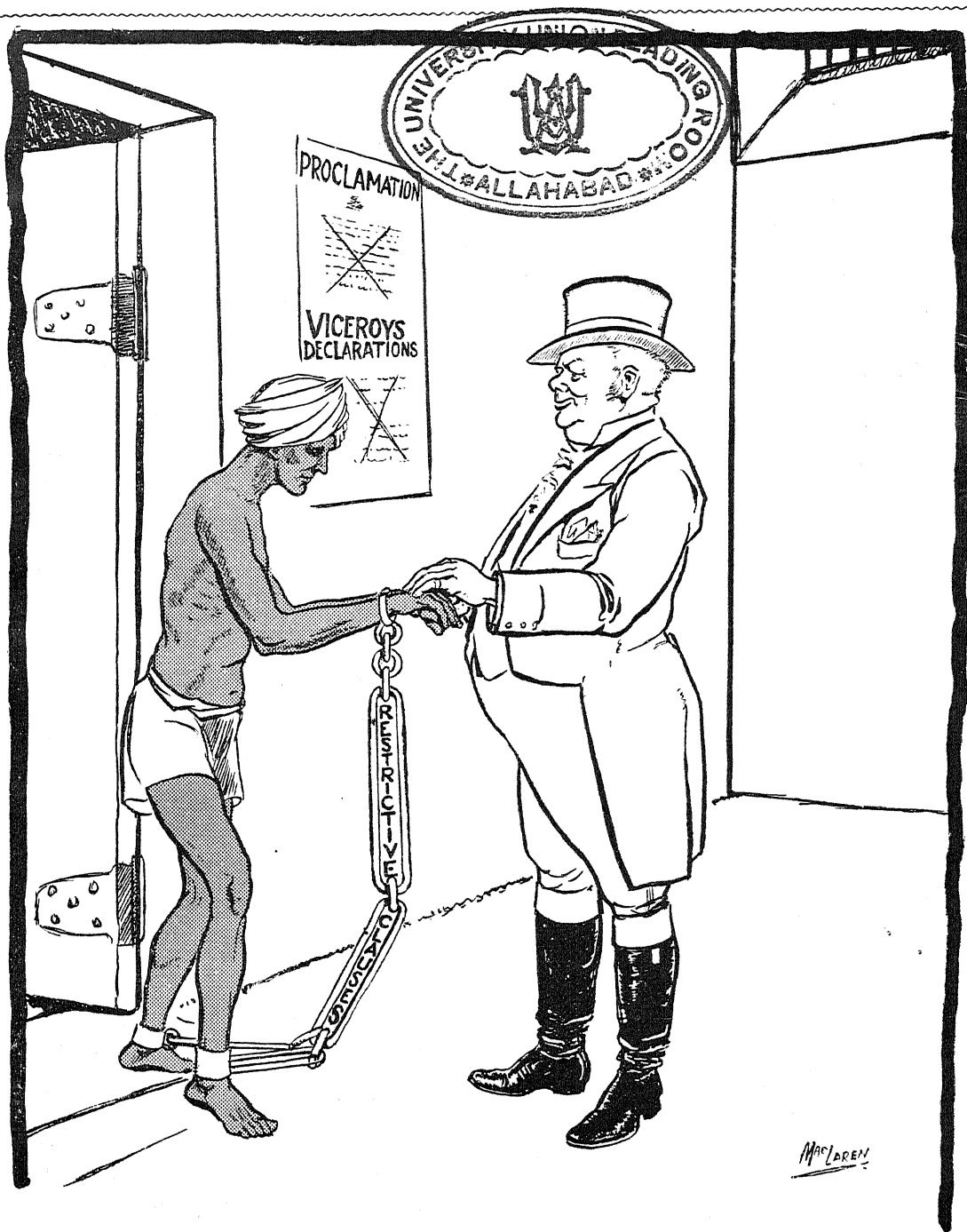
नया उपहार

शाही और वायसरायकी घोषणाओंको ठुकराकर जानबुल भारतके हाथ-पैरोंमें संरक्षणोंकी हथकड़ी-बेड़ी डाल रहे हैं।

[चित्रकार—श्री एराड्रूमैकलारेन, एम० पी०

समालोचना प्राप्ति-स्वीकार

'अन्तर्वेदना'—लेखिका, स्वर्गीय पुरुपार्थवती देवी; प्रकाशक, विश्व-साहित्य-ग्रन्थमाला, लाहौर; मूल्य डेढ़ रुपया।

श्रीमती पुरुषार्थवतीजीकी इस कविता-पुस्तकको पढ़नेसे यह सरलतासे अनुभव होता है कि उनमें कवित्वकी कोमल, रचनाशील, भावनामयी प्रतिभा थी। उनकी रचनाओंमें उनके हृदयकी वेदना कल्पनाके तीव्र, संक्षिप्त और सूक्ष्म रूपमें प्रकट हुई है। उनकी कविताओंमें तरुण हृदयकी प्रेमपूर्ण निराशामयी करुण रसमयता है। उनकी इस पुस्तकमें प्रकाशित कविताओंको पढ़नेसे जितनी वेदना अनुभव होती है, उससे अधिक वेदना उनकी कविताओंकी स्पष्ट अपरिपूर्णता, गम्भीर अस्फुटता और अविकासमयी अनिर्वचनीयतासे होती है।

स्वर्गीय पुरुषार्थवती देवी

उनकी कविताओंमें उनका हृदय अन्तर्व्यथाकी जैसी साँस ले रहा है, उससे अधिक गहरी व्यथाकी साँस वचनबद्ध अविशदता लेती प्रतीत होती है। उनकी बहुत-सी कविताओंको पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है, जैसे उनमें उनके हृदयकी भावनाओंके रेखाहीन चित्र हों। कुछ कविताओंको पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है, मानो उनका प्रारम्भ ही नहीं है। कुछको पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि उनका अन्त नहीं है। और कुछमें ऐसा मालूम होता है, जैसे उनका मध्य भाग नहीं है। उनकी कविताओंमें उनके हृदयकी वेदनापूर्ण भावनाओंके स्पष्ट चित्र और एकरसमय स्वाभाविक विकास कम दृष्टिगोचर होते हैं, और जहाँ होते हैं, उनमें कुछमें उनके कवि-हृदयका भावनामय रसपूर्ण दर्शन होता है। कई कविताओंमें कवियोंकी अन्य कविताओंके भाव और शब्दोंकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। उनकी बहुत-सी कविताओंकी प्रवाहमयी सुन्दर भाषामें जितनी भाषाहीन अनिर्वचनीयता है, उतनी शब्दोंकी प्रेरणामयी अर्थ-गम्भीरता नहीं। इसका कारण शायद उनकी उस अपरिपक्व अवस्थाका होना है, जिस अवस्थामें शायद वह अपने हृदयके उठते हुए भावोंको स्वयमेव अच्छी तरह नहीं समझ सकती थीं। भाषा द्वारा अभिव्यक्त होनेके लिए हृदयके भाव उठते थे, और जिस भाषामें वे अभिव्यक्त हुए, वह भाषा गम्भीर, प्रवाहमयी-सी और हृदयपर प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है, उसमें एक तरहकी ताज़गी भी अनुभव होती है; परन्तु वह भाषा अपनी समस्त सुन्दरताके साथ भी, बहुत प्रयत्न करनेपर भी, अपनी आन्तरिक भावनाओंको मूक इशारोंमें भी प्रकाशित नहीं कर सकती, और जहाँ-जहाँ वह प्रकाशित भी करती है, वहाँ उन भावनाओंकी अपेक्षा उनकी अस्पष्टता अधिक स्पष्टतासे अनुभव होती है। इसी अस्पष्टताके कारण उनकी भाषामें एक तरहकी विस्तारहीन गम्भीरता है। इसी अस्पष्ट गम्भीरताके कारण उनकी कविताएँ उनके हृदयकी अन्तर्वेदनाका जैसा परिदर्शन कराती हैं, वैसे ही हृदयकी सुप्त-व्यथाको जाग्रत नहीं करतीं।

पता नहीं, चंचलताकी विकासमयी आयुमें उनके हृदयमें इतनी विषादपूर्ण गम्भीरता कैसे उत्पन्न हो गई ? काश्मीरकी घाटियोंमें पली हुई इस 'बाला कवयित्री' के हृदयमें प्रकृतिकी अपूर्व सुन्दरताकी वह आशामयी मुग्ध करनेवाली हँसी क्यों मुखरित नहीं हुई ? उनकी कविताओंमें एक प्रकारकी मूक करुणाकी रहस्यमयी निराशा है। यदि वे आज जीवित होतीं, तो शायद अपनी कविताके शब्दोंसे अधिक स्पष्ट शब्दोंमें बता सकतीं कि जीवनकी किन घटनाओंने उनके सुकुमार हृदयमें काश्मीरकी उस जीवनमयी चंचलताकी जगह गम्भीर विषादमयी निराशा-भरी वेदनाको जाग्रत कर दिया। 'अतिथि' को देनेके लिए उनके पास 'प्रेमाश्रु भरे निःश्वास' के सिवा अन्य कोई भेंट नहीं है। उन्हें अपनी 'तप्त उसासों' में ही 'अमृतके कण' मिलते हैं। 'वेदनाकी मसिमें' ही वे 'अपने तन-मनको खोलना' (?) चाहती हैं। उनकी 'प्रेमिका' की 'आकांक्षा' 'अकेले क्लेश-सिन्धुमें बहने' की है। उनकी 'विफल प्रतीक्षा' 'आशाकी निराश घड़ियों' में समाप्त हो जाती है। उनकी 'सरिता' 'अपने भीगे मनको नीरस प्रान्तोंमें बखेरती हुई सकरुण विहाग-सम अविश्रान्त रोदन कर रही है'। उनके 'भग्न वेदना-व्यथित हृदयमें' 'बस सूखा मुसकान' है। उनकी 'दलित कलिका' 'विकसित सुन्दर फूल' को 'अपना अस्तित्व' याद दिला रही है। उनके 'निर्भर' का 'मुख' तो 'अम्लान' है; परन्तु 'हृदय हाहाकार' करता है। उनकी 'अन्तर्वेदना' के 'उच्छ्वास' 'शून्यमें उलझे' हुए हैं। उनके 'आँसू' 'उच्छ्वासानल तापसे जले' हुए हैं।

केवल 'हे माँ !' विभागमें प्रकाशित कविताओंमें आशा और जीवनकी ओर प्रगतिशीलतासे बढ़नेकी सरल भावनाएँ हैं। उनकी इस छोटी-सी आयुमें ऐसा व्यथापूर्ण विषाद कुछ अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है; परन्तु उनके जीवनका इतना संक्षिप्त होना भी तो बड़ा करुण वेदनापूर्ण और अस्वाभाविक था। शायद इसी अनुभवकी वेदना उनके हृदयमें चुपचाप अन्दर ही अन्दर रहस्यमय संकेत कर रही थी, और उनके मनमें इस प्रकारके निराशापूर्ण विषादकी कल्पनात्मक भावनाओंकी छायाको तीव्रतासे सजग कर देती थी। उनकी कविताओंमें 'दर्शन-लालसा', 'लक्ष्यहीन राही', 'प्रेमिकाकी आकांक्षा', 'वेदना', 'विफल-प्रतीक्षा', 'आँसू', 'दलित कलिका', 'सरिताके प्रति' आदि कई रचनाएँ सरस और सुन्दर हैं। यद्यपि इनमें से कुछ कविताओंमें भी कई पंक्तियाँ अस्पष्ट-सी हैं। फिर भी कई कविताओंमें कई पंक्तियाँ बड़ी भावपूर्ण और सुन्दर हैं।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारने इन रचनाओंको ऐसे सुन्दर रूपमें प्रकाशितकर अपनी दिवंगत पत्नीके प्रति जो आन्तरिक प्रेम और सद्भावना प्रकट की है, और इसके द्वारा उनकी स्मृतिको चिरस्मरणीय बनानेका जो प्रयत्न किया है, वह प्रशंसनीय है।

—वंशीधर विद्यालंकार

—

'मुग़ल-साम्राज्यका क्षय और उसके कारण'— लेखक, प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ; प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव, बम्बई ; मूल्य दो रुपया।

हिन्दीमें इतिहास-ग्रन्थोंकी—विशेषकर उत्तम इतिहास-ग्रन्थोंकी—बड़ी कमी है। हर्षका विषय है कि कुछ लेखकोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। अभी कुछ दिन हुए इंडियन प्रेसने श्रीयुत रघुवीरसिंह लिखित 'पूर्व-मध्यकालीन भारत' नामक एक उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित किया था; पर उत्तर-मध्य-कालीन भारतका इतिहास अभी तक अछूता-सा था। किसी अधिकारी महानुभावने उसपर लेखनी न उठाई थी। हिन्दी-प्रेमियोंको यह जानकर प्रसन्नता और सन्तोष होगा कि प्रो० इन्द्रने इस कमीको पूरा करनेका सद्प्रयत्न किया है। इस उत्तम प्रयासके लिए न केवल सुयोग्य लेखक, वरन परम उत्साही प्रकाशक भी हमारे धन्यवादके पात्र हैं। इन्द्रजीकी क़लममें सचमुच जादू है। भाषापर उनका असाधारण अधिकार है। कुछ अप्रचलित प्रयोगों—जैसे, 'चमकदार मुसलमान राजा' (पृष्ठ २), 'लँगड़ा बहाना' (पृष्ठ १९) इत्यादि—को छोड़कर कहीं भाषा-शैथिल्य खोजनेसे भी नहीं मिलेगा। समस्त पुस्तक रुचिकर और जानदार भाषामें लिखी गई है, जिसे पढ़ते-पढ़ते तबीयत नहीं ऊबती। जटिल ऐतिहासिक समस्याओंको रोचक बनानेका सद्प्रयत्न स्तुत्य है—विशेषकर इसलिए कि भाषाके प्रवाहमें ऐतिहासिक गम्भीरता नष्ट नहीं हो पाई।

लेखक महोदय सम्पूर्ण पुस्तकको चार भागोंमें विभाजित करना चाहते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें केवल दो भाग समाप्त हो पाये हैं—प्रथम भाग अकबरके राज्यारोहणसे औरंगज़ेबके राज्यारोहण तक और द्वितीय भाग औरंगज़ेबके राज्यारोहणसे

शिवाजीकी मृत्यु तक। द्वितीय भाग, जो अधिकांशमें सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर यदुनाथ सरकारके ग्रन्थोंके आधारपर लिखा गया है, प्रथम भागकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रामाणिक है, यद्यपि लेखक महोदय साम्प्रदायिकताके दोषसे एकदम बरी नहीं किये जा सकते। पर प्रथम भागमें तो पग-पगपर ऐतिहासिक भूलें दृष्टिगोचर होती हैं। पुस्तकके दस-पाँच पृष्ठ पढ़नेपर ही यह बात ज्ञात हो जाती है कि लेखक महोदयने अंगरेज़ीके ग्रन्थोंसे इधर-उधरके अंश लेकर अपनी पुस्तककी रचना की है। फ़ारसीके मौलिक ग्रन्थोंकी बात तो दरकिनार, कदाचित् ईलियट और डासनके अनुवाद-ग्रन्थ पढ़नेका भी अवकाश उन्हें नहीं मिला। भारतीय इतिहासमें जो दिनपर दिन खोज होती जा रही है, और विवादास्पद प्रश्नों तथा घटनाओंपर नवीन प्रकाश डाला जा रहा है, उनसे लेखक महोदय अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं।

पर जिन परिस्थितियोंमें यह ग्रन्थ लिखा गया है, उनमें अधिक व्यापक अध्ययन सम्भव नहीं था। फिर हिन्दीमें तो ऐसी पुस्तकोंका एकदम अभाव ही है। इन्द्रजीकी पुस्तक तो फिर भी ग़नीमत है। पर हमें एतराज़ इस बातपर है कि कितने स्थलोंपर इन आधार-ग्रन्थोंका ज़िक्र भी नहीं किया गया है, और कितने ही स्थलोंपर अंगरेज़ीके ग्रन्थोंका अक्षरशः अनुवाद अथवा भावानुवाद दे दिया गया है। उद्धरण देनेमें कोई हर्ज नहीं; पर ऐसी दशामें उद्धृत अंशके लेखकका नाम न देना अन्याय है। ऐसी भूल श्रीमान इन्द्रजी जैसे प्रतिष्ठित लेखकको शोभा नहीं देती। उदाहरणार्थ, पृष्ठ २ पर हुमायूँके चरित्रके विषयमें लेखकके विचार प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूलके कुछ वाक्योंका अनुवादमात्र हैं—"जीवन-भरमें उसने फिसलनेका मौक़ा नहीं छोड़ा। यदि फिसलनेका मौक़ा हो, तो हुमायूँ उसे छोड़नेवाला नहीं था। जीवन-भर वह सौभाग्यकी सीढ़ियोंपर फिसलता रहा और अन्तमें भी वह फिसलकर मरा।"

"If there was a possibility of falling. Humayun was not the man to miss it. He tumbled through life and tumbled out of it."
(लेनपूल कृत 'मेडीवल इंडिया')

इस प्रकारके अनेक स्थल पुस्तकमें मौजूद हैं। पिष्टपेषणके भयसे अधिक उद्धरण देना असंगत प्रतीत होता है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, समस्त पुस्तक ऐतिहासिक भूलोंसे भरी पड़ी है। कितने ही जटिल और विवादात्मक प्रश्नोंपर इन्द्रजीने ऐंग्लो-इंडियन इतिहासकारोंकी भाँति एकदम दकियानूसी विचार प्रकट किये हैं और नवीन खोजसे लाभ उठानेकी चेष्टा नहीं की; पर एलफिन्स्टन, लेनपूल अथवा स्मिथके समयसे ऐतिहासिक सामग्री कहीं अधिक विस्तृत और उसका अध्ययन कहीं अधिक विवेचनात्मक हो गया है। ऐसी परिस्थितिमें केवल इन्हीं लेखकोंकी कतरन हिन्दीके पाठकोंकी भेंट करना गौरवपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकारके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) पृष्ठ ८० पर नूरजहाँ और शाहज़ादा सलीमकी विवाहसे पूर्व प्रेम-चर्चाका ज़िक्र किया गया है, जिसे आधुनिक इतिहासकार सत्य नहीं मानते। डाक्टर वेनीप्रसादका कथन है कि यह सब घटनाएँ बादको जोड़ी गई हैं। तत्कालीन इतिहासकारों अथवा यूरोपीय यात्रियोंने इस घटनाका ज़रा भी ज़िक्र नहीं किया है। (देखिये, डाक्टर बेनीप्रसाद-कृत 'हिस्ट्री आफ जहाँगीर', पृष्ठ १७७)

(२) पृष्ठ ८१ पर लेखक महोदय जहाँगीरको शेर अफ़ग़नकी मृत्युके लिए ज़िम्मेदार ठहराते हैं। लगभग सभी ऐंग्लो-इंडियन इतिहासकारोंका यही मत है; पर डाक्टर बेनीप्रसाद, जिन्होंने जहाँगीरपर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है, इस मतके विरुद्ध हैं।[1] खेद है कि प्रो० इन्द्र महोदयने अपने विचारको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण नहीं लिखे, अन्यथा उनपर विचार किया जा सकता था।

(३) पृष्ठ ८२-८३ पर इसी प्रकार लेखक महोदयके जहाँगीरके चरित्र-सम्बन्धी विचार भी अग्राह्य हैं।[2] जहाँगीरको केवल मद्यपी और विलासिताका दास समझना सरासर अन्याय है। उसी प्रकार जहाँगीरको नूरजहाँके 'रूपका क़ैदी' बतलाकर राज्य-शासनसे एकदम 'उदासीन' बतलाना भी ऐतिहासिक सत्यकी हत्या करना है। यूरोपीय यात्रियोंके अर्द्धसत्य अथवा कपोल-कल्पित कहानियोंके कारण

१ देखिये, डाक्टर बेनीप्रसाद-कृत 'हिस्ट्री आफ़ जहाँगीर', पृष्ठ १७८-१८३।

२ देखिये, डाक्टर ईश्वरीप्रसाद-कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया', पृष्ठ ५२१-२०।

जहाँगीरका चरित्र एक विषम समस्या बन गया है। केवल जहाँगीरके विषयमें ही क्या, उसके पुत्र शाहजहाँके विषयमें इन यूरोपियन यात्रियोंने यहाँ तक लिख मारा है कि सम्राट्का अपनी पुत्री जहाँनाराके साथ अनुचित प्रेम था![1] इससे भी बढ़कर आश्चर्य यह है कि आधुनिक इतिहासकार स्मिथ महोदय भी इसे सम्भव मानते हैं।[2] ऐसे ग़ैर-ज़िम्मेवार यात्रियोंकी अर्द्ध-ऐतिहासिक पुस्तकोंसे एकाध उद्धरण देकर अथवा स्मिथके समान अनुदार इतिहासकारोंकी हाँमें हाँ मिलाते हुए प्रो० इन्द्र महाशयने जहाँगीरके चित्र-चरित्रको एकदम काला अंकित करनेका जो असफल प्रयत्न किया है, वह हास्यास्पद है। वस्तुतः जहाँगीर "एक समझदार दयावान पुरुष था, जिसे अपने कुटुम्बियोंके लिए बड़ा प्रेम था, और जिसे अन्यायसे बड़ी घृणा तथा न्यायसे अत्यन्त प्रेम था।" अवश्य ही जहाँगीरके चरित्रमें कुछ कमज़ोरियाँ थीं,—और कमज़ोरियाँ किस मनुष्यमें नहीं हैं,—पर वह एकदम 'विषयोंका दास' अथवा 'औरतका गुलाम' नहीं था, जैसा कि लेखक महोदयने लिखा है। (पृष्ठ ९९) नूरजहाँ और जहाँगीरके विवाहके पश्चात् जहाँगीर राज्य-व्यवस्थासे एकदम उदासीन अथवा निश्चिन्त नहीं हुआ और बराबर नूरजहाँका हाथ बँटाता रहा।[3]

(४) पृष्ठ ११० पर लेखक महोदय लिखते हैं—"ताजका नक्शा एक इटलीके कारीगरका बनाया हुआ था, जिसका नाम बरोनियो था। यही कारण है कि मुग़लकालकी अन्य रचनाओंसे ताजमें कुछ भेद है···" इत्यादि। ठीक यही राय स्मिथ महोदयकी है।[4] लेकिन आधुनिक खोजने यह सिद्धान्त निर्मूल सिद्ध कर दिया है। बहुत कालसे ताजके नक्शेके वास्तविक रचयिताके विषयमें मतभेद चला आता है। स्लीमैन साहबका खयाल है कि ताजकी डिज़ाइन आस्टिन डी बोर्डो नामक एक फ्रेंच इंजीनियरने की थी।[5] पर इन समस्त कल्पनाओंको भारतीय शिल्प-कलाके विशेषज्ञ हैवेल तथा सर जान मार्शलने निराधार सिद्ध कर दिया है। उनकी सम्मतिमें ताजके बनानेमें यूरोपीय कारीगरोंका बिलकुल हाथ न था।[6] डाक्टर ईश्वरीप्रसाद भी हैवेल साहबकी रायसे सहमत हैं—"कुछ भी हो, इस बातका काफ़ी प्रमाण नहीं है कि ताजके निर्माणमें यूरोपीय लोगोंका हाथ था।"[7]

(५) इसी प्रकार पृष्ठ ९५ पर लेखक महोदय लिखते हैं कि कन्दहार जानेके पूर्व शाहज़ादा खुर्रमने "बादशाहको सन्देश भेजा कि मुझे इस बातकी गारंटी दी जाय कि गद्दीका अधिकारी मैं समझा जाऊँगा, अन्यथा मैं देशसे बाहर जानेको तैयार नहीं हूँ।" इत्यादि। शाहजहाँने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं किया। उसने जो चार शर्तें भेजी थीं, उनमें इनका उल्लेख नहीं है।[8]

इस प्रकार अनेक स्थलोंपर लेखक महाशयने भूलें कर दी हैं। उन सबका ज़िक्र न तो यहाँ सम्भव ही है और न आवश्यक ही। ऊपर जो दो-चार बातोंकी चर्चा की गई है, वह विद्वान लेखकका ध्यान आकर्षित करनेके लिए हैं।

पुस्तकका नाम विषयके अनुरूप नहीं हुआ है। लेखक महोदयने मुग़लकालकी समस्त घटनाओंको एक ही ढाँचेमें—यानी क्षय रूपमें—ढालनेका प्रयत्न किया है। इन घटनाओंका विस्तृत वर्णन तभी उचित समझा जा सकता है, जब कि उनका प्रभाव भी साथ-साथ दिग्दर्शन कर दिया जाय। लेखक महोदयका यह कथन कि मुग़ल-साम्राज्यके विनाशमें एकसत्तात्मक शासनका बड़ा ज़बरदस्त हाथ था, सर्वथा सत्य है; पर इसके लिए मुग़ल-राज्यकी शासन-प्रणालीका आलोचनात्मक विस्तृत वर्णन अतीव आवश्यक है। आशा है कि आगामी भागमें यह कमी पूरी हो जायगी।

१ देखिये, बर्नियर कृत 'ट्रैविल्स इन दी मुग़ल एम्पायर' पृष्ठ १२। इसके सिवा टैवर्नियर, डी ला और हर्बर्टके भी यात्रा-वृत्तान्त इसीकी पुष्टि करते हैं।

२ देखिये, 'इंडियन ऐराटीक्वेरी' (१९१४), पृष्ठ २४०-४४।

३ देखिये, डाक्टर बेनीप्रसाद-कृत 'हिस्ट्री आफ़ जहाँगीर', पृष्ठ १९५।

४ देखिये, विन्सेन्ट स्मिथ कृत 'हिस्ट्री आफ़ फाइन आर्ट्स', पृष्ठ १८३-१८५।

५ देखिये, स्लीमैन कृत 'रैम्बिल्स ऐगड रीकलेक्शन्स' प्रथम भाग, पृष्ठ ३८५।

६ देखिये, हैवेल कृत 'इंडियन आर्कीटेक्चर', पृष्ठ ३३-३९ और सर जॉन मार्शल-कृत 'आर्कियोलॉजीकल सर्वे आफ़ इंडिया रिपोर्ट', पृष्ठ ३।

७ देखिये, ईश्वरीप्रसाद-कृत 'भारतवर्षका इतिहास', पृष्ठ २८२।

८ देखिये, डा० बनारसीदास सक्सेना-कृत 'हिस्ट्री आफ़ शाहजहाँ आफ़ देहली', पृष्ठ ३७-३८।

इन्द्रजीने प्रस्तुत पुस्तकमें वर्णनात्मक शैलीका अनुसरण किया है ; पर इतिहासके पठन-पाठनमें आजकल विवेचनात्मक शैलीका उपयोग किया जा रहा है। हमारी तुच्छ सम्मतिमें यदि यह ग्रन्थ अधिक आलोचनात्मक होता, तो कदाचित विद्यार्थियों और सर्वसाधारण जनताके लिए अधिक उपादेय हो सकता था। कुछ भी हो, इस विषयमें दो मत नहीं हो सकते कि वर्णनात्मक शैलीपर लेखकका पूर्ण अधिकार है, और उसका उपयोग वे सफलतापूर्वक कर सके हैं। हमारा तो निश्चित मत है कि प्रो० इन्द्रजीकी पुस्तक हिन्दीमें लिखी हुई इस कालकी पुस्तकोंमें सबसे उत्तम है और प्रत्येक इतिहासके विद्यार्थीके लिए तुरन्त संग्रहणीय है। हम इसके अन्य भागोंका उत्सुकतापूर्वक इन्तज़ार करेंगे।

—रामनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०

'गंगा' का 'विज्ञानांक'—इस अंकके सम्पादक, श्री फूलदेवसहाय वर्मा और श्री रामगोविन्द त्रिवेदी ; इस अंकका मूल्य ३॥)। पता—मैनेजर 'गंगा', सुलतानगंज, भागलपुर।

सहयोगिनी 'गंगा' के जनवरी, फरवरी, मार्चके सम्मिलित अंक 'विज्ञानांक' के रूपमें प्रकाशित हुए हैं। हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य नहींके बराबर है, यद्यपि श्री गौड़जीका 'विज्ञान' इस विषयमें कुछ प्रयत्न कर रहा है। ऐसी दशामें 'गंगा' ने विज्ञानांक निकालकर जो कार्य किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। हिन्दीमें पारिभाषिक शब्दोंके अभावमें उच्चकोटिके विज्ञानपर कुछ लिखना अत्यन्त कठिन है। सम्पादकोंको इस अंकके सम्पादनमें जो कठिनाइयाँ पड़ी होंगी, उन्हें भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। इसके लिए सम्पादक द्वय बधाईके पात्र हैं। अंकमें ४१६ पृष्ठ हैं। लेखोंमें अधिकांश लेख ऐसे हैं, जिनसे पाठकोंका मनोरंजन ही नहीं होगा, बल्कि उनके ज्ञानमें भी काफ़ी वृद्धि होगी। इस सुन्दर अंकके प्रकाशनके लिए हम 'गंगा' के सम्पादकों और संचालकोंको हार्दिक बधाई देते हैं।

'योगी'—सम्पादक, बाबू नारायणप्रसाद सिंह ; पता, कदमकुआँ, बाँकीपुर ; वार्षिक मूल्य ३)।

अखबारोंके मरु-प्रदेश बिहारमें पटनेसे 'योगी' नामक एक सचित्र साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ है। नाम सुननेसे यह भ्रम हो सकता है कि यह कोई धार्मिक पत्र होगा ; परन्तु भीतर देखनेसे ज्ञात होता है कि 'योगी' उन योगियोंमें है, जो कर्मयोग और सेवा-व्रतके द्वारा इस लोकको सुधार करके ही परलोकको सुधारते हैं। 'योगी' का कार्यक्षेत्र बिहारके ग्रामोंमें है। उसने देहाती दुनियाकी सेवाका बीड़ा उठाया है, और उसके लिए वह सतत प्रयत्नशील भी है। 'योगी' के संचालक बाबू नारायणप्रसाद सिंह (भूतपूर्व एम० एल० ए०) को बिहारके ग्रामोंका लम्बा और व्यापक अनुभव है। वे ग्रामीण समस्याओं और ग्रामोंकी आवश्यकताओंसे पूरी तरह परिचित हैं। अत: हमें आशा है कि 'योगी' अपना लक्ष्य प्राप्त करनेमें सफल होगा। 'योगी' के पिछले कई अंक देखकर इस आशाकी सफलताके लक्षण भी दीख पड़ते हैं। हम इस नवीन सहयोगीका हार्दिक स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि बिहारी जनता 'योगी' को अपनाकर उसे अपना कर्तव्य पूरा करनेमें भरपूर सहायता पहुँचायेगी।

'डाबर पंचांग'—प्रकाशक, डाबर (एस० के० बर्मन) लिमिटेड, कलकत्ता।

प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी सुप्रसिद्ध औषधि-व्यवसायी डा० एस० के० बर्मनका संवत् १६६१ का 'डाबर पंचांग' हमें प्राप्त हुआ है। पंचांगमें संवत् १६६१ के पंचांगके अतिरिक्त भारतके प्रधान तीर्थ, नीरोग रहनेके सहज उपाय, पहाड़ी स्थान, छुट्टियाँ, मुहूर्त आदि ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। एक तिरंगे और चार एकरंगे चित्रोंसे पंचांग आभूषित है। पंचांग पोस्ट बक्स नं० ५५४ कलकत्ताको लिखनेसे बिना मूल्य मिलता है।

'रिलीफ पंचांग'—प्रकाशक, मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, २३, सरकार लेन, कलकत्ता ; पृष्ठ २०८ ; बिना मूल्य वितरण।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीके पंचांगमें संवत् १६६१ के पंचांगके अतिरिक्त बच्चों, स्त्रियों और पुरुषोंके स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य विषय, खाद्य-तत्त्व, नाप-तौल, भारतके आँकड़े, बच्चोंका वज़न, घरेलू नुस्खे आदि अनेक उपयोगी चीज़ें भी दी गई हैं। इस बार ज्योतिष-विभाग काफ़ी बढ़ा दिया गया है। कवरपर भगवान शंकरका तिरंगा चित्र और भीतर कई चित्र और कार्टून दिये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस सालका पंचांग खूब उपयोगी बनाया गया है। पंचांग डाकखर्च भेज देनेसे मुफ्त मिलता है।

—व्रजमोहन वर्मा

सम्पादकीय विचार

महात्माजीपर आक्रमण

हरिजन-आन्दोलनके सम्बन्धमें दौरा करते हुए उस दिन महात्मा गांधीपर देवघर (वैद्यनाथधाम) में जो निर्लज्जतापूर्ण पाशविक आक्रमण हुआ, उसपर उन लोगोंका सिर लज्जासे अवनत हो जाना चाहिए, जो सनातनधर्मके नामपर इस प्रकारकी उद्दण्ड बर्बरता प्रदर्शित किया जाना पसन्द करते हैं, और अपने विरोधियोंपर पत्थर और लाठियोंकी वर्षा करके अपने पवित्र धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं। महात्मा गांधीके ऊपर लाठियोंसे आक्रमण करनेवाले कापुरुष क्या यह नहीं जानते कि जिस विश्ववरेण्य महापुरुषके विरुद्ध वे अपनी पाशविक शक्तिका इस प्रकार उद्दाम तांडव प्रदर्शित कर रहे हैं, वह शान्ति, अहिंसा, प्रेम और करुणाका अवतार है, और सनातनधर्मके मूलतत्त्व सत्य, अहिंसा और प्रेमको वह जिस प्रकार अपने जीवनमें चरितार्थ करनेमें समर्थ हुआ है, वैसा वर्तमान समयमें शायद ही कट्टरसे कट्टर कोई सनातनधर्मी भी समर्थ हुआ हो। जो क्षुद्रसे क्षुद्रतम प्राणी तकको भी अणुमात्र क्लेश पहुँचाना नहीं चाहता, जो विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्वकी जीवित प्रतिमा है, जो मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाला है, जिसकी वाणी सत्यपूत, जिसके आचरण तपःपूत और जिसके कर्म प्रेम-पुनीत होते हैं, जो अजातशत्रु है, जो अपने बड़ेसे बड़ा शत्रु या उत्पीड़कसे भी कभी बदला लेनेकी इच्छा नहीं रखता, उसके विरुद्ध बलप्रयोग, लाठियोंका प्रहार ! छिः नीचताकी पराकाष्ठा हो गई, गुंडेपनकी हद हो गई। इस प्रकारका दौरात्म्य देश और समाजके लिए कलंकजनक है, मनुष्यताके लिए कलंकजनक है। जो समाज इस प्रकारके दुर्वृत्त और दुरात्माओंको प्रश्रय दे सकता है, वह मानव-समाजके बदले दानव-समाज कहलाने योग्य है।

महात्मा गांधी जैसे महापुरुष इस प्रकारके कायरतापूर्ण आक्रमणोंसे विचलित होनेवाले नहीं। अत्याचार, आक्रमण, अपमान और लांछना सहन करते हुए भी वे अपने कर्तव्यपथसे विचलित नहीं हो सकते। उन्हें इस प्रकारके अनुभव अपने जीवनमें अनेक बार हो चुके हैं, और प्रत्येक अवसरपर उन्होंने अपनी क्षमा, सहनशीलता और महत्ताका जैसा उज्ज्वल दृष्टान्त अपने विरोधियोंके सामने रखा है, वह संसारके इतिहासमें विरल ही है। जो महामानव कोटि-कोटि निर्यातित, पददलित, अत्याचार-पीड़ित मनुष्योंकी मुक्तिका व्रत ग्रहण करके आज सारे देशमें भ्रमण कर रहा है, जो दिन-रात सोते-जागते एकमात्र दीन-दरिद्रोंकी सेवाकी ही चिन्तना करता है, जो आक्रमणके दूसरे ही दिन प्रशान्त कंठसे इस प्रकारकी मृत्युंजयी वाणी उच्चारित कर सकता है—"भगवानके ऊपर मेरा पूर्ण विश्वास है। मेरे शरीरके लिए वह विश्वास ही रक्षा-कवच है। मेरी रक्षाके लिए और किसी व्यवस्थाका प्रयोजन नहीं। अब तक पाँच-छे बार आक्रमण होकर भी मैं जीवित हूँ। मैं एक क्षणके लिए भी इस बातको नहीं भूलता कि प्रत्येक व्यक्तिको ज्ञातरूपसे या अज्ञातरूपसे अपने हाथमें मृत्युको लेकर ही संसारका व्यवहार करना पड़ता है। किसीके भयसे हरिजन-उत्थान-आन्दोलनमें विश्वास-त्याग करनेकी अपेक्षा मैं सानन्द हत्याकारीकी गोदमें माथा रख दूँगा।" उसके विरुद्ध हिंसात्मक आक्रमण ! वह तो मृत्युंजयी है। मृत्युके भयसे वह संकल्पच्युत थोड़े ही हो सकता है। सत्यके लिए तथा मानव-सेवाके लिए वह हँसते-हँसते मृत्युका आलिंगन करनेको तैयार हो जायगा। हमें आशा है कि जिन लोगोंने देवघरमें यह कायरतापूर्ण काण्ड किया है, वे तथा उनके उत्प्रेरक अपने इस कुकृत्यपर अपने मनमें अनुताप—सच्चा अनुताप—करेंगे, जिससे उनके पापका प्रक्षालन हो और भविष्यमें इस प्रकारके काण्ड सदाके लिए बन्द हो जायँ।

—

ईखकी दर निर्धारित करनेके लिए क़ानून

व्यवस्थापिका परिषद्के गत अधिवेशनमें ईख पैदा करनेवाले किसानोंकी हितदृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण बिल पास हुआ है। सरकारकी ओरसे मि० जी० एस० बाजपेयीने इस बिल (Sugarcane Bill) को पेश किया था। संयुक्त-प्रान्त और बिहारके किसानोंमें इस बातको लेकर घोर असन्तोष फैल रहा है कि चीनी-फैक्टरियोंके मालिक ईखकी दर निश्चित करने और उसका मूल्य चुकानेमें किसान के साथ मनमाना व्यवहार करते हैं। मिल-मालिकोंका बराबर यही उद्देश्य रहता है कि किसानोंको कमसे कम मूल्यपर ईख बेचनेके लिए मजबूर करें। मिलोंमें ईख मुहय्या करनेके लिए ठेकेदार होते हैं। इन ठेकेदारोंके साथ ही मिल-मालिकोंका सीधा मोल-जोल और कॉन्ट्रैक्ट होता है। किसान इन ठेकेदारों द्वारा ही अपना माल फैक्टरियोंमें पहुँचाते हैं। इसके सिवा सीधे किसानोंसे भी फैक्टरियोंके मालिक ईख खरीदा करते हैं; किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। बीचके ये ठेकेदार या दलाल किसानोंको ख़ूब लूटते हैं। उन्हें इस बातका पता तक नहीं लगने देते कि मिलके साथ किस दरपर उनका कॉन्ट्रैक्ट हुआ है। अपढ़ किसानोंको क्या मालूम कि किस दरपर उनकी ईख फैक्टरीको दी जाती है। किसानोंको तो रुपयेकी तंगी बनी ही रहती है। मजबूर होकर चाहे जिस दरपर बेचनेके लिए वे तैयार हो जाते हैं। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि पासकी ही दो फैक्टरियोंमें भिन्न-भिन्न दरपर ईख खरीद की जाती है। इस प्रकार यह बात बिलकुल मिल-मालिकोंपर ही निर्भर करती है कि वे चाहे जिस मूल्यपर किसानोंसे ईख खरीद करें। चीनी-व्यवसायको जो संरक्षण मिल रहा है, उसका उद्देश्य यह नहीं है कि उससे सिर्फ व्यवसायियोंको ही लाभ पहुँचे। ईख़ पैदा करनेवाले किसानोंके स्वार्थका भी इससे घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव ईखके मूल्यकी समस्या दिन-दिन गम्भीर होती जा रही थी, और बिहार-प्रान्तीय किसान-सभाने ख़ास तौरसे इस विषयको अपने हाथमें लिया था। बिहार-प्रान्तीय किसान-सभाने अपने एक अधिवेशनमें ईखकी कमसे कम दर सात आना प्रतिमन निश्चित कर देनेके लिए सरकारसे अनुरोध किया था। संयुक्त-प्रान्तकी भी कई किसान-सभाओंमें इस आशयके प्रस्ताव उपस्थित किये गये थे। मि०जी०एस० बाजपेयीने बिलको पेश करते हुए बताया कि प्रान्तीय मिनिस्टरोंकी जो कानफरेन्स हुई थी, उसमें भी इस बातकी शिकायत की गई थी कि कई फैक्टरियाँ किसानोंको ईखका उचित मूल्य नहीं देतीं।

ऐसी स्थितिमें सरकारने चीनीपर ड्यूटी लगानेके साथ-साथ यह उचित समझा कि ईखकी कम-से-कम दर निश्चित करनेके लिए सरकारकी ओरसे कोई क़ानून अवश्य बनना चाहिए। इसी उद्देश्यको ध्यानमें रखकर 'Sugarcane Bill' पेश किया गया, और वह पास हो गया। इस बिल द्वारा प्रान्तीय सरकारको यह अधिकार दिया गया है कि वह ईखकी कम-से-कम दर निर्धारित कर दे। निर्धारित दरसे कम मूल्यमें कोई भी फैक्टरी ईख ख़रीद नहीं कर सकती। एसेम्बलीके सभी दलके ग़ैर-सरकारी सदस्योंने इस बिलका हार्दिक स्वागत करते हुए इसे किसानोंके लिए लाभदायक बताया। सरकारकी ओरसे भी इस बातपर सन्तोष प्रकट किया गया कि सभी दलके सदस्योंने बिलका समर्थन किया है। कई सदस्योंने सरकारको इस बातके लिए बधाई दी कि यह पहला ही अवसर है, जब उसने खेतीसे पैदा होनेवाली चीज़ोंका क़ानून द्वारा मूल्य बढ़ानेका प्रयत्न किया है। अन्य पैदावार पाट आदिका मूल्य भी इसी प्रकार नियन्त्रित करनेकी आवश्यकता सुझाई गई।

हम इस बिलको पास करनेके लिए सरकारको बधाई देते हैं; किन्तु साथ ही उसे यह भी स्मरण दिला देना चाहते हैं कि इस बिलकी सफलता बहुत-कुछ प्रान्तीय सरकार और उनके अधीनस्थ कर्मचारियोंपर ही

निर्भर है। बिहार और यू० पी० के किसान इतने सीधे और सरल हैं कि वे सहज ही बीचके दलालोंके फेरमें पड़ जाते हैं, इसलिए यह बहुत सम्भव है कि दर निश्चित होनेपर भी किसानोंको उचितसे कम ही मूल्य मिले। इससे बचनेका एक उपाय यह हो सकता है कि प्रत्येक फैक्टरीके साथ कुछ लाइसेन्स प्राप्त एजेन्सियाँ हों, और इन एजेन्सियोंके द्वारा ही वह फैक्टरी ईख ख़रीद करे। एजेन्सियोंके बही-खातेका सरकारी अफसरों द्वारा बराबर निरीक्षण होते रहना चाहिए। एजेन्सियोंके हाथ ईख बेचनेमें किसानोंको परेशानी और दिक़्क़तें न उठानी पड़ें, छोटे-छोटे कारिन्दोंको घूस न देना पड़े—इन सब बातोंपर भी ख़याल रखना होगा। यह सब होनेपर ही किसानोंका शोषण बन्द हो सकता है। अन्यथा केवल क़ानून पास कर देनेसे ही उनका शोषण बन्द नहीं हो सकता; क्योंकि मिल-मालिकसे लेकर माल तौलानेवाले तक सब ग़रीब किसानोंके ही शोषक हैं। ऐसी दशामें उनकी रक्षाके लिए बड़ी सतर्कताकी आवश्यकता है।

कृषि-अनुसन्धान-समितिके कार्य

भारत-सरकारकी ओरसे 'Imperial Council for Agriculture Research' (कृषि-अनुसन्धान-समिति) नामककी एक संस्था स्थापित है। यह संस्था कृषि तथा कृषिसे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके लिए गवेषणामूलक कार्य किया करती है। इस संस्थाके सभापति सर टी० विजयराघवाचारियरने अभी हालके अपने एक भाषणमें बताया है कि अब तक इस संस्थाकी ओरसे कौन-कौन कार्य हुए और हो रहे हैं।

यह संस्था पहला काम जो कर रही है, वह है देशवासियोंमें कृषि-सम्बन्धी ज्ञानका विस्तार करनेके लिए बिना मूल्य और किसी डाक-व्ययके छपे हुए पर्चे काफी संख्यामें वितरण करना। यह तो ठीक है; किन्तु जिस देशके किसानोंमें मुश्किलसे ५ फी-सदी ही साक्षर होंगे, उन्हें इस प्रकारके पर्चोंसे कहाँ तक लाभ पहुँच सकता है, इस बातपर भी तो विचार करना चाहिए। हमारी रायमें कृषि-अनुसन्धान-समितिको अपने खोज-सम्बन्धी परिणामोंका प्रचार करनेके लिए पर्चोंके सिवा अन्य साधनोंका भी प्रयोग करना चाहिए।

समितिकी ओरसे तीन स्थायी कमेटियाँ नियुक्त की गई हैं। ये बराबर पशुपालनके सम्बन्धमें खोज करती रहती हैं। मवेशियोंकी नस्ल बढ़ाने, घी, दूध मक्खन आदिका व्यवसाय तथा मवेशियोंको पुष्टिकर खाद्य मिले, इन सब बातोंके सम्बन्धमें कमेटियाँ अनुसन्धान-कार्य करती हैं, और उनकी जानकारी जनतामें फैलानेका प्रयत्न करती हैं।

कृषि-अनुसन्धान-समिति एक और उपयोगी कार्य अपने हाथमें शीघ्र ही लेना चाहती है। किसानोंको अपनी पैदावार बेचनेकी सुविधाएँ न होनेसे बाज़ार तक अपना माल पहुँचानेमें उन्हें बड़ी-बड़ी दिक़्क़तें उठानी पड़ती हैं, और साथ ही इसके वे बीचके दलालों द्वारा ठगे भी खूब जाते हैं। इसके लिए समिति एक पृथक् विभाग Marketing Section स्थापित करने जा रही है। भारत-सरकारने इसके लिए एक लाख रुपया आर्थिक सहायता देना मंजूर किया है। १ मईसे यह योजना कार्यान्वित होने लगेगी। इसके लिए विलायतसे एक अनुभवी अफ़सर बुलाये जायँगे। 'मार्केटिंग सेक्सन' खोलनेका उद्देश्य यह बताया गया है कि किसान अपने खेतोंपर ही अपनी पैदावार उचित मूल्यपर बेच सकें और इस प्रकार बाज़ारमें अपना माल पहुँचानेकी झंझटोंसे बच जायँ। इस समय किसानोंको जो मूल्य मिलता है, उसमें और बाज़ार-दरमें बहुत फर्क पड़ जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि समितिका यह उद्देश्य बड़ा ही प्रशंसनीय है। यदि एक इसी काममें समितिको अभीष्ट सफलता प्राप्त हो जाय, तो हम इतनेसे ही उसका अस्तित्व सार्थक समझेंगे।

गुजरात और पूर्व-बंगालमें गृह-शिल्पके रूपमें मक्खन-व्यवसायकी अच्छी उन्नति हो रही है; किन्तु बाज़ारमें आस्ट्रेलियाका मक्खन पहुँच जानेसे स्वदेशी मक्खन-व्यवसायको क्षति पहुँच रही है, इसलिए समितिने यह निश्चय किया है कि सरकारसे यह अनुरोध किया जाय कि वह विदेशी मक्खनपर ड्यूटी लगावे।

समिति एक और आन्दोलनको अपने हाथमें लेनेका विचार कर रही है। इंग्लैण्डमें इस समय एक आन्दोलन चलाया जा रहा है, जिसका उद्देश्य है जनतामें दूधका विशेष रूपसे प्रचार करना। इसके लिए वहाँकी सरकार ७५०,००० पौंड खर्च कर रही है। जनतासे कहा जाता है—'Drink more milk.' (अधिक दूध पीओ)। इसी आन्दोलनके अनुकरणमें यहाँ भी 'अधिक दूध पीओ' का आन्दोलन चलानेका विचार किया गया है। इसके लिए भारत-सरकारसे पाँच हज़ार रुपया सहायता देनेका अनुरोध किया गया है। समितिका यह आन्दोलन इस देशके लोगोंको अवश्य ही विचित्र मालूम होगा। खाद्य-पदार्थोंमें दूध या अन्य गोरस पदार्थका क्या महत्व है, इससे इस देशके लोग अपरिचित नहीं हैं। देशमें अधिकांश लोग निरामिषभोजी होनेके कारण स्वभावतः अपने भोजनमें दूध, घी, दही आदिको प्रमुख स्थान देते हैं; किन्तु देशकी वर्तमान अवस्थामें दूध या अन्य गोरस पदार्थ तो एकमात्र अमीरोंके भोजन समझे जाते हैं, और हैं भी। जिन्हें सूखी रोटी और नमक तक नसीब नहीं होता, वे बेचारे दूध कहाँसे पीयेंगे? यहाँ तो बच्चोंके लिए भी काफी दूध नहीं जुटता। समितिका कहना है कि पंजाब और सिन्धमें अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा दूधका स्टैन्डर्ड ऊँचा है। स्टैन्डर्ड ऊँचा होनेका अर्थ क्या यह भी हो सकता है कि वहाँ ज़रूरतसे ज्यादा दूध उत्पन्न होता है? देशमें उत्तम दूधका अभाव और उसकी मँहगी देखते हुए हम तो यही कहेंगे कि समितिका यह आन्दोलन अधिकांश लोगोंको असंगत ही नहीं, बल्कि एक क्रूर उपहास (Cruel joke) मालूम होगा। समितिको चाहिए कि पहले इस बातका प्रबन्ध करे कि लोगोंको काफी तादादमें उत्तम स्वास्थ्यप्रद दूध प्राप्त हो। इस देशमें दूधके प्रचारके लिए किसी प्रकारके आन्दोलन चलानेकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

—

चीनी और दियासलाईपर ड्यूटी

देशी चीनी और दियासलाईपर टैक्स लगानेके सम्बन्धमें जो बिल व्यवस्थापिका परिषद्के गत बजट अधिवेशनमें पेश किये गये थे, वे दोनों ही पास हो गये। दोनों ही बिल सिलेक्ट कमेटीमें विचारके लिए भेजे गये थे। चीनी-बिलके सम्बन्धमें जैसा देशव्यापी विरोध हो रहा है, उसे देखते हुए सिलेक्ट कमेटीने अपनी रिपोर्टमें यह सिफारिश की थी कि देशी चीनीपर १।-) प्रति हंडरवेटके हिसाबसे ड्यूटी लगानेका जो प्रस्ताव किया गया है, उसके बजाय प्रति हंडर १) रुपया ड्यूटी लगानी चाहिए। इससे सरकारके राजस्वमें भी विशेष क्षति नहीं होगी और स्वदेशी चीनीके व्यवसायियोंके लिए भी यह भार असह्य नहीं होगा; किन्तु अर्थ-सचिव सर जार्ज शुस्टरको यह छोटीसी रियायत भी मंजूर न थी। उन्होंने एक यूरोपियन सदस्य द्वारा इस सिफारिशके विरुद्ध परिषद्में फिरसे १।-) आना ड्यूटी क़ायम रखनेका संशोधन उपस्थित कराया। यूरोपियन और कुछ 'जो हुकुम' सदस्योंका ज़ोर तो था ही। संशोधन स्वीकृत हो गया। चीनी-ड्यूटीको लेकर एसेम्बलीमें खूब गरमागरम बहस हुई। कई सदस्योंने तो सरकारकी नीयत तक पर अक्षेप किये। श्रीयुत जगन्नाथ अग्रवालने कहा कि लंकाशायर-प्रतिनिधि-मण्डलके प्रधान सर विलियम क्लेयरलीज हालैण्डके साथ व्यापारिक समझौतेकी बातचीत कर रहे हैं। हालैण्ड लंकाशायरका सूती कपड़ा खरीदेगा और उसके बदलेमें इंग्लैण्ड जावाकी चीनी। आपने कहा कि यदि यह समझौता सफल हुआ, तो इससे भारतीय चीनी-व्यवसायको क्षतिग्रस्त होना पड़ेगा। अर्थ-सचिवने

इस आक्षेपका खण्डन करते हुऐ ज़ोर देकर कहा कि चीनीके ऊपर ड्यूटी लगानेमें सरकारका एकमात्र उद्देश्य व्यवसायकी रक्षा करना और राजस्वमें वृद्धि करना है। और भी कई सदस्योंने नाना प्रकारके संशोधन उपस्थित किये; किन्तु उनमें एक भी स्वीकृत नहीं हुआ। आख़िर चीनीपर कर लगानेका प्रस्ताव प्रस्तावित रूपमें पास हो गया।

दियासलाई

दियासलाई-ड्यूटी-बिल कुछ संशोधनोंके साथ स्वीकृत हुआ है। अर्थ-सचिवने अपने बजट-सम्बन्धी भाषणमें दियासलाईके प्रति ग्रास (१२ दर्जन) बक्स पर २।) ड्यूटी लगानेका प्रस्ताव किया था। पीछे दियासलाईके व्यवसायियोंके प्रतिनिधियोंसे परामर्श करनेपर पता चला कि इस हिसाबसे ड्यूटी लगानेसे दियासलाईके कारख़ाने बन्द हो जायँगे और दियासलाईकी खपत भी कम हो जायगी। दियासलाईकी खपत कम हो जानेसे आमदनीमें लगभग ६० लाख घाटा होनेका अनुमान किया गया, इसलिए अर्थ-सचिवने इस सम्बन्धमें सिलेक्ट कमेटीकी सिफ़ारिशोंको मंजूर कर लिया, और चीनी-ड्यूटीके समान अपने पूर्व प्रस्तावके लिए दुराग्रह प्रकट नहीं किया। सिलेक्ट कमेटीकी सिफारिशोंके अनुसार बिलमें इस प्रकार संशोधन किये गये :—४० काठियोंके प्रति ग्रास बक्सपर १) ड्यूटी, ६० काठियोंके प्रति ग्रास बक्सपर १॥) और ८० काठियोंके प्रति ग्रास बक्सपर २) रुपया। टैक्स छोड़कर ४० काठियोंके प्रति ग्रास बक्सका मूल्य १२ आना पड़ता है। अतएव टैक्सके साथ खुदरा दूकानदार ४० काठियोंका बक्स एक पैसेमें बेच सकता है, इससे ग़रीब लोगोंको भी विशेष असुविधा न होगी। २।) के हिसाबसे ड्यूटी लगानेसे प्रति बक्सका मूल्य दो पैसेसे कम नहीं हो सकता। इन संशोधनोंके साथ बिल पास हो गया।

इस प्रकार अपने अन्तिम बजटमें भारतवासियोंके ऊपर ये दो नये टैक्स और लगाकर अर्थ-सचिव सर जार्ज शुस्टर स्वदेश प्रस्थान कर रहे हैं। भारतवासी आपके पाँच वर्षके कार्यकालको सदा याद रखेंगे, क्योंकि इन पाँच वर्षोंमें उनके ऊपर ४५ करोड़का नया कर-भार लगाया जा चुका है।

भारत-सरकारके बजटके साथ ब्रिटिश सरकारके वर्तमान वर्षके बजटकी तुलना करनेसे दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर जान पड़ता है। मि० नेमिल चेम्बरलेनने पार्लामेंटमें जो बजट उपस्थित किया है, उसमें वर्तमान वर्षमें ३ करोड़ १० लाख पौंडकी बचत दिखाई गई है। आगामी वर्षमें इन्कम-टैक्समें कमी करने तथा स्वदेशी मोटर-व्यवसायको प्रोत्साहन देनेके लिए मोटरपर 'हार्स पावर टैक्स' कम करनेका प्रस्ताव किया गया है। और भारतमें हमारे अर्थ-सचिवने क्या किया है? बजटका लेखा-जोखा ठीक करनेके लिए चीनी और दियासलाई जैसे शिशु व्यवसायपर टैक्स लगाकर उसकी उन्नतिके मार्गमें रोड़े अटकाये हैं!

—

देशी नरेश-रक्षा-क़ानून

व्यवस्थापिका परिषद्के गत अधिवेशनमें देशी नरेश-रक्षा-बिल पास हो गया। बिलके पास होनेमें हमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि परिषद्का इस समय जैसा गठन है, उससे जो न हो जाय थोड़ा है। कितने ही काले और कलंकजनक कानून इस परिषद्के सदस्योंकी बदौलत क़ानूनकी किताबोंमें स्थान पा चुके हैं। उन्हीं काले कानूनोंमें इस देशी नरेश-रक्षा-बिलकी भी गिनती होगी, और परिषद्के सदस्य अपनी इस काली करतूतके लिए चिरकाल तक बदनाम बने रहेंगे। इस कानून द्वारा देशी नरेशोंकी ही रक्षा नहीं की जायगी, बल्कि उनकी अनीति, अन्याय, स्वेच्छाचार, उच्छृंखलता और अनियन्त्रित शासनकी भी रक्षा की जायगी। जनतामें यह भावना फैली हुई है कि देशी नरेशोंके निरंकुश और अनियन्त्रित

शासनकी कोई आलोचना न करे, प्रजाके प्रति किये गये उनके अन्यायों और अत्याचारोंका प्रकाशन न हो, उनके कलंकजनक कृत्योंका कभी रहस्योद्‌घाटन न हो, इसीलिए इस कानूनकी रचना की गई है। एक ओर तो ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश भारतमें प्रजासत्तात्मक शासन स्थापित करनेका दम भरती है, और दूसरी ओर वह देशी राज्योंकी आठ करोड़ प्रजाको निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासकोंकी मर्जीपर छोड़ देना चाहती है! देशी राज्योंकी प्रजाके लिए अपने अभाव-अभियोगोंको प्रकट करनेका एकमात्र साधन थे ब्रिटिश भारतके समाचारपत्र। अब इस क़ानून द्वारा ब्रिटिश भारतके समाचारपत्रोंकी ज़बान बन्द कर दी गई है, और देशी राज्योंकी प्रजाको उनके एकमात्र साधनसे वंचित कर दिया गया है। अब कोई देशी नरेश चाहे अपनी प्रजापर जैसी मनमानी करे, उसकी प्रजाका अपनी शिकायतोंको ब्रिटिश भारतके किसी समाचारपत्रके द्वारा भारत-सरकारके कानों तक पहुँचाना ख़तरनाक हो गया है। हमारे प्रभुओंको नरेशोंकी रक्षाकी जितनी फ़िक्र है, उतनी फ़िक्र उनकी प्रजाके लिए थोड़े ही है! नरेशोंकी स्वेच्छाचारिताकी चाहे जिस प्रकार रक्षा होनी चाहिए, प्रजाके स्वत्वों और अधिकारोंकी कौन चिन्ता करता है।

इस बिलके औचित्यके विषयमें सरकारी पक्षकी ओरसे परिषद्‌में जो कुछ कहा गया, उससे हम यह नहीं समझ सके कि इस बिलका आख़िर प्रयोजन क्या है और किसके कहनेसे यह कानून बनाया जा रहा है। जिन देशी राज्योंमें सुशासन है, जहाँकी प्रजाको अपने शासकके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है, उनके लिए तो इस प्रकारके किसी कानूनकी आवश्यकता है नहीं और न इस श्रेणीके देशी नरेशोंने इस प्रकारके किसी क़ानूनके लिए माँग ही पेश की है। तो फिर किन नरेशोंकी रक्षाके लिए यह क़ानून बना है? क्या उनके लिए, जो विदेशोंमें अपनी प्रजाकी कमाई सैर-सपाटेमें फूँका करते हैं, जिनका शासन सर्वथा अनियन्त्रित और उच्छृंखल है और जिनके कुशासनके विरुद्ध उनकी प्रजा समय-समयपर अपने अभाव-अभियोगोंको लेकर ब्रिटिश भारतके समाचारपत्रों तक पहुँचा करती है, ताकि उनकी रसाई भारत-सरकार तक हो और सरकार उसकी जाँच-पड़ताल करे? क्या इस क़ानून द्वारा ऐसे ही निरंकुश उच्छृंखल शासकोंकी रक्षा करनेकी व्यवस्था नहीं की गई है? उनकी प्रजा अपनी शिकायतोंको लेकर अब भारत-सरकार तक किस प्रकार पहुँचेगी?

एक बात और है। इस समय अधिकांश देशी राज्योंके प्रधान पदोंपर श्वेताग कर्मचारी नियुक्त हैं। राज्यके शासनमें इन्हींका बोलबाला है। तो क्या इनके शासन-प्रबन्धकी समाचारपत्रोंमें किसी प्रकारकी समालोचना न हो सके, इसीलिए इस क़ानूनकी सृष्टि हुई है?

होम मेम्बर सर हेरी हेगने यह विश्वास दिलाया है कि सरकार ईमानदार अख़बारोंको सताना नहीं चाहती, उसका उद्देश्य है देशी नरेशोंकी 'दुष्टतापूर्ण' (malicious) आक्रमणोंसे रक्षा करना। मान लीजिए कि दो-एक समाचारपत्र इस प्रकार black mailing के अपराधी हों भी, तो क्या इसके लिए ख़ास क़ानून बनाकर ब्रिटिश भारतके सारे समाचारपत्रोंका मुँह बन्द कर देना चाहिए? जिन मैजिस्ट्रेटोंके हाथमें क़ानून द्वारा क्षमता दी जायगी, क्या वे उस क्षमताका दुरुपयोग नहीं करेंगे? उक्त श्रेणीके एक-दो समाचारपत्रोंको दण्ड देनेके लिए क्या मौजूदा क़ानून ही काफ़ी नहीं है?

भारत-सरकारने यह कानून बनाकर देशी नरेशोंकी रक्षाकी व्यवस्था की है; किन्तु हमारा विश्वास है कि जिस प्रकार राखके नीचे आगकी चिनगारियोंको दबाकर रखना असम्भव है, उसी प्रकार क़ानून द्वारा स्वेच्छाचारिता और उच्छृंखलताकी भी अधिक समय तक रक्षा होनी असम्भव है।

—

स्वराज्य-पार्टीका उद्धार और कौन्सिल-प्रवेश

महात्मा गांधीके सत्याग्रह-संग्रामके स्थगित करनेके बाद स्वराज्य-पार्टीके पुनर्संगठन और कौन्सिल-प्रवेशके प्रश्नोंको महत्त्व मिल गया है। रचनात्मक कार्योंमें जिनका मन नहीं लगता और बैठे-ठाले जिन्हें कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए, उनके लिए कौन्सिल-प्रवेश वक्त काटनेका एक अच्छा साधन है। इससे देशमें चार-पाँच महीने तक ख़ासी चहल-पहल रहेगी। धुआँधार भाषण होंगे, कुछ अख़बारवालोंका मुनाफा हो जायगा और इलेकशन-एजेण्ट भी फ़ायदेमें रहेंगे। कुछ नये और कुछ पुराने मेम्बरोंको अपने नामके आगे एम० एल० ए० की उपाधि लगानेका सौभाग्य प्राप्त होगा और दिल्लीकी पार्लामेंटरी सड़कपर चलनेवाली मोटरोंमें कुछ खद्दरधारी आदमी भी दीख पड़ने लगेंगे ; पर खेतमें हल जोतनेवाले किसान या मिलमें काम करनेवाले मज़दूरकी हालत ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। यदि स्वराज्य-पार्टी निश्चित रूपसे साम्यवादके सिद्धान्तोंको अपनाकर कौन्सिलमें जानेका प्रयत्न करती, तो कुछ बात भी थी, क्योंकि तब इस बहाने साधारण जनताके सम्मुख साम्यवादके सिद्धान्तोंको रखनेका ही अवसर प्राप्त होता; पर धनाढ्य वकीलों तथा डाक्टरोंकी पार्टी कभी साम्यवादके सिद्धान्तोंको ग्रहण करेगी, इसकी आशा करना ही व्यर्थ है।

आजसे आठ वर्ष पहले जब स्वर्गीय गणेश शंकरजी विद्यार्थी कानपुरसे कौंसिलके लिए खड़े होनेको मजबूर किये गये थे, उस समय इन पंक्तियोंके लेखकने उनकी सेवामें एक पत्र भेजा था, जिसमें नम्रतापूर्वक यह पूछा गया था कि उन जैसे mass-minded साधारण जनताके-से विचारोंवाले नेताके लिए कौंसिल-प्रवेश किस प्रकार उपयोगी हो सकता है, और वे उस दलदलमें क्यों फँस रहे हैं? इस पत्रके उत्तरमें श्रीयुत विद्यार्थीजीने लिखा था—

"....आपने जो शंका प्रकट की है, वह ठीक है। मैं कौंसिलमें जाना लाभदायक नहीं समझता। वहाँका वायुमंडल बहुत विषैला है और कौंसिलसे देश या साधारण आदमियोंको कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। इसके अतिरिक्त मैं यह भी देख रहा हूँ कि हममें से जो लोग कौंसिलमें जायँगे, उनकी और अधिक ख्वारी होगी, और वे और भी नीचे जायँगे। कानपुर-कांग्रेसने अपने ऊपर इलेकशनका काम लेकर देशको बहुत हानि पहुँचाई है। मैं कौंसिलमें क़तई नहीं जाना चाहता। अपना सौभाग्य समझूँगा, यदि इसकी छूतसे बचा रहूँ.......बार-बार कांग्रेसकी प्रतिष्ठाकी दुहाई दी जा रही है। मैं यह बात पेश कर रहा हूँ कि मैं अपरिवर्तनवादी न होते हुए भी कौंसिलकी उपयोगितापर विश्वास नहीं करता और यह समझता हूँ कि जो बहुत साधारण-सा अन्तर इस समय स्वराजियों, प्रति-सहयोगियों और नेशनल पार्टीमें दिखाई दे रहा है, वह इलेक्शनके बाद न रह जायगा। मैं यह भी कहता हूँ कि मैं हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ेका मूल कारण इलेकशन आदिको समझता हूँ और कौंसिलमें जानेके बाद आदमी देश और जनताके कामका नहीं रहता।...."

कौंसिल-प्रवेशके विषयमें श्रीयुत विद्यार्थीजीने सन् १९२६ में जो बात लिखी थी, वह आज भी ज्योंकी त्यों ठीक है। फर्क इतना ही है कि पहले स्वराज्य-पार्टीको त्यागमूर्त्ति मोतीलालजी और देशबन्धु चित्तरंजनदास जैसे सुयोग्य नेता प्राप्त थे और अब उनके मुक़ाबलेका कोई आदमी उक्त दलमें नहीं।

स्वराज्य-पार्टीके नेता बार-बार इस बातको दुहराते हैं कि हम कौंसिलोंमें जाकर यह सिद्ध कर देंगे कि जनता सरकारकी दोहरी नीतिके विपक्षमें है। हमें तो स्वराजी नेताओंकी यह घोषणा फटे ढोलकी आवाज़-सी प्रतीत होती है। जनता सरकारकी नीतिके पक्षमें है या विपक्षमें? क्या इस प्रश्नके दो उत्तर भी हो सकते हैं? इस सोलह आने प्रत्यक्ष बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न उतना ही हास्यास्पद है, जितना यह सिद्ध करना कि सूर्य पूर्वमें निकलता है।

क्रान्तिकारी मनोवृत्ति तथा कौंसिल-प्रवेश दोनों

बिलकुल बेमेल चीज़ें हैं, और जो लोग इनमें सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं, वे या तो कमसमझ हैं अथवा दम्भी। जो महानुभाव केवल Constitutional (वैध) आन्दोलनोंमें विश्वास रखते हैं, उनसे हमें कुछ नहीं कहना ; पर जो नेता अब तक लिबरलोंका मज़ाक उड़ाते आये हैं, वे अब उन्हीं लिबरलोंके पथके पथिक बनना चाहते हैं ! हमें तो स्वराजिस्टोंकी तुलनामें लिबरलोंकी पद्धतिमें अधिक ईमानदारी प्रतीत होती है। जब लिबरल लोग सीधे-सादे ढंगपर कहते हैं कि भई, पत्थरके नीचे उँगली दब गई है, धीरे-धीरे ही निकलेगी, तो उनकी मनोवृत्ति हम समझ सकते हैं ; पर उन स्वराजिस्टोंकी खोखली बातें हमारी समझमें नहीं आतीं, जो कांग्रेसके गौरवसे लाभ उठाते हुए काम लिबरलों कैसे करना चाहते हैं।

युवकोंसे अपील

मि० जे० एन० गुप्त, एम० एल० सी०, ने २९ अप्रैलके स्टेट्समैनमें बंगाली युवकोंके नाम एक अपील छपवाई है, जिसका समर्थन सर पी० सी० राय, श्रीमती बासन्तीदेवी, श्रीमती जे० एम० सेन-गुप्त तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुषोंने किया है। उक्त लेखमें बंगाली युवकोंसे यह अनुरोध किया है कि वे हिंसात्मक उपायोंको तिलांजलि देकर रचनात्मक कार्य हाथमें लें। जहाँ तक हिंसाका प्रश्न है, उक्त महानुभावोंके विचारोंसे हम सर्वथा सहमत हैं। एक-दो बार नहीं, अनेक बार 'विशाल भारत' हिंसायुक्त उपायोंका विरोध कर चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिंसाका आश्रय लेकर भारतीय युवकोंने—हम उन्हें बंगाली नहीं कहेंगे—अपनी तथा अपने देशकी हानि ही की है, और जितनी जल्दी वे अपनी हिंसात्मक नीतिको छोड़ देंगे, उतना ही शीघ्र उनका तथा उनकी जन्म-भूमिका हित होगा। पर मि० गुप्तकी विचार-पद्धति हमें दोषयुक्त प्रतीत होती है। हमें उसमें अदूरदर्शितापूर्ण प्रान्तीयताकी गन्ध आती है। गुप्त महोदयने लिखा है—

"You must have heard it said that nuggets of gold are lying strewn over the streets of Calcutta. Is it only for the foreigner—the Englishman and Scotchman, the Marwari and Cutchi, the Bhatia and Khoja, to gather all this gold while we look on and are satisfied with a miserable pittance as quill drivers in their firms and offices."

अर्थात्—"तुमने यह बात सुनी होगी कि कलकत्तेकी सड़कोंपर सोना बिखरा हुआ पड़ा है। क्या यह उचित है कि विदेशी लोग—अंगरेज़ और स्काच, मारवाड़ी और कच्छी, भाटिया और खोजा—ही इस सोनेको बटोर लें और हम लोग मुँह ताकते रहें, अथवा तुच्छ वेतनपर उनकी फर्मों तथा आफिसोंमें क़लम घिसकर ही सन्तोष कर लें ?"

हम इस बातको मानते हैं कि बंगालमें रहनेवाले अन्य प्रान्तोंके आदमियोंमें से अधिकांशने अब तक इस प्रान्तको अपना घर नहीं समझा, और इस कारण उनकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी होगी। महात्माजी जब कभी अन्य प्रान्तवासी गुजरातियोंको उपदेश देते हैं, तो वे यही कहते हैं कि जिस प्रान्तमें तुम रहते हो, उसके हितोंको सर्वोच्च स्थान दो। 'विशाल भारत' ने भी प्रारम्भसे ही अपने सामने यही उद्देश्य रखा है। पिछले फरवरीके अंकमें भी हमने एमहर्स्ट स्ट्रीटके मारवाड़ी-अस्पतालकी साम्प्रदायिकताकी घोर निन्दा की थी। इसलिए हमपर प्रान्तीयता अथवा पक्षपातका अपराध नहीं लगाया जा सकता। जो अपील मि० गुप्तने की है, अव्वल तो उसकी टोनपर ही हमें ऐतराज़ है। हिंसावादी युवकोंसे हमारा परिचय नहीं ; पर इतना हम अवश्य अनुमान कर सकते हैं कि उन लोगोंमें प्रान्तीयता शायद ही पाई जाती हो। वे ग़लत मार्गपर जा रहे हैं अवश्य ; पर किसी प्रान्त-विशेषका या जाति-विशेषका हित उनकी दृष्टिमें नहीं है। जो लोग अपनी जानको हथेलीपर लिये घूमते हैं, उन्हें कलकत्तेकी सड़कोंपर पड़े हुए 'सोने'का प्रलोभन प्रभावित नहीं कर सकता।

भावुकतामय तथा स्वाधीनताप्रिय युवकोंको वे ही काम पसन्द आ सकते हैं, जिनमें कुछ ख़तरा हो। ऐसे आदमियोंको यह उपदेश देना—"Be taxi drivers, small retail shopkeepers, dairy farmers, anything which you can get." (टैक्सी ड्राइवर बनो, खुदरा सामान बेचनेके लिए दूकान खोल लो, दूध बेचनेका काम करो। गरज़ यह कि जो काम भी मिले करो) ज़बरदस्त मनोवैज्ञानिक भूल है।

इन नवयुवकोंसे यदि अपील की जा सकती है, तो हिंसा-रहित साम्यवादके नामपर ही की जा सकती है। उस समय यह कहनेके बजाय कि Rescue the industries of Bengal for the sons and daughters of the province (बंगाल-प्रान्तके उद्योग-धंधोंकी रक्षा इस प्रान्तके पुत्र-पुत्रियोंके लिए करो) हमें दूसरे ही स्वरपर बोलना पड़ेगा। साम्यवादी नवयुवकोंके लिए तो सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला या सर राजेन्द्रनाथजी मुकर्जीमें कोई अन्तर न होना चाहिए।

जब इस प्रान्तके प्रतिष्ठित नागरिक प्रान्तीयताके नामपर अपील करते हैं—उदाहरणार्थ, सर पी०सी० राय जैसे सर्वमान्य नेता जब अनियन्त्रित भाषामें ऐसी बातें लिख डालते हैं, जिनसे प्रान्तीय विद्वेष उलटा बढ़ता और है—तो हमें खेद हुए बिना नहीं रहता।

हम इस प्रान्तमें लगातार ६½ वर्षसे रह रहे हैं, और इसके पहले भी एक वर्ष रह चुके हैं, इसलिए अपनेको इस प्रान्तका निवासी कहनेमें हमें गौरव प्रतीत होता है। अपने जीवन-भरमें कार्य तथा विचारोंकी सबसे अधिक स्वाधीनता हमें इसी प्रान्तमें मिली है, और इसके लिए हम इस प्रान्तके अत्यन्त ऋणी हैं। इसलिए एक बंगालीकी हैसियतसे हम प्रान्तीयताका विरोध करते हैं।

अन्तमें हमें बंगालमें रहनेवाले अन्य प्रान्तवालोंसे एक निवेदन करना है। यदि आप लोगोंको इस प्रान्तमें शान्तिपूर्वक रहना है, तो आप इस प्रान्तके हितको सर्वोच्च स्थान दें। यदि सर पी० सी० राय जैसे प्रतिष्ठित आदमी कभी कोई प्रान्तीयतापूर्ण बात कह डालें, तो उसकी उपेक्षा करें। स्वयं बंगालके नवयुवकोंको उनका यह विचारशैथिल्य पसन्द नहीं, और बंगालमें सैकड़ों-हज़ारों ऐसे नवयुवक पाये जाते हैं, जिनका दृष्टिकोण सर्वथा भारतीय है। कोई भी बात हमें ऐसी न करनी चाहिए, जो प्रान्तीय विद्वेषकी अग्निमें आहुतिका काम दे। बंगालियों तथा मारवाड़ियों अथवा मारवाड़ियों और देशवालियोंको भिड़ा देनेसे हमारी स्वाधीनताके विरोधियोंको ही लाभ हो सकता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि ३० अप्रैलके 'स्टेट्समैन' में उक्त अपीलका हार्दिक समर्थन किया गया है। यदि वह अपील प्रान्तीयताके निम्न-धरातलके बजाय साम्यवादके उच्च धरातलसे की जाती, तो 'स्टेट्समैन' क्या लिखता? इस प्रश्नका उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं।

हम 'बंगालके पुत्र-पुत्रियों' से नहीं, वरन समूचे भारतके नवयुवकों तथा नवयुवतियोंसे, जिनका झुकाव आतंकवादकी ओर है, अपील करते हैं कि वे इस ग़लत, फलहीन, कटुतापूर्ण और हानिकारक हिंसा मार्गको सर्वथा तिलांजलि देकर साम्यवादके हिंसा-रहित रचनात्मक कार्यक्रमको हाथमें लें। वे प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, अन्ध-विश्वासके ख़िलाफ़ जेहाद बोलें, मज़दूरों और किसानोंका संगठन करें और उन्हें पूँजीपतियों और सूदखोरोंके शोषणसे बचानेकी कोशिश करें। यह कार्यक्रम हिंसाके निष्फल और अमानुषिक कार्योंसे कहीं अधिक फलदायक, सारपूर्ण और adventerous है।

—

स्वर्गीय प्रमथनाथ बसु

हालमें श्री प्रमथनाथ बसुका स्वर्गवास हो गया। बसु महाशयका नाम बहुत कम हिन्दी-भाषा-भाषी जानते होंगे। बसु महाशयने भारत-सरकारकी जिओलाजिकल सर्वे (भूगर्भ-विभाग) में अनेक वर्षों तक नौकरी की थी;

लेकिन अपने काले रंगके कारण उन्हें दिक्कत उठानी पड़ी। जिस पदके वे अधिकारी थे, वह एक जूनियर अंगरेज़को दे दिया गया। इसपर उन्होंने इस्तीफा दे दिया। बादमें उन्होंने मयूरभंज राज्यमें नौकरी कर ली थी।

आज ताताका लोहेका कारखाना संसारके बहुत बड़े कारखानोंमें शुमार किया जाता है। तातानगर और जमशेदपुर जैसे शहर केवल इसी कारखानेकी बदौलत बस गये हैं। मयूरभंजकी गोरु महीशानी पहाड़ियोंके गर्भमें इतना लोहा भरा पड़ा है, इसका पता लगानेवाले स्वर्गीय प्रमथनाथ बसु ही थे। बसु महाशयके आविष्कारकी बदौलत ही आज ताताका इतना बड़ा कारख़ाना खड़ा है। इंग्लैगडमें शिक्षा पानेके कारण पहले बसु महाशय यूरोपियन ठाटसे रहते थे; लेकिन बादमें वे भारतीय संस्कृतिके कट्टर उपासक बन गये और जीवन-भर ठेठ भारतीय ढंगसे रहे। वे विचारशील पुरुष थे। उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं। उनकी मृत्यु अस्सी वर्षकी आयुमें हुई।

—

स्वर्गीय पं० बदरीनाथ भट्ट

आज भट्टजीके नामके आगे 'स्वर्गीय' लगाते हुए हमें अत्यन्त खेद हो रहा है। भट्टजी इतने ज़िन्दादिल आदमी थे और उनमें स्वयं हँसने तथा दूसरोंको हँसानेका ऐसा अद्भुत गुण था कि हमने यह आशा कर रखी थी कि भट्टजी अभी बहुत वर्षों तक जीवित रहकर हिन्दी-साहित्यकी सेवा और साहित्य-सेवियोंका मनोरंजन करते रहेंगे; पर ऐसा न होना था। भट्टजी कई वर्षसे बीमार थे और यद्यपि उनका इलाज भी अच्छी तरह किया गया, फिर भी वे बराबर कमज़ोर ही होते गये और गत पहली मईको उनका स्वर्गवास हो गया।

हमपर भट्टजीकी बड़ी कृपा थी। उनके पूज्य पिताजी रामायणके सुप्रसिद्ध टीकाकार स्वर्गीय पं० रामेश्वर भट्टके चरणोंके निकट बैठकर हमें हिन्दी पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इसलिए भट्टजीसे हम सन् १९०९-१० से परिचित थे। भट्टजी इस सम्बन्धको नहीं भूले थे और समय-समयपर अपने लेखों तथा परामर्शों द्वारा बराबर हमारी सहायता करते रहे।

जब हम भट्टजीके हास्य-रसपूर्ण स्वभाव तथा मधुर व्यंगोंका स्मरण करते हैं, तो यह विश्वास करनेको जी नहीं चाहता कि भट्टजी इस संसारमें नहीं रहे। उनका मुसकराता हुआ चेहरा अब भी हमारी आँखोंके सामने है।

इस दुःखपूर्ण अवसरपर हम भट्टजीके भाइयोंसे—श्री ऋषीश्वरनाथजी भट्ट तथा श्री केदारनाथजी भट्टसे—हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। स्वर्गीय भट्टजीकी विधवा तथा उनके बच्चोंके प्रति भी प्रत्येक सहृदय साहित्य-सेवीकी संवेदना होगी। आशा है कि वे अपने इस भयंकर दुःखको धैर्यपूर्वक सहन करेंगे।

—

दीनबन्धु ऐगड्रूज़के विषयमें महात्मा गांधी और कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यदि भारतमें कोई अंगरेज़ ऐसा है, जिसपर भारतीय —ख़ास तौरसे ग़रीब किसान और मज़दूर— पूर्णरूपसे विश्वास करते हैं, तो वह सी० ऐफ० ऐगड्रूज़ ही हैं। उन्होंने अपने जीवनके पिछले तीस वर्ष हमारी मातृ-भूमिकी सेवामें व्यतीत किये हैं, और इस प्रकार अपनी जन्मभूमि इंग्लैगडकी भी महान सेवा की है। मि० ऐगड्रूज़ कवीन्द्र रवीन्द्र और महातमा गांधी दोनोंके ही कृपापात्र हैं। यहाँ हम उनके विषयमें उपर्युक्त दोनों महापुरुषोंकी सम्मति उद्धृत करते हैं। कविवरने 'भारत-भक्त ऐगड्रूज़' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखा है—

"C. F. Andrews, who to me is dear Charlie, is a living embodiment of Christian principles. But by the siugular purity of his life and his never failing service to the poor and the lost, he has ceased to belong to any particular sect or nation; he has become one of the world.

"He is too near to me by bonds of co-operation and love to allow me to say anything about him in a detatched spirit of criticism. Pandit Benarasi Das has worked with him closely for a number of years and it is quite appropriate that he should write a biography of Andrews. In these days of destructive class—struggle and of blatant nationalism his life has a special lesson for the world. May it not pass away unheeded !"

"Uttarayan"
Shanti Niketan 29-3-34. —Rabindra Nath Tagore

अर्थात्—"सी० एफ० ऐराड्रूज़, जो मेरे लिए प्यारे चार्ली हैं, ईसाई सिद्धान्तोंकी सजीव मूर्त्ति हैं। पर अपने जीवनकी आश्चर्यजनक पवित्रताके कारण और ग़रीबों और पतितोंकी अचूक तथा निरन्तर सेवाकी वजहसे वे अब किसी ख़ास साम्प्रदाय या जाति-विशेषके आदमी नहीं रहे, बल्कि वे सम्पूर्ण संसारके नागरिक बन गये हैं।

"सहयोग तथा प्रेमके बन्धनोंके कारण वे मेरे इतने निकट आ गये हैं कि मैं अपनेको उनसे अलग करके उनकी आलोचना नहीं कर सकता। पं० बनारसीदासने अनेक वर्षों तक उनके साथ कार्य किया है, और यह उचित ही है कि वे ऐराड्रूज़का जीवन-चरित्र लिखें। आजकलके विध्वंसात्मक श्रेणी युद्ध तथा कोलाहलपूर्ण राष्ट्रीयताके दिनोंमें मि० ऐराड्रूज़का जीवन संसारके लिए एक ख़ास सन्देश रखता है। कहीं ऐसा न हो कि यह सन्देश भुला दिया जाय!"

'उत्तरायण' —रवीन्द्रनाथ ठाकुर
शान्ति-निकेतन, २९।३।१४

महात्मा गांधीजीने भी शान्ति-निकेतनके उत्तरायणमें ही बैठकर सन १९२० में लिखा था—

"It is not easy thing for me to write a foreword to a life sketch of C. F. Andrews between whom and me there exists a tie closer than between blood brothers. But if I may say without presumption, I would like to note down my convetion that there does not exist in India a more truthful, more humble, and more devoted servant of hers than C. F. Andrews.

"May the lesson of his life prove to the youth of India an encouragement for greater devotion to the motherland."

Shanti Niketan.
17-9-20 —M. K. Gandhi.

अर्थात्—"मि० सी० एफ० ऐराड्रूज़के जीवन-चरितकी, जिनके और मेरे बीचमें सगे भाइयोंसे भी अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है, भूमिका लिखना मेरे लिए आसान काम नहीं; लेकिन यदि धृष्टता क्षन्तव्य समझी जाय, तो मैं अपने विश्वासको यहाँ लिपिबद्ध कर देना चाहता हूँ कि सी० एफ० ऐराड्रूज़से बढ़कर सत्यप्रिय, उनसे अधिक विनम्र और उनसे ज्यादा भारत-भक्त इस भूमिमें दूसरा कोई विद्यमान नहीं। ईश्वर करे कि उनका जीवन भारतीय नवयुवकोंको अपनी मातृभूमिकी अधिकाधिक सेवा करनेके लिए उत्साहित करे।"

शान्ति-निकेतन, १७–९–२० —एम० के० गांधी

इन पंक्तियोंके क्षुद्र लेखकके लिए यह अत्यन्त धृष्टताकी बात होगी कि वह उपर्युक्त दो महापुरुषोंके भावोंकी तुलना या समालोचना करे। फिर भी नम्रतापूर्वक हम इतना कह देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि कविवरने जो कुछ लिखा है, वह हमें अधिक ठीक और अपने दृष्टिकोणके अधिक निकट जँचता है। हमने अपनी पुस्तकका नाम 'भारत-भक्त ऐराड्रूज़' रखा था। हमारी समझमें उसका नाम दीनबन्धु ऐराड्रूज़ होना चाहिए था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'दीनबन्धु' की उपाधि मि० ऐराड्रूज़को महात्माजीने ही दी थी। कविवरने अपने १० अप्रैल १९२१ के पत्रमें लन्दनसे लिखा था—

"A land should be judged by its best products, and I have no hesitation in saying that the best Englishmen are the best specimens of humanity in the world."

अर्थात्—'किसी देशके भले-बुरेकी जाँच उसके सर्वोत्तम प्राणियों द्वारा की जानी चाहिए, और मैं बिना किसी संकोचके कह सकता हूँ कि अंगरेज़ोंमें जो सर्वोत्तम होते हैं, वे संसारके मानव-समाजके सर्वश्रेष्ठ नमूने होते हैं।'

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दीनबन्धु ऐराड्रूज़ उन्हींमें से एक हैं, और महात्मा गांधीजीके शब्दोंमें "जब तक अंगरेज़ जातिमें एक भी ऐराड्रूज़ विद्यमान है, तब तक हम अंगरेज़ जातिसे घृणा नहीं कर सकते।"

—

'कस्मै देवाय'

'विशाल भारत'के गतांकमें प्रकाशित 'कस्मै देवाय' शीर्षक लेखका हिन्दी जनताने जो स्वागत किया है, उसे देखकर हमें हर्ष होता है। पूज्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीसे लगाकर साधारण हिन्दी पाठकों तकने उसके विषयमें हमारे पास जो पत्र भेजे हैं, उनसे हमें बड़ा उत्साह मिला है। हिन्दीके ख़ास-ख़ास पत्रोंने उक्त लेखको उद्धृत करके उसके गौरवको बढ़ाया है। हम यह स्वीकार करते हैं कि उक्त लेखमें कई स्थलोंपर कठोर भाषाका प्रयोग किया गया है, जो हमारी प्रवृत्ति और नीतिके सर्वथा प्रतिकूल है; पर मनोवैज्ञानिक कारणोंसे हमें मजबूर होकर ऐसा करना पड़ा था। लेख वास्तवमें एकांगी है, और हम यह भी मानते हैं कि दूसरे पक्षकी ओरसे भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। फिर भी उक्त लेखमें सत्यका काफी अंश है और उसके स्वागतको देखकर हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि हिन्दी जनताके दृष्टिकोणमें अब अन्तर आता जाता है, और वह पतनकारी हलकेपनको साहित्यके लिए हानिकारक समझने लगी है। यदि हम लेखक लोग अपने लेखोंसे ही नहीं, वरन् जीवनसे भी जनताके सामने उच्च आदर्श रखें तो जनताकी आँखें खुलनेमें देर न लगे; पर जनताके दृष्टिकोणके बदलनेमें कुछ समय अवश्य लगेगा, क्योंकि अभी लेखकोंका ही दृष्टिकोण नहीं बदल पाया है।

'विशाल भारत'के इस अंकमें पाठकोंको कितनी ही रचनाएँ ऐसी मिलेंगी, जो हमारे निर्दिष्ट पथके सर्वथा अनुकूल हैं। यथा कविवर सियारामशरणजी तथा श्री 'दिनकर' जीकी कविताएँ और मौलवी अब्दुल हक़ साहबका लेख। 'हमारे ग्राम-गीत' शीर्षक लेख तो उसी भावनासे लिखा हुआ है ही। श्रीरामजीका चन्दावाला सचित्र स्कैच एक सजीव चीज़ है। हमें यह देखकर और भी हर्ष है कि हमारे सुयोग्य बन्धु श्री अख़्तरहुसेन रायपुरीने मासिक 'विश्वमित्र' के मईके अंकमें बड़ी योग्यतापूर्वक इसी दृष्टिकोणको जनताके सम्मुख रखा है। रायपुरीजीका लेख हमारे लेखसे सर्वथा स्वतन्त्र और मौलिक है और उनकी लेखनशैली पर हमें ईर्ष्या होती है। हमारा अनुमान है कि लेख भेजते समय वे पता भूल गये, अपर सर्कूलर रोडके बजाय शम्भू चटर्जी स्ट्रीट लिख गये! ख़ैर, अपने पाठकोंसे हमारा यह अनुरोध है कि वे उक्त लेखको अवश्य पढ़ें।

'कस्मै देवाय'की एक हज़ार प्रतियाँ हमने अलग भी छपवा ली हैं। यदि 'विशाल भारत'के प्रेमी पाठक उसे अधिकारी पाठकों तथा लेखकोंकी सेवामें अर्पित करना चाहें, तो सहर्ष उन्हें कुछ प्रतियाँ भेज सकते हैं।

अपने लेखकों तथा कवियोंसे हमारी एक प्रार्थना और है, वह यह कि वे अपने परामर्शों द्वारा बराबर हमारी मदद करते रहें। बिना उनकी कृपापूर्ण सहायताके अपने पथपर अग्रसर होना हमारे लिए कठिन होगा।

—

जापानका दम्भ

साम्राज्यवादी मदगर्वित जापानकी स्पर्द्धा आज इतनी बढ़ गई है कि वह प्रत्यक्ष रूपसे संसारके राष्ट्रोंको चेतावनी दे रहा है कि वे चीनके मामलेमें किसी प्रकारका दख़ल न दें; बिलकुल तटस्थ बने रहें। यहाँ तक कि युद्धके सामान, सैनिक शिक्षा या

अन्तर्राष्ट्रीय ऋण द्वारा भी किसी प्रकारकी सहायता न करें। अमेरिका और इंग्लैण्डके समाचारपत्रोंमें जापान-सरकारकी इस स्पष्ट चुनौतीको लेकर इस समय खूब आलोचना-प्रत्यालोचना हो रही है। जापान बड़े दम्भके साथ यह घोषित कर रहा है कि सुदूर पूर्वमें शान्ति-रक्षाका दायित्व एकमात्र उसीके ऊपर है, इसमें दूसरे राष्ट्रोंको चीं-चपड़ करनेका कोई अधिकार नहीं। चीनपर सशस्त्र आक्रमण करके जापानने अनीति और अन्यायपूर्वक उसके अधिकारसे मंचूरिया-प्रदेशको छीन लिया तथा चीनके और भी कई स्थानोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब वह चीनकी राष्ट्रीय उन्नति और स्वाधीनताके सम्बन्धमें भी हस्तक्षेप करनेका दावा कर रहा है, क्योंकि चीनसे यह कहना कि वह किसी दूसरे राष्ट्रसे सामरिक वायुयान या सैनिक शिक्षा ग्रहण न करे, राजनीतिक ऋण न ले, उसकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करना नहीं, तो और क्या है? चीनपर बार-बार सशस्त्र आक्रमण करके जापानने स्वयं सुदूर पूर्वमें शान्ति भंग की है, सन्धिकी शर्तोंको निर्लज्जतापूर्वक ठुकराया है, और आज वही सुदूरपूर्वकी शान्तिका अभिभावक बननेका दम भरता है! असल बात तो यह है कि जापान चीनको एक स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें शक्तिशाली बनने देना नहीं चाहता। वह उसे सदाके लिए निर्बल बनाकर रखना चाहता है, ताकि उसकी साम्राज्य-विस्तार-लालसामें कभी विघ्न उपस्थित न हो। यही कारण है कि जब जापानने देखा कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंकरोंका एक दल, चीनके एक भूतपूर्व अर्थ-सचिवके निमन्त्रणपर, संघाई पहुँचकर चीनको ऋण देनेके प्रश्नपर विचार कर रहा है, चीन इटलीसे हवाई-जहाज़ खरीद कर रहा है तथा इटली और जर्मनीके कारीगरोंको नियुक्त करके वायुयान-विद्याकी शिक्षा प्राप्त करनेका प्रबन्ध कर रहा है, तो उसका माथा ठनका। उसने फौरन परराष्ट्र-विभागकी ओरसे एक वक्तव्य निकालकर दूसरे राष्ट्रोंको चेतावनी दी कि "खबरदार, चीनके मामलेमें दखल मत दो।" जापानी परराष्ट्र-सचिव मि० हिराताने चीनके राजदूत जेनरल च्यांसोपिनके साथ बातचीत करते हुए कहा है कि "चीनके मामलेमें तटस्थ रहो।" इस आशयका जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, उससे चीनमें कुछ ग़लतफ़हमी फैल गई हैं। इस सम्बन्धमें चीन-सरकारने जो मनोभाव प्रकट किया है, वह जापानके लिए विशेष प्रीतिकर नहीं कहा जा सकता। चीनकी ओरसे इसके उत्तरमें जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, उसमें कुछ कठोर बातें कही गई हैं, तथापि जापान उस वक्तव्यके सारांशका समर्थन करता है, और वह चीनके साथ सहयोग भी करेगा। कारण, सुदूर पूर्वमें शान्ति-रक्षाका दायित्व चीन और जापान दोनोंके ऊपर है। इस प्रकार जापानी परराष्ट्र-सचिवने जापान-सरकारके वक्तव्यको मुलायम करनेका प्रयत्न किया है, जिससे चीन नाराज़ न हो जाय।

यूरोप और अमेरिकाकी स्थितिसे लाभ उठाकर जापान किस प्रकार सुदूर पूर्वमें अपना आधिपत्य क्रमशः सुदृढ़ करता जा रहा है, इसपर प्रकाश डालते हुए लंडनका 'टाइम्स' पत्र लिखता है—"सन् १६१५ में जब यूरोप युद्धको लेकर व्यस्त था और अमेरिका युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण होना चाहता था, ठीक इसी समय जापानने अपनी २१ शर्तें पेश कीं। यदि इन सब शर्तोंके अनुसार जापानका दावा स्वीकार कर लिया जाता, तो समस्त चीन जापानका 'रक्षित राज्य' बन जाता। इसके बाद जब यूरोप और अमेरिका आर्थिक मन्दीके कारण तवाह हो रहे थे, जापानने सशस्त्र आक्रमण करके मंचूकोपर अधिकार कर लिया। यूरोप जिस समय निरस्त्रीकरणकी समस्याको लेकर और अमेरिका आर्थिक पुनर्गठनके कार्यक्रमको लेकर संलग्न हैं, ठीक इसी समय जापान चीनकी गणतान्त्रिक उन्नति और स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करनेके लिए उद्यत हो गया है; किन्तु जापानको स्मरण रखना चाहिए कि चीनके प्रत्येक प्रदेशमें इंग्लैण्डका बहुत कुछ व्यवसाय-वाणिज्य है, और नाना प्रकारके धन्धोंमें उनकी

बहुत बड़ी पूँजी लगी हुई है। चीनमें अमेरिकाका भी बहुत बड़ा व्यापार है और फ्रांसका भी वाणिज्य-स्वार्थ चीनके साथ संवद्ध है।'' 'टाइम्स' पत्रके इस संकेतका अर्थ स्पष्ट है। यूरोप और अमेरिका इस बातको कदापि सहन नहीं कर सकते कि जापान सुदूर पूर्वका एकमात्र शान्ति-रक्षक बनकर रहे और अन्य राष्ट्र उसकी स्वेच्छाचारपूर्ण नीतिमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करें।

फाउन्टेन पेनके लिए हिन्दी शब्द

अंगरेज़ी भाषाके अनेक शब्द हिन्दीमें आ गये हैं। फाउन्टेन पेन भी उनमें से एक है। आजकल जापानने फाउन्टेन पेन इतने सस्ते कर दिये हैं कि घर-घर उनका प्रचार है; लेकिन हिन्दीमें उनके लिए कोई उपयुक्त नाम अभी तक आविष्कृत नहीं हुआ। 'फाउन्टेन पेन' इतना लम्बा-चौड़ा शब्द है कि अंगरेज़ी न जाननेवाले लोगोंको उसका उच्चारण भी मुश्किल होता है, कोई उसे 'फोनटन पेन' कहता है, कोई उसे 'फोल्टन पेन'। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने फाउन्टेन पेनके लिए 'सतोत्सारिणी' शब्द बताया था; लेकिन यह शब्द 'फाउन्टेन पेन'से भी अधिक कठिन है। 'कज्जलकाली' स्याहीके प्रवर्तक श्री हितेन्द्र नन्दीने 'फाउन्टेन पेन'के लिए 'झरना क़लम' निकाला है। इस शब्दसे 'फाउन्टेन पेन'के शाब्दिक अर्थ भी निकल आते हैं और वह इतना सरल भी है, जिसे हर पढ़ा-बेपढ़ा आदमी आसानीसे समझ सकता और इस्तेमाल कर सकता है। हमारी समझमें यह शब्द प्रचलित हो जाय, तो ठीक हो।

हिमालय-यात्रा-क्लब

हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि दिल्लीमें 'इंडियन हिमालयन एक्सपेडीशन क्लब' नामक एक क्लबकी स्थापना हुई है। इधर संसारके अनेक लोगोंका ध्यान हिमालयकी अजेय चोटियोंपर विजय प्राप्त करनेकी ओर आकर्षित हुआ है। कामेत, कचनजंघा और गौरीशंकरपर चढ़ाइयाँ भी हुई हैं; लेकिन सब विदेशियोंके द्वारा। यदि भारतीयोंकी सुसंगठित टोलियाँ हिमालयपर विजय प्राप्त करनेके लिए निकलें, तो बड़ी अच्छी बात हो। उक्त क्लबकी स्थापना इसी उद्देश्यसे हुई है। आशा है, क्लब अपने उद्देशमें सफल होगा।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
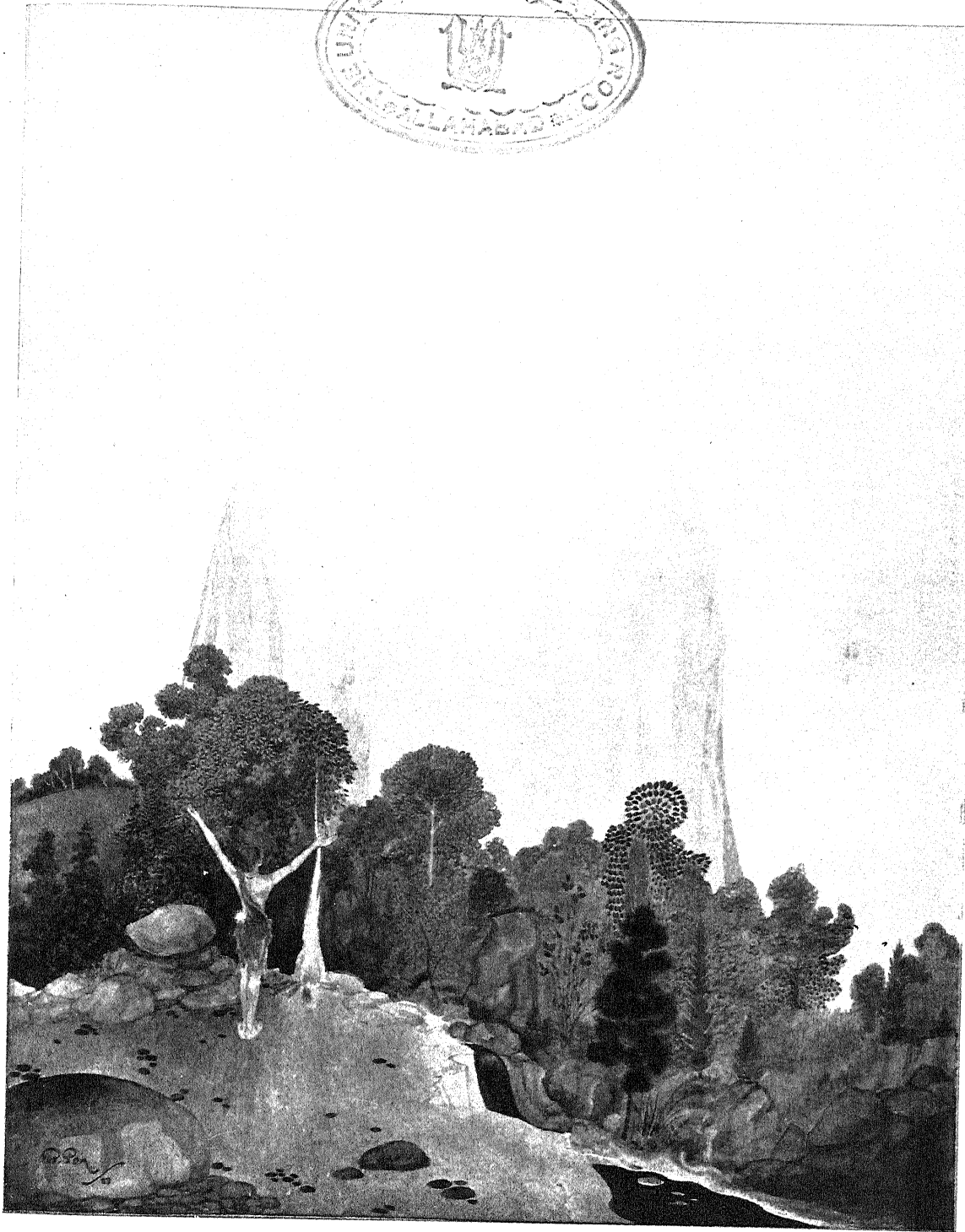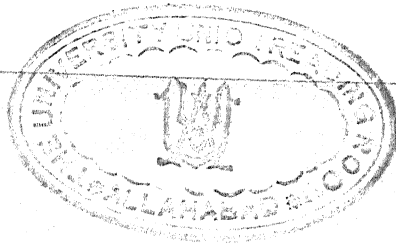
कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

[श्री वीरेश्वर सेन

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग १३, अंक ६] असाढ़ १९९१ :: जून १९३४ [पूर्ण-अंक ७८.

कुणाल-गीत

[कांचनमालाके प्रति]

देखता हूँ मैं अद्भुत आज !
संगिनि, दूर नहीं अब मुझसे वे मेरे अधिराज ।

हेमहर्म्यमें अपने प्रभुको क्या हम बैठ बुलाते थे,
जहाँ हमींको ईश मानकर अनुचर चँवर डुलाते थे,
नहीं, शिल्प-कौशलसे उत्सुक मनको वहाँ भुलाते थे ;
प्रभुके बदले पाते थे बस राजोचित सब साज ।
देखता हूँ मैं अद्भुत आज !

निर्मल जलके तीर उन्हींका आराधन हम करते थे,
किंवा शत तरंग-भंगोंसे अपना मानस भरते थे ?
अन्यमनस्क देखकर हमको प्रभु भी दूर विचरते थे,
पतियाते थे क्या जलचर भी, आती है हा लाज !
देखता हूँ मैं अद्भुत आज !

कुंजोंमें ही अपने प्रभुकी बाट जोहते थे जब हम
उनको भूल कुसुम-वैभव ही देख मोहते थे तब हम ;
एक उन्हींको अन्धभावसे कहाँ टोहते थे कब हम ?
माँकी कृपा कुणाल न भूले, फूले सुजन-समाज ।
देखता हूँ मैं अद्भुत आज !

—मैथिलीशरण गुप्त

राजमहिषी तिष्यरक्षिताके भड़कानेसे अशोकने अपने राजकुमार कुणालको अन्धा करके निकाल दिया था। कुणालकी साध्वी पत्नी कांचन-माला उसकी पथप्रदर्शिका बनकर गाँव-गाँव घूमती थी, और कुणाल लोगोंको संगीत सुनाकर जीविकोपार्जन करता था। इस कवितामें कविने भिखारी कुणालके, जो कभी राजकुमार था, मनके भाव अंकित किये हैं। —सम्पादक

बाबू भगवानदास

श्रीयुत सुन्दरलाल

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

बाबू भगवानदासजीका जन्म माघ कृष्ण अमावस्या संवत १९२५ विक्रमी, १२ जनवरी सन् १८६९, को बनारसमें हुआ था। आपके पिता बाबू माधोदास नगरके एक प्रसिद्ध रईस और ज़मींदार थे। कलकत्तेमें मनोहरदासका कटरा, मनोहरदास-टैंक और कलकत्ता-मैदानके निकट दूर तक फैली हुई गौओंके लिए मुफ्त चरागाह इन्हींके पूर्वज मनोहरदास शाहकी दानशीलताकी यादगार हैं।

. बाबू भगवानदासने अधिकतर बनारस ही में शिक्षा पाई। सन् १८८५ में श्रीयुत विश्वेश्वर प्रसादजीकी पुत्री श्रीमती चमेली देवीके साथ उनका विवाह हुआ। सन् १८८७ में, १८ वर्षकी अल्प आयुमें, उन्होंने विश्वविद्यालयकी एम० ए० की परीक्षा पास की। १८९० में उन्होंने सरकारी नौकरीमें प्रवेश किया, और युक्तप्रान्तके अनेक ज़िलोंमें ९ वर्ष तक पहले तहसीलदार और फिर डिप्टी-कलेक्टरकी हैसियतसे काम करते रहे।

थियोसोफ़िकल सोसाइटी

थियोसोफ़िकल सोसाइटी, जो उसी समयके लगभग नई-नई भारतमें क़ायम हुई थी, हिन्दू-शास्त्रों और हिन्दू-धर्मके अनेक सिद्धान्तोंको आदरकी दृष्टिसे देखती थी। वह इस बातका प्रतिपादन करती थी कि संसारके समस्त धर्मोंके मूल सिद्धान्त एक ही हैं। वह हर मनुष्यको सब धर्मोंके तुलनात्मक अध्ययनकी सलाह देती थी, और देश, जाति, रंग, सम्प्रदाय इत्यादिके भेदोंसे ऊपर उठकर मनुष्यमात्रके भ्रातृत्वका प्रचार करती थी। विद्यार्थी भगवानदासके ऊपर इस सोसाइटीके साहित्य और उसके सिद्धान्तोंका काफ़ी गहरा असर पड़ा। शुरूसे ही वे श्रीमती एनी बेसेन्टके बहुत बड़े प्रशंसकोंमें से थे, और, बाबू भगवानदास ही के शब्दोंमें, वे उन्हें अपनी माताके सदृश समझते थे।

सरकारी मुलाज़िम रहते हुए ही वे थियोसोफ़िकल सोसाइटी और उस सोसाइटी द्वारा स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू-कालेज बनारसके कामोंमें अधिकाधिक भाग लेने लगे। यहाँ तक कि सन् १८९९ में उन्होंने सरकारी नौकरीसे इस्तीफा देकर अपना सारा समय थियोसोफ़िकल सोसाइटी और सेन्ट्रल हिन्दू-कालेजको देना प्रारम्भ किया।

सन १९१४ तक वे सेन्ट्रल हिन्दू-कालेजकी प्रबन्धकारिणी समिति और उसके बोर्ड आफ़् ट्रस्टीज़के अवैतनिक मन्त्री रहे। थियोसोफ़िकल सोसाइटीकी भारतीय शाखाके वे प्रधान मन्त्री थे, और सोसाइटीके अंगरेज़ी मुखपत्र 'थियोसोफ़ी इन इंडिया' का सम्पादन करते थे। थोड़े ही दिनोंमें थियोसोफ़िकल सोसाइटीके अन्दर और उसके बाहर भी देशके बड़ेसे बड़े विद्वानों और दार्शनिकोंमें उनकी गणना होने लगी।

श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा अन्य थियोसोफ़िस्टोंके साथ उनका मतभेद पहले-पहल नये अवतारके विषयमें हुआ। वे किसी भी मनुष्यतनुधारीके इस दावेको आसानीसे स्वीकार करनेके लिए तैयार न हो सके। तभीसे थियोसोफ़िकल सोसाइटीसे उनका सम्बन्ध शिथिल पड़ने लगा। इसके बाद सेन्ट्रल हिन्दू-कालेज बनारसके हिन्दू-विश्वविद्यालयके रूपमें परिवर्तित होनेका समय आया। सन् १९१५ में बाबू भगवानदास उस हिन्दू-यूनिवर्सिटी-कमेटीके एक सदस्य थे, जो हिन्दू-यूनिवर्सिटी-सम्बन्धी नये क़ानूनके विषयमें गवर्नमेंटके साथ बातचीत करनेके लिए नियुक्त हुई थी। 'हिन्दू-यूनिवर्सिटी फाउन्डेशन कमेटी'के वे संयोजक थे। हिन्दू-विश्वविद्यालयकी स्थापनाके बाद वे उसके कोर्ट, उसकी कौंसिल, उसकी सेनेट, उसकी सिंडिकेट तथा उसकी अन्य समितियों और विभागोंके बहुत दिनों तक सदस्य रहे। अन्तको

फिर कुछ सैद्धान्तिक मतभेदोंके कारण उन्होंने विश्वविद्यालयके कोर्टके अतिरिक्त शेष समस्त समितियों और विभागोंकी मेम्बरीसे इस्तीफ़ा दे दिया।

राजनैतिक जीवन

बाबू भगवानदासजीका राजनैतिक जीवन उस समयसे प्रारम्भ होता है, जब कि १९१७ में श्रीमती एनी बेसेन्टको नज़रबन्द किया गया था। इस नज़रबन्दीके ख़िलाफ़ बनारसमें जो पहली सार्वजनिक सभा हुई थी, बाबू भगवानदासजी उसके सभापति थे। सन् १९१९ में वे सहारनपुरकी युक्तप्रान्तीय सामाजिक कानफ़रेंस और सन् १९२० में मुरादाबादकी प्रान्तीय राजनैतिक कानफ़्रेंसके सभापति हुए। इसी तरह कलकत्तेमें वे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति चुने गये, और सन् १९२१ में युक्तप्रान्तकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सन् १९२१ में ही असहयोग-आन्दोलनका प्रारम्भ हुआ। सरकारी तथा सरकार द्वारा स्वीकृत शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंके बहिष्कारका प्रश्न देशके सामने आया। काशीके सुप्रसिद्ध देशभक्त बाबू शिवप्रसाद गुप्तने काशीके अन्दर एक राष्ट्रीय विद्यापीठकी स्थापनाके लिए दस लाख रुपयेके दानका ऐलान किया। महात्मा गांधीके हाथों काशी-विद्यापीठकी नींव रखी गई। बाबू भगवानदासने हिन्दू-विश्वविद्यालयके साथ अपना सम्बन्ध तोड़कर काशी-विद्यापीठकी प्रबन्धकारिणी और उसके बोर्ड आफ़् ट्रस्टीज़का सभापति होना और साथ ही विद्यापीठका कुलपति होना स्वीकार किया। असहयोग-आन्दोलनके सम्बन्धमें ही दिसम्बर सन् १९२१ से लेकर जनवरी सन् १९२२ तक वे राजबन्दी रहे।

स्वराज्यकी परिभाषा

सन् १९२० की नागपुर-कांग्रेसने पहले-पहल 'स्वराज्य'को अपना ध्येय क़रार दिया। उसी समयसे बाबू भगवानदास कांग्रेस और आल इंडिया कांग्रेस कमेटीकी प्रायः प्रत्येक बैठकमें इस बातपर ज़ोर देते रहे कि स्वतन्त्रता-संग्राममें सबको साथ लेने और सफलता प्राप्त करनेके लिए सबसे पहले इस बातकी आवश्यकता है कि 'स्वराज्य'की परिभाषा कर दी जाय, अर्थात् उसका रूप स्थिर कर लिया जाय। कांग्रेसके अन्दर बहुत कम लोग बाबू भगवानदासकी इस रायकी क़द्र करते थे। तथापि सन् १९२३ में स्वर्गीय देशबन्धु दासके साथ मिलकर उन्होंने 'स्वराज्य' की एक स्कीम तैयार की, और उसे प्रकाशित किया।

बाबू भगवानदासकी 'स्वराज्य'-स्कीमको यहाँ विस्तारसे वर्णन करना अनावश्यक है। संक्षेपमें उनके 'स्वराज्य' का मूलमंत्र यह है कि देशका जो 'स्व' देशपर 'राज्य' करे, वह देशका उत्तम 'स्व' अर्थात् 'हायर सेल्फ़' होना चाहिए, निकृष्ट 'स्व' अथवा 'लोअर सेल्फ़' नहीं। वे निर्बाध निर्वाचन अथवा कोरे प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्यके पुजारी नहीं हैं। उनका कहना है कि देशके लिए क़ानून बनाने और उन क़ानूनोंके अनुसार शासन करनेका अधिकार केवल इस प्रकारके वय-प्राप्त अनुभवी और त्यागी विद्वानोंको ही होना चाहिए, जिनके चरित्रकी शुद्धता, जिनकी योग्यता, जिनकी निःस्वार्थता और जिनकी निष्पक्षतामें जनसामान्यको विश्वास हो। विधानके नियमों द्वारा धारा सभाओंके अन्दर तथा राज्यके उच्चतम पदोंपर इस तरहके लोगोंकी नियुक्तिको असंदिग्ध कर देना ही उनकी स्कीमका मुख्य लक्ष्य है।

म्यूनिसिपल बोर्ड

बनारस म्यूनिसिपल बोर्डके समस्त हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य सदस्योंकी संयुक्त प्रार्थनापर अप्रैल सन् १९२३ में बाबू भगवानदासने उस बोर्डका चेयरमैन होना स्वीकार किया। दिसम्बर सन् १९२५ तक वे बोर्डके चेयरमैन रहे। चेयरमैनकी हैसियतसे उनका कार्य बोर्डके मानको बढ़ानेवाला और प्रत्येक पक्ष तथा धर्मके लोगोंके लिए एक समान सन्तोषप्रद था। चेयरमैनकी हैसियतसे जो पत्र उन्होंने समय-समयपर

गवर्नमेन्टको लिखे, उनमें से कुछ ऐसे हैं, जो अपने विषयका स्थायी तथा शिक्षाप्रद साहित्य गिने जा सकते हैं। सरकारी कर्मचारियोंके विरोधके होते हुए भी जिस स्वाधीनताके साथ उन्होंने म्यूनिसिपल बोर्डका कार्य चलाया, वह अत्यन्त सराहनीय था।

बानप्रस्थ

दिसम्बर सन् १९२५ के बादसे बाबू भगवानदास बनारससे २५ मील दूर चुनार नामक स्थानमें गंगाके किनारे अधिकतर एक बानप्रस्थका-सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उनकी पुस्तकें

बाबू भगवानदासकी सबसे अधिक ख्याति उनकी पुस्तकों और उनके सामाजिक तथा दार्शनिक विचारोंके कारण है। अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी साहित्यके वे विद्वान हैं। सस्कृत-साहित्य और दर्शनशास्त्रके उन जैसे विद्वान तो भारत-भरमें उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं। उर्दू और फ़ारसीका भी उन्हें ख़ासा अच्छा ज्ञान है। अंगरेज़ी तथा हिन्दीमें उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से कुछके कई-कई संस्करण हो चुके हैं, और कईके अनेक यूरोपियन भाषाओंमें अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं।

उनकी सबसे पहली पुस्तक 'दि साइन्स आफ़ दि इमोशंस' (भाव-विज्ञान) सन १९१० में प्रकाशित हुई थी। अब तक अंगरेज़ीमें उसके तीन संस्करण हो चुके हैं, और चार अन्य यूरोपीय भाषाओंमें उसके अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। उनकी 'दि साइन्स आफ़ पीस' (अध्यात्म-विद्या) के दो संस्करण हो चुके हैं। 'दि प्रणववाद' तीन जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त उनकी अन्य कतिपय प्रसिद्ध रचनाओंके नाम ये हैं :—'दि साइन्स आफ़ सोशल आर्गेनीज़ेशन' (सामाजिक संगठन-विज्ञान), जिसमें आत्म-विद्याके दृष्टिकोणसे मनुके धर्मशास्त्रकी व्याख्या की गई है। 'दि साइन्स आफ़ रिलिजन' (सनातन वैदिक धर्म), 'सोशल रीकन्सट्रक्शन विद स्पेशल रेफ़रेंस टु इंडियन कंडिशंस' (भारतीय परिस्थितिकी दृष्टिसे समाजका पुन: संगठन), 'श्रीमद्भगवत् गीताका अंगरेज़ी अनुवाद और भाष्य', 'कृष्ण' (जिसमें अवतारवादपर बहस की गई है), 'मिस्टिक एक्सपिरिएन्सेज़' (जिसमें योग वाशिष्ठसे लेकर योग और वेदान्तके अनुभव बयान किये किये गये हैं), 'दि एसेन्शियल यूनिटी आफ़ आल रिलिजन्स' (सब धर्मोंकी मौलिक एकता) इत्यादि।

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त उन्होंने विविध विषयोंपर अनेक छोटी-छोटी पत्रिकाएँ भी अंगरेज़ीमें लिखी हैं, जिन्हें थियोसोफ़िकल सोसाइटी अडयार, मद्रासने प्रकाशित किया है। हिन्दीमें भी उनकी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें मुख्य 'समन्वय', 'कामका आध्यात्मिक तत्त्व' और काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष'का मनोविज्ञान तथा दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी अधिकांश भाग हैं।

क्रियात्मक दृष्टिसे उनकी रचनाओंमें दो सबसे अधिक महत्वकी हैं; एक 'दि एसेन्शियल यूनिटी आफ़ रिलिजन्स' (सब धर्मोंकी मौलिक एकता) और दूसरी 'दि साइन्स आफ़ सोशल आर्गेनीज़ेशन' (मनुकी सामाजिक व्यवस्था)।

सब धर्मोंकी एकता

दिसम्बर सन् १९३० में बनारसमें पहली आल एशिया एजुकेशन कानफ़रेंस हुई थी, जिसमें बाबू भगवानदासने 'दि यूनिटी आफ़ एशियाटिक थॉट' (एशियाके विचारोंकी एकता) पर एक निबन्ध पढ़ा था। इस निबन्ध ही ने बादमें बढ़कर 'दि एसेन्शियल यूनिटी आफ़ आल रिलिजन्स'का रूप धारण किया। इस पुस्तकमें उन्होंने लिखा है कि—"मुझे इस बातका गहरा विश्वास है कि सत्य एक है, और सब जगह एक समान है; और मानव-जातिके जितने बड़े-बड़े हितचिन्तक हुए हैं, उन सबने एक ही सी सचाइयोंका उपदेश दिया है।"

एक दूसरे स्थानपर—"सब धर्मोंके मूलतत्त्व एक ही हैं। सत्य सार्वभौमिक है। वह किसी

एक जाति अथवा एक धर्माचार्यकी सम्पत्ति-विशेष नहीं है। विविध धर्मोंमें जो चीज़ें अनावश्यक अथवा गौण हैं, वे देश, काल और परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु जहाँ तक मौलिक बातोंका सम्बन्ध है, अलग-अलग धर्म-ग्रन्थों और अलग-अलग भाषाओंमें अलग-अलग जातियोंके अलग-अलग महापुरुषों द्वारा परमात्माने एक ही तरहकी मौलिक सचाइयोंका उपदेश दिया है।''

"चैतन्य अर्थात् जीवनकी गंगा अन्तरमें निरन्तर बहती रहती है, जिस किसीको भी प्यास हो, उसमें स्वयं अपना लोटा डुबोकर भर सकता है। एक ही सत्यकी धारा अलग-अलग युगमें अलग-अलग द्रष्टाओं अथवा महापुरुषोंके हृदयोंमें उमड़ती रहती है।''

संस्कृतके धुरन्धर विद्वान होते हुए भी बाबू भगवानदास मुसलिम सूफी साहित्य और सूफी विचारोंके बड़े प्रशंसक हैं। उन्होंने अपनी पूर्वोक्त पुस्तकमें फ़ारसी तथा अरबीके ग्रन्थों, उपनिषदों तथा अन्य हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों, ईसाई धर्म-ग्रन्थों, पारसी धर्म-ग्रन्थों इत्यादिसे अगणित उदाहरण देकर इस बातको साबित करनेका प्रयत्न किया है कि वास्तवमें सब धर्मोंके मौलिक सिद्धान्त एक ही हैं। पुस्तकके अन्तमें उन्होंने जिन कतिपय पद्योंको उद्धृत किया है, वे उनके धार्मिक विचारोंको खासी सुन्दरताके साथ चित्रित करते हैं। वे लिखते हैं—

"फ़क़त तफ़ावत है नाम ही का दरअस्ल सब एक ही है यारो !
जो आबे साफ़ीके मौजमें है, उसीका जलवा हुबाबमें है।''

अर्थात्—ऐ मित्रो ! अन्तर केवल नाम ही का है, वास्तवमें सब एक ही है। जो शुद्ध जल कि लहरके अन्दर है, उसीकी चमक बुलबुलेके अन्दर है।

"शाद बाश ऐ इश्क़ ! खुश सौदा ए-मा !
ऐ दवाए जुमला इल्लत हा ए-मा
ऐ इलाजे नख़वतो नामूस-ए-मा !
ऐ तू अफ़लातूनो जालीनूसे ए-मा !
वेद, अवस्ता, अल्कुरान, इंजील नीज़,
काबा ओ बुतख़ाना ओ आतशकदा,
क़ल्बे मन, मक़्बूल करदा जुमला चीज़,
चूं मरा जुज़ इश्क़ ने दीगर खुदा।''

अर्थात्—'ऐ प्रेम ! ऐ मेरे प्यारे उन्माद ! प्रसन्न रह ! तू ही मेरे समस्त रोगोंकी एकमात्र औषधि है ! तू ही मेरे गर्व और मेरे अभिमानका एकमात्र इलाज है। तू मेरा वैद्य और तू ही दार्शनिक है। मेरे हृदयने वेद, अवस्ता, कुरान, इंजील, काबा, मन्दिर और आतशकदा—सबको अपना लिया है, क्योंकि मेरा इस समय 'प्रेम'के अतिरिक्त और दूसरा धर्म ही नहीं।'

रहन-सहन

बाबू भगवानदासके दैनिक रहन-सहनमें भी हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच यह अभिन्न भाव इस सीमाको पहुँचा हुआ है कि जब कभी कोई अनजान मनुष्य कहीं यात्रामें उनसे उनका नाम पूछ बैठता है, तो वे प्रायः यह उत्तर दिया करते हैं—"मेरे दो नाम हैं; एक भगवानदास, दूसरा अब्दुल क़ादिर। अब्दुल क़ादिरकी हैसियतसे मैंने लम्बी दाढ़ी रख छोड़ी है और भगवानदासकी हैसियतसे सिरपर लम्बे बाल !''

भगवानदास और अब्दुल क़ादिर एक दूसरेके शब्दार्थ हैं।

अपने इन विचारोंके कारण ही बाबू भगवानदासको जाननेवाले समस्त हिन्दू तथा मुसलमान उन्हें एक समान प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं, और दोनों ही उन्हें एक समान अपना विश्वासपात्र मानते हैं।

कानपुर-जाँच-कमेटी

इसीलिए सन् १९३१ वाले कानपुरके भयंकर हिन्दू-मुसलिम दंगेके पश्चात् कराचीकी कांग्रेसने दंगेके कारण इत्यादिकी जाँच करनेके लिए जो कमेटी नियुक्त की थी, बाबू भगवानदास उसके अध्यक्ष चुने गये थे। इस जाँच-कमेटीने जो ६०० पृष्ठ की रिपोर्ट लिखकर वर्किंग कमेटीके सामने पेश की, उसमें इस्लामके भारत

आगमनसे लेकर इस समय तकके हिन्दू-मुसलमानोंके सम्बन्ध और वर्तमान हिन्दू-मुसलिम समस्याकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण इतिहास देते हुए इस समस्याके स्थायी हलके उपाय बयान किये गये हैं। किन्तु रिपोर्टके प्रकाशित होनेके दो दिनके अन्दर ही सरकारने उसे ज़ब्त कर लिया।

वर्ण-व्यवस्था

बाबू भगवानदासजीकी दूसरी मुख्य पुस्तक, जिसका हमने ऊपर ज़िक्र किया है, 'दि साइन्स आफ़ सोशल आर्गेनीज़ेशन' है। इस पुस्तकमें उन्होंने आत्म-विद्याकी दृष्टिसे मनुकी सामाजिक व्यवस्थाकी व्याख्या की है। पुस्तकका मूल विचार यह है कि समाजके संगठनके लिए सबसे सुन्दर व्यवस्था वह वर्ण-व्यवस्था है, जिसका मनुने प्रतिपादन किया है; किन्तु मनुस्मृति तथा वर्णाश्रम-धर्मकी जो व्याख्या बाबू भगवानदासने की है, वह एक मौलिक व्याख्या है। एक स्थानपर वे लिखते हैं—"हिन्दुओंके आजकलके पैतृक जाति-भेदको तोड़कर उसकी जगह एक सच्ची वैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था क़ायम की जाय, जो मनोविज्ञानके नियमोंके अनुकूल हो और जिसमें लोगोंकी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों, उनके स्वभावों और उनके पेशोंके अनुसार उन्हें चार मुख्य वर्गोंमें तक़सीम किया जाय। इस सामाजिक व्यवस्थामें सब लोग शामिल हो सकेंगे और किसीको अपना मज़हब बदलनेकी आवश्यकता न होगी।"

एक दूसरी जगह—"आजकलके निरर्थक जाति-भेदके स्थानपर एक वास्तविक सामाजिक संगठनकी व्यवस्था क़ायम करनी चाहिए। इसका तरीक़ा यह है कि चार वर्णोंको पैतृकताके आधारपर क़ायम करनेके बजाय उन्हें व्यक्तियोंके स्वभावों, उनके पेशों और उनकी आन्तरिक प्रवृत्तियोंके अनुसार चार अलग-अलग वर्णोंमें तक़सीम किया जाय। मैं समझता हूँ, अति-प्राचीन समयमें भी वर्ण-व्यवस्थाका आधार यही था। चार वर्ण फिरसे इस प्रकार बनने चाहिए :—

(१) विद्वान लोग, जो विद्योपार्जनसे सम्बन्ध रखनेवाले पेशोंके उपयुक्त हों; (२) कर्मप्रधान लोग, जो शासन इत्यादिका कार्य ठीक चला सकें; (३) वे लोग, जिनमें धनोपार्जनकी इच्छा मुख्य हो और जो धन पैदा करनेवाले और धनका प्रबन्ध करनेवाले पेशोंके योग्य हों और (४) वे लोग, जिनका मानसिक विकास ऊपरके लोगोंकी अपेक्षा कम है, जो परिश्रमी हों, किन्तु जो शिक्षा प्राप्त करनेके अयोग्य हों, जो केवल छोटे-छोटे कामोंमें ऊपरकी तीनों श्रेणियोंकी सहायता कर सकें। इन चार श्रेणियोंके लोगोंको अच्छे कामके लिए उनकी रुचिके अनुसार चार ही प्रकारके पारितोषिक मिलने चाहिए। अर्थात् पहली श्रेणीको मान, दूसरीको शक्ति, तीसरीको धन-सम्पत्ति और चौथीको मनोरंजनकी सामग्री। जीविकाकी तौरपर भी पहली श्रेणीके लोगोंको सरकार अथवा जनताकी ओरसे गुज़ारेके लिए थोड़ी-बहुत दक्षिणा; दूसरीको लगान, मालगुज़ारी और तनख़ाहें; तीसरीको उद्योग-धन्धों और व्यापारके लाभ और चौथीको पूरी-पूरी मज़दूरी मिलनी चाहिए। इस प्रकार हर व्यक्ति समाजके अन्दर अपना स्थान प्राप्त कर सकेगा। हरएककी आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी और अच्छे कामोंके लिए सबको काफ़ी प्रोत्साहन मिलेगा।

"यदि आजकलके तर्कशून्य एकतानाशक और फूट बढ़ानेवाले जाति-भेदोंके स्थानपर इस तरहकी एक तर्कयुक्त सामाजिक व्यवस्था क़ायम की जाय, जिसमें चारों वर्ग एक दूसरेपर निर्भर और एक दूसरेके लिए सहायक हों, तो उस व्यवस्थामें मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, हिन्दू, बौद्ध जैन, सिख आदि बिना किसी प्रकार अपने धर्मको बदले शामिल हो सकेंगे।

"स्वभावत: इस तरहकी व्यवस्थामें खान-पान और विवाह-सम्बन्धके लिए लोग बजाय नाममात्रकी जातियोंको देखनेके अपने समान स्वभाव, समान रुचि, समान हित और समान प्रवृत्तियोंके लोगोंकी खोज करेंगे।"

हमने ये लम्बे उद्धरण बाबू भगवानदासके शब्दोंमें इसलिए देनेका प्रयत्न किया है, ताकि पाठकोंको उनके विचार समझनेमें आसानी हो।

धार्मिक शिक्षा

शिक्षाके सम्बन्धमें भी बाबू भगवानदासजीकी एक विशेष तजवीज़ है, वह यह कि छोटी बड़ी कक्षाओंके लिए अलग-अलग इस तरहकी पाठ्य पुस्तकें तैयार की जायँ, जिनमें विविध धर्मोंके ग्रन्थोंसे चुन-चुनकर समानार्थी वाक्य अथवा मिलते-जुलते उद्धरण बराबर-बराबर दिये जायँ, और इस तरहकी पुस्तकें सब स्कूलों तथा कालेजोंमें सब विद्यार्थियोंको पढ़ाई जायँ, ताकि सबमें उदारता और एक दूसरेकी ओर प्रेम पैदा हो सके।

डाक्टरकी उपाधि

दिसम्बर सन् १९२८ ई० में बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालयकी सेनेटने बाबू भगवानदासकी असाधारण विद्वताका मान करनेके लिए उन्हें 'डाक्टर आफ़ लेटर्स'की उपाधि प्रदान की।

हिन्दू मुसलिम ऐक्य

अन्तमें हम बाबू भगवानदासजीके कुछ अत्यन्त प्रिय पद्योंके साथ इस संक्षिप्त जीवन-वृतान्तको समाप्त करते हैं—विशेषकर इसलिए कि ये तीन पद्य हमारी रायमें, उनकी हार्दिक भावनाओंके, सबसे सुन्दर द्योतक हैं। वह पद्य यह हैं—

१—"तुम राम कहो, वह रहीम कहें,
दोनोंकी ग़रज़ अल्लाहसे है;
तुम दीन कहो, वह धर्म कहें,
मंशा तो उसीकी राहसे है।
तुम इश्क कहो, वह प्रेम कहें,
मतलब तो उसीकी चाहसे है;
वह योगी हों, तुम सालिक[1] हो,
मक़सूद[2] दिले आगाहसे[3] है।
क्यों लड़ता है मूरख बन्दे!
यह तेरी खामखयाली है।
है पेड़की जड़ तो एक वही
हर मज़हब एक-एक डाली है।

२—बनवाओ शिवाला या मसजिद
है ईंट वही, चूना है वही,
मेमार[4] वही, मज़दूर वही,
मिट्टी है वही, गारा है वही।
तकबीरका[5] जो कुछ मतलब है,
नाकूसका[6] भी मंशा है वही,
तुम जिनको नमाज़ें कहते हो,
हिन्दूके लिए पूजा है वही।
फिर लड़नेसे क्या हासिल है,
ज़ी-फ़हम[7] हो तुम नादान नहीं।
जो भाई पै दौड़ें गुर्राकर
वह हो सकते इनसान नहीं।

३—क्या क़त्ल व ग़ारत खूँरेज़ी,
तारीफ़ यही ईमानकी है?
क्या आपसमें लड़कर मरना,
तालीम यही कुरान की है?
इन्साफ करो तफ़सीर[8] यही
क्या वेदोंके फ़रमानकी है?
क्या सचमुच यह खूँरेज़ी ही
आला खसलत इन्सान की है?
तुम ऐसे बुरे ऐमालपर[10] अपने
कुछ तो खुदासे शर्म करो,
पत्थर जो बना रक्खा है 'सईद'
इस दिलको ज़रा तो नर्म करो।"

[बाबू भगवानदासका चित्र अन्यत्र देखिये। सं०]

१—'फ़ारसीमें सलूक' योगको और 'सालिक' योगीको कहते हैं। अरब और ईरानके मुसलमान सूफ़ियोंमें योग, प्राणायाम इत्यादिके तरीक़े ठीक वही बरते जाते थे, जो भारतमें; २—उद्देश्य; ३—ज्ञानी; ४—राज; ५—अल्लाहो अकबर; ६—शंख; ७—समझदार; ८—व्याख्या; ९—उच्च प्रकृति; १० कर्मों।

नोट—मेरे परममित्र श्री नीलकंठरावजी देशमुख वर्धा-निवासीने बाबू भगवानदासजीकी पुस्तक 'समन्वय'का मराठी भाषामें अनुवाद किया है। उनके आज्ञानुसार मैंने यह संक्षिप्त परिचय उनकी मराठी पुस्तकके लिए लिखा है। यही 'विशाल भारत'के पाठकोंकी भेंट है। मैं बाबू भगवानदासजीके ज्येष्ठ पुत्र सुप्रसिद्ध देशभक्त बाबू श्रीप्रकाशजीका ऋणी हूँ, जिन्होंने इसके लिए मुझे आवश्यक सामग्री प्रदान की। —लेखक।

मसूरीसे शिमला

श्री दीनदयालु शास्त्री

जुब्बलसे कोटखाई होकर शिमलेको मार्ग जाता है। इस रास्तेसे शिमला ५५ मील है। जुब्बलसे चले, तो पाँच मील चढ़ाईका सामना करना पड़ा। रास्ता जंगलसे होकर है। नीचे विषकलटी नदी बह रही है। यह नदी छोटी है, साथ ही इसमें शिलाएँ भी अधिक हैं। चीड़ और देवदारके स्लीपर इसीके द्वारा बहाकर नीचे जमुनामें भेजे जाते हैं। सारी नदीमें खम्भोंपर लकड़ीकी एक बहुत लम्बी कृत्रिम नहर बनाई गई है। इसकी लम्बाई दस मीलसे अधिक ही होगी। इसमें नदीका पानी आता है। स्लीपर इसी कृत्रिम जलधारा द्वारा पाबर नदीमें पहुँचते हैं। पाबर बड़ी नदी है, उसमें रुकावट नहीं होती। उन दिनों वर्षाके कारण यह लकड़ीकी नहर टूट गई थी, इसलिए नदीमें यत्र तत्र हज़ारोंकी संख्यामें स्लीपर अटके पड़े थे, और उनके प्रवाहका प्रबन्ध हो रहा था।

पाँच मील चलकर शिखरपर पहुँचे। यहाँसे एक मार्ग बागीको जाता है। बागी बुशायर रियासतमें है, और खूब ठंडी जगह है। हमने इस शिखरपर आकर कोटखाईके रास्तेको जानबूझकर छोड़ दिया और बागीकी राह ली। इसके लिए आधमील दूर और एक दूसरे गिरिशिखरपर पहुँचना होता है। यह स्थान नौ हज़ार फीटसे अधिक ऊँचा है। देवदारका जंगल, शीतल छाया और साथ ही पुन: उसी फुलवाड़ीकी रंगत! मन देखकर प्रसन्न हो गया। रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे। शिखरपर पहुँचे, तो बड़ा दिव्य दृश्य दिखाई दिया। आकाश साफ़ था, दूर तक बादल दिखाई न देते थे। जहाँ हम खड़े थे, उससे काफ़ी दूरपर, हमारे सामने, हिमालय अपने असली रूपमें दमक रहा था। पहाड़की उस शृंखलापर हिम-ही-हिम लदा था। उसपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणें उसकी कान्तिको उज्ज्वल कर रही थीं। वह सतत पड़ा रहनेवाला हिम इस समय तेज बरसा रहा था। ऐसा मालूम होता था कि गिरिराजने समस्त मणि-मुक्ता अपने मुकुटमें जड़ लिये हैं। थोड़ी देरमें सूर्य और चमका। हिमकी कान्ति और बढ़ गई। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो जगह-जगह शुद्ध पारेकी नदियाँ बहने लगीं। उस समय शिखरसे दिखाई देनेवाली वह गिरिशृंखला सैकड़ों मील चली गई थी। उसमें जगह-जगहपर चोटियाँ उभर रही थीं। हरएक शिखर ऐसे ही शुभ्र हिमसे मँढ़ा था। राजाओंके लाखोंके ताज उन मुकुटोंकी क्या बराबरी करेंगे, जो इन शिखरोंने प्रकृतिसे सहज ही पाये हैं। अनन्तकालसे हिमालय इसी रूपमें विद्यमान है। आज हिमालयको अपने रूपमें देखकर हम लोग आनन्दोल्लासमें विभोर हो गये। सच है, हिमालय हिमालय ही है, और वह भारतकी सबसे बड़ी विभूति है।

तीन-चार मील तक हिमालयके इसी तरह दर्शन होते रहे। फूलोंका तो कहना क्या? हमारा राजपथ सुन्दर सुषमा लिये उन पुष्पोंसे पटा हुआ था। आगे, पीछे, दाएँ, बाएँ—सब तरफ़ फूलोंकी बहार थी। एक ओर हिमकी सफेदी और दूसरी ओर फूलोंका रंगीन संसार—अजीब समा था। स्वर्गका दृश्य शायद ऐसा ही होगा। एकाएक नील पुष्पोंकी बहार आ गई। फूलमें छ: पत्तियाँ थीं। चारों ओरसे वह गाढ़े नील वर्णका था। मध्यमें वसन्ती रंगका चक्र था, जिसमें गुलाबी चित्तियाँ पड़ी हुई थीं। इस सुन्दर पुष्पावलीके निकटसे गुज़रे। हममें से एकने उस क्यारीमें से एक फूल तोड़ लिया। वह फूल अब भी उसी सरलतासे हँस रहा था। हमारे साथीने अपने निर्दय हाथोंसे उसे उसकी डंडीसे तोड़ लिया। हाथमें आकर फिर उसमें वह सरलता न रही। वह लजाकर कुम्हला गया। शायद तभी हमारे भगत धारेश्वरने कहा था—सौन्दर्य आँखका विषय है। उसे देखना चाहिए। स्पर्शसे तो उसका सार ही जाता रहता है।

सीपीके मेलेमें पहाड़ी स्त्रियोंका जमघट

आजका सारा मार्ग ही बहुत सुहावना था। पेड़ समाप्त हो गये। ख़ूब लम्बा-चौड़ा घासका मैदान आ गया। यह दूब मीलों चली गई है। कनेहीका देशी राज्य पीछे छूट गया था। रास्ता बुशायरमें से होकर जा रहा था। पेड़ न होनेसे मीलों रास्ता दिखाई देता था। उस सुकोमल घासमें फुलवाड़ी अभी भी बिछी थी। सामने पहाड़ोंकी हरी श्रेणी दिखाई दे रही है, जिसमें से होकर शिमलेसे तिब्बतको व्यापारिक पथ जाता है। इस हरी श्रेणीमें ही हमारा आजका पड़ाव बागी सन्निहित है। इसी पहाड़ी श्रेणीके पीछे पंजाबका प्रसिद्ध दरिया सतलज अपनी शानसे बहा चला जा रहा है। तिब्बतका मार्ग इसी घाटीमें से होकर गया है। दाएँ हाथपर दूरपर सतलजकी विशाल धारा दीख पड़ती थी। मालूम होता था कि अभी एक घंटेमें पहुँच जायँगे, किन्तु चलने लगे, तो तीन दिनसे कम न लगे! पहाड़ी यात्राका यही हाल है।

उस चौड़े घासके मैदानमें आबादीके कोई निशान न थे। केवल एक गूजर-परिवार झोंपड़ा डाले पड़ा था। पंजाबके जेहलम, जम्मू तथा गुजरातके गूजर बड़े मेहनती होते हैं। वे पीढ़ियोंसे गंगा-जमुनाकी घाटियोंमें रहते हैं, और दूध-दही बेचकर अपना निर्वाह करते हैं। वे गरमीके मौसममें ऊँचे पहाड़पर चले जाते हैं। यह परिवार भी देहरादून ज़िलेसे यहाँ आया हुआ था। झोंपड़ेपर पहुँचकर हमने एक गूजरसे मट्ठेकी याचना की। वह हँसा, बोला—"मट्ठा तो बहुत है, किन्तु तुम हो कौन?" हमने कहा—"ब्राह्मण।" वह अचरजसे देख रहा था। हँसता रहा, फिर कन्याको बुलाकर कहा—"इन्हें मट्ठा पिला दो।" वह तथा उसका दूसरा साथी विस्मयमें थे। आज यह हो क्या गया है? ये हिन्दू लोग हम मुसलमान गूजरोंका मट्ठा पियेंगे! हम लोगोंने उसका कोई ख़याल नहीं किया। गूजर-कन्याने प्रेम-भावसे अपने कटोरेमें मट्ठा पिलाया, और हमने उसे अमृत समझकर पिया और वहाँसे बिदा ली।

घासका मैदान समाप्त हो गया। पुनः जंगलमें प्रवेश किया। यह जंगल मीलों चला गया है। छाया शीतल तथा ख़ूब घनी है। जलधाराओंने सोनेमें सुहागेका काम किया है। सुहावने जंगलमें मीलों चले जाइये, थकानका अनुभव ही नहीं होगा। इतना सुन्दर तथा घना होनेपर भी इसमें कीमती लकड़ी कम है। बहुतसे यूरोपियन यात्रियोंने इस जंगलकी ख़ूब प्रशंसा की है और दुनियाके जंगलोंमें इसे अन्यतम माना है। साथ ही उनकी
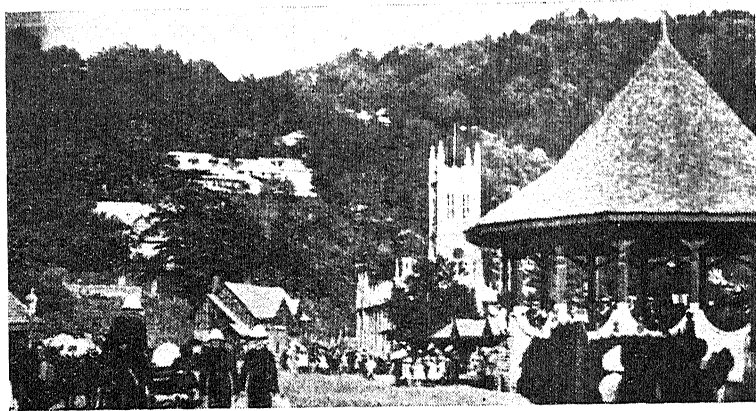
शिमलेका बैन्ड स्टैन्ड

रायमें यह मार्ग भी सुन्दर रास्तोंमें से एक है। जंगलके झुरमुटमें हमें एक रास्ता और दिखाई दिया—चौड़ा तथा सीधा सपाट। इसीका नाम 'हिन्दुस्तान-तिब्बत-राजपथ' है। यही रास्ता बुशायर होकर तिब्बत तक चला गया है। इस संगमसे बागी केवल दो मील है।

जुब्बलसे बागी २० मील और समुद्रतलसे ८८०० फीट ऊँचा है। ठंड ख़ूब पड़ती है। बुशायर रियासतमें है। यहाँ डाकबँगला है। अब तक जंगलातके महकमेके बँगलोंके दर्शन होते थे। यह सर्वप्रथम डाकबँगला मिला। डाकखानेके साथ दो-चार दूकानें भी हैं। रियासतके अफसरोंके लिए दो-चार बँगले और भी हैं। सेब तथा बिहीके छोटे-छोटे बग़ीचे भी यहाँ हैं। अँधेरा होनेसे पहले ही हम बागी पहुँच गये। तहसीलदारने ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया। रात ठंडने काफी सताया।

सबेरे कोटगढ़को रवाना हुए। बागीसे कोटगढ़ १२ मील है। उसी सुन्दर जंगलमें से मार्ग जाता है। आज भी आकाश साफ़ था। जंगलके झुरमुटसे हिमालयका सुन्दर रूप दिखलाई दे रहा था। उत्तरमें आ जानेसे हम इसके अधिक निकट आ गये थे, अतः उसका रूप अधिक निखर गया था। पाँच मील जानेके बाद दो रास्ते हो जाते हैं। दायाँ कोटगढ़को जाता है। हम इसी रास्तेसे कोटगढ़की ओर निकल गये। इस रास्तेके आसपास जंगल कम है। खेतोंसे होकर रास्ता जाता है। अब तक बुशायर रियासत थी। यहाँ रियासतकी सीमासे निकल आये और अंगरेज़ी इलाकेमें दाख़िल हुए। कोटगढ़ शिमला ज़िलेकी तहसील है। यह भाग बहुत अधिक बसा हुआ है। रियासतोंकी सताई प्रजा यहीं आश्रय लेती है। गरमियोंमें मैदानके लोग भी आ जाते हैं। कोटगढ़ मुख्य सड़कसे दो मील नीचे रह जाता है। अच्छा बड़ा गाँव है। हमें थानाधार जाना था। यह स्थान मुख्य सड़कपर ही है।

थानाधार, बागी और नारकण्डा पर्वतमालाका वह अन्तिम तथा ऊँचा सिरा है, जो उत्तरकी ओर सतलजकी घाटीमें आगे बढ़ गया है। इस स्थानसे सतलजका दृश्य बहुत अच्छा दिखाई देता है। थानाधारमें ही मि० स्टोक्स महोदय निवास करते हैं। आप अमेरिकन सज्जन हैं। असहयोग-आन्दोलनमें आपने भारतीय नागरिकता स्वीकार की थी। आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण आपको जेल भी जाना पड़ा था। आजकल आप एकान्त अधिक पसन्द करते हैं। आपके तनपर शुद्ध खादी बहुत सजती है। घरमें भी खादीका ही साम्राज्य है। आपकी सन्तानोंके नाम भी भारतीय हैं। एक दिवंगत बालक ताराचन्दके
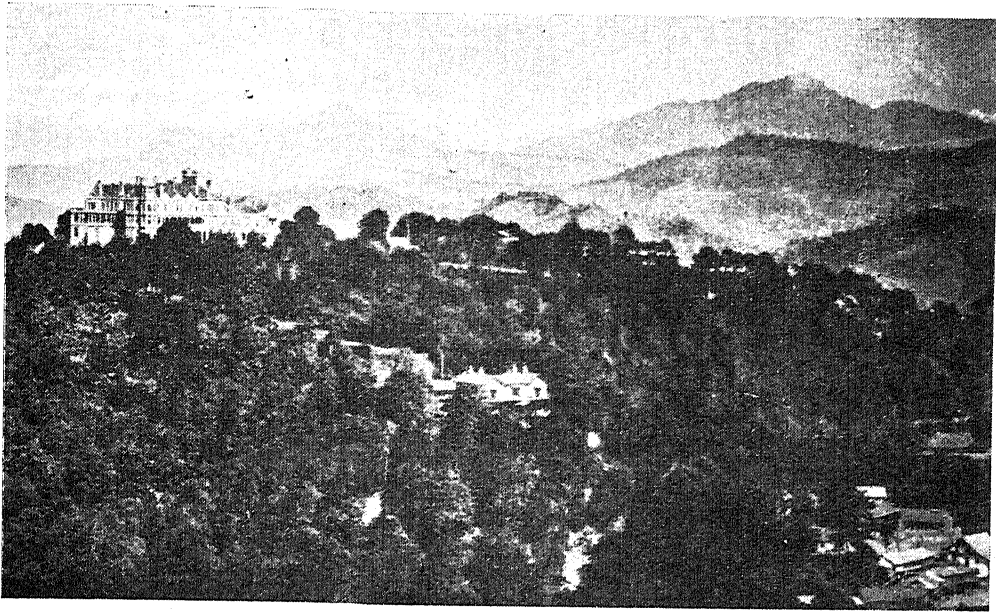
शिमलेमें वायसरायकी कोठी और हिमालयका दृश्य

नामसे उन्होंने 'तारा मिडिल स्कूल' की स्थापना की है, जिसमें प्रारम्भसे अन्त तक हिन्दी-माध्यमके द्वारा शिक्षा दी जाती है। पंजाबके इनेगिने हिन्दी-स्कूलोंमें इसकी भी गणना होनी चाहिए। सन् १९३२ में सनातन-विधिसे आपने हिन्दू-धर्मकी दीक्षा ली है। अब आप ठाकुर सत्यानन्दके नामसे प्रसिद्ध हैं। कोटगढ़के राजपूतोंने आपका साथ दिया, इसलिए आप उसी बिरादरीमें शामिल हैं।

थानाधारमें हम स्टोक्स महोदयके ही अतिथि रहे। उनका गुरुकुलसे पुराना स्नेह है, और स्वामीजीके समयमें कई बार वे गुरुकुलमें रह आये हैं। इन दिनों वे पथरी रोगसे पीड़ित थे। जब हम मिलनेके लिए उनके मकानपर पहुँचे, तो उन्होंने बाहर आकर हमारा स्वागत किया। बिस्तरपर लेटे-लेटे उन्होंने वार्तालाप किया। उनका पुस्तकालय बहुत बड़ा है। पुस्तकोंका चुनाव बहुत रोचक है। हिन्दीके वे कट्टर हिमायती हैं। पुस्तकालयमें दाख़िल होनेपर सर्वप्रथम हमारी दृष्टि हिन्दीमें लिखे इस पद्यपर पड़ी—

"होइ विवेक मोहभ्रम भागा।
अस विचारि नहिं कीजिय रोषू।
बादि काहु नहिं दीजिय दोषू।
मोह-निशा सब सोवनि हारा।
देखहि स्वप्न अनेक प्रकारा।"

ऐसे ही दो-एक पद्य और देखनेमें आये। एक अमेरिकनमें इतनी भारतीयता घर कर गई है, हमारे लिए यह आह्लादका विषय था। थानाधारमें दो दिन तक उनका सत्संग रहा।

शामके समय घूमनेके लिए चले। थानाधारसे सड़क रामपुरको जाती है। रास्तेमें सतलज नदी है। थानाधारसे सतलज पाँच मील है। आध मील जानेपर सतलजकी सुन्दर धारा दिखाई दी। दो पहाड़ोंके मध्यमें साँपकी तरह फुफकार मारती हुई वेगवती धारा बह रही है; किन्तु यहाँसे चार मील ऊपरसे उसका प्रवाह कितना शान्त मालूम होता है। उसका वक्रगतिसे घूमना भी खूब है। मीलों उसका प्रवाह दिखाई दे रहा है। मानसरोवरमें भी इसके दर्शन
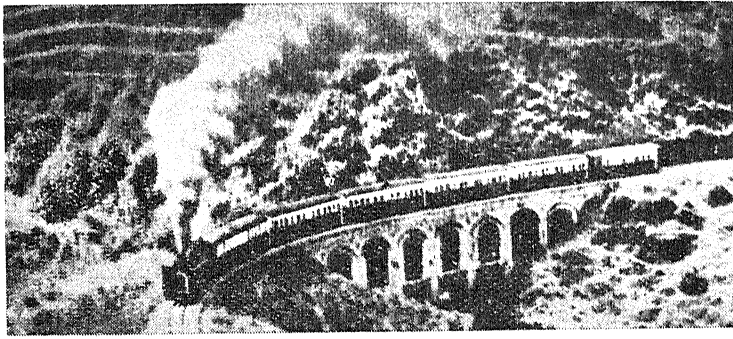
शिमलेकी रेल

किये थे। मानससे विदा लेते समय इसका फाट केवल दो गज़ था। यहाँ यह इतनी विशाल हो गई है, यह हिमालयकी ही कृपा है। सतलज पार हिमालयकी हिमश्रेणी मीलों फैली हुई है। कांगड़ा-कुल्लुसे लेकर गढ़वाल तकके हिमावृत गिरिशिखर देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

कोटगढ़ शिक्षाका बड़ा केन्द्र है। मिशनकी ओरसे एक मिडिल स्कूल है। आर्यसमाजका भी एक मिडिल स्कूल यहाँ है। इस स्कूलमें भी शिक्षाका माध्यम हिन्दी ही है। हेडमास्टर रामदयालजी सरल स्वभावके सज्जन हैं। मिशन स्कूलमें भी अब हिन्दी हो चली है। केवल ज़िला बोर्डके स्कूलोंमें उर्दूका दौरदौरा है। उनका भी बस नहीं चलता। पंजाब-सरकार उर्दूकी हिमायती है। इन स्कूलोंको उसीका हुक्म बजाना होता है। कोटगढ़में एक हिन्दी-प्रचारिणी सभा भी है, जिसकी चलती-फिरती लाइब्रेरी द्वारा आसपासके गाँवोंमें हिन्दी-प्रचारमें अच्छी सहायता मिल रही है। हिन्दी-प्रेमी चाहें, तो इन पहाड़ोंमें हिन्दीका स्थायी साम्राज्य हो सकता है।

शिमलेके ज़िलेमें छोटी-छोटी देशी रियासतें बहुत हैं, इसका उल्लेख किया जा चुका है। इन रियासतोंके शासकोंको राणा कहते हैं। क्योंथल, जुब्बल आदि दो-चार बड़ी रियासतोंके शासक राजा कहलाते हैं। यह सब छोटी-छोटी रियासतें शिमलेके डिप्टी-कमिशनरकी देखरेखमें हैं। आज एक ऐसी ही रियासतके दर्शन किये। रियासतका नाम डुलाथ है। थानाधारसे दो मीलपर डुलाथ छोटा-सा गाँव है। एक मामूली मकान ही राणा साहबका महल है। इस गाँवके अतिरिक्त दो और गाँव इनके मातहत हैं। सालाना आमदनी छै सौ रुपयेके भीतर है, जिसमें से लगभग आधी रक़म रामपुर बुशायर तथा अंगरेज़ सरकारको बतौर नज़रानेके देनी होती है। शेष आयमें राज्यका शासन तथा निजका भरण-पोषण करना होता है। पुलिसमें एक आदमी है, जिसे एक रुपया मासिक भत्ता मिलता है। ज़रूरत पड़नेपर वह एक-डेढ़ घंटेमें सारे राज्यका गश्त लगा आता है। मालगुज़ारीके बन्दोबस्तके लिए एक पटवारी नियत है। इसे भी भत्तेके तौरपर एक-दो रुपये मिल जाते हैं। आय कम सही, है तो ख़ुद मुख़्तयारी-सी। फाँसी तकके अधिकार हैं। तीन गाँवोंमें भी राणा साहबका शासन चल रहा है। आपके भाई-बन्द पटियाला रियासतमें नौकर हैं। ऐसी ही रियासतोंके कारण भारतकी रियासतोंकी संख्या सात सौके लगभग है, और नये विधानके अनुसार भारतीय फेडरेशनमें इनके प्रतिनिधि भी पहुँचेंगे ही!

कोटगढ़के आसपास सेबोंकी बहुतायत है। यहाँका सेब अच्छा होता है, और शिमले भेजा जाता है। जिससे मिलने जाते, सेबोंसे ही हमारा स्वागत

करता। मैदानमें इन्हीं सेबोंके दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। अब तक हमारी यात्राका पूर्वार्द्ध था। हम आगे ही आगे बढ़ रहे थे। मसूरीसे कोटगढ़ तक हम १४० मील चल चुके थे। कोटगढ़से उत्तरार्द्ध शुरू हुआ। कोटगढ़से शिमला ५० मील है।

कोटगढ़से नारकण्डा १० मील है। ५ मील मामूली चढ़ाईका रास्ता है। आगे ५ मील उसी बागीके जंगलमें से रास्ता जाता है। हरेभरे रास्तेमें झरनोंका आनन्द है। नारकण्डा दो ऊँचे पहाड़ोंके बीच घासके मैदानपर बसा है। समुद्रतलसे यह स्थान ९,००० फ़ीटसे अधिक ऊँचा है। एक ऊँची चोटी नारकण्डेके ऊपर सिर निकाले खड़ी है। इन पहाड़ोंपर जंगलकी अधिकता है। यह सब जंगल कुम्हारसेन रियासतमें हैं। शिमलेसे नारकण्डे तक सड़क अच्छी है। प्राइवेट मोटरें आ सकती हैं। नारकण्डेमें डाक, तार, होटल आदि सभ्यताके सब सामान मौजूद हैं। नारकण्डेका सूर्योदय मशहूर है; किन्तु रात हम यहाँ नहीं ठहरे, अतः सूर्योदय देखनेका सौभाग्य न मिल सका।

नारकण्डेसे कडियाली ६ मील है। मोटरकी सड़क होनेसे रास्ता खूब घूम कर गया है। पहाड़के इस सिरेसे उस सिरे तक रास्ता दिखाई दे रहा है। सोचा, अभी पहुँच जायँगे। चले तो उस एक ही मोड़में तीन-चार मील मार्ग तय हो गया। हाँ, चीड़का जंगल रहनेसे रास्ता सुहावना अवश्य है। इस पहाड़के सब झरने गिरि नदीमें जा मिलते हैं। शिमला शैलका अधिकांश जल इसी गिरि नदीमें पहुँचता है। यह गिरि नदी नाहन रियासतसे होती हुई चूहड़पुरके निकट जमुना नदीमें जा मिलती है। कडियाली छोटा-सा गाँव है। यहाँ जंगलका बहुत-सा हिस्सा काटकर सेबका बगीचा लगाया गया है। इसका मालिक एक आइरिश है, जो आयरलैण्डमें रहता है। बगीचेके प्रबन्धके लिए एक अंगरेज़ मैनेजर नियत है। बगीचा कई बीघोंमें है। सेबका पेड़ छोटा होता है--अमरूदके पेड़से भी छोटा। यह छोटे पेड़ सैंकड़ों लाल गुलाबी सेबोंसे लदे पड़े थे। फलोंके बोझसे शाखाएँ ज़मीनसे आ लगती थीं। सैंकड़ों क़िस्मके सेब थे। एकसे एक निराला। इस बगीचेसे हर साल हज़ारों रुपयेकी आमदनी है।

हम रातके समय रुण्डमुण्ड पहाड़पर बसे शलारू गाँवमें ठहरे थे। शलारूसे मतियाना ४ मील है। मतियाना क्योंथल राज्यमें बड़ा गाँव है। यहाँ डाकबँगला है और दो-चार छोटी-मोटी दूकानें हैं।

मतियानेसे थ्योग तक फिर हरेभरे पहाड़की छायामें रास्ता जाता है। इधर भी चीड़ अधिक है। थ्योग छोटी रियासत है। राणा साहबका महल बाज़ारसे आध मील बाहर है। थ्योगमें बाज़ार अच्छा है। पचास-साठसे अधिक दूकानें हैं। आर्यसमाजकी ओरसे डी० ए० वी० स्कूल है। इसमें ६० से अधिक लड़के पढ़ते हैं। अब सनातनी लोग कन्या-पाठशाला बनवा रहे हैं। इधरके पहाड़ोंमें मांस-मदिराका प्रचार अधिक है। यात्रामें हम लोग स्वयंपाकी रहे, इसलिए कोई कष्ट नहीं हुआ। यहाँ देर अधिक हो जानेसे बाज़ारमें ही खाना खाया। तीन-चार होटल थे। सबके यहाँ बलिका प्रसाद था। बड़ी हिचकिचाहटके साथ उदर-पूर्ति करनी पड़ी। जुब्बलसे शिमलेका जो सीधा रास्ता हमने छोड़ दिया था, वह मार्ग कोटखाई होकर थ्योगमें ही आ मिलता है।

थ्योगसे फागु ६ मील है। ऊँचा स्थान है। ठंड अधिक पड़ती है। यहाँ भी डाकबँगला तथा छोटा-सा बाज़ार है। रात फागु ठहरे। एक-दो साथियोंको आज लम्बा सफ़र करनेकी धुन थी। वे सीधे शिमले चले गये। ८ सितम्बरको प्रातःकाल फागुसे रवाना हुए। यहाँसे शिमला १२ मील है। फागुके निकट ही चैरकामका स्थान है, जहाँसे शिमलेके लिए पानी एकत्र किया जाता है। बिजली निकालनेका स्थान भी इधर ही है। फागुसे चार मीलपर कुफ़री खासी बड़ी जगह है। यह स्थान कोटी रियासतमें है।

इसके निकट ही गरमियोंमें बड़ा-भारी मेला लगता है। दूर-दूरसे पहाड़ी लोग एकत्र होते हैं। ख़ूब नाच-गान होता है। इस मेलेको सीपीका मेला कहते हैं। मेलेका आनन्द लेनेके लिए शिमलेसे भी हज़ारोंकी संख्यामें लोग यहाँ आते है। कुफ़रीके पास ही छोटीसी छावनी भी है।

छठें मीलपर दो रास्ते हो जाते हैं। उतारका रास्ता शिमले चला जाता है। मीलका एकदम उतार है। यहाँसे मशोबरा डेढ़ मील है। मशोबरा शिमलेका मोहल्ला-सा ही है। शिमले तक लगातार बस्ती चली गई है। मशोब्रेमें वायसरायका बँगला बना हुआ है। अधिक गरमी होनेपर वायसराय यहाँ चले आते हैं। स्थान एकान्त तथा रमणीक है। तीन मील उतरनेके बाद एक रुण्डमुण्ड टीला मिलता है। इसी टीलेको काटकर बोगदा (Tunnel) तैयार की गई है। शिमलेकी सड़क इसी बोगदेमें से होकर गई है। बोगदेसे पहलेका पहाड़ रुण्डमुण्ड है। इस स्थानको रमणीक बनानेके लिए सड़कके दोनों ओर फूलोंके छोटे-छोटे पौधे लगाये गये हैं। प्रकृतिकी क्रीड़ास्थली उस पर्वतमालामें सैर करनेवाले हम यात्रियोंको यह कृत्रिम पौध नहीं जँची। जंगलोंसे घिरे पहाड़ोंमें कहीं छोटा-मोटा रुण्डमुण्ड टीला भी मनोरम ही मालूम देता है। उसका दूर्वामें मण्डित वक्षस्थल तो विहारकी जगह है। ऐसी जगह मनुष्यका रचा शृंगार क्या शोभा देगा ?

संजौली

बोगदेसे निकले और शिमलेके दर्शन हुए। एक छोटा ; किन्तु साफ़-सुथरा बाज़ार नज़र आया। बाबू लोग कोट-पैन्ट डाटे दफ्तरोंमें जानेकी तैयारीमें थे। किसीके सिरपर भारतीयताका अवशेष साफ़ा बँधा था, तो किसीने हैट पहनकर भारतीयताको एकदम तिलांजलि दे दी थी। विदेशी वस्त्रोंमें लिपटे, विदेशी सरकारके ये मददगार निराली शानमें चले जा रहे थे। आपसमें बातचीत भी हो रही थी, वह भी अंगरेज़ीमें। कोई-कोई भलेमानस देशी वेशमें भी थे। एक-दोको तो शुद्ध खादीमें भी देखा। यह संजौलीका बाज़ार था। शिमलेका उत्तरी मुहल्ला यही है। भारत-सरकारके दफ्तरोंमें काम करनेवाले बाबू अधिकतर यहाँ ही रहते हैं। संजौलीसे शिमला दो मील है। सारे मार्गमें इन बाबुओंका ताँता बँधा था। जंगी लाटकी कोठीके निकटसे होकर आख़िर हम भी शिमले आ पहुँचे। यही शिमला भारत-सरकारकी ग्रीष्मऋतुकी राजधानी है। यहींपर वायसराय तथा उनके मन्त्रीगण निवास करते हैं। क़ानूनसे मज़ाक करनेवाली हमारी पार्लामेंट—लेजिस्लेटिव एसेम्बली—के अधिवेशन भी यहाँ ही होते हैं। मसूरीसे २३ अगस्तको हमने प्रस्थान किया था। आज ८ सितम्बर शुक्रवारके दिन १९० मीलकी यात्रा पूर्णकर हम शिमलेमें विराजमान थे। राहमें हमने अनेक दृश्य देखे। मुण्डालीकी फुलवाड़ीमें घूमे। टोंस नदीकी उत्ताल तरंगोंमें उमड़ते फेनका अवलोकन किया। पाबरका वह शान्त प्रवाह भी देखनेकी चीज़ था। बागीके सर्वोत्तम जंगलकी शीतल छायामें जो स्वर्गसुख हमें मिला था, वह कभी नहीं भूला जा सकता, और फिर थानाधारमें की वह हिमाद्रिका दृश्य तो अनोखा ही था। वहाँकी सतलजकी प्रबल धारा याद रहेगी। इन अनुपम दृश्योंकी थाती लिये आज हम शिमलेमें पहुँचे थे, इसलिए आह्लाद होना स्वाभाविक ही था।

शिमला ६ मील तक हरेभरे पहाड़में फैला हुआ है। पूर्वमें जाखूका टीला तथा पश्चिममें वायसरायके बँगलेवाला टीला इसके ऊँचे उठाव हैं। इन दोनोंके मध्यमें बड़ाबाज़ार है। सबसे ऊपर मालरोड है, और नीचे देशी बाज़ार है, जो जंगलमें से होता हुआ मोटरकी सड़क तक चला गया है। मोटरकी सड़कके नीचे ही रेलका सुन्दर स्टेशन है। बाज़ारसे पश्चिमकी ओर भारत-सरकारके दफ्तर, एसेम्बली तथा सेसिल होटल हैं। इससे आगेका रास्ता वायसरायकी कोठीके नीचेसे होकर समर हिल चला गया है।

इस रास्तेपर ही वायसरायके मन्त्रीगण रहते हैं। बालूगंजका छोटा बाज़ार भी इधर ही है। इसी टीलेके उत्तरमें अनाडेल नामक प्रसिद्ध खेलका मैदान है। जाखूके टीलेके पूर्वमें छोटा शिमला है। यहाँ पंजाबके गवर्नरकी कोठी तथा प्रान्तीय सरकारके दफ्तर हैं। इधरसे ही क्योंथलकी राजधानी जुंगाको रास्ता है। इसी टीलेके उत्तरमें संजौलीका बाज़ार है, और उससे थोड़ा ऊपर सुन्दर सुहावना मशोबरा। मुख्य बाज़ारमें ही अधिकतर धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाएँ हैं। कांग्रेसी या प्रगतिशील राजनीतिका शिमलेसे कोई सरोकार नहीं। हाँ, खादीकी दूकान कांग्रेसका यत् किंचित् स्मरण करा देती हैं।

जाखूका टीला आठ हज़ार फीट ऊँचा है। स्वयं शिमलेकी ऊँचाई सात हज़ारसे अधिक है। बाज़ारसे ही रास्ता जाता है। आध मील चलकर शिखरपर पहुँच जाते हैं। चोटीपर हर समय ठंडी हवा चला करती है। यहाँ मारुतिका मन्दिर है। बन्दरोंकी पलटन यात्रियोंसे प्रसाद पानेके लिए डटी रहती है। दो-चार साधु भी डेरा डाले रहते हैं। कई वर्ष हुए एक फ्रेंच सज्जन इस मन्दिरके महन्त थे। मस्तराम नाम था। अब उनका देहान्त हो गया है। स्थान सुन्दर है। शिमलेका नज़ारा इस टीलेसे देखते ही बनता है। सामने गढ़ेमें तारादेवीका स्थान है। यहाँसे ही शिमलेको दूध पहुँचता है। दूर चीड़के जंगलमें सवाटूकी छावनीका दृश्य क्या सुन्दर मालूम होता है। उसीके ऊपरकी चोटीपर कसौलीके दर्शन होते हैं।

एक दिन छोटे शिमलेकी ओर घूमने गये। रास्ता सीधा है। जगह-जगह बँगले बने हैं। यहाँसे संजौली तक ढाई मीलका रास्ता है, एकान्त है, साथ ही जंगल है, दो-एक झरने भी हैं। समर हिलकी ओर हरीभरी घाटियोंका अच्छा नज़ारा है। हवा भी शुद्ध मिलती है। इसी ओर शिमलेसे ५ मीलपर एक सुन्दर प्रपात है, जिसे देखनेके लिए लोग जाते हैं। शिमलेके उत्तरकी ओर सतलज पार हिमालयका दृश्य भी बैन्ड स्टैन्डके निकटसे बड़ा अच्छा मालूम होता है। एक दिन शामको हम घूमनेके लिए निकले। सुदूर उत्तरमें हिमावृत कई चोटियाँ दिखाई दे रही थीं। सायंकालीन सूर्यकी किरणें उनपर पड़ रही थीं। एक ऊँची चोटी हिमसे लदी थी। उसपर लाल-पीली किरणोंका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उससे वह हिम चमचमा रहा था। ऐसा मालूम पड़ता था कि किसी चतुर कारीगरने मन्दिरके कलशपर अभी-अभी सोना मढ़ दिया है। इस शिखरका प्रतिक्षेप दूसरे शिखरपर पड़ रहा था। इससे उस शिखरकी जो कान्ति आभा आ रही थी, वह दिव्य थी। इसे देखकर हमने अपना शिमलेमें आना धन्य माना।

शिमलेका रात्रिका दृश्य विचित्र ही होता है। लम्बा-चौड़ा पहाड़ बिजलीके रोशनीसे जगमगा उठता है। किसी समय यहाँ जंगल था। मनुष्यने क्यासे क्या कर दिया है। उस चमचमाती रोशनीमें शिमलेकी शोभा दूनी हो उठती है। इसके सामनेकी पहाड़ीपर महाराजा पटियालाने चैल नामका छोटा नगर बसाया है। वह भी बिजलीसे जगमगा उठता है। दूरसे मालूम होता है कि किसी जंगलमें बरसातके बाद जुगनू जगमगा रहे हैं। लैम्पोंकी झिलमिल-झिलमिल ज्योति बड़ी भली लगती है।

इन दिनों एसेम्बलीके अधिवेशन हो रहे थे। हमने भी एसेम्बलीको देखना चाहा; किन्तु अब नियम इतने कड़े हो गये हैं कि जब तक एसेम्बलीके सदस्यसे वैयक्तिक परिचय न हो, टिकट ही नहीं मिलता। पुलिस भी बड़ी कड़ाईसे काम लेती है। फिर खद्दरधारियोंसे तो सदस्य स्वयं भी पीछा छुड़ानेकी कोशिश करते हैं, इसलिए हम अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके।

शिमलेकी छोटी रेल भी अद्भुत वस्तु है। कालकासे शिमला ६० मील है। इस दूरीमें पहाड़को काटकर एक सौसे अधिक बोगदे बनाये गये हैं। पहाड़ी सड़कें घूमकर जाती हैं; किन्तु यह रेल पहाड़के

वक्षस्थलको चीरती हुई चली जाती है। बकोगका बोगदा तो एक मीलसे अधिक लम्बा है। कालकासे आगे एक जगह रेलकी लाइन ख़ूब अठखेलियाँ करती हुई पहाड़पर चढ़ी है। यहाँ रेलकी पाँच लाइनें ऊपरसे नीचे तक दिखाई देती हैं। ऐसा मालूम होता है कि अब ऊपर पहुंचे, किन्तु रास्ता तै करनेमें काफ़ी देर लगती है। रेल बनानेमें बहुत ख़र्च करना पड़ा है। यही कारण है कि केवल साठ मीलका तीसरे दरजेका किराया ढाई रुपया है।

हम शिमलेमें सात दिन रहे। इन दिनों बड़ा आनन्द रहा। थकान दूर कर स्वस्थ हुए। शिमलेसे कालका पैदल जानेका इरादा था। मार्गमें सोलन, डगशाई, धरमपुर तथा कसौली अच्छे स्थान हैं। इन्हें देखना भी अभीष्ट था, किन्तु शिमलेमें रेल और मोटर देखकर दिल मचल गया। आखिरकार मोटरसे ही सफ़रकी ठहरी। सारा रास्ता सुन्दर और सुहावना है। सोलन आदिका जलवायु तो विशेष स्वास्थ्यप्रद बताया जाता है। १५ सितम्बरको हमने शिमला छोड़ा। रास्तेमें सोलन तथा अन्य स्थान मिले; किन्तु मोटरसे उनकी सैरको सैर नहीं कहा जा सकता, अतः इसका वर्णन फिर कभीके लिए छोड़ देना ही ठीक है।

कालका गर्म जगह है। पहाड़की तलैटीमें है। वहाँसे अम्बाले आये, तो पहाड़का साथ भी छूट गया। दिन-भर कड़ी गरमीका सामान करना पड़ा। सहसा मसूरीसे शिमलेकी याद हो आई; लेकिन इस यादसे क्या! अब तो हम मैदानमें थे। तपता हुआ सूर्य पसीनेसे कपड़े तर-बतर कर रहा था। अम्बालेमें यात्रियोंकी यह आनन्द-मंडली तितर-बितर हो गई, और हम अपना बोरिया-बिस्तर बाँध हरद्वार चले आये।
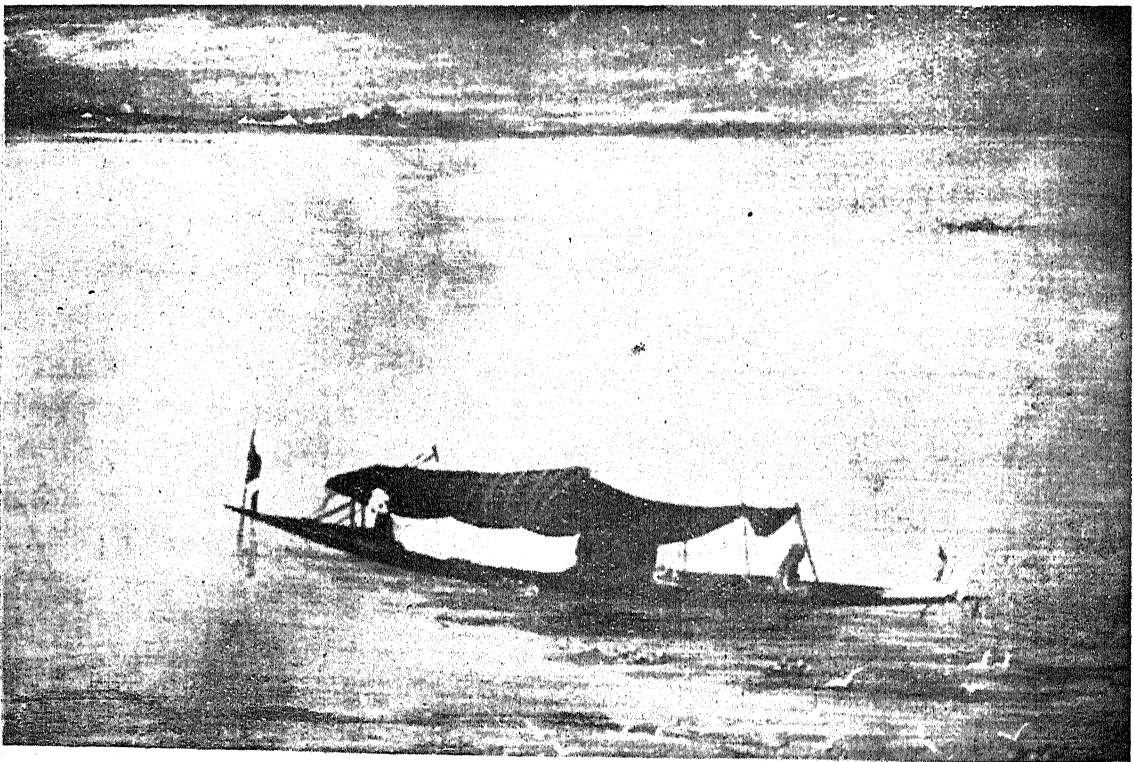
स्तूप या चैत्य

स्वर्गीय राखालदास वन्द्योपाध्याय

स्तूप शब्दके असली अर्थ मिट्टी आदि चीज़ोंके ढूह या टीलेके हैं। लेकिन बौद्धकालमें उसका प्रयोग एक विशेष प्रकारके मन्दिर या स्मारकके लिए होने लगा था। आरम्भमें 'स्तूप' या उसके पर्यायवाची शब्द 'चैत्य'से समाधिका बोध होता था। 'चैत्य' शब्दकी व्युत्पत्ति 'चिता'से है। स्तूप शब्द मिट्टीके उस ढूह या टीलेके लिए व्यवहार किया जाता था, जिसपर किसी आर्य अथवा असुरकी राख गाड़ी गई हो। स्तूप या तो चौकोर होते थे अथवा गोलाकार। यह शब्द ईसासे पूर्व छठीं शताब्दीमें, जिस समय बुद्ध भगवानने अपने धर्मका प्रचार आरम्भ किया था, आमतौरसे प्रचलित था। एक शिष्यके पूछनेपर भगवान बुद्धने बताया था कि स्तूप उल्टे हुए भिक्षापात्रके आकारका होना चाहिए। बौद्ध और जैन स्तूपोंके प्राचीनतम उदाहरण वास्तवमें अर्द्ध-गोलाकार हैं। भोपालके समीप साँचीका स्तूप और रावलपिंडीके समीप मनिक्यालेका स्तूप इसी आकारके हैं। भरहुतका स्तूप बहुत पहले ही नष्ट हो चुका है, हमें उसका आकार देखनेको नहीं मिला; लेकिन भरहुतमें पत्थरकी दीवारपर स्तूपकी जो शक्ल खुदी हुई है, वह भी एक गोल—ढोल-जैसी—चौकीपर स्थापित गोलार्द्धकी है। भारतका उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त सब प्रकारके स्तूपोंके भग्नावशेषोंसे भरा पड़ा है। ये स्तूप ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दीसे लेकर ईसाकी पाँचवीं शताब्दी तकके हैं—उस कालके, जिस कालमें हूणों और गुर्जरोंके लगातार हमलोंने बौद्धधर्मका प्राय: अन्त कर दिया था। स्तूप या चैत्योंके विकासका सबसे अच्छा अध्ययन करनेके लिए हमें उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त गांधार और बोधगयाको देखना चाहिए। बौद्धभक्त अकसर मनौती मानते थे, और अपनी मनोकामना पूरी होनेपर स्मारक-स्वरूप छोटे-बड़े स्तूप बनवा देते थे। इस प्रकारके अगणित स्तूप—ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीसे लेकर ईसाकी बारहवीं शताब्दी तकके—इन दोनों स्थानोंमें बिखरे हैं।

बहुत आरम्भिक कालमें ही बौद्धधर्ममें स्तूपों या चैत्योंके दो अलग-अलग विभाग हो गये थे। इनमेंसे एक ठोस चैत्य होता था, जो किसी घटना-विशेषके स्मारक-स्वरूप बनाया जाता था; और दूसरा खोखला या गर्भ चैत्य होता था, जिसमें कोई स्मारक-वस्तु—जैसे, अस्थि-खंड आदि—स्थापित की जाती थी। जैन-चैत्यों या स्तूपोंके आकार-प्रकारसे हम कम परिचित हैं। इस प्रकारके एक जैन-स्तूपकी खुदाई डाक्टर फ्यूररने मथुराके कंकालीटीलेमें की थी। केवल इस स्तूपको छोड़कर अन्य जैन स्तूपोंके जो उदाहरण हमें मिलते हैं, वे वास्तविक स्तूपोंके रूपमें नहीं, वरन दीवारोंपर खुदे हुए स्तूपोंके चित्रोंमें ही मिलते हैं। इसके विपरीत सभी युगोंके बौद्ध-स्तूपोंके अनेक उदाहरण अब तक वर्तमान हैं। आरम्भिक कालके स्तूप—जैसे, साँची, सोनारी और सतधारा (साँचीके समीप) और मनिक्यालेके स्तूप—पोले अथवा 'गर्भस्तूप' हैं। साँची, सोनारी और सतधाराके स्तूपोंमें प्रमुख बौद्ध-प्रचारकोंकी समाधियाँ हैं। सतधाराके दूसरे स्तूपमें बुद्ध भगवानके समकालीन और उनके प्रिय शिष्य सारिपुत्र तथा सारिपुत्रके साथी महामुद्गलायनकी समाधियाँ (अस्थियाँ) थीं। सोनारीके दूसरे स्तूपमें सुप्रसिद्ध बौद्ध सन्त मज्झिम और कौशिडनीपुत्रकी—जिन्होंने हिमालय-प्रदेशमें बौद्ध-धर्मका प्रचार किया था—समाधियाँ थीं। मनिक्यालेके स्तूपमें जो स्मारक-मंजूषा मिली थी, उसमें अनेक पुरुषोंकी अस्थियाँ थीं। इसके बादके युगके अनेक स्तूप—जैसे, सारनाथका महान धामेक स्तूप—ठोस ढूहमात्र हैं, जो किसी स्मरणीय स्थान-

साँचीका नम्बर १का स्तूप (निर्माणकाल ईसाके पूर्व दूसरी शताब्दी)
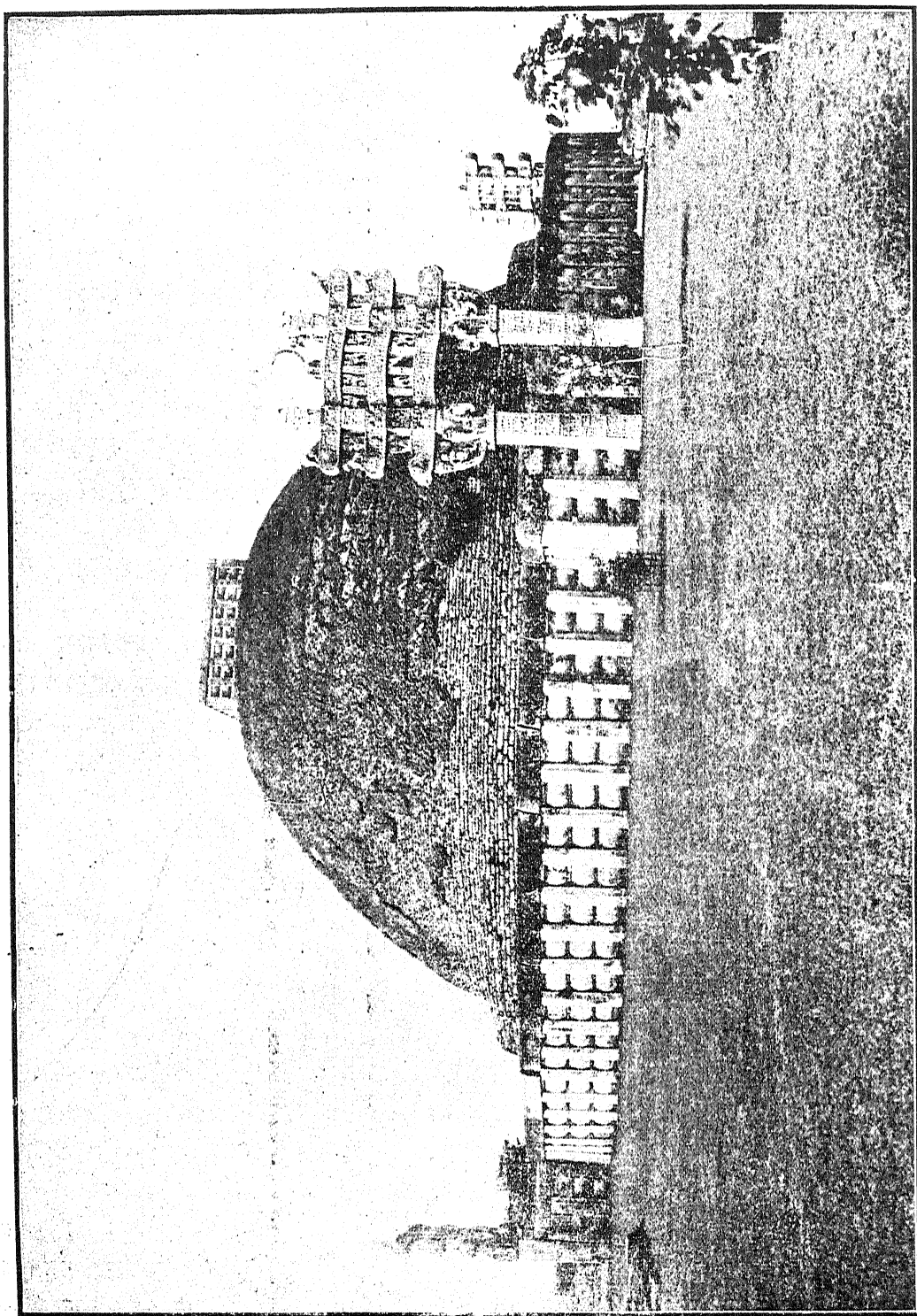
विशेषकी जगह बतानेके उद्देशसे बनाये गये थे। गौतम बुद्धके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोंको प्रकट करनेके लिए भक्त बौद्धोंने इस प्रकारके अनेक स्तूप बनाये थे, जिनका वर्णन ह्यूएन सांगने अपने यात्रा-वृतान्तमें किया है।
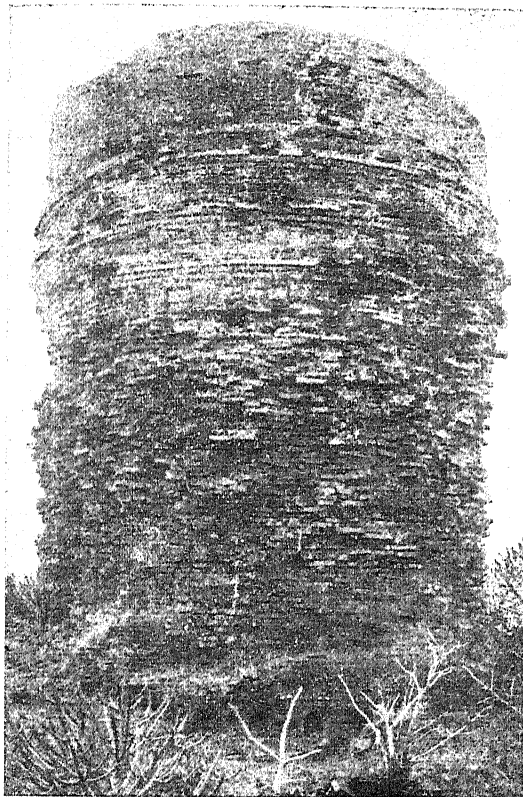
गिरियक (पटना जिले) का हंस-स्तूप

स्तूपोंकी बनावटका इतिहास जाननेके लिए बोधगयाके विशाल मन्दिरके प्रांगणमें, मनौती पूरी होनेके उपलक्षमें, बनाये हुए स्तूपों तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्तके सबसे बड़े स्तूपोंको देखना काफी है। स्तूपोंका आधार—चाहे वे ठोस हों या पोले—सदा गोलाकार होता था। उसके ऊपरका आकार विभिन्न कालोंमें विभिन्न रूपोंमें परिवर्तित होता गया था। सबसे प्राचीन स्तूप एक नीचे आयताकार प्लैटफार्मपर गोलार्द्धमें बने थे। अकसर यह भी हुआ कि प्राचीन स्तूपोंकी मरम्मतमें पुरानी इमारतके ऊपर चूनेकी नई तहें जमाई गईं, जिनसे स्तूपके असली आकारमें परिवर्तन हो गया, जैसा कि साँचीके प्रथम स्तूपमें दीख पड़ता है। होते-होते इस स्तूपका गोलार्द्ध बहुत बढ़ गया और उसकी कुर्सी (पादपीठ) ऊँची हो गई। इस प्रकारका दूसरा उदाहरण सारनाथका धामेक-स्तूप है, जिसका नीचेका भाग तो पत्थरका बना है; लेकिन ऊपरी भाग ईंटोंका है। नीचेका भाग अपूर्ण है, और एक
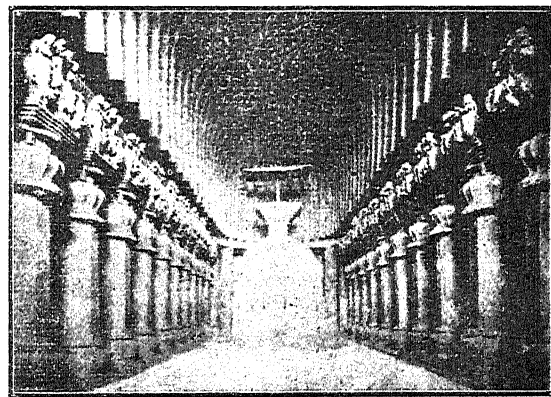
कर्ला (पूना जिले) के चैत्य-गृहका अभ्यन्तर

बड़ी गोलाकार कुर्सीपर बना हुआ एक बेढंगा गोलार्द्ध है। यह भाग शायद ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें बना था, और ऊपरी ईंटोंवाला भाग सातवीं शताब्दीमें जोड़ा गया था, जिससे समूचे स्तूपका असली आकार लुप्त हो गया और वह एक आकार-विहीन वस्तु बन गया। जब ईंटोंका बाहरी भाग सम्पूर्ण रूपसे सुरक्षित था, उस समय धामेक-स्तूपकी शक्ल पटना जिलेमें, राजगिरिसे दस मील दूर, गिरियकके हँस-स्तूपसे मिलती-जुलती थी।

बौद्ध-स्तूप आरम्भमें आदिम ढंगके अर्द्ध-गोलाकार समाधिस्थलसे धीरे-धीरे विकसित होकर ऊँची शानदार ईंट-पत्थरोंकी इमारतोंमें परिणत हुए। इस विकासकी पाँच अलग-अलग अवस्थाएँ दीख पड़ती हैं:—
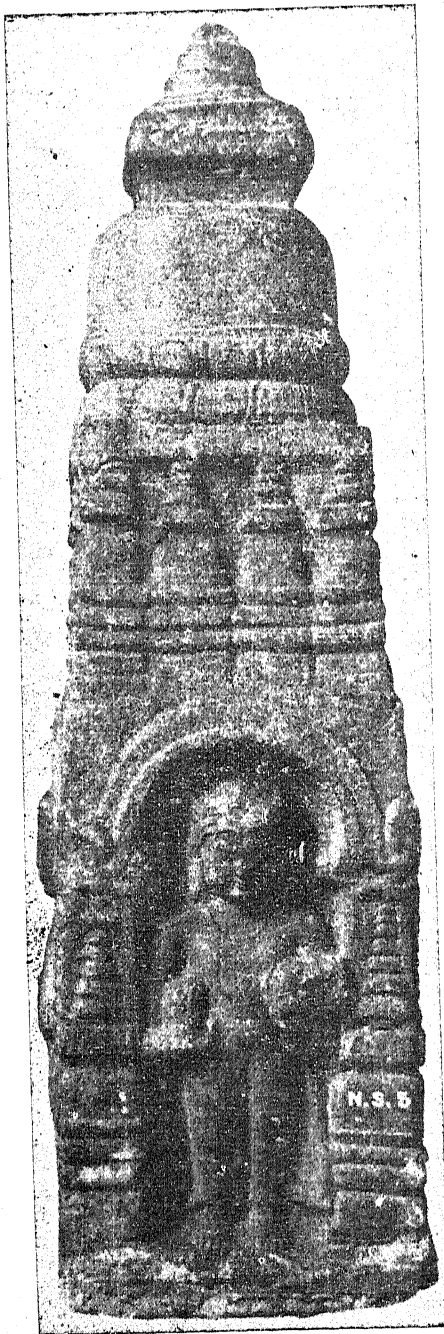
उत्तर-मध्यकालका एक क्षुद्र स्तूप (प्राप्तिस्थान बोधगया)

(१) आदिम स्तूप एक चौकी या कुर्सीपर बना हुआ गोलार्द्ध था। (२) चौकी और गोलार्द्धके बीचमें एक ढोलनुमा गोल घेरा बढ़ाया गया। (३) इस गोल घेरेकी ऊँचाईमें वृद्धि हुई और समूचा आकार एक विशाल गोल स्तम्भ जैसा हो गया, जिसका शिखर गोल (गुम्बद सरीखा) था। (४) इसके बाद गोल घेरेपर विभिन्न तहें और कंगूरे बढ़े, जिसका उदाहरण राजशाही ज़िलेमें पहाड़पुरके स्तूपमें मिलता है।
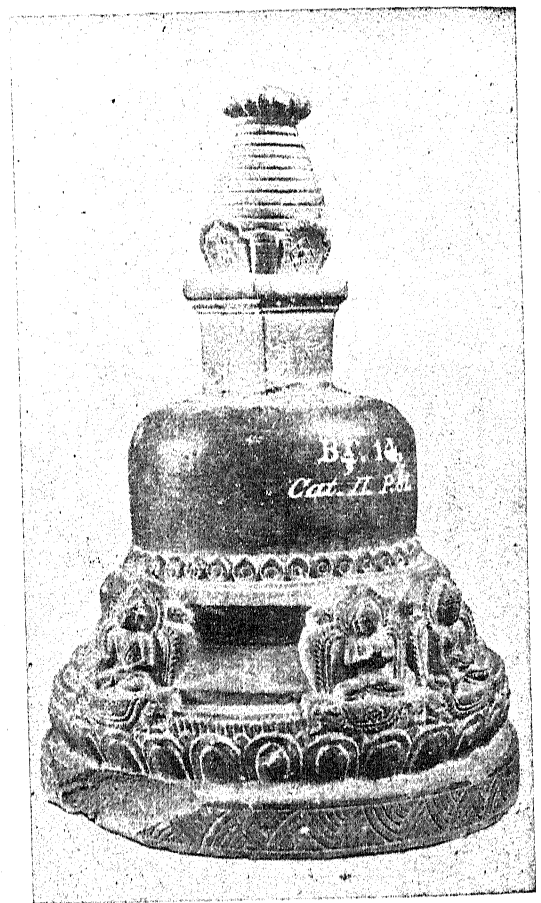
बिहारका एक क्षुद्र स्तूप

(५) अन्तमें गोल घेरेके नीचे और कुर्सीके ऊपरकी दीवारें क्रमशः ढालू बनाई गईं, जिनके उदाहरण बर्मी और स्यामी स्तूपोंमें मिलते हैं।

पहली तीन श्रेणियोंमें विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ, इसलिए आरम्भिक आकारमें कोई विशेष परिवर्तन
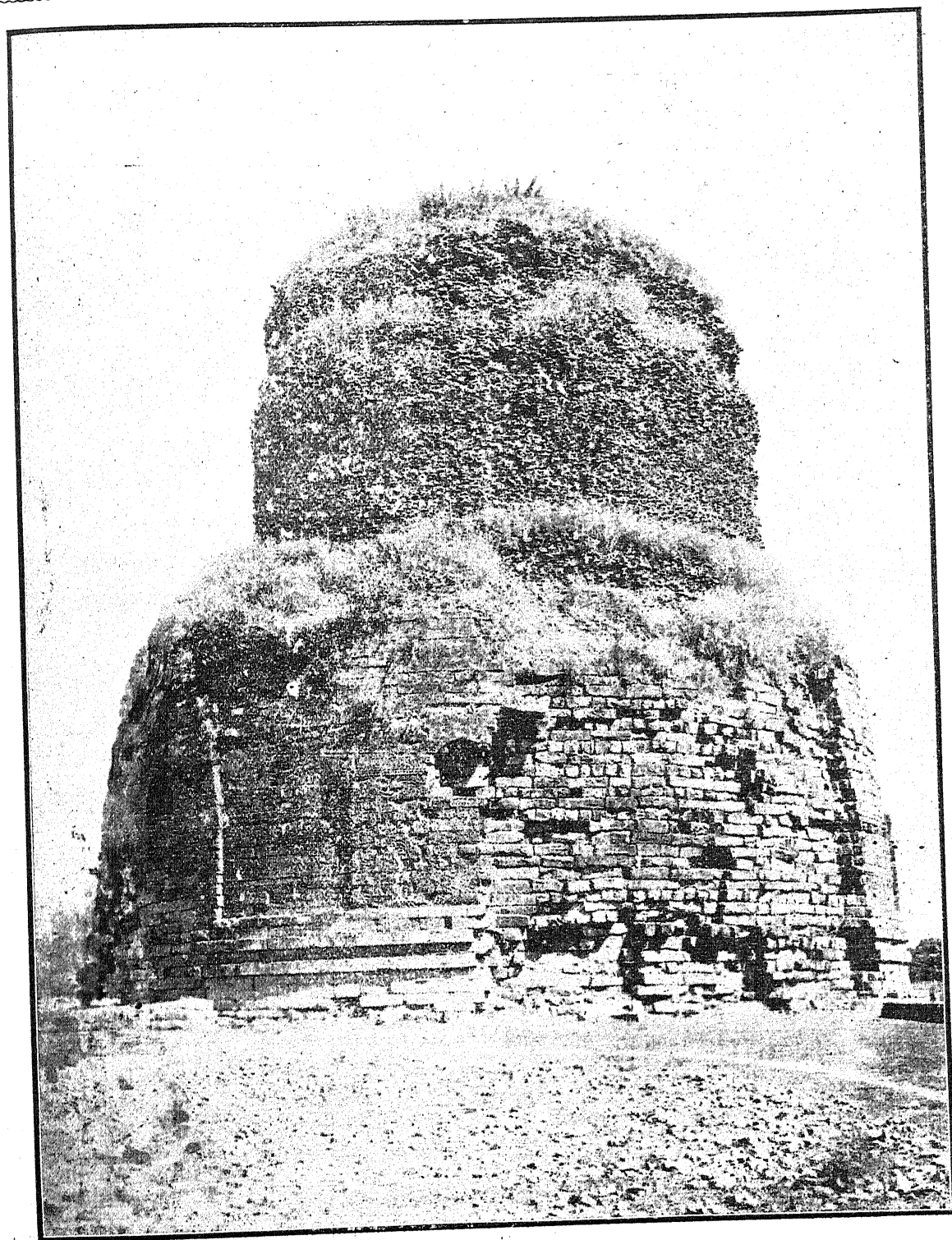
सारनाथ (काशी) का धामेक-स्तूप ; निर्माण ईसाकी पाँचवींसे सातवीं शताब्दीके बीचमें

नहीं हुआ। उदाहरणके लिए, साँचीके पहले नम्बरके स्तूप और मनिक्यालेके स्तूपमें हम देखते हैं कि कुर्सी चौकोर होनेके स्थानमें गोल है, और गोलार्द्धका निचला हिस्सा एक गोल आधारपर स्थित है। प्रथम कोटिका ऐसा स्तूप जो किसी गोल घेरेपर स्थित नहीं है, मनौतीके स्तूपोंमें दीख पड़ता है, जैसे बोधगयाके मन्दिरके प्रांगणमें बना हुआ पत्थरका बड़ा स्तूप है। ऐसे इक्का-दुक्का स्तूप उत्तरी-पश्चिमी सीमान्तमें भी दीख पड़ते हैं—जैसे स्वातकी घाटीमें चकपतका स्तूप। इस प्रकारके पुराने स्तूप पहली नज़रमें ही पहचाने जा सकते हैं, क्योंकि वे आकारमें बादके स्तूपोंसे एकदम
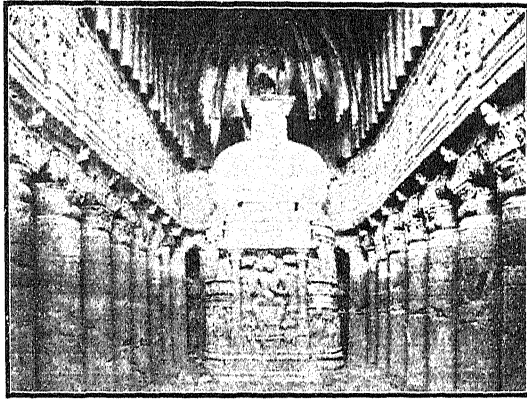
अजन्ताकी २६ नं०की गुफाके चैत्य-गृहका स्तूप

भिन्न हैं—उदाहरणार्थ, ईशपोला, भल्लार, बड़ीकोट या तोपदर्राके स्तूप। आरम्भिक कालके समाधिस्थल स्तूपोंके आकारके ही बनते थे। इनका सबसे अच्छा नमूना वह है, जिसे जेनरल जेरर्डने काबुलसे पूर्वकी ओर बुर्ज-ए-यकदरेमें खोज निकाला था।

दूसरी श्रेणीके स्तूपोंमें निम्न-लिखित भाग दीख पड़ते हैं:—(१) चारों ओर जँगलेसे घिरी हुई कुर्सी। (२) गोल आधार और उसके ऊपरका गोल घेरा एक दूसरे जँगलेसे घिरा हुआ। (३) गोलार्द्ध (४) गोलार्द्धके ऊपर छत्र स्थापित करनेके लिए चौखूँटा आधार। इन छत्रोंकी संख्या निश्चित नहीं थी, इसीलिए हम देखते हैं कि कर्लाके चैत्यगृहके स्तूपमें केवल एक छत्र है, भरहुतकी दीवारोंपर अंकित स्तूपोंके चित्रोंमें दो-दो छत्र हैं, बुर्ज-ए-यकदराबाले स्तूपमें एकपर एक पाँच छत्र हैं।
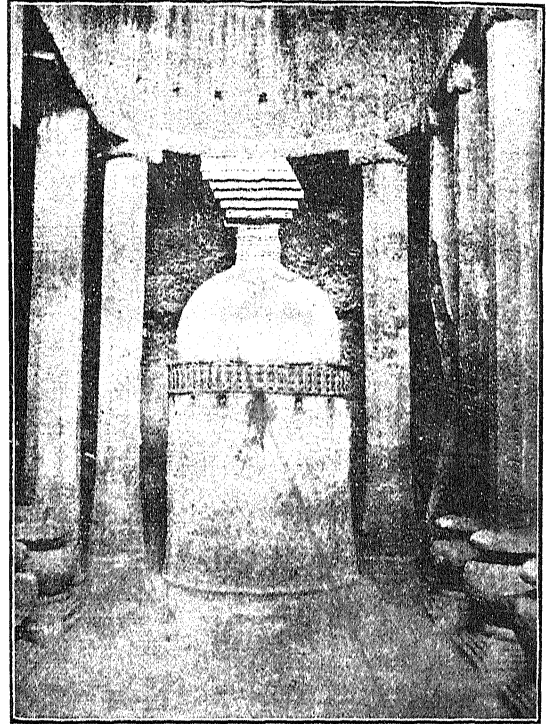
नासिक जिलेकी पंडेरलेनाकी गुफाओंमें १० नम्बरकी गुफाका चैत्यगृह

स्तूपोंकी तीसरी अवस्थाके अध्ययनके लिए पश्चिमी भारतकी चट्टानोंमें काटकर बनाये हुए चैत्य-गृहोंके भीतर बने हुए स्तूपोंको देखना चाहिए। कर्लाके विशाल बौद्ध-मठका चैत्य एक गोल परन्तु नीची कुर्सीपर स्थित है। उसके ऊपरके गोल घेरेकी ऊँचाई कुर्सीकी ऊँचाईसे कुछ कम है; लेकिन शिखर और ऊपरका चौखूँटा छत्राधार ज़रूरतसे ज्यादा बड़ा है, जो गोलार्द्धके अनुपातमें बेढंगा दीखता है। यदि हम कर्लाके स्तूपकी नासिकके पास पंडुलेनाकी १० नम्बरकी गुफाके स्तूपसे तुलना करें, तो जान पड़ेगा कि यहाँ नीचेकी कुर्सी एक नाटे खम्भेका रूप धारण

कर लेती है, जिसकी चोटीपर एक बौद्ध ढंगका जँगला लगा है, जो ऊपरके गोलार्द्धको कुर्सीसे पृथक करता है। वास्तवमें इस उदाहरणमें गोल घेरा है ही नहीं, यदि हम जँगलेको घेरा न मान लें। कन्हेरीके विशाल चैत्य-गृहके स्तूपकी कुर्सी और स्तूपमें प्राय: वही अनुपात है, जो कर्लामें दीख पड़ता है। गोल घेरेकी ऊँचाईमें सबसे पहली वृद्धि हमें पंडुलेनाके चैत्य-गृहमें

पूना जिलेके बेदसा स्थानके चैत्य-गृहका स्तूप

दीख पड़ती है ; बादके अनेक स्तूपोंमें इस बातकी नक़ल दीख पड़ती है। बादके इन सब स्तूपोंका समय मोटे हिसाबसे निश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मथुरामें मिली हुई शिलापर जो स्तूप अंकित हैं, उनमें अधिकांशमें गोल घेरेकी ऊँचाई अनुपातमें लगभग उतनी ही है, जितनी पंडुलेनाके चैत्य-गृहकी। उदाहरणके लिए मथुरामें मिली हुई उस शिलापर अंकित जैन-स्तूपको देखिये, जिसे लोनशोभिका नामक गणिकाकी पुत्री वसु नामक गणिकाने उत्सर्ग किया था। यह विकास अमरावतीके स्थापत्यमें भी मिलता है। वहाँके स्तूपोंमें भी कुर्सीके ऊपरके गोल घेरोंकी यह ऊँचाई प्रत्यक्ष है।

गांधारके स्तूपोंके घेरोंमें यह ऊँचाई क्रमश: विकसित हुई है। ईशपोलाके स्तूपमें हम देखते हैं कि घेरेकी ऊँचाई बढ़ी है, मगर थोड़ी ही। चेरात और गुनीवार दर्रोंके मुहानेपर जो स्तूप है, उसमें यह ऊँचाई किसी क़दर बढ़ी है ; लेकिन उसके बादके स्तूपोंमें वह एकाएक अनुपातसे कहीं अधिक बढ़ी हुई मिलती है। स्वातकी घाटीमें बड़ीकोट और तोपदरेके
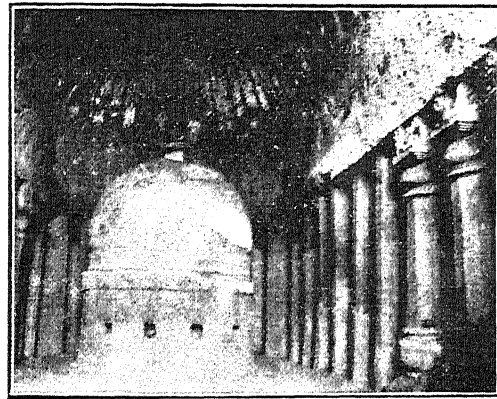
कन्हेरी (पूना जिले) की ३ नं० की गुफाके चैत्य-गृहका चैत्य

स्तूपोंमें कुर्सीके ऊपर और गोलार्द्धके नीचे, एकके ऊपर एक, तीन घेरे दीख पड़ते हैं। यही बात अजन्ताकी २६ वीं गुफाके चैत्य-गृहके स्तूपमें दीख पड़ती है, जो ईसाकी छठीं शताब्दीका है। तक्षशिलामें सर जॉन मार्शलने खुदाई करके जो स्तूप निकाले हैं, उनमें भी यह विकास दीख पड़ता है। आरम्भिक कालके स्तूपोंका सबसे सुन्दर नमूना विशाल धर्मराजिक स्तूप है।

जिस टूटी-फूटी हालतमें यह स्तूप मिला है, उससे स्तूपोंकी बनावटके अध्ययनमें बड़ी सुविधा होती है। उसके आविष्कारकने देखा कि स्तूपकी परिधि

अनेक छोटे-छोटे खंडोंमें विभाजित है। केन्द्रसे लेकर परिधि तक अर्द्धव्यासमें दीवारें खड़ी की गई हैं, और इन्हीं दीवारोंके बीचमें चूना और ईंटें चुनकर स्तूपका आकार बनाया गया है। नामसे प्रकट होता है कि इस स्तूपको कदाचित अशोकने बनवाया था ; लेकिन बादमें इसमें वृद्धि हुई, किन्तु उससे उसके आकारमें कोई अन्तर नहीं आया। धर्मराजिक विहारके प्रांगणमें तथा सिरकाप, जंडियाल, मोहरामोरादू, सिरसुख, जौलियान आदि स्थानोंके गांधार-स्तूपोंमें भी घेरेकी क्रमिक ऊँचाई दीख पड़ती है। यही बात उस छोटे स्तूपमें दीख पड़ती है, जो उस बड़े स्तूपके गर्भमें मिला था, जिसे कुणालका स्तूप समझा जाता है। उसमें कुर्सी चौकोर है, घेरेकी ऊँचाई लगभग गोलार्द्धकी ऊँचाईके बराबर है और गोलार्द्धका आकार बेढंगा है। घेरेकी ऊँचाईमें वृद्धिके साथ भारतके भास्कर्य-शिल्प में बड़ा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आरम्भ होता है। वह परिवर्तन है स्तूप तथा उसके विभिन्न अंगोंपर चित्र बनाकर स्तूपको अलंकृत करना। इन चित्रोंमें जातक-गाथाएँ और गौतम बुद्धके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाएँ दिखाई जाती थीं। गांधार-शैलीके कारीगरोंने जब बुद्धकी मूर्तियाँ बनानी आरम्भ कीं, उसके बादसे स्तूपोंकी इस सजावटका चलन चला। इस अलंकारिक सजावटके दो विभाग हैं। पहले विभागमें चैत्यकी खिड़कियोंके भीतर अथवा नालके आकारकी मेहराबपर बुद्ध या बोधिसत्वके अनेक चित्र बनाये जाते थे। दूसरे विभागमें गोल घेरे और उसकी चौकोर कुर्सीपर बुद्धकी जीवन-घटनाओंके चित्र बनाये जाते थे। इसीलिए हमें गांधार-शिल्पमें दो तरहके चित्र मिलते हैं:—(१) टेढ़े गोलाकार चौकोंपर बने हुए चित्र ; (२) समतल चौकोंपर बने हुए चित्र। प्रथम प्रकारके चित्रोंमें सिकरीके प्रसिद्ध स्तूपके घेरेपर बने हुए चित्र हैं, जो आजकल लाहोर-अजायबघरमें हैं। लोरियाँ तंगाईके छोटे स्तूपके चित्र दूसरे प्रकारके हैं। स्तूपोंकी बनावटमें दूसरा विकास यह हुआ कि गोलघेरेमें एक ओर एक आलेमें प्रतिमा-स्थान बनाया जाने लगा। गांधार-स्तूपोंमें इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। बादमें यह प्रतिमा-स्थान स्तूपकी चारों दिशाओंमें एक-एक बनाया जाने लगा। एक ही प्रतिमा-स्थानवाले स्तूप सिन्धमें मिले हैं—उदाहरणके लिए इस प्रकारके एक स्तूपका पता थार और पारकर ज़िलोंमें मि० एच० कौसेनने लगाया था, और दूसरे स्तूपका पता सन् १९२२-२३ में मैंने मोहेनजोदड़ोके सबसे ऊँचे ढूहपर लगाया था। चार आलों या प्रतिमा-स्थानोंकी वृद्धि साँचीके १ नं०के स्तूपमें और नागौद ज़िलेमें भरहुतके स्तूपके भग्नावशेषोंमें देखी जा सकती है।

गांधार-स्तूपोंके आधार, कुर्सी और गोल घेरेपर बुद्ध और बोधिसत्वकी मूर्तियोंकी स्थापनाका सम्बन्ध भारतके स्थापत्यसे इतना नहीं है, जितना वह भारतकी चूनेकी कारीगरीसे है। लेकिन मध्यकालीन युगमें पहले एक प्रतिमा-स्थान बनाने और बादमें चार प्रतिमा-स्थान बनानेसे स्तूपोंके आकारमें ही परिवर्तन हो गया। इस प्रकारके चार प्रतिमा-स्थानोंवाले स्तूपोंका सबसे प्राचीन उदाहरण मथुरामें प्राप्त कुशान-युगके एक स्तूपमें मिलता है। इस स्तूपका घेरा गोल है ; लेकिन इस गोल घेरेकी चारों दिशाओंमें एक-एक छोटा-सा आला है, जिसमें बुद्धकी एक-एक छोटी मूर्ति पालथी मारे बैठी है। इस स्तूपका ऊपरी गोल भाग गोलार्द्धसे कुछ बड़ा है, और इसके आधारकी परिधि ऊपरके गोल घेरेकी परिधिसे छोटी है। यह स्तूप उस प्रकारके स्तूपोंका सबसे प्राचीन उदाहरण है, जो ईसाकी चौथी शताब्दीसे भारतमें बौद्धधर्मकी समाप्ति तक सम्पूर्ण उत्तरी भारतमें प्रचलित थे। कुशान-युगमें मथुरा-शैलीके कारीगर स्तूपोंके गोल घेरोंको बुद्धकी जीवन-घटनाओंके चित्रोंसे अलंकृत करते रहे, जैसा कि मथुरा-संग्रहालयके धुवटीलेके स्तूपसे प्रकट है। आरम्भके इस प्रकारके स्तूपोंसे हमें बादके स्तूपोंका विकास देखना चाहिए। सर जॉन मार्शलने सारनाथकी खुदाई करके यह सिद्ध

कर दिया कि बादके कालमें—यानी ईसाकी चौथी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दी तक—इस ढंगके स्तूप टकसाली स्तूप बन गये थे। इस ज़मानेमें स्तूप एक स्मारक हो गये थे, जो एक वर्गाकार या आयताकार कुर्सीपर स्थापित गोल स्तम्भके रूपके थे। इस स्तम्भके चारों ओर चार आलोंपर बुद्ध या बोधिसत्वकी प्रतिमा स्थापित रहती थी। इसके ऊपर एक गोलार्द्ध होता था, जिसकी चोटी किसी क़दर चपटी हो गई थी। इस चोटीपर छत्र स्थापित करनेके लिए एक चौकोर आधार या 'हरमिका' होती थी। चौकोर कुर्सी 'मेधि' कहलाती थी, और बड़े-बड़े स्तूपोंमें उसपर चढ़नेके लिए चारों दिशाओंमें सीढ़िया होती थीं। ऊपरका घेरा और गोलार्द्ध 'अण्ड' कहलाता था; छत्राधार हरमिका तथा सात छत्र 'छत्रावली' के नामसे प्रसिद्ध थे। प्राय: सभी बड़े स्तूपोंमें ये छत्र एक धातु-शलाकापर स्थापित रहते थे, जो छत्रोंके केन्द्रमें रहती थी।

अधिकांश स्तूपोंमें आलोंपर जो मूर्ति मिलती है, वह एक ही आसनपर बैठी मिलती है; लेकिन बादमें चारों मूर्तियाँ बौद्धधर्ममें वर्णित बुद्धकी चार प्रसिद्ध मुद्राओंमें दिखाई जाने लगीं:—अर्थात् (१) 'भूमिस्पर्श', जिसके अर्थ यह हुए कि बुद्ध भगवान भूदेवीको स्पर्श करके उसे अपनी ज्ञान-प्राप्तिका साक्षी बना रहे हैं। (२) 'धर्मचक्र' मुद्रा, जो बुद्धके दिये हुए सर्वप्रथम उपदेशका प्रतीक समझी जाती है। (३) अभय-मुद्रा—बुद्धकी हत्याके लिए उनके प्रतिद्वन्द्वी देवदत्त द्वारा नियुक्त डाकुओं और मतवाले हाथीको अभय दान। (४) वरद-मुद्रा—लोगोंको वरदान देनेकी अवस्था।

उत्तरी बौद्धधर्ममें परिवर्तन होनेके साथ-साथ बौद्ध देवालयोंमें भी परिवर्तन हो गया। सात भूतपूर्व बुद्धों और भावी बुद्ध मैत्रेयके स्थानमें पाँच आकाशी बुद्ध, पाँच पार्थिव बुद्ध और पाँच बोधिसत्वोंकी पंचायतें स्थापित हुईं। उस समयके स्तूप पाँच आकाशी बुद्धोंमें से चार बुद्धोंकी प्रतिमाओंसे अलंकृत किये जाते थे। ये पाँच आकाशी बुद्ध यह हैं:—१ अक्षोभ्य, २ अमिताभ, ३ अमोघसिद्धि, ४ रत्नसम्भव, ५ वैरोचन। बौद्धधर्मकी इस परवर्ती स्थितिमें हमें स्तूपोंके आलोंमें नाना प्रकारके देवताओंकी मूर्तियाँ दीख पड़ती हैं। बोधगयाके कुछ उदाहरणोंमें मनौतीके स्तूपोंमें बोधिसत्व मूर्तियाँ अपनी-अपनी शक्तियोंके साथ दीख पड़ती हैं। एक उदाहरणमें चारों आलोंमें बुद्धके जीवनकी चार घटनाएँ दिखाई गई हैं। यह विशेष स्तूप दीनाजपुर ज़िलेके बाण राजाके दुर्गके भग्नावशेषमें मिला था, और ग्यारहवीं शताब्दीका है। बारहवीं शताब्दीके पिछले भागमें स्तूप या चैत्य विकसित होकर एक चौमुखी प्रतिमा, या मध्यकालीन भारतके शिखरवाले लम्बे मन्दिरके आकारके हो गये। बोधगयामें मिले हुए एक उदाहरणमें हम देखते हैं कि वह एक स्तम्भ-सा है, जिसके चारों ओर चार बुद्ध-मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियोंके नीचे एक-एक चैत्य बना है। यह आधुनिक कालके जैन 'चौमुहे' या 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका'से बिलकुल मिलता है। बोधगयाके दूसरे उदाहरणमें हम देखते हैं कि चारों ओरकी चार प्रतिमाएँ नीचेका समूचा क्षेत्रफल घेरे हुए हैं, और उनके ऊपर चार क्षुद्र स्तूपोंकी पंक्ति अंकित है।

पेगू और अराकानके महायान बौद्धोंने मगधके स्तूपोंकी नक़ल थी, जैसा कि पैगन स्तूपोंको देखनेसे विदित होता है। अराकान, पेगू और उत्तरी बर्माके आरम्भिक बौद्ध तान्त्रिक थे, जो बर्माके धर्म ग्रन्थोंमें 'अरि'के नामसे पुकारे गये हैं।

बर्मा और स्यामका मौजूदा बौद्धधर्म वहाँ लंकासे पहुँचा है। लेकिन धर्ममें परिवर्तन होनेसे वहाँके देवालयोंके आकारोंमें परिवर्तन नहीं हुआ, और बर्माके पैगोडोंकी घंटेके आकारकी शक्लमें प्रोमके स्तूपोंका प्रत्यक्ष विकास दीख पड़ता है। इसमें घेरेकी दीवारें लम्बके रूपमें होकर ऊपरको झुकती जाती हैं, ताकि वे और अधिक ईंट-चूनेका बोझ सहन कर सकें, जैसा कि बादके 'दगबा'में दिखाई देता है।

तिब्बतके 'चोरटेन'का आकार और नाम दोनों ही मगध और बंगालके स्तूपोंसे लिया गया है। तिब्बतमें बौद्धधर्म बंगालसे ग्यारहवीं शताब्दीमें पहुँचा था, जब वहाँ दीपंकर श्रीज्ञान गये थे। तिब्बतकी वर्णमालामें आज तक ग्यारहवीं शताब्दीकी उत्तर-भारतीय वर्णमालाका आकार बहुत हद तक सुरक्षित है। तिब्बतके चोरटेनोंमें बारहवीं शताब्दीके मगध और बंगालके स्तूपोंका आकार अब तक वर्तमान है। बारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें मगध और बंगालके स्थापत्यमें जो परिवर्तन हुआ, उनका तिब्बतके देवालयोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

बंगाल और बिहारके विशाल स्तूपोंमें पहाड़पुरका मन्दिर ही एकमात्र उदाहरण हमें ज्ञात है। इस मन्दिरमें हमें पैगनके आनन्द-मन्दिरका नमूना दीख पड़ता है; लेकिन यह जावाके बोरोबूदरके प्रसिद्ध मन्दिरसे थोड़ा भिन्न है। यह गर्भ चैत्य या पोला स्तूप था, जैसा कि गोल घेरेकी एक खिड़कीसे प्रकट होता है। यह तीन विभिन्न स्तूपोंसे बना था। सबसे नीचेके स्तरका नक़शा क्रूसके आकारका था। इस क्रूसकी एक भुजामें लम्बी सीढ़ियाँ थीं, और तीन अन्य भुजाओंमें छोटे Projections थे। दूसरे स्तरमें चारों ओरकी परिक्रमाका मार्ग था। इस खुले मार्गके ऊपर एक क्रूसके आकारका स्तम्भोंवाला एक विशाल गृह समूचे मन्दिरमें फैला हुआ था। इस दूसरे क्रूसकी भुजाओंमें चारों दिशाओंमें चार गृह या हॉल थे। ये गृह सिन्धके विशाल स्तूपोंमें मिलनेवाले एक प्रतिमा-स्थानके विकसित रूप कहे जा सकते हैं। इन गृहोंमें जो वस्तुएँ थीं, वे बिलकुल नष्ट हो गई हैं। उत्तरकी ओर स्तम्भोंवाले हॉलके ऊपर एक छोटा मंच या प्लेटफार्म-सा था। प्रधान इमारतकी बिना खुदी छतसे प्रकट होता है कि यह एक चैत्यके आकारका था। बहुत सम्भव है कि यह पुंड्रवर्दननके चैत्योंमेंसे एक चैत्य हो, जिसका चित्र एम० फाउचरको नेपालमें प्राप्त एक सचित्र संस्कृत-हस्त-लिपिमें मिला था।

प्रायः सभी बौद्ध-देवस्थानोंमें बड़े और मझोले स्तूपोंके साथ-साथ क्षुद्र आकारके स्तूप भी बड़ी संख्यामें मिलते हैं। धातु और पत्थरके बने हुए छोटे स्तूपोंकी एक काफी संख्या नालन्दमें, कुछ बोधगयामें और बहुतसे उडंडपुराके मठ (पटना ज़िलेमें वर्तमान बिहार-शरीफ) में मिले हैं। इन क्षुद्र स्तूपोंमें से एकमें नेपालके वर्तमान बौद्धधर्मका प्रारम्भ दीख पड़ता है। इसमें स्तूपकी चार दिशाओंमें चार बुद्ध-मूर्तियोंके स्थानमें पाँच बुद्ध-मूर्तियाँ हैं, और शिखरकी चार दिशाओंमें देवताओंकी तीन आँखें दिखाई गई हैं। नेपालके स्वयम्भू-चैत्यमें चार आकाशी बुद्ध तो घेरेकी चार दिशाओंमें दिखाये गये हैं, और पाँचवें बुद्ध—वैरोचनकी—उपस्थिति शिखरपर अंकित तीन आँखोंसे प्रकट की गई है।

अराजकता—उसका सिद्धान्त और आदर्श

प्रिन्स क्रोपाटकिन

ऐसे लोगोंकी संख्या अब भी काफी है, जो यह ख़याल करते हैं कि अराजकता भविष्यके सम्बन्धमें स्वप्नोंका संग्रहमात्र है, और उसका उद्देश्य वर्तमान सभ्यताका विध्वंस करना है, चाहे यह विध्वंसका प्रयत्न, बेसमझे-बूझे ही किया जा रहा हो। इस प्रकारके विचार जो लोग रखते हैं, उनके पक्षपातपूर्ण संस्कारोंके आधारको स्पष्ट कर देनेके लिए हमें बहुतसी छोटी-छोटी बातोंपर विचार करना होगा। इनपर संक्षेपमें विचार करना मुश्किल है।

कुछ समयसे अराजकवादियोंकी चर्चा इतनी अधिक होने लगी है कि जनताके एक भागने आख़िर हमारे सिद्धान्तोंको अध्ययन करना और उनकी विवेचना करना शुरू कर दिया है। कभी-कभी लोगोंने इसपर विचार करनेका भी कष्ट उठाया है, और इस समय हमने कमसे कम इस बातको तो लोगोंसे मंजूर करा लिया है कि अराजकवादियोंका भी कोई आदर्श है। बल्कि लोग यहाँ तक कहने लगे हैं—"मनुष्य-समाजमें सब देवता ही देवता थोड़े ही हैं। इसलिए अराजकवादियोंका आदर्श समाजके देखे इतना अधिक ऊँचा और इतना अधिक सुन्दर है कि वह सर्वथा अव्यवहार्य है।"

किन्तु क्या मेरे लिए किसी दर्शनशास्त्रके सम्बन्धमें कुछ कहना आडम्बरपूर्ण न होगा, जब कि हमारे समालोचकोंके अनुसार हमारे आदर्श सुदूर भविष्यके स्वप्नमात्र हैं? क्या अराजकता इस बातका दावा कर सकती है कि उसकी कोई फिलासफी है, जब कि यही स्वीकार नहीं किया जाता कि साम्यवादकी भी कोई फिलासफी है? इसीके सम्बन्धमें यथासम्भव पूर्ण स्पष्टताके साथ उत्तर देने जा रहा हूँ। पहले मैं प्राकृतिक विज्ञानसे कुछ मौलिक दृष्टान्त लेकर शुरू करता हूँ, इस उद्देश्यसे नहीं कि हम उनसे अपने सामाजिक भावोंका निर्णय करें, बल्कि इस वजहसे कि प्राकृतिक दृष्टान्तोंके द्वारा हम अपने प्रश्नोंपर आसानीके साथ प्रकाश डाल सकते हैं, क्योंकि उसके तथ्य गणित इत्यादि विज्ञानोंके द्वारा सत्य सिद्ध किये जा सकते हैं, और उलझे हुए मानव-समाजके दृष्टान्तों द्वारा ऐसा करना बहुत कठिन है।

प्रकृत विज्ञानके सम्बन्धमें इस समय हमें एक विशेष उल्लेखनीय बात यह दीख पड़ती है कि विश्वके तथ्योंके सम्बन्धमें और उनकी सम्पूर्ण भावनाओंमें गम्भीर परिवर्तन हो रहा है।

एक समय ऐसा था, जब मनुष्य यह समझता था कि पृथिवी विश्व-ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्र हमारी इस पृथिवीके चारों ओर घूमते हैं। यह पृथिवी, जिसपर मनुष्यका बास है, मनुष्यके लिए सृष्टिका केन्द्र है। वह स्वयं—अपने ग्रह-मंडलका सर्वश्रेष्ठ प्राणी होनेके कारण—अपनी सृष्टिका विशिष्ट जीव है। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंकी सृष्टि उसीके लिए हुई है—ईश्वरका सारा ध्यान उसीकी ओर प्रवर्तित होता है, जो उसके छोटेसे छोटे कार्योंपर भी दृष्टि रखता है, उसके लिए सूर्यकी गतिको रोक देता है और मनुष्य-जातिके अपराधोंका दण्ड देने या पुण्योंका फल देनेके लिए ग्रामों और नगरोंपर वर्षा या वज्र गिराता है। सहस्रों वर्ष तक मनुष्यने विश्वको इसी रूपमें समझ रखा था। सोलहवीं शताब्दीमें सभ्य मानव-जातिकी समस्त भावनाओंमें एक महान परिवर्तन उत्पन्न हुआ, जब कि यह सिद्ध कर दिया गया कि पृथिवी विश्व-ब्रह्माण्डका केन्द्र न होकर सौर-मंडलमें बालूके एक कणके समान है—अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा यह बहुत छोटी है; और सूर्य यद्यपि हमारी इस क्षुद्र पृथिवीकी अपेक्षा बहुत बड़ा है, फिर भी वह असंख्य नक्षत्रोंमें, जिन्हें हम आकाशमें प्रकाशमान और आकाशगंगामें श्रेणीबद्ध देखते हैं, एक नक्षत्रमात्र है। इस असीम विशालताके सामने मनुष्य कितना तुच्छ और उसका आडम्बर कितना उपहासजनक मालूम पड़ता है। उस युगके समस्त दर्शनशास्त्र तथा समस्त सामाजिक और धार्मिक भावनाओंपर सृष्टिक्रमके

इस परिवर्तनका प्रभाव पड़ा। प्राकृतिक विज्ञान, जिसकी वर्तमान उन्नतिपर हम गर्व करते हैं, उस समयसे ही शुरू होता है।

किन्तु इस समय समस्त विज्ञानोंमें उससे भी कहीं बढ़कर एक प्रगाढ़ परिवर्तन हो रहा है, जिसके परिणाम और भी दूरव्यापी होंगे ; और अराजकता इस क्रम विकासकी अनेक अभिव्यक्तियोंमें से एक अभिव्यक्ति है।

गत शताब्दीके ज्योतिषशास्त्रकी किसी रचनाको ले लीजिए। आप उसमें हमारे इस क्षुद्र ग्रह पृथिवीको विश्व-ब्रह्माण्डके केन्द्रमें नहीं पायेंगे ; किन्तु आपको पग-पगपर एक केन्द्रीय नक्षत्र सूर्यकी कल्पना मिलेगी, जो अपने शक्तिशाली आकर्षणसे हमारे नक्षत्र-जगतपर शासन करता है।

इस केन्द्रीय स्थानसे एक शक्ति विकीर्ण होती है, जो ग्रहोंकी गतिका परिचालन करती है और सौर-जगतके सामंजस्यको अक्षुण्ण बनाये रखती है। केन्द्रीय राशिसे उत्पन्न होनेके कारण ये नक्षत्र मानो उससे मुकुलित हुए हों। उनकी उत्पत्ति इस राशिसे हुई है, इस ज्योतिषमान नक्षत्रके कारण उनकी गतियोंमें सामंजस्य रहता है, उनकी कक्षाएँ एक दूसरीसे नियमित दूरीपर रहती हैं और उनमें जीवन रहता है, जो जीवन उन्हें अनुप्राणित और उनके बहिर्भागको विभूषित करता है। जब किसी विक्षोभके कारण उनकी गतिमें बाधा पड़ती है, और वे अपनी कक्षाओंसे विचलित हो जाते हैं, उस समय केन्द्रीय ग्रह सौर-मंडलमें फिरसे श्रृंखला उत्पन्न कर देता है। वह उसके अस्तित्वको निश्चित और चिरस्थायी बनाता है।

किन्तु यह भावना भी अन्य भावनाओंके समान अब लुप्त हो रही है। सूर्य तथा अन्य बड़े-बड़े ग्रहोंपर अपने ध्यानको केन्द्रित करनेके बाद ज्योतिषी लोग अब अत्यन्त छोटे-छोटे ग्रहोंका, जो विश्वको परिपूर्ण कर रहे हैं, अध्ययन करने लगे हैं। उन्होंने यह पता लगाया है कि ग्रहों और नक्षत्रोंके बीच जो स्थान हैं, वे सभी दिशाओंमें छोटे-छोटे द्रव्योंके समूहसे परिपूर्ण और अतिक्रम होते रहते हैं। ये द्रव्य पृथक् रूपमें अदृश्य और अत्यन्त सूक्ष्म हैं, किन्तु सामूहिक रूपमें सर्वशक्तिमान हैं।

ये ही अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुएँ द्रुतगतिसे अनन्त अवकाशके बीचसे होकर दौड़ती रहती हैं। उनमें प्रत्येक स्थानमें निरन्तर संघर्ष, एकत्रीकरण और विश्लेषण होता रहता है। आधुनिक ज्योतिषी इन्हीं वस्तुओंको, उनकी गतिविधियोंको, जो अपने अंशोंको अनुप्राणित करती हैं, और उनके सम्पूर्ण सामंजस्यको सौर-मंडलकी उत्पत्तिका कारण बताते हैं। आगे चलकर यह भी हो सकता है कि पृथिवीका गुरुत्वाकर्षण इन्हीं सूक्ष्म वस्तुओंकी अश्रृंखल और असम्बद्ध गतिविधियोंका (अणुओंके कम्पनका, जो सब दिशाओंमें व्यक्त होता है) परिणाम समझा जाय। इस प्रकार केन्द्र, शक्तिका उद्गम-स्थान, जो आरम्भमें पृथिवीसे सूर्य तक स्थानान्तरित हुआ था, अब विकीर्ण और विस्तृत मालूम पड़ता है। यह सर्वत्र है, और किसी एक ख़ास जगहमें नहीं है। ज्योतिषशास्त्रके द्वारा हम यह देखते हैं कि सौर-मंडलकी रचना अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुओंको लेकर होती है ; जिस शक्ति द्वारा सौर-मंडलका नियमन होता है, वह शक्ति स्वयं इन्हीं सूक्ष्म वस्तुओंके समुदायोंमें संघर्ष होते रहनेका परिणाम है। नक्षत्र-मंडलमें सामंजस्य इसीलिए बना रहता है कि यह एक योजना है, उन असंख्य गतियोंका परिणाम है, जो परस्पर एकत्र, पूर्ण और साम्यभाव धारण करती रहती हैं।

इस नवीन भावनाके साथ-साथ विश्वका सम्पूर्ण स्वरूप ही परिवर्तित हो जाता है। संसारपर किसी शक्ति द्वारा शासन होनेकी धारणा, पूर्व निश्चित नियम तथा पूर्व कल्पित सामंजस्य लुप्त हो जाते हैं, और उनका स्थान ग्रहण कर लेता है वह सामंजस्य, जिसका आभास Fourier को मिला था, और जो असंख्य वस्तुओंकी विश्रृंखल और असम्बद्ध गतियोंका परिणाम है।

इन असंख्य वस्तुओंमें प्रत्येककी गति पृथक्-पृथक् है, और वे सब एक दूसरेके साथ सामंजस्य रखती हैं।

केवल ज्योतिषशास्त्रमें ही यह परिवर्तन हो रहा हो, सो बात नहीं। समस्त शास्त्रोंके सिद्धान्तमें बिना किसी अपवादके यह परिवर्तन हो रहा है; चाहे वे शास्त्र प्रकृतिके अध्ययनसे सम्बन्ध रखते हों, या मानव-अध्ययनसे।

भौतिक विज्ञानमें ताप, चुम्बकशक्ति और विद्युतकी सत्ता लुप्त हो जाती है। इन दिनों यदि कोई जड़वादी उत्तप्त या विद्युन्मय शरीरके सम्बन्धमें कुछ कहता है, तो वह इसमें किसी अचेतन समूहको नहीं देखता, जिसमें किसी अज्ञात शक्तिको जोड़नेकी आवश्यकता हो। वह इस शरीरमें और उसके चतुर्दिक स्थानमें उन अत्यन्त छोटे-छोटे अणु-परमाणुओंकी गति और कम्पनको जाननेका प्रयत्न करता है, जो सब दिशाओंमें प्रचण्ड वेगसे दौड़ते रहते हैं, जिनमें स्पन्दन, गति और जीवन होता है, और जो अपने स्पन्दन, आघात और जीवनसे ताप, प्रकाश, चुम्बक या विद्युत उत्पन्न करते हैं। सेन्द्रिय जीवन (Organic Life)से सम्बन्ध रखनेवाले विज्ञानमें जाति और उसके विभिन्न रूपोंकी भावनाका स्थान व्यक्तिके विभिन्न रूपोंकी भावना ग्रहण कर रही है। वनस्पतिशास्त्रवेत्ता और जन्तु-विद्याविद् व्यक्तिका, उसके जीवनका तथा उसने अपनी परिस्थितिके अनुकूल अपनेको जो बना लिया है, उसका अध्ययन करते हैं। शुष्कता या आर्द्रता, सर्दी या गर्मी, पोषणकी प्रचुरता या दरिद्रता तथा वाह्य परिस्थितिकी क्रियाके प्रति उसकी जो न्यूनाधिक संवेदनशीलता होती है और उसकी प्रक्रियासे उसमें जो परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, उनसे जातियोंकी उत्पत्ति होती है; और जातियोंके परिवर्तन इस समय जीवशास्त्रवेत्ताके लिए परिणाममात्र हैं—प्रत्येक व्यक्तिमें पृथक्-पृथक् जो परिवर्तन हुए हैं, उसीकी समष्टि है। व्यक्तिके अनुसार ही जाति होगी। व्यक्तियोंके ऊपर उनकी परिस्थितिका, जिन परिस्थितियोंमें वे रहते हैं, असंख्य प्रभाव पड़ता है और उनमें प्रत्येक अपने-अपने ढंगसे अपनी परिस्थितिके अनुकूल अपनेको बनाता है।

इस समय जब कोई शरीरशास्त्रवेत्ता किसी वृक्ष या प्राणीके जीवनके सम्बन्धमें कुछ कहता है, तो उसका लक्ष्य किसी एक अदृश्य व्यक्तित्वपर न होकर एक समुदायपर, असंख्य पृथक्-पृथक् व्यक्तियोंकी जीव-समष्टिपर होता है। वह अग्निवर्द्धक, विषयपरायण स्नायविक इन्द्रियोंके संघकी चर्चा करता है, जो आपसमें एक दूसरेसे घनिष्टतासे मिली हुई हैं और एक दूसरेकी कुशलता या अकुशलताका परिणाम अनुभव करती हैं; किन्तु प्रत्येकका अपना जीवन अलग-अलग होता है। अवयवोंके प्रत्येक भागकी रचना स्वतन्त्र क्षुद्र कोषों द्वारा हुई है, जो आपसमें मिलकर अपने अस्तित्वके प्रतिकूल दशाओंके विरुद्ध संग्राम करते हैं। व्यक्ति भी संघोंका एक विश्व है, बल्कि यों कहना चाहिए कि वह स्वयं एक सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड है।

समष्टिभूत प्राणियोंके इस विश्वमें शरीरशास्त्र-वेत्ताको स्नायुकेन्द्र, मांसतन्तु और रक्तके स्वतन्त्र कोष दीख पड़ते हैं। वह उन असंख्य श्वेत परमाणुओंको पहचानता है, जो जीवाणुओंसे संक्रान्त शरीरके अंगोंमें आक्रमणकारियोंके साथ युद्ध करनेके लिए प्रवेश करते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि आधुनिक कालमें उसे सूक्ष्म कोषमें स्वतन्त्र अवयव देख पड़ते हैं, जिनमें प्रत्येकका अपना पृथक् जीवन होता है, जो स्वयं अपने अस्तित्वपर दृष्टि रखता है और दूसरोंके साथ मिलकर तथा समूह बनाकर उसे प्राप्त करता है।

संक्षेपमें हम यों कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति इन्द्रियोंका विश्व है, प्रत्येक इन्द्रिय कोषोंका विश्व है और प्रत्येक कोष अत्यन्त छोटे-छोटे कोषोंका विश्व है; और इस जटिल विश्वमें समग्रकी कुशलता प्रत्येक सूक्ष्मतम अणुकी कुशलताकी समष्टिपर

सम्पूर्णतया निर्भर करती है। इस प्रकार जीवनके सिद्धान्तमें ही सम्पूर्ण क्रान्ति उत्पन्न हो जाती है ; किन्तु खासकर मनोविज्ञानमें ही यह क्रान्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न करती है।

अभी हाल तक मनोविज्ञानवेत्ता मनुष्यको एक सम्पूर्ण अविभाज्य प्राणी बताया करते थे। धार्मिक परम्पराके प्रति सत्यनिष्ठ रहते हुए, वह मनुष्योंको भला और बुरा, बुद्धिमान और मूर्ख, स्वार्थी और परोपकारीकी श्रेणियोंमें गिना करते थे। अठारहवीं शताब्दीके जड़वादी भी आत्माकी तथा उसके अविभाज्य अस्तित्वकी सत्ता मानते थे।

किन्तु इस समय यदि कोई मनोविज्ञानवेत्ता इस तरहकी बातें करे, तो उसके सम्बन्धमें हम क्या कहेंगे ? आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ता मनुष्यमें पृथक् गुणों तथा स्वतन्त्र प्रवृत्तियोंका समूह पाता है, जो आपसमें एक समान होती हैं, अपना कार्य स्वतन्त्र रूपमें करती हैं, परस्पर साम्यभाव रखती हैं और बराबर एक दूसरेका विरोध करती रहती हैं। समष्टि-रूपमें मनुष्य अपनी योग्यताओंका, अपनी सम्पूर्ण प्रवृत्तियों, मस्तिष्क-कोषों और स्नायु-केन्द्रोंका परिणाममात्र है, जो परिणाम सदा परिवर्तनशील होता है। ये सब एक दूसरेके साथ इस प्रकार घनिष्ट रूपसे सम्बद्ध हैं कि उनमें प्रत्येककी प्रतिक्रिया अन्य सबोंपर होती रहती है ; किन्तु उनका अपना पृथक् जीवन होता है, और वे किसी केन्द्रीय अवयव—आत्मा—के अधीनस्थ नहीं होते।

इस प्रकार आप देखेंगे कि इस समय सम्पूर्ण प्रकृति-विज्ञानमें एक गम्भीर परिवर्तन हो रहा है। यह बात नहीं है कि इस समय छोटी-छोटी बातों तकका विश्लेषण हो रहा है, जिनकी पहले उपेक्षा की गई थी। नहीं ! ये तथ्य कुछ नये नहीं हैं ; किन्तु उनपर विचार करनेकी प्रणालीका इस समय क्रमविकास हो रहा है। और यदि हमें कुछ शब्दोंमें इस प्रवृत्तिका लक्षण बताना हो, तो हम कह सकते हैं कि यदि पूर्वकालमें विज्ञानने परिणामों और बड़े-बड़े अंकोंका अध्ययन करनेका प्रयत्न किया था, तो इस समय वह अत्यन्त छोटे-छोटे अंकोंके अध्ययनका प्रयत्न करता है, जिसके जोड़से उन अंकोंकी रचना हुई है और जिसमें वह इस अन्तरंग समष्टिके साथ-साथ स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व पाता है।

मानवी बुद्धिको प्रकृतिमें जो सामंजस्य दीख पड़ता है, और जो सामंजस्य दृश्योंकी स्थिरताका प्रतिपादनमात्र है, उसे आधुनिक वैज्ञानिक इस समय जितना अधिक समझ रहा है, उतना पहले उसने कभी नहीं समझा था ; किन्तु अब आधुनिक वैज्ञानिक उसकी व्याख्या करते हुए यह नहीं कहता कि यह सामंजस्य किसी बुद्धिमान आदमीने किसी पूर्व निश्चित योजनाके अनुसार स्थापित किया है।

जिसे लोग 'प्राकृतिक नियम' कहा करते थे, वह घटनाओंके बीच एक निश्चित सम्बन्धके सिवा और कुछ नहीं है, जिस सम्बन्धको हम क्षीण रूपमें देखते हैं, और प्रत्येक 'नियम' कारण-सम्बन्धी घटनाका अस्थायी रूप धारण करता है ; अर्थात्—यदि अमुक दशाओंमें अमुक घटना हो, तो उसके परिणाम-स्वरूप अमुक घटना होगी। घटनासे बाहर कोई भी नियम नहीं है—प्रत्येक घटना अपनी परवर्ती घटनापर नियमन करती है, किसी नियमपर नहीं।

जिसे हम प्रकृतिका सामंजस्य कहते हैं, उसमें कोई भी बात पूर्व कल्पित नहीं होती। संघर्ष और संग्रामकी सम्भावना इसे सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है। इस प्रकारकी घटना शताब्दियों तक वर्तमान रहेगी, क्योंकि जिस योजनाकी, साम्यावस्थाकी यह द्योतक है, उसे स्थापित होनेमें शताब्दियाँ लगी हैं ; किन्तु इस प्रकारकी कोई दूसरी घटना एक क्षणसे अधिक तक नहीं ठहरेगी, यदि उस प्रकारका क्षणस्थायी साम्य एक क्षणमें ही उत्पन्न हुआ होगा। हमारे सौर-मंडलके ग्रह यदि प्रतिदिन आपसमें टकराते नहीं, न एक दूसरेको नष्ट करते हैं और लाखों वर्ष तक क़ायम रहते हैं, तो

इसका कारण यह है कि वे उस साम्यावस्थाका निदर्शन करते हैं, जिसे असंख्य अंध-शक्तियोंके परिणाम-स्वरूप स्थापित होनेमें लाखों शताब्दियाँ लग गई हैं। ज्वालामुखीके आघातोंसे यदि महादेशोंका निरन्तर ध्वंस नहीं होता रहता है, तो इसका कारण यह है कि एक-एक कणको लेकर उनकी रचनामें हज़ारों शताब्दियाँ लग गई हैं, तब वे अपने वर्तमान रूपको प्राप्त हुए हैं; किन्तु बिजली एक क्षणके लिए ही स्थायी होगी, क्योंकि यह साम्यावस्थाके क्षणिक भेदका—शक्तिके आकस्मिक पुनर्वितरणका—निदर्शन है।

इस प्रकार सामंजस्य एक क्षणस्थायी समाधानके रूपमें प्रतीत होता है, जो समस्त शक्तियोंके बीच स्थापित हो चुका है और जो एक सामयिक योजनामात्र है। और यह योजना केवल एक शर्तपर ही ठहर सकती है। वह शर्त है इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहना। परस्पर विरोधी क्रियाओंके परिणामका वह प्रतिक्षण निदर्शन करती है। इनमें किसी भी एक शक्तिकी क्रियामें बाधा पड़नेसे सामंजस्य लुप्त हो जाता है। शक्ति अपने परिणामको संचित करेगी, उसे प्रकाशमें आना ही पड़ेगा, वह अपनी क्रियाका अवश्य प्रयोग करेगी, और यदि अन्य शक्तियाँ इसकी अभिव्यक्तिमें बाधा पहुँचायेंगी, तो इससे उसका लोप नहीं होगा, बल्कि वर्तमान व्यवस्थाको उलट-पलट करके तथा सामंजस्य नष्ट करके एक नये प्रकारकी साम्यावस्था ढूँढ़ निकालने और एक नवीन योजनाकी रचनाके लिए कार्य करनेमें उसका अन्त हो जायगा। ज्वालामुखीका विस्फोट इसी रूपमें होता है। ज्वालामुखीकी रुकी हुई शक्ति स्तम्भित लावाओंको भंग करके—जिनके कारण वह अपने गैसको, लावाको, तापोज्वल भस्मको बाहर नहीं फेंक सकती थी—नष्ट हो जाती है। मानव-समाजकी क्रान्तियाँ भी इसी तरहकी होती हैं।

मानव-समाजसे सम्बन्ध रखनेवाले विज्ञानमें भी इसके साथ-ही-साथ समान रूपमें रूपान्तर हो रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास राज्योंका इतिहास होनेके बाद राष्ट्रोंका और फिर इसके बाद व्यक्तियोंके अध्ययनका इतिहास बन जाता है। इतिहासकार यह जानना चाहता है कि राष्ट्र किस प्रकारके मनुष्यों द्वारा गठित हुआ था, उनका रहन-सहन कैसा था, उनके विश्वास क्या थे, उनकी जीविकाके साधन क्या थे, समाजका कौनसा आदर्श उनके सामने परिलक्षित था और उक्त आदर्श तक पहुँचनेके लिए उनके पास साधन क्या थे? और इन सब शक्तियोंकी क्रियासे, जिनकी पहले उपेक्षा की गई थी, वह महान ऐतिहासिक घटनाकी व्याख्या करता है।

इसी प्रकार वह विज्ञानवेत्ता, जो व्यवस्थाशास्त्रका अध्ययन करता है, अब किसी विधिबद्ध विधानसे सन्तुष्ट नहीं होता। मानव-जाति-विज्ञानवेत्ताके समान वह उन संस्थाओंका मूलकारण जानना चाहता है, जो संस्थाएँ एकके बाद दूसरी स्थापित होती हैं। वह युग-युगान्तरके उनके क्रमविकासका अनुगमन करता है, और इस अध्ययनमें वह स्थानीय रीति-नीति, रश्म-रिवाज-सम्बन्धी क़ानून—जिसके द्वारा अज्ञात जनताकी रचनात्मक प्रतिभा सब कालमें प्रकट हुई है—और इन रीति-रिवाजोंकी अपेक्षा लिखित क़ानूनपर बहुत कम ध्यान देता है। इस दिशामें एक सम्पूर्ण नूतन विज्ञानका सम्पादन हो रहा है। यह विज्ञान अब तककी निश्चित भावनाओंको, जिन्हें हमने स्कूलमें ग्रहण किया था, उलट-पलट देगा और इतिहासकी उसी रूपमें व्याख्या करेगा, जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान प्राकृतिक घटनाओंकी व्याख्या किया करता है।

अर्थशास्त्र, जो प्रारम्भमें राष्ट्रोंके धनका अध्ययन समझा जाता था, इस समय व्यक्तियोंके धनका अध्ययन बन गया है। वह इस बातके जाननेकी कम चिन्ता करता है कि अमुक राष्ट्रका विदेशी वाणिज्य विस्तृत है या नहीं; वह इस बातका आश्वासन चाहता है कि किसान या श्रमजीवीकी झोपड़ीमें रोटीका अभाव तो नहीं है। वह प्रत्येक द्वारपर जाता है, चाहे वह राज-प्रासाद हो, या ग़रीबकी कुटिया, और वह धनी तथा

दरिद्र दोनोंसे प्रश्न करता है—आपके प्रयोजन और विलास-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी कहाँ तक पूर्ति हुई है ?

जब वह यह देखता है कि प्रत्येक राष्ट्रके अधिकांश लोगोंकी अत्यन्त ज़रूरी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं होतीं, तो वह अपने-आपसे उसी प्रकार प्रश्न करने लगता है, जिस प्रकार एक शरीरशास्त्रवेत्ता किसी पौधे या पशुके सम्बन्धमें प्रश्न करता है—"ऐसे कौनसे उपाय हैं, जिनसे सब लोगोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति हो और साथ ही शक्तिका कम से-कम व्यय हो ? समाज किस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिको और फलत: सब लोगोंको अधिक-से-अधिक सन्तोषकी गारंटी दे सकता है ?" अर्थ-विज्ञानका रूपान्तर इसी दिशामें हो रहा है ; और अब तक एक साधारण घटनाके रूपमें—जिसका अर्थ अल्पसंख्यक धनी सम्प्रदायके स्वार्थके लिए किया जाता था—रहकर यह एक वास्तविक विज्ञान—मानव-समाजका शरीरशास्त्र—बनता जा रहा है।

इस प्रकार जब कि एक नवीन दर्शनका, ज्ञानके एक नवीन दृष्टिकोणका, सृजन हो रहा है, हम यह देख सकते हैं कि समाजके सम्बन्धमें एक विभिन्न धारणा—प्रचलित धारणासे सर्वथा विभिन्न—इस समय निर्मित हो रही है। अराजकताके नामपर समाजके अतीत और वर्तमान जीवनकी एक नवीन व्याख्या की जा रही है, ~~और इसके~~ साथ-साथ हमें उसके भविष्यके सम्बन्धमें भी पूर्वाभास मिलता है। भूत और भविष्य दोनोंका अर्थ उसी भावनासे किया जाता है, जो प्राकृतिक विज्ञानकी उपर्युक्त व्याख्यामें प्रयत्न हुई है। अतएव अराजकता एक नवीन दर्शनशास्त्रके उपादानके रूपमें प्रतीत होती है, और यही कारण है कि अराजकवादियोंका आधुनिक समयके महान विचारशील विद्वान और कवियोंके साथ अनेक विषयोंके सम्बन्धमें सम्पर्क होता रहता है।

असल बात तो यह है कि जिस मात्रामें मानवीय बुद्धि अल्पसंख्यक पुरोहित, सेनापति और जजोंके—जो सब अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए प्रयत्न करते हैं और जिस प्रभुत्वको वेतनभोगी वैज्ञानिकों द्वारा स्थायी बनानेकी कोशिश की जाती है—भावोंसे अपनेको मुक्त कर पाती है, उसी मात्रामें समाजकी एक ऐसी धारणा उत्पन्न होती है, जिसमें इन शासक अल्प सम्प्रदायके लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता। इस प्रकारका समाज पहलेकी पीढ़ियोंके परिश्रमसे संचित सामाजिक पूँजीपर अपना अधिकार जमाता है, अपना संगठन इस प्रकार करता है, जिससे इस पूँजीका उपयोग सबके स्वार्थोंके लिए हो, और शासक अल्प सम्प्रदायोंके अधिकारको पुनर्स्थापित किये बिना अपनेको स्थापित करता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकारकी क्षमताओं, मानव-प्रकृतियों और व्यक्तिगत शक्तियोंका समावेश होता है। यह किसीको भी अपने बहिर्गत नहीं रखता। यह संग्राम और विवादके लिए भी आह्वान करता है, क्योंकि हम यह जानते हैं कि विवादके समयमें, जब तक स्वतन्त्रतापूर्वक यह विवाद होता रहा और अधिकारियोंने किसीका पक्ष ग्रहण नहीं किया, मानव-प्रतिभाकी उच्चतम उड़ान हुई थी, और इससे महान उद्देश्य सिद्ध हुए थे। अतीतकी संचित निधिमें समाजके सब लोगोंके समान अधिकारको एक तथ्यके रूपमें स्वीकार करते हुए यह शासक और शासितोंमें, प्रभुत्व करनेवाले और जिन लोगोंपर प्रभुत्व किया जाता है उनमें तथा शोषण करनेवाले और जिनका शोषण किया जात है उनमें कोई भेद नहीं मानता, और अपने बीच एक प्रकारकी सामंजस्यपूर्ण सुसंगति स्थापित करनेका प्रयत्न करता है। उसका यह प्रयत्न मनुष्योंको किसी प्रभुत्वके अधीनस्थ करनेके लिए नहीं होता, जो प्रभुत्व मिथ्या रूपमें समाजका प्रतिनिधि मान लिया जाता है और न एकरूपता स्थापित करनेके लिए होता है, बल्कि सब लोगोंको स्वतन्त्र रूपमें विचार करने, स्वतन्त्र रूपमें कार्य करने और स्वतन्त्र रूपमें मिलने-जुलनेके लिए उत्प्रेरित करनेके लिए होता है।

यह व्यक्तित्वका चरम विकास चाहता है, और

गुरु नानक और गुरु गोविन्द सिंह

एक काल्पनिक चित्र

'विशाल भारत'

इसके साथ ही यह भी चाहता है कि व्यक्तिके स्वेच्छा-सम्मिलनका उसके सब रूपोंमें, सब मात्राओंमें और समस्त कल्पनीय उद्देश्योंके लिए उच्चतम विकास हो। इस प्रकारके सम्मिलनोंमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है; किन्तु उनके साथ स्थायित्वके उपादान भी रहते हैं, और वे निरन्तर नवीन रूप धारण करते रहते हैं, जो सब लोगोंकी बहुसंख्यक आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए उपयुक्त होते हैं।

ऐसे समाजमें, जिसे पूर्व निश्चित क़ानून द्वारा स्थायी आकार धारण करनेवाले नियम अप्रीतिकर मालूम पड़ते हैं, और जो विभिन्न शक्तियों तथा प्रत्येक प्रकारके प्रभावोंके बीच परिवर्तनशील और नैमित्तिक साम्यमें सामंजस्यकी खोज करता है, ये शक्तियाँ मनुष्यके पराक्रमको अग्रसर करती हैं और ये शक्तियाँ प्रगतिके मार्गमें तथा स्वच्छ प्रकाशमें अपनेको स्वतन्त्रापूर्वक विकसित करने और एक दूसरेके भारमें समता क़ायम रखनेमें अनुकूल सिद्ध होती हैं।

[क्रमश:

उत्तराखंडके पथपर

प्रो० मनोरंजन, एम० ए०

उत्तराखंडकी यात्रा हरद्वारसे ही प्रारम्भ हो जाती है। यहींसे लोग बदरीनाथ जाते हैं, केदारनाथ जाते हैं, गंगोत्री जाते हैं, जमुनोत्री जाते हैं। इसीसे इसे हरद्वार भी कहते हैं, हरिद्वार भी कहते हैं, गंगाद्वार भी कहते हैं। हरद्वार—क्योंकि यहींसे शिवालिक पर्वतश्रेणी पार करके लोग केदारनाथ जाते हैं, और कैलाश-मानसरोवर जानेका इधरसे भी रास्ता है। हरिद्वार—क्योंकि यहींसे श्रीबदरीनारायण जाते हैं। और गंगाद्वार तो वह प्रत्यक्ष है ही। उसे देखने ही से उस नामकी सार्थकता मालूम हो जाती है। आजसे लगभग सोलह वर्ष हुए, जब गुरुकुल-कांगड़ी उस पार था, मुझे गंगा पार करके उधर जाना पड़ा था। धारा काफ़ी तेज़ थी। उस पार जानेके लिए 'तमेड़'* का सहारा लेना पड़ा था। उसी तमेड़पर बैठकर मैंने बीच गंगासे देखा, सामने शिवालिककी ऊंची दीवार खड़ी थी। जान पड़ता था, मानो किसी बड़े नगरकी शहरपनाह हो और उसके बीचो-बीच बड़ासा सदर दरवाज़ा खुला हुआ था—विशाल फाटक-सा। उसीके बीचसे गंगाजी आ रही थीं पर्वत-वक्ष विदीर्ण करके। उसी दिन मुझे गंगाद्वारकी सार्थकता विदित हुई।

मैं वहीं पहले-पहल हरद्वार गया था, और ढाई महीने ठहरा भी था उससे तीन मील हटकर ज्वालापुर-महाविद्यालयमें। वहीं आचार्य शुद्धबोधतीर्थ और गुरुवर पं० नरदेवशास्त्री इत्यादिके सत्संगका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था। उसी सिलसिलेमें मैंने आसपासके सभी स्थान देख लिये थे—ज्वालापुर, कनखल, मायापुर, हरद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला।

---

* टीनकी कनस्तरोंको इकट्ठा करके बाँध देते हैं और उनके चारों ओर बाँसकी खपाँची कस देते हैं। उसीको तमेड़ कहते हैं। यात्री उसीपर बैठ जाते हैं, और खेनेवाले लौकीका सहारा लेकर पानीमें ही रहते हैं और तमेड़को ले चलते हैं। उस सवारीकी सतह पानीसे कुछ ही ऊँची रहती है, और कभी-कभी तो लहर आकर शरीरके निम्न-भागको भिगो जाती है। बड़ी ही खतरनाक होती है वह सवारी। इस प्रकार दम साधकर बैठना पड़ता है, जिसमें बैलेंस (Balance) खराब न हो। ज़रा हिले-डुले और नीचे पानीमें—और वह पानी! उफ्—विशाल वेगसे उछलती, कूदती, गरजती हुई जलधारा, जिसमें गिरो, तो आफ़त आ जाय। नावकी तो ताकत नहीं कि उधरकी बढ़ी हुई गंगामें चल सके। लहरें उसे उठाकर चट्टानपर पटक दें और वह टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो जाय। इसीसे तमेड़का सहारा लेना पड़ता है। —लेखक

ज्वालापुरमें हरद्वारके पंडे रहते हैं। वहाँ कई सालसे गुरुकुल महाविद्यालय भी है, जिसके कारण उसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। वैसे सुन्दर, दिव्य और स्वास्थ्यप्रद स्थान मैंने बहुत कम देखे हैं, और वहाँके कुँएके पानीमें जैसा स्वाद है, उससे अच्छा स्वाद तो और कहींके जलमें मुझे मिला ही नहीं।

सन् १९३१ में जब मैं दुबारा ज्वालापुर गया, तो देखा कि मेरी पहली और दूसरी यात्राके बीचमें बहुतसे परिवर्त्तन हो गये हैं। कांगड़ीका गुरुकुल टूटकर ज्वालापुरमें ही आ गया है, जिससे उसकी रौनक़ और भी बढ़ गई है। नहरके किनारे-किनारे उसका दृश्य बड़ा ही सुन्दर और रमणीक दिखलाई देता है।

उसके बाद ही कनखल है—ठीक गंगाजीके किनारे। यहीं प्रसिद्ध दक्षयज्ञ हुआ था, जहाँ सतीने पतिके अपमानके कारण अपना शरीर त्याग किया था। गंगा-तटपर दक्षप्रजापतिका मन्दिर है—पक्का-सा घाट, सुन्दर छाया। बैठकर गंगाका दृश्य देखनेमें बहुत आनन्द आता है।

कनखलसे मायापुर आते हैं। यह वही प्रसिद्ध मायापुरी है, जिसकी गिनती भारतकी सप्त पुरियोंमें है—

"अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिकाः॥"

मायापुरके बाद ही हरद्वार है—हम लोगोंका पुराना तीर्थ, जहाँ न-जाने किस कालसे श्रद्धा और भक्तिसे प्रेरित हो यात्रियोंका दल आता ही रहता है। यहीं पहले-पहल कलि-कलुषविनाशिनी गंगा समतल भूमिपर आती हैं:—

"करती हुई ज़मींपर मोती निसार आई,
दर्शनको आह, हरके, तू हरद्वार आई।"

उस पार चंडी-पर्वत दिखलाई देता है। आजकल अंगरेज़ोंकी इंजीनियरिंगसे उधरका दृश्य और भी सुन्दर हो गया है। नीलधाराका दर्शनकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। हरकी पैड़ीका तो कहना ही क्या है! सन्ध्या समय जिसने उसका सुन्दर दृश्य देखा है, वह आजन्म उसे भूल नहीं सकता। श्रद्धालु यात्रियोंकी भीड़, उपदेशकों-भजनीकोंकी मंडली, गंगा-वक्षपर तैरती हुई असंख्य दीपमालिकाओंकी दिव्य उज्ज्वल ज्योति! देखकर चित्र आप-ही-आप श्रद्धा-भक्तिके भावसे भर उठता है।

हरद्वारसे पन्द्रह मीलपर ऋषिकेश है। सोलह वर्ष पहले जब मैं वहाँ गया था, उस समय 'ऋषिकेश रोड' नामका एक स्टेशन था, जो आज रायवाला हो गया है। यात्री वहींसे ऋषिकेश जाया करते थे; किन्तु दूसरी बार जब गया, उस समय देखा कि हरद्वारसे अब ट्रेन भी जाती है और लारियाँ भी। रास्तेमें अनेक पवित्र स्थानोंके दर्शन भी हो जाते हैं, जिनमें भीमगोडा और सत्यनारायण विशेष उल्लेखनीय हैं।

ऋषिकेशमें, जहाँ श्रीरघुनाथजीका मन्दिर है, पास ही ठीक गंगा-तटपर वृक्षोंकी सघन छाया है। वहाँसे गंगाका दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। जेठ-वैशाखकी दुपहरीमें भी गरमी नहीं मालूम होती। बड़ा ही सुहावना है वह स्थान। एक दिन सारी दुपहरी बैठा-बैठा मैं उसीके दृश्य देखता रहा और मनकी उमंगमें गुनगुनाता रहा—

पर्वत पर उछल-उछलकर चट्टानों से टकराती,
मतवाली यह सरिता यों किस ओर वेगसे जाती?
निर्मम अत्याचारीके दुर्गम कारागारोंको,
क्या तोड़ चला विद्रोही पत्थरकी दीवारोंको।
अथवा सन्तप्त हृदयपर करने नवरसका सिंचन,
व्याकुल हो आज चला है यह पर-उपकारीका मन।
स्वर्गीय सुन्दरीका है अथवा उद्वेलित यौवन,
वा पितृगृहमें बालाका है मतवाला अल्हड़पन।

अन्तिम लाइनमें 'बालाका मतवाला अल्हड़पन' मुझे ठीक जँचा।

लक्ष्मणझूलेमें गंगाका दूसरा ही रूप है। वहाँ वह बिलकुल नहर-सी दिखलाई देती है। छोटा-सा
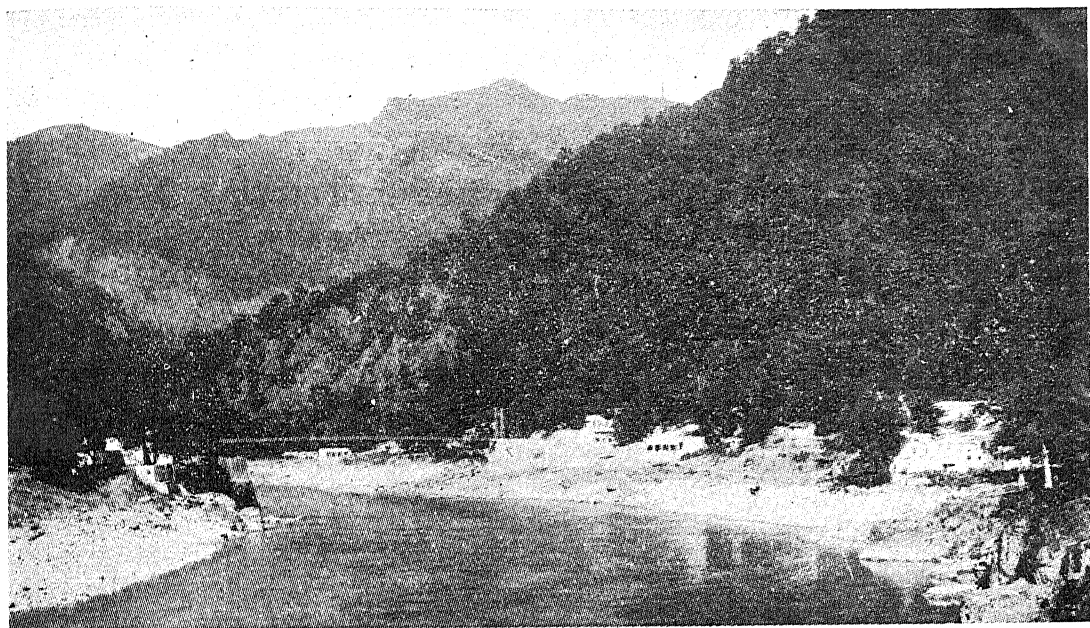
लछमनझूला

पाट, उसपर झूलेका पुल—मज़बूत लोहेका बना हुआ, फिर भी जिसपर चढ़नेपर हल्के हिंडोलेका मज़ा आता है।

जैसा कि पहले लिख चुका हूँ, मैं वहाँसे दो मील और आगे गरुड़चट्टी तक गया था। वहाँ मैंने जलप्रपातके पास देखा था, किस प्रकार पेड़के पत्ते इत्यादि धीरे-धीरे पत्थरके रूपमें परिवर्तित हो रहे थे। ऊपर वशिष्ठाश्रमसे कन्द-मूल भी उखाड़ लाया था।

[२]

बस, इस यात्रासे पहले मेरी वहीं तक पहुँच हो पाई थी; किन्तु इस बार तो अन्त तक जानेकी बात थी। इतने दिनोंकी अभिलाषा आज पूरी होने जा रही है। इतना पुराना स्वप्न आज वास्तविकतामें परिवर्तित होने जा रहा है, इन्हीं बातोंका ध्यान रह-रहकर मेरे चित्तमें आ रहा था, जब कि इस बार मैं गंगाके किनारे हरद्वारके मकानमें बैठकर बाहरके दृश्यका निरीक्षण कर रहा था। किन्तु इस बारकी यात्रामें तथा पहलेकी यात्रामें बहुत भेद था। पिछली बार जब-जब मैं यहाँ आया था, तब हृदयमें सिर्फ़ भ्रमणकी ही कामना थी; लेकिन इस बार मैं पूरा तीर्थ-यात्री था और यात्रीके सारे कर्तव्योंका समुचित रूपसे पालन करनेको तत्पर था।

अस्तु, इस बार मैं पंडोंसे अपना पिण्ड न छुड़ा सका। जहाँ हम लोग ठहरे थे, वहाँ झुण्डके झुण्ड पंडे बाबाआदमके ज़मानेकी पोथियाँ लिये आ पहुँचे और प्रश्नोंकी बौछारोंसे नाकमें दम कर दिया। "बाबूजी, आप कहाँसे आये हैं? कौन ज़िला है? पिताका नाम क्या है? आपके यहाँसे पहले कोई आया था या नहीं? आपका पंडा कौन है?" इत्यादि, इत्यादि। इतना ही नहीं, वे अपने-अपने पोथे खोलकर पढ़ने भी लगते थे, सुनाने लगते थे, गले पड़ जाते थे। कुछ कहो, तो कहते थे—"बाबूजी, यही हमारी खेती है, इसे नष्ट न कीजिए।" लेकिन यहाँके पंडोंमें मैंने एक विशेषता देखी। वे वैसे उद्दण्ड नहीं होते और आपकी सेवा भी प्राणपणसे करते हैं। इस पहाड़ी यात्रामें आपको इनसे आराम काफ़ी मिलता है। अनजान आदमीके लिए इस अनजान प्रदेशकी

यात्रा असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है, और ऐसे अवसरपर पंडोंसे सहायता काफी मिलती है। फिर भी मैं इन्हें 'गाइड' से बढ़कर नहीं समझता और न इन्हें बहुत कुछ देना चाहिए। इनमें अधिकांश निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं, जिन्हें संकल्पके मन्त्र पढ़ना भी ठीकसे नहीं आता ! और मेरे जानते तो
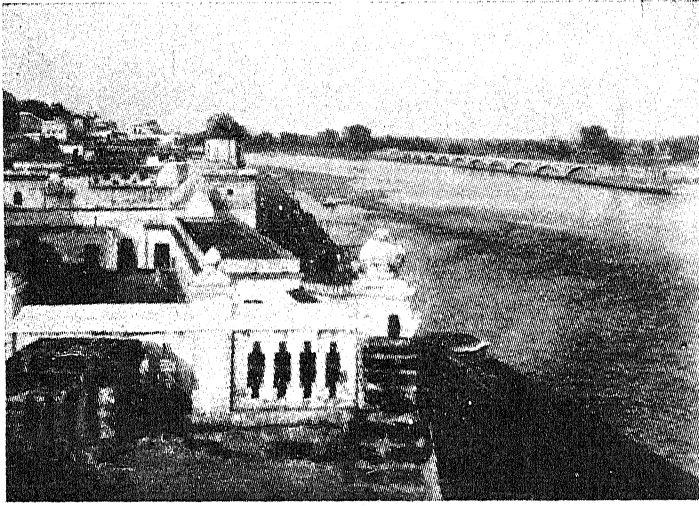
हरद्वार — ब्रह्मकुण्डके समीप गंगाका दृश्य

इनमें अनेक ऐसे हैं, जो ब्राह्मण-कर्म भी बहुत ही कम जानते हैं। कम-से-कम मेरा अनुभव तो ऐसा ही हुआ। अस्तु, मेरा तो ऐसा खयाल है कि इनको प्रचुर रूपसे अर्थ प्रदानकर हम लोग आलसियोंकी ही संख्या बढ़ाते हैं। बिना उनकी विद्यापर ध्यान दिये, उन्हें रुपये-पैसे देना, उनकी निरक्षरताको प्रोत्साहन देना नहीं तो और क्या है ? पंडा-प्रथा अच्छी है, पर उसका दुरुपयोग हो रहा है। सन्तोषका विषय है कि उनमें अब कुछका ध्यान पढ़ने-लिखनेकी ओर आकर्षित हो रहा है, किन्तु ऐसोंकी संख्या बहुत ही कम है।

वे ही हमारे पुराने ज़मानेके होटल थे, और अब भी बहुत अंशोंमें वे वही काम करते हैं। उनके साथ उनके नौकर होते हैं, जिनमें प्रधान भृत्यको गुमाश्ता कहते हैं। उनका काम रहता है यात्रियोंकी निगरानी करना, जिसमें वे कहीं इधर-उधर भटक न जायँ। साथ ही वे नये यात्री भी फँसा लाते हैं।

इस बारकी यात्रामें मुझे उनकी एक बड़ी ही अच्छी उपमा सूझी, जो बिलकुल चस्पाँ बैठती है। आप ज्यों-ज्यों ऊपर पहाड़पर चलते जायँगे, त्यों-त्यों देखेंगे कि इधर बोझ ढोनेका काम प्रायः बकरियोंसे लिया जाता है। रास्तेमें झुण्ड-के-झुण्ड बकरे देखनेमें आयँगे, जिनके साथ उनका रखवाला रहता है। प्रायः प्रत्येक झुण्डके साथ एक कुत्ता भी नज़र आता है। हमारे यात्रियोंका दल उन्हीं भेड़-बकरोंके दल-सा है। रखवाले हैं पंडे और गुमाश्ते हैं उस दलकी निगहबानी करनेवाले कुत्ते। (उपमा ज़रा कठोर है। —सं०)

हम लोगोंकी मंडलीका भी सारा प्रबन्ध पंडोंके हाथमें था। हमारे साथ जो वयोवृद्ध यात्री थे, उनके ही इच्छानुसार हमें भी चलना पड़ता था, और यहाँ यह लिख देना भी अनुचित न होगा कि उस मंडलीमें सबसे छोटा मैं ही था। इसीसे आपको भी बदरी-केदारके यात्रियोंका अनुमान हो जायगा।

हमारे इन सभी साथियोंने अपना एक पंडा ठीक किया था, जो मंडलीके साथ ही चल रहा था। मुझे भी लाचार होकर उसीको अपना पंडा मानना पड़ा, हालाँकि अन्तमें कई कारणोंसे उसे छोड़ ही देना पड़ा। माँका पंडा दूसरा था। उसने भी अपना एक गण साथ लगा दिया। वही सारी राह मेरा बिस्तर ढोकर ले गया। उसका स्वभाव भी बहुत अच्छा था, जैसा प्रायः प्रत्येक पहाड़ीका हुआ करता है। उनसे आराम भी बहुत मिलता है। मेरा अपना अनुभव यही है।

सभी लोगोंने गंगा स्नान करके पिंडदान किया।

मैंने भी किया। सोचा, चलो, लगे हाथ यह भी हो जाय, क्योंकि लोग कहते हैं कि हरद्वार, देवप्रयाग तथा ब्रह्मकपालीमें श्राद्ध कर लेनेके बाद फिर गयाकी आवश्यकता नहीं रह जाती। श्राद्धका सिलसिला ही समाप्त हो जाता है।

सवेरेकी तीर्थक्रिया समाप्तकर लोग यात्राके प्रबन्धमें लगे। कुलियोंका और सवारीका प्रबन्ध यहीं कर लेना अच्छा होता है, क्योंकि आगे बढ़नेपर हैरानी तो होती ही है, पैसे भी अधिक लग जाते हैं। यह यहाँकी विचित्रता है। अस्तु, सारा प्रबन्ध यहीं कर लेना चाहिए। यहाँ सौदा सस्तेमें ही पट जाता है।

बातोंके सिलसिलेमें मुझे यह मालूम हुआ कि कुली ३५) मन सामानकी ढुलाई ले रहे हैं, इसलिए सामान जितना ही कम हो, उतना ही ठीक है। मैंने विचारकर देखा, तो ऐसा ख़याल हुआ कि हम अपना बोझ हलका कर सकते हैं और एक ट्रंक यहाँ छोड़ जा सकते हैं। फिर चिन्ता हुई, कहाँ छोड़ें और किसके यहाँ छोड़ें। इस रास्तेसे लौटना भी नहीं है, नहीं तो किसी साथीके पास छोड़ भी देते। अब तो कोई ऐसा आदमी चाहिए, जो सारा सामान रख ले और उसे समयपर बनारस भी पहुँचा दे।

मुझे एकाएक केशवदेवजीकी याद आ गई। वे हमारे ही विद्यार्थी हैं, और इन दिनों यहीं ठहरे हुए हैं। उन्हींको ढूँढ़ निकालनेसे समस्या बहुत कुछ हल हो जायगी। मैंने हिन्दू-विश्वविद्यालयकी विशेषताका उसी समय अनुभव किया। जहाँ कहीं जाओ, आपको कोई-न-कोई अपना विद्यार्थी अवश्य ही मिल जायगा। कितना आनन्द आता है एक अपरिचित स्थानमें अपना परिचित पाकर!

मैं दोपहरके समय कनखल गया—पं० रामचन्द्रजी वैद्यके यहाँ। वहाँसे केशवजीका पता लगाता, नहरके किनारे पंजाब क्षेत्रमें पहुँचा। वहीं वे मिल भी गये। उनके साथ मुक्तिपीठम्में आचार्य शुद्धबोधजीके दर्शन करता हुआ ज्वालापुर-महाविद्यालय गया। वहाँ

स्वर्गाश्रमके तटसे दूसरे किनारेपर मुनिकी रेतीका एक अंश

गुरुवर नरदेव शास्त्रीजी मिले। वे भी उत्तर-भारतकी यात्रा कर चुके थे। उन्होंने अपने कतिपय मित्रोंके नाम कुछ पत्र दिये, जिनसे मुझे बहुत ही सहायता मिली। यदि उनके पत्र मेरे साथ न रहते, तो बदरीनाथधाममें मुझे बहुत ही कष्ट होता। इस प्रकार सब कुछ ठीक-ठाककर हम लोग फिर वापस हरद्वार आये। केशवदेवजीको अपना ट्रंक सौंपा और स्वयं दूसरे दिनकी तैयारीकर बिछावनपर लेट रहा। पास ही पहाड़ी नदी घहरा रही थी। जान पड़ता था, मानो सावन-भादोंकी अनवरत वर्षा हो रही हो।

[३]

दूसरे दिन ताँगे द्वारा हम लोग ऋषिकेश चले। चौड़ी अच्छी-सी सड़क है। दोनों ओर सघन जंगल—किनारे ऊँचे-ऊँचे पेड़ काफ़ी सुहावने मालूम होते हैं। सात मीलपर सत्यनारायणजीका मन्दिर मिला। वहाँ उतरकर देवताके दर्शन किये। मन्दिरके

चारों ओर सुन्दर निर्मल जलधारा लाई गई है। ऊपरसे आती हुई पहाड़ी नदीका रुख इसी ओर फेर दिया गया है। इधरकी मशहूर नदी है 'सोंग'। इसे 'घोड़ापछाड़' भी कहते हैं। इसे दो बार और भिन्न-भिन्न जगहोंपर देख चुका हूँ। एक तो देहरादूनके
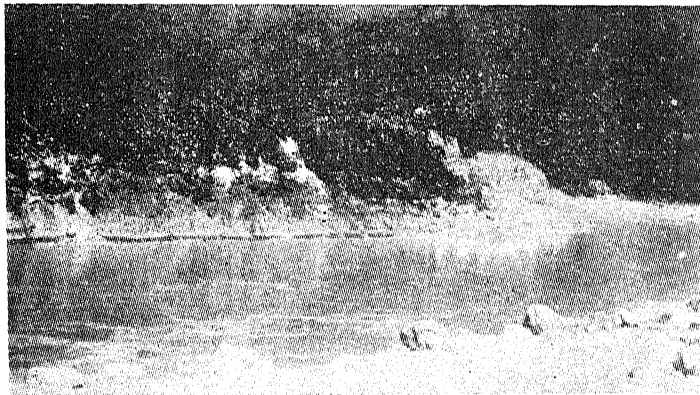
लछमनभूलेके पास गंगाका एक दृश्य

पास, जब वहाँके मित्रोंके साथ 'पिकनिक'को गया था। वहाँ इसकी धारा बिलकुल पतली मिली थी; किन्तु दूसरी बार जब उसे देखा था, तबकी यादकर उसके 'घोड़ापछाड़' नामकी सार्थकता मालूम होती है। ज़िला देहरादूनके एक देहात भोगपुरसे मैं डोईवाला स्टेशन जा रहा था। बीचमें यह नदी मिली। मैं घोड़ेपर सवार था; पर पार करनेकी हिम्मत न हुई। सामने देखा, मेरे मित्रका घोड़ा बीच पानीमें तलमला उठा। तिसपर वे कुशल सवार थे, और मैं था बिलकुल अनाड़ी। साथके साईसने कहा—'बाबूजी, आप घोड़ेकी पूँछ पकड़ लें, मैं पार करा दूँगा।' मैंने वैसा ही किया। नदीमें पानी कम था, पर धारा बड़ी तेज थी। नीचे पत्थरपर जान पड़ता था, मानो कोई पैर मरोड़ रहा हो। बड़ी मुश्किलसे इस पार आया। लोग गायकी पूँछ पकड़कर वैतरणी पार होते हैं। मैंने घोड़ेकी पूँछ पकड़कर 'सोंग' पार किया। उस समय मुझे इसका 'घोड़ापछाड़' नाम नहीं मालूम था; किन्तु इस बार जब यह नया नाम सुना, तो पुरानी बात याद आ गई। सुना था कि बरसातके दिनोंमें इसे पार करना असम्भव-सा हो जाता है। अपनी प्रबल धारामें यह हाथी तक बहा ले जाती है।

सत्यनारायणसे चलकर हम लोग सीधे ऋषिकेश ही पहुँचे। भरत-मन्दिरमें ठहरे। वहाँके महन्तके सुपुत्र श्री शान्तिप्रपन्न शर्मा यहाँ हमारे विद्यार्थी रह चुके थे। वहाँ पहुँचकर हमने उनकी खोज की; पर वे मिले नहीं, फिर भी कोई कष्ट हमें नहीं हुआ।

भरत-मन्दिरसे गंगाका दृश्य बड़ा ही सुहावना है। वहाँ अपने सारे सामान रखकर हम लोग गंगा स्नानको गये। लौटते समय होटलमें रोटी खाई। दो वर्ष पहले ठीक उसी स्थानपर अपनी धर्मपत्नीके साथ तन्दूरकी रोटी खाई थी; पर इस बार न वह तन्दूर था, न रोटी। कानपुरी मैदेकी रोटी मिली। पेट भी न भरा। राहमें ब्रह्मचारी चक्रधरकी 'बदरीनारायण-पथप्रदर्शिका' ढाई आनेमें खरीदी। फिर सबसे अलग होकर बाबा कालीकमलीवालेकी धर्मशालामें गया।

यह संस्था वास्तवमें अपूर्व है। इसके कारण यात्रियोंका जितना उपकार हुआ है और होता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा उत्तम प्रबन्ध, ऐसा प्रेमपूर्ण और सुन्दर व्यवहार, मैंने कहीं भी नहीं देखा। यहाँ कितनोंको भोजन मिलता है, ठहरनेकी जगह मिलती है और रोगियोंकी दवा होती है। इसका आयुर्वेद-विभाग बड़ा ही उत्कृष्ट है, और उसके प्रिन्सिपल स्वामी दयानिधिजी बड़े ही सुयोग्य तथा विद्वान व्यक्ति हैं। उनके असिस्टेंट श्री शिवदत्तजीका स्वभाव भी बहुत सुन्दर है।

मैं सबसे पहले श्री देवकीनन्दन गुप्तसे मिला। ये बड़े ही उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। उनसे मिलकर

मुझे बहुत आनन्द हुआ, और उनसे मुझे काफ़ी सहायता भी मिली। उन्होंने मुझे बाबा कालीकमलीवालेकी पूरी कार्रवाइयाँ दिखलाईं। उनका समुचित वर्णन करनेके लिए अलग लेखकी आवश्यकता होगी, इसलिए इस समय उसके विषयमें कुछ विशेष नहीं लिखूँगा।
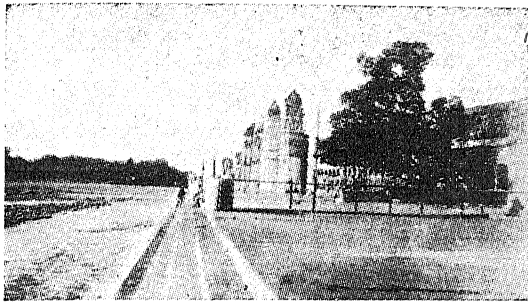
गंगा-किनारेका प्लेटफार्म

मैं बाबा मनीरामजीसे मिला। उनसे यात्राकी सुविधाके लिए चौकीदारों और सदावर्तियोंके नाम चिट्ठी ली। दो दवाएँ भी मिलीं—एक तो पानी न लगनेकी दवा और दूसरी पेटकी शिकायतोंकी दवा। पहली दवाका सेवन तो अवश्य ही करना चाहिए। जो इसमें शिथिलता करता है, उसे अन्तमें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है; उसका भुक्तभोगी मैं स्वयं हूँ। श्री दयानिधिजीसे पथश्रम दूर करनेकी दवा, सर्दीकी दवा और पाचकको एक शीशी ले ली। रास्तेका नक्शा, चट्टियोंकी सूची, सदावर्त्तकी सूची इत्यादि भी ले ली।

इस प्रकार यात्राकी तैयारीकर हम लोग उसी दिन तीन बजे वहाँसे चल पड़े। शान्तिप्रपन्नजी तब तक आ गये थे। उन्होंने रुकनेका आग्रह भी किया; किन्तु कूच बोल दी गई थी। रुकता कैसे?

डेढ़ मीलपर मुनीकी रेती मिली। वहाँ पहुँचकर कुलियों और सवारीका सट्टा करना पड़ता है। टेहरी राज्यके कर्मचारीके सामने वज़न इत्यादि होता है। वही चिट्ठी बनाकर दे देता है, और वहीं कुछ 'पेशगी' भी देनी पड़ती है। थोड़ीसी तो ज़मीन पड़ती है टिहरी रियासतमें; किन्तु उसके लिए भी कुलियोंको टैक्स देना पड़ता है।

हम लोगोंके दलमें तीन डाँडियाँ हुईं। यही यहाँकी सबसे सुविधाजनक सवारी है। उसके बाद झम्पान—तब काँड़ी और घोड़ा। डाँडी कुछ-कुछ आरामकुर्सीकी वज़नपर होती है। उसपर पैर फैलाने और तकियाके सहारे बैठनेका प्रबन्ध रहता है। चार कुली उसे उठाते हैं। झम्पान हल्की मचिया-सा होता है, जिसके बीच बाँसका डंडा डाल चार कुली उठाकर ले चलते हैं। इसपर एक आसनसे बैठे ही रहना पड़ता है। काँडीपर तो सबसे अधिक कष्ट होता है। एक डोलचीमें बैठाकर पीठपर लाद लेते हैं बिलकुल गठरी-सा। बहुत बुरा मालूम होता है।

मर्दोंकी सवारी है घोड़ा, किन्तु मैंने तो औरतें भी घोड़ेपर देखीं; पर जो आनन्द पैदल यात्रामें आता है, वह किसीमें भी नहीं। हाथ-पैरवालोंकी वही शोभा है, और वह तीर्थ-यात्रा भी क्या, जिसमें पैदल न चलना पड़े। लोगोंने मुझसे सवारी कर लेनेका बहुत आग्रह किया; किन्तु मैंने पैदल ही सफ़र करनेकी ठान ली थी, इसलिए मेरे लिए कोई सवारी न हुई।
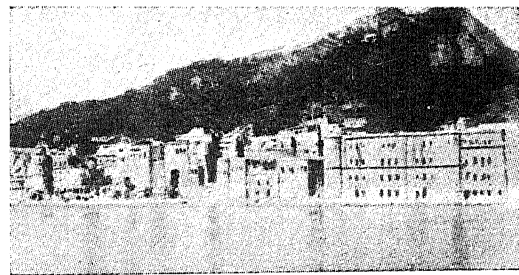
गंगाके दूसरे तटसे नगर और सूर्यकुण्डका पहाड़

मुनीकी रेतीपर ही बहुत देर हो गई। वर्षाके भी कुछ लक्षण दिखलाई दिये, इसलिए लक्ष्मणझूलेसे आगे बढ़नेका विचार नहीं हुआ। लारी हम लोगोंको मुनीकी रेतीसे और कुछ दूर आगे तक पहुँचा

गई। जहाँ नरेन्द्रनगर जानेके लिए रास्ता अलग होता है, वहीं हम लोग उतर गये। पैदल यात्रा प्रारम्भ हो गई। कुछ दूर जानेपर देखा, सड़ककी मरम्मत हो रही थी। मालूम हुआ, वहाँसे देवप्रयाग तक मोटरकी सड़क तैयार हो रही है।

नीलधाराके दूसरे किनारे पहाड़की चोटीपर चंडीका मन्दिर

राह बन्द कर दी गई थी, इसलिए पगडंडीका सहारा लेना पड़ा। कठिन चढ़ाई और कठिन उतराई थी। सभी प्रकारके यात्री थे। मैंने एक बुढ़ियाको कहते हुए सुना—

"बद्री, पंथ कठिन हम जानी।
प्रथम चढ़ाई लछमणझूला, सुनि गंगा घहरानी।"

सचमुच पंथ कठिन था। बस, भगवान बदरी विशालका ही सहारा था। लछमणझूला पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। सारी जगह घिर चुकी थी। कितनी बड़ी ग़लती हो गई थी हमसे कि जगह रोकनेके लिए किसीको पहले नहीं भेजा। कालिका बाबूने तो बतला दिया था कि श्रीबदरीनाथ-यात्रामें ऐसा करना आवश्यक होता है।

खैर, बड़ी मुश्किलसे रघुनाथजीके मन्दिरमें स्थान मिल गया। वहीं पटनेके बाबा बालकदास मिले। उन्होंने खाने-पीनेकी जगहका भी प्रबन्ध कर दिया। सोनेकी भी जगह मिल गई। सभी सारी रात आरामसे सोये; किन्तु मेरी आँखोंमें नींद कहाँ? मैं तो सामने देख रहा था पौने चार सौ मीलकी लम्बी सफ़र और अपनी पैदल यात्राका प्रण। अपरिचित, अनजान प्रदेश, जहाँ रेल नहीं, मोटर नहीं, जल्द आने-जानेवाली कोई सवारी नहीं। जहाँ कोई सगा नहीं, सम्बन्धी नहीं; जहाँ ख़बर पहुँचानेमें कितने दिन लग जाते हैं। उसी देशमें जाना है, जहाँ जंगल हैं, पहाड़ हैं, ऊबड़-खाबड़ रास्ता है, बर्फ़से ढकी पगडंडी है।

मैंने बाहर आकर देखा, चाँदनी खिली हुई थी। रजनी नीरव थी, निस्तब्ध। पहाड़ोंकी ऊँची चोटीपर चाँदके प्रकाशमें पेड़ोंके पत्ते हिल रहे थे। पास ही गंगाकी चपल तरंगोंपर चन्द्रमाकी किरणें नाच रही थीं और सामने जा रहा था धुँधला-सा अस्पष्ट उत्तराखण्डका पथ। मैं फिर कमरेमें आकर लेट रहा। कुछ देर बाद ही नींद आ गई।

सुबह चाँदके ही प्रकाशमें उठा, फिर भी देरी हो गई। झटपट प्रातः कृत्यसे निवृत्त हुआ। नाश्ता किया। जेबमें कुछ मेवे रखे। कंधेपर एक ओर छोटा केमरा और एक ओर थर्मोफ्लास्क लटकाया। धोती कसकर लपेटकर बाँधी। जूता पहना। लाठी उठाई। छाता लिया और आगे चल पड़ा—उत्तराखण्डके पथपर। उस समय पहाड़की ऊँची चोटीपर सूरजकी किरणें मुसकरा रही थीं।

पंडित जयरामजी

बनारसीदास चतुर्वेदी

सन् १८७४—

कोटलेके ग्राम-स्कूलमें आज बड़ी चहल-पहल है। इन्सपेक्टर साहब मि० लाइट वार्षिक परीक्षा लेने आनेवाले हैं। मुदर्रिसोंके दिलमें बड़ी धुकधुकी मची हुई है। पं० वासुदेव सहाय सब-डिप्टी-इन्सपेक्टर साहब उन्हें आदेश दे रहे हैं कि किस तरह परीक्षा दिलानी चाहिए। इतनेमें पं० वासुदेव सहायकी दृष्टि एक तीक्ष्णबुद्धि बालकपर पड़ी। उन्होंने अध्यापक महोदयसे कहा—"देखिये पंडितजी, इसे ऊँची दफाके साथ पढ़नेको खड़ा कर दीजिए। यह बुद्धिमान है।" यही किया गया।

इन्सपेक्टर लाइड साहबने उक्त विद्यार्थीसे कहा—"पुस्तक पढ़कर सुनाओ।"

लड़केने पढ़कर सुनाया—"दाबह 'चज' उस धरतीका नाम है, जो चिनाब और झेलमके बीचमें है।"

साहब—"इसका मतलब कह सकता है?"

विद्यार्थी—"चिनाब कौ च लयौ और झेलम कौ ज लयौ—चज बनि गयौ।"

साहबने मुँहमें उँगली दी। डिप्टी-इन्सपेक्टर चकित हुए, सब-डिप्टी-इन्सपेक्टर खुश हुए, मुदर्रिसोंके हर्षका क्या कहना और लड़के आश्चर्यमें एक दूसरेका मुँह देखने लगे। ग्राम और ज़िले-भरके मुदर्रिसी आसमानमें शोर मच गया और यह घटना जगह-जगह दुहराई गई।

'विशाल भारत' के उत्सुक पाठक पूछेंगे—"यह चतुर बालक, जिसने ऐसा बढ़िया जवाब दिया, कौन था?" यह थे श्रीधर पाठक, जो आगे चलकर खड़ी-बोलीके आचार्य बने। और पाठकजीकी भावी उन्नतिके मूल कारणोंमें थे उनके पूज्य गुरु पं० जयरामजी, जो हमारे इस चरितके नायक हैं। आज स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठकसे हिन्दी-जगत भलीभाँति परिचित है; पर उन्हें उन्नतिके पथपर रखनेवाले पं० जयरामजीसे हिन्दी-संसार सर्वथा अपरिचित है।

जब परीक्षा-सम्बन्धी उपयुक्त घटना घटी, पं० जयरामजी उन दिनों फ़ीरोज़ाबादके स्कूलमें पढ़ाते थे। उन्हें यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ, और उन्होंने तुरन्त यह निश्चित कर लिया कि इस तीक्ष्णबुद्धि विद्यार्थीको अपने स्कूलमें लाना चाहिए, इसीलिए वे इस परीक्षाके पन्द्रह-बीस दिन बाद ही अपने एक नायब मुदर्रिसको लेकर पाठकजीके पिताजीसे मिलनेके लिए जौंधरी ग्रामके लिए रवाना हो गये। पाठकजीके पिता पूज्य पं० लीलाधरजी रास्तेमें ही मिल गये। परस्पर अभिवादनके बाद पं० जयरामजीने लीलाधरजीसे आग्रह किया कि आप अपने लड़केको आगे पढ़नेके लिए फ़ीरोज़ाबादके तहसीली स्कूलमें भेज दीजिए। पं० लीलाधरजी जयरामजीके साथ जौंधरी पहुँचे। उन्होंने श्रीधरकी परीक्षा ली, भाषाभास्करमें से अनेक प्रश्न किये, जिनके उत्तर पाठकजीने ठीक-ठीक दे दिये। फिर रेखागणित आदिके सवाल किये। उनका भी ठीक-ठीक उत्तर मिला। पं० जयरामजीने श्रीधरकी पीठ ठोंकी और कहा—"चलौ हमारे साथ, तुमैं पिरोजाबादमें हम पढ़ामिङ्गे।"

पं० लीलाधरजीका विचार श्रीधरको आगे पढ़ानेका नहीं था, और पाठकजीको भी इसकी आशा नहीं थी। यह सुनकर वे बहुत खुश हुए। पाठकजी फ़ीरोज़ाबाद पधारे। छै-सात महीने बाद उन्होंने हिन्दीकी प्रवेशिका परीक्षा पास की, और जिसमें वे सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर-प्रदेशमें अव्वल रहे। १८७९ में अंगरेज़ी मिडिल परीक्षा दी, और उसमें भी प्रान्त-भरमें प्रथम रहे। १८८० में प्रथम श्रेणीमें एन्ट्रेन्स पास किया। उसके बाद साहित्य-क्षेत्रमें आनेपर पाठकजीको जो कीर्ति तथा सम्मान मिला, उसे हमारे पाठक भलीभाँति जानते ही हैं।

देशके दुर्भाग्यसे अब पं० जयरामजी जैसे आदर्श प्रेमी अध्यापक ग्राम-पाठशालाओंमें भी नहीं रहे। अंगरेज़ी स्कूलों तथा कालेजोंके अध्यापकोंके विषयमें

तो कहना ही क्या है, क्योंकि अधिकांश टीचर और प्रोफेसर पढ़ाते क्या हैं, इल्लत-सी काटते हैं और अपने शिष्योंके भविष्यके विषयमें उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं।

मई सन १९२० में मुझे पन्नाकोटमें स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठककी सेवामें लगभग दो सप्ताह रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय पं० जयरामजीका ज़िक्र आनेपर पाठकजीने उनकी बड़ी प्रशंसा की। मैंने उनसे अनुरोध किया कि पं० जयरामजीके विषयमें मुझे कुछ लिखा दीजिए। उन्होंने कहा, अच्छा लिखो, और निम्न-लिखित पंक्तियाँ बोलकर लिखाईं—

"पूज्य पं० जयरामजी उन हिन्दुस्तानी ग्रामीण सज्जनोंके नमूना थे, जिनके कारण ग्राम्य समाज अपना गौरव-युक्त स्थान सुरक्षित किये हुए है। उनमें वे सब गुण थे, जो एक साधारण मनुष्यको सच्चे मनुष्यत्वकी पदवी प्रदान करते हैं। सबसे प्रथम उनके गुणोंमें गणनीय उनका स्वास्थ्य था। उनका भव्य मुखमंडल—जिसमें बुद्धिकी तीव्रता, सात्विक भावव्यंजक मस्तककी विशालता, आन्तरिक महत्त्व प्रदर्शक नेत्रोंकी तेजस्विता, गौरवर्णकी समुज्ज्वलता-सहित अपनी-अपनी सत्ताका स्वतन्त्र रीतिसे साक्ष्य देती थीं—उनके मित्र और शिष्यवर्गके हृदयपर शास्वत प्रभाव उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता था। वे सब प्रकारकी सहनशीलताकी मूर्ति थे। मुझको उनमें कोई भी अवगुण दृष्टि नहीं आता था। वे प्राय: अपने सिरको एक सफेद रंगकी बड़ी पगड़ीसे विभूषित रखते थे, लम्बा अंगा पहनते थे और जहाँ वह जा निकलते थे, प्रतिष्ठित गौरवका रूप बँध जाता था। जो उनको देखता था, रोबमें आ जाता था और उनकी इज्ज़त करता था। एक दफा पंडितजीकी आगरा-कालेजके बोर्डिंग-हाउसमें वहाँके सुपरिन्टेन्डेन्ट मास्टर सालिगरामसे मुलाक़ात हुई। मास्टरजीके पूछनेपर कि आप कब तशरीफ लाये, उन्होंने जवाब दिया—'हूँ सा'ब, चारि बजेकी गाड़ीपै आयो हो।' वे अधिकतर ऐसी ही ग्राम्य भाषाका व्यवहार किया करते थे, और वह उनके मुखसे एक विशेष महत्व और रुचिरता लिये हुए श्रवणोंको आनन्द देती थी।"

पं० जयरामजीका जन्म संवत् १९०० के लगभग हुआ था। उनके पिता पं० केसरीसिंहजी बड़े धार्मिक ब्राह्मण थे, और उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ और तीर्थ-प्रवासमें ही व्यतीत हुआ था। जयरामजी उनके इकलौते पुत्र थे। पढ़-लिखकर आप नारखीके हलकाबन्दी स्कूलमें शिक्षक हो गये, और उनका काम वहाँ बड़ा सन्तोषजनक रहा; इसीलिए जब फीरोज़ाबादके तहसीली स्कूलमें हेड मास्टरीकी जगह खाली हुई, तो वे नारखीसे फीरोज़ाबादको भेज दिये गये। जब वे फीरोज़ाबाद पहुँचे, तो वहाँके पुराने मुदर्रिसोंने पहले तो बड़े उत्पात मचाये, और यह कहना शुरू किया—"ये गमार आये हैं, ये क्या इन्तज़ाम करेंगे।" पर अपनी मेहनत और कोशिशसे पं० जयरामजीने मदरसेको ज़िलेका सर्वोत्तम स्कूल बना दिया, और इस प्रकार अपने विरोधियोंका मुँह बन्द कर दिया। फीरोज़ाबाद नगरमें जो शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति हुई है, उसका श्रेय अधिकांशमें श्रद्धेय पं० जयरामजीको ही मिलना चाहिए। हमारे पूज्य पिताजी पं० गणेशीलालजी चतुर्वेदीने, जिनकी उम्र इस समय ७८ वर्ष है, पं० जयरामजीके ही चरणोंके निकट बैठकर शिक्षा पाई थी। हमारी प्रार्थनापर कक्काने अपने पूज्य गुरुके जो संस्मरण लिखा भेजे हैं, उन्हें हम यहाँ छापे देते हैं—

"जब पं० जयरामजी फीरोज़ाबाद पहुँचे और उनके पढ़ानेकी कीर्ति चारों ओर फैली, तो मेरे बहनोईके भाई जमनादासजी मुझे लेकर पं० जयरामजीके पास गये और बोले, 'यह लड़का अनाथ है। पढ़ाना-लिखाना आपके हाथ है, रोटी कपड़ा हम देते हैं।' पं० जयरामजीने हमको किताबें ही नहीं ले दी थीं, बल्कि हमारी फीस भी अपने पाससे भरते थे। ऐसे कितने ही अनाथ विद्यार्थियोंको पढ़ा-पढ़ाकर उन्होंने होशियार बना दिया। हमारे एक साथी थे, जिनका नाम था नन्दराम।

उनके पिताजीकी यह हालत थी कि थोड़ेसे चने पोटलीमें लेकर बंजी किया करते थे और आवाज़ लगाते—'टाट, कम्बल, गुड़हर, लोहा, नामा, बीनन, दमड़ी छदाम।' न वे फीस दे सकते थे और न किताबें ही मोल ले सकते थे।*

पढ़नेका हम लोगोंको ख़ूब शौक दिला दिया था। आपसमें एक दूसरेसे होड़ करा दिया करते थे कि देखें कौन ज़्यादा पढ़ ले। जब छुट्टियोंमें घर जाते, तो इस प्रकारके सवाल बोल जाते थे :—

(१) एक बनियेकी बरातमें बनिये, ब्राह्मण और ठाकुर आये। लड़केवालेने सौ थालियाँ इकट्ठी कीं। सौ ही बराती आये थे। ब्राह्मणोंने कहा, हम एक-एक ब्राह्मण चार-चार थाली लेंगे। ठाकुरोंने कहा, दो-दो हम भी लेंगे। तब बनियोंने सोचा कि विवाह तो हम बनियोंका बिगड़ा जाता है, इसलिए उन्होंने कहा कि हम चार-चार बनिये एक ही थालीमें खायेंगे। सौ थालियोंमें सौऊ आदमी जीमि गये। बताओ, हरएक जातिके कितने-कितने बराती थे?

(२) सौ गज़ कपड़ेमें सौ कपड़े बनाओ—तीन गज़में पायजामा, आध गज़में टोपा और दस गज़में जामा।

(३) एक राजाके नौ लड़के थे और इक्यासी भैंसें थीं। पहली भैंस एक सेर दूध, दूसरी दो सेर, इसी तरह इक्यासीवीं भैंस इक्यासी सेर दूध देती थी। राजाने नौ-नौ भैंसें हरएक लड़केको बाँट दीं और दूध भी बराबर-बराबर मिला। बतलाओ, उसने किस प्रकार बँटवारा किया?

(४) ४५ में से ४५ इस प्रकारसे घटाओ कि ४५ ही बचें।

(५) एक ज़मींदारके पाँच लड़के थे। एकको सौ मन अनाज दिया, दूसरेको ८० मन, तीसरेको ६० मन, चौथेको ४० मन और पाँचवेंको २० मन, और यह कहा कि एक भाव बेचो और बराबर-बराबर रुपये लाओ। बताओ, उन्होंने कैसे अनाज बेचा?

(६) एक पुरुष परदेश जाते समय स्त्रीसे कह गया कि यदि तेरे लड़का हो तो ६०) ख़र्च करना और ४०) अपने काममें लाना और यदि लड़की हो तो ४०) ख़र्च करना और ६०) अपने काममें लाना। दैवयोगसे उसके लड़का और लड़की दोनों ही हुए। बताओ, वह स्त्री क्या तो खाय और क्या ख़र्च करे?

पंडितजी गणितके गुर लीलावती आदि पोथियोंसे दोहा-चौपाइयोंमें और श्लोकोंमें भी याद कराया करते थे। उनका याद कराया हुआ एक क़ायदा है—

'श्रेणी फलादुत्तरलोचनिघ्ना
चयादि वक्रान्तर्वर्ग युक्तः
मूलं मुखोनम चयखगड्युक्त
तयोद्धृतं गच्छ मुदाहरन्ति।'

यह गच्छ निकालनेका क़ायदा है।

चौबे लोगोंके विषयमें उनका एक प्रश्न था—

'पाव सवाये घोंटें भंग
आधे बैठे देखैं रंग
षष्ठमांशके खाय अफीम
बाइस गये जमुनके तीर
मानुष संख्या कितनी भई।
सो तुम हमसे कहियो सही।'

* इस विषयमें पं० जयरामजीके एक अन्य शिष्य पं० हजारीलालजी चतुर्वेदीने लिखाया है—"पं० नन्दरामजीके माता-पिताको अक्सर भूखे रह जाना पड़ता था। नन्दरामजीकी माँ अपने चूल्हेमें झूठ-मूठ आग जलाकर धुआँ कर देतीं थीं, जिससे मुहल्लेवाले यह न जान पावें कि उनके घरमें भोजन नहीं बना है। ग़रीबी ऐसी भीषण थी कि जयरामजी कभी-कभी गायोंको दी हुई रोटी खाकर अपना पेट भरते थे। वे अकसर घरोंमें सीधा लेने चले जाते और मदरसे देरसे पहुँचते। एक दिन देरसे मदरसे पहुँचनेपर पंडितजीने जब कारण पूछा, तो उनको ग़रीबीका पता चला। पंडितजी उसी समय बोले, 'अच्छा, आजसे तू यहीं खाइबौ कर और जो कऊँ अब देरिमें आयौ तौ गंगा धुआई ऐसी मार लगाऊँगो।' तबसे नन्दरामजी पंडितजीके ही चौकेमें भोजन करते थे और वहीं पढ़ते थे। आगे पढ़-लिखकर पं० नन्दरामजी फीरोज़ाबादके अंगरेज़ी मिडिल स्कूलके हेडमास्टर हो गये और बड़ी शानकी हेडमास्टरी की।" —लेखक

'आधी कींच तिहाइ जल दसमें हिसा सिवार,
वामन गज ऊपर रही सिला कितक विस्तार।'

'राधिका मोहन प्रीति करी इक पंकज-राशि करी जलमें,
तीजौ हिसा शिव शीश धरे और पंचम विष्णुके पूजनमें,
चौथो हिसा जगदम्बै दयो रविको षट् भाग दयो मनमें,
शेष रहे छै फूल तहाँ सो कहौ सब कितने गिन्तिनमें।'

पंडित जयरामजी बड़े मनोरंजक ढंगसे पढ़ाते थे। सबको हँसाते-खिलाते पढ़ा दिया करते थे। बीच-बीचमें ऐसी बातें कहते जाते थे कि हम सब बहुत खुश होते थे। एक बार उन्होंने सुनाया—'एक पटवारी जोड़ लग रहा था। कहता जाता था—इक्यानवेकी एक हाथ लागी ९, बहत्तरकी दो हाथ लागी ७, पचासीकी पाँच हाथ लागी ८। किसानोंने देखा कि पटवारी आप तो आठ-आठ नौ-नौ हाथ लगाता है और हमें एक-एक दो-दो में टरकाता है, सो उन्होंने पटवारीको मार-ठोंक डाला!'

रेखागणित, बीजगणित, हिसाब, पैमाइश—इन चारोंको रियाज़ी कहा जाता है, सो लोग कहा करते थे कि पं० जयरामजीने रियाजीको पाजी बनाके छोड़ दिया है, इस क़दर इन विषयोंमें वे होशियार थे। बीजगणितके वर्गसमीकरण, मूलसमीकरण और अनेक वर्गसमीकरण मैंने पंडितजीसे ही पढ़े थे। अब तो पहलेकी अपेक्षा बहुत कम हिसाब हिन्दी-स्कूलोंमें पढ़ाया जाता है।

मेरे ऊपर उनकी ख़ास कृपा थी। उनका मेरे लिए आशीर्वाद था—'जा खुश रहेगा।' उन्हींके आशीर्वादसे ७८ वर्षकी उम्रमें तन्दुरुस्त हूँ, और पंडितजीके आशीर्वादका प्रभाव यहाँ तक है कि मैंने भी जिन्हें पढ़ाया है, वह भी आनन्दसे हैं। मुझे तो उनकी वाणी सिद्ध मालूम हुई कि जिस किसीके लिए उन्होंने जो कुछ कह दिया, वही हो गया। वे कहा करते थे—'गंगा धुआई, मेरे मुँहमें बत्तीस दाँत हैं और मोइ हर बख़त खियाल रहतु ऐ कि मेरे मुँह तैं काऊके लऐं बुरी बात न निकसै।' जब मैं पढ़-लिखकर छै रुपये महीनेपर एक ग्राम-स्कूलका मुदर्रिस बन गया, तो मेरे लिए उनका हुक्म था—'गनेसा, जब घरसे मदरसेको जा, तब मेरे पास होकर जा और जब गाँवके मदरसेसे आवे, तो मेरे पास होकर घरको जा।'

यदि मैं कभी भूलकर गाँवसे बिना उनके दर्शन किये सीधा घर पहुँच जाता और पीछे उनकी सेवामें हाज़िर होता, तो व्यंगमयी भाषामें वे कहते—'तुस्सिया (तुलसीराम उनके नायब) मूँढ़ा लइये, चौबेजी महाराज आये हैं!' और फिर मेरी ओर मुख़ातिब होकर कहते—'चौबेजी, कबसे आये हैं आप?' मैं उस समय अत्यन्त लज्जित होता था। उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता रहती थी कि उनका कोई भी अध्यापक शिष्य स्कूलमें गैरहाजिरी करके कर्तव्यच्युत न हो। हाजिरीपर ज़ोर देते हुए वे मुझसे कहा करते थे—'गनेसा, जो तू गैरहाजिर रहौ, तो गंगा धुआई, हूँ तेरी अर्जी बिना दागे नहीं मानुँगो।' फिर कहते थे—'गंगा धुआई, तू गाममें बैठो रहि, कोऊ आँखऊ मिलाइ जाय, पर हाजिर रहि।' उन्हींके आदेशके अनुसार चलनेसे पचास वर्षकी मुदर्रिसीमें (१८७५ से १९२५ तक) मुझे नीची आँखें करनेका मौक़ा नहीं आया।

विद्यार्थियोंकी स्वल्पाहारितापर बड़ा ध्यान रखते थे। गाँवके लड़कोंसे पूछते थे—'तू कै रोटी खाइगौ?' उत्तरमें किसीने कहा—'चार', तो उसे तीन रोटी ही दी जाती थीं। कहा करते थे—'खाओ चाहैं चार पोत, पर थोड़ा-थोड़ा खाओ।'' लड़कोंके दुख-दर्दका ख़ास ख़याल रखते थे। उनके बीमार पड़नेपर उनके घरपर जाया करते थे। पढ़ने-लिखनेकी हालतमें उन्होंने लड़कोंको स्वतन्त्रता दे रखी थी कि धूप, छाया, चाहे जहाँ बैठकर पढ़ो। डिप्टी-इन्सपेक्टर चौबे कुंजबिहारीलाल उनसे बहुत खुश रहा करते थे। चौबेजीसे उन्होंने कह दिया था—'पढ़ाऊँगा मैं, और नौकरी आपको देनी पड़ेगी।'

अपने पढ़ाये हुओंके कामको अगर कुछ उन्नीस सुनते, तो उन्हें बड़ा खेद होता। एक बार उन्होंने कहा—'मैंने···को लादूखेड़ेमें मुदर्रिस बनाकर

भिजवाया है ; पर उसका काम उन्नीस सुना जाता है। अगर मुझे पहलेसे ऐसा मालूम होता, तो मैं गनेसाको भेजता। वह लादूखेड़ेको देवखेड़ा बना देता।' जहाँ-जहाँ काम बिगड़ा, उन्होंने मुझे भिजवाया। कह देते थे—'भेजदेउ गनेसाकों।' उनके आशीर्वादसे हमने बिगड़े मदरसोंको बनाया और उनके आशीर्वादसे ही नाम पाया। पंडितजी बड़े प्रातःकाल ही स्नान कर लिया करते थे। मेले-तमाशेमें कभी न जाते थे। जब कभी हम लोग बहुत ज़िद करते, तो हम लोगोंको लेकर जाते और थोड़ी देर देख-भालकर हम लोगोंको पीछे छोड़ आते। अपने कामको मुख्य समझते थे।

५६ वर्ष पहलेका—सन् १८७५ का—दृश्य अब भी मेरी आँखोंके सामने है। मैं पढ़-लिखकर ६) रुपये महीनेपर मुदर्रिस हो गया था। जब मुझे पहले महीनेकी तनख्वाह मिली, तो छुट्टीके दिन मैं पंडितजीकी सेवामें पहुँचा। उनके चरण छुए और पहले महीनेकी तनख्वाह उनकी भेंट की। उन्होंने हाथसे छूकर मुझे आशीर्वादके साथ वापस कर दी और कहा—'जा बेटा, पहलैं डोकरा (जमनादासजी मेरे पूज्य) को दीजे।' उसके बाद जब मैंने उन्हें उनके नायब मुदर्रिसोंके साथ निमन्त्रण दिया, तब जो अत्यल्प भेंट उनकी सेवामें अर्पित की, वह उन्होंने सहर्ष ले ली।

अब मैं ७८ वर्षका हो चुका। पंडितजीके आशीर्वादसे स्वस्थ हूँ। उनकी याद अब भी आ जाती है। अब वैसे शिक्षक कहाँ देखनेको मिल सकते हैं?"

पूज्य कक्काने अपने संस्मरणोंमें और भी कितनी ही बातें लिखा भेजी हैं। ६०-६२ वर्ष पहलेके राजा शिवप्रसादके इतिहास 'तिमिरनाशक' के जो अंश उनके रटे हुए थे और जो उन्हें अब तक याद हैं, उन्हें भी लिखा भेजा है! उन्हें क्या मालूम कि उनके पुत्र सम्पादकके हृदयमें स्थान होते हुए भी पत्रमें स्थानाभाव है।

पं० जयरामजीके एक अन्य शिष्य स्वर्गीय पं० ख्यालीरामजीने अपनी मृत्युके पहले बहुत-सी बातें हमें लिखा भेजी थीं। उनके सिवा हमारे पूज्य गुरु श्री छिंगामलजी चतुर्वेदी, श्री हज़ारीलालजी चतुर्वेदी, श्री ब्रजभूषणजी (स्वर्गीय पं० जयरामजीके सुपुत्र) के संस्मरण भी हमारे पास आये हैं। स्थानाभावसे हम उन्हें भी छापनेमें असमर्थ हैं। पं० जयरामजीका देहान्त संवत् १६३६ में फ़ीरोज़ाबादके मदरसेमें हुआ। इस वर्ष देशमें विषम ज्वरकी महामारी फैली थी। उसीसे उनका ३६ वर्षकी उम्रमें स्वर्गवास हो गया।*

क्या फ़ीरोज़ाबाद नगरके निवासी पं० जयरामजीके ऋणसे कभी उऋण हो सकते हैं? आज फ़ीरोज़ाबादमें सैकड़ों सुशिक्षित कहानेवाले व्यक्ति मौजूद हैं, बीसियों ग्रेजुएट हैं ; कोई डाक्टर हैं, कोई वकील, कोई प्रोफेसर और कोई दीवान। सेठ-साहूकारोंकी भी कमी नहीं। पर क्या कभी किसीने पंडित जयरामजीको भी याद किया है? क्या कभी उनका स्मारक बनानेकी बात भी किसीके मनमें आई है? संसार बड़ा स्वार्थी है। भारतके ग्रामोंमें अब भी जयरामजी जैसे निःस्वार्थ अध्यापक विद्यमान हैं। पाँच-पाँच सौ रुपये पानेवाले प्रोफेसरोंसे नहीं, हज़ार पानेवाले प्रिंसिपलोंसे नहीं, बल्कि पन्द्रह-बीस पानेवाले और बिना किसीके जाने अपने जीवनको खपा देनेवाले उन ईमानदार ग़रीब मुदर्रिसोंसे ही इस भूमिका गौरव है। वे ही इस भव्य-भवनकी आधारशिला हैं ; उस शिक्षारूपी भव्य-भवनकी, जिसका आगे चलकर कभी निर्माण होगा। ऐसे पूज्य शिक्षकोंको हमारा सादर पालागन।

* पं० जयरामजीकी पत्नी बहुत दिनों तक जीवित रहीं। उनके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ था। उनके विषयमें कक्का ख्यालीरामजीने जयरामजीके पौत्र हिन्दीके सुलेखक श्री मंगलदेव शर्मासे कहा था—"तुम्हारी दादी ढेर-की-ढेर रोटियाँ बनाया करती थीं। सब गरीब लड़के ही खाया करते थे।" पं० जयरामजीके पुण्यका एक अच्छा अंश उनकी प्रातःस्मरणीय महामातुश्रीको ही मिलना चाहिए।　—लेखक

आर्थिक योजनाकी आवश्यकता

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

यह युग आर्थिक राष्ट्रीयताका है। जहाँ देखो, वहीं आर्थिक योजना (Economic Planning) की चर्चा हो रही है। सभी देशोंकी सरकार, राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री आर्थिक योजनाकी आवश्यकतापर ज़ोर दे रहे हैं। कम्यूनिस्ट रूस, फैसिस्ट इटली और व्यक्तिवादी अमेरिका—सभी इस बातके कायल हो रहे हैं कि अर्थनीतिमें अब "यथास्थितं तथास्तु" के सिद्धान्तसे काम नहीं चलेगा। देशकी आर्थिक नीतिके लिए कोई-न-कोई योजना निश्चित करनी ही होगी। यहाँ तक कि इंग्लैण्ड भी, जो युद्धके पूर्व तक मुक्तद्वार-वाणिज्य-नीतिका (Free Trade Policy) पक्षपाती रहा है, अब क्रमशः इस ओर अग्रसर हो रहा है। ओटावा-कानफरेन्समें ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत देशोंको आर्थिक दृष्टिसे सम्बद्ध करनेका जो प्रयत्न किया गया था, वह भी एक प्रकारकी आर्थिक योजना ही है। आर्थिक योजनाके विकासके साथ-साथ आर्थिक राष्ट्रीयताकी नीति इस प्रकार घनिष्ट रूपमें सम्बद्ध है कि एकको दूसरेसे पृथक् किया ही नहीं जा सकता।

अच्छा तो यह आर्थिक राष्ट्रीयता है क्या चीज़ ? सरल भाषामें इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक देश यह चाहता है कि आर्थिक दृष्टिसे वह अधिक-से-अधिक आत्म-भरित (Self-Sufficient) बन सके। इसके लिए देशके आर्थिक साधनोंका सर्वोत्तम रूपमें उपयोग किया जाय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताके मुकाबलेमें देशके अन्दर ही माल तैयार किये जायँ, जिससे देशकी आवश्यकताओंकी पूर्ति स्वदेशी वस्तुओंसे हो सके। इस समय अमेरिका और यूरोपके प्रायः समस्त देश इसी भावनासे प्रेरित होकर अपनी अर्थनीतिका संचालन कर रहे हैं। यहाँ तक कि टर्की भी, जो युद्धके पूर्व तक यूरोपका मरीज़ (Sickman of Europe) समझा जाता था, एक सुनिश्चित आर्थिक योजनाके आधारपर अपनी अर्थनीतिका संचालन कर रहा है। इस प्रकार संसारके समस्त देश किसी-न-किसी रूपमें इस आन्दोलनको अपना रहे हैं, और यह निश्चित-सा जान पड़ता है कि भविष्यमें प्रत्येक देशकी अर्थनीतिका झुकाव इस आर्थिक योजनाकी ओर होगा, चाहे उसका रूप कुछ भी क्यों न हो।

उन्नीसवीं शताब्दीका व्यक्तिवाद—अर्थात् देशके वाणिज्य-व्यवसायमें सरकार द्वारा किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं किये जानेका सिद्धान्त—अब लौटकर नहीं आ सकता। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता इस समय इतनी विकट हो रही है कि कोई भी देश आर्थिक योजनाका आश्रय ग्रहण किये बिना आत्म-रक्षा कर ही नहीं सकता। इस प्रतियोगिताके कारण ही इस आन्दोलनको प्रोत्साहन मिला है, और प्रत्येक देश इस बातका प्रयत्न कर रहा है कि माल तैयार करनेका ख़र्च कम-से-कम हो और देशके समृद्धि-साधनोंका उपयोग यथासम्भव अधिक-से-अधिक रूपमें हो। आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही कारणोंसे आर्थिक राष्ट्रीयता और आर्थिक योजनाकी नीतिको उत्तेजन मिला है, और लोग यह बात समझने लगे हैं कि देशकी आर्थिक उन्नतिके लिए सरकारकी ओरसे किसी सुनिश्चित योजनाका कार्यान्वित किया जाना वांछनीय है। क्योंकि जिस युगसे होकर हम लोग गुज़र रहे हैं, वह युग ही ऐसा है कि व्यक्तिके स्वत्व और कल्याणको समाजके स्वत्व और कल्याणके सामने अप्रधान बनना पड़ेगा। इस युगमें सरकारका यह कर्तव्य समझा जाने लगा है कि वह समाजकी सुरक्षा और उसके भौतिक साधनोंकी उन्नतिके लिए देशकी अर्थनीति और वाणिज्य-नीतिका संचालन-सूत्र अपने हाथमें रखे, जिससे अधिक-से-अधिक लोग अन्न-वस्त्रकी चिन्तासे मुक्त होकर जीवनके आनन्द और सुख-सुविधाओंका उपभोग कर

सकें। कोई भी सरकार अब साधारण जनताकी सुख-सुविधाओंसे उदासीन नहीं रह सकती। यहाँपर एक प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक योजनाके साथ किसी शासन-प्रणाली-विशेषका सम्बन्ध है या नहीं ?

इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। कुछ लोगोंका यह कहना है कि रूसमें जो आर्थिक योजना सफल हुई है, उसका कारण है वहाँकी आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति। जब तक सम्पत्तिपर व्यक्तिविशेषका अधिकार बना रहेगा, तब तक कोई भी आर्थिक योजना सफल नहीं हो सकती और न उससे साधारण जनताका दुःख-दरिद्रता ही दूर हो सकती है। दूसरे विचारके लोग वे हैं, जो यह समझते हैं कि मनुष्यको परिश्रम करनेके लिए उत्तेजन प्रदान करनेमें व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत लाभका उत्प्रेरक कारण मौजूद रहना आवश्यक है ; किन्तु इसके साथ ही उनका यह भी कहना है कि वर्तमान अस्तव्यस्त आर्थिक अवस्था अथवा 'यथास्थित तथास्तु'की नीतिसे काम नहीं चल सकता। यह नीति घातक है, इसलिए देशकी आर्थिक व्यवस्था चाहे कुछ भी क्यों न हो, आर्थिक योजनाकी नीति सब दशाओंमें आवश्यक है। इस समय दोनों ही विचारवाले देशोंमें आर्थिक योजनाकी नीति कार्यान्वित की जा रही है, अतएव फलाफल देखकर ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनोंमें से कौन-सा मत ठीक है।

यूरोप और अमेरिकामें तो यह सब हो रहा है, और भारतमें क्या हो रहा है ? यहाँ न तो कोई सुनिश्चित कार्यक्रम है और न कोई आर्थिक योजना ही है। अर्थ-सचिव सर जार्ज शुस्टरका बजट-सम्बन्धी भाषण उठाकर पढ़िये, तो मालूम होगा कि भारतकी आर्थिक अवस्था बिलकुल ठीक है, जो कुछ थोड़ी-सी गड़बड़ी है वह विश्वव्यापी आर्थिक मन्दीके कारण, और इस आर्थिक मन्दीके दूर होते ही वह आपसे आप दूर हो जायगी। अमेरिकाके राष्ट्रपति रूज़वेल्टकी आर्थिक योजना हमारे अर्थ-सचिव महोदयको मंजूर नहीं है। जापान, इटली और टर्कीकी अर्थनीतिको आप उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं। आप अर्थनीतिमें 'साहसिक उपायों'के अवलम्बनके पक्षपाती नहीं है। आप सावधानीके साथ फूँक-फूँककर कदम आगे बढ़ाना पसन्द करते हैं। आपकी दृष्टिमें शायद अमेरिका तथा अन्य देशोंके अर्थनीतिज्ञ मूर्ख या अदूरदर्शी हैं ! अर्थ-सचिवकी दृष्टिमें भारतकी स्थिति अमेरिका जैसी गम्भीर नहीं है, इसलिए यहाँ किसी प्रकारके प्रयोगात्मक उपायोंके अवलम्बनकी आवश्यकता नहीं है। बेकार लोगोंके सम्बन्धमें यहाँ कोई आँकड़े तो रखे जाते ही नहीं, इसलिए चाहे किसी भी सरकारी अफसरके लिए यह कहना सहज है कि भारतकी स्थिति और देशोंकी अपेक्षा अच्छी है, हालाँ कि वास्तविक स्थिति इसके सर्वथा प्रतिकूल है। मध्यम श्रेणीके शिक्षित युवकोंकी संख्या बेशुमार बढ़ रही है, किसानोंके कष्टका कोई पारावार नहीं है, फिर भी देशकी स्थिति सन्तोषजनक है ! क्यों ? इसलिए कि यहाँके लोग पाश्चात्य देशोंकी बेकार जनताके समान जलूस निकालकर सरकारी दफ्तरोंके सामने प्रदर्शन करना नहीं जानते ; वे मूक पशुकी तरह अपनी सारी यन्त्रणाओंको शान्तिपूर्वक सहन कर लेते हैं। यदि वे भी अन्य देशोंकी बेकार जनताकी तरह आन्दोलन करना, प्रदर्शन करना और सरकारी दफ्तरोंपर धावा करना जानते तो सरकारको मालूम हो जाता कि वास्तविक स्थिति क्या है।

अर्थ-सचिवने कहा है कि जहाँ अन्य देशोंके उद्योग-धन्धोंमें ह्रास हुआ है, वहाँ भारतके उद्योग-धन्धोंकी अभूतपूर्व उन्नति हुई है। उदाहरण-स्वरूप आपने सूती कपड़ा, चीनी और लोहेके व्यवसायका ज़िक्र किया है। इसी प्रकार कपड़ा, किरासिन तेल और नमककी खपत बढ़ जानेसे आपने यह अनुमान किया है कि जनताकी आर्थिक दशा उन्नतिशील हो रही है। किन्तु यदि गत चार-पाँच वर्षोंकी पैदावारके आँकड़ोंकी समीक्षा की जाय, तो मालूम होगा कि अर्थ-सचिवकी धारणा कितनी भ्रान्तिमूलक है। सन् १९२९-३० में

शिल्पजात वस्तुओंके उत्पादनके साथ सन् १९३२-३३के अंकोंकी तुलना करनेसे मालूम होगा कि कपड़े और चीनीके उत्पादनके सिवा और सभी वस्तुओंके उत्पादनमें ह्रास हुआ है। जिन व्यवसायोंकी दशा इस समय अपेक्षाकृत अच्छी दीख पड़ती है, उनकी दशा सन् १९३१ में भी -- जब कि मन्दी ज़ोरोंपर थी—ख़राब नहीं थी। सन् १९३० में वस्त्र-व्यवसायकी दशा इस समयकी अपेक्षा कहीं अच्छी थी। सन् १९३१ में सिर्फ़ एक दर्जन जूट-मिलोंको नुकसान हुआ था। ताता-कम्पनीको सन् १९३१ में ९९ लाखका मुनाफ़ा हुआ था। उस समय काग़ज़के व्यवसायकी दशा भी अच्छी थी। मान लीजिए कि देशके उद्योग-धन्धोंकी दशा प्रगतिशील हो रही है, तो क्या इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि देशकी साधारण जनताकी दशा भी प्रगतिशील हो रही है? आख़िर उद्योग-धन्धोंमें कितने लोग लगे हुए हैं? ३५ लाखसे अधिक नहीं। इस ३५ लाखकी—देशकी विशाल जनसंख्याके प्रतिशत एक भागकी—समृद्धिसे सैकड़े ९९ भागकी सुख-समृद्धिका अनुमान किया जा सकता है? क्या इनेगिने व्यवसायोंकी समृद्धिसे देशकी वास्तविक दशाका परिचय मिल सकता है?

देशकी वास्तविक दशाका पता लगाना हो, तो ग्रामोंमें जाइये और टूटी-फूटी झोपड़ियोंमें रहनेवाले दैन्य-पीड़ित, ऋणग्रस्त किसानोंसे पूछिये कि ज़मींदारोंको लगान चुकानेमें, महाजनोंको ऋणका सूद देनेमें, नमक, किरासन तेल और कपड़ा खरीदनेके लिए पैसा जुटानेमें तथा अपनी अन्य अनिवार्य आवश्यकताओंकी पूर्तिमें उन्हें किन-किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। किसी सम्पन्न गृहस्थसे पूछिये कि आभूषणके रूपमें जो उसने अपनी ज़िन्दगी-भरकी कमाई सुवर्ण-धन संचित कर रखा था, वह क्या हो गया? ज़मींदारोंसे पूछिये कि उन्हें रैयतोंसे कहाँ तक लगान वसूल हो रहा है? महाजनोंसे पूछिये कि उनके ऋणका सूद किस प्रकार चुकाया जा रहा है। तब आपको पता चलेगा कि वास्तविक स्थिति क्या है। किसानोंकी दुर्गतिका यहींपर अन्त नहीं होता। खेतीसे उत्पन्न होनेवाली चीज़ोंका मूल्य तो पहलेकी अपेक्षा लगभग सैकड़े ५० गिर गया है, और सरकारी माल तथा ज़मीनका लगान पहलेके समान ही कायम है। किसानोंको अब भी उसी हिसाबसे लगान देना पड़ता है, सूदकी दर भी वही है। इसके सिवा किसान जिन चीज़ोंको पैदा करता है, उनका मूल्य तो इस कदर घट गया है और जिन चीज़ोंको वह खरीद करता है, उनका मूल्य अपेक्षाकृत कम घटा है। दोनोंमें सैकड़े ४७ और २२का फ़र्क़ पड़ता है। इस प्रकार सब तरहसे किसानोंकी तबाही है। इतनी मेहनत उठाकर जिन चीज़ोंको पैदा करें, उनका मूल्य तो बहुत ज्यादा गिर जाय और नकद दाम देकर जो चीज़ें खरीद करनी पड़ें, उनका मूल्य अपेक्षाकृत थोड़ा ही कम हुआ हो। असल बात तो यह है कि इस देशकी जनताके रहन-सहनका स्टैन्डर्ड इतना गिरा हुआ है कि उसमें यदि थोड़ी भी घटा-बढ़ी होती है, तो उससे ही यह अनुमान लगा लिया जाता है कि जनताकी आर्थिक स्थितिमें उन्नति या अवनति हुई है। जनताकी आर्थिक स्थिति अचल जैसी हो रही है, और हालके कुछ वर्षोंमें यह स्थिति सुधरनेके बजाय बिगड़ी ही है। संसारके और किसी भी देशकी जनताके रहन-सहनका स्टैन्डर्ड इतना गिरा हुआ नहीं है। जीवनकी आवश्यकताओंकी खपत इतनी कम तादादमें और कहीं नहीं होती। खाद्य-पदार्थ, कपड़ा और किरासिन तेलकी प्रति व्यक्ति पीछे औसत खपत इतनी कम है कि अन्य देशोंके साथ उसकी कोई तुलना हो ही नहीं सकती। भोजनमें पुष्टिकर पदार्थोंका तो बिलकुल अभाव है ही, साधारण अनाजोंकी तादादका भी प्रति व्यक्ति पीछे दैनिक औसत साढ़े आठ छटाकसे अधिक नहीं पड़ता। इसीमें बीज, मवेशियोंका चारा, सूखन आदि भी शामिल हैं। चीनीकी ख़पतका प्रति व्यक्ति पीछे सालाना औसत सोलह पौंड होता है, जब कि अन्य देशोंमें यह संख्या ६० और

१२० पौंडके बीचमें है। श्रीयुत घनश्यामदास बिड़लाने हिसाब लगाकर दिखाया है कि भारतमें प्रति व्यक्तिके लिए कम-से-कम ५५ गज़ कपड़ेकी आवश्यकता है; किन्तु इस समय कपड़ेकी खपत प्रति व्यक्ति पीछे १६ गज़से अधिक नहीं पड़ती। भारतमें प्राकृतिक समृद्धि-साधनोंकी प्रचुरता है, विशाल जनशक्ति निश्चेष्ट बनी हुई है, फिर भी जनताके रहन-सहनका स्टैन्डर्ड इतना गिरा हुआ है। क्यों? इसलिए कि जनताकी आर्थिक दशाको उन्नत बनानेके लिए अभी तक कोई सामूहिक प्रयत्न नहीं हुआ। सरकारने किसी आर्थिक योजनापर विचार तक नहीं किया।

योजनाकी आवश्यकता

भारतको आर्थिक योजनाकी आवश्यकता इसलिए है कि वह अपने समृद्धि-साधनोंका अधिक-से-अधिक उपयोग कर सके। संसारकी आर्थिक प्रगतिसे भारत उदासीन नहीं रह सकता। इस समय संसारके देशोंमें जो प्रवाह चल रहा है, उसमें भारतको बहना ही पड़ेगा। संसारके विभिन्न देशोंकी अर्थनीतिमें युगान्तरकारी परिवर्तन हो रहे हैं, आर्थिक राष्ट्रीयताकी भावना ज़ोर पकड़ती जा रही है, मुद्रा-नीति और ज़कात-नीति (Tariff) में नित्य नूतन परिवर्तन हो रहे हैं। क्या भारत इनके प्रभावसे अछूता रह सकता है? यदि ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका और जापान जैसे समृद्धिशाली देश अपनी अर्थनीति और वाणिज्य-नीतिमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता महसूस कर रहे हैं, और इसके अनुसार परिवर्तन कर रहे हैं, तो हमें भी ऐसा करना ही पड़ेगा! यदि जापान कल यह निश्चय कर ले कि वह कपास खुद पैदा करेगा, लोहा और इस्पातके व्यवसायको अपने देशमें ही प्रतिष्ठित करेगा, तो भारतकी कपास और लोहा-इस्पातकी खपतके लिए बाज़ार कहाँ रह जायगा?

इसी प्रकार यदि अन्यान्य देश भी कच्चा माल पैदा करनेकी कोशिश करें, तो फिर भारतको अपनी पैदावारकी खपतके लिए अपने देशका बाज़ार छोड़कर और बाज़ार ही कहाँ रह जायगा? भारतीय वाणिज्य-मंडलके सभापति श्रीयुत नलिनीरंजन सरकारने अपने भाषणमें ठीक ही कहा है—"आर्थिक राष्ट्रीयताके इस युगमें देशके लिए क्या यह ग्लानिकी बात नहीं है कि भारतमें इतनी बड़ी तादादमें रुई पैदा हो, फिर भी हमें विदेशसे कपड़ा मँगाना पड़े? संसारमें सबसे अधिक तेलहन भारतमें पैदा हो और भारतको रंग, वार्निश और साबुनके लिए विदेशोंपर निर्भर करना पड़े! तम्बाकूके लिए लाखों एकड़ उपयुक्त भूमि होनेपर भी विदेशी सिगार और सिगरेटोंकी देशमें आमदनी हो! बाँस, लकड़ी और साबे घासकी प्रचुरता होनेपर भी विदेशसे काग़ज़ मँगाना पड़े! खाल और कच्चे चमड़ेकी बहुत बड़ी तादादमें रफ्तनी करके हम चमड़ेका तैयार माल बाहरसे मँगावें! देशमें रबरकी पैदावार होनेपर भी रबरकी कुल चीज़ें बाहरसे आती हैं। देशमें लोहा और इस्पात तैयार होनेपर भी कल-पुर्जे बाहरसे मँगाये जाते हैं।" एक ओर तो खपतमें कमी होनेके कारण बम्बईकी-काटन मिलें बन्द होती हैं, और दूसरी ओर हम जापान और लंकाशायरके साथ समझौता करके विदेशी कपड़ेकी आमदनीका मार्ग सुगम करते हैं। देशके अन्दर ही रुईकी खपतकी गुंजाइश होनेपर भी हमें अपनी रुई बेचनेके लिए जापानके साथ समझौता करना पड़ता है और रुईके बदले जापानी कपड़ा खरीदना पड़ता है। एक ओर तो जूट-मिलोंकी पैदावार नियन्त्रित करनेके लिए करघे बन्द हो रहे हैं और काम करनेके घंटे कम किये जा रहे हैं, और दूसरी ओर नई मिलें स्थापित हो रही हैं। हम पूँजी भी लगाते हैं, तो ऐसे व्यवसायोंमें, जिनके प्रसारके लिए बहुत कम क्षेत्र रह गया है। हम ऐसी चीज़ें पैदा कर रहे हैं, जिनकी खपतके लिए बहुत कम अवसर है, और जिन चीज़ोंकी हमें सख्त ज़रूरत है, उनकी ओरसे हम सर्वथा उदासीन हैं! ऐसा क्यों हो रहा है? इसलिए कि देशके सामने कोई

सुनिश्चित आर्थिक योजना नहीं है। विभिन्न कार्यवाहियोंको सुसम्बद्ध करनेके लिए कोई स्कीम नहीं है। जो कुछ हो भी रहा है, वह बिलकुल अन्यमनस्क भावसे। सरकार सुनिश्चित रूपमें कोई कार्य नहीं करना चाहती। उसने तो अपने लिए दो ही कर्तव्य समझ रखे हैं---देशमें कानून और व्यवस्था कायम रखना और नये-नये टैक्स लगाकर बजटका लेखा-जोखा मिला देना।

कृषि

देशके लिए चाहे कोई भी आर्थिक योजना हो; किन्तु उसमें सर्वप्रधान स्थान कृषिको ही देना होगा। कृषि देशका सर्वप्रधान व्यवसाय है, और इस व्यवसायके ऊपर प्रतिशत अस्सी मनुष्योंकी जीविका अवलम्बित है। किसानोंकी आर्थिक दशामें सुधार होने तथा उनकी क्रयशक्तिमें वृद्धि होनेसे ही देशके उद्योग-धन्धे पनप सकते हैं। देशके वाणिज्य-व्यवसायके साथ कृषिका घनिष्ट सम्बन्ध है, और खेतीकी पैदावारकी रफ्तनीसे ही हम अपने आयात-व्यापार (Import trade) का मूल्य अनेकांशमें चुकाते हैं। भारत-जैसे ऋणग्रस्त देशके लिए यह आवश्यक है कि उसके निर्यात-व्यापार (Export trade) की मात्रा आयात-व्यापारकी अपेक्षा अधिक हो। अतएव हमारी खेतीकी पैदावार इतनी होनी चाहिए, जिससे हम अपने खाद्य-पदार्थ-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्तिके साथ-साथ अपनी फाजिल पैदावार विदेश भेज सकें। इसके लिए चावल, गेहूँ जैसे अनाजोंकी पैदावारपर विशेष रूपसे ध्यान देनेकी आवश्यकता है। अब तक तो हम यह समझते थे कि भारत अन्नपूर्ण है, और हमारे देशमें अनाजकी पैदावार इतनी काफी होती है कि हमें बाहरसे अन्न मँगानेकी ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। यह बात सच है कि भारतको विदेशसे अन्न मँगानेकी ज़रूरत नहीं है; किन्तु इसके साथ ही यह भी एक तथ्य है कि कुछ वर्षोंसे भारतमें विदेशी गेहूँ और चावलकी आमदनी होने लगी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि देशी गेहूँ और चावलकी दर बहुत गिर गई है, और किसानोंको क्षतिग्रस्त होना पड़ा है। कृषिजात वस्तुओंके मूल्यमें जितना ही ह्रास होगा, उतनी ही किसानोंकी क्रयशक्ति घटती जायगी और स्वदेशी उद्योग-धन्धोंके विकासका मार्ग अवरुद्ध बना रहेगा। इसलिए किसानोंकी समृद्धि निर्यात-व्यापारका विस्तार, विदेशी देनकी चुकती, स्वदेशी शिल्पोंके विकास, प्रान्तीय राजस्वकी पुष्टि, चाहे जिस दृष्टिसे देखिये, भारतकी अर्थनीतिमें कृषिका सर्वप्रथम स्थान है, और इसकी हम किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं कर सकते।

कृषिकी उन्नतिकी समस्याके साथ इतनी समस्याएँ सम्बद्ध हैं कि उन सबपर इस लेखमें विचार नहीं किया जा सकता। सबसे पहले किसानोंको अज्ञानान्धकारके गर्तसे उठाकर ज्ञानालोकमें लाना होगा, जिससे वे जान सकें कि उनके चारों ओरके वातावरणमें क्या हो रहा है। इसके लिए साधारण शिक्षाके अलावा अन्यान्य प्रचार-साधनोंका भी उपयोग करना होगा। ज़मीनकी पैदावार दिन-दिन घटती जा रही है; जो पैदावार होती भी है, वह इस योग्य नहीं होती कि हम अपने विदेशी प्रतिद्वन्द्वियोंका मुकाबला कर सकें। कपास, तेलहन आदिके सम्बन्धमें भारतको अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताका सामना करना पड़ेगा, और इस प्रतियोगितामें यदि भारत नहीं ठहर सकेगा, तो यह निश्चित है कि विदेशी बाज़ारोंपर उसके प्रतिद्वन्द्वियोंका अधिकार जम जायगा और उसके हाथसे सदाके लिए विदेशी बाज़ार निकल जायँगे। इसलिए कच्चे मालकी पैदावारकी सिर्फ तादादमें ही नहीं, बल्कि उसकी Quality में भी उन्नति तथा सुधार करना होगा, जिससे हम अपने विदेशी प्रतिद्वन्द्वियोंका मुकाबला कर सकें। कृषिकी उन्नतिके साथ सरकारकी भूमिकर-नीतिका भी बहुत बड़ा सम्बन्ध है। सरकारकी इस भूमिकर नीतिमें किसी-किसी प्रान्तमें आमूल परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। बाज़ारमें माल पहुँचानेकी सुविधाएँ नहीं रहनेके कारण किसानोंको बहुत-कुछ दिक्कतें उठानी पड़ती हैं।

'इम्पीरियल कौंसिल आफ् ऐग्रीकलचरल रिसर्च' नामक संस्थाने, जो भारत-सरकारके अन्तर्गत कृषिके सम्बन्धमें अनुसन्धान-कार्य करती है, हिसाब लगाकर दिखलाया है कि किसानोंको अपनी पैदावारका जो मूल्य मिलता है, उस मूल्यमें और बाज़ारकी दरमें दुगुना फर्क पड़ता है। बीचके जो दलाल होते हैं, वे सब मुनाफा लूट लेते हैं, और बेचारे किसानोंको कुछ नहीं मिलता। कृषिके सम्बन्धमें किसी प्रकारका अनुसन्धान-कार्य करनेके पहले यह आवश्यक है कि किसानोंको अपनी पैदावार बेचनेकी सुविधाएँ पहुँचाई जायँ। किसान अपने गाँवमें ही बाज़ार-दरपर चाहे जब अपनी पैदावार बेच सकें, इसकी सुविधाएँ हो जानेपर उन्हें तात्कालिक लाभ हो सकता है। सरकारी कृषि-अनुसन्धान-समितिको पहले इस समस्याकी ओर ध्यान देना चाहिए। इस समस्याकी ओर ध्यान न देकर 'अधिक दूध पीओ' का आन्दोलन चलानेमें समय, शक्ति और धनका व्यय करना सर्वथा निरर्थक है। पहले इस बातका निश्चय हो जाना चाहिए कि हमारे देशमें इतना काफी दूध होता है या नहीं कि जिससे हमें इस प्रकारके किसी आन्दोलनको चलानेकी आवश्यकता प्रतीत हो। कुछ चीजें ऐसी भी हैं, जैसे कि पाट, जिनकी पैदावार आवश्यकतासे अधिक होने लगी है। पैदावार नियन्त्रित करनेके लिए किसानोंमें प्रचार-कार्य करने अथवा कानून द्वारा पैदावार नियन्त्रित करनेकी तरकीब सोची जाती है; किन्तु किसानोंको किसी वस्तुकी पैदावार कम करनेका उपदेश देनेके साथ-साथ हमें उन्हें यह भी बता देना होगा कि वे उसके बदलेमें दूसरी कौनसी चीज़ पैदा करें, जिससे उन्हें नकद दाम मिलनेमें सुविधा हो। ऐसा न करके सिर्फ पाट या इसी तरहकी किसी दूसरी चीज़की पैदावार कम करनेका उपदेश देना और उनकी अनिवार्य आवश्यकताओंकी पूर्तिका कोई उपाय न बताना निष्फल होगा। पैदावार-नियन्त्रणके साथ-साथ मूल्य-निर्धारणकी भी आवश्यकता है, जिससे कल-कारखानेके मालिक और चालान करनेवाले किसानोंको लूटकर मालामाल न बनने पावें। पाट, ईख जैसी फसलकी दर साल-बसाल निर्धारित होनी चाहिए, और साथ ही इसके इस बातकी जाँच भी होती रहनी चाहिए कि किसानोंको निश्चित दरके अनुसार उनके मालकी कीमत मिलती है या नहीं। किसानोंकी कर्ज़दारीकी समस्या तो और भी विकट है। कहा जाता है कि देशके किसानोंके ऊपर ९९० करोड़का ऋणभार है। इस बोझसे वे आजीवन दबे रहते हैं। भारतीय किसानोंके सम्बन्धमें यह ठीक ही कहा गया है कि वे ऋणग्रस्त दशामें ही जन्म लेते हैं, जीवन-यापन करते हैं और इसी दशामें मृत्युको प्राप्त होते हैं। अर्थ-सचिव सर जार्ज शुस्टरने भी इस समस्याकी गम्भीरताको महसूस किया है। प्रान्तीय सरकारोंके प्रतिनिधियोंकी जो सभा अभी हालमें दिल्लीमें हुई थी, उसके सामने किसानोंकी कर्ज़दारीकी समस्या भी रखी गई थी, और कानून द्वारा सूदकी दर निश्चित करनेके प्रश्नपर विचार भी किया गया था। ज़मीन बन्धक रखकर रुपया उधार देनेवाले बैंकों (Land Mortgage Banks) की स्थापनासे किसानोंकी कर्ज़दारीकी समस्याका कुछ अंशोंमें समाधान हो सकता है; किन्तु अभी तक इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अभी हालमें बंगाल-प्रान्तके कुछ ज़िलोंमें इस प्रकारके बैंक स्थापित हुए हैं। किसानोंकी कर्ज़दारीके सम्बन्धमें इस बातपर भी ध्यान रखना आवश्यक है कि बैंकोंकी स्थापना उनके लिए ऋण लेनेका प्रलोभन सिद्ध न हो। सारांश यह कि कृषिकी समस्या अत्यन्त जटिल और दुरूह है, और किसानोंकी उन्नतिके मार्गमें अनेकानेक कठिनाइयाँ हैं। अतएव इस सम्बन्धमें छोटे-मोटे साधारण उपायोंसे काम नहीं चल सकता। एक सुनिश्चित योजनाके अनुसार इस समस्याके सब पहलुओंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा, तभी हमें अभीष्ट सफलता प्राप्त हो सकती है।

अन्तमें हमें इस बातपर ध्यान रखना होगा कि

हमारे देशके लिए जो आर्थिक योजना हो, वह देशकी परिस्थिति, परम्परा और जनताकी प्रवृत्तियोंके अनुकूल हो। आँख मूँदकर किसी देशका अनुकरण करनेसे काम नहीं चल सकता। हम अपने देशके रहन-सहनके स्टैन्डर्डको ऊँचा उठाना चाहते हैं; किन्तु ऊँचा उठानेका अर्थ यह नहीं है कि हम देशमें अनावश्यक विलासिताओंका इतना प्रचार कर दें, जिससे हमें अपने देशके ऊपर एक बृहत् जनसमुदायके परिश्रमका शोषण करके उससे अनुचित लाभ उठाना पड़े और अपनेसे दुर्बल और अक्षम देशका दोहन करके अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनी पड़े। भारतके लिए न तो यह सम्भव है और न ऐसा करना वांछनीय है। देशकी ही साधारण जनताको भरपेट पुष्टिकर भोजन मिले, लज्जा और शीत-निवारणके लिए काफी वस्त्र मिले और रहनेके लिए स्वच्छ हवादार घर और पीनेके लिए स्वच्छ जलका प्रबन्ध हो, ये हमारी तात्कालिक अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, जिनकी पूर्तिपर ही किसी आर्थिक योजनाकी सफलता निर्भर करती है। इसके अलावा हमें जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है और जिन्हें हमें इस समय विदेशसे मँगाना पड़ता है, उन वस्तुओंके लिए साधन मौजूद होनेसे हमें देशमें ही उन्हें तैयार करनेकी कोशिश करनी चाहिए। खेतीसे पैदा न होनेवाली चीज़ोंमें, जिन चीज़ोंका उपयोग तैयार माल (Manufactured Goods) के रूपमें हो सकता है, उन्हें विदेश न भेजकर अधिक-से-अधिक तादादमें हम देशके कल-कारखानोंमें ही उपयोग करें, जिससे हमें विदेशोंका मुँह न ताकना पड़े। हाँ, आवश्यकतासे अधिक होनेपर हम उन्हें विदेश चालान कर सकते हैं। जिन वस्तुओंके उत्पादनके लिए हमारे देशमें साधन नहीं हैं और जिनकी प्रतियोगिता हमारे लिए असम्भव है, उन्हें हम विदेशसे मँगावें और इसके बदलेमें अपना कच्चा माल, जो हमारी आवश्यकताओंसे फाजिल हो, जिसके लिए विदेशोंको हमपर निर्भर करना पड़ता है और जिनकी बिक्रीकी पूरी सुविधा हो, विदेश भेजें।

इस प्रकार आवश्यक वस्तुओंको देशमें उत्पन्न करके तथा जिन वस्तुओंके उत्पादनके साधन देशमें मौजूद न हों, उन्हें बाहरसे मँगाकर और आवश्यकतासे फाजिल कच्चा माल विदेश भेजकर हम विदेशोंके साथ अपना वाणिज्य-सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकारका वाणिज्य-सम्बन्ध ही देशके लिए कल्याणप्रद होगा। अपने देशके लिए कोई आर्थिक योजना निश्चित करनेमें हमें इन्हीं सब बातोंपर ध्यान रखना होगा।
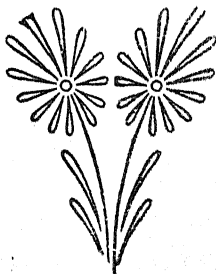
हिमाचल

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

गीत

जो था मनु-वंश-विटपका,
वसुधातलमें आदिम फल।
उसके लालन-पालन का,
पलना है अचल हिमाचल।१

हो सका बहुसरस जिससे,
भव अनुभव भूतल सारा।
बह सकी प्रथम हिम-गिरिमें,
वह मानवता-रसधारा।२

जिसके मधुपर हैं मोहित,
महि विबुधवृन्द मंजुल अलि।
निकली हिमाद्रिमें ही वह,
वैदिक संस्कृति-कुसुमावलि।३

जिसकी कामदता देखे,
सुरवृन्द सदैव लुभाया।
मिल सकी हिमालयमें ही,
वह सुख सुरतरुकी छाया।४

है कहाँ कान्त कनकाचल,
बहुदिव विभूति विलसित घन।
मुक्तामय मानसरोवर,
नन्दनवन, जैसा उपवन।५

हैं कहाँ बिहरती फिरती,
अलका-विलासिनी बाला।
कमनीय कंठ में पहने,
मन्दार मंजुतम माला।६

जिनकी अद्भुत तानों से,
रसकी धारा-सी फूटी।
हैं कहाँ सुधा बरसाती,
गा-गाकर विबुध-वधूटी।७

है कहाँ शान्तिका मन्दिर,
भव-जन-विश्राम-निकेतन।
उड़ सका शिखरपर किसके,
वसुधा विमुक्तिका केतन।८

जी सकीं देख मुख जिनका,
शुचिताकी आँखें प्यासी।
वे सिद्ध कहाँ थे जिनकी,
थीं सकल सिद्धियाँ दासी।९

भर विभु विभुता वैभवसे,
है कहाँ कुसुम-कुल हँसता।
सब काल ललिततम बनके,
है कहाँ वसन्त विलसता।१०

वे वन-विभूतियाँ जिनमें,
हैं कलित-कलाएँ खिलतीं।
वे दृश्य अलौकिक जिसमें,
है प्रकृति-दिव्यता मिलती।११

किसने है ऐसी पाई,
है कौन मंजुतम इतना।
अब तक भव समझ न पाया,
उसमें रहस्य है कितना।१२

विधि लोकोत्तर कर लालित,
लौकिक ललामता सम्बल।
सिरमौर मेरुओं का है,
अचला-मणि-मुकुट हिमाचल।१३

स्वदेशी ही क्यों ?

श्री श्यामनारायण कपूर

एक मसल मशहूर हैं कि 'घरमें चिराग जलाकर मसजिदमें चिराग जलाते हैं।' परन्तु हमारे भारतवर्षकी चाल इसके बिलकुल विपरीत है। अपने यहाँ लोग दाने-दानेके मोहताज हैं, बेकारोंकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है; परन्तु फिर भी हमारे कानपर जूँ तक नहीं रेंगती! हम अब भी प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये विदेशोंको उन चीज़ोंके लिए देते जा रहे हैं, जिन्हें अनावश्यक कहा जा सकता हैं, जिनके बिना हमारा कोई काम नहीं रुक सकता। उनके बजाय देशी माल व्यवहारमें लानेसे न केवल करोड़ोंकी लम्बी रक़म देश ही में रह जायगी, वरन् भारतके सहस्रों बेकार युवकोंकी आजीविकाका प्रबन्ध भी हो जायगा।

इस आर्थिक संकटके ज़मानेमें इंग्लैण्ड और अमेरिका जैसे शक्तिशाली राष्ट्रों तकके आसन डोल गये। इंग्लेगडमें बिरला ही कोई व्यक्ति ऐसा होगा, जो इंग्लेगडकी बनी वस्तुएँ व्यवहारमें न लाता हो; परन्तु वहाँ भी 'ब्रिटिश माल खरीदो'का ज़बरदस्त आन्दोलन किया गया और किया जा रहा है। स्वयं युवराज तक ब्रिटिश मालके प्रचारमें जुट जाते हैं, और प्रचारके प्रत्येक साधनका पूर्ण उपयोग किया जाता है। यही दशा फ्रान्स, जर्मनी, इटली आदि देशोंकी भी है। परन्तु हमारी मनोवृत्तिमें तो गुलामी कूट-कूटकर भरी है। देशी माल कैसे व्यवहारमें लावें? स्वदेशी-आन्दोलनके फल-स्वरूप इधर चार-पाँच वर्षोंमें विदेशी मालकी आयातमें काफी कमी हुई है; परन्तु वह ऐसी नहीं है कि हम उसकी खुशीमें फूले न समायँ और अपनी कोशिशोंको कम कर दें। इस समय तो और भी ज़्यादा ज़ोर-शोरसे काम करनेकी आवश्यकता है। अब भी हमारे यहाँ लाखों रुपयोंका ऐसा माल आता है, जिसपर हममें से बहुतोंने कभी कोई ध्यान ही नहीं दिया होगा, और अगर दिया भी होगा, तो उसे अत्यन्त क्षुद्र समझकर टाल दिया होगा। इस लेखमें यह बात समझानेकी कोशिश की जायगी कि भारतमें अब भी कौन-कौन-सी ऐसी चीज़ें आ रही हैं, जिनके बिना हम बख़ूबी काम चला सकते हैं और जिन्हें हम स्वदेशमें तैयार करके निर्धन [illegible]के करोड़ों रुपयोंको बचा सकते हैं। अस्तु, यहाँपर मेशीनों, औषधियों, रसायनों, पुस्तकों, समाचारपत्रों तथा और बहुत-सी चीज़ोंके आँकड़े नहीं दिये जा रहे हैं। यद्यपि अब वह समय आ गया है, जब मेशीन और मोटर, रासायनिक पदार्थ और औषधि भी देश ही में तैयार की जानी चाहिए।

हमारे पड़ोसी चीन और फारसने ऐशो-आरामकी सब विदेशी चीज़ोंकी आयातकी मनाही कर दी है। वहाँकी सरकार अपनी करेंसीको अपने उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके अनुकूल बना रही है। फारस ही की भाँति मिस्र भी अपने घरेलू उद्योग-धन्धोंको उन्नत बना रहा है। भारतकी राजनैतिक अवस्था इन सबसे भिन्न होनेके कारण यहाँपर दूसरे ही तरीक़े काममें लाने पड़ते हैं। फिर भी यह निश्चित बात है कि जनता स्वदेशीके लिए चाहे जितना आन्दोलन करे, जब तक सरकारकी ओरसे स्वदेशी उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन न मिलेगा, आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना बहुत कठिन है। देशी व्यवसायकी उन्नति और अवनति सरकारके इशारेपर निर्भर है। सरकार विनिमयकी दर और रेलोंके किराये आदि तथा ऐसे ही अन्य उपायोंसे देशी व्यापारकी बागडोर जिधर चाहे उधर फेर सकती है। फिर भी सैकड़ों ऐसे छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे हैं, जो बिना सरकारी सहायताके भी पुनर्जीवित किये जा सकते हैं; परन्तु यह उसी दशामें हो सकता है, जब हम सब लोग इस बातका पूर्ण निश्चय कर लें कि हम केवल स्वदेशी माल ही व्यवहार करेंगे। आज भी हम लोग बहुत-सी ऐसी चीज़ें व्यवहारमें लाते हैं, जो हमारे लिए आवश्यक नहीं हैं; कुछ ऐसी भी है, जिनके बिना थोड़ी-सी दिक़्क़त उठाकर हमारा काम बख़ूबी चल सकता है, और कुछ तो ऐसी हैं, जो बड़ी सहूलियतसे भारतवर्षमें तैयार हो सकती हैं। गत पाँच वर्षोंसे विदेशोंसे जो अनावश्यक चीज़ें आई हैं, नीचे उसका ब्यौरा दिया जाता है :—

तालिका नं० १—अनावश्यक चीज़ें

(लाख रुपयोंमें)

वस्तु	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
साबुन	१५८	१६७	११२	८६	८३
खाद्य-पदार्थ	५८६	५२४	४५७	३२७	२७६

शराब और मद्य	३५७	३७७	३३१	२२६	२२५
तम्बाकू-सिगरेट	२७४	२७०	१५०	९५	९७
तैयार कपड़े	१८२	१७१	१११	८२	८३
बूट-जूते	६९	८७	८८	६५	५२
सुपारी	२२३	२४७	१८९	१४५	११९
लौंग	३५	४८	३७	४२	३५
दूसरे मसाले	३६	३०	२८	२१	१९
मछली	४८	५२	४२	२१	२३
शृंगार-सामग्री	१०९	११२	८१	७१	९३
खिलौने और बच्चोंकी गाड़ियाँ	७०	६७	५०	३८	४८
चूड़ियाँ	७७	८५	५०	३५	४०
झूठे मोती-माणिक	३०	३१	१६	९	१२
टेबिल वेयर काँचका माल	११	१३	९	६	५
केसर और कपूर	४१	४१	३६	३८	३५
फल-शाक-भाजी	१८०	१९७	१६१	१४१	१२४
मोमबत्ती, बेत आदि	२२	२५	२१	१७	१४
आतिशबाजी	१८	१६	८	५	८
योग	२५२६	२५६०	१९७७	१४७३	१३९१

तालिका नं० २—साबुन

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
घरेलू और कपड़ा धोनेका साबुन	१०२'०५	१११'०६	७५'९०	५६'४९	४८'६९
नहाने-धोनेका साबुन	४९'८३	५०'४३	३१'२४	२८'०७	३०'८७
अन्य प्रकार	६'२२	५'१९	४'८४	४'१६	३'०७
योग	१५८'१०	१६६'६८	१११'९८	८८'७२	८२'६३

गत तीन वर्षोंमें भारतवर्षमें जितना भी साबुन आया है, उसका लगभग ८४ प्रतिशत भाग अकेला ग्रेट-ब्रिटेनसे आया है। अन्य देशोंसे तो केवल नाममात्र ही का आया है। अब देश-भरमें साबुनके बहुतसे कारखाने खुल गये हैं, जो हमारी ज़रूरतोंको भलीभाँति पूरा कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ देशी साबुन अपने गुणोंमें भी विदेशी साबुनोंका मुक़ाबला करनेमें समर्थ होते जा रहे हैं। बाज़-बाज़ साबुनोंकी तो विदेशियोंने भी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। इस प्रकार ८३ लाख रुपयेकी रक़म बहुत आसानीसे बचाई जा सकती है।

तालिका नं० ३—खाद्य-पदार्थ

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८ २९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
बेकन, हैम	१७'००	१६	१४	१०	६
बिस्कुट-केक	५६'००	५५	४०	३०	२८
मक्खन	२'००	४	५	६	५
फल तथा शाक	१७७'००	१२०	१०९	४२	१३
अन्य फल	६६'००	६७	६२	५६	५२
चीज़ (पनीर)	१२'००	११	१०	६	८
कोको-चाकलेट	६'००	३	४	४	३
कनफेक्शनरी	२७'००	२६	२०	१९	१५
मैदा आदि चीज़ें	४४'००	४१	३६	३०	२६
दूधकी चीज़ें	३३'००	३७	२६	२३	१९
अन्य	२६'००	२४	२३	१९	१८
घी	'२५	'५८	'५५	१'००	'२५
जिलेटिन	'७७	२'००	१'००	१'००	१'५४
मुरब्बा	८'०	८'००	६'००	४'००	५'००
चरबी	'७३	'३६	'३८	'१८	'१९
जमा दूध मलाई	८९	८८	७९	५७	४९
चटनी और अचार	६	५	४	४	४
सिरका	'३६	'२२	'२२	'२४	'२२
अन्य पदार्थ	१५'००	१६'००	१७'००	१८'००	२०'००
योग	५५६'११	५२४'१६	४५७'१५	३२७'४२	२७६'२०

उपर्युक्त सामग्रीमें से १९२९-३० में ४० प्रतिशतके लगभग ग्रेट-ब्रिटेनसे, २६ प्रतिशत नीदरलैण्डसे और शेष भाग अमेरिका स्ट्रेट्स सेटिलमेन्ट और चीन आदिसे आया था। १९३२-३३ में यही सामग्री ग्रेट-ब्रिटेनसे ४८ प्रतिशत, नीदरलैण्डसे १२ प्रतिशत, स्ट्रेट्स सेटिलमेन्ट्ससे ७ प्रतिशत और ३३ प्रतिशत अन्य देशोंसे, जिनमें अमेरिका भी शामिल है, आई थी।

उपर्युक्त खाद्य-पदार्थोंमें से अधिकांश भारतीय रईसोंके घरोंमें तथा भारतीय होटलों और भोजनालयोंमें ख़र्च होता है। यदि इन चीज़ोंके बजाय देशी चीज़ें काममें लाई जायँ, तो देशको कितना लाभ होगा, यह बिलकुल स्पष्ट है। मुरब्बा, बिस्कुट, केक्स, मक्खन, मिठाई, जमा हुआ दूध आदि बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं, जिनके ऊपर किसी भी तरहकी टीका-टिप्पणी करनी बिलकुल अनावश्यक है; परन्तु १,३००,००० रुपयेके वनस्पति घी और चर्बीकी आयात तो

फौरन ही बन्द हो जानी चाहिए। समस्त भारतीयों तथा घी और मक्खनके व्यापारियों और उनके संघोंको इस ओर शीघ्रसे शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

तालिका नं० ४—शराब

(लाख रुपयोंमें)

१९२८-२९	३५६'७४
१९२९-३०	३७६'६८
१९३०-३१	३३१'४६
१९३१-३२	२२६'३९
१९३२-३३	२२५'३९

ईरानमें स्वदेशाभिमानी ईरानियोंने विदेशी शराब पीना बिलकुल बन्द कर दिया है। अमेरिकामें भी देशहितके खयालसे शराबकी आमद सरकारी क़ानून द्वारा कई वर्ष तक बन्द रखी गई थी। चीनमें तो राष्ट्रीय सरकारने अपने समस्त कर्मचारियों और अधिकारियोंको विदेशी शराब न पीनेकी सख्त ताकीद कर दी है। हमारे यहाँ तो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के लिए शराब पीना घोर पाप है। फिर भी हमारे देशमें सवा दो करोड़ रुपयेकी विदेशी शराब उड़ जाती है! हमारे अध:पतनका इससे अच्छा और क्या सबूत हो सकता है?

तालिका नं० ५—तम्बाकू

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
कच्ची	५७	४०	१४	३०	६२
सिगार	१'७४	१'७५	१'५९	१'०३	'८५
पाइपका तम्बाकू	१३	१४	११	९	३
अन्य	१'३७	१'५१	१'७९	२	२
सिगरेट	२०१	२१३	१२२	५३	२९
योग	२७४'११	२७०'२६	१५०'३८	९५'०३	९६'८५

तम्बाकूका सारा व्यापार ग्रेट-ब्रिटेनके हाथमें है। ग्रेट-ब्रिटेनके बाद मिस्र और अमेरिकाका नम्बर आता है; परन्तु इन दोनों देशोंसे नाममात्र ही का माल आता है। पिछले दो वर्षोंमें आयात बहुत कम हो गई है। यूरोप और अमेरिकाके फेन्सी सिगार और सिगरटोंकी अपेक्षा 'पैसेकी सात बीड़ी पीनेमें स्वदेशाभिमानकी रक्षाके साथ-ही-साथ आर्थिक लाभ भी तो है। हमारे यहाँके हुक्के और नारियल सिगरेटकी अपेक्षा वैज्ञानिक सिद्धान्तपर बने हुए हैं। जो लोग तम्बाकू पीना छोड़ नहीं सकते, वे अगर इन हुक्कोंको अपना लें, तो आर्थिक लाभके साथ-ही-साथ देशके कुछ ग़रीब कारीगरोंका भी भला हो जाय।

तालिका नं० ६—तैयार कपड़े

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२ ३३
तैयार कपड़े	८६	५७	५०	४०	४०
सुनहली और रुपहली ज़री	३३	३७	२०	७	१०
टोपी, हैट आदि	३२	२९	१९	१८	१७
लामेटा	१०	७	६	५	६
पहने हुए कपड़े	१७	१९	१२	११	८
वाटरप्रूफ कपड़े	४	४	४	१	२
योग	१८२	१७१	१११	८२	८३

तैयार कपड़ोंमें देशका कितना धन विदेशोंको बाहर चला जा रहा है यह उपर्युक्त तालिकासे साफ जाहिर है। इस आर्थिक संकटके समय हमें फैन्सी विदेशी तैयार कपड़ोंका व्यवहार करना शोभा नहीं देता। विदेशोंसे हैट, टोपी, ज़री, वाटरप्रूफ, तैयार कपड़े और पहने हुए जो कपड़े यहाँ आते हैं, वे सब यहाँ स्वदेशमें भी बहुत ही सहूलियतसे तैयार हो सकते हैं और हो रहे हैं, फिर भी इनमें से बहुतेरोंकी विदेशी वस्त्र पहननेकी लत दूर नहीं हुई। एक समय वह था, जब भारतके ज़री गोट लचके और कारचोबीके कामसे संसार ईर्ष्या करता था; परन्तु आज वह दिन आ गया है, जब उसी भारतकी सन्तान अपनी ज़रीकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए दस लाख रुपयेके लगभग विदेशियोंको भेंट कर देती है। अब भी काशी, सूरत, पूना, मदुरा, चेवला आदि नगरोंमें उपर्युक्त सभी चीज़ें तैयार होती हैं। सरकारी रिपोर्टके अनुसार अकेले सूरत नगर ही में इस धन्धेमें २०००० के लगभग आदमी लगे हुए हैं। इस समय वहाँपर ६ बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ और ७०० छोटे-छोटे कारखाने हैं। प्रत्येक छोटे कारखानेमें पाँच-सात आदमी सोने-चाँदीके तार बनाने तथा कारचोबी और ज़री आदिका काम करनेमें लगे हुए हैं। सूरतवालोंका यह एक तरहसे प्रमुख व्यवसाय है। पूना और भेवलामें भी कई एक कारखाने हैं, जिनमें बहुतसे आदमियोंका पेट पलता है।

स्वयं बम्बईमें भूलेश्वर, भिण्डीबाज़ार, पायधनी आदि भागोंमें यह कारीगरी अच्छे पैमानेपर चल रही है। इसके अलावा सूरतमें गोटे और फीते वग़ैरह तैयार करने तथा तत्सम्बन्धी दूसरे व्यवसायोंमें क़रीब १२००० व्यक्ति लगे हुए हैं। यदि हम लोग केवल अपने ही देशमें तैयार की हुई ज़री, गोटा, लचका, बेल आदि व्यवहारमें लाना निश्चय कर लें, तो केवल इस कारीगरीमें ही अब भी हज़ारों आदमी और लग सकते हैं।

तालिका नं० ७—बूट और जूते

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
कैनवास	३२	४१	४१	४२	३०
चमड़ेके	२६	२१	१३	११	१४
अन्य	११	२५	३४	१२	८
योग	६९	८७	८८	६५	५२

यह बड़ी लज्जाकी बात है कि हम लोग अब भी ५२ लाखकी लम्बी रक़म जूतोंके लिए विदेशोंको भेज देते हैं। हमारे देशमें शायद ही कोई ऐसा गाँव या कस्बा होगा, जहाँ अच्छे मोची न मौजूद हों। इन मोचियोंके अलावा अब भारतवर्षके हर गली-कूचेमें देशी कारखानोंके बढ़िया-से-बढ़िया जूते भी मिल सकते हैं।

इस समय विदेशी जूतोंका बाज़ार अधिकतर जापान और ज़ेकोस्लोवेकियाके हाथमें है। ज़ेकोस्लोवेकियाकी 'बाटा' कम्पनीने तो देशीका नाम करनेके लिए अपना एक कारखाना कलकत्ते तकमें खोल दिया है। जापानके जूते सस्ते होनेकी वजहसे ख़ूब बिक जाते हैं। हरएक नगरमें हज़ारों जापानी जूते बिकते दिखाई देते हैं। सन् १९२९ में ५'२८ लाख, सन् १९३० में ४०'४४ लाख और सन् १९३०-३१ में १००'८९ लाख जोड़े जूते अकेले जापानसे भारतवर्षमें आये। यदि यही दशा कुछ वर्ष और बनी रही, तो भगवान जाने, हमारी क्या दशा होगी।

सन् १९३१-३२ में कुल ९४'९० लाख जोड़े विदेशोंसे यहाँ आये, जिनमें ८७'३४ लाख अकेले जापानसे आये। सन् १९३२-३३ में यह संख्या कुछ कम होकर ७८'८२ लाख रह गई, उसमें भी जापानका हिस्सा ६८'६२ लाख रहा। परन्तु अब जापानका एक दूसरा प्रतिद्वन्द्वी तैयार हो गया है, वह है ज़ेकोस्लोवेकिया। इंग्लैण्ड और जर्मनीके भी कान खड़े हो गये हैं, और वे बाज़ारको फिरसे अपने क़ब्जेमें करनेकी दौड़-धूप करने लगे हैं। क्या हमारे देशवासी भी अपने बाज़ारपर क़ब्जा करनेके लिए प्रयत्नशील होंगे?

तालिका नं० ८—मसाले

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
सुपारी	२२३	२४७	१८९	१४५	११९
लौंग	३५	४८	३७	४२	३५
सोंठ	२	१'५३	०'६४	०'१८	०'१९
जावित्री	६	७	५	४	३
काली मिर्च	१२	६	१०	६	६
अन्य	१६	१६	१२	११	१०
योग	२९४	३२५'५३	२५३'६४	२०८'१८	१७३'१९

सन् १९२९में भारतवर्षमें ३ करोड़ ५५ लाख ५३ हज़ारका मसाला आया, जिसमें से ६७ प्रतिशत भाग स्ट्रेट्स सेटिलमेंटसे आया। ३४ लाखकी सुपारी लंकासे और ४६ लाखकी लौंग केनिया उपनिवेश, ज़ंज़ीबार और पम्बा आदि द्वीपोंसे आई। सन् १९२९-३० से अब तक मसालेकी आयातमें काफी कमी हुई है; परन्तु मसाले जैसी अनावश्यक सामग्रीके लिए प्रतिवर्ष लगभग २ करोड़की रक़मका विदेशोंको चला जाना कभी भी सन्तोषजनक नहीं समझा जाना चाहिए। मसालेमें सबसे बड़ी रक़म सुपारी द्वारा जाती है।

महाराष्ट्र, गुजरात, मंगलोर, मलाबार, पश्चिमी घाट और मदरासमें बहुत काफी मात्रामें सुपारी पैदा होती है। मलाबार और दक्षिणी कनारेके कुछ हिस्सोंमें नारियल और इलायचीके साथ-साथ सुपारी भी पैदा की जाती है; परन्तु अभी सुपारीकी खेतीको बढ़ानेकी काफी गुंजाइश है। पान-सुपारी खानेवालोंको केवल स्वदेशी सुपारी ही खानेका निश्चय कर लेना चाहिए।

तालिका नं० ९—कपूर और केसर

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
कपूर	२७'८०	३१'५६	२६'९४	२८'८५	२५'३४
केसर	१३'१२	९'६०	८'७२	९'२८	९'८९

हिन्दुओंमें शायद ही कोई ऐसा पूजा-पाठ होता हो, जिसमें कपूरकी ज़रूरत न पड़ती हो। इस पूजा ही के बहाने प्रतिवर्ष २५-२६ लाख रुपये विदेशोंको भेजनेसे तो यह कहीं अच्छा होगा कि हम पूजामें कपूरका व्यवहार ही बन्द कर दें। कपूरके बिना पूजा ही न हो सके, इसका तो शायद कहीं कोई विधान है नहीं। साधारण धूपबत्ती और 'धीकी आरती'से अच्छी तरह काम चल सकता है। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि अपने घरकी पूँजीको व्यर्थमें न लुटा देनेसे हमारे देवगण हमपर प्रसन्न ही होंगे। केसरका भी यही हाल है। इस समय अधिकांश केसर स्पेनसे आती है। काश्मीर और उत्तरी भारतके कुछ अन्य भागोंमें काफी केसर पैदा होती है। विदेशी केसरके विरुद्ध जैनधर्माचार्य लोग गुजरात और कठियावाड़में काफी आन्दोलन कर चुके हैं; परन्तु उसका कोई देशव्यापी प्रभाव नहीं पड़ा। अकेले केसरकी मदमें १० लाखकी बचत की जा सकती है। घरेलू तथा व्यावसायिक दोनों ही तरहकी ज़रूरतोंकी पूर्तिके लिए देशी केसर व्यवहारमें लाई जानी चाहिए। माँग बढ़नेपर उत्पत्ति भी अपने-आप ही बढ़ जायगी।

तालिका नं० १०—मछली

(लाख रुपयोंमें)

१९२८-२९	४७·९७
१९२९-३०	५२·१८
१९३०-३१	४१·७६
१९३१-३२	२०·५९
१९३२-३३	२२·६६

भारतवर्षमें हज़ारों मील लम्बा समुद्र-तट, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिन्ध, नर्मदा, ताप्ती जैसी विशाल नदियों, अनेकों झीलों, तालाबों और छोटी-मोटी नदियोंके होते हुए भी यह २२-२३ लाखकी रक़म विदेशोंको क्यों भेजी जाती है, यह बात बहुत-कुछ सोच-विचार करनेपर भी समझमें नहीं आती।

तालिका नं० ११—श्रृंगार-सामग्री, सुगंध आदि

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
बटन	३३	२९	१८	१६	२४
सुगन्ध	५	४	३	३	४
श्रृंगार-सामग्री	६५	७३	५४	४८	५८
श्रृंगारके ब्रश	६	६	६	·४	७
योग	१०९	११२	८१	७१	९३

गत पाँच वर्षोंमें उपर्युक्त वस्तुओंकी आमदमें कोई विशेष कमी नहीं हुई। पिछले वर्षमें तो कमीके बजाय उल्टे २२ लाखकी वृद्धि ही हुई है। यह रक़म तीस-एकतीसकी तुलनामें १२ लाख अधिक है। इस ओर विशेष रूपसे ध्यान देनेकी ज़रूरत है। अब प्राय: सभी बड़े-बड़े नगरोंमें बहुत बढ़िया क्रीम, पोमेड, वेसलीन, स्नो, पाउडर आदि चीज़ें तैयार होने लगी हैं, और वे विदेशी सामानका मुक़ाबला करने योग्य हो गई हैं। ज़रासी कोशिश करनेसे १ करोड़की लम्बी रक़म आसानीसे बचाई जा सकती है।

तालिका नं० १२—ताश, खिलौने आदि

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
खिलौने, ताश व खेल-कूदका सामान	६६·६९	६४·८४	४९·०६	३७·०४	४७·३२
बच्चोंकी गाड़ियाँ	२·८३	२·२७	१·३५	१·३८	१·१२
योग	६९·५२	६७·११	५०·४१	३८·४२	४८·४४

यह व्यापार जर्मनी और इंग्लैण्डके हाथमें है। यह बड़े दु:ख और लज्जाकी बात है कि हम लोग प्रतिवर्ष ९ लाख रुपयेके विदेशी तास खेल डालते हैं! 'एक तो करेला, फिर नीम चढ़ा।' ताशका खेल, वह भी ९ लाखकी रक़म स्वाहा करके! बच्चोंकी गाड़ियों और अन्य खिलौने तथा खेल-कूदके साधनोंका भी यही हाल है। अब ताश, खिलौने और बच्चोंकी गाड़ियाँ तथा खेल-कूदके प्राय: सभी सामान स्वदेशमें तैयार भी होने लगे हैं।

तालिका नं० १३—काँचका सामान, चूड़ियाँ आदि

(लाख रुपयोंमें)

	१९२८-२९	२९-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
ग्रेट-ब्रिटेन	२१	२२	१६	१३	१२
जर्मनी	४१	३४	२४	२०	१८
बेल्जियम	२५	२४	१८	१३	१५
आस्ट्रिया	५	५	३	१	२
जेकोस्लोवेकिया	५७	७२	३६	२३	२३
इटली	५	६	३	२	२
जापान	७०	७४	५५	४२	६५
अन्य	१४	१५	११	७	६
योग	२३८	२५२	१६६	१२१	१४३

उपर्युक्त सामग्रीमें शीशियाँ, दावातें, झाड़फानूस, सोड़ावाटरकी बोतलें, चिमनियाँ, लैम्प, ग्लोब, चूड़ियाँ, नक़ली मोती आदि चीज़ें शामिल हैं। चूड़ियाँ ४६ प्रतिशत जापानसे, १५ प्रतिशत ज़ेकोस्लोवेकियासे, १२ प्रतिशत जर्मनीसे तथा २७ प्रतिशत अन्य विदेशोंसे आती हैं। चूड़ियोंके मसलेपर हमारी बहनोंको ध्यान देना चाहिए। चूड़ी जैसी पवित्र वस्तु तो कम-से-कम देशी होनी ही चाहिए। चूड़ियोंके द्वारा १६३२-३३ में ४० लाख रुपया बाहर चला गया। १६३१-३२ में यह रक़म केवल ३५ लाख ही थी। कमी होनेके बजाय उल्टी ५ लाखकी वृद्धि हुई। क्या स्वदेशी-आन्दोलन और स्वदेशी व्रतका यही असर है? अब देशी चूड़ियाँ काफ़ी तादादमें बनने लगी हैं। यदि उनसे माँग पूरी न हो, तो हाथीदाँत और लाखकी चूड़ियाँ काममें लाई जानी चाहिए। देशकी विभिन्न महिला-संस्थाओंको स्वदेशी चूड़ियोंके प्रचारके लिए काफ़ी कोशिश करनी चाहिए। नक़ली मोती और माणिक्य आदिके बारेमें भी यही कहा जा सकता है। उनके बिना हमारा कोई काम भी तो बन्द नहीं रहता। ये सब चीज़ें भी अधिकतर महिलाओं ही के काममें आती हैं। उनके बिना रहकर भी स्त्रियोंके सौन्दर्यमें कोई कमी न पड़ेगी।

तालिका नं० १४—फल और शाक-भाजी

(लाख रुपयोंमें)

	१६२८-२६	२६-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
ताज़े फल और शाक-भाजी :—					
नारियल	७.८६	८.५१	७.६३	६.२८	८.८१
अन्य ताजे फल	५.०४	६.६७	७.६३	६.२६	६.८५
ताजी शाक-भाजी	१३.२३	१८.४१	१४.८१	११.०६	१३.५२
सूखे और पगे हुए फल :—					
बादाम	४६.४२	४५.५८	३२.१४	२१.५१	१८.१७
किशमिश, मुनक्का	२.६०	२.७५	३.०८	२.८७	१.५६
खजूर	८०.०५	८६.६१	६४.६७	६३.५८	५०.४८
अन्य	१२.८६	१४.०३	१७.७२	१६.८८	१४.१८
डब्बेमें बन्द फल	११.५०	१४.०८	१२.०५	६.६०	७.८३
गयो	१७६.८६	१६६.६४	१६०.६३	१४१.३७	१२४.४०

ताज़े फलोंकी आयात प्रतिवर्ष बढ़ती ही जा रही है। सन् १६२८-२६ की ५.०४ लाखसे बढ़कर सन् १६३२-३३ में वह ६.८५ लाख हो गई। यह है हमारे स्वदेशी-आन्दोलनका असर! फलोंका व्यापार अधिकांशमें अमेरिकाके हाथमें है। ५३ प्रतिशत फल अकेले अमेरिकासे आते हैं। तरकारीके बाज़ारमें इटलीका एकाधिपत्य है। वहाँसे ८६ प्रतिशतसे अधिक तरकारी यहाँ आती है। शेष भाग मिस्र, केनिया, हांगकांग, अमेरिका आदिसे आता है। यह बड़े अफसोसकी बात है कि भारतवर्ष-जैसे कृषिप्रधान देशको तरकारी तक १२००० मीलकी दूरीसे मँगानी पड़ती है। हमारी इस गुलाम मनोवृत्तिका कभी अन्त भी होगा। विशेषज्ञोंका कहना है कि बादाम और खजूर आदिकी खेती भारतवर्षमें बख़ूबी हो सकती है। यदि प्रयत्न किया जाय, तो अपनी ज़रूरत-भरका सामान यहीं तैयार हो सकता है, और एक लम्बी रक़म सहूलियतसे बच सकती है।

हमारे यहाँ फल तो बहुत काफ़ी तादादमें पैदा होते हैं; परन्तु उन्हें वैज्ञानिक ढंगसे सुरक्षित रखने एवं शक्कर आदिमें पागनेके कारखाने इनेगिने ही हैं। यदि इस व्यवसायको उन्नत बनानेके प्रयत्न किये जायँ, तो न केवल हम अपनी ज़रूरतें ही पूरी करने लायक हो जायँगे, वरन् हम अपने यहाँके आम, सेब, अनानास आदि फलोंको विदेशोंको भी भेजनेमें समर्थ होंगे। नीदरलैण्ड एक छोटसा देश होते हुए भी आज सारे संसारको दूध और मक्खन देनेमें समर्थ है। इस प्रकार कोशिश करनेसे वह दिन भी शीघ्र ही आ सकता है, जब हमारे यहाँके फल आदि विदेशोंको भेजा जाया करेंगे। भारतवर्षका जलवायु इस कार्यके लिए है भी उपयुक्त। इस समय भारतवर्षसे ७० लाख रुपयेके लगभग मूल्यके फल और शाक-भाजी विदेशोंको जाती हैं। थोड़ीसी कोशिश करनेपर यह रक़म कम-से-कम दुगनी तो हो ही सकती है। इनके साथ ही ६२ लाखकी रक़म जो विदेशोंका जाती है, वह भी साफ बच जायगी। एक पन्थ, दो काज।

तालिका नं० १५—अन्य फुटकर पदार्थ

(लाख रुपयोंमें)

	१६२८-२६	२६-३०	३०-३१	३१-३२	३२-३३
मोमबत्ती	१.६०	२.५६	१.३३	१.१३	.६३
बेंत	४.४५	५.३०	४.७४	४.२५	३.८५
छड़ी और कोड़े	२.०३	१.०३	.५६	.२६	.२२
चटाइयाँ	४.५४	४.८३	४.७५	३.४६	३.८६
गोंद (ग्ल्यू)	७.२४	८.५०	७.६२	६.२६	५.११

झाड़ू	०·५१	०·५२	०·४२	०·३४	०·२९
पशुओंका चारा	१·४९	२·१६	२·०४	१·६४	१·२४
आतिशबाज़ी	१७·५५	१६·१८	८·२५	४·६१	८·२२
योग	३९·७१	४१·०८	२९·७१	२१·९८	२३·७२

इधर पाँच वर्षोंमें इन सभी चीज़ोंकी आयातमें कमी ज़रूर हुई है ; परन्तु अभी और भी कमी होनेकी गुंजाइश है। दु:खकी बात यह है कि गत वर्षमें १९३१-३२ की अपेक्षा आयातमें १ लाख ७५ हज़ारकी वृद्धि हुई है। चटाइयाँ और आतिशबाज़ी इस वृद्धिके लिए ज़िम्मेदार हैं। उपर्युक्त सूचीकी प्राय: सभी चीज़ें स्वदेशमें तैयार हो सकती हैं। खास तौरपर झाड़ू, कोड़े, गोंद और जानवरोंका चारा विदेशोंसे मँगानेकी क्या ज़रूरत है, यह आप लोग स्वयं समझ सकते हैं। घरफूँक तमाशा देखना हमारे देशवालों ही को आता है। अपनी ८·२२ लाखकी रक़मको विदेशोंको भेजकर आतिशबाज़ीका लुत्फ उठाया जाता है! इस मदमें भी गतवर्ष ४ लाखकी वृद्धि ही हुई है। सन् १९३०-३१ से आतिशबाज़ीकी खपत आधेके लगभग रह गई थी। सन् १९३१-३२ में यही क्रम बना रहा ; परन्तु सन् १९३२-३३ में आयातका मूल्य ४·६१ लाखसे बढ़कर ८·३२ लाख हो गया। इस रक़मको बहुत ही सहूलियतसे बिना किसी कोशिशके देशमें रोका जा सकता है।

पिछले पृष्ठोंमें हमने जितनी भी तालिकाएँ दी हैं, उन सबमें मुख्यत: उन्हीं चीज़ोंका ज़िक्र है, जो अनावश्यक और अर्द्ध-आवश्यक कही जा सकती हैं। इनमें से अधिकांशके बिना हमारी दैनिक ज़रूरतोंकी पूर्तिमें कोई दिक़्क़त नहीं पड़ सकती। बहुत-सी तो ऐसी हैं, जो स्वदेशमें सहूलियतसे तयार हो सकती हैं। स्वदेशमें तैयार किये हुए मालको व्यवहारमें लानेसे न केवल करोड़ों रुपयोंकी लम्बी रक़म विदेशोंको जानेसे बच जायगी, वरन हमारे सहस्रों बेकार भाइयोंकी रोज़ीका प्रबन्ध हो जायगा। यूरोप, अमेरिका, जापान, रूस आदि देशोंकी आर्थिक उन्नतिका प्रमुख कारण उन देशोंकी जनताका केवल अपने ही देशमें तैयार होनेवाले मालको व्यवहारमें लाना है। वे देश केवल अत्यावश्यक चीज़ोंको छोड़कर, जो उनके देशमें तैयार ही नहीं हो सकतीं, विदेशोंसे एक पैसेकी चीज़ भी नहीं खरीदते। और सब बातोंमें तो हम आँख मींचकर उनका अनुकरण कर लेते हैं, फिर इसे माननेमें किसलिए हिचकिचाहट होती है? विगत पाँच वर्षोंमें स्वदेशी-आन्दोलनसे भारतीय उद्योग-धन्धोंकी जो थोड़ी-बहुत उन्नति हुई है, वह किसीसे छिपी नहीं है। यदि हम लोग कुछ और अधिक दृढ़तासे काम लें, तो आगेका मार्ग बहुत सुगम हो सकता है। यह ठीक है कि बिना सरकारी प्रोत्साहनके हमारे उद्योग-धन्धे पूर्ण उन्नति नहीं कर सकते ; परन्तु फिर भी यदि हम सब केवल स्वदेशी ही व्यवहार करनेका दृढ़ संकल्प कर लें, तो हमें अपनी ज़रूरतोंकी पूर्तिके लिए किसी दूसरे देशका मुँह ताकनेकी नौबत न आयेगी।

कपड़ा

इसी सिलसिलेमें कपड़ेकी आयातपर भी एक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। सन् १९३१-३२ में केवल ३५ करोड़का विदेशी कपड़ा आया था। सन् १९३२-३३ में यह रक़म १२ करोड़ और बढ़ गई, अर्थात् विदेशी कपड़ेकी आयातमें ३४ प्रतिशतकी वृद्धि हुई। १९३०-३१ की तुलनामें भी १९३२-३३ में १३ प्रतिशत कपड़ा अधिक आया। लंकाशायरसे आनेवाले मालमें भी काफी तरक़्की हुई है। निम्न-तालिकासे यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

लंकाशायरका कपड़ा
(लाख गज़ोंमें)

	कोरा	धुला	रंगीन
१९२९-३०	९२५·५	४७३·६	४८३·५
१९३०-३१	३६५·०	२७१.६	२४५·७
१९३१-३२	२४९·४	२७९·७	२२३·७
१९३२-३३	३६५·०	४१२·७	४२४·८

क़ीमतके अनुसार सन् १९३१-३२ में लंकाशायरसे केवल १४ करोड़ ६७ लाखका कपड़ा आया था ; परन्तु गत वर्ष सन् १९३२-३३ में यही रक़म बढ़कर २१ करोड़ २६ लाख हो गई। यही नहीं, कपड़ेके साथ-साथ ऊनी, रेशमी कपड़े और बँटे हुए सूतकी आयातमें भी वृद्धि हुई है। १९३१-३२ में ३१६ लाख गज़ बँटा हुआ सूत आया था ; परन्तु १९३२-३३ में ४५१ लाख गज़। इसी हिसाबसे क़ीमत भी २६६ लाख रुपयेसे बढ़कर ३७९ लाख हो गई। सिल्कके कच्चे और तैयार मालकी आयातमें भी १९३१-३२ की अपेक्षा १९३२-३३ में

१५९ लाखकी, ऊन और ऊनी मालमें १३४ लाखकी तथा या नक़ली सिल्कमें ७२ लाखकी वृद्धि हुई। देशमें बढ़िया कपड़ेकी माँग बढ़ जानेकी वजहसे विदेशोंसे इस बार रुई भी अधिक मँगाई गई। १९३१-३२ में २९००० टन रुई आई थी और १९३२-३३ में ८५००० टन।

इसके विपरीत अगर खादीके मूल्यके आँकड़ोंपर विचार किया जाय, तो मालूम होता है कि जैसे-जैसे खादीकी खपत बढ़ती जाती है, उसका मूल्य भी बराबर कम होता जाता है। हाल ही में दिल्ली-चर्खा-संघके मन्त्रीने इस सम्बन्धमें जो तालिका प्रकाशित कराई है, पाठकोंकी जानकारीके लिए उसे नीचे उद्धृत किया जाता है :—

वर्ष	धोती	सादी खादी	कमीज़ लायक	कोट लायक
	५ गज ४५ इंच	३२″	३२″	३२″
१९२२	२।।।≡)	।।) गज़	—	—
१९२४	२।।।)	।≡)।। ”	—	।।।) १ गज़
१९२५	२।।≡)।।	।≡)। ”	एक गज़	।।=) ”
१९२८	२।)	।-)।। ”	।=)	।।-) ”
१९३१	२=)	।-) ”	।-)।।	।।)।। ”
१९३२	१।।-)	।)।। ”	।-)।	।≡)। ”
१९३३	१।≡)।।	≡) ”	।)।।।	।=) ”

और देशी चीज़ोंके दाम भी खादी ही की तरह बराबर कम होते जा रहे हैं; परन्तु उनके मूल्यका घटना और बढ़ना उनके व्यवहार ही पर निर्भर है। जैसे-जैसे देशी चीज़ोंका व्यवहार बढ़ता जायगा, वैसे उनकी क़ीमत कम और उसके साथ-साथ उनके गुण भी बढ़ते जायँगे।

इधर हालमें विदेशी मालकी आयातमें जो वृद्धि हुई है, उसके कई कारण हैं। सबसे पहला और प्रमुख कारण राजनैतिक है राजनैतिक आन्दोलनके शान्त हो जानेके कारण बहिष्कार-आन्दोलनका ढीला पड़ जाना। विदेशी माल—खास तौरपर कपड़ा—फिर पहले ही की तरह सरे आम बिकने लगा है। दूसरा कारण है ब्रिटिश साम्राज्यके मालपर अन्य विदेशोंकी अपेक्षा आयात-कर कम लिया जाना। तीसरा और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण है भारतवर्षसे करोड़ों रुपयेके मूल्यके सोनेका विदेशोंमें चला जाना।

भारतवर्षमें कपड़ा अधिकतर जापान और लंकाशायरसे आता है। ब्रिटिश मालपर कम चुंगी पड़नेके कारण उसकी आयात बहुत बढ़ गई। जापानी मालपर यद्यपि चुंगी बढ़ा दी गई है; पर जापानी सिक्केका भाव कम हो जानेके कारण उसकी आयातपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। नीचे दिये हुए आँकड़ोंसे पता चलेगा कि आयात बराबर बढ़ती जा रही है। हाँ, इसका असर जापान जानेवाले भारतीय मालपर ज़रूर हुआ है। चुंगीसे क्रुद्ध होकर जापानने भारतीय रुई खरीदना बन्द कर दिया है, फलस्वरूप जापानको जानेवाला माल बराबर कम होता जा रहा है :—

जापानसे आने और जानेवाला माल

(१० लाख येनमें)

	आयात	निर्यात
१९२८	१४६	२३५
१९२९	१९८	—
१९३०	१२९	१८०
१९३१	११०	१३३
१९३२	१९२	११७

हाल ही में बम्बईके मिल-मालिकोंने लंकाशायरके व्यापारियोंसे लंकाशायरके कपड़ेकी आयातके बारेमें जो समझौता किया है, उससे लंकाशायरके मालकी आयात और अधिक बढ़ जायगी।

इन सब बातोंका एकमात्र उत्तर और एकमात्र प्रतिकार केवल स्वदेशी ही माल व्यवहारमें लानेकी प्रतिज्ञा करना है। हमें अपना व्यावहारिक सिद्धान्त बना लेना चाहिए कि यथासम्भव हम अपनी प्रत्येक आवश्यकताकी पूर्ति स्वदेशी चीज़ों ही से करेंगे और कोई चीज़ खरीदनेसे पहले यह बात ज़रूर मालूम कर लेंगे कि वह देशमें बनी है या नहीं।

[नोट—इस लेखकी शुरूकी १५ तालिकाएँ व्यापार-मंडलकी एंग्लो-गुजराती त्रैमासिक पत्रिकामें प्रकाशित श्रीयुत वकीलके लेखसे ली गई हैं। — लेखक]

विदेशोंमें हिन्दी

श्री यतीन्द्रमोहन दत्त, एम० एस-सी०, बी० एल०

गत २४ अप्रिल १९३४के 'स्टेट्समैन' में निम्न-लिखित समाचार प्रकाशित हुआ था :—

भारतीयकी नियुक्ति

ओसाका स्कूलमें प्रोफेसरी

लाहौर, २० अप्रिल

पंजाबके एक प्रमुख व्यापारी मि० मदनलाल जैन जापानमें ओसाका नगरके विदेशी भाषाओंके स्कूलमें हिन्दुस्तानी और फारसी भाषाओंके अध्यापक नियुक्त हुए हैं। वे २५ अप्रिलको बम्बईसे रवाना होकर १० मईको जापान पहुँचेंगे।

इस स्कूलमें भाषाके अध्यापक नियुक्त होनेवाले सबसे पहले भारतीय मि० मदनलाल ही हैं। इस नियुक्तिका उद्देश यह है कि इसके द्वारा जापानी कम्पनियोंके जो प्रतिनिधि भारत आते हैं, उनके काममें—जहाँ तक भाषाका सम्बन्ध है—सुविधा हो।

इस समाचारको पढ़कर हमारे मनमें अनेक भाव उदय हो उठे। पश्चिमी हिन्दी (जिसे हिन्दुस्तानी, हिन्दी, या उर्दू कहते हैं) समस्त आर्य भारतकी राष्ट्र-भाषा है। डाक्टर सुनीतिकुमार चट्टोपाध्यायके कथनानुसार हिन्दी भारतकी सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है। हिन्दी ही ऐसी भाषा है, जो सच्चे अर्थमें भारतकी राष्ट्र-भाषा कही जा सकती है। यद्यपि हिन्दी सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल और उड़ीसामें बोली नहीं जाती, फिर भी वह इन प्रान्तोंमें भी आसानीसे समझी जाती है। मोटे हिसाबसे हम कह सकते हैं, भारतकी आबादीके ४२ प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते और ७१ प्रतिशत हिन्दी समझते हैं। इसी कारण महात्मा गांधीके प्रभावमें भारतकी नेशनल कांग्रेसने इसे समूचे देशकी राष्ट्र-भाषा माना है। कांग्रेस द्वारा राष्ट्र-भाषा स्वीकार हो चुकनेके बाद ग़ैर-हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दीके प्रचारको बड़ा प्रोत्साहन मिला है, और अब उन प्रान्तोंमें हिन्दीका अध्ययन बढ़ रहा है।

कुछ दिन पहले हमने पढ़ा था कि ज़ेको-स्लोवेकियाके कमर्शल हाई स्कूलोंमें नियमित रूपसे हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की गई है। अब हम पढ़ते हैं कि जापानने भी हिन्दीकी शिक्षाका प्रबन्ध किया है। हम पराधीन भारतीयोंको यह समाचार सुनकर काफी उत्साह मिलेगा; लेकिन यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि इन देशोंमें हिन्दीकी शिक्षा बौद्धिक मनोरंजनके लिए नहीं दी जाती, बल्कि रोज़मर्राके व्यापारमें सहूलियतके लिए दी जाती है। यह इस बातका सबूत है कि हिन्दी एक जीवित भाषा है।

मैं हिन्दी-भाषा-भाषियों तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओंसे अनुरोध करता हूँ कि वे व्यापार-सम्बन्धी विदेशी पारिभाषिक शब्दोंका सीधे विदेशी भाषाओंसे ही अनुवाद करें, अंगरेज़ीसे नहीं, जैसा कि अभी तक होता आया है। इस प्रकारके विदेशी शब्द संख्यामें अधिक न होंगे, क्योंकि व्यापार-जगतमें अंगरेज़ीके अतिरिक्त केवल फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश और जापानी भाषाओंका चलन ही विशेष है।

कस्मै देवाय ?

कवीन्द्र और साधारण जनता

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, शास्त्राचार्य

'विशाल भारत' के सम्पादक महोदय पूछते हैं—कस्मै देवाय ? उत्तर देते हैं—'जनता जनार्दनाय'। आजसे चालीस वर्ष पहले वर्तमान युगके प्रतिनिधि कविने अपने-आपसे पूछा था—"कवि तू क्या गायेगा, क्या सुनायेगा ?—की गाहिबे, की शुनाबे ?" उत्तरमें कविकी ओजस्विनी वाणीने जिस विराट् गानकी ओर इशारा किया था, वह सम्पादकजीके प्रश्नके लिए आज भी ज्वलन्त उत्तर है। भाग्यशाली है वह व्यक्ति, जिसने उस घोषणाके प्रायः आधी शताब्दी बाद भी कविवरकी गम्भीर भाषामें उस गानको सुना है। रवीन्द्रनाथ इस कविताको पढ़ते समय भावमत्त हो उठते हैं। उस श्वेत श्मश्रु-मंडित मुखसे जब अवाध-भावसे, गम्भीर स्वरमें, वह गान निकलता है, तो जान पड़ता है कि चिर-नूतन मानव-मूर्ति धारण करके वह वर्तमानको चैलेंज दे रहा है। सचमुच वह व्यक्ति धन्य है, जिसने 'कस्मै देवाय ?' का उत्तर कविवर रवीन्द्रनाथके मुखसे सुना है।

कल्पना कीजिए उस दृश्यका, जब शान्ति-निकेतनके निवासी उत्सुक नयनोंसे कविके मुखकी ओर देख रहे हैं। घोर निस्तब्धता है, अचानक कविने एक बार स्वर साफ करनेके लिए खाँस दिया। निस्तब्धता मानो कविकी भावी गर्जनाका अनुमानकर भयसे झनझना उठी। बिना किसी भूमिकाके कवि बोल उठे, मौन भंग हुआ—

"संसारे सबाइ जबे साराक्षण शत कर्म्मे रत
तुई शुधू छिन्न-बाधा पलातक बालकेर मतो
मध्याह्ने, माठेर माझे एकाकी विषण्ण तरुच्छाये
दूर बन गन्धबह मन्दगति क्लान्त तप्त बाये,
सारा दिन, बाजाइलि बाँशि। ओरे तुइ ओठ आजि।"

"संसारमें सब लोग, सब समय जब सैकड़ों कार्योंमें व्यस्त हैं, (उसी समय) केवल तू छिन्न-बाध भगोड़े बालककी नाईं दुपहरियामें, मैदानके बीच, अकेला, उदास वृक्षकी छायातले,—जब कि दूरस्थ वनकी गन्ध बहन करनेवाली तप्त वायु थककर मन्द-गामिनी हो गई है,—सारे दिन बंशी बजाता रहा। अरे, (कवि) तू आज उठ।"

अब तक कविकी आँखें पुस्तकके पन्नोंसे उलझी हुई थीं। दर्शनीय था यह इस युवा वृद्धके पलकोंका द्रुत-मंथर संचार। अबकी बार कविने एक बार श्रोताओंकी ओर क्षण-भरके लिए देखा। इस दृष्टि-निक्षेपमें कुछ अर्थ था, जो भाषासे व्यक्त करनेकी चीज़ नहीं; पर श्रोतृमंडलीका प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि इसका क्या अर्थ है। कवि अब अपनेको भूलने जा रहा है; आगे वह व्यक्ति नहीं रहेगा, विश्व-मानवका प्रतीक हो जायगा। अबकी बार शत-शत शताब्दियोंसे पददलित मानवता विश्व-कविके मुखसे फूट पड़ेगी; युग-युगान्तकी व्यथा तरल होकर श्रोतृमंडलीके कानोंको प्लावित कर देगी। अब एक बार सम्हलकर बैठ जानेका समय है। अबकी बार ज़ोरसे साँस खींच लेना होगा और फिर निस्तब्ध! कविने आगे गाया—स्वरमें मेघकी-सी गम्भीरता आ गई—

"आगुन लेगेछे कोथा ? कार शंख उठियाछे बाजि
जागाते जगत् जने ? कोथा ह'ते ध्वनिछे क्रन्दने
शून्यतल ? कोन् अन्ध कारा माझे जर्जर बन्धने
अनाथिनी मागिछे सहाय ? स्फीतकाय अपमान
अक्षमेर वक्ष ह'ते रक्त शुषि करितेछे पान
लक्ष मुख दिया। वेदनारे करितेछे परिहास
स्वार्थोद्धत अविचार। संकुचित भीत क्रीतदास
लुकाइछे छद्म वेशे। ओइ जे दाँड़ाये नतशिर
मूक सबे, म्लान मुखे लेखा शुधू शत शताब्दीर
वेदनार करुण काहिनी; स्कन्धे जत चापे भार—
बहि चले मन्दगति जत क्षण थाके प्राण तार,—
तार परे सन्तानेरे दिये जाय वंश वंश धरि,

नाहि भर्त्से अदृष्टे रे, नाहि निन्दे देवतारे स्मरि,
मानवेरे नाहि देय दोष, नाहि जाने अभिमान
शुधू दुटि अन्न खुँटि कोनो मते कष्ट क्लिष्ट प्राण
रेखे देय बाँचाइया। से अन्न जखन केहो काड़े
से प्राणे आघात देय गर्वान्ध निष्ठुर अत्याचारे
नाहि जाने कार द्वारे दाँड़ाइबे विचारेर आशे
दरिद्रेर भगवाने बारेक डाकिया दीर्घश्वासे
मरे से नीरवे।"

अर्थात्—"कहाँ आग लगी है ? किसका शंख बज उठा है, जगत् जनको जगानेके लिए ? कहाँके क्रन्दनसे शून्यतल ध्वनित हो रहा है किस अन्ध कारागारके जर्जर बन्धनमें (पड़ी हुई) अनाथिनी सहायता माँग रही है ?

"स्फीतकाय अपमान अक्षम (पुरुषों) के वक्षःस्थलसे रक्तशोषण करके पान कर रहा है, लाखों मुखसे। स्वार्थसे उद्धत अविचार वेदनाकी खिलियाँ उड़ा रहा है। संकुचित भीत क्रीतदास छद्मवेशमें छिप रहा है। वह जो खड़ा है, सिर नीचा किये हुए, मूक होकर—(जिसके) म्लान मुखपर केवल सैकड़ों शताब्दियोंकी वेदनाकी करुण कहानी लिखी हुई है ;—(जिसके) कंधेपर जितना ही भार लदता जाता है, ढोये चलता है मन्दगतिसे, जब तक कि उसमें प्राण हैं,—इसके बाद दे जाता है अपनी सन्तानको पीढ़ी-दर-पीढ़ी ! अदृष्टकी निन्दा नहीं करता, देवताओंको याद करके नहीं कोसता, मनुष्यको दोष नहीं देता, अभिमान करना नहीं जानता, केवल दो दाने खोंटकर किसी प्रकार कष्ट-क्लिष्ट प्राणोंको बचाकर रख देता है। वही अन्न जब कोई छीन लेता है, गर्वान्ध निष्ठुर अत्याचार जब उस प्राणपर आघात पहुँचता है, (यह) नहीं जानता, किसके दरवाजेपर खड़ा होगा विचारकी आशासे। दरिद्रके भगवानको एक बार पुकारकर चुपचाप मर जाता है।"

कविकी पीठने आसनका सहारा छोड़ दिया ; लो, वह तर्जनी उठी और उद्ग्रीव दर्शकोंकी आँखोंके सामने एक विचित्र तर्जन करके वर्तमान युगके कविको चेताया। गम्भीर निर्घोषमें एक कड़कड़ाहट-सी हुई। अवाध वाणीने कहा—

"एइ सब मूढ़ म्लान मूक मुखे
दिते ह'बे भाषा ; एइ सब श्रान्त शुष्क भग्न बुके,
ध्वनिया तुलिते ह'बे आशा ; डाकिया बलिते ह'बे—
'मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र दाँड़ाओ देखि सबे ;
जार भये तुमि भीत, से अन्याय भीरु तोमा चेये,
जखनि जागिबे तुमि तखनि से पलाइबे धेये।
जखनि दाँड़ाबे तुमि सम्मुखे ताहार—तखनि से
पथ कुक्कुरेर मतो संकोचे सत्रासे जाबे मिशे
देवता विमुख तारे, केहो नाहि सहाय ताहार,
मुखे करे आस्फालन, जाने से हीनता आपनार
मने मने।'—"

अर्थात्—"इन सब मूढ़ म्लान मुखोंमें भाषा देनी होगी ; इन सब श्रान्त, शुष्क, भग्न वक्षःस्थलोंमें आशाका संचार करना होगा ;

बुलाकर कहना होगा—'भला एक बार मुहूर्त भरके लिए सिर उठाकर खड़े तो हो जाओ ; जिसके भयसे तुम डर रहे हो, वह अन्यायी तुमसे कहीं अधिक डरपोक है, ज्यों ही तुम जग पड़ोगे, वह भाग खड़ा होगा ; ज्यों ही तुम उसके सामने खड़े होगे, वह रास्तेके कुत्तेकी नाईं संकोच और त्रासमें मिल जायगा। देवता उसके विमुख है, कोई नहीं है उसका सहायक, केवल मुँहसे बड़ी-बड़ी बातें हाँका करता है, मन-ही-मन वह अपनी हीनताको जानता है।' "

यहींपर वाणी कुछ धीमी पड़ी ; पर वह इसलिए कि आगेकी पंक्तियोंमें अधिक ज़ोर आनेवाला था—

"कवि तबे उठे एसो—यदि थाके प्राण,
तबे ताइ लहो साथे, तबे ताइ करो आजि दान।
बड़ो दुःख बड़ो व्यथा—सम्मुखेते कष्टेर संसार
बड़ोइ दरिद्र, शून्य बड़ो क्षुद्र बद्ध अन्धकार।—
अन्न चाइ, प्राण चाइ, चाइ मुक्त वायु,
चाइ बल, चाइ स्वास्थ्य, आनन्द उज्ज्वल परमायु
साहस विस्तृत वक्षपट। ए दैन्य माझारे, कवि
एक बार निये एसो स्वर्ग ह'ते विश्वासेर छवि।"

—"कवि, तब उठ आओ—यदि (तुम्हारे अन्दर) प्राण बच रहा हो, तो उसीको साथ ले लो, उसीको दान कर दो। बड़ा दुःख है, बड़ी व्यथा है,—सामने (पड़ा है) कष्टका संसार, बड़ा ही दरिद्र है, शून्य है, बड़ा क्षुद्र है, बद्ध है अन्धकार (में)।—अन्न चाहिए, प्राण चाहिए, आलोक चाहिए, चाहिए मुक्त वायु, चाहिए बल, चाहिए स्वास्थ्य, (चाहिए) आनन्द-उज्ज्वल परमायु (और) साहससे विस्तृत वक्षःपट। इस दीनताके बीच, हे कवि, एक बार ले आओ स्वर्गसे विश्वासकी छवि।"

आगे चलकर कविने अपनी रंगमयी कल्पनाको आह्वान किया—

"एबार फिराओ मोरे लये जाओ संसारेर तीरे
हे कल्पने रंगमयी! दुलायो ना समीरे समीरे"

इस बार मुझे फिराओ, ले जाओ संसारके तीरपर, हे मेरी रंगमयी कल्पने! समीरके प्रत्येक झोंकेपर, प्रत्येक तरंगपर मुझे अधिक न डुलाओ। (अपनी) मोहिनी मायामें न भुलाओ, एकान्तके विषाद-वन अन्तरकी निकुंज-छायामें न बैठा रखो। दिन जा रहा है, सन्ध्या होती आ रही है, अन्धकार दिशाओंको ढक रहा है, आश्वासहीन उदास हवासे वन निःश्वास फेंककर रो उठता है। बाहर होता हूँ यहाँसे उन्मुक्त आकाशके नीचे, धूलि धूसर राज-पथपर, जनताके बीच। कहाँ जा रहे हो, ओ राहगीर, कहाँ जा रहे हो, मैं परिचित नहीं हूँ, मेरी ओर फिरकर देखो। बताओ मुझे अपना नाम। मेरे ऊपर अविश्वास न करो। संगीहीन होकर बहुत दिनोंसे सृष्टिमें बास करता आ रहा हूँ; इसीलिए मेरा यह विचित्र वेश है, नयासे भी नया आचार है; इसीलिए मेरी आँखोंमें स्वप्नका आवेश है, वक्षःस्थलमें क्षुधानल जल रहा है।—जिस दिन दुनियामें चला आया था, (न-जाने) किस माँने दी थी खेलनेके लिए यह बंशी। उसीको बजाते-बजाते अपने ही सुरमें मुग्ध होकर लम्बे दिन और लम्बी रातों सुदूर एकान्तमें चला गया हूँ—संसारकी सीमा छोड़कर।—उस बंशीमें जो सुर सीखा है, उसीके उल्लाससे यदि गीतशून्यको, अवसादपूर्णको, ध्वनित कर सकूँ, केवल एक मुहूर्तके लिए, मृत्युंजय आशाके संगीतसे कर्महीन जीवनके एक प्रान्तको तरंगित कर सकूँ, यदि उसकी भाषा दुःख पाये, (और) अन्तरकी गम्भीर पिपासा सुप्तिसे जग उठे, स्वर्गके अमृतके लिए;—तभी मेरा गान धन्य होगा, शत-शत असन्तोषके महागानमें निर्वाण लाभ करेगा।

एक बार फिर विराम और वाग्देवीका पुनः द्रुत-मंथर संचार। बीच-बीचमें उस तुषार-धवल दाढ़ीकी चंचल तरंगोंके साथ वाणी आगे बढ़ी—

"(कवि,) तू क्या गायेगा? क्या सुनायेगा? —बोलो, मिथ्या है अपना सुख, मिथ्या है अपना दुःख। जो मनुष्य अपने स्वार्थमें मग्न, बृहत् जगतसे विमुख है, उसने कभी जीवित रहना सीखा (ही) नहीं। महाविश्व-जीवनके तरंगोंपर नाचते-नाचते निर्भय-भावसे छूट चलना होगा, सत्यको ध्रुवतारा बनाकर। (मैं) मृत्युकी शंका नहीं करता। दुर्दिनके आँसुओंकी जल-धारा मस्तकपर झर पड़ेगी—उसी (जल-धारा) के बीच जाऊँगा अभिसारके लिए उसके निकट, जिसे जन्म-जन्मान्तरसे अपना जीवन, सर्वस्व धन सौंप दिया है। कौन है वह? नहीं जानता कौन है। पहचानता नहीं (मैं) उसे, केवल इतना ही जानता हूँ—उसीके लिए मानव-यात्री युगसे युगान्तरकी ओर रात्रिके अन्धकारमें चला है, आँधीमें भी, झंझामें भी, वज्रपातमें भी, सावधानीके साथ अन्तरके उस प्रदीपको जलाये रखकर। केवल जानता हूँ—जिसने उसके आह्वान-गीतको सुना है, वह निर्भीक चित्तसे संकट-आवर्तके बीच दौड़ पड़ा है, विश्वको उसने त्याग दिया है, निर्यातनको (स्वीकार कर) लिया है उसने कलेजा बिछाकर; मृत्युके गर्जनको उसने संगीतके समान सुना है। आगने उसे जलाया है, शूलने विद्ध किया है, (और) छिन्न किया है उसे कुठारने;

अपनी सबसे प्यारी वस्तुको इन्धन बनाकर वह होमहुताशन (अग्नि) बनकर (स्वयं) उसीके लिए जला है—अपने हृत्पिण्डको छिन्न (काट) करके रक्त-पद्म रूप अर्घ्यके उपहारसे, भक्तिपूर्वक जन्म-शोध अन्तिम पूजासे उसने उसकी पूजा की है, (और) मरणसे कृतार्थ किया है (अपने) प्राणोंको। (मैंने) सुना है, राजकुमारने उसीके लिए पुरानी गूदड़ी (जीर्ण कंथा) पहनी है, विषय-विरागी होकर रास्तेका भिखारी बना है। (उस) महाप्राणने प्रत्येक क्षण संसारके क्षुद्र उत्पीड़नोंको सहा है, प्रतिदिनके कुशांकुरने उसके पदतलको विद्ध किया है, मूढ़ पंडितोंने उसके ऊपर अविश्वास किया है, प्रियजनोंने अति परिचित अवज्ञाके साथ उसका परिहास किया है, (परन्तु) वह क्षमा करता गया है, चुपचाप करुण नेत्रोंसे—अन्तरमें निरुपम सौन्दर्य-प्रतिमा बहन करते हुए। उसीके चरणोंमें मानीने मान सौंप दिया है, धनीने सौंप दिया है धन, वीरने सौंपा है अपना प्राण। उसीको उद्देश करके कविने लाख-लाख गान रचकर देश-देशमें फैला दिया है।—केवल जानता हूँ, उसीकी महान् गम्भीर मंगल-ध्वनि समुद्रमें, समीरमें सुनी जाती है; उसीके अंचलकी छोरको घेरकर नील आकाश लोट रहा है; उसीकी विश्व-विजयिनी परिपूर्ण प्रेम-मूर्ति परम-क्षणमें प्रियजनके मुखपर विकसित होती है। केवल जानता हूँ, उस विश्व-प्रियाके प्रेमके लिए क्षुद्रताको बलिदान देकर जीवनका सारा असम्मान दूर फेंक देना होगा, सामने खड़ा होना होगा उन्नत मस्तकको ऊँचा करके, जिस मस्तकपर भयने अपनी लिखावट नहीं लिखी और दासत्वकी धूलने कलंककी टीका नहीं लगाई। उसीको अन्तरमें रखकर जीवनके कंटकाकीर्ण पथमें अकेले चुपचाप जाना होगा,—सुख और दुःखमें धैर्य धारण करके, विपत्तिके समय आँखोंके आँसू पोंछकर, प्रतिदिनके काम-काजमें नित्य आलस्यहीन होकर और सबको सुखी करके।

"इसके बाद दीर्घ पथ समाप्त होगा, जीवन-यात्राके अन्तमें चरण थक गये होंगे, वेश रक्तसे सिक्त हुआ रहेगा, (इस प्रकार) श्रान्तिहारिणी शान्तिके उद्देशमें दुःखहीन निकेतनमें एक दिन उतरूँगा। (उस समय) महिमालक्ष्मी प्रसन्न बदनसे मन्द स्मितके साथ भक्तके कंठमें वरमाल्य पहनायेगी, उसके कर-कमलके स्पर्शसे सारा दुःख, सारी ग्लानि, सब अमंगल शान्त हो जायगा। उन लाल-लाल चरणोंको धो डालूँगा आजन्मके रुँधे हुए आँसुओंकी धारासे। चिरकालसे संचित आशा उसके सामने खोलकर रख दूँगा, जीवनकी अक्षमताको रो-रोकर निवेदन करूँगा और अनन्त क्षमा माँगूगा। सम्भव है, (फिर) दुःख-रात्रिका अवसान हो जाय और एक प्रेममें ही जीवनकी सारी प्रेम-तृषा तृप्त हो जाय।"

कविता समाप्त हुई।

अपने बीसियों गानों और कविताओंमें कविने यह बतलाया है कि हमारा साहित्य होना चाहिए जनतामें—"मूढ़, मूक म्लान" जनतामें—"स्वर्गके अमृतके लिए अन्तरकी गम्भीर पिपासा"—दारुण असन्तोषको जगा देनेके लिए। साहित्यकार इस दीनतामें "स्वर्गसे विश्वासकी छवि" ले आनेवाला है; मगर अपनेको मिटाकर, अपना सर्वस्व निछावर करके। वह उस विश्व-प्रियाके प्रेममें पागल है, जिसे वह जानता नहीं; पर इतना निश्चित जानता है कि उसके पास पहुँचनेके लिए—उसकी अभिसार-यात्राके लिए शत-शत शताब्दियोंके आहत, अपमानित जनमंडलीकी दुर्धर अश्रुधारासे होकर जाना पड़ेगा, रास्तेमें अपमान और असम्मानके शूल हैं, यातनाके काँटे हैं—किन्तु 'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय'—जानेका कोई दूसरा रास्ता नहीं!

चीनके कुछ संस्मरण

भिक्षु उत्तम

सन् १९१० की बात है। उस समय मैं जापानमें था। सन् १९०७ में मैंने क्याटो (जापान) की बौद्ध यूनिवर्सिटीमें तीन वर्षके लिए पाली और संस्कृतका अध्यापन-कार्य स्वीकार कर लिया था। सन् १९१० में जब मेरा अध्यापन-काल समाप्तिपर था और मैं विश्व-भ्रमणकी तैयारी कर रहा था, उन्हीं दिनों सहसा एक दिन टोकियोमें एक चीनीसे भेंट हुई।

एक तो भगवान बुद्धकी जन्मभूमिका—भारतवर्षका—निवासी, दूसरे स्वयं बौद्धभिक्षु, तीसरे पाली और संस्कृत भाषाओंका अध्यापक होनेके कारण मेरे प्रति चीनियों, जापानियों तथा अन्य बौद्धोंका स्वाभाविक आकर्षण और प्रेम रहा करता था। अनेक चीनी, जापानी, कोरियन, मंचूरियन आदि मुझसे बड़े प्रेमसे मिलते थे। इसी प्रकार एक दिन उपर्युक्त चीनीसे भेंट हुई थी।

इस चीनीका क़द मध्यम ऊँचाईका, शरीर सुदृढ़, चेहरा तेजपूर्ण और आँखें मर्मभेदी थीं। थोड़ीसी बातचीत ही में मुझे मालूम हो गया, इस शरीरके भीतर बोलनेवाली बलवान आत्मा कोई साधारण आत्मा नहीं है। उसमें स्वतन्त्रताकी लगन थी, आदर्शका प्रकाश था, नेतृत्वका तेज था, अत्याचारके प्रति विद्रोह था और थी पददलित जनताके लिए अनन्त सहानुभूति। उसमें मुझे वृथा अभिमान और स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षाका आभास भी न दिखाई दिया। बातचीतमें उसने बड़ी सरलतासे मुझे बताया कि वह चीनको निर्बल, अत्याचारी मंचू राजाओंके पंजेसे मुक्त करके वहाँ प्रजातन्त्र शासन स्थापित करना चाहता है। इस कार्यके लिए वह एक देशव्यापी क्रान्तिका संगठन कर रहा है, जो लगभग पूर्ण हो गया है, और शीघ्र ही वह क्रान्तिका झंडा ऊँचा करेगा।

मुझे इस चीनीसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, क्योंकि इस प्रकारके महान पुरुष करोड़ोंमें बिरले ही होते हैं! इस चीनीका नाम था—डाक्टर सन-यात-सेन।

इसके बाद ही मैं चीन, कोरिया, मंचूरिया, साइबेरिया, यूरोप आदि होता हुआ विश्व-भ्रमणको
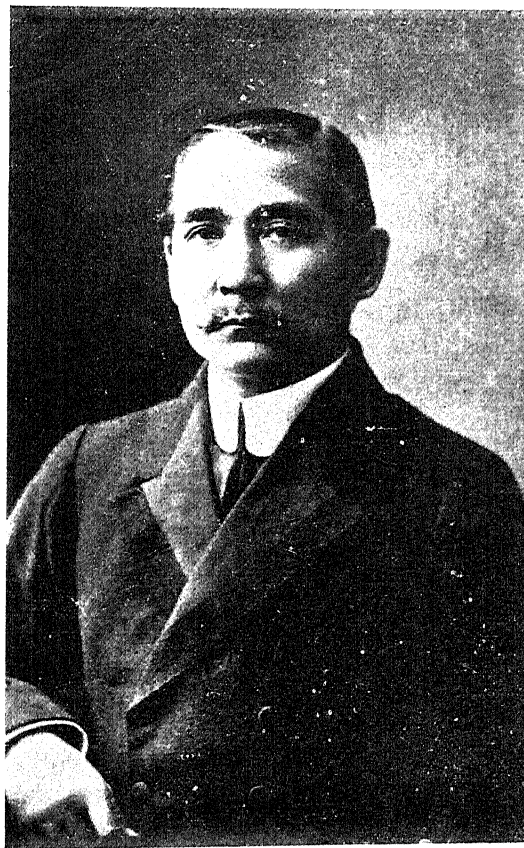
स्वर्गीय डाक्टर सन-यात-सेन

चला गया। डाक्टर सन-यात-सेनने अपने देशके लिए क्या-क्या किया, चीनमें किस प्रकार क्रान्ति हुई और वहाँ कैसे प्रजातन्त्र स्थापित हुआ, यह सब बातें इतिहासका एक अंग बन गई हैं, जिसे आन्तर्राष्ट्रीय

इतिहासका प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। खेद है कि जीवनमें फिर डाक्टर सनसे भेंट न हो सकी।

× × ×

सन् १९२७ में, तीन वर्ष जेलमें ब्रिटिश सरकारकी उदारतापूर्ण मेहमानदारी करके जब बाहर आया, उसके कुछ ही दिन बाद मदरासकी कांग्रेस हुई। कांग्रेसमें पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव पास हुआ। उस

भिक्षु उत्तम

समय मैंने सोते हुए बर्मियोंको जगानेके लिए मिनबूमें एक अखिल बर्मी कानफरेंस बुलाई। ठीक कानफरेंसके दिन सरकारने १४४ धारा जड़ दी। पुलिस और फौजके दलबादल मिनबूमें आ धमके। मैंने वायसरायको तार दिया। अन्तमें क़ानून तोड़ने और करबन्दीकी बात न करनेकी शर्तपर कानफरेंस करनेकी आज्ञा मिली। कानफरेंस हो गई। मैं कांग्रेस और राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके प्रचारके लिए बाहर निकला ; मगर जहाँ जाता, वहींपर १४४ धाराका ताला जड़कर मुँह बन्द कर दिया जाता। देखा कि इस प्रकार काम नहीं चल सकता ; इससे बेहतर है कि विदेश जाकर वहीं कुछ करूँ। जेलसे बाहर आते ही विदेशमें रहनेवाले मेरे अनेक बन्धु भी मुझे अपने यहाँ बुलानेके लिए तंग कर रहे थे। अतः उस समय मैंने यूरोप जाना निश्चय किया।

कलकत्तेके जापानी कौंसलसे मुलाक़ात होनेपर उन्होंने कहा—"आप यूरोप न जाकर पूर्वीय देशोंकी यात्रा कीजिए, वहाँके नये रंग-ढंग देख आइये। पूर्वीय देश अब वे पुराने सोये हुए काहिल देश नहीं रहे। पन्द्रह वर्ष बाद एक बार फिर जाकर अपनी आँखोंसे उनका परिवर्तन तो देखिये। वहाँ जाकर यह तुलना कीजिए कि आपका देश अभी तक कितना जागा है। तब आपको यह पता चल सकेगा कि तेज़ीसे बदलनेवाले इस संसारमें उन्नतिकी दौड़में आपका देश अन्य प्राच्य देशोंसे कंधा भिड़ाकर चलनेके लिए तैयार है या नहीं।"

उनकी बात मानकर मैं ३० जून १९२८ को कलकत्तेसे चलकर २८ जुलाईको जापानके कोबी बन्दरमें जा उतरा। जहाज़ पेनांग, सिंगापुर और हांगकांग आदि होता हुआ गया था।

जापान मेरे लिए कोई नई जगह तो थी नहीं,—इससे पहले प्रायः आधे दर्जन बार मैं जापान जा चुका हूँ ; मगर अब पन्द्रह वर्ष बाद जो देखा, मालूम हुआ कि जापानकी काया ही एकदम पलट गई है। यह आश्चर्यजनक परिवर्तन देखकर मुझे हर्ष-विषाद दोनों ही हुए। जापान अब यूरोप और अमेरिकाके देशोंसे टक्कर लेने योग्य हो गया है। शिल्प, व्यापार, उद्योग-धन्धे, सेना, जहाज़, शिक्षा और राष्ट्रीय व्यवस्थासे लेकर रोज़मर्राके जीवन तकमें आज उस पुराने जापानको पहचानना तक कठिन है। लोगोंके आचार-व्यवहार,
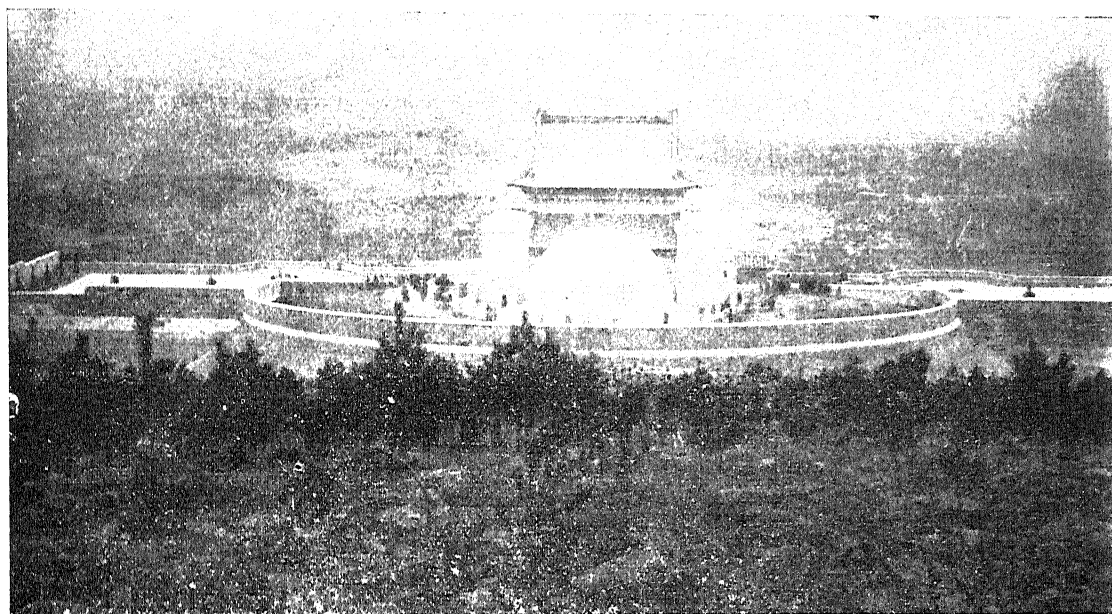
नानकिंगमें डाक्टर सन-यात-सेनका समाधि-स्थल

रहन-सहन, कपड़े-लत्ते आदिको देखकर यही मालूम होता है कि यह भी यूरोपका ही कोई देश है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि जापानने इतनी उन्नति कर ली है कि अब वह शक्तिके दीवाने मदान्ध यूरोपियन राष्ट्रोंके हृदय भी दहला देनेके योग्य हो गया है। इस विषयमें समस्त एशियाई देशोंको उसका अनुसरण करना चाहिए। लेकिन यह देखकर दुःख हुआ कि बाहर-भीतर सब तरफ़से यूरोपियन बननेकी लालसामें जापान अपना निजत्व भूलता जाता है। आदर्शोंमें भी वह यूरोपके निम्न-कोटिके आदर्शोंको स्वीकारकर प्राच्य जगतके महान उच्चादर्शोंसे बेख़बर होता जाता है।

ख़ैर, जो कुछ भी हो, इस बार मैं अधिक दिन तक जापानमें नहीं रहा। अक्टूबरमें ही फ़ारमोसा (तैवान) होकर चीन चला गया। फ़ारमोसा एक सुन्दर द्वीप है। पहले वह चीनियोंके अधिकारमें था। समुद्रमें दूरसे देखनेसे ही उसका शस्य-श्यामल तट-प्रदेश बहुत मनोहर दीख पड़ता है। आबादी चीनी है। आजकल यहाँ जापानी शासन है। फ़ारमोसामें धान, ईख, कपूर, केला और साँप बहुत होते हैं। मैं यहाँ तीन-चार दिन ही के लिए ठहरा था। एक दिन यहाँ व्याख्यान भी दिया था। चीनी भाषा न बोल सकनेके कारण व्याख्यान जापानी भाषामें ही देना पड़ा था।

फ़ारमोसासे चलकर मैं चीनके अमाय बन्दरमें उतरा। वहाँसे मैंने आसपासके छोटे-बड़े शहरों और कस्बोंमें घूमना आरम्भ किया। पन्द्रह वर्ष पूर्व जब पहले-पहल चीन गया था, तब चीनवालोंकी भयंकर निद्रा देखकर मैं बिलकुल ही निराश हो गया था। मगर आज चीनियोंकी निद्रा भंग हो गई है। आज उनमें चेतनाकी लहर दृष्टिगोचर होती है। जानने, समझने और जूझनेकी आकांक्षा लोगोंके हृदयोंमें हिलोरें ले रही है। मैंने चीनियोंमें और विशेषकर कालेजोंके छात्रोंमें भारतवर्षके सम्बन्धमें व्याख्यान देना शुरू किया। अफीमके रोज़गारकी कथा तथा भारतके स्वाधीनता-प्राप्तिके आन्दोलन आदि

बातोंको जाननेके लिए चीनी विद्यार्थी बहुत उत्सुक दीख पड़ते थे ।

अमायके चारों ओरके स्थानोंमें घूम-फिरकर मैंने शंघाईको प्रस्थान किया । शंघाई पूर्वका सबसे बड़ा बन्दरगाह है । हिन्दीकी कहावत है कि कमज़ोरकी
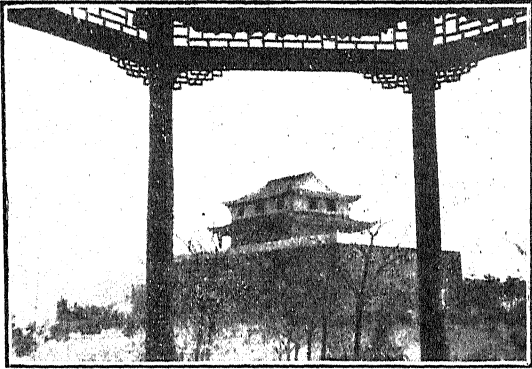
नानकिंगमें कन्फ्यूशसका मन्दिर

स्त्री सबकी भौजी । इसका जीता-जागता उदाहरण शंघाई है। चीनको कमज़ोर पाकर यूरोप और अमेरिकाके अनेक राष्ट्रोंने उसका दोहन करनेके उद्देशसे शंघाईपर क़ब्ज़ा जमा रखा है । नगरमें हरएक राष्ट्रका इलाक़ा अलग है। उनकी अपनी सेना, तार, पुलिस, अदालत आदि अलग-अलग हैं । यहाँ तक कि डाकके टिकट तक अलग-अलग थे ! नवीन चीनने बहुत लड़-भिड़कर विदेशियोंकी इस धींगा-धींगीमें कुछ थोड़ीसी कमी की है । शंघाईमें सिखोंकी एक अच्छी संख्या है । खेद है कि प्राच्य देशोंमें प्राय: सभी कहीं ये लोग अक्सर बहुत नीच कार्य किया करते हैं । वे विदेशियोंके ज़र-ख़रीद गुलाम बनकर प्राच्य देशवासियोंपर बहुधा अत्याचार भी करते हैं । सिखोंने मुझे अपने गुरुद्वारेमें व्याख्यान देनेके लिए बुलाया । मैंने कहा--"तुम लोग मांस खाओ, शराब पीओ, जो चाहो सो करो, मैं तुम्हें नहीं रोकता ; मगर तुम अपने देशको, अपनी असलियतको, अपने महान गुरुओंको तो मत भूलो । जिन महान सिख गुरुओंने स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए कैसे-कैसे बलिदान किये थे, उन्हींके अनुयायी होकर तुम दूसरोंकी स्वतन्त्रता छीनने और दूसरोंपर अत्याचार करनेके औजार बने हुए हो । ज़रा तुम अपनी हालतपर गौर करो । तुम्हारे इन्हीं दुष्कर्मोंका फल यह है कि आज चीनी लोग तुमसे और तुम्हारी बदौलत समस्त भारतीयोंसे घृणा करने लगे हैं । चीनी तुम्हारे पड़ोसी हैं । किसी समय चीनियोंके साथ भारतीयोंका जो आदान-प्रदान हुआ था, उसपर आज भी तुम्हारे शिक्षित लोग गौरव करते हैं । अगर ज़िन्दगी चाहते हो, तो एशियाको ऊपर उठाओ ।"

इस वक्तृताका फल हुआ । एक दिन प्रातःकाल दो अंगरेज़ और एक सिख सी० आई० डी०, जापानी कौंसलका एक प्रतिनिधि, एक जापानी डी० एस० पी०के साथ कम्यूनिस्ट साहित्य खोजनेके लिए मेरे घरकी ख़ानातलाशी लेनेके लिए आ धमके । मैं एक जापानी सज्जनके साथ ठहरा था । जापानी कौंसलको यह आशंका हुई कि पुलिस कहीं अपने साथ कम्यूनिस्ट साहित्य लाकर मुझे फँसानेकी चेष्टा न करे, इसीलिए उन्होंने इन दोनों जापानियोंको साथ कर
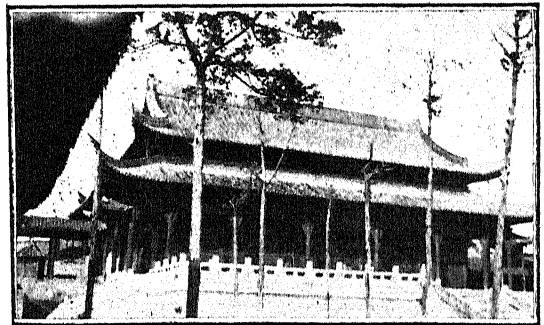
नानकिंगका प्राचीन ड्रम टावर (सन् १०९२ का बना हुआ)

दिया था । जब मुझसे अंगरेज़ पुलिस अफ़सरने पूछा --"क्या तुम्हारे पास कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य है ?" मैंने उत्तर दिया—"है क्यों नहीं ? बहुत है ।" सब लोग आश्चर्यसे मेरा मुख देखने लगे । अफ़सरने

पूछा—"कहाँ है ?" मैंने अपने हृदयकी ओर इशारा करके कहा—"यहाँ भरा है।" जापानियोंको आश्वासन मिला, पुलिस निराश लौट गई।

उन्हीं दिनोंमें काउन्ट ओटानी तुर्की और फ्रान्स घूमकर शंघाई आये। उन्होंने इस घटनाके बाद मुझसे कहा—"आप यहाँ अधिक न ठहरिये। न मालूम क्या-क्या फन्दे रचे जायँ। बेहतर है, मेरे साथ जापान चलें।" उनका कहना मानकर मैं ८ मार्चको फिर जापानके लिए रवाना हुआ।

अप्रिल मासमें कांग्रेसके तत्कालीन सभापति स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरूका एक तार मुझे जापानमें मिला; जिसमें लिखा था कि नानकिंगमें स्वर्गीय डाक्टर सन-यात-सेनके शवको समाधिस्थ करनेके उपलक्षमें चीनकी राष्ट्रीय सरकारकी ओरसे जो उत्सव होगा, उसमें कांग्रेसने आपको अपना प्रतिनिधि मनोनीत किया है। इस अवसरपर चीनकी सरकारने संसारके समस्त देशोंको निमन्त्रित किया था। मैंने चलनेके लिए तैयारी की। दो-चार मित्रोंने सलाह दी कि अगर शंघाई होकर जाओगे, तो ब्रिटिश सरकार गिरफ्तार कर लेगी। मि० इटो मेरे एक घनिष्ट मित्र हैं। उन्होंने कहा—कुछ परवा नहीं, मैं आपको ऐरोप्लेनपर बिठाकर सीधे नागकिंगमें उतार दूँगा।"

बन्धुओंकी इस आन्तरिक प्रीति और चिन्ताके लिए धन्यवाद देकर मैंने कहा—"पैंतीस करोड़ मनुष्योंका प्रतिनिधि बनकर मैं चोरकी भाँति नहीं जाऊँगा। मैं शंघाई होकर ही जाऊँगा। अगर सरकारको पकड़ना होगा, तो पकड़ लेगी।"

२३ वीं मईको प्रस्थान करके २६ वीं को शंघाई और २७ वींको नानकिंग जा पहुँचा।

चीनकी राष्ट्रीय सरकारके परराष्ट्र-मन्त्री डाक्टर वानने बड़े आदरसे मेरी अभ्यर्थना की। एक बड़े शानदार होटलमें मेरे ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था; मगर मेरे समान भिक्षु-संन्यासीके लिए ऐसे शानदार होटलमें रहना शोभा नहीं देता। परराष्ट्र-विभागके एक ऊँचे अफसर मेरे आराम और सुविधाकी देखरेखके लिए नियुक्त थे। वे मेरी सब तरहकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए सदा तत्पर रहते थे।

मुझे भारतवर्षकी ओरसे डाक्टर सन-यात-सेनके शवपर श्रद्धांजलि अर्पण करनेके लिए फूलोंका इन्तज़ाम करनेकी फिक्र हुई। मगर तलाश करनेपर मालूम हुआ कि फूल संग्रह करना एकदम असम्भव है। शवके समाधिस्थ करनेवाले दिन तक नानकिंग और उसके इधर-उधर सैकड़ों मील दूर तक जो फूल खिलेंगे, वे पेशगी ही ख़रीदे जा चुके थे। उस दिन चीनमें हज़ार रुपये देनेपर भी एक असली फूल नहीं मिल सकता था। जहाँ-जहाँसे फूल आ सकनेकी सम्भावना थी, वहाँ-वहाँसे लोग बन्दोबस्त कर चुके थे। इसलिए अनेक देशोंके प्रतिनिधियों और कौंसलोंको नक़ली फूलोंपर ही सन्तोष करना पड़ा था। मुझे भी असली फूलोंकी आशा छोड़कर नक़ली फूलोंकी तलाश करनी पड़ी। नानकिंग-विश्वविद्यालयके छात्रोंने मुझसे कहा—"आप चिन्ता न कीजिए। भारतवर्षके लिए हम लोग आपको फूलोंका गुलदस्ता और माला बनाकर देंगे।" उन्होंने रेशम और कागज़के फूलोंका जो गुलदस्ता भारतके लिए तैयार करके दिया, वह ऐसा सुन्दर और भव्य था कि वैसा किसी भी अन्य जातिके प्रतिनिधिको नसीब न हुआ!

इधर फूल चढ़ानेके सम्बन्धमें डाक्टर वान और 'समाधि - समिति' (Funeral Committee) में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। डाक्टर वानका कहना था कि सबसे पहले भिक्षु उत्तम फूल चढ़ावें, पीछे अन्य लोग; परन्तु समितिका कथन था कि पहले स्वाधीन देशोंके राजदूत और राजनीतिज्ञ (Diplomat) पुष्पांजलि दें। अंगरेज़ोंका गुलाम सबसे पहले क्यों फूल चढ़ावे? डाक्टर वानने कहा—'भिक्षु उत्तम हमारी पड़ोसी एक प्राचीन महान जातिके प्रतिनिधि हैं। दुर्बल और पराधीन समझकर ही हमें भारतके साथ विशेष सहानुभूति दिखानी चाहिए।'

ख़ैर, बड़ी बहसा-बहसीके बाद यह समझौता हुआ कि सबसे पहले रोमके पोपका प्रतिनिधि फूल चढ़ावे और उसके बाद मैं भारतकी पुष्पांजलि अर्पण करूँ।

कौन-कौन चीनके इस महान स्वर्गीय पुत्रको पुष्पांजलि अर्पण करेगा, किसका नम्बर किसके बाद आयगा और कौन व्यक्ति किस देश या किस जातिका प्रतिनिधि है, इसकी एक सूची तैयार की गई, जो चीनके प्रत्येक समाचारपत्रमें प्रकाशित हुई। संसारके अन्य स्वाधीन देशोंके प्रतिनिधियोंके बीचमें पराधीन भारतके प्रतिनिधिका होना हमारे कतिपय शासकोंको न रुचा, इसलिए शंघाईके एक अंगरेज़ी अख़बारने मेरे नाम और मेरी तसवीरके नीचे लिख दिया---'अफ़ग़ान प्रतिनिधि!' मैं भारतीय प्रतिनिधि नहीं, अफ़ग़ान प्रतिनिधि हूँ!

हमारे विरोधी यह नहीं चाहते कि पराधीन भारतवर्ष चीनके प्रति किसी प्रकारका बन्धु-भाव प्रदर्शित करके उनकी सहानुभूति प्राप्त कर सके।

३१ वीं मईको कुओमिन्टांग पार्टीके केन्द्रमें पुष्पांजलिका उत्सव हुआ। पहले रोमके ईसाई पोपके प्रतिनिधिने फूल चढ़ाये। फिर भारतवर्षके प्रतिनिधिका नाम पुकारा गया। मैं आगे बढ़ा। मेरे साथ मेरे जापानी सेक्रटरी, डाक्टर वान, परराष्ट्र-विभागका वह अफ़सर तथा चीन-प्रवासी भारतीयोंके दो प्रतिनिधि थे। जैसे ही हम लोग शवके समीप पहुँचे, वैसे ही बैंड बज उठा। हम लोगोंने श्रद्धासे एशियाकी नवीन जाग्रतिके इस पुरोहितकी मृत-देहको प्रणाम किया। पराधीन एशियाको स्वाधीनताका सन्देश पहुँचानेवाले इस महान ऋषिका स्मरण करके सारा शरीर रोमांचित हो उठा। स्वाधीन चीनकी भूमिपर खड़े होकर सहसा स्वाधीन भारतका मनोरम चित्र आँखोंके सामने घूम गया। हृदयमें भावनाओंका तूफ़ान उठने लगा।

ख़ैर, शवको प्रणाम करके मैं उसकी प्रदक्षिणा करने लगा। साथ-साथ बैंड बजता जाता था। प्रदक्षिणा समाप्त करते ही बैंड चुप हो गया। स्वाधीन चीनका राष्ट्रीय गान प्रारम्भ हुआ। हम लोग श्रद्धासे सिर नवाकर खड़े रहे। उसके बाद मुझसे वक्तृता देनेके लिए कहा गया। मैंने जो कुछ कहा, उसका मर्म यह था —

"जब तक भारत पराधीन रहेगा, तब तक संसारमें शान्ति न होगी, तब तक एशियाका कल्याण नहीं है। भारतका सिंह आज हिमालयके जंगलोंमें सोया हुआ है, जिस दिन जागेगा, उस दिन समस्त संसार काँप उठेगा। सम्भव है कि जाग्रत चीनके स्पर्शसे ही भारतकी निद्रा भी भंग हो। हम लोगोंमें सदासे बन्धुत्व था। अशोक, कुमारजीव, फाहियान, ह्यूएन सांग आदिके आदान-प्रदानने प्राचीनकालमें इस बन्धुत्व-सूत्रको क़ायम रखा था। मगर बादमें जब हम सब आत्म-विस्मृतिमें पड़ गये, तब पश्चिमने आकर हम लोगोंको पृथक् कर दिया। मगर हम दोनों अलग होनेके लिए राज़ी नहीं हैं, भाई-भाई अलग न रहेंगे। इसके प्रमाणमें मैं आज भारतकी ओरसे आपके देवताके चरणोंमें पुष्पांजलि लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आज हम लोग पराधीन हैं, फिर भी आपके ही भाई हैं। हमने अभी तक आप लोगोंकी श्रद्धा और प्रेमको खोया नहीं है, यह मैं आपके स्त्री-पुरुषोंकी दृष्टिमें स्पष्ट रूपसे देखता हूँ।...." फिर मैंने चीनियोंको सम्बोधन करके कहा—"आप लोग आपसका कलह बन्द कर दें। पाश्चात्य जातियाँ हमारे भीतर भेद-भाव उत्पन्नकर कलहका बीज बोती हैं, जिससे उनका प्रभुत्व दीर्घकाल तक क़ायम रहे। इस बातको समझकर हम लोग भीतरी एकता स्थापित कर सकें, तो समस्त प्राच्यके मिलनसे पाश्चात्य जातियोंका प्रभुत्व दूर होनेमें देर न लगेगी। प्राच्य पुनः अपने प्राचीन गौरवके पदपर आरूढ़ होगा।"

× × ×

१ ली जूनको शव नानकिंगकी 'बैंगनी पहाड़ी' (Purple Mountain) पर समाधिस्थ हुआ।

सवेरे ४ बजे हम सब कुओमिनटांग पार्टीके केन्द्रमें

उपस्थित हुए। वहाँसे ५॥ बजे जुलूस रवाना हुआ। इस जुलूसमें केवल चीनके विभिन्न प्रदेशों, संघों, दलों तथा विदेशोंके प्रतिनिधि ही सम्मिलित हुए थे। उसमें साधारण दर्शकोंको इजाज़त नहीं थी। किन्तु इन प्रतिनिधियोंकी संख्या ही ४०,००० थी। चीनी प्रतिनिधि-दलोंके साथ कपड़ेकी पताकाओंपर उनके नाम लिखे थे।

सब देशोंके कौंसल और प्रतिनिधि अपने-अपने पदोंकी वर्दियाँ पहने हुए थे। केवल मैं ही अपने उसी हल्दी रंगके चीवरमें था। जुलूसको पहुँचनेमें बहुत देर लगती, इसलिए अनेक विदेशी प्रतिनिधियोंको मोटरपर बिठाकर पर्वत तक पहुँचा दिया गया था। मेरी मोटरकी पताकापर लिखा था—"इन्तो ताइयो"—अर्थात् 'भारतीय प्रतिनिधि'।

बैंगनी पर्वतके चरणतलपर जुलूस समाप्त हुआ। जुलूसके आगे चीनी प्रजातन्त्रके प्रधान चैंग काइशक और उनका परिवार था, उसके बाद सन-यात-सेनके परिवारके व्यक्ति थे, फिर प्रजातन्त्रके मन्त्रीगण तथा उनके परिवार थे। इन सबको एक काले पर्देसे घेरकर ले जाया गया था। इसके बाद जुलूसको दाहने-बाएँ दो भागोंमें बाँटा गया। दाहनी ओर स्वाधीन जातिके प्रतिनिधि थे और बाईं ओर हम लोग, जापानसे निमन्त्रित कुछ विशिष्ट व्यक्ति और सन-यात-सेनको विप्लवमें सहायता देनेवाले व्यक्ति थे। इन दोनोंके बीचमें ताबूतमें बन्द सन-यात-सेनकी मृतदेह थी। चीनी प्रतिनिधि पीछे-पीछे चल रहे थे।

बैंगनी पर्वतके ऊपर बने हुए नये समाधि-मन्दिरपर जाकर शव उतारा गया। अब सब प्रतिनिधियोंने अपनी-अपनी बारीसे शवको प्रणाम किया।

साढ़े ग्यारह बजे समाधि-उत्सव समाप्त हो गया। इसके बाद मैं डाक्टर वानका अतिथि बनकर बारह दिन तक नानकिंगमें और रहा।

१० वीं जूनको नानकिंगसे चलकर मैं साइनानफू गया। इससे कुछ ही दिन पहले साइनानफूमें उत्तरी और दक्षिणी चीनमें लड़ाई हुई थी। जापानने उत्तरी चीनको सहायता की थी, और जापानियोंके हाथसे दक्षिणी-चीनके प्रायः दो-तीन हज़ार चीनी मारे गये थे।

साइनानफूसे मैं सिंगटाऊ गया। यह पहले चीनका था। फिर इसे जर्मनीने छीन लिया था। महायुद्धके समय जापानने उसपर कब्ज़ा कर लिया था। वरसाईकी सन्धिमें भी जापानको ही सिंगटाऊका शासन भार लेनेका अधिकार दिया गया था; मगर अब जापानने उसपर से अपना दावा छोड़ दिया है। अब सिंगटाऊ पूर्ण रूपसे चीनियोंके कब्ज़ेमें है। सिंगटाऊकी आबहवा और प्राकृतिक दृश्य आदि बड़े मनोरम हैं। समुद्र-स्नानके आनन्दके लिए तो समस्त पूर्वमें कोई स्थान सिंगटाऊका मुक़ाबला नहीं कर सकता। यहाँके शहर, दुर्ग, भवन आदि सभी जर्मनोंके बनाये हुए हैं।

जूनके अन्तमें मैं जापान गया। जापानमें वक्तृता देते हुए मैंने कहा था—"यदि तुम लोग पाश्चात्यके ग्रास होनेसे बचना चाहते हो, तो चीनपर ज़ुल्म मत करना। चीनको तुम्हें अपने साथ लेना पड़ेगा। चीनपर तुम लोग जो ज़ुल्म करते हो, उसके लिए तुम्हें लज्जित होना चाहिए। आपसमें लड़कर पाश्चात्य शत्रुओंके सामने हँसी मत कराओ। यदि चीन और जापान मिल जायँ, तो समूचे एशियाका कल्याण हो सकता है।"

निकट-पूर्वकी समस्या

श्री दीनदयालु शास्त्री

चीनका बन्दरबाँट

अंगरेज़ीमें जिसे 'फार ईस्ट' कहा जाता है, हमारे लिए वह फार ईस्ट (सुदूर-पूर्व) न होकर निकट-पूर्व ही है। चीन, जापान, स्याम, फिलिपाइन आदि एशिया महाद्वीपके पूर्वभागमें स्थित देश यूरोपके लिए भले ही सुदूर-पूर्वमें हों, किन्तु भारतके तो वे निकटतम पड़ोसी ही हैं। सांस्कृतिक दृष्टिसे उनका भारतसे और भी गहरा सम्बन्ध है। यह सब देश प्रशान्त महासागरके आसपास हैं। यही कारण है कि राजनीतिज्ञ लोग निकट-पूर्वकी समस्यापर विचार करते समय बहुधा उसे 'प्रशान्त महासागरकी समस्या'के नामसे भी याद कर लेते हैं। आज यह निकट-पूर्व संसारके राजनीतिज्ञोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किये हुए है। निकट-पूर्वकी इस महत्ताका आधार गत एक शताब्दीका इतिहास है, जिसपर सरसरी तौरपर विचार करना हमारा उद्देश्य है।

अठारहवीं सदीमें जब अंगरेज़, फ्रेंच, डच आदि यूरोपकी व्यापारी जातियोंने भारत, जावा तथा फिलिपाइन देशोंपर अपना दख़ल जमा लिया, तो उनकी दृष्टि सहसा चीन-जैसे विशाल देशपर पड़ी। विस्तारकी दृष्टिसे चीन एशियाके विशालतम देशोंमें है। निकट-पूर्वका तो यह यथार्थमें केन्द्र है। जब कोई राजनीतिज्ञ निकट-पूर्वपर विचार करता है, तो उसका मतलब बहुत अंशोंमें चीनसे ही होता है। व्यापारकी दृष्टिसे भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। उन्नीसवीं सदीके शुरूमें अंगरेज़ व्यापारियोंने चीनकी चाय तथा रेशमके व्यापारकी ओर ध्यान दिया। चीनकी केन्द्रीय सरकारने इन व्यापारियोंको दक्षिणके कैन्टन बन्दरगाहमें व्यापार करनेकी सुविधाएँ दीं। अंगरेज़ व्यापारी चीनसे रेशम तथा चाय ख़रीदते और बदलेमें कपड़ा तथा अफ़ीम भेजते थे। इसमें अफ़ीमकी मात्रा अधिक होती थी। चीनकी सरकारने अफ़ीमका विरोध किया; किन्तु अंगरेज़ व्यापारियोंने एक न सुनी। सन् १८३९ तक चीनके इस व्यापारका एकमात्र अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनीको रहा, किन्तु अन्य व्यापारियोंके आन्दोलनके कारण इस साल ब्रिटिश सरकारने यह अधिकार अपने हाथोंमें ले लिया। व्यापारके संगठित रूपका परिणाम यह हुआ कि चीनमें अफ़ीमकी खपत बढ़ने लगी। जब शान्तिसे काम न निकला, तब चीनकी सरकारने मि० लिनको इस आपाधापीको रोकनेके लिए कैन्टन भेजा। मि० लिनने आते ही सख़्तीसे काम लिया। मि० लिनका यह काम कैन्टनके अंगरेज़ व्यापारियों तथा वहाँके अंगरेज़ ट्रेड कमिशनरको पसन्द नहीं आया। परिणाम-स्वरूप इंग्लैण्ड और चीनमें १८४० में युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध संसारके इतिहासमें अफ़ीमके युद्धके नामसे प्रसिद्ध है, और अंगरेज़ जाति अपने स्वार्थके लिए क्या नहीं कर सकती, इसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है।

अफ़ीम-युद्ध बहुत दिन नहीं चला। युद्धमें अंगरेज़ जीते। नानकिंगकी सन्धिके अनुसार चीनने अपने पाँच बन्दरगाह यूरोपियन व्यापारके लिए खोल दिये। हांगकांगका छोटा, किन्तु व्यापारके लिए उपयुक्त, टापू अंगरेज़ोंको दे दिया गया। साथ ही चीनके आयात-निर्यात मालपर पाँच प्रतिशत चुंगी देनेका भी निश्चय हुआ। आगे जाकर यही चुंगी चीनके व्यापार तथा कला-कौशलको हानि पहुँचानेमें प्रबल कारण बनी। पाँच प्रतिशत चुंगी देकर भी विदेशी माल चीनके बाज़ारोंमें सस्ता बिकने लगा। चीनका माल अपने देशमें ही मँहगा हो जानेसे वहाँका कला-कौशल चौपट होने लगा। इस सन्धिके बाद अंगरेज़ोंने अपने व्यापारका केन्द्र कैन्टनसे उठाकर हांगकांगमें कर लिया। यहाँ चुंगीका कोई

सवाल न था। धीरे-धीरे कैन्टनका सब व्यापार हांगकांगके द्वारा होने लगा। आज अकेले हांगकांगसे अंगरेज़ोंको अरबोंकी आमदनी है, और हांगकांगके सामने कैन्टन कुछ भी नहीं रह गया है।

इस युद्धके बाद दूसरा अधिकार अंगरेज़ोंको यह मिला कि चीनमें स्थित अंगरेज़ व्यापारियोंके मुकदमे चीनकी अदालतमें न होकर अंगरेज़ी अदालतमें होने लगे। व्यापारकी रक्षाके लिए अंगरेज़ पुलिसकी भरती हुई। अंगरेज़ोंकी देखादेखी अमेरिका, फ्रांस तथा दूसरे देशोंने भी अपने व्यापारियोंके लिए ये सुविधाएँ भिन्न-भिन्न समयोंमें चीनसे प्राप्त कर लीं। इन विदेशी व्यापारियोंकी लालसा यहीं तक समाप्त नहीं हुई। धीरे-धीरे इन विदेशी अदालतोंने विराट् रूप धारण किया। चीनके पाँच बन्दरगाह कैन्टन, अम्बाय, फूचो, शंघाई तथा निंगयो व्यापारके लिए खुले थे। इन शहरोंके निकट यूरोपियन व्यापारियोंकी बस्तियाँ बसने लगीं। इनमें चीनका शासन नहीं चला ; किन्तु इन्हीं व्यापारियोंकी खास मंडली शासन करने लगी। कैन्टनके निकट शमीनमें तथा शंघाई और टिन्टसिनमें विदेशी नगर बहुत बड़े रूपमें बस गये। इनके प्रबन्धके लिए विदेशी पुलिस, फौज तथा अदालतका निर्माण हुआ। शंघाईमें ऐसी बस्तियाँ थीं। एकमें फ्रांसका शासन था। दूसरीमें अंगरेज़ तथा अमेरिकनोंका संयुक्त शासन हुआ। टिन्टसिन चीनकी राजधानी पेकिनका बन्दरगाह है, यहाँ भी यही संयुक्त शासन चलने लगा। चीनकी केन्द्रिय सरकार कमज़ोर थी। इन बस्तियोंका शासन-कार्य व्यवस्थित था, इसलिए धीरे-धीरे चीनके व्यापारका अधिकांश इन्हीं विदेशी बस्तियों द्वारा होने लगा। आज भी चीनके व्यापारका ८० प्रतिशत भाग इन्हीं विदेशी बस्तियोंके द्वारा हो रहा है, जिसका परिणाम यह है कि अपने ही देशमें चीनी प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है, और उन्हींके देशमें विदेशी व्यापारी मालामाल हो रहे हैं।

सन १८६० तक ये विदेशी व्यापारी पेकिनकी सरकारको ही मुख्य मानते थे और उसीको चुंगी देते थे। पेकिनकी सरकार बहुत कमज़ोर थी। सम्राट् स्वयं महलोंसे बाहर न निकलते थे। शासन-भार सरदारोंके हाथमें था। सन् १८६० में चीनमें भारी विप्लव हुआ। पेकिनकी सरकार उसे शान्त न कर सकी। ऐसे समयमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न-भिन्न शासन क़ायम होने लगे। बन्दरगाहोंपर चुंगी लेनेवाले चीनी अफ़सर भाग गये। यह चुंगी चीनकी कौन सरकार ले, यह समस्या थी, जिसका कोई हल न था। चीनके सभी मुख्य बन्दरगाहोंमें विदेशी बस्तियाँ थीं। इन सबने मिलकर निश्चय किया कि हम लोग स्वयं ही चुंगी एकत्र करें और पेकिनकी सरकारको दे दिया करें। पेकिनकी कमज़ोर सरकारको पैसेकी ज़रूरत थी, उसने यह स्वीकार कर लिया। इस प्रकार चीनके समुद्री व्यापारकी चुंगीका प्रबन्ध हमेशाके लिए विदेशी व्यापारियोंकी संयुक्त समितिके हाथमें चला गया। अंगरेज़ व्यापारी अधिक थे, इसलिए इस समितिमें ब्रिटेनका बोलबाला रहा। आगे जाकर पेकिन-सरकारकी आमदनीके दूसरे साधन नमक-करकी वसूलीका अधिकार भी इस समितिको मिल गया। इस संयुक्त समितिमें फ्रांसके अधिकार कम थे। सारे देशकी डाकके प्रबन्धको अपने हाथोंमें लेकर फ्रांसने इस कमीको पूरा कर लिया।

समुद्री व्यापारको हथियाकर अब इन व्यापारियोंकी नज़र चीनके भीतरी व्यापारकी ओर गई। देशमें यातायातकी कठिनता थी। चीनके शासक भीतरी झगड़ोंके कारण स्वयं इसका प्रबन्ध करनेमें असमर्थ थे। इन व्यापारियोंने देशके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें रेलवे बनानेका ठेका अपने-अपने देशोंके नामसे ले लिया। फ्रांसने यूनान-प्रान्तमें रेलवे चलाई। ब्रिटेनने कैन्टन तथा शंघाईके प्रान्तोंमें रेलवे लाइन बिछाई। जर्मनी तथा ब्रिटेनकी संयुक्त पूँजीसे नानकिंगसे टिन्टसिन और पेकिनसे मुकडनकी रेलवे बनाई गई। बेलजियमने पेकिनसे हैंकाऊका मार्ग अवलम्बन किया, और सबसे बढ़कर रूसने सारे मंचूरियाको रूसी रेलवेसे पाटनेका

निश्चय किया। इन रेलोंका प्रबन्ध तथा रक्षा सब विदेशी स्वयं करते थे। पहले एक प्रकारसे चीनके समुद्री द्वारपर विदेशी पहरा था। अब विदेशी भीतर भी अपने अड्डे जमाने लगे। सन् १८९५ तक सारे चीनमें मुख्य-मुख्य व्यापार-मंडियों, बन्दरगाहों तथा नदी-तटोंपर विदेशी व्यापारियोंका सिक्का जम गया।

अब तक जापान अपनेमें मस्त था। अब वह भी मैदानमें आया। यद्यपि चीनमें विदेशी व्यापार तो कर रहे थे; लेकिन चीनके अंग-भंगकी अभी तक किसीको न सूझी थी। शंघाई आदि शहरोंमें छोटी-छोटी स्वतन्त्र विदेशी बस्तियाँ अवश्य थीं; किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य केवल व्यापार करना था। अब जापानने चीनके अंग-भंगका प्रारम्भ किया। सन् १८९५ में चीन-जापान-युद्धमें जापान विजयी हुआ। चीनका फारमोसा नामका बड़ा टापू जापानके हाथ लगा। अन्य विदेशियोंको इस घटनासे उत्साह मिला; पर जापानकी भाँति अन्य लोगोंने युद्धका आश्रय नहीं लिया। वे लोग यूरोपियन थे, राजनीतिके पुराने महारथी थे। जो काम जापानने युद्धसे निकाला था, यूरोपियन राजनीतिज्ञोंने वह काम दूसरे ढंगसे निकाल लिया। सन् १८९८ में चीनमें व्यापार करनेवाले यूरोपियन देशोंने भिन्न-भिन्न भाग चीनसे ठेकेपर ले लिये। जर्मनीने शान्टुंग-प्रान्तपर दखल जमाया। शान्टुंग-प्रान्तके कियाऊ चाऊ बन्दरगाहका ठेका ९९ सालके लिए उसे मिल गया। रूसको मंचूरियाके दक्षिणमें लाओटुंग प्रायद्वीपका ठेका मिला। पोर्ट-आर्थर तथा डालनीके प्रसिद्ध बन्दरगाह इसी में थे। अंगरेज़ोंने हांगकांगके काऊलन और पोर्ट-आर्थरके सामनेकी हाई वीके बन्दरगाह हथिया लिये। फ्रांसने अनामके उत्तरमें चीनके क्वांग-चोवन बन्दरगाहपर अधिकार कर लिया।

कहनेको ये बन्दरगाह चीनके ही मातहत थे; पर शासनकी दृष्टिसे ये भूभाग सर्वांशतः विदेशियोंके हाथमें चले गये थे। इन स्थानोंको पाकर ही विदेशी सन्तुष्ट नहीं हुए। इन बन्दरगाहों तथा प्रदेशोंके साथके चीनी प्रान्तोंको भी इन विदेशी शक्तियोंने अपनेमें बाँट लिया, और इसकी रक्षाके लिए 'प्रभाव-क्षेत्र' (Sphere of influence) शब्दकी रचना हुई। आपसमें यह तय पाया कि एक दूसरेके प्रभाव-क्षेत्रमें कोई प्रवेश न करे। अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्रमें हरएकको छुट्टी थी। यूरोपियन राजनीतिका यह एक विचित्र तरीक़ा है। चीनके प्रदेशोंको वे लोग आपसमें बाँट रहे थे, और चीनसे कुछ पूछा तक न जा रहा था! मोटे शब्दोंमें कहें, तो चीनके घर यूरोपियन चोर घुस आये थे, और जिसको जो मिलता था, उसे वह उठाये लिये जाता था। घरका मालिक पेकिनमें मीठी नींद सो रहा था। घरके दूसरे सदस्य त्राहि-त्राहि पुकार रहे थे; लेकिन चोरोंको उनसे कोई भय न था। चीनके दक्षिणके यूनान, क्वांगसी तथा दक्षिणी क्वांग-टुंग फ्रांसके प्रभाव-क्षेत्रमें थे। इंग्लैण्डने क्वांगटुंगके शेष भाग तथा यांगसी नदीके व्यापार-पथको अपना प्रभाव-क्षेत्र बनाया था। जर्मनीका शान्टुंगमें प्रभाव था। रूस मंचूरियामें मनमानी कर रहा था।

इन्हीं दिनों अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्र तथा स्पेनमें लड़ाई छिड़ी। अमेरिकाने फिलिपाइनको कब्ज़ेमें कर लिया। अब तक अमेरिका चीनमें केवल व्यापारकी इच्छा रखता था। फिलिपाइनके हाथमें आते ही उसने देखा कि चीनको यूरोपियन अपने पंजेमें कस रहे हैं। प्रभाव-क्षेत्रकी नीतिसे अमेरिकाके व्यापारमें बाधा पड़ती थी। इससे विवश होकर उसने ऐलान किया कि चीन एक स्वतन्त्र तथा अविभाज्य देश है। उसमें व्यापार करनेका अधिकार प्रत्येक देशको है। इसके विपरीत नीति बरतनेवाले देशोंको अमेरिकाकी व्यापारिक स्वतन्त्रतामें बाधा न डालनी चाहिए। अमेरिकाकी इस स्पष्टवादिताने चीनकी रक्षा कर ली। यूरोपियनोंने अपने प्रभाव-क्षेत्र छोड़ दिये; किन्तु पट्टे या ठेकेपर प्राप्त स्थान उन्हींके हाथमें रहे। इसके बाद भी चीनके अंग-भंगकी कई बार कोशिश हुई; किन्तु अमेरिकाके कारण आज भी चीन

जीर्णशीर्ण रूपमें अपनी स्वतन्त्र सत्ता क़ायम किये हुए हैं।

अमेरिकाकी इस घोषणासे सारे चीनमें उत्साह और हर्ष छा गया। चीनी नवयुवक संगठित होने लगे। इन लोगोंका आदर्श-मन्त्र था—चीन हमारा देश है, इसपर विदेशियोंका कोई दख़ल न होना चाहिए। इन लोगोंको बॉक्सर कहा जाता था। बॉक्सर लोग चीनकी कमज़ोरीसे असन्तुष्ट थे। उनका ख़याल था कि हमारे सम्राट् जब चाहें इन विदेशियोंको अपने देशसे निकाल बाहर कर सकते हैं, पर वे जान-बूझकर विदेशी लोगोंसे मिल गये हैं। सन् १९०० में बॉक्सर लोगोंकी संगठित टोलियोंने चीनकी राजधानी पेकिन नगरमें प्रदर्शन किया। चीनी पुलिसने जब उनका कोई विरोध न किया, तो उनके दलके दल पेकिनमें स्थित विदेशी राजदूतोंके घरोंपर हमले करके अपने क्रोध और असन्तोषका गुबार निकालने लगे। कई घर जला दिये गये। जर्मन राजदूत मारा गया। जब ख़बरें शंघाई आदि नगरोंमें पहुँचीं, तो यूरोपियन बस्तियोंमें जोश फैलने लगा। परिणाम यह हुआ कि अंगरेज़, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, रूस तथा जापानकी सम्मिलित सेनाने पेकिनपर हमला किया। दो महीनेके घेरेके बाद बॉक्सर लोगोंने हथियार डाल दिये। इस युद्धके बाद चीन तथा इन देशोंके प्रतिनिधियोंमें जो समझौता हुआ, उससे चीनकी कमज़ोरीका स्पष्ट पता चलता है। ३९ वर्ष तक ४५ करोड़ टेल (चीनी सिक्का) प्रतिवर्ष हर्जानेके तौरपर चीनने इन देशोंको देने स्वीकार किये। पेकिनमें स्थित राजदूत अपनी रक्षाके लिए राजधानीमें निजी फौज रखने लगे। इन राजदूतावासोंमें चीनी लोगोंका आना निषिद्ध हो गया। एक तरहसे हरएक राजदूत छोटे क़िलेमें रहने लगा। टिन्टसिनसे पेकिन तककी रेलवे लाइन विदेशी राष्ट्रोंकी सम्मिलित सेनाके पहरेमें कर दी गई। साथ ही टिन्टसिनके बन्दरगाहपर भी फौजका पहरा रहने लगा। समझौतेमें कहा गया था कि यदि चीनकी सरकार राजदूतोंकी रक्षाका जिम्मा अपने ऊपर ले ले, तो यह सब सेनाएँ हटाई भी जा सकती हैं। विदेशियोंके सौभाग्यसे न चीनकी केन्द्रिय सरकार कभी शक्तिशाली हुई और न इन फौजोंको चीनसे विदाई लेनी पड़ी।

इस प्रकार जो चीन अठारहवीं सदीमें स्वतन्त्र था और अपने देशमें विदेशियोंको देखना तक नहीं पसन्द करता था, वही चीन उन्नीसवीं सदीमें जर्जरित होकर विदेशियोंके पैरोंमें लोटने लगा। एक ही सदीमें उसका व्यापार दूसरे देशोंके हाथमें चला गया। उसके मुख्य-मुख्य बन्दरगाह, मंडियाँ तथा दूसरे व्यापारके साधन उसके न रहकर विदेशियोंके हो गये। कहनेको चीन अब भी स्वतन्त्र था, किन्तु उसके अंग-प्रत्यंगमें धीरे-धीरे क्षयरोग घर कर रहा था। हाँ, एक बात अवश्य थी। उन्नीसवीं सदीमें विदेशी राष्ट्र सम्मिलित होकर चीनकी लूट-खसूटमें लगे थे। बीसवीं सदीमें इसी लूटने प्रतिस्पर्द्धाका रूप धारण कर लिया। चीनकी भूमिपर विदेशी आपसमें लड़ने लगे, और चीनकी समस्या अकेले चीनकी समस्या न रहकर निकट-पूर्वकी समस्यामें परिवर्तित हो गई।

रूस-जापानका संघर्ष

आज जापान संसारके सर्वोन्नत देशोंमें गिना जाता है ; किन्तु आजसे अस्सी वर्ष पहले यह छोटा-सा एशियाई देश ग़फलतकी नींद सो रहा था। यूरोपियन संसर्गसे जापान उठा। उसने देखा कि यूरोपवासी उसके पड़ोसी चीनके दोहनमें लगे हैं। तरुण जापानसे पीछे न रहा गया। वह भी चीनकी लूटमें शामिल हो गया। सन् १८९५ के युद्धमें उसने चीनके फारमोसा टापूपर कब्ज़ा कर लिया और ठेठ चीनके लाओटुंग प्रायद्वीपकी माँग करने लगा। यह प्रायद्वीप मंचूरियाके दक्षिणी भागमें है। पोर्ट-आर्थर तथा डालनीके सुन्दर बन्दरगाह इसी प्रायद्वीपमें हैं। रूस पहलेसे ही इस प्रायद्वीपपर अपना स्वत्व देखना चाहता था। जर्मनी तथा फ्रांसने उसका साथ दिया। तीन

शक्तियोंको अपने पक्षमें देखकर चीनने जापानको टका-सा जवाब दे दिया, जिससे वह मन मसोसकर रह गया।

इधर रूस बहुत दिनोंसे मंचूरियापर अपना अधिकार चाहता था। उसके साइबेरिया-प्रान्तके व्यापारकी उन्नतिके लिए किसी अच्छे बन्दरगाहकी ज़रूरत थी। ब्लाडी बॉस्टक बन्दरगाह सालमें पाँच मासके लिए कड़ी बर्फ़से ढका रहता था। मास्कोसे इस बन्दरगाह तक आनेवाली रेलवे लाइन बहुत घूमकर आती थी। रूसने उत्तरी मंचूरियामें रेलवे लाइन बिठानेका ठेका चीनसे प्राप्त कर लिया। यह लाइन मांचुलीसे हारबिन होकर सीधी ब्लाड़ी बॉस्टक पहुँचने लगी। इस लाइनमें चीन और रूस दोनोंका साझा था; किन्तु इस चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवेके प्रबन्ध तथा रक्षाका जिम्मेवार रूसका था। इस कारण रेलवे-क्षेत्रमें रूसी पुलिस तथा फौज रहने लगी। मुकदमे भी रूसी अदालतोंमें होने लगे। सन् १८६८ में चीनने हारबिनसे पोर्ट-आर्थर तक रेलवे लाइन बिछानेका ठेका भी रूसको दे दिया। इस ठेकेसे लाओटुंगका प्रायद्वीप रूसके हाथमें आ गया। तीन वर्ष पहले स्वयं रूसने इस भूभागके जापानको दिये जानेमें अड़चन डाली थी। अब रूसको पोर्ट-आर्थरमें पैर पसारते देखकर जापानका तिलमिलाना स्वाभाविक ही था। दक्षिण-मंचूरियामें जापान तथा रूसकी यह प्रतिद्वन्द्विता ही निकट-पूर्वकी समस्याका आधार है।

मंचूरियामें रेलवे लाइनका अधिकार पाकर ही रूसको सन्तोष नहीं हुआ। वह उसपर स्थायी प्रभुत्वका कायम करनेकी चिन्तामें था। बॉक्सर-विद्रोहसे उसे यह अवसर भी मिल गया। विद्रोहियोंसे चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवेकी रक्षाके नामपर रूसने सारे मंचूरियापर अधिकार कर लिया। यद्यपि चीनने केवल दो वर्षके लिए ही उसे यह स्वीकृति दी थी; किन्तु रूस जानता था कि चीन कमज़ोर है। दो वर्ष बाद रूसने अपनी फौजोंको मंचूरियासे हटानेसे इनकार कर दिया।

रूसकी इस इनकारीसे यूरोपके राष्ट्रोंमें खलबली मच गई। अंगरेज़ रूसके पुराने विरोधी थे। एशियाके उत्तरमें रूस और दक्षिणमें ब्रिटेन साम्राज्य-वृद्धिमें लगे हुए थे। एक दूसरेको देखकर दोनों जलते थे। रूसको मंचूरियामें पग बढ़ाते देखकर ब्रिटेन चौंका। चीनके व्यापारमें बड़ा भाग ब्रिटेनका था। रूस उसे चौपट करेगा, ब्रिटेनको यह स्पष्ट नज़र आ रहा था। जर्मनी और फ्रांससे ब्रिटेनको मददकी उम्मीद न थी। ऐसे समयमें चीनके निकट ही रूसका प्रतिस्पर्धी जापान ब्रिटेनका मददगार हो सकता था। दोनों रूससे घबराते थे। सन् १६०२ में जापान और ब्रिटेनकी परस्पर सन्धि हो गई। यूरोपका ब्रिटेन सुदूर-पूर्वमें अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए एशियाके ब्रिटेनसे गठबन्धनके लिए तैयार हुआ। रूसने ब्रिटेन तथा जापानके मिलापको सुना; किन्तु वह अपनी शानमें मस्त रहा। मंचूरियामें वह स्थिर हो चुका था। अब उसने कोरियापर हमला किया। जापानने विरोध किया; किन्तु रूस न माना। आखिर दोनोंको आपसमें मोर्चा लेना पड़ा। सम्भव था कि फ्रांस और जर्मनी रूसकी मदद करते; किन्तु ब्रिटेन तथा अमेरिकाको देखकर दोनों चुप्पी साध गये।

सन् १६०४ का रूस-जापान-युद्ध संसारके इतिहासकी एक मुख्य घटना है। एशियाके एक छोटे-से देशने यूरोपके विशाल देशको नाकों चने चबवाये थे। यूरोपवासी सारी दुनियामें अपनी शक्तिका डंका बजा रहे थे। एशियावाले उनकी नज़रमें आलसी, कमज़ोर तथा नपुंसक थे; किन्तु इस युद्धमें दुनियाने बड़े अचरजसे देखा कि उसी एशियाके एक नन्हें राष्ट्रने यूरोपके इस घमंडको हमेशाके लिए तोड़ दिया है। पोर्ट-आरथरकी सन्धिके अनुसार जापानको दक्षिण-मंचूरिया सौंप दिया गया। उस प्रान्तकी रूसी रेलवे भी जापानको मिली। जापानके कब्ज़ेमें आनेपर उस लाइनका नाम साउथ मंचूरिया लाइन पड़ा। पोर्ट-आरथरका बन्दरगाह रूससे छिन गया। उसे अब

उत्तरी मंचूरियासे ही सन्तोष करना पड़ा। रूस जापानकी तनातनीसे लाभ उठाकर अमेरिकाने कई बार चाहा कि मंचूरियाकी रेलवे अन्तर्राष्ट्रीय करार दी जाय; किन्तु इन दोनों देशोंने आपसी समझौतेसे ऐसा न होने दिया।

जापानकी इस विजयसे सारे एशियामें उत्साह और जाग्रतिकी लहर फैल गई। चीनमें भी इसका प्रभाव हुआ। सन् १९११ में चीनमें भारी राज्यक्रान्ति हुई। माँचू सम्राटको गद्दीसे उतारकर पेनशन दे दी गई। देशमें प्रजातन्त्रकी घोषणा हुई। अब तक विदेशी शक्तियाँ माँचू सम्राट्को ही सब कुछ मानती थीं। प्रजातन्त्र कायम हुआ; किन्तु सारे देशमें व्यवस्थित शासन न चल सका। भिन्न-भिन्न सेनापति अपने-अपने प्रान्तोंमें सर्वेसर्वा बनने लगे। फिर यूरोपियन राष्ट्रोंकी बन आई। वे अपने स्वार्थके अनुसार भिन्न-भिन्न सेनापतियोंकी मदद करने लगे। ऐसे समयमें ही सन् १९१४ में यूरोपमें महायुद्ध शुरू हो गया। ब्रिटेन-जापान-सन्धिके अनुसार जापानने जर्मनीसे युद्धकी घोषणा कर दी। चीनके शान्टुंग-प्रान्तमें जर्मनीका बोलबाला था। जापानने थोड़े ही दिनोंमें शान्टुंग तथा प्रशान्त महासागरके अन्य जर्मन टापुओंपर कब्ज़ा कर लिया। इससे अधिक जापानको युद्धमें भाग लेनेकी आवश्यकता ही न थी। चार वर्ष यूरोपमें युद्ध जारी रहा। इस सारे समयमें जापान अपनी शक्ति बढ़ानेमें लगा रहा। उसके जहाज़ एशिया, अफ्रिका, यूरोप तथा अमेरिकामें व्यापार बढ़ानेमें लगे हुए थे, जब कि उसके साथी युद्धकी चिन्तामें मरे जाते थे। युद्धके बाद इंग्लैण्ड और अमेरिकाने देखा कि प्रशान्त महासागरका सारा व्यापार जापानके हाथमें है, और वह भारतीय महासागरके व्यापारमें भी दख़ल जमा रहा है।

युद्धमें जर्मनी हारा। चीनने भी जर्मनीके विरोधमें युद्ध-घोषणा की थी। चीनकी आशा थी कि सन्धिमें उसके साथ न्याय होगा, शान्टुंग आदि प्रान्त उसे मिल जायँगे। चीनमें यूरोपिय राष्ट्रोंने जो अधिकार प्राप्त किये थे, उनमें भी कमी कर दी जायगी और वह फिर अपने पैरोंपर खड़ा हो सकेगा। पेरिसके वरसाईके भवनोंमें चीनी प्रतिनिधिने इसके लिए आन्दोलन भी किया; पर वहाँ चीनकी कौन सुनता था! अमेरिकाने चीनका समर्थन किया; लेकिन जापानके विरोधमें कौन आवाज़ उठाता! शान्टुंगमें अब जर्मनीके स्थानपर जापानका कब्ज़ा था। सन्धि-परिषद्ने जापानका ही अधिकार स्वीकार कर लिया! निदान चीनी प्रतिनिधियोंने वरसाईकी सन्धिपर हस्ताक्षर करनेसे इनकार कर दिया।

युद्धके दिनोंमें ही रूसमें क्रान्ति हो गई थी। ज़ारके स्थानपर बोल्शेविक सरकार स्थापित हो चुकी थी। जापान, अमेरिका तथा अन्य मित्रराष्ट्र बोल्शेविकोंके ख़िलाफ़ थे। इन राष्ट्रोंने रूसके साइबेरिया-प्रान्तमें अपनी सेनाएँ भेज दीं। यह सब राष्ट्र अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे। निश्चय यह हुआ था कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी-अपनी सात हज़ार सेना साइबेरियामें भेजे; किन्तु जापानने सत्तर हज़ार फ़ौज भेज दी। बात यह थी कि जापान एशियामें दूसरोंकी वृद्धि नहीं चाहता था। दक्षिण-मंचूरियापर जापानका कब्ज़ा था। अब उसने उत्तर मंचूरिया तथा बेकाल झील तक आधे साइबेरियापर अपना कब्ज़ा कर लिया। मित्रराष्ट्रोंमें मतभेद था, अतः अन्य सेनाएँ साइबेरियासे चली आईं, केवल जापान वहाँ रह गया। सन् १९२० में एशियाके उत्तरमें जापानका साम्राज्य फैल गया। कोरिया तथा दक्षिण-मंचूरिया पहलेसे ही उसके हाथमें थे। अब शान्टुंग, उत्तर-मंचूरिया तथा पूर्वीय साइबेरियापर भी जापानी झण्डा फहराने लगा। इस प्रकार बहुत दिनों बाद जापानकी मनोकामना सिद्ध हुई।

जापानकी इस प्रगतिसे प्रशान्त महासागरकी दूसरी शक्तियोंको चिन्ता हुई। यूरोपियन युद्धसे पहले निकट-पूर्वमें रूस, जापान, इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी तथा फ्रांसके विस्तृत स्वार्थ थे। युद्धके बाद निकट-पूर्वमें

जर्मनीके स्वार्थ लुप्त हो गये। इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा अमेरिका युद्धसे थके हुए थे। जापान अकेला अपनी मनमानी करनेमें लगा था। उधर मास्कोकी कम्यूनिस्ट सरकार दिनोंदिन प्रबल हो रही थी। मास्कोमें सुदृढ़ होते ही कम्यूनिस्ट सेनाने साइबेरियाकी ओर मुख किया। साइबेरियामें जापानी सेनाकी हार हुई, और वह थोड़े ही महीनोंमें साइबेरिया तथा उत्तर-मंचूरिया छोड़कर भाग खड़ी हुई। सन् १९२१ में जापानके पास केवल ब्लाडी वॉस्टकका बन्दरगाह, आमूर दरियाके निकटका थोड़ा भाग तथा सावलिन द्वीपका उत्तरी भाग रह गये। शेष सारे साइबेरियापर रूसका दखल हो गया। अब रूस ज़ारके समयका रूस न था। कम्युनिस्टोंने साइबेरियामें एक पृथक् प्रजातन्त्रकी कल्पना की, और एक स्वतन्त्र राष्ट्रकी हैसियतसे साइबेरियाको अपने संघमें शामिल कर लिया।

साइबेरियामें हारनेपर भी जापान निकट-पूर्वमें प्रबलशक्ति रखता था। युद्धके दिनोंमें उसने अपना व्यापार ख़ूब बढ़ा लिया था। उसकी आबादी भी लगातार बढ़ रही थी। इस बढ़ती आबादीके लिए भी वह स्थान चाहता था। वरसाईकी सन्धि-परिषद्में जापानी प्रतिनिधियोंने खुले तौरपर अपनी बढ़ती आबादीके लिए कनाडा और आस्ट्रेलियामें बसनेकी माँग की थी। फिर आस्ट्रेलिया, भारत, चीन तथा अन्य देशोंके ब्रिटिश तथा अमेरिकन व्यापारपर भी उसने अधिकार जमाना शुरू किया था। अतः ब्रिटेन तथा जापान स्वभावतः मित्र नहीं रह सकते थे। साथ ही ब्रिटेन-जापान-सन्धिकी मियाद भी समाप्त होनेवाली थी। अमेरिका चीनका समर्थक और जापान चीनका विरोधी था, अतः अमेरिका और जापानमें भी कोई स्नेह न रह गया था। इस कठिन परिस्थितिको सुलझानेके लिए सन् १९२२ में अमेरिकाकी राजधानी वाशिंगटनमें निकट-पूर्वसे सम्बन्ध रखनेवाले राष्ट्रोंकी पंचायत हुई। इसमें इंग्लैण्ड, जापान, फ्रांस तथा अमेरिका शामिल हुए। ये सभी देश कम्यूनिस्ट रूससे खार खाते थे, इसलिए इस पंचायतमें रूसको शामिल नहीं किया गया। चीन वरसाई-सन्धिके दिनोंसे ही नाराज़ था। उसे अपनी माँग पेश करनेके लिए पंचायतमें बुलाया गया। जापानको मालूम था कि यह पंचायत केवल उसके अधिकारोंको कम करनेके लिए बुलाई गई है; किन्तु इसमें वह शामिल होनेसे इनकार भी नहीं कर सकता था। वाशिंगटनमें निकट-पूर्वके सम्बन्धमें जो महत्त्वपूर्ण निश्चय किये गये, वे संक्षेपमें इस प्रकार हैं:—१ चीनको स्वतन्त्र तथा अविभाज्य देश स्वीकार किया जाय। २—चीनके व्यापारकी चुंगी तथा विदेशियोंके अधिकारोंपर पुनर्विचार हो। जापान चीनके शान्टुंग तथा साइबेरियाके अधिकृत भाग खाली कर दे। ४—प्रशान्त महासागरके छोटे-छोटे टापुओंपर, जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें मदद मिलती है, कोई क़िलेबन्दी न की जाय। ५—सब देश जहाज़ी बेड़ेको परिमित रखें। इसके अनुसार अमेरिका तथा ब्रिटेनको जो जहाज़ी बेड़ा रखनेकी अनुमति मिली, जापानको उसके ६० प्रतिशत तथा फ्रांस और इटलीको केवल ३० प्रतिशत जहाज़ रखनेकी सुविधा मिली। ६—यह समझौता दस वर्षके लिए स्थिर रहे। इस बीचमें इस पंचायतमें शामिल होनेवाले राष्ट्र परस्परके विवादोंको समझौते द्वारा ही तय करनेका प्रयत्न करें।

वाशिंगटनके इस समझौतेके अनुसार जापानसे वह सब भूभाग छिन गया, जिसे उसने युद्धके दिनोंमें जीता था। यद्यपि चीनकी स्वतन्त्रता स्वीकृत कर ली गई; किन्तु चुंगी तथा विदेशियोंके अधिकारोंपर विचार करनेकी कोई सुविधा नहीं दी गई। इस समझौतेसे मुख्य बात जो स्पष्ट हुई, वह यह थी कि संसारके सब बड़े राष्ट्र निकट-पूर्व तथा प्रशान्तसागरमें उठनेवाली आँधीको दूर करनेके लिए यत्नशील हुए। सन् १९२२में ही जापानकी चौमुखी उन्नतिको देखकर प्रशान्त महासागरके उसके प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रोंको यह अनुभव होने लगा था कि शीघ्र ही भविष्यमें निकट-पूर्वमें कोई तूफ़ान उठनेवाला है। यह तूफ़ान कैसे रुके? वाशिंगटनकी पंचायतका

यही उद्देश्य था ? जापानके जहाज़ी बेड़ेको अमेरिका और ब्रिटेनसे अपेक्षाकृत छोटा रखकर महाशक्तियोंने समझ लिया था कि शायद निकट-पूर्वकी यह आँधी अब न आवे। वाशिंगटनसे पहले तक जापान-ब्रिटेनकी सन्धि क़ायम थी। युद्धके बाद दोनोंमें प्रतिस्पर्द्धा हो रही थी, अतः वाशिंगटनकी सन्धिमें जापान-ब्रिटेनकी सन्धिका अन्त कर दिया गया। ब्रिटेनने जापानके बदले अमेरिकाको अधिक उपयुक्त मित्र समझा। कहनेको वाशिंगटन-सन्धिमें जापान भी शामिल था, किन्तु यथार्थमें वह इसके लिए उत्सुक न था। कहनेको सब मित्र एकत्र हुए थे, पर परखनेवाले देख रहे थे कि जापानके विरोधी उसके खिलाफ़ षड्यन्त्र करनेके लिए एकत्र हुए हैं। पंचायतमें शामिल होनेवाले स्वयं जापानी प्रतिनिधि भी समझ रहे थे कि हम क्यों बुलाये गये हैं। आख़िर महीनोंके परामर्शके बाद दुनियाको बताया गया कि घबरानेकी कोई बात नहीं, निकट-पूर्वमें शान्ति है, और सब राष्ट्र इस शान्तिको क़ायम रखनेकी कोशिश कर रहे हैं। अच्छा तो यही था कि वाशिंगटनकी पंचायतके निर्णय स्थिर रहते, ताकि निकट-पूर्वमें स्थायी शान्तिके चिह्न दृष्टिगोचर होते ; लेकिन पंचायतके कुछ ही दिन बाद उसके सदस्य राष्ट्र ही अपनी आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए उसके निर्णयोंकी अवहेलना करने लगे। आख़िरकार वाशिंगटनकी पंचायतके बादसे निकट-पूर्वकी परिस्थिति इतनी विकट हो गई है कि इसको सुलझानेवाले राष्ट्रोंमें किसी दिन परस्पर भिड़ जानेकी सम्भावना दिखाई देने लगी है।

ज्वालामुखी

वाशिंगटनके समझौतेके बादसे निकट-पूर्वकी समस्या अधिक विस्तृत तथा भयंकर रूप धारण करने लगी है। उन्नीसवीं सदीमें इस समस्याका श्रीगणेश हुआ था। उन दिनों विदेशी लोग चीनमें अधिकसे अधिक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करनेमें लगे रहे। बीसवीं सदीके शुरूमें यही व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा मंचूरियामें रूस-जापानके संघर्षके रूपमें प्रकट हुई। आज इस समस्याका क्षेत्र समूचे चीन तथा प्रशान्त महासागरमें व्याप्त हो गया है। चीनमें आजकल रूस, जापान, ब्रिटेन तथा अमेरिकाके स्वार्थ मुख्य हैं। चीनके दक्षिण-भागमें यद्यपि फ्रांस भी व्यापारिक योजनामें थोड़ा-बहुत लगा हुआ है ; पर व्यापक दृष्टिसे उसके ये स्वार्थ सीमित-से हैं। रूस और जापान व्यापारके साथ-साथ चीनके भूभागको हथियानेमें भी प्रतियोगिता रखते हैं ; किन्तु ब्रिटेन तथा अमेरिकाके लिए चीनका व्यापार ही मुख्य वस्तु है। सत्य तो यह है कि यूरोपियन युद्धसे पहले ब्रिटेन तथा अमेरिका ही चीन और प्रशान्त महासागरसे सम्बद्ध देशोंके व्यापारका एकाधिकार रखते थे। युद्धके दिनोंमें जापानने धीरे-धीरे इस व्यापारपर कब्ज़ा शुरू किया, और अब तो वह इस व्यापारका मालिक-सा बन बैठा है। इस व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धाके कारण अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ही जापानके प्रतिद्वन्द्वी रूससे मित्रता गाँठनेमें जी-जानसे लगे हैं। सन् १९०२ में अमेरिका और ब्रिटेनने रूसके खिलाफ़ जापानकी पीठ ठोंकी थी, आज वे दोनों अपने स्वार्थके लिए रूससे दोस्ताना करने चले हैं ! निकट-पूर्वमें यदि शीघ्र ही युद्ध छिड़ा, तो जापानको रूस, अमेरिका और ब्रिटेनकी सम्मिलित शक्तिसे लोहा लेना पड़ेगा, ऐसा साफ़ दिखाई दे रहा है। वाशिंगटनके समझौतेके बाद निकट-पूर्वकी यह समस्या इस जटिल रूपमें कैसे आ गई, इसीका थोड़ेमें विवेचन करना हमारा अभीष्ट है।

रूसी राजक्रान्तिके दिनोंमें जापानने समूचे मंचूरिया तथा पूर्वी साइबेरियापर दख़ल कर लिया था, यह बात रूसको भूली न थी। जापान आज भी इस भूभागपर अपना कब्ज़ा चाहता है, यह भी रूस ख़ूब समझता है। बात यह है कि जापानका कला-कौशल दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। उसे अपने कल-कारखानोंके लिए हमेशा कच्चे मालकी ज़रूरत रहती है। जापानके पास ऐसा कोई प्रदेश

नहीं, जहाँसे उसे यह सब माल बिना विघ्न-बाधाके मिल सके। दूसरे, उसकी आबादी भी निरन्तर बढ़ रही है। जापानका क्षेत्रफल ब्रिटेनसे कुछ अधिक नहीं है; पर इस थोड़ेसे भूभागमें जहाँ ब्रिटेनमें चार करोड़की आबादी है, वहाँ जापानमें सात करोड़ आदमी बसते हैं! ब्रिटेन अपनी इस बढ़ती जनसंख्याको कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड आदि देशोंमें भेज सकता है। वह अपने खानेके लिए सब सामान इन्हीं देशोंसे प्राप्त कर लेता है, और साथ ही उसके कल-कारखानोंके लिए कच्चा माल भी यही देश मुहैया करते हैं। जापानकी आबादी ब्रिटेनसे ड्योढ़ी है; पर जापानको ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं है। ब्रिटेनके मातहत कनाडा और आस्ट्रेलियाकी जनसंख्या बहुत थोड़ी है। इन देशोंमें बहुत भूभाग खाली पड़े हैं; पर ये देश अपने यहाँ जापानियोंको बसने नहीं देते। वरसाईकी सन्धि-परिषद्में जापानियोंने इसके लिए आन्दोलन भी किया था; लेकिन वे इसमें सफल न हो सके। अब उत्तरोत्तर बढ़ते जापानी कहाँ जायँ और अपने लिए भोज्य-सामग्री तथा कच्चा माल कहाँसे प्राप्त करें, यह पहेली है, जो निकट-पूर्वकी समस्याको प्रतिदिन विकट बना रही है। विवश होकर जापान मंचूरिया तथा साइबेरियाकी ओर अपना पग बढ़ाता है। आस्ट्रेलियाकी भाँति साइबेरिया भी विस्तृत तथा कम आबादीका देश है। साथ ही ख़निज तथा दूसरी आवश्यकताओंकी पूर्ति वहाँ सहजमें हो सकती है। जापानके एकदम निकट होना भी साइबेरियाको हड़पनेका एक बड़ा कारण है।

जापानकी इस महत्त्वाकांक्षाको रूस भलीभाँति जानता है। उधर रूसको अपने विस्तारकी धुन है। साइबेरिया दिनों-दिन तरक्की कर रहा है। दक्षिण-मंचूरियामें जापानके आ आनेसे रूसको साइबेरियाके व्यापारके लिए एक अच्छे तथा साल-भर बर्फ़से खुले बन्दरगाहकी ज़रूरत थी। मंचूरियामें अपनी दाल गलती न देखकर रूसने मंगोलियाका आश्रय लिया। मंचूरियाकी भाँति मंगोलिया यद्यपि बहुत हरा-भरा नहीं है; लेकिन इस रास्तेसे चीनकी राजधानी पेकिन तथा उसका सुन्दर बन्दरगाह टिन्टसिन रूसके अधिक निकट हैं। जापानसे भी कम ख़तरा है। रूसने अपना उद्देश्य टिन्टसिन बन्दरगाहकी प्राप्ति निश्चय किया। सन् १९२१ में रूसकी फौज सैलंगा नदी पार करके मंगोलियाकी राजधानी उरगा नगरपर जा पहुँची। थोड़े ही दिनोंमें मंगोल लोगोंने चीनसे अपनी पृथक्ताकी घोषणा करके अपने यहाँ सोविएट शासन स्थापित कर लिया। मंगोलियाकी इस सोविएट सरकारने चीनसे आज़ाद होकर सोविएट रूससे प्रार्थना की कि चीनसे हमारी रक्षाका प्रबन्ध आप करें। रूसने इस प्रार्थनाको सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार मंगोलियामें अपना प्रभाव क़ायम करके मास्कोकी सरकारने पेकिनको लिखा कि हम चीनको स्वतन्त्र तथा अपना मित्र समझते हैं, इसलिए चीनमें हमें व्यापार-विषयक जो अनुचित सुविधाएँ प्राप्त हैं, उन्हें हम छोड़ देते हैं। पेकिनमें इस समाचारसे बड़ी खुशी मनाई गई। चीनके दक्षिणमें नानकिंग, कैन्टन आदि नगरोंमें रूसके पक्षमें जुलूस निकाले गये। चीनी विद्यार्थियोंने आन्दोलन किया कि ब्रिटेन, जापान आदि अन्य देशोंको भी अपनी सुविधाएँ त्याग देनी चाहिए। कुछ ही कालमें ब्रिटेन तथा जापानके मालका बहिष्कार शुरू हो गया। सन् १९२५-२६ में चीनी व्यापारियों तथा मज़दूरोंने हांगकांगका अंगरेज़ी बन्दरगाह खाली कर दिया, जिससे इस बन्दरगाहको प्रतिदिन ३६ लाख रुपयेका घाटा होने लगा। इस प्रकार चीनकी सहानुभूति प्राप्त करके रूसने चीनसे कहा कि हमने अपने सब अधिकार छोड़ दिये हैं; परन्तु व्यापारके लिए मंचूरियाकी चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवेका हमारे हाथमें रहना ज़रूरी है। इसका प्रबन्ध हम तुम दोनों मिलकर करेंगे। पाँच डायरेक्टर चीनी तथा पाँच डायरेक्टर रूसी होंगे। हाँ, मैनेजर तथा उसका सहायक दोनों रूसी रहेंगे। पेकिनकी

सरकारने रूसकी यह बात मान ली। इस समझौतेसे चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवेपर रूसका पुनः प्रभुत्व हो गया। इन दिनों चांग सोलिनका मंचूरियामें बोलबाला था। रूसने उसे मंचूरियाका स्वतंत्र राजा स्वीकार करके रेलवेके लिए उसकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। अब तक मंचूरिया चीनका एक भाग था। पहले-पहल रूसने उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार की।

मंचूरियासे निश्चिन्त होकर रूसने पेकिनकी ओर ध्यान दिया। सन् १६२५ में वु पी फु और फैंग ह्यू सियांग नामके दो सरदारोंमें पेकिनकी गद्दीके लिए कशमकश चल रही थी। अधिकतर राष्ट्रवादी चीनी पेकिनका भरोसा छोड़कर दक्षिणमें नानकिंगको केन्द्र बनाकर राष्ट्रीय संगठनमें जुटे हुए थे। उनकी रायमें पेकिन विदेशी राष्ट्रोंकी कठपुतली था। पेकिनमें क्या होता है, इसका ख़याल भी उन्होंने छोड़ दिया था। ऐसे समयमें रूसने फैंगको सेनाकी मदद दी। रूसकी सेना मंगोलियाकी राहसे पेकिनके पश्चिम डो लोनूर तथा कालागनमें पहुँचने लगी। रूसकी इस सुसज्जित सेनाकी सहायतासे फैंगने पेकिन तथा टिन्टसिनपर दख़ल कर लिया और पूर्वमें शान्टुंग प्रान्तकी ओर क़दम बढ़ाया। फैंगके विश्वासघातसे रूसकी इच्छा पूर्ण हो गई। अब वह एक तरहसे टिन्टसिनके बन्दरगाहका स्वामी था। रूसकी सेनाओंको चीनकी राजधानीमें बैठा देखकर जापान भला कब चुप रह सकता था। जापानके इशारेसे मंचूरियन सेनापति चांग सोलिनने वु पी फुका साथ दिया, और एक ही वर्षमें फैंग तथा रूसकी फौजको पेकिनसे खदेड़ दिया।

रूसकी इस प्रगतिसे जापानके साम्राज्यवादी चौंक गये। रूसको मंचूरियाके उत्तरमें रोककर वे निश्चिन्त थे। अब रूस मंगोलियाके मार्गसे ठेठ चीनमें प्रवेश कर रहा है, इससे टोकियो एकदम विक्षुब्ध हो उठा। जापानने हमेशाके लिए रूसका मार्ग रोकनेका उपक्रम किया। पिछले पचीस वर्षसे मंचूरिया नाममात्रके लिए चीनकी सम्पत्ति था। वास्तवमें रूस, जापान या उनकी कठपुतली चीनी सरदारोंका वहाँ दौरदौरा था। चीनके कमज़ोर शासनमें मंचूरिया जापानके लिए स्थिर चिन्ताका कारण बना रहेगा, यह सोचकर जापानने इस विषयमें स्पष्ट तथा उग्र नीतिका अवलम्बन किया। सन् १६३२ के प्रारम्भमें दुनियाने बड़े अचरजसे यह संवाद सुना कि मंचूरिया-निवासियोंके इच्छानुसार जापानी सेनाने सारे मंचूरियापर कब्ज़ा कर लिया है। थोड़े दिनों बाद जापानकी संरक्षतामें मंचूरियामें स्वतन्त्र प्रजातन्त्रकी घोषणा हुई। इस स्वतन्त्र देशका नाम मंचूको रखा गया। इस प्रकार जापानने मंचूकोको चीनसे पृथक् करके वहाँसे रूसके स्वार्थोंको लोप करनेका प्रयत्न शुरू किया। मंचूकोकी सरकारने रूसको पत्र लिखा कि चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे हमें सौंप दी जाय, रूसके लिए इस रेलवेका बड़ा महत्व है। यदि रूस साइबेरियामें अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहता है, तो यह आवश्यक है कि वह चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवेपर किसी दूसरेका अधिकार न होने दे। रूसने स्वतन्त्र मंचूकोकी इस माँगको सुना ही नहीं। जापानके इशारेपर नाचनेवाली मंचूको फौजने चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे पर अधिकार कर लिया और उसके रूसी अफसरोंको क़ैद कर लिया।

जापानके इस षड्यन्त्रसे चीनकी आँख खुली। मंचूरिया चीनका एक भाग है। उसकी आबादी भी ६० प्रतिशत चीनी है। चीन कमज़ोर है तो क्या? मंचूरिया उसीका है। जापान उसके देशमें मनमानी नहीं कर सकता। चीनने राष्ट्र-संघमें शिकायत भेजी। लार्ड लिटनकी अध्यक्षतामें एक कमीशन जाँचके लिए मंचूरिया गया। तहकीकातके बाद इस कमीशनने राष्ट्र-संघको रिपोर्ट की कि मंचूरिया चीनका आवश्यक भाग है, और इसमें जापानको मनमानी करनेका कोई अधिकार नहीं है। राष्ट्र-संघमें मामला पेश हुआ, तो जापानी प्रतिनिधिने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि मंचूको

तथा पूर्वके मामलेमें राष्ट्र-संघका कोई भी उपदेश माननेके लिए जापान बाध्य नहीं है। यदि जापानकी नीति राष्ट्र-संघकी रायमें ठीक नहीं है, तो जापान राष्ट्र-संघकी सदस्यता छोड़नेके लिए तैयार है। अन्तमें मंचूकोके प्रश्नपर ही जापानने राष्ट्र-संघकी सदस्यताको भी तिलांजलि दे दी।

अन्तर्राष्ट्रीय जिम्मेदारीसे मुक्त होकर जापानने एक कदम और बढ़ाया। मंचूको और पेकिनके मध्यमें चीनका जेहोल-प्रान्त है। सन् १९२५ में रूसी सेनाने इसी प्रदेशके डो लोनूर तथा कालागन स्थानोंमें डेरा डाला था। रूस फिर इधर न आ सके, इस ख़यालसे जापानने जेहोल-प्रान्तपर अधिकार कर लिया। चीनकी सेना हारकर भाग गई। जापानी सेनाने चीनकी प्रसिद्ध दीवारको पार किया और पेकिनके निकट अपनी स्थिर छावनी क़ायम कर दी। जेहोलसे रूसका प्रभाव नष्ट करके जापानने मंगोलियाकी ओर रुख़ किया। मंगोलिया चीनके उत्तर-पश्चिममें दो हज़ार मील तक फैला हुआ है। इसकी उत्तरी सीमाके निकट ही रूसकी साइबेरियन रेलवे है। सन् १९२१ में मंगोलियाके पश्चिम भागमें रूसकी फौजने हमला किया था और उरगा शहरमें सोविएट सरकार स्थापित की थी। उरगामें सोविएट सरकार अब तक क़ायम है; किन्तु पूर्व-मंगोलियामें उसका शासन नहीं है। जापानने जेहोलके बाद पूर्वी मंगोलियामें पैर पसारा। सन् १९३३ में यह प्रान्त भी चीनसे विद्रोही हो गया, और अब जापानके संरक्षणमें यहाँ भी स्वतन्त्र सरकार क़ायम हो गई है।

इन दो वर्षोंमें ही निकट-पूर्वमें जापान इतना प्रबल हो उठा है। एक तरहसे मंचूको, जेहोल तथा पूर्वी मंगोलियामें उसीका राज्य है। मंचूकोकी सरकार जापानी पूँजीसे अपने देशमें धड़ाधड़ रेलवे बना रही है। यह सब लाइनें फौजी दृष्टिसे तैयार की जा रही हैं। युद्धके दिनोंमें जापान इनसे पूरा लाभ उठा सकेगा। यद्यपि अब दो वर्षसे चाईनीज़ ईस्टर्न रेलवेपर रूसका दख़ल नहीं है, फिर भी वह उसे अपना ही समझता है। इस रेलवेके पूर्व तथा पश्चिम पोग्रानिचनाया और मांचुलीमें रूसी सेनाके वृहत् अड्डे हैं। एकदम नये ढंगके हवाई-जहाज़ोंका केन्द्र भी इन दोनों स्थानों तथा ब्लाडी बॉस्टकमें है। ये हवाई-जहाज़ बम बरसाकर चाईनीज़ ईस्टर्न रेलवेको तबाह कर सकते हैं। जापान कोरियाके सीशिन बन्दरगाहसे एक नई रेलवे लाइन बना रहा है। यह लाइन रूसी फौजी केन्द्र पोग्रानिचनायाके पश्चिममें चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवेसे मिलेगी। इसी तरहकी एक लाइन वह मांचुलीकी ओर भी ले जा रहा है। युद्ध होनेकी हालतमें यह सब लाइनें उसके बड़े कामकी होंगी। सीशिनसे चलकर पोग्रानिचनाया होती हुई जापानी फौज एकदम ब्लाडी बॉस्टकको घेर लेगी और दूसरी फौज़ मांचुली पहुँचकर साइबेरियन रेलवेपर दख़ल जमा लेगी, ताकि रूसी फौजें उधरसे ब्लाडी बॉस्टक तक न पहुँच सकें। इस प्रकार प्रशान्त महासागरके एकमात्र रूसी बन्दरगाहपर जापान अधिकार कर लेगा। जापानियोंकी एक नई रेलवे लाइन मुकडन जंकशनसे जेहोल होती हुई पूर्वी मंगोलियामें पहुँचेगी, ताकि उरगासे आनेवाली रूसी फौजोंको वहाँ रोक सके। आजकल पूर्वी मंगोलियामें दो लाखसे अधिक मंगोल जापानी संरक्षणमें फौजी कवायद सीख रहे हैं। पूर्वी मंगोलियामें ही जापान अपनी हवाई सेनाका एक प्रबल अड्डा भी बना रहा है। इस प्रान्तमें फौजी केन्द्र बनानेका एक बड़ा कारण यह भी है कि युद्ध छिड़नेकी हालतमें ब्रिटेन तथा अमेरिका सम्भवतः रूसका साथ देंगे। उस हालतमें अंगरेज़ी फौजें शंघाईसे चलकर पेकिनके निकट रूसकी फौजका साथ न दे दें, इसलिए भी जेहोल और पूर्वी मंगोलियापर जापानका दख़ल ज़रूरी है। इस प्रकार पूर्वी मंगोलिया, जेहोल तथा मंचूको द्वारा रूसके साइबेरिया-प्रान्तपर दख़ल जमाना ही जापानका अभीष्ट है, और इसीकी पूर्तिके लिए जापान कई वर्षसे जी-जानसे लगा हुआ है।

उधर रूसकी सोविएट सरकार जापानकी इस गति-विधिसे एकदम सतर्क हो उठी है। अभी कुछ दिन हुए रूसके युद्ध-मंत्री मि० बोरो शिलावने कहा था कि जापान सुदूर-पूर्वमें फौज एकत्र कर रहा है, और इसके लिए बाक़ायदा संगठन कर रहा है। रूस जापानके इस फौजी संगठनसे घबरानेवाला नहीं है। वह हर समय जापानकी इन चुनौतीको स्वीकार करनेके लिए तैयार है। मि० बोरो शिलावकी इस स्पष्टोक्तिसे पता चलता है कि रूस भी निकट-पूर्वमें युद्धके लिए वैसी ही तैयारीमें लगा हुआ है, जैसी कि जापान स्वयं कर रहा है। सोविएट रूस केवल फौजी तैयारीसे सन्तुष्ट हो जाय, ऐसा प्रतीत नहीं होता। वह जापानके मुक़ाबलेमें अपने साथी राष्ट्रोंका एक गुट भी बना रहा है। चीनमें जापानी नीतिसे ब्रिटेन और अमेरिका असन्तुष्ट हैं, यह सारी दुनिया जानती है। रूस उनके इस असन्तोषसे भी फायदा उठाना चाहता है। पूँजीवादका कट्टर दुश्मन सोविएट रूस पूँजीपति अमेरिकासे केवल इसलिए समझौता करने चला है, जिससे रूस-जापान-युद्धमें अमेरिकासे वह हर तरहकी मदद पा सके। इसके लिए रूसने कम्यूनिज़्मके प्रचारको अमेरिकामें बन्द कर दिया है, और कुछ शर्तोंपर ज़ारके समयका अमेरिकन ऋण भी अदा करना स्वीकार कर लिया है। अमेरिकासे समझौता करके ही रूस सन्तुष्ट नहीं हुआ। जापानके राष्ट्र-संघसे अलग हो जानेके बादसे वह इस संघ द्वारा भी अपना पक्ष प्रबल करनेकी फिक्रमें है। जो रूस आजसे कुछ वर्ष पहले राष्ट्र-संघको लुटेरों तथा पूँजीपतियोंका संघ कहनेमें आनन्द अनुभव करता था, वही रूस आज जापानसे बदला लेनेके लिए राष्ट्र-संघकी सदस्यता स्वीकार करने जा रहा है! इस विषयमें फ्रांस उसकी विशेष मदद कर रहा है। फ्रांस जर्मनीका सतत विरोध है। जर्मनी और पोलैण्ड यूरोपमें रूसके यूक्रेन-प्रान्तको हड़पना चाहते हैं, अतः रूस और जर्मनीका विरोध भी स्वाभाविक हो गया है। ख़ासकर जबसे जर्मनीमें नाज़ीदलका प्रभुत्व हुआ है, वहाँ कम्यूनिज़्मका सर्वनाश किया जा रहा है। जर्मनी और रूसकी शत्रुताका यह भी एक कारण है। जर्मनी राष्ट्र-संघसे अलग हो गया है, इसलिए रूस राष्ट्र-संघमें शामिल हो जाय, फ्रांसकी ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही है। साथ ही फ्रांसके भी चीन तथा निकट-पूर्वमें स्वार्थ हैं। जापानने उसके अनाम तथा इण्डो-चाइनाके व्यापारपर अधिकार कर लिया है, यह भी फ्रांसको बुरा लगता है। अतः जापानके मुक़ाबलेमें रूसको फ्रांस और अमेरिकासे मदद मिलेगी, यह निश्चित-सा ही है।

रूसके अतिरिक्त निकट-पूर्वमें जापानका एक और प्रबल विरोधी ब्रिटेन है। चीनसे व्यापार प्रारम्भ करने तथा आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त करनेमें यूरोपियन देशोंमें ब्रिटेन सबसे आगे रहा है। अब भी चीनके साथ व्यापारवाले देशोंमें वही सर्वप्रथम है। विशेषज्ञोंका कहना है कि आजसे चार वर्ष पहले चीनके कल-कारखाने रेल, बैंक तथा अन्य व्यवसायोंमें ब्रिटेनका ७५ करोड़ पौंडसे अधिक धन लगा हुआ था। हांगकांगके बन्दरगाहमें जो ब्रिटिश पूँजी लगी हुई है, वह इससे अलग है। उन्हीं दिनों चीनके भिन्न-भिन्न व्यवसायोंमें जापानकी पूँजी ३५ करोड़के लगभग थी, और अमेरिकाकी केवल सात करोड़ की। इधर जापानकी पूँजीमें वृद्धि हुई है, यह ठीक है, फिर भी ब्रिटेनकी पूँजी चीनमें जापानसे अधिक है। चीन ब्रिटिश कपड़ेकी बड़ी मंडी है; पर अब दिनों-दिन सस्ता होनेके कारण जापानी कपड़ा चीनके बाज़ारोंमें घर कर रहा है। इस व्यापारिक प्रतियोगिताके अतिरिक्त ब्रिटेनको जापानसे एक ख़तरा और भी है। प्रशान्त महासागरमें ब्रिटेनके मातहत आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, फिजी, समोआ तथा अन्य छोटे-छोटे सैकड़ों द्वीप हैं। जापानकी इन इलाकोंपर भी नज़र है। इन टापुओंके अलावा भारत भी प्रशान्त महासागरके निकट ही है। जापानी व्यापारने भारतमें भी ब्रिटेनको पछाड़ दिया है। यदि चीन तथा

निकट-पूर्वके ब्रिटिश व्यापारको जापान हथिया भी ले, तो ब्रिटेनको व्यापारके लिए अन्य बाज़ार प्राप्त हो सकते हैं; लेकिन यदि उसके प्रशान्त महासागरस्थित टापुओंपर जापान अधिकार कर ले और फिर वहाँसे भारतपर धावा बोल दे, तो ब्रिटेनका साम्राज्य चकनाचूर होनेमें देर न लगेगी। भारत ही ब्रिटेनके साम्राज्यका यथार्थ केन्द्र है। भारतके अलग होते ही ब्रिटिश साम्राज्यका कहीं पता न चलेगा। यह ख़तरा है, जो ब्रिटेनको जापानका विरोधी बना रहा है। साथ ही यही ख़तरा निकट-पूर्वको चीन और जापान तक ही सीमित न रखकर सारे प्रशान्त महासागरमें व्याप्त कर देता है। इस ख़तरेको संसारके सभी बड़े राष्ट्र गहरी चिन्ताकी नज़रसे देखते हैं। इस ख़तरेसे बचनेके लिए ही प्रशान्त महासागरके सिंगापुर आदि छोटे-छोटे टापुओंमें क़िलेबन्दी की जा रही है। ब्रिटेनके स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशोंमें आस्ट्रेलियाके अतिरिक्त किसीके पास अपनी नौसेना नहीं है। आस्ट्रेलियामें नौसेना इसीलिए रखी गई थी कि प्रशान्त महासागरमें विरोधीके मुक़ाबलेमें वह अंगरेज़ी जहाज़ी बेड़ेकी मदद कर सके। यूरोपियन युद्धके दिनोंमें भारतीय व्यापारको तहस-नहस करनेवाले जर्मन क्रूज़र 'एमडन' को इसी आस्ट्रेलियन नौसेनाके 'सिडनी' जहाज़ने परास्त किया था। युद्धके बादसे इस नौसेनामें अधिक वृद्धि हुई है। इधर भारतमें जो पृथक् नौसेनाकी रचना हुई है, उसका भी मुख्य कारण यही जापानी ख़तरा है। चीनके दक्षिण हांगकांगमें अंगरेज़ी नौसेनाका एक बड़ा हिस्सा हर समय मौजूद रहता है। भारत, आस्ट्रेलिया तथा हांगकांगकी यह सम्मिलित नौसेना शायद जापानका मुक़ाबला न कर सके, इसलिए भारतीय समुद्रके पूर्वी द्वार सिंगापुरमें बहुत बड़ा जहाज़ी अड्डा बनाया जा रहा है। सिंगापुरके इस जहाज़ी क़िलेको बनते कई वर्ष हो चुके हैं। प्रतिवर्ष ब्रिटेन, भारत तथा अन्य स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशोंका करोड़ों रुपया इसमें ख़र्च हो रहा है। सन् १९३०में ब्रिटेनकी मज़दूर-सरकारने साम्राज्यवादका अंग समझकर सिंगापुरके क़िलेको बन्द कर दिया था; किन्तु अब पुन: कार्य शुरू हो गया है। सन् १९३७ तक सिंगापुरमें अस्त्र-शस्त्रों तथा नये जहाज़ोंसे सुसज्जित यह क़िला तैयार हो जायगा। कहते हैं कि इसके तैयार हो जानेपर ब्रिटेन प्रशान्त महासागरमें अपनेको सुरक्षित समझेगा। केवल समुद्री तैयारी करके ब्रिटेन चुप हो जाय, ऐसी बात नहीं है। जापान चीनके रास्ते हांगकांग और बर्मापर हमला न कर दे, इसके लिए भी ब्रिटेन प्रबन्ध कर रहा है। चीन और ब्रिटेनकी परस्पर मैत्रीका इसीमें राज़ है। नानकिंगके राष्ट्रीय सेनापति चांग काई शेकसे जो विरोध भाव आजसे पाँच-सात वर्ष पहले था, वह अब मित्रताके रूपमें प्रकट हो रहा है। यही कारण है कि हांगकांगके उत्तर फूकियान-प्रान्तमें ब्रिटेन कुछ ख़ास अधिकार प्राप्त कर सका है। चीनके कई प्रान्तोंमें उसे व्यापारिक सुविधाएँ दी जा रही हैं। बर्माके उत्तर यूनान-प्रान्तमें भी ब्रिटेन अपना ख़ास प्रभाव बना रहा है। इसी यूनान-प्रान्तमें ही फ्रांसकी रेलवे है। इस रेलवेके द्वारा फौजको मौकेपर पहुँचानेमें बड़ी मदद मिलेगी। तिब्बतमें ब्रिटेनका प्रभाव बहुत पुराना है। जापान यदि चीनके उत्तरके प्रान्तोंमें अपनी शक्ति एकत्र कर रहा है, तो ब्रिटेन उसके मुक़ाबलेके लिए चीनके दक्षिणी प्रान्तोंमें प्रबल संगठन कर रहा है। युद्ध होगा जापानके साथ; किन्तु इस लड़ाईका क्षेत्र चीनकी शस्यशामला भूमि होगी। रूस पश्चिमसे और ब्रिटेन हांगकांग तथा यूनानसे चीनमें अपनी फौजें उतारेंगे। जापानकी फौजें मंचूको, जेहोल तथा पूर्वी मंगोलियासे इन सेनाओंका मुक़ाबला करनेके लिए मार्च करेंगी। चीनकी भूमिपर कुछ विदेशी अपनी स्वार्थलिप्साके लिए लाखोंकी तादादमें नर-संहार करेंगे और चीन बैठा ताका करेगा!

इस युद्धमें ब्रिटिश नौसेना ज़बरदस्त रहेगी, ऐसा बहुत लोगोंका ख़याल है। हांगकांग और सिंगापुरके जहाज़ी बेड़े सीधे जापानपर धावा बोलेंगे, इसके लिए

जापान भी चिन्तित है। हांगकांग और सिंगापुर आपसमें न मिल सकें और भारतपर जापानी नौसेना आक्रमण कर सके, इसका भी प्रबन्ध जापान चुपके-चुपके कर कर रहा है। हांगकांग और सिंगापुरके मध्यमें स्यामका स्वतन्त्र देश है। इसका कुछ भूभाग करा थल-संयोजकमें से होकर सिंगापुरके निकट तक पहुँच गया है। कराका यह थलभाग केवल ५० मील चौड़ा है। इसके एक ओर भारत महासागर और पूर्वमें प्रशान्त महासागर लहरें मार रहा है। स्यामपर जापानका पर्याप्त प्रभाव है। मंचूकोकी स्वतन्त्र सरकारको जापानके अतिरिक्त स्यामने स्वीकृत किया है। पिछले दिनों स्याममें जो सैनिक क्रान्ति हुई थी, उसमें भी जापानका पर्याप्त हाथ था। स्यामने कराका यह थलभाग ५० वर्षके लिए जापानको पट्टेपर दिया है। जापान इसमें नहर बनानेमें लगा हुआ है। इस नहरके बन जानेसे प्रशान्त महासागरसे भारत-सागरमें जानेके लिए एक नया जलमार्ग मिल जायेगा; इस रास्तेमें सिंगापुर कोई बाधा न पहुँचा सकेगा। साथ ही इस नहरमें सुरक्षित जापानी बेड़ा सिंगापुर और हांगकांगके मध्यमें होनेसे इन बेड़ोंको परस्पर मिलने न देगा और भारतीय व्यापारको तहस-नहस करनेमें कामयाब होगा। इस नहर द्वारा जापानकी फौजें सिंगापुर तथा बर्मापर हमला कर सकेंगी। इसमें स्यामकी फौजें भी जापानका साथ देंगी। कराकी नहर द्वारा जापान ब्रिटेनके व्यापारको तथा फौजी योजनाको भग्नकर सकेगा या नहीं, यह तो भविष्य ही बतायेगा; किन्तु इस नहरको बनाकर जापान ब्रिटेनके मर्मस्थल भारतको अवश्य ख़तरेमें डाल देगा, यह निश्चित है।

कहनेका सारांश यह है कि निकट-पूर्वकी समस्या प्रतिदिन विकट हो रही है। जापान, ब्रिटेन तथा रूसकी राजनीतिने इसे चीन तक ही सीमित न रखकर प्रशान्त महासागर तक व्याप्त कर दिया है। और अब तो वह जापानकी नवीन योजनाके अनुसार प्रशान्त महासागरको लाँघकर भारतीय महासागरमें भी प्रवेश पा रही है। भविष्यमें क्या होगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता; किन्तु चीनके उत्तर-प्रान्तोंमें एक ज्वालामुखी तैयार हो गया है, जिसमें केवल एक चिनगारीकी ज़रूरत है। चिनगारी लगते ही यह ज्वालामुखी भभक उठेगा और जापान, चीन, रूस, स्याम तथा भारतको ले बैठेगा। इन देशोंसे उठी हुई लपटें समुद्र पार करके अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा इंग्लैण्डको भी व्याप्त कर लेंगी। यूरोपके शेष देशोंका इस विषयमें क्या रुख़ होगा? यह अभी निश्चित नहीं है, और शायद यही अनिश्चय ही निकट-पूर्वके ख़तरेको टाल रहा है। अभी तो केवल जापान ही कमरबन्द हो रहा है। हाँ, रूस और ब्रिटेन भी उसके लिए तैयार मालूम देते हैं। जब अमेरिका और फ्रांस रूसका और सम्भवतः इटली और जर्मनी जापानका साथ देनेके लिए कमर कसकर खड़े हो जायेंगे, तो निकट-पूर्वमें घमासान होते देर न लगेगी। युद्धका परिणाम क्या होगा, यह कौन कह सकता है; किन्तु निकट-पूर्वमें रणचण्डी अपनी रक्तपिपासा शान्त करनेके लिए बलिदान माँग रही है, यह विचार ही संसारके राजनीतिज्ञोंको सन्नाटेमें ला देता है, और वे अपने मनमें स्वयं ही प्रश्न करने लगते हैं कि देखें, निकट-पूर्वमें क्या होता है।
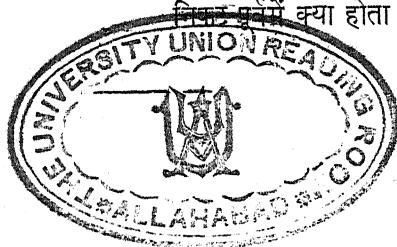
नरमेध

श्री मोहनलाल महतो

संसारके नक्शेपर एक ऐसा देश है......!

हाँ, संसारके नक्शेपर एक ऐसा देश है, जहाँके निवासी सदा यज्ञ, जप, होममें लिप्त रहते थे! गोमेध, अजमेध, इत्यादि प्रथा अब तो उठ गई; पर ईमानमेध, मानवतामेध, जीवनमेध, प्रेममेध, शिशुमेध, नरमेध आदि यज्ञ वहाँ आज भी प्रचलित हैं। ये यज्ञ वहाँके ऊँची पगड़ीवाले प्रायः करते हैं, और उस देशका क़ानून भी उन्हींके अनुकूल है। उस देशका नाम हम नहीं लेंगे, क्योंकि अभी सवेरा है और हमने नाश्ता भी नहीं किया है।—'शान्तम् पापम्'

× × ×

एक समयकी बात है—वर्षाकी सन्ध्या थी। मैं न-जाने किस पापसे कविके रूपमें संसारका भार और उसकी बेकारी बढ़ा रहा हूँ। वास्तविक जगतसे कुछ दूर और कल्पना-जगतसे कुछ नीचे मेरा घर है। मैं न तो पूर्ण रूपसे मनुष्य हूँ, और न हैवान। दोनोंके मेलसे जिस प्रकारके जीवका होना सम्भव है, वैसा ही हूँ। हाँ, तो वर्षाकी सन्ध्या थी, और मेरे मनमें कविताने हुरदंग मचाया। घर काटे खाता था, और यद्यपि मेरी जीवन-सहचरी ज्वर-पीड़ित थी, फिर भी निकल पड़ा, प्रकृतिके मीनाबाज़ारकी ओर। आकाशमें काली-काली घटाएँ उमड़ रही थीं। बादलपर बादल लदे हुए थे। हवा भारी और शीतल थी। पुरवाके झकोरोंसे झूम रहे थे। हरीभरी धरित्रीकी गोदमें ऐसी सुषमा बिखरी हुई थी कि आँखोंमें स्वप्नकी छाया थिरकने लगी। मैं अपने घरसे निकला और एक डाक्टर मित्रकी कोठीपर पहुँचा। मेरे मित्र मुँहमें 'पेप्स' की गोली दबाके कपड़ोंमें 'यू के लिपटस' चुपड़े एक बड़ी-सी कुरसीपर इस प्रकार बैठे थे, मानो बरसातकी सारी सर्दीको अँगूठा दिखलाकर आप यहाँ छिपे हों। मैंने आपकी अरसिकताकी हँसी उड़ाते हुए कहा—"भई, तुम भी पूरे डाक्टर हो! देखो, कितनी सुहावनी सन्ध्या है। चलो कहीं टहल आवें।"

डाक्टर बोले—"सुनो भी! शहरमें ज्वरका ज़ोर है। सर्दी लगी नहीं कि खाटकी शरण लेना अवश्यम्भावी है। तुम्हें भी मैं कहीं जाने देना नहीं चाहता। देखते नहीं, प्रकृतिका रूप कितना अव्यवस्थित हो गया है। बरसाती मच्छरोंसे बचना चाहिए। केवल चार-पाँच मच्छरोंके काट खानेसे ही 'मलेरिया' का विष शरीर-भरमें फैलकर ज्वर उत्पन्न कर देता है। उफ़, आज तीसरा दिन है। ज़रा भी धूप नहीं दिखलाई पड़ती।"

डाक्टर साहब लाख प्रयत्न करके भी मुझे निरुत्साहित न कर सके। मैं बोला—"तुम पागल हो। ऐसी सुहावनी सन्ध्याको घरमें छिपकर बैठना ही बीमारीका कारण है। तुम यहीं बैठकर अपना स्वास्थ्य सुधारो, पर मुझे न रोको। मैं प्रकृतिकी मुस्कानसे अपना मन बहलाऊँगा।"

बस, छड़ी घुमाता हुआ मैं चल पड़ा। अच्छी तरह परदे खींचकर हमारे चिकित्सक-प्रवर कमरेमें ही बैठे रहे। मैं सीधे नदीकी ओर चला।

चार बजनेका समय होगा। बदलीकी गाढ़ धूमिल छायासे नदी-तटका मटमैला जल अधिक धूसर हो गया था। तरंगें तटसे टकराकर कल-कल छल-छल शब्द उत्पन्न कर रही थीं। दो-चार नावें नदीके बीचमें पाल ताने हिल रही थीं। उस पारका वन जलमें डूबा हुआ-सा दिखलाई पड़ता था। नदी-तट निर्जन था। पक्के घाटपर दो-चार मनुष्य, जो मज़दूर-से थे, स्नान करते और हाथ-पैर धोते दिखलाई पड़े। घाटसे सटा हुआ श्मशान-घाट था। दो-तीन चिताएँ धूम्रोद्गीरण कर रही थीं, और एक लाश रखी थी। चार-पाँच ग़रीब चिताकी व्यवस्थामें लगे थे। दो नन्हें-नन्हें बच्चे घबराये-से एक अकालवृद्ध युवकके निकट खड़े थे। सन्ध्या हो रही थी।

भींगी हुई थोड़ीसी लकड़ियोंकी चिता बनाई गई। मैं चुपचाप यह दृश्य देखने लगा। मानव जीवन भी कितना तुनुक है। हवाका एक हल्का झोंका आया नहीं कि यह "मुफलिसका चिराग़" बुझ गया। जीवनके समस्त अरमान, आकांक्षा, प्रेम, चिन्ता, राग-द्वेष एक पलमें साफ़। मेरा माथा भावुकताजन्य नाना प्रकारकी कल्पनाओंसे, भाँति-भाँतिकी चिन्ताओंसे, लबालब भर गया।

दो मनुष्य थके हुए-से—बेमनसे—आगे बढ़े। लाशके

ऊपरका मैला कफ़न हटाया गया, जो एक फटी हुई चादरके अतिरिक्त और कुछ न था। मैंने देखा कि शव एक स्त्रीका था। पीला मुख और धँसी हुई अधमुँदी आँखें। शीर्ण शरीरपर एक ऐसी मैली और रंग-बिरंगे पैबंदोंसे भरी हुई साड़ी थी, जो खूनसे भींगी हुई थी। रक्तके बड़े-बड़े लाल और काले धब्बे बहुत ही भयावने दिखलाई पड़ते थे। मैं एक बार सिरसे पाँव तक काँप उठा—यह क्या ? मैंने समझा, या तो यह ऊँची जगहसे गिरकर मरी है, या इसका खून कर डाला गया है। उस मृत स्त्रीके हाथोंमें केवल लाखकी एक-एक चूरी थी और माँगमें सिन्दूरकी भव्य लकीर। उसके शान्त मुखड़ेपर परिस्थितिके प्रहारोंके चिह्न वर्तमान थे। शव स्नान करानेके लिए उठाया जाने लगा। बच्चे, जो अभी तक चकित नेत्रोंसे यह सब देख रहे थे, 'मा' कहकर अचानक रो उठे। वह अकालवृद्ध युवक भी, जिसकी छातीकी हड्डियाँ निकल आई थीं और गाल पिचक जानेके कारण चेहरा लम्बा और अस्वाभाविक हो गया था, रो उठा।

मेरा ध्यान, जो रक्तके धब्बोंपर जमा हुआ था, अब उचटकर करुणाकी इस आँधीमें उड़ने लगा। मैं मन-ही-मन अपने-आपपर खीझ उठा। मुझे इस बातका खेद हुआ कि मैं इधर क्यों आया। मेरे प्रश्नका —इस मूक प्रश्नका— उत्तर कौन देता ? घटाएँ घुमड़ रही हैं, नदी इठला रही है, पुरवैया वृक्षों और तरंगोंके साथ हुरदंग मचा रही है ; इन्हें मेरे प्रश्नका उत्तर देनेका अवकाश ही नहीं। अब बचे शव-संस्कार करनेवाले, तो उनके सामने पहलेसे ही एक विषम प्रश्न उपस्थित है, और वह यह कि भींगी लकड़ियोंकी चिता कब तक धुधक-धुधककर शेष होगी—चार घंटोंमें या छै घंटोंमें। अब दिन भी तो नहीं है।

मेरे चश्मेपर बादलसे उड़कर जलके दो-चार मृदुल कण पड़े। चश्मा पोंछनेके बहाने मैंने अपनी आँखोंको भी पोंछ लिया ! यह मेरी निर्बलता थी या मानवता, परमात्मा जाने।

हाँ, सन्ध्या हो रही थी। बादल हवामें उड़ रहे थे। नदी अपनी भरी जवानीके मदमें भरी इठला रही थी। घाट निर्जन था। स्मशानकी जली और भींगी हुई ज़मीनपर कोयला तथा अधजली लकड़ियाँ बिखरी हुई थीं।

[२]

जिस घाटपर मैं खड़ा था, उसपर एक छोटीसी धर्मशाला बनी हुई थी। दो-तीन पतले-पतले खम्भोंपर टीनका एक टुकड़ा, जो बारह फीट लम्बा और छै-सात फीट चौड़ा था, रखकर किसीने अपने लिए स्वर्गका द्वार खुलवाया था। इस धर्मशालाकी दीवारोंपर कोयले और ईंटके टुकड़ोंसे संख्यातीत नाम भिन्न-भिन्न लिपियोंमें लिखे हुए थे, तथा स्थान-स्थानपर आग जलानेके कारण फर्शपर काले-काले गोल-गोल धब्बे पड़ गये थे। इधर-उधर राख और कोयला तथा फूटी हुई चिलमें पड़ी थीं। एक बाबाजीने यहाँ धूनी जगा रखी थी।

बड़े ज़ोरसे बादल गरजा और वर्षाका एक प्रबल झोंका आया। नदीके उस पारका दृश्य ओझल हो गया। चितामें आग लगाकर अन्त्येष्टि-सत्कारकर्ता इसी धर्मशालाके एक कोनेमें भागकर छिप गये। मैं भी धर्मशालाकी शरणमें आ गया। बाबाजीने मेरे साफ कपड़ोंको देखकर बैठनेके लिए फटी-सी एक चटाई दी, जिसपर बैठकर किसीने हजामत बनवाई थी और तेलसे भींगे हुए बाल उसमें काफी मात्रामें चिपके हुए थे। उन गरीबोंको पंजाबी भाषामें दो-चार गालियाँ प्रदान करके साधु महाराज धूनीको कुरेदकर चिलम भरनेके लिए आग निकालने लगे।

शव-संस्कारकर्ताओंमें से एक बोला—"भजन, उस बेचारीके भाग्यको देखो। मरनेपर भी दुर्दशाका अन्त नहीं हुआ। पानी बरस रहा है। एक बार धधककर चिता बुझ गई। ऐसा जानते, तो गंगामें ही प्रवाह कर देते।"

भजन बोला—"हम गरीबोंका कहीं ठिकाना नहीं। परमात्मा ही हमसे रूठा है, तो फिर शान्तिका नाम लेना विडम्बना ही समझो। यदि यह लाश गंगाजीमें डाली जाती, तो सम्भवत: वह भी सूख जातीं।"

मुझसे न रहा गया। उस मृत गरीबनीके कपड़े परके रक्तके धब्बे मेरी आँखोंमें घूम रहे थे। मैं चाहता तो था कि चुप रहूँ ; पर मन कुछ बोलनेके लिए छटपटा उठा। मैंने पूछा—"क्यों भई, उसकी मृत्यु कैसे हुई ? क्या कहींसे गिर पड़ी थी ?"

भजन, जो उसका पति था और दमेके कारण परेशान था, बोला—"नहीं सरकार, वह प्रसूतमें मरी है। तीन-तीन

बच्चे मेरे सिरपर छोड़ गई। दमेके मारे मैं खुद ही मौतके पास पहुँच गया हूँ। सरकार, क्या कहूँ, मैं बड़ा अभागा हूँ। दो बच्चे तो ये हैं, तीसरा सात दिनका है।"

उसकी धुँधली आँखोंसे गंगा-यमुना उमड़ पड़ीं।

× × ×

रोगी भजनने अपनी कहानी खाँस-खाँसकर सुनाई। वह जातिका ग्वाला था। गरीबीके कारण झरियाकी किसी 'कोल माइन'में उसने नौकरी कर ली थी। पर्याप्त आय थी, और वह था अकेला। उसकी स्त्री, जो हमारे सामने बुझी हुई चितापर अधजली अवस्थामें लकड़ियोंके नीचे दबी पड़ी थी, उन दिनों नन्हीं-सी भोलीभाली बालिका थी, और अपने मायकेमें रहती थी। उसका पितृकुल भी मज़दूर था।

चढ़ती जवानीमें भजन एक दबंग मज़दूर था। जैसा कि उसकी लम्बी ठटरीसे जान पड़ता था, कोयलेकी खानमें ८-१० घंटे वह राक्षसकी तरह काम करता और सारी रात ताड़ी पीकर ऊधम मचाता। खानके पास ही विशाल ताड़ीखाना था, जो मज़दूरोंके लिए स्वर्गका (नरकका ?) द्वार कहा जा सकता है। दिन-भर कठोर पत्थरोंसे युद्ध करके थके हुए मज़दूरोंके मनोविनोदके लिए उनके स्वास्थ्यकी कमाई खानेवाले मालिकोंने स्वास्थ्यप्रद ताड़ीखाने खोल रखे थे। मज़दूरोंकी कमाईके पैसे किस सफाईसे ठेकेदारके 'गोलक'में समा जाते थे, उसका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं जँचता। न केवल अभागे भजनने ही, बल्कि उसीके समान असंख्य मज़दूरोंने खानके अणु-अणुमें अपने जीवन-रसको सुखा दिया था। भजन उन असंख्य मज़दूरोंमें से एक था, जो किसी कुघड़ीमें चींटियोंकी तरह धराधाममें जन्म लेते और कुत्ते-बिल्लियोंकी तरह सड़कके एक किनारे धूलिमें लोटपोटकर चुपचाप मर जाते हैं। उनके जन्म ग्रहण करने और मर जानेमें कोई विशेष महत्व नहीं है—

"लाई हयात आये, कज़ा ले चली चले।"

हाँ, तो भजनको यह तत्काल मालूम हो गया कि वह संसारमें अकेला नहीं है। उसके जीवनको सुखी या दुखी बनानेके लिए एक स्त्री भी है, जो यहाँसे दूर एक गाँवमें चन्द्रकलाके समान बढ़ रही है। भजनने मन-ही-मन मुस्करा दिया, और अपने उन माता-पिताको मन-ही-मन प्रणाम भी किया, जो मरनेके पूर्व ही अपने कर्तव्यको इस प्रकार पूरा कर गये। यथासमय भजनने एक सुन्दरी और स्वस्थ स्त्रीको लेकर घरमें प्रवेश किया। जिस खोभर-जैसी कोठरीमें उसका डेरा था, उसके द्वारपर उसने टाटका एक फटा परदा लटका दिया। नई गृहस्थी आरम्भ हुई।

एक-दो मास तक भजनने ताड़ी पीना छोड़ दिया। नई जीवन-सहचरीको आदरपूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी सुविधा प्रदान करनेके लिए वह छटपटा उठा। उसकी स्त्रीका नाम था मुँगिया। मुँगिया यद्यपि कच्ची अवस्थाकी नवयुवती थी, पर गृहस्थीके काममें वह प्रौढ़ा थी। उसने प्रथम दिनसे ही अपने कर्तव्यका भार सँभाल लिया। जब मुँगियाको पत्थरका कोयला जलाना न आया, तो भजनने उसे एक ओर हटाकर स्वयं चूल्हेपर हाँड़ी चढ़ाई। दोनोंके सहयोगसे उस दिन जो रसोई बनी थी, उसकी मिठास भजनको कभी भी न भूली। कच्ची दाल और अधजली रोटियोंसे उसकी आत्माको उस दिन ऐसी तृप्ति प्राप्त हुई, जिसकी तुलनामें संसार-भरकी न्यामतें तुच्छ हैं। यही सिलसिला कुछ दिनों तक जारी रहा।

भजन धीरे-धीरे अपनी पूर्वावस्थामें पहुँच गया। वह फिर ताड़ी पीने लगा, और रात-रातभर आसपास ऊधम मचा-मचाकर पड़ोसियोंकी नींद हराम करता रहा। अब मुँगिया एक नन्हें-से नवजात शिशुसे मन बहलाया करती। उसके मनको इतनी फुरसत कहाँ, जो वह अपने पतिकी हरकतोंपर ध्यान दे। नन्हें-से बच्चेने मुँगियाके शरीर और मनको अपनी नन्हीं-नन्हीं कोमल मुट्ठियोंमें इस प्रकार कर लिया था कि भजनके लिए अब वहाँ ज़रा भी स्थान शेष न था। उसे इस बातकी चिन्ता भी न थी। जब उसकी इच्छा होती, तो वह पीटनेके लिए मुँगियाकी खोज करता। मिल जानेपर वह उसे खूब पीटता और जब वह पड़ोसियोंके यहाँ छिप जाती, तो गालियाँ बककर तथा लाठी पटककर ही सन्तोष कर लेता। जब भजनका पारा अधिक गरम होता, तो वह पड़ोसियोंको जी भरकर गालियाँ सुनाता। फल-स्वरूप उसे प्रायः शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता, और फिर मुँगिया उसकी पीठपर या जहाँ-जहाँ चोट होती, वहाँ हल्दी और चूना गरम करके लगाती।

इसी प्रकार दिनपर दिन व्यतीत होने लगे, और मुँगियाकी गोदमें एक दूसरा शिशु आया। ताड़ी पीने और कड़ी

मेहनतके कारण भजनका वह स्वास्थ्य, जो उसका धन था, ओलेकी तरह घुलने लगा। खानके भीतर रहनेसे कोयलेकी धूलने उसके फेफड़ोंको छलनी बनाना आरम्भ कर दिया, और दमेके भयंकर लक्षण स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ने लगे। भजनने अपने स्वास्थ्यकी फिर भी उपेक्षा की। परिणाम यह हुआ कि वह लगातार छुट्टियाँ लेनेको बाध्य होने लगा। मासमें मुश्किलसे दो सप्ताह कामपर जाता। शेष दिन खाटपर पड़ा-पड़ा मुँगियाका कुलोद्धार किया करता।

[३]

भजनका पितामह खेतोंमें हल जोतता-जोतता मर गया, पिता ईखके कारखानेमें लगातार पचीस वर्षों तक घुल-घुलकर मरा और स्वयं भजन बारह वर्षकी अवस्थासे टोकरी उठा रहा है। बीस वर्ष दुःस्वप्नकी तरह बीत गये; पर भजनके न तो कामका अन्त हुआ और न खानका कोयला ही समाप्त हुआ। उसने अपने सिरपर कम-से-कम पचास-साठ हज़ार मनसे भी अधिक कोयला ढोया होगा; पर सुरसाके मुँहकी तरह खानका अन्त होता नज़र नहीं आता। नाना प्रकारके अत्याचारोंसे भजनका शरीर छलनी बन गया। वह चिड़चिड़ा और क्रोधी हो गया। लाचार उसने अपने बड़े साहबको अपनी करुण कहानी सुनाई। बड़े साहब दयालु निकले। उन्होंने भजनके कामको मुँगियाके हाथोंमें सौंपनेका दयापूर्ण प्रस्ताव किया।

यह तो खानके व्यवस्थापक महोदयका अनुग्रह था, जो भजनकी नौकरीको उन्होंने क़ायम रखा और उसकी जगह उसकी स्त्रीको दे दी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि उसके बच्चे योग्य होते, तो वे उन्हें भी रख लेते। भजनने अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक मैनेजर साहबकी बातोंको सुना और आनन्द-गद्गद होकर वहींपर रो दिया। करुणावतार मैनेजर बोले—"भजन, रोता क्यों है? तुमने हमारी खानमें लगातार बीस वर्ष तक काम किया है। मैं तुम्हारी नौकरी नहीं लूँगा। यदि तुम बीमार हो, तो अपनी जगहपर अपनी औरतको रख सकते हो। जब तुम काम करने लायक़ हो जाओ, तब अपनी ड्यूटीपर आ जाना।"

जहाँ भजनने बीस वर्षों तक गुलामी की, या नरक भोगा, वहाँसे उसे इतना लाभ हुआ, यही क्या कुछ कम है। भजन अपने स्वामीका स्तुति-गान करता हुआ घर लौट आया, और उसने आनन्द-उच्छ्वसित कंठसे मुँगियाको पूरी कहानी कुछ नमक-मिर्च मिलाकर सुनाई। उसके कथनका तात्पर्य यह था कि मनेजर साहब उसे बहुत मानते हैं। बीस वर्ष तक कभी भी वह मैनेजर साहबकी सेवामें कष्ट देनेके विचारसे नहीं उपस्थित हुआ। न तो उसने कभी चोरी की और न आलस्य दिखलाया। ग़ैरहाज़िरी भी नाममात्रको की। जमादारके लात-जूतोंको भी वह हँसी-खुशी सहता रहा, इसलिए बड़े और छोटे दोनों जमादार उसपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। सबने मिल-जुलकर साहबको भजनके अनुकूल बना दिया। मुँगियाको भजनकी 'डलिया' मिल जाना साधारण बात थोड़े ही है! साहब भी अत्यन्त सहृदय हैं। मेम साहबका तो क्या कहना है! हाँ, उनके बच्चे कुछ शैतान हैं; पर अधिक नहीं। यों ही मामूली। कभी-कभी कुलियोंके झुंडपर पत्थर फेंक देते हैं, या एकाधपर हवाई बन्दूक़से छर्रे चला देते हैं। सो यह तो मामूली-सी बात है।......

मुँगिया मज़दूरिन बननेकी तैयारी करने लगी और भजन माँ बननेकी। मुँगिया दो बच्चोंकी माँ थी। बड़ा बच्चा छै-सात वर्षका था और दूसरा पाँच वर्षका। दोनों पिताके ही अनुरूप थे। इनका काम था राहचलतोंको गालियाँ सुनाना और अवसर मिल जानेपर मोरीसे गन्दगी निकालकर खुला हुआ आक्रमण कर बैठना। पकड़े जानेपर ख़ूब पीटे भी जाते, और इस प्रकार पितृकुल और मातृकुलके जयनादसे ये मुहल्लेवालोंको व्यस्त कर देते। दिन-भर उपद्रव, दिन-भर रोदन-क्रन्दन!

कोई भी भजनके घरके पास समस्त शरीरमें धूल लपेटे, हाथोंमें ईंट-पत्थर या काठका टुकड़ा लिये, मुँहमें कालिख-चूना पोते, इन दोनों बच्चोंको देख सकता था। टूटी हुई बाल्टीमें मोरीकी गन्दगी भरकर ये सदा इस ताकमें रहते कि कोई अपरिचित पथिक इधरसे आता है या नहीं। शिक्षाके नामपर इन बच्चोंने गालियाँ सीखी थीं। अस्सी सैकड़े गालियाँ इन्हें अपने पिताके श्रीमुखसे सुनकर कंठस्थ करनेका अवसर मिला था।

मुँगिया जब खानमें जानेकी व्यवस्थामें लगी, तो उसे अपने अल्हड़ बच्चोंकी चिन्ता सताने लगी। उसने बड़े प्यारसे

अपने बड़े पुत्र जगनका मुख चूमकर कहा—"बेटा, बाबूजीके साथ रहना। शैतानी न करना। मैं सन्ध्या समय आऊँगी।"

जगनने माँके गालपर एक तमाचा रसीद कर दिया, और गलीमें पहुँचकर कहा—"बाबूजी साला बड़ा पाजी है। उसका बाप भी पाजी था।"

मुँगिया झाड़ू उठाकर जगनको मारने चली, तो उसने ईंट-पत्थरोंकी ऐसी वर्षा की कि बेचारीको घरका द्वार बन्द कर देना पड़ा। उस समय भजन ज्वरमें डूब-उतरा रहा था। भजनने जब यह कहानी सुनी, तो उसे हँसी आ गई। वह मुँगियासे बोला—"तुम बच्चोंको बहुत तंग करती हो। अभी जगना है कै दिनका? खेलने-खाने दो, फिर तो डलिया-फावड़ा बेटाके भाग्यमें लिखे ही हैं।" मुँगिया चुप हो रही। भजन ज्वरको दो-चार गालियाँ सुनाकर पीठ फेरकर सो गया।

दिनपर दिन बीतने लगे। भजनका ज्वर क्रमशः बढ़ता गया। इस बार वह बिना छुट्टीके ग़ैरहाज़िर था। एक दिन जब वह दोपहरको पथ्यके नामपर दो-चार घूँट ताड़ी पी रहा था, तो खानका एक पुराना साथी आया। वह एक अधेड़ गोंड़ था, और था बड़ा बातूनी। उसे देखते ही भजन प्रसन्न होकर बोला—"आओ चाचा, तुम्हारे बिना बड़ी उदासी छाई थी।" भजनके यह नवागन्तुक चाचा भी धत्त पियक्कड़ थे। उन्होंने सतृष्ण नयनोंसे ताड़ीकी मटकीको देखते हुए कहा—"तुम्हें तो बुख़ार लगा है......हाँ, यह ताड़ी, वाह! कैसी महक है? बुखारमें ताड़ी पीते हो? ऐसा न करो। ताड़ी......यह किसकी दुकानकी है? रहीम ससुरा पानी मिलाकर बेंचता है। इसीसे पिछले वर्ष उसका जवान बेटा मोटरसे दबकर मर गया।"

भजन बोला—"चाचा, आओ न, दो घूँट पीकर जाना।"

"नहीं-नहीं", करते हुए भजनके चाचाने मटकी-भर ताड़ी गलेके नीचे उतार ली। बातोंके सिलसिलेमें भजनको पता चला कि यदि वह दो दिन और कामपर न गया, तो उसका नाम काट दिया जायगा और 'क्वार्टर' खाली करनेका हुक्म भी जारी कर दिया जायगा। इस डेढ़ कोठरियोंवाले सुअरके खोभर-जैसे 'क्वार्टर' को भजनने हसरत-भरी निगाहोंसे देखा। अब तो लाचार होकर उसे मुंगियाको भेजना पड़ा। इसके पूर्व मुँगियाने खानमें काम नहीं किया था। वह पहले तो ज़रा झिझकी; पर लाचारी थी। पेटका और पतिके रोगग्रस्त शरीरके साथ दोनों बच्चोंके पालनका प्रश्न मुँगियाके सामने था। अब एकमात्र मुँगिया अपने परिवारकी आशा थी। जब मुँगिया खानको चलने लगी, तो उसका हृदय रो उठा। वह कभी बच्चोंको प्यार करती, कभी भजनके निकट जाती। मानो वह सदाके लिए अपने इस नन्हें-से परिवारको त्याग रही है। उसने बच्चोंको मिठाई खिलाई और आँचलसे उनके मुख पोंछकर भजनके साथ चल पड़ी। अपनी एक-दो पड़ोसिन सखियोंको उसने अपने बच्चोंपर खयाल रखनेके लिए नियुक्त किया, फिर भी उसका मन बच्चोंके चारों ओर मँडरा रहा था।

मुँगिया खानमें पहुँच गई और अपरिचित पुरुष-स्त्रियोंके एक दलके साथ काममें लग गई। भजन लाठी टेकता हुआ घर लौटा। यहाँ आकर वह देखता क्या है कि उसके दोनों बच्चे ताड़ी पीकर बेहोश पड़े हैं। भजनने देखा कि उसकी ताड़ीकी मटकी भी फूटी पड़ी है। सारा घर ताड़ीकी गन्धसे भर गया है। परिस्थितिने यद्यपि भजनको लाचार कर दिया था, फिर भी उसने जूता उठाया और बच्चोंकी ऐसी खबर ली कि देखते-देखते उनका नशा हिरन हो गया। भजनको मटकी फूट जानेका ही क्षोभ था। बच्चे यदि ताड़ी पीना चाहते थे, तो अपने पितासे माँग लेते।

इसी प्रकार भजनके मुँगियाहीन दिवस बीतने लगे। सन्ध्या समय थकी-माँदी मुँगिया आती और भोजन बनानेमें जुट जाती। प्रातःकाल छै बजेसे लेकर बेचारीको रातको दस बजे तक खटना पड़ता। दम मारनेकी फ़ुर्सत भी न मिलती। दमेने भजनको कंकाल बना दिया था। हाथी-जैसा जवान सूखकर ताँत बन गया था! यह तो हुआ, पर यह किसीको ज्ञात न था कि मुँगिया दो मासका गर्भ छिपाकर खानपर गई थी। धीरे-धीरे गर्भके लक्षण प्रकट होने लगे। उसका शरीर पीतवर्ण हो गया, तथा एक विशेष प्रकारकी शिथिलता छा गई, जो स्त्रियोंको ऐसी अवस्थामें हुआ करती है। विश्रामके अवसरपर—जब कि पशु-पक्षी भी विश्राम करते हैं—मुँगियाको कठिन परिश्रम करना पड़ा। धीरे-धीरे सप्ताहके बाद महीना शुरू हुआ और प्रसवके दिन निकट आने लगे।

सातवाँ महीना तो मुँगियाने किसी तरह कष्ट झेलकर

समाप्त किया ; पर आठवाँ महीना उसके लिए काल बनकर ही आया। यदि मुँगिया मर भी जायगी, तो इससे खानवालोंको क्या ? एक नहीं, लाखों मुँगिया 'खान देवी' पर बलि चढ़नेके लिए कतार बाँधे खड़ी हैं। दरिद्र देशके मनुष्योंकी जानका मूल्य ही क्या आँका जा सकता है ?

[४]

बेचारी मुँगिया आठ मासका गर्भ लेकर कामपर जाती। एक दिन कुलियोंके जमादारने उसके उभरे हुए पेटमें छड़ी गड़ाकर कहा—"यह क्या, कोयला चुराकर भागना चाहती है ?" इस अपमानजनक परिहासने मुँगियाको रुला दिया। लज्जाके मारे उसका मुख विवर्ण हो गया, और बीसियों कुली राक्षसोंकी तरह अट्टहास कर उठे। पेटके लिए इतना अपमान भी सहन करना पड़ता है।

मुँगिया रोती हुई घर लौटी और उस दिन उसने भोजन तो बनाया, पर सिर-दर्दका बहाना करके स्वयं भूखी ही सो रही। भजनने दो-चार गालियाँ सुनाकर परोसी हुई थालीको उठाकर दूर फेंक दिया। रोगी भजनका स्वभाव बीमारीके—लम्बी बीमारीके—कारण बच्चोंका-सा हो गया था। वह भी भूखा ही सो रहा। रात-भर वह बड़बड़ाता रहा कि अब तो मैं नदी किनारेका वृक्ष हूँ, जिसका जी चाहे, सता ले।

एक दिनकी घटना है। सावनका महीना था। घटाएँ बरस रही थीं। खानका काम बन्द था ; पर इधर-उधर बहुत कुछ काम चालू था। मुंगिया अब आसन्न-प्रसवा हो रही थी। आठवाँ महीना समाप्त हो गया था। नवें महीनेका प्रथम सप्ताह आरम्भ हो चला था। मुँगियाने एक दिन डरते-डरते बड़े साहबकी सेवामें अपनी करुण कहानी सुनाई, तो साहबने संक्षेपमें उत्तर दिया—'लिखकर दो।' इतना कहकर साहब बहादुर सीटी बजाते हुए कमरेमें पर्दा हटाकर घुस गये। मुँगिया खड़ी-खड़ी पर्देका हिलना देखती रही। लम्बी दाढ़ीवाले अर्दलीने उसे दपटकर भगा दिया।

सन्ध्या समय मुँगिया घर लौटी, तो उसने अपने आपको बीमार पाया। दर्दसे उसका समस्त शरीर मानो कराह रहा था। उसने भजनसे अपना हाल सुनाया। भजनने अपनी घबराहट छिपानेके लिए यह कहकर मनको तथा मुँगियाको फुसला दिया कि कल बड़े साहबसे कहकर वह सब ठीक कर देगा। बड़ी कठिनतासे वह रात बीती। प्रातःकाल मुँगिया खाटसे उठने योग्य भी न रही। भयानक पीरें उठ रही थीं। रह-रहकर हाथ-पाँव ठंडे हो जाते थे। उसे विश्वास हो गया कि उसके शरीरमें एक बूँद भी रक्त बाक़ी नहीं रहा। भजन घबरा उठा। वह भागा हुआ पड़ोसकी एक वृद्धा स्त्रीके पास गया। इधर बेचारी मुँगिया जीवन-मरणके बीच झूल रही थी। उस दिन उसके दोनों बच्चे शैतानी भूलकर माताके सिरहाने चुपचाप बैठे थे। उस अनुभवी वृद्धाने कहा कि मुँगिया असमयमें ही सन्तान प्रसव करनेको बाध्य हुई है। इसमें जीवनका खतरा है। परमात्मा रक्षा करे।

धन-साधन-स्वास्थ्यहीन भजन सिर पीटकर रह गया। वह वृद्धाके पैरोंमें बच्चोंकी तरह रोता हुआ लिपट गया। उस दयालु हृदय देवीने भजनको यथासाध्य सहायता देनेका वचन दिया।

कोई एक सप्ताह तक मुँगिया घोर यन्त्रणा भोगती रही। जब होश आता, तो वह अपने बच्चोंको खोजती, भजनके स्वास्थ्यका समाचार जानना चाहती और फिर दो घूँट जल पीकर कराहती हुई तन्द्रामें डूब जाती। समस्त दिन-रात भजन मुँगियाके सिरहाने पंखा लेकर बैठा रहता और तन्द्रामग्न मुँगियाके पीले तथा पसीनेसे भरे हुए ललाटसे उसके तैलहीन रूखे बालोंको हटाता रहता। दिन यदि छोटे-मोटे पहाड़की तरह कटता, तो रात एकदम हिमालय बन जाती। 'खान' का घंटा, जो पहले प्रत्येक साठ मिनटोंपर बजता था, अब मानो छै-छै घंटेपर बजता।

एक रातको, जब सावनकी घटाएँ झरियाके आकाशको घेरकर बड़ी-बड़ी बूँदें बरसा रही थीं, और हवाके प्रबल झकोरोंसे वृक्षोंकी जड़ें ढीली पड़ गई थीं, मुँगियाने एक नन्हा-सा बच्चा प्रसव किया। भजन भागता हुआ उसी दयालु वृद्धाके घर गया। उस वृद्धाने जच्चा और बच्चेकी सेवाका भार लिया। भजनने देखा कि मुँगिया—मूर्छित मुँगिया—के पैरोंके पास एक नन्हा-सा सद्यःजात शिशु पड़ा है, जो अपनी पतली तथा निर्बल आवाज़में कभी-कभी रो उठता है।

यह सब तो हुआ ; पर मुँगियाका स्वास्थ्य प्रति मुहूर्त गिरता गया। उसके शरीरसे रक्तकी धारा फूट निकली। किसी योग्य 'लेडी डाक्टर' की सहायता आवश्यक थी ; पर

दरिद्र भजनके लिए लेडी डाक्टरकी कल्पना भी असम्भव थी। न औषधि और न समुचित सेवाका प्रबन्ध। मुँगिया क्रमशः उषाकालीन तारा बन गई। उसके शरीरमें धीरे-धीरे ऐंठन शुरू हो गई। भजन इधर-उधर दौड़ने लगा। खानके अधिकारियोंकी सेवामें गया, तो वहाँसे टका-सा उत्तर मिला—"खान प्रसव-गृह नहीं है।" सहायताके लिए भजनने विनय की, तो उत्तर मिला—"बड़े मैनेजर दौरेपर हैं, वे जब लौटकर आवेंगे, तो इसपर विचार किया जायगा।" भजनने सहमते हुए पूछा—"हुजूर कब तक लौटेंगे?" तो उसे बतलाया गया—"वे तेरे बापके गुलाम नहीं हैं। कल भी आ सकते हैं, नहीं तो छै महीनेके बाद भी आना सम्भव है।"

अब उपाय? सर्वत्र अन्धकार! इधर मुँगिया धीरे-धीरे इस अनित्य संसारको पार करती हुई आगे बढ़ रही थी। मुँगिया अन्धकारसे प्रकाशकी ओर जितनी बढ़ती, भजन उतना ही प्रकाशकी ओरसे अन्धकारकी ओर आता। दोनों बच्चे नंगे-भूखे माताके निकट बैठे रहते। भजन न तो पागल ही था और न स्वस्थ मस्तिष्कका। उसकी दशा वर्णनातीत थी।

एक रातको मुँगिया हठात् जाग उठी। उसने भजनको अत्यन्त धीमे स्वरमें अपने निकट बुलाया। रोता हुआ भजन मुँगियापर झुक गया। अपनी निर्बल शीतल भुजाओंको मुँगियाने भजनके गलेमें डाल दिया। उसका कंठ रुँध गया। और धँसी हुई धुँधली आँखोंसे गरमागरम मोती झर पड़े। यमराज भैंसेपर सवार होकर मुँगियाके लिए यमालयसे चल पड़े!

× × ×

मुँगियाके अभावसे खानको कोई धक्का पहुँचता नहीं देखा गया। एक मुँगियाके स्थानपर हज़ारों मुँगिया अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेके लिए आज भी खानका विशाल द्वार खटखटा रही हैं!

'कस्मै देवाय?' पर एक दृष्टि

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

'विशाल भारत' के अप्रैल सन् १९३४ के अंकमें सम्पादक महोदयका एक लेख 'कस्मै देवाय?' शीर्षकसे प्रकाशित हुआ है। इस 'कस्मै देवाय?' वाले लेखको लेकर हिन्दी-जगतमें ख़ासी चर्चा उठ खड़ी हुई है।

उपर्युक्त लेखकी शैली निस्सन्देह रोचक है। उसमें आकर्षणके साथ-ही-साथ ओज भी प्रभूतमात्रामें है। लेखकने पूरी सद्भावनासे प्रेरित होकर यह लेख लिखा है, इस बातसे भी इनकार नहीं किया जा सकता। परन्तु यह सब होते हुए भी मुझे इस लेखमें व्यक्त किये गये विचार बहुत खटके हैं। मेरी दृष्टिमें यह लेख बिलकुल एकांगी है, और जिस दिन हिन्दीके सम्पूर्ण साहित्य-सेवी अपना वही आदर्श बना लेंगे, जो आदर्श लेखकने इस लेखमें उनके सम्मुख रखा है, उस दिन, मेरी रायमें, हमारे साहित्यके नन्हें-से पौदेकी वृद्धि रुक जायगी। यदि लेखकने मईके 'विशाल भारत' में भी हिन्दी-जनताका ध्यान अपने 'कस्मै देवाय?' वाले लेखकी तरफ़ न खींचा होता और यदि उसने उक्त लेखकी एक हज़ार अतिरिक्त कापियाँ प्रचारार्थ बाँटनेके लिए न छपवाई होतीं, तो सम्भवतः मुझे उस लेखकी यह आलोचना लिखनेका साहस न होता। परन्तु अब, परिस्थितियोंको देखते हुए, मैं अपना कर्तव्य समझकर 'कस्मै देवाय'की आलोचना करनेको उद्यत हुआ हूँ।

लेखकने लिखा है—"अब समय आ गया है, जब इस बातका फैसला हो जाना चाहिए कि आख़िर हम किसके लिए साहित्य उत्पन्न करना चाहते हैं?"

मुझे लेखकका उपर्युक्त प्रश्न पढ़कर सचमुच आश्चर्य हुआ। क्या साहित्य भी काग़ज़, पेन्सिल, बिस्कुट, मोज़े और मेशीनकी तरह कोई पदार्थ (Commodity) है, जिसके बारेमें हमें अवश्य ही फैसला कर लेना चाहिए कि वह किसके लिए 'उत्पन्न किया जा' रहा है? यदि गुस्ताख़ी माफ़ हो, तो मैं

कहूँगा कि लेखकके इस सवालमें से धार्मिक मुल्लाओंकी-सी मनोवृत्ति झलकती है, जो अपने विचारोंके (इसमें भी सन्देह है कि वे विचार उनके अपने ही होते हैं) अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण विचारोंको 'कुफ़्र' मानते हैं।

किसी ऊँचे दर्जेके कविसे, किसी प्रथम श्रेणीके साहित्यिकसे, आप यह कहिये कि वह 'इस बातका फैसला कर ले कि वह अपना साहित्य किसके लिए उत्पन्न करना चाहता है,' तो आपके इस प्रश्नके जवाबमें उस कवि या उस साहित्यिकके मुँहपर जो हलकी-सी मुसकराहट दिखाई देगी, वही मुसकराहट लेखकके उपर्युक्त सवालका वास्तविक जवाब होगी।

अपने इस लेखमें लेखकने पहले तो इस बातका जवाब दिया है कि हमें किनके लिए साहित्य तैयार करना चाहिए। इसके बाद उन्होंने कतिपय साहित्य-सेवियोंके उदाहरण देकर वर्तमान साहित्यिकोंके लिए 'आदर्श' उपस्थित किये हैं। इस सम्पूर्ण लेखको पढ़कर मेरे दिलपर तो यही असर पड़ा कि सम्भवतः लेखक साहित्यके केवल दो स्वरूप ही स्वीकार करता है; एक तो वह स्वरूप, जिसमें वह वासना और व्यभिचारकी गन्दी गलियोंमें नाक रगड़ता फिरता है, और दूसरा वह, जिसमें वह 'किसानों'का तरफ़दार बनकर 'कहारों'का पथप्रदर्शक बनकर और 'निर्धन कम्पोज़ीटरों'के साथ 'एकात्मता' स्थापित करके संसारके आर्थिक घावोंमें मरहम सिद्ध होता है।

परन्तु मेरी रायमें ये दोनों ही साहित्यके रूप नहीं है। ये तो साहित्यके अच्छे या बुरे उपयोग हैं। साहित्य इन दोनोंसे ऊपर—बहुत ऊपर है। साहित्यका क्षेत्र वायुमंडलके समान खुला है। जिस तरह श्वास लिये बिना मनुष्य ज़िन्दा नहीं रह सकता, उसी तरह अच्छे साहित्यके अभावमें कोई समाज सभ्य नहीं बन सकता। परन्तु जिस तरह वायुका उद्देश्य केवल श्वास-प्रश्वास तक ही सीमित नहीं है, उसी तरह साहित्यकी सार्थकता भी दुखी संसारको सान्त्वना पहुँचाने तक ही पूर्ण नहीं हो जाती। निस्सन्देह एक विशेष तरहका, उच्चकोटिका, साहित्य हमारे भारतीय समाजकी निस्तेज नसोंमें अदम्य नवजीवनका संचार कर सकता है। परन्तु मैं तो कहता हूँ कि साहित्यकी सार्थकता वहीं तक सीमित नहीं है। साहित्यका क्षेत्र और साहित्यका उद्देश्य इन दोनों चीज़ोंको सीमामें बाँधनेका मनुष्य-समाजने जब-जब भी प्रयत्न किया है, तब-तब उसकी यह मेहनत न केवल अकारथ, अपितु मूर्खतापूर्ण भी सिद्ध हुई है। मालूम यह होता है कि परिष्कृत रुचिवाले किसी भी भद्र सज्जनके समान हिन्दी-साहित्यमें पतन और वासनापूर्तिके घृणित कारनामोंके वाहियात और भद्दे ढंगसे लिखी गई पुस्तकोंकी बहुतायत देखकर लेखकका हृदय क्षुब्ध हो उठा है, और उसने इस कूड़ा-करकटको भस्म कर डालनेका पूर्ण निश्चय कर लिया है; परन्तु, मेरी रायमें, अपने इस सराहनीय उत्साहके प्रवाहमें वह 'साहित्य' मात्रसे ही खिज उठा है, और उसने अनजानमें ही साहित्यको सीमामें बाँध डालनेका असम्भव कार्य सम्भव कर दिखानेकी चुनौती दे डाली है।

हमारा मनुष्य-समाज निस्सन्देह दुःखी है। अनेक तात्विकोंकी रायमें संसारमें सुखकी अपेक्षा दुःख अधिक हैं। वे महापुरुष सचमुच धन्य हैं, जो अपने व्यक्तिगत कष्टोंकी परवा न करके मानव-जातिके अनन्त दुःखोंको कम या हलका करनेका प्रयत्न करते हैं। लेखकने देखा कि आज, जब हमारे देशके कष्टोंका प्याला लबालब भरा नज़र आ रहा है और राजनीतिक परिस्थितियोंकी विषमताके कारण 'हमारा देश एक बड़े संकटमें से गुज़र रहा है', इन दशाओंमें भी हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दीके अनेक अहंमन्य साहित्य-सेवी वासनापूर्ण किस्से-कहानियाँ लिखनेमें ही अपने साहित्यिक जीवनकी सार्थकताका अनुभव कर रहे हैं, तब यदि उसके जीमें ऐसे साहित्य-जीवियोंके प्रति क्षोभ और पीड़ितोंके प्रति

समवेदनाके भाव भर आये, तो इसमें आश्चर्यकी बात कुछ भी नहीं है। अपने इन भावोंकी उमंगमें यदि वह यही निर्दिष्ट कर देता कि "साहित्यका उद्देश्य 'बहुजनों' का हित साधन करना है और साहित्य-सेवीका उद्देश्य मानव-जातिके दुखोंको दूर करना है", तो मेरी रायमें लेखककी इस स्थापनाके एकांगी होते हुए भी उसका विरोध या उसकी प्रतिकूल आलोचना करनेकी आवश्यकता बिलकुल नहीं थी।

परन्तु लेखकने ऐसा नहीं किया। उसने मानव-जातिके असंख्य कष्टोंको भी एक सीमामें बाँध डालनेका नितान्त असफल प्रयत्न किया है। उसके इस लेखसे ज्ञात होता है, जैसे मनुष्य-समाजका केवल वही भाग दुःखी है, जो उसकी रायमें पददलित, दरिद्र और असहाय है। अगर और भी अधिक सीधे शब्दोंमें कहना हो, तो यों कहना चाहिए कि लेखकने मानव-जातिके सम्पूर्ण दुःखोंको भौतिक साधनोंकी सीमामें बाँध दिया है। अर्थात् जहाँ धन है और किसी तरहकी रोक नहीं, वहाँ तो सुख है, और जहाँ दरिद्रता है, भौतिक रुकावट है, वहाँ दुःख है। दरिद्रता, ग़रीबी और पराधीनताको छोड़कर मानव-जातिके अन्य भी अनेक दुःख हैं, सम्भवतः लेखकने इस तथ्यको अपनी दृष्टिसे ओझल कर दिया है। मुझे आश्चर्य इस बातका है कि इस 'कस्मै देवाय ?' लेखमें ही उसका कोमल और अनुभूतिपूर्ण हृदय रमला, चेता और धनगोपालके भौतिक कष्टोंको देखकर रो उठा है; परन्तु उसे अपने लेखकी उस अभागिनी रम्भादेवीसे सहानुभूति क्यों नहीं उत्पन्न हुई, जिसका वह वक्त स्वयं उसीके लिए इतना भारी हो उठा है कि वह 'काटे भी नहीं कटता'।

फिर रम्भादेवी तो लेखकके अपने मस्तिष्ककी कल्पना है। उसे जाने दीजिए। हम दुर्बल मनुष्योंको पीड़ा पहुँचानेके लिए मृत्यु, असफलता, निराशा, बुढ़ापा, बीमारी आदि अन्य भी तो सैकड़ों प्रकारके दुःख मौजूद हैं। यदि कोई साहित्यिक किसी असफल प्रेमीके मनोभावोंका वैज्ञानिक और सही-सही चित्रण करता है, तो वह चित्रण 'रमला तथा स्वर्गीय पीताम्बर' की भौतिक कष्ट-गाथाओंके चित्रणसे हीन किस तरह है, यह मेरी समझमें नहीं आता। एक पिताके हृदयको अपने इकलौते पुत्रकी मृत्युकी चोट लग चुकी है, मैं नहीं समझ पाया कि एक कहानी-लेखक उस पिताके शोकदग्ध हृदयका चित्रण क्यों न करे।

एक सुन्दरी, सुशिक्षिता और महत्वाकांक्षी युवतीकी अभिलाषा थी कि वह रानी बन जाय। अकस्मात् एक राजा साहबकी निगाह उसपर पड़ी। राजा साहबने उस युवतीको अपने जालमें फाँस लिया। विवाह भी हो गया और कुछ समयके लिए राजा साहबके हृदयपर एकाधिकार जमा लेनेके साथ-ही-साथ अपार ऐश्वर्य तथा अधिकारोन्मादका भोगकर मानो उस युवतीका जन्म सफल हो उठा; परन्तु राजा साहबका चलित चित्त शीघ्र ही किसी और सुन्दरीपर जा गिरा। थोड़े ही दिनों बाद, अपार ऐश्वर्यके रहते भी, वह युवती संसारकी सबसे अधिक अभागिनी स्त्रियोंकी-सी दशामें जा पहुँची। मेरी समझमें नहीं आता कि एक कहानी-लेखक इस दुःखी 'देव' की आराधना करके अपनी कलाको सफल क्यों न करे।

माधवीका विवाह एक सम्पन्न परिवारमें हुआ था। उसके पतिमें कोई ऐब भी न था। वे एक बड़े महाजन थे। दिन-रात काम-काजमें व्यस्त रहनेवाले। देखनेमें भी वे कुछ बुरे नहीं थे; परन्तु उनका स्वभाव बहुत अधिक गम्भीर और कामकाजी था। उधर माधवी भावुक प्रकृतिकी नारी थी। उसके जीवनकी सबसे बड़ी साध यही थी कि उसके हृदयके कोमल भावोंका कोई आदर करे; कहीं उनका आदान-प्रदान हो। मगर उसके पतिमें और सब शक्तियोंके रहते भी, इस शक्तिका नितान्त अभाव था। घटनाक्रमसे माधवीका हृदय एक चित्रकारकी ओर आकृष्ट हो गया। फिर भी माधवीने अपने हृदयके इस विद्रोहके साथ घनघोर संग्राम किया। इस संग्राममें सभी तरहकी

अनुभूतियाँ उसके हृदयको हुईं। क्या 'कस्मै देवाय'के लेखक इस वीर रमणी माधवीके अभागे हृदयके विभिन्न भावोंका चित्रण करनेसे एक कलाकारको केवल इसी आधारपर रोकना चाहते हैं कि माधवी उनके 'चेता कहार'की तरह किसी कबूतरखानेमें नहीं रहती ?

रामानन्द एक अभागा युवक है; उसने अपने किशोर हृदयकी पूरी उमंगोंके साथ एक युवतीको प्यार किया था; मगर वह युवती उसे मिल नहीं सकी। रामानन्दका दिल टूट गया। उसने अपनी लगी-लगाई ऊँची नौकरी त्याग दी और गेरुआ धारण कर लिया। मगर इसपर भी वह अपने चित्तको वशमें नहीं रख सका। उसने सैकड़ों तरहसे अपने हृदयको अपने ही अधिकारमें बनाये रखनेका प्रयत्न किया; परन्तु सभी विफल! रामानन्दका पतन हुआ। वह शराब पीने लगा। और भी उसने बहुत कुछ किया। आजकल वह जेलखानेमें है। इस रामानन्दके किशोर और युवक हृदयको जो गहरी और अभाग्यपूर्ण अनुभूतियाँ हुईं, उनका सही-सही और मनोवैज्ञानिक चित्रण कोई लेखक क्यों न करे ?

मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे ये उदाहरण भी एकांगी हैं। इस तरहके और अन्य क्षेत्रोंके भी सैकड़ों तरहके उदाहरण मैं यहाँ पेश कर सकता हूँ। परन्तु सम्भवतः यह अनावश्यक है। मेरा ख़याल है कि मैं अपने भावको ठीक तरहसे व्यक्त कर चुका हूँ;

लगे हाथ एक बात 'आदर्शों' के सम्बन्धमें भी। सम्भवतः मेरी आलोचनाका यह भाग सबसे अधिक धृष्टतापूर्ण है; मगर मुझे इतना ही सन्तोष है कि यह आलोचना लिखते हुए मेरा इरादा ज़रा भी दूषित नहीं है।

लेखकने अपनी स्थापना पेश करनेके बाद उसके लिए कुछ आदर्श भी बताये हैं, ये आदर्श हैं—अमर शहीद श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी और वर्तमान हिन्दीके सबसे बड़े पुजारी, देवता-स्वरूप आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। मेरी गुस्ताख़ी माफ़ हो, जब मैं यह कहता हूँ कि मैं इन दोनों महान व्यक्तियोंको साहित्यिक कलाकारोंमें गिनता ही नहीं। अमरशहीद गणेशजीको मैं बीसवीं सदीके इतिहासकी सर्वश्रेष्ठ विभूतियोंमें गिनता हूँ। मेरी रायमें उनकी महान और पुण्य स्मृतिके साथ हमारे देशने अभी तक पूर्ण न्याय नहीं किया। नव भारतके निर्माताओंकी अग्रतम कोटिके महापुरुषोंमें श्रद्धेय विद्यार्थीजीका स्थान है। निस्सन्देह नवयुवकों तथा देशभक्तोंके लिए विद्यार्थीजी एक जाज्वल्यमान आदर्श हैं; परन्तु राष्ट्र-भाषाके साहित्यिकोंके लिए आदर्श होना तो जुदा रहा, प्रथम श्रेणीके साहित्यिक कलाकारोंमें विद्यार्थीजीका स्थान ही नहीं है। इसी तरह आचार्य द्विवेदी वर्तमान हिन्दीके सबसे महान आचार्य अवश्य हैं। उन्हें वर्तमान हिन्दीका पिता कहना भी कुछ अनुचित न होगा। उनका त्यागमय जीवन निस्सन्देह मनुष्यमात्रके लिए आदर्श है; परन्तु, मेरी तुच्छ सम्मतिमें, आचार्य द्विवेदीजी भी साहित्यिक कलाकार तथा 'लिटरेरी जीनियस' नहीं हैं।

और यह भी मुमकिन है कि इन दोनों पुरुषोंके सम्बन्धमें मेरी उपर्युक्त धारणा ग़लत हो; परन्तु उसके ग़लत या सही होनेसे भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। यह तो एक निर्विवाद तथ्य है कि संसारके अधिकांश साहित्यिक कलाकार आचारकी सामान्य और प्रचलित बाधाओंकी पूर्णरूपसे अवज्ञा करते रहे हैं।

केवल एक बात और कहकर मैं इस आलोचनाको समाप्त कर दूँगा। मेरी रायमें लेखकके इस लेखका शीर्षक बहुत आकर्षक होते हुए भी लेखके प्रतिपाद्य विषयके अनुकूल नहीं है। यह शीर्षक वैदिक है। वेदकी बहुत-सी अत्यधिक विशाल, उदार और कलापूर्ण कल्पनाओंमें एक कल्पना 'कस्मै देवाय ?' की भी है। एक श्रद्धावनत भावुक व्यक्ति प्रकृतिके खुले रंगमंचपर खड़ा होकर अपनी निगाह दौड़ाता है। वह देखता है—सामने बर्फ़ीले पहाड़ोंकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ चाँदनीमें चमक रही हैं। एक ओर विशाल नील महासमुद्रकी अनन्त जलराशि बड़ी-बड़ी लहरोंसे फेन

उगल रही है। दाईं ओर एक श्यामल सघन वन शान्त भावसे ऊपरकी ओर ताक रहा है, और बाईं ओर एक हराभरा मैदान, मानो दूर तक बिछा-सा पड़ा है। वह देखता है, आस्मानमें तारे घिर आये हैं। दूर, बहुत दूर, इस ओर, उस ओर, वह जिधर भी देखता है, सभी ओर उसे असंख्य तारे दिखाई देते हैं। वह अपने तुच्छ शरीरकी ओर दृष्टि डालता है, और उसके बाद इस अपार विशाल विश्वको चकित होकर देखता है। इतना खुलापन, इतनी विशालता, इतनी व्यापकता! हाँ, अबके उसने पा लिया। ओह, इन सब वस्तुओंमें किसी एक महान शक्तिकी दैवीय आभा ही तो चमक रही है। वह एक-एक चीज़को लेकर उसे पुनः देखता है और पुकारता है—"हे महाशक्ति! मैं तुम्हारे किस दिव्य रूपकी आराधना करूँ?"

इस अत्यधिक उदार और विशाल वैदिक भावनाका शीर्षक देकर लेखकने साहित्यको एक संकुचित सीमामें बाँधनेका प्रस्ताव किस तरह किया, यह मेरी समझमें नहीं आया। [सम्पादकीयमें 'कस्मै देवाय' देखिये —सं०]

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'कविता-कौमुदी' (बंगला)—लेखक, प्रो० कृपानाथ मिश्र एम० ए०; सम्पादक, श्री रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग। पृ० ६०८; मूल्य ३) रुपया।

'कविता-कौमुदी'का यह सातवाँ भाग है। इसमें बंगलाके डाक और खनासे लेकर वर्तमानकाल तकके लगभग ८० कवियोंकी रचनाओंके नमूने हिन्दी-अनुवाद-सहित उद्धृत किये गये हैं। पुस्तककी जिल्द और टाइटल पेज देखनेसे यह पता लगाना ज़रा मुश्किल हो जाता है कि इस संग्रहका श्रेय किसको मिलना चाहिए—लेखकको या सम्पादकको! भूमिकामें लेखक लिखते हैं—"कवियोंका चुनाव मैंने बड़ी सावधानीसे किया है। प्राचीन कवियोंकी कविताएँ काव्यकी दृष्टिसे कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं। उनकी कविताएँ सिर्फ भाषाके विकासके खयालसे दे दी गई हैं।" यहाँ हम लेखकसे सहमत न हो सके, इसका हमें दुःख है। आश्चर्य है कि उन्होंने द्विज कालिदास, द्विज रसिक, द्विज मधुकंठ, द्विज भीम, पागल कन्हाई आदि जैसे बंगालके प्रायः अज्ञात और साधारणतः अपठित बहुतसे मामूली मध्यमकोटिके कवियोंकी रचनाएँ उद्धृत की हैं; और ईश्वरगुप्त, बिहारीलाल चक्रवर्ती, कृष्णचन्द्र मजूमदार जैसे कितने ही प्रसिद्ध कवियोंको बिलकुल छोड़ ही दिया है। २६२ पृष्ठपर 'आधुनिक कालके प्रारम्भिक कवि' शीर्षक अध्यायमें भारतचन्द्र, रामप्रसाद, मधुसूदनदत्त, हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र और द्विजेन्द्रनाथके साथ ईश्वरगुप्त और बिहारीलालकी रचनाएँ भी देनी चाहिए थीं। क्योंकि ये अपने समयके श्रेष्ठ कवियोंमें से थे।

प्रो० मिश्रने लिखा है कि किसी-किसी प्राचीन कविकी कविता काव्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण न होनेपर भी सिर्फ भाषाका विकास दिखानेके लिए उद्धृत की गई है। हम इसका समर्थन नहीं करेंगे। हमारी रायसे 'कविता-कौमुदी' जैसे संग्रह-ग्रन्थमें प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक कवियोंकी सिर्फ श्रेष्ठ कविताएँ ही उद्धृत की जानी चाहिए थीं। बंगला-साहित्यमें उत्कृष्ट कविताओंका अभाव नहीं है।

पुस्तककी सूचीसे मालूम होता है कि 'कवि-नामावली' और 'कौमुदी-कुंज'के नामसे इसमें दो विभाग किये गये हैं। इस विभाजनकी आवश्यकता कुछ समझमें नहीं आई। 'कविता-कुंज'में द्विज कालिदास, रसिक, मधुकंठ, वंशीवदन, वंशीदास, भीम, वृन्दावनदास, रायशेखर, अलीराज, चाँदकाजी, नसीर मामूद, राजा राममोहन राय, गोपाल उड़िया, पागल कन्हाई और दाशरथि राय आदि प्राचीन कवि तथा बुद्धदेव वसु, अचिन्त्यकुमार सेन-गुप्त, अन्नदाशंकर राय आदि पचीस आधुनिक कवियोंकी रचनाओंसे कुछ-कुछ उद्धृत किया गया है। द्विज कालिदास आदि प्राचीन कवियोंकी रचनाके साथ अति-आधुनिक कवियोंकी कविताएँ भी, जो कि अभी तक कसौटीपर कसी भी नहीं गई हैं, एक ही भागमें छाप दी गई हैं। यह अनुचित है।

इसके सिवा, बंगला-भाषा और साहित्यका परिचय, बंगला-भाषापर बौद्ध और जैन धर्मका प्रभाव, बंगला और मुसलमान, आदि अनेक शीर्षकोंमें सम्पादकने बहुतसे अनावश्यक विषयोंकी आलोचना करके भूमिकाको व्यर्थमें बढ़ा दिया

है। इसके बजाय भूमिकामें यदि केवल बंगला-पद्यका एक संक्षिप्त इतिहास लिख दिया जाता, तो वह कहीं अधिक उपयोगी बन जाती। 'वैष्णव और बंगला' शीर्षकमें लिखा है—"श्रीनिवास आचार्यके 'पदामृत समुद्र'में और कृष्णदास कविराजके 'चैतन्य-चरितामृत'में संस्कृतमें टिप्पणियाँ दी हुई हैं।" वास्तवमें 'पदामृत समुद्र'के संग्रहकर्त्ता श्रीनिवास आचार्य नहीं, बल्कि उनके वंशधर राधामोहन ठाकुर हैं।

भूमिकाका अधिकांश उपकरण डा० दीनेशचन्द्र सेनकी 'बंगभाषा और साहित्य'से लिया गया मालूम होता है; किन्तु कहीं भी उनके नाम या ग्रन्थका उल्लेख नहीं है। यहाँ तक कि डाक, खना, रमाई पंडित, नारायणदेव, विजयगुप्त, केतकदास, क्षेमानन्द आदि अनेक वैष्णव कवियोंकी जो रचनाएँ इसमें उद्धृत की गई हैं, उनमेंसे अधिकांश दिनेश बाबूके 'बंग-साहित्यका परिचय' ग्रन्थसे ली गई हैं; किन्तु इसका भी कहीं उल्लेख नहीं।

सम्पादककी असावधानीसे हो अथवा और किसी कारणसे, इसमें काफी गलतियाँ देखनेमें आती हैं। जैसे—पृष्ठ ७८ में डाककी यह पंक्ति लीजिये १—"मिठ रान्धे सरुआ काटे। से गृहिणीते घर ना टूटे।" इसका हिन्दी अनुवाद किया है—"जो अच्छी तरह भोजन बना सकती है, जो खूब महीन रीतिसे खाद्य वस्तुओंको काट सकती है।" इत्यादि। परन्तु यहाँपर 'सरुआ काटे'का अर्थ "बारीक सूत कात सकती है" होना चाहिए। (२) ११४ पृष्ठपर "राजारे कहिया दिब शतेक खामार।" इसका हिन्दी अनुवाद "राजासे कहकर सौ गुदाम दिला दूँगी" किया गया है, जो गलत है। 'खामार'का मतलब है उस ज़मीनसे, जिसे ज़मींदार अपनी अधीनतामें रखते हैं। (३) ११५ पृष्ठपर "…धन्य अग्रहायण मास। विफल जनम तार जार नाहि चास।" इसका अनुवाद किया गया है—"धन्य अगहन मास है। उसका जन्म ही वृथा है, जिसका प्रेमिक पास न हो।" मगर यहाँ तो मतलब ही दूसरा है। बंगालमें कातिक-अगहनमें धान कटते हैं, इसलिए किसानोंके लिए अगहनका महीना बड़े आनन्दका है। जिसके ज़मीन नहीं और जो खेती-बारी नहीं करता, वह अभागा है, उसका जन्म ही वृथा है। कहाँ 'चास' (खेती) और कहाँ 'प्रेमिका'!

(४) पृष्ठ ११८ में "बड़ह उज्ज्वल देह जिनि पुष्पातसी।" इसका अर्थ किया है—"उनका शरीर तीसीके फूलके समान उज्ज्वल है।" वास्तवमें 'पुष्पातसी' शब्दका अर्थ है—'अतसी पुष्प', न कि 'तीसीका फूल'। (५) ५११ वें पेजमें है—"शुन अहे सुन्दरि, केनसम शिर करि, चक्षु मुँदे भाव कोन् जने!" इसका अनुवाद किया है—"अयि सुन्दरी, सुनो। मस्तक झुकाकर और आँख मूँदकर किसकी चिन्ता कर रही हो।" गौरी शिवको पति रूपमें प्राप्त करनेके लिए निश्चल-शरीर, निमीलित नेत्र और एकाग्र चित्तसे ध्यान कर रही हैं। "सम शिर करि"से मतलब है—स्थिर मस्तकसे, बिना हिले-डुले।

ऐसी अर्थ-सम्बन्धी भूलें और भी बहुतसी हैं, स्थानाभावके कारण उनका उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

आर्थिक भूलोंके सिवा प्राचीन कवियोंका परिचय देते हुए लेखकने कईएक भयंकर भूलें की हैं। जैसे—(१) पृष्ठ १३८ में 'घनश्यामदास' का परिचय देते हुए सम्पादक या लेखक महाशयने 'भक्तिरत्नाकर' और 'नरोत्तम-विलास' आदि प्रसिद्ध वैष्णव-ग्रन्थोंके रचयिता प्रसिद्ध पदकर्त्ता घनश्याम उर्फ नरहरी चक्रवर्ती और महाकवि गोविन्द कविराजके पौत्र घनश्यामदास इन दोनोंको एकमेक कर डाला है। लिखते हैं—"इनका असली नाम नरहरि चक्रवर्ती था। 'घनश्यामदास' इनका उपनाम था। इनका जन्म सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें हुआ था और सत्रहवीं शताब्दीके अन्त तक जीवित रहे। ये सुविख्यात विश्वनाथ चक्रवर्तीके शिष्य थे।" परन्तु घनश्याम (अपरनाम नरहरि चक्रवर्ती) ने 'भक्तिरत्नाकर'के अन्तमें अपना परिचय देते हुए कहा है कि उनके पिता जगन्नाथ सुप्रसिद्ध विश्वनाथ चक्रवर्तीके शिष्य थे। उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा कि वे स्वयं विश्वनाथ चक्रवर्तीके शिष्य थे। आगे चलकर लिखा है—"घनश्याम नामके दो कवि थे। (१) 'भक्तिरत्नाकर' नामक प्रसिद्ध वैष्णव-इतिहास-ग्रन्थके प्रणेता—घनश्यामदास उर्फ नरहरि चक्रवर्ती और (२) कविराज वंशोद्भूत महाकवि गोविन्द कविराजका पौत्र घनश्यामदास कविराज। पद-कल्पतरुमें नरहरिके ३४ पद हैं। गोविन्द कविराजकी मृत्यु १६१३ ई० में हुई थी। इसलिए घनश्यामदासका समय इसके बादका होगा। दोनों घनश्यामदास पदकर्त्ता थे।" यहाँ प्रश्न यह है कि संकलनकर्त्ताने किस 'घनश्यामदास'की रचना 'कविता-कौमुदी'में उद्धृत की है? आपने वास्तविक परिचय तो दिया घनश्याम उर्फ नरहरि चक्रवर्तीका, और साथ ही यह भी कहा कि

महाकवि गोविन्ददासके पौत्रका नाम भी घनश्यामदास था और वे भी पदकर्त्ता थे ; किन्तु पुस्तकमें १३९ से लेकर १५२ पृष्ठ तक उदाहरण-स्वरूप कविताएँ उद्धृत कीं 'सीतार वनवास'के रचयिता दूसरे एक घनश्यामदासकी। इसके सिवा पृष्ठ १५३ से १६४ तक जो पद उद्धृत किये गये हैं, वे घनश्यामदासके बताये गये हैं, किन्तु वास्तवमें उनमें से एक भी पद घनश्यामदास उर्फ नरहरि चक्रवर्तीके नहीं हैं, सब-के-सब सुप्रसिद्ध पदकर्त्ता गोविन्द कविराजके पौत्र घनश्यामदासके हैं।

(२) पृष्ठ १६४-६५ में नित्यानन्दके वर्णनमें इससे भी बढ़कर गड़बड़ गुठाला कर डाला है। नित्यानन्द नामके चार कवियोंको एक साथ मिलाकर ऐसा मठा घोला है कि देखते ही बनता है। आलोचना बहुत बढ़ जायगी, नहीं तो बानगी दी जातीं।

(३) पृष्ठ २४८ में 'गोविन्ददास' शीर्षकमें महाकवि गोविन्द कविराजका परिचय देते हुए लेखक-सम्पादकने और भी भयंकर भूलें की हैं। चैतन्य-परवर्ती-युगके श्रेष्ठ पदकर्ता महाकवि गोविन्द कविराज और 'विद्यासुन्दर'के रचयिता कायस्थ कवि गोविन्ददास इन दोनोंको एक कर डाला है। 'प्रेम-विलास', 'भक्तिरत्नाकर' और 'भक्तमाल' इन ग्रन्थोंको लेखकने गोविन्ददासकी रचना लिखा है, परन्तु इनमें से एक भी गोविन्द कविराजकी रचना नहीं है ; 'प्रेम-विलास'के रचयिता श्रीखंड-निवासी 'वैद्य' कवि नित्यानन्ददास हैं। 'भक्तिरत्नाकर' घनश्यामदास (नरहरि चक्रवर्ती) का ग्रन्थ है। और 'भक्तमाल' नाभाजी-रचित मूल हिन्दी-ग्रन्थका अनुवाद है, जिसके अनुवादक हैं 'कृष्णदास बाबाजी'। मालूम होता है, उक्त तीनों ग्रन्थोंमें महाकवि गोविन्ददासका उल्लेख देखकर ही शायद लेखक-सम्पादकने ऐसी गड़बड़ कर डाली है।

विद्यापति, गोविन्ददास तथा अन्यान्य वैष्णव-पदकर्त्ताओंके हिन्दी गद्यानुवादमें अनेक मार्मिक भूलें की गई हैं। एक-आधकी बानगी भी लीजिये:—

(१) "अनुखन माधव-माधव सुमरइत सुन्दरी भेलि मधाइ। ओ निज भाव सोभावहि बिसरल अपन गुण लुबधाइ ॥ माधव अपरूप तोहारि सुलेह। अपन बिरहे अपन तनु जरजर जीवइते भेलि सन्देह ॥" इसका अनुवाद किया गया है— "निरन्तर कृष्णका स्मरण करते-करते यह सुन्दरी पागल-सी हो गई है। उनके गुणोंपर मुग्ध होकर वह अपने तन-बदन तककी सुधि भूल गई। कृष्णकी भी अद्भुत लीला है। उन्हींके विरहमें सुन्दरी (राधा) ने अपना शरीर जला डाला।" परन्तु इसका शुद्ध अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए—"निरन्तर 'माधव-माधव' स्मरण करते-करते सुन्दरी (राधा) माधव (कृष्ण) हो गई, (राधा कृष्णका ध्यान करते-करते तद्रूप हो गई, अर्थात् कृष्णके भाव उनमें आ गये) और तब अपने (यानी राधाके) गुणोंपर लुब्ध होकर स्वभावतः ही अपने भाव (स्त्री-भाव) को भूल गई। हे माधव, तुम्हारा प्रेम अपूर्व है। अपने विरहसे ही राधाका शरीर जर्जर है ; जीयेंगी या नहीं, सन्देह है।" इसके आगे मूल पाठमें भी गलतियाँ हैं। शुद्ध पाठ इस प्रकार है— "अनुखन राधा-राधा रटतहि, आध-आध कहु बाणि ॥ राधा सजे यब पुन तहिं माधव-माधव सजे यब राधा ॥ दारुण प्रेम, तबहु नहि टूटत बाढ़त विरहक बाधा ॥ दुहु दिशे दारु दहने यइछे दगधइ आकुल कीट पराण ॥ ऐछन वल्लभ हरि सुधामुखि, कवि विद्यापति भाण ॥" इस पाठमें कई गलतियाँ हैं, जैसे—आध-आध बाणिकी जगह "आधा-आधा बाणी", 'पुन तहिं' की जगह "पुने तहि", 'सजे'की जगह "सजे", 'दुहु दिशे दारु दहने' की जगह "दुहुं दिश दाव-दहने" इत्यादि।

इसके अलावा, इन पंक्तियोंका अनुवाद बिलकुल गलत किया गया है। पहली चार पंक्तियोंका अर्थ अच्छी तरह न समझ सकनेके कारण बादकी पंक्तियोंका मनगढ़ंत अर्थकर डाला है। सच पूछिये तो इस अपूर्व पदके सौन्दर्यकी हत्या की गई है। अनुवादकी बानगी लीजिये—"इधर कृष्ण भी आधी-आधी वाणीसे निरन्तर राधा-राधा रटते रहते हैं। इस विरहके बाद जब कभी राधा और माधवका संयोग होता है, तब अपूर्व प्रेम बढ़ जाता और फिर कभी विरह होनेकी आशंका न रहती। दोनों दिशाओंमें दावाग्नि लगी रहनेसे जैसे कीट-रूपी प्राण व्याकुल रहता है। विद्यापति कहते हैं कि अपने वल्लभको न पाकर उसी तरह चन्द्रमुखी भी दुखी है।" वास्तवमें इसका शुद्ध अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए—

"(आत्म-विस्मृता राधा अपनेको कृष्ण समझकर राधाके विरहमें व्याकुल होकर) प्रतिक्षण 'राधा-राधा' पुकारने लगीं, और अस्पष्ट स्वरसे (आध-आध स्वरमें) अपने-आपसे बातें करने लगीं। फिर जब राधा-युक्त हुईं (अर्थात् बीच-बीचमें जब राधा अपनी स्वाभाविक अवस्थामें आईं—

अपनेको राधा समझने लगती थीं) तब माधवके विरहमें और जब माधव-युक्त कृष्ण-भाव-युक्त हुईं, तब राधाके विरहमें व्याकुल होने लगीं। दारुण प्रेम फिर भी नहीं टूटा और विरहकी व्याधि बढ़ती ही चली। एक लकड़ीके दोनों तरफ आग लगनेसे उसके भीतरके कीटके प्राण जैसे—(दुःसहरूपसे) दग्ध होते रहते हैं, कवि विद्यापति कहते हैं कि प्रियतम (श्रीकृष्ण) को देखनेके बादसे चन्द्रबदनी राधाकी भी वैसी ही दशा हो गई।"

पुस्तकमें ऐसे दृष्टान्तोंकी कमी नहीं है। फिर भी लेखक-सम्पादकके उद्योगकी हम तारीफ करेंगे, और आशा करेंगे कि आगामी संस्करणमें ये सब त्रुटियाँ दूर कर दी जायँगी। इस आलोचनामें हमें गलतियाँ दिखानी पड़ी हैं, इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। हिन्दी-भाषियोंको बंगला-कवियोंकी रचनाओंका परिचय देनेके स्तुत्य प्रयत्नके लिए लेखक और सम्पादक दोनों धन्यवादके पात्र हैं। छपाई और बाइडिंग अच्छी हुई है।

—भवानीचरण राय, एम० ए०

—

'इब्न बतूताकी भारत-यात्रा'—अनुवादक, श्रीमदन-गोपाल, बी० ए०; एल-एल० बी०; प्रकाशक, काशी-विद्यापीठ; मूल्य २)।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके तत्कालीन लेखकों और इतिहासकारोंमें शेख अबू अब्दुल्ला मुहम्मद अथवा इब्न बतूताका नाम आदर-सहित स्मरण किया जाता है। चौदहवीं शताब्दीकी भारतीय सामाजिक अवस्था तथा मुसलिम संस्कृतिपर इब्न बतूताने काफ़ी प्रकाश डाला है। इस मूर यात्रीने लगभग तीस वर्ष तक विभिन्न मुसलिम प्रदेशोंमें पर्यटन किया, और मुहम्मद तुग़लक़के शासनकालमें भारतमें भी यह लगभग ९ वर्ष तक रहा। अन्तमें मोरक्कोके सुल्तानकी आज्ञा एवं कृपासे उसके अनुभव अरबीमें लिपिबद्ध किये गये। मूल पुस्तकका अनुवाद कितनी ही भाषाओंमें हो चुका है; पर अभी तक हिन्दी जनता इसके अध्ययनसे वंचित थी। प्रस्तुत पुस्तक इब्न बतूताके भारत-सम्बन्धी विवरणका अनुवाद है, और विशेषतया उर्दू और अंगरेज़ीके अनूदित ग्रन्थोंके आधारपर लिखी गई है। कुछ भी हो, अनुवाद सरल, सुबोध और यथासम्भव सफल हुआ है।

अनुवादक महोदयने पुस्तकको उपयोगी बनानेका काफ़ी प्रयत्न किया है। इब्न बतूताकी यात्राका मार्ग निर्दिष्ट करनेके लिए प्रारम्भमें भारतका मानचित्र दिया है, और अन्तमें सन्दर्भके लिए अनुक्रमणिका भी जोड़ दी गई है। पुस्तककी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उससे इब्न बतूताके जीवनपर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। पर लेखक महोदयके मुहम्मद तुग़लक़ सम्बन्धी विचारोंसे सहमत होना अत्यन्त कठिन है। मुहम्मदके विषयमें आधुनिक इतिहासकारोंकी धारणा बदलती जा रही है। स्मिथ अथवा एलफिन्स्टन महोदयके विचार तो एकदम अग्राह्य सिद्ध किये जा चुके हैं। ब्राउनिंग तथा डाक्टर ईश्वरीप्रसादका मत तो निश्चित ही है। यह सब जानते हुए, इन इतिहासकारोंके मतका खंडन, यदि हो सके, तो आवश्यक था। केवल इब्न बतूतापर ही सोलहो आना विश्वास कर लेना न केवल मुहम्मदके प्रति अन्याय है, वरन् इतिहासके समस्त नियमोंका उल्लंघन करना भी है। इब्न बतूता द्वारा लिखी हुई कितनी ही बातें, जैसा कि उसने स्वयं स्वीकार किया है, केवल जनश्रुतिपर ही अवलम्बित हैं, और अनेक बातें तो एकदम कपोल-कल्पित और निराधार हैं, उदाहरणार्थ इब्न बतूता कुतुबमीनारके विषयमें लिखता है—"भीतरसे सीढ़ियाँ भी इतनी चौड़ी हैं कि हाथी तक ऊपर चढ़ जाता है; एक सत्यवादी पुरुष मुझसे कहता था कि मीनार बनते समय मैंने हाथियोंको ऊपर पत्थर ले जाते हुए देखा था।"[1] इसी प्रकार एक अन्य स्थानपर इब्न बतूताने नासिरुद्दीन सम्राटका बलबन द्वारा मार डालना लिखा है, जो सर्वथा असत्य है।[2] ऐसी परिस्थितिमें इब्न बतूतापर आँख बन्दकर विश्वास कर लेना भारी भूल होगी। हम नहीं समझते कि ऐसी दशामें इब्न बतूताका वृत्तान्त ही किस प्रकार "सबसे अधिक माननीय"[3] करार दिया जा सकता है, और किस प्रकार ऐसे बेसिर-पैरकी बातें लिख डालनेवाले विदेशी यात्रीको, जिसने अपनी यात्राका विवरण कितने ही वर्ष पश्चात् केवल स्मृतिके भरोसे लिखा, ज़ियाउद्दीन बारनी जैसे तत्कालीन और योग्य इतिहासकारपर तर्जीह दी जा सकती है! इसी प्रकार ऐसे सन्देहजनक आधारपर हिन्दू और मुसलमानोंके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें मत स्थिर करना खतरेसे खाली नहीं हो सकता।

---

१ देखिये इब्न बतूताकी भारत-यात्रा, पृष्ठ ५०
२ " " " पृष्ठ ६४
३ " " " पृष्ठ १७ भूमिका भाग।

पर इन सब बातोंसे पुस्तककी उपयोगितामें विशेष कमी नहीं आती। अनुवादके साथ-साथ जो फुटनोट दिये गये हैं, वे सचमुच अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होंगे। इन फुटनोटोंसे लेखक तथा सम्पादक महोदयका विस्तृत अध्ययन और विषय-परिशीलन प्रकट होता है। भारतीय इतिहासके आधार-स्वरूप ऐसे ग्रन्थोंका प्रकाशन और प्रचार अतीव आवश्यक है, और इसके लिए सुयोग्य लेखक और प्रकाशक धन्यवादके पात्र हैं।

—रामनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०

अनन्त-ध्वनि

श्रीमती 'चकोरी'

सुनहली किरणोंके उन्माद,
मुक्त शैशवके हास - विलास,
अरे अस्थिर तृष्णासे मुग्ध
मलयके सुरभि सुखद उच्छ्वास,
कहो, मुझसे कह दो चुपचाप,
कहाँ है जीवनका चिर-सत्य ?

विश्वके वैभव नवल बसन्त,
सजीले सुमनोंके भण्डार,
प्रकृतिके ओ स्वर्णिम सौन्दर्य,
अरे विहगोंके प्रेमोद्गार—
बता दो तुम्हीं, तुम्हीं हे मित्र !
कहाँ है जीवनका चिर-सत्य ?

घोर तमकी छाया अज्ञात
मूँदती प्रकृति - प्रियाका भाल,
विश्वकी पलकोंपर अनजान
बिछ रहे ओ स्वप्नोंके जाल,
कहो, कह दो, ओ मोहक स्वप्न !
कहाँ है जीवनका चिर-सत्य ?

स्वप्न चुप, चुप वसन्त, चुप वायु,
अरे कैसा नीरव व्यापार !
न दे पाये प्रत्युत्तर आह !
कि सहसा पिककी करुण पुकार
कर गई प्राणोंमें संचार,
प्रेम है जीवनका चिर-सत्य।

सिहर मन-प्राण हुए उन्मत्त
उमड़ उरके शत-शत उद्गार,
चले प्रियतमके सुन्दर देश
गीतकी गति बनकर सुकुमार
कि सहसा बोल उठा अज्ञात,
साधना जीवनका चिर-सत्य।

साधनाकी परिभाषा प्रेम—
प्रेमकी परिभाषा बलिदान,
किन्तु वह वस्तु न आई हाथ
न हो जिसमें आदान-प्रदान,
कहो ओ नक्षत्रोंके लोक,
कहाँ है जीवनका चिर-सत्य ?

निशाकी आँखोंके दो अश्रु
तुहिन बन ढुलक पड़े अनजान
खेलनेको मिटनेका खेल
आह ! उनका अद्भुत बलिदान
दे रहा था मुझको सन्देश,
मृत्यु है जीवनका चिर-सत्य।

मूर्खराज

श्री तुर्गनेव

एक बेवकूफ़ था ।

बहुत दिनों तक तो वह शान्ति और सन्तोषसे रहा ; लेकिन बादमें धीरे-धीरे उसके पास यह अफ़वाहें पहुँचने लगीं कि चारों ओर सभी लोग उसे बौड़म और मूर्ख समझते हैं ।

इसपर मूर्खरामको बड़ी शर्म मालूम हुई । वह दुःखी होकर सोचने लगा कि इन अप्रिय अफ़वाहोंका अन्त कैसे किया जाय ।

सहसा उसके कुन्द ज़हनमें एक बात आई……… और बिना रत्ती-भर देर किये हुए, उसनें उसे कार्यमें परिणत कर दिया ।

रास्तेमें उसे एक मित्र मिला, जो लगा एक सुप्रसिद्ध चित्रकारकी बड़ाई करने………

"वल्लाह !"—मूर्खने कहा—"अरे, वह चित्रकार तो कभीका पुराना हो चुका है………तुम्हें इसकी खबर ही नहीं ? मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी । तुम ज़मानेकी रफ्तारसे एकदम पिछड़े हुए हो ।"

मित्र यह सुनकर चौंक पड़ा और फौरन ही मूर्खकी बातसे सहमत हो गया ।

"मैंने कल एक कैसी सुन्दर किताब पढ़ी है !" मूर्खके एक अन्य मित्रने कहा ।

"वाह, भई वाह !"—मूर्ख बोला—"मुझे ताज्जुब है कि तुम्हें यह कहते शर्म नहीं आती ! वह किताब कौड़ी कामकी नहीं । वर्षोंसे हरएक इस बातको जानता है । तुम्हें इसकी खबर ही नहीं ? तुम समयसे बिलकुल पिछड़े हुए हो ।"

यह मित्र भी मूर्खकी बातसे चौंक उठा, और उसके मतसे सहमत हो गया ।

"मेरा मित्र न० न० कैसा आदर्श मनुष्य है !"—मूर्खके एक तीसरे मित्रने कहा—"वह वास्तवमें एक उदार व्यक्ति है !"

"क्या खूब !"—मूर्खने कहा—"न० न० वह मशहूर बदमाश ! उसने अपने तमाम रिश्तेदारोंको ठगा है । इस बातको सभी जानते हैं । तुम भी ज़मानेसे कितने पिछड़े हुए हो !"

यह तीसरा मित्र भी चौंक पड़ा, उसने भी मूर्खसे सहमत होकर अपने मित्रका साथ छोड़ दिया ।

अब मूर्खके सामने जो कोई किसीकी भी तारीफ़ करता, उसीको वह अपना यही बँधा हुआ जवाब दिया करता था ।

कभी-कभी वह इस बँधे जवाबके साथ-साथ तिरस्कारके साथ कहता था—"क्या अब भी तुम अधिकारियों या प्रामाणिक व्यक्तियोंमें विश्वास रखते हो ?"

मूर्खके मित्र उसके लिए कहते—"बड़ा विद्वेषी है, बड़ा विषैला है ; लेकिन कैसा बेढब दिमाग़ है !"

अन्य लोग कहते—"और कैसी बेढब ज़बान है ! निश्चय ही उसमें प्रतिभा है ।"

नतीजा यह हुआ कि एक पत्रके सम्पादकने प्रस्ताव किया कि मूर्खराज उसके पत्रमें आलोचना लिखा करें ।

अब क्या था, अपना ढंग या अपने कटु शब्दोंको रत्ती-भर बदले बिना मूर्खराज लगे हर आदमीकी हर चीज़की आलोचना करने । मूर्ख, जो पहले प्रत्येक अधिकारी व्यक्तिको बुरा बताता, अब स्वयं एक अधिकारी समालोचक बन बैठा, और नवयुवक उसकी भक्ति करने लगे और उससे भयभीत होने लगे ।

और वे बेचारे नवयुवक कर ही क्या सकते थे ? यद्यपि साधारण नियमके अनुसार किसीको किसीकी भक्ति न करनी चाहिए………लेकिन इस मामलेमें यदि कोई उसकी भक्ति या सम्मान न करता, तो वह फौरन ही समयकी गतिसे एकदम पिछड़ जाता !

सच है, कायरोंमें ही मूर्खोंकी हमेशा बन आती है।

अप्रैल, १८७८] अनु० —ब्रजमोहन वर्मा

चिट्ठी-पत्री

'फाउन्टेन पेन' बनाम 'झरना कलम'

'विशाल भारत'के पिछले अंकमें श्री हितेन्द्र नन्दीने 'फाउन्टेन पेन'के लिए हिन्दीमें 'झरना कलम' शब्द इस्तेमाल करनेका मन्तव्य दिया था। इस विषयमें हमारे पास कई पत्र आये हैं। श्री सियारामशरण गुप्त लिखते हैं :—

'विशाल भारत' के नये अंकमें 'फाउन्टेन पेन'के सम्बन्धमें आपका नोट देखा। आपका प्रस्तावित 'झरना कलम' मुझे बहुत नहीं जँचा। मेरी सम्मतिमें फाउन्टेन पेनके लिए 'दवाती कलम' शब्द बहुत उपयुक्त है। अंगरेज़ी जाननेवाले झरना कलमको रूढ़ि बनानेकी ज़िल्लत पसन्द न करेंगे, उनके लिए मूल शब्द ही आसान पड़ेगा। मेरे दवाती कलममें यह कठिनाई नहीं। विदेशी फाउन्टेन पेनका अनुवाद न होकर मुझे यह एक मौलिक रचना-सी जान पड़ती है! अब देखना यह है कि आप मौलिकताका समर्थन करते हैं, या कोरे अनुवादका?

अपनी अक्षमताके कारण मैंने अरबी 'दावात' 'दवात'के रूपमें हलकी कर ली है। आशा है, इसके लिए आप मुझे दोष न देंगे। भिन्न भाषाके शब्दोंके साथ आत्मीयता जोड़नेके लिए हममें इतनी बेतकल्लुफी होनी ही चाहिए। इसके बिना बाहरी शब्द हमारी भाषाके बहिर्भागमें ही रह सकेंगे, अन्तःपुर तक आ-जा सकनेकी विश्वसनीयता उन्हें न मिलेगी। 'कलम' शब्दको ही लीजिए। यह संस्कृत है, परन्तु हमारे मुन्शी लोगोंने एक नुक्तेका बोझ रखकर निस्संकोच भावसे इसे अपने शिक्षा-गौरवके अनुकूल कर लिया है। इस नुक्तेको भी मैंने हटा देना चाहा है। फिर भी यदि आप अपनी 'झरना कलम'को 'दावाती कलम' ही कहना चाहें, तो यह आपकी इच्छा। मेरे शब्दको आप किसी भी रूपमें स्वीकार करें, मुझे प्रसन्नता ही होगी।

राँचीसे श्री रासविहारी राय शर्मा एम० ए० लिखते हैं :—

जेठके 'विशाल भारत'में सम्पादकीय विचारके अन्तर्गत 'फाउन्टेन पेन'के हिन्दी प्रतिशब्दके विषयमें कुछ पंक्तियाँ आपने लिखी हैं। फाउन्टेन पेनके लिए आपने श्री रवीन्द्रनाथका 'सतोत्सारिणी' एवं श्री हितेन्द्र नन्दीके 'झरना कलम'का उल्लेख किया है। मैं भी आपकी सेवामें एक प्रतिशब्द पेश करना चाहता हूँ, जिसका प्रयोग लगभग बीस वर्षोंसे सारे संयुक्त-प्रान्त तथा बिहारमें हो रहा है। इसके जन्मदाता स्वर्गीय महामहोपाध्याय साहित्याचार्य पंडित रामावतार शर्मा एम० ए० थे। क्या इस शब्दपर भी विचार करेंगे? यह शब्द है 'निर्झरलेखनी'?

गुजरात (पंजाब) से श्री श्रुतिकान्त शर्माने लिखा है :—

मईके 'विशाल भारत'के अन्तिम पृष्ठपर फाउन्टेन पेनके लिए आपके प्रस्तुत किये शब्द दृष्टिगत हुए। 'झरना कलम' लम्बा शब्द है और कुछ बेढंगा-सा भी लगता है। हमारे पूर्वज संज्ञाके लिए छोटा शब्द चुनना ज्यादा पसन्द करते थे। समस्त शब्दोंका प्रयोग तो बहुत ही कम दिखाई देता है। समास तो वर्णनके लिए ही मालूम होते हैं। 'झरना कलम'से तो 'निस्सरणी' अच्छा है। इधर मित्र-मंडलमें इसका प्रयोग भी हो चला है।

श्री कृष्णानन्द गुप्तकी राय है :—

'फाउन्टेन पेन'के नामकरणके सम्बन्धमें मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। 'लैनटर्न'का जिस तरह 'लालटेन' हो गया, उसी तरह 'फाउन्टेन'का यदि 'फौन्टेन' हो जाये, तो हर्ज क्या है? उसे 'शुद्ध' कर लीजिए।

चित्र-चयन

बाबू भगवानदास

श्रीयुत सुन्दरलालका लिखा हुआ आपका जीवन-वृत्तान्त इसी अंकके ६४२ वें पृष्ठपर देखिये

भारतके प्रसिद्ध देशभक्त, विद्वान और तत्त्ववेत्ता डाक्टर भगवानदास ☞
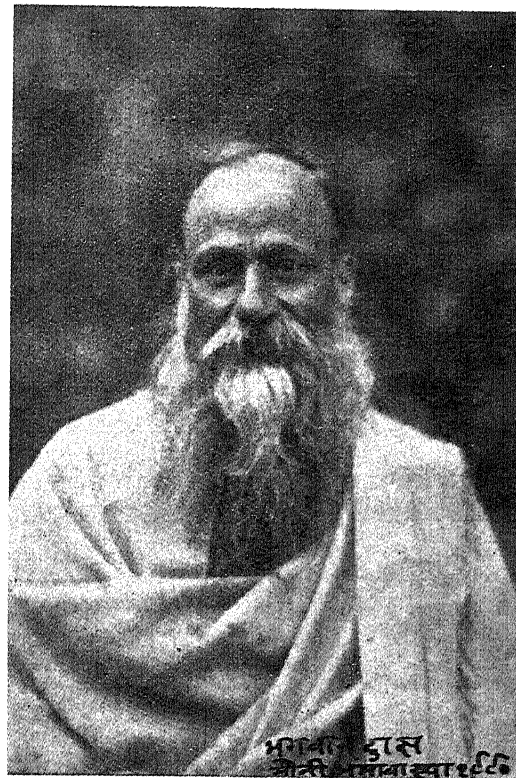
श्री देवप्रिय बलीसिंह

'पैन-पैसिफिक यंग बुद्धिस्ट ऐसोसियेशन'

'पैन-पैसिफिक यंग बुद्धिस्ट ऐसोसियेशन'की द्वितीय विराट कानफरेंस आगामी जुलाई मासमें जापानकी राजधानी टोकियोमें होगी। भारतकी ओरसे प्रतिनिधि बनकर महाबोधि सोसाइटीके प्रधान-मंत्री ब्रह्मचारी देवप्रिय वलीसिंह इस कानफरेंसमें सम्मिलित होनेके लिए जापान गये हैं।

'धर्मपाल-स्मारक-कमेटी'ने सारनाथमें एक अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित करनेका निश्चय किया है। इस कामके लिए विदेशोंमें बहुत प्रोपेगैण्डा करनेकी आवश्यकता है। अपने जापान-प्रवासमें ब्रह्मचारी वलीसिंह व्याख्यानों द्वारा प्रोपेगैण्डा करके इस विश्वविद्यालयके लिए जापानियोंकी सहायता प्राप्त करेंगे।

मार्टिन लूथर

हिन्दू - मुसलमानोंके झगड़ोंके क़िस्से हमारे शासकोंकी ज़बानपर रहा करते हैं। भारतीयोंको अधिकार देनेके प्रश्नपर हरएक अंगरेज़ भारतके साम्प्रदायिक झगड़ोंका खाता खोलकर अपनी सफाई देने लगता है; लेकिन साम्प्रदायिक क्रूरता केवल हिन्दुस्तानियोंकी ही सम्पत्ति नहीं है। भगवान ईसाके चेलोंने भी समय-समयपर अपने ही धर्मावलम्बियोंपर कुछ कम अत्याचार नहीं किये हैं। प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक धर्मोंके अनुयायियोंके झगड़ोंपर मोटे-मोटे पोथे लिखे जा सकते हैं और लिखे गये हैं।

मार्टिन लूथर (सन् १५४० के एक चित्रकी प्रतिलिपि)

प्रोटेस्टेन्ट मतका प्रवर्तक मार्टिन लूथर नामक एक जर्मन था। वह सन् १४८३ में उत्पन्न हुआ था। कुछ दिन तक वह एक विश्वविद्यालयमें धर्मतत्त्वका अध्यापक रहा था। उस समय समस्त यूरोपमें रोमन

सैक्सनीमें लूथर और पुलिस

कैथोलिक धर्मका प्रचार था, और रोमके पोपोंकी तूती बोलती थी। सन् १५१७ के बादसे उसके धार्मिक विचारोंमें परिवर्तन हुआ, और उसने एक नये धर्मका प्रचार आरम्भ किया। उसका नया धर्म उस समयके प्रचलित धर्मके प्रतिवादमें निकाला गया था, इसीलिए उसका नाम 'प्रोटेस्टेन्ट' (प्रतिवादी) हुआ। इस नये धर्मके प्रचारके अपराधमें लूथरको अनेक प्रकारसे तंग किया गया था। इंग्लैण्डमें रानी मेरीके समयमें

पाठशालामें बालक लूथर

सैकड़ों प्रोटेस्टेन्ट केवल अपने धार्मिक विश्वासके अपराधपर ही जिन्दा जला दिये गये थे। यहाँ लूथरकी जीवन घटनाओंके कुछ प्राचीन चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

—

जापानी बाग़बानी

जापानी लोग सौन्दर्यके पुजारी हैं। उनके इस सौन्दर्य-प्रेमने उन्हें ऐसा कारीगर बना दिया है कि घर-द्वार, शहर, मूर्ति, स्थापत्य—प्रत्येक चीज़में उनके हाथकी कारीगरी दीख पड़ती है। यहाँ तक कि बाग़बानीमें भी वे अपनी सुघड़ाईका कमाल दिखाया करते हैं। जापानी स्वभावसे ही फूलोंके प्रेमी होते हैं। बाग़में प्राकृतिक और वृक्षोंके सौन्दर्यके साथ-साथ वे कृत्रिम सजावटके द्वारा उसे अत्यन्त मनोरम बना देते हैं। बाग़में पेड़, पौधे, फूल, लता, कुंज आदि तो होते ही हैं, साथ ही उनमें कलाकी अनेक वस्तुएँ भी होती हैं। लेकिन जापानी इस बातका ध्यान रखते हैं कि उनकी इन चीज़ोंका रंग चारों ओरकी तरु-लताओं और फूलोंके रंगसे सामंजस्य रखता हो। इसीलिए जापानी उद्यान अन्य देशवासियोंकी नज़रमें बड़े ख़ूबसूरत दीखते हैं। यह बात नहीं कि केवल बड़े-बड़े बाग़ ही ऐसी ख़ूबसूरतीसे बनाये जायँ, बल्कि छोटे-छोटे पाई-बाग़ोंमें भी ऐसी ही सुन्दरता दीख पड़ती है। छोटे बाग़ोंके क्षेत्रफलके अनुपातके अनुसार उनमें पेड़-पौधे भी छोटी-बड़ी ऊँचाईके लगाये जाते हैं। इसीलिए जापान सुन्दर उद्यानोंका देश बन गया है।

वैसे तो एशिया हर बातमें यूरोपकी नक़ल करता है; मगर बाग़ोंकी ख़ूबसूरतीमें यूरोपको एशियाके सामने हार माननी पड़ी, और वहाँ जापानी बाग़ोंकी नक़ल की जाने लगी है। हालमें जर्मनीके राइनलैण्डमें जापानके आदर्शपर एक बाग़ लगाया गया है। इस बाग़का मालिक एक कारख़ानेका मालिक है। उसने जापानकी यात्रा करके वहाँके बाग़ोंको देखा और उसी प्रकारका बाग़ अपने यहाँ लगवाया है। इस बाग़में पेड़-पौधों और लताओंके साथ-साथ भगवान बुद्धकी मूर्तियाँ तथा अन्यान्य चीज़ें ठीक जापानी बाग़ोंकी तरह रखी गई हैं।
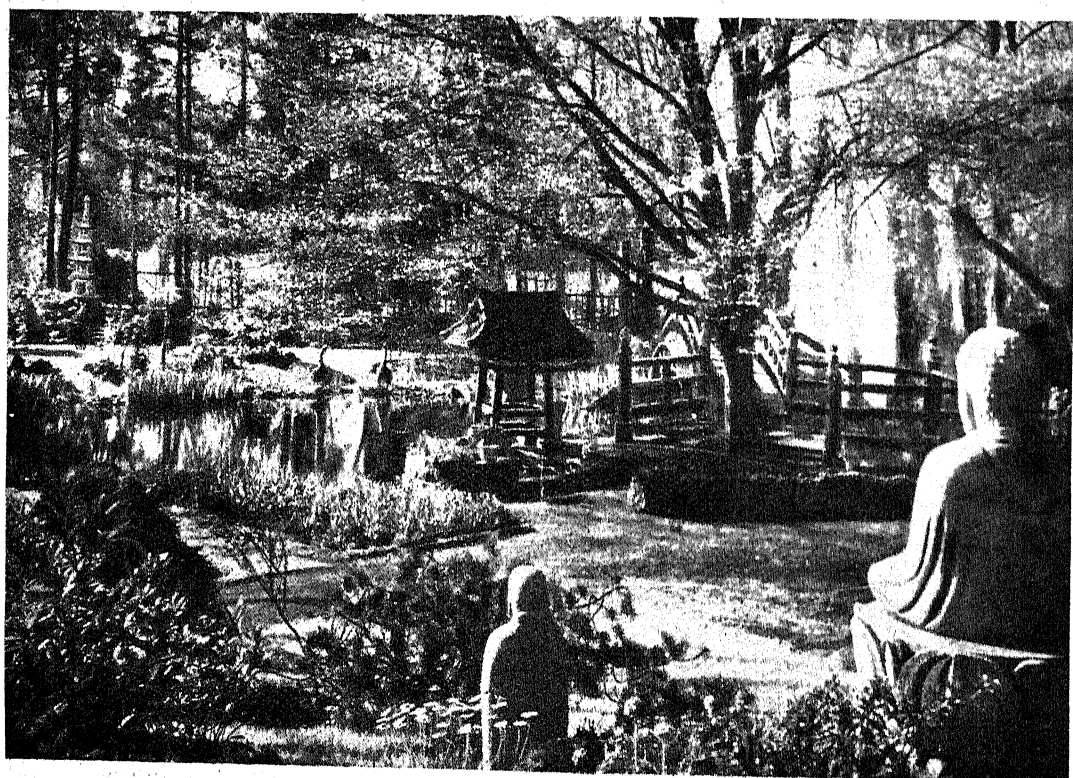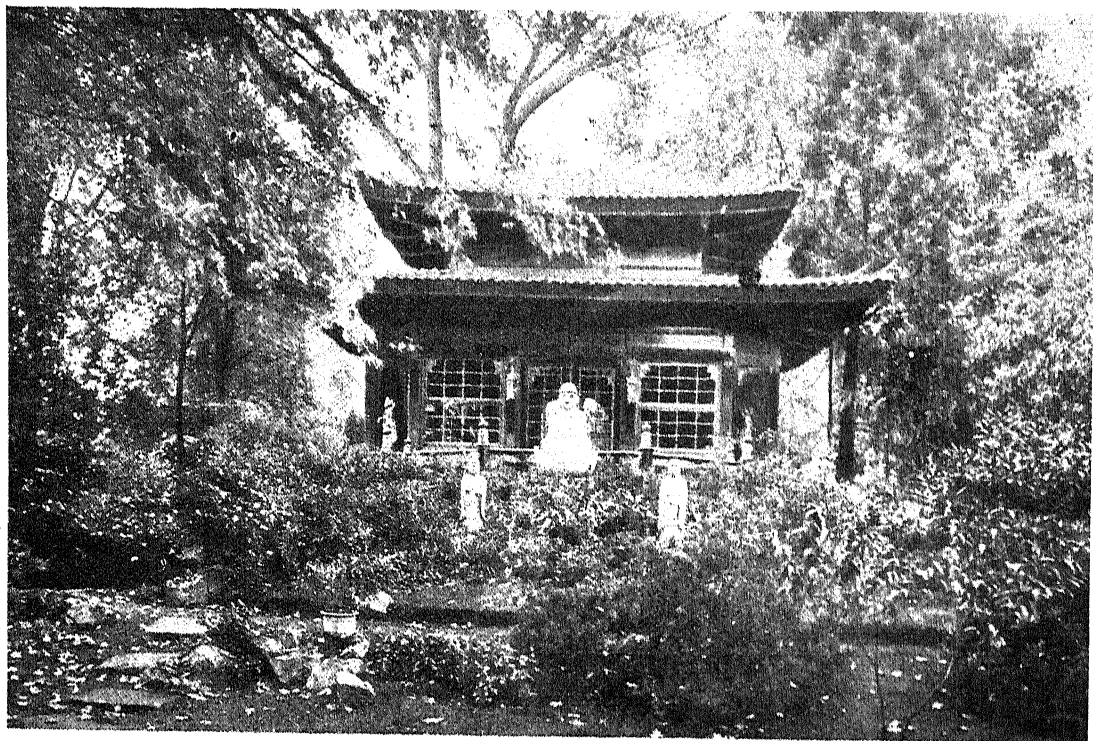
१—जर्मनीके राइनलैण्डमें जापानी ढंगका बाग, २—जापानी ढंगके बागका दूसरा दृश्य

अफ्रिकाकी हाउसा जाति

हाउसा लोग अफ्रिकाके आदिम निवासियोंमें हैं। सूदानके पश्चिम नाइजीरिया आदि प्रदेशोंमें लगभग पाँच लाख वर्गमीलमें ये लोग यत्रतत्र बसे हैं। मध्यकालीन समयमें हाउसा लोग बहुत उन्नत थे। वे देश-विदेशोंसे रोज़गार करते थे। अनेक शताब्दियोंसे उनका अपना स्वाधीन राज्य था ; लेकिन सन् १८१०में उन्हें मुसलमानोंके अधीन होना पड़ा।

हाउसा लोगोंकी संख्या पचास लाख है। उनका रंग काला होता है, इसलिए अकसर लोग भ्रममें उन्हें काफिर कहा करते हैं। वास्तवमें वे काफिर नहीं हैं।

एक प्राचीन जाति 'फ़ूलो' और अरब —इन दो जातियोंके सम्मिश्रणसे हाउसा जातिकी उत्पत्ति है। शक्ति और बुद्धि दोनों ही में वे काफिरोंसे अधिक उन्नत हैं। डेढ़-दो मनकी चीज़ लेकर चलना उनके लिए मामूली बात है। वे बड़े परिश्रमी होते हैं, और अफ्रिकाकी भयंकर गर्मीमें भी काममें लगे रहते हैं। खेती और रोज़गार ही उनकी जीविका है। कपड़े बुनने, रँगने, चटाई बनाने और चमड़ेके काममें वे होशियार होते हैं। ट्यूनिस, ट्रिपोली, एलेक्ज़ेंड्रिया आदि शहरोंमें वे अब भी रोज़गार करते दीख पड़ते हैं।

हाउसा लोगोंकी भाषा भी विकसित है। मध्य-अफ्रिकाकी जितनी आदिम भाषाएँ हैं, उनमें हाउसा लोगोंकी भाषामें ही सबसे पहली पुस्तक लिखी गई है। इस भाषाके शब्द-भंडारमें दस हज़ार शब्द हैं, जिनमें से एकतिहाई अरबीके हैं। उनकी भाषामें कविता तथा राष्ट्रीय विचारोंकी पुस्तकोंके कुछ अंश भी मिले हैं। शिक्षामें भी वे अन्य आदिम निवासियोंसे बढ़े हुए हैं। हर गाँवमें एक पाठशाला होती है। हाउसा लोगोंमें एकतिहाई मुसलमान, एकतिहाई मूर्तिपूजक और एकतिहाई ला-मज़हब हैं।
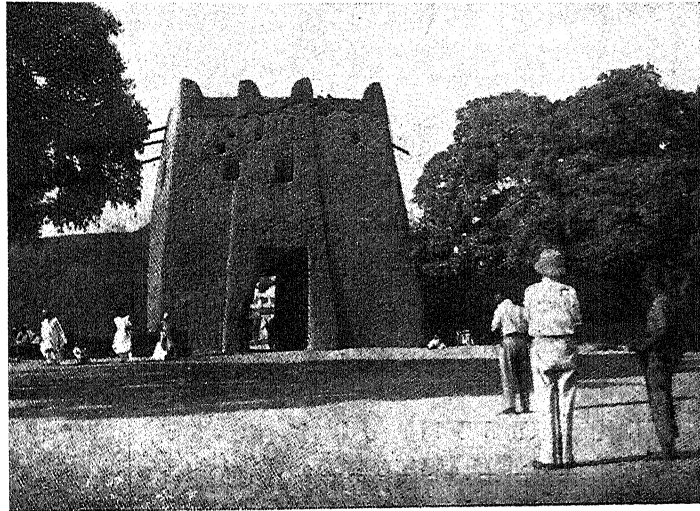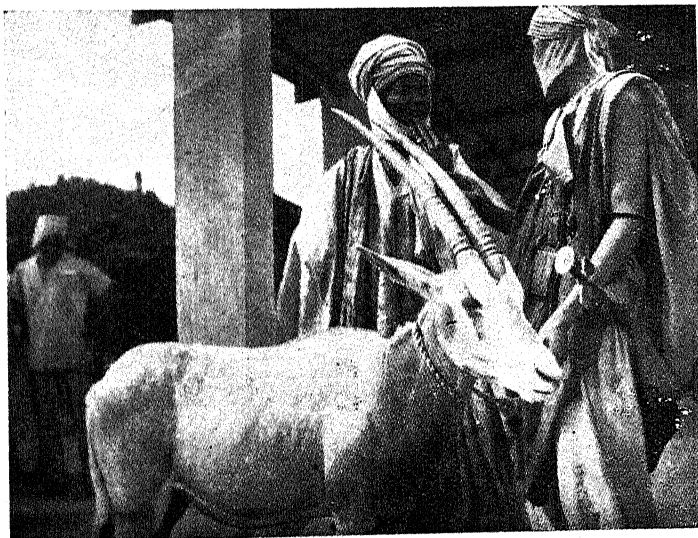
हाउसाके अमीरके महलके सामनेका फाटक

हाउसा और अफ्रिकन हरिण

लम्बे-तगड़े हाउसा। ये प्रायः [illegible], छै फीट लम्बे होते हैं

हाउसा लम्बे शरीरके और ख़ूब बलवान होते हैं। आजकल वे अंगरेज़ोंके प्रभावमें हैं। पुलिस और फौजी कामोंमें उन्होंने काफी नाम कमाया है।

लम्बी दुमवाले मुर्ग़े

जापानमें एक प्रकारके मुर्ग़े होते हैं, जिनकी दुम फीटों लम्बी होती है। इस दुमकी लम्बाई छब्बीस-छब्बीस फीट 'तक देखी गई है। ये मुर्ग़े जापानमें ओशीनो-मूरा नामक स्थानमें पाये जाते हैं; लेकिन मज़ेकी बात यह है कि इस जातिकी मुर्ग़ीकी दुम इतनी लम्बी नहीं होती।

इन मुर्ग़ोंकी क़ीमत इनकी दुमकी लम्बाईपर निर्भर करती है। जितनी ज्यादा लम्बी दुम उतनी ज्यादा क़ीमत। बहुत लम्बी दुमवाले मुर्ग़ोंकी क़ीमत चार-पाँच हज़ार रुपये तक होती है।
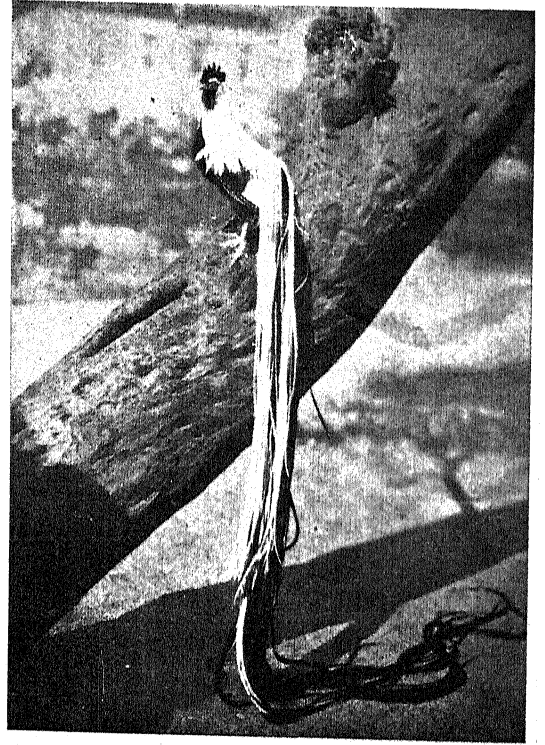
लम्बी दुमका जापानी मुर्ग़ा
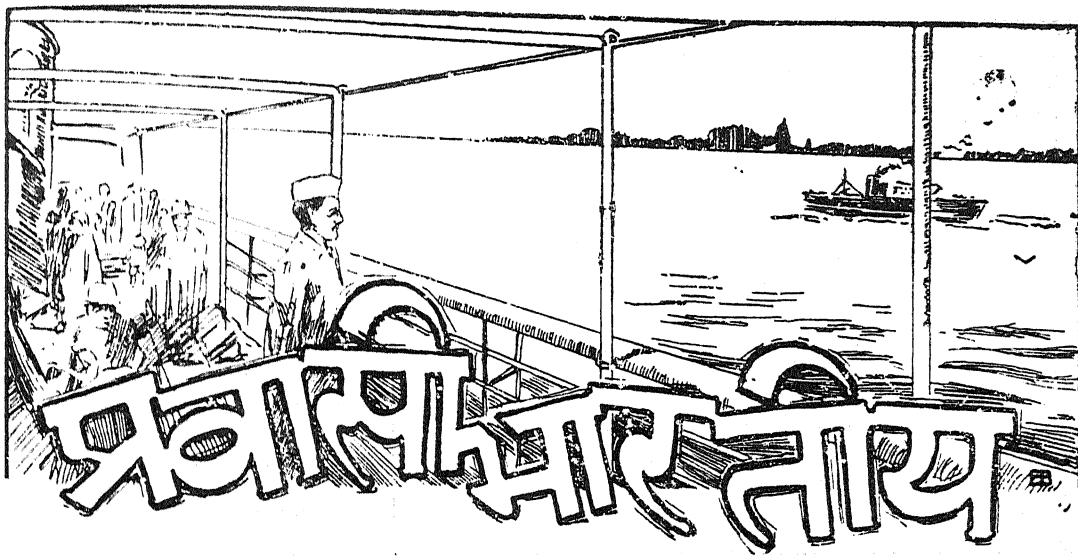
शिक्षा-प्रचार

हम लोगोंमें से कितनों ही की मनोवृत्ति उस आदमी कैसी है, जो आज बीज बोकर कल उसे हरेभरे वृक्षके रूपमें देखना चाहता है, और परसों उसके मधुर फल भी स्वयं चखनेका आकांक्षी है। इसलिए प्रथम तो हम लोग ऐसे कार्योंको अपने हाथमें लेते ही नहीं, जो अत्यन्त परिश्रमसाध्य हैं, और लेते भी हैं, तो उन्हें बीचमें ही छोड़ बैठते हैं। प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारका प्रश्न भी ऐसा ही है, जिसकी ओर हमारे देशके नेताओंका ध्यान बहुत कम गया है। इस समय लगभग तीस लाख भारतीय विदेशोंमें रहते हैं। कितने ही उनमें साधनसम्पन्न हैं, और अपने बच्चोंकी शिक्षाके लिए खर्च भी करनेको तैयार हैं ; पर उन्हें उपयुक्त भारतीय शिक्षक नहीं मिलते। सच पूछो तो हमारे देशके भारतीय शिक्षा-विशेषज्ञोंने इस सवालपर गौर किया ही नहीं कि हम लोग अपने प्रवासी भारतीयोंके बच्चोंकी शिक्षाके कार्यमें कहाँ तक सहायता पहुँचा सकते हैं।

अदूरदर्शितापूर्ण नीति

जिन शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंका ध्यान प्रवासी भारतीयोंकी ओर गया भी है, उन्होंने भी प्रवासी धनाढ्योंको कामधेनु समझकर समय-समयपर उन्हें दुहना ही अपना कर्तव्य समझ लिया है। यदि परिश्रमपूर्वक हिसाब लगाया जाय तो यह पता लग जायगा कि प्रिंसीपल रामदेवजीसे लगाकर हिज़ हाईनेस सर आगा खां तकने प्रवासी भारतीयोंसे जितना रुपया लिया है, उसके मुक़ाबलेमें उनके लिए काम बहुत कम किया है। हम यह मानते हैं कि आचार्य रामदेवजीने रुपया अपने मतलबके लिए न लेकर एक प्रतिष्ठित संस्थाके लिए लिया था, और उसीके लिए वह व्यय भी किया गया। पर हमारी अधिकांश संस्थाओंके संस्थापकोंकी मनोवृत्ति इस प्रकारकी रही है कि "प्रवासी भारतीयोंमें श्रद्धा है, उनके पास अपेक्षाकृत धन भी अधिक है। इस धनका सदुपयोग वे मातृभूमिकी संस्थाओंको दान देकर कर सकते हैं, और चूँकि हमारी संस्था निर्धन है, इसलिए क्यों न उनकी उदारतासे लाभ उठाया जाय?"

यद्यपि यह मनोवृत्ति हिज़ हाईनेस आग़ा खांकी मनोवृत्तिसे तो कुछ अच्छी है, जो अपने भक्तोंसे प्राप्त धनका सदुपयोग घुड़दौड़में किया करते हैं ; पर इसके भीतर स्वार्थकी जो भावना काम कर रही है, उसकी हम प्रशंसा कदापि नहीं कर सकते। क्या हम गुरुकुल कांगड़ी, कन्या-महाविद्यालय जालन्धर, दक्षिणा-मूर्ति-विद्यालय भावनगर, कन्या-विद्यालय बड़ौदा तथा अन्य इसी प्रकारकी संस्थाओंके संचालकोंसे पूछ सकते

हानिकारक होगा। यदि वे रहन-सहनमें यूरोपियन तरीकोंको ग्रहण करते हैं,—जैसा कि दक्षिण-अफ्रिकामें कर रहे हैं,—तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। इसमें आपत्ति करना हमारे लिए महज़ हिमाकत होगी; पर कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जिनपर राय देना हमारा कर्तव्य है। उदाहरणार्थ, यदि दक्षिण-अफ्रिका अथवा पूर्व-अफ्रिकाके भारतीय वहाँके आदिम निवासी अफ्रिकनोंसे घृणा करें और उनके साथ दुर्व्यवहार करें, तो हम उनसे साफ-साफ कह सकते हैं कि यदि आप अपने संग्राममें हमारी सहायता चाहते हैं, तो आपकी इस अनीतिको हम कदापि सहन नहीं कर सकते। यह बात हम कोरमकोर कल्पनाके आधारपर नहीं कह रहे। सन् १९२४ में जब हमें पूर्व-अफ्रिका जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तो हमने अपनी आँखोंसे वहाँ देखा था कि कुछ शिक्षित भारतीयोंके विचार अफ्रिकन लोगोंके प्रति

ट्रिनीडाडमें हिन्दीके छात्र-छात्रायें और उनकी शिक्षिका श्रीमती सरयूदेवी

कि अब तक आपके यहाँ उपनिवेशोंसे कितना रुपया आया है और औपनिवेशिक बच्चोंकी शिक्षापर आपने कितना व्यय किया है?

हम यह भी जानते हैं कि श्रीमती शन्नोदेवीजी अकेले टांगानिक्या ही से हज़ारों रुपये जालन्धरके कन्या-महाविद्यालयके लिए लाई थीं, पर हमें अभी तक यह ज्ञात नहीं है कि उक्त संस्थाने प्रवासी कन्याओंके लिए क्या-क्या कार्य किये हैं।

हम इस नीतिको सर्वथा अदूर-दर्शितापूर्ण समझते हैं, और जब तक इसको तिलांजलि नहीं दी जाती, तब तक इसका निरन्तर विरोध करते रहेंगे।

फिजीमें हिन्दीकी शिक्षाके प्रचारक-प्रचारिकायें। बीचमें श्री अमियचन्दजी बैठे है

हमारा ध्येय क्या होना चाहिए?

सबसे मुख्य प्रश्न यह है कि हम प्रवासी भारतीयोंके सम्मुख क्या आदर्श रखना चाहते हैं? यह बात तो निश्चित है कि उनकी स्वाधीनतामें बाधा डालना हमारे लिए और उनके लिए भी अत्यन्त

वसे ही थे, जैसे अधिकांश यूरोपियनोंके होते हैं। दक्षिण-अफ्रिकाके भी कुछ भारतीयोंने वहाँके आदिम निवासियोंके विषयमें जो उद्गार प्रकट किये थे, उनसे भी हमारे हृदयको बड़ा धक्का लगा था। सबसे पहली बात यह है कि हम लोग मनुष्य मनुष्यमें उनकी जाति या वर्णके कारण भेद नहीं करना चाहते। मान लीजिये, यदि हमारे पूर्व-अफ्रिका-प्रवासी भाई कलको यह नियम बना दें कि हम किसी भी हालतमें किसी अफ्रिकन लड़के या लड़कीको अपने स्कूलोंमें भरती न करेंगे, तो फिर हमारा यह कर्तव्य होगा कि हम कांग्रेससे तथा देशके नेताओंसे यह अनुरोध करें कि वे पूर्व-अफ्रिका-प्रवासी भारतीयोंको किसी भी प्रकारकी नैतिक सहायता न दें। हम शोषणकी नीतिके सर्वथा विरोधी हैं। हमें यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि युगांडाके श्री नानजी भाई कालीदास मेहताने पोरबन्दरमें कन्या-गुरुकुल खुलवानेके लिए लगभग डेढ़-दो लाख रुपये दान दिये हैं, और कन्या-विद्यालय बड़ौदाको भी काफ़ी आर्थिक सहायता प्रदान की है; पर हम उस दिनकी प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठासे कर रहे हैं, जब कि श्री नानजी भाई अफ्रिकन विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिए भी कुछ छात्रवृत्तियाँ नियत करेंगे। आगे चलकर स्वाधीन-भारत और प्रवासी भारतीयोंका क्या सम्बन्ध होगा, यह प्रश्न तो अभी व्यावहारिक राजनीतिका नहीं कहा जा सकता; पर इतना तो निश्चित है कि आदर्शवादी भारत कभी भी वर्णभेदकी नीतिको अंगीकार नहीं करेगा। हम लोग उन साम्राज्यवादियोंके घोर विरोधी हैं, जो चमड़ेके रंग देखकर राजनैतिक अधिकारके प्रश्नका निपटारा किया करते हैं, और यह सम्भव नहीं कि स्वाधीन होनेपर हम स्वयं उक्त प्रकारकी निन्दनीय नीतिका अनुसरण करें। मानव-समाजमें भ्रातृभाव स्थापित करना भारतके मुख्य उद्देश्योंमें से एक होगा, और किसी भी प्रकारकी साम्प्रदायिकता तथा जातीय विद्वेषके हम घोर विरोधी होंगे।

शिक्षाकी वर्तमान दशा

वर्षोंसे हम इस बातका आन्दोलन करते आ रहे हैं कि औपनिवेशिक भारतीयोंकी शिक्षाकी जाँच होनी चाहिए; पर अभी तक इसपर न तो भारत-सरकारने और न प्रवासी भारतीयोंने ही यथोचित ध्यान दिया है। भारत-सरकारने स्वर्गीय मि० किचलूको दक्षिण-अफ्रिका भेजकर अवश्य प्रशंसनीय कार्य किया था, और उसका परिणाम भी दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी भारतीयोंके लिए अच्छा ही हुआ। यदि भारत-सरकार अन्य उपनिवेशोंको भी समय-समयपर शिक्षा-सम्बन्धी कमीशन भेजती, तो आज तक प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षाका काफ़ी प्रचार हो गया होता। जिस ढंगपर भारत-सरकार चल रही है, उससे यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वह निकट-भविष्यमें कोई शिक्षा-सम्बन्धी कमीशन विदेशोंको भेजेगी। इसलिए हम लोगोंका कर्तव्य है कि स्वयं इस प्रश्नको अपने हाथमें लें। यदि सार्वदेशिक सभा आचार्य गिडवानी, श्री सुधाकरजी और स्वामी भवानीदयालका एक डेपूटेशन उपनिवेशोंको भेजे, तो बहुत उपयोगी काम हो सकता है। डेपूटेशनके व्ययका आधा भाग उपनिवेशोंके निवासी देनेके लिए उद्यत हो जायँगे।

ईसाई मिशनरियोंका सदुद्योग

आजसे कुछ वर्ष पहले हमें आस्ट्रेलेशियन मैथोडिस्ट मिशनके सेक्रेटरी मि० जे० डब्ल्यू० बर्टनके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय वे भारतकी यात्रा कर रहे थे। आस्ट्रेलिया अथवा एशियामें जहाँ-जहाँ मैथोडिस्ट मिशनके स्कूल अथवा अन्य संस्थाएँ काम कर रही हैं, उनका निरीक्षण करनेके लिए वे आये हुए थे। उनसे हमें ज्ञात हुआ कि एक वर्ष तो वे फिजीकी यात्रा करते हैं, दूसरे वर्ष पापुआ द्वीपकी, तीसरे वर्ष उत्तरी आस्ट्रेलियाकी, चौथे वर्ष भारतवर्षकी और पाँचवें वर्ष इंग्लैण्डकी। क्या किसी आर्यसामाजिक संस्थाके किसी जिम्मेवार पदाधिकारीने भी उपनिवेशोंकी यात्रा इसी उद्देश्यसे की है? यद्यपि

हम मिशनरी लोगोंके ईसाई बनानेके उद्देश्यसे सहमत नहीं है ; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचार करनेके लिए काफ़ी प्रयत्न किया है। स्वयं मिस्टर बर्टनने दस वर्ष तक फिजीमें रहकर शर्तबँधे मज़दूरोंके लिए प्रशंसनीय कार्य किया था। हम लोग भले ही मिशनरियोंकी निन्दा करते रहें ; पर इसमें कोई शक नहीं कि उनकी लगन और धुनका शतांश भी हमारे धर्म-प्रचारकोंमें नहीं पाया जाता।

मातृ-भाषाओंका महत्त्व

उपनिवेशोंमें जो भाषाएँ बोली जाती हैं, उनमें तैमिल, तेलुगु, हिन्दी और गुजराती मुख्य हैं। अंगरेज़ीका तो प्रचार है ही, और वह बढ़ता भी जाता है ; पर मातृभूमिसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए उपर्युक्त भाषाओंकी पढ़ाईका प्रबन्ध होना ही चाहिए। अनेक उपनिवेशोंके,—उदाहरणार्थ, ब्रिटिश गायना और ट्रिनीडाड इत्यादिके,—भारतीय अपनी मातृ-भाषाको बिलकुल भूलते जा रहे हैं, और यदि यही दशा थोड़े वर्षों तक और रही, तो उन उपनिवेशोंके भारतीय एक नवीन जाति ही बन जायँगे। क्या यह वांछनीय है ?

हम हिन्दी - भाषा - भाषियोंका कर्त्तव्य है कि जहाँ-जहाँ उपनिवेशोंमें हिन्दी पढ़ानेके लिए कुछ उद्योग हो रहा है, वहाँके कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित करें। तूनापूना (Tunapuna), ट्रिनीडाडकी श्रीमती सरयूदेवीको, जो वहाँ अपने भारतीय भाई-बहनोंमें हिन्दीका प्रचार करनेके लिए प्रयत्न कर रही हैं, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग तथा सार्वदेशिक सभा दिल्लीसे कुछ सहायता अवश्य मिलनी चाहिए। इसी प्रकार फिजीमें श्री गोपेन्द्रनारायणजी और श्री अमीचन्दजी विद्यालंकारने शिक्षा-प्रचारार्थ बहुत कुछ काम किया है, और वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं। ये हमारे पथप्रदर्शक हैं, और इनकी जो कुछ सेवा हमसे बन पड़े वह अवश्य करनी चाहिए।

प्रवासी-भारतीयोंका उज्ज्वल भविष्य

प्रवासी भारतीयोंके मस्तिष्क उस उर्वरा भूमिकी तरह हैं, जिसमें अच्छे बीज डालनेसे अत्युत्तम फसल पैदा हो सकती है। जिन लोगोंको प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचार करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे इस बातके गवाह हैं कि प्रवासी बालक अपनी मातृभूमिके उसी जाति और उसी श्रेणीके बालकोंकी अपेक्षा अधिक होशियार होते हैं। यहाँ हमारे बालकोंके मस्तिष्क अपने माता-पिताओंके जिन अन्ध-विश्वासोंके कारण अधकचे रह जाते हैं, वे अधिकांशमें वहाँ दूर हो चुके हैं, और छुआछूतकी भयंकर बीमारी भी वहाँ प्रायः नहीं पाई जाती। आर्थिक दृष्टिसे भी उनका भविष्य वैसा अन्धकारमय नहीं है। शारीरिक दशा भी उनकी अपेक्षाकृत अच्छी है। यदि हम लोग उनके पास भारतीय संस्कृतिका सन्देश पहुँचा सकें, तो वे हमारी अपेक्षा कहीं अधिक उत्साहके साथ उन आदर्शोंकी पूर्तिके लिए प्रयत्न करेंगे, जो हमारी सभ्यताकी आधारशिला हैं।

जिस प्रकार किसी विशाल वटवृक्षके प्रथम मूलके खोखले हो जानेपर वह अपनी दूर-दूर फैली हुई अन्य जड़ों द्वारा रस पाकर हराभरा बना रहता है, उसी प्रकार यदि भविष्यमें भारत अपने आदर्शोंकी पूर्तिमें कभी शिथिलता प्रकट करे, तो विशाल भारत (यानी उपनिवेशोंका भारतीय समाज) उस समय उसे बड़ी भारी सहायता दे सकता है।

प्रवासी भारतीयोंमें शिक्षा-प्रचारार्थ हम इस समय जो कुछ भी व्यय करेंगे, वह हमें पचीस-तीस वर्ष बाद मय चक्रवृद्धि ब्याजके मिल जायगा।

हमारे राजनैतिक आन्दोलनोंमें प्रवासी भारतीय बराबर सहायता देते रहे हैं। हमारी शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ तो उनकी काफ़ी ऋणी हैं ही, और उन लाखों रुपयोंकी हम गणना नहीं करते, जो हर वर्ष प्रवासी भारतीय अपने घरवालोंको भेजा करते हैं। दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीयोंने सत्याग्रह-अस्त्रके प्रयोगमें

महात्माजीको जो सहायता दी थी, उसका मूल्य क्या कोई आँक सकता है ? यदि हमें अपनी आँखोंके सामने अपना लगाया हुआ पौधा फलता हुआ न भी दीख पड़े, तो हमें यह समझकर सन्तोष कर लेना चाहिए कि हमारे नाती-पोते उसके मधुर फल चखेंगे। सम्राट अशोकने अपने पुत्र महेन्द्रको सिंहलद्वीप भेजकर बौद्धधर्मका प्रचार कराया और उसके सैकड़ों वर्ष बाद भारतमें बौद्धधर्मके उद्धारार्थ सिंहलद्वीपने भिक्षु धर्मपालको भेजा। वस्तुत: अशोकके महान मिशनमें धर्मपालका बीज छिपा था।

साम्प्रदायिकता और जातीय विद्वेष

अन्तमें हम प्रवासी भारतीयोंसे दो सांघातिक बीमारियोंसे दूर रहनेके लिए अनुरोध करेंगे—एक तो साम्प्रदायिकता और दूसरा जातीय विद्वेष। साम्प्रदायिकतासे—हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंसे—भारतकी जो हानि हुई है, उसे हम लोग भलीभाँति जानते हैं। जातीय विद्वेषके विषयमें इतना पर्याप्त होगा कि उपनिवेशोंमें केवल भारतीय ही भारतीय नहीं रहने, उनमें दूसरी जातियोंके भी आदमी रहते हैं। भिन्न-भिन्न जातियोंसे सहयोग करते हुए काम करना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। उपनिवेशोंमें शिक्षा-प्रचार वास्तवमें एक अत्यन्त पवित्र कार्य है, और किसी संकुचित विचारवाले साम्प्रदायिक आदमीको वहाँ भेजना ऐसा भयंकर अपराध है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं।

सम्पादकीय विचार

अ० भा० कांग्रेस कमेटी

पटनेमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन समाप्त हो गया। कानून-भंग-आन्दोलनको स्थगित करने, व्यवस्थापिका सभाओंमें कांग्रेसवादियोंके प्रवेश तथा चुनावपर नियन्त्रण करनेके लिए एक कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्ड क़ायम करने और आगामी अक्टूबर महीनेके प्रथम सप्ताहमें बम्बईमें कांग्रेसका साधारण अधिवेशन करनेके सम्बन्धमें प्रस्ताव हुए हैं। कांग्रेस-निर्वाचन-बोर्डके सभापति डाक्टर अन्सारी चुने गये। डा० अन्सारी और पं० मदनमोहन मालवीयको बोर्डके अन्य सदस्योंको चुननेका अधिकार दिया गया, जिसके अनुसार विभिन्न प्रान्तोंके पचीस प्रमुख कांग्रेसवादी बोर्डके सदस्य चुने गये हैं। कांग्रेस-उमीदवारोंका निर्वाचन तथा निर्वाचन-सम्बन्धी अन्य आवश्यक कार्योंका संचालन इस निर्वाचन-बोर्ड द्वारा होगा। बोर्डके ऊपर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका नियन्त्रण रहेगा। इस प्रकार कांग्रेस-निर्वाचन-बोर्डके क़ायम होनेसे स्वराज्य-पार्टीका पृथक् अस्तित्व नहीं रह गया, जिसको लेकर इतना वादविवाद चल रहा था। कौंसिल-प्रवेशका प्रस्ताव स्वयं महात्मा गांधीने उपस्थित किया था। कांग्रेस कमेटीकी गत बैठकमें महात्मा गांधीकी समस्त कार्रवाइयोंपर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्वकी छाप लगी हुई थी। परिवर्तनवादी या अपरिवर्तनवादी, उग्रपंथी या नरमपंथी—सब महात्माजीके प्रभाव और व्यक्तित्वके कायल थे, और उनके व्यक्तिगत विचार चाहे कुछ भी क्यों न हों; पर कोई भी दल महात्माजीके नेतृत्वसे वंचित होना नहीं चाहता था। महात्मा गांधीके सिवा अन्य लोगोंके लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करनेके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पेश किया गया था, उसके सम्बन्धमें कितने ही संशोधन उपस्थित किये गये; किन्तु बहुमतके सामने एक भी संशोधन ठहर नहीं सका। इसे महात्माजीके

व्यक्तित्वकी विजय कहिये, या जो कुछ ; किन्तु बात ऐसी ही थी। असल बात तो यह है कि अ० भा० कांग्रेस कमेटीके गत अधिवेशनकी कार्यवाहियोंने एक बार फिर यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि महात्मा गांधी अब भी देशके सर्वप्रधान नेता हैं और कांग्रेसपर उनका प्रभाव अक्षुण्ण बना हुआ है। इससे उन लोगोंको अवश्य निराशा हुई होगी, जो मन-ही-मन इस बातकी सुखद कल्पना कर रहे थे कि राजनीतिक क्षेत्रमें महात्माजीकी शक्ति अब क्षीण हो चली है, इसलिए कांग्रेस उग्रपन्थी दलको वे अपने काबूमें नहीं रख सकेंगे। इसी प्रकार उन लोगोंको भी हताश होना पड़ा होगा, जो कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नको लेकर कांग्रेसमें कलह और फूट फैलनेका स्वप्न देख रहे थे। स्वयं कौंसिल-प्रवेशमें विश्वास नहीं रखते हुए भी महात्माजीने बड़े कौशलसे कौंसिल-प्रवेशकी समस्याका समाधान कर दिया और कांग्रेसको दो दलोंमें विभक्त होनेसे बचा लिया। महात्मा गांधीने अपने भाषणमें यह स्पष्ट कर दिया है कि वास्तविक स्वराज्य—जनताका स्वराज्य—कौंसिलोंमें काम करनेसे प्राप्त नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी विश्वास प्रकट किया है कि अधिकांश कांग्रेसवादी कौंसिलकी तड़क-भड़कके मोहसे अपनेको बचाये रखेंगे। महात्मा गांधी स्वयं कौंसिल-प्रवेशकी अपेक्षा रचनात्मक कार्यको कितना महत्त्व देते हैं, इसका प्रमाण तो इसी बातसे मिलता है कि जब श्री राजगोपालाचार्य और श्री राजेन्द्रप्रसादको कांग्रेस-निर्वाचन-बोर्डमें रखनेका प्रस्ताव किया गया, तो गांधीजीने कहा कि ये दोनों व्यक्ति मेरे प्रधान लेफ्टिनेन्ट हैं, जिनकी सहायतासे मैं रचनात्मक कार्यक्रमको चला सकूँगा। अतएव इन्हें मैं बोर्डमें शामिल नहीं होने दे सकता। कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें इस प्रकारका विश्वास रखते हुए भी महात्मा गांधीने स्वराजियोंको कौंसिल-प्रवेशकी अनुमति क्यों दी, इसके उत्तरमें स्वयं गांधीजीने कहा है कि वे कौंसिल-प्रवेशमें विश्वास रखनेवाले कांग्रेसवादियोंकी निश्चेष्टता, अकर्मण्यता और जड़ताकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा समझते थे कि उन्हें कौंसिलोंमें जाकर काम करनेका मौक़ा दिया जाय। उनकी इस जड़ता और अकर्मण्यताका घातक प्रभाव और लोगोंपर भी पड़ रहा था।

कांग्रेस-कमेटीकी कार्रवाइयोंसे एक और बात स्पष्ट हो रही थी कि यद्यपि कौंसिल-प्रवेशका प्रस्ताव पास हो गया था, फिर भी इससे कांग्रेसवादियोंमें विशेष उत्साह नहीं दीख पड़ता था। कारण, अधिकांश लोग कौंसिलोंमें कार्य करनेकी अपेक्षा कौंसिलोंके बाहर कार्य करनेको विशेष महत्त्वपूर्ण समझ रहे थे। इसके सिवा चुनाव-संग्रामके कारण राजनीतिमें जो गन्दगी और मनोमालिन्य फैलता है, उसका कटु अनुभव भी बहुतसे लोगोंको कौंसिल-प्रवेशके कार्यक्रमसे उदासीन बना रहा था। कांग्रेस-निर्वाचन-बोर्डने अभी तक अपना कार्यक्रम स्थिर नहीं किया है। सम्भवतः अगली बैठकमें बोर्ड अपना प्रोग्राम तय करेगा।

साम्यवादी सम्मेलन

पटनेमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अवसरपर साम्यवादी सम्मेलनका होना एक उल्लेखनीय घटना है। उल्लेखनीय इसलिए कहते हैं कि यह पहला ही अवसर है, जब कि काफी संख्यामें कांग्रेसवादियोंके एक दलने एकत्र होकर साम्यवादके सम्बन्धमें विचार किया है और उसपर अपनी स्पष्ट सम्मति भी प्रकट की है। संख्यामें अल्प होनेपर भी इस दलके बढ़ते हुए प्रभावमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता, और लक्षणोंसे ऐसा जान पड़ता है कि यदि इस दलका नेतृत्व सुयोग्य और सुदृढ़ हाथोंमें रहा, तो आश्चर्य नहीं कि निकट-भविष्यमें ही इस दलका कांग्रेसके ऊपर आधिपत्य स्थापित हो जायगा। साम्यवाद वर्तमान युगकी वाणी है। लांछित, अपमानित, उत्पीड़ित, पददलित और शोषित मानवताकी युग-युगसे संचित मूक-वेदना इस वाणीके रूपमें फूट पड़ी है। आज सारे जगतका वायुमंडल इस वाणीसे प्रतिध्वनित हो रहा है, और कोई भी मानवशक्ति इस वाणीकी उपेक्षा करके

इसके प्रभावसे अपनेको अछूता नहीं रख सकता। लक्ष-लक्ष जाग्रत जनताके चैतन्यका प्रतीक होनेके कारण हम वर्तमान युगकी इस भावनाको दबा नहीं सकते। पीड़ित मानवताकी कुचली हुई भावनाएँ आज इस युगवाणीके प्रभावसे संजीवित हो उठी हैं, और विशेष आग्रहके साथ वे इस प्रश्नका उत्तर चाहती हैं कि सामाजिक व्यवस्थामें इतना वैषम्य क्यों है? क्या कारण है कि कुछ लोगोंके पास तो आवश्यकतासे अधिक सम्पत्ति हो, वे भोग-विलासमें दिन-रात निमग्न रहा करें, पानीकी तरह धनको बहाते रहनेपर भी उनका अर्थ-भंडार कभी ख़ाली न हो और बाक़ी लोग आजीवन भूखे या अधपेट रहकर दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहें? इसी प्रश्नका उत्तर साम्यवाद चाहता है। कर्मफल और विधि-विधानके रूपमें नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूपमें। साम्यवादी सम्मेलनके सभापति आचार्य नरेन्द्रदेवजीने अपने भाषणमें साम्यवादकी इन्हीं समस्याओंपर बड़े सुलझे हुए ढंगसे विचार किया है। नरेन्द्रदेवजीका भाषण तर्कयुक्त, गम्भीर और स्पष्ट है। आपके भाषणकी एक बड़ी ख़ूबी यह है कि इसमें व्यावहारिक साम्यवादकी विशद विवेचना की गई है, जिससे वह बुद्धि और हृदय दोनोंको ही अपील करता है। साम्यवाद आन्दोलनका स्पष्ट उद्देश्य साम्यवादी सरकारकी स्थापना बताते हुए भी आप उन लोगोंसे सहमत नहीं हैं, जो भारतमें बोल्शेविक रूसके साम्यवादकी हूबहू नक़ल देखना चाहते हैं, और देशके राष्ट्रीय आन्दोलनसे अलग रहकर किसानों और श्रमजीवियोंका संगठन करना चाहते हैं। इसके विपरीत आपका मत यह है कि राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ किसानों और श्रमजीवियोंकी विपुल शक्तियोंको संघबद्ध करके देशमें एक विराट सामूहिक आन्दोलनकी सृष्टि की जाय। इसके लिए अन्य श्रेणियोंके साथ मिलकर काम करनेमें आपको आपत्ति नहीं है। कारण, साम्यवादकी पहली सीढ़ी राजनैतिक स्वाधीनता है, इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलनसे अपनेको अलग रखना साम्यवादियोंके लिए आत्मघाती नीति होगा। साम्यवादके लिए देशकी अवस्था उपयुक्त हो या न हो, किन्तु आपके मतसे, दासता और विदेशी शासकोंकी अधीनताकी अपेक्षा पूँजीवादमूलक गणतन्त्र हमेशा अच्छा है। जो लोग यह कहते हैं कि साम्यवादी श्रेणी-युद्धकी सृष्टि करके देशकी एकताको छिन्न-भिन्न करते हैं, उनके सम्बन्धमें आपका कहना है—"एकताका कोई मूल्य तभी हो सकता है, जब कि उसके द्वारा शक्ति पैदा हो। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब कि एक साथ काम करनेवाले दो दलोंके आदर्श और कार्य-पद्धति एक समान हों। अन्यथा इससे दोनों दल कमज़ोर हो जाते हैं, और उनका नैतिक अधःपतन होता है।" देशकी राजनीतिक स्वाधीनताके लिए जो सब शक्तियाँ संग्राम कर रही हैं, उन सबके संवबद्ध होनेकी ज़रूरत है, और यह संवबद्धता तभी आ सकती है, जब कि उनके आदर्श एक समान हों।

यूरोप और अमेरिकामें पूँजीवादमूलक गणतन्त्रकी नींव कमज़ोर होकर किस प्रकार हिल चुकी है, और उसके दिन अब गिने-गिनाये हैं, इस तथ्यपर नरेन्द्रदेवजीने विशद रूपमें प्रकाश डाला है। पूँजीवाद अब उस स्थितिमें पहुँच चुका है, जब कि उसकी शक्ति अवनतिशील और दूसरोंका रक्तशोषण करनेवाली बन जाती है। ऐसी स्थितिमें समाज जो कुछ उत्पादन करता है, उसमें विश्रृंखलता फैल जाती है और पूँजीवादको अपने मालकी खपतके लिए बाज़ार नहीं मिलता। यूरोप और अमेरिकाका पूँजीवाद इस समय ठीक इसी दशापर पहुँच चुका है; अतएव उसका अन्त सन्निकट है।

साम्यवादी आन्दोलनके लिए भारतकी वर्तमान अवस्था उपयुक्त है या नहीं, इस सम्बन्धमें आपका मत है—"जिस देशकी जनताका आर्थिक शोषण द्वारा सर्वनाश हो चुका है, वहाँ साम्यवादी क्रान्ति फैलनेकी पूरी सम्भावना रहती है, चाहे वह देश औद्योगिक दृष्टिसे पिछड़ा हुआ ही क्यों न हो।" साम्यवादी

आन्दोलनकी कार्य-प्रणालीपर विचार करते हुए आपने कहा है कि हमारा वास्तविक कार्य होगा जनतामें राजनैतिक शिक्षाका प्रचार करना। जनताके बीच काम करके ही हम अपनेको प्रतिक्रियागामी प्रभावों (re-actionary influences) से बचा सकते हैं। शिक्षित श्रेणीके साम्यवादी कार्यकर्ता एक बड़ी भूल यह कर रहे हैं कि वे जनताको पीछे रखकर काम करना चाहते हैं। असल बात तो यह है कि हम जनताको बराबर उपदेश देनेके लिए तैयार रहते हैं, किन्तु स्वयं उनसे कुछ सीखना नहीं चाहते। हमें उन्हें अच्छी तरह समझनेकी कोशिश करनी चाहिए, जिससे हम उनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओंको सचाईके साथ व्यक्त कर सकें। अन्तमें आपने कहा है कि साम्यवादियोंको एक ऐसे विनयानुशासित दलका गठन करना होगा, जो यह जानता हो कि वह क्या चाहता है, और जो केवल विध्वंस करना ही न जानता हो, बल्कि निर्माण करना भी जानता हो।

—

फसल-पैदावारकी योजना

भारत-सरकार जून महीनेमें प्रान्तीय सरकारोंके प्रतिनिधियोंकी एक कानफरेन्स करनेका विचार कर रही है। इस कानफरेन्समें फसलकी पैदावारके सम्बन्धमें किसी योजना (Crop-planing) पर विचार किया जायगा। खेतीसे उत्पन्न होनेवाली चीज़ोंका—खासकर चावल और गेहूँका—मूल्य बहुत गिर गया है। इस मूल्य-ह्रासके दो कारण अनुमान किये जाते हैं ; एक तो पहलेकी अपेक्षा अधिक भूमिमें पैदावार और दूसरा विदेशके बाज़ारोंमें इन चीज़ोंकी माँगका कम होना। इनमें पहला कारण ठीक हो या न हो, किन्तु दूसरे कारणके ठीक होनेमें तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। बात यह है कि इस समय संसारके सब देश आर्थिक दृष्टिसे आत्मभरित होनेकी कोशिश कर रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि वे यथासम्भव इस बातकी चेष्टा कर रहे हैं कि देशकी अनिवार्य आवश्यकताएँ देशकी पैदावारसे ही पूरी हों। कुछ समय पहले तक पूर्वके कितने ही देश—सीलोन, मलाया, डच ईस्ट इंडीज़, जापान आदि चावलके लिए एकमात्र भारत और बर्मापर ही निर्भर करते थे। परन्तु अब ये सब देश खाद्य-पदार्थके सम्बन्धमें विदेशोंपर कम-से-कम निर्भर रहनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इस नीतिमें जापानको तो यहाँ तक सफलता मिली है कि वह अब अपने देशमें ही चावलकी काफ़ी पैदावार करने लगा है। इतना ही नहीं, बल्कि वहाँ चावलकी पैदावार इतनी बढ़ गई है कि जापान, कोरिया और फारमोसामें चावलकी खेतीमें दस फीसदी कमी करनेका विचार किया जा रहा है। इसके सिवा भारतको एशियाके बाज़ारोंमें श्याम और इंडो-चाइनाकी तथा यूरोपके बाज़ारोंमें इटली और स्पेनकी बढ़ती हुई प्रतियोगिताका सामना करना पड़ रहा है, अतएव चावलके मूल्यमें ह्रास होनेकी समस्यापर विचार करते समय इन बातोंपर भी ध्यान रखना होगा।

भारतीयोंके खाद्यान्नोंमें चावल और गेहूँ इन्हीं दो चीज़ोंका प्रमुख स्थान है। इस देशमें सबसे अधिक ज़मीनमें चावलकी पैदावार होती है, इसके बाद गेहूँ, जुआर, कपास, तेलहन, आदिका नम्बर है। ८ करोड़ २० लाख एकड़ भूमिमें चावल और ३ करोड़ २० लाख एकड़ भूमिमें गेहूँ पैदा होते हैं। रुपयेके हिसाबसे अगर मूल्य कूता जाय, तो चावलकी पैदावारका मूल्य २७८ करोड़, गेहूँका ४८ करोड़, तेलहनका ४१ करोड़, ईखका ३७ करोड़ और रुईका २२ करोड़ पड़ता है। यह मूल्य इस समयके घटी हुई दरपर होता है। यह अन्दाज़ लगाया गया है कि यदि चावलकी दर प्रतिमन एक आना भी बढ़ जाय, तो इससे वार्षिक आयमें लगभग ६ करोड़की वृद्धि होगी।

सन् १६२६ के सितम्बरसे विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी शुरू हुई। उस समयसे लेकर अब तक वस्तुओंके मूल्यमें जो ह्रास हुआ है, उसका अध्ययन

करनेसे मालूम होता है कि खेतीसे पैदा होनेवाली चीज़ोंके मूल्यमें जितना ह्रास हुआ, उतना तैयार माल (manufactured goods) के मूल्यमें ह्रास नहीं हुआ है। सन् १९२९ के पहलेके तीन वर्षोंमें मदरास-प्रान्तमें चावलका औसत मूल्य ६॥।-) प्रतिमन, बंगालमें ६॥=) प्रतिमन और बर्मामें ५॥) प्रतिमन था। यह मूल्य अब घटकर क्रमशः ३।), ३॥।) और ३॥) हो गया है। इस मूल्य-ह्रासका आर्थिक प्रभाव प्रान्त-विशेषकी पैदावारके अनुपातसे पड़ा है। बंगालकी आबादी ज़मीनमें सैकड़े ७८ भागमें चावलकी खेती होती है। बर्मामें सैकड़े ७१ भागमें, आसाममें सैकड़े ७० भागमें, बिहार-उड़ीसामें सैकड़े ४६ भागमें, मदरासमें सैकड़े ३२ भागमें, मध्य-प्रदेशमें सैकड़े २५ भागमें और संयुक्त-प्रान्तमें सैकड़े १४ भागमें चावलकी खेती होती है। वर्तमान मूल्यके हिसाबसे बंगालको चावल और पाट दोनों मिलाकर खेतीकी आमदनीमें सैकड़े ५४ से अधिककी क्षति हुई। चावलके मूल्यमें ह्रास होनेसे बर्माको सैकड़े ५४, बिहार-उड़ीसाको सैकड़े ४६, मदरासको सैकड़े ४४ और संयुक्त-प्रान्तको सैकड़े ३५ की क्षति हुई है।

चावलकी खेतीमें वृद्धि होनेके सम्बन्धमें अनुसन्धान करनेपर पता चला है कि सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत और बर्मामें सन् १९११ और सन् १९३४के बीच—इन २३ वर्षोंमें—चावलकी खेतीमें सैकड़े २ की वृद्धि हुई है ; किन्तु इसके साथ ही बिहार और उड़ीसामें चावलकी खेतीमें सैकड़े २०का ह्रास हुआ है। इस अवधिके अन्दर देशकी जनसंख्यामें जो वृद्धि हुई है, वह भी एक उल्लेखनीय बात है। चावलके स्थानमें ईख-तीसीकी खेती होने लगी है। आसाम और संयुक्त-प्रान्तमें भी चावलकी खेतीमें ह्रास हुआ है।

इसमें सन्देह नहीं कि चावल और गेहूँके मूल्यमें ह्रास होनेसे किसानोंको अत्यधिक क्षतिग्रस्त होना पड़ रहा है, और इस बातकी आवश्यकता है कि इनके मूल्यमें वृद्धि की जाय। किन्तु मूल्य-वृद्धिके सम्बन्धमें जो दो उपाय सोचे जा रहे हैं, उनमें पहला उपाय अर्थात् चावल और गेहूँकी पैदावारको नियन्त्रित करना, हमें उपयुक्त नहीं जान पड़ता। अभी कुछ समय पहले तक हम अधिकारियोंके मुँहसे यही सुना करते थे कि भारतमें काफ़ी तादादमें खाद्यान्न उत्पन्न नहीं होते। अब भी बर्मासे प्रतिवर्ष लाखों टन चावल भारतमें आता है। अतएव कानफरेन्सको इस बातपर अच्छी तरहसे विचार करना होगा कि आवश्यकतासे अधिक उत्पादन होनेकी बात कहाँ तक ठीक है। देशमें ऐसे लोगोंकी संख्या भी कम नहीं है, जिन्हें सालमें बहुत थोड़े दिन चावल या गेहूँ नसीब होता है। अमेरिका आदि देशोंके समान पैदावारको नष्ट करके कृत्रिम उपायोंसे वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि करनेके हम पक्षपाती नहीं हैं। इससे देशकी ग़रीब जनताका कष्ट और भी बढ़ जा सकता है।

रही चावलके बदले दूसरी फसल पैदा करनेकी बात, सो यह प्रस्ताव तभी कारगर हो सकता है, जब कि इसके सम्बन्धमें भूमि, मौसम और अर्थ-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर कर दी जायँ। मदरासमें चावलके बदले ईखकी खेती होने लगी है, और इस प्रकार पंजाबमें गेहूँके बदले तीसीकी खेती की जा सकती है। सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया है कि ओटावा-समझौताके अनुसार भारतकी तीसीके लिए इंग्लैण्डके बाज़ारमें काफ़ी माँग होगी। इन्हीं सब समस्याओंपर विचार करके कानफरेन्सको एक व्यापक योजना तैयार करनी होगी, जो कारगर हो सके। कुछ समय पहले शिमलेमें जो गेहूँ-कानफरेन्स हुई थी; उसके नतीजेको देखते हुए हमें प्रस्तावित कानफरेन्सके सम्बन्धमें यद्यपि विशेष आशा नहीं होती, तथापि इसके द्वारा हम शुभ परिणामकी ही आशा करेंगे।

—

बम्बईकी हड़ताल

बम्बईके कपड़ेकी मिलोंमें जो हड़ताल लगभग सवा महीने पहले शुरू हुई थी, वह अब तक ज्योंकी त्यों है। हड़तालकी स्थितिमें कोई विशेष परिवर्तन

नहीं हुआ है। हाँ, इस बीचमें कई बार पुलिस द्वारा हड़तालियोंपर गोलियाँ चलाई जा चुकी हैं, जिनसे कितने ही आदमी घायल हुए हैं। पुलिसकी ओरसे गोली चलानेका जो कारण बताया गया है, उसमें इस बातकी शिक़ायत की गई है कि हड़तालियोंने पुलिस-दलपर ईंट-पत्थर फेंके और काफी चेतावनी देनेपर भी जब वे अपनी हरकतोंसे बाज़ न आये, तो आख़िर मजबूर होकर पुलिसको उनपर गोलियाँ चलानी पड़ीं। यह हम मानते हैं कि कुछ उद्दण्ड प्रकृतिके हड़तालियोंने पुलिसवालोंपर ईंट-पत्थर बरसाये होंगे; किन्तु इतनेसे ही प्रत्येक अवसरपर गोली चलाये जानेका औचित्य सिद्ध नहीं होता। यदि इंग्लैण्डके मज़दूर इस प्रकार हड़ताल करके जलूस निकालते, सभा करते और पुलिस द्वारा रोके जानेपर उनमें से कुछ उद्दण्ड व्यक्ति पुलिसपर ईंट-पत्थर फेंकते, या अन्य प्रकारके उत्पात करते, तो क्या वहाँकी पुलिस गोली चलाकर उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा करती? बम्बईके मज़दूरोंने यदि शान्ति भंग की है, तो इसकी जिम्मेवारी भी अंशत: सरकारके ही ऊपर है, क्योंकि उसने शुरूमें ही उनके सब नेताओंको गिरफ्तार कर लिया, जिससे उनके ऊपर नियन्त्रण रखनेवाला उनका कोई पथ-प्रदर्शक नेता नहीं रह गया है। मज़दूर एक तो अनपढ़ ठहरे, तिसपर वे इस समय रोटीके मुहताज हो रहे हैं। ऐसी दशामें स्वभावत: ही उनके प्रति लोगोंकी सहानुभूति आकृष्ट होगी। शान्ति और व्यवस्थाको क़ायम रखना यदि सरकारका फर्ज़ है, तो इसके साथ-साथ लाखों मज़दूरोंको भूखों मरनेसे बचाना भी उसका कर्तव्य है। 'बम्बई मिल ओनर्स ऐसोसियेशन'की वार्षिक सभामें भाषण देते हुए उसके सभापति मि० मोदीने मज़दूरोंकी हड़तालके प्रति जैसी अकड़ दिखाई है, वह मिल-मालिकोंकी क्षुद्रतापूर्ण मनोवृत्ति और उनकी हृदयहीनताकी द्योतक है। इस प्रकारकी मनोवृत्ति धारण करनेवाले मिल-मालिक जनताकी सारी सहानुभूतिसे अपनेको वञ्चित कर देते हैं। आज चूँकि सरकारकी प्रबल शक्ति उनकी पीठपर है, इसलिए पूँजीवादके गर्वमें वे भले ही मज़दूरोंकी उपेक्षा करें; किन्तु मिल-मालिकोंको यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रमजीवियोंकी विशृंखलित शक्तियाँ जिस दिन संबद्ध हो जायँगी, उस दिन वे उनकी माँगोंको ठुकरानेका साहस नहीं कर सकते; पूँजीवाद और सत्ताके अहंकारमें मनुष्यताको बहुत दिनों तक दबाकर नहीं रखा जा सकता।

बम्बई-सरकारने हड़तालके प्रति जो रुख़ धारण किया है, उसपर हमें महान आश्चर्य होता है। जनताके माँ-बाप बननेवाली सरकारका क्या यह कर्तव्य नहीं है कि वह इस झगड़ेमें बीच-बचाव करके इसका निपटारा कर दे? सरकारके रुख़को देखकर यह सन्देह हो सकता है कि वह मिल-मालिकोंका साथ दे रही है।

फ्रांस-रूस-मैत्री

फ्रांस, रूस और मित्र-राष्ट्रोंके बीच एक नवीन मैत्री-सम्बन्ध स्थापित होनेके सम्बन्धमें जो समाचार प्रकाशित हुआ है, उससे यूरोपकी राजनीतिक जटिलता घटनेके बजाय और बढ़ेगी ही। रूसके परराष्ट्र-सचिव मो० लिटविनाफ और फ्रांसके परराष्ट्र-सचिव मो० बर्थोके बीच जो वार्तालाप हुआ है, उसका मुख्य विषय था रूस और फ्रांस विपदग्रस्त होनेपर एक दूसरेकी सहायता करें, इस सम्बन्धमें कोई समझौता करना। सोविएट रूसको इस समय जापानकी ओरसे विशेष ख़तरा दिखाई पड़ रहा है। इसका कारण यह है कि रूसके पूर्वी सीमान्तपर जापानने मंचूरियापर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया है, और अब वह अपने इस अधिकारको पेकिंग और मंगोलिया तक विस्तृत करना चाहता है। जापानकी हरकतोंको देखते हुए अनेक राजनीतिज्ञोंका यह विश्वास है कि निकट-भविष्यमें रूस और जापानके बीच युद्ध होना अवश्यम्भावी है। अभी हालमें जापानने चीनके मामलेमें संसारके राष्ट्रोंको जो चेतावनी दी थी, उससे मास्कोकी राजनीतिक मंडलीमें बड़ी खलबली मच गई थी। चीनपर

जापानका नियन्त्रण हो, यह बात किसी भी हालतमें रूसके लिए वांछनीय नहीं हो सकती।

एक ओर तो सुदूर-पूर्वमें रूस-जापान-संघर्षकी यह निश्चित सम्भावना और दूसरी ओर यूरोपमें जर्मनी और पोलैगडकी मैत्री रूसके लिए आशंकाका कारण हो रही है। रूसको इस बातका भय है कि जिस समय वह सुदूर-पूर्वमें जापानके साथ जूझता रहेगा, उस समय जर्मनी और पोलैगड उसके प्रदेशोंपर आक्रमण कर सकते हैं, इसलिए रूसके पश्चिमी सीमान्तकी सुरक्षाके लिए यूरोपके राष्ट्रोंकी मैत्री आवश्यक है। जबसे जापान और जर्मनी राष्ट्र-संघसे अलग हो गये हैं, तभीसे रूसके परराष्ट्र-सचिव मो० लिटविनाफ इस बातकी चिन्तामें हैं कि यूरोपके विभिन्न राष्ट्रोंके साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया जाय। यद्यपि रूसने सुदूर-पूर्वमें अपनी सैनिक शक्ति बहुत-कुछ सुदृढ़ कर ली है, और वह जापानके मुक़ाबलेमें खड़ा भी हो सकता है, फिर भी रूस अभी शान्ति चाहता है, जिससे वह जनताकी आर्थिक उन्नतिकी योजनाको कार्यान्वित कर सके। इन्हीं सब कारणोंसे रूस जर्मनीके ख़तरेसे अपने पश्चिमी सीमान्तको सुरक्षित रखना चाहता है। मो० लिटविनाफने रूस, फ्रांस और क्षुद्र मित्र-राष्ट्रों (ज़ेकोस्लोवाकिया, जुगोस्लेविया और रूमानियाके) बीच एक समझौता करनेका प्रस्ताव किया है। इस समझौतेमें अन्य राष्ट्र भी शामिल हो सकेंगे। पोलैगड और इटली इस समझौतेका विरोध कर सकते हैं; किन्तु यदि इंग्लैगड इस समझौतेमें शामिल हो जायगा, तो इटली उसका विरोध नहीं करेगा। फ्रांस इंग्लैगडको प्रस्तावित समझौतेमें शामिल करनेकी पूरी कोशिश करेगा। इसके साथ ही फ्रांस इस बातकी भी कोशिश कर रहा है कि रूस राष्ट्र-संघका सदस्य बन जाय। मो० लिटविनाफने भी राष्ट्र-संघमें शामिल होनेकी इच्छा प्रकट की है। ऐसी स्थितिमें यह बहुत सम्भव है कि रूस राष्ट्र-संघमें शामिल हो जाय; किन्तु इससे राष्ट्र-संघकी शक्ति पुनरुज्जीवित नहीं हो सकती।

यूरोपकी राजनीतिकी ये महत्त्वपूर्ण घटनाएँ इस बातकी स्पष्ट द्योतक हैं कि विभिन्न देश भावी युद्धकी आशंकासे गुटबन्दी द्वारा उसी प्रकारका शक्ति-सामंजस्य (Balance of Power) स्थापित करना चाहते हैं, जैसा गत महासमरके पूर्व वर्तमान था। यह गुटबन्दी राष्ट्रोंको युद्धकी ओर ले जानेवाली है, शान्तिकी ओर नहीं।

—

युद्ध-ऋणकी समस्या

युद्ध-ऋणकी किस्त चुकानेकी तारीख़ १५ जून ज्यों-ज्यों निकट आती जाती है, त्यों-त्यों युद्ध-ऋणकी समस्या जटिल रूप धारण करती जाती है। इंग्लैगडके बजटमें इस बार बचत होनेपर भी युद्ध-ऋणकी किस्त चुकानेकी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। इससे अमेरिकाके राजनीतिज्ञोंमें खलबली मच गई है। इंग्लैगड नाममात्रकी कुछ रकम देकर किसी प्रकार अपनी लाज बचाना चाहता है। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट इसपर राज़ी भी हो गये हैं; परन्तु अमेरिकाकी राष्ट्रसभा (कांग्रेस) इस व्यवस्थासे सहमत नहीं है। वह किस्तकी पूरी अदायगी चाहती है। इस विषयको लेकर राष्ट्रपति और राष्ट्रसभाके बीच लिखा-पढ़ी चल रही है, और सम्भव है कि अन्तमें राष्ट्रपतिकी ही सम्मति क़ायम रह जाय; किन्तु इससे तो सिर्फ़ इंग्लैगडकी कठिनाई हल हो सकती है। इंग्लैगडके सिवा अन्यान्य राष्ट्र जो अमेरिकाके ऋणी हैं, उनका क्या होगा? अमेरिकाकी राष्ट्र सभाने यह प्रस्ताव किया है कि यूरोपके जो राष्ट्र युद्ध-ऋणकी किस्त चुकानेमें आनाकानी करें, उनके साथ जॉनसन क़ानून (Johnson Act) के अनुसार व्यवहार किया जाय। इस क़ानूनके अनुसार वे सब राष्ट्र, जो युद्ध-ऋण चुकानेमें असमर्थ होंगे, अमेरिकाके Capital market से वंचित कर दिये जायँगे। किन्तु इससे अमेरिकाको भी लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि जिन देशोंकी औद्योगिक उन्नति विशेषतः विदेशी पूँजीपर निर्भर करती है, वे

यदि अमेरिकाकी पूँजीसे वंचित कर दिये जायँगे, तो इसका परिणाम यही होगा कि उन देशोंकी आर्थिक प्रगति रुक जायगी, और इसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रगतिपर भी पड़े बिना नहीं रह सकता। इसलिए अमेरिकाकी भी भलाई इसीमें है कि वह युद्ध-ऋणकी समस्याको उदारतापूर्वक हल करनेकी कोशिश करे। अमेरिकाकी यह ज़िद कि युद्ध-ऋण सोनेके रूपमें ही चुकाया जाय, किसी प्रकार भी उचित नहीं कही जा सकती। युद्ध ऋण चुकानेका सबसे सुगम मार्ग है कच्चे या तैयार मालका आदान-प्रदान; किन्तु अमेरिकाने स्वदेशी उद्योग-धन्धोंकी रक्षाके लिए विदेशी वस्तुओंकी आमदनीपर अधिक कर लगाकर इस मार्गको अवरुद्ध कर दिया है। ऐसी दशामें ऋण-ग्रस्त राष्ट्रोंके लिए युद्ध-ऋणका सोनेके रूपमें चुकाना स्वभावत: एक कठिन समस्या हो गया है। राष्ट्रोंके पास उतना सोना है भी तो नहीं। संसारका अधिकांश स्वर्णधन तो कुछ ही राष्ट्रोंके बैंकोंमें जमा है, जिनमें अमेरिका सर्वप्रधान है, इसलिए सब राष्ट्रोंके लिए यह सम्भव नहीं कि वे सोनेके रूपमें युद्ध-ऋणकी किस्त चुकावें। युद्ध-ऋणके सम्बन्धमें ऋणग्रस्त राष्ट्रोंकी एक सम्मिलित बैठक करनेका प्रस्ताव किया गया है। देखें इस प्रस्तावके कार्यरूपमें परिणत होनेपर इस जटिल समस्याका कहाँ तक समाधान होता है।

—

बलगेरियाका विद्रोह

कुछ समयसे मध्य-यूरोपकी राजनीतिमें जो नाटकीय परिवर्तन हो रहे हैं, उसका एक ताज़ा उदाहरण बलगेरियाकी राज्यक्रान्ति है। यह राज्यक्रान्ति आकस्मिक होनेके साथ-साथ चमत्कारपूर्ण भी है। कारण, बिना किसी रक्तपातके यह विद्रोह सफल हुआ है, और वह भी टेलिफोन और बेतारके तारकी सहायतासे। बेतारके तार द्वारा पुराने मन्त्रियोंको पदच्युत किया गया और नई 'राष्ट्रीय' सरकारकी घोषणा की गई। राजा बोरसको नवीन शासन-विधानका समर्थन करनेके लिए मजबूर किया गया। इस नवीन शासन-विधानका उद्देश्य दलगत शासनका उच्छेद, पार्लामेंटका अन्त, विरोधियोंका दमन, समाचारपत्रोंपर कड़ाई और कम्यूनिष्टोंका विध्वंस बताया गया है। इसके सिवा मेसिडोनियाके स्वाधीनता-आन्दोलनको दबाकर स्लैव राष्ट्रोंके साथ मैत्री स्थापित करना भी इसकी नीति होगी। मेसिडोनियाके स्वाधीनता-आन्दोलनके नेता मो० मिहाईलोफकी गिरफ्तारी इसी नीतिकी द्योतक है। देशकी आन्तरिक स्थिति और राजनीतिक दलबन्दियोंके कारण बलगेरियामें किसी स्थायी सरकारका टिका रहना असम्भव हो गया था। नये प्रधान-मन्त्री जेनरल गुरुगुफने अपने एक वक्तव्यमें कहा है— "राजनीतिक और नैतिक दुरवस्था अत्यन्त भयावह हो उठी थी, और देशके असम्भव स्थितिमें पहुँच जानेका खतरा था।" इस प्रकार मध्य-यूरोपके एक और देशमें अधिनायकतन्त्र (Dictatorship) की स्थापना हुई है। बलगेरियाका यह विद्रोह साफ़-साफ़ बता रहा है कि यूरोपके देशोंमें प्रचलित प्रतिनिधिमूलक शासनके प्रति जनताकी आस्था नहीं रह गई है, और मध्य-यूरोपके राष्ट्र आर्थिक दृष्टिसे दिवालिया हो रहे हैं। बलगेरियाकी स्थितिसे लाभ उठाकर इटली और फ्रांस दोनों उसके ऊपर अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं। जर्मनीके नाज़ी इस बातपर फूले नहीं समाते कि मध्य-यूरोपके एक और देशमें अधिनायकतन्त्रकी स्थापना हुई है। कम्यूनिज्मके खतरेसे बचनेके लिए यूरोपके राष्ट्र एक-एक करके फैसिज्म (Fascism) की शरण ले रहे हैं। प्रजातन्त्रशासनको धता बताकर जनताके अधिकारोंको रौंदा जा रहा है। यूरोपकी राजनीतिमें इस प्रकारके विस्मयजनक परिवर्तन देखकर यह प्रश्न सहज ही उठता है कि यूरोप किधर जा रहा है?

—

रूस और राष्ट्र-संघ

क्या सोविएट रूस राष्ट्र-संघमें शामिल होगा ? यह प्रश्न है, जो इस समय यूरोपके कई देशोंमें राजनीतिक चर्चाका एक मुख्य विषय हो रहा है। कई राष्ट्र खास तौरसे इस बातके लिए उद्योग कर रहे हैं कि सोविएट रूस राष्ट्र-संघ (League of Nations) का बाक़ायदा सदस्य बन जाय। बोल्शेविक रूसके प्रति राष्ट्रोंके रुखमें जो यह परिवर्तन हुआ है, उसका कारण राजनीतिक और आर्थिक दोनों है। सोविएट रूस अब इस बातको समझने लगा है कि उसकी राजनीतिक और आर्थिक शासन-व्यवस्थाके कारण यूरोपके राष्ट्र पहलेके समान उसके शत्रु नहीं रह गये हैं। आर्थिक कारणोंसे मजबूर होकर उन्हें भी रूसके साथ वाणिज्य-समझौता करनेकी ज़रूरत मालूम होने लगी है। इधर यूरोपके राष्ट्रोंमें जिस तरह शक्ति-सामंजस्य (Balance of Power) के लिए संग्राम चल रहा है, उससे उन्हें भी इस बातकी उत्कंठा रहती है कि राष्ट्र-संघमें रूसके शामिल हो जानेसे वह किसी-न-किसी शक्तिका पक्ष अवलम्बन करेगा ही। रूसके चतुर राजनीतिज्ञ भी यूरोपकी वर्तमान स्थितिसे लाभ उठानेमें चूकना नहीं चाहते। इसलिए सोविएट रूस भी राष्ट्रोंके साथ अलग-अलग वाणिज्य-समझौता कर रहा है। फ्रांस और अमेरिकाके साथ तो रूसका मैत्री सम्बन्ध है ही। इंग्लैण्डके साथ भी रूसका वाणिज्य-समझौता अभी हालमें हुआ है, जिससे राजनीतिक रुखमें भी बहुत-कुछ परिवर्तन होनेकी सम्भवना है। फ्रांस तो हृदयसे यह चाहता है कि नाज़ी जर्मनीके विरुद्ध पूर्वीय यूरोपमें उसका कोई प्रभावशाली सहायक हो। और सोविएट रूस भी शायद इस स्थितिको अपने लिए वांछनीय समझेगा कि वह फ्रांस और जर्मनी दोनोंकी दृष्टिमें शक्तिशाली बन कर रहे। युद्धके पूर्व ज़ारके समयमें भी तो रूसकी यही स्थिति थी। सुदूर-पूर्वमें चीन और मंचूरियाको लेकर जापानकी साम्राज्य-विस्तार-लालसा जैसी प्रबल हो रही है, उसे देखते हुए सोविएट रूस भी यह नहीं चाहता कि वह अकेला होकर रहे। सुदूर-पूर्वमें रूस और जापानके बीच मनोमालिन्य बढ़ता ही जा रहा है, अतएव आत्म-रक्षाके लिए रूस यूरोपके कुछ राष्ट्रोंको अपना सहायक और मित्र बनाकर रखना चाहता है।

इन सब बातोंपर विचार करते हुए इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं, यदि सोविएट रूस राष्ट्र-संघका सदस्य बनकर एक बार फिर यूरोपके राष्ट्रोंकी गुटबन्दीमें शामिल होना चाहता हो। किन्तु इसमें सन्देह है कि रूसके राष्ट्र-संघमें शामिल होनेसे संघके मृतप्राणोंमें नवजीवनका संचार हो जायगा ; अभी इस मार्गमें अनेक बाधाएँ हैं। यूरोपके कुछ छोटे-छोटे राष्ट्र इसके विरोधी भी हैं।

—

सावधान !

गत वर्ष युद्ध-ऋणकी किश्त चुकानेके लिए जब अमेरिकाने इंग्लैण्डसे चाँदी लेना क़बूल किया, तो इंग्लैण्डने भारतसे दो करोड़ औंस चाँदी खरीदकर सीधे अमेरिका भेज दी। इस मामलेमें न तो भारत-सरकारकी राय ली गई और न भारतीय व्यवस्थापिका परिषद्‌की। अमेरिकासे इंग्लैण्डको चाँदीका कितना मूल्य मिला और इंग्लैण्डने भारतको कितना मूल्य दिया, इस विषयपर ब्रिटिश सरकार या भारत-सरकारने जनताके घोर आन्दोलन करनेपर भी प्रकाश डालनेकी ज़रूरत नहीं समझी ! पीछे पता चला कि अमेरिकाने इंग्लैण्डको पचास पेंस प्रति औंसके हिसाबसे मूल्य चुकती दिया है ; किन्तु ब्रिटेनने भारतको पचास पेंस प्रति औंसके हिसाबसे न देकर उससे बहुत कम, यानी २१ पेंसके हिसाबसे, दिया। इस मामलेमें इंग्लैण्डको लगभग एक करोड़ रुपयेका मुनाफ़ा हुआ, जो मुनाफ़ा न्यायत: भारतको मिलना चाहिए था। अब इस बार फिर आगामी १५ जूनकी किस्त अमेरिकाको चाँदीके रूपमें चुकानेका इंग्लैण्ड विचार कर रहा है। राष्ट्रपति रूज़वेल्टने चाँदीके मूल्यमें वृद्धि करनेके लिए अमेरिकाकी मुद्राके धात्विक आधारमें चौथाई

अंश चाँदी रखनेकी जो व्यवस्था की है, उससे यह बहुत सम्भव है कि अमेरिका युद्ध-ऋणकी किश्तमें इंग्लैण्डसे फिर चाँदी स्वीकार कर ले। अतएव भारतको सावधान रहना चाहिए कि यदि इंग्लैण्ड अमेरिकाको चाँदीके रूपमें युद्ध-ऋणकी किश्त चुकावे, तो इसके लिए वह भारतके संरक्षित कोषसे चाँदी नहीं निकाल सके। अन्यथा इस बार भी इस ग़रीब देशको करोड़ों रुपयोंकी क्षति सहन करनी पड़ेगी। देशके राजनीतिज्ञोंको समय रहते इस विषयमें सावधान हो जाना चाहिए।

—

जापान और मंचूरिया

चीनको युद्धमें परास्त करके जापानने मंचूरियाकी राजगद्दीपर चीनके ही भूतपूर्व सम्राट् राजा हेनरी पुईको बैठाया। राजा हेनरी पुई जापानके हाथकी कठपुतली हैं, और वे नाममात्रके राजा हैं। मंचूरियाके शासनपर वास्तविक नियन्त्रण जापानियोंका है, और जापान ही वहाँका कर्ता-धर्ता-विधाता है। साम्राज्यवादी जापानने लोकलज्जासे बचनेके लिए राजा हेनरी पुईको नाममात्रका राजा बना दिया था ; परन्तु जापानका वास्तविक अभिप्राय कुछ और ही था, और वह अभिप्राय अब क्रमशः प्रकट हो रहा है। मांचूको-सरकारके जितने बड़े-बड़े पद हैं, उन सबपर जापानी भर्ती हो रहे हैं। शंघाईके हालके एक तारसे मालूम होता है कि जापान मंचूरियापर सोलह आना अपना दख़ल जमानेका प्रबन्ध कर रहा है। राजा हेनरी पुईको शीघ्र ही राजसिंहासन छोड़ना होगा। इस प्रकार साम्राज्यवादी जापान अपनी साम्राज्य-विस्तार-लालसाका वास्तविक रूप प्रकट करके मंचूरियाको उदरस्थ कर जायगा, और फिर इसके बाद सुदूर-पूर्वके अन्य प्रदेशोंपर उसकी शनिदृष्टि पड़ेगी। इधर बेचारे इन कठपुतली राजा हेनरी पुईकी क्या दशा होगी, यह भगवान ही जाने। शायद वे राष्ट्र-संघका द्वार खटखटायँगे ; किन्तु राष्ट्र-संघके दरबारमें निर्बलोंकी सुनवाई थोड़ी ही होती है। वहाँ तो 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस'के सिद्धान्तका ही बोलबाला है।

—

'कस्मै देवाय?'

अप्रैलके अंकमें प्रकाशित हमारे 'कस्मै देवाय ?' शीर्षक लेखपर जो चर्चा चल पड़ी है, उसके विषयमें हमें कई बातें अधिक स्पष्टतापूर्वक कहनी हैं। सबसे पहली बात यह है कि जनताके हितके लिए साहित्य उत्पन्न करनेका अर्थ हमने यह नहीं समझा था कि वैसा साहित्य उत्पन्न किया जाय, जिसमें कोरमकोर किसान-मज़दूरोंकी ही बातें हों और जिसे किसान और मज़दूर समझ सकें।

दुर्भाग्यवश अभी किसान-मज़दूरोंमें शिक्षाका प्रायः अभाव है, और उन तक अपना सन्देश भेजनेके लिए हमें बीचकी श्रेणीके आदमियोंसे काम लेना ही पड़ेगा। हमने अपने लेखमें लिखा भी था—"हम उन ग्रामीण शिक्षकोंके लिए साहित्य उत्पन्न करना चाहते हैं, जिनके द्वारा ही छन-छनकर हमारे विचार गाँववालों तक पहुँच सकते हैं।"

दूसरी बात हमने अपने मईके अंकमें स्पष्टतया लिख दी थी, और उसे हम यहाँ दुहरा देना चाहते हैं। हमने लिखा था—"हम यह स्वीकार करते हैं कि उक्त लेखमें कई स्थलोंपर कठोर भाषाका प्रयोग किया गया है, जो हमारी प्रवृत्ति और नीतिके सर्वथा प्रतिकूल है ; पर मनोवैज्ञानिक कारणोंसे मजबूर होकर हमें ऐसा करना पड़ा था। लेख वास्तवमें एकांगी है, और हम यह भी मानते हैं कि दूसरे पक्षकी ओरसे भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है। फिर भी लेखमें सत्यका काफ़ी अंश है, और उसके स्वागतको देखकर हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि हिन्दी-जनताके दृष्टिकोणमें अब अन्तर आता जाता है, और वह पतनकारी हलकेपनको साहित्यके लिए हानिकारक समझने लगी है।"

इसी लेखमें हम अन्यत्र श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारके

योग्यतापूर्ण लेखको छाप रहे हैं, और पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे उसे ध्यानपूर्वक पढ़ें। दरअसल यह भेद मनोवृत्तिका है। श्री चन्द्रगुप्तजी लिखते हैं :—

"एक सुन्दरी, सुशिक्षिता और महत्वाकांक्षी युवतीकी अभिलाषा थी कि वह रानी बन जाय। अकस्मात् एक राजा साहबकी निगाह उसपर पड़ी। राजा साहबने उस युवतीको अपने जालमें फाँस लिया। विवाह भी हो गया और कुछ समयके लिए राजा साहबके हृदयपर एकाधिकार जमा लेनेके साथ-ही-साथ अपार ऐश्वर्य तथा अधिकारोन्मादका भोगकर मानो उस युवतीका जन्म सफल हो उठा; परन्तु राजा साहबका चलित चित्त शीघ्र ही किसी और सुन्दरीपर जा गिरा। थोड़े ही दिनों बाद, अपार ऐश्वर्यके रहते भी, वह युवती संसारकी सबसे अधिक अभागिनी स्त्रियोंकी-सी दशामें जा पहुँची। मेरी समझमें नहीं आता कि एक कहानी-लेखक इस दुःखी 'देव' की आराधना करके अपनी कलाको सफल क्यों न करे!"

राजा साहबकी प्रेमिका इस 'महत्वाकांक्षी' 'सुन्दरी' 'सुशिक्षिता' 'युवती'की कथाको जो महानुभाव लिखना चाहते हैं, वे भले ही लिखें, हम उन्हें रोकने नहीं जायँगे; पर जो लोग हमारे विचारोंसे सहमत हैं, उनसे हम कहेंगे कि इसी अंकमें प्रकाशित 'नरमेध' नामक गल्पमें मुँगियाकी रामकहानी पढ़ें। देशमें उक्त प्रकारकी महत्वाकांक्षी युवतियोंकी संख्या कितनी है, जो रानी बनना चाहती हैं? भारतवर्षमें कुल जमा सात सौके लगभग रियासतें हैं, और उनमें यदि सभी रियासतोंके राजा श्रीमान झाबुआ-नरेशके आदर्शका अनुकरण करके नौ-नौ विवाह भी करें, तो भारतवर्षमें कुल रानियोंकी संख्या छै हज़ार तीन सौसे अधिक न होगी। और अविवाहित स्त्रियोंकी संख्या ६ करोड़से अधिक है। इस प्रकार अंकगणितके अनुसार रानी बननेका दुर्भाग्य नौ हज़ार पाँच सौ चौबीस स्त्रियोंमें सिर्फ एकको ही मिल सकता है। अब सवाल यह है कि हम उन अस्वाभाविक (abnormal) दिमाग़की युवतियोंके चरित्र-चित्रण करें, या मुँगिया जैसी बहनोंका, जो लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें पाई जाती हैं? हमारी सारी शिकायत तो यही है कि अभी तक हमारे लेखक 'महत्वाकांक्षी' युवतियोंको आवश्यकतासे अधिक महत्व देते रहे हैं, और बेचारी मुँगिया और उनकी बहनोंको सर्वथा उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते रहे हैं। हम इस क्रमको उलट देना चाहते हैं।

हम साहित्यको सीमित कदापि नहीं करना चाहते। हाँ, उसकी गतिमें परिवर्तन अवश्य लाना चाहते हैं। अब तक साहित्य-सरिता मध्यम तथा उच्च श्रेणीके अमीर आदमियोंके मनोरंजन रूपी परिमित रेगिस्तानकी ओर बहती रही है, अब हम उसे साधारण जनताके असीम विस्तृत क्षेत्रकी ओर ले जानेके लिए लेखकोंसे अनुरोध कर रहे हैं। हम जानते हैं कि हमारी शक्ति अत्यल्प है; लेकिन साथ ही साथ हम यह भी जानते हैं कि जो विचार 'कस्मै देवाय' में प्रकट किये गये हैं, उनके समर्थकोंकी संख्या बहुत काफ़ी है। दरअसल बात यह है कि 'कस्मै देवाय' शीर्षक लेखमें कोई नई बात नहीं लिखी गई। जो बात हिन्दीके नवयुवक लेखक अब नित्यप्रति अनुभव करने लगे हैं, वही लेखबद्ध कर दी गई है। हमारा विश्वास है कि जो महानुभाव आज हमारा विरोध कर रहे हैं, वही चार-पाँच वर्ष बाद इसी पथका अनुसरण करेंगे। आख़िर हम लोग प्रभावशाली ढंगसे लिख उसी चीज़को सकते हैं, जिसकी हमें अनुभूति होती है। हिन्दीके ऐसे लेखक कितने हैं, जो रानी बननेकी आकांक्षा रखनेवाली युवतियोंके सम्पर्कमें आ सकें? जब देशमें किसानों और मज़दूरोंकी शक्ति बढ़ेगी, और यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि भविष्यमें यह ताक़त निरन्तर बढ़ती ही जायगी, उस समय हिन्दीके अधिकांश लेखक लेखिकाएँ किसानों और मज़दूरोंके विषयमें लिखना अपने लिए गौरवजनक समझेंगी।

जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं कि हम हिन्दी-साहित्यमें पूर्ण अराजकवादके पक्षपाती हैं।

हम न तो किसीपर शासन करना चाहते हैं और न किसीसे शासित होना चाहते हैं। जो चीज़ हमें अच्छी लगती है, जिसे हम जनताके लिए हितकारक समझते हैं, उसे डंकेकी चोट कहेंगे ; जो आपको अच्छी लगे, आप कहिये।

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि समयकी गति हमारे पक्षमें है। साथ ही, हम यह भी मानते हैं कि लोकहितकी सुदृढ़ चट्टानपर स्थित सिद्धान्तोंका मुकाबला वे लोग कदापि नहीं कर सकते, जो कलाको बड़े आदमियोंके मनबहलावकी एक चीज़ समझ बैठे हैं। और उन आदमियोंके हथकंडोंको हिन्दी जनता अब भलीभाँति समझ गई है, जिनका उद्देश्य येनकेन-प्रकारेण प्रसिद्ध होना ही है।

रहा 'कला' और 'कलाकार' का प्रश्न, तो उसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे की है। जीवनकी सजीव कलाको हम साहित्यिक अर्थमें 'कला' कहलानेवाली चीज़से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु मानते हैं। पूज्य द्विवेदीजीने रशियन कलाकार तुर्गनेवकी तरहका कोई अमर उपन्यास भले ही न लिखा हो, और श्रद्धेय गणेशजीने भले ही कवीन्द्र रवीन्द्रकी-सी प्रभावशाली कविता न बनाई हो; पर गणेशजीका जीवन स्वयं ही अत्युच्च कोटिका काव्य था, जिसके विषयमें रचना करके कोई भी प्रतिभाशाली कवि अपने जीवनको धन्य मान सकता है, और पूज्य द्विवेदीजी यदि पुष्पराज नहीं हैं तो साहित्यिक उपवनके माली अवश्य हैं, जिन्होंने अपना ख़ून-पसीना एक करके इस क्षेत्रको जरखेज़ बनाया है, और जिसे उनकी शक्तिने बीज और खाद बनकर हराभरा बनानेमें भरपूर मदद दी है। हमारी समझमें वे कलाकार ही नहीं, कलाकारोंके पिता भी हैं। कलाकी पुरानी परिभाषाको हमें अब प्रणाम कर देना पड़ेगा। जब आपकी आँखोंके सामने मानवताका घोर अपमान हो रहा हो, करोड़ों व्यक्ति जानवरोंकी तरह जिन्दगी बसर कर रहे हों, असंख्य बालक-बालिकाओंका जीवन नष्ट हो रहा हो, उस समय आप वीणा या हारमोनियमपर मधुर संगीतकी ध्वनि सुननेमें मस्त हों और 'कला'-'कला' चिल्ला रहे हों, तो आपको प्रशंसाके पात्र न समझकर हम दयाके ही पात्र समझेंगे। ऐसे भी सनकी आदमी देखे गये हैं, जो अपने घरमें मृत्यु होते हुए शतरंजके खेलमें व्यस्त रहते हैं। वे भी कह सकते हैं कि शतरंजका खेल एक कला है। हम भी मानते हैं कि अवश्य ही वह एक कला है, पर उस वक्त वह समयके सर्वथा प्रतिकूल मानी जायगी, जब कि घरमें मुर्दा रखा हुआ हो।

'कला' वक्त काटनेका ज़रिया नहीं है, 'कला' अपनी अन्तरात्माकी ध्वनिको बन्द करनेके लिए अफीमका नशा नहीं है, 'कला' अपनी कायरताको छिपानेके लिए सुसंस्कृत आवरण नहीं है, 'कला' शारीरिक परिश्रमसे बचनेके लिए—जब कि करोड़ों आदमी उसके बोझसे दबे जा रहे हैं—साधन नहीं है। 'कला' बेवक्तकी रागिनी नहीं है, कुसमयका आलाप नहीं। कलाको थोड़ेसे अस्वाभाविक (abnormal) आदमियोंकी दासीबना देना उसके साथ व्यभिचार करना है। कला प्रतिभाशाली व्यक्तिके हाथमें एक ऐसा हथियार है, जिसके द्वारा वह ज़ालिमोंको निस्तेज कर सकता है, मूकों और अनाथोंको त्राणी दे सकता है, और संसारमें हिंसाके बजाय अहिंसाका, द्वेषके बजाय प्रेमका और पाशविक बलके बजाय नैतिक बलकी स्थापना कर सकता है।

बाक़ी जो कुछ ऊटपटाँग कलाके नामपर छपता है, वह ढोंग है, ढकोसला है, और उसकी पोल खोलना प्रत्येक जिम्मेदार व्यक्तिका परम धर्म है।

कवियोंसे प्रार्थना

'विशाल भारत'में प्रकाशनार्थ जो महानुभाव अपनी कविताएँ भेजें, उनकी सेवामें हमारा विनम्र निवेदन है कि वे उनकी प्रतिलिपि अपने पास रख लें। ऐसा करनेसे उन्हें और हमें भी सुविधा होगी।

निवेदन

'विशाल भारत' के अनेक प्रेमियोंने हमसे यह अनुरोध किया है कि हमारे तथा हमारे पत्रके विरुद्ध जो बातें प्रायः पत्रोंमें छपती रहती हैं, उनका हम उत्तर दें। कई महानुभावोंने हमसे यह भी कहा है—"आप स्वयं कुछ भी न लिखें ; पर हमें मसाला ही दे दें, जिससे हम तो लिख सकें।" ऐसे महानुभावोंको हमने सदा यही उत्तर दिया है—"अपने आक्षेपकोंको उत्तर देनेमें हम समर्थ हैं। हम किसीसे नहीं कहते कि वह हमारे पत्रमें लिखे, और जब तक हम स्वयं कुछ नहीं लिखना चाहते, तब तक किसी दूसरेसे लिखाना हम कायरता समझते हैं।"

एमर्सनने अपने निबन्ध Compensation (क्षति-पूर्ति) में एक बात बड़े मार्केकी लिखी है—

"Blame is safer than praise. I hate to be defended in a newspaper. As long as all that is said is said against me, I feel a certain assurance of success. But as soon as honeyed words of praise are spoken for me, I feel as one that lies unprotected before his enemies."

अर्थात्—'निन्दा उतनी खतरनाक नहीं है, जितनी स्तुति। मुझे इस बातसे घृणा है कि कोई किसी समाचारपत्रमें मेरे बचावके लिए लिखे। जब तक पत्रोंमें निकलनेवाली चीज़ें मेरे विरुद्ध रहती हैं, तब तक तो मुझे यह विश्वास रहता है कि मैं सफल होऊँगा, लेकिन ज्यों ही मेरी प्रशंसामें मीठे-मीठे शब्द छपने लगते हैं, उसी समय मुझे यह प्रतीत होने लगता है कि मैं अपने शत्रुओंके सम्मुख अरक्षितावस्थामें पड़ा हुआ हूँ।"

व्यक्तिगत वाद-विवादमें समयका अपव्यय ही होता है, और बदला लेनेकी नीतिके भी हम सर्वथा विरोधी हैं। यदि कोई मुसाफिर हावड़ेसे दिल्ली जाना चाहे, और उसे मार्गमें ही लिलुआ, गया, बर्दवान, मुग़लसराय, इलाहाबाद इत्यादि स्टेशनोंपर झगड़ा करनेवाले आदमी मिल जायँ, और उनमें से हरएकसे वह फ़ौजदारी करने लगे, तो वह दिल्ली कभी भी न पहुँच सकेगा।

हाँ, जब किसी ऐसे आततायीसे पाला पड़ जाय, जो ज़बरदस्ती हमें ट्रेनमें से घसीटता हो और किसी तरह न मानता हो, उस समय उसके निवारणके लिए शक्ति-प्रयोगको हम कुछ अंशोंमें क्षम्य समझ सकते हैं ; पर अभी वह अवसर नहीं आया है, और यदि वह कभी आया, तो हम अपने मित्रों और अमित्रोंको निराश नहीं करेंगे।

—

झाबुआ किधर जा रहा है ?

श्री कन्हैयालाल वैद्य (संयुक्त-मंत्री मध्यभारत प्रजा परिषद् खंडवा) ने हमारे पास Whither Jhabua ?" (झाबुआ किधर जा रहा है ?) शीर्षक एक पुस्तिका भेजी है। उस पुस्तिकाको पढ़कर हमें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि हम झाबुआ-नरेशके कारनामोंको बहुत वर्षोंसे सुनते आ रहे हैं, और एक बार झाबुआके दो जागीरदारोंके शिक्षक होकर हमें झाबुआ जाना भी पड़ा था। उक्त पुस्तिकामें जो बातें लिखी गई हैं, यदि वे सत्य हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि अब वक्त आ पहुँचा है, जब हिज़ हाईनेस राजा उदयसिंहजीको पेंशन दे दी जाय और वे साधारण जनतासे दूर किसी सुरक्षित स्थानमें, जहाँ वे किसी व्यक्तिको कुछ हानि न पहुँचा सकें, रख दिये जाय। इस पुस्तिकामें जो बातें वर्णित हैं, उनसे हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि झाबुआके शासक महोदय एक अत्यन्त अस्वस्थ व्यक्ति हैं। उनकी महारानी गौरजीने जो अर्ज़ी पोलिटिकल एजेन्टको भेजी है, और जिसकी प्रतिलिपि इस पैमफ्लेटमें दी गई है, उसमें स्पष्टतया लिखा है कि उनके पतिदेव स्नायुओंकी अत्यन्त कमज़ोरी (Nervous breakdown) से पीड़ित

हैं। सरकारका, जो इन रियासतोंकी संरक्षक बननेका दावा करती है, कर्तव्य है कि श्रीमान झाबुआ-नरेशका इलाज करावे। ऐसे बीमार आदमीको हज़ारों स्त्री-पुरुषोंके भाग्यका निर्णायक बनाये रखना वास्तवमें सरकारके लिए भी निन्दनीय है। रानी गौरजीकी अर्ज़ियोंको पढ़कर हमें बड़ा खेद हुआ। स्त्री-जातिका जो अपमान, जो तिरस्कार, इस भूमिमें हो रहा है, उसका दुष्परिणाम किसी-न-किसी दिन हम सबको भुगतना पड़ेगा। अन्यायको अन्याय जानकर भी जो लोग कायरतावश उसके विरुद्ध अपनी आवाज़ नहीं उठा सकते, वे वास्तवमें स्वाधीनता पानेके अधिकारी नहीं। और एक निरपराध सती स्त्रीकी दुःखजनित आहमें वह शक्ति है, जो छोटे-मोटे राज्योंकी तो बात ही क्या, साम्राज्यों तकको चकनाचूर कर सकती है।

श्री कन्हैयालालजी वैद्यको हम हार्दिक बधाई देते हैं कि उन्होंने साहसपूर्वक इस पुस्तिकाको प्रकाशित किया है, और उनसे अनुरोध करते हैं कि प्रत्येक राज्यके विषयमें इसी प्रकारकी पुस्तिकाएँ प्रकाशित करें। केवल दो बातोंका उन्हें ख़याल रखना चाहिए; एक तो यह कि कोई निराधार बात इनमें न छपने पावे और दूसरी यह कि भाषा संयत हो। देशी राज्योंके कारनामे इतने ख़राब हैं कि सीधी-सादी भाषामें उनका वर्णन कर देना ही पर्याप्त है। इस पुस्तिकाकी कापी विलायतकी पार्लामेंटके प्रत्येक मेम्बरके पास भेजी जानी चाहिए, और यहाँ भारतके प्रत्येक एम० एल० ए० को रजिस्ट्री द्वारा भेंटमें दी जानी चाहिए। हम अपने प्रत्येक सहयोगीसे अनुरोध करेंगे कि वे इस पुस्तिकाको अवश्य पढ़ें और उसपर अग्रलेख और टिप्पणी लिखें।

अंगुलमें तानाशाही

भारतमें बहुत कम लोगोंको यह मालूम होगा कि उड़ीसा-प्रान्तमें ब्रिटिश सरकारके अधीन एक ऐसा भी ज़िला है, जिसका शासन आज भी सोलहवीं शताब्दीका है। उड़ीसाका अंगुल नामक ज़िला 'नान-रेगुलेटेड' ज़िला है। वहाँ फौजदारी, दीवानी, माल और पुलिस आदिके सारे अधिकार वहाँके डिप्टी-कमिशनरको प्राप्त हैं। यहीं तक ग़नीमत नहीं, वरन् वहाँकी किसी भी अदालतको अधिकार है कि 'वह अपने सामने उपस्थित मामलेमें ब्रिटिश भारतके किसी भी कानूनके—उसका अस्ली सार बदले बिना—जिस ढंगसे चाहे, अर्थ लगा ले।' उसपर तुर्रा यह है कि इन मनमानी-घरजानी अदालतोंके फैसलोंकी अपील भी पटना-हाईकोर्टमें नहीं हो सकती! हाँ, केवल उड़ीसा डिवीज़नके कमिशनरके यहाँ उनकी सुनवाई हो सकती है। अंगुलकी अदालतोंके अनियमित ढंगोंकी कोई शिकायत नहीं हो सकती। प्रान्तीय सरकार वकीलोंका मुकदमोंकी पैरवी करना भी रोक सकती है। डिप्टी-कमिशनरको अधिकार है कि वह किसी आगन्तुकको आनेसे या किसी गृहस्थको उसे अपने यहाँ ठहरानेसे रोक दे।

चुनांचे, उस दिन अंगुलके तानाशाह डिप्टी-कमिशनरने अपनी इन्हीं शक्तियोंका सदुपयोग करके अंगुलके एक नागरिकको अपने मकानमें कुछ घंटोंके लिए भी गांधीजीको ठहरानेसे रोक दिया। अब इस प्रकारकी स्वेच्छाचारिताका ज़माना बीत गया है। उड़ीसावालोंका कर्तव्य है कि वे इस स्वेच्छापूर्ण तानाशाहीका उग्र विरोध करें। हमारा विश्वास है कि सारा देश उनका साथ देगा।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।